सुखसागर

भाग-१

श्रीमद् भागवत महाकाव्य

शुकसागर-शुकवाणी

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

* संकलनकर्ता :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

बी-८, कोनार्क इन्क्लेव्ह, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट

श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

मन्दिर सूना दीप बिना, दीप सूना ज्योति बिना, कहत कबीर सुनो भाई साधो, जीव सूना हरि नाम बिना।
जिन्हें हो प्यास दर्शन की वो खुशनसीब होते है, चल पड़े दो कदम तो भगवान भी उनके करीब होते है॥

* मूल्य - कृष्ण भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

मौत से भी नहीं मिटते है जिन्दगी के निशां, हर कहानी छोड़ जाती है अपने निशां।
चारों ओर बिखरी पडी है नेमते ही नेमते, हर जर्रे जर्रे में उसकी मेहरबानी के निशां ।।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

८) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

९) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

१०) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

११) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१२) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१३) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१४) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१५) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
गुरुकृपा कॉम्प्लेक्स,
विश्रांतवाडी, पुणे- ४११००१
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१६) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

✲ विशिष्ट सहयोग ✲ १) श्री. कृष्णा वाडेकर, २) श्रीमती क्लेयरा गुडविन,
३) अरीफ इनामदार, ४) लेटीसीया कोलॅको

✲ सहयोगी दल ✲ १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल,

सुखसागर

भाग-१

श्रीमद् भागवत महाकाव्य

शुकसागर-शुकवाणी

विषयसूची

१)	भागवत की महिमा		४
२)	काव्यकाल की कलम से		५
३)	भागवत माहात्म्यम्		७ से ३२
	१) देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट	७	
	२) गोकर्णोपाख्यान	१८	
	३) सप्ताह यज्ञ विधि	२७	
४)	प्रथम स्कन्ध		३३ से ९३
५)	द्वितीय स्कन्ध		९४ से १२६
६)	तृतीय स्कन्ध		१२७ से २२६
७)	चतुर्थ स्कन्ध		२२७ से ३३३
८)	पंचम स्कन्ध		३३४ से ४०५
९)	षष्ठम स्कन्ध		४०६ से ४७५
१०)	सप्तम स्कन्ध		४७६ से ५३८
११)	अष्ठम स्कन्ध		५३९ से ६०९
१२)	नवम स्कन्ध		६१० से ६७७
१३)	रामायण समीक्षा		६७८
१४)	नारी महिमा		६८५
१५)	शक्ति की आराधना		६९७
१६)	कृष्ण भक्त		६९९ से ७०४
	१) सूरदास	६९९	
	२) रसखान	७०१	

भागवत की महिमा

भागवत परमहंस संहिता है, शुकशास्त्र काव्य है, वीतराग सन्तों का मुक्त विचरण है। परमात्मा स्वयं अपने आपकी, अपने आपमें, अपने आपसे सृष्टि करते हैं। वे ही सृष्टा और सृष्ट, सृष्टि हैं। उनके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। संसारकी विभिन्नता मायिक है। जगत् की प्रत्येक विचित्रता भगवानके कौशल का स्मरण कराती है। उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि भगवान का ही भजन करना चाहिए अन्य किसी वस्तु में आसक्ति नहीं करनी चाहिए। आसक्ति ही जीवन के अध:पतन का कारण है।

भागवत धर्म की यह विशेषता है कि वह अधिकारी-अनधिकारी की परीक्षा नहीं करता। वह हरएक शब्द से कल्याण की ही वर्षा करता है। गिरा हुआ उठ जाय, पिछड़ा हुआ आगे बढ़े, बेसहारा को सहारा मिले, यही भागवत-धर्म की आकांक्षा है। आज देश ही नहीं पूरी दुनिया विनाश के कगार पर खड़ी है। लोभ-लालच, भय-मत्सर, हिंसा-भ्रष्टाचार, स्पर्धा-यंत्रवाद, स्वार्थ और छलकपट आदि पूरी मानवजाति को अपने आगोश में कसते जा रहे हैं। धन की ही सत्ता आज सारे विश्व में व्याप्त है। यंत्रीकरण, उद्योगीकरण और अमर्याद पश्चात् भोगवाद के कारण अमानवीकरण की प्रक्रिया जीवन के हर क्षेत्र में फैल रही है। अन्याय, शोषण उससे बेईमानी द्वारा हासिल की गयी सम्पत्ति से भौतिक सुख भले ही मिल जाँय, उससे आत्मिक सुख की उपलब्धि हो ही नहीं सकती। विनाश की ओर बढ़ रही दुनिया को शाश्वत सुख कैसे प्राप्त हो यही आज का अहम प्रश्न है।

सदियों से चली आ रही ऋषि-मुनियों की श्रम-संस्कृति और भारतीय ग्रामीण संस्कृति जो परस्पर सहयोग, भाईचारा, बन्धुत्व, प्रेम, विश्वास, सद्भाव, सहिष्णुता और सांस्कृतिक, नैतिक तथा मानवीय मूल्यों को विकसित करती आ रही है, उसे आज पश्चिमी जगत नेस्तनाबूद करने पर तुला हुआ है।

जिस भूमि के कण-कण में धर्म व्याप्त हो वह पूर्णतया धर्मविहीन कैसे हो सकती है? हमें यह जानकर प्रसन्नता होती है कि आज भी हमारे करोड़ों देशवासियों में धार्मिक, आध्यात्मिक सत्साहित्य की भूख है। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें ऐसे साहित्य उपलब्ध कराये जाय जो उनके संस्कारों को पुष्ट और उनके विवेक को सन्तुष्ट-तृप्त कर सके।

तपस्या में मद, समाधि में सिद्धियों का मोह, पाण्डित्य में अल्पज्ञों का अपमान और ज्ञानाभिमानी तो यह तो मैं पहले से ही जानता था कहकर दूसरों की प्रतिभा का अनादर करता है। भक्ति में ऐसी कोई बाधा का अवकाश नहीं। भक्ति में सम्पूर्ण समर्पण है, यहाँ कोई स्खलन नहीं। यहाँ भक्त और भगवान का प्रेम-मिलन है। हृदय में बैठे हृदयेश्वर भगवान को मिलाने के लिए भागवत का निरूपण है। परमात्मा का चाहे भाव से, चाहे विचार से, स्मरण रहने से उसके स्वरूप की उपलब्धि होती है। हृदयस्थ नारायण का जगना, प्रकट होना यही मुख्य बात है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, ये पाँच भक्ति-रस के प्रकार हैं। अपने-अपने मतानुसार भक्त जन अपने प्रिय भाव को सब रस का परिणाम मानते हैं। किन्तु ये सबके सब रस परिपूर्ण ही हैं। भगवान की अनुभूति ही वास्तविक रसानुभूति है। जिस प्रेमी को जिस रस की अनुभूति हुई है, उस रस को उनका अन्तिम मानना स्वाभाविक है। परम कल्याण का उदय यही है कि भगवान में भावभक्ति अविचल हो जाय। इसका सुगम-से-सुगम साधन है भक्तोंका संग। हमेशा सन्तों का संग उपलब्ध न हो, सुविधा न हो तो अधिकार के अनुसार भागवत का स्वाध्याय भी भक्ति में, स्थिरता में सत्संग जैसा ही सहायक है। सत्संग का असली स्वरूप ही यह है कि हृदय में जो संसार बना हुआ है उसको बदलकर भगवन्मय बनाना। परम कल्याण यही है कि अपना सम्पूर्ण जीवन भगवत-समर्पित हो। समर्पण के बाद अहंकार का उदय न हो, उसे ही समर्पण कहते हैं।

काव्यकार की कलम से

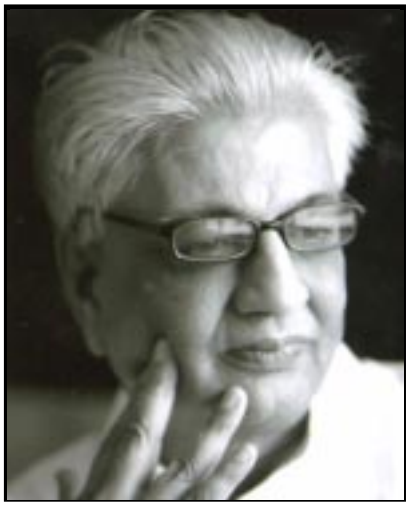

पत्थर में ईश्वर का दर्शन करना कवि की कल्पना है इसके लिये व्यापक प्रेम की आवश्यकता है। ज्ञानेश्वरजी ने भैसे की आवाज से वेद श्रवण किये।

मनुष्य के हृदय में जब करुणा, वीरता आदि रसों के और प्रेम, आनन्द व भक्ति आदि के सुख वा दु:ख भरे भाव उमड़ते हुए जब अपने में नहीं समाते-उत्ताल तरंगों में लहराने लगते हैं, तब उसके मस्तिष्क में एक अद्‌भुत सृजन-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो अनायास ही एक न्यारी व थोड़े ही शब्दों में बहुत भावों को ली हुई परिभाषा में व्यक्त होने लगती है। उस परिभाषा को ही कविता कहते हैं।

अधिकतर संत-महात्मा, उपदेशक व भक्त जन आदि इसी प्रेरणात्मक परिभाषा में कविता (पद्यादि) में अपने उपदेश, वाणी व भगवद्‌लीला आदि ग्रथित कर गये।

कवि में अद्‌भुत सामर्थ्य होता है। वह भावनात्मक एवं शाब्दिक सृष्टि का निर्माता है। यदि वह भावुक हृदय, एवं भक्त-कवि होगा तो भगवान को भी वश में कर लेता है।

कविता अमृत स्वरूप हैं, क्योंकि लौकिक जगत से परे किसी अलौकिक जगत में विचरता हुआ कवि, एक ऐसी अपूर्व भावना और कल्पनाओं की रस भरी व चैतन्यमयी सृष्टि का निर्माण करता है कि जिसका संजीवनी के समान लोक मानस पर अमोघ प्रभाव पड़ता है।

कविता आत्मा की कला है क्योंकि इस नश्वर जगत के परे उस अविनाशी सत्ता का वह संकेत करती है और आत्मा परमात्मा सम्बन्धी धार्मिक भावों एवं तत्वों को हमें प्रदान करती है जिससे मानव-जीवन आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होता है।

कविता देववाणी इसलिये है कि वह आदिकाल से देवी सरस्वती के रूप में पूजी जाती है क्योंकि वह दिव्य भावना, दिव्य ज्योति एवं दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार कराती है।

काव्य, नाटक, गीत, भावगीत एवं गद्यगीत आदि सकल साहित्य के रचनाकार व कवियों की उक्त प्रवृत्ति का मूल उद्देश्य स्वान्त:सुखाय वा आत्मानुभूति की भावना को लेकर होता है अथवा यों कहा जाय कि वास्तव में स्वानुभूति के आधार पर ही साहित्य का निर्माण होता है, उसकी अभिव्यक्ति का आधार भले ही भिन्न हो। अनुभूतियों से प्रेरणा पाकर की गई काव्य, नाटकादि रचना अथवा अभिनय, पाठक वा प्रेक्षक की अनुभूतियों के साथ एक रूपता को पाने से हृदय में एक अपूर्व सुख का अनुभव होता है। वह साहित्य ही क्या जो आत्मानुभूति प्रेरित न हो और जो जन-मानस को प्रभावित न कर सके।

ईसवी सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएँ हुईं जिनमें वैष्णव साहित्य और विशेष कर कृष्ण भक्ति के साहित्य का अधिकतर ब्रजभाषा में निर्माण हुआ।

बारहवीं शताब्दी में बंगाल के रसिक-भक्त-कवि जयदेव ने गीत गोविंद की रचना की जिसमें श्री राधाकृष्ण की मधुरलीला के, संयोग-वियोगादि विलक्षण भावों से परिपूर्ण, संगीतमय सुन्दर छन्दों द्वारा अपूर्व, उज्ज्वल श्रृङ्गार रस की लहरें बहादी। उस सुधा लहरियों के मादक बिन्दुओं को पीकर, गुजरात में नरसिंह मेहता, बंगल में चण्डीदाय तथा महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्य, विहार में विद्यापति, ब्रज में सूरदासादि और मारवाड़-मेवाड़ में मीराबाई आदि देश-देश के रसिक भक्तों ने, प्रेमोन्मत्त होकर उस राधाकृष्ण लीला का मधुर रस सर्व साधारण जनता को भी पिलाया।

जोगिनी-सी मीराँ ने संसार को त्यागकर भी सांसारिक भावों में सरस श्रृङ्गार-उज्ज्वल रस परिपूर्ण विरह-मिलन का दिव्य गीत गाया। वैरागिनी व तपस्विनी होकर भी उसकी साधना का मूल अंग प्रेम था।

परमात्मा आनंदस्वरूप है। प्राणिमात्र उस आनंद की प्राप्ति के लिये चेष्टा करता है, उसी के अनुसन्धान में लगा हुआ है। परमात्मा अनंत है और उसकी सृजन-संहारात्मक प्रकृति लीला भी अचिन्त्य है। बुद्धिमान व विचारवान् मानव अपनी सीमित बुद्धि-शक्ति द्वारा उस असीम को पाने की व उसके रहस्य को समझने की लालसा रखता है परन्तु यह उसके लिये एक जटिल समस्या हो जाती है। गुणातीत को भला गुणाश्रित मन, बुद्धि अथवा तर्क द्वारा समझना कैसे संभव हो सकता है। फिर भी येन केन प्रकारेण प्राणी जैसा भी उसका वर्णन स्वतन्त्रता पूर्वक करता जाता है। यह निर्गुणवाद ही रहस्यवाद है।

वैसे तो परमात्मा अनन्त है इसलिये उसकी प्राप्ति के साधन भी अनन्त हैं किन्तु ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति आदि भिन्न साधन की दृष्टि से उपासना दो प्रकार की मानी जाती है, निराकार वा निर्गुण उपासना, साकार वा सगुण उपासना। भक्ति मार्ग यह सगुण उपासना का साधन है।

सगुण उपासना में भी अनेकानेक मत-मतान्तर तथा सम्प्रदाय हैं। भगवान श्री विष्णु के राम व कृष्णादि अवतारों की उपासना वैष्णव धर्म की मानी जाती है। श्री कृष्ण को उपास्य माननेवालों में भी भिन्न-भिन्न भाव व सिद्धान्त हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की बालस्वरूप की उपासना युक्त पुष्टिमार्ग स्थापित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री राधाकृष्ण के दिव्य भावानुभूतियों के आनन्दावेश व विरहार्णव में डूबते उतराते, कृष्ण-भक्ति का व विशेष कर भगवन्नाम का संसार को दिव्य सन्देश प्रदान किया। श्री हित हरिवंशजी ने श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय की एक प्रथक् शाखा चलाई जिसमें श्री राधिका जी को विशेष रूप से मान्यता दी गई।

वास्तव में प्रेम ही एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। कोई कितना ही क्यों न पांडित्य, कला व गुण सम्पन्न हो पर उसमें यदि प्रेम नहीं तो सब व्यर्थ है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक परमात्मा-भगवान एक मात्र प्रेम के ही वश होते हैं, यही क्या प्रेम ही भगवान है और प्रेम ही आनन्दस्वरूप है। प्रेम का आत्यंतिक उत्कर्ष केवल मधुर-रति में ही होता है।

इस प्रेम के साधन में अहंकार बाधक होता है। निरन्तर दर्शन व मिलन की मधुर लालसा, आशा व उत्कंठा से प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। इस प्रेम को पाकर प्रेमी इसको ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है। अपनी कला की कोई कला कोविद मुक्तकंठ से प्रशंसा करे, तो कलाकार को अत्यधिक हार्दिक प्रसन्नता होती है। कवि का सबसे बड़ा गुण नयी-नयी बातों का अन्वेषण है। उसका कार्यक्षेत्र यह प्रकृति विकास को बखुबी से अध्ययन करता है।

धन, विद्या, वगैरह में हम इतने खो गये हैं कि हमारी प्राप्ति ही नहीं हुई, सगुण कथानकों से निर्गुण का अनुभव बड़ी सरलता से होता है। सगुण साक्षात्कार हो जाय तो निर्गुण में स्थिरता भी कठिन नहीं। जिसे अपने-आपमें परमात्मा न मिला, उसे घर के सभ्यों में, पड़ोसी में, समाज में परमात्मा कैसे दिखेगा? जिसे जीवंत सृष्टि में परमात्मा न मिला वह पत्थर में परमात्मा का दर्शन क्या करेगा? ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्ति श्रीमद्भावत के प्राण हैं। भगवत्-शरणागति हृदय है। अधिकारी-अनधिकारी सबके लिए सुगम है। परमात्मा-प्राप्ति का सरल मार्ग भागवत में बताया है। कामतृष्णा का परित्याग करके सत्य धर्म का आश्रय करें, अन्य लौकिक धर्मों को त्याग दें। सदा साधुजनों की सेवा करें। भोगों की लालसा छोड़ दें तथा अन्यों के दोष-गुण का विचार सत्वर त्याग दें। एकमात्र भगवान की सेवा और भगवद् कथा का रस का पान करें। यदि आप मनुष्य-जीवन सफल करना चाहते हैं तो यह जान लें कि सुख-दुख हर परिस्थिति में है।

भागवत माहात्म्यम्

१) देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट

श्री शुकदेव थे नन्हें शिशु, नहीं यज्ञोपवीत भी था हुआ। उसी समय एकाकी बाल, संन्यास हेतु घर से निकला।।
विदीर्ण हृदय हुए वेदव्यास, आर्त हो यूँ पुकारा उन्हें। हे प्रिय पुत्र लहमें छोड़कर, कहां वत्स हो जा रहे?
आत्म रूप सबमें बसे, शुकदेव व्याप्त थे कण कण में। पिता को उनकी ओर से, दिया उत्तर वन के वृक्षों ने।।
सर्वभूत हृदयस्थ जो, ऐसे मुनि शुक की महिमा अपार। उनके श्री चरणारविन्द में, नमन करूं मैं बार बार।।
नैमिष्यारण्य विराजमान्, श्री सूत के चरण में नमन किया। भगवत्कथामृत रसिक थे जो, उन शौनक मुनि ने प्रश्न किया।।

शौनक बोले,
अज्ञान तिमिर मिटाने को, कोटि सूर्य सम है तेरा ज्ञान। महांगुह्य सार मम कर्ण प्रिय, कहें आप मुझे कथा महान्।।
भक्ति ज्ञान और वैराग्य, जिस महा विवेक के हैं आधार। किस साधन सों वर्धित वह हो, कहें आप मुझको वह सार।।
मोह माया सों कस मुक्त हों, वैष्णव जन जान न पाता हूँ। आपके चरण में बैठ करी, वह तत्व जानना चाहता हूँ।।
इस कलिकाल का यह प्रभाव, असुरत्व ने जीव को ग्रसित किया। क्लेशों से पीड़ित जीवों की, शुद्धि का है अब साधन क्या।।
सर्वश्रेष्ठ श्रेयस्कर जो, पावनकर में पावन जो महान। कृष्ण को अब कैसे पायें, उस साधन का आज करो बखान।।

चिन्तामणि तो इस जग के, लौकिक सुख ही दिला सके। कल्पवृक्ष उससे बढ़कर, स्वर्गीय सम्पद् उपभोग को दे।।
सर्वपूज्य श्री गुरुदेव, गर प्रसन्न हो कृपा करें। अतिदुर्लभ जो योगी जन का, बैकुण्ठ धाम वह दे डालें।।

सूतजी बोले,
हे शौनक तेरा हृदय, परिपूर्ण है भागवद् प्रेम सों। जन्म मृत्यु भवभयहारी, कहा शास्त्रों में निष्कर्ष जो।।
विचार करी अब उस सबको, तुझको मैं सुनाता हूँ। अमृतमय रस सार जो, उसका सुधा पान कराता हूँ।।
श्री कृष्ण को जो तुष्टित करे, भक्ति प्रवाह वर्धित करे। वह साधन अब बतलाता हूँ, तू सावधान होकर सुनो जरा।।

कलिकाल में जीव जो, काल भुजंग का ग्रास बनें। उनकी त्रास मिटाने को, आत्यन्तिक साधन यहां कहें।।
श्री शुकदेव ने कृपा करी, है महान् प्रवचन किया। श्रीमद्भागवत शास्त्र का, अनुकम्पा कर आख्यान किया।

चित्त की शुद्धि अगर चाहो, सर्वोत्तम साधन यह है। जन्म जन्म के पुण्यों से, जब भाग्य उदय हो यह ही है।।
इस परम पावनी शास्त्र का, श्रवण आरम्भ रे तब ही हो। कलि काल में मुक्ति का, बस साधन इक यह ही है।।

श्री शुकदेव कृपा करके, परीक्षित हेतु विराजे वहाँ। देवता गण भी उस सभा में, ले अमृत कलश पधारे वहाँ।।
अपने कार्यों में कुशल सभी, देवों ने अभिनन्दन किया। श्री शुकदेव को नमन करी, वह कलश उन्हीं के चरण धरा।।
कहा विनती हम करते हैं, इस अमृत को स्वीकार करो। कृपा करी हे मुनीश्वर, कथामृत का हमें दान दो।।

इस विधि विनिमय हो जाने पर, राजा अमृत पान करें। वह हेतु बनें इस महिमा का, और भागवद् रस का हम पान करें।।
इस संसार में एक ओर, कहीं टूटा काँच हो पड़ा हुआ। दूजी ओर बहुमूल्य रत्न, इनका आपस में मेल है कहा?

इसी विधि यह अमृत कलश और भागवद् कथा का तोल कहाँ? निज दम्भ में उलझे देवता गण, समझेंगे इसका मोल कहाँ?
उनकी नादानी देख करी, शुकदेव मुनि यूं हँस दिये। यह भी उन्होने जान लिया कहाँ, यह देवता फँस गये।।
भक्ति रहित उन्हें जान करी, कथामृत उनको नहीं दिया। सुरगण के लिये भी दुर्लभ है, जानो यह भागवद् की कथा।।

पूर्वकाल में श्रवणमात्र सों, ही थे परीक्षित मुक्त हुये। महिमा देखी यह भागवद् की, ब्रह्मा जी भी विस्मित हुये।।
सत्यलोक में बैठ करी, सब साधन उनने तुला पे धरे। अन्य सभी साधन थे जो, तुला पे हल्के पड़ गये।।
अपनी अद्भुत महिमा से, श्री भागवद् ही भारी रहे। रोमांचक यह दृश्य देख, आश्चर्यचकित सब ऋषि हुये।।
देवर्षि नारद ने यद्यपि, पूर्व था ब्रह्मा जी से सुना। अनुष्ठान भागवद् सप्ताह का, विधि विधान उन्होंने ही दिया।।
सूतजी बोले,
सत्संग हेतु सनकादि सब, बद्रिनारायण में आये। उस नगरी में उन सबने, नारद के दर्शन पाये।।
सनत्कुमार बोले,
हे देवर्षि यह मुख कमल, आपका क्यों मुरझाया है? किस चिन्ता ने कहो आप, हृदय को आज सताया है?
कहाँ से है आगमन हुआ, किस विपदा ने घेरा है? क्यों इतनी जल्दी में हैं, अब आपका कौनसा अगला बसेरा है?
ज्यों सब सम्पद् लुट जाने पर, व्याकुल संसारी हो जाये। न जाने सब सुख कहाँ गये, दीन हीन वह हो जाये।।
क्या कारण है उद्विग्नता का, न सोहे आपको ऐसा ताप। महामुनि आसक्ति रहित, निर्मम हैं निरहंकार आप।।
नारद बोले,
मैं समझा था यह पृथ्वी लोक, सब लोकों में महान है। पुष्कर प्रयाग गोदावरी काशी, सब तीर्थों का यहाँ वास है।।
हरिद्वार कुरुयेत्र भी, श्री रंग और सेतुबन्ध गया। भ्रमण किया सब तीर्थों में, पर शान्त चित्त भी न हुआ।।
इस पल अधर्म के सहयोगी, कलियुग ने पृथ्वी को है ग्रसा। धर्मधारिणी पृथ्वी को, इस पल है पीड़ित उसने किया।।

न जाने कोई सत्य है क्या, नहीं दया दान कहीं पावनता। वराह की भाँन्ति उदर पूर्ति, ही जीवों का लक्ष्य बना।।
वाणी पे भी असत्यता, और कटुता का राज्य हुआ। इस कारण इस कलियुग में, पतन ही सबका हुआ।।
मन्दमति प्रमादी बने, उपद्रवी सब हो रहे। ऐसे गुण का मिलन जो हो, भाग्य भी मन्द हो रहे।।

राज्य करे पत्नी घर में, सलाह कार है साला बना। धन लोभ में कन्या को बेचें, कलह क्लेश घर में बना।।
आश्रम तीर्थ और नदियों को, अधर्म ने है अवरुद्ध किया। मन्दिर जो थे भगवान का घर, उनको दुष्टों ने नष्ट किया।।
न योगी कोई न सिद्ध कहीं, न सत्कर्मी कोई ज्ञानी जन। कलिकाल की भीषण अग्नि में, भस्मीभूत हुये सब साधन।।
बाजार में बिकने लगा है अन्न, द्विज बेचें वेद की विद्या को। सौन्दर्य रूप का सौदा कर, करें कामिनी अर्जित जीविका को।।

कलियुग के दोष निरखता हुआ, मैं पृथ्वी पर था विचर रहा। श्री हरि की लीला भूमि में, मैं यमुना तीर पे जा पहुंचा।।
हे मुनि श्रेष्ठ मेरी बात सुनें, आश्चर्य चकित हो देखा दृश्य। इक तरुणी बैठी खिन्न मनी, कालिन्दी के हरित तट पर।।
दो वृद्ध समीप थे उसके पड़े, अचेत अवस्था में वह थे। वह रुदन करे कभी सेवा करें, कभी चेत करन के यत्न करे।।

दूर से यह सब देखकर, कौतूहल मेरे मन में उठा। जिज्ञासा के वशीभूत हो, मैं उसके निकट ही जा पहुँचा।।
मुझको देख वह खड़ी हुई, और व्याकुल मन से उसने कहा। उसके मन की दारुण व्यथा, तब ही था मैं जान सका।।

भक्ति बोली,
हे साधु तनिक रुको तो सही, चिन्ता मेरी भी दूर करो। महिमा तेरे दर्शन की अपार, क्षय कर दे लोकों के पाप।।
भाग्य उदय हो जीव का जब, तब दर्शन आपके पाएं। वाणी आपकी श्रवण करी, बहु पाप मेरे कट जाये।।

नारद बोले,
हे देवि कौन हैं आप, क्या नाता है इन पुरुषों से? यह पास बैठी कमल लोचनी देवियाँ कौन, कहो कारण क्या है दु:ख का तेरे?

भक्ति बोली,
भक्ति नाम से पुकारें मुझको, यह दोनों वृद्ध हैं पुत्र मेरे। ज्ञान वैराग्य नाम है इनका, हुए जर्जर समय के फेर से।।
गंगा आदि देवियाँ यह, सब मेरी सेवा में आईं। इन सबकी सेवा पाकर भी, मेरी व्यथा शान्त न हो पाई।।
हे तपोधन पावन ऋषी, जरा मेरी व्यथा पे ध्यान दें। है जग प्रसिद्ध यह कथा मेरी, अब सुनकर आप ही शान्त करो।।

जन्म हुआ द्रविड़ में मेरा, कर्णाटक में विकास हुआ। सम्मान महाराष्ट्र में भी मिला, गुजरात में वृद्ध अवस्था ने आ घेरा।।
कलियुग का ऐसा प्रभाव पड़ा, खण्डित मैं हुई पाखण्डियों से। निस्तेज हुई मैं पुत्रों सहित, चिरकाल में ऐसी रहने से।।
जब से वृन्दावन रज कण का, स्पर्शन् मैंने पाया है। रूपमती नवयुवती का, सौन्दर्य उभर पुन: आया है।।
थके हारे इन श्रान्त हुए, पुत्रों का दु:ख न सह पाऊं। यह स्थान छोड़ अब इनके संग, अन्यत्र कहीं जाना चाहूँ।।

जरा ग्रसित हुए पुत्र मेरे, मैं इस दु:ख से आक्रान्त हुई। मैंने तो तरुणाई पाई, क्यों बूढ़े हैं मेरे पुत्र हुए?
हम तीनों ही सहचारी हैं, फिर उलटी बात क्यों बन आई? माता तो वृद्ध भी हो जाती, क्यों खोई सुतों ने तरुणाई?
हे योग निधि हे बुद्धि घन, इस कारण हो आश्चर्य चकित, नित शोक में डूबी रहती हूँ।
क्या गुह्य रहस्य है इसका कहें, मैं आपकी शरण में बैठी हूं।।

नारद बोले,
मैं अपने हृदय में ज्ञान चक्षु से, तब दु:ख कारण जान रहा। निश्चिन्त हो तू निष्पाप साध्वी, हरि कल्याण करेंगे तेरा।।

सूत बोले,
थे देवर्षि त्रिकाल दर्शी, वा मन की बात वह जान गये। क्षण भर में उसका दु:ख समझी, नारद जी उससे यूँ बोले।।

नारद बोले,
हो सावधान देवि तू सुनो, है दारुण कलियुग का यह समय। सदाचार, योग, तप इस कारण ही, धरा से हैं अब लुप्त हुए।।
शठता और दुष्कर्मों से, सब ही लोग हैं असुर बने। म्लान हैं दु:ख से सन्तगण, और दुष्ट प्रसन्न हैं दीख रहे।।
इस कठिन समय में बुद्धिमान, जिस जीव का धैर्य बना रहे। वही ज्ञानवान वही धीर है, वास्तव में पण्डित वही है रे।।

काल की गति से इस पृथ्वी का, भार ही बढ़ता जाता है। शेषनाग भी इस पाप के, बोझ को सह नहीं पाता है।।
अस्पृश्य ही है यह हो गई, नहीं दर्शन योग्य अब रही धरा। वर्ष वर्ष बीते जायें, कल्याण कहीं न दीख रहा।।
वृन्दावन का संयोग हुआ, तब युवा अवस्था लौट आई। धन्य धन्य है वृन्दावन, जहाँ नृत्य करे भक्ति माई।।
इन दोनों पुत्रों का तेरे, नहीं यहाँ पे भी ग्राहक कोई। इस कारण ही वृद्धावस्था, इन दोनों की न छूट रही।।

भक्ति बोली,
पाप पूर्ण इस कलियुग को, क्यों आश्रय दिया परीक्षित ने? इसके आगमन के साथ-साथ, हुआ लुप्त बस इक क्षण में।।
करुणामय हरि इस पाप को, कैसे सहन कर पाते हैं? हे मुनिवर शान्त करो संशय, तब वचन से सुख हम पाते हैं।

नारद बोले,
तुमने जो प्रश्न किया बाले, अब सुनो प्रेमपूर्ण चित्त से। उत्तर कहूँगा सब का, तेरे दु:ख दूर हो जायेंगे।।
भगवान कृष्ण ने जिस दिन ही, भू त्याग स्वधाम को गमन किया। सब साधन में विघ्नकारी, उस दिन ही कलि ने कदम धरा।।
दिग्विजयी हुए परीक्षित जब, उनकी दृष्टि कलियुग पे पड़ी। दीन हीन हो कलियुग ने, चरणों में उनके शरण गयी।।
सार ग्राही थे भँवरे सम, राजा ने देख यह निर्णय किया। इसका वध करने योग्य नहीं, यह है शरणागत मेरी आया।।

समाधि योग और तप से भी, जो फल साधक नहीं पाता है। कलियुग में हरि कीर्तन से, ही वह उपलब्ध हो जाता है।।
सारहीन होने पर भी, कलियुग का एक सार पाया। जीवों के सुख साधन हेतु, नहीं इसका नाश वह कर पाया।।
कुकर्म में हैं सब लगे हुए, सार वस्तु तो चली गई। बीजरहित भूसे की तरह, हुई है ऊसर सब पृथ्वी।।

धन और अन्न के लोभ में, घर-घर में ब्राह्मण जा रहे। अपना उदर ही भरने को, सबको हैं कथा सुना रहे।।
स्वार्थ प्रधान हुआ जिस पल, प्रेम रस तो चला गया। बाह्य कथा तो होने लगी, पर सार सभी का चला गया।।
अतिघोर कर्म करने वाले, नास्तिक तीर्थों में आ बसे। इन नारकी जन के वास से, तीर्थ प्रभाव भी लुप्त हुए।।
काम, क्रोध और महालोभ, तृष्णा से चित्त व्याकुल हुए। तप का अभिनय कर वह रहे, तो तप सार भी नहीं रहे।।

नहीं अपना मन ही अब वश में, लोभी दम्भी पाखण्डी भए। नहीं मानें बात शास्त्र की, ध्यान का फल भी कोई न मिले।।
क्या बात करें पण्डित गण की, भैंसेवत् स्त्री संग विचरें। सन्तति प्रजनन में कुशल हुए, मुक्ति साधन सब भूल गए।।

वैष्णवता जो गुरु से पाई, वह भी कहीं पे न दीखे। हर जा हर वस्तु सार शून्य, हैं सत्य सार से सब रीते।।
नहीं दोष किसी का है इसमें, यह तो युग का प्रभाव है। सबमें बसें वह कमलनयन, सब ताप सहें वह आप हैं।।

सूतजी शौनक ऋषियोंसे बोले,
सुनी देवर्षि के यह वचन, भक्ति भी अति विस्मित हुई। सुनो हे शौनक तुम सुनो, फिर उसने क्या वचन कही।।

भक्ति बोली,
हैं धन्य आप हे देवर्षि, सौभाग्य से मुझ संग मेल हुआ। इस लोक में साधु दर्शन ही, कारण है सब सिद्ध हुआ।।
जिनसे उपदेश को पाकर के, प्रल्हाद ने माया को जीता। कृपा प्रसाद से ही जिनके, ध्रुव ने ध्रुवपद को पाया।।
सबके हैं मंगलकारी आप, श्री ब्रह्मा जी के पुत्र हैं। आपके श्री चरणों में ही, नत मेरा यह मस्तक है।।

नारद बोले,
हे बाले तुम व्यर्थ ही क्यों, अपने को खेद में डाल रही? क्या कारण है तव चिन्ता का, इतना तो अब कहो सही।।
श्री कृष्ण के चरणारविन्द ध्याओ, कृपा जो हो जाये उनकी। सत्य कहूँ इक पल में ही, भागेंगे तेरे दु:ख सभी।।
कौरव भूले अब सदाचार, किया द्रुपद सुता पर अत्याचार। उसकी व्यथा मिटाने को, लिया वस्त्र बनके अवतार।।

गोकुल की सब गोपिकागण, पाकर जिनको हो गई सनाथ। नहीं वो कृष्ण गये, अब भी हैं वह हमारे हृदय पास।।
फिर तुम तो हो भक्ति प्रिय उनकी, प्राणों से अधिक तुम्हें प्रेम करें। तेरी पुकार को सुनकर के, प्रभु नीच के घर भी जा पहुँचे।।

सतयुग आदि में मुक्ति के, साधन हैं ज्ञान वैराग्य कहे। किन्तु कलियुग में कहें शास्त्र, भक्ति ही ब्रह्म सों युक्त करे।।
ऐसा निश्चित विधान जानी, श्री हरि ने है तुम्हें रचा। परमानन्द स्वरूप प्रभु का, सत् अंश प्रेम ज्ञान रूपा।।
परम सौन्दर्य मूर्ति स्वयं, तुम आप कृष्ण की हो प्रिया।। एक बार जब कर जोड़ी, तुमने था प्रभु से प्रश्न किया।।
आदेश दें हरि आप मुझे, कहें आप क्या धर्म मेरा। तो प्रभु ने दी एक आज्ञा, पोषण करो मेरे भक्तों का।।

सीस झुकाकर तुमने जब, आज्ञा उनकी स्वीकार करी। प्रेम को तेरे देखकर, अति प्रसन्न हुए श्री हरि।।
वरदान में तेरी सेवा से, मुक्ति को दासी कर दीनी। पुत्र रूप में भक्तिमति, वैराग्य ज्ञान भी संग किये।।
वैकुण्ठ लोक में वास तेरा, भक्तों का पोषण हो वहाँ। भूलोक में उनकी पुष्टि को, बस छाया रूप में ही प्रकटो।।
मुक्ति वैराग्य और ज्ञान संग, पृथ्वी तल पर तुम आ उतरी। सतयुग से द्वापर पर्यंत महा आनन्द में तुम रही।।

कलियुग में तव दासी मुक्ति, पाखण्ड का वार न सह सकी। इस रोग से पीड़ित होकर वह, नित्य क्षीण होने लगी।।
ऐसी दशा उनकी देख कर, आज्ञा उसको तुमने दी। तेरे ही आदेश को पाकर ही, वैकुण्ठ धाम को वह लौटी।।
जब जब तुम याद करो उसको, इस लोक में वह दौड़ी आये। तब आज्ञा को पूर्ण कर, पुन: वैकुण्ठ लौट जाये।।
पर ज्ञान वैराग्य द्वौ पुत्र तेरे, इनको तुम न छोड़ सकी। अपने पास ही रखा इन्हें, इनसों मुखड़ा न मोड़ सकी।।
कलियुग में इन दोनों को, नित्य मिली उपेक्षा ही। उत्साह हीन यह हो गए, और वृद्ध अवस्था है पाई।।
फिर भी तुम चिन्तित हो बाले, अब इसका भी उपाय सोचूँ। किस विध नवजीवन पायें यह, अब तुमको उसकी विधि बताऊँगा।।

हे कमलमुखी अब मेरी सुनो, नहीं कलि समान है या युग कोई। घर घर में इस कलियुग में, हर हृदय में तू वास करेगी।।
पीछे रह जायें सब साधन, भक्ति उत्सव ही प्रधान हो। प्रचार करूँ हर लोक में, नही तो हरिभक्त मेरा नाम न हो।।
जिनके हृदय में प्रेम स्वरूपा, भक्ति सदा निवास करे। शुद्ध जन वह प्रेमी भक्त, नहीं यम का दर्शन कभी करे।।
स्वप्न में भी उसके कभी, यमराज निकट नहीं आते हैं। भक्ति की महिमा है यह, निर्भय पद वह पाते हैं।।
जिनके हृदय में परम पावनी, भक्ति का ही राज्य रहे। प्रेत पिशाच राक्षस दैत्य, स्पर्श न उसका करे।।

न तप ज्ञान न कर्म से, न वेदाध्ययन से ही मिलें। भक्ति ही इक साधन है, हरि जिसके वशीभूत रहें।।
है साखी ब्रज बालाओं की, जिन प्रेम से ही हरि को जीता। गोपिन् के प्रेम के सामने, तप ज्ञान कर्म सब ही रीता।।
सहस्त्रों जन्म के पुण्य जब, एकत्रित होकर जाग उठें। उस पल ही जीव के हृदय में, भक्ति के प्रति अनुराग उठे।।
कलियुग में निश्चित जानो, केवल भक्ति ही सार है। श्रीकृष्ण भी रुक नहीं पायेंगे, गर भक्ति तेरा आधार है।।

जिसने भक्ति से द्रोह किया, हो दु:खी वह तीनों लोकों में। कथा याद करो दुर्वासा की, हुए तप्त वह तीनों लोकों में।।
पूर्वकाल में उनने ही, तिरिस्कार किया भक्ति का। अपने इस पाप के कारण ही, दु:ख बहु कठिन उनने झेला।।
छोड़ो अब अन्य सभी साधन, तीर्थ व्रत योग और यज्ञ से क्या। ज्ञान की चर्चा कथा प्रवचन, इन सबकी आवश्यकता क्या ?
सत्य जानों इस कलियुग में, है भक्ति ही इक मुक्तिदाता। सब ही साधन भूल करी, अब उसकी शरण में जीव जाकर पड़ा।।

सुनकर नारद से निज महिमा, शान्त चित्त भक्ति हुई। पुष्टित हुआ अंग अंग उसका, वह नारद से यों बोली।।
भक्ति बोली
धन्य धन्य हैं देव ऋषि, अनन्य प्रीत भक्ति में तेरी। मैं सदा बसूँगी हृदय तुमरे, नहीं कभी तुझे छोड़ूंगी।।
हे साधो आप कृपालु हैं, क्षण भर में दु:ख मेरा दूर किया। पर देवर्षि मेरे पुत्रों में, लौटी नहीं अभी चेतनता।।
इस कारण कर जोड़ी करी, अब बिनती चरण में करती हूँ। जल्द सचेत करो इनको, इतनी ही याचना तुमसे करती हूँ।।
सूतजी बोले,
भक्ति के वचन सुन नारद भी, करुणा से द्रवीभूत हुये। हाथ हिलाकर बार-बार उन्हें जगाने वह लगे।।
फिर उनके कानों के निकट, अपना मुख वह ले गए। शीघ्र ही आओ होश में तुम, ज्ञान वैराग्य से कहने लगे।।
वेद ध्वनि करी बार-बार वेदान्त भी सुनाया उन्हें। बार-बार किया गीता पाठ, बहु यत्न करी के जगाया उन्हें।।
उनके उद्‌घोष को सुन सुन कर, बहु प्रयत्न वह करने लगे। जो सोये थे चिरनिद्रा में, आज पुन: जगने लगे।।

हुए प्रमाद के वशीभूत, नहीं क्षेत्र भी थे खुल पा रहे। बन्द नयन से दोनों ही, जम्भाई लेते जा रहे।।
सिर के बाल सफेद हुए थे बगुले सम, और अंग-अंग निस्तेज हुए। सुखे कांट की भान्ति ही, वे शरीर से सूख गये।।
भूख प्यास के कारण वह, अति दुर्बल थे हो गये। पुन: निद्रा में उन्हें जाते देख, नारदजी चिन्तातुर हुए।।
एक ही सोच में थे पड़े, कैसे इन्हें जगाऊं मैं। कौन उपाय अब करूँ, जिसमें सफल हो जाऊँ मैं।।
किस विध दूर करूँ निद्रा, उससे भी बढ़कर जर्जरता। यह सोच सोच कर हे शौनक, नारद ने प्रभु को याद किया।।

उसी समय हुई आकाशवाणी एक ध्वनि वहाँ गूँज पड़ी। मत उदास हो हे ऋषि, यह आवाज कान में पड़ी।।
निश्चित ही प्रयत्न तुम्हारे, जल्द सफल हो जायेंगे। दोनों पुत्र यह भक्ति के, चेतनता को पायेंगे।।
यह प्रयोजन हृदय में धरो, देवर्षि इक सत्कर्म करो। सत्कर्म कौनसा करना है, यह श्रेष्ठ सन्तोंसे जान लो।।
अनुष्ठान जो इसका करोगे, तो इक क्षण में नींद खुल जायेगी। बुढ़ापे की अवस्था भी तत्क्षण इनकी दूर हो जायेगी।।

तत्पश्चात् ही भक्ति भी, चारों ओर फैल जायेगी, देवर्षि तेरा यह प्रयत्न तभी सफल हो जायेगा।।
उस पल यह आकाशवाणी, स्पष्ट ही सबने सुनी। आश्चर्य चकित हो बोले नारद, समझ मेरी कुछ आया नहीं।।
नारद बोले,
इस आकाशवाणी ने भी, गुप्त संकेत में बात कहीं। नहीं कही कोई अब कौनसा कार्य करूं, जिस राह पर यत्न सफल हो।
न जाने कहा मिलेंगे सन्त, कौनसा साधन करूं। क्या करूं अब कैसे जानूं, यह सार्थक वाणी कैसे हुई।।
सूतजी बोले,
फिर ज्ञान-वैराग्य को छोड़कर मुनि नारद वहाँ से चल दिये। तीर्थ तीर्थ में भ्रमण करते, सब संतोंसे मार्ग में पूछते।।
सबने उनकी बात सुनी, पर उचित राह कोई न दे पाये। कहने लगे असाध्य है, कुछ कहने लगे दुर्विज्ञेय यह।।
कुछ तो चुप हो गये और कुछ तो पलायन कर गये। नारद जी को इस विधि कोई उपाय न मिलें।।

त्रिलोकी में विस्मय पूर्ण, हाहाकार महा होने लगा। आपस में सबसे छिपकर, वार्तालाप भी होने लगा।।
कानों कानों इक दूजे के, करें प्रकट अपना विचार। वेद वेदान्त का घोष हुआ, हुआ गीता पाठ भी बार-बार।।

फिर भी भक्ति वैराग्य ज्ञान, नहीं जगे शास्त्रन् की सुन पुकार। अब धरा पे कौन उपाय रहा, इस मूर्छा का जो करे उपचार?
नारद योगीराज स्वयं, नहीं जिसको बात सकें। इस गुह्य रहस्य के बात को, संसारी कैसे सुलझा सकें।।
इसी विधि जिन ऋषियों से, उपाय इसका पूछा गया। उन सबने निर्णय करके, इसको अति दु:साध्य कहा।।
हुए नारद अति चिन्ता ग्रसित, बदरीविशाल में वह जा पहुँचे। ज्ञान वैराग्य जगाने को, वहां तप करने का निश्चय किया।।

उसी समय सम्मुख अपने, सनकादि के दर्शन पाये। कोटि सूर्य सम तेज से, वह मुनिकुमार थे दमक रहे।।
सनकादि कुमारों को, फिर देवर्षि ने प्रणाम किये। उनको सामने देखकर, देव ऋषि यूं बोल उठे।।
नारद बोले,
बड़े भाग्य से ऐसे समय में, आप से है संयोग हुआ। मुझपर कृपा करें मुनिवर, और परम कल्याण साधन दें बता।।
आप सभी हैं योगी राज, विद्वान औ बुद्धिमान् हैं। दृष्ट रूप पंचवर्षीय बाल, पूर्वजों के पूर्वज महान हैं।।
वैकुण्ठ धाम में वास हो, हरि कीर्तन ही इक काम है। प्रभु का लीला रस अमृत, उन्मत्तता का नित जाम है।।
भगवद् कथा का कथन ही, तव जीवन का पैगाम है। हे अग्रज आपके चरणों में, मेरा बारम्बार प्रणाम है।।

जिनके मुख पे सदा सदा, बस एक मन्त्र ही रहता है। हरि शरणं श्री हरि शरणं, हर स्वास उनका कहता है।।
इसीका कौतुक है ऐसा, कोई बाधा राह में न आये। काल के वेग से जो आये, जरा भी दूर ही रह जाये।।
पूर्वकाल कि उक्ति यह, जब भृकुटी आपकी कभी तनी। द्वारपाल श्री विष्णु के, जय और विजय की गति बनी।।
भृकुटी भंग से आपके, वह भू लोक में जाय गिरे। जब पुन: आपकी कृपा हुई, वैकुण्ठ धाम में जा पहुंचे।।

सौभाग्य उदय जो हुआ मेरा, आपका दर्शन है पाया। दीन हीन मैं याचक बन, आपके द्वार पे आया।।
स्वभाव से ही दयालु आप, मैं विनती इतनी करता हूँ। कृपा करें आप मुझपे, यह याचना चरण में धरता हूँ।।

आकाशवाणी ने जो, दिव्य आदेश था मुझे दिया। कौन है वह साधन कहो, करूँ जिसका अनुष्ठान कहा।।
सविस्तार विधि उसकी, आप मुझे बतलाइये। किस विध पालन करूँ उसका इतना मुझे समझाइये।।
कौनसा साधन करूँ कहाँ, जिससे हों भक्ति ज्ञान वैराग्य सुखी। सब वर्णों के हृदय कहो, सप्रेम प्रतिष्ठित हों सब ही।।
सनत्कुमार बोले,
हे देवऋषि चिन्ता त्यागें, तुम हो जाओ प्रसन्नमन। इक सरल विधि इस हेतु, पूर्वकाल में अतित रहेंगी।।
धन्य धन्य हैं देवर्षि, वैरागी जन के शिरोमणि। प्रचण्ड सूर्य सम योगी जन में, आपकी है आभा बनी।।
प्रमुख आप श्री कृष्ण भक्त, उनके दासों में अग्रणी। आपसे ही साधन यह बने, विधाता की यह विधि बनी।।

यह उद्योग भक्ति हेतु, है आपका स्वाभाविक ही। इसको देख के सत्य कहें, हुआ हमें आश्चर्य नहीं।।
श्री कृष्ण भक्त के लिए कहें, है भक्ति उदय ही धर्म एक। सब हृदयों में वह बसी रहे, यह ही है उसका कर्म एक।।
ऋषियों ने इह लोक में, बहुत से पथ हैं प्रकट किये। वह सब ही हैं बहु कठिन, प्राय: वह स्वर्ग दिला सकें।।
अभी तलक भागवद् पद तक, ले जाने का पथ गुप्त रहे। उसका उपदेष्टा जानो तुम, दुर्लभ सौभाग्य से ही मिले।।

आकाश वाणी द्वारा तुमने, सत्कर्म आदेश जो पाया है। उसकी बात कहेंगे हम, तेरा भाग्य उदय हो आया है।।

चित्त टिका हो मुदित मनी, आज सुनो यह गुह्य राज। उस आकाशवाणी का सार जो, तेरे लिये कहेंगे आज।।
द्रव्य यज्ञ और तप यज्ञ, योग यज्ञ भी जिसकी कहें। स्वाध्याय रूप जो ज्ञान यज्ञ, कर्मन् का ही संकेत करें।।
स्वर्गादि की प्राप्ति के, ही तो सब साधन कहें। इससे परे की बात तो, यज्ञ वह न कर सकें।।

पण्डित गण तो ज्ञान यज्ञ, को ही इक सत्कर्म कहें। यज्ञ ही सहज इक साधन है, जो मुक्ति तक ले जा सके।।
शुक आदि महानुभाव ने, है जिसका अनुष्ठान किया। श्री मद्भागवद् का उन्होंने, मधुर स्वरों में गान किया।।
उसके गान से पायें बल, भक्ति वैराग्य और ज्ञान। ज्ञान वैराग्य के कष्ट मिटें, भक्ति पाये आनन्द महान्।।

श्री भागवत के गायन का, जानो ऐसा प्रभाव हो। कलिकाल के सब दोषों का, तत्क्षण ही नाश हो।।
ज्यों भेड़िये भागें भय में पगे, सुनकर के सिंह की गर्जना। कलियुग के दोष सभी भागें, सुन भागवत् ध्वनि उद्घोषणा।।
भक्ति है स्रोत प्रेम रस का, वैराग्य ज्ञान इसके साथी। हर जन के हृदय में घर घर में, तब क्रीड़ा करेंगे तीनों ही।।
नारद बोले,
बहुत प्रयत्न किए मैंने, इन तीनों को जगाने को। वेद वेदान्त का घोष किया, किया गीता पठन उठाने को।।
पर यह सब कुछ करके भी, तीनों को जगा मैं न पाया। सारा गायन और पठन मेरा, कुछ भी फल नहीं लाया।।
अब श्री भगवद् आलाप सुनी, तुम कहो वह कैसे जागेंगे? उसका हर श्लोक है वेद सार, उस कथा से कैसे जागेंगे?
आपके श्री दर्शन जानूं, निश्चित ही फल दायक हैं। शरणागत वत्सल आप हैं, कृपालु मुक्ति दायक हैं।।
आपकी शरण में ही अपना, संशय लेकर मैं आया हूं। अविलम्ब करो इसका छेदन, अब यह ही याचना लाया हूँ।।
सनत्कुमार बोले,
वेद उपनिषद सार लिये, है रसपूर्ण भागवद् कथा। यह फल स्वरूप उनसे अलग है, यह ही है इसकी उत्तमता।।
वृक्ष मूल और शाखायें, कण कण रस से परिपूर्ण हैं। रसास्वादन उनका हो न सके, इस स्थिति में वह अपूर्ण हैं।।
वह ही रस जब वृक्ष पर, फल रूप में सिमट के आता है। सब जग को आस्वादन दे, वह सबका प्रिय बन जाता है।।
जिस विध दूध के हर कण में, घृत व्याप्त ही होता है। उसका रस अलग से दूध में, कोई चख नहीं पाता है।।
जब मथ कर माखन बन जाये, दूध से अलग हो जाता है। अग्नि पे तपा वह घृत बना, देवों के भी मन भाता है।।
ऊपर नीचे और मध्य में, ईख के रस समाया रहे।। पर ज्यों ही वह शक्कर बने, उसकी मिठास ही अलग रहे।।
ऐसे ही यह भागवद् की, कथा सभी से निराली है। रस सार लिये सब तत्वों का, मन को कर दे मतवाली है।।

भागवद् पुराण कहें जिसको, यह वेदों के समान है। स्थापित हों भक्ति ज्ञान वैराग्य इस कारण हुआ निर्माण है।।
चिरकाल की बात यह, वेद वेदान्त के सारभूत। गीता के रचयिता वेद व्यास, हुए मोहसिन्धु में अविर्भूत।।
तब आप ने ही तो उनको भी, उपदेश सार था इसका दिया। उन चार श्लोकों को सुनकर, सब मोह था उनका दूर हुआ।।
फिर क्यों विस्मित हो आप आज, जो प्रश्न यह हमसे कर रहे। उनके शोक निवारण को, अब भागवद् कथा ही सुनवायें।।
नारद बोले,
जिनके दर्शन मात्र से, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। दु:ख दावानल में तप्त जीव, तत्काल शान्ति पाते हैं।।
सहस्त्र मुखों से शेष के, भागवत् रस सतत जो पान करें। प्रेम स्वरूपा भक्ति हेतु, हम आपकी शरण में आन पड़े।।
अनेकों जन्मों के संचित, जब पुण्य उदय हो जाते हैं। उस पल ही तो जीव वह, सत् का संग कर पाते हैं।।

अज्ञान जनित इस मूर्छा से, तब ही जाग वह जाते हैं।। दूर हो मद का तिमिर तब, जागृत विवेक कर जाते हैं।।
भक्ति ज्ञान वैराग्य के, पुनर्जागरण के लिए। ज्ञान यज्ञ करूँगा मैं, उज्ज्वल शुक शास्त्र की कथा लिए।।
कहाँ करूँ यह यज्ञ मैं, स्थान आप बतलाइये। वेद सार परिज्ञाता आप, शुक शास्त्र की महिमा गाइये।।

सनत्कुमार बोले,
विवेक और विनम्रता, यह सहज आपके गुण मुने। जो प्रश्न आपने हैं किये, अब उनका उत्तर सुने।।
हरिद्वार के निकट है इक, आनन्द घाट हम उसकी कहें। वही उत्तम स्थान कथा के लिये, अब उसकी महिमा सुनें।।
अनेक ऋषिगण देव सिद्ध, उस घाट का सेवन करें। सघन वृक्ष लतायें वहां, कोमल बालू तट पर बिछे।।
एकान्त है वातावरण वहाँ, मनोहारी वह घाट है। सुगन्धि हिरण्य कमलों की, कण कण में वहाँ व्याप्त है।।
उसके वासी वन्य प्राणी, भी वैरभाव से मुक्त रहें। ऐसा प्रभाव उस घाट का, नहीं इक दूजे पर वार करें।।
उस पावन स्थान में सहज ही, इस ज्ञान यज्ञ को आप करें। इस परम पावनी कथा के, अद्वितीय रस का पान करें।।

प्रत्यक्ष रूप में भक्ति भी, उस स्थल पे भागी आयेगी। जर जीर्ण वैराग्य ज्ञान को, भी वह संग में लायेगी।।
जहाँ भी हो कथा भागवद् की, वहाँ तीनों पहुँच जायेंगे। कथा रसायन श्रवण किया, तो तरुण पुन: हो जायेंगे।।

सूतजी बोले,
इस प्रकार कहकर सनकादि, नारद जी के साथ चले। इस कथा के अमृत पान को, वह शीघ्र ही गंगा तट पर जा पहुँचे।।
उनके वहाँ पहुँचते ही, त्रिलोकी में हलचल हुई। भू देव और ब्रह्म लोक में, कथा की चर्चा हुई।।
कथा रस रसिक जब दौड़-दौड़कर आने लगे, कथामृत पान वह कर पायें, इस भाव से पहले ही आने लगे।।
भृगु वसिष्ठ गौतम च्यवन, मेधातिथि देवल देवराज। शाकल मार्कण्डेय दत्तात्रेय, विश्वामित्र संग परशुराम।।
योगेश्वर व्यास पराशर भी, छायाशुक और पिप्पलाद मुनि। जाजलि और जहनु सभी पहुँचे जो थे प्रधान मुनि।।

श्री भागवद कथामृत पीने को, निज पत्नी पुत्र और शिष्यों सहित। सब ही वहाँ पे आ पहुँचे, प्रेम सुधा में पगे थे चित्त।।
साकार रूप धरी वेदोपनिषद्, तन्त्र-मन्त्र और सत्तरह पुराण। षट् शास्त्र भी वहाँ पहुँचे, सब ही होकर मूर्तिमान।।

गंगादि सब सरितायें, सरोवर सब पुष्करादि। दशों दिशायसें पहुँची वहां, क्षेत्र सभी कुरुक्षेत्रादि।।
दण्डकादि वन भी आये, हिमालय आदि पर्वत भी। कथा श्रवण को आ पहुँचे, गन्धर्व देव दानव सभी।।
निज अभिमान में खोये जो, कथा श्रवण को न आये। उनको भी समझाकर के, भृगु संग में ले आये।।
कथा रस पान कराने को, श्री कृष्ण परायण सनकादि। दीक्षत होकर विराजे वहाँ, जो आसन थी नारद ने दी।।
सब श्रोताओं ने उस पल, वन्दना करी कुमारों की। इस भ्रान्ति फिर कथा की, वहाँ ये वातावरण बनी।।
विरक्त संन्यासी ब्रह्मचारी, वैष्णवगण आगे आ बैठे। इन सबसे भी आगे आ, विराजमान नारद हुए।।

इक ओर थे बैठै देवतागण, इक ओर थे बैठै सब ऋषि। वेदोपनिषद् थे एक ओर, इक ओर तीर्थ और स्त्रियाँ भी।।
इस प्रकार जब सबके चित्त, एकाग्र कथा में हो गये। तत्पश्चात् कुमारों ने, महात्मा नारद के लिए।।

प्रेमयुक्त हो सरलता से, माहात्म्य कथा के प्रकट किये। इस विधि श्री भागवत महिमा, के गायन आरम्भ हुए।।

सनत्कुमार बोले,
आपके सामने श्री भागवद् की, अब हम महिमा गाते हैं। श्रवण मात्र से ही जिसके, मुक्ति कर में पा जाते हैं।।
आस्वादन करना चाहिये, सदा करें इस कथा का पान। इसको सुनते ही हृदय भवन में, होंगे हरि विराजमान्।।

अठ्ठारह सहस्त्र श्लोक इसके, बारह स्कन्धों में बँटे हुये। श्री शुक और परीक्षित के, संवाद का हैं यह रूप धरें।।
इस भागवत् शास्त्र का श्रोतागण, एकाग्रचित हो श्रवण करें। इस सुधा पान करने से ही, नित्य मुक्त वह हो सकें।।

तब लग ही अज्ञान ग्रसित, यह जीव जहान में पिसता है। जब लौ वह इक क्षण को भी, नहीं श्रवण कथा का करता है।।
अनेकों शास्त्र पुराण पढ़ी, केवल भ्रम जाल ही बढ़ता है। मुक्ति दान करे पल में, श्री भगवद् गर्जन करता है।।
नित्य कथा हो जिस घर में, तीर्थ ही वह बन जाये। उसके वासी गण के कहें, पाप नष्ट सब हो जायें।।
करें सहस्त्रों अश्वमेध, और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ। इस श्री कथा की तुलना में, है नहीं सोहलवां उनका अंश।।

हे तपोधनी यह पाप भी, तब लौ तन में रह पाते हैं। जब लौ भागवद् के श्रवण से, न भाग्य उदय हो जाते हैं।।
कोई भी तीर्थ पावनता में, शुककथा समान न हो पाये। गंगा गया काशी पुष्कर, प्रयाग भी पीछे रह जाये।।
गर परम गति की चाहना है, तो नियम से इसका गान करो। अर्धश्लोक या उससे भी कम, नित्य ही यह रस पान करो।।
जो पुरुष अर्थ को जानकर, अहर्निश भागवद् पठन करे। कोटि जन्म के पाप मिटें, न इसमें तनिक भी संशय रहे।।

आधा या चौथाई श्लोक, नित्य ही जो नर पाठ करे। अश्वमेध और राजसूय, यज्ञ का पुण्य सहज पा ले।।
नित्य पठन भागवद् चिन्तन, या तुलसी गौ पूजन हो। सत्य जान लो श्रोतागण, इन सबका फल समान ही हो।।
अन्त काल में जो कोई, श्री भागवद् को सुन पाते हैं। होकर प्रसन्न उन्हें श्री हरि, वैकुण्ठ धाम पहुँचाते हैं।।

जीवन में कभी एकाग्र चित्त से, भागवत कथा का किया न पान। व्यर्थ गया उसका जीवन, चाण्डाल दुष्ट पशु समान।।
नहीं कोई भी फल पाया, उस दुर्लभ मानव जीवन का। उसकी माता ने जन्म पर, व्यर्थ झेली प्रसव पीड़ा।।
पापों के कारण जिसके कर्ण में, भागवद् ध्वनि यह नहीं पड़ी। वह तो मृतक समान है, इस धरती पर जीते जी ही।।
धिक्कार है उसके जीवन पर, है इसभू पर वह पशु समान। कहें ऐसा सब इन्द्रादि, स्वर्ग में देवों के प्रधान।।

दुर्लभ है इस संसार में, श्री हरि कथा की सन्निधि। हों कोटि जन्म के पुण्य उदय, तभी मिले यह अमूल्य निधि।।
हे योगनिधि बुद्धिघन हे, श्री नारद धन्य धन्य हैं आप। पूर्ण चित्त लगाकर के, करें श्रवण इस कथा का आज।।
किसी नियम में बंधकर ही, इसका सुनना अनिवार्य नहीं। सर्वदा ही हो श्रवण इसका, कोई निश्चित अवधि नहीं।।

ब्रह्मचर्य और सत्य वचन, दोनों व्रत लेकर सर्वदा। श्रवण करें श्री भागवद् का, इसको ही है श्रेष्ठ कहा।।
पर कलियुग में अति कठिन कहें, इन नियमों का पालन करना। यही जान श्री शुक ने जो, विधि कही उसे जान तू।।
कलियुग में अति कठिन है, वृत्ति एकाग्र यह कर लेना। बहुत दिनों तक नियम से, इस चित्त को चरण में धर देना।।
पुण्य कर्म में दीक्षित हो, टिक पाना नहीं आसान है। इस कारण ही इस युग में, सप्ताह श्रवण का विधान है।।

श्रद्धापूर्ण हृदय से गर, कभी भी श्रवण तू कर पाये। अथवा मार्गशीर्ष में तू, जो श्रवण का फल पाये।।

वह ही फल शुकदेव जी ने, इक सप्ताह में कह दिया। श्री भागवद के श्रवण को, सप्ताह का एक विधान किया।।
असंयमित मन रोगी तन, अल्पायु दोष हैं इस युग के। यह देख श्री शुकदेव, सप्ताह श्रवण की बात कहें।।
तप योग और समाधि से, जिस फल तक पहुँच न पाते हैं। सप्ताह श्रवण से वह सब ही, प्रसाद में स्वत: पा जाते हैं।।

इसकी महिमा हम क्या गायें, सप्ताह श्रवण अत्युत्तम यह। यज्ञ व्रत तप तीर्थ सेवन, योग से भी बढ़कर है यह।।
विशेषता इसकी कैसे कहें, है सबसे ही बढ़ चढ़कर यह। सर्वोत्तम ही साधन कहा, सप्ताह श्रवण कलियुग के लिये।।

शौनक ऋषि बोले,
हे सूत आपके कथन ने, आश्चर्य चकित है मुझे किया। इस पुराण ने निश्चित ही, नारायण महिमा गान किया।।
पर योग ज्ञान के सब साधन, यह पीछे कैसे छोड़ गया? कलियुग में मोक्ष के लिये इसे, अत्युत्तम साधन क्यों कहा?

सूतजी बोले,
श्री कृष्ण धरा को छोड़कर, जब धाम को अपने जाने लगे। एकादश स्कन्ध उनके मुख से, सुनकर भी उद्धव यूँ बोले।।

उद्धव बोले,
भक्तों के काज करी हे गोविन्द, निज धाम को जाना चाहते हो। चिन्ता ने घेरा मन मेरा, उसे सुनकर यह चित्त शान्त करो।।
द्वार खड़ा कलियुग अति घोर, प्रवेश अभी इसका होगा। इसके प्रभाव को जानू मैं, दुष्टों का उदय पुन: होगा।।
सम्पर्क से उनके सन्तन् की, अति उग्र प्रकृति हो जायेगीं तब उनके भार से दबी हुई, गौ रूपी यह पृथ्वी कहां जायेगी।।
आप बिना हे कमलनयन, कौन उसे बचा पायेगा। अन्य कोई दीख नहीं रहा, जो उसके दु:खोंको मिटा पायेगा।।

निराकार हैं चिन्मय आप, पर भक्त हेतु यह रूप धरा। दया करो हे प्रभु मेरे, करो साधु जन पर आप कृपा।।
अपने दिव्य इस रूप को, भूलोक से अभी न उठाओ आप। इस कलियुग से परित्राण भी, अपने हाथों ये करो आप।।
वियोग से आपके व्यथित भक्त, भू पर कैसे रह पायेंगे। निर्गुण अव्यक्त उस तत्व की, उपासना कर नहीं पायेंगे।।
उनके हित को चित्त में रखकर, कोई अन्य उपाय अब कहें। हे कृष्ण निज भक्तों का, आप ही अब उद्धार करें।।
सूतजी बोले,
प्रभास क्षेत्र में उद्धव जी के, वचन सुनी हरि ने सोचा। निज भक्तन के अवलम्बन को, उपाय कौन उत्तम होगा?
तब उन्होंने श्री भागवद में, निज शक्ति का तिरोभाव किया। अन्तर्धान होकर प्रभु, भागवद् सिन्धु में गये समा।।
यह साक्षात् प्रतिमा उनकी, धर वाङ्मय रूप हरि प्रकटे। इसकी सेवा से श्रवण से, पठन से या फिर दर्शन से।।
प्रभु दर्शन समान जानों, पाप नष्ट हों जीव के। इसके राही ही जानो, जीव सद्गति पा जाये।।

गर पूर्ण करो सप्ताह में श्रवण, अत्युत्तम साधन है यह। कलियुग में सब साधनों से, कहें प्रधान धर्म है यह।।
यह ही है धर्म कलिकाल में, जो आन्तर मन को स्वच्छ करे। दु:ख दारिद्र्य दुर्भाग्य पाप, समूल ही सब निकाल दे।।
इसका श्रवण तुम जान लो, शत्रु पर विजय दिलाता है। काम क्रोध मोह लोभ अहं, सबको ही दलित कर जाता है।।

इस माया से भगवान की, देवता भी छूट न पाते हैं। दुस्तर माया में बार-बार, यह जीव फँसते जाते हैं।।
इससे मुक्त होने का, है सहज उपाय हरि कहें। इसके लिये सप्ताह में, भागवद् परायण विधि कहें।।

सूतजी बोले,
सप्ताह श्रवण की महिमा का, मुनिवर आख्यान थे कर रहे। महा आश्चर्य वहाँ हुआ, सूतजी शौनक से कहें।
हे शौनक मैं उसकी आज, तुमको बात सुनाता हूँ। ध्यान पूर्वक सुनना तुम, यह अद्‌भुत कथा बताता हूँ।।
विशुद्ध प्रेम रूपा भक्ति, अकस्मात् साकार हुई। निज पुत्रों को थी संग लिये, तरुण अवस्था उसकी हुई।।
सबकी जिह्वा पर एक नाम, हे कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव, बार बार यही नाम पुकारे।।

सभा में दर्शन सबको हुये, परम सुन्दरी भक्ति के। श्री भागवद् के अर्थों के, आभूषण उसने थे पहने।।
यहाँ पे कैसे आई यह, कहाँ से है प्रविष्ट हुई। कानो कान श्रोताओं की, बातचीत यह आपस में हुई।।
सनकादि कुमारों ने, उस पल सबको यह कहा। कथा के अर्थों में से ही, सुन्दर रूप यह प्रकट हुआ।।
यह सुनकर पुत्रों सहित, भक्ति ने प्रणाम किया। अति विनम्रता से भक्ति ने, सनत्कुमार से यूँ कहा।।
भक्ति बोली,
दूषित प्रभाव से कलियुग के, निष्प्राण सी थी मैं हो गई। कथामृत पान करा कर के, पुन: प्राण संचार करी।।
कहाँ वास अब हो मेरा, यह मुझे सुझायें आप ही। ब्रह्मापुत्रों ने यह सुनकर, भक्ति से यह बात कही।।
सनत्कुमार बोले,
हरि का स्वरूप दो भक्तों को, अनन्य प्रेम धारण करो। हे भक्ति यह हैं गुण तेरे, भव रोग का भंजन तुम ही करो।।
ऐसी तुम धारण धैर्य को, सदा सदा बैठी रहो। विष्णु भक्तों के मन में जा, आसन सतत तुम ग्रहण करो।।
कलियुग के यह दोष सभी, सब जग दूषित चाहे करें। जिस भक्त हृदय में तुम बैठो, वहाँ इनकी दृष्टि न पहुँचे।।
तत्काल वहाँ से वह चल दी, ऐसी आज्ञा के पाते ही। भक्त हृदय रहे उसका वास, उसमें ही वह विराज रही।।

अति निर्धन हो चाहे जग में, पर धन्य भाग्य रे उसके हैं। जिस हृदय में हरि भक्ति बसे, हुए भाग्य उदय रे उसके हैं।।
भक्ति ही वह डोरी है, सरकार जहाँ बंध जाते हैं। वैकुण्ठ धाम निज छोड़कर, उस हृदय में आ बस जाते हैं।।
भूलोक में श्री हरि का, प्रत्यक्ष रूप ही इसे कहें। इससे बढ़कर तुम जानो, इस की महिमा क्या कहें।।

इसके आश्रित श्रोता वक्ता, दोनों ही कृष्ण के प्रिय बनें। सो इनको त्यज कर अब कहो, क्या किसी भी अन्य धर्म से करें।

२) गोकर्णोपाख्यान

भक्तों के हृदय में देखने, दिव्य भक्ति का प्रादुर्भाव। वैकुण्ठ छोड़ भक्तवत्सल, भगवान पधारे भू पर आज।।
गोलोक से उनके नित्य सखा, उद्धवादि भी आये थे। लीला परिकर कथा श्रवण को, गुप्त वेश बनाये थे।।

प्रभु के वहाँ पधारते ही, जय जयकार होने लगी। भक्ति रस का स्त्रोत बहा, शंख ध्वनि भी होने लगी।।
अबीर गुलाल औ फूलों की, वर्षा पुन: होने लगी। जैसे आनन्द की ही रिमझिम, आकाश से वर्षा होने लगी।
उस सभा में लोग थे जो बैठे, देह गेह आत्मसुधि नहीं रही। उनकी ऐसी तन्मयता देख, नारदजी ने यह बात कही।।
नारद बोले,
हे मुनिवर सप्ताह श्रवण की, इक अद्‌भुत महिमा देखी। निष्पाप हुये जो बैठे यहाँ, पशु पक्षी मूढ़ और दुष्ट सभी।।
कलिकाल में हृदय को, यह श्रवण पावन कर दे। मर्त्यलोक के पाप पुंज, इक सप्ताह में यह हर ले।।

मल धोने का इस समान, नहीं साधन कोई धरा पे है। मन को पावन करने के लिए, अत्युत्तम साधन यह है।।
कृपालु दयालु मुनिवर आप, लोक कल्याण हेतु कहा। विचार करी कर आपने, निराला ही यह मार्ग कहा।।
कृपा करें आप मुनिवर, सप्ताह यज्ञ परिणाम कहें। हो पायें पावन कौन लोग, अब इसकी महिमा कहें।।
सनत्कुमार बोले,
कलियुग में जो लोग सदा, पापों में डूबे रहते हैं। निरन्तर दुराचार में, हों तत्पर वह कहते हैं।।
विपरीत मार्ग पे सदा चलें, क्रोधाग्नि में नित्य जलें। कुटिल मनी और काम अन्ध, भी पावन इससे हो जायें।।

सत्यहीन जननी निन्दक, जो पिता को भी दूषित करें। तृष्णा से हर पल तड़पें वह, नहीं आश्रम धर्म में वह रहें।।
दम्भी द्वेषी औ हिंसक, यह सबके ही पाप हरे। ऐसी है इसकी महिमा, भागवत पावन सबको ही करे।।

मदिरापान विश्वासघात, ब्रह्महत्या या कनक चोरी। गुरु पत्नी गमन जो करें, है इन समान नहीं पाप कोई।।
छल छद्म में लगे हुये, पिशाच समान जो निर्दयी। व्याभिचार वह नित्य करें, हर लें ब्राह्मण का धन भी।।
यह सब भी गर श्रद्धापूर्ण, होकर भागवद् श्रवण करें। इस सप्ताह यज्ञ से, ऐसे पापी भी तर जायें।।

मन वाणी और तन से, नित्य पाप जो करते हैं। दुष्ट हठी वह मलिन मनी, परधन से पुष्टित होते हैं।।
सप्ताह यज्ञ से भागवद् के, वह भी पावन हो जाते हैं। अक्षम्य पाप उनके भी सब, इस साबुन से धुल जाते हैं।।
हे नारद इस विषय में अब, तुमको इक कथा सुनाते हैं। पुरकाल का यह इतिहास सुनी, सब पाप नष्ट हो जाते हैं।।

नदी तुंगभद्रा के तटपर, एक रे अनुपम नगर था। वर्ण धर्म सत्य वचन, सत्कर्म में हर जन तत्पर था।।
उस नगरी में वेदवित्, द्विज आत्मदेव रहता था। श्रौत स्मार्त कर्मों में निपुण, वह सूर्य समान तेजस्वी था।।
धन सम्पन्न होकर के भी, भिक्षा पे जीवित रहता था। सुन्दर कुलीन भार्या उसकी, धुन्धुली उसका नाम था।।
पर इतना सब होने पर भी, जिद्द करना उसका स्वभाव था। लोगों की बातें करने में, रस उसको रे मिलता था।।।
स्वभाव से ही क्रूर थी वह, बकवाद प्रिय उसे लगता था। निपुण थी गृहकार्य में, पर कृपण कलह का स्वभाव था।।

ऐसे वह ब्राह्मण दम्पत्ति, प्रेम से घर में रहते थे। भोग विलास के सब साधन, और अर्थ में रमण वह करते थे।।
घरबार भी सुन्दर था उनका, पर इस सबसे वह सुखी न थे। और तो सब सुख सम्पन्न थे, पर सन्तान से वंचित थे।।
आयु अब बढ़ने लगी, सन्तति की चिन्ता होने लगी। सन्तान प्राप्ति हेतु ही, उस पुण्य कर्म आरम्भ करी।।
दीन दु:खी के लिये उन्होंने, कुछ देना आरम्भ किया। गौ पृथ्वी या वस्त्र वर्ण, का दान तब होने लगा।।

इस विधि धार्मिक कर्मों में, आधा धन उनका चला गया। तब भी पुत्र या पुत्री के, मुख का दर्शन उन्हें नहीं हुआ।।
इस कारण वह ब्राह्मण अब, चिन्तातुर बहु रहने लगा। कैसे मिले सन्तान सुख, इस चिन्ता से व्यथित हुआ।।

इक दिन वह ब्राह्मण देवता, व्यथित हो घर से निकल पड़ा। धूप में प्यास से व्याकुल हो, इक सरोवर पे जा पहुँचा।।
सन्तान अभाव के दु:ख ने, था तन को भी शोषित किया। थका हुआ वह जल पीकर, उसके तट पर ही बैठ गया।।
बीत जाने पर दो घड़ी, इक संन्यासी वहाँ पहुँचा। जब उस ब्राह्मण ने देखा, संन्यासी है जल पी चुका।।
उसके पास पहुँचकर, चरणों में उसके नमन किया। फिर सम्मुख खड़े होकर, उसने छोड़ी लम्बी आह।।

सन्यासी बोला,
हे ब्राह्मण क्यों हो तुम दु:खी, है कौनसी चिन्ता ने ग्रसा? द्विजोत्तम अब जल्दी ही, निज दु:ख का कारण बता।।
आत्मदेव बोला,
पूर्व के पापों से संचित, अपने दु:ख की क्या बात करूँ। चिन्ता से युक्त हैं पितर मेरे, नहीं उनको तृप्त मैं कर सकूँ।।
देवगण और ब्राह्मण सब, नहीं मुदित मन से ग्रहण करें। उनके हेतु मैं जो भी दूँ, तृप्त उन्हें न कर सके।।
सूना सूना सा लगता है, सन्तान अभाव में अब संसार। प्राण त्याग अब यहाँ करूँ, यह ही है मेरा विचार।।
धिक्कार है ऐसे जीवन को, जिसमें है सन्तान नहीं। ऐसे घर में रहना क्या, जिसमें बच्चों का गान नहीं।।
ऐसे धन का अब लाभ क्या, जिसको सन्तान न भोग सके। ऐसे कुल को धिक्कार है, जिसमें सन्तान अभाव रहे।।

जिस भी गाय को पालूँ मैं, वह भी बाँझ हो जाती है। जिस वृक्ष का रोपण मैं करूं, उसमें फल फूल न आते है।।
जो फल मेरे घर में आये, वह भी विनष्ट हो जाता है। पुत्र हीन हूँ अभागा मैं, इस जीवन से क्या नाता है।।
सनत्कुमार बोले,
यूं कहकर ब्राह्मण वह, दु:ख से व्याकुल होने लगा। संन्यासी के सामने वह, फूट फूट कर रोने लगा।।
ऐसी दशा देखी उसकी, द्रवीभूत संन्यासी हृदय हुआ। ब्राह्मण व्यथा सुन उनका हृदय, करुणा से आद्रित हुआ।।
योगनिष्ठ संन्यासी ने, ललाट की रेखा थी पढ़ ली। सब वृत्तान्त उसने जान लिया, फिर ब्राह्मण से यह बात कही।।

सन्यासी बोले,
बलवान है कर्मों की गति, उसको न तुम बदल सको। कल्याण इसी में है तेरा, त्यागो तुम सन्तति मोह को।।
विवेक का आश्रय लेकर के, संसार की वासना छोड़ दो। अपने चित्त को प्रभु के, चरणों में ही तुम जोड़ दो।।
सुनो विप्र मैंने तेरी, रेखा आज है देख ली। सात जन्म तक तेरे लिये, पुत्र का योग है कहीं नहीं।।
पूर्व काल की बात है यह, है कथा सागर और अंग की। सन्तान के कारण ही उनको, अनन्त यातना सहनी पड़ी।।
हे ब्राह्मण अब कुल वर्धन की, तुम रे आशा छोड़ दो। संन्यास सर्वदा सुखद है, अब उससे नाता जोड़ लो।।

आत्मदेव बोला,
मुझको तो पुत्र ही चाहिये, विवेक से मेरा क्या होगा। निज योग से दे दो पुत्र मुझे, मम शव वरना सम्मुख होगा।।
पुत्रादि से रहित है जो, नीरस ऐसा संन्यास है। पुत्र पौत्र से सरस गृहस्थ ही, इस लोक की आस है।।

संन्यासी बोले,
ब्राह्मण का आग्रह देख करी, तपोधन ने उससे कहा। विधि परिवर्तन के हठ से, था राजा चित्रकेतु तड़पा।।
जिसकी हर कोशिश को भाग्य, कुचल के ही रख देता है। ऐसे पुरुष समान ही, जानो ब्राह्मण तव लेखा है।।
मेरे सामने तुम हो खड़े, हठ के कारण मृतप्राय से। ऐसी अवस्था में ब्राह्मण, अब तुमसे हम क्या कहें?
तेरे आग्रह को देख करी, इक फल तुमको मैं देता हूँ। पत्नी को फल यह देना तुम, हो उत्पन्न पुत्र यह कहता हूँ।।

एक वर्ष तक सत्य शौच, और दया का वह अनुष्ठान करे। इस अवधि में एक बार ही, अन्न भक्षण का नियम रहे।।
यदि वह ऐसा कर पाई, तब अति उत्तम फल होगा। पुत्र जो तब उत्पन्न होगा, वह सरल भाव निर्मल होगा।।

सूत बोले,
यूँ कहकर वह योगीराज तो, अपने पथ पर चले गये। ब्राह्मण घर को लौट आया, फल को हाथ में लिये हुये।।
घर आकर के बहुत प्रेम से, वह फल पत्नी के हाथ में दिया। उसको कहकर सारी कथा, स्वयं कहीं वह चला गया।।

कुटिल स्वभाव की थी पत्नी, सखी सम्मुख वह रोने लगी। चिन्तित बहुत मैं हो गई, कहा नहीं यह फल मैं खाऊँगी।।
इसे खाने से ठहरेगा गर्भ, उससे यह पेट बढ़ जायेगा। खाना पीना गर कम किया, तो क्षीण यह तन हो जायेगा।।
ऐसे में तुम कहो सखी, क्योंकर घर के कामकाज हो पायेंगे। घर गृहस्थी का यह काम, चौपट सब हो जायेगा।।
ऐसे में कहीं दैव से, गांव में परिपन्थी आये। गर्भावस्था में कहो, कोई स्त्री कैसे भाग पाये।।
फिर अगली चिन्ता यह मेरी, शुक सम शिशु गर गर्भ रहा। ऐसी दशा में तुम कहो, निकल वह कैसे पायेगा?

और प्रसव समय तक पहुंचकर, यदि उचित दशा न उसकी हुई। ऐसे कठिन समय में मैं, प्राणों से हाथ ही धो बैठूंगी।।
यूँ भी प्रसव समय पीड़ा, अति भीषण जो पाऊँगी। मैं सुकुमारी कोमल सी, नहीं सहन उसे कर पाऊँगी।।
वैसे भी कहूँ इस कारण जब, दुर्बल यह तन हो जायेगी। ननद आयेगी घर में तब, सब कुछ समेट ले जायेगी।
फिर और कहूँ इन नियमों का, पालन भी हो नहीं पायेगा। सत्य शौच आदि जो कहा, धर्म वह निभ नहीं पायेगा।।
फिर दुष्कर है पालन पोषण, जन्म दे शिशु को जो स्त्री। मेरे विचार से सर्वमुखी, है वन्ध्या या विधवा स्त्री।।
सूत बोले,
ऐसा वितर्क मन में करके, उसने वह फल नही खाया। जब पति ने पूछा क्या खाया, उसने हाँ झूठ ही बतलाया।।
इक दिन पत्नी की बहिन जब, अनायास घर में आई। उसने अपने मन की चिन्ता, उसको सारी बतलाई।।

इस दु:ख के कारण प्रतिदिन, मैं दुर्बल होती जाती हूँ। हे प्रिय बहिन मैं क्या करूँ, मैं कुछ भी समझ न पाती हूँ।।
बहिन कहा तू दु:खी न हो, मम उदर में शिशु है पल रहा। जिस पल जन्म वह ले लेगा, मैं दूँगी तुझे तू धैर्य धरा।।
तब तक गर्भवती बन घर में, छिपकर के तू रह लेना। कुछ धन पति को देना मेरे, सहर्ष शिशु तुझे दे देगा।।
ऐसी युक्ति कुछ करूँगी मैं, कहूँ षट्मासी मृत शिशु हुआ। नित्य प्रति घर आ तेरे, पालन पोषण वा दूँगी करा।।

परीक्षण फल का करने को, गौ को अब यह फल खिला। जैसा उसकी भगिनी ने कहा, सहज स्वभाव उस सब किया।।
समय के पूरा होने पर, बहिन ने पुत्र को जन्म दिया। पिता ने छिपकर शिशु को ला, धुन्धुली को सौंप दिया।।

धुन्धुली ने उस क्षण ही, पति को सूचित कर दिया। प्रभु कृपा से सुख पूर्वक, शिशु जन्म है हो गया।।
आत्मदवे हुआ पुत्रवान्, सुनकर सबको आनन्द हुआ। सारे गाँव के जन ने मिली, कर फिर मंगल गान किया।।

ब्राह्मण ने किये संस्कार सभी, द्विजगण को बहु दान दिया। गायन वादन मंगलाचरण, उसके द्वार पे होने लगा।।
धुन्धुली ने इक युक्ति बनायी, पति के सामने शिशु लाय धरी। कहा मेरे स्तनों में दूध नहीं, पालन कैसे कर पाऊँगी?
मेरी बहिन ने भी अभी, एक शिशु को था जन्मा। पर दैवयोग से वह शिशु, मृत्यु का है ग्रास बना।।
उसको यदि बुलाकर के, अपने यहाँ मैं रख लूँगी। आपके इस शिशु का तब, भरण-पोषण वह कर देगी।।

निज पुत्र की रक्षा के लिये, आत्मदेव ने यही किया। धुन्धुली ने उस पुत्र का, नाम धुन्धुकारी रखा।।

तीन महिने जब बीते, गाय ने भी शिशु जन्मा। सर्वांग सुन्दर दिव्य निर्मल, स्वर्णकान्ति मनुज सम था।।
आनन्दित हो आत्मदेव ने, स्वयं ही सब संस्कार किये। आश्चर्यचकित थे लोग सभी, उस शिशु को देखने वह आये।।
हुआ परस्पर वार्तालाप, वा भाग्य के गुण गाने लगे। गौ ने जन्मा दिव्य शिशु, विस्मित सब हुये जाने लगे।।

इसके रहस्य को दैवयोग से, कोई जान ही नहीं सका। गौ जैसे कान उसके देखी, गोकर्ण ही उसको नाम दिया।।
काल गति से दोनों पुत्र, युवावस्था में हुये पुष्ट। पण्डित ज्ञानी गोकर्ण था, धुन्धुकारी था अति दुष्ट।।
ब्राह्मणोचित आचार का, उसमें कहीं न नाम था। नहीं स्नानादि पवित्रता, नहीं खान-पान का ध्यान था।।
क्रोध था उसका अति भीषण, एकत्रित दुष्कर विषय करे। शव का स्पर्श हो जिस पाया, उस भोजन को भी वह खा ले।।

सबकी चोरी और सबसे द्वेष, उसका था स्वभाव सहज। लोगों के घर कर भस्मीभूत, उसको होता आनन्द बहुत।।
दूजों के शिशु निज गोद में ले, करता प्रेम पाखण्ड वह। कुछ पल आँख बचाकर फिर, देता कुएँ में फेंक उन्हें।।
हिंसा था व्यसन बना उसका, वह शस्त्र ही धारे रहता था। दीन दु:खी और नयन हीन, सबको ही ताड़ित करता था।।
चाण्डालों में अनुरक्ति थी, कुत्तों को संग लिये फिरता था। उद्दण्डता पूर्ण गाँव में, धुन्धुकारी विचरता था।।

वेश्याओं के जाल में फँस, पिता का धन सब लुटा दिया। इक दिन ताड़ित किये माता पिता, घर के बर्तन भी उठा गया।।
जब नष्ट हुई सम्पद सारी, तब कृपण पिता रोकर बोला। अच्छा होता माँ रहती बाँझ, अति दु:खदायी है कपूत होना।।
कहाँ रहूँ मैं कहाँ जाऊँ, अब कौन हरे संकट मेरा। महाकष्ट जो आन पड़ा, निश्चित मम प्राणा हर लेगा।।
उसी समय परम ज्ञानी, गोकर्ण वहाँ पर आ पहुँचे। पिता को बहु समझाकर के, उनने वैराग्योपदेश दिये।।

गोकर्ण बोले,
निश्चित असार संसार है यह, है मोहितकर और दु:ख स्वरूप। किसका पुत्र औ किसका धन, जले मोहवान यूँ ही अहर्निश।।
धरती पर चक्रवर्ती राजा, न सुखी स्वर्ग में इन्द्र ही। सुखी तो इस त्रिलोकी में, बस है विरक्त एकान्त जीवी।।
यह पुत्र मेरा इस मोह से, नरक की अग्नि सम दु:ख हो। हे पिता मेरे मेरी बात सुनो, इस अज्ञान को छोड़ दो।।
यह तन तो छूट ही जायेगा, क्यों इस तन में हो भरमाये? इस जंजाल को छोड़कर, अब वन में ही आप जायें।।

सूतजी बोले,
यह वचन सुनी उसके पिता, वन गमन के इच्छुक हो गये। विस्तार से अब मुझे पुत्र कहो, है क्या कर्त्तव्य मुझे वन में।।
मैं मूढ़ अभी तक न समझा, मोह पाश में बंधा रहा। इस घर के अन्धकूप में, अभी तलक मैं था पड़ा।।
उद्धार मेरा तुम्हीं कर सको, हे दयानिधि कुछ करो कृपा। इस मोह से मुक्ति का, अब तू ही दे मुझे राह बता।।

गोकर्ण बोले,
अस्थि मांस और रुधिर का, इक पिण्ड ही है यह नश्वर तन। इससे ही जुड़े हैं स्त्री पुत्र, हे पितु क्यों मानो इनको मम।।
क्षणभंगुर इस जग को जानें, न इसमें कहीं आसक्ति करें। वैराग्य रसिक अब होकर के, भगवान की ही भक्ति करें।।
छोड़े संसार के सगरे धर्म, सतत भक्ति का आश्रय लें। कामना तृष्णा छोड़ करी, साधुजन की सेवा करें।।
दूजों के गुण दोषों का चिन्तन, जल्द से जल्द ही त्याग दें। एकमात्र भगवत्सेवा, और बाकी कथा रसपान करें।।

सूतजी बोले,
पुत्र की वाणी को सुनकर, प्रभावित आत्मदेव हुआ। घर बार सब छोड़कर, वह अब वन को चल दिया।।
साठ वर्ष की आयु थी, पर बुद्धि से पूर्ण स्थिर था। नियम से उस पूजन अर्चन, और भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ किया।।
भगवान की लीला कथा का, नित्य पान वह था करता। इस विधि उस ब्राह्मण ने, श्रीकृष्ण को प्राप्त किया।।

पिता को वन में गया देख, धुन्धुकारी और भी शठ हुआ। अपनी माता को ताड़ करी, माता को उसने यूँ कहा।।
कहो कहाँ सब धन रखा, नहीं लाठी से तुझे पीटूँगा। सब धन ही मुझको दे दो, अन्यथा जीने न दूँगा।।
दु:खी हुई पुत्र उपद्रव से, और इस धमकी से डर गई। रात्रि को कुएँ में जाय पड़ी, और उसने यूँ प्राणा त्यजी।।
योगनिष्ठ गोकर्ण तो था, तीर्थ यात्रा को निकल पड़ा। समत्व भाव में स्थित था वह, न वैरी कोई न बन्धु था।।

धुन्धुकारी पंच वैश्या संग, अब उस घर में रहने लगा। कैसे आये भोग समिधा, इस सोच ने बुद्धि को भ्रष्टा।।
इस उद्देश्य से जग में वह, क्रूर कर्म बहुत करने लगा। लोगों का धन लूट करी, वह अपना घर भरने लगा।।
इक दिन उन कुटिलाओं ने, आभूषण धन बहु माँग लिया। कामान्ध था धुन्धुकारी, न मृत्यु भय भी याद रहा।।
उनकी माँग को पूरा करने, वह घर से अब चल दिया। धन एकत्रित करने को, उसने इक षडयन्त्र रचा।।

यहाँ वहाँ से चुरा के धन, वह पुन: घर को लौट आया। बहु सुन्दर आभूषण वस्त्र, लाकर उनके चरण धरा।।
चोरी का बहुत धन देखी, स्त्रियों ने मिल विचार किया। रात्रि समय उनके मन में, उपजी एक कठिन दुविधा।।
यह नित्य ही चोरी करता है, राजा इक दिन तो पकड़ लेगा। ऐसे में अब सोचो सखी, हम सब का फिर क्या होगा?
इससे सब धन छीनकर, वह निश्चित देगा इसको मार। इस धन की रक्षा हेतु, हम ही छिपकर क्यों न उसें दें मार।।

जहाँ कहीं भी चली जायेंगी, यह धन हर लेंगी इसको मार। ऐसा निर्णय करके उन्होंने, धुन्धुकारी को दिया बांध।।
गले में फंदा डाल कर, किया मारने का उसे इन्तजाम। जब यूँ वह जल्दी नहीं मरा, तो वे सब हो गईं चिन्तावान।।
फिर जलते अंगारे लाकर, उसके मुख में डाल दिये। अग्नि में जल बहुत तड़प तड़प, फिर धुन्धुकारी ने प्राण त्याग दिये।।
उन दु:साहसी कुलटाओं ने, उस शव को गढ़े में गाड़ दिया। उनके इस दुष्कर्म का, किसी को भी न पता चला।।

जब लोगों ने आकर पूछा, धुन्धुकारी है कहाँ गया? धन के लोभ से प्रेरित हो, हमरा प्रियतम दूर गया।।
इक वर्ष में लौट वह आयेगा, ऐसा उन्होने उत्तर दिया। उनके दुष्ट षड्यन्त्र को, कोई नहीं पहचान सका।।
बुद्धिमान पुरुष न कभी भी, कुटिला का विश्वास करे। जो मूर्ख बात इनकी माने, वह तो सदा ही दु:खी रहे।।

अमृत रस मीठी वाणी, कामी के मन करे रस संचार। पर आन्तर इन कुलटाओं का, तीक्ष्ण हो ज्यों छुरे की धार।।
निज स्वार्थ पूर्ति को ही बस, बिकता बाजार में इनका प्यार। सच तो यह अपने सिवा, नहीं कोई भी इनका यार।।
सम्पद् समेट धुन्धुकारी की, सबने प्रस्थान किया वहाँ से। उन कुटिलाओं के न जाने, ऐसे कितने ही पति थे।।
अपने कुकर्म कारण धुन्धुकारी, प्रेत योनि में जाय पड़ा। प्रेत योनि से मुक्ति का, उसके पास कोई उपाय न था।।

दशों दिशा में वायु रूप में, सर्वदा वह भटकता था। सन्तप्त था गर्मी सर्दी से, और भूख प्यास से व्याकुल था।।
कहीं भी आश्रय न पाकर, हा देव चिल्लाता रहता था। कुछ समय बाद लोगों से ही, गोकर्ण ने भी समाचार सुना।।

धुन्धुकारी की मृत्यु हुई, यह बात कान तक जा पहुंची। निज भ्राता को मृतक जान, उसका मन उदास हुआ।।
अपने को ही वा बन्धु जान, गया में जा वह श्राद्ध किया। जिस तीर्थ में भी वह गया, पिण्ड दान उसका किया।।

इस विधि भ्रमण करते-करते वह अपने गाँव में आ पहुँचा। लोगों के बिन जाने ही, घर के आँगन में आ सोया।।
अपने भाई को सोया देख, धुन्धुकारी भी आ पहुँचा। अर्धरात्रि बेला वह, भयंकर रूप में प्रकट हुआ।।
कभी भेड़ भैंसा कभी हाथी, इन्द्र औ अग्नि रूप धरा। अन्त में वह गोकर्ण सम्मुख, मनुष्य रूप धर प्रकट हुआ।।
विरोधी रूप यह देखकर, गोकर्ण ने मन में यह सोचा। है दुर्गति प्राप्त यह जीव कोई, यह जान धैर्यपूर्वक पूछा।।
गोकर्ण बोला,
कैसे यह दशा हुई तेरी, रात्रि में रुद्र क्यों रूप धरो। क्या प्रेत पिशाच या राक्षस हो, कहो कहो तुम कौन हो।।
सूत बोले,
गोकर्ण के यह सब प्रश्न सुनी, वह उच्च स्वरों में रोने लगा। नहीं वाक् कोई वह कह सका, संकेतमात्र ही बस किया।।
अंजलि में जल भरकर, अभिमन्त्रित उसको किया। उस जल को गोकर्ण ने, प्रेतात्म पे जा छिड़का।।
शान्त हुए कुछ पाप जब, तो प्रेत ने उससे यूँ कहा। निज भाई को धुन्धुकारी ने, मुख से फिर यह वचन कहा।।

धुन्धुकारी प्रेत बोला,
धुन्धुकारी है नाम मेरा, मैं बन्धु हूँ आपका। अपने ही कुकर्मों से, ब्राह्मणत्व का नाश किया।।
नहीं गणना मेरे दुष्कर्मों की, अज्ञान भंवर में था फँसा। इस कारण ही लोगों की, हिंसा मैं करता रहा।।
कुलटाओं के मोह में, हे भ्राता मैं था फँस गया। कुलटा स्त्रियों ने मुझे, तड़पा तड़पा के मार दिया।।
इस कारण हुई यह दुर्दशा, हूँ प्रेत योनि में अब पड़ा। निज कर्म फल मिला भाग्यवश, अब वायु पर हूँ जी रहा।।
हे दयासुन्धि तू भाई मेरा, अब जल्द ही मुझको मुक्त करा। उसकी बातें सुन करी, गोकर्ण ने फिर उसे कहा।

गोकर्ण बोले,
गया में जाकर तेरे लिये, विधिवत् पिण्ड दान दिया। विस्मित हूँ यह देखकर, मुक्त नहीं तू अभी हुआ।।
यदि गया में श्राद्ध को पाकर भी, मुक्ति तुमको नहीं मिली। तब तो मेरी समझ में, कोई अन्य उपाय है ही नहीं।।
तुम ही विस्तार से अब कहो, कौन उपाय करूँ सही। किस उपाय से भ्राता, तेरी मुक्ति होगी कहो सही?

धुन्धुकारी प्रेत बोला,
सौ गया श्राद्ध करने से भी, अब मेरी मुक्ति न होगी। इस हेतु भ्राता मेरे, कोई अन्य उपाय सोच सही।।

सूतजी बोले,
उसकी बातें सुनकर के, आश्चर्यचकित गोकर्ण हुआ। सौ गया श्राद्ध ने दें मुक्ति, तो अन्य है साधन कहाँ कहा?
अभी तो तुम निर्भय होकर, अपने स्थान पर ही रहो। विचार कर कहूँगा मैं, तेरी मुक्ति का उपाय जो हो।।
ऐसा आदेश पाकर उससे, धुन्धुकारी वहाँ से चला गया। रात्रि भर चिंतन करके भी, गोकर्ण उपाय न जान सका।।
प्रात:काल लोगों को भी, गोकर्ण आगमन का ज्ञान हुआ। बहुत प्रेम से सब मिले उसको, उस रात्रि का वृतान्त कहा।।
विद्वान ज्ञानी और योगनिष्ठ, वेदज्ञ शास्त्र की शरण गये। अनेकों शास्त्रों में खोजा, पर मुक्ति उपाय नहीं मिले।।

सबने मिलकर इस विषय में, एक ही तब निश्चय किया। सूर्यदेव से ही पूछें, इस विषय में है उपाय क्या?
निज तपोबल से गोकर्ण ने, सूर्यगति को रोक दिया। और उनसे प्रेत योनि की, मुक्ति का उपाय पूछा।।

नमस्कार कर सूर्यदेव को, उनको फिर उसने कहा। सब संसार के साक्षी हो, कृपा कर मुक्ति साधन बता।
दूर से ही फिर सूर्यदेव ने, स्पष्ट ही यह उत्तर दिया। श्री भागवद् कथा ही साधन है, सप्ताह परायण तू करा।।
सूर्य की धार्मिक वाणी को, सबने अपने कानों से सुना। यह उपाय करने का, गोकर्ण ने फिर मन में निश्चय किया।।
सबने मिलकर गोकर्ण को, उस पर फिर यह वचन कहा। बहुत सरल है साधन यह, अब इसको जल्द सम्पन्न करा।।

गोकर्ण भी निश्चय लेकर फिर, कथा सुनाने बैठ गए। देश गाँव से अनेक लोग, कथा श्रवण को आ गये।।
नयनहीन और अंगहीन, वृद्ध औ मन्दबुद्धि आये। पाप क्षय निज करने को, कथा क्षेत्र में आ पहुँचे।।
आश्चर्य चकित सब देव हुए, इस जन सम्मूह को देखकर। प्रेत भी वहाँ पे आ पहुँचा, गोकर्ण बैठै जब गद्दी पर।।
अपने बैठने के लिये, स्थान ढूँढने वह लगा। इतने में उस सात गाँठ के, एक बाँस को उसने देख लिया।।

वायु रूप था प्रेत वह, कहीं और बैठ ही न पाया। बाँस के सबसे नीचे वाले, छिद्र में फिर प्रवेश पाया।।
कथा हेतु वैष्णव ब्राह्मण, एक श्रोता मुख बना लिया। स्पष्ट सुस्वर में प्रथम स्कन्ध से, कथा को फिर आरम्भ किया।।
सायंकाल दिन ढलने पर, कथा का जब विश्राम हुआ। सब श्रोताओं के सामने, एक आश्चर्य महान् हुआ।।
शब्द सहित इक गाँठ में, विस्फोट हुआ फिर बाँस का। एक गाँठ से बाँस वह, जानो फिर स्वत: टूट गया।।

दूसरे दिन फिर सायंकाल में, गाँठ दूसरी फट गई। उसी विधि पुन: तीसरे दिन, तृतीय गाँठ भेदन हुई।।
सात दिनों में इसी तरह, सातों गाँठें खुल गईं। द्वादश स्कन्धों को सुनकर, वह प्रेतात्मा मुक्त हुई।।
दिव्य रूप वह धर कर के, सबके सामने प्रकट हुआ। श्यामल तन पे पीताम्बर, सीस मुकुट था धरा हुआ।।
कानों में कुण्डल पहरे था, तुलसीदास माल से था सजा। ऐसा लगता था जैसे, स्वर्ग से देव कोई उतरा।।

अपने भाई गोकर्ण को, नमस्कार कर उसने कहा। भ्राता तोरी हुई कृपा, मुझे प्रेत योनि से मुक्त किया।।
धन्य है श्री भागवत कथा, मेरी पीड़ा को जिस तरह से हर लिया। धन्य है सप्ताह श्रवण, जो कृष्ण धाम को पहुँचा दिया।।
पाप भी सर्व काँप उठें, जब इसका श्रवण आरम्भ हुआ। इसकी कृपा से शीघ्र ही, मेरी प्रेत योनि का अन्त हुआ।।

ज्यों छोटी बड़ी गीली सूखी, सब लकड़ी भस्म हो अग्नि में। इसी विधि एकाग्र चित्त हो, मन वचन और कर्म से।।
छोटे बड़े या नए पुराने, पाप भस्म हों श्रवण से। विद्वानों ने है यूँ कहा, देवताओं की सभा में।।
लोग जो दैवयोग से, रहते हैं भारत वर्ष में। कथा श्रवण गर नहीं करे, वृथा ही है वा जन्म रे।।

इस क्षणभंगुर तन का गर, मोह से किया लालन पालन। हृष्ट पुष्ट बलवान किया, इस तन को चाहे हर क्षण।।
बिन भागवद् की कथा सुने, सारा जीवन व्यर्थ हुआ। अस्थि का बना आधार स्तम्भ, है नाड़ी जाल से बंधा हुआ।।
मांस रक्त आरोपित कर, चर्म से है आवृत्त किया। मल मूत्र का पात्र यह, हर पल दुर्गन्ध ही छोड़ रहा।।

यह तन रोगों का घर है, परिणाम में है यह दु:ख दे ही। जरा अवस्था और शोक, घेरे रहते इसे हर पल ही।।
कामना ग्रस्त हो अहर्निश, तृप्त कभी न हो पाये। रोम रोम है दोष भरा, धारण भी दुष्कर हो जाये।।

अन्त में भी तो यह तन, तीन गति ही पाता है। मिट्टी में खायें कीड़े इसे, या पशु विष्टा बन जाता है।।
अग्नि के अर्पित हो गर, राख का ढेर बन जाता है। तत्त्व मिले जो तत्त्वों में, अस्थि अवशेष रह जाता है।।
ऐसे अस्थिर तन को क्यों, व्यर्थ में ही तू गँवाता है? इस पर चढ़कर निज घर को चल, जहाँ अविनाशी से तेरा नाता है।।
प्रात: काल पका जो अन्न, सायं विनष्ट हो जायेगा। उस अन्न के रस सों पुष्टित तन, कैसे नित्य रह पायेगा।।

इस लोक में इस सप्ताह में, गर श्रवण भागवत् का करे। शीघ्र ही तू इस साधन से, हरि चरण तक जा पहुँचे।।
सब प्रकार के दोषों की, निवृत्ति इस राह से हो जाये। मानव जीवन पाकर भी, जो श्रवण नहीं इसे कर पाये।।
पानी केरे बुदबुदे समान, विनष्ट ही वह है हो जाते हैं। या इक मच्छर की तरह, मरने के लिए ही जन्म पाते हैं।।
जिसके प्रभाव से शुष्क बाँस, की भी सब गाँठें खुल जाती हैं। सहज ही है वा श्रवण से, चित्त की ग्रन्थी सब खुल जाती हैं।।

सप्ताह में भागवत् श्रवण करो, अलौकिक है इसका प्रभाव। नहीं आश्चर्य तनिक इसमें, खुलें हृदयग्रन्थियां सब तत्काल।।
छिन्न भिन्न हों सब संशय, और सब कर्मों का हो ऱ्हास। यह तो है श्री भागवद् का, सप्ताह कथा श्रवण प्रसाद।।
संसार कलिल को धोने को, अत्युत्तम साधन है यह कथा। है मुक्ति उसकी निश्चित ही, इस कथा तीर्थ में चित्त जो बसा।।

सूतजी बोले,
धुन्धुकारी जिस पल यह सब, ज्ञान सार था कह रहा। चहुँ ओर आलोकित कर, विमान वैकुण्ठ से आ उतरा।।
सबके देखते देखते ही, धुन्धुकारी जाय विमान चढ़ा। विमान के पार्षद देख कर, गोकर्ण फिर यूँ बोला।।
गोकर्ण बोले,
प्रभु के प्रिय पार्षदो, इक संशय दूर करो मेरा। निर्मलमनी बहु श्रोताओं ने, श्री भागवत का यहाँ श्रवण किया।।
फिर सबके लिये वैकुण्ठ विमान, आपने क्यों न लाय धरा? केवल धुन्धुकारी को ही, है कैसे यह अधिकार मिला?
मेरी दृष्टि में सबने ही, समान रूप से कथा सुनी। फिर आप कहो इन सबके लिये, फल भेद है क्यों हुई।।
पार्षद बोले,
श्रवण भेद ही जान लो, है फल भेद कारण बना। श्रवण समान ही है हुआ, पर मनन न इस सम किसी किया।।
भजन समान करके भी, इस कारण फल में भेद रहा। कथा तो सबने ही सुनी, पर विमान इसको ही मिला।।
निराहार रहकर इस प्रेत ने, सात दिनों तक श्रवण किया। स्थिरचित्त से इस विषय का, मनन और निदिध्यासन किया।।
अदृढ़ ज्ञान हो व्यर्थ ही, न चित्त लगाकर श्रवण जो हो। सन्देहग्रस्त या भ्रमित चित्त सों, सारा जपन व्यर्थ ही हो।।

जिस स्थान पे प्रभु का प्रेम नहीं, दिया श्राद्ध भोज अपात्र को। या उस दान की बात कहें, जो दिया अश्रोत्रिय को।।
आचार हीन कुल की भाँन्ति, सबके सब ही नष्ट हों। बाह्य तो सब साधन करें, पर आन्तर में सब भ्रष्ट हों।।
विश्वास गुरु के वचन में हो विनम्रता से हो चित्त भरा। अपने दोषों का दमन करी, मन कथा में हो निश्चल टिका।।
इस विधि कथा श्रवण का, पूर्ण फल मिल जायेगा। श्रोता ऐसा कथा का जो, परम धाम को जायेगा।।
यदि सब श्रोता इस भाव से, पुन: कथा रस पान करें। निश्चित ही यह सबके सब, वैकुण्ठ लोक में जा पहुँचे।।
सूतजी बोले,
गोकर्ण आपको श्री हरि, स्वयं ही लेने आयेंगे। अपने संग निज धाम को, आपको वह ले जायेंगे।।

सब पार्षद यूँ कहकर, कीर्तन हरि का करने लगे। सबके देखते देखते वह, वैकुण्ठ लोक में चले गये।।
पुन: श्रवण मास के आते ही, गोकर्ण ने कथा का गान किया। श्रोताओं ने उनसे पुन:, इस कथा का रस पान किया।।
हे नारद जब इस विधि, भागवद् कथा सम्पूर्ण हुई। अब सुनो उस कौतुक को, तत्क्षण जो घटना घटी।।
विमान अनेकों ले करी, भक्तों संग हरि आ पहुँचे। नमस्कार की ध्वनि हुई, चहुँ ओर से जय जय कार हुए।।
हर्षित होकर हरि ने भी, पञ्चजन्य की ध्वनि करी। आलिंगन दे गोकर्ण को, सायुज्यता उसे प्रदान की।।

श्यामल वर्ण हुये सब श्रोता, पीताम्बर धारी कर दिया। कुण्डल किरीट आदि सब से, विभूषित उनको कर दिया।।
गोकर्ण की ऐसी कृपा हुई, कोई जीव भी न छूटा। उस प्रदेश का हर जीव, जाय विमानों पर चढ़ा।।
कुत्ता और चाण्डाल कोई, इसमें पीछे नहीं रहा। हर प्राणी जिसने कथा सुनी, दिव्य लोक को प्राप्त हुआ।।
मुदित हो कथा श्रवण से, भक्त वत्सल ने करी कृपा। योगी जन जहाँ जाते हैं, उस भागवद् धाम में भेज दिया।।
गोकर्ण को संग ले कृष्ण ने, गोलोक को प्रस्थान किया। उनके अपने ही लोक में, गोकर्ण का निवास हुआ।।

जिस विध श्री राम के संग गये, अवधवासी साकेत धाम। ले गये श्री कृष्ण उन्हें, दुर्लभ जो योगिन को गोधाम।।
जिस लोक में सूर्य चन्द्र, और सिद्ध कभी न जा पायें। श्री भागवद् का श्रवण कर, जीव सहज ही पहुँच जायें।।
सप्ताह श्रवण के यज्ञ की, महिमा हम कैसे गायें। जो उज्ज्वल फल संचित हो, उसकी कैसे कह पायें।।
जिन कानों में गोकर्ण की, कथा का इक कण भी पहुँचा। इस अमृत के पान से, पुन: जन्म उन्होंने नहीं पाया।।

जल वायु या पत्ते खाकर, तन को जो क्षीण बनाते हैं। दीर्घकाल तक तप करके, और योग से जिसे न पाते हैं।।
सप्ताह श्रवण से भागवद् के, सहज सभी हो जाते हैं। श्रवण मात्र से भक्त जन, परम धाम को पाते हैं।।
चित्रकूट पर रहने वाले, मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्य भी। नित्य कथा रस पान करें, रहें ब्रह्मानन्द निमग्न ही।।
इसकी महिमा क्या गायें, परम पावनी कथा है ये। इक बार श्रवण जो इसका करे, सब ही पाप यह भस्म करे।।
गर श्राद्ध समय में पाठ करें, तो पितृगण को तृप्त करें। नित्यपाठ जो इसका करे, सहज मोक्ष ही वह पा ले।।

३) सप्ताह यज्ञ विधि

सनत्कुमार बोले,
सप्ताह श्रवण के लिये नारद, विधिवत् विधान बतायेंगे। जो साध्य है धन और जन के, सहयोग से उसे सुझायेंगे।।
ज्योतिष शास्त्र में पारंगत जो, यत्न से उन्हें बुलाइये। कथा हेतु विद्वद् जन से, मुहूर्त शुभ निकलवाइये।।
विवाह समारोह में जैसे हो, धन का प्रबन्ध कराइये। ऐसा सब हो जाने पर, कथा आरम्भ कराइये।।
भाद्रपद आश्विन कार्तिक, मार्गशीर्ष आषाढ़ और श्रावण मास। इनमें गर हो कथा श्रवण, श्रोतागण पायें मोक्ष द्वार।।

हे विप्रवर इस काल में भी, दुर्योग त्यागने चाहिये। उत्साही जो श्रोतागण हों, सहयोगी उन्हें बनाइये।।
फिर प्रयत्न से देश देश में, संदेसा यह भिजवाइये। कथा हमारे होगी यहाँ, परिवार सहित सब आइये।।
स्त्री और शूद्र हैं कथा से दूर, उनको भी बुलाइये। सूचना उनको मिल जाये, ऐसा प्रबन्ध कराइये।।
देश देश में विरक्त जो, वैष्णव और भागवद् प्रेमी हों। हरि कीर्तन के रसिक जो, निमन्त्रण पत्र उन्हें भेजो।।
उनको लिखने की कहें, उचित विधि प्रयुक्त करो। सादर निमन्त्रण भेज उन्हें, आमन्त्रित उनको तुम करो।।

महानुभाव यहाँ सत्पुरुषों का, संगम सप्ताह पर्यन्त होगा। भागवत् कथा रसामृत का, दुर्लभ अपूर्व वर्णन होगा।।
भागवत रस के हैं आप रसिक, शीघ्र ही अब आइये। कृपा करके प्रेम पूर्वक, कथामृत रस चख जाइये।।
यदि व्यस्तता अपनी कारण आप, पूर्ण अवकाश न कर सकें। तो भी इस दुर्लभ अवसर पर, इक दिन तो आप आ ही जायें।।
इस सुयोग का इक क्षण भी, दुर्लभ बड़भागी ही पायें। कृपा कर इस दैवदत्त, अवसर का लाभ उठा जायें।।

विनम्र भाव से इस विधि, आमन्त्रित सबको आप करें। इस यज्ञ में भाग जो लें, यथोचित व्यवस्था निवास करें।।
किसी तीर्थ वन में या घर में, है कथा आयोजन अत्युत्तम। विशाल धरा जहाँ खाली हो, वहीं बनायें कथा का स्थल।।
घर की सारी सामग्री को, एक ओर ही कर लेना। फिर उस भूमि का शोधन, मार्जन और लेपन करना।।
रंग बिरंगी धातु से, फिर वह स्थान सजा लेना। इस विधि श्रीमद्भागवत की, कथा का तुम प्रबन्ध करना।।

कथा से पांच दिन पहले ही, बहुत वस्त्र बिछौने एकत्रित कर। केले के तनों को लेकर के, तैयार करें इक उच्च मण्डप।।
चहुँ ओर से फूल फल, पत्तों से उसे सजा लेना। रंग बिरंगी झण्डियों से, फिर शोभा उसकी बढ़ा लेना।।
सात बनायें विशाल स्थान, मण्डप में ऊँचाई पर। आमन्त्रित कर बिठायें वहाँ, जो हों विरक्त अति विप्रवर।।
आगे की ओर उनके लिये, आसन उचित बनाइये। इनके पीछे वक्ता के लिये, दिव्य आसन सजाइये।।

यदि उत्तरोन्मुख हो वक्ता, तो श्रोता का मुख पूर्व को हो। यदि पूर्व ओर देखे वक्ता, तो श्रोता उत्तरोन्मुख हो।।
अथवा वक्ता श्रोता दोनों, हो पूर्वमुखी बैठे कहां। देशकाल के ज्ञाताओं ने, ऐसा ही है नियम कहा।।
वेदज्ञ वेदशास्त्र की, व्याख्या में निपुण जो हो। दृष्टान्त कुशलता से वह दे, विवेकी और नि:स्पृह हो।।
ऐसा विरक्त और विष्णुभक्त, भागवद् वक्ता हो। वह ही कथा वाचन करे, जो कथामृत ज्ञाता हो।।

जो कोई पण्डित होकर भी, अनेक धर्म में भरमाये। स्त्री स्पृहा में फँसा रहे, पाखण्ड का जाल बिछा जाये।।
ऐसा जन भागवद् कथा में, नियुक्त कहीं न हो पाये। सावधान हो श्रोता को, विवेचन करना चाहिए।।
वक्ता का सहायक भी, ऐसा विद्वान ही हो सके। सबके संशय जो दूर करे, और तत्व की बात सुझा सके।।
कथा से इक दिन पूर्व ही, वक्ता यह व्रत ग्रहण करे। क्षौर कर्म वह करवा ले, अरुणोदय पर नित्य स्नान करे।।
सन्ध्या आदि नितनेम भी, संक्षेप से पूर्ण करे। कथा निर्विघ्न ही सम्पन्न हो, श्री गणेश पूजन करे।।

फिर पितृगण का तर्पण कर, उनको भी तृप्त करे। पूर्व पाप की शुद्धि को, आन्तर में प्रायश्चित करे।।
इक आसन बनाकर के, स्थापित हरि को वहाँ करे। श्री हरि को ही साक्षी बना, कथा प्रवचन आरम्भ करे।।
भगवान कृष्ण को लक्ष्य बना, विधि से मन्त्र उच्चार ले। पुन: कृष्ण पूजन हेतु, पोड्ष उपचार विधि वह करे।।
तत्पश्चात् प्रदक्षिणा, और वह नमस्कार करे। इसके बाद ही कथा का, विधिवत् परायण शुरू करे।।

अति दीन हीन भवभय निमग्न, हूँ कर्ममोह के ग्राह से ग्रसा। हे करूणानिधे अब कृपा करी, इस भव बन्धन सों मुक्त करा।।
उत्साहित हो प्रीति पूर्वक, विधि विधान से युक्त हुये। तत्पश्चात् धूप दीपादि, से भागवद् की पूजा करे।।
शास्त्र सम्मुख नारियल धर, फिर उसको नमस्कार करें। प्रसन्न चित्त नतमस्तक हो, फिर उसकी वह स्तुति करें।।
श्री भागवद के रूप में, हे कृष्ण आप हैं स्वयं प्रकट। इस भवबन्धन सों मुक्ति हेतु, मैं हूँ आपकी शरणागत।।

बिना किसी बाधा के प्रभु, मेरे मनोरथ पूर्ण करो। सब ओर से हे केशव, इस दास को अपनी शरण में गहो।।
विनम्र वचन यह कहकर के, फिर वक्ता का पूजन करो। वस्त्र आभूषण अर्पित कर, फिर वक्ता का स्तुवन हो।।
भगवन् स्वरूप श्री शुकदेव, सब शास्त्रों में पारंगत आप। इस कथा प्रकाश से, अज्ञान तिमिर हरें मेरा आप।।
निज कल्याण को वा सम्मुख, प्रसन्न मनी हो व्रत इक लें। सात दिनों तक यथा शक्ति, नियम का पालन करें।।

विघ्न कोई न हो राह में, पाँच ब्राह्मण और चुनें। द्वादश अक्षर मन्त्र से, भगवत् नाम का जप करें।।
फिर ब्राह्मण वैष्णव कीर्तन कर, सबकी पूजा अर्चा करें। कर नमस्कार वा आज्ञा पा, निज आसन को ग्रहण करें।।
लोक सम्पत्ति धन और घर, जो पुत्रादि की चिन्ता त्यजे। शुद्ध और निर्मल चित्त से, जो कथा का श्रवण करे।।
वह कथामृत रस पीकर, उत्तम फल को ही पाये। ऐसा जन प्रभु भक्ति का, अधिकारी स्वत: ही हो जाये।।

बुद्धिमान वक्ता को कहें, आरम्भ हो सूर्योदय पे कथा। साढ़े तीन प्रहर तक फिर, सुमधुर कथा की हो व्यवस्था।।
दो प्रहर दोपहरी को, कथाको विराम दें। व्यर्थ की बातें त्यज वैष्णव, प्रसंगानुकूल वर्णन करें।।
कथा समय में सुखकारी, है अल्प आहार ही। नहीं बार-बार विचलित हो ध्यान, इक बार प्रसाद की बात कही।।
यदि शक्ति हो तो सातों दिन, रहें निराहार और श्रवण करें। या दुग्ध और घृतपान करी, सुखपूर्वक कथा को सुनें।।

या एक समय ही अन्न खाकर, फिर फल का आहार करे। जैसा जिससे निभ पाये, वैसा ही वह व्यवहार करे।।
यदि भोजन कर चित्त टिका रहे, वह अच्छा है उपवास से। यदि भूखे पेट न ध्यान लगे, तो लाभ है क्या निराहार से।।
हो नियमबद्ध सप्ताह श्रवण, हे नारद इसका विधान सुनो। बिन विष्णु भक्ति की दीक्षा लिये, अधिकारी श्रवण को कोई न हो।।
ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर, सोये श्रोता फिर धरती पर। कथा समाप्ति पर ही नित्य, भोजन करे फिर पत्तल पर।।

दाल शहद और तेल औ, गरिष्ठ अन्न सेवन न करें। दूषित भाव से बने हुए, और बासी अन्न को त्याग दें।।
काम क्रोध मद मान मोह, और मत्सर से दूर रहें। लोभ मोह दम्भ द्वेष को, नहीं पास फटकने दें।।
वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु, किसी की निन्दा नहीं करें। स्त्री गोसेवक और राजा, महापुरुष को दोष न दें।।
रजस्वला स्त्री मलेच्छ पतित, गायत्रीहीन जो हो ब्राह्मण। द्विज द्वेषी वेद जो न मानें, उससे नहीं बात करे इक क्षण।।
सत्य शौच और दया मौन, का पालन करना चाहिये। सरलता विनयम उदारता, को व्यवहार में लाना चाहिये।।
धन हीन या भाग्य हीन, कोई पापी या क्षय ग्रसित महान। पुत्रहीन रोगी या मुमुक्षु, को भी चाहिये कथा का पान।।

रजोदर्शन जिसका रुक जाये, या इक सन्तानर ही जो पाये। जो नारी बांझ ही रह जाये, सन्तान या जिसकी मर जाये।।
या गर्भ ही जिसका गिर जाये, वे कथा को सुनने सब आयें। कथा श्रवण से सबके सब, वांछित फल ही पा जायें।।
यदि विधिवत् यह कथा सुनें, अक्षय फल को पा जायें। अत्युत्तम यह दिव्य कथा, कोटि यज्ञ का फल लाये।।
इस विधि व्रत पालन करे, फिर उद्यापन उसका करे। विशेष फल की इच्छा जिसे, उसके लिये यह विधि कहें।।
जन्माष्टमी व्रत समान ही, कथा व्रत उद्यापन करें। व्रत नियम पालन करके, उचित फल ही वह पा जायें।।

किन्तु उनको नहीं आग्रह यह, जो अकिंचन भक्त हैं। निष्काम भक्त भगवान के, श्रवण मात्र से पवित्र है।।
सप्ताह यज्ञ की पूर्ति पर, विधान है श्रोतागण के लिये। भक्ति भाव हृदय में धर, वक्ता और शास्त्र की पूजा करें।।

वक्ता फिर श्रोताओं को, तुलसी माला प्रसादी दें। सब मिल फिर स्वर ताल में, भाव पूर्ण कीर्तन करें।।
जयजयकार और नमस्कार, फिरशंख ध्वनि का नाद करो। याचक और विप्रगण को, पुन: धन और अन्न का दान करें।।

करे गीता पाठ वह अगल दिन, यदि श्रोता विरक्त हो। गर गृहस्थी हो श्रोता, तो कर्म शान्ति होम से हो।।
उस हवन में दशम स्कन्ध का, हर श्लोक ही पठन करो। इक इक श्लोक संग अग्नि में, तब आहुति अर्पण करें।।
विधिवत खीर मधु घृत तिल, अन्न आदि समर्पण हो। तब ही तो विधिवत् यह, यज्ञ होम सफल ही हो।।
या फिर चित्त एकाग्र करी, गायत्री मन्त्र से हवन करें। तत्वरूप में भागवद् को, गायत्री का स्वरूप कहें।।

गर होम की भी सामर्थ्य न हो, इक अन्य साधन उसे कहें। फल की इच्छा हिय धरी, सामग्री का दान दें।।
कथा सप्ताह के सब दोषों को, इस विधि वह शान्त करे। दत्तचित्त वह होकर के, सहस्त्र नाम का गान करे।।
सभी सफलता इससे मिले, यह ही परम साधन है। विष्णु सहस्त्रनाम का गान, सबसे बड़ा अराधन है।।
फिर बारह ब्राह्मणों के हेतु, उत्तम भोजन जल पान हो। व्रत पूर्ति के लिये, गौ और स्वर्ण का दान हो।।

स्वर्ण सिंहासन बनवाये, गर इतनी सामर्थ्य हो। श्री भागवद् उसमें धर करी, विधि पूर्वक वा पूजन हो।।
फिर पूजे आचार्य को, वस्त्र आभूषण गन्ध से। सुन्दर लेखनी से सजा, शास्त्र उसको समर्पित यह करे।।
आचार्य को इस विधि दान कर, भव बन्धन सों मुक्त होये। सप्ताह परायण की यह विधि, सब पापों से निवृत्त करे।।
श्री भागवद् की शुभकथा, निश्चित अभीष्ट फल दे दे। धर्म अर्थ और काम मोक्ष, चारों को ही सफल करे।।
सनत्कुमार बोले,
हे नारद सप्ताह श्रवण की, विधि तुम्हें पूर्ण कह दी। कहो और क्या है इच्छा, इस पल तुमको सुनने की।।
श्री भागवद् तो है साधन, भुक्ति और मुक्ति दोनों की। संसार भी इससे मिल जाये, और मिले प्रभु की भक्ति भी।।

सूतजी बोले,
यूँ कहकर उन मुनिवर ने, कही यह भागवद की कथा। पाप नाशिनी परम पावनी, यह कथा है भुक्ति मुक्ति दा।।
विधिवत् ही सबने मिलकर, इस सप्ताह का श्रवण किया। तत्पश्चात् श्री पुरुषोत्तम का, सबने विधिवत स्तुवन किया।।
भक्ति ज्ञान वैराग्य भी, कथा से पुष्टि पा गये। तरुण अवस्था में आकर, आकर्षित सबको करने लगे।।
निज मनोरथ पूर्ति देख, श्री नारद अति मुदित हुये। पुलकित हुआ वा रोम रोम, और परम आनन्द से भर गये।।
भागवद् प्रिय श्री नारद जी, कथा श्रवण कर कहने लगे। हाथ जोड़ गद्गद् वाणी से, सनकादि से यूँ बोले।।

नारद बोले,
धन्य हुआ मैं मुनिवर आज, कृपा आपकी पाकर के। सर्वपाप हर श्री हरि, भगवान ही मानो मिल गये।।
सब धर्मों से श्रेष्ठ धर्म, है सुनना श्री मद्भागवद् को। इससे सहज ही पा लेवें, वैकुण्ठ विहारी कृष्ण को।।
सूतजी बोले,
वैष्णव जन में सर्वोत्तम, नारद थे जब कह यह रहे। उसी समय भ्रमते हुए, योगेश्वर शुकजी वहाँ पहुँचे।।
थे आत्मलाभ से दमक रहे, सोलह वर्षीय श्री व्यास पुत्र। ज्ञान सिन्धु के चन्द्रमा, सप्रेम थे भागवद् पाठ में रत।।
देखी उस परम तेजस्वी को, सभी सभासद हुये खड़े। आदर से श्री शुक को, बैठाया ऊँचे आसन पे।।

फिर देर्वऋषि ने प्रेम पूर्ण, हिय से उनकी पूजा करी। आप मेरी वाणी सुनें, कहा शुक ने आसन पर बैठकर।।
शुकदेव बोले,
वेद रूपा कल्पतरू का, फल है पका हुआ भागवद्। शुक के मुख से संयोग हुआ, अमृत रस पूर्ण है भागवद्।।
रस ही रस है बरस रहा, मानो रस का घर है भागवद्। अमृत सों जो भरा हुआ, है सुधा कलश ऐसा भागवद्।।
जब तक घट में प्राण हैं, पुन: पुन: रस पान करो। ऐसा सौभाग्य न फिर मिले, केवल इस लोक में सुलभ यह हो।।
रसिक और भावुक जन इसका, बार बार ही पान करें। पुन: पुन: श्री भागवद का, मधुर स्वरों में गान करें।।

महामुनि श्री वेदव्यास ने, भागवद् महापुराण रचा। निष्कपट निष्काम स्वरूप, निर्माण धर्म का यहाँ किया।।
किया सार तत्व का यहाँ बखान, शुद्ध चित्त सज्जन के लिये। इसके श्रवण मात्र से, त्रितापों के भंजन के लिये।।
जो इसकी शरण में आ जाये, अन्य साधन से उसे क्या काम? उसको सुलभ हों प्राप्त हरि, चित्त टिके उसका अविराम।।
उदय पुण्य के होने पर, जब उठे हृदय में श्रवण की प्यास। तत्क्षण ही हरि प्रेम बंधे, करें भक्त के हृदय में वास।।

है पुराणों में यह अति श्रेष्ठ, भाल पे सोहे तिलक समान। वैष्णव जन के लिये कहें, सर्वोत्तम धन अति मूल्यवान।।
परम हंस के योग्य जो, वर्णित है यहाँ विशुद्ध ज्ञान। वैराग्य और भक्ति सहित, निवृत्ति मार्ग का यहाँ है गान।।
भक्ति भाव हृदय में धर, जो पठन श्रवण और मनन करे। शीघ्र ही वह भव बंधन त्यज, मोक्ष धाम की ओर बढ़े।।
अति दुर्लभ है यह रस, सत्य लोक और स्वर्ग में भी। इसका आस्वादन हो न सके, वैकुण्ठ और कैलाश में भी।।
भाग्यवान जन सब मिलकर, भर भर के कटोरे पान करो। किसी मूल्य पर भी कहें, यह अमृत रस तुम न छोड़ो।।
सूतजी बोले,
जिस पल श्री शुकदेव जी, ऐसी बात थे कह रहे। उस पल प्रह्लाद बलि उद्धव, अर्जुन सहित श्री हरि प्रकटे।।
सपार्षद भगवान की, पूजा नारद करने लगे। प्रभु की स्तुति से वातावरण, को गुंजित वह करने लगे।।
मुदित देख भगवान को, सिंहासन पर बिठा दिया। उनके सामने सबने ही, मिलकर संकीर्तन किया।।
दर्शन करने महाकीर्तन के, श्री ब्रह्माजी भी आ पहुँचे। माँ पार्वती को साथ लिये, श्री महादेव भी वहाँ प्रकट हुए।।

अति चंचल गति प्रल्हाद आप, करताल लेकर बजाने लगे। उद्धव जी फिर झाँझ उठा, ताल से ताल मिलाने लगे।।
देवर्षि नारद जी ने, वीणा वाद्य को छेड़ दिया। स्वर ज्ञान में पारंगत, अर्जुन ने फिर आलाप किया।।
मृदंग को हाथ में लेकर के, श्री इन्द्र ने निनाद किया। सनकादि ने बीच बीच में, जय जयकार का घोष किया।।
इस सरस रचना के वक्ता, श्री शुक सबसे आगे चले। भिन्न-भिन्न भावों का वह, प्रदर्शन जिस अंगों से करें।।

इन सबके बीचों बीच ही, भक्ति और ज्ञान वैराग्य प्रकटे। परम तेजस्वी वह तीनों, वहाँ नट समान सुसज्जित थे।।
इस दुर्लभ दृश्य को देखकर, श्री हरि महा मुदित हुये। अपने भक्तों से फिर वह, इस प्रकार कहने लगे।।
मैं बहुत प्रसन्न हुआ, तुम्हारे कथा और कीर्तन से। मुझे अपने वश में कर लिया, ऐसे भक्ति भाव से।।
अब जो भी चाहो वर माँगो, ऋणी तुम्हारा मैं हुआ। भगवान का वचन यह सुनकर, भक्त वृन्द अति मुदित हुआ।।
प्रभु का प्रेम पाकर उनका, चित्त अति कृत कृत हुआ। द्रवीभूत हो प्रेम से, भगवान से उनने यूँ कहा।।

सप्ताह श्रवण का जहाँ भी, आरम्भ कहीं आयोजन हो। सपार्षद वहाँ आपका, निश्चित ही आगमन हो।।

यह हार्दिक अभिलाषा है, मनोरथ यह अब पूर्ण करो। तथास्तु कह फिर श्री हरि, हुए अन्तर्धान निज लोक को।।
चरण कमल भगवान के, और पार्षद को संकेत करी। नमन किया देवर्षि ने, तपस्वी शुक आदि ने भी।।
कथा सुधा रस पान कर, आनन्द मग्न हुए सब ही। फिर सबने अपने अपने, घर की ओर प्रस्थान किया।।

श्री शुकदेव ने उस समय, अपने शास्त्र में लाय धरा। भक्ति ज्ञान वैराग्य को, श्री भागवद् में स्थापित करा।।
इस कारण ही वैष्णव जन, श्री भागवद् को अराधते हैं। इसका सेवन करने से, श्री हरि वहां हृदय विराजते हैं।।
दारिद्र्य दु:ख की ज्वाला में, जो नित्य दग्ध हैं हो रहे। माया पिशाचिनी के हाथों, जो भव सिन्धु में खो रहे।।
उनके निश्चित कल्याण का, श्री भागवद है सिंह नाद करे। भव से पार लगाने का, भक्तों से प्रण वह करे।।
शौनक बोले,
श्री शुक ने राजा परीक्षित को, धुन्धुकारी को गोकर्ण ने। सनकादि ने नारद को, कब कब यह उपदेश दिये।।
मेरा संशय दूर करें, और करी कृपा अब मुझसे कहें। भागवत् की सब कथाओं का, अब मेरे लिये प्रकाश करें।।
सूतजी बोले,
भगवान कृष्ण स्वधाम गये, जब इस धरा को त्यज करके। कलियुग के आगमन को, प्राय: तीस वर्ष थे हुये।।
भाद्रपद के मास में, शुक्ला की नवमी जब थी। उसी समय शुकदेव ने, कथा की आरम्भ करी।।
कथा श्रवण पे परीक्षित के, जब कलियुग द्विशत वर्ष गया। आषाढ़ माह की शुक्ला नवमी, का पुन: संयोग बना।।
उसी समय गोकर्ण ने, कथा का था आरम्भ किया। धुन्धुकारी ने यह कथा सुनी, प्रेत योनि से मुक्त हुआ।।

तत्पश्चात् कलियुग यह, तीस वर्ष जब और गया। कार्तिक की शुक्ला नवमी से, सनकादि ने पुन: कहा।।
हे निष्पाप श्री शौनक, आपने था जो प्रश्न किया। यह उसका विस्तार से, मैंने उत्तर कह दिया।।
इस कलियुग में श्री भागवद् की, कथा की महिमा महान है। परम औषधि भवभय की, यह तो राम बाण है।।
सर्वप्रिय है कृष्ण की यह, सर्व पाप हरने वाली। मुक्ति की है इक राह यह, भक्ति विकास करने वाली।।
भूलें अन्य सभी साधन, तीर्थ सेवन से क्या होगा। कथामृत पान करो सादर, सन्तो इसमें ही भला होगा।।

निज दूत को हाथ में पाश लिये, श्री यमराज ने जब देखा। कर्ण समीप उसके आकर, उसको फिर यह वाक् कहा।।
भागवत कथा में हों जो मग्न, प्रमाण दूर से ही करो। वैष्णव को जो ताड़ित करे, नहीं नियम वह मुझपे हो।।
इस असार संसार में, विषय रूप विष में फँसे। हे व्याकुल चित्त वाले जीव, तेरे कल्याण की बात कहें।।
आधे क्षण के लिये ही तुम, इस अमृत रस का पान करो। श्री शुक के मुख से जो बहा, वह कथा सुधा रस का पान करो।।
क्यों भटक रहे हो व्यर्थ ही, कथाओं के अरण्य में। इस रस के कर्ण स्पर्श से ही, मुक्ति होती है इक क्षण में।।

इसकी साक्षी तुम्हें कहें, राजा परीक्षित आप हैं। सप्ताह के श्रवण मात्र से ही, क्षय हुए सब पाप हैं।।
शुक ने था उस कथा का गान किया, प्रेम रस में डूब करी। जिस कण्ठ में जाकर यह बसे, वैकुण्ठ का स्वामी हो वह ही।।
अनेकों शास्त्र देखकर, है परम गुह्य रहस्य कहा। सब शास्त्रों सिद्धान्तों का, यह ही है रस सार कहा।।
इस जग में भागवद् से अधिक, पावन कर कोई और नहीं। द्वादश स्कन्धों का रस पीयें, है विधि यही परमानन्द की।।
जो भक्ति भाव से युक्त हो, नियम से इसका श्रवण करे। या भक्ति पूर्ण हृदय लिये, वैष्णव सम्मुख इसे बाँचे।।
विधि विधान का पालन कर, दोनों ही वास्तविक फल पायें। त्रिलोकी में उनके लिये, कुछ भी असाध्य न रह जाये।।

प्रथम स्कन्ध

विषय सूची

१)	सूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न	३४
२)	भगवान का स्वरूप	३५
३)	भगवान के लीला अवतार	३८
४)	महर्षि व्यास की व्याकुलता	४१
५)	नारद चरित्र	४५
६)	अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका वध और उसका अपमान	५०
७)	उत्तरा के गर्भ की रक्षा, परीक्षित का जन्म और परिचय	५६
८)	कुन्तीकी प्रार्थना	५७
९)	भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति और उनका परलोक प्रयाण	६०
१०)	श्रीकृष्णका द्वारकागमन	६४
११)	विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी का वान:प्रस्थ	७०
१२)	महाराज युधिष्ठिरको अपशकुन और अर्जुनका द्वारकासे लौटना व पाण्डवोंका महाप्रयाण	७४
१३)	परीक्षितकी दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का सम्वाद व कलियुगका दमन	८१
१४)	परीक्षितको शृंगी ऋषि का श्राप और परीक्षितका आमरण अनशनव्रत व शुकदेवजीका आगमन	८७

** सपनों को हकीकत में बदलते देखा, बिन बादल पानी बरसते देखा।*
जिन्हें लोग पूजते है भगवान की तरह, उन्हें भी दुआओं के लिये तरसते देखा ।।

प्रथम स्कन्ध

१) सूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

इस जगत की सृष्टि और स्थिति, प्रलय जिसमें सब होते हैं। उस परम स्वरूप परमात्मन, का ध्यान हम करते हैं ।।
सबके है तद्रूप वह, पर सबसे वह पृथक् है। स्वयं प्रकाश परतंत्र नहीं, जड़ नहीं चेतन वह है ।।
हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जो नहीं, संकल्प से उत्पन्न उसे किया। अपने ही इक भाव से, वेद ज्ञान उसे दान दिया ।।
उस परम तत्व अज्ञेय को, कोई जान न पाते हैं। बड़े बड़े विद्वान भी, मोहित वहाँ हो जाते हैं ।।
तेजोमयी रश्मि सूर्य की में, ज्यों जल का हो आभास कभी। जलाशय में देखें जब, स्थल का हो आभास कभी ।।
पुन: स्थल में देखें जब, जल का हो आभास कभी। वैसे ही यह त्रिगुणमयी, सृष्टि जिसमें समाई है ।।
जागृत स्वप्न सुशुप्ति रूप, जब उसमें ही धर आई है। मिथ्या होने पर भी यह, सत्य प्रतीत है हो रही ।।
स्वयं प्रकाश निज ज्योति से, माया की रचना करी। सर्वदा और सर्वथा वह, है माया कार्य से मुक्त ही ।।

महामुनि वेदव्यास ने, भागवद् पुराण को है रचा। नहीं मुक्ति की भी कामना, ऐसा निष्काम है धर्म कहा ।।
कल्याणमयी त्रिताप हरक, ज्ञातव्य सार जो एक है। शुद्धचित्त सत्पुरुषों का, प्राप्तव्य तत्त्व जो एक है ।।
इसमें उस परमात्म तत्व, का निरूपण है हुआ। किसी अन्य शास्त्र या साधन से, अब हमको प्रयोजन क्या?
जिस पल ही सुकृत जीव, इसके श्रवण की इच्छा करें। श्री हरि स्वयं तत्क्षण आकर, उसके हृदय में बन्दी बनें ।।

वेद रूपा कल्पतरु का, पका हुआ फल है भागवत्। शुक के मुख से संयोग हुआ, अमृत रसपूर्ण है भागवत ।।
रस ही रस है छलक रहा, मानो रस का घर है भागवत्। अमृत सों जो भरा हुआ, है सुधा कलश ऐसा भागवत् ।।
जब तक तन में रहे चेतना, पुन: पुन: रस पान करो। ऐसा सौभाग्य न फिर मिले, केवल इस लोक में सुलभ यह हो ।।
रसिक और भावुक जन इसका, बार बार ही पान करें। पुन: पुन: श्री भागवत का, मधुर स्वरों में गान करें ।।

पुण्य क्षेत्र नैमिषारण्य में, शौनकादि ऋषियों ने। मिलकर के ही महायज्ञ, अनुष्ठान किया ऋषियों ने।
सहस्त्र वर्ष तक चलने वाला, महायज्ञ अनुष्ठान किया। ईश्वर प्राप्ति उद्देश्य था, जिससे यह सब काम किया ।।
इक दिन प्रात: उन सबने, निवृत्त हो अग्निहोत्र से। पूजन किया श्री सूत का, श्रद्धा और भक्ति भाव से ।।
ऊँचा आसन देकर उन्हें, फिर पूछा सादर प्रश्न यह। हे सूत आप कृपा करके परम ज्ञान अब दें हमें ।।

निश्चय ही निष्पाप आप, पारंगत शास्त्र ज्ञान में। धर्मशास्त्र विधिवत् पढ़े, ज्ञाता इतिहास पुराण के ।।
इन सबका अध्ययन करी, आख्यान भी इनका किया। आपके श्री मुख से ही तो, परिचय लोगों को इनका मिला ।।
वेदों के सर्वश्रेष्ठ वेता, व्यास औ मुनि जन जो जानें। सगुण निर्गुण रूप प्रभु का, जैसा भी वह पहचानें ।।
उन द्वारा ज्ञात सब विषयों को, आप भली भाँति जानें। सबके ज्ञाता हैं आप प्रभु, हे सूत जी हम तो यह मानें ।।
सरल शुद्ध हृदय आपका, इस कारण अनुग्रह पाया। प्रिय शिष्य के लिये कोई, गुरु ज्ञान गुप्त न रह पाया ।।

हे आयुष्मन् कृपा करके, हमेंएक बात बतलाइये। कलियुग के जीवों के लिये, कल्याण कहाँ है बताइये ।।
सबमें साधन कौन श्रेष्ठ, निश्चित रूप सुझाइये। हम जैसों के कल्याण का, अब साधन एक बताइए ।।
इस युग में आयु भी, प्राय: अल्प है होने लगी। साधन करने में लोगों की, रुचि प्रवृत्ति भी नहीं रही ।।

प्रमाद ने उनको है घेरा, मन्दभाग्य वह मन्दबुद्धि। इस पर उनको घेर रहीं, अनेकों विघ्न बाधायें भी।।

शास्त्र अनेकों हैं भरे, पर एक राह नहीं कह रहे। अनेकों कर्म की विधि कहें, कौन पथ फिर जीव ले?
बहु विस्तृत हैं शास्त्र ये, इक अंश भी श्रवण न कर पायें। लोक कल्याण के हेतु आप, अब सार रूप में समझायें।।
श्रद्धापूर्ण हृदय लिये, हम आपकी शरण में हैं आये। आख्यान करें उस तत्व का, चित्त शुद्ध जो हो जाये।।
हे सूत कल्याण हो आपका, आप जाने रहस्य यह। भक्तवत्सल भगवान कृष्ण, यदुवंश के रक्षक बने।।
वसुदेव की भार्या देवकी, के गर्भ से वह प्रकट हुये। क्या करने की इच्छा थी, जिस कारण उन्होने अवतार लिये।।

इस कथा को सुनने के, जिज्ञासु हम सब आये हैं। कृपा करें अब कहें हमें, बहु आस लिये हम आये हैं।।
जीवों के कल्याण हेतु, वा प्रेम बढ़ाने के लिये। भक्त वछल वैकुण्ठ छोड़, इस धरती पर जन्म लें।।
इस जन्म मृत्यु के चक्र में, जीव नित्य है पिस रहा। ऐसे में इस कलियुग में, कल्याण वा कैसे होगा?
क्षण भर के लिये भी यदि, वह भगवन्नाम का स्मरण करे। जल्द ही मुक्त वह हो सके, भय भी भगवान से स्वयं डरे।।

परम विरक्त औ शान्त मुनि, रहें प्रभु चरण की शरण में। उनके स्पर्शमात्र से तत्क्षण, भव के जीव पवित्र भयें।।
गंगा जी के जल का भी, बहुत दिनों तक सेवन हो। तब जाकर यह पावनता, जीव को कहीं प्राप्त हो।।
पुण्यात्मा भक्तजन, जिनकी लीला का गान करें। आत्म शुद्धि के चाहुक, हैं कौन जो वंचित रह सकें?
ऐसे कलिमलहारी कृष्ण, का यशोगान ही अब सुनें। अपनी माया से आप ही, धरती पर वह आ उतरें।।
नारद आदि नित्य उनकी, लीलाओं का गान करें। श्रद्धापूर्ण हम आये शरण, कृपा करी हमको भी कहें।।

हे बुद्धिश्रेष्ठ श्री सूत जी, कृपा करी अब आप कहें। योगमाया का आश्रय ले, प्रभु जो लीला अपनी करें।।
हरि की अवतार कथाओं का, आप हमें वर्णन करें। जिनकी कीर्ति है पुण्य पगी, नहीं श्रवण से कर्ण यह तृप्त भएं।।
वो लीलायें हैं रस से सनीं, मानो इक रस का सिन्धु वो।। रसज्ञ जो इसका पान करें, नित्य नया ही अनुभव हो।।
लोगों में अति साधारण बन, भगवान कृष्ण विचरते थे। जैसे कोई मानव ही हो, ऐसी चेष्टा वह करते थे।
पर बलराम के साथ मिली, ऐसी लीलायें भी थीं करीं। मानुषी तन में रहकर भी, वह सब ही अलौकिक थीं।।

कलियुग को आया जानकर, हम वैष्णव क्षेत्र में बैठे हैं। दीर्घकालीन सत्र का, संकल्प किये हम बैठे हैं।।
श्री हरि कथा का रस लेने, सब ओर से खाली बैठे हैं। कृपा करें श्री सूत जी, हम आपकी शरण में बैठै हैं।।
अन्त:करण की पावनता, और शक्ति का यह ऱ्हास करे। है कठिन पार पाना इसका, यह कलियुग तो विनाश करे।।
ज्यों सागर में भटका पंछी, ठौर जहाज में ही पाये। उसका आसरा लेकर के, वह सागर पार ही हो जाये।।
इसी विधि तितीषु हम, है ब्रह्मा जी ने कृपा करी। भव सागर पार कराने को, है आपका सम्पर्क दिया।।
धर्म रक्षक ब्राह्मण भक्त, योगेश्वर कृष्ण निज धाम गये। आप ही हमें बताइये, अब धर्म यह किसकी शरण जाये।।

२) भगवान का स्वरूप

श्री राधा रमण गिरिधारी, हमको इक ठौर तुम्हारी। नहीं अपना कुछ भी यहां प्रभु, हो जीवन धन मम तुम ही।।

व्यासजी बोले,

शौनकादि ऋषियों के, जब उसने यह प्रश्न सुने। पुलकित हुए उग्रश्रवा, रोमहर्षण के पुत्र जो थे।।
इस मंगलमय प्रश्न के, उत्तर में वह यूँ बोले। शौनकादि ऋषियों को, प्रवचन वह फिर करने लगे।।

सूतजी बोले,
श्री शुकदेव थे नन्हें शिशु, नहीं यज्ञोपवीत भी था हुआ। उसी समय एकाकी बाल, संन्यास हेतु घर से निकला।।
विदीर्ण हृदय हुए वेदव्यास, आर्त हो यूँ पुकारा उसे। हे प्रिय पुत्र हमें छोड़कर, कहाँ वत्स हो जा रहे।
आत्म रूप में सबमें बसे, शुकदेव व्याप्त थे कण कण में। पिता को उनकी ओर से, दिया उत्तर वन के वृक्षों ने।।
सर्वभूत हृदयस्थ जो, ऐसे शुक मुनि की महिमा अपार। उनके श्री चरणारविन्द में, नमन करूँ मैं बार बार।।

अति गुह्य पुराण यह, सब श्रुतियों का सार है। स्वरूप का अनुभव निहित यहाँ, भागवत परम रस आप है।।
डूब रहे भवसागर में, अज्ञान तिमिर में रहे जो खो। जो इससों तरना चाहें, यह उनके लिये नव ज्योति हो।।
अध्यात्म तत्त्व यह दर्शाये, ऐसा प्रकाश स्तम्भ यह हो। गहन तिमिर में जीवन की, नाव को पार लगाये जो।।
ऐसे जीवों पर करुणा कर, है व्यास सुत ने इसे कहा। महामुनियों के भी हैं जो गुरु, श्री शुकदेव की शरण पड़ा।।

सर्वश्रेष्ठ अवतार जो, मनुज रूप धर कर आये। ऐसे नर नारायण के, श्री चरण में सीस झुकाकर के।
सरस्वती देवी के फिर, चरण में नमस्कार करें। श्री व्यास को हृदय में धर, उनको भी पुन: नमन करें।।
फिर पाठ करें, श्री भागवत का, जो सब विकार ही जीत ले। ऐसी महिमा है इसकी, आन्तर बाहर यह स्वच्छ करे।।
हे ऋषिगण जग कल्याण को, बहु सुन्दर यह प्रश्न किया। श्री कृष्ण से है सम्बन्धित यह, है प्रश्न यह आत्म शुद्धि का।।

है परम धर्म वही जीव का, जिससे भक्ति का जन्म हो। निरन्तर ही जो बनी रहे, वह पूर्णतय: निष्काम हो।।
परमानन्द प्रभु को पा, हृदय फिर कृत कृत्य हो। प्रभु प्रेम से छका रहे, फिर भक्ति का वहाँ नृत्य हो।।
जिस पल श्री कृष्ण में भक्ति हुई, अनन्य प्रेम से चित्त जुड़ा। निष्काम ज्ञान वैराग्य का, अविर्भाव हो जायेगा।।

अनुष्ठान किये निज धर्म का, अनुराग यदि वहां न उपजा। भगवान की श्री लीलाओं का, रस वहाँ गर नहीं भरा।।
तो यह धर्म कर्म सारा, केवल श्रममात्र रह जायेगा। सब साधन करता हुआ भी जीव, वहीं का वहीं रह जायेगा।।
नहीं सार्थकता धर्म की, अर्थ प्राप्ति के लिये। धर्म का फल तो मोक्ष है, जिस कारण सब धर्म किये।।
प्रयोजन इस अर्थ का, केवल धर्म कमाना है। नहीं भोग विलास के पीछे भाग, व्यर्थ यह जन्म गँवाना है।।

भोग विलास और विषय सभी, नहीं इन्द्रिय तृप्ति के साधन। उनका तो है काम एक, बस ज्यों त्यों हो जीवन यापन।।
इस जीवन का लक्ष्य एक, है परम तत्त्व की जिज्ञासा। कर्म काण्ड में भूला तू, क्यों करे स्वर्ग की अभिलाषा।।
ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से, रहित है जो अखण्ड तत्व। तत्व वेत्ता जन उसे, ही तो कहते परम तत्व।।
कोई कहे ब्रह्म परमात्मा, भगवान कही के पुकारे कोई। सार तत्व तो एक है, नहीं शब्दों का वहाँ भेद कोई।।

मुनिजन हृदय में धर श्रद्धा, करें श्री भागवद् कथा श्रवण। इस श्रवण से वह पायें, ज्ञान वैराग्य और भक्ति धन।।
इस राही ही अनुभव हो, परम तत्त्व परमात्म घन। इसके द्वारा ही मिलें, स्वरूप है जिनका परमानन्द।।
निज आश्रम और वर्णानुकूल, अनुष्ठान धर्म का जो करें। पूर्ण सिद्धि इसी में हो, तुष्टित श्री हरि हो जायें।।

इस कारण ही यह कहें, मन एकाग्र यह चाहिये। भक्त वत्सल श्री हरि, को ही नित्य ध्याइये।।
श्रवण कीर्तन ध्यान से, आराधन करना चाहिये। है कर्म ग्रन्थि यह अति जटिल, खोल विवेक सों पाइए।।

भगवद् चिन्तन की खड्ग से, इक पल में उसको काट सकें। उनकी लीला कथाओं में, फिर कौन जीव प्रेम न कर सके?

हे ब्राह्मण जन तीर्थादि से, मिले फल महत्सेवा का। फिर कहीं श्रवण में चित्त यह टिके, उत्पन्न फिर हृदय में हो श्रद्धा।।
तत्पश्चात् जिज्ञासा उठे, सुनने को फिर हरि कथा। श्री कृष्ण कथा श्रवण कीर्तन, हैं दोनों ही पावन कर्ता।।
कथा श्रोताओं के हृदय, आकर होते स्थित हरि स्वयं। पाप वासना नष्ट करें, वह भक्तों के नित्य सुहृद् स्वयं।।
श्री भागवद् या भक्तों के, सेवन से जब नष्ट हों पाप। तब पावनकर कृष्ण प्रति, प्रेम हृदय में जाये जाग।।

रज और तम से जो जागें, काम लोभ आदि सब भाव। शान्त ही यह सब हो जायें, चित्त इनसों रहित हो आप।।
निर्मल मन फिर हो जाये, सत्त्वगुण जब जाये जाग। ऐसा तब ही हो पाये, जब उदय हो जीव का भाग।।
भक्ति के प्रसाद से, सब आसक्ति जब मिट जाये। ऐसे प्रसन्नह मन में तब, भागवद् अनुभव स्वत: हो जाये।।

अपने में ईश्वर तत्व का, इस प्रकार जब दर्शन हो। सब हृदय ग्रन्थियाँ खुल जायें, सब संशय तब छेदन हो।।
इतना सब हो जाने पर, कर्म बन्धन क्षीण हों। बुद्धिमान तो नित्य निरन्तर, प्रेम भक्ति में मग्न हों।
श्री कृष्ण प्रेम मदमाते वह, नित्य आनन्दित वह रहें। इस भक्ति के प्रसाद में, आत्म आनन्द ही वह पायें।।

त्रैगुणी है प्रकृति, जिन्हें सत्व रज और तम कहें। इनके आसरे एक तत्त्व, विभाजित हो त्रि रूप धरे।।
उत्पत्ति स्थिति और प्रलय, इनके ही आसने होते हैं। ब्रह्मा विष्णु और महेश, भिन्न नाम वही धरते हैं।।
इनमें भी जीवों के है, परम कल्याण का हेतु एक। सतोगुण का स्वरूप जो, श्री हरि ही हैं स्वयं एक।।

पृथ्वी का विकार ही काष्ठ है, उसका विकार है धूम्र श्रेष्ठ। उससे भी सूक्ष्म रूप कहें, धूम्र से भी है अग्नि श्रेष्ठ।
वेदोक्त यज्ञ याग से, गतिदे अग्नि ही है श्रेष्ठ। इसी विधि गुण की कहें, है तम से रजोगुण श्रेष्ठ।।
हरि से सम्पर्क करे सतोगुण, इस कारण वह रज से श्रेष्ठ। त्रैगुण में सतोगुण ही, जान लो है सर्वश्रेष्ठ।।

पुराकाल में मुनिजन जो, निज कल्याण साधते थे। शुद्ध सतोमय विष्णु को, ही तो वह अराधते थे।।
आज भी जो जन उनके सम, विष्णु के उपासक हैं। उनका ही अनुसरण करें, जो निज कल्याण के भाजक हैं।।
जो जन इस भव सागर से, पार उतरना चाहते हैं। दोषदृष्टि से रहित हैं वह, न परनिन्दा वह करते हैं।।
भैरव आदि तमोगुण और, रजोगुण वह न भजते हैं। सतोगुणी प्रभु विष्णु और, उनके अंश को भजते हैं।।

जिनके स्वभाव में रजोगुणी, या तमोगुणी अंश प्रधान है। धन ऐश्वर्य सन्तान की, लालसा ही वा काम है।।
वह भूत पितर औ प्रजापति, की उपासना करते हैं। है वा सम ही स्वभाव इनका, उनके समान विचरते हैं।।
सब वेदों का तात्पर्य कृष्ण, सब यज्ञों का है लक्ष्य वही। सब कर्मों की पराकाष्ठा वह, है योग का भी हेतु वह ही।।

सम्पूर्ण ज्ञान ब्रह्म स्वरूप, कृष्ण तलक ले जाये है। तप इस कारण करें तपी, कृष्ण प्रसन्न हो जाये हैं।।
चरम लक्ष्य सब धर्मों का, श्री कृष्ण को ही पाये हैं। सब गतियां श्री कृष्ण के, चरणों में ही समाये हैं।।
प्रकृति और वा गुणों से, सर्वथा हैं अतीत वे। फिर भी गुणमयी माया से, सृष्टि की रचना करें।।
सर्ग के आदि में माया से, ही संसार की रचना की। प्रपंच दृष्टि से माया कहें, है तत्त्व दृष्टि से नहीं नहीं।।

तीनों गुण उस माया का, विलास ही तो है कहें। इन सबसे परे हैं वह, पर माया में ही विचर रहे।।
पूर्ण आनन्द विज्ञान घन, माया में माया से दीखें। हैं माया परे वह आप स्वयं, पर माया में बद्ध से दीखें।।
वास्तव में ज्यों एक रूप, अग्नि है भिन्न सी दर्शाये। भिन्न रूप जो लकड़ी का, वही रूप धरती जाये।।
इसी विधि आत्म रूप, सबमें बसे वह एक है। भिन्न नाम और रूपों में, लागे वह ही अनेक है।।

इन्द्रिय तन्मात्रा अन्त:करण, गुणों के सब विकार हैं। इन सब द्वारा विविध योनि का, आप करे निर्माण है।।
भिन्न जीवों के रूप में, चेतना बन वह आप बसें। उन योनि अनुरूप ही, विषयों का उपभोग करें।।
सब लोकों को आप रचें, फिर सब जीव भी स्वयं बनें। देवता पक्षी पशु मनुज, बनकर लीला अवतार धरें।।
सतोगुण के द्वारा ही, सब जीवों का पोषण करें। और तमोगुण के द्वारा, संहार भी सबका आप करें।।

३) भगवान के लीला अवतार

सृष्टि के आदि काल में, लोक निर्माण संकल्प किया। इच्छा के उत्पन्न होते ही, महातत्व से पुरुष रूप रचा।।
उस रूप में दस थीं इन्द्रियाँ, इक मन भी था वहाँ भरा। पंच महाभूतों के संग, यह हुईं सोलह कला।।
कारण भूत था जल सिन्धु, हुई योग निद्रा की विस्तृति। नाभि क्षेत्र सों प्रकटा कमल, उस कमल में बैठे ब्रह्मा जी।।
सब प्रजापतिन् के मुखिया वह, सबके हैं वह अधिपति। सारी सृष्टि जो दीख रही, हैं प्रजापति श्री ब्रह्मा की।।

विशुद्ध सतोमय श्रेष्ठ रूप, विराट रूप प्राकट्य यह। इसके ही अंग प्रत्यंग में, सब लोकों का संकल्प भये।।
दिव्य दृष्टि से योगी जन, उस रूप का दर्शन पाते हैं। इस विराट के दर्शन पा, वह धन्य-धन्य हो जाते है।।
सहस्त्र पाद भुजा जाँघें, सहस्त्र मुख सहस्त्र सीस। सहस्त्र श्रोत्र नेत्र नासिका, है अत्यंत विलक्षण रूप।।
हजारों मुकुट वस्त्र कुण्डल, आभूषण हैं धारण किये। ऐसे अलौकिक रूप में, वह सदा उल्लासित हो रहे।।

यही हैं श्रीमन्नारायण, पुरुष रूप जिसे कहते हैं। अक्षय कोश अवतारों का, सब बीज यहाँ पे रहते हैं।
अंश से इनके देव पशु, पक्षी मानव सब योनि धरें। स्वयंभू आप ही प्रकट हों, इन सबका रूप धारण करें।।
उनने ही सबसे पहले, कौमार सर्ग को स्वयं रचा। सनक सनन्दन सनत्कुमार, और सनातन रूप धरा।।
अखण्ड कठिन ब्रह्मचर्य का, उन ब्रह्मा ने पालन किया। हैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह, ब्रह्म विद्या उपदेश दिया।।

दूजी बार वह यज्ञपति, प्रकटे विश्व कल्याण को। जब डूबी धरा रसातल में, सूकर बने उसके उद्धार को।।
तीजी बार ऋषियों में, नारद जी कारूप धरा।। उस अवतार में सात्वत, तंत्र का उपदेश दिया।।
कर्मों से कर्म कैसे कटें, इस रहस्य को प्रकट किया।। श्री नारद ने जगत् को, इस सबका फिर ज्ञान दिया।।

नर नारायण रूप में, तत्पश्चात् वह हुए प्रकट। इस रूप में ऋषि बन, किया उन्होंने कठिन तप।।
सिद्धों के स्वामी कपिल, मुनि, पंचम फिर अवतार हुए। तत्त्वों को जो जान ले, सांख्य शास्त्र को प्रकट किये।।
अनुसूया ने जब माँगा वर, षष्टावतार का रूप धरा। अत्रि ऋषि का पुत्र बनी, दत्तात्रेय रूप में वह प्रकट हुये।।
अलर्क प्रल्हादादि को, ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। छ: अवतारों का यहाँ, तक है वर्णन कर दिया।।

सप्तम अवतार की बात सुनो, प्रजापति रुचि की पत्नी से। अकूति जिनका नाम था, वह यज्ञ रूप स्वयं प्रकटे।

यामादि देव स्वपुत्रों से, मनवन्तर की रक्षा किये। इस विधि श्री हरि ने, सप्तम रूप धारण किये।।
फिर राजा नाभि की पत्नी, मेरु देवी के गर्भ से। अष्टम अवतार प्रकट हुआ, ऋषभ देव के रूप में।।
इस रूप में आकर के सबके लिये वन्दनीय जो। उस रहस्य को प्रकट किया, परमहंसों का मार्ग जो।।

फिर सब ऋषियों ने मिलकर, प्रार्थना जब उनसे करी। नवम बेला उन पृथु रूप धर, धरती पर अवतार ली।।
समस्त औषध पृथ्वी की, इस रूप में आ दोहन करी। इस कारण अवतार यह, था सबके लिये अति हितकारी।।
चाक्षुष मन्वन्तर अन्त में, त्रिलोकी का जब लय हुआ। मत्स्य रूप धर कर, दशम अवतार प्रकट हुआ।।
फिर वैवस्वत मनु अगले, मन्वन्तर के जो अधिपति। पृथ्वी नौका पर बैठाकर, उसकी आपने रक्षा की।।

दैत्य देव मिलकर दोनों, समुद्र को जब थे मथ रहे। एकादश अवतार में, धर कच्छप रूप वह प्रकट हुये।।
उस सागर मन्थन हेतु, जब मथनी का प्रश्न उठा। मंद्राचल को मथनी बना, निज पीठ पर धारण किया।।
ले अमृत वो आ प्रकटे, धनवन्तरी के रूप में। सागर मन्थन का प्रसाद, मिला यह द्वादश रूप में।।
फिर मोहिनी रूप धर, दैत्यों को मोहित किया। देवों को अमृत पान कराने, त्रयोदश यह अवतार लिया।।

चतुर्दश रूप में उन्होंने, श्री नरसिंह बन अवतार लिया। हिरण्यकश्यिपु अपने को ही, उस समय भगवान था मान रहा।।
चटाई बनाने के लिये, जैसे कोई सींक हो चीर रहा। उसी विधि नरसिंह बनी, निज नख उसकी छाती को चीरा।।
वामन रूप फिर धर कर, प्रकटे वह बलि के यज्ञ में। त्रिलोकी सारी लेने को, पृथ्वी खण्ड त्रै पद माँगे।।

षोड्ष अवतार के रूप में, परशुराम प्राकट्य हुआ। ब्राह्मण विरोधी देखे राजा, तो महा कोप उनमें उभरा।।
धरती क्षत्रिय विहीन करूँ, ऐसा कठिन था प्रण लिया। इकीस बार इस पृथ्वी को, क्षत्रियों से विहीन किया।।
सत्यवती के गर्भ से, पराशर ऋषि के बीज ने। व्यास बन कर जन्म लिया, सप्तादश अवतार ने।।
उस काल में लोगों की, अल्पमति उन देख ली। वेद रूपा वृक्ष की, अनेकों ही शाखायें करीं।।

फिर देवता गण के काज करन, वह राजा रूप बनी आये। रामावतार को धारण कर, बहु लीला वह दर्शाये।।
उस रूप में सेतु बाँध कर, रावण वध भी कर दिया। वह जीवन बहु वीरता की, लीलाओं से था भरा।।
धरती का भार उतारन को, उन्नीस और बीसवाँ रूप धरा। यदुवंश में श्री बलराम और श्रीकृष्ण का नाम लिया।।

तत्पश्चात् जब धरती पर, कलिकाल छा जायेगा। मगध देश में उस समय, अवतार नया फिर आयेगा।।
देंवों के द्वेषी दैत्यों को, वह मोहित करने आयेगा। अजन पुत्र फिर बनकर के अवतार बुद्ध का आयेगा।।
बहुत काल के बीते जब, कलियुग का अन्त निकट होगा। राजा जब प्रजा को लूटेंगे, नहीं धर्म का नाम कहीं होगा।।
तब जगत् के रक्षक श्री विष्णु, फिर रूप धरी कर आयेंगे। विष्णुयश नामक ब्राह्मण धर, कल्कि अवतार धर आयेंगे।।

अथाह सरोवर से जिस विध, सहस्त्रों नाले बहते हैं। त्यों ही सत्वनिधि श्री हरि, अवतार यह धरते रहते हैं।।
ऋषि मनु देवता प्रजापति, मनु पुत्र महान् जो। भगवान के ही सब अंश हैं, सबके सब शक्तिवान् जो।।
यह सब तो भगवान के, अंशमात्र अवतार हैं। श्री कृष्ण तो स्वयं ही, साक्षात् हरि आप हैं।।
दैत्यों के अत्याचारों से, जब जब जन पीड़ित हो जायें। युगों युगों में तब कभी, वा रक्षण को प्रभु आप आयें।।

एकाग्र चित्त हो जो कोई नर, प्रात: और सायं नियम से। इस दिव्य कथा रस का, प्रेम भक्त से पान करे।।
श्री हरि के दिव्य जन्मों की, है कथा गोप्य रहस्यमयी। सब दु:ख उसके यह हर ले, जिसने भी इसकी शरण गही।।
रूप रहित चिन्मय प्रभु का, यह स्थूल प्रकट जो रूप है। वा माया के महतत्त्वों में, उनमें कल्पित यह रूप है।।

बादल ज्यों वायु के आश्रित, धूसरपन धूल में रहता है। अल्प बुद्धि जो जीव है, कल्पना वह करता रहता है।।
बादल को आकाश में, धूलि वायु में है देखे। वैसे ही अविवेकीजन, जगत् का आरोप करें।।
सबके साक्षी आत्म में वे, स्थूल दृश्य रूप देखें। है आधार जो इस सबका, उस आत्म को विस्मृत करें।।

इस स्थूल रूप के पीछे छिपा, सूक्ष्म अव्यक्त जो रूप है। निराकार दर्शन रहित, अतीन्द्रिय वह रूप है।।
आत्म के संयोग से, यही जीव कहलाता है। इस जग में बार बार, यही जन्म रे पाता है।।
यह सूक्ष्म और स्थूल रूप, आरोपित हैं आत्म में। अविद्या ही वह कारण है, जिससे भासें यह आत्म में।।
आत्म स्वरूप के ज्ञान सों, जिस पल भ्रम यह दूर हो। तत्क्षण ही पर ब्रह्म का, वहाँ साक्षात्कार हो।।

जब हरि की बुद्धि रूपा, माया से निवृत्त होता है। परमानन्दमय हो जीव, स्वरूप प्रतिष्ठित होता है।।
जिसका कोई जन्म और कर्म नहीं, जो हृदयेश्वर इन सबसे परे। दिव्य जन्म औं कर्म की उनके, तत्त्वज्ञानी जन बात करें।।
उनके अलौकिक जन्म कर्म, वेदों के गुह्य रहस्य कहें। अकथनीय है स्वरूप जो, भाषा क्या उसकी कह सके?

निष्पाप दिव्य यह लीला है, उस लीला की क्या बात कहें। सृष्टि का सृजन पालन पोषण, फिर इसका वे संहार करें।।
सब अपने आप में आप करी, इन सबसों वह परे रहें। हर प्राणी के हिय बसी, नियमन इन्द्रिय औ मन का करें।।
इन्द्रिय मन से सब ग्रहण करी, लिप्त किसी सों न होयें। परम स्वतंत्र वह आप हैं, कोई विषय उन्हें न बाँध सकें।।

जादूगर या नट जग में, ज्यों करे अनेकों करामात। उसके वचन संकल्प की, साधारण जन न समझें बात।।
उसी विधि निज वेद वाक्, और नाना विधि संकल्प से। नाना नाम औ रूपों की, महिमा न कोई समझ सके।।
बहु तर्क वितर्क और युक्ति से, बुद्धिहीन न जान सके। उसकी लीला को बुद्धिहीन, नहीं किसी विधि पहचान सके।।

चक्रधारी हरि की शक्ति, और पराक्रम अनन्त हैं। कोई थाह न उनकी पा सके, वह प्रेम सिन्धु अनन्त हैं।
सारे जगत के निर्माता, पर इस सबसे वह हैं परे। उनका स्वरूप उनकी लीला, का पार न कोई पा सके।।
वही जाने निश्छल हृदय से, सेवे उनके श्री चरण जो। अहर्निश जिस हिय में, उन श्री चरणों का चिन्तन हो।।

बड़भागी हैं ऋषिगण आप, धन्य आपका मनुज जन्म। इस तर को धारण करके, जगत् सार पाये श्री कृष्ण।।
आत्मभाव से सबमें बसे, सबके हृदयों में विराज रहे। उन श्री कृष्ण से अनिर्वचनीय, अनन्य प्रेम जिसका रहे।।
भीषण भव भय के चक्रवात् में, वह कबहुँ भी नही फँसे। इस जन्म मरण के चक्र में, वह प्राणी फिर नहीं पड़े।।

वेदों सम ही परम पावनी, भागवत् पुराण को है रचा। श्री वेदव्यास ने श्री हरि के, चरितों से है परिपूर्ण किया।।
कल्याणकारी यह महापुराण, सबकी ही प्रशंसा योग्य जो। आत्म ज्ञानिन् के शिरोमणि, निज सुत श्री शुकदेव को।।
यह ग्रन्थ उन्होंने पठाया है, उन राही जग को सुनाया है। कलिमल को धोने का हेतु, उन साधन यह बनाया है।।

सब वेदों और इतिहास का, सार है इसमें भर दिया। श्री शुकदेव के श्रीमुख से, परीक्षित ने इसको सुना।।

राजा परीक्षित उस समय, बैठै थे गंगा तट पर। परम ऋषियों से घिरे हुए, आमरण अनशन व्रत लेकर।।
धर्म ज्ञान आदि संग ले, परम धाम श्री कृष्ण गये। तब इस कलियुग में जो लोग, अज्ञान तिमिर से अन्धे हुये।।
उनका अज्ञान मिटाने को, प्रकाश में उनको लाने को। भगवद्सूर्य यह हुआ उदय, चहुँ ओर रश्मि फैलाने को।।
हे शौनक जब शुकदेव, इस कथा का गान थे कर रहे। तेजस्वी महाज्ञानवान्, इसका आख्यान थे कर रहे।।
मैं भी उस सभा में बैठा था, उनका कृपा भाजन बना। उनकी अनुमति लेकर ही, श्रवण इसका कर सका।।
जैसा मेरा अध्ययन हुआ, मेरी बुद्धि ने जस समझा। उसी मति अनुसार मैं, आपको अब सुनाऊँगा।।

४) महर्षि व्यास की व्याकुलता

उस दीर्घकालीन सत्र में, ऋषिवर जो सम्मिलित हुए। विद्यावयोवृद्ध कुलपति, ऋग्वेद के ज्ञाता शौनक थे।।
श्री सूत की यह बातें सुनकर, उन्होने प्रशंसा उसकी की। पुन: सूत को शौनक ने, ज्ञानपूर्वक बात कही।।
शौनक ऋषि बोले,
वक्ताओं में अति श्रेष्ठ आप, हमारा अज्ञान भी हरो जरा। हे सूत आप बहु बड़ भागी, इस महापुराण का श्रवण किया।।
श्री शुक के मुख से जो सुनी, भगवान की पुण्यमयी गाथा। कृपा करी के सुनायें हम, करें शान्त हृदय की तप्त व्यथा।।
किस युग में किस स्थान पे, ले क्या प्रयोजन कथा हुई। मुनिश्रेष्ठ द्वैपायन ने, किस प्रेरणा से यह कार्य किया?
परमहंसों के हेतु जो, इस महापुराण को रच दिया। किससे प्रेरित होकर उन्होने, रच दी यह महा संहिता?

उनके पुत्र भी शुकदेव, समत्व स्थित हैं महायोगी। भेदभाव से वह रहित, भ्रम निद्रा त्याग जगे योगी।।
एकाग्र भाव से परम में, हर पल स्थित वह रहते हैं। वास्तविकता उनकी बिन जाने, कोई अज्ञ मूढ़ उन्हें कहते हैं।।

संन्यास हेतु जब शुकदेव, घर त्यज कर वन को चल दिये। उस समय श्री व्यास भी, पुत्र के पीछे हो लिये।।
निर्वस्त्र कुछ बालायें वहाँ, जल में स्नान थीं कर रहीं। अवधूत शुक को देख के भी, वस्त्र न उनने धारण किये।।
पर वस्त्रधारी श्री व्यास को, जब देखा उन्होंने आते हुये। तत्क्षण लज्जा आतुर हो, उन्होंने धारण वस्त्र किये।।
उनका आचरण यह देख कर, श्री व्यास को महा आश्चर्य हुआ। स्तब्ध हुए श्री व्यास ने, उनसे इसका कारण पूछा।।
उन ज्ञानवती बालाओं ने, उत्तर में उनसे कहा। आपकी दृष्टि में तो अभी, लिंग भेद है बना हुआ।।
पुत्र आपके शुकदेव, इस भेद दृष्टि से हुए परे। नारी पुरुष के तन में कभी, अन्तर उन्हें न दीख सके।।

जाकर कुरु जांगल देश में, हस्तिनापुर जब वह पहुँचे। अपने में आप वह मस्त थे, गूंगा बन जड़वत विचर रहे।।
इस बाह्य आचरण से, थी वास्तविकता उनकी छिपी। ऐसे में वहाँ के लोगों ने, पहचान उनकी कैसे करी?
पाण्डव कुल के राजर्षि, परीक्षित को कैसे ज्ञान हुआ? मौनी शुकदेव के संग उनका, कैसे यह संवाद हुआ?
इस दिव्य वार्तालाप का, ही तो यह परिणाम है। इन दोनों के बीच ही तो, रचित यह महापुराण है।।

श्री शुकदेव गृहस्थिन के, घर को तीर्थ बना देवें। कुछ क्षण ही वा द्वार पे, आप खड़े वह हो कर के।।
नहीं टिकें वहाँ पे वह, हैं अवधूत वह नियम बंधे। जितने पल में जाय गाय दुही, बस उतने पल ही टिक सकें।।

श्री सूत जी हमने सुना, अभिमन्यु पुत्र परीक्षित यह। भगवान कृष्ण में चित्त धरे, उनके यह प्रेमी भक्त थे।।
उनके जन्म और कर्म भी, हैं महा आश्चर्य अपने में लिये। कृपा करी हे सूत आप, हमें भी उनका परिचय दें।।

पाण्डव वंश के तिलक वह, अति गौरवमय सम्राट थे। त्यज्य राज्य अनशन व्रत ले, क्यों गंगा तट पे आ बैठे?
थे ऐसे वीर और पराक्रमी, शत्रुगण त्रास वा माने थे। बहु धन लाकर वा चरण चढ़ा, धन्य धन्य निज माने थे।।
उसने दुस्त्यज राज्यलक्ष्मी, त्यागन की क्योंकर सोची? निज प्राणों का उत्सर्ग करन्, क्यों उसने अनशन व्रत ली?

अपने हर काज क्रिया के लिये, जो श्री हरि के आश्रित हैं। सबका अभ्युदय और कल्याण, समृद्धि ही वा प्रयोजन है।।
सर्वलोक हित कारण ही, करें वह धारण जीवन है। स्वार्थ का नहीं कोई काम कहीं, ऐसा निष्काम वा जीवन है।।
वह तन तो केवल दूजों के, हित अर्थ था वरत रहा। फिर विरक्त होकर उनने, परित्याग उसका क्यों किया?
वेदशास्त्र को छोड़कर, अन्य सब ही विषयों के। हैं पारदर्शी विद्वान आप, हम आज आपके शरण पड़े।।
पूछा हमने जो प्रश्न आज, कृपा करी के उत्तर दें। महाज्ञानी हे सूत जी, संशय हमरा दूर करें।।

सूतजी बोले,
वर्तमान चतुर्युग की, तुमसे अब हम बात करें। उनमें जो आया तृतीय युग, उस द्वापर की बात करें।।
बहुभाग्यवती वसुकन्या, सत्यवती के गर्भ से। पराशर पिता का बीज पा, योगीराज व्यास जन्में।।
भगवान के ही वह अंश थे, उनका ही कला अवतार हुआ। श्री हरि ने मानो स्वयं, श्री कृष्ण द्वैपायन रूप धरा।।
इक दिन सूर्य उदय बेला, सरस्वती में स्नान किया। आन्तर मौन थे ध्यान मग्न, एकाकी स्थल आसन था लगा।।

थे भूत भविष्य के वह ज्ञाता, दृष्टि उनकी अचूक थी। जिसे लोग जान ही न पायें, वह काल गति उन्होने देखी।।
इस युग में धर्म संकीर्णता, भौतिक शक्ति का ऱ्हास करे। श्रद्धा विहीन जो लोग हों, वह शक्ति रहित ही हो जायें।।
बुद्धि भी ऐसी म्लान हो, कर्त्तव्य जान ही न पायें। इस युग के प्रभाव से, अल्प आयु तन की भये।।
भाग्यहीनता देख ली, मुनिवर ने दिव्य दृष्टि से। करुणा ही सहज स्वभाव था, हृदय आर्द्र हुआ करुणासे।।
कैसे हित हो सब वर्णों का, इसपर उन्होने विचार किया। कौन ऐसी विधि बने, कल्याण जो हो सब आश्रमों का।।

वेदों में जो चतुर्होत्र, कर्मों का आदेश दिया। चित्तशुद्धि का साधन वही, ऐसा उन्होने आख्यान किया।।
इसको ध्यान में रखकर के, उन वेदों का विस्तार किया। मानव कल्याण को हिय में धर, उन्हें चार भाग में बाँट दिया।।
ऋक् यजु साम अथर्व, श्री व्यास ने इनको पृथक् किया। यह चारों वेद उद्धृत करी, पंचम इतिहास पुराण कहा।।
ऋग्वेद के ज्ञाता पैल, साम गान के जैमिनी। यजुर्वेद के एकमात्र, स्नातक वैशम्पायन मुनि।।

अथर्ववेद में अति प्रवीण, दरुणनन्दन सुमन्तु मुनि। थे मेरे पिता रोमहर्षण, इतिहास पुराण में अग्रणी।।
इन ऋषियों ने अपनी अपनी, शाखा को और विस्तृत किया। एक एक शाखा को ले, विभक्त अनेकों में किया।।
शिष्य प्रशिष्यों ने इस विध, अनेकों शाखायें कर दीं। उनके शिष्यों द्वारा भी, वेदों की अनेकों शाख बनीं।।
स्मरण शक्ति की क्षीणता, निज दिव्य दृष्टि से देख ली। अल्पबुद्धि औ मूढ़मति, जन पर श्री व्यास ने कृपा करी।।
ऐसा विभाग किया वेदों का, सब लोग ही धारण कर सकें। स्मरण शक्ति के अभाव में, वंचित वेदों से नहीं रह सकें।।

कौन लोग जो वेद श्रवण के, अधिकारी न हो पायें। स्त्री शूद्र द्विजाति पतित, यह तीनों वेद न सुन पायें।।
इस कारण कल्याण कर, कर्म प्रधान जो शास्त्र कहें। उनका अनुसरण भी करने में, प्राय: यह सब भूल करें।।
यह सोची श्री व्यास ने, कल्याण हेतु यह उपाय किया। कृपा करी के महाभारत के इतिहास को रच दिया।।

प्राणीमात्र के हित में ही, आजीवन शक्ति सब दे दी। फिर भी ऋषिवर श्री व्यास को, पूर्ण सन्तुष्टि नहीं हुई।।
खिन्नमनी वह एक दिन, सरस्वती तट पर पहुँचे। एकान्त स्थल पे बैठकर, धर्मज्ञ व्यास यह विचार किये।।
मन ही मन में सोच करी, अपने आप से वह बोले। अन्तर्मन के भाव को, अपने प्रति ही कहने लगे।।

व्यासजी बोले,
जीवन भर निश्छल भाव से, आचरण धर्म का मैंने किया। साथ ही ब्रह्मचर्यादि, व्रतों का भी अनुष्ठान किया।।
वेद गुरुजन और अग्नि, का सदा सम्मान किया। उनकी आज्ञा पालन में, ही जीवन पूरा बीता।।
महाभारत की रचना करके, वेदों का अर्थ भी खोल दिया। स्त्री शूद्र आदि सबको, वा कर्म धर्म का ज्ञान दिया।।
ब्रह्म तेज से यद्यपि मैं, सम्पन्न और सामर्थ हूँ। फिर भी अतृप्त काम सा हूँ, हुआ खिनमनी असमर्थ हूँ।।

निश्चित ही यह सब करके भी, कोई न्यूनता रह गई। भागवद् प्राप्ति अर्थ जो, वह धर्म निरूपण नहीं करी।।
वही साधन तो परम हंस, श्री मुनिजन के हैं प्रिय। श्री हरि के मनभावन वह, उनको भी हैं वह अति प्रिय।।
हो न हो इस कारण ही, हूँ खिन्न मनी मैं हो रहा। सब करके भी अभी तक, तृप्ति का अनुभव नहीं हुआ।।
ऐसा सोचकर श्री व्यास, जब उदास थे हो रहे। उसी समय उस आश्रम में, श्री नारद जी आ पहुँचे।।

व्यास देव आसन त्यजा, सन्मुख देख करी उन्हें। सम्मान उनका करने को, वहीं पे वह हो गये खड़े।।
देवों के भी पूज्य हैं जो, ऋषि नारद का वन्दन किया। विधिवत् ही उन देवर्षि, का आराधन पूजन किया।।

सूतजी बोले,
तत्पश्चात् श्री नारद जी, वीणा हाथ में लिये हुए। सुख पूर्वक़ श्री व्यास के, निकट ही वह आ बैठे।।
परम यशस्वी देवर्षि, मन्द मन्द मुस्काने लगे। पास ही बैठे व्यास देव को, वह इस विधि कहने लगे।।

नारद बोले,
हे महाभाग श्री व्यास जी, जग कल्याणकर कर्म किये। आपके कर्म और चिन्तन से, क्यों तन मन न सन्तुष्ट हुए?
जिज्ञासा जो आपकी, भली भाँति परिपूर्ण हुई। महाभारत की रचना जो, सब आश्चर्यों से भरी।।
धर्मादि पुरुषार्थ सब, आपने उसमें भर दिया। लोक कल्याण के हेतु ही, आपने सब यहाँ कह दिया।।

इनसे परे जो सनातन ब्रह्म, उसका भी खूब विचार किया। चिन्तन मनन उसका करके, आपने तत्त्व है जान लिया।।
फिर भी आपका मुख म्लान, हे प्रभु व्यास क्यों हो रहा? किस चिन्ता से मन युक्त हुआ, क्यों आज शोक में खो रहा?
व्यासजी बोले,
हे नारद जो कहा आपने, मेरे विषय में ठीक ही है। इतना सब करने पर भी, हृदय तृष्टि से हीन है।।
क्यों ऐसा अब भान हो, सन्तोष मुझे नहीं हो रहा। यह सब रचना करके भी, क्यों मन उदास ही मेरा हुआ।।

ब्रह्मा के मानस पुत्र आप, तब ज्ञान की महिमा अगाध है। आपके चरण पड़ी पूछूँ, किस कारण मन यह निराश है।।

जग के सब गुह्य रहस्यों के, हे देवर्षि ज्ञाता हैं आप। प्रकृति पुरुष के स्वामी जो, हैं पुराण पुरुष के उपासक आप।।
संकल्प मात्र से अपने वह, सृजन स्थिति और लय करें। गुण सों बंधी सृष्टि रचकर, भी वह सबसों असंग रहें।।
सूर्य की भाँति देवर्षि, त्रिलोक में करते आप भ्रमण। सब अन्त:करण के साक्षी आप, सबके आन्तर स्थित प्राणों सम।।
योगानुष्ठान किया मैंने, नियमों का भी पालन किया। पर ब्रह्म और शब्द ब्रह्म, दोनों को है प्राप्त किया।।
इतना सब होने पर भी, जो न्यूनता मुझमें रही। आज कृपा मुझपे करके, आप मुझे बतायें सही।।
नारद बोले,
हे वेदव्यास यह सब करके, नहीं महिमा का कभी गान किया। निर्मल यश का उनके कभी, नहीं आपने पान किया।।
मेरा तो ऐसा मानना है, भगवान तुष्ट गर नहीं हुए। परोक्ष शास्त्र ज्ञान सारे, रह जाते हैं धरे के धरे।।
धर्मादि पुरुषार्थ का, जैसा निरूपण है किया। भगवान कृष्ण की महिमा का, गुणगान क्यों वैसा नहीं किया?

चाहे हो व्याकरण से सजी, महा रस भाव युक्त वाणी। सब अलंकार से आभूषित, हो कर्णप्रिय चाहे वह ध्वनि।।
जगदाधार श्री कृष्ण का, गर यशोगान उस नहीं किया। तो उस वाणी से व्यासदेव, है हमको प्रयोजन क्या?
उच्छिष्ट अन्न ज्यों काक हेतु, अपावन स्थल पे फेंक दें। वा समान उस वाणी से, नहीं काम भक्त का कोई रहे।।
मानसरोवर के जल में, ज्यों कमल दल हों खिल रहे। उन कमल वनों के मध्य में, हंस वृन्द हों विचर रहें।।
वह हंस स्वच्छता छोड़कर, कहीं और न जा पायें। उसी विध चरणारविन्द लोलुप, रमण वहां न कर पायें।।

दूजी ओर हो दोष युक्त, रचना में भी सुन्दर नहीं। पर जिसके हर शब्द में, है भगवद् महिमा सनी।।
उनके शुभ सूचक नामों से, हर श्लोक जहाँ पे अलंकृत है। ऐसी वाणी सब लोगों के, पाप हरन में सक्षम है।।
सत्पुरुष ऐसी वाणी, का ही आश्रय लेते हैं। अहर्निश वा श्रवण गान, और कीर्तन करते हैं।

निर्मल ज्ञान जो मोक्ष को, पाने का निश्चित है साधन। यदि प्रभु प्रेम से रहित हो, तो शोभा रहित है ज्ञानघन।।
फिर कामना पूर्ण कर्म जो, साधन और सिद्धि दोनों में। अमंगलकारक ही वह हैं, जिस भी अवस्था में किये।।
निष्काम कर्म भी जग भर में, यदि प्रभु के अर्पित नहीं किया। बिन प्रसाद उनका पाये, शोभित वह कैसे होगा?

हे मुनिवर श्री व्यास देव, निष्पाप है दृष्टि आपकी। पावन आप और पावनकर, है जग में कीर्ति आपकी।।
सत्य में नित्य निमग्न आप, धैर्य धृति के महाव्रती। जग कल्याण के हेतु ही, विधि ने यह विधान रची।।
अचिन्त्य श्री हरि की लीलायें, स्मरण करें समाधि राह। जीवभूत सम्पूर्ण को, बन्धन से मुक्त जो दें करा।।

भगवद् लीला को छोड़कर, जग में जो जीव कुछ भी करे। किसी इच्छा के आसरे, बहु नाम रूप निर्मित करे।।
उन नाम रूप के भँवर में, वह जीव फँस जाता है। भेदभाव भरी बुद्धि से, वह एकता देख न पाता है।।
ज्यों तीव्र वेग से वायु के, डगमग नौका ही डोल रही। इस वेगवान वायु कारण, वह ठौर कहीं न पा रही।।
वैसे ही चंचल बुद्धि वह, नहीं स्थिर कभी हो पाती है। नाम रूप के भेदभाव में, बार-बार भरमाती है।।

स्वभाव से ही विषयों में रत, हैं संसारी सब भटक रहे। धर्म के नाम पे वे निन्दित, अशुभ कर्म हैं कर रहे।।

सकाम कर्म करने को भी, हवाला शास्त्र का ही वह दें। यह कैसी उलटी बात हुई, यह अनुमति भी उन्हें आप ही दें।।
मूढ़मति अल्पज्ञ जो, शास्त्र को अर्थ रुचि से दें। पूर्ण कथन न मानकर, केवल रुचिकर अनुसरण करें।।
उनका निषेध करने के लिये, शास्त्र ने जो आदेश दिया। भ्रम चक्र में पड़ा जीव, उसको नहीं है मान रहा।।

हरि की महिमा अपार है, कोई सार न उनका पा सके। ज्ञानी कोई विचारवान्, ही तो उनको ध्या सके।।
भवबन्धन सों मुक्त हो, कोई भाग्यवान इस ओर चले। निवृत्त हो इस संसार से, उस परम आनन्द का अनुभव ले।।
जो गुण बंधे विवश नाचें, हैं गुणों के ही अधीन जो। परमार्थिक बुद्धि रहित वह, कल्याण उनका कैसे हो?
ऐसे साधारण जीवों के, कल्याण को हृदय में धार के। श्री भगवान की लीला का, विस्तार सहित वर्णन करें।।

अन्य धर्म सब भूलकर, श्री हरि चरण को जो सेवे। भजन में ही जब चित्त टिके, इसमें परिपक्वता पा जाये।।
इससे पहले ही भग्नग्य से, गर उसका भजन कहीं छुट जाये। क्या उसके जीवन में कहो, अमंगल कभी भी हो पाये?
दूजी ओर प्रभु को भूली, जो केवल निज धर्म ध्यायें। कहो कहो यह आप हमें, कैसा फिर वह फल पायें?

बुद्धिमान तो वह ही है, उस सार हेतु जो यत्न करे। न्यून से न्यून उच्च से उच्च, योनि में भी जो न मिले।।
तिनके से ले ब्रह्म पर्यंत, संसार के सुख तो मिल जायें। बिन कोई चेष्टा किये, ज्यों कर्मगति सों दु:ख पायें।।
कर्मन् के ही फलस्वरूप, समय की गति के फेर से। दु:ख स्वत: ही मिल जायें, सर्वत्र ही स्वभाव से।।

श्री कृष्ण चरण के सेवक जो, वह भव भँवर में नहीं फँसे। भगवान के चरण कमल पकड़ी, वे नित्य वहाँ पे ही रहें।।
ज्यों प्रभु विमुख नास्तिक जो, विपरीत भाव में जीव फँसे। दैव योग बने ऐसा गर, वह फिर न जन्म मरण में पड़े।।
वा स्पर्श के स्मरण मात्र से, हर पल वह पुलकित रहे। उस रस का रसिक वह हो गया, नहीं इक पल को भी छोड़े उन्हें।।

जिनसों हो यह सब जग उत्पन्न, हो स्थित और लय भी उनमें ही। वह ही श्री हरि विराज रहे, समस्त जगत् के रूप में भी।।
सबकुछ होकर वह सबसे परे, कोई नाम रूप न बाँध सके। हैं आप स्वयं ज्ञाता इसके, संकेतमात्र से फिर भी कहें।।

निष्पाप दृष्टि श्री व्यास आप, जानें इस गुह्य रहस्य को। पुरुषोत्तम प्रभु भगवान के, कला अवतार आप ही हो।।
अजन्मा होकर भी प्रभु, जन्म आपने ले लिया। जग कल्याण के हेतु ही, यह है मानुषी रूप धरा।।
इस कारण मैं आज कहूँ, विशेष कार्य सम्पूर्ण करो। श्री हरि की महिमा लीला का, संकीर्तन अब आप करो।।

विद्वान विवेकी नित्य ही, प्रतिपादित सत्य यह करते हैं। जीवन का एकमात्र प्रयोजन, बार बार वह कहते हैं।।
पूर्ण तपस्या वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और स्वाध्याय। ज्ञान और दान महान सब, एक लक्ष्य तक ले जाये।।
है इन सबका एक ही फल, उस तक ही पहुँच पायें। श्री कृष्ण कथा और लीला का, कीर्तन ही किया जाये।।

५) नारद चरित्र

हे मुनिवर अब आपको, अपनी कथा सुनाता हूँ। पूर्व कल्प की बात है यह, गुह्य रहस्य बताता हूँ।।
उस कल्प में पूर्व जन्म में, मैं इक दासी पुत्र था। वेदवादी ब्राह्मण वह थे, जिनकी दासी का पुत्र था।।
वर्षाऋतु में वह योगी, चातुर्यमास थे कर रहे। नित्य भ्रमण वह छोड़कर, एक स्थान पे थे टिके।।
उन सन्तन की सेवा में, मुझको था किया नियुक्त। बचपन से ही कृपा हुई, मुझको यह सौभाग्य मिला।।

मेरी अवस्था शिशु की थी, पर स्वभाव चंचल न था। जितेन्द्रिय था सहज ही, नहीं खेल कूद में ध्यान था।।
सेवा में दत्तचित्त हुआ, आज्ञा पालन नित्य करता था। ब्राह्मण जन की सेवा को, ही अपना लक्ष्य समझता था।।
यद्यपि वह सब येागी जन, समत्व भाव में थे टिके। इस शील स्वभाव को देखकर, इस सेवक पर अनुग्रह किये।।

अनुमति उनकी पाकर मैं, इक बार ही भोजन करता था। उनके जूठन को खाकर, मैं अपना पेट सदा भरता था।।
इस सेवा के प्रसाद से, सर्वथा पाप अभाव हुआ। हृदय भी शुद्ध था हो गया, यह उनकी कृपा से ही हुआ।।
शनैः शनैः मेरी रुचि, पूजन भजन में होने लगी। जैसा वे सब करते थे, अनुसरण उन्हीं की होने लगी।।

हे प्रिय व्यास उनकी महिमा, आपको मैं बतलाता हूँ। कृपा प्रसाद उनसे जो मिला, उसकी कथा सुनाता हूँ।।
श्री हरि की लीलाओं का, नित्य गान वह करते थे। सत्संग सुन नित्य उनका, मम कर्ण भी पावन होते थे।।
श्रद्धापूर्ण हृदय से मैं, श्रवण उनका करता रहा। मनोहारी प्रभु लीला का, इक इक पद मैंने सुना।।
शनैः शनैः प्रियकीर्ति, प्रभु में रुचि मेरी होने लगी। अन्य सभी विस्मृत हुआ, मन प्रभु चरण में खोने लगी।।

प्रभु की मनोहर कीर्ति में, ज्यों ज्यों रुचि मेरी बढ़ने लगी। इनकी लीला का गान सुन, बुद्धि भी निश्चल होने लगी।।
उसके प्रसाद से सत् असत्, जगत् का भान मुझे होने लगा। पर ब्रह्म स्वरूप आत्म में सब, कल्पित माया में दीख पड़ा।।
इसी विधि दो ऋतुओं में, ऋषियों ने कथा का गान किया। शरद और वर्षा दोनों में, श्री हरि का निर्मल यश गान किया।।
प्रेमपूर्ण हृदय से मैं, सुनता था कीर्तन तीनों समय। रज और तम हरणी भक्ति, हुई उत्पन्न हृदय में मेरे।।

मम चित्त में वा अनुराग था, और विनय पूर्ण स्वभाव था। सन्तन की सेवा ने ही, सब पापों को था हर लिया।।
था श्रद्धा से भरपूर हृदय, इन्द्रियों पर भी अति संयम था। मन वाणी और कर्म से, मैं उनका आज्ञाकारी था।।
दीन वच्छल उन ऋषिगण ने, मुझ दीन हीन पर कृपा करी। जाने से पूर्व ही सबने, अति गुह्य तत्त्व उपदेश किया।।
जिस तत्त्व को प्रतिपादित, स्वयं श्री हरि ने है किया। उसी तत्त्व को सार रूप में, उन ऋषियों ने मुझसे कहा।।

उस उपदेश से ही मुनिवर, माया प्रभाव मैं जान सका। जगत् आधार श्री कृष्ण की, महिमा मैं पहचान सका।।
उसको जानने से ही तो, सब भव बन्धन कट जाते हैं। उनके ही परम पद को, योगी जन तब पाते हैं।।
हे संत संकल्पील श्री व्यास, है यह तत्त्व की बात कही। सब कर्म ही हों कृष्ण अर्पण, त्रितापों की यही औषधि।।
जिसके सेवन से रोग हुआ, जो कारण है इस रोग का। पूर्ण चिकित्सा पद्धति से, गर वैद्य ने वही पदार्थ दिया।।
ज्ञात यह है विज्ञान से, रोग दूर वही कर देगा। जिसने पैदा यह रोग किया, निवारण भी उसीसे होगा।।

इसी विधि रहस्य यह, कर्मों का भी सुझाते हैं। जन्म मरण के चक्र में, संसार में कर्म घुमाते हैं।।
जब यह ही कर्म श्री हरि के, चरणों में अर्पित हो जायें। तो बन्धन सब खोल करी, यह मुक्ति हेतु बन जाते है।।
जो भी कर्म इस लोक में, प्रभु के लिये किये जायें। उनसे प्रसन्न हों श्री हरि, बस इस ही भाव से किये जायें।।
वह ही तो उत्पन्न भक्ति करें, और ज्ञान दान भी दे जायें। पराभक्ति से युक्त ज्ञान, वह सेवक सहज ही पा जायें।।

भगवद् अर्पण जो कर्म करें, आदेश उन्हीं का माना करें। श्री कृष्ण के नाम और गुण का, कीर्तन नित्य ही किया करें।।
हे प्रभु आपके चरणों में, नतमस्तक हम बैठे हैं। हे वासुदेव तब ध्यान में, पल छिन निमग्न ही रहते हैं।।

प्रद्युम्न अनिरुद्ध और संकर्षण, सब रूप आपने ही धरे। आपके इन सब रूपों को, नमस्कार ही हम करें।।
यह चारों रूप भगवान के जो, उनके नामों का ध्यान धर। रूप परे जो यज्ञपुरुष, उस मन्त्रमूर्ति का स्मरण कर।।
प्राकृत रूप रहित जो हरि, उनका जो पूजन करे। उसका ही ज्ञान सम्पूर्ण कहें, है वही ज्ञान यथार्थ समझो।।

हे ब्राह्मण जब मैंने, आदेश प्रभु का मान लिया। उनने जो भी कहा मुझे, मैंने उसका पालन किया।।
तब श्री कृष्ण ने हो प्रसन्न हो, मुझे आत्म ज्ञान ऐश्वर्य दिया। इन सबसे जो है परे, प्रेमाभक्ति का दान दिया।।

श्री व्यास जी ज्ञान तो, आपका सब विधि पूर्ण है। प्रभुकीर्ति लीला उनकी, उसका ही कथन अपूर्ण है।।
अब महिमा उनकी गान करो, सब जिज्ञासा यह शान्त करे। ऋषि मुनि और योगी जन, सबका अन्तिम लक्ष्य है यह।।
जो दु:ख की इस चक्की में, बार बार हैं पिस रहे। उनकी दु:ख निवृत्ति का, कोई अन्य उपाय नहीं है।।
यह ही है इक औषधि, सर्वव्याधि जो शान्त करे। त्रिताप यह हर कर के, परम पद तक ले जाये।।

सूतजी बोले,
हे शौनक देवर्षि के, जन्म कर्म की बात सुनी। सत्यवती सुत व्यास ने, उनसे फिर यह प्रश्न करी।।
ज्ञान आख्यान आपको दे, हे नारद जब इस विधि। महात्मा गण वह चले गये, उपाय आपने कहो क्या की?
उस समय तो आपकी, आयु भी छोटी सी थी। ज्ञानोपदेश महान मिला, पर शरीरावस्था छोटी थी।।

हे स्वयंभू आप हमें, रहस्य यह बतलाइये। कैसे बीता बाकी जीवन, अब इसका राज सुझाइये।।
फिर मृत्यु बेला आपको, कैसा था अनुभव हुआ? उस जीवन में आपने, परित्याग तन का कैसे किया?

नारद बोले,
यद्यपि उस काल में, बहुत छोटी उमरिया थी मेरी। दे ज्ञानोपदेश गये ऋषिगण, जीवन यूं मैंने व्यतीत करी।।
काल का ग्रास तो हैं सब ही, सब वस्तुन् का यह करे ऱ्हास। हे देवर्षि इस पूर्वकल्प की, स्मृति का क्योंकर हुआ न नाश।।
अपनी माता की सन्तान, एक अकेला पुत्र था मैं। उसके सिवा मेरा भी कोई, अन्य आसरा नहीं था।।
इक स्त्री इस पर वह अज्ञ, और कर्म से दासी थी। उसको बन्धन में बान्धे, मानो मम स्नेह की फांसी थी।।

योगक्षेम की चिन्ता मेरी, अहर्निश उसे सताती थी। पराधीन वह कर्म से थी, कुछ भी कर नहीं पाती थी।।
जैसे कठपुतली सूत्रधार की, इच्छा पर ही नृत्य करे। वैसे ही यह सब सृष्टि, ईश्वर के ही अधीन रहे।।
मैं भी तब निज जननी के, स्नेह बन्धन में था बन्धा हुआ। अपनी माता के साथ मैं, ब्राह्मण बस्ती में ही रह रहा।।
उस समय था बालक मैं, पांच वर्ष की आयु थी। दिशा देश और काल से, पूर्ण अनभिज्ञता मेरी थी।।

इक दिन रात्रि के समय, मेरी माता घर से निकली। गौ दोहन था निमित्त बना, काल ने थी पुकार करी।।
अन्धकार में दीखा न, पांव से सर्प स्पर्श हो गया। भयभीत हो सर्प ने, मेरी मां को डस लिया।।
उसका भी कोई दोष नहीं, काल की ऐसी प्रेरणा थी। काल की गति से माता की, आयु थी पूर्ण हो चुकी।।
अपने भक्तों पर अनुग्रह कर, श्री हरि निया नित खेल करें। भक्त वत्सल की कृपा जान, मम पग उत्तर ओर बढ़े।।
उस मार्ग में जाते हुये, अनेकों दृश्य मुझे दीखे। धन धान्य सम्पन्न देश, नगर गांव अनेक दीखे।।

कहीं मार्ग में चलती हुईं, बस्तियां थीं अहीरों की। कहीं खानें नदियां कहीं, तट पे पड़ाव पर्वतों की।।
वन उपवन वाटिका अनेक, धातुन् से सजे पर्वत विशाल। कहीं वृक्ष थे ऊंचे खड़े, हस्तिन ने तोड़ी शाखा विशाल।।
शीतल जल से भरे हुए, जलाशय कहीं पे थे विस्तृत। कमल दल थे खिल रहे, महापावन वह सुर सेवित।।
भंवरे गीत थे गा रहे, उनपर वे मंडरा रहे। रंग रंग के पक्षी भी, वहां थे चहचहा रहे।।
एकाकी था मैं राह पे, सब देख के बढ़ता ही गया। बहुत दूर जब चला गया, तो गहन वन में जा पहुंचा।।
बांस नरकट मेंठा कुश, कीचक आदि से भरा हुआ। बहु विस्तृत चहुं दिशा में वह, अनेकों जीवों का घर था।।
सांप उल्लूक स्यार आदि, भयावह जीवों का डेरा। बहु भयंकर था वह बन, दुष्ट रूप भय ने घेरा।।

बहुत दूर चलते चलते, इन्द्रियां शिथिल मेरी होने लगी। भूख प्यास से था व्याकुल, धैर्य मेरा खोने लगी।।
जाते जाते राह में एक, सरिता के दर्शन हुए। कुण्ड में स्नान किया मैंने, जलपान आचमन किए।।
उस अमृत जल के पान से, पिपासा मेरी मिट गई। इस यात्रा में जो हुई थी, थकान भी उसने सब हर ली।।
अति गहन उस वन में, पीपल का वृक्ष विशाल था। उसकी गहन छाया में, आसन मैंने ग्रहण किया।।

जैसा था सुना उन यातियों से, हृदयस्थ प्रभु के स्वरूप को। मन ही मन मैं ध्याने लगा, श्री हरि के उस रूप को।।
भक्तिभाव से अविर्भूत, चित्त था मेरा हो रहा। चरणकमल के ध्यान में, मैं निमग्न था हो रहा।।
तीव्र लालसा ने उस पल, चित्त मेरा वशीभूत किया। किसी विधि प्रभु प्राप्ति हो, मेरा मन था तड़प रहा।।
भक्त वच्छल हरि कीनी कृपा, शनै: शनै: वहां आ प्रकटे। हृदय में प्रकाशित हो, दर्शन उन्होने मुझे दिये।।

प्रेमातिरेक से उस पल, रोम रोम पुलकित हुआ। प्रभु के दर्शन पाकर के, हृदय शान्त शीतल हुआ।।
उस आनन्द के वेग में, था ऐसा मैं निमग्न हुआ। ध्याता और ध्येय का, भी भेद वहां भूल गया।।
अकथ्य रूप श्री हरि का वह, कैसे उसका वर्णन करूं। मनोहारी वह रूप था, करे शोक सब हरण कहूं।।
सहसा वह अलौकिक दृश्य, अन्तधान ही हो गया। विकल और मैं खिन्न मनी, त्यज आसन उठ खड़ा हुआ।।

पुन: पुन: उस रूप सौन्दर्य का, दर्शन करना चाहता था। मन हृदय में समाहित कर, इस चेष्टा में रत मैं था।।
पर बार बार ऐसा करके, भी दर्शन जब न पाया। अतृप्त पिपासा से व्याकुल, आतुर मन मेरा हो गया।।
उस निर्जन वन में बैठे मुझे, देखा प्रयत्न में लगे हुए। अनिर्वचनीय प्रभु कृपा करी, मेरे मन को शान्त कराने लगे।।
गम्भीर धीर और मधुर ध्वनि, उनकी मेरे कान पड़ी। शोक मेरा यह दूर हो, उन्होने मुझसे यह बात कही।।
भगवान बोले,
अहो खेद इस जीवन में, मेरा दर्शन तुम नहीं पा सको। विधान यह मेरा समझ लो, तब ही शोक यह दूर हो।।
जब लग मन की वासना, पूर्ण शान्त न हो जाये। तब लग अधपका योगी, दर्शन मेरा न पाये।।
तव हृदय में जागृत लालसा हो, मुझे प्राप्त कर लेने की। इस कारण ही निष्पाप शिशु, झलक तुम्हें है दिखलाई।।
एक आकांक्षा हिय धरे, मुझसे जो भी मिलने की। पूर्णतय: वा हृदय त्यजें, अन्य हैं जो चाहनायें सभी।।

अल्पकाल तक ही सही, सन्त सेवा जो तुने करी। प्रसाद स्वरूप उस सेवा के, तव चित्त वृत्ति मुझमें टिकी।।
पञ्चतत्त्व का भौतिक तन, जब यह विसर्जित कर दोगे। मलिन शरीर माटी का, पार्षद मम बन जाओगे।।

दृढ़निश्चय जो धारे हो, मेरी प्राप्ति के लिये। यह किसी विधि न टूटेगा, चाहे सृष्टि का प्रलय हो जाये।।
मेरी कृपा से वत्स सुनो, स्मृति भुला न पाओगे। सृष्टि समस्त विलीन हो, तुम मुझसे बिछुड़ न पाओगे।।

नारद बोले,
सर्वशक्तिमान प्रभु, आकाश सम अव्यक्त जो। इतना कहकर मौन हुए, परमात्म सर्वस्थ जो।।
उनकी कृपा का अनुभव पा, मैं तो गद्‌गद् हो गया। श्रेष्ठतम सों सर्वश्रेष्ठ, प्रभु को मैंने नमन किया।।
तब से ही संकोच त्याग, गान मैं उनका करने लगा। अति गुह्य मधुर लीलाओं का, कीर्तन स्मरण करने लगा।।
उनकी कृपा से मेरा हृदय, मद मत्सर से शून्य था। आनन्द मग्न हो प्रतीक्षा में, मैं भू पर विचरने लगा।।

ऐसी भागवद् कृपा हुई, हृदय शुद्ध मेरा हो गया। आसक्ति मेरी मिट गई, मैं कृष्ण परायण हो गया।।
कुछ काल जब यूं बीता, सहसा ज्यों चमके दामिनी। निश्चित समय के आते ही, काल ने प्राण मेरे हर ली।।
प्रारब्ध कर्म जब हुआ समाप्त, माटी का तन यह मिट गया। ऐसी हुई भागवद् कृपा, शुद्ध पार्षद तन मिल गया।।

कल्प का अन्त आये जब, प्रभु प्रलय सिन्धु में शयन करें। शयन की इच्छा करके, सृष्टि को निज में लय करें।।
उस समय जब ब्रह्मा ने, नारायण में प्रवेश किया। उनके श्वासों के संग संग, मैं भी उनके हृदय में जा पहुंचा।।
एक सहस्त्र चतुर्युगी, इस शयन में बीत गई। ब्रह्मा जी ने जाग कर, तब सृजन की इच्छा करी।।

उस पल उनकी इन्द्रियों से, मरीचि आदि ऋषि प्रकटे। उनके संग ही ब्रह्मा से, मेरा भी उद्‌भव हुआ।
तब से ही भागवद् कृपा को पा, बाहर भीतर त्रिलोक में। वैकुण्ठ लोक में भी घूमूं, बिन किसी रोक टोक के।।
मेरे जीवन में एक व्रत, अखण्ड रूप से चल रहा। भगवद्भजन में स्वास स्वास, श्रीमन्नारायण भज रहा।।

सात स्वरों से सजी हुई, प्रभु ने यह वीणा है दी। प्रभु कृपा से यह वीणा, स्वरब्रह्म विभूषित है हुई।।
इस पर तान को छेड़कर, वा लीला गान मैं कर रहा। उनका नाम ही हृदय धरी, संसार में हूं विचर रहा।।
सब तीर्थ जहां से उत्पन्न हों, ऐसे ही चरण कमल उनके। मेरे हिय में सर्वप्रिय, हैं श्री यशोगान उनके।।
दिव्य लीलाओं का उनकी, जब गायन प्रारम्भ करें। आमंत्रित अतिथि समान, तुरन्त वह हृदय में दर्शन दें।।

चित्त में जिनके नित्य निरन्तर, भोग कामना बनी रहे। हर पल ही यह मन उनका, अतृप्त चाह से दु:खी रहे।।
भगवत् लीला का संकीर्तन, इक ऐसा जहाज है। निज अनुभव से जाने हूं, भव सागर से करे पार है।।
काम और लोभ प्रहार से, नित्य जो आहत हो रहे। कृष्ण सेवा का घावों पर, अमृत समान लेपन करे।।
यम नियम और योग से भी, वैसी शान्ति न पा सकें। कृष्ण सेवन रसामृत ज्यों, यह हृदय तृप्त करा सके।।

श्री व्यास आप निष्पाप हैं, आपने था जो प्रश्न किया। अपने जन्म और साधन का, पूर्ण रहस्य मैंने कह दिया।।
साथ ही मैंने आपको, कल्याण की है बात कह दी। आत्म तुष्टि कैसे होगी, उपाय भी उसकी बतला दी।।

सूतजी बोले,
हे शौनकादि ऋषि सुनो, यह कहकर श्री नारद ने। अनुमति मांगी श्री व्यास से, प्रस्थान करने के लिये।।

वीणा पर स्वर छेड़कर, भगवन्नाम गाते हुए। स्वच्छन्द विचरण के लिये, देवर्षि वहां से चल दिये।।
धन्य धन्य हैं देवर्षि, कृपा प्रसाद है मिला इन्हें। श्री नारायण के यश का, हर पल वीणा पे गान करें।।
इस महिमा रस को पीकर, आनन्द पगे नित रहते हैं। इस जग के त्रिताप भी, हरि नाम से हरते रहते हैं।।

६) अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका वध और उसका अपमान

भगवान श्री व्यास ने, नारद अभिप्राय सुन लिया। देवर्षि के जाने पर, फिर उन्होंने क्या किया?
सूतजी बोले,
सरस्वती सरिता कहें, ब्रह्म रूप परम पावन। उसके पश्चिम तट पर स्थित, शम्याप्रास नामक आश्रम।।
उस आश्रम में ऋषि मुनि, तप साधना करते हैं। प्राय: उन ऋषियों द्वारा, यज्ञ अनुष्ठान भी चलते हैं।।
उसी स्थान पर व्यास देव, का भी अपना आश्रम है। चहुं ओर उस आश्रम के, बेरी के सुन्दर बन हैं।।
उस आश्रम में बैठकर, श्री व्यास ने आमचन किया। इस विधि अपने मन को, समाहित अपने में किया।।

भक्तियोग का आश्रय ले, निज मन को निर्मल किया। एकाग्र भाव में उनका मन, पूर्णतय: था टिक गया।।
फिर ध्यान में आदि पुरुष, को उन्होंने जान लिया। उसके आश्रित रहने वाली, माया को पहचान लिया।।
इस माया में भ्रमित जीव, त्रिगुणात्मक निज को मान रहा। है तीनों गुणों से अतीत वह, पर सत्य न पहचान रहा।।
बन्धा हुआ इस मान्यता में, वह दु:ख सुख सारे भोग रहा। यही मान्यता है कारण, सम्पूर्ण ही अनर्थों का।।

इन सब तापों की शान्ति, का साधन एक बताते हैं। भक्ति योग जब प्रभु में हो, पल भर में शान्त हो जाते हैं।।
पर संसार में फंसे हुए, रहस्य यह जान न पाते हैं। इस कारण ही बार बार, इस चक्र में भरमाते हैं।।
उनके कल्याण को चित्त में धर, श्री व्यास देव ने कृपा करी। परमहंसों की संहिता, श्रीमद्भागवत की रचना की।।

श्रवणमात्र से भागवत के, हृदय में भक्ति जाग उठे। पुरुषोत्तम श्री कृष्ण प्रति, प्रेम पूर्ण अनुराग उठे।।
इस भक्ति के आते ही, शोक मोह का नाश हो। जिस हृदय में भक्ति बसे, वहां भव भय का ऱ्हास हो।।
इस संहिता को रचकर, पुनरावृत्ति इसकी करी। अपने संन्यासी पुत्र को, शिक्षा इसकी पुन: उसे दी।।
शौनक ऋषि बोले,
निवृत्ति परायण हैं श्री शुक, नहीं किसी भी वस्तु की इच्छा। उनका तो हर पल हर क्षण, आत्म रमण ही हो रहा।।
फिरा किस उद्देश्य को सामने धर, उनने यह अध्ययन किया? क्या प्रेरणा थी उनको, जो विशाल यह ग्रन्थ पढ़ा?
सूतजी बोले,
जो सत्य ज्ञान को जान लें, खुली जिनकी चित्त जड़ ग्रन्थी। जो नित्य ही आत्माराम हों, करें श्री हरि की निष्काम भक्ति।।
प्रभु के गुण अति मधुर हैं, सबके ही वह मन भायें। ऐसा आकर्षण है उनका, कोई न उनसे बच पाये।।
फिर शुकदेव की बात ही क्या, भक्तों के अति प्रिय हैं वह। परम ज्ञानी कला अवतार, श्री व्यास के अपने पुत्र हैं वह।।
भगवद् गुण के सम्मोहन से, वह भी बच ही न पाये। विशाल ग्रन्थ अध्ययन को, विवश ही वह खिंचे आये।।

हे ऋषि सुनो परीक्षित के, जन्म की कथा सुनाता हूं। उनके कर्म और मोक्ष की, अब तुमको बतलाता हूँ।।
पाण्डवों के स्वर्गारोहण, की कथा भी अब सुनो। इनसे ही श्री कृष्ण की, अनेकों कथा सम्बन्धित है वह भी सुनो।।

महाभारत के युद्ध में, दोनों पक्ष के योधागण। वीरगति को प्राप्त हुए, कौरव पाण्डव दोनों के जन।।
भीमसेन के गदा वार से, टूटी जंघा दुर्योधन की। अश्वत्थामा ने ऐसे समय, बहुत घृणित इक कार्य किया।।
अपने स्वामी दुर्योधन को, हर्षित करने के लिये। ऐसा उसने काज किया, अति निन्दित जो वीरों के लिये।।
द्रुपदसुता के पांचों पुत्र, जब थे रात्रि को सो रहे। उन पांचों के सिर काटकर, उस दुर्योधन को भेंट किये।।
पर इतना सब होने पर भी, दुर्योधन नहीं प्रसन्न हुए। नीच कर्म ऐसा देखी, दुर्योधन भी थे रुष्ट हुए।।
ऐसे नीच कर्म की तो, निन्दा ही सब करते हैं। दुर्योधन सम स्वार्थी भी, नहीं उचित उसे कह सकें।।

उनकी माता द्रौपदी ने, जब पुत्र निधन की बात सुनी। चीत्कार वह कर उठी, आंखों में आंसु भरी।।
उसकी व्यथा को देखकर, सान्तवना अर्जुन ने दी। उसको रोता देखकर, अर्जुन ने यह बात कही।।

अर्जुन बोले,
हे कल्याणी तेरे अश्रु, अब जब भी मैं पोंछूँगा। जब आततांई अधम ब्राह्मण, के सीस को छेदन कर दूँगा।।
गाण्डीव से छेदित उसका सिर, चरण में अपने धर लेना। अन्त्येष्टि करके पुत्रों की, तुम पाद उसी पे रख देना।।
तब ही स्नान करोगी तुम, तब व्यथा शान्त कर पाओगी। अश्वत्थामा का कटा सीस, जब चरण तले निज पाओगी।।

सूतजी बोले,
कह ऐसी मीठी अद्भुत बात, द्रौपदी को उस समय शान्त किया। तब सखा कृष्ण की अनुमति पा, सारथी उन्हें बना लिया।।
कवच पहन कर फिर अर्जुन, रथ पर पुन: सवार हुए। गुरु पुत्र अश्वत्थामा, के पीछे वह दौड़ पड़े।।
हत्या करके उन बालकों की, अश्वत्थामा उद्विग्न थे। दूर से ही उसने देखा, अर्जुन को रथ पे आते।।
अपने प्राणों की रक्षा को, पृथ्वी पर था यूं भाग रहा। ज्यों रुद्र से भयभीत हुआ, सूर्य मानो भाग रहा।।

जब रथ के घोड़े थके जान, निज को एकाकी पहचाना। ब्रह्म अस्त्र उठाया उस, रक्षा का इक साधन माना।।
ब्रह्म अस्त्र लौटाने की, विधि न ब्राह्मण जानता था। फिर भी संकट में प्राण देख, उसने जल का आचमन किया।।
ऐसे में वह द्रोण पुत्र, ध्यानस्थ हो बैठ गया। ब्रह्म अस्त्र का उसने, इस विधि सन्धान किया।।

उसके ऐसा करते ही, सब दिशा प्रज्वलित हो उठीं। प्रचण्ड तेज से अस्त्र के, देदीप्यमान सब दिशायें हुई।।
जब अर्जुन ने देखा यह, निज प्राणों पर संकट आ पड़ा। श्री कृष्ण चरण का आश्रय ले, याचना वह करने लगा।।
हे सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण, आप हो भक्तों के त्राता। अनन्त आपकी शक्ति है, निज भक्तों के अभय दाता।।
संसार की तप्त अग्न में, जो जीव नित्य हैं जल रहे। उनके कल्याण का एकमात्र, आप ही हो प्रभु हेतु हे।।

साक्षात् परमेश्वर आप, आदि पुरुष हो आप स्वयं। प्रकृति अधीन है आपके, इससे परे हो आप स्वयं।।
अद्वितीय स्वरूप स्थित, हो नित्य हे परम प्रभो। अपनी चेतन शक्ति से, त्रिगुणी माया को दूर करो।।
माया से मोहित जीव जो, अज्ञान तिमिर में खो रहे। अपने प्रभाव से हे प्रभु, उनके कल्याण के लिये।।
आप स्वयं ही धर्म आदि, साधन का विधान करें। करुणा निधि करुणा करके, उनके अज्ञान को आप हरें।।

भूमि भार उतारन को, यह अवतार है आपने लिया। अनन्य भक्त और प्रेमी के, सिमरन ध्यान को रूप धरा।।

हे स्वयं प्रकाश स्वरूप कृष्ण, यह तेज भयावह आ जो रहा। चारों ओर से देख रहा, यह मेरी ओर ही दौड़ रहा।।
यह क्या है कहाँ से आया है, क्योंकर आया मैं न जानूं। मैं आपकी शरण में आ गया, नहीं इसका राज मैं पहचानूं।।

भगवान कृष्ण बोले,
हे अर्जुन अश्वत्थामा ने, छोड़ा यह ब्रह्मास्त्र है। उसके ही तेज से फैला, प्रकाश यह सर्वत्र है।।
निज प्राण को संकट में देख, प्रयोग तो इसने इसका कर लिया। अस्त्र को लौटाने की, विधि नहीं वह जान सका।।
सर्वश्रेष्ठ यह अस्त्र है, कोई अन्य अस्त्र न सके दबा। तुम ही इसका उपाय करो, हो शस्त्र विद्या के हो तुम ज्ञाता।।
ब्रह्मास्त्र का तेज ही, प्रचण्ड अग्न यह बुझा सके। तुम ही करो उपाय वह, जो शान्त इसे करा सके।।

सूतजी बोले,
महा चतुर थे श्री अर्जुन, शत्रु को मार गिराने में। बात सुन कृष्ण की, हो शुद्ध आचमन किया।।
श्रद्धा भाव से श्री हरि की, परिक्रमा उसने करी। ब्रह्मास्त्र के निवारण को, ब्रह्म अस्त्र सन्धान किया।।
बाणों पर सवार हो, जब दोनों ओर से आये अस्त्र। प्रलयंकार सूर्य की अग्न सम, आपस में टकराये अस्त्र।।
चतुर्दिक् आकाश में, महा तेज वह फैल गया। उनके तेज की अग्नि ने, मानो प्रलय का रूप धर लिया।।

दोनों अस्त्रों की अग्नि, प्रचण्डित हो जलने लगी। तीनों लोकों की प्रजा, जैसे हो भस्मीभूत हुई।।
उस ज्वाला को देखकर, सबने फिर यह ही समझा। संवर्तक अग्नि है यह, प्रलयकाल है आ पहुंचा।।
अग्नि में प्रजा और लोकों का, हो नाश यह अर्जुन ने देखा। श्रीकृष्ण की अनुमति पाकर, दोनों अस्त्रों को लौटा लिया।।

नेत्र रे रक्ताभ हुए, क्रोधाग्नि में अर्जुन जला। क्रूर अश्वत्थामा को, झपट के उसने पकड़ लिया।।
जैसे पशु को कोई जीव, रस्सी सें हो बान्ध रहा। इसी विधि अर्जुन ने भी, अश्वत्थामा को बान्ध लिया।।
बलपूर्वक उसे बान्धकर, जब शिबिर की ओर अर्जुन बढ़ा। तब कमलनयन श्री कृष्ण ने, कुपित हो उससे यूं कहा।।
भगवान श्रीकृष्ण बोले,
इस ब्राह्मण अधम को छोड़ना, हे अर्जुन न उचित होगा। इसको तो तुम मार ही दो, इसमें ही भला होगा।।
नहीं क्षमा के योग्य यह, जघन्य कर्म इसने किया। रात्रि में निरपराध सुप्त, बालकों का इसने वध किया।।
धर्मवेत्ता के लिये, भी है आचार की एक विधि। असावधान मदमत्त हुये, हों पागल सुप्त या बालक कहीं।।
नारी या कोई ज्ञान शून्य, जो विवेक रहित रथ हीन खड़े। शरणागत या भयभीत जो, शत्रु पर वार न कभी करे।।

लेकिन जो क्रूर और दुष्ट पुरुष, दूजों के प्राण का हरण करे। उनके हनन से ही मानो, वह निज प्राण पोषण करे।।
उसका वध कर देना ही, है उसके लिये कल्याण कर। अगर इस स्वभाव के संग जिआ, तो जायेंगे वा पाप बढ़।।
पाप ही तो वह कारण है, नरक तलक जो ले जाये। ऐसे विस्तृत हों पाप जहां, वा जीवन नरक ही बन जाये।।
था दिया वचन पांचाली को, मेरे सामने ही तुमने। जिसने मारा तेरे पुत्रों को, वा सीस धरूं तेरे चरणोंमें।।

कुलघाती इस आततई ने, पुत्रों का तेरे हनन किया। अपने स्वामी दुर्योधन को, भी इसने पीड़ित किया।।
इस कारण हे परंतप, विचार तनिक न तुम करो। अधम क्रूर इस ब्राह्मण का, शीघ्र हनन अब तुम करो।।

सूतजी बोले,
अर्जुन का धर्म जांचने को, श्री कृष्ण ने प्रेरित उसे किया। पर विचलित अर्जुन नहीं हुआ, उसका हिय अति विशाल था।।
यद्यपि अश्वत्थामा ने, उसके पुत्रों को मारा था। फिर भी अर्जुन गुरु पुत्र के, वध को उद्यत नहीं हुआ।।
तत्पश्चात् निज सखा कृष्ण, और सारथी को अपने संग ले। अश्वत्थामा को बान्धे, निज युद्ध शिबिर में आ पहुंचे।।
निज मृत पुत्रों के शोक में, जो संतप्त थी हो रही। अश्वत्थामा की डोरी, उस द्रुपदसुता को सौंप दी।।

पशु की भान्ति बन्धे हुए, जब अश्वत्थामा को देखा। निन्दित कर्म कर लज्जा से, उसका सीस था झुक रहा।।
अपना अनिष्ट करने वाले, गुरु पुत्र का सीस झुका देखा। अपमानित उसको देखकर, उसके हृदय में उमडी परम कृपा।।
वैर भाव न मन में था, उदार हदय वह आप थी। दुष्कर्म सब उसके भूले, कर जोड़ी नमस्कार करी।।

द्रौपदी बोली,
गुरु पुत्र को बन्धा देख, द्रौपदी यह न सह सकी। छोड़ दो इन्हें छोड़ दो, उसने ऐसी बात कही।।
यह ब्राह्मण हैं गुरु पुत्र हैं, हम लोगों के अति पूजनीय। ऐसा व्यवहार करना इनसे, नहीं क्षत्रिय जन को शोभनीय।।
जिनकी कृपा से ही सबको, धनुर्वेद का ज्ञान हुआ। रहस्य प्रयोग सार सहित, सब शस्त्रास्त्रों को जान लिया।।
गुरुवर वह द्रोण ही पुत्र रूप में, आपके सामने हैं खड़े। निज वीर पुत्र की ममता में, हैं माता कृपी के प्राण अड़े।।

इस पुत्र स्नेह के कारण ही, नहीं पति अनुगमन वह कर सकीं। अर्धांगिनी श्री द्रोण की, धरती पर जीवित है अभी।।
हे आर्यपुत्र हे भाग्यवान्, आप स्वयं धर्मज्ञ हैं। गुरु वंश का पूजन वन्दन, यह भी आपका कर्त्तव्य है।।
उस कुल को पीड़ा पहुंचाना, नहीं आपके योग्य अहो। ऐसा व्यवहार यह आपका, शोभनीय कभी न हो।।

अपने शिशुओं के जाने से, जिस विध व्यथित मैं हो रही। पीड़ा से आक्रान्त हो, यह नयन मेरे रो रही।।
इसकी माता गौतमी, पतिव्रता नारी है जो। उसका ऐसे दुःख से, सामना कभी न हो।।
अपनी उश्रृंखलता कारण, जो राजा कुकृत्य करे। ऐसे कर्म वह जब करे, ब्राह्मण कुल उससे कुपित हुए।।
उनके कोप का भाजन बन, शोकाग्नि में वह जले। सपरिवार ऐसे राजा, शीघ्र ही भस्मीभूत हो जाएं।।

सूतजी बोले,
हे ऋषिवर द्रौपदी ने तो, धर्म न्याय अनुकूल कहा। करुणा समता आधार था, छल कपट उसमें न था।।
सो धर्मराज युधिष्ठिर ने, हित से भरा वचन उन्होंने जान लिया। रानी के उत्तम वचनों का, अभिनन्दन उन्होने किया।।
साथ ही उनके नकुल सहदेव, सात्यकि और अर्जुन स्वयं। कृष्ण के संग सब नर नारी, ने किया द्रौपदी का अनुमोदन।।

क्रोधोन्मत्त हो भीमसेन, उस पल ऐसा कहने लगे। व्यर्थ में ही जिस सोये हुए, बच्चों के हैं वध किए।।
न इसके ही न स्वामी के, किसी काम वे आ सके। उचित है इसको मार दें, यही समोचित दण्ड भए।।
कृष्ण बोले,
ब्राह्मण गर पतित भी हो, उचित नहीं हनन उसका। आततांई का वध करो, यह भी शास्त्र में मैंने कहा।।
दोनों ही आज्ञा मेरी, हैं शास्त्रों में मैंने दीं। दोनों का ही पालन हो, कुछ ऐसी विधि तुम करो सही।।

पुत्र वध सों दु:खी द्रौपदी, जब विलाप थी कर रही। उसको धैर्य बन्धाने को, जो प्रतिज्ञा तुमने की।।
ऐसी युक्ति अब करो, सत्य हो वह प्रतिज्ञा तेरी। भीम द्रौपदी और मुझे, जो हो प्रिय करो वह ही।।
सूतजी बोले,
अति कुशाग्र बुद्धि अर्जुन, हृदय की बात उसने समझ ली। अपनी तलवार से चूडामणि, संग बालों के उतार ली।।
बच्चों की हत्या करके, वह श्री हीन पहले ही था। अब मणि और ब्रह्म तेज से, भी रहित वह हो गया।।
तत्पश्चात् बन्धन खोल, शिबिर से उसको दिया निकाल। अधम ब्राह्मण पुत्र को, छोड़ दिया अपने ही हाल।।

सिर को मूंडना धन ले लेना, स्थान से बाहर करना ही। वध है ब्राह्मण अधम का, नहीं तन वध का है विधान कहीं।।
निज पुत्रों की मृत्यु से, शोकातुर थे पाण्डव सब। भाई बान्धव सहित सभी के, दाहादि का किया प्रबन्ध।।

७) उत्तरा के गर्भ की रक्षा, परीक्षित का जन्म और परिचय

ऐसा सब हो जाने पर, पाण्डव सब गंगा तट पे गये। जलांलिल इच्छुक मृत बान्धव, का तर्पण करने के लिये।।
स्त्रीगण वा आगे थी, श्री कृष्ण भी उनके संग थे। सबने मिल वा सद्गति, के सारे प्रबन्ध किये।।
सबने मिलकर मृत स्वजन को, जल दान वहां पे दिया। उनके गुणों को याद कर, सबने बहुत विलाप किया।।
श्री हरि के पाद स्पर्श से, हुआ गंगा जल अति पावन। पुन: सबने स्नान किया उसमें, और अपने को किया पावन।।

भ्राताओं सहित कुरुकुल के पति, युधिष्ठिर वहां पे थे बैठे। धृतराष्ट्र और गान्धारी, पुत्र शोक में व्याकुल थे।।
कुन्ती और द्रौपदी दोनों, मिलकर शोक थीं कर रहीं। स्वबन्धु के निधन पर, वह भी तो अति आकुल थी।।
श्री कृष्ण ने धौम्यादि, मुनियों सहित दी सान्त्वना। क्षणभंगुरता संसार की, करी वहाँ प्रवँचना।।
सब प्राणी संसार के, हैं अधीन इस काल के। काल के मुख से कोई भी, किसी को न बचा सके।।

अजात शत्रु युधिष्ठिर का, राज्य जो छल से था छीना। श्री कृष्ण ने राज्य वह, वापिस उनको दिलवाया।।
केश द्रौपदी के छूकर, जिनकी आयु थी क्षीण हुई। उन दुष्ट राजाओं के, वध की सब साधन करी।।
फिर उत्तम सामग्री ले, विद्वान पुरोहित बुलवाये। तीन बार युधिष्ठिर से, अश्वमेध थे करवाये।।
ज्यों इन्द्र के सौ सौ यज्ञों का, फैले यश है चतुर्दिक्। उसी विधि युधिष्ठिर के, यश को किया अति विस्तृत।।

तत्पश्चात् प्रस्थान का, श्री कृष्ण ने विचार किया। पाण्डवों से ली विदा, व्यासादि का सत्कार किया।।
उन सब लोगों ने मिलकर, प्रभु का बहु सम्मान किया। वह धर्म रक्षा के हैं हेतु, उनका यूं यशोगान किया।।
सात्यकि और उद्धव संग, श्री कृष्ण रथ पे जा बैठै। पाण्डव गण का काज करी, अब द्वारिका वह जाने लगे।।
उसी समय देखा उन्होंने, उत्तरा को आते हुए। भय से व्याकुल होकर के, अपनी ओर भागते हुए।।
उत्तरा बोली,
हे जगदीश्वर योगेश्वर, हे देवादिदेव महान् आप। रक्षा करो प्रभु रक्षा करी, आप ही दूर करो मम ताप।।
आप ही इस संसार में, सर्वभय से त्रास दें। अन्य सभी तो इक दूजे की, मृत्यु के कारण बनें।।
सर्वशक्तिमान् आप, आज मेरी रक्षा करें। मेरे पीछे महा उग्रवाण, अब उससे मुझे बचा ही लें।।
निज प्राणों का मुझे भय नहीं, चाहे यह प्राण मेरे हरे। मम गर्भ नष्ट न हो कहीं, अब ऐसी मुझपे कृपा रहे।।

सूतजी बोले,
तत्क्षण श्री भगवान कृष्ण, इस रहस्य को जान गये। है अश्वत्थामा की करनी, इक पल में पहचान गये।।
पाण्डव कुल के नाश को, यह षडयन्त्र उसने रचा। निर्बीज वंश करने के लिये, ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया।।
हे शौनक उस पल देखा, पांच बाणों को जब आते। अपने अपने अस्त्र उठा, सावधान पाण्डव हुए।।
अपने अनन्य प्रेमी गण पर, भक्तों पर विपदा घोर देखी। निज चक्र सुदर्शन धारकर, निज जन की हरि ने रक्षा करी।।

समस्त प्राणियों के हृदय, हैं आत्म रूप में विराजमान्। योगेश्वर श्री कृष्ण तो, आन्तर में सबके बैठै महान्।।
पाण्डवों के वंश की, परम्परा के रक्षण को। निज माया कवच से ढक दिया, उनने उत्तरा के गर्भ को।।
यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, नहीं कोई उपाय निवारण का। फिर भी प्रभु तेज को सम्मुख पा, स्वत: शान्त वह हो गया।।
नहीं इसमें आश्चर्य कोई, है प्रभु तो सब आश्चर्य के घर। निज शक्ति माया से वह, दें जग का सृजन रक्षण लय कर।।

अजन्मा होकर भी स्वयं, वह रूप धर कर आते हैं। अपनी माया के आसरे, वह सब संसार चलाते हैं।।
सब पाण्डव द्रौपदी कुन्ती संग, ब्रह्मास्त्र की ज्वाला सों छूटे। इस प्रकार करके रक्षण, जब कृष्ण वहां से जाने लगे।।
पृथा उस समय आगे बढ़, स्तुति कृष्ण की करने लगीं। श्री हरि के गुणगान को, उसने फिर यह वाक् कही।।

अश्वत्थामा ने तेजस्वी, ब्रह्मास्त्र को था छोड़ा। उत्तरा के गर्भ में, अभिमन्यु बीज था नष्ट हुआ।।
प्रभु ने कृपा उसपर, पुनर्जीवित उसे किया। उत्तरा के गर्भ में, शिशु पुन: पलने लगा।।
उस गर्भ से उत्पन्न हुए, ज्ञानी महात्मन् परीक्षित। श्री शुकदेव ने दिया ज्ञान, पाकर भव सों तर गये वह तत्।।
जन्म कर्म और मृत्यु की, उनकी आप हमें कथा कहें। तत्पश्चात् जो गति मिली, उसका भी बखान करें।।
श्रद्धा पूर्ण जिज्ञासा ले, हम सब चरण में बैठे हैं। यदि आप जानें उचित इसे, तो हमें कहें यह कहते हैं।।
सूतजी बोले,
प्रजा के हित में धर्म राज, सब काज कर्म करने लगे। पिता समान ही उनका, पालन पोषण करने लगे।।
श्री कृष्ण के चरण कमल की उन, बहु प्रीति पूर्ण सेवा थी की। सब भोगों से नि:स्पृह हुए, यह थी उनको प्रसाद मिली।।

थे अतुल सम्पदा के स्वामी, बड़े बड़े थे यज्ञ किये। यज्ञों के फल में उनको, श्रेष्ठ लोक अधिकार मिले।।
भाई उनके अनुकूल थे, पत्नियाँ भी सहचारी थीं। महाविस्तृत वा राज्य था, उनकी यह पृथ्वी सारी थी।।
थे जम्बूद्वीप के स्वामी वह, कीर्ति थी फैली चहुं ओर। स्वर्ग तक भी सुनता था, उनकी जय जय कार का शोर।।

देवों के लिए भी दुर्लभ जो, ऐसे भोगों से थे सम्पन्न। पृथ्वी लोक की बात ही क्या, न स्वर्ग लोक में हों प्रपन्न।।
क्षुधा तप्त प्राणी को ज्यों, अन्य भोग कोई न भाये। भोजन के अतिरिक्त वह, कहीं देख ही न पाये।।
इसी विधि सब कुछ पाकर, थे उनमें नहीं वह लिपायमान। श्री कृष्ण चरण लोलुप वे थे, दृष्टि इक टक थी टिकी वहाँ।।

हे शौनक जब उत्तरा के, गर्भस्थ शिशु परीक्षित था। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की, अग्नि से वह जलने लगा।।
तत्क्षण आंखों के सामने, अद्भुत दृश्य उभर आया। गर्भ में ही उस बालक ने, ज्योतिर्मय पुरुष का दरस पाया।।

अंगुष्ठ मात्र है दर्शन में, पर स्वरूप अति निर्मल है। सुन्दर श्याम है तन उसका, दामिनी सम पीताम्बर है।।

स्वर्ण मुकुट उसके सिर पर, है झिलमिल झिलमिल चमक रहा। उसके तेज से ही जैसे, हो विश्व यह सारा दमक रहा।।
निर्विकार उस पुरुष का, दर्शन भी अति अद्भुत है। चार भुजायें लम्बी हैं, अति सुन्दर उनका रूप है।।
कानों में हैं लटक रहे, ज्यों तप्त स्वर्ग के हों कुण्डल। नेत्रों में ऐसी लालिमा, ज्यों अरुणा सूर्य की ली हो हर।।
हाथों में लेकर गदा, है चहुँ ओर घुमा रहा। ऐसा लगे वह शिशु की, परिक्रमा स्वयं हो ले रहा।।

सूर्य किरण को देखकर, कुहरा ज्यों लुप्त हो जाये है। वैसे ही गदा उसकी, ब्रह्मास्त्र को शान्त कराये हैं।
सम्मुख देख उस पुरुष को, आश्चर्यचकित वह शिशु हुआ। है कौन यह पुरुष श्रेष्ठ, गर्भस्थ शिशु ने यूं सोचा।।
गर्भस्थ शिशु दस मास का, वा सामने प्रकटे रूप यह धर। अप्रमेय धर्मधर प्रभु ने, किया शान्त वह ब्रह्मास्त्र।।
इस विधि दर्शन देकर, अन्तर्धान वह हो गए। जहां से थे वह प्रकट हुए, लुप्त पुन: वहीं हो गए।।

तत्पश्चात् जब ग्रह सब, अनुकूल दशा में आ गए। सद्गुण का विकसितकारी, प्रभाव निज दिखा गए।।
ऐसी शुभ घड़ी में फिर, जन्म लिया परीक्षित ने। पाण्डु के गौरवमय कुल के, वह ही तो एक वंशधर थे।।
जन्म समय ही वह शिशु, अति तेजस्वी था दीख रहा। जैसे पाण्डु ने आकर, स्वयं ही हो पुन: रूप धरा।।
पौत्र जन्म की सूचना पा, युधिष्ठिर अति प्रसन्न हुए। धौम्य और कृपाचार्यादि, ब्राह्मणों ने जात संस्कार किये।।

युधिष्ठिर धर्म के ज्ञाता थे, जाने थे दान के योग्य समय। प्रजातीर्थ काल ही उत्तम है, नाल छेदन से पूर्व समय।।
स्वर्ण गायें पृथ्वी और ग्राम, उत्तम हाथी घोड़े अविराम। ब्राह्मण गण को दे दिये, उत्तम अन्न का भी किया दान।।

संतुष्ट हुए ब्राह्मण सभी, विनम्र युधिष्ठिर से कहा। हे पुरुवंश शिरोमणि, है यह अद्भुत ही गाथा।।
काल की गति अमोघ है, यह पावन अंश था मिट रहा। श्री विष्णु ने कृपा करी, इस बालक को लिया बचा।।
इस कारण इस बालक का, नाम विष्णुरात होगा। शिशु यह जग में नि:संदेह, यशस्वी और विख्यात होगा।।
परम भक्त होगा प्रभु का, और महान पुरुष होगा। चतुर्दिशा में ही फैला, इस जीव का यश होगा।।
युधिष्ठिर बोले,
हे महात्मन् यह बालक, क्या वंश को गौरववान करे। अपने उज्ज्वल यश से यह, राजर्षियों का अनुगमन करे।।

७) उत्तरा के गर्भ की रक्षा, परीक्षित का जन्म और परिचय

ब्राह्मण बोले,
हे धर्मराज कुलबन्धु यह, पालेगा प्रजा मनुपुत्र समान। ब्राह्मण सेवी सत्य प्रतिज्ञ होगा, ज्यों थे दशरथ नन्दन श्री राम।।
शिबि समान होगा दाता, और वत्सल यह शरणागत का। याज्ञिकों में दुष्यन्त पुत्र, भरत सम यशपूर्ण होगा।।
धनुर्धरों में सहस्त्रबाहु, अर्जुन सम ही गणना होगी। योद्धाओं में गिनती इसकी, निज दादा पार्थ सम होगी।।
अग्नि समान नहीं सामना, कर पायेगा इसका कोई। गहरे सागर समान होगा, नहीं इसका पार पायेगा कोई।।

पराक्रमी हो सिंह समान, हिमाचल वत् हो आश्रय शील। धरती समान हो तपशील, हो मातु पितु सम सहन शील।।
समत्व में होगा ब्रह्मा सम, जो सारे जगत के पितामहान्। शंकर सा बन कृपालु यह, बरसायेगा कृपा महान्।।
आश्रयदाता यह लक्ष्मीपति, होगा श्री विष्णु समान। नहीं निराश कोई लौटेगा, जो भी आये कभी इसके धाम।।

सब सद्गुण ले निज महिमा, इसमें ही पधारेंगे। श्री कृष्ण के सम ही सारे गुण, स्वयम इसमे आ जायेंगे।।
रन्ति देव की उदारता, इसमें प्रकट हो जायेगी। ययाति सम धार्मिकता, इसमें रंग दिखायेगी।।
बलि समान यह कुल अंश, होगा धैर्य धारण किये। प्रल्हाद सम यह कृष्ण भक्त, होगा दृढ़ निष्ठा को लिए।।
अश्वमेध आदि यज्ञ, भी अनेक यह रचायेगा। सेवा करके वृद्धों की, यह बहु नाम कमायेगा।।

राजर्षि पुत्रों का पिता, भी आगे चलकर होगा। मर्यादा के रक्षण को, उचित दण्ड भी यह देगा।।
धरती माँ और धर्म की, रक्षा में यह तत्पर होगा। दमन करेगा कलियुग का, धर्म का यह रक्षक होगा।।
ब्राह्मण कुमार के क्रोध से, जब शापित हो जायेगा। तक्षक के दंश से मृत्यु को, जब जाने यह पायेगा।।
सब आसक्ति छोड़ के, यह प्रभु की शरण में जायेगा। उनका कृपा भाजन बनी, यह जीते जी तर जायेगा।।

व्यास सुत श्री शुक से यह, यथार्थ ज्ञान को पायेगा। उनकी कृपा से आत्म का, स्वरूप जान यह जायेगा।।
अन्त में गंगा तट पे जा, इस नश्वर तन को त्यागेगा। निश्चय ही हरि चरण में, अभय पद यह पा लेगा।।
सूतजी बोले,
ज्योतिष के ज्ञाता ब्राह्मणों ने, जन्म लग्न का फल कहा। युधिष्ठिर से दक्षिणा ले, निज गृह को प्रस्थान किया।।
परीक्षित नाम से वही शिशु, इस जग में प्रसिद्ध हुआ। प्रभु का दर्शन गर्भ में पा, सर्व सामर्थ वह बालक था।।
उनका सिमरन् करता हुआ, वह सब जग में विचरता था। देखूँ इन सबमें कौन है वह, यूं सबकी परीक्षा करता था।।

शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, ज्यों दिन दिन बढ़ता जाता है। प्रतिदिन निज कलाओं से, वह पूर्ण होता जाता है।।
वैसे ही यह राजपुत्र, क्रमश: जाते अनुदिन से। शीघ्र युवा ही हो गया, गुरुजन के लालन पालन से।।
इसी समय युधिष्ठिर भी, प्रायश्चित करना चाहते थे। स्वजन के वध के पाप से, कर यज्ञ उभरना चाहते थे।।
भगवान के पूजन के लिये, अश्वमेध करना चाहा। प्रजा से कर और दण्ड ही, आय का एको साधन था।।
यथेष्ट न होगा यह धन, इस कारण चिन्ता में पड़े। कैसे होगा यज्ञ अब, इस विक्षेप से व्यथित थे।।

उनका अभिप्राय जानकर, श्री हरि ने लीला करी। श्री कृष्ण से प्रेरणा पा, भाईयों ने यह यात्रा की।।
उत्तर दिशा में वह गये, बहुत सा धन उन्होने पाया। राजा मरुत्त और ब्राह्मणों का, परित्यक्त वह धन रे था।।
सहज ही राजा का उसपर, अधिकार हो यह शास्त्र कहें। परित्यक्त धन है राजा का, यह जान के सब वह ले आये।।

धन से लेकर पूजा की, सामग्री भी भगवान की। धर्म निष्ठ युधिष्ठिर ने, त्रि अश्वमेध यज्ञ कर दी।।
निमन्त्रण पा युधिष्ठिर से, श्री प्रभु वहाँ पधार गये। सम्पन्न किये ब्राह्मणों ने यज्ञ, बहु मास श्री हरि वहाँ रहे।।
हे शौनक तब भाइयों सहित, अनुमति पाई युधिष्ठिर की। बहिन को अपनी न भूले, ली द्रौपदी से भी सम्मति।।
थे बन्धुओं से वह घिरे, अर्जुन को भी संग लिया। श्री कृष्ण ने इस विधि, द्वारिका को प्रस्थान किया।।

८) कुन्तीकी प्रार्थना

सब भूतों के आन्तर स्थित, हैं बाहर भी आप ही। सदा एक रस सबमें स्थित, पर दर्शन में न आयें कभी।।
वृत्तियां इन्द्रियां न पहुंच सकें, प्रकृति परे हैं आदि पुरुष। नमन मेरा स्वीकार करो, हे पुरुषोत्तम परम पुरुष।।

इन्द्रियां जो भी जान सकें, वा सार रूप इक आप हैं। अपनी ही माया से प्रभो, आवृत्त निज को करें आप हैं।।

मैं अबोध अबला नारी, कैसे आपको जान सकूं। मुझमें ताब ही है कहां, जो आपको पहचान सकूं।।
ज्यों भिन्न वेश धारण किये, नट पहचान में न आये। प्रत्यक्ष तो है वह दीख रहा, पर पहचान कोई न पाये।।
वैसे ही सबमें विद्यमान, पर सबसे छिपकर रहते हैं। अगम्य स्वरूप अगोचर है, सब शास्त्र वेद यही कहते हैं।।

शुद्ध चित जो भक्त हैं, विचार शील विवेकी जन। जीते जी ही मुक्त हैं, वह ही जीवन में परम हंस।।
उनके हृदय में प्रेममयी, भक्ति के सुधा रस सृजन को। आपने है अवतार लिया, प्रेम दान उन्हें देने को।।
बड़े बड़े योगी ज्ञानी, ध्यानी न आपको जान सकें। फिर मुझ जैसी अबला अज्ञा, मूढ़ा कैसे पहचान सके?
वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण हे, हे देवकी नन्दन नमस्कार। नन्द के लाड़ले गोविन्द को, प्रणाम हमारा बार बार।।

श्री नाभि से प्रकटा कमल, ब्रह्मा को करे वह है धारण। सुन्दर कमलों की माला, कण्ठ में आप करें धारण।।
करुणा से हर पल है कोमल, नयनाविशाल हैं ज्यों हो कमल। चरणों में जिनके बना, पद्म चिन्ह जो अमल।।
ऐसे श्री कृष्ण को बार बार, स्वीकार हो मेरा नमस्कार। नतमस्तक हो कर जोड़ी, करूं नमन मैं बार बार।।

चिरकाल से कंस की कारागार में, शोक ग्रसित थी देवकी। कँस को मार के हृषिकेश, आपने देवकी मुक्त करी।।
इसी विधि पुत्रों सहित, मुझे बार बार उभारा है। जब जब विपदा ने घेरा, दिया आपने ही सहारा है।।
हैं सर्वसमर्थ शक्तिवान्, आप हमारे हैं स्वामी। कैसे करूं गणना हे कृष्ण, जहां जहां आपने रक्षा की।।
विष से बचाया आपने, प्रचण्ड अग्नि लक्षागृह की। हिडम्बादि राक्षसों से, दुष्टों की द्यूत सभा से भी।।
वन में जो आई बाधायें, आपने ही बचाया हमें। अनेकों युद्धों में भी तो, महारथियों के शास्त्रों से।।
अभी अभी भी अश्वत्थामा, ने ब्रह्मास्त्र जो था छोड़ा, आपने ही तो श्री हरि, उसके प्रहार से की रक्षा।।

हे जगदगुरो हे श्री हरि, मैं बिनती आपसे करती हूं। पग पग पे दु:ख आते रहें, इतना ही मैं चाहती हूँ।।
क्योंकि दु:ख ही वह साधन है, आपसे जो मिलाता है। जब जब घेरे विपरीतता, तो दर्शन मन यह पाता है।।
आपके दर्शन पा करके, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जन्म मरण के चक्र में, पुन: जीव नहीं आते हैं।।
धन सम्पद ऐश्वर्य संग, उच्च कुल और उच्च विद्या। इनका मान है जिस मन में, नित्य गुमान ही बढ़ रहा।।
ऐसा अभिमानी आपका, नाम भी कभी न ले पाये। अकिंचन कोई विनम्र ही, आपके दर्शन कर पाये।।

निर्धन के हैं परम धन, निर्बल का बल आप हैं। माया प्रपंच से परे सदा, मायापति ही आप हैं।।
आत्माराम अपने में बसें, शान्त स्वरूप ही आप हैं। कैवल्य मोक्ष के अधिपति, सबके त्राता आप हैं।
परम पुरुष पुरुषोत्तम आप, प्रेम स्वरूप परम पति। नमस्कार करूं बार बार, हैं आप ही एको मेरी गति।।

हैं आप अनादि और अनन्त, नियन्ता सबके सर्वव्यापक। काल रूप परमेश्वर आप, जानूं मैं आपको ही रक्षक।।
सब प्राणी और पदार्थ जग के, आपस में टकरा रहे। परस्पर विरोध के कारण वह, चैन कहीं न पा रहे।।
इन सबमें समभाव से, आप स्वयं समा रहे। परस्पर विरोधी भावों में, एक रस सदा विचर रहें।।

मनुज रूप जब धर कर के, लीला आप ही करते हैं। कोई समझ न पाये प्रयोजन, क्योंकर किस विधि सब करते हैं।।
नहीं कोई प्रिय या अप्रिय, समभाव में सदा विचरते हैं। नहीं बुद्धि की वहां पहुंच कहीं, भ्रमित हुए सब रहते हैं।।

विश्वास आप हैं विश्व रूप, न जन्म लें न ही कर्म करें। फिर भी सब में ही आप बसें, और सब योनि का रूप धरें।।
पशु पक्षी नर या ऋषि, या जलचर बन कर जन्म लें। उस उस योनि में आकर, अनुरूप ही दिव्य कर्म भी करें।।
यह लीला है आपकी, पार कोई न पा सके। मुझ जैसी मूढ़ा अबला, कैसे गुण तोरा गा सके।।

तोरे बचपन की याद आज, हृदय में मेरे उभर रही। दूध की मटकी फोड़ी जब, यशुमति अति कुपित हुई।।
हाथ में रस्सी लेकर वह, तुझको बान्धन थी चली। अश्रु से नयना भर आये, काजल कपोल पर बह निकली।।
चँचल चितवनपूर्ण मुखड़ा, था नीचे को झुका लिया। मानो मैया के क्रोध ने, तुमको था भयभीत किया।।
उस लीला छवि को याद कर, मेरा मन पुलकित हो उठा। भय भी नित जिससों भय माने, कैसी है यह उसकी क्रीड़ा।।

नित्य अजन्मा होकर भी, किस कारण धरा पे जन्म लिया। बड़े बड़े विद्वज्जन ने, भी इसका पार नहीं पाया।।
कोई महापुरुष इसका, राज यूं समझाते हैं। धरती पर प्राकट्य का, वह रहस्य बताते हैं।
ज्यों मलयाचल कीर्ति, विस्तृत करने के लिये। उत्पन्न हो वहां चन्दन, मन्द मन्द सुगन्ध लिये।।
इसी विधि निज प्रिय भक्त, राजा यदु की कीर्ति को। उसके कुल में अवतार लिया, उज्ज्वल उससे वह कीर्ति हो।।

कोई अन्य कहें इस विधि, बात है पूर्व जन्म की। देवकी और वसुदेव ने, आप से यह वर थी मांगी।।
इस कारण हो के अजन्मा भी, उनके घर है जन्म लिया। जग कल्याण औ असुरों के, नाश को है यह रूप धरा।।
यह पृथ्वी जब दैत्यों के, भार से दबी थी जा रही। ज्यों डूबन लागे नौका, थी यह डगमगा रही।।
पीड़ित थी बहु आकुल थी, अत्याचारों से दैत्यों के। ब्रह्माजी ने याचना करी, अब आप ही इसका कष्ट हरें।
अन्य कहें इस कारण ही, श्री हरि ने यह रूप धरा। भूमि का भार उतारन को, आपने है अवतार लिया।।

अज्ञान कामना कर्मों के, बन्धन में हैं जो पड़े। इस संसार में हर क्षण ही, पीड़ित हैं जो हो रहे।।
महापुरुष यह कहते हैं, उनका कल्याण ही करने को। आपने हे अवतार लिया, दुखड़ा उनका हरने को।।
निज लीला धरती पर कर, उनको यह अवसर दिया। श्रवण स्मरण से लीला के, पावन हो अब चित्त उनका।।

श्रवण गान तव चरित का, स्मरण कीर्तन भक्त करें। पल पल आपको याद कर, आनन्दित जग में ही रहें।।
शीघ्र ही वह जन आपके, श्री चरण का दर्शन पाते हैं। जन्म मरण के चक्र से, वह तत्क्षण उठ जाते हैं।।
हे कल्पतरु भक्तों के प्रभु, अपने ही बन्धु और आश्रित। क्यों छोड़ के जाना चाहो अब, हम सबको जो हैं शरणागत।।
नहीं अन्य आसरा कोई हमें, चरणों के सिवा हे प्रभु मेरे। पृथ्वी के राजा गण सारे, हमरे विरोधी हैं हुए।।

बिन प्राणों के इन्द्रियां सब, शक्तिहीन ज्यों हो जायें। यदुवंशी और पाण्डवों की, गति भी वैसी हो जाये।।
बिना आपके दर्शन के, है उनका नाम औ रूप क्या। आपके श्री सम्पर्क बिना, अस्तित्व ही उनका कहाँ रहा।।
हे विष्णु रूप गदाधर हे, चरण चिन्ह से आपके। हर पल शोभित है हो रही, कुरु देश की भूमि यह।।
प्रस्थान किया गर आपने, यह महिमा रह न पायेगी। आपके जाने से हे प्रभु, यह श्री हीन हो जायेगी।।

आपकी करुणा दृष्टि पा, देश में है सब हरा हुआ। धन धान्य और लता वृक्ष, से है यह सब भरा हुआ।।
यह वन पर्वत नदियां सागर, सब समृद्धि पा रहे। आपकी कृपा दृष्टि से, हैं पल पल वृद्धि पा रहे।।

हैं ब्रह्माण्ड के स्वामी आप, हे विश्व रूप विश्वात्मा। यदुवंशी और पाण्डवों की, ममता में फंसी मेरी आत्मा।।
स्वजन के संग स्नेह का, जो यह बन्धन जुड़ गया। आपकी करुणा के बिना, हे यादव कैसे टूटेगा?
कृपा करो अब आप ही, इस बन्धन को काट दो। स्नेह पाश में बन्धी हुई, मुझ अबला को उभार दो।।

ज्यों गंगा की अखण्ड धार, सागर बीच समा जाये। लाख प्रलोभन भी राह के, बदल न उसकी दिशा पायें।।
हे माधव यह बुद्धि मेरी, कहीं अन्य देख ही न पाये। आपके प्रेम में रत रहे, और आप में ही समा जाये।।
हे अर्जुन के प्रिय सखा, हे यदुवंश के शिरोमणे। राजवेश धारी जो असुर, पृथ्वी पर हैं भार बनें।।
भस्मीभूत उन्हें करने को, अग्न रूप प्रभु आप हैं। अनन्त वीर्य गोविन्द हे, धरती के हरें सब पाप हैं।।
गौ ब्राह्मण और देवों के, दु:ख मिटाने के लिये। है धारण अवतार किया, करूं बार बार मैं नमन तुझे।।

सूतजी बोले,
बहु मधुर स्वरों में जब, कुन्ती ने प्रभु लीला गाई। माया से मोहित करने को, प्रभु के मुख पर मधु स्मित छाई।।
कुन्ती के इस प्रेमाग्रह को, प्रभु नहीं फिर टाल सके। रथ से उतर के श्री हरि, हस्तिनापुर को लौट आये।।
वहां पहुंच जब कुन्ति औ, सुभद्रा से पुन: ली विदा। उनके जाने से पहले, सप्रेम युधिष्ठिर ने रोका।।

भाई बान्धव की मृत्यु से, धर्मराज बहु व्याकुल थे। कुल का नाश हो जाने पर, वह थे शोक निमग्न हुए।।
भागवत् लीला के मर्म के, ज्ञाता ऋषि श्री व्यास आदि। आश्चर्यमय हैं चरित जिनके, उन कृष्ण ने भी उन्हें ज्ञान दी।।
इतिहास की साक्षी देकर के, समझाने की बहु चेष्टा की। सान्त्वना पर नहीं मिली, और न ही उनकी शोक मिटी।।

हे ऋषिवर शौनक सुनो, धर्मराज अति व्याकुल थे। स्वजनों के हनन से, हुए अति चिन्ता आतुर थे।।
मोहपाश वशीभूत हुए, अविवेक वहां उभर आया। उसके प्रभाव में आकर के, धर्मराज ने फिर शोक किया।।
कैसे इस अज्ञान ने, दुरात्मा मुझको ढक लिया। इस क्षणभंगुर तन के लिये, कैसा मैंने कुकर्म किया।।
अनित्य अनात्म यह तन जो, पशुओं के योग्य आहार है। उसके कारण अनेक अक्षौणी, सेना का संहार किया।।

बालक ब्राह्मण बन्धु मित्र, चाचा ताऊ और गुरुजन से। द्रोह है मैंने किया, ऐसा भीषण युद्ध करके।।
इस पाप से कभी भी अब, छूट नहीं मैं पाऊंगा। कोटि वर्ष पर्यन्त भी, नरकों में झुलसता जाऊंगा।।
यद्यपि शास्त्र की उक्ति है, धर्मयुद्ध गर राजा करे। प्रजा पालन के लिये, शत्रु को यदि वह मारे।।
पाप का भागी न वह बने, यह तो उसका कर्त्तव्य है। पर इतना सब सुनने पर भी, मनो ताप न शान्त हुआ मेरा।।

स्त्रियों के पति भाई बान्धव, को मार के मैं अपराधी हुआ। गृहस्थोचित यज्ञ याग, आदि से मार्जन न होगा।।
ज्यों कीचड़ का गन्दा जल, स्वच्छ पुन: नहीं हो सके। मदिरा कभी मदिरा की, अपावनता न धो सके।।
वैसे ही हिंसायुक्त अनेक, यज्ञ भी चाहे किया करूं। इक प्राणी की हत्या का, भी न प्रायश्चित कर सकूं।।

९) भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति और उनका परलोक प्रयाण

भयभीत हुए धर्मराज, कहीं प्रजा द्रोह न हो जाये। सब धर्मों का ज्ञान जानने, कुरुक्षेत्र को वह आये।।
वहां पितामह भीष्म, थे शरशय्या पे पड़े। उत्तरायण में चले सूर्य, प्रतीक्षा में थे प्राण अड़े।।

हे शौनक आदि ऋषि, तब सब भाइयों ने मिलकर। सुन्दर घोड़ों से जुते, स्वर्णजटित निज रथों पर।।
होकर सवार अनुगमन किये, निज भ्राता युधिष्ठिर के। उनके संग श्री व्यास धौम्य, आदि ब्राह्मण भी चल दिये।।

अर्जुन के साथ उसके रथ पे, थे सवार श्री कृष्ण भी। सब भाइयों से घिरे हुए, युधिष्ठिर की शोभा बनी।।
जैसे धर्मराज स्वयं, कुबेर ही हों जा रहे। मानो यक्षों से वह घिरे, कुरुक्षेत्र को चल दिये।।

निज अनुचरन् के संग पाण्डव, उस क्षेत्र में जा पहुंचे। श्री कृष्ण को साथ लिये, भीष्म सम्मुख वह आ पहुंचे।।
भीष्म पितामह उस समय, धरती पर थे पड़े हुए। जैसे कोई देवता ही, हों स्वर्ग से आ पड़े।।
सबने मिलकर के उनके, चरणों में प्रणाम किया। शरशय्या पर थे वह पड़े, आशीर्वाद उनसे लिया।।

भरतवंश के गौरव का, दर्शन पाने के लिये। ब्रह्मर्षि और देवर्षि, राजर्षि वहां आ पहुंचे।।
पर्वत नारद श्री धौम्य व्यास, वृहदश्च भारद्वाज आए। शिष्यों सहित श्री परशुराम, वसिष्ठ इन्द्रप्रमद आए।।
त्रित गुत्समद असित कक्षिवान्, गौतम अत्रि विश्वामित्र। सुदर्शन और शुकदेव भी, अन्य महात्मन् शुभ्र चित्त।।
शिष्यों सहित श्री कश्यप, अंगिरासुत बृहस्पति सहित। सबके सब वहां आ पहुंचे, देखने को यह दिव्य दृश्य।।

धर्म देश और काल विभाग के, भीष्म थे परम ज्ञाता। कहां पे कब क्या करना है, इस सब रहस्य के थे ज्ञाता।।
बड़भागी ऋषियों को देख, यथायोग्य सत्कार किया। बाणों की शैय्या से ही, नमस्कार उन्हें किया।।
श्री कृष्ण के प्रभाव को भी, भली भाँति वह जानते थे। अपनी लीला से मनुजवेश, धारी प्रभु को पहचानते थे।।
जगदीश्वर के रूप में वह, सबके हृदयों में विराजमान्। आन्तर बाह्य दोनों ही, रूपों को पूजा उन्होने महान्।।

विनय भाव और प्रेम को, अपने हृदय में लिये हुए। श्री पितामह चरण में, सब ही पाण्डव जा बैठे।।
उन्हें देखकर भीष्म की, आंखों में अश्रु भर आये। प्रेमाद्र हृदय से वह, उनको यूं कहने लगे।।
भीष्म बोले,
धर्म के ही वंशज हो आप, हुआ बहुत कष्ट और अन्याय। श्री हरि के आश्रित होकर भी, सब अत्याचार सहने पड़े।।
ब्राह्मण धर्म और प्रभु के, तुम तो नित्य ही आश्रित थे। कष्ट जो तुम सबने झेले, हाय तुम उस योग्य न थे।।
अतिरथि श्री पाण्डु जब, इस धरती को त्यज गए। नन्हें नन्हें शिशु थे तुम, इस सन्ताप को न सह सके।।
माता कुन्ती ने आपके, लिये बहुत की कष्ट उठाये। तुम सबको भी बार बार, सभी दु:ख थे घेर रहे।।

जैसे आकाश में हों बादल, वायु के वशीभूत रहें। लोकपालन् के संग सब, संसार ही काल के वश में रहे।।
मैं मानूं तव जीवन में, अप्रिय जो भी घटना हुई। किसी की करनी वह नहीं, वह तो सब काल की लीला थी।।
युधिष्ठिर के रूप में, जहां धर्मराज विराज रहे। गदाधर भीम और अर्जुन, धनुर्धर जिनकी रक्षा करें।।
गाण्डीव भी पास में हो, और कृष्ण आपके सुहृद् हों। ऐसे में भला क्योंकर, विपत्ति की सम्भावना हो।।

काल रूप में श्री हरि, कब क्या करना चाहते हैं। कृष्ण के इस रहस्य को, कोई न जान पाते हैं।।
बड़े बड़े ज्ञानी जन भी, मोहित हैं इससे हुए। इस गुह्य रहस्य को, जान कोई भी नहीं सके।।
हे युधिष्ठिर इस जग में, अधीन है सब परमेश्वर के। उसकी इच्छा बिन कुछ न हो, हो सब उसके ही इशारे पे।।

उनका आदेश ही मान कर, तुम अपनी प्रजा पालन करो। तेरी उपेक्षा को पाकर, प्रजा यह कहीं न अनाथ हो।।
अब तुम ही स्वामी हो इसके, और तेरा ही कर्त्तव्य है यह। पालन पोषण इसका करना, है तुममें सामर्थ्य यह।।

साक्षात् हरि आप स्वयं, प्रकटे हैं कृष्ण के रूप में। आदि कारण यह हैं सबके, श्रीमन्नारायण रूप में।।
अपनी माया का जाल बिछा, मोहित हैं सबको कर रहे। यदुवंश में छिपे हुए, यह लीला अपनी कर रहे।।
अति गुह्य और रहस्यमय, इनका प्रभाव कोई न जाने। प्रभु शंकर श्री देवर्षि, मुनिवर कपिल ही पहचानें।।

मातुल्य अपना प्रिय सखा, और महा हितु जिसे माने हो। प्रेम के हो वशीभूत तुम, संकोच तनिक न माने हो।।
कभी मन्त्री कभी दूत निज, कभी सारथी भी बना लिया। हो तब अधीन वह काज करे, नहीं इसमें भी आई लज्जा।।
हैं त्रिभुवन के स्वामी वे, सर्वोत्तम परमात्मा। सबके हृदयों में बैठे, वे सबकी बन आत्मा।।

यह सर्वात्म अद्वितीय, समदर्शी निष्पाप हैं। सबमें बसें यह आत्म रूप, अहं रहित यह आप हैं।।
जो भी सामने आ जाये, वैसा ही वह काज करें। सब करके भी हे वत्स सुनो, नहीं विषमता वहां कोई रहे।।
सर्वत्र समदृष्टि वे हैं, नित्य समत्व में टिके रहें। अनन्य प्रेमी भक्तों पर, फिर भी इतनी कृपा करें।।
यह कृपा सिन्धु तो इस पल भी, ऐसी करुणा हैं कर रहे। मेरे प्राण पिण्ड त्यजने को हैं, यह जान के दर्शन मुझे दिये।।

भागवत परायण योगी जो, इनमें ही अपना चित्त धरें। वाणी से इनके नाम का, कीर्तन ही जो नित्य करें।।
इनके ध्यान में चित्त टिका, तनो त्याग जो करते हैं। कर्म और कामना के, बन्धन से मुक्त वे होते हैं।।
देवादिदेव वह श्री हरि, प्रसन्न हास्य मुख पे लिये। रक्तकमल सम अरुण नेत्र, कान्ति से शोभित हुये।।
चतुर्भुजा धारी वह आप, विकसित कमल सा मुख लिए। जो केवल हैं ध्यान गम्य, अपने भक्तों के लिए।।
प्रतीक्षा करें इस रूप में, वह श्री हरि सम्मुख मेरे। इक क्षण को भी ओझल न हों, जब लग न प्राण इस तन को त्यजें।।
सूतजी बोले,
बाणों की शैय्या पर लेटे; श्री भीष्म से युधिष्ठिर ने। यह सुनकर नाना प्रश्न किये, धर्मादि के सम्बन्ध में।।
तत्त्ववेत्ता पितामह, भीष्म ने उसे उपदेश दिया। वर्णाश्रम अनुकूल उसे, सहज स्वभाविक धर्म कहा।।
राग और वैराग्य के, परिणाम भिन्नही कह दिये। प्रवृत्ति औ निवृत्ति रूप, द्विविध धर्म भी कह दिये।।
फिर अन्य सब धर्मों का, अलग अलग विस्तार किया। दान राज्य और मोक्ष धर्म, स्त्रभ और भागवत धर्म कहा।।

हे शौनक इसके साथ साथ, मोक्ष धर्म अर्थ और काम। इन सबका वर्णन किया, किया प्राप्ति साधन का आख्यान।।
इन सबकी प्राप्ति के, साधन भी बता दिये। इतिहास के साथ साथ, विभागशः सब वर्णन किये।।
इस प्रकार जब धर्म का, आख्यान था हो रहा। जिसकी प्रतीक्षा में प्राण रुके, उत्तरायण में सूर्य चला।।
मृत्यु को वशीभूत किये, भगवत्परायण जो योगी। अन्तिम स्वासा त्यजने को, करें प्रतीक्षा उस पल की।।

सहस्त्रों रथियों के स्वामी, श्री भीष्म पितामह ने। मौन ही तब धारण किया, मन को संयम में करके।।
मन का सब ओर से निग्रह कर, उसे कृष्ण चरण में दिया लगा। आदि पुरुष पुरुषोत्तम का, विग्रह था सम्मुख खड़ा।।
सुन्दर चतुर्भुज रूप पे, था पीताम्बर लहरा रहा। एकाग्र करी निज ध्यान को, नयनों को उनपे टिका दिया।।

अस्त्रों शस्त्रों के वार से, आहत था जो उनका तन। सारी पीड़ा हो गई दूर, जब श्री चरणों में टिका वा मन।।
इतना सब हो जाने पर, जो भी अशुभ थे शेष बचे। विशुद्ध धारणा से प्रभु की, पल में नष्ट वह हो गये।।
तन त्याग की बेला जान, रोका इन्द्रियों का वृत्ति विलास। प्रेम प्रस्फुटित हुआ हिय में, प्रभु गुण गाने लगा हर स्वास।।
भीष्म बोले,
जीवन पर्यन्त अनेकों साधन, और अनुष्ठान किये। कामना रहित ही होकर के, अब बुद्धि यह शुद्ध भये।।
अब अन्तिम बेला इसको, श्री कृष्ण समर्पित करता हूं। यदुवंश शिरोमणि जो अनन्त, श्री हरि चरण में धरता हूं।।
सदा सर्वदा स्थित हैं वह, आनन्दमय स्वरूप में। लीला विलास की इच्छा से, कभी प्रकृति को वह स्वीकार करें।।
उनके इस रास विलास से, यह सृष्टि चक्र है चल रही। एक रस वह नित्य स्थिर, धरें अनेकों रूप भी।।

तीनों लोकों का सौन्दर्य, जिस तन में सिमट कर आया है। श्याम वर्ण तमाल का, उनपे बहुत सुहाया है।।
सूर्य रश्मि सम पीताम्बर, उसपे है लहरा रहा। मुख मण्डल को घेरे हुए, है कुण्डल केश का जाल बिछा।।
अर्जुन के सखा उस कृष्ण में, प्रीति मेरी निरन्तर हो। निष्काम और निष्कपट प्रेम, की प्रतीति निरन्तर हो।।

विलक्षण छवि युद्ध क्षेत्र की, आज हिय में पुन: उभरी। निहार के ऐसी मधुर छवि, मम प्राणा वा चरण पड़ी।।
धूलि से हो गये धूसरित, अश्व टाप के संग संग। मुखड़े पर लहराते कुण्डल, जब रथ को हांका सारथी बन।।
श्वेद् बिन्दु के अुणतम कण, थे शोभित उज्ज्वल भाल पे। बेध रहा था उनका तन, मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से।।
कवच धारी सौन्दर्य मूर्ति, श्री कृष्ण चरण में अर्पित हों। तन मन अन्त: करण सभी, मम आत्म सहित समर्पित हों।।

सखा अर्जुन के कथन को, तुरन्त ही जिनने मान लिया। कौरव पाण्डव सेना के मध्य, रथ को लाकर खड़ा किया।।
वहां पहुंच निज दृष्टि से, ही आयु शत्रु की क्षीण करी। उन पार्थ सखा श्री कृष्ण में, रहे मेरी सदा परम प्रीति।।

उस रथ पर बैठे अर्जुन ने, जब योधाओं को देखा। कौरव सेना के अधिपति, सामने हम सबको देखा।।
स्वजन वध को पाप मान, वह मुखड़ा मोड़ के बैठ गया। नहीं करूंगा युद्ध यह कह, धनुष छोड़ के बैठ गया।।
उस बेला झझकोरा उसे, था आत्म ज्ञान का उपदेश दिया। उनकी बातों को सुनकर, अर्जुन का मोह भ्रम दूर हुआ।।
इस पल इतना ही चाहूँ, कृपा दृष्टि वा बनी रहे। उन श्री कृष्ण के चरणों में, मेरी प्रीति बनी रहे।।

प्रतिज्ञा थी मैंने यह ली, श्री कृष्ण को उठवाऊंगा शस्त्र। मेरा वचन यह निभ जाये, तोड़ दिया अपना प्रण।।
रथ से वह नीचे कूद पड़े, ज्यों सिंह झपटा हो हाथी पर। रथ का पहिया हाथ में ले, तब उन्होने वार किया मुझ पर।।
इतनी गति से भागे वह, अँग वस्त्र था लुढक गया। उनके क्रोध को देखकर, धरती का कण कण कांप गया।।

मुझ आतताई के बाणों ने, कवच था उनका भग्न किया। इससे सम्पूर्ण तन उनका, रक्त से था रंजित हुआ।।
बहु रोका उन्हें पार्थ ने, पर मेरी ओर दौड़े आये। उद्यत थे मुझे मारने को, वह किसी विधि न रुक पाये।।
ऐसा करने में मेरे प्रति, वात्सल्य और अनुग्रह था भरा। वही कृष्ण मेरी एको गति, हों एक वही मेरा आसरा।।

अर्जुन के रथ को सम्भाले हुए, प्रभु थे बहुत ही सावधान। वाम हस्त थी अश्व रास, दायें में चाबुक शोभावान्।।
दोनों हाथों की शोभा से, छवि अपूर्व थी बन रही। उनके दर्शन मात्र से, मुक्त हुए वहां वीर सभी।।

उन पार्थसारथी कृष्ण में, रहूं निमग्न मैं मरणासन्न। परम प्रीति में उनकी ही, अब स्वास मेरे डूबें हर क्षण।।

माधुरी चितवन मनहर चाल, करे जिनकी गोपीगण को निहाल। चेष्टा में प्रेम के हाव भाव, मधु स्मित हरे वा चित्त तत्काल।।
जब रास लीला के मध्य से, श्री हरि अन्तर्धान हुए। अति सम्मानित गोपिकागण, हुईं मत्त प्रेमोन्माद से।।
जिनकी लीला अनुकरण कर, हो गईं थीं तन्मय गोपिकागण। उन प्रभु श्री कृष्ण में, हो प्रीति मेरी अब अनन्य।।

युधिष्ठिर की सभा में जब, राजसूय था यज्ञ हुआ। मुनिश्रेष्ठ और राजाओं से, भरी हुई थी वह सभा।
सबसे पहले दर्शनीय प्रभु, की हुई अग्रपूजा। सबकी ओर से इनके ही, अर्चन को मैंने देखा।
वही सबके आत्म स्वरूप प्रभु, अति अनुग्रह कर सम्मुख खड़े। देह त्यजन की बेला आज, वह मुझको दर्शन दे रहे।।

ज्यों एक सूर्य आकाश में, अखण्ड अभेद है चमक रहा। दृष्टि भेद के कारण ही, अनेक रूप है दीख रहा।।
त्यों ही अजन्मा श्री कृष्ण, अखण्ड रस वह एक हैं। रचना करें निज माया से, तनधारी की अनेक हैं।।
हर हृदय में स्थित हैं वह, पर भिन्न रूप से भासे हैं। नाम रूप के भेद से, दीखें रूप अनेकों हैं।।
वास्तव में सब हृदयों में, वह एक ही हैं विराजमान्। सब भेद भ्रम से रहित हो, हुआ आज उन्हें मैं प्राप्तवान्।।
सूतजी बोले,
मन वाणी और दृष्टि की, वृत्तियों को एकाग्र कर। इस विध श्री पितामह ने, निज को लय दिया कृष्ण में कर।।
प्राण उनके तन को त्यज, श्री हरि में ही समा गये। एक रूपता उनसे हुई, वह परम शान्ति पा गये।।
अनन्त में लीन हुआ देखी, सब जन मौन ही हो गये। ज्यों सूर्य अस्त हो जाने पर, पक्षी कलरव सब शान्त भये।।

फिर देव मनुज सब मिलकर के, नगाड़े वहां बजाने लगे। साधु स्वभाव राजा मिलकर, प्रशंसा उनकी गाने लगे।।
देवता गण आकाश से, पुष्प वहाँ बरसाने लगे। महावीर पितामह को, श्रद्धांजलि ज्यों हो चढ़ाने लगे।।
हे शौनक तब धर्मराज ने, मृत तन के संस्कार किये। क्रिया कर्म सब विधिवत् कर, वह पुन: शोक में डूब गये।।

उन सब ऋषि मुनियों ने तब, श्री कृष्ण कीर्तन गान किया। आनन्दपूर्ण हृदय से उन, रहस्यपूर्ण वह नाम लिया।।
तत्पश्चात् हृदयासन पे, श्री हरि को स्थापित किया। श्री कृष्णमय ही हृदय बना, निज आश्रमों को प्रस्थान किया।।
फिर श्री हरि को संग ले, युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटे। सती गान्धारी और चाचा को सान्त्वना देने लगे।।
धृतराष्ट्र से आज्ञा पा, और श्री कृष्ण की अनुमति से। कुरु साम्राज्य पे धर्मपूर्वक, वह शासन करने लगे।।

१०) श्रीकृष्णका द्वारिकागमन

लोभ से लोलुप बान्धवों ने, पैतृक साम्राज्य हरना चाहा। आततायियों को नष्ट कर, फिर धर्मराज ने क्या किया।।
अपने भाइयों को साथ ले, किस विध शासन उसने किया। कौन काज उसने किये, भोगों में चित्त प्रवृत्त न था।।
पूर्ण सृष्टि को धर्म से उज्ज्वल श्री हरि करते हैं। परस्पर के क्लेश सभी, अपनी कृपा से हरते हैं।।
कलह अग्न से तप्त वंश, स्थापित उन्होने पुन: किया। युधिष्ठिर को सिंहासन दे, चित्त उनका अति मुदित हुआ।।

पितामह और श्री कृष्ण के, उपदेशों को उन्होने श्रवण किया। विज्ञान उदय आन्तर में हुआ, और मोह भ्रम दूर हुआ।।
श्री हरि के आश्रित होकर, शासन वह करने लगे। सागर पर्यन्त पृथ्वी पर, इन्द्र सम विचरने लगे।।

अनुज भी वा परायण थे, भीमसेन आदि सभी। पूर्ण रूप से ही सब, आज्ञा पालन के थे धनी।।

धर्मराज के राज्य में, होती थी पूरी वृष्टि। समस्त अभीष्ट पदार्थ भी, देती थी उन्हें पृथ्वी।।
बड़े बड़े स्तन वाली गौ, दूध बहाती रहती थीं। अति मुदित हो गोशाला, वे दूध से सींचती रहतीं थीं।।
प्रकृति भी धर्मपूर्ण राज्य में, पूर्ण ही सहयोगी थी। सरिता सागर वनस्पति, पर्वत सब ऋतु अनुकूल थी।।
लतायें और औषधियाँ भी, किसी विधि न पीछे थीं। यथेष्ट रूप से सब अपनी, वस्तु राजा को देती थी।।

अजातशत्रु युधिष्ठिर के, राज्य में सब जन थे सुखी। कोई भी प्राणी आधि-व्याधि नहीं था दु:खी।।
दैविक भौतिक और आत्मिक, क्लेश का भी कहीं नाम न था। धर्मपूर्ण उस राज्य में, अधर्म का कोई काम न था।।
भाइयों का शोक मिटाने को, भगिनी का मन बहलाने को। हस्तिनापुर में ठहरे कृष्ण, अनेकों मास बिताने को।।

फिर राजा युधिष्ठिर से, अनुमति ली द्वारिका जाने की। हृदय से उन्हें लगाकर के, राजा ने उनको अनुमति दी।।
उनको प्रणाम करके प्रभु, अपने रथ पे जो हुए सवार। सम आयु उन्हें गले मिले, कुछ छोटों ने किया नमस्कार।।
उस समय का दृश्य जो, था हृदय विदीर्ण कर रहा। द्रौपदी कुन्ती और उत्तरा, धृतराष्ट्र गान्धारी सुभद्रा।।
युयुत्सु और कृपाचार्य, भीम नकुल और सहदेव। धौम्य मुनि और सत्यवती, सबके सब हो गये निश्चेष्ट।।
शारंगपाणि श्री कृष्ण का, वियोग नहीं वह सह सके। उनके जाने का दृश्य देश, मूर्छित से वह हो गये।।

सत्पुरुषों के संग से, कुसंग है जिसका छूट चुका। विचार शील वह पुरुष है, जो भगवान का भक्त हुआ।।
जिसने मनोहर यश उनका, एक बार भी सुन लिया। फिर कल्पना में भी कभी, विमुख उनसे वह नहीं हुआ।।
उन्हीं श्री हरि के दर्शन नित्य, और स्पर्शन् जिन्हें मिले। संग अलाप शयन भोजन, के अवसर हैं जिन्हें मिले।।
जिनका सम्पूर्ण जीवन ही, प्रभु को समर्पित हो चुका। कैसे सहते वे पाण्डव, फिर श्री कृष्ण की विरह व्यथा?

चित्त द्रवित हो आंखों में, मानो अश्रु बन भर आया। प्रभु के श्री मुख कमल पर, निर्निमेष था ध्यान टिका।।
स्नेह बन्धन में बन्धे हुए, वे जहाँ तहाँ थे दौड़ रहे। श्री कृष्ण छोड़ के जा रहे, अब उनको किसकी ठौर रहे?
सब स्त्रीगण के नयनां, उत्कण्ठा वश थे भर आये। घर से जाता देख कृष्ण को, हृदय थाम वह न पायें।।
कहीं यात्रा के आरम्भ में, अपशकुन न हो जाये। ऐसा सोच के सबने ही, वह अश्रु नयन में रोक पायें।।

प्रस्थान बेला श्री कृष्ण की, कोलाहल होने लगा। मृदंग शंख भेरी वीणा, नाद सभी का होने लगा।।
ढोल नरसिंघे धुन्धुरी, नगारों की ध्वनि गूंज उठी। घण्टे और दुन्दुभियाँ भी, मंगल ध्वनि गूँज उठी।।
दर्शन की लालसा लिये हुये, थीं स्त्रियाँ जो कुरूवंश की। ऊँचे ऊँचे भवनों की, अटारियों पर जाय चढ़ी।।
लज्जा प्रेम मधुर मुस्कान, की चितवन बिखेरतीं। श्री हरि का दर्शन पाकर, पुष्पों की वर्षा करने लगीं।।

गुड़ाकेश वा प्रिय सखा ने, प्रियतम कृष्ण के छत्र को। हाथ में धारण किया, श्वेत, शुभ्र मंगल था जो।।
रत्न जटित वा दण्ड था, मुक्तावली थी लटक रही। उस छत्रधारी श्री कृष्ण की, छवि थी अति अनुपम बनी।।
उद्धव और सात्यकि मिल, चँवर विचित्र झुलाने लगे। मार्ग में श्री भगवान पर, फूल भी बरसाने लगे।।
अति मधुर वह झाँकी थी, प्रभु के इस प्रस्थान की। हस्तिनापुर को छोड़कर, प्रभु के द्वारिका गमन की।।

जहाँ तहाँ ब्राह्मणगण के, आशीर्वचन थे गूंज रहे। उनके सारे वचन ही, सगुण ब्रह्म अनुरूप थे।।
सब गुण वह धारण करें, पर सब करके कुछ नहीं करे। प्रकृति गुण से हैं वह परे, वह निर्गुण के अनुरूप न थे।।
चित्त था जिनका कृष्णमय, कुल स्त्रियाँ हस्तिनापुर की। निज वार्तालाप में मग्न थीं। आकर्षित सबको कर रहीं।।
स्त्रियाँ बोली,
सखियों यह हैं वही परम पुरुष, सनातन और यह नित्य रहें। प्रलयकाल में भी अपने, अद्वितीय रूप में स्थित रहें।।
उस पर यह तीनों गुण भी, जाकर उनमें ही लय होयें। सृष्टि का जो मूल हैं, उनमें ही विलय होयें।।
जगत् आत्मा ईश्वर में, जीव लय सब हो जायें। महत्तत्त्वादि शक्तियां सब, अव्यक्त में ही खो जायें।।
उनमें ही फिर नाम रूप, निर्माण का संकल्प उठा। सर्वथा इनसे जो अतीत, उस स्वरूप में यह उठा।।

अंशभूत जिस प्रकृति का, जीवों को वशीभूत करे। हर पल यह सृष्टि रचना करे, और जीवों को मोहित करे।।
अपनी ही काल शक्ति प्रेरित, उस प्रकृति का अनुसरण किया। जीवन के नियम बताने को, वेदों को भी संग रच दिया।।
जितेन्द्रिय योगी कर प्राणायाम, निर्मल करें चित्त भक्ति से। जिनका स्वरूप करें साक्षात्, वहीं परब्रह्म हैं कृष्ण ये।।
इनकी भक्ति ही साधन इक, है अन्त:करण की शुद्धि का। योग ध्यान और अन्य सभी, साधन हैं इस भक्ति का।।

वास्तव में यह हैं वह ही, वेदादि जिनका गान करें। जिनकी मनहर लीलाओं का, व्यासादि सब ही बखान करें।
अद्वितीय हैं जो ईश्वर एक, लीला से सब सृष्टि रच दें। पालन और संहार करें, पर लिप्त कहीं वह न होयें।।
जब प्रधान हो तमोगुण, और राजा उसके अधीन रहें। प्रजा के हित को भूल कर, अधर्म से अपना पेट भरें।।
स्वीकार करी सतोगुण यह, तब इस धरती पर आते हैं। ऐश्वर्य सत्य और ऋत दया, भी अपने संग में लाते हैं।।
कल्याण हेतु संसार के, यह युगों युगों में आते हैं। भिन्न भिन्न अवतारों में, निज यश प्रकट कर जाते हैं।।

है धन्य धन्य यदुवंश यह, जिसको सम्मानित किया। लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम ने, यहां कृष्ण रूप में जन्म लिया।।
अति धन्य वह ब्रजमण्डल, शोभित है जो लीलाओं से। शैशव और किशोरावस्था, की विचित्र गाथाओं से।।
स्वर्ग के यश को त्याग कर, है द्वारिका पृथ्वी पर उतरी। पृथ्वी को उसने धन्य किया, श्री कृष्ण की लीला स्थली बनी।।

मन्द मन्द मुसकान से, मुखकमल सदा जिनका खिले। कृपा दृष्टि से अपनी नित्य, वह सबका कल्याण करें।।
वहां की प्रजा तो हर पल ही, श्री कृष्ण को नित्य निहारा करे। अपने स्वामी का मुख देखी, वह तो नित्य ही मुदित रहे।।
व्रत आदि हवन और स्नान से, अराधना उन्होने की होगी। इस परम पुरुष को पाने की, साधना भी उन की होगी।।
इनने जिनका किया पाणिग्रहण, वह स्त्रियाँ हैं बहु भाग्यवान। उनको मिल जाता सहज ही, अधर सुधा रस का मधुपान।।
जिस रस की स्मृति में रोमांचित, ब्रजबालायें हों आत्म विस्मृत। जिनकी लीला की स्मृति मात्र, कर देती उन्हें आनन्द मूर्छित।।

स्वयंवर में शिशुपाल आदि, मदमत्त राजाओं का। इन्हीं कृष्ण ने भरी सभा में, था मान मर्दन किया।।
अपने बाहुबल से जिनको, यह स्वयंवर में से हर लाये।। प्रद्युम्न साम्ब आम्ब आदि, हैं पुत्र जिन श्री रुक्मिणी के।।
रुक्मिणी संग आठों पटरानी, हैं इनकी प्रिय पत्नियाँ। फिर भौमासुर का वध करके, भी लाये हजारों पत्नियाँ।।
सबकी सब ही धन्य हैं, जिनके हैं बड़भाग्य ये। धन्य और उज्ज्वल उन्हें किया, जो जीवन स्वाधीन न थे।।
महिमा इनकी अपरम्पार, कैसे कोई गा सके? कमल नयन श्री कृष्ण के, वश में ही सब नित्य रहें।।

प्रेम पूर्ण चेष्टाओं से, जो इनका चित्त हर लेते हैं। पारिजातादि उपहार दे, जो हृदय आनन्द से भरते हैं।
हर पल ही इनके संग रह, वह प्रेम की वृद्धि करते हैं। ऐसे श्री कृष्ण भार्याओं से, इक क्षण को न बिछुड़ते हैं।
सूतजी बोले,
हस्तिनापुर की नारियां, थीं इस विधि वार्तालाप मग्न। श्री कृष्ण वहां से विदा हुए, ले प्रेममयी मुदित चितवन्।।
मन्द मन्द मुसकान से, सबका अभिनन्दन किया। इस विधि श्री कृष्ण ने, हस्तिनापुर से प्रस्थान किया।।
दे घोड़े हाथी युधिष्ठिर ने, भेजे रथ औ पैदल सेना। कहीं शत्रु कोई न वार करे, इस शंका ने उसको घेरा।।

दृढ़ प्रेम की डोरी में थे बन्धे, पाण्डव बहु दूर तक गये साथ। भावी विरह के शोक में, थे व्याकुल वे सब ही भ्रात।।
बहु आग्रह कर श्री कृष्ण ने, उनको फिर लौटा दिया। उद्धव सात्यकि आदि स्वजन, ले रथ द्वारिका की ओर चला दिया।।
कुरुजांगल पञ्चाल देश, शूरसेन मत्स्य और कुरुक्षेत्र। यमुना तीरे बसा ब्रह्मावर्त्त, सारस्वत और मरुन्ध्व देश।।
इन सबको पार कर पहुंचे वह, सौबीर अभीर के पश्चिम में। अनार्त्त देश फिर आ गया, थे अश्व थके बहु श्रम से।।

पथ में जो भी लोग मिले, सम्मान प्रभु का बहुत किया। अपनी सामर्थ्य के अनुकूल, उपहारादि लाकर दिया।।
सायंकाल होते ही वह, रथ से उतर ही जाते थे। जलाशय पर जाकर के, सन्ध्या वन्दन कर आते थे।।
ऐसी दिनचर्या में उनका, दिन प्रतिदिन था जा रहा। रथ का पहिया द्वारिका की, दिशा में दौड़ा जा रहा।।

समृद्ध और वैभवपूर्ण, अनार्त्त देश जब पहुंचे कृष्ण। विरह वेदना में उनकी, बहु काल से थे सन्तप्त जन।।
शान्त उनको करने को, शंख ध्वनि की नाद की। पांचजन्य ले कृष्ण ने, निज आगमन निनाद की।।
कर कमलों में पकड़ जब, श्वेत शंख को छेड़ दिया। अधरों से लाली लेकर, वह शंख भी मानो लाल हुआ।।
रक्त कमल पे बैठ के, ज्यों हंस मधुर स्वर से गाये। इसी विधि उस शंख की, उच्च ध्वनि मन को भाये।।

सब जग को भयभीत करो, पांचजन्य की यह ध्वनि। दर्शन की लालसा से भागी, प्रजा जानी आये स्वामी।।
आत्मराम श्री कृष्ण हैं, अपने में ही वह पूर्ण काम। नहीं कुछ भी प्राप्तव्य उन्हें, सदा आत्म लाभ से आप्त काम।।
फिर भी जैसे सूर्य को सब, दीप दान नित्य करते हैं। आदर पूर्वक वा दर्शन और, नित्य वा पूजन करते हैं।।
इसी विधि सारी प्रजा, उपहार प्रभु के लिये लाई। अपने स्वामी के स्वागत में, नगर से बाहर वह आईं।।

श्री कृष्ण को आया जान के, मुख कमल थे सबके खिल उठे। हर्ष से गद्‌गद् वाणी से, वह स्तुति प्रभु की करने लगे।।
जैसे निज पिता के सामने, हो बालक तुतला रहा। त्यों सुहृद् संरक्षक निज, श्री हरि सम्मुख उन्होंने कहा।।

प्रजा बोली,
हे स्वामी आपके चरणों में, बार बार हो नमस्कार। इन्द्र ब्रह्मा शंकर वंदित, चरणों में हमारा नमस्कार।।
सर्वोत्तम आश्रय हैं आप, कल्याण के हेतु इस जग में। शरण में जिनकी आने से, काल भी तनिक न छू सके।।
हैं मात पितु सुहृद् स्वामी, हैं सद्‌गुरु आप आराध्य देव। आपके चरण कमल को प्रभु, कृतार्थ हुए हैं हम सब सेव।।
हे सारे विश्व के मनमोहन, सबके मन को भाने वाले। कल्याण करें प्रभु हम सबका, हम हैं शरण में आपके।।

आपके श्री दर्शन पाकर, सनाथ हुई है सारी प्रजा। सुन्दर अनुपम रूप का, दर्शन है हमें पुन: हुआ।।

है मुख कमल अति मन भावन, प्रेम पूर्ण मुसकान लिये। इस चितवन का दर्श नहीं, है सुलभ देवतागण के लिये।।
निज बन्धु बान्धव को मिलने, जायें जब हस्तिनापुर या व्रज। आप के विरह में बीते, इक इक क्षण ज्यों हों कोटि वर्ष।।
आपके बिन हे कमल नयन, हम हैं ऐसे ही बांवले। जैसे आदित्य नारायण के, दर्शन बिन हों यह नयना रे।।
सूतजी बोले,
ऐसे प्रेम पूर्ण वचनों को, प्रजा के मुख से सुनते हुए। कृपामय नयनों से अपनी, अनुग्रह दृष्टि करते हुए।।
प्रवेश किया द्वारिका में, श्री हरि ने इस विध आकर। सब सन्ताप ही हर लिये, उन प्रजा को निज दर्शन देकर।।
ज्यों नाग निज नगरी की, रक्षा करें पाताल में। त्यों ही प्रभु की द्वारिका यह, सुरक्षित है चहुँ ओर से।।
मधु भेज दशार्ह और अर्ह, कुकुर अन्धक वृष्णी वंश से। अतुल्य हैं जो पराक्रम में, वह यादव इसके रक्षक थे।।

समस्त ऋतु के पूर्ण वैभव, उसको थे सजाये हुए। पावन वृक्ष और लता कुंज, उपवन थे वहां लगे हुए।।
फल के उद्यान भी स्थान स्थान, पर शोभा थे बढ़ा रहे। कहीं फूलों से सजी वाटिका, तो कहीं पे क्रीड़ा कानन थे।।
बीच बीच में जलाशय, थे शीतलता दे रहे। कमला दलों के खिलने से, नयनाभिराम थे वह बनें।।

बन्दनवारों की लड़ियों से, थे मार्ग भी बहु सज रहे। नगर द्वार फिर राज द्वार, सब ही प्रभु स्वागत तत्पर थे।।
चहुँ ओर विचित्र और रंग रंग की, पताका थीं फहरा रहीं। सब विपरीत भावों को वह, मानो थीं दूर भगा रहीं।।
राज्यमार्ग और सड़कें सब, सर्वविधि से स्वच्छ थीं। चौक और बाजार सब, सुगन्धित जल से थीं सींची।।
फल फूल स्वागत के लिये, जो बरसाये थे गए। अक्षत अंकुर चहुं ओर ही, जो बिखराये थे गए।।

घर घर के हर द्वार पे, मंगल चिन्ह थे सजे हुए। दही अक्षत फल और ईख, यह सब थे वहां रख दिए।।
जल से भरे सुन्दर कलश, और उपहार थे बहु पड़े। धूप दीप आदि नेवैद्य, से थे सब ही द्वार सजे।।

शिरोमणि श्री वसुदेव, उग्रसेन अक्रूर प्रद्युम्न। महापराक्रमी बलराम, चारुदेष्ण और जामवती नन्दन।।
सुनकर यह सब दौड़ पड़े, हैं आने को हमरे प्रियतम। अन्य सभी कुछ भूल करी, हुए सभी आनन्द मग्न।।
सोना बैठना भोजन भी, सब ही काज वह भूल गये। प्रेम के उद्वेग से, सबके हृदय थे उछल रहे।।
मंगल शगुन सजा करी, गजराज को आगे किया। स्वस्ति पठन करने वाले, ब्राह्मण गण को साथ लिया।।
शंख और तुरही आदि, बाजे सब बजने लगे। वेद ध्वनि की गूंज से, थे वायुकण पावन हुए।।
सब ही अति हर्षित होकर, अपने अपने रथ पे बैठे। आदर भाव हिय में ले, प्रभु की अगवानी को चले।।

उनके संग प्रभु दर्शन की, लालसा को मन में लिये? शतश: सुन्दरियाँ हो लीं, पालकियों पे चढ़कर के।।
मुख कपोलों पर उनके, थी कुण्डल कान्ति पड़ रही। सुन्दर मुख कमलों की थी, इससे शोभा बढ़ रही।।
बहुत से नट और नर्तक भी, गायक भी उनके संग चले। बन्दी जन और मागध भी, संग सूत थे बिरुद बखान करें।।
श्री हरि के आश्चर्यमयी, चरितों का गान थे कर रहे। इस विधि सब मिलकर के, श्री कृष्ण को लेने चल पड़े।।

बन्धु बान्धव और नागरिक, सबका ही सम्मान किया। सेवक गण को भी न भूले, यथा योग्य उन्हें मान दिया।।
अलग अलग मिलकर सबको, श्री कृष्ण ने संतृप्त किया। विरह से थे सन्तप्त जो, सबके हृदयों को शान्त किया।।

किसी के सामने सीस झुका, श्री कृष्ण ने प्रणाम किया। वाणी से किया कहीं अभिवादन, किसी को हिय से लगा लिया।।
किसी से हाथ मिलाया भर, कहीं केवल मुसकान दी। केवल प्रेम भरी दृष्टि, डाली किसी पर अनुकम्पा की।।
जैसी थी जिसकी इच्छा, वैसा ही वरदान दिया। चाण्डाल पर्यन्त सभी जन को, उन्होने तुष्टित कर दिया।।

फिर गुरुजन और पत्नी सहित, ब्राह्मण और वृद्ध जन के। प्रभु ने आदर भाव से, आशीर्वाद सबसे लिये।।
बन्दी जन से विरुदावली, सुनते हुए वह आगे बढ़े। इसी विधि श्री कृष्ण ने, द्वारिका में प्रवेश किये।।
हे शौनक इस विधि जब, प्रभु थे मार्ग से जा रहे। द्वारिका की कुलनारियों ने, दर्शन लिये चढ़ के अटारी पे।।
प्रभु के पावन दर्शन में, ही परम आनन्द थीं मान रहीं। उनके दर्शन की आशा में, वह जाय अटारी पर चढ़ीं।।

मूर्तिमान सौन्दर्य श्री, का है वह निवास स्थान। प्रभु का श्री वक्ष:स्थल है जो, हैं लक्ष्मी वहाँ विराजमान्।।
मुख कमल श्री हरि का जो, सौन्दर्य सुधा से भरा हुआ। नेत्रों के सुधा रस पाने को, पात्र वह छलछला रहा।।
उनकी अजानु बाहु से, सब जग ही शक्ति पाये। लोकपाल की शक्ति का, स्रोत भी वहां से आये।।
चरण कमल श्री कृष्ण के, हैं भक्तों के परम धाम। परमहंस भी वहां पे ही, जाकर पायें परम विश्राम।।
अंग अंग में श्री प्रभु के, है सौन्दर्य का शोभा धाम। द्वारिकावासी इस छवि का, दर्शन पायें नित अविराम।।
फिर भी प्रभु के दर्शन पा, वा नयन तृप्त न होते हैं। निर्निमेश वा दर्शन में, उनके नयना खोते हैं।।

राजपथ पर द्वारिका के, श्री कृष्ण थे जा रहे। श्वेत छत्र था सीस पे, थे चंवर झुलाये जा रहे।।
चहुं ओर से पुष्पों की, वर्षा थी उनपर हो रही। पीताम्बर और वनमाला से, थी निराली छवि बनी।।
अनुपम इस छवि से हरि, शोभायमान थे हो रहे। ज्यों सूर्य चन्द्र और इन्द्रधनुष, संग दामिनी सों हों मेघ घिरे।।

सर्वप्रथम प्रभु माता पिता, के महल की ओर बढ़े। देवकी सह सातों माताओं, के चरणों में सीस धरे।।
आनन्दित हो माताओं ने, हृदय से उन्हें लगा लिया। नन्हें शिशु की भान्ति ही, आगोश में उन्हें बिठा लिया।
निश्छल स्नेह माताओं का, दूध बनी कर स्तन से बहा। हृदय से हर्ष के अश्रु बहे, प्रभु को अभिषेकित उन्होंने किया।।

आज्ञा पा माताओं से, निज सर्वश्रेष्ठ भवन में गए। समस्त भोग सामग्री के, साधन से वह सम्पन्न थे।।
प्रभु के उत्तम महल में, प्रसाद थे सबके अलग अलग। षोडष सहस्त्र पत्नियों के, आवास बने थे अलग अलग।।
प्राणनाथ श्री कृष्ण को, जब देखा घर में आये। सब महारानियों के हृदय, आनन्द प्रेम से भर आये।।
निकट देख प्राणेश्वर को, त्यजी ध्यान वह उठ आईं। केवल आसन ही न छोड़ा, वह सब नियम भी त्यज आई।।
जिन नियमों को पति प्रवास कें, था उन्होंने धारण किया। पति को सामने देख कर, मुख नेत्र लिये लज्जा से झुका।।

अति गम्भीर प्रेम उनका, पति के प्रति था उमढ़ रहा। मन ही मन फिर नेत्रों से, आलिंगन फिर तन से किया।।
उनके नेत्रों में तत्क्षण, थे प्रेम के आँसू उमड़ रहे। बहु रोका संकोच वश, फिर भी विवश वह बह निकले।।
यद्यपि कृष्ण एकान्त में, नित्य संग ही रहते थे। फिर भी चरण कमल उनके, हर पग पे नए ही दिखते थे।।
स्वभाव से ही जो चंचला, वह लक्ष्मी पल भर न छोड़े। ऐसे श्री कृष्ण की सन्निधि पा, कोई नारी कैसे तृप्त हुये?

ज्यों बांसों को टकरा वायु, दावानल को उत्पन्न करे। अपने से ही उत्पन्न अग्नि, पूर्ण वन भस्मीभूत करे।।

वैसे ही श्री कृष्ण ने, परस्पर डाह उत्पन्न करी। भूमि पर जो भार बने, उनसे वर्ती यही नीति।।
आपस में कलह कराकर के, इक दूजे को मरवा डाला। अनेक अक्षौणी सेना सहित, धरती का भार हल्का किया।।
इक शस्त्र भी स्वयं उठाया नहीं, पर सहज में ही सब किया काम। इतना सब हो जाने पर, हो गये आप श्री कृष्ण उपराम।।

साक्षात् परमेश्वर आप, उतरे धरती पर लीला की। सहस्त्रों रमणी रत्नों में, रहकर उन्होंने यह क्रीड़ा की।।
अति साधारण बन कर के, प्रभु ने यह अवतार लिया। साधारण से बन वह विचरे, छिपी रही वा विलक्षणता।।

निर्मल उन्मुक्त हंसी जिनकी, है हृदय के भावों की सूचक। जिनकी मधु चितवन देख करी, हुए विश्वविजयी मदन बेसुध।।
श्री हरि को सामने देख करी, निज धनु: का भी उस त्याग किया। उनकी श्री शोभा देखकर, जिसका मुख लज्जा से था झुका।।
कामिनियाँ काम विलासों से, नहीं जिनके चित्त को हर सकें। कोई हास विलास उनका, नहीं क्षोभ वा चित्त में भर सके।।
अपने समान ही कर्म देख, जग वाले उन्हें आसक्त कहें। यह ही है उनकी मूर्खता, विलक्षणता न समझ सकें।।
इसी में तो श्री हरि की, भगवत्ता समाई है। त्रिगुणी प्रकृति में नित्य रहें, पर गुण कोई बान्ध न पाई है।।
ज्यों प्रभु शरणागत बुद्धि जो, वह नित्य मुक्त ही रहती है। अपने आन्तर बसनेवाले, वह गुणों से लिप्त न होती है।।

वह मूढ़ा अबलायें सब, श्री कृष्ण को थीं अपना मानें। एकान्त सेवी स्त्री परायण, भक्त ही थीं उनको माने।।
निज स्वामी के ऐश्वर्य को, वह नहीं थीं जान सकीं। सहज विहार उनका देखी, उनको न पहचान सकीं।।
ज्यों अहंकार की वृत्तियाँ सब, ईश्वर को न पहचानें। तद्रूपता उनकी न समझें, निज धर्म युक्त उनको मानें।।

११) विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी का वान:प्रस्थ

तीर्थयात्रा को गए विदुर, महर्षि मैत्रेय को मिले। आत्म ज्ञान उनसे पाकर, पुन: हस्तिनापुर लौटे।।
जिज्ञासा शान्त हुई उनकी, जाना जो जानना चाहते थे। किसी राज्य भोग का लोभ न था, केवल वह ज्ञान ही चाहते थे।।
जिज्ञासा से प्रेरित होकर, मैत्रेय से थे बहु प्रश्न किये। पर कृष्ण प्रेम अनन्य था, इस कारण वह उपराम हुए।।
कृष्ण प्रेम में मग्न हुए, वह भी भूले जो पूछा था। उत्तर पाने से पहले ही, कृष्ण ने चित्त को हर लिया।।

जब अपने बन्धु विदुर को, अपने मध्य देखा पहुंचे। भ्राता संग आये धर्मराज, धृतराष्ट्र युयुत्सु और संजय।।
कृपाचार्य कुन्ती गान्धारी, द्रौपदी सुभद्रा और उत्तरा। कृपी और गए अन्य सभी, जो पाण्डव कुल के थे अग्रा।।
माताओं सहित पुत्र भी, ऐसे मुदित सब हो गए। मानो मृतप्राय: तन में, पुन: ही हों किसी प्राण भरे।।
ऐसा अनुभव पाते हुए, सब अगवानी को चले। महात्मा बहु दिन में लौटे, सब ही उनका स्वागत करें।।
यथायोग्य सबने उनका, अभिवादन ही तब किया। किसी ने गले लगाया उन्हें, तो किसीने उन्हें प्रणाम किया।।
सबके नेत्रों में अश्रु थे, विरह उत्कण्ठा से जो भरे। धर्मराज ने दे आसन, सब विधि वा सत्कार किये।।
भोजन और विश्राम करी, जब वह आसन पर बैठे। सबके सम्मुख युधिष्ठिर ने, कहा उन्हें विनीत भाव से।।
युधिष्ठिर बोले,
ज्यों पक्षी निज अण्डों पर, पंख फैलाये रहता है। अपनी ऊष्णता देकर, सप्राण उन्हें वह करता है।।
आपने अपने प्रेम की, और कर कमलों की छाया में। हर विधि सुरक्षित हमें किया, और नित्य ही पाला पोसा हमें।।
बार बार माता सहित, विपदाओं से बचाया है। लक्षागृह विषदान आदि, से पीछा छुड़वाया है।।

हे चाचा कभी आपने भी, याद हमें यात्रा में किया? या प्रभु के चिन्तन भजन में, ही आपका मन निमग्न था?

पृथ्वी पे भ्रमण करते हुए, किस वृत्ति से निर्वाह किया। हैं को तीर्थ और मुख्य क्षेत्र, जिनका है सेवन किया।।
भगवद्भक्त जो आपके सम, वह स्वयं ही तीर्थ के सम हैं। हृदय में श्री हरि को धारे, करें तीर्थ को भी पावन हैं।
इस अपनी यात्रा में आप, गए होंगे द्वारिका भी। अपने सुहृद भाई बन्धु, यादव गण रहते हैं वहीं।।
सबके जीवन आधार कृष्ण, हैं उस द्वारका नगरी में। सुना तो निश्चित ही होगा, है कुशल सभी क्या द्वारिका में?
सूतजी बोले,
इस भाँति पूछे जाने पर, विदुर ने सविस्तार कहा। जो देखा सुना अनुभव किया, तीर्थ और यादवगण का कहा।।
सब कुछ क्रम से कह करी, एक बात उन्होने नहीं कही। यदुवंश के विनाश की, गाथा उनको नहीं कही।।
करुण हृदय श्री विदुर जी पाण्डव सन्ताप न देख सकें। इस कारण अप्रिय असह्य, वार्ता उनको नहीं कहें।।
वह जाने थे यह घटना, अधिक तो छिप न पायेगी। जल्द विनाश की यह कथा, सामने सबके आयेगी।।

पाण्डव गण श्री विदुर को, देव तुल्य ही माने थे। उनकी सेवा सत्कार कर, निज को धन्य ही माने थे।।
ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र का, कल्याण हिय में धर कर के। सबको मुदित करते हुए, कुछ दिन वह हस्तिनापुर रहे।।
थे विदुर स्वयं ही धर्मराज, यह कथा है सर्वज्ञात। सौ वर्ष के लिये थे बने शूद्र, माण्डव्य ऋषि ने जब दिया शाप।।
इतने दिन तक अर्यमा ने, यमराज का पद था ग्रहण किया। उनके आसन पर बैठकर, पापियों को उचित दण्ड दिया।।

युधिष्ठिर भी भाइयों सहित, अति आनन्द में रहने लगे। अतुल्य सम्पदा थी उनकी, सर्वभोग सम्पन्न वह थे।।
कुल का अंश परीक्षित में, सुरक्षित उन्होंने देख लिया। शनैः शनैः निज पौत्र में, ही मन उनका रमने लगा।।

इस विधि पाण्डवगण सब, निज काम काज में मग्न हुए। गृहस्थ के धन्धों में खोये, वह एक सत्य यह भूल गए।।
बिन जाने बिन पहचाने, यह जीवन चक्र गति से चले। इक इक पल जो बीत रहा, मृत्यु के निकट हमें ले चले।।
आँख पलक भी झपकी नहीं, फिर वह समय भी आ पहुँचा। काल की गति अमोघ है, न इसको कोई टाल सका।।

पर विदुर महा ज्ञानी थे, ज्येष्ठ भ्राता से यूं बोले। बहुत कठिन समय है आ रहा, अब जल्द ही यहां से निकल चलें।।
सर्वसमर्थ काल यह, हम सब पर मण्डरा रहा। इसको किसी विधि टाल सकें, यह उपाय नहीं रहा।।
विवश करे जब काल यह, प्रियतम प्राण भी हमें त्यजें। फिर धन जन वस्तु आदि सब, इनकी क्या हम बात कहें।।
चाचा ताऊ भाई बान्धव, और पुत्र सभी मारे गये। आयु है आपकी ढल चुकी, बुढ़ापे ओर हैं कदम बढ़े।।

यह देह जिसमें वास है, अपना नहीं बेगाना है। कुछ दिन की ही बात है, यह भी छूट जाना है।।
इस तन का मोह है कितना प्रबल, इसे जीव छोड़ना न चाहे। इस कारण श्वान की भाँति आप, हैं भीम के टुकड़ों पर पले।।
उद्देश्य क्या इस जीवन का, क्या सोचा कभी क्या गति होगी। ऐसे जीवन का लाभ क्या, जहां पूर्ण रिक्त मति होगी?

अग्नि में जलाकर उनको ही, तुम राख बनाना चाहते थे। विष राही उनका वध कर, पीछा छुड़वाना चाहते थे।।
भरी सभा में जिनकी पत्नी, को अपमानित तुमने किया। जिनका राज्य और धन छीन, पुत्रों को समृद्ध किया।।
उन्हीं के दिये हुए अन्न से, आज प्राण तुम्हरे पल रहे। ऐसे जीवन से भ्राता, क्या गौरव अनुभव कर रहे?

नहीं सीमा कोई अज्ञान की, है अभी भी मोह तुम्हें प्राणों का। पर तव चाहे से क्या होगा, यह जीर्ण वस्त्र तो फटने लगा।।
न चाहने पर भी आपके, वृद्धावस्था इसे गाल रही। इक इक पल अब इस तन को, मृत्यु के निकट ले जा रही।।
अब इस तन से आपका, कोई स्वार्थ नहीं सधने वाला। मत इसमें अब फंसे रहो, काटो बन्धन मोह ममता का।।
जो नाते बन्धु सबको छोड़, बिन उनके जाने तन यह त्यजे। धीर वही तो है प्राणी, उसके सब बन्धन कट जायें।।

अपना विवेक ही हो जागृत, या दूजे के समझाने पे। दु:ख रूप जानकर इस जग को, जो विरक्त ही हो जाये।।
अन्त:करण को वश में कर, हृदय में श्री हरि धार के। उत्तम है मनुष्य वही, संन्यास हेतु जो निकल पड़े।।
आने वाला समय जो है, है भीष्ण गुण अपने में लिए। मानवता का होगा ऱ्हास, है आसुरी गण अपने में लिए।।
अत: सावधान होकर के आप, बन्धु बान्धव से छिपकर के। कल्याण है इसमें ही भ्राता, अब उत्तराखण्ड की ओर चलें।।

सूतजी बोले,
अनुज विदुर ने इस विधि, भ्राता को जब दी मति। नेत्रहीन धृतराष्ट्र की, प्रज्ञा नेत्र ही खुल गई।।
भाई बान्धव के स्नेह पाश, का छेदन उसने किया। विदुर के दिखलाये मार्ग, का उसने अनुसरण किया।।

रणक्षेत्र में वीर ज्यों, शत्रु प्रहार का सुख पाये। उसी विधि हिमालय यह, संन्यासी के लिए सुख लाये।।
हिमालय की उस यात्रा पर, देखा सब त्यज कर जाते हुए। पतिव्रता गान्धारी ने, पति को देखा जाते हुए।।
तब उस सुबलनन्दिनी ने, पति का ही अनुसरण किया। पति के संग संग उसने, हिमालय में अनुगमन किया।।

उस प्रात: भी नित्य नियम से, धर्मराज ने अर्चना की। अग्निहोत्र करके उसने, ब्राह्मण जन को दान दी।।
तिल गौ भूमि और स्वर्ण, अजात शत्रु ने दे दिए। तत्पश्चात् चरण वन्दन हेतू, गुरु जनों का करने चले।।
राजमहल में जा के जब, विदुर के दर्शन न पाये। धृतराष्ट्र और गान्धारी, के भी दर्शन न पाये।।

युधिष्ठिर बोले,
उद्विग्न चित्त उन्होने हो पूछा, बैठे हुए वहाँ संजय से। नेत्रहीन मम वृद्ध पिता, धृतराष्ट्र है कहाँ गए?
पुत्र शोक से संतप्त, गान्धारी माता कहाँ गईं? परम हितैषी चाचा विदुर, उनपे भी नहीं दृष्टि पड़ी।।
निज पुत्रों के शोक में, थे अति व्याकुल ज्येष्ठ पिता। बन्धु बान्धव के शोक से, मन अभी विमुक्त था नहीं हुआ।।
हतभाग्य मैं मन्दबुद्धि, पहले क्यों न समझ पड़ी। आशंकित मुझसे होके कहीं, गंगा में तो न समाधि ली?

पिता पाण्डु जब हम सबको, छोड़ गए थे स्वर्ग सिधार। नन्हें नन्हें शिशु थे हम, चाचाओं ने ही हमें दिया प्यार।।
बहु प्रेम था हम सब पर, दु:खों से हमें बचाते थे। अपनी हर काम को, हम दौड़े इनके पास ही आते थे।।
चित्त आज मेरा खिन्न हुआ, वह पितु समान हैं कहाँ गये? हे संजय तुम मुझे कहो, वह माता सहित है कहाँ गये?
सूतजी बोले,
संजय ने भी निज स्वामी, धृतराष्ट्र को जब वहां न पाया। स्नेह और दु:ख के कारण, उनका हृदय था भर आया।।
पीड़ित और विरह आतुर, संजय उत्तर न दे सके। युधिष्ठिर की जिज्ञासा के, प्रत्युत्तर कुछ न कह सके।।
शनै: शनै: फिर बुद्धि से, स्थिर किया उन्होंने चित्त को। आंखों के आँसू पोंछ करी, वह यूं बोले युधिष्ठिर को।।

संजय बोला,
न जानूं क्या संकल्प था, आपके दोनों चाचाओं का। माता गान्धारी सहित, उन दोनों भ्राताओं का।।
हे महाबाहो कुरु कुल नन्दन, मैं स्वयं ही जैसे ठगा गया। उन दोनों महात्मन् ने, जैसे है कोई छल किया।।
सूतजी बोले,
संजय वहाँ पे इस विधि, थे विलाप अभी कर रहे। वीणा लेकर हाथ में, श्री देवर्षि वहाँ आ पहुँचे।।
भाइयों सहित युधिष्ठिर ने, आकर उन्हें प्रणाम किया। उचित सम्मान उन्हें देकर, फिर उनके सम्मुख कहा।।
युधिष्ठिर बोले,
हे प्रभु निज चाचाओं का, पता नहीं मैं पा रहा। पुत्र शोक से दु:खी माता, का भी दर्शन नहीं पा रहा।।
तपस्विनी माता के संग, दोनों न जाने कहां गए। इन तीनों के आवास का, नहीं पता हम पा रहे।।
ज्यों अगाध सिन्धु के बीच, हो नैया कोई डोल रही। इसी विधि इस शोक की, नौका के कर्णधार आप ही।।
ऐसी बात सुनकर उसकी, परम भक्त भगवान के। श्री नारद जी यूं बोले, भगवन्मय जो आप थे।।
नारद बोले,
हे धर्मराज मत शोक करो, तुम किसी भी प्राणी के लिए। सब कुछ इस संसार का, है उस ईश्वर के वश में।।
विवश ही जग संग लोकपाल, आज्ञा पालन वा कर रहे। उसके कहे पे सब प्राणी, परस्पर मिल और बिछुड़ रहे।।
ज्यों रस्सी से बन्धा बैल, नासिका में नथनी डाले। स्वामी का भार ही ढोए है, नहीं निज इच्छा से कुछ भी करे।।
उसी विधि यह जीव सभी, वर्णाश्रम आदि नामों से। वेद रूप रस्सी सों बन्धे, प्रभु आज्ञा का अनुसरण करें।।

संसार में ज्यों खिलाड़ी कोई, खिलौनों से खेला करे। उनकी इच्छा से संयोग हो, जब चाहे तो वह वियोग करे।।
वैसे ही प्रभु वह स्वामी हैं, जिनकी इच्छा से खेल चले। उनकी आज्ञा से ही तो, प्राणी जग में मिलें और बिछुड़ें।।

जैसे भी चाहो मानो, जीव रूप से नित्य ही। या देह रूप गर माने हो, तो जानो है अनित्य सभी।।
जड़ रूप गर जानो उसे, तो है वह अनित्य ही। गर चेतन उसको जानो, तो है वह नित्य ही।।
अनित्य नित्य दोनों से परे, या शुद्ध ब्रह्म स्वरूप जो। गर ऐसा भी मानो तुम, तो भी शोक क्यों करते हो।।
कैसी भी अवस्था में, है वह शोक के योग्य नहीं। मोह जनित आसक्ति बिना, शोक का कोई कारण नहीं।।

वे दीन दु:खी चाचा चाची, होंगे, असहाय अवस्था में। कैसे रहेंगे मेरे बिना, क्यों धर्मराज यूं सोच रहे।।
अज्ञान जन्य यह सोच है, यह मनो विकलता छोड़ दो। मोह भ्रमित भाव यह भूल करी, अब ज्ञान दृष्टि का आश्रय लो।।
पंच तत्व से बना यह तन, है काल कर्म और गुण वश में। ज्यों अजगर के मुख में हो जीव, यह तन भी है पर वश में।।
दूजों की रक्षा क्या वह करे, जिसकी अपनी हो यह गति। इस सत्य को क्यों न देखो तुम, क्यों भ्रमित हुई तुम्हारी मति।।

जिनके हाथ हैं उनके लिए, हस्त रहित जो जीव हों। चौपाये पशुओं के लिए, बिन पाद के जो तृण आदि हों।।
इसी विधि छोटे जो जीव, बड़ों के लिए आहार हैं। यही नियम है सृष्टि का, इक दूजे का आहार हैं।।

सब रूपों में जीवों के, बाहर भीतर जो बसते हैं। स्वयं प्रकाश परमात्म आप, सब रूप प्रकाशित करते हैं।
सबके आन्तर में आत्म बन, वह आप ही तो विचरते हैं। माया द्वारा वह एक प्रभु, अनेकों रूप ही धरते हैं।।

उनको ही देखो तुम सबमें बसे, उस एक का दर्शन पाओ अब। वह एक ही हैं सबमें बसे, उस एक का दर्शन पाओ अब।।

सबके जीवन दाता वह प्रभु, उतरे हैं अब पृथ्वी तल पे। देवद्रोहियों के लिए, अवतीर्ण हुए काल बन के।।
देवों के काज सम्पन्न हुए, बस तनिक कार्य ही शेष बचा। उस कार्य को पूरा करने को, है प्रभु का यहां पे कुछ डेरा।।
जब तक श्री हरि धरा पर हैं, तुम भी प्रतीक्षा उनकी करो। उनकी ही आशा में अब, पल छिन अपना व्यतीत करो।।

हिम पर्वत के दक्षिण में, सप्तर्षियों की प्रसन्नता को। गंगा ने सात धाराओं में, विभक्त किया है अपने को।।
सप्तस्त्रोत के नाम से, स्थान वह विख्यात है। हे धर्मराज उस स्थान पर, ऋषियों का इक आश्रम है।।
धृतराष्ट्र गान्धारी संग, विदुर को लेकर वहाँ गये। उस आश्रम में ही वे सब, तपस्या हैं अब कर रहे।।

त्रिकाल स्नान और विधिवत्, अग्निहोत्र वह करते हैं। कामना रहित हैं चित्त हुए, हो शान्त मन से विचरते हैं।।
केवल जल को ही ग्रहण करें, अन्न भक्षण है छोड़ दिया। उन तीनों ने इस समय, ऐसा ही है व्रत लिया।।
आसन को अब जीतकर, है प्राणों को वश में किया। छः इन्द्रियों को अपनी, अब विषयों से लौटा लिया।।
धारणा ध्यान अब उनका, श्री हरि में है टिक चुका। तम रज और सत्व का, त्रैगुणी मल है मिट चुका।।

अहंकार को बुद्धि में, अब वह लीन हैं कर चुके। बुद्धि को क्षेत्रज्ञ आत्मा, में विलीन हैं कर चुके।।
आत्मा को भी सर्वाधिष्ठान, ब्रह्म में एक है कर दिया। महाकाश में जाकर, ज्यों घटाकाश हो लय हुआ।।
इन्द्रिय मन निज रोक कर, विषयों को लौटा दिया। माया के गुणों से जो वर्तें, परिणामों को मिटा दिया।।
संन्यास ले सब ही कर्मों से, अब बैठे हैं वह स्थिर होकर। राज का विघ्न तुम न बनना, जाने दो उनको अपने घर।।

हे राजन् आज से पांचवे दिन, परित्याग करेंगे निज तन का। जलकर वह भस्म हो जायेगा, विधान यही है जीवन का।।
जलते देख के पर्णकुटी में, पति की देह को अग्नि संग। बाहर खड़ी गान्धारी भी, करेगी पति का अनुगमन।।
सती साध्वी नारी भी, अग्नि प्रवेश कर जायेगी। गार्हपत्य अग्न में वह, अपनी देह भी जला देगी।।

आश्चर्यमयी यह मोक्षगति, अपने भ्राता की देख करी। हर्षित भी होंगे श्री विदुर, भ्रातृ वियोग में होंगे दुःखी।।
वहां से ही श्री विदुर भी, तीर्थ सेवन को चल देंगे। नहीं लौटेंगे वह हस्तिनापुर, अब तीर्थ में ही वास करेंगे।।
देवर्षि यूं कहकर के, निज वीणा ले गए स्वर्ग लोक। उपदेश हृदय में धर कर के, त्यजे धर्म राज ने सारे शोक।।

१२) महाराज युधिष्ठिरको अपशकुन और अर्जुनका द्वारिकासे लौटना व पाण्डवोंका महाप्रयाण

अब श्री कृष्ण का आगे क्या, योजन है यह जानने के लिए। स्वजनों का जानें मंगल, गए अर्जुन द्वारिका इस चित्त से।।
कई मास फिर बीत गए, अर्जुन लौट के न आये। भयावह देखी अपशकुन, युधिष्ठिर बहुत ही घबराये।।

देखा उन्होंने काल की, गति विकट बहुत हो रही। ऋतुएं भी शुभ नियम से, हैं नहीं अब आ रहीं।।
उलटी ही उनकी क्रिया, अब देखा है हो रही। क्रोध लोभ और असत्य, लोगों की यह वृत्ति हुई।।
निर्वाह करन को जीवन का, नित्य पाप वह करने लगे। ऐसे अधर्म व्यवहार में चित्त हैं वह धरने लगे।।

व्यवहार भी सबका पूर्ण, कपट भरा है हो गया। मित्रों से भी आजकल, सत्य का नाता नहीं रहा।।

माता पिता भाई बन्धु, सबमें झगड़े हो रहे। पति पत्नी भी आपसी, कलह में हर पल खो रहे।।
दम्भ लोभ कामादि से, स्वभाव भरा है लोगों का। कलिकाल आ जाने से, अधर्म से है अभिभूत हुआ।।
प्रकृति के संकेत भी सब, अनिष्ट सूचक होने लगे। अपशकुन देख के यह सारे, वह अनुज भीम सों यूं बोले।।
युधिष्ठिर बोले,
था प्रेषित अर्जुन को किया, जाने श्री हरि का योजन क्या। निज बन्धु बान्धव से भी मिले, इस कारण द्वारिका था भेजा।।
सात महीने बीत गए अर्जुन अभी तक न आया। किस कारण हुआ विलम्ब यह, समझ में मेरी न आया।।
जो देवर्षि ने था कहा, क्या विकट समय वह आ ही गया। श्रीहरि ने निज लीला के, संवरण का क्या संकल्प किया?
उनकी ही कृपा से हमें, यह सम्पद् राज्य स्वर्गादि मिला। स्त्री प्राण कुल सन्तान, रिपु दमन अधिकार मिला।।

हे पुरुषव्याघ्र महाबली भीम, देखो तो सही अपशकुन महान्। आकाश में उल्कापात हों, पृथ्वी पे हों भूकम्प महान्।।
तन में भी हों रोग नित्य, अपशकुन भयंकर हो रहे। बुद्धि भ्रम जम उत्पात सब, इसकी ही सूचना दे रहे।।
वाम ऊर्ज और नेत्र भुजा, बार बार मेरा फड़क रहे। अनिष्ट की आशंका पा, मेरी हृदय गति बहुत तीव्र भये।।

सियारिन सूर्यमुखी होकर, हैं रुदन अब करने लगीं। ऐसा लगे उनके मुख से, अग्नि ही हो ज्यों बरस रही।।
कुत्ता भी निर्भय होकर, चीत्कार है कर रहा। मेरी ओर ही देखकर, यह विलाप है कर रहा।।
गौ आदि सब शुभ पशु, मुझे बायें करके जाते हैं। गर्दभ आदि अशुभ सूचक, सब दायें मुझे कर जाते हैं।।
घोड़े आदि मम वाहन भी, है ऐसा लगे ज्यों रुदन करें। हे पुरुष श्रेष्ठ मेरे अनुज कहो, ऐसे लक्षण क्यों हो रहें?

मृत्यु दूत कबूतर यह, उल्लू वा प्रतिपक्षी कौये। अपनी कर्कश ध्वनि से, रात्री को शोर हैं कर रहे।।
मानो यह सारे विश्व को, सूना कर देना चाहते हैं। अपशकुन भरी निज वाणी से, मन मेरा दहलाते हैं।।
हैं दिशा भी धुंधली दीख रहीं, और चान्द सूर्य धूसरित हुए। धरती के कम्पन्न संग संग, ऊँचे पहाड़ भी काम्प उठे।।
महांघोर गर्ज बादल करें, दामिनी भी है चमक रही। जहाँ तहाँ फिर गिरकर, नष्ट भ्रष्ट सब कर रही।।

धूलि से भरी वेगवान्, वायु ज्यों तन छेदन् करे। आन्धी के इस वेग से, अन्धकार चहुँ दिश फैले।।
महाभयावह बादल यह, गर्जन अपनी से डरा रहे। सब ओर ऐसा लगे, ज्यों रक्त यह बरसा रहे।।
आकाश में भी हूँ देख रहा, अपशकुन प्रकट होने लगे। सूर्य प्रभा है हुई मन्द, हैं ग्रह भी टकराने लगे।।
भूतों की घनी भीड़ से, दबकर धरती भी रोने लगी। अन्तरिक्ष में भी जैसे, आग कोई हो लगी हुई।।

नदी नाले और जलाशय, सबमें है हलचल मची। लोगों के मन भी क्षुब्ध हुए, शान्ति न जाने कहाँ गई?
घृत से भी ज्यो न जल रही, क्या जाने अब क्या होगा। भयंकर काल मैं न जानूं, क्या क्या रंग दिखायेगा।।
बछड़ों ने छोड़ा दुग्धपान, नहीं गाएं भी निज को दोहने दें। गोशाला में सब गाय बैल, अश्रु बहाकर रो रहे।।

देवालय के विग्रह भी, मानो आज रोने लगे। श्वेद बिन्दु कण झलकें वहां, स्पन्दन भी होने लगे।।
यह देश ग्राम शहर उद्यान, सब श्री हीन हैं हो रहे। आश्रम भी सब जहाँ तहाँ, आनन्द हीन हैं हो रहे।।
अनुज मेरे यह सारे चिन्ह, सूचना अशुभ की दे रहे। पता नहीं अब कौन दु:ख, जीवन में हैं आने वाले।।

श्री चरण भगवान के, जिनकी सुन्दरता है अनुपम। ध्वजा वज्र अंकुश आदि, भी चिन्ह हैं उनके अनुपम।।
क्या भाग्यहीन भूलोक आज, उनसे रहित ही हो गया। उत्पात यह सब देख करी, मेरे मन को शंका ने घेरा।।
सूतजी बोले,
उत्पातों और शंकाओं ने, युधिष्ठिर के मन घर किया। उसी समय उन द्वारिका से, लौटते अर्जुन को देखा।।

ऐसे आतुर दीखे अर्जुन, जैसा कभी पहले न था। अश्रुपूर्ण थे कमल नयन और मुख भी था लटका हुआ।।
कान्तिहीन उनके तन को, अपने चरण में जब देखा। ऐसी गति उनकी देखी, धर्मराज गए घबरा।।
ऐसे में श्री देवर्षि की, बातों को उन याद किया। निज सुहृदों के सामने ही, उन्होंने अर्जुन सों यूं पूछा।।
युधिष्ठिर बोले,
अनुज कहो तुम द्वारिका की, वृष्णी वंशी यादव कुल की। स्वजन सम्बन्धी मधु भोज, सात्वत आदि के कुशल की।।
मातामह श्री शूरसेन, प्रसन्न तो हैं निज धाम में? अनुज सहित मामा वसुदेव, क्या व्यस्त हैं निज काम में?
उनकी भार्या देवकी आदि, सब बहनें भी सकुशल हैं न? निज पुत्रों और वधुओं सहित, सब ही आनन्द मंगल हैं न।।

उग्रसेन महाराज वहां, दुष्ट कंस के वह पिता। अनुज संग जीवित हैं क्या, या छोड़ दी उन्होंने यह धरा?
हृदीक वा पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर जयन्त और सारण गद। शत्रुजित आदि यादव, कहो कुशल तो हैं न सब?
यादव नायक बलराम जी, कहो कहो तुम कैसे हैं? सपरिवार हमरे दाऊ, आनन्द मग्न क्या रहते हैं?

सर्वोत्तम यादव महारथी, प्रद्युम्न कहो क्या सुख से हैं? अति फुर्तीले युद्ध में जो, क्या अनिरुद्ध आनन्द में हैं?
सुषेण चारुदेष्ण और ऋषभ, सहित जाम्बवती नन्दन साम्ब। और अन्य पुत्र सब कृष्ण के, सह पुत्र कुशल से तो हैं न?
श्री उद्धव और श्रुतदेव, अनन्य सेवक श्री कृष्ण के जो। सुनन्द नन्दादि यदुवंशी, बलराम कृष्ण से सुरक्षित जो।।
वह सब के सब बन्धु बान्धव, कुशल क्षेम उनकी कहो। प्रेमी गण वह हम सबके, मंगल क्या हमारा पूछें वो?

भक्त वत्सल ब्राह्मण भक्त, अब श्री कृष्ण की बात कहो। स्वजन संग क्या सुखपूर्वक, धर्म सभा में विराजें वो।।
बलराम सहित वह आदि पुरुष, कल्याण कारी संसार के। उन्नति और मंगल हेतु, यदुवंशीय क्षीर सिन्धु में बसें।।
उनकी सुरक्षा में यदुगण, सम्मानित हैं संसार में। द्वारिकापुरी में वह सब ही, आनन्द पूर्ण होकर विचरें।।
ऐसा लगे वैकुण्ठ ही ज्यों, आ उतरा हो धरती पे। ज्यों श्री विष्णु के पार्षद, आनन्द से हों सुर लोक में।।

सत्यभामा आदि सहित, षोडष सहस्त्र भार्या उनकी। निशि दिन ही वह रत रहें, चरण की सेवा में उनकी।।
युद्ध में इन्द्रादि को, नित्य पराजित प्रभु करें। पारिजातादि अभीष्ट पदार्थ, ला उनको उपहार में दें।।
श्री कृष्ण के बाहुबह से नित्य, सुरक्षित निर्भय रहते हैं। यदुवंशी देवयोग्य सुधर्मा, सभा को शोभित करते हैं।।

हे अनुज अब अपनी कहो, क्या स्वयं कुशल मंगल तुम हो? आकुल है मम हृदय हुआ, क्यों श्री हीन से तुम दीखो?
बहुत दिनों तक वहां रहे, कहीं सम्मान तो नहीं घटा? किसी ने वहां भूले से ही, अवज्ञा या अपमान को नहीं किया?
किसी ने अशुभ वचन से क्या, चित्त तेरा यह म्लान किया? या याचक की किसी याचना पर, प्रतिज्ञ दान तू दे न पाया?

ब्राह्मण बाल गौ वृद्ध रोगी, अबला या किसी भी प्राणी का। नित्य संरक्षण तुम करो, व्रत है शरणागत रक्षण का।।

कहीं ऐसा तो नहीं किसी का तुम, रक्षण कर नहीं पाये? अपनी शरण में आये हुए, का त्याग तो कर नहीं आये?
कहीं अगम्या स्त्रभ से, समागम तो तूने नहीं किया? माननीय स्त्री से क्या, सत्कार हीन व्यवहार किया?
मार्ग में कहीं अपने समान, योधा से तो नहीं हार गये? या कहीं अपने से न्यून से, हार के हो यूं उदास हुए?

कहीं भूखे वृद्ध और बाल छोड़, अकेले ही तो खा न लिया? पूर्ण विश्वास यह है मुझे, नहीं निन्दित काज किया होगा।।
परम प्रियतम अभिन्न हृदय, सुहृद् और सखा तेरा। क्या वियोग हुआ कृष्ण से, इस कारण खिन्नता ने घेरा?
हो न हो यही इक कारण है, दूजा कारण न हो पाये। इस भीषण मनोव्यथा का तेरी, अन्य कारण नहीं समझ आये।।
सूतजी बोले,
प्रिय सखा श्री कृष्ण के, विरह से अर्जुन थे आतुर। कृश भया था तन उनका, अभिन्न सखा से बिछुड़ कर।।
विषाद ग्रस्त मुद्रा उनकी, देख युधिष्ठिर शंकित थे। ऐसे में उन अर्जुन से, अनेकों प्रश्न ही पूछ लिये।।
मुख कमल और हृदय कमल, था शोक से कुम्हला गया। रंग भी उनके चेहरे का, मानो था फीका पड़ा।।
श्री कृष्ण के ध्यान में, ऐसे थे वह निमग्न हुए। अग्रज के प्रश्नों का वह, उत्तर कुछ न दे सके।।

श्री कृष्ण जो अदृश्य हुए, उत्कण्ठा ने उन्हें आ घेरा। सारथी कृष्ण या भ्रमण काल, की यादों ने किया डेरा।।
गूह्य और अभिन्न प्रेम से, था उनका व्यवहार स्निग्ध। बार बार उन स्मृति बाणों ने, अर्जुन का किया हृदय बिद्ध।।
बहुत वेग से शोक की, लहरें थीं उन्हें डुबो रहीं। प्रयत्न किया उनको रोका, आंखों के अश्रु पोंछ करी।।
रुंधे स्वर से निज भ्राता को, वह फिर उत्तर देने लगे। प्रश्न जो उन्होंने थे किये, उनको शान्त करने के लिये।।
अर्जुन बोले,
अपने बन्धु और प्रिय सखा, बन कृष्ण ने मुझको हर लिया। जिसे देख आश्चर्य चकित थे देव, पराक्रम वह मुझसे छीना।।
ज्यों वियोग से प्राणों के, तन यह मृत कहलाता है। उनके वियोग से क्षणभर में, संसार नि:सार हो जाता है।।
उनका आश्रय पाकर ही, द्रुपद सभा में था मैं गया। द्रुपद सुता के स्वयंवर में, राजाओं का था तेज हरा।।
धनुष पर बाण चढ़ाकर के, मत्स्य बेध मैंने किया। उनकी कृपा से ही तो मैं, द्रौपदी को था जीत सका।।

उनके ही सान्निध्य में, था मैंने इन्द्र को भी जीता। सब देवों को जीतकर, निज बल था मैंने सिद्ध किया।।
अग्निदेव की तृप्ति अर्थ, था खाण्डव वन का दान दिया। मय दानव निर्मित मायामयी, सभा को भी था प्राप्त किया।।
वहां पे ही तो आपने, यज्ञ महान रचाया था। सब ओर से आये राजा गण, उपहार हर कोई लाया था।।

अनुज आपका भीम यह, महाबली और महान् है। इसमें अतुल्य है बल भरा, दस हजार हाथी समान है।।
उनके बल से ही तो इसने, था जरासन्ध का वध किया। अभिमानी वह अति घोर था, नृप सीस पे चरण था वह धरता।।
तत्पश्चात् श्री हरि ने स्वयं, वह सब राजा मुक्त किए। भैरव यज्ञ में बलि हेतु, जो सब थे बन्दी किए।।
उन राजाओं ने आपके, यज्ञ में बहु उपहार दिए। यह सब ही थी उनकी कृपा, सब ही यह कौतुक उनके थे।।

राजसूय यज्ञीय अभिषेक से, पावन जो थे केश हुए। द्रौपदी के उन केशों को, दुष्टों के हाथ छूने लगे।।
उन खुले केशों से आर्त हो, जब आंखों में अश्रु भरी। भरी सभा में द्रौपदी, श्री कृष्ण की शरण में थी पड़ी।।
तब कृष्ण ने उसके सामने, ऐसी घोर प्रतिज्ञा की। अपमान का बदला लेने की, सबके सम्मुख थी घोषणा की।।

उन दुष्टों की भार्याओं को, विधवा ही बना दिया। उन सबने अपने हाथों से, हैं केश दिये बिखरा।।

जब अन्याय हुआ हम पर, और हम बनवास को थे गए। दुर्योधन के षडयन्त्र से, दुविधा में थे हम पड़े।।
ऋषि दुर्वासा अपने संग, दश सहस्र शिष्य लाये। एक ही साथ करेंगे भोज, ऐसे उन्होंने आदेश दिये।।
हमरी रक्षा कारण तब, था अक्षयपात्र में अन्न खाया। शाक का पत्ता जो था बचा, उसका था भोग लगाया।।
उनका भोग लगाने से, कैसा आश्चर्य महान हुआ। नदी में स्नान करती हुई, सब मण्डली को यह ज्ञान हुआ।।
तृप्त ही वे सब हो गए, संग सारी ही त्रिलोकी हुई। हरि ने जो इक कण खाया, सारी सृष्टि ही तृप्त हुई।।

उनका ही यह प्रताप था, जो भोलेनाथ विस्मित हुए। युद्ध में देखी मम कौशल, मां गोरी ने आश्चर्य किए।।
प्रसन्न मनी होकर शिव ने, पाशुपत नामक अस्त्र दिया। अनेकों अस्त्र शस्त्र देकर, मुझे लोकपालों ने धन्य किया।।
और मैं गाऊं महिमा क्या, सशरीर स्वर्ग मुझे भेज दिया। इन्द्र सभा में इन्द्र संग, सिंहासन का सम्मान दिया।।

उनके आग्रह से ही मैं, स्वर्ग में कुछ दिन तक रहा। गाण्डीवधारी मम भुज आश्रय, दैत्य निवात कवच मारा।।
जिनकी महती कृपा स्वरूप, यह फल था मैंने पाया। उन्हीं पुरुषोत्तम कृष्ण ने, आज मुझे है ठग लिया।।
भीष्म द्रोण महामत्स्यों से, था भरा हुआ दुस्तर सागर। महा विस्तृत कौरव सेना, अजेय योधाओं का थी घर।।
उनके आश्रय अकेला मैं, निज रथ पर सवार था। यह उनकी ही महिमा थी, जो इसका पार मैं पा सका।।
शत्रु सेना ने आकर जब, गोधन विराट का छीना था। हे महाराज क्या याद है, उनसे ला वापिस दीया था।।
संग संग उस गोधन के, माणिक्य मुकुट भी थे हरे। श्री हरि की ही कृपा यह थी, तन अलंकार भी उनके हरे।।

हे भ्राता कौरव सेना, शोभायमान थी वीरों से। द्रोण भीष्म कर्ण शल्य, बड़े-बड़े रणधीरों से।।
महारथियों के महारथों ने, उसे सुसज्जित था किया। मेरे आगे हो कृष्ण ने, उत्साह था उनका क्षीण किया।।
उन सेना नायकों पर, जब दृष्टि अपनी करते थे। दृष्टिपात से ही मानो, आयु मनोबल सब हरते थे।।

द्रोण भीष्म कर्ण और शल्य, सुशर्मा जयद्रथ भूरिश्रवा। बाह्लीक आदि वीरों ने, अचूक अस्त्रों से वार किया।।
पर उनकी कृपा से सबके अस्त्र, मेरा कुछ न बिगाड़ सके। जैसे प्रल्हाद पे हिरण्यकश्यपु के, सारे वार निरर्थक थे।।
उनके भुजदण्ड की छाया में, सबके वारों से बचा रहा। उनकी कृपा का छत्र ज्यों, मेरे सीस पे था धरा।।

भव बन्ध सों मुक्ति पाने को, सब चरण कमल जिनके सेवें। श्रेष्ठ जन संसार के, उनके श्री चरण का आश्रय लें।।
प्रेम स्वरूप वह श्री हरि, भक्तों के बस में नित्य रहें। प्रकट करें न निज वैभव, वह तो नित्य ही छिपे रहें।।
मैं बुद्धि हीन मैं मूढ़मति, उनकी महिमा को न जाना। सारथी उन्हें बना डाला, न सत्यता उनकी पहचाना।।
अश्व मेरे जब थे थके, और मैं पृथ्वी पर था खड़ा। उस समय भी बड़े-बड़े, महारथिने न प्रहार किया।।
श्री कृष्ण के प्रभाव से, हतबुद्धि वे थे हो गए। उनसे रहा सुरक्षित मैं, नहीं बाल भी बांका कर सके।।

हे महाराज उन माधव ने, उन्मुक्त मधुर मुसकान से। कभी विनोद में सने हुए, कभी हृदय स्पर्शी मुझे वचन कहे।।
कुरुनन्दन अर्जुन सखा पार्थ, कहकर यूं मुझे पुकारना। स्मृति करे उद्विग्न मुझे, वह प्रेम पूर्वक निहारना।।

जीवन में दिनचर्या में, अभिन्न हमारा साथ था। संग संग सोना उठना, विचरन् हमारा साथ था।।

निज गुण की परस्पर बातें कर, भोजन भी संग ही करते थे। कभी क़भी मेरे व्यंग बाणों से, भी वह बच नहीं पाते थे।।
मैं कहता सखा तुम धन्य हो, धन्य तेरी सत् वादिता। उस पल भी उस महापुरुष ने, कभी न मुझपे क्रोध किया।।
ज्यों सखा निज मित्र के, और पिता निज पुत्र के। सब अपराध ही करे क्षमा, मुझ दुर्बुद्धि को सहते थे।।

हे महाराज मेरे प्रिय सखा, नहीं नहीं मेरा हृदय आप। उन पुरुषोत्तम श्री हरि से, ही हुआ मम वियोग आज।।
श्री कृष्ण की सब भार्याओं को, था द्वारिका से मैं ला रहा। मार्ग में दुष्ट गोपों ने, अबला सम मुझे हरा दिया।।
इतना बल भी न रहा मुझमें, उनकी रक्षा न कर पाया। श्रीकृष्ण बिना हुआ बलहीन, श्री हीन ही हो घर को आया।।

वह ही तो है गाण्डीव मेरा, तुणीर में बाण भी वो ही हैं। हूँ वही अर्जुन मैं महारथी, रथ और घोड़े भी वो ही हैं।।
जिसके सामने राजा सभी, सीस झुकाया करते थे। बड़े बड़े महावीर मिल, जिसके गुण गाया करते थे।।
कृष्ण बिना यह सब कुछ, पल में ही सार शून्य हुआ। ज्यों भस्म में डाली आहुति, का अर्थ नहीं कोई होता।।
ज्यों कपट से हो जो सेवा करी, या ऊसर भू में बीज पड़ा। लाख घड़े से जल सींचे, वह फल नहीं दे पायेगा।।

द्वारिका वासी स्वजन सुहृद्, की पूछी आपने वार्ता। हे राजन ब्राह्मण शाप से, वह यदुकुल मोह ग्रस्त हुआ।।
वारुणी मदिरा पान से, मदोन्मत्त सारे हुए। अनजानों की भान्ति वह, इक दूजे से भिड़ने लगे।।
अपने हाथों इक दूजे को, विनष्ट वह करने लगे। प्राय: सारे ही नष्ट हुए, बस चार पांच ही शेष बचे।।

सब लीला है भगवान की, उस सर्वशक्तिमान की। इस संसार के सब प्राणी, हैं उसके अधीन ही।।
करें पालन इक दूजे का, फिर आप ही प्राण भी हर लें। इस सब में उस प्रभु को ही, क्यों न आज हम देख लें?

हे राजन् नियम यह सृष्टि का, नित्य वर्तता आया है। बलवान जन्तु ने ही सदा, निर्बल बलहीन को खाया है।।
फिर बलवान भी आपस में, इक दूजे से भिड़ जाते हैं। इक दूजे को मारकर, वह अपनी डाह मिटाते हैं।।
इसी विधि श्री हरि ने भी, यदुकुल को बलवान किया। उनके बल के आसरे, दूजे राजाओं को मारा।।
फिर आपस में ही लड़ाकर के, यदुकुल का भी संहार किया। पूर्ण रूप से इस विधि, धरती का भार उतार दिया।।

जो शिक्षा उन्होंने मुझको दी, वह देश काल अनुरूप थी। प्रयोजन अपना पूर्ण कर, हृदय व्यथा उस शान्त की।।
स्मृति मात्र ही उन की, चित्त मेरा हर लेती है। प्रभु की महिमा के रोमांच, से अंग अंग भर देती है।।
सूतजी बोले,
प्रेम भाव से इस विधि, श्री कृष्ण चरित के सिमरन् से। चित्त वृत्ति हुई अति निर्मल, और अर्जुन प्रशान्त हुए।।
अहर्निश उनके चिन्तन से, जगी पार्थ में प्रेमा भक्ति। चरण कमल में चित्त टिका, हुई उनकी एकाग्र वृत्ति।।
प्रेम भक्ति के वेग ने, उनका हृदय मन्थन किया। उस मन्थन ने विकारों को, सारे ही निकाल दिया।।

काल के व्यवधान से, और कर्मों के विस्तार से। भूले थे जिस ज्ञान को, निज प्रमाद प्रभाव से।।
युद्ध के आरम्भ में था, प्रभु ने जो उपदेश दिया। उस गीता के ज्ञान को, अर्जुन ने पुन: याद किया।।
जागृत हुआ जब ब्रह्म ज्ञान, माया का आवरण मिटा। द्वैत का संशय मिटा, गुणातीत वह हो गया।।
सूक्ष्म शरीर उसका मिटा, कारण भी जब लय हुआ। जन्म मरण के चक्र से, सर्वथा मुक्त वह हो गया।।

स्वधाम को लौटे श्री हरि, यदुवंश संहार हुआ। निश्चल मन हो युधिष्ठिर ने, स्वर्गारोहण निर्णय लिया।।
कुन्ती ने भी अर्जुन मुख से, जब सारा यह वृतान्त सुना। अपना हृदय अनन्य भाव से, कृष्ण चरण में दिया लगा।।
जन्म मरण रूपा इस, संसार चक्र से मुंह मोड़ा, सब नाते उस छोड़ करी, इक प्रभु से ही नाता जोड़ा।।

जग दृष्टि से श्री कृष्ण ने, धरती का भार उतारा था। नष्ट किए थे दैत्य सभी, यदुवंश भी फिर उठा लिया।।
ज्यों कांटे से निकले कांटा, फिर दोनों को ही फेंक दें। समदर्शी प्रभु ने कुल त्यागा, कोई मोह न उनको बान्ध सके।।
नट समान इस धरा पे वह, अनेकों रूप ही धरते हैं। मत्स्य कभी नरसिंह कभी, सब रूप में आ विचरते हैं।।
वह धाम को अपने चले गए, सब रूपों का परित्याग किया। भू भार उतारा था जिससे, वह यादव तन भी त्याग दिया।।

धरती पर बहु लीला जिनकी, हैं श्रवण कीर्तन योग्य सभी। उन श्री हरि के मानव तन ने, जब पृथ्वी यह त्याग दी।।
उस दिन से इस पृथ्वी पर, कलियुग ने डाला डेरा। अविवेकी जीवों को जो, अधर्म मार्ग में दे उलझा।।
कलियुग का विस्तार यह, न धर्मराज से छिप सका। देश नगर घर जीवों में, देखा जब है अधर्म बढ़ा।।
लोभ असत्य छल हिंसा, देखा निज जाल बिछा हैं रहे। तब उन्होंने निर्णय लिया, महाप्रस्थान अब हम करें।।

उनके समान ही गुणों का, था जिसमें विस्तार हुआ। विनम्र पौत्र परीक्षित को, राज्य अपना सौंप दिया।।
सागर से घिरे पृथ्वी खण्ड के, सिंहासन पर दिया बिठा। हस्तिनापुर में सम्राट् बना, अभिषेकित उसको किया।।
मथुरा में शूर सेना नायक, श्री वज्र अभिषेक किया। अनिरुद्ध पुत्र श्री कृष्ण प्रपौत्र, श्री वज्र बहुत बलवान था।।
तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने, प्राजापात्य यज्ञ किया। अहवनीय अग्नियों को, पुन: अपने में समेट लिया।।

वस्त्र आभूषण सब अपने, युधिष्ठिर ने वहीं छोड़ दिये। अहं मम से रहित हो, सब बन्धन मानो काट दिये।।
दृढ़ निश्चय से निज वाणी को, अपने मन में लय किया। मन को प्राण में लय करी, प्राणों को अपान में लय किया।।
अपान को उसकी क्रिया सहित, जा मृत्यु में लय किया।। मृत्यु को पञ्चभौतिक, माटी के तन में लिया समा।।

मृत्युधर्मा इस तन का, स्वरूप अनुभव कर लिया। इस नश्वर तन को उन्होने, त्रिगुण में फिर दिया मिला।।
त्रिगुण मूल प्रकृति जान, गुणों को उसमें लय किया। सबका ही कारणभूत प्रकृति, उसे दिया आत्म में समा।।
आत्म को फिर एकाग्र कर, अविनाशी ब्रह्म में लीन किया। है ब्रह्म स्वरूप सब दृश्य जगत्, ऐसा अनुभव उन्हें होने लगा।।

तत्पश्चात् अपने तन पर, चीर वस्त्र धारण किया। मौन ही फिर वह हो गए, और अन्न जल परित्याग किया।।
केशों को फिर खोलकर, अपने ऐसे बिखरा लिया। जैसे हो जड़ उन्मत्त पिशाच, ऐसा रूप बना लिया।।
फिर बिना किसी की देखे बाट, या किसी की बात सुने। इस विधि घर से निकल पड़े, जैसे हों वह बहरे बने।।
हृदय में ध्यान धरा ब्रह्म का, जिससों पुनरावृत्ति न हो। वह उत्तर दिशा को चल दिए, महात्मन् से है सेवित जो।।

भीमसेन अर्जुन आदि, सब ही अनुज युधिष्ठिर के। सबने देखा इस पृथ्वी पर, हैं अधर्म बढ़ने लगे।।
अधर्म सहायक कलियुग ने, लोगों को अपने बस में किया। यह देख करी सब भाइयों ने, श्री कृष्ण चरण आश्रय लिया।।
अग्रज श्री युधिष्ठिर का, अनुगमन वह करने लगे। दृढ़ निश्चय मन में धारी, वह उनके पीछे हो लिये।।

जीवन के सब लाभ तो, भली भान्ति थे प्राप्त किये। हैं कृष्ण चरण ही परम धाम, यह जानी आश्रित उनके हुए।।

वह ही तो परम पुरुषार्थ हैं, सब लाभों की परा सीमा। यह निश्चय ले पाण्डवों ने, हृदय में धारण उन्हें किया।।

उन चरण कमल के ध्यान से, हिय में भक्ति उमड़ आई। शुद्ध हुई बुद्धि उनकी, अनन्य भाव स्थिरता पाई।।
श्री कृष्ण के स्वरूप में, निष्पाप पुरुष ही टिक पाये। विषयासक्त दुर्भाव ग्रसित, जीव उसे कभी न पाये।।
विशुद्ध अन्त:करण से ही, वह गति उन्होंने प्राप्त की। श्री कृष्ण के प्रेम में, एकाग्र भाव से वृत्ति टिकी।।

श्री हरि के प्रेमावेश में, हर पल मुग्ध जो रहते थे। श्री विदुर तो आप ही, हो गए थे भगवन्मय।।
प्रभास क्षेत्र में उन्होंने भी, अपने तन को त्याग दिया। लेने आये पितरों सहित, निज लोक को प्रस्थान किया।।
द्रौपदी ने जब देखी, पाण्डव गण की निरपेक्षता। अनन्य चिन्तन करते हुए, श्री कृष्ण को ही उस प्राप्त किया।।
परम भागवत पाण्डवों के, महाप्रयाण की गाथा को। परम पवित्र मंगलमयी, श्रद्धा से सुने इस कथा को जो।।
निश्चय ही वह भगवान का, अनन्य भक्त हो जाता है। उनकी भक्ति के साथ साथ, मोक्ष भी वह पा जाता है।।

१३) परीक्षितकी दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का सम्वाद व कलियुगका दमन

सूतजी बोले,
ये परम भक्त भगवान के, ब्राह्मणों से था पाया ज्ञान। परीक्षित ने भू शास्ति की, जब पाण्डव कर गए महाप्रयाण।।
जन्म समय पण्डित गण ने, जो भविष्य वाणी थी की। वह सब गुण परीक्षित में, दृश्य अब होने लगी।।
उत्तर पुत्री इरावती से, बन्धे वह परिणय सूत्र में। उसने जन्मजेय आदि, चार पुत्र उत्पन्न किये।।

कृपाचार्य को आचार्य बना, गंगा के पावन तट पे। तीन बार महाराज ने, अश्वमेध थे यज्ञ किये।।
पुष्कल दक्षिणा दे ब्राह्मणों को, भली भान्ति था तृप्त किया। देवों ने भी प्रत्यक्ष होकर, अपना भाग था ग्रहण किया।।
एक समय जब राजा अपनी, दिग्विजय को थे जा रहे। राह में उनको शूद्र रूप में, कलियुग के दर्शन हुए।।
राजवेष में कलियुग था, गाय और बैल को मार रहा। तब बलपूर्वक उसे पकड़, परीक्षित ने दण्डित किया।।

हे भाग्यवान श्री सूत सुनो, इक संशय मन में मेरे उठा। कलियुग को परीक्षित ने, क्यों दण्ड ही देकर छोड़ दिया।।
उस उद्दण्डी कलियुग का, वध ही क्यों न कर दिया। राज वेषधारी होकर भी, गाय को पैर से मारा था।।
यह प्रसंग भी कृष्ण की, लीला से यदि सम्बन्धित हो। वा चरण कमल रस रसिकों से, या सम्बन्ध कोई उसका ही।।
तो मुझको आवश्य कहें, है सार वस्तु यही जीवन की। बाकी बातों से लाभ क्या, हो नष्ट यह जीवन व्यर्थ ही?

हे प्रिय सूत इस जग के जीव, चाहें तो केवल मोक्ष ही। पर अल्प आयु के कारण वह, हों मृत्यु से ग्रसित नित ही।।
उनके कल्याण को हृदय में धर, आवाहन यम का किया। यम को इस संसार में, शान्ति कर्म में नियुक्त किया।।
मृत्यु ग्रस्त इस लोक में, जीवों के कल्याण को। भगवान की लीला कथा के, सुधा तुल्य रसपान को।।
आवाहन यम का किया, सो अभी तो मृत्यु न होगी। जब लौ यम हैं यहां कार्य रत, किसी की मृत्यु न होगी।।

एक ओर है अल्प आयु, दूजी ओर बुद्धि की कमी। ऐसी हालत में मन्दभागी, जीवों की आयु बीत रही।।
रात में निद्रा दिन में काम, पल पल यूं बीते जा रहे। भूले वह जन पल पल ही, मृत्यु के निकट हैं जा रहे।।

कुरुजांगल देश के, परीक्षित तब सम्राट थे। थे निवास वहां कर रहे, उनके कानों यह शब्द पड़े।।

सेना द्वारा है सुरक्षित जो, ऐसे उनके साम्राज्य में। कलियुग प्रवेश है पा चुका, धर्मयुक्त साम्राज्य में।।
यह सूचना पाकर के, कुछ व्यथित तो वह हुए। पर अवसर युद्ध का देखकर, आहत दु:ख से नहीं हुए।।
तत्पश्चात् परीक्षित ने, धनुष हाथ में ले लिया। युद्धवीर नव अवसर पा, युद्ध को तैयार हुआ।।

था सिंह ध्वज से सुसज्जित रथ, और श्याम वर्ण के घोड़े जुते। उस पर सवार दिग्विजय हेतु, वह नगर से बाहर निकल पड़े।।
रथ हाथी घोड़े पैदल, सेना के सब अंग साथ थे। चतुरंगी सेना से वह, सम्राट थे उस पल सज रहे।।
भद्राश्व केतुमाल भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष। राज्य भेंट स्वीकार की, इन सब वर्षों को जीतकर।।

उन देशों में सर्वत्र ही, निज पूर्वज यश गाथा सुनी। उस यशोगान में पद पद पर, श्रीकृष्ण की उन्होने महिमा सुनी।।
साथ में उन्होंने यह भी सुना, श्री कृष्ण ने उन्हें बचाया था। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की, ज्वाला से उन्हें निकाला था।।
यदुवंशी और पाण्डवों के, प्रेम की भी कथायें सुनीं। कृष्ण में उनकी थी भक्ति, इसकी भी गाथायें सुनी।।
जो लोग यह सब चरित, परीक्षित को सुनाते थे। होते प्रसन्न उनपे राजा, नयना उनके खिल जाते थे।।
पूर्ण प्रेम हृदय में भर, दान उदारता से देते। बहुमूल्य वस्त्र मणि माणिक्य, उपहार में उनको दे देते।।

किस विध प्रेम के वश में हो, प्रभु सारथी बने थे अर्जुन के। सभासद भी उनके बने, वह तो मनभावन सेवक थे।।
अभिन्न सखा तो थे ही वह, उनके कहे पे दूत बने। प्रेम अधीन श्री कृष्ण ने, कैसे नित नव रूप धरे।।
रात को वीरासन पे बैठै, सुरक्षा करते शिबिर की। अनुगमन वह करते पाण्डवों का, करते प्रणाम और स्तुति।।
इतना ही नहीं सब जग को भी, उनके चरण में झुका दिया। ऐसी कथाएँ सुन सुन कर, कृष्ण प्रति परीक्षित् प्रेम बढ़ा दिया।।

इस प्रकार दिन प्रति दिन वह, पूर्वज अनुसरण थे कर रहे। उनकी महिमा सुनते हुए, वह दिग्विजय की ओर बढ़े।।
उन्हीं दिनों वा शिबिर से दूर, आश्चर्य जनक घटना घटी। उस घटना की विचित्र कथा, सुनें महानुभाव सभी।।

बैल के रूप में था धर्म, एक पांव पर घूम रहा। एक स्थान पर गौ रूपा, पृथ्वी से वह जा मिला।।
पुत्र से बिछुड़ी माता सम, थी पृथ्वी अति व्यथित हुई। आंसू की झड़ी थी यूं लगी, मानो हो पुत्र की मृत्यु हुई।।
तन भी अति कृशकाय हुआ, और श्री हीन था हो गया। ऐसी अवस्था वा की देख, धर्म ने पृथ्वी सों पूछा।।
धर्म बोला,
हे कल्याणि तुम कहो, अपने कुशल क्षेम की। किस चिन्ता ने है घेरा, क्यों छवि तेरी मलिन हुई?
ऐसा लगे हृदय को तेरे, किसी दु:ख ने घेरा है। इस कारण ही श्री हीन, मुखड़ा हुआ यह तेरा है।।
क्या कोई अपना प्रिय बन्धु, नाता विदेश में है गया? जिसकी चिन्ता ने आज तुझे, चहुँ ओर से है घेरा?

कहीं मेरे ही कारण तुम, चिन्ता ग्रस्त तो नहीं हुई? तीन पांव टूटे इसके, अब एक ही बाकी रह गई।।
या सम्भव है अपने ही लिये, तुम शोक ग्रस्त हो हो रही। तुझपे राज्य करेंगे शूद्र, क्या इस चिन्ता में हो पड़ी?
या देवों के कारण भी, दु:ख तुम्हारा जाग सके। यज्ञों में आहुति नहीं मिले, तो कैसे पुष्टि इन्हें मिले?
या उस प्रजा हेतु हो दु:खी, जो दुर्भिक्ष से है पीड़ित? न वर्षा हुई न अन्न मिला, इस अभाव से है ताड़ित।।

हे देवी कहो क्या कारण है, क्यों तुम शोक हो कर रही? राक्षस समान मनुष्यों से, असुरक्षित हैं स्त्रियाँ सभी?

या उनके चंगुल में फंसे, आर्त बालकों के लिये? क्या शोचनीय है कहो, क्या कारण हैं तब दु:ख के?
या देख रही हो दुर्गति, सम्भव है अब तुम विद्या की। कुकर्मी ब्राह्मणों के चंगुल, में विद्या है आज फंसी।।
विप्रद्रोही राजाओं की, सेवा करने में हैं वह लगे। कहो कहो तुम पृथ्वी आज, यह तब दु:ख का कारण है?

राजा आज के नाममात्र, पूर्णतय: ही कलियुगी भये। बड़े बड़े महादेश भी, उन्होंने हैं उजाड़ दिये।।
क्या शोक है राजाओं का, या उन देशों का शोक करो? क्या कारण तव व्यथा का, हे पृथ्वी मुझे आज कहो।।
जन साधारण भी तो आज, रुचि प्रधान ही हो रहा। खान पान और वस्त्र स्नान में, स्वेच्छाचार ही हो रहा।।
स्त्री गमन आदि में भी, नहीं शास्त्र नियम कोई याद रहे। क्या यह सब ही कारण हैं, हे पृथ्वी तेरे दु:ख के?

हे पृथ्वी समझ में आया अब, क्या कृष्ण की याद है आ रही? तेरा भार उतारन कारण ही, उन्होंने थी यह अवतार ली।।
ऐसी लीलायें की भू पर, जो भक्तों का अवलम्बन हैं। जिनका श्रवण कीर्तन ही, मोक्ष का एक ही साधन है।।
कर्म किये अपने भू पर, लीला का संवरण किया। क्या उनके वियोग से, तेरा हृदय विदीर्ण हुआ?
तुम स्वयं खान हो रत्नों की, अब निज क्लेश कारण बता। किस कारण इतनी कृश् हो हुई, किस चिन्ता ने आ घेरा?

बड़े बड़े महाबलियों को, भी पराजित जिसने किया। सर्व बली उस काल ने, क्या प्रहार तुझपे किया?
देवों की भी वन्दनीय, हे देवी तुम आप हो। क्या सौभाग्य तेरा छिना, जिस कारण यह ताप हो।।
पृथ्वी बोली,
हे धर्म तू जो मुझसे पूछ रहा, तुम स्वयं ही वह सब जानते हो। लीला संवरण किया कृष्ण ने, मम शोक का कारण जानते हो।।
उनके आसरे ही तो तुम, चारों चरण से युक्त थे। उनके आसरे ही जग में, तेरे द्वारा सुख विस्तृत थे।।
सत्य शौच और दया क्षमा, सन्तोष त्याग और सरलता। शम दम तप एवं समता, उपरति विवेक और तितीक्षा।।
ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य वीरता, तेज बल स्मृति स्वतंत्रता। कौशल कान्ति धैर्य निर्भयता, विनम्रता शील और कोमलता।।
साहस उत्साह बल और सौभाग्य, गम्भीरता स्थिरता आस्तिकता। यह सब ही कहे हैं दैवी गुण, कीर्ति गौरव निरहंकारता।।
ये सब गुण तथा अन्य भी, वाञ्छनीय महापुरुषों के। उनकी सेवा के लिए, तत्परायण नित्य रहें।।
इक क्षण भी श्री कृष्ण के, चरण कमल वह न छोड़ें। कृष्ण चरण के आसरे, ही सब धर्म आचरण करें।।
समस्त गुणों का आश्रय वह, सौन्दर्य धाम भगवान आप। अपनी मानव लीला को, समेट लिया है उन्होने आज।।
उनके जाते ही कलियुग की, कुदृष्टि पड़ी संसार पे। हूँ शोक ग्रस्त मैं हो रही, दुर्गति यह देख के।।

देवों में श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवों और पितरों के लिये। ऋषि साधु समस्त वर्ण और आश्रमों के लिये।।
भूलोक के मानव गण के लिये, और फिर मैं अपने ही लिये। शोक ग्रस्त हूँ आज हुई, है मेरे शोक का कारण यह।।

ब्रह्मा आदि सब देवता गण, हो शरणागत थे तपस्या रत। जिनकी कृपा कटाक्ष हेतु, जिन त्याग दिये सब सुख वैभव।।
वही श्री लक्ष्मी निज धाम छोड़, कमल वन परित्याग कर। अति प्रेम से जिन चरणों की, सुभग छाया में सेवन रत।।
कमल वज्र अंकुश ध्वजा, से अंकित प्रभु के श्री चरण। विभूषित मुझको करते रहे, वैभव महान् हुआ था मम।।
तीनों लोकों से बढ़कर, शोभा थी मेरी निराली बनी। चरण स्पर्श उनका पाकर, मैं अति सौभाग्यशाली बनी।।
पर अन्त हुआ अब भाग्य का, मुझ मन्दभागा को उन छोड़ा। गर्व हुआ निज भाग्य पर, इस कारण क्या यह दण्ड दिया?

उनके दिन चरण अभाव से, व्यथित अति तुम मन में थे। तेरी दशा को देखकर, दु:ख दूर तेरा करने के लिये।।
अपने ही पुरुषार्थ से, सर्वांग स्वस्थ करने के लिये। यदुवंश में अति रमणीय, श्री कृष्ण का विग्रह धर प्रकटे।।
अनेक अक्षौणी सेनाएं, असुरवंशी राजाओं की। थी मेरा बोझ बढ़ा रही, हरि ने वह सब नष्ट करी।।
परम स्वतंत्र स्वयं हैं वह, वह आप ही हैं सबके स्वामी। उनकी कृपा से ही जानो, भार मेरी कुछ हल्की हुई।।

प्रेम भरी चितवन जिनकी, और मधुर मुस्कान से। सत्यभामा आदि मानिनियों, के थे जिन्होने मन जीते।।
मधुर वचन उनके सुनीं, वह मन का धैर्य भी खो बैठीं। चरण स्पर्श जिनका पाकर, पुलकित मैं हर क्षण रहती थी।।
उन्हीं श्री कृष्ण का विरह अब, कैसे कहो कोई सह पाये? कृष्ण बिना भूलोक यह, सार रहित ही दर्शाये।।
पृथ्वी और धर्म परस्पर ही, वार्तालाप यह कर थे रहे। उसी समय परीक्षित भी, सरस्वती तट पर आ पहुंचे।।

परक्षित ने वहां पहुंचकर, यह अद्भुत दृश्य देखा। एक शूद्र ने राज वेष धर, हाथ में डंडा था लिया।।
गाय और बैल के युगल को, वह इस भाँति था पीट रहा। मानो ज्यों इस संसार में, उनका कोई स्वामी नहीं रहा।।
कमल तन्तु सम श्वेत बैल, एक पैर पर था खड़ा। पीड़ित हो उस ताड़ना से, था अति भयभीत हुआ।।
काँप रहा था भय से वह, और मूत्र त्याग था कर रहा। इस अत्याचार से वह, नहीं ठौर कहीं पा था रहा।।

धर्म उपयोगी हविष्य पदार्थ, गाय नित्य जो देती है। दूध घी दधि आदि दे, जो पोषण सबका करती है।।
शूद्र के पाँव की ठोकर खा, वह भी अति दीन थी हो रही। कृश् तो पहले से ही थी, फिर बछड़े से भी थी बिछुड़ी।।
थी क्षुधा से व्याकुल वह, आंखों से आँसू बहते थे। वे अश्रू ही वो व्यथा की, सारी कथा ज्यों कहते थे।।
स्वर्णजटित रथ पे सवार, परीक्षित ने लिया धनुष उठा। मेघ सम गम्भीर स्वर में, उसने शूद्र को ललकारा।।

परीक्षित बोले,
कौन है तू मम राज्य में, अत्याचार यूं कर रहा? मेरे राज्य के बलहीन, जीवों को क्यों तू ताड़ रहा?
बलवान सा है तू दीख रहा, जैसे किसी नट ने रूप धरा। राजवेष धर कर भी तू, है कर्म से शूद्र ही दीख रहा।।
श्री कृष्ण के संग पितामह मम, अर्जुन भी पधारे परम धाम। उनको इस लोक से गया जान, क्या तूने किया यह नीच काम?
निरपराध पर निर्जन वन में, तुने यूं प्रहार किया। अपराधी है तू धर्म का, तेरा वध ही उचित होगा।।

धर्म से पूछा परीक्षित ने, अति श्वेत वर्ण है तूने धरा। त्रिपाद रहित होने पर भी, है एक पांव से चल रहा।।
यह गति देख के आपकी, दारुण दु:खी मम हृदय हुआ। कहें बैल के रूप में, हैं आप क्या कोई देवता?
अभी तक यह भूमि खण्ड, सुरक्षित है महाबलियों से। कुरुवंश के धर्म परायण, दीन रक्षक नरपतियों से।।
अभी तक इस राज्य में, किसी को दु:खी नहीं देखा। आपके बिन किसी अन्य की, आँख से आँसू नहीं बहा।।

हे धेनु पुत्र अब शोक त्यजो, न शूद्र से अब भयभीत रहो। गो माता जानें आप भी अब, दुष्टों का दमन ही मुझसे हो।।
कृपा करी अश्रु पोछों, अब रुदन यह बन्द करो। मेरे राज्य में रहकर के, केवल कल्याण की प्रतीक्षा करो।।
दे देवि जिस राज्य में, दुष्टों से रहे प्रजा त्रस्त। उनके उपद्रव के कारण, जिस राज्य में हो धर्म नष्ट।।
मदमस्त उस राजा की कीर्ति आयु सब मिट जाये। ऐश्वर्य और परलोक सब, उसके नष्ट ही हो जाते है।।

है परम धर्म राजा का यह, वह दुखियों का दु:ख दूर करे। यह दुष्ट निरीह जीव मारे, इस कारण मेरे हाथों मरे।।
हे ऋषभ देव चौपाये आप, त्रिपाद हैं किसने भंग किये? कृष्ण भक्तों के राज्य में, नहीं आप समान कोई दु:खी होए।।
हे धेनु पुत्र कल्याण हो तब, किस दुष्ट किया तब अंग भंग? निष्पाप साधु को ताड़ित कर, पाण्डव कीर्ति में दिया कलंक ?

जो उद्दण्ड किया दीन को, कहीं पे भी कभी दु:खी करे। उसको तो निश्चित ही, मेरा भय त्रासित करे।।
यही धर्म है राजा का, दुष्टों का दमन ही कर देना। साधु कल्याण ही नित्य हो, इसका सब साधन कर देना।।
निरपराध जीवों को, जो भी ताड़ित करता हो। भुजदण्ड काट मैं गिराऊंगा, चाहे वह देवता क्यों न हो।।

आपत्ति काल आये बिना, जो मर्यादा भंग करे। राजा का यह धर्म है, शास्त्रानुकूल उसे दण्ड दे।।
स्वधर्म का पालन जो करें, उनका पालन पोषण करना। है परम धर्म यह राजा का, धर्म का नित रक्षण करना।।
धर्म बोला,
हैं आप पाण्डवों के वंशज, यह वचन आपके योग्य ही हैं। दुखियों को आश्वासन देना, वंश परम्परा अनुगत है।।
श्रेष्ठगुणी तव पूर्वजों ने, श्री हरि को भी बस में किया। कभी दूत बना भेजा उनको, कभी सारथी अपना बना लिया।।
शास्त्र भेद से भ्रमित हुए, हम सत्य जान न पाते हैं। सब क्लेशों का बीज जो, उसको पहचान न पाते हैं।।

जो न माने किसी द्वैत में, खुद को ही दु:ख कारण मानें। कोई कर्म को ही कारण कहें, कोई प्रारब्ध को ही जानें।।
स्वभाव ही है दु:ख का कारण, अन्य जन ऐसा कहें। ईश्वर ही दे सब दु:ख हमें, कोई अन्य ऐसा कहें।।
कोई जन विचार करी, दु:ख के कारण की यूं कहें। न तो तर्क से जान सकें, न वाणी से उसे कह सकें।।
हे राजर्षि अब इनमें से, कौन सा मत है सर्वश्रेष्ठ? आप विवेक से लें निर्णय, आप स्वयं हैं नरश्रेष्ठ।।
सूतजी बोले,
धर्म का यह प्रवचन सुनी, परीक्षित अति प्रसन्न हुए। हे शौनक इस उपदेश से, सारे उनके शोक मिटे।।
शान्तचित्त होकर राजा, फिर धर्म से यूं कहने लगे। अपने हृदय के भाव जो, धर्म सम्मुख उन्होंने धरे।।
राजा बोला,
धर्म तत्वज्ञ हैं ऋषभ देव, हैं ऋषभ रूप में धर्म आप। धर्म उपदेश जो दे रहे, धर्म का हैं स्वरूप आप।।
अधर्म का फल जो नरक हैं, वह ही निन्दक को भी मिले। इस कारण ही आपने, निज ताड़क नाम ही नहीं लिये।।
मन और वाणी के द्वारा, माया का रूप न जान सकें। निश्चित ही है नियम यह, बुद्धि न उसे पहचान सके।।

हे धर्म देव सतयुग में तो, चार चरण थे आपके। तप पवित्रता दया सत, यह थे अवलम्बन आपके।।
इस पल पासा पलट गया, अधर्म ही है प्रधान हुआ। गर्व आसक्ति और मद ने, त्रि चरण को नष्ट किया।।
चौथा चरण जो सत्य है, बस वह ही बाकी रह गया। वह ही आपके जीवन का, आज है आधार बना।।
असत्य से पुष्टित कलियुग यह, उसे भी हरना चाहता है। अधर्म स्वरूपा युग उसे, निज ग्रास बनाना चाहता है।।

गौ माता जो सामने, साक्षात् पृथ्वी है खड़ी। प्रभु ने स्वयं अवतार ले, इसकी सब पीड़ा हरी।।
सौन्दर्य सिन्धु उनके चरण, थे धरती पर जब पड़े। उल्लसित यह पृथ्वी हुई, सब दु:ख इसके दूर हुए।।
उनसे जब वियोग हुआ, दुर्भाग्य ने इसको आ घेरा। इसी सोच से आज यह, मुख है अश्रुपूर्ण हुआ।।

आज यह चिन्ता इसे हुई, ब्राह्मण द्रोही इसे भोगेंगे। शूद्र आज धर राज वेष, इस धरती पर विचरेंगे।।
सूतजी बोले,
परीक्षित ने दी सान्त्वना, इस विधि धर्म और पृथ्वी को। फिर तलवार उठा लीनी, अधर्म मूल कलि के वध को।।
कलियुग को आभास हुआ, अब मुझे मार ही देंगे यह। राज वेष उतार कर, भयभीत हो चरण में सीस धरे।।
परीक्षित अति यशस्वी थे, थे दीनबन्धु शरणागत के। कलियुग को चरण पड़ा देखी, करुणा से द्रवीभूत हुए।।
कृपा करी उसे मारा नहीं, कलियुग को यूं ही छोड़ दिया। हंसकर के उन्होंने छलिया, कलियुग से फिर यूं कहा।।

परीक्षित बोले,
जब कर जोड़ी और सीस झुका, तू शरण में आ गया। यशस्वी पाण्डव कुल के किसी, शूर से भय तुझे नहीं रहा।।
अधर्म का तू सहायक है, तुमसे नित धर्म का नाश हो। इस कारण मेरे राज्य में, कहीं नहीं तुम रह सको।।
तेरा वास गर हो तन में, राजा भी अधर्मवर्ती भएं। लोभ झूठ चोरी दुष्टता, फिर जा उनका आसरा लें।।
स्वधर्म त्याग दरिद्रता, कपट कलह बढ़ती जाये। दम्भ आदि सब पाप भी, तव आसरे ही वृद्धि पायें।।

अधर्म के ही तुम हो साथी, नहीं ब्रह्मावर्त में टिक सको। केवल धर्म और सत्य का, नित्य यहां पे निवास हो।।
इस क्षेत्र को विधि विधान, के ज्ञाता श्रेष्ठ महात्मा। सुरक्षित रखें यज्ञ कर, करें वह भागवत् आराधना।।
इस क्षेत्र में श्री हरि, यज्ञों का रूप धर रहते हैं। यज्ञों द्वारा वह जीवों का, कल्याण ही करते रहते हैं।।
नित्य पूजना हो उनकी, इन यज्ञों के द्वारा ही। सबके भीतर बाहर बसें, सर्वात्म वह श्री हरि।।
चराचर जीवों में सदा, एक रस वह स्थित रहें। वह ही तो हर रूप में, कामना सबकी पूर्ण करें।।
सूतजी बोले,
परीक्षित की आज्ञा यह सुनी, कलियुग भय से काम्प उठा। निज वध को उद्यत राजा को, कर जोड़ी वह कहने लगा।।
कलियुग बोला,
आपकी आज्ञा मानकर, मैं जहां कहीं जाना चाहूं। वहीं धनु: पे चढ़ाये बाण, आपको ही सम्मुख पाऊं।।
हे धर्म शिरोमणि आप मुझे, अब ऐसा स्थान कोई कहें। आज्ञा आप से पाकर के, जहां स्थिर हो हम रह सकें।।
सूतजी बोले,
याचना वा स्वीकार कर, चार स्थान उसे दे दिये। द्यूत मदिरा हिंसा के साथ, स्त्री संग में भी रहे।।
इन स्थानों में असत्य मद, और निर्दयता निवास करे। अधर्म रूप में आसक्ति, क्रमश: यहां पे आ बसे।।
कलियुग ने फिर राजा से, कुछ और स्थान की याचना की। ऐसा सुनकर राजा ने, उसको धन स्वर्ण की स्थान दी।।
इस विधि उस कलियुग को, पांच स्थान ही मिल गए। झूठ मद वैर काम, और रजोगुण ही वह हो गये।।

अधर्म मूल यह कलियुग, इन पांच स्थान पे रहने लगा। परीक्षित की अनुमति पाकर, उनके अधीन हो रहने लगा।।
अपने कल्याण को चाहे जो, इन पांचों स्थान से दूर रहे। धर्म परायण राजा जो, वह कभी न इनको आश्रय दे।।
प्रजा वर्ग कल्याण के, इच्छुक जो हों लौकिक नेता। त्याज्य हैं यह उनके लिये, और गुरु जो धर्म उपदेश करे।।

तत्पश्चात् परीक्षित ने, ऋषभ के तीनों चरण। तप शौच दया को जोड़, दिया पृथ्वी को आश्वासन।।

वन को जाने के समय, युधिष्ठिर ने उन्हें जो दिया। विराजे उसी सिंहासन पर ,पितामह की पाकर आज्ञा।।
परम यशस्वी सौभाग्यवान्, हस्तिनापुर में राजर्षि। चक्रवर्ती सम्राट बन, भोगें कुरु राज्य की लक्ष्मी।।
अभिमन्यु पुत्र परीक्षित वह, हैं ऐसे प्रभाव शील। उनके शासन काल में आप, हुए दीर्घ कालीन यज्ञ दीक्षित।।

१४) परीक्षितको शृंगी ऋषि का श्राप और परीक्षितका आमरण अनशनव्रत व शुकदेवजीका आगमन

आश्चर्य केन्द्र श्री कृष्ण की, कृपा के थे भाजन बने। अश्वत्थामा का वार उन्हें, न मातृ गर्भ में छू सके।।
ब्रह्मास्त्र जो छोड़ा था उसने, अग्नि सम वह सब भस्म करे। पर कृष्ण सुरक्षा कवच में, जल जाने से भी नहीं मरे।।
ब्राह्मण शाप परिणाम रूप, तक्षक उन्हें डसने आया। नहीं प्राण नाश ने डराया उन्हें, कोई भय न विचलित कर पाया।।
उनका चित्त तो कृष्ण के, श्री चरणों में समर्पित था। इक कण भी बचा न था, जहां मृत्यु भय घर कर पाता।।

आसक्ति त्याग गए गंगातट, श्री शुक से पाया उपदेश। भागवत् स्वरूप पहचान कर, हुआ उनका तन से विच्छेद।।
जो भगवान श्रीकृष्ण की, लीला की कथा करते हैं सदा। या फिर उस कथामृत का, सुधा पान करते हैं सदा।।
इन दोनों ही साधन से, सुमिरण नित्य जो प्रभु का करें। तन त्याग की बेला भी, वह मोह पाश में नहीं पड़े।।

अभिमन्यु पुत्र सम्राट बने, जब लौ धरती पर थे रहे। चहुँ ओर व्याप्त होने पर भी, कलियुग प्रभाव से हीन रहे।।
वैसे तो जिस क्षण ही, प्रभु ने था भू परित्याग किया। अधर्म मूल कलियुग तत्क्षण, ही पृथ्वी पर आ था गया।।
सार ग्राही परीक्षित तो, भ्रमर सम थे गुण ग्राही। द्वेष स्वभाव में था ही नहीं, न उठा कभी कलियुग से भी।।
इस युग के महागुण को, विवेक राही वह जाने थे। संकल्प मात्र से फलें पुण्य, तन करने जो पाप उन्हें जाने थे।।

है भेड़िये सम स्वभाव इसका, वीरों से रहे यह सदा डरा। बालकों के लिये अति शूरवीर, धीरों के लिए है भीरु सदा।।
विवेकशील से दूर रहे, उसे पास यह न आये। प्रमादी जीवों को ही यह, वश में नित्य करता जाये।।
हे शौनक आदि ऋषिगण, पूछा था प्रश्न जो आप ने। भगवान कृष्ण की कथा युक्त, पावन चरित परीक्षित के।।

असंख्य लीलाएँ कृष्ण की, हैं कीर्तन श्रवण के योग्य सभी। उनसे जुड़ी कथायें भी, हैं कल्याण कारी सभी।।
निज कल्याण को जो चाहे, भव बन्धन काटना चाहे जो। उस कथामृत का सेवन, उसके लिए कल्याण कर हो।।
शौनकादि ऋषि बोले,
मृत्यु प्रवाह में पड़े हैं हम, चिरंजीवी श्री सूत हो। अमृतमयी कथारस का, पान करायें हम सब को।।
सब आयु बीती यज्ञ में, हुआ यज्ञ धूम्र से तन धूमिल। फिर भी विश्वास नहीं पूर्ण, इस कर्म राही प्रभु जायेंगे मिल।।
आप आज श्री कृष्ण चरण का, मादक मरकन्द पिला रहे। कथामृत का रसपान करा, हमें नित्य तृप्त करा रहे।।

परम भागवत के मुख से, मिले है जो भी सत्संग। उसकी तुलना में स्वर्ग मोक्ष, आदि उपलब्धियां सब हैं मन्द।।
फिर जीव लोक के भोगों की, बात ही हम क्या करें। कथामृत रस के सामने, वह कोई खड़े न हो सकें।।
महापुरुषों के जीवनाधार, श्री कृष्ण के लीला गान से। जो मर्मज्ञ हो सके तृप्त, उनकी श्री कथा के पान से।।
प्रकृति से सर्वथा अतीत, वा गुण का पार न पा सकें। अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय, शंकर ब्रह्मा न जान सें।।

श्री प्रभु को जीवन का आप, इक ध्रुव तारा जाने हो। सत्पुरुषों का एको आधार, हे विद्वान तुम पहचाने हो।।
उनके उदार निर्मल विशुद्ध, चरितों का विस्तार करें। हम श्रद्धावान् श्रोता बैठे, अमृत रस हमें पिला ही दें।।

परम प्रेमी भगवान के, बुद्धि के धन परीक्षित ने। श्री शुक से उपदेश सुनी, मोक्षदे प्रभु के चरण पाये।।
कृपाकरी उस ज्ञान का, परम पावन आख्यान का। अब आप वर्णन करें, परीक्षित के उस ज्ञान का।।
परम पावनी वार्ता वह, नहीं गुप्त वहाँ कुछ भी होगा। प्रेम की योगनिष्ठा का, अद्भुत वर्णन वहाँ होगा।।
पग पग पर श्री कृष्ण की, लीलाओं का वर्णन होगा। वैसे प्रसंग सुनने का तो, भक्तों का रस ही अलग होगा।।
सूतजी बोले,
न्यून जाति में जन्म लिया, है भाग्य मेरा उदय हुआ। सन्त सेवा परिणाम में, मुझको यह प्रसाद मिला।।
जन्म सफल मेरा हो गया, उनकी ही कृपा से आज। उनका सम्पर्क अति पावन पा, मिट जायें सारे सन्ताप।।
फिर उनकी तो बाह ही क्या, जो नाम लें भगवान का। अनन्त शक्ति असीम आप, जो आश्रय हैं, सदा सन्तों का।।
अन्तहीन गुण सागर वह, इस कारण उन्हें अनन्त कहें। न्यून मानुषी बुद्धि यह, कैसे पार उनका पाये?

उन समान कोई हो न सके, वह तो हैं अद्वितीय आप। उनसे बढ़कर त्रिलोकी में, कोई कैसे हो यह कहो आप?
ब्रह्मा आदि सब देवता, श्री लक्ष्मी की इच्छा करें। उन सबसे पूजित होकर भी, उनके पास वह नहीं रहें।।
श्री हरि के चरण कमल की रज, का नित्य वह सेवन करती हैं। उनके न चाहने पर भी वह, उनके श्री चरण में रहती हैं।।
इसीसे ही विशेषता, प्रभु की आप समझ जायें। श्री लक्ष्मी जी की भक्ति यह, पर्याप्त है समझाने के लिये।।

प्रभु चरणों के प्रक्षालन को, जो जल ब्रह्मा ने चढ़ाया था। वही चरण नखों से निकल, गंगा के रूप में बह निकला।।
महादेव ने सीस धरा, सब जग को पावन यह करे। श्री हरि को ही एकमात्र, त्रिभुवन में भगवान कहें।।
उनके प्रेम को पाकर जीव, सब दृढ़ आसक्ति छोड़ दे। निस्संकोच हो धीर पुरुष, देह गेह आदि से उठै।।
अन्तिम परमहंस आश्रम, संन्यास को वह स्वीकार करे। सब ओर से शान्त हो, अहिंसा धर्म में स्थित होए।।

आपने जो पूछा मुझसे, तेजस्वी हे महात्मा जन। आपको मैं बतलाता हूँ, जैसी भी है मेरी समझ।।
ज्यों पक्षी आकाश में, निज सामर्थ्य अनुकूल उड़ें। वैसे ही विद्वान जन, सामर्थ्य अनुकूल लीला गायें।।

राजा परीक्षित एक दिन, वन में आखेट को थे गए। मृग का पीछा करते हुए, परिश्रान्त वह हो गये।।
वन में यूं जाते हुए, क्षुधा पिपासा ने घेरा। अति व्याकुल वह हो गए, नहीं अपना कोई था डेरा।।
जल के लिये अति व्याकुल थे, पर जलाशय कोई नहीं मिला। इधर उधर जब दृष्टि की, इक आश्रम पा प्रवेश किया।।
एक मुनि वहां आसन पे, शान्त भाव से बैठै थे। अनभिज्ञ बाह्य जग से वह, अपने ध्यान में बैठे थे।।

इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि, निरुद्ध थे उनके हो चुके। स्थूल रूप संसार जो, उससे थे ऊपर उठे।।
जागृत स्वप्न सुशुप्ति की, तीनों अवस्थाओं से परे। निर्विकार ब्रह्म में, तुरीय पद में स्थित वह थे।।
मृगचर्म और जटाओं ने, उनके तन को था ढका। प्यास से व्याकुल था राजा, ऋषि से उसने जल मांगा।।

आसन हेतु राजा ने, तिनका भी वहाँ न पाया। भूमि पर भी बैठने का, उसने आमन्त्रण न पाया।।

आदर मान सम्मान की, बातें तो बहु दूर रहीं। अपमानित निज को मान करी, मति क्रोध वशीभूत हुई।।
क्षुधा पिपासा से उस पल, पीड़ित बहुत थे वह हुए। इस कारण ब्राह्मण के प्रति, भी निज क्रोध न रोक सके।।
पहली बार ही जीवन में, था ऐसा अवसर आया। निज ईष्या और क्रोध को, राजा रोक ही न पाया।।

वहां से जब थे लौट रहे, मृत सर्प सम्मुख देखा। क्रोध ने उनको बस में किया, निज बाण नोक से लिया उठा।।
समाधिस्थ उस ऋषि के, गले में उसको डाल दिया। ऐसा नीच कर्म करके, राजधानी को वह लौटा।।
मन में था यूं सोच रहा, क्यों नेत्र हैं इसने बन्द किये। क्या सच ही सब इन्द्रियों के, निरोध हैं इसने कर लिये?
अथवा निज को उपराम जान, अवज्ञा राजा की है करी। आँख मूंद समाधि की, ढोंग ही है इसने रच ली?

उन शमीक मुनि का पुत्र, अत्यन्त तेजवान था। अन्य मुनि बालों के संग, वह था बन में खेल रहा।।
राजा ने मेरे पिता का, है इस विध अपमान किया। जब उसने यह बात सुनी, क्रोधित होकर उसने श्राप दिया।।
ऋषिकुमार श्रृंगी बोले,
नरपति माने यह निज को, पर व्यवहार है कितना नीच। उच्छिष्ट भोजी कौए सम, काम किया है ऐसा नीच।।
ब्राह्मण सेवक होकर भी, ऐसा कुकर्म इसने कर डाला। द्वारपाल इक श्वान सम, निज स्वामी का तिरस्कार किया।।
ब्राह्मण जन की कृपा से ही, क्षत्रिय द्वारपाल बने। द्वार पे बैठी वो रक्षा, ही उनका कर्त्तव्य रहे।।
घर में घुसकर स्वामी के, उन्हें खाने का अधिकार नहीं। स्वामी के बर्तन में यूं, मुँह डालना स्वीकार नहीं।।

विपरीत पथ अनुगामी जो, शासन उन पर कृष्ण करें। धरती का परित्याग कर, परम धाम को वह गए।।
इस कारण यह उद्दण्डता की, मर्यादा इसने भंग की। आज दण्ड इसे देता हूँ, तपोधन का हूं मैं धनी।।
निज सहयोगी बालों से, इस प्रकार उसने कहा। क्रोध था आंखों में उतरा, उनका भी रंग था लाल हुआ।।
ऋषि कुमार ने कौशकी, नदी से जल आचमन किया। वाणी रूपा वज्र से, फिर उसने प्रहार किया।।

मेरे पिता का अपमान कर, मर्यादा को है भंग किया। इस कर्म से परीक्षित ने, कलंकित निज कुल को किया।।
तत्पश्चात् बालक वह, निज आश्रम को लौट आया। पिता के गले मृत सर्प देख, वह मुक्त कण्ठ से रोने लगा।।
शमीक मुनि ने रुदन सुना, और धीरे धीरे खोली आँख। अपने गले में उन देखा, हे शौनक वह मृत सांप।।

उसको दूर ही फेंक कर, पुत्र सों उन्होंने यूं पूछा। हे वत्स क्यों इस विधि, आज तू है रो रहा?
कहो कहो हे पुत्र तुम, किसने तेरा अपकार किया? पिता ने जब यह प्रश्न किया, पुत्र ने सब वृत्तान्त कहा।।
शमीक मुनि बोले,
राजा के शाप की बात सुन, नहीं महामुनि प्रसन्न हुए। उनकी दृष्टि में तो परीक्षित्, इस शाप के योग्य न थे।।
व्यथित होकर वह बोले, अरे मूढ़ बालक तूने पाप किया। छोटी सी गलती का उनको, ऐसा भीष्ण दण्ड दिया।।

तेरी बुद्धि अभी कच्ची है, परिपक्व वह नहीं हुई। भगवत्स्वरूप राजा को वह, साधारण ही है समझ रही।।
राजा के महातेज से, सुरक्षित और निर्भय हो प्रजा। निज कल्याण का सम्पादन, कर सके वह सर्वदा।।
जिस पल राजा के रूप में, पृथ्वी पे प्रभु न दीखेंगे। चोर बढ़ेंगे धरती पर, अधर्म चारों दिशाओं में फिरेगा।।

असुरक्षित होगी प्रजा, जैसे अरक्षित भेड़ें हों। पल में विनष्ट जो जायेंगे, जब रक्षक कोई और न हो।।

राजा के नष्ट हो जाने पर, आततायी बहु पाप करें। अँकुश के उठ जाने पर, चोर आदि सब धन हरें।।
नहीं अपना सम्बन्ध कोई, फिर भी हम पर लागू होगा। आपसी कलह क्लेश भरा, कटु वचन भरा जीवन होगा।।
लुटेरे भी बढ़ जायेंगे, बढ़ेगी गाली गलौच भी। पशु स्त्री धन सम्पदा, सुरक्षित न होगा कुछ भी।।

ऐसी विपदा आने पर, वर्णाश्रम धर्म भी नहीं रहे। आचार युक्त वैदिक धर्म, भी लुप्त ही हो जाये।।
अर्थ लोभ और काम वासना, विवश ही सबको नचवायें। श्वान और बन्दन समान, जीव वर्ण संकर भयें।।
महा यशस्वी धर्मशील, रहे सदा सम्राट परीक्षित। बहुत से अश्वमेध किये, वह हैं भगवान के प्रियभक्त।।
वह राजर्षि था क्षुधा ग्रस्त, पिपासु आश्रम में आया। शाप योग्य न कदापि था, व्यर्थ क्रोध वहां बरसाया।।

मूढ़ता वश इस बालक ने, निष्पाप राजा पर क्रोध किया। सेवक राजा प्रति पाप को, प्रभु ही अब कर सकें क्षमा।।
प्रभु भक्त तो सामर्थ्य हैं, सब बदला लेने के लिये। अपमान हो या धोखाधड़ी, गाली गलौच के भी लिये।।
निज पर हुए महा आक्षेप, या मार पीट के भी लिये। बदला कभी न वह लें, सदा प्रभु में मस्त रहें।।

सूतजी बोले,
पुत्र के इस अपराध पर, मुनी शमीक अति व्यथित हुए। पश्चाताप इसका करें, नहीं निज अपमान पे ध्यान करें।।
यही स्वभाव महात्मा का, न हर्षित हो न अमर्षित हो। सुख दु:ख आदि द्वन्द्वों से, कदापि न वह विचलित हो।।
वह तो आत्मा में बसे, तन का मान अपमान उन्हें न छुए। आत्म का स्वरूप तो, गुणों से है सर्वथा परे।।

जब राजधानी वापिस पहुँचे, परीक्षित बहुत उदास हुए। अपने नीच कर्म के लिए, पश्चात्ताप से भर गए।।
ब्राह्मण निरपराध जो, तेज को अपने छिपाये था। अहो खेद मैंने अनार्य सम, उसके प्रति व्यवहार किया।।
महात्मा का अपमान किया, कोई घोर विपत्ति आयेगी। भला ही होगा इसमें भी, प्रायश्चित मम हो जायेगी।।
ऐसा पाप कर्म मैं पुन:, कभी नहीं दोहराऊँगा। यूँ करने का साहस नहीं, पुन: कभी कर पाऊँगा।।

क्रोधाग्नि विप्रवर की, ऐसी प्रज्ज्वलित हो जाये। मम राज्य सेना राज्यकोष, सबको भस्म ही कर जाये।।
ऐसा दण्ड मिले मुझको, पुन: बुद्धि में न पाप हो। ब्राह्मण देव और गौ के प्रति, मुझ दुष्ट से कभी न घात हो।।

जब राजा इस चिन्ता में, था निमग्न हो रहा। ऋषिकुमार के शाप का, वृत्तान्त सब उस तक पहुँचा।।
तक्षक डस लेगा उसको, यह जान के चित्त कुछ शान्त हुआ। प्रज्वलित अग्न सम दंश की, सुनकर न चित्त विभ्रान्त हुआ।।
बहुत दिन से संसार में, मैं आसक्त था हो गया। सोचा प्रभु ने करी कृपा, वैराग्य का यह साधन दिया।।

पहले ही था उपराम वृत्ति, भोगों में न भरमा सके। इहलोक और परलोक के, भोग तुच्छ ही माने थे।।
अब पूर्णतय: उन्हें त्याग कर, अमरण अनशयन व्रत लेकर। सर्वोपरि कृष्ण चरण सेवा, जानी बैठे गंगा तट पर।।

श्री तुलसी की सुगन्ध से, परिपूर्ण है जिसका कण कण। श्री कृष्ण चरण कमल से वह, हुआ प्रवाहित गंगा बन।।
यही रहस्य पावनता का, त्रिलोक को जो पावन करे। मरणासन्न जीव कौन होगा, जो उसका सेवन न करे?

अमरण अनशन इस विध ले, सब आसक्ति से मुख मोड़ा। मुनि व्रत को धारण किया, श्री कृष्ण चरण में चित्त जोड़ा।।
अनन्य भाव से उनके चरण, का ध्यान वह करने लगे। सारे राग वैराग्य करी, मुनि रूप वह आप हुआ।।
महाश्रेष्ठ और अनुभवी, ऋषि मुनि निज शिष्यों सहित। त्रिलोक पावनी मुनिवर सब, पधारे वहाँ ले ज्ञान निज।।
सन्त जन तीर्थ जाकर, तीर्थ को भी पावन करें। इस हेतु ही जग में वह, तीर्थ तीर्थ जा विचरें।।

अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु और अंगिरा। पराशर, विश्वामित्र, परशुराम उतथ्य, इन्द्रप्रव और इध्यवाह।।
देवल, अर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद और मेघतिथि। मैत्रेय, और्व, कर्वष, अगस्त, भगवान व्यास, नारद आदि।।
अन्य अनेकों श्रेष्ठ गण, उस पल वहां पे आ पहुँचे। ब्रह्मर्षि देवर्षि अरुणादि, राज ऋषि वहाँ आ गए।।
विभिन्न गोत्र के मुख्य ऋषिवर, जब राजा ने वहाँ देखे। चरण में सीस धरा उसने, और यथायोग्य वन्दन किए।।

जब सबने अपना अपना, सुख आसन था ग्रहण किया। तब राजा परीक्षित ने, पुन: उन्हें प्रणाम किया।।
कर जोड़ी शुद्ध चित्त लिए, उनके सामने खड़े हुए। मुनिवर जो कहना चाहते थे, उसको सुनने के लिए।।

परीक्षित बोले,
धन्य है हम राजाओं में, नहीं नहीं धन्यतम हैं। शील स्वभाव के कारण आज, बने कृपा के भाजन हैं।।
प्राय: राजवंश के लोग, निन्दित कर्म ही करते हैं। इस कारण ब्राह्मण चरण से, दूर ही वह रहते हैं।।
कितने खेद की बात है, सत्य भूल ही जाते हैं। आप सरीखे महापुरुषों की, कृपा नहीं वह पाते हैं।।

मैं भी तो राजा ही हूं, निरन्तर देह गेह आसक्त। पाप रूप ही हो गया, नित्य राग में ही हूं सक्त।।
प्रभु स्वयं मुझ दीन पर, अनुकम्पा करी पधारे आप। ब्राह्मण शाप का रूप धर, मुझे जगाने आए आज।।
वैराग्य को उत्पन्न यह करे, संसारासक्ति को यह हरे। भयभीत हुआ मृत्यु से, प्रभु चरण में जीव पड़े।।

हे विप्रवर इस चित्त को, अब प्रभु चरण में धर दिया। शरणागत मुझको जानी, मां गंगा और आप करें कृपा।।
ब्राह्मण सुत के शाप से, कोई तक्षक रूप धरी आये। या तक्षक ही स्वयं आ, मुझको दंश लगा जाये।।
इसकी नहीं परवाह मुझे, पर आप ही इतनी कृपा करें। श्री हरि की लीलाओं का, रसपान मुझे अब करवायें।।

चरण वन्दना पुन: करूं, करूं प्रार्थना हे ब्राह्मण गण। कर्मवश चाहे किसी भी, योनि में हो मेरा जन्म।।
श्री कृष्ण के चरणों में, मेरा सदा अनुराग हो। उनमें अनुक्त महात्मा जन, से प्रीति और मम राग हो।।
समस्त प्राणी जगत् के, हैं उनका अपना ही रूप। यह जान कर सबके प्रति, हो मैत्री मेरी सम रूप।।
कृपा करी हे महानुभाव, आशीश यह मुझको दीजिए। श्री हरि के श्री चरणों में, अनन्य प्रीति मेरी बनी रहे।।

सूतजी बोले,
राज्य काज के भाव से, पहले ही मुक्त थे हो गये। पुत्र जन्मेजय के हाथों, सारे काज थे सौंप दिये।।
परम धीर महाराजा वह, गंगा तीर पे बैठ गए। दक्षिण तटे कुशा आसन धर, उत्तरोन्मुख हो बैठ गए।।
परीक्षित तो इस पृथ्वी के, एक छत्र सम्राट थे। आमरण अनशन निश्चय कर, जब गंगा तट जा बैठे।।
महामुदित हो देवता गण, उनकी स्तुति गाने लगे। बार बार नगाड़े बजा, धरती पे फूल बरसाने लगे।।

महर्षि जो उपस्थित थे, साधु साधु पुकार उठे। उसके निश्चय की प्रशंसा कर, अनुमोदन उसका करने लगे।।
स्वभाव से ही ऋषिवर सब, अनुग्रह करते रहते हैं। सारी शक्ति करे लोक हित, इस कारण जग में विचरते हैं।।
श्री कृष्ण प्रेमी परीक्षित के, अनुकूल ही उनको वचन कहा। ऋषियों ने फिर राजा को, इस प्रकार से कथन किया।।
ऋषि बोले,
श्री कृष्ण के सेवक और अनुचर, हैं पाण्डव वंशी राजर्षि। कोई आश्चर्य की बात नहीं, हैं ऐसी सोच यह आपकी।।
बड़े बड़े राजा जिसकी, करते सेवा ला निज किरीट। क्षण भर में परित्याग दी, ऐसी आपने राज पीठ।।
श्री कृष्ण सान्निध्य ही एक मात्र, उस कुल का केवल लक्ष्य रहा। राज्य सिंहासन सुख वैभव, उसकी तुलना में तुच्छ था।।
जब तक भगवान के परम भक्त, परीक्षित नश्वर तन त्यज कर। नहीं भागवत धाम चले जाते, हम सब ही यहां रहें अब।।
माया दोष और शोक से, है सर्वथा अतीत वह धाम। वहां पे ही तो जीव यह, पाता है परम विश्राम।।
ऋषियों के यह सत्य वचन, अति मधुर और गम्भीर थे। योगयुक्त मुनि वह थे, समत्व भाव में थे टिके।।
सुनकर यह वचन परीक्षित ने, मुनिवर अभिनन्दन किया। प्रभु लीला के श्रवण की, उन्होंने की आर्त जिज्ञासा।।
परीक्षित बोले,
सब दिशा से आप पधारे हैं, ज्यों वेद हुए हों मूर्तिमान्। अनुग्रह सहज स्वभाव तव, हेतु है केवल लोक कल्याण।।
हे विप्रवर श्रद्धापूर्ण, हृदय मैं लेकर आया हूं। निज कर्त्तव्य सम्बन्ध में, योग्य प्रश्न यह लाया हूं।।
परस्पर करें विचार विमर्श, कहें आप मुझे ज्ञानी जन। सबके प्रति कर्त्तव्य सदा, कौन कर्म कहें है मम?
विशेष रूप से जल्द ही, जो प्राण त्यागने वाला हो। उसके लिए तन अन्त:करण, से कर्त्तव्य कौनसा प्रिय हो?
सूतजी बोले,
तत्क्षण ही व्यासनन्दन, श्री शुकदेव वहाँ आ पहुंचे। निरपेक्ष स्वेच्छाचारी, धरती पर भगवान वह थे।।
वर्णाश्रम के बाह्य चिन्हों से, पूर्णतय: वह मुक्त थे। अपने में ही नित्य तृप्त, वह तो नित्य सन्तुष्ट थे।।
अवधूत वेशधारी श्री शुक्, थे बालक वृन्द से घिरे हुए। स्त्रीगण ने उन्हें था घेरा, निज प्रति नित्य उदासीन थे।।
षोड्ष वर्षीय किशोर के, अत्यन्त सुकुमार थे अंग। चरण हस्त ऊरू और भुजा, कपोल और सब अंग प्रत्यंग।।
विशाल नेत्र मनोहर थे, नासिका भी कुछ उठी हुई। सम कर्ण थे दोनों ही, सुन्दर भ्रुवें नयनों पे सजीं।।
शोभायमान मुख था उनका, मानों इक विकसित कमल हो। गला था ऐसा सज रहा ज्यों सुन्दर इक शंख हो।।
वक्ष:स्थल उभरा हुआ, भंवर सम नाभि गहरी। हंसली मानो ढकी हुई, उदर में सुन्दर त्रिवली।।
महाबली लम्बी बाहें, मुख पर कुण्डल लहरा रहे। दिगम्बर वेश में तेजस्वी, देवता सम थे दीख रहे।।
श्यामल वर्ण अति भावन, था यौवन उनका चित्तचोर। सुन्दर छटा और मधु मुस्कान, छू लेती कामिनी हृदय छोर।।
निहित था महातेज उनमें, कोई पहचान ही न सका। पर महामुनि सब जान गए, उनसे लक्षण न छिप सका।।
सब निज आसन छोड़ करी, वा सम्मान को खड़े हुए। वा तनो अवस्था न देखी, प्रौढ़ता ज्ञान की जान गए।।
अतिथि रूप में पधारे शुक, को राजा ने प्रणाम किया। उनकी पूजा अर्चना कर, सीस वा सम्मुख झुका दिया।।
बालक और स्त्रीगण जो, उनकी महिमा न जाने थे। उनका आदर सत्कार देख, वह तो वहीं से लौट गए।।
सबका सत्कार स्वीकार करी, श्री शुकदेव विराज गए। श्रेष्ठ आसन जो उन्हें दिया, उस पर वह आसीन हुए।।

ज्यों तारिका और नक्षत्रों से, घिरा शशि अति शोभित हो। ब्रह्मर्षि देवर्षि राजर्षिन् से, घिरे शुक त्यों शोभित हों।।
पूज्यवर महात्मन के, भी शुकदेव अति पूज्य थे। उनको मध्य में पाकर के, सब मुनिगण भी धन्य हुए।।
प्रज्ञावान शुकदेव ने, जब शान्त हो आसन ग्रहण किया। प्रभु भक्त परीक्षित ने, फिर उनके चरण में सीस धरा।।
तत्पश्चात् वह हुए खड़े, कर जोड़ी किया नमस्कार। मधुर वाणी से अपनी फिर, प्रश्नों की कर दी बौछार।।

परीक्षित बोले,
बड़भागी हुए आज हम, ब्रह्म स्वरूप भगवन् अहो। भया क्षत्रिय वेश में अपराधी, प्रभु कृपा से सन्त समागम हो।।
कृपा करी प्रभु आज, अतिथि बनी पधारे आप। तीर्थ तुल्य किया पावन, हर लिये हों जैसे सगरे पाप।।
गृहस्थ के घर में आपका, है स्मरण मात्र ही पावनकर। फिर दर्शन स्पर्शन् पाद प्रक्षालन, आसन आदि सेवा कर।।
धन्य धन्य हम हो गए, इस सौभाग्य का क्या कहना। ऐसा सुअवसर जिसे मिले, जीवन बन जाये वा गहना।।

ज्यों श्री विष्णु सम्मुख, कोई दैत्य ठहर ही न पाये। वैसे सान्निध्य में आपके, महापाप भी नष्ट ही हो जायें।।
पाण्डुपुत्रों के प्रिय सुहृद् हैं, अति प्रसन्न मुझपर श्री कृष्ण। निश्चित ही कृपा हुई उनकी, जो मिला आपका श्री दर्शन।।
अपने भाइयों के सुख हेतु, उन्होने ऐसा विधान रचा। उनके कुल का जातक जान, निज बन्धु सम व्यवहार किया।।

कृष्ण कृपा गर न होती, हम आपके दर्शन कैसे पाते? आप सम एकान्त प्रिय, परम सिद्ध यहां क्यों आते?
मृत्यु काल सम्मुख मेरे, आकर दर्शन क्यों देते? साधारण मुझ मनुज का, कल्याण आप कैसे करते?
योगीजन के हे परम गुरु, मैं आपसे प्रश्न हूं पूछ रहा। परम सिद्धि के साधन के, स्वरूप के विषय में पूछ रहा।।
मरणासन्न जो जीव है, उसका क्या कर्त्तव्य है? कृपा करी आख्यान करें, मेरे लिये क्या कर्त्तव्य है?

भगवन साथ ही यह भी कहें, कल्याण जीव का कैसे हो? किसका श्रवण सिमरन करे, जप और भजन भी किसका हो?
किस ओर अब वह बढ़े, और किसका वह त्याग करे? कृपा करी अवधूत हे, आप ज्ञान यह मुझको दे।।

भगवत्स्वरूप मुनीश्वर हे, अति दुर्लभ दर्शन है आपका। गृहस्थी के द्वार पे, क्षणिक है डेरा आपका।।
जितने पल में गाय का, दुग्ध दुहा ही जाता है। उतनी देर भी आपका, वहां टिकना हो नहीं पाता है।।

सूतजी बोले,
अति मधुर वाणी में जब, राजा ने उन्हें यूं कहा। विनीत भाव से सीस झुका, जिज्ञासु मन ने प्रश्न किया।।
व्यास सुत श्री शुकदेव, सब धर्मों के मर्मज्ञ जो। कृपा करी उद्यत हुए, प्रश्नों का उत्तर देने को।।

इति प्रथम स्कन्ध

न किसी को मन्दिर का सवाल है और न कोई मस्जिद का, वास्तव में आपकी अपनी जिन्दगी ही मन्दिर और मस्जिद है। मन्दिर और मस्जिद तो सैकडों बार बनेंगे और टूटेंगे लेकिन मानवता का मन्दिर एक बार खंडित हो गया तो किसी के वश की बात नही कि उसे फिर से खडा किया जा सके, क्योंकि इन्सानियत की ईंट, चरित्र का चूना और सत्य की सीमेंट का मूल्य अमोल है।

द्वितीय स्कन्ध

विषय सूची

१)	विराट स्वरूप	९५
२)	क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन	९७
३)	कामनाओंके अनुसार देवताओंकी उपासना	१०१
४)	राजा परीक्षित के सृष्टि विषयक विविध प्रश्न	१०३
५)	सृष्टि की उत्पत्ति विषयक नारद को ब्रह्माका ज्ञान	१०७
६)	विराट पुरुष की विभूतियों का वर्णन	१०९
७)	भगवानके लीला अवतार का वर्णन	११२
८)	चतु:श्लोकी भागवत	११८
९)	भागवत के दस लक्षण	१२२

** समस्यायें हमें कुछ सीखने और विकास करने का अवसर देती है।*
** आदमी गिरे तो पशु से बदतर है और आदमी उपर उठे तो परमात्मा से उपर है।*
** रचनात्मकता का अर्थ है नई चीजों की खोज या पुरानी चीजों का नये अन्दाज में रूपान्तरण कर देना।*
** इतिहास ने सदा ही परछायों को भी आदमकम होने का अवसर दिया है।*
** जब कोई वस्तु क्रिया स्वभाव आदत बन जायेगी तो उसे छोडना या रूपांतरित करना बहुत मुश्किल होगा।*
** सच्चे प्रेम की राह बिल्कुल सीधी होती है जिसमें कोई उतार चढ़ाव नहीं होता।*
** जो जीना जान लेता है मृत्यु उसका घर भूल जाती है।*
** कोई भी आदत पहले जीवन का शौक बनता है बाद में जीवन की जरूरत बन जाती है।*

द्वितीय स्कन्ध

१) विराट स्वरूप

हे राजा धर लोकहित, हिय में उत्तम प्रश्न किया। जीवों के लिये कीर्तन, श्रवण, स्मरण योग्य सर्वोच्च कहा।।
आत्मज्ञ इस प्रश्न का, आदर सम्मान बहु करे हैं। प्रभु भक्ति का यह साधन, अपने सीस वह धरते हैं।।
घर में काम धन्धों में, नित्य जो उलझे रहते हैं। निज स्वरूप से अनभिज्ञ, गृहस्थी सदा ही रहते हैं।।
हे राजन् सहस्त्रों ही, धारा में बंटीं उनकी वृत्तियाँ। चिन्तन कथन श्रवण योग्य, अनेकों हैं उनकी कृतियाँ।।

इस ही खेंचा तानी में, आयु सारी उनकी बीते। रात्रि बीते निद्रावश ही, या काम रति में वह बीते।।
दिन में अर्थ उपार्जन की, हाय हाय ही लगी रहे। भरण पोषण कुटुम्ब का, एकमात्र जीव का लक्ष्य रहे।।

इस संसार में जीव जिन्हें, मेरा मेरा ही कहता है। निज तन पुत्र स्त्री आदि, अति घनिष्ट जिन्हें कहता है।।
हैं सबके सब असत्य ही, इनकी सत्ता कुछ भी नहीं। मोह मद में भरमाया हुआ, जीव सत्यता देखे नहीं।।
दिन रात्रि बन के काल, अपने में ही समा रहा। सब ही ग्रास हैं मृत्यु के, वह देखकर भी देख न पा रहा।।

इस कारण परीक्षित हे, अभय पद जो पाना चाहे। सबके प्रभु सबके आत्मा, श्री हरि की शरण ही वह आये।।
श्री कृष्ण की ही लीलाओं में, ध्यान टिकाना चाहिये। उनका ही श्रवण और कीर्तन, स्मरण करना चाहिये।।
यही लक्ष्य है जीवन का, यही लाभ इस जीवन का। ज्ञान भक्ति या धर्म निष्ठा, जिसका भी ले वह आसरा।।
सब साधन के परिणाम में, अवस्था ऐसी हो जाये। प्रयाण काल में श्री हरि की, स्मृति निरन्तर बनी रहे।।

विधि निषेध मर्यादा का, है जिन्होंने अतिक्रमण किया। निर्गुण स्वरूप में स्थित जो, ऋषि-मुनि रहते सदा।।
श्रीहरि के कल्याणमय, लीलामय रूप जो मन मोहते। उनके गुणगान में ही राजन्, प्राय: वह सब ही हैं रमते।।
भगवद् स्वरूप इस वेदतुल्य, श्री भागवत महापुराण का। द्वापर युग के अन्त में, पिता व्यास से था अध्ययन किया।।

हे राजर्षे निर्गुण स्वरूप में, है निष्ठा परिपूर्ण मेरी। फिर भी श्री कृष्ण की माधुरी, लीला ने चित्त मेरा हर लिया।।
बलात् ही ज्यों माधुर्य वह, मेरा हृदय आकर्षित कर रहा। इस कारण इस महापुराण, का मैंने अध्ययन किया।।
तुम परम भक्त श्री हरि के हो, इस कारण तुम्हें सुनाता हूँ। जो प्रीति और श्रद्धा रखें, भागवत् में उनको ही बताता हूँ।।
शुद्ध होकर वा चित्त वृत्ति, शीघ्र प्रभु चरणों में लगे। अनन्य प्रेम से वह तो सदा, कृष्ण कृष्ण हि भजा करें।।

लोक या परलोक की, हो कोई भी वस्तु वाञ्छित। या विरक्त होकर जग से, जो मोक्ष पद के हों इच्छुक।।
उन साधक जन या योगसम्पन्न, सिद्ध ज्ञानियों के भी लिये। करें नाम कीर्तन प्रेम सहित, है सब शास्त्रों का निर्णय यह।।
दीर्घायु भी यदि मिले, पर निज कल्याण से रहें अचेत। क्या लाभ है लम्बी अवधि का, गर व्यर्थ में हो जाये यह बीत?
होकर सचेत घड़ दो घड़ी, गर निज कल्याण अर्थ बीते। सर्वश्रेष्ठ है गति वही, जहां आत्मोत्थान की ओर बढ़ें।।

हे राजर्षि खट्वांग की, उपमा पूर्वजों ने कही। समाप्ति जान निज आयु की, उन्होंने श्री प्रभु की शरण गही।।
दो घड़ी में बन्धन मुक्त हो वह, अभय पद को प्राप्त हुए। सारे संग वह त्याग के, प्रभु के अपने धाम गए।।

हे परीक्षित् अभी तुम्हें, सात दिवस हैं शेष मिले। जीवन अवधि में तुम्हारी, यह तो महाविशेष हैं रे।।
मुक्ति हेतु तुम अपनी, जो चाहे साधन कर लो। इसी बीच में तुम्हें कहें, परम कल्याण निज साध लो।।

मृत्यु निकट जा आने पर, न घबराये मनुष्य कभी। ऐसे समय में शास्त्र कहें, है उसका कर्त्तव्य यही।।
वैराग्य शस्त्र को हाथ में ले, वह सारे बन्धन काट दे। तन और रिश्ते नातों के प्रति, मोह ममता का त्याग करे।।
धैर्ययुक्त हो घर से निकल, पुण्य तीर्थ जल स्नान करे। पावन एकान्त स्थान में, विधिवत् आसन पर बैठे।।

तत्पश्चात् परम पावनी, प्रणव का मन में जाप करे। अ उ म से युक्त जो, शब्द ब्रह्म को उपास ले।।
प्राण वायु को वश में कर, अपने मन का दमन करे। क्षण भर के लिये भी वह साधक, प्रणव की याद को न भूले।।
बुद्धि को सारथी बना, मनो रास को खेंच ले। विषयों के चारागाह से, फिर इन्द्रिय अश्व को मोड़ लें।।
मन जो निरन्तर ही रहे, कर्म वासना सों चंचल। विवेक से उसको रोककर, दे प्रभु के मंगल रूप में धर।।

स्थिर चित्त यूं कर करी, प्रभु विग्रह का फिर ध्यान करे। किसी एक अंग में उनके, फिर वह अपना चित्त धरे।।
इसी विधि हर अंग का, ध्यान वह धरता चले। विषय वासना रहित हुआ, मन प्रभु में तल्लीन करे।।
सब चिन्तन फिर उसके ही, एक ध्यान में लीन होए। है वही परम पद विष्णु का, जहां प्रेमानन्द में खो जाये।।

प्रभु ध्यान में बैठे हुए, यदि विक्षिप्त करे रजोगुण। या फिर मूढ़ता उत्पन्न हो, जब प्रबल हो तमोगुण।।
साधक न घबराये कभी, धारणा सों उन्हें वश में करे। धैर्य न वाका तब छूटे, धारणा ही द्वौ दोष हरे।।
धारणा स्थिर जब हो जाये, ध्यानासीन योगी होए। मंगलमय परम आश्रय, श्री हरि का दर्शन पाये।।
तत्क्षण ही वह भक्ति में, निरन्तर युक्त हो जाता है। इस विधि वह योगी फिर, भक्तियोग को पाता है।

परीक्षित बोले,
हे ब्रह्मण यह धारणा, किस साधन से प्राप्त हो? किस वस्तु में किस विधि, आप कहें यह प्राप्त हो?
क्या स्वरूप है धारणा का, मन का मैल मिटा दे जो? तुरन्त ही जीव को, हरि चरण में बिठा दे जो।।

शुकदेव बोले,
आसन श्वास और आसक्ति, इन्द्रियों को वश में करके। प्रभु रूप में फिर निमग्न करें, बुद्धि अधीन मन को करके।।
कार्य रूप ब्रह्माण्ड जो, कभी था या है या होगा कभी। सबका सब जिसमें दृष्ट हो, हरि का विराट रूप है वही।।
जल अग्नि वायु आकाश, अहंकार महतत्त्व और प्रकृति। इन सात आवरणों में छिपे, ब्रह्माण्ड स्वरूप जो विराट श्री।।
वही परम पुरुष परमेश्वर हैं, सब धारणा के आश्रय वह ही। योगी जन परम सिद्धि पाते, उनकी धारणा करके ही।।

तत्त्वज्ञ ज्ञानी जन जो, उस रूप का वर्णन करते हैं। पाताल लोक जिसे कहते हैं, वह विराट के तलवे हैं।।
एड़ियाँ और पंजे उनके, दोनों ही रसातल हैं। एड़ी के ऊपर की गाँठे, ही उनकी महातल हैं।।
उनके चरणों के पिण्डे जो, वह ही तो तलातल है। विश्वरूप प्रभु के घुटने दो, जानो उनको सुतल हैं।।
दोनों जाँघें उन श्री हरि की, वितल और अतल हैं। पेडू जानो विराट के, जिसे कहें हम भूतल हैं।।
नाभि स्वरूप सरोवर वा, विराट ही कहलाता है। सृष्टि के हर कण कण में, वा का रूप दर्शाता है।।

वक्ष:स्थल उनका स्वर्गलोक, कण्ठ है उनका महर्लोक। मुख को जानो जनलोक, और ललाट है तपोलोक।।
सहस्त्र सीसधारी प्रभु के, तन में वास करें सब लोक। मस्तक समूह उन श्री हरि का, ही है जानो सत्य लोक।।
भुजा दण्ड विराट के, हैं इन्द्रादि देव सभी। दिशायें ही हैं श्रोत्र कहें, और शब्द श्रवणेन्द्रिय ही।।
नासिकारंध्र हैं अश्विनीकुमार, गन्ध को घ्राणेन्द्रिय कहें। प्रज्वलित ललाटें अग्नि की, उनको ही वा मुख कहें।।

अन्तरिक्ष श्री विष्णु के, दोनों ही हैं नेत्र कहें। सूर्य जो दीप्तिमान हो, दर्शन शक्ति उसे कहें।।
रात और दिन के रूप में, दोनों नयनों पर दो पलकें। वा भ्रू विलास है ब्रह्म लोक, जल जिह्वा रस तालु है कहें।।

ब्रह्मरन्ध्र विराट का, वेद ही हैं यह कहते हैं। यमराज को ही प्रभु की, दाढ़ विशाल रे कहते हैं।।
सब मोह स्नेह के पाश यह, हैं दान्त जो पल पल जकड़ रहे। जगत् मोहिनी स्मित उनकी, माया ही उसको कहें।।
अनन्त विस्तृत सृष्टि यह, उस माया का ही कटाक्ष है। सब नाम रूप और जड़ चेतन, हरि रूप धरें आप हैं।।

लज्जा ऊपर का होंठ है, नीचे का है लोभ कहें। धर्म ही स्तन उनके कहें और अधर्म को पीठ कहें।।
प्रजापति है जननेन्द्रिय, मित्र वरुण है अण्ड कोश। पर्वत विशाल हैं अस्थि खण्ड, और सागर है उनकी कोख।।
सरितायें सारी नाड़ियां हैं, हे राजन् उस विराट की। वृक्ष बनस्पति रोम हैं, है प्रबल वायु वा श्वास ही।।
उसकी चाल यह काल है, निरन्तर जो गति शील रहे। गुण चक्र चलाना ही, एकमात्र वा कर्म कहें।।

है वारिमुच् ही श्याम केश, सन्ध्या अनन्त का वस्त्र है। अव्यक्त प्रकृति हृदय उसका, महात्मन का यह कथन है।।
सब विकार एकत्रित हो, वास जहाँ पर करते हैं। विराट के ऐसे मन को, चन्द्रमा ही कहते हैं।।
विश्वमूर्ति श्री हरि का, चित्त कहें महतत्त्व को। और कहें जिसे अहंकार, वह तो महारुद्र ही हो।।
घोड़े खच्चर ऊंट हाथी, यह सब उसके नख कहें। बनवासी मृग पशु सभी, हैं कटि प्रदेश में स्थित कहें।।

भाँति भाँति के पक्षी हैं, अद्भुत रचना का कमाल। स्वयंभू मनु उन की बुद्धि, मनुज है उसका निवास स्थान।।
षड्ज आदि वा स्वरों की, जिसे कहें हैं स्मृति। विद्याधर चारण अप्सरागण, और गन्धर्व यह हैं सभी।।
हैं ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु और शूद्र चरण। देवों हित महाद्रव्य यज्ञ, वह ही है उनका कर्म।।

विराट स्वरूप श्री हरि के, तन का यह ही रूप है। परीक्षित तुमसे कह दिया, जो स्थूल शरीर स्वरूप है।।
इससे भिन्न कुछ है ही नहीं, मुमुक्षु जन यह जाने हैं। बुद्धि द्वारा मन स्थिर करके, इसमें ही तो लगाते हैं।।
ज्यों स्वप्न का दुष्टा स्वप्न में, विविध रूप धर आता है। वह एक ही अन्तर्यामी प्रभु, सब द्वारा अनुभव पाता है।।
सत्य स्वरूप आनन्दनिधि, हरि भजन ही इक कर्त्तव्य है। अन्य किसी भी रूप में, आसक्ति कहें त्याज्य है।।
यह आसक्ति ही जीव को, अध: पतन में ले जाये। विमुख करे आनन्द से, दु:ख कूप में ले जाये।।

२) क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन

प्रसन्न हुए इसी धारणा से, सृष्टि के आदि में भगवान। ब्रह्मा जी ने प्राप्त किया उनसे ही सृष्टि का विज्ञान।।
प्रलय काल में जो स्मृति, लुप्त प्राय: थी हो गई। उन्होंने दी पुन: अमोघ दृष्टि, और बुद्धि निश्चयात्मिका हुई।।
तब प्रजापति ने इस जग को, वैसा ही पुन: रच दिया। जिस रूप में यह जगत्, प्रलयकाल से पहले था।।

पुष्पित वाणियां वेदों की, आकर्षित जीव को नित्य करें। जीव की बुद्धि पुन: पुन:, स्वर्गादि में व्यर्थ फंसे।।
सुख की वासना से विवश, कल्पना में नित भ्रमित रहे। पर मायामय उन लोकों में, नित्य सुख कहीं नहीं मिले।।

विद्वान पुरुष को चाहिए, विविधता में न भरमाये। बस उतना ही व्यवहार करे, अनिवार्य जो बन जाये।।
निस्सारता उन विषयों की, बुद्धि राही वह जान ले। दृढ़ निश्चय हो सत्य में, क्षणभर को न अवसाद करे।।
प्रारब्ध वश बिन चाहे ही, यदि भोग पदार्थ मिल जायें। है उनके लिए कोई श्रम व्यर्थ, यह जान परिश्रम नहीं करे।।

भूमि पे शयन जब हो सके, तो पलंग से है प्रयोजन क्या? जब प्रभु कृपा से भुजा मिली, तब तकिये से है काम क्या?
अंजलि में जब जल भरे, तो बहु बर्तन क्यों चाहिए? दिगम्बर बनें या वल्कल धर, तो वस्त्र भी कहाँ पे चाहिए?

क्या राह पर बिखरे चिथड़े, काम वस्त्र का नहीं करें? परहित ही जीवन धरें वृक्ष, फल दे क्या क्षुधा न शान्त करें?
पिपासा गर व्याकुल करे, क्या नदियां शुष्क हैं हो गईं? पर्वत की गुफायें अनन्त हीं, हैं आवास का स्थान बनीं।।
यह सब भी गर न मानो, क्यों भूले प्रभु की शरणागति? शरणागत के सदा रक्षक हैं, भक्त वत्सल वह श्री हरि।।
हे बन्धु मेरे यह जान के भी, क्यों बुद्धिमान भी भ्रम में फिरे? धनोमद में उन्मत्त घमण्डी, धनियों की चाटुकारी करे।।

यह देख करी सब ओर से, जब जीव विरक्त हो जाये। हृदय में नित्य विराजमान्, श्री हरि का दर्शन पाये।।
स्वत: सिद्ध आत्म स्वरूप, परम सत्य प्रियतम मेरा। जो अनन्त भगवान हैं, हृदय में है उनका डेरा।।
प्रेम और आनन्द से, हृदय में दृढ़ निश्चय करे। स्वास स्वास और रोम रोम से, उनका ही फिर भजन करे।।
उनका भजन ही साधन है, अज्ञान नष्ट वही कर पाये। इस भजन के प्रसाद में, वह जन्म मरण से तर जाये।।

है पशुअन् की बात और, पर जीव कौन ऐसा होगा? असत् विषयों के भोगों में, ही चित्त भटकने जो देगा?
संसार रूपी वैतरणी में, गिरते लोगों को देखकर। निज कर्म जन्य सब दु:खों का, करते भोग उन्हें देखकर।।
कौन पुरुष ऐसा होगा, श्री प्रभु का न जो ध्यान करे? इस आवागमन के चक्र में, पुन: पुन: वह आन पड़े?

निज तन भीतर कोई साधक, धरें धारणा हृदयाकाश की। हृदय में विराजमान जो, श्री हरि के स्वरूप की।।
चतुर्भुज रूप का ध्यान धरें, साकार रूप प्रभु का जो। शंख चक्र गदा पद्म, इन चिन्हों से सुशोभित जो।।
मुख पे उनके बिखरा हास्य, कोमल नयन कमल हैं विशाल। वस्त्र लहराये प्रभु तन पे, कदम्ब पुष्प सम केसरिया।।
भुजा दण्ड में रत्न जड़ित, स्वर्ण के बाजूबन्द सोहें। कान में कुण्डल सीस मुकट, जड़ित है जगमग रत्नों से।।

योगेश्वरों के हृदय कमल, विकसित हों जैसे खिले कमल। वा कर्णिका पर विराज रहे, श्री हरि के श्री चरण कमल।।
श्री वत्स चिन्ह वा हृदय पर, स्वर्ण समान है चमक रहा। कौस्तुभ मणि गलमाल बनी, है कमल माल सों वक्ष सजा।।
अंगुलियाँ सजीं अंगूठियों से, कमर में करधनी लटक रही। चरणों में नूपुर हैं साजे, कर में भूषित कंगन आदि।।
बालों के कुण्डल स्निग्ध बने, निर्मल घुंघराले और नीले। है मुख कमल वा खिल रहा, मन्द मन्द मुस्कान से।।

लीलापूर्ण उन्मुक्त हास्य, मनहर चितवन से भरीं भौंहे। भक्त जनों पर उन राही, वह अनुग्रह वर्षा कर रहे।।
इस धारणा में जब लग, यह मन स्थिरता न पा जाये। तब तक श्री हरि के अचिन्त्य रूप, दर्शन का प्रयत्न किये जाये।।
चरण कमल से स्मितपूर्ण, मुख कमल तक सारे अंग। बुद्धि योग से करे धारणा, श्री हरि का हर अंग प्रत्यंग।।

ज्यों ज्यों शुद्ध होगी बुद्धि, चित्त भी स्थिर होता जाये। एक अंग पे ध्यान लगा, फिर अगले पर ले जाये।।

यह विश्वेश्वर प्रभु हृदय नहीं, यह तो दृष्टा हैं सबके। सगुण निर्गुण जो भी कहो, सब ही रूप तो हैं इनके।।
जब लौ अनन्य भाव से, प्रेमाभक्ति न हो जाये। तब लौ चित्त एकाग्र कर, स्थूल रूप ध्याये जाये।।
जब योगी पुरुष यह मर्त्यलोक, अतिक्रमण करन चाहे। तब देश और काल में, कभी न मन को जाने दे।।
बैठै फिर सुखपूर्वक वह, स्थिर आसन धारण करे। प्राणों को जीत इस मन से फिर, इन्द्रियों का संयम करे।।

फिर निर्मल बुद्धि से वह, मन अपना नियमित करे। मन सहित फिर बुद्धि को, क्षेत्रज्ञ में जा लीन करे।।
फिर क्षेत्रज्ञ को अन्तरात्मा, में जा वह विलीन करे। धीर पुरुष अन्तरात्मा को, परम में फिर लीन करे।।
तत्पश्चात् परम शान्त, अवस्था में स्थित हो जाये। ऐसे जीव का फिर कहें, कर्त्तव्य शेष कोई नहीं रह जाये।।

तम और रज बहुत दूर रहे, यह स्थिति तो सतोगुण से भी परे। अहंकार महतत्त्व प्रकृति का, भी अस्तित्व यहाँ नहीं रहे।।
नियमन करे जो देवों का, उस काल की भी नहीं पहुँच वहाँ। फिर देवगण और वा अधीन, प्राणी क्योंकर पहुँचे वहाँ।।
उसके अतिरिक्त पदार्थों को, कही नेति नेति त्यजें योगी। तन और सम्बन्धित वस्तु में, आत्म बुद्धि त्यजें योगी।।
हृदय द्वारा वह हर पद पर, प्रभु का आलिंगन करें। अन्य भाव सब भूल करी, अनन्य प्रेम में पगे रहें।।
वह ही सर्वोत्तम स्थिति कहें, परम पद वही विष्णु का। सब शास्त्रों ने मिलकर के, इस विषय में यह निर्णय दिया।।

जिसके चित्त की वासना सब, हैं ज्ञान दृष्टि से नष्ट हुईं। ब्रह्मनिष्ठ उस योगी के, तनो त्याग की है यह विधि।।
एड़ी से निज गुदा दबा, पहले स्थिर वह हो जाये। बिना विकलता प्राण वायु, षट् चक्र भेद ऊपर लाये।।
नाभिचक्र स्थित मणिरूपक से, लाये अनहत् हृदय चक्र में। उदान वायु से लाये उसे, वक्षोपरि विशुद्ध चक्र में।।
फिर उस वायु को शनैः शनैः, अर्पित करे तालुमूल में। मनस्वी योगी के लिये, यह ही अन्तिम कर्त्तव्य कहें।।

दो आंख दो कान दो नासिका, और मुख यह सात छिद्र रोके। तालु मूल स्थित वायु लाये, भ्रुवमध्य आज्ञा चक्र में।।
यदि अन्य किसी लोक में, जाने की इच्छा नहीं करे। तो आधी घड़ी तक वायु को, वहां पे ही वह रोक ले।।
ततः लक्ष्य निज स्थिर करी, सहस्त्रार में ले जाये। अन्य सभी कुछ भूलकर, परमात्मा में स्थित हो जाये।।
इसके बाद ब्रह्मरन्ध्र का, वह योगी भेदन करे। इस विधि से शास्त्र कहें, तन इन्द्रिय आदि वह छोड़ दे।।

हे राजा गर योगी की, इच्छा हो ब्रह्म लोक जाऊँ। आठों सिद्धि प्राप्त करी, सिद्धों के संग विहार करूँ।।
अथवा किसी लोक में विचरा करूँ, इस त्रैगुणी ब्रह्माण्ड के। तो मन और इन्द्रियों सहित ही, इस तन से वह प्रस्थान करे।।
वायु समान ही है सूक्ष्म, योगी जन का तन कहें। उपासना तप योग ज्ञान, सेवी योगी जन की कहें।।
त्रिलोकी के बाहर भीतर, स्वच्छन्द रूप से वह विचरें। केवल कर्मों के आश्रय जहाँ, बेरोक टोक न विचर सकें।।

ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा से, योगी प्रस्थान जब करता है। ब्रह्म लोक में जाने को, निज उत्थान वह करता है।।
आकाश मार्ग से तब पहले, वह अग्नि लोक में जाता है। जो कण मात्र भी कहीं बचा, वह मल भी भस्म हो जाता है।।
तत्पश्चात् उससे ऊपर, पहुंचे वह श्री विष्णु तक। श्री हरि के शिशुमार नामी, ज्योतिर्मय उस चक्र पर।।

ब्रह्माण्ड के भ्रमण का केन्द्र है, श्री विष्णु का शिशुमार चक्र। अतिक्रमण करे उसका योगी, अतिसूक्ष्म निर्मल तन धर कर।।

इस तन से अकेला ही, वह महर्लोक में जा पहुंचे। ब्रह्म वेताओं द्वारा भी, वह लोक वन्दित रहे।।
कल्प पर्यंत आयु जिनकी, वह देवता वहाँ विहार करें। ऐसे योगी इस महर्लोक में, ही जाकर निवास करें।।

फिर प्रलय काल के आने पर, जब सारे विश्व को वह देखे। शेष के मुख की अग्नि में, भस्मीभूत होते हुए।।
वह योगी उस काल में, ब्रह्म लोक को जाता है। महा सिद्धेश्वरों का वहाँ, निवास विमानों में पाता है।।
उस ब्रह्म लोक की आयु भी, कहें है श्री ब्रह्मा समान। दो परार्द्ध, की अवधि ही, ब्रह्म लोक की आयु जान।।

न जरा अवस्था न मृत्यु, न शोक वहां न दु:ख वहाँ। फिर किसी भय उद्वेग की, बात ही कैसे उठे वहाँ?
बस एक ही दु:ख है वहाँ, जो व्यथित उन्हें करता है। इस पद से अनभिज्ञ जो, उनका दु:ख चित्त हरता है।।
जन्म मृत्यु के भीषण संकट, में सब जीव जो पड़े रहें। उन्हें देख दयाहित ही, ब्रह्मलोक के वासी व्यथित होएं।।

विशेष लोक को प्राप्त कर, निर्भय वह योगी हुआ। सूक्ष्म तन को अपने उस, पृथ्वी में मिला दिया।।
शान्त चित्त हुआ वह योगी, सातों आवरण को भेद दे। पृथ्वी रूप से जल को वह, और जल से अग्नि को जाये।।
अग्निमय ज्योति रूप से, वायु आवरण में आ जाये। उचित समय के आने पर, आकाश को वह प्राप्त करे।।
ब्रह्म की अनन्तता का, बोध आकाश कराता है। इस क्रम से ही योगी वह, आवरण चीर सब जाता है।।

इस विधि स्थूल आवरण, योगी पार जब करता है। फिर इन्द्रियाँ भी निज सूक्ष्म, अधिष्ठान में लय वह करता है।।
घ्राणेन्द्रिय गन्ध तन्मात्रा, रसना रस तन्मात्रा में जाये। नेत्र रूप तन्मात्रा में, त्वक् स्पर्श तन्मात्रा में जाये।।
श्रोत्र शब्द तन्मात्रा में, जाकर लय ही हो जाये। कर्मेन्द्रियाँ सब इसी विधि, निज क्रिया शक्ति में लय होएँ।।

इसी क्रम से पंचभूतों के, वह स्थूल सूक्ष्म आवरण तरे। योगी इनको पार कर, अहंकार में प्रवेश करे।।
वहाँ सूक्ष्म भूतों को वह, तामस अहं में लय करे। और सम्पूर्ण इन्द्रियां वह, रजो अहं में लय करे।।
फिर मन और इन्द्रियों के, अधिष्ठाता जो देव गण। सात्विक अहं में लय करें, उन सबको वह योगी जन।।
तत्पश्चात् अहं सहित, लय रूप गति के द्वारा। महतत्त्व में प्रवेश पा, प्रकृति आवरण में मिले वह जा।।
समस्त गुणों का लय स्थान, यह प्रकृति ही होती है। विज्ञान तत्व जिसे कहते हैं, वह प्रकृति ही होती है।।

महाप्रलय का काल जब, हे राजा फिर आ जाये। प्रकृति रूप आवरण का, भी लय तब हो जाये।।
आनन्द स्वरूप होकर योगी, निरावरण निज रूप से। परम शान्त आनन्दमय, परमात्मा को प्राप्त करे।।
भगवन्मयी इस गति को, जो योगी प्राप्त कर जाता है। संसार चक्र में पुन: पुन:, वह योगी लौट नहीं आता है।।

हे राजन् तेरा प्रश्न था जो, उसका उत्तर है कह दिया। वेदोक्त द्वौ सनातन पथ, उनका है वर्णन कर दिया।।
सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति, का है यहाँ विस्तार किया। प्रभु वासुदेव की आराधना कर, था ब्रह्मा ने पहले पूछा।।
उनके प्रश्न के उत्तर में, श्री हरि ने था उन्हें कहा। इन दोनों ही मार्गों का, उन्होंने था प्रकाश किया।।

संसार चक्र में पड़े हुए, जीवों की तुम्हें बात कहें। अनन्य प्रेम हरि में जागे, सर्वोत्तम साधन वही कहें।।
इस हेतु कल्याणमय, बस एक ही मार्ग है। प्रेममयी भक्ति के सिवा, नहीं अन्य कुछ प्राप्त है।।
एकाग्र चित्त से ब्रह्म ने, सब वेदों का अनुसरण किया। तीन बार अनुशीलन कर, निज बुद्धि से निश्चय यह किया।।

सर्व भूतात्म स्थित कृष्ण, में जागे जिससे अनन्य प्रेम। वही साधन सर्वोच्च है, वही है सर्वश्रेष्ठ धर्म।।

सबके आत्म रूप में, चर अचर जीवों में स्थित। समस्त भूतों के आन्तर, श्री कृष्ण ही तो रहें लक्षित।।
बुद्धि आदि सब दृश्य रूप, अनुमान करायें लक्षण हैं। इन सबके साक्षी श्री हरि, ही एकमात्र वा दृष्टा हैं।।
परीक्षित् इस कारण कहें, जीवों के लिये अनिवार्य है यह। सब काल और सब स्थिति में, पूर्ण शक्ति लगाकर के।।
श्री हरि का श्रवण कीर्तन, और पुन: पुन: स्मरण करे। यही विधि सर्वोच्च है, भव बन्धन सों जो मुक्त करे।।

है सन्तों का काज एक, अमृत रस बाँटते रहते हैं। आत्म स्वरूप श्री हरि की, कथा का मधुर रस कहते हैं।।
जो श्रवण पुटों में अपने भर, सुधा पान यह करते हैं। निज हृदय के विषयों के, विष से मुक्त वह करते हैं।।
निर्मल हृदय उनका बने, श्री कृष्ण चरण वह पाते हैं। श्री चरण कमल की सन्निधि, सहज ही वह पा जाते हैं।।

३)कामनाओंके अनुसार देवताओंकी उपासना

शुकदेव बोले,
हे परीक्षित तुमने जो, प्रश्न मुझसे था किया। मृत्यु समय बुद्धिमान्, जीव का है कर्त्तव्य क्या?
जिज्ञासा के परिणाम में, प्रश्न का उत्तर दे दिया। प्रयाण काल क्या करे जीव, यह तुमको बतला दिया।।
ब्रह्म तेज का इच्छुक जो, वह बृहस्पति को उपास ले। इन्द्रिय शक्ति चाहे जो, इन्द्र की वह साधना करे।।
संतति जिसको वांछित हो, वह पूजे प्रजापतियों को। विविध चाहना से इस विधि, भिन्न भिन्न उपासना हो।।

लक्ष्मी की चाहना जिसे, उपासना करे वह माया की। जो तेजवान् बनना चाहे, है राह उपासना अग्नि की।।
लिप्सा जिसको हो धन की, आराध्य हैं उसके वसु सभी। प्रभावशाली हो पुरुष वीर, उपासना करे वह रुद्रों की।।
जिसे अन्न धान्य की इच्छा हो, उपासक बने वह आदिति का। स्वर्ग लोक की इच्छा जिसे, हो उपासक आदिति देवों का।।
हृदय में अपने जो धरे, विस्तृत राज्य की अभिलाषा। विश्वदेवों की उपासना ही, पूर्ण करे उसकी आशा।।
प्रजा को जो अपने ही, अनुकूल बनाना चाहे है। साध्य देवों का आराधन, उसके लिये बताये हैं।।

उपासे अश्विनी कुमारों को, दीर्घायु जो कोई चाहे। पुष्टि की गर चाहना हो, पृथ्वी को ही उपास ले।।
मान प्रतिष्ठा की चाहना, गर हृदय में घर करे। लोकमाता पृथ्वी और, द्यौ का वह सेवन करे।।
सौन्दर्य की गर चाहना हो, उपासे वह गन्धर्वों को। हो पत्नी की गर कामना, उपासे उर्वशी अप्सरा को।।
जो पुरुष सबका स्वामी, बनने की चाहना करे। उचित है यह उसके लिये, श्री ब्रह्मा जी अराध ले।।

यश की इच्छा गर हिय में हो, यज्ञ पुरुष की पूजा करे। ऐश्वर्य निधि का याचक जो, वरुण को वह उपास ले।।
विद्याकांक्षी श्री शंकर की, उपासना नित्य ही किया करे। दाम्पत्य प्रेम सदा बना रहे, श्री पार्वती से यह मांगे।।
धर्म उपार्जन जो चाहे, श्री विष्णु को उपासा करे। वंश परम्परा हेतु, पितरों का पूजन करे।।
यक्षों का पूजन करके, बचे विघ्न बाधाओं से। मरुद्गणों को आराधे वह, बलवान होने के लिये।।

मन्वन्तर अधिपति देवों को, पूजे राज्य के लिये। निर्ऋति का पूजन करे, कहें अभिचार के लिये।।
भोगों के लिये वह चन्द्रमा, को ही नित्य उपास ले। निष्कामी गर होना चाहे, श्रीमन्नारायण को भजे।।

चाहे पूर्ण निष्काम हो, या हो पूर्ण कामना युक्त। मुमुक्षु ही चाहे वह हो, या फिर भोग्य भोगों से युक्त।।
बुद्धिमान् पुरुष की, लग्न तीव्र ही चाहिये। भक्तियोग से परम की, आराधना करनी चाहिए।।
जितने भी उपासक हैं, है सबसे बड़ा उनका हित यह। प्रभु प्रेमी भक्तों का संग कर, अविचल प्रेम प्रभु में पायें।।

ऐसे भक्तों के सत्संग में, प्रभु की लीला कथाएँ हों। इन कथाओं द्वारा ही, अति दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति हो।।
उसे सुनकर भवसागर की, त्रैगुणी लहरें शान्त हों। हृदय शुद्ध हो जाने पर, फिर आनन्द का अनुभव हो।।
इन्द्रियाँ पुन: पुन: जाकर, न विषयों में आसक्त हों। सर्वमान्य कैवल्य मोक्ष, भक्ति योग से प्राप्त हो।।
ऐसी रस पूर्ण कथाओं का, जो एक बार रसपान करे। कौन जीव ऐसा होगा, जो परम प्रेम में नहीं पगे?

शौनक बोले,
परीक्षित ने शुकदेव से, जब यह सम्भाषण सुना। हे सूत जी हमें कहें, फिर उन्होंने क्या प्रश्न किया?
श्री शुक तो सर्वज्ञ थे, और थे वार्तालाप निपुण। मधुर मधुर वर्णन करके, जीतते थे वह सबके मन।।
हे सूत बड़भागी आप, सब विस्तार से जाने हैं। हम भी उस वार्तालाप को, अति प्रेम से सुनना चाहते हैं।।
कृपा करके सुनायें आप, बिनती यह मानें हमरी। सन्तों की सभा में तो, प्राय: बातें होतीं ऐसी।।
निश्चित ही प्रभु की कथा में, अवसान जिसका होता है। रसमयी लीला श्री हरि की, गान उसी का होता है।।

पाण्डु पुत्र परीक्षित तो, महाभक्त थे राजा महारथी। बचपन में खिलौनों से खेले, श्री हरि लीला रस पीकर ही।।
भगवन्स्वरूप शुकदेव भी, जन्म से ही हैं भगवद् भक्त। सत्संग भी ऐसे सन्तों का, निश्चित प्रभु प्रेम से होगा सक्त।।
प्रभु के शुभ दिव्य गुणों की वहाँ, चर्चा निश्चित हुई होगी। उस चर्चा के पुन: श्रवण हेतु, शरण में बैठे हम सब ही।।

श्री कृष्ण गुणों के गान या, श्रवण में ही बीते हर क्षण। धन्य धन्य वह बड़भागी, अन्यथा व्यर्थ मानव जीवन।।
यह सूर्यदेव उदय हों नित्य, और अस्त भी हो रहे। इस क्रम से उनकी आयु, व्यर्थ ही छीने जा रहे।।
क्या वृक्षों का जीवन नहीं, या धौंकनी की नहीं सांस चले? गांव के अन्य पशु भी सब, खाएं पीएं मैथुन करें।।
मनुष्य रूप में पशु की ही, भान्ति सब विचरते हैं? ऐसे जीवन से काम क्या, जो कृष्ण कथा बिन बीते है।।

जिसके कर्णपुटों में कभी, श्री हरि लीला रस नहीं पड़ा। वह नर तो श्वान सूकर उष्ट्र, और गर्दभ से भी है गिरा।।
जो यह मानव तन पाकर भी, श्री कृष्ण कथा कभी नहीं सुने। उसके कान के छिद्र तो, चूहे की बिल के समान रहें।।
श्री विग्रह भगवान के, प्रभु की याद दिलायें जो। या पावन सरिता तीर्थ का, दर्शन नहीं करायें जो।।
ऐसे नयनों से क्या करना, हैं पूर्णतय: निरर्थक वो। मोर पंख पर बना हुआ, जैसे नेत्र चिन्ह कोई हो।।

चलने की शक्ति पाकर भी, जो लीला स्थली को न जायें। पेड़ों समान जड़ है वह पाद, जो वा यात्रा न कर पायें।।
भागवत् प्रेमी सन्तन की जिस, चरण धूलि नहीं सीस धरी। मानव जीवन को पाकर भी, है जीव वह मृतक समान ही।।
प्रभु चरणों में अर्पित जो, तुलसी सुगन्ध न सराही जिस। श्वास लेता हुआ भी जीव, मानो हो श्वास रहित ही शव।।

श्री हरि के मंगल नाम का, श्रवण कीर्तन करके भी। द्रवीभूत हो जो न बह जाये, लोहा है वह कोई हृदय नहीं।।
प्रेम आर्द्र जब हुआ हृदय, नयनों में जल भर आता है। प्रेम रोमांच से अंग अंग, पुलकित तब हो जाता है।।

यह वाणी आपकी प्रिय सूत, माधुर्य से भर दे हमारे हृदय। इसलिये अब कृपा करी, संवाद वह हमसे कहें।।
परीक्षित के सुप्रश्न पर, जो परम भक्त भगवान के। आत्म विद्या में अति प्रवीण, श्री शुक ने उत्तर दिये।।

४) राजा परीक्षित के सृष्टि विषयक विविध प्रश्न

सुतजी बोले,
श्री शुकदेव के वचनामृत, थे भगवतत्त्व निश्चय कारक। उत्तरा पुत्र परीक्षित ने, सुनकर उनको किया धारण।।
शुद्ध हुई उनकी बुद्धि, श्री कृष्ण चरण में उसे धरा। अनन्य भाव से ही उन्होने, बुद्धि को समर्पित कर दिया।।
तन भार्या पुत्र महल, पशु धन भाई बान्धव। और निष्कण्टक राज्य में, ममत्व भाव ने किया था घर।।
दीर्घ काल अभ्यास से, दृढ़ ममता थी हो गई। शुकदेव के वचन सुनकर, इक क्षण में उन सब को त्याग दिया।।

हे शौनकादि ऋषियों, महामनस्वी परीक्षित थे। आने वाली निज मृत्यु का, निश्चित समय वह जाने थे।।
धर्म अर्थ और काम बन्धे, सब कर्मों से संन्यास लिया। तत्पश्चात् श्री कृष्ण में, दृढ़ आत्म भाव को प्राप्त किया।।
श्रद्धायुक्त हो कृष्ण की, महिमा सुनने के लिये। श्री शुक से उसने प्रश्न किया, जो आप हैं मुझसे पूछ रहे।।
परीक्षित बोले,
भगवत्स्वरूप हे मुनिवर आप, परम पवित्र सर्वज्ञ हैं। आपने जो कुछ भी कहा, वह उचित और सत्य है।।
ज्यों ज्यों श्री हरि की कथा, आप सुनाते जा रहे। त्यों त्यों मम अज्ञान का, आवरण उठाते जा रहे।।
फिर भी आपके चरण बैठ, मैं आपसे जानना चाहता हूँ। माया से बस सृष्टि रचें। जिज्ञासा पूर्ति चाहता हूँ।।
इस संसार की रचना तो, है अति गुह्य और रहस्यमयी। ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल, भी समझ न पायें इसे कभी।।

प्रभु कैसे विश्व की रक्षा करें, और करें संहार फिर? किन किन शक्तियों का आसरा ले, कैसे खेल वे खेलें फिर?
स्वयं ही बनें खिलौना भी, और आप खिलाड़ी बन जायें। अपने आप में आप ही वह, सब खिलवाड़ किये जायें।।
बच्चों के घरौंदों सम, ब्रह्माण्ड अनेकों कैसे रचें? फिर कैसे उन्हें स्वयं ही, बात बात में मिटा वह दें?

श्री हरि की लीलाओं का, पार नहीं हम पा सकें। विचित्र अत्यन्त यह हैं सारी, विद्वद् जन भी भरमा जायें।।
एकाकी श्री प्रभु स्वयं हैं, उनके अतिरिक्त है कोई नहीं। बहु कर्म वह कैसे करें, यह बात समझ में आई नहीं।।
क्या पुरुष बनी विभिन्न गुण, प्रकृति के धारण करें? या अनेक अवतार धरी, क्रमश: उन्हें अपना वह लें?

वेद और ब्रह्म तत्व के, आप तो पूर्ण ज्ञाता हैं। मम संशय के हे मुनिवर, आप ही उचित त्राता हैं।।
जब राजा परीक्षित ने, उनसे इस विधि याचना की। प्रभु के गुण वर्णन के लिये, पुन: पुन: उन प्रार्थना की।।
तब श्री शुक ने श्री हरि का, बार बार पुन: स्मरण किया। तत्पश्चात् ही श्री शुक ने, निज प्रवचन आरम्भ किया।।
शुकदेव बोले,
विश्व की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय की लीला करें। सत्व रज और तमोगुण, त्रै शक्ति स्वीकार करें।।
ब्रह्मा विष्णु और शंकर का, रूप स्वयं धारण करें। अन्तर्यामी रूप में वह, चर अचर के हृदय बसें।।
अचिन्त्य उनका स्वरूप है, अग्राह्य भी उनको कहें। उनकी उपलब्धि का साधन, यह बुद्धि न जान सके।।
अनन्त ही है जिनकी महिमा, और स्वयं हैं जो अनन्त। चरण कमल में श्री हरि के, कोटि कोटि प्रणाम हो मम।।

सत्पुरुषों के दु:ख हर कर, निज प्रेम दान जो करते हैं। पुन: पुन: उन श्री हरि को, नमस्कार हम करते हैं।।
दुष्टों का विस्तार रोक, मुक्ति उनको वह देते हैं। परम हंस आश्रमियों को, भी अभीष्ट वा देते हैं।।
चर अचर सभी प्राणी, उनका ही तो रूप हैं। पक्षपात किससे वह करें, सब उनका ही स्वरूप हैं।।

भक्तों के नित्य वत्सल वह, हठी न उन तक पहुंच सकें। भक्ति रहित साधन जो करें, उनकी छाया भी छू न सकें।
अद्वितीय वह एको आप, उनके समान कोई हो न सके। ऐश्वर्य में उनके सम ही नहीं, तो उनसे अधिक कोई क्या होये?
ऐश्वर्य युक्त वह ब्रह्म स्वरूप, निज धाम में सदा विचरें। ऐसे श्री कृष्ण को पुन: पुन:, कर जोड़ी हम नमन करें।।

कीर्तन स्मरण वन्दन दर्शन, श्रवण और पूजन जिनका। तत्काल ही नष्ट करे, जीवों के पापों को सदा।।
पुण्य कीर्ति प्रभु को मेरा, नमस्कार है बार बार। उन श्री कृष्ण के चरणों में, मैं सीस झुकाऊँ बार बार।।
विवेकी जन जिन चरण कमल का, आश्रय नित्य ही लेते हैं। हृदय से लोक परलोक की, आसक्ति धो वह देते हैं।।
बिन दु:ख सहे वह सहज ही, ब्रह्म पद पा जाते हैं। उन मंगलमय प्रभु चरण के, वारि वारि हम जाते हैं।।

महातपस्वी दानी यशस्वी, और मनस्वी सदाचारी। मन्त्रवेता बहु ज्ञानी भी, और साधक जो बहु भारी।।
जब लौ निज को और साधना को, अर्पित वा चरण में नहीं करें। तब लग उनके कल्याण का, कहीं भी मार्ग न निकले।।
जिन चरणों में आत्म समर्पण, की महिमा अति भारी हो। उन श्री चरणों में नमन मेरा, और बार बार बलिहारी हो।।

किरात हूण आन्ध्र पुलिन्द, और भी जातियाँ हैं जो मन्द। पुल्कस अभीर कङ्क यवन, खस और पापी अब अन्य।।
जिनके शरणागत भक्तों की, शरण में गर आ जाते हैं। तत्क्षण पापों से मुक्त हो, पावन वह हो जाते हैं।।
उन सर्वशक्तिमान प्रभु, श्री विष्णु को मेरा नमस्कार। श्री हरि के चरण कमल में पुन:, नमन करूं मैं बार बार।।

ज्ञानियों के आत्म स्वरूप, वह अपने भक्तों के स्वामी। तपस्वियों के वह तप स्वरूप, वेदमूति जानें कर्मकाण्डी।।
ब्रह्मा शंकर महादेवता भी, शुद्ध हृदय से उन्हें ध्यायें। उनके स्वरूप का चिन्तन कर, आश्चर्य चकित वह रह जायें।।
वह श्री हरि मुझ सेवक पर, निज अनुग्रह की वर्षा करें। अपनी प्रेममय भक्ति का, अनुपम प्रसाद वह मुझको दें।।

सर्वसम्पदा स्वामिनी, श्री लक्ष्मी जी के हैं जो पति। सब यज्ञों के फल दाता, और भोक्ता भी वह आप ही।।
सारी प्रजा के हैं रक्षक, और सबके वह अन्तर्यामी। पालन कर्ता सब लोकों के, तथा सारी पृथ्वी के स्वामी।।
यदुवंश में प्रकट हो वृष्णी, अन्धक यदुवंशिन् रक्षा की। उन लोगों के सदा रहे, एकमात्र आधार वही।।
भक्त वत्सल सन्तों के प्रिय, हैं उनका सर्वस्व वही। मुझपर वह प्रसन्न हों, श्री कृष्ण रूप में श्री हरि।।

जिनके चरण कमल को ध्याकर, यह बुद्धि परम शुद्ध हो। विद्वद् जन साक्षात्कार करें, शुद्ध बुद्धि द्वारा आत्मा को।।
आत्म दर्शन पाकर वह, वर्णन करें स्वरूप का। निज मति रुचि अनुकूल वह, आख्यान करें स्वरूप का।।
प्रेम मुक्ति के कोश जो, अपने भक्तों पे लुटाते हैं। मुकुन्द वह मुझपर मुदित हों, हम उनकी शरण में आते हैं।।

ब्रह्मा हृदय में पूर्व कल्प की, स्मृति जागृत करने को। प्रेरितस्वयं किया जिन्होने, ज्ञान अधिष्ठात्री देवी को।।
सर्वांग सहित सरस्वती वह, वेद के रूप में प्रकट हुईं। वेद बन कर आप वह, ब्रह्मा के मुख सें बह निकलीं।।
वह ऋषियों के परम ऋषि, हैं ज्ञान का मूल कारण जो। श्री हरि मुझपर कृपा करें, मेरे हृदय में प्रकट हों।।

पञ्चमहाभूतों को ले, प्रभु इस तन का निर्माण करें। फिर जीव रूप में स्वयं ही, इस भवन में वह शयन करें।।
सोलह कला से युक्त हो, प्रभु अपने इस घर में रहें। पंच कर्म और ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच प्राण संग मन सोलह कहें।।
इन सोलह कला के द्वारा वह, फिर सोलह विषय का भोग करें। सर्वभूतमय वह प्रभु, अलंकृत मम वाणी करें।।

जिनके श्री मुख कमल से, झरे ज्ञान मकरन्द समान। सन्त जन हों धन्य सब, करके उस ज्ञान सुधा का पान।।
सर्वज्ञ प्रभु उन व्यास के, चरणों में मेरा नमस्कार। वासुदेव के इस अवतार को, नमस्कार मेरा बार-बार।।
स्वयंभू वेदगर्भ ब्रह्मा से, था नारद ने प्रश्न किया। उनके प्रश्न करने पर ही, ब्रह्मा ने यह उपदेश दिया।।
श्री ब्रह्मा ने आख्यान यह था, श्रीमन्नारायण से सुना। वही ज्ञान यह आज मैं, तेरे लिये हूं कह रहा।

जब प्रजापति श्री ब्रह्मा ने, नारद को उपदेश दिया। निर्गुण के गुन प्रचार का, जब नारद को आदेश दिया।।
तब नारद ने किन किन को, किस रूप में उपदेश किया? अचिन्त्य शक्ति आश्रय प्रभु, कैसे उनका गुणगान किया?
नारद के इस रहस्य को, मैं जान नहीं पाता हूं। श्रेष्ठतम वेदवेत्ता आप, मैं आपसे जानना चाहता हूँ।।
श्री हरि की कथायें ही, सबकी परम हितकारी हैं। श्री नारद का स्वभाव भी, भगवत् दर्शन प्रचारी है।।
निश्चय ही आप मुझे, रहस्य यह बतलाइये। कैसे प्रचार किया नारद ने, उनकी बात सुनाइये।।

प्रभु शुकदेव हे आप मुझे, ऐसा आख्यान सुनाइये। बड़भागी हैं आप देव, अब मेरा भाग्य जगाइये।।
आसक्ति रहित निज मन को, श्री कृष्ण में मैं तन्मय करूँ। सर्वात्म हरि में जोड़ यह मन, अपना तन यह छोड़ सकूँ।।
श्रद्धापूर्ण हृदय से जो, उन लीलाओं का रस लें। वाणी से उनको कहें, और नित्य वा श्रवण करें।।
उनके हृदय में जल्द ही, प्रभु प्रकट हो जाते हैं। अनुकम्पा पूर्ण श्री हरि, उन्हें जल्द ही दरस दिखाते हैं।।

भक्तों के कर्णछिद्रों की गह, वा हृदय कमल पर जा बैठें। भावुक हृदय के मकरन्द, का आप फिर पान करें।।
शरत् ऋतु के आने पर, ज्यों जल स्वच्छ हो जाता है। वैसे ही हरि के आने से, चित्त निर्मल शुद्ध हो जाता है।।
हो जिनका यह हृदय शुद्ध, न इक क्षण चरण कमल वे त्यजें। ज्यों मार्ग के कष्ट सभी सहकर, जब पथिक घर को लौटे।।
किसी प्रलोभन पर भी पुन:, घर से बाहर नहीं जाता है। अपने घर ही आकर के, परम विश्राम वह पाता है।।

नहीं सम्बन्ध महाभूतों से, फिर भी मिली पांच यह तन रचें। क्या स्वभाव वश ऐसा हो, अथवा किसी कारण से करें?
आप ही तो इस मर्म के, हे प्रभु परम विज्ञाता है। इस कारण आप से पूछ रहा, इक आप ही तो मेरे त्राता हैं।।

आपने ही यह बतलाया, श्री हरि नाभि से प्रकटा कमल। उसमें ही सब लोकों की, प्रभु ने स्वयं दी रचना कर।।
अपने सीमित तनो अंगों में, जैसे जीव विभक्त है। वैसे ही श्री हरि का भी, संक्षिप्त सा किया वर्णन है।।
कैसे उनको जान सकूँ, ऐसी विधि सुझाइये। क्या रहस्य है इस सबका, आप ही मुझे बताइये।।

जिनकी कृपा से ब्रह्मा जी, सम्पूर्ण सृष्टि रचते हैं। नाभि कमल से उत्पन्न हो, वा कृपा में ही विचरते हैं।।
उनकी कृपा से ब्रह्मा ने, उनका स्वरूप दर्शन पाया। उत्पत्ति स्थिति प्रलय सबको, उनके अन्दर ही पाया।।
माया के स्वामी स्वयं वह, अन्तर्यामी बसें सबके हिय। निज माया को त्याग कर, वह किस रूप में शयन करें?

पहले आपने बतलाया, श्री विराट के अंगों से। लोक और लोकपाल रचे, श्री नारायण के अंगों से।।

फिर आपने यह भी कहा, कल्पना हुई वा अंगों में। लोक और लोकपालों की, सृष्टि हुई वा अंगों में।।
रहस्य है क्या इस कथन का, आप मुझे बताइये। इन दो कथनों का तात्पर्य, आप ही समझाइये।।

महाकल्प यह कितने हैं, अवान्तर हैं जो अन्तर्गत? भूत भविष्य और वर्तमान, की कल्पना हो क्योंकर?
स्थूल तनोधारी जीवों की, आयु भी क्या बन्धी हुई? कितनी देर इस तन में बसें, क्या निश्चित है यह अवधि?
आप कहें त्रुटि आदि, काल की जो सूक्ष्म गति। और कैसे जानें स्थूल गति, काल की यह वर्ष आदि?
विविध कर्म से जीव की, गतियां क्योंकर होती हैं? आप ही यह रहस्य कहें, कितनी और कैसी होती हैं?

सत्व रज और तमोगुण, इन तीनों के फल स्वरूप। देव मनुज आदि योनि, सब हों गुणों के ही अनुरूप।।
गुणों के अनुयायी जीव, किस योनि को जायें कौन? कर्मों को स्वीकार करें, किस प्रकार और कौन कौन?
पृथ्वी पाताल दिशा आकाश, ग्रह नक्षत्र पर्वत नदी। कैसे उत्पन्न हों द्वीप सागर, और उनमें बसें जो जीव सभी?
बाहर भीतर दोनों ही तरह, परिमाण कहें ब्रह्माण्ड का। वर्णाश्रम भेद महात्मन चरित, निरूपण करें वा धर्म का।।

क्या क्या भेद हैं युगों के, क्या वा परिणाम और हैं धर्म? श्रीहरि के भिन्न अवतारों के, कहें चरित आश्चर्य पूर्ण।।
जीवों के जो सहज धर्म, और विशेष भी कौन हैं? विभिन्न व्यवसायों में जुटे, लोगों के धर्म कहें जो हैं।।
कहें राजर्षियों के धर्म भी, आपद कालीन धर्म की भी। उपदेश करें मुझे धर्म का, जो हैं विभिन्न अवस्था की।।

है तत्त्वों की संख्या क्या, उनका स्वरूप और लक्षण क्या? श्री हरि की आराधना की, अध्यात्म योग की विधि है क्या?
ऐश्वर्य कौन योगेश्वरों के, और अन्त में पायें क्या गति? किस विधि से भग्न हो, लिंग शरीर योगियों का?
तात्पर्य क्या धर्म शास्त्रों का, वेद और उपवेद जो। इतिहास और पुराण का, स्वरूप और तात्पर्य क्या हो?

उत्पत्ति स्थिति और प्रलय, जीवों की क्योंकर कैसे हो? बावली कुएं बना देना, यह स्मार्त्त कर्म सब कैसे हो?
यज्ञ यागादि वैदिक, और काम्य कर्मों की विधि है क्या? अर्थ धर्म और काम के, साधनों की विधि है क्या?

प्रलय काल में जीव जो, प्रकृति में लीन ही रहते हैं। कैसे उनकी उत्पत्ति हो, आप क्या यहाँ पे कहते हैं?
कहें क्योंकर इस जगत् में, उत्पन्न पाखण्ड यह हो जाये? आत्म के बन्ध और मोक्ष का, स्वरूप जान कैसे पायें?
किस विधि स्वरूप में, स्थिति निज हो पाती है? आप ही यह आख्यान करें, कैसे यह सब हो जाती है?

परम स्वतंत्र हैं प्रभु स्वयं, निज माया से कैसे खेलें? पल में त्यजी उसे साक्षीवत्, उदासीन कैसे हो जायें?
आपके शरणागत हूँ मैं, यह सब प्रभु आप से पूछ रहा। हे मुनिवर अब कृपा करी, क्रमशः आख्यान करें इसका।।
स्वयंभू ब्रह्मा के समान, हैं इस विषय में स्वयं प्रमाण। अन्य तो निज परम्परा श्रुत, बातों का ही करें अनुष्ठान।।

हे ब्राह्मण मम क्षुधा पिपासा, की चिन्ता न आप करें। मम प्राण त्याग का हेतु तो, बस केवल ब्राह्मण शाप है रे।।
तव मुखारविन्द से निसृत, सुधापान हूं कर मैं रहा। अमृतमयी लीला कथाका, रसपान हूं कर रहा।।
सूतजी बोले,
सन्त सभा में तब राजा, परीक्षित ने जिज्ञासा की। भगवान की लीला कथा श्रवण को, उन्होंने इस विधि प्रार्थना की।।
अति मुदित हुए श्री शुक, उसकी बातों को सुनकर। उसको हेतु बनाकर के, जीवों का दिया कल्याण कर।।

वेदतुल्य श्रीमद्भागवत, महापुराण उन्होंने कहा। कल्प के आदि में जो, हरि ने था ब्रह्मा से कहा।।
पाण्डु वंश शिरोमणि, परीक्षित् ने जो प्रश्न किये। क्रमश: श्री शुकदेव ने, उत्तर देने आरम्भ किये।।

५) सृष्टि की उत्पत्ति विषयक नारद को ब्रह्माका ज्ञान

नारद बोले,
हे पिताश्री हे देवश्रेष्ठ, सृष्टि के रचयिता आप हैं। मेरे ही नहीं हैं सबके पिता, चरणों में मेरा प्रणाम है।।
कृपा करके आप मुझे, वह ज्ञान बतलाइये। आत्म तत्व साक्षात् हो, ऐसा आख्यान सुनाइये।।
क्या लक्षण है संसार का, और आधार कहाँ पे हो? किसने इसका निर्माण किया, और प्रलय कहाँ पे हो?
किसके नियम में यह रहे, और वास्तव में है क्या वस्तु? इसका तत्त्व बताइये, कृपा करी के आप प्रभु।।

आप तो यह सब जाने हैं, भूत भविष्य के हैं स्वामी। आज भी जो कुछ हो रहा, उसको जानें आप ही।।
ज्यों हाथ पे रखा आंवला, स्पष्ट ही नजर आता है। उसी विधि संसार सब, आपकी ज्ञान दृष्टि में समाता है।।
जिससे पाया विज्ञान यह, जो आपका भी आधार है। कौन है स्वामी आपका, जो आपके स्वरूप का सार है?
आप एक निज माया से, सब जीवों का सृजन करें। पञ्चभूतों का आश्रय ले, आश्चर्यमयी यह सृष्टि रचें।।

ज्यों मकड़ी अपने मुंह से, अपने आप जाला रचे। उस जाले से स्वयं ही, पुन: पुन: वह खेला करे।।
रचें आप सब ही प्राणी, निज शक्ति द्वारा वैसे ही। फिर भी इससे न उत्पन्न हो, आपमें कोई विकार कभी।।
है जो भी जगत् में विद्यमान, नाम रूप और गुण बन्धा। नहीं अन्य किसी की रचना यह, सब यह आपकी ही माया।।
सत् असत् उत्तम मध्यम, या अधम वस्तु भी कोई। मैंने कभी वह देखी नहीं, जो आपसे उत्पन्न नहीं हुई।।

एकाग्र चित्त होकर देखा, आपने भी महा ध्यान धरी। सबके ईश्वर होकर भी, घोर तपस्या आपने की।।
मोहित हुआ मैं देख के यह, और संशय ने मुझको घेरा। क्या आपसे भी बढ़कर है कोई, यह आज आपसे पूछ रहा?
सर्वज्ञ और सर्वेश्वर आप, कृपा करी समझाइये। उपदेश आपका समझ सकूँ, उचित विधि वह बताइये।।

ब्रह्माने कहा,
हे वत्स हृदय में सबके प्रति, अति करुणा भाव धारण करके। बहुत ही उत्तम प्रश्न किया, जीवों के लिये दया भाव से।।
इसको सुन मेरे हृदय में, नव प्रेरणा का संचार हुआ। प्रभु की कीर्ति गाने का, एक नया साधन बना।।
मेरे प्रति भी जो तुमने, सारी बातें हैं कहीं। उनमें से भी कोई एक, पुत्र मेरे असत्य नहीं।।
जो मुझसे भी है परे, बिन जाने उस तत्त्व को। श्री हरि को जाने बिना, मेरा प्रभाव यह प्रतीत हो।।

ज्यों सूर्य अग्नि और चन्द्र, सब तारागण और ग्रह नक्षत्र। प्रकाशित वा प्रकाश से हों, फिर ज्योतिर्मय करें वह सब।।
स्वयंप्रकाश श्री हरि से त्यों, चिन्मय प्रकाश को लेकर के। प्रकाशित स्वयं मैं हो जाऊँ, उनकी ज्योति पाकर जग चमके।।
उनकी वन्दना करता हूँ मैं , श्री हरि का मैं ध्यान धरकर । दुस्तर माया से हो मोहित, सब ही कहें मुझे जगदीश्वर।।

उनके सम्मुख तो माया यह, इक पल को न ठहर सके। दूर से ही प्रणाम कर, आँख बचाकर के निकल जाये।।
पर संसारी नित्य ही, मोहित उसमें हुए रहते हैं। यह मैं हूं यह मेरा है, नित्य यह बकवाद वे करते हैं।।

हे नारद तुम स्वयं ही, हो श्री हरि के अपने आप। प्रभु के इस रहस्य को, जान लो तुम मेरे प्रिय आज।।
द्रव्य कर्म काल स्वभाव, और रूप जो जीव का। वास्तव में सब रूप ही, भिन्न आकार है श्री हरि का।।

सब वेद उनके परायण हैं, उपजें सब देव वा अंगों से। समस्त यज्ञ जहाँ जो भी हों, नारायण ही हैं लक्ष्य बने।।
उन यज्ञों को कर करी, जिन लोकों की प्राप्ति हो। वह सब भी श्री नारायण में, ही तो सर्वदा कल्पित हों।।
सब प्रकार के योग भी, हैं एक ही हेतु को लिये। सारी तपस्या कर करी, हों यत्न नारायण के ही लिये।।
ज्ञेय एक सब ज्ञान के, श्रीमन्नारायण आप हैं। समस्त साध्य और साधनों की, गति स्वयं वह आप हैं।।

द्रष्टा होते हुये भी वह, स्वयं ही हैं स्वामी ईश्वर। निर्विकार होकर भी वह, सब ही रूप स्वयं लें धर।।
मुझको भी उन्होने ही रचा, मुझे प्रेरित करे उनकी दृष्टि। उनकी इच्छा अनुसार ही, रच देता हूं सारी सृष्टि।।
अन्त रहित हैं श्री हरि, माया के गुणों से वह परे। सृजन स्थिति प्रलय कारण, तीनों गुण हैं स्वीकार किये।।

माया द्वारा ही द्रव्य ज्ञान, और क्रिया का आश्रय लें। माया के यह तीनों गुण, पुरुष को निज में बान्ध लें।।
कार्य कारण कर्तृत्व भाव, अभिमान ही बन्धन बन जाये। मायातीत वह नित्य मुक्त, इस बन्धन में बन्ध जायें।।
इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य हरि, इन तीनों गुणों के आवरण से। निज स्वरूप को ऐसे ढकें, कोई न उनको देख सके।।
इस सारी सृष्टि के भी, मेरे स्वामी भी वह आप हैं। एकमात्र सारे जग के, ईश्वर भी वह आप हैं।।

मायापति भगवान ने जब, इच्छा की अनेक होने की। अद्वितीय एक होते हुए, बहु रूप धर लेनी की।।
निज माया से स्वरूप में, स्वयं ही जो प्राप्त हुए। काल कर्म और स्वभाव, यह सब ही स्वीकार किये।।
प्रभु की शक्ति से ही तो, काल ने स्वयं यह रूप धरा। तीनों गुणों में काल ने, क्षोभ उत्पन्न कर दिया।।
स्वभाव ने उन गुणों को, रूपान्तरित कर दिया। और पुन: फिर कर्म ने, महत्तत्त्व को जन्म दिया।।

रज और तम की वृद्धि पर, महत्तत्त्व में जो विकार हुआ। उससे ज्ञान और क्रिया, द्रव्य रूप तम प्रधान हुआ।।
अहँकार कहलाया वह, और तीन प्रकार में बंट गया। वैकारिक तैजस और तामस, इन तीनों का भेद हुआ।।
हे नारद इस भेद की, क्रमश: तुमको बात कहें। ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति, द्रव्य शक्ति प्रधान हैं यह।।

पंचभूतों का कारण रूप, है यह तामस अहंकार। आकाश की उत्पत्ति हुई, जब आया उसमें विकार।।
तन्मात्रा आकाश की, और वो गुण है शब्द ही। इस शब्द के द्वारा हो, दृष्टा और दृश्य का बोध भी।।

आकाश में जब विकार हुआ, उत्पन्न उससे वायु हुई। उस वायु की तन्मात्रा, वो गुण कहें है स्पर्श ही।।
कारण का गुण आ जाने से, आकाश हुआ शब्दवान्। इन्द्रियों में आई स्फूर्ति, तन में जीवन हुआ शक्तिवान।।
ओज और बल जो जीवन में, उनमें हों दर्शन इसके ही। भिन्न रूप धारण किये, आकाश के हैं विकार सभी।।

काल कर्म स्वभाव से, वायु में भी विकार हुआ। उस विकार से उत्पन्न हो, तेजस ने फिर रूप धरा।।
प्रधान गुण इस तेजस का, रूप को ही कहते हैं। कारण इसका आकाश वायु, वे भी संग ही रहते हैं।।
आकाश और वायु के, गुण भी इसमें निहित हैं। शब्द और स्पर्श भी, रहते इसमें निहित हैं।।

तेज से उत्पन्न जल हुआ, जल का गुण है रस कहें। कारण तत्त्वों के गुण शब्द, स्पर्श भी इसमें निहित रहे।।
जल का विकार पृथ्वी बनी, गन्ध पृथ्वी का गुण पाते हैं। नियम है यह सृष्टि का, कारण गुण कार्य में आते हैं।।
इसी तर्क से चारों गुण, भी इसमें विद्यमान हैं। शब्द स्पर्श रूप और रस, यह ही इनके नाम हैं।।

विकार रूप अहंकार से, अधिष्ठातृ देव उत्पन्न हुए। दस देवता मन इन्द्रियों के, अहँ से ही उत्पन्न हुए।।
दिशा वायु और सूर्य वरुण, अश्विनी कुमार और अग्नि। इनके नाम हैं यही कहें, विष्णु मित्र और प्रजापति।।
तैजस अहँ के विकार से, त्वक् नेत्र जिह्वा श्रोत्र प्राण। ज्ञानेन्द्रियां पांच उत्पन्न हुईं, संग कर्मेन्द्रियाँ भी हुईं पांच।।
वाक् हस्त और पाद वह, गुदा और जननेन्द्रिय कहें। ज्ञान बुद्धि क्रिया रूप प्राण, तैजस अहँ की देन कहें।।

श्रेष्ठ रहस्य की एक बात, हे ब्राह्मण अब तुम सुनो। इनके आवास को भोगालय, इस तन की रचना कैसे हो?
महाभूत इन्द्रिय और मन, सत्त्वादि यह तीनों गुण। परस्पर जब लौ नहीं मिले, यह सब न रचव पायें तन।।
प्रभु ने जब निज शक्ति से, इन सबको प्रेरित किया। तब तत्त्वों ने आपस में, इक दूजे से मिलन किया।।
परस्पर मिलकर तब कारण, कार्य भाव स्वीकार किया। व्यष्टि समष्टि रूप में, पिण्ड और ब्रह्माण्ड रचा।।

ब्रह्माण्ड रूप निर्जीव अण्ड, सहस्त्र वर्ष लौ जल में रहा। काल कर्म स्वभाव से, प्रभु ने जीवित फिर उसे किया।।
उस अण्डे को भेद कर, विराट पुरुष उससे निकला। चरण भुजा नेत्र और मुख, और सहस्त्रों हैं जंघा।।
विद्वद जन उसी के अंगों में, सब लोक कल्पित करते हैं। सब लोकों में जो भी बसे, दर्शन उसमें ही करते हैं।।
कटि के निम्न भाग में, हैं सातों पाताल बसे। उसके ऊपर के भाग में, सातों स्वर्ग हैं बस रहे।।
विराट् पुरुष के मुख से कहें, ब्राह्मण जन सब उत्पन्न हों। भुजा से क्षत्रिय जँघा से वैश्य, शूद्र पैरों से उत्पन्न हों।।

पाद से ले कटि पर्यन्त, पाताल सात और भूलोक। नाभि में है भुवर्लोक, और हृदय में स्वर्ग लोक।।
उस विराट् के तन में ही, यह सारी सृष्टि कल्पित है। श्री हरि के वक्ष स्थल में, महर्लोक यह कल्पित है।।
गले में उनके जनलोक, और दोनों स्तनों में तपोलोक। ब्रह्मा का नित्य निवास जहाँ, मस्तिष्क बसा है सत्यलोक।।

उस विराट के कटि प्रदेश में, कल्पित है जो लोक अतल। जाँघों में है लोक वितल, घुटनों में पावन लोक सुतल।।
जंघाओं में विराट की, तलातल की कल्पना करें। ऐसी कल्पना कर कर के, विद्वान् उपासना उसकी करें।।
एड़ी के ऊपर गाँठ में, कहें महांतल बसा हुआ। पंजों और एड़ियों में, है रसातल बसा हुआ।।
तलवों को पाताल लोक, ही समझना चाहिये। इस विधि विराट् को, सर्वलोकमय पाईये।।
विराट् प्रभु के अंगों में, इस विधि हैं कल्पित लोक सभी। चरण में पृथ्वी नाभि में भुवं, स्वर्गलोक सिर में है बसी।।

६) विराट पुरुष की विभूतियों का वर्णन

उन्हीं विराट के श्री मुख से, प्रकट हुई है यह वाणी। और उसके अधिष्ठातृ देव, संग में प्रकट हुए अग्नि।।
सप्त धातुओं से उनकी, सातों छन्द हैं बह निकले। मनुज पितर और देव योग्य अमृतमय अन्न भी जिन्हें कहें।।
सब रस रसना इन्द्रिय सहित, अधिष्ठातृ देव जिन्हें वरुण कहें। विराट पुरुष की जिह्वा से, ही यह सब हैं प्रकट हुए।।

नासिका छिद्रों से उनके, पँच प्राण वायु उपजे। प्राण अपान व्यान उदान, और समान ही जिन्हें कहें।।

समस्त औषधि अश्विनी कुमार, उत्पन्न हुए घ्राणेन्द्रिय से। गन्ध भी सब उत्पन्न हुई, साधारण या विशेष कहें।।

वा नेत्रेन्द्रिय रूप का और तेज का है जन्म स्थान। स्वर्ग और सूर्य को जन्म देना, उनके नेत्र गोलक का काम।।
कान से निकलीं सब दिशा, और पावनी तीर्थ स्थान। उन श्रोत्रेन्द्रिय से जन्मा, शब्द और आकाश महान्।।
उनका ही शरीर है, सभी सार वस्तु जग की। और सौन्दर्य जो है जग में, वह ही हैं उसकी निधि।।

उनकी त्वचासे ही निकले, सारे यज्ञ स्पर्श वायु। रोम रोम से जन्म ले, उपजने वाली सब वस्तु।।
उनसे ही तो उत्पन्न हो, हविष्य पदार्थ सारे जो। उनकी आहुति पाकर ही, सम्पन्न यज्ञ यह सारे हो।।
उनके केश और दाढ़ी मूंछ, और हाथ पांव के नख। मेघ विद्युत शिला लौहादि, उत्पन्न करें यह धातु सब।।
संरक्षक सारे जग के, भुजा से उनकी प्रकट हों। लोकपाल बन स्वयं ही वह, सारी सृष्टि के रक्षक हों।

भू: भुव: स्व: त्रिलोकों का, आश्रय उनका चलना फिरना। चरण कमल आश्रय उनका, जो प्राप्त है वा रक्षण करता।।
सब भय दूर हों चरणों में, समस्त कामना पूरी हो। ऐसी महिमा श्री चरणों की, क्यों मन भंवरा न मोहित हो?
जल वीर्य सृष्टि मेघ, प्रजापति का है आधार। विराट् पुरुष का लिंग जो, इन सबका है रचनाकार।।
जननेन्द्रिय विराट की, आनन्द का उद्गम स्थान है। मैथुन जनित आनन्द जो, उसका ही परिणाम है।।

हे नारद विराट की, वायु: इन्द्रिय है मित्र और यम। गुदा द्वार हिंसा निर्ऋति, मृत्यु नरक उत्पत्ति सम।।
पराजय अधर्म और अज्ञान, विराट् की पीठ ही इनका स्थान। नाड़ियों से नद नदी बहे, हुआ अस्थियों से पर्वत निर्माण।।
इनके उदर में समाई है, रस धातु और मूल प्रकृति। सागर और सब प्राणी, संग में उनकी मृत्यु भी।।
उनका हृदय वह स्थान है, जो इस मन को जन्म दे। इसी विधि सृष्टि सारी, विराट् पुरुष का तन कहें।।
हम तुम और सनकादि, शंकर विज्ञान और अन्त:करण। सबके सब ही उनके चित्त, में करें आश्रय धारण।।

मैं और तुम और सब अग्रज, जिनके नाम सनक आदि। शंकर देवता दैत्य जीव, नाग पक्षी और मृग आदि।।
रेंगनेवाले जन्तु सभी, गन्धर्व अप्सरा और यक्ष। भूत प्रेत सर्प पशु, सिद्ध पितर और राक्षस।।
विद्याधर चरण और वृक्ष, भाँति भाँति के जीव जो। आकाशचर जलचर और, स्थलचर भी हैं जीव जो।।
ग्रह नक्षत्र धूमकेतु तारे बिजली और बादल। यह सबके सब रूप ही, विराट पुरुष ने लिये हैं धर।।
जो कुछ कभी था या कभी है, या आगे भी होगा कभी। विराट ही उसको घेरे है, उसके अन्दर ही है सभी।।
यह सम्पूर्ण विश्व जो, है दस अंगुल परिमाण में स्थित। क्या महिमा गायें उसकी, कुछ भी तो नहीं उसके अतिरिक्त।।

निज मण्डल को प्रकाशित कर, करे बाह्य भी सूर्य प्रकाशवान। विराट विग्रह प्रकाशित कर, रहें एक रस सदा वह परम पुराण।।
जीव के संकल्प और, उसकी क्रिया से जो बने। वह परम पुरुष विराट् तो उन सबसे ही है परे।।
वह ही एको है स्वामी, अमृत पद और अभय पद का। उस परम की महिमा का, कोई पार न पा सका।।

सम्पूर्ण लोक भगवान के, हैं पाद मात्र के ही समान। अंशमात्र उन लोकों में, समस्त जीव पायें विश्राम।।
भू: लोक और भुव: लोक, स्व: लोक के ऊपर महर्लोक। उनके भी ऊपर कहें, जन तप और सत्य लोक।।
क्रमश: अमृत क्षेम और, अभय का नित्य निवास हैं। उन सब लोकों का भी तो, परम में ही वास है।।

जन तप और सत्य लोक, इन त्रैलोक की बात कहें। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ, क्रमश: संन्यासी यहां बसें।।
गृहस्थ जो दीर्घकाल तक, ब्रह्मचर्य से हीन रहें। भू: लोक भुव: लोक, और स्व: लोक में ही विचरें।।

शास्त्रों में द्वौ मार्ग ही, इस जीवन के हैं कहे। अविद्या रूप कर्म मार्ग, कहा सकाम पुरुष के लिये।।
उपासना रूप कहा विद्या मार्ग, निष्काम उपासक के लिये। इस जीवन में जिस एक का, चाहे जीव आश्रय ले ले।।
भोग प्राप्ति के हेतु वह, दक्षिण मार्ग से जाता है। या उत्तर मार्ग की यात्रा कर, मोक्ष फल वह पाता है।।
पर दोनों के ही आश्रय, पुरुषोत्तम वह आप हैं। आधार भूत इन दोनों के, श्री हरि स्वयं ही आप हैं।।

ज्यों निज रश्मि से सूर्य देव, प्रकाशित सबको करते हैं। निज प्रकाश सबमें बाँटें, पर सबसे अलग वह रहते हैं।।
इस अण्ड और महाभूत की, उत्पत्ति जिससे है हुई। एकादश इन्द्रिय और गुणमय, विराट् की उत्पत्ति हुई।।
वैसे ही परमात्म वह, व्याप्त है अन्दर बाहर भी। सब रूपों में आप बसें, पर रहें उनसे अतीत ही।।

इस विराट् के नाभि कमल से, जब उत्पत्ति मेरी हुई। इस पुरुष के अंगों बिना कोई, यज्ञ सामग्री नहीं मिली।।
उनके ही श्री अंगों में, कल्पना मैंने सारी की। यज्ञ हेतु पशु स्तम्भ कुश, और यज्ञभूमि रच दी।।
फिर यज्ञ के लिये योग और, उत्तम काल की कल्पना की। इस विधि ही सृजन की, सारी प्रक्रिया आरम्भ हुई।।

हे मुनिवर यज्ञ हेतु, आवश्यक पात्र आदि वस्तु। जौ चावल आदि औषधि, माखन घृत आदि स्निग्ध वस्तु।।
षट् रस लौह और मिट्टी, ऋक् यजु: साम यह चतुर्होत्र। देवता गण के नाम सब, मन्त्र दक्षिणा और व्रत।।
पद्धति ग्रन्थ संकल्प तंत्र, गति मति और श्रद्धा भी। प्रायश्चित् और समर्पण भी, समस्त यज्ञ की सामग्री।।
श्री विराट के अंगों से, ही तो सब एकत्रित की। उससे यज्ञ रूप हरि की, यज्ञों द्वारा यजन की।।

तव अग्रज नौ प्रजापतियों ने, तदनन्तर साधना की। हो समाहित चित्त आराधना की, अन्तर्यामी उस पुरुष की।।
तत्पश्चात् समय समय पर, मनु: पितर और देव ऋषि। दैत्यों और मनुजों ने, यज्ञों द्वारा अराधे हरि।।
हे नारद यह सृष्टि सभी, श्री नारायण में स्थित रहे। नितान्त परे जो गुणों से, माया राही गुण ग्रहण करें।।
उनकी प्रेरणा से ही तो, हम संसार यह रचते हैं। उनके अधीन हो रुद्र सभी, संहार भी इसका करते हैं।।
विष्णु रुप में हरि स्वयं, इस जग का पालन करते हैं। स्वीकार करी सत्वादि गुण, सृष्टि संचालन करते हैं।।
तात् जो तुमने था पूछा, उत्तर उसका दे दिया। भाव अभाव कार्य कारण, प्रभु से भिन्न कोई नहीं कहा।।

हे वत्स हृदय में प्रेम भरी, उत्कण्ठित हुआ मैं रहता हूँ। श्री हरि के ही स्मरण में, नित्य निमग्न मैं रहता हूं।।
इस कारण ही मम वाणी, असत्य कभी भी नहीं होती। मन में मेरे कभी भूले से, असत्य संकल्प नहीं होती।।
इन्द्रियाँ न उलांघें मर्यादा, न कुमार्ग पर चलें कभी। श्रीमन्नारायण के सिमरण, का यह है प्रसाद सभी।।

तपस्यामय है मम जीवन, सब जानें मुझे वेदमूर्ति। मैं ही स्वामी हूं सबका, मम वन्दन में खड़े प्रजापति।।
निष्ठापूर्वक मैंने योग का, था सर्वांग अनुष्ठान किया। मूल कारण प्रभु का स्वरूप, इस राही न मैं जान सका।।

मंगलमय शरणागत वत्सल, भक्तों के केवल वह त्राता। जन्म मरण के चक्र से, निज भक्तों के मुक्ति दाता।।
जैसे आकाश निज अन्त को, आप ही न कभी पहचाने। वैसे ही परम आत्म निज, महिमा विस्तार को न जाने।।

ऐसी स्थिति में उन हरि का, पार कोई कैसे पा सके? उनकी कृपा दृष्टि के बिना, कैसे कोई उन तक जा सके?
उनकी माया की शक्ति, है अनन्त और अपरम्पार। कल्याणमय उन श्री हरि के, चरणों में हो मम नमस्कार।।

मैं मेरी सन्तति आप सब, और शंकर भी न जान सकें। श्री हरि का सत्य स्वरूप, यह सब भी न पहचान सकें।।
उनकी माया की रचना जग, इसको भी न कोई समझ सकें। माया आवरण से ढके हुए, हम तो नित्य मोहित रहें।।
तब देवों की तो बात ही क्या, वह कैसे उन तक पहुंच सकें? सब मिल निज बुद्धि अनुसार, अनुमान ही उसका कर सकें।।

जिनके अवतार की लीला का, गान नित्य हम करते हैं। तत्त्व अर्थ न समझ सकें, चरणों में सीस हम धरते हैं।।
हर कल्प में अपने आप में, आप की सृष्टि करते हैं। स्वयं ही रक्षा उसकी करें, फिर संहार खुद करते हैं।।
पुरुषोत्तम वह अजन्मा आप, फिर भी रूप वह धरते हैं। सृजन पालन और भक्षण, आप ही वह सब करते हैं।।

वह केवल ज्ञान स्वरूप हैं, अन्तरात्म वह सब में बसें। माया न तनिक उन्हें छू पाये, वह एकरस सदैव रहें।।
आदि अन्त से रहित वह, त्रैकाल में सत्य और परिपूर्ण। त्रिगुणातीत अद्वितीय वह, वह तो सनातन पुरुष परम।।
ऋषि मुनि निज अन्त:करण, इन्द्रिय और तन शान्त करें। तत्क्षण ही श्री हरि को वह, आन्तर में साक्षात् करें।।
असत् पुरुष जब तर्क जाल से, आवृत्त उन्हें कर देता है। उसके लिये उनका दर्शन, फिर सम्भव न हो पाता है।।

परम आत्मा सर्व प्रथम, विराट् पुरुष बन प्रकट हुए। फिर काल स्वभाव कार्य कारण, यह सब बनकर आ गए।।
मन अहंकार फिर पंचभूत, तीनों गुण और इन्द्रियाँ। ब्रह्माण्ड शरीर अभिमानी जीव, स्थावर और जंगम कृतियाँ।।
यह सब ही उन अनन्त श्री, प्रभु के अपने रूप हैं। यह रूप धरी वह आ प्रकटें, जो सर्वथा निररूप हैं।।

शंकर विष्णु दक्षादि यह, प्रजापति और मैं भी संग। स्वर्गलोक के रक्षक यह, तुम जैसे अनेकों भक्त गण।।
पक्षीगण मनुज लोक, और राजा सब अधोलोकों के। गन्धर्व विद्याधर चरणों के, अधिनायक भी जिन्हें कहें।।
यक्ष राक्षस सर्प नाग, इन सब लोकों के स्वामी। महर्षि वितृपति दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर दानवराज सभी।।
प्रेत पिशाच भूत कूष्माण्ड, जलचर मृग पक्षी स्वामी। ऐश्वर्य तेज और इन्द्रिय बल, से युक्त अन्य वस्तु सारी।।
तनो बल या मनोबल या, क्षमा बल से युक्त हैं जो। अथवा सौन्दर्य लज्जा वैभव, विशेष विभूति युक्त हैं जो।।
अद्भुत वर्ण की रूपवान, या वस्तु जो है अरूप। वे सबके सब परम तत्त्वमय, स्वयं ही हैं भगवत्स्वरूप।।

इनके अतिरिक्त परम पुरुष, परमात्मा के परम पवित्र। प्रधान प्रधान लीलावतार, भी शास्त्रों में हैं वर्णित।।
हे नारद तेरे लिये, क्रमश: वा वर्णन करता हूं। उन अवतारों की लीला, तेरे लिये मैं कहता हूँ।।
मधुर सरस श्रवणीय वह, सब श्रोत् दोष वह दूर करें। हो सावधान रसपान करो, ऋषि मुनि उनमें ही निमग्न रहें।।

७) भगवानके लीला अवतार का वर्णन

प्रलय काल में जब पृथ्वी, प्रलय के जल में डूब गई। वा उद्धार को श्री हरि ने, तन एक धारण करी।।
समस्त यज्ञमय वह तन था, वराह रूप था दीख रहा। हिरण्याक्ष दैत्य फिर युद्ध को, जल के भीतर ही आ गया।।
इन्द्र ने ज्यों निज वज्र से, पर्वत के पंख थे काट दिये। वैसे ही निज दांतों से, वराह ने उसके टुकड़े किये।।

फिर रुचि प्रजापति की पत्नी, आकूति के गर्भ से। उन्हीं प्रभु ने सुयज्ञ रूप में, नव अवतार थे धर लिये।।

वा दक्षिणा नाम की पत्नी से, सुयम नामक देव जन्मे। प्रभु के इस अवतार ने, त्रिलोकी के महा दु:ख हरे।।
इस कारण ही स्वयंभू मनु ने, हरि नाम से पुकार लिया। सबके संकट हरने वाले, उनको नाम यह दे दिया।।

फिर प्रजापति कर्दम के यहां, देवहूति के गर्भ से। नौ बहिनों के संग संग, कपिल रूप में वह प्रकटे।।
निज माता को श्री कपिल ने, आत्म ज्ञान सन्देश दिया। इसी जन्म पूर्ण मल धो, निर्मल उनका हृदय किया।।
तीनों गुणों की आसक्ति का, सारा कलिल ही धो डाला। शुद्ध चिति उस माता को, निज स्वरूप ही दे डाला।।

प्रभु को पुत्र के रूप में, अत्रि ऋषि ने था चाहा। प्रसन्न होई भगवान कहा, मैंने अपना आप तुम्हें दे डाला।।
इस कारण अवतार यह, दत्त नाम से ख्यात हुआ। दत्तात्रेय के नाम से, जग ने उनको है जाना।।
सहस्त्रार्जुन और राजा यदु ने, उनके चरण पराग को। धारण कर अपने तन पे, अति पावन किया तन को।।
योग की दोनों सिद्धियाँ, इन्होने इस विधि प्राप्त करीं। भोग और मोक्ष दोनों की, ही उपलब्धि उन्हें हुई।।

सृष्टि के आरम्भ में जब, विविध लोक रचने चाहे। घोर तपस्या की मैंने, तब ही लोक सब रचे गये।।
उस अखण्ड तप से मेरे, जब श्री हरि प्रसन्न हुए। तप ही अर्थ जिसका निकले, सन् नाम से युक्त हुए।।
प्रकटे वह सनक सनन्दन बन, सनातन सनत् के रूप में। जो अग्रज तुम्हारे हैं, उन मम सुतों के रूप में।।
प्रलय के कारण प्रथम कल्प का, भूला जो था आत्म ज्ञान। इस अवतार में ऋषियों प्रति, उसी ज्ञान का किया आख्यान।।
तत्काल ही उस उपदेश से, आन्तर में हुआ साक्षात्कार। परम तत्व को अपने ही, हृदय में उसे किया साकार।।

धर्म की भार्या दक्षकन्या, मूर्ति नाम से जानीं गईं। उनके गर्भ से नर नारायण, रूप में थी अवतार ली।।
उनके तप का वैभव भी है, उन सम ही प्रभावशाली। इन्द्र की भेजी काम सेना, अनेकों अप्सरा थीं गईं।।
सम्मुख उनके जाते ही, अपना स्वभाव वह खो बैठीं। निज हाव भाव से आत्मस्थित, प्रभु तप में विघ्न न डाल सकी।।

हे नारद जब मदन ने, उनपे प्रहार करना चाहा। निज क्रोध दृष्टि का लक्ष्य बना, महादेव ने उसको दग्ध किया।।
पर निज असह्य क्रोध को, वह भी जला नहीं पाते हैं। अपने ही क्रोध की अग्नि में, वह खुद ही जलते जाते हैं।।
नर नारायण के निर्मल हिय, क्रोध प्रविष्ट न हो पाये। उनको देख के पहले ही, भय से कम्पित वह हो जाये।।
फिर उनके हृदय में प्रवेश की, इच्छा काम कैसे करें? वह तो भयभीत हुआ उनसे, सदा ही उनसे दूर रहे।।

पांच वर्ष का बालक ध्रुव, पिता की गोद में था बैठा। विमाता सुरुचि ने उसको, वाक् बाण से बेध दिया।।
अति अल्प आयु थी उसकी, पर ग्लानि ने मन को घेरा। तप ही लक्ष्य बनाकर के, वह बालक बन की ओर चला।।
प्रसन्न हुए सुन प्रार्थना उसकी, प्रकट हुए श्री हरि वहां। ध्रुव के तप प्रसाद में, ध्रुवपद का उसे वरदान दिया।।
आज भी आकाश में, ध्रुव की प्रदक्षिणा सब करें। ऊपर नीचे आगे पीछे, महा ऋषिगण वा स्तुति करें।।

पुराकाल में वेन जो, कुमार्ग पर था चला गया। पूर्ण ऐश्वर्य और पौरुष पर, ब्राह्मण हुंकार का वज्र गिरा।।
वज्र के गिरने से जलकर, ऐश्वर्य और पौरुष भस्म हुआ। और वेन निज कर्म से, नरक में था गिरने लगा।।
ऋषियों की प्रार्थना सुनी, तब उसके तनो मन्थन से। श्री हरि अवतार ले, पृथु रूप से फिर प्रकटे।।
नरकों से उसे उभार लिया, पुत्र शब्द चरितार्थ किया। पुत् नामक नरक में, गिरने से उसे बचा लिया।।

उसी जन्म में पृथ्वी को, उन गाय रूप बना दिया। समस्त जगत् कल्याण हेतु, सर्व औषधि को दोहा।।

राजा नाभि की पत्नी, सुदेवी गर्भ से फिर प्रकटे। ऋषभ देव के रूप में, प्रभु फिर अवतरित हुए।।
समस्त आसक्ति त्याग कर, निज इन्द्रिय मन किए परम शान्त। निज स्वरूप में सदा स्थित, समदर्शी वह हुए महान्।।
जड़वत ही मन के बिना, योगचर्या आचरण किया। इसे परमहंस पद कहें ऋषि, या कहें इसे अवधूत चर्या।।

तत्पश्चात् वह यज्ञ पुरुष, प्रकटे स्वयं मम यज्ञ में। स्वर्णकान्ति हयग्रीव बन, एक नया अवतार लिये।।
सर्ववेदमय यज्ञमय और, देवमय प्रभु का यह विग्रह। श्वास रूप में नासिका से, हुआ वेदवाणी का प्राकट्य।।

चाक्षुष मन्वान्तर अन्त में, जब भावी मनु थे सत्यव्रत्। मत्स्य रूप में श्री हरि को, उन्होंने प्राप्त लिया था कर।।
पृथ्वी रूपा नौका का, तब एकमात्र आधार वह थे। इस कारण ही सब जीवों का, भी आश्रय वह आप बने।।
प्रलय के भीषण जल में, मेरे मुख से गिरे वेदों को ले। सबका आश्रय आप बनी, वह विहार करते रहे।।

मुख्य देवता और दानव, अमृत पाने की इच्छा लिये। क्षीर सिन्धु मथने लगे, दोनों मिलकर पूर्ण बल से।।
मन्दराचल था मधानी बना, उसका आधार कौन होता? कच्छप रूप में प्रकट हो, प्रभु ने उसे अपनी पीठ पर धरा।।
पर्वत के पीठ पे घर्षण से, उनकी खुजलाहट शान्त हुई। जिससे श्री कच्छप रूप में, हरि ने कुछ चैन की सांस ली।।

काँप गए जब देवतागण, हिरण्यकश्यपु के भय से। उनका त्रास मिटाने को, नृसिंह रूप में हरि प्रकटे।।
तीक्ष्ण दाढ़ें थीं मुख में, विकराल भौंहें फड़कती थीं। अति भयावह रूप यह देख, त्रिलोकी थी भयभीत हुई।।
यह रूप देख हिरण्यकश्यपु, गदा ले उनपे टूट पड़ा। दूर से ही उसे पकड़ के, प्रभु ने निज जँघा पे धरा।।
उनके यूं वशीभूत हुआ, छटपटाया हिरण्यकश्यपु। निज नख से उसका उदर चीर, मुक्ति दे दी उस प्रभुने।।

महा विस्तृत सरोवर में, गजेन्द्र जल पीने गया। महा बली इक ग्राह ने, आ के पांव उसका पकड़ा।।
लड़ते लड़ते गजराज थका, नहीं सूझ रही थी कोई राह। अपना अन्त वह निकट देख, घबरा के हरि की शरण पड़ा।।
निज सूण्ड में सरोवर से, एक कमल उसने लिया। पकड़ कमल को सूण्ड में, श्रीहरि से उसने यह कहा।।
हे आदि पुरुष आप ही, सब लोकों के है स्वामी। श्रवण मात्र जो भक्त करें, उनके कल्याण के हैं कामी।।

आर्त पुकार सुनकर गजराज की, अनन्त शक्ति चक्रपाणि। गरुड़ की पीठ पे बैठ के, निज धाम त्यज आये स्वामी।।
निज चक्र से ग्राह का, मस्तक उन्होंने छिन्न किया। शरणागत गज की सूण्ड पकड़, कृपा वश उसे उभार लिया।।

आदिति के पुत्रों में, सबके अनुज थे श्री वामन। गुणों की दृष्टि से देखें, तो सबसे आगे थे वामन।।
इस अवतार में यज्ञ पुरुष ने, सब लोकों को नाप लिया। बलि ने जब संकल्प किया, निज चरणों में सब लिया।।
वामन बन उन्होंने बलि से, तीन पद भूमि मांगी थी। इस बहाने बलि से उन्होने, यह सारी ही पृथ्वी ले ली।।
एक बात प्रमाणित की, बलि के इस महादान से। सन्मार्गी पुरुष को पथ से, च्युत कोई न कर सके।।
याचना ही साधना एक मात्र, जो पथ से उसे हटा सके। अन्य सामर्थ न किसी में भी, ऐश्वर्य च्युत जो करा सके।।

अपने सीस पे स्वयं ही, हरि का चरण उसने धरा। महा दानशीलता से, इन्द्र के पद को प्राप्त किया।।

इस सबमें तो जान लें, बलि पुरुषार्थ कोई न था। गुरु शुक्राचार्य की अवज्ञा की, प्रतिज्ञा का पालन किया।।
श्री हरि का तीसरा पग, बलिराज ने पूर्ण स्वयं किया। उनके चरण को स्थान मिले, निज सीस चरण में धर दिया।।
मान सम्मान ऐश्वर्य भूल, उन चरण में निज को धर दिया। इस विधि दैत्य राज ने, अपना नाम भी अमर किया।।

हे नारद तव प्रेम भाव, से प्रसन्न अति होकर के। हँस रूप में प्रकटे प्रभु, और तुम्हें उपदेश दिये।।
योग ज्ञान और आत्म तत्त्व, को प्रकाशित उन्होंने किया। अनुकम्पा करके उन्होंने भागवत धर्म भी कह दिया।।
श्री हरि के शरणागत भक्त, सुगमता से इसे पाते हैं। इस सौभाग्य से अन्य सभी, वंचित ही रह जाते हैं।।

स्वयम्भुवादि मन्वन्तरों में, मनु अवतार का रूप धरें। उस अवतार में प्रकट हो, वह मनु वंश की रक्षा करें।।
निज सुदर्शन चक्र सम, विचरें दसों दिशाओं में। निज तेज से बेरोक टोक, निष्कण्टक वह राज्य करें।।
त्रिलोकपरि सत्यलोक तक, विस्तृत है उनकी कीर्ति। उनके चरितों की मनहरणी, गाथा सबको है कहती।।
उसी रूप में समय समय पर, पृथ्वी पर वह आते हैं। भूवि भार बने दुष्टों का, दमन वह करते जाते हैं।।

धन्वन्तरि के नाम से ही, दु:साध्य रोग भी मिट जायें। स्वनाम धन्य धन्वन्तरि, तत्काल रोग से मुक्त करे।।
अमृतपान कराकर उन, देवों को तो अमर किया। दैत्यों ने जा था हरा, वह यज्ञ भाग उन्हें पुन: दिया।।
उन्होंने ही अवतार ले, रोगों का निदान किया। आयुर्वेद को इस जग में, संस्थापित उन्होंने ही किया।।

दैववश क्षत्रिय जब, मर्यादा को उलांघ दें। ब्राह्मण द्रोही बन इस जग में, अपने नाश की ओर बढ़ें।।
पृथ्वी पर जीवों के लिए, वह कण्टक जब बन जायें। तब श्री हरि महापराक्रमी, परशुराम बन कर आयें।।
अपने तीखे फरसे से, वह क्षत्रियों का संहार करें। एक बार पर्याप्त नहीं, वह ऐसा इक्कीस बार करें।।

हम पर अनुग्रह हेतु वह, इक्ष्वाकु कुल में आये। भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न, निज कला भी संग में वह लाये।।
राम रूप अवतार में, निज पितु का वचन निभाने को। भार्या और भ्राता सहित, प्रस्थान किया उन्होने वन को।।
उसी काल में रावण ने, जब उनका विरोध किया। श्री राम के हाथों ही, वह युद्ध में मारा गया।।

सीता से वियोग जनित, बढ़ी हुई क्रोधाग्नि से। श्री राम के नेत्र द्वौ, अरुण ही थे हो गये।।
त्रिपुर विमान जलाने को, शंकर थे ज्यों उद्यत हुए। त्यों ही क्रोध की अग्नि से, राम के नयना लाल हुए।।
उनकी दृष्टि की गर्मी से, जलचर भस्म सब होने लगे। सर्प ग्राह और मगरमच्छ, सब के सब जलने लगे।।
भयभीत हुए सागर ने भी, तत्काल मार्ग उन्हें दे दिया। इस विधि श्री राम ने, अनन्त सिन्धु को पार किया।।

ऐरावत इन्द्र का वाहन जब, वक्ष वज्र से टकराया। छिन्न भिन्न वा दन्त हुए, चारों दिशाओं में चूरा फैल गया।।
उसके कणों से सभी दिशा, श्वेत समान थीं भास रहीं। दिग्विजयी रावण ने तब, गर्वोन्मत्त हास्य करी।।
उसी रावण ने श्री राम की, भार्या का जब हरण किया। उनसे लड़ने वह युद्धक्षेत्र में, बहुत गर्व से आ पहुंचा।।
तत्क्षण श्री प्रभु राम के, धनुष की टंकार सुनी। प्राण सहित वा गर्व सब, धूलि में ही जाय मिली।।

दैत्यों के सम्मूह जब, पृथ्वी पे करेंगे अत्याचार। उसका भार उतारन को, श्री हरि धरेंगे कलावतार।।
श्वेत और काले केश से, बलराम कृष्ण के रूप में। निज महिमा प्राकट्य को, अद्भुत लीला वह करेंगे।।

साधारण सांसारिक जीव, रहस्य वा समझ न पायेंगे। गुह्य सार लीलाओं का, वह पहचान न पायेंगे।।

शैशव में ही पूतना के, प्राणों का वह पान करें। तीन माह के शिशु चरण से, भीषण छकड़ा उलट दें।।
घुटनों के बल चलते चलते, गगनचुम्बी वृक्षों पे पहुंच। यमलार्जुन को मुक्त करें, दोनों का उन्मूलन कर।।
आश्चर्यजनक यह कर्म सभी, कोई अन्य जीव न कर पाये। श्री भगवान के अतिरिक्त, ऐसा सम्भव न हो पाये।।

कालिया नाग के विष से, जब यमुना जल दूषित होगा। उसको पीकर जब गोपवृन्द, और वत्सों का अन्त होगा।।
तब सुधामयी कृपा दृष्टि से, उनको जीवित वह कर देंगे। यमुना जल की शुद्धि को, उसमें वह कूद पड़ेंगे।।
विष विलोलित जिह्वा युक्त, नाग का दमन करेंगे। नृत्य करी उसके सिर पे, यमुना से भेज उसे देंगे।।

उसी रात जब व्रजवासी, यमुना तीरे सो जायेंगे। चारों दिशा फैले मूंज के वन, जब दावानल को पायेंगे।।
संकट में जिनके प्राण पड़े, उनके नेत्र बन्द करायेंगे। श्री बलराम के साथ स्वयं, अग्नि से उन्हें बचायेंगे।।
उनकी यह लीला सारी, अलौकिक होगी पृथ्वी पर। अचिन्त्य ही है उनकी शक्ति, जब वह उतरें धरती पर।।

उनकी माता उन्हें बान्धन को, रज्जू जो भी लायेगी। वह पूरी न पड़ सके, दो अंगुल छोटी रह जायेगी।।
श्री कृष्ण बालक रूप में, माता सम्मुख ले जम्भाई। मुख में चौंदह भुवन देख, होगी भयभीत यशोदा माई।।
पर जल्द ही शिशु के लाड़-प्यार में, वह सम्भल ही जायेगी। निज पुत्र की अद्भुत महिमा देख, आश्चर्यचकित रह जायेगी।।

वही कृष्ण श्री नन्द को, मुक्त करेंगे स्वयं ही। भयभीत जब नन्द होंगे, अजगर और वरुण पाश देख कर।।
मयदानव सुत व्योमासुर जब, गुफा में ले जायेगा ग्वाल। तब वह अपनी माया से, वहां से लेंगे उन्हें निकाल।।
दिनभर तो परिश्रम करते हैं, रात्रि को थककर सो जायें। साधन हीन वह व्रजवासी, वा कृपा से परम धाम जायें।।

हे वत्स कृष्ण की सम्मति से, जब गोप न करेंगे इन्द्र यज्ञ। व्रजभूमि के नाश को, हो कुपित इन्द्र बरसेंगे तब।।
व्रजवासियों और उन पशुओं की, रक्षा करने के लिए। सात वर्ष की आयु में, निज कृपा से प्रेरित होकर के।।
छत्रवत् गोवर्धन को, खेल खेल में श्री हरि। इक हाथ पे धारण कर लेंगे, ज्यों हो छत्रक पुष्प कोई।।

रात्रि को चन्द्र की चाँदनी, जब फैले चहुँ दिशा में। वृन्दावन विहार करें, हरि रास रचाने की इच्छा से।।
वंशीधर तब निज वंशी पर, संगीत तान मधु छेड़ेंगे। प्रेम विवश हुई गोपियों का, चित्त आकर्षित कर लेंगे।।
कुबेर का सेवक शंखचूड़, जब गोपिकागण को हर लेगा। श्री कृष्ण के द्वारा तब, उसका मस्तक छेदन होगा।।

प्रलम्बासुर और धेनुकासुर, बकासुर केशि अरिष्टासुर। और भी बहुत से दैत्य जब, सामने आयेंगे रूप धर।।
चाणूर आदि मल्लयोधा, और कुबलयापीड़ हाथी। कंस कालयवन भौमासुर, मिथ्या वासुदेव और शाल्व भी।।
सात बैल नग्नजित के, द्विविदवानर बल्वल दन्तवक्र। शम्बरासुर विदूरथ रुक्ति आदि, तथा काम्बोज और मत्स्य।।
कुरु कैकय सृंजनादि, देशों के राजा धुरन्धर। जो भी योधा युद्ध में, सामने आयेंगे धनु:र्धर।।
बलराम भीम अर्जुन बनकर, प्रभु स्वयं उन्हें मरवायेंगे। उनके हाथों मरकर वह, उनके ही धाम को जायेंगे।।

कालचक्र से जीवों की, आयु अल्प हो जाती है। बुद्धि भी उनकी पूर्ववत्, कुशाग्र रह नहीं पाती है।।
जब भगवान यह देखते हैं, उनका तत्त्व न जानें यह। वेदवाणी को समझन की, सामर्थ जीव में नहीं रहे।।

प्रत्येक कल्प में सत्यवती, नन्दन व्यास बन प्रकट हों। फिर वेद रूपा वृक्ष की, विभिन्न शाख विभक्त हों।।

कलियुग के अन्त में जब, सत्पुरुषों के भी यहाँ। निर्विघ्न न हो सके, श्री भगवान की कथा वहाँ।।
ब्रह्मण क्षत्रिय और वैश्य शूद्र, मिथ्याचारी राजा बनें। स्वाहा स्वधा आदि की ध्वनि, सुनने को पितर भी तरस उठें।।
देव पितरों के यज्ञों की, और श्राद्ध की रीति कोई। कहीं भी बात नहीं होगी, वेदोक्त प्रक्रियों की।।
नियमन करने कलियुग का, श्री हरि स्वयं फिर आयेंगे। कल्कि अवतार करी धारण, शासन उसपर कर जायेंगे।।

संसार की सृजन बेला, तपस्या और नौ प्रजापति। ऋषि और मेरे रूप में, प्रकटें तब मरीचि आदि।।
सृष्टि की रक्षा करने को, धर्म विष्णु और मनु बनें। देवता और राजा बनकर, श्री हरि स्वयं ही तो प्रकटें।।
प्रलय काल में स्वयं ही, वह अधर्म और रुद्र बनें। क्रोध सर्प दैत्यादि रूप में, विभूतियाँ माया जनित प्रकटें।।

निज प्रतिभा से जीव गर, धूलिकण धरा के गिन पाये। फिर भी नहीं जीव कोई होगा, जो प्रभु की शक्तियाँ गिन पाये।।
त्रिविक्रम अवतार में, जब वे त्रिलोकी थे नाप रहे। चरणों के अदम्य वेग से, पूर्ण ब्रह्माण्ड थे काँप उठे।।
प्रकृति के अन्तिम छोर से, पूर्ण सत्यलोक तक फिर। जब विकम्पित सब हुए, निज शक्ति से किया उन स्थिर।।

उनकी इक शक्ति माया ही, सब रचना और संहार करे। ऐसी अनन्त शक्तियाँ ही, उन श्री हरि में आश्रय लें।।
न तो मैं ही जान सकूँ, ऐसे उनके स्वरूप को। न तेरे अग्रज सनकादि ही, पहचान सकें उस रूप को।।
फिर अन्य जीव की क्या कहें, वे कैसे उनको जान सकें? सहस्त्र मुख से शेष अनन्त, उनके गुण का गान करें।।
फिर भी श्री हरि की महिमा, वह तो जान नहीं पाये। अनन्त प्रभु के वैभव के, अन्त नहीं उन्होने पाये।।

सरल भाव से अपने आपको, जो श्री हरि के चरण धरें। सर्वस्व वे अपना ही, चरण कमल पर वार दें।।
उनपर वह अनन्त प्रभु, स्वयं ही अपनी कृपा करें। उनकी कृपा के पात्र ही, माया स्वरूप को जान सकें।।
दुस्तर उनकी माया से, पार वह ही जा सकें। नित्य निरन्तर प्रभु चरण में, ही चित्त जिनका टिका रहे।।
श्वान और सियार सम, देह को धारण करके। निज और पुत्रों के तन में, मैं मम भाव जो न रखें।।

हे नारद है दुर्ज्ञेय, उस परम पुरुष की योगमाया। मैं भी जानूं उसका स्वरूप, तुमने भी ज्ञान वह है पाया।।
प्रह्लाद दैत्यकुल शिरोमणि, शतरूपा मनु ऋभु ध्रुव भी। मनु पुत्र प्रियव्रत आदि, बर्हि और महादेव भी।।

इनके अतिरिक्त भी जानें जो, उनको भी तुम जान लो। इक्ष्वाकु पुरुरवा मुचुकुन्द जनक, गधि रघु अम्बरीश जानो।।
सगर गय ययाति आदि, मन्धाता अलर्क शतधन्वा वो। अनु रन्तिदेव भीष्म बलि, अमूर्त्तरय दिलीप सौरभि हो।।
उत्तङ्क शिबि देवल पिप्पलाद, सारस्वत उद्धव और पराशर। भूरिषेण विभीषण हनुमान, शुकदेव अर्जुन अर्ष्टिषेण विदुर।।
श्रुतदेव आदि महात्मा भी, जानें उनकी योगमाया। उनके गुह्य रहस्य का, ज्ञान है इन सबने पाया।।

प्रभु के प्रियतम भक्तों का, स्वभाव जो धारण कर पायें। वे स्त्री शूद्र हूण और भील, भी महिमा यह समझ जायें।।
पूर्व पाप वश पशु पक्षी की, भी योनि जो घर आयें। ऐसा स्वभाव गर बन जाये, माया रहस्य जान जायें।।
यह सब योनि धर कर भी, प्रभु प्रेमी भव सागर सों तरें। फिर वैदिक सदाचारी जो, उनकी क्या हम बात कहें।।

सहज स्वभाव उस परम का, शान्त अभय स्वरूप है। एक रस वह सदा रहें, वह तो ज्ञान स्वरूप है।।

उनकी रची कोई विषमता, उनको कभी न छू पाये। माया का कोई मल भी, मलिन न उनको कर पाये।।
वह सत् असत् दोनों से परे, कोई शब्द वहाँ न पहुँच सकें। अनेकों साधनों से जो मिलें, वह फल भी वहाँ न पहुँच सकें।।
अन्य की तो बात ही क्या, खुद माया भी न पहुँच पाये। प्रभु के सम्मुख आते ही, लजा कर वह भाग जाये।।

वही है हरि का परम पद, महात्मा गण ही वहां पहुंचें। निर्शोक अनन्त आनन्द स्वरूप, ब्रह्म का साक्षात्कार करें।।
संयमी मन को समाहित कर, स्थित उसमें हो जाते हैं। फिर अन्य किसी भी साधन का, प्रयोजन वह नहीं पाते हैं।
ज्यों इन्द्र स्वयं ही हैं जलधर, जल हेतु कूप से क्या करें? इसी विधि त्यज सब भेद वह, ज्ञान के साधन भी छोड़ें।।

जीव के सारे कर्मों का, फल भी भगवान ही देते हैं। स्वभावानुकूल शुभ कर्म का, वह प्रेरणा आप ही करते हैं।।
इस तन में बसे महाभूत पंच, जब छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। नष्ट भ्रष्ट हो जायें तन, माटीवत् जड़ हो जाते हैं।।
इसमें जो देही है बसा, जिसे कहें अजन्मा पुरुष। आकाश के समान वह, कभी भी न हो सके नष्ट।।

संकल्प से अपने पूर्ण विश्व, है यह जिन्होने रच दिया। सर्व कला सम्पन्न हरि, का संक्षिप्त वर्णन किया।।
कार्य कारण या भाव अभाव, जो कुछ भी सृष्टि में है। है उनका संकल्पमात्र, नहीं उनसे कुछ भिन्न रे है।।
फिर भी प्रभु तो इन सबसे, हैं सर्वथा पृथक् ही। सबमें बसें सबमें रहें, पर वह हैं सबसे परे ही।।

जो प्रभु ने मुझे उपदेश दिया, यह ही वह भागवत धर्म है। इसमें उनकी विभूतियों का, संक्षिप्त रूप से वर्णन है।।
हे वत्स नारद अब तुम, इन सबका विस्तार करो। श्री हरि की विभूतियों का, त्रिलोकी में प्रचार करो।।
सबके आश्रय और सर्वस्वरूप, सर्वाधार भगवान में। प्रेममयी भक्ति उपजे, सब जीवों के हृदयों में।।
ऐसा निश्चय करके अब, तुम ऐसा साधन करो। भक्ति रस प्रवाहित हो, महिमा उनकी वर्णन करो।।

अचिन्त्य शक्ति भगवान की, माया का वर्णन जो करे। या वर्णन अन्य से सुनी, वह अनुमोदन उसका करे।।
श्रद्धापूर्व हिय लिये, जो नित्य श्रवण उसका करे। उसका चित्त माया से, मोहित कभी भी न होए।।

८) चतु:श्लोकी भागवत

हे राजन्। ज्यों स्वप्नवत्, द्रष्टा से सर्वथा भिन्न रहे। स्वप्न के किसी पदार्थ का, नहीं द्रष्टा से सम्बन्ध रहे।।
अनुभव स्वरूप आत्म वैसे, देह आदि से अतीत हो। मायिक दृश्य पदार्थों से, नहीं उसका कोई सम्बन्ध हो।।
विविध रूपी माया कारण, वह विविध रूप दर्शाता है। गुणों में उसके रमकर यह, मैं मेरा कहे जाता है।।

गुण को क्षुब्ध करे जो काल, और मोहित जो माया करे। अनन्त स्वरूप जो द्वौ से परे, मोह हीन हो उसमें जब विचरे।
तब मैं मेरा का भाव मिटे, आत्म राम यह हो जाये। पूर्णतय: उदासीन हो, गुणातीत यह हो जाये।।

निष्कपट भाव से ब्रह्मा ने, एकाग्रचित्त हो तप किया। श्री हरि ने प्रसन्न हो, निज रूप का दर्शन उन्हें दिया।।
आत्म तत्त्व ज्ञान हेतु, परमार्थ का उपदेश दिया। परम सत्य है जो वस्तु, उसका सार बता दिया।।
वही तत्त्व की बात आज, तुमको मैं सुनाता हूँ। जो हरि ने ब्रह्मा को दिया, वही सार दोहराता हूं।।

त्रिलोकी के परम गुरु, आदि देव श्री ब्रह्मा जी। बैठी जन्म थल कमल पे, सृष्टि रचना की विचार की।।
पूर्ण सृष्टि का निर्माण, जो ज्ञान दृष्टि कर सकती थी। सृष्टि व्यापार के लिए उचित, दृष्टि उनको नहीं मिली।।

इक दिन इस चिन्ता में ही, वह निमग्न हुए बैठे थे। प्रलय सिन्धु में तब उन्होने, तप तप शब्द द्वौ बार सुने ।।
यह तप ही महात्मन् का, और त्यागी जन का महाधन है। तप शब्द में ही निहित, सब लोकों के नियम यम हैं ।।

यह शब्द सुन कर ब्रह्मा ने, वक्ता को देखने के लिये। उद्यत हो चारों दिशाओं में देखा, पर अन्य कोई कहीं न दीख पाया ।।
नज कमलासन पर बैठै पुन:, और उन्होने चिन्तन किया। प्रत्यक्ष आज्ञा तप की मिली, ऐसा निश्चय उन्होने किया ।।
इसी में अपना हित जान, निज मन को तप में लगा दिया। इस विधि श्री ब्रह्मा ने, तप का आसन जमा लिया ।।

तपस्वियों के महातपी, श्री ब्रह्मा सबसे महान्। कठिन तपस्या है उनकी, है अमोघ महान वा ज्ञान ।।
एक सहस्त्र दिव्य वर्ष तक, उन्होंने ऐसा तप किया। चित्त एकाग्र कर मन्द प्राण, कर्म ज्ञानेन्द्रिय को वश किया ।।
इस तप से समस्त लोक, प्रकाशित फिर वह कर पाये। तपोबल से ही ब्रह्मा जी, सामर्थ यह थे निज में पाये ।।

उनके महातप को देख करी, श्री हरि अति प्रसन्न हुए। सबसों उपरि जो सर्वश्रेष्ठ, निज लोक में उनको ले गये ।।
कोई क्लेश और भय मोह, न उस लोक में जा सके। एक बार भी कभी जिन्हें, उसका दर्शन सौभाग्य मिले ।।
पुन: पुन: वह देवतागण, स्तुति वा करते रहते हैं। धन्य धन्य ही कह करी, महिमा उस लोक की गाते रहते हैं ।।

रज और तम तो दूर रहे, सतोगुण की भी पहुँच नहीं। न काल का ही वहाँ काम कोई, माया भी वहाँ न पहुँचे कहीं ।।
फिर माया के जाये जो, उन विकारों की बात ही क्या। माया जनित विकार कोई, कभी परम धाम में न पहुँचा ।।
श्री हरि के नित्य पार्षद, निवास वहाँ सदा करते हैं। जिनका पूजन नित्य दैत्य, और देवता करते हैं ।।

श्यामल तन हैं अति उज्ज्वल, नेत्र हैं कोमल कमल नयन। पीताम्बर तन पर धारे, हैं सब ही शोभायमान ।।
अंग अंग से ही उनके, सौन्दर्य राशि ज्यों फूट रही। चतुर्भुजा धारी सब वह, ज्यों कोमलता की हो मूर्ति ।।
महा तेजस्वी स्वयं वह, मणि जटित आभूषण हैं धारे। स्वर्ण प्रभा है छिटक रही, सौन्दर्य को चार चाँद लागे ।।
वैदूर्य मणि और मूंगा ज्यों, कमल के उज्ज्वल तंतु समान। छवि है उनकी चमक रही, किरीट भाल पे शोभायमान ।।
कानों में कुण्डल उनके, और कण्ठ में है माला लटकी। श्री हरि के पार्षद सब ही, हैं पूज्य देवों के भी ।।

मनोहर कामिनी कान्ति युक्त, तेजोमय दिव्य विमानों पे। महात्मा जन विराजें जहां, ऐसे अद्भुत विमान लिये ।।
दामिनी युक्त बादलों से, आकाश ज्यों नित्य सुशोभित हो। वैसे ही हरि लोक यह स्थान स्थान पे सुशोभित हो ।।
सुन्दर शोभा निराली है, वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मी की। विविध विभूति धारण कर, नित चरण कमल सेवा करतीं ।।
कभी कभी झूले पे बैठ, जब प्रियतम महिमा गाएँ वे। सौन्दर्य और सुरभि से उन्मत्त, भंवरे उनको घेर लें ।।

सब भंवरे मिली एक स्वर में, श्री लक्ष्मी का गुणगान करें। वैकुण्ठ लोक को मानो वे, उस स्वर के गुंजन से भर दें ।।
श्री ब्रह्मा ने देखा, अति दुर्लभ उस लोक में। भक्त वच्छल लक्ष्मी पति, श्री हरि हैं विराज रहे ।।
वह यज्ञपति और विश्वपति, सब उनकी सेवा कर रहे। नन्द सुनन्द प्रबल अर्हण, यह मुख्य पार्षद हैं उनके ।।

श्री मुख कमल प्रसन्न वदन, मन्द मन्द मुसका रहा। नयनों में सोहे अरुण आभ, मोहक चितवन ने चित्त हरा ।।
मस्तक किरीट कर्णे कुण्डल, कन्धे पर दमके पीताम्बर। वक्ष:स्थल पे ठारीं लक्ष्मी, एक स्वर्ण रेखा बनकर ।।
चतुर्भुजा धारी हरि की, भक्त वत्सलता क्या कहें। ऐसा लगे निज प्रेमी भक्त को, अपना सब कुछ दे देंगे ।।

सर्वोत्तम और बहुमूल्य, आसन पे हैं विराजमान्। सर्व शक्तियाँ चहुं ओर, ही हैं उनके मूर्तिमान।।
पुरुष प्रकृति महतत्त्व, अहंकार मन और इन्द्रियां दस। शब्दादि तन्मात्रा पांच, और महाभूत यह पंच तत्त्व।।
यह पच्चीस शक्तियां सब, उनको चहुँ ओर से घेर रहीं। श्री हरि का सान्निध्य पा, इनकी भी महिमा बढ़ी।।
सब ऐश्वर्य धर्म कीर्ति, ज्ञान वैराग्य और श्री। इन छ: स्वरूप भूत शक्तिन् से, रहते वे युक्त सर्वदा ही।।
उनमें ही यह शक्तियाँ, सदा सदा रहें विद्यमान। उनको छोड़ यह नित्य रूप से, नहीं करें कहीं भी निवास।।
वह सर्वेश्वर नित्य आनन्द, स्वरूप में रहते सदा मग्न। नित्य निरन्तर वास वहाँ, वह तो हैं आनन्द घन।।

उनके दुर्लभ दर्शन पाते ही, ब्रह्माजी अति प्रसन्न हुए। आनन्दोद्वेग से वो नयन, इक पल में ही छलक उठे।।
पुलकित हुआ वा रोम रोम, अश्रुधारा नयनों से बही। ब्रह्मा ने श्री चरण कमल में, जाकर अपनी सीस धरी।।
परमहंस निवृत्ति राह से, इन चरणों तक आते हैं। भक्त जन तो सहज ही, उन्हें प्राप्त हो जाते हैं।।

श्री ब्रह्मा के प्रियतम हरि ने, देखा निमग्न आनन्द में। अपने प्रिय श्री ब्रह्मा को, शरणागत हो दर्शन लेते।।
प्रजा सृष्टि आदेश के, योग्य उनको जान लिया। अति प्रसन्न हुए श्री हरि, और प्रेम का वरदान दिया।।
ब्रह्मा का हाथ पकड़ के वह, मन्द मन्द मुसकाने लगे। निज मृदु वाणी में प्रभु फिर, ब्रह्मा जी से यूं बोले।।
भगवान बोले,
हे ब्रह्मा तव हिय में, है विद्यमान सब वेद ज्ञान। सृष्टि रचना की इच्छा से, किया दीर्घकाल तक तप और ध्यान।।
प्रसन्न किया मुझको अति, तूने अपनी आर्जवता से। कपट पूर्ण मन लेकर के, कोई पा न सके योगासन से।।
जो चाहे वर तुम मांग लो, कल्याण हो तेरा सर्वदा। तव वांछित फल देने को, सामर्थ हूँ मैं सर्वथा।।
कल्याणकर साधन सारे, विश्राम मुझ में पाते हैं। चरम सीमा कल्याण की, मम दर्शन माने जाते हैं।।

बिन मेरा दर्शन पाये, जल में केवल सुनकर वाणी। हे ब्रह्मा बहु दीर्घ काल तक, आपने घोर तपस्या की।।
इसी से मैं प्रसन्न हुआ, निज लोक का दर्शन दे दिया। मेरी इच्छज्ञ से ही तो, दर्शन यह सम्भव हो सका।।
सृष्टि रचना के कर्म में, जब किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुए। तप की आज्ञा मैंने दी, तोरी गति यह देख के।।
हे निष्पाप हे प्रजापति, तपस्या मेरा हृदय जानो। मैं स्वयं आत्मा हूं तप की, अभिन्न हम दोनों को मानो।।

तप से ही इस जगत् की, पूर्ण सृष्टि मैं करता हूँ। तपस्या से ही इस सबका, भरण-पोषण भी करता हूँ।।
फिर तप राही ही इसको, लीन भी निज में करता हूं। कठिन शक्ति है मेरी तप, मैं तो तप में ही विचरता हूं।।
ब्रह्म बोले,
अन्त:करण में सबके प्रभु, हैं साक्षी रूप में आप बसे। अप्रतिहत ज्ञान से निज, मम हृदय की बात को जान रहे।।
हे नाथ कृपा करके आप यह, याचक की याचना पूर्ण करें। अरूप आपके सगुण निर्गुण, हम द्वौ रूप को जान लें।।

हैं परम स्वामी माया के आप, संकल्प कभी कोई व्यर्थ न हो। इक संकल्प मात्र से ही, इस पूर्ण जग की रचना हो।।
ज्यों मकड़ी निज मुख से, पूर्ण जाला रच देती है। उससे ही क्रीड़ा कर के, लय निज में पुन: कर लेती है।।
वैसे ही निज माया का, आश्रय आप प्रभु लेकर के। सृष्टि की उत्पत्ति कर, वा पालन और संहार करें।।
इसके लिए विविध शक्ति से, अपने को सम्पन्न करें। अनेकों नाम और रूप में, अपने आपको बाँट लें।।

कैसे करें यह लीला आप, इस मर्म को जानने आया हूँ। कृपा करी मुझको यह कहें, यह बिनती चरण में लाया हूँ।।
कृपा करें मुझपर प्रभु, सावधान और सजग रहूँ। हर ओर से हर विधि, आज्ञा का पालन कर सकूँ।।
सृष्टि की रचना करते हुए, भी कर्ता आपको जान लूँ। कर्तृत्व भाव से नहीं बन्धूं, सब जा मैं आपको पहचानूँ।।

हे हरि मेरा कर थामकर, है मित्रवत् स्वीकार किया। मेरी न्यूनता न देखी, है सखा बन व्यवहार किया।।
जब आपकी सेवा में, मैं सृष्टि रचना करने लगूँ। पूर्ण गुण कर्म सृष्टि अनुकूल, जीवों को मैं बांट दूँ।।
तब जन्म कर्म से अपने को, कहीं स्वतंत्र न मान लूँ। अब ऐसी कृपा मुझपर करें, नहीं किसी विधि अभिमान करूँ।।
भगवान बोले,
निज अनुभव प्रेमपूर्ण भक्ति, और साधन से युक्त जो। निज स्वरूप का अति गुह्य, ज्ञान कहूँ तुम ग्रहण करो।।
जितना मेरा विस्तार है, और जो मेरे हैं लक्षण। जितने और जैसे रूप हैं, सब लीलायें और मम गुण।।
मेरी कृपा से तुम उनका, ज्यों का त्यों अनुभव करो। उनका तत्त्व मैं कहूँ तुझे, यथार्थ रूप से जान लो।।

सृष्टि की उत्पत्ति से, पूर्व था केवल मैं ही मैं। जहाँ यह सृष्टि है नहीं, वहाँ भी हूं बस मैं ही मैं।।
सृष्टि के रूप में जो दीखे, वह भी तो बस मैं ही हूं। और जो कुछ भी बचेगा शेष, वह भी एको मैं ही हूं।।
न मेरे सिवा कुछ स्थूल था, न ही सूक्ष्म भी था कहीं। न दोनों का कारण जो, वह अज्ञान ही था कहीं।।

वास्तव में मेरे सिवा, जो वस्तु कहीं है ही नहीं। मुझ परम आत्म में वह, मिथ्या ही है भास रही।।
सबमें रहूँ सदा विद्यमान, पर मेरी प्रतीति नाहीं हो। आकाश के नक्षत्रों में, ज्यों राहु ग्रह न देख सको।।
इसको ही मेरी माया समझो, जो है सबको भरमा रही। जो है उसको न देखे, जो है ही नहीं उसमें खोई।।

जीवों के छोटे बड़े, सब ही तन महाभूत रचें। कार्य रूप निर्मित तन में, स्वयं महाभूत प्रवेश करें।।
पर वह पंचभूत तो, पहले से ही हैं विद्यमान। उन स्थानों और रूपों में, कारण रूप में विद्यमान।।

इस कारण कहाँ प्रवेश हो, वह हो भी हो पर हो नहीं। हे ब्रह्मा यह समझ लो, है मेरी भी उपमा यही।।
आत्म रूप में जीवों के, तन में मैं प्रवेश करूँ। पर आत्मदृष्टि से गर देखो, तो मैं पहले ही वहाँ पे हूँ।।
मेरे सिवा कोई अन्य हो, तब ही प्रवेश मैं कर सकूँ। मैं तो आत्म रूप में, सर्वत्र सर्वदा ही रहूँ।।

सह ब्रह्म नहीं यह ब्रह्म नहीं, इस निषेध पद्धति से। या ब्रह्म ही है सब ब्रह्म ही है, अन्वय की इस पद्धति से।।
वही वस्तुत: तत्त्व है, एक ही बात करें सब सिद्ध। सर्वातीत सर्वस्व हरि, सर्वदा और सर्वत्र हैं स्थित।।
जो आत्म और परमात्म का, तत्त्व जानना हैं चाहें। यही ज्ञान पर्याप्त है, कोई अन्य ज्ञान वह क्या करें।।

हे ब्रह्मा अचल समाधि से, तुम इस सिद्धान्त को जान लो। पूर्ण निष्ठा इसमें धरी, सत्य को पहचान लो।।
कल्प कल्प में विविध विधि, सृष्टि रचना करते रहो। गर इतनी बात तुम न भूलो, तो कभी मोह को प्राप्त न हो।।
शुकदेव बोले,
सर्वलोक के प्रजापति, ब्रह्मा को यूं उपदेश दिया। उनके देखते-देखते ही, प्रभु अन्तर्ध्यान हुए।।
सर्वरचयिता ब्रह्मा ने, जब यह सत्य पहचान लिया। श्री हरि ने निज इन्द्रिय गोचर, रूप को हमसे छिपा लिया।।

तब दोनों कर जोड़ कर, हरि को उन प्रणाम किया। पूर्व कल्प की सृष्टिवत्, उसी रूप में विश्व को पुन: रचा।।
धर्म स्वरूप प्रजापति ने, सब जग के कल्याण हेतु। विधिवत धारे यम नियम, केवल इस स्वार्थ हेतु।।

सर्वप्रिय सुत ब्रह्मा के, परम भक्त ऋषिवर नारद। मायापति की माया को, जानने की जिज्ञासा लेकर।।
सेवा पिता की करने लगे, संयम विनय और सौम्यता से। ब्रह्मा प्रसन्न और तुष्ट हुए, नारद की इस सेवा से।।
जब नारद ने यह देखा, लोक पितामह मुदित हुए। तब उनसे यह प्रश्न किया, हे राजन् जो तुम पूछ रहे।।

उनके प्रश्न को सुन करी, ब्रह्मा का आन्तर खिल उठा। तब उन्होने श्री भागवत का, उपदेश निज सुत को दिया।।
दस लक्षण वाला यह पुराण, श्री हरि ने उन्हें सुनाया था। ब्रह्माजी ने ज्यों का त्यों, नारद से वह कह दिया।।
परम तेजस्वी पिता मेरे, सरस्वति तट पर बैठे। परमात्म के ध्यान में, वह तो नित्य निमग्न थे।।
उस पल ही श्री नारद जी, कृपा करी वहाँ आ पहुंचे। उन्होने ही मेरे पिता व्यास को, यह भागवत आख्यान किये।।

तुमने जो मुझसे पूछा, प्रश्न जगत उत्पत्ति का। उस विराट से कैसे उठा, क्रम यह जो उत्पत्ति का?
अन्य भी बहुत जो प्रश्न किये, उनका भी उत्तर देता हूं। श्री भागवत महापुराण के, रूप में यह सब कहता हूं।।

९) भागवत के दस लक्षण

हे राजन् अब मुझसे तू, भागवत महापुराण सुन। इस भागवत पुराण में, दस विषयों का है वर्णन।।
सर्ग विसर्ग स्थान पोषण, आश्रय ऊति और मन्वन्तर। मुक्ति ईशानुकथा निरोध, है यह इन सबका ही घर।।
इसमें जो आश्रय तत्त्व है, तत्त्वत: निश्चय के लिये। कहीं श्रुति कहीं तात्पर्य, कहीं दोनों के निर्णय लिये।।
अनुभव से महात्मन् ने, कह दिया इसे प्रीति से। अन्य नौ विषय भी कह दिये, बड़ी ही सुगम रीति से।।

आकाश आदि महाभूत, तन्मात्रा शब्दादि की। इन्द्रिय अहं और महत्तत्त्व, इन सबकी उत्पत्ति हुई।।
क्षोभ उठा जो गुणन् में, ईश्वर की प्रेरणा हुई। सर्ग उसे ही कहते हैं, है शास्त्रों की उक्ति यही।।
विराट पुरुष के दिव्य तन, से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। विभिन्न चराचर सृष्टि रची, उसको ही विसर्ग कहें।।

यह सृष्टि फिर प्रतिपल, नाश की ओर ही बढ़ी चले। इसमें मर्यादा स्थापित कर, प्रभु विष्णु श्रेष्ठता सिद्ध भए।।
उसका नाम ही स्थान है, परीक्षित् तू यह जान ले। पोषण उस कृपा का नाम है, सुरक्षित जो निज भक्त करे।।
भगवद्भक्ति प्रजापालन का, जो शुद्ध धर्म अनुष्ठान करें। है मन्वन्तर अधिपति वही, उनको ही मन्वन्तर कहें।।
जीवों की वह वासना, जो कर्मों से उन्हें बान्ध दे। ऊति नाम ही है उसका, हे राजन् तू जान ले।।

हरि के भिन्न अवतारों की, उनके प्रिय भक्तों की गाथा। विविध वर्णन युक्त जो, उसको ही जानो ईशानु कथा।।
योगनिद्रा स्वीकार कर, हरि स्वयं जब शयन करें। उपाधि सहित ही जीव सब, उन श्री हरि में लय भयें।।
इसको ही तो शास्त्र सब, निरोध नाम से जान लें। कर्तृत्व भोक्तृत्व अनात्म भाव, अज्ञान में सब कल्पित रहें।।
इन सबका परित्याग कर, ही स्वरूप में स्थित भएं। मुक्ति इसे ही जान ले, परमात्म में जब लय होएं।।

उत्पत्ति और प्रलय, चर अचर इस जगत् की। जिस तत्त्व से प्रकाशित हो, आश्रय है वह पर ब्रह्म ही।।
परम आत्मा उसको ही, सब शास्त्र कहते हैं। हे परीक्षित् जान ले, इस विषय को यहां कहते हैं।।

नेत्र आदि इन्द्रियों का, अभिमानी द्रष्टा जीव जो है। इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव, सूर्यादि भी वह ही है।।
नेत्रादि गोलक से युक्त, जो है यह दृश्य देह। वह ही इन दोनों को, अलग अलग भी है करे।।

इन तीनों में एक का, भी अभाव गर हो जाये। तो दूजे द्वौ मिलकर भी, उपलब्ध नहीं कुछ कर पायें।।
इन तीनों का ज्ञाता जो, है सबका आश्रय वही। कोई अन्य नहीं है अधिष्ठान, है अपना आश्रय आप वही।।
जब ब्रह्म अण्ड को फोड़कर, विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ। अपने रहने के लिये, वह स्थान ढूंढन लगा।।
शुद्ध संकल्पी पुरुष ने जब, स्थान की इच्छा करी। अति पावनी जल की तब, उसने आप ही सृष्टि की।।

विराट पुरुष रूप नर से, जल जो यह उत्पन्न हुआ। इस कारण इस जल का, नाम नार ही हो गया।।
निज से उत्पन्न नार में, वह पुरुष सहस्त्र वर्ष रहा। इससे ही उस पुरुष का, नाम नारायण हो गया।।
नारायण की कृपा से ही, द्रव्य कर्म और काल की। सत्ता यह है बन रही, स्वभाव और जीवादि की।।
उनकी उपेक्षा पाकर के, अस्तित्व किसी का नहीं रहे। यह सब तो नारायण की, कृपा दृष्टि में ही बसें।।

अद्वितीय नारायण ने, योगनिद्रा से जागकर। अनेक होने की इच्छा की, एकाकीपन निज त्यागकर।।
अखिल ब्रह्माण्ड के बीज रूप, निज स्वर्णमय वीर्य का। अपनी ही योगमाया से, त्रिभाग विभाजन कर दिया।।
अधिभूत अधिदैव अध्यात्म, यह तीनों उसके नाम हुए। कैसे त्रिभाग में बंटा वीर्य, परीक्षित अब उसकी कहें।।

विराट पुरुष के हिलने से, ही यह उद्यम हो गया। उसके तन में आकाश जो, उससे ही तो यह सब प्रकटा।।
इन्द्रिय बल और तनोबल, संग मनो बल उत्पन्न हुए। फिर इन सबके अधिपति, प्राण भी वहां पे आ प्रकटे।।

ज्यों सेवक निज स्वामी का, अनुगमन ही करते हैं। प्रजा जन निज राजा के, पीछे पीछे चलते हैं।।
त्यों ही तन में इन प्राणों का, अनुसरण इन्द्रियाँ करती हैं। जब तक प्राण प्रबल रहें, सब इन्द्रियाँ बल यह पाती हैं।।
जब प्राणों ही शिथिल हों, इन्द्रियाँ भी जब शिथिल भएं। गोलक तो वैसे बने रहें, पर कर्म प्राण बिन कर सकें।।

जब यह प्राण वेग से, आवागमन करने लगे। तब ही उस विराट ने, भूख प्यास अनुभव किये।।
खाने पीने की इच्छा से, जब उसका संकल्प हुआ। तत्क्षण ही विराट का तन, मुख से सम्पन्न हो गया।।
मुख से तालु और तालु से, रसना इन्द्रिय प्रकट हुई। विविध भान्ति के रस उपजे, और रसना ग्रहण उन्हें करने लगी।।
बोलने की जब इच्छा उठी, तब वाक् इन्द्रिय का जन्म हुआ। अधिष्ठातृ देव उसका अग्नि, और वचन भी तब उपजा।।

उनकी अपनी ही इच्छा से, यह तीनों जब प्रकट हुए। बहुत दिनों तक नारायण, उस जल में ही रुके रहे।।
उनके श्वास के वेग से, नासिका छिद्र भी प्रकट हुए। गन्ध ग्रहण की जब सोची, घ्राणेन्द्रिय बन वहाँ बैठे।।
इस गन्ध के अधिदेव, वायु देव फिर प्रकट हुए। वायु द्वारा ही तो गन्ध, चहुँ दिशा में फैल सके।।

उनके विराट तन में पहले, दर्शन का प्रकाश न था। अपने और दूजी वस्तु के, दर्शन की जब उठी इच्छा।।
तब नेत्रों में छिद्र हुए, अधिष्ठाता सूर्य उत्पन्न हुए। नेत्रेन्द्रिय फिर प्रकट हुई, और रुप ग्रहण होने लगे।।

वेद रूप सब ऋषि मिलकर, स्तुति विराट की गाने लगे। स्तुति गान वह कह कर, विराट को जगाने लगे।।
तब उस सबके श्रवण की, इच्छा उत्पन्न हो गई। तभी श्रोत और अधिदेव, दिशा की उत्पत्ति हुई।।

श्रोतेन्द्रिय इसी विधि, प्रकट ही फिर हो गई। इससे ही सब शब्दों की फिर श्रवण आरम्भ हुई।।

जब वस्तु की कोमलता, या कठोरता जाननी चाही। हल्की भारी ऊष्ण शीतल, जब पहचाननी चाही।।
तब विराट शरीर में, चर्म उत्पन्न हो गया। ज्यों उत्पन्न वृक्ष धरा पे हों, रोम रोम उत्पन्न हुआ।।
उसके भीतर और बाहर, फिर वायु भी प्रकट हुआ। स्पर्श का अनुभव पाने को, त्वक् इन्द्रिय का जन्म हुआ।।
यह त्वक् इन्द्रिय साथ के साथ, चहुँ ओर तन के लिपटी स्पर्श ग्राही इस इन्द्रिय से, स्पर्श की अनुभव होने लगी।

अनेकों भान्ति के कर्म, विराट् ने जब करने चाहे। तब उनके महा शरीर में, हाथ भी उत्पन्न हो गए।।
ग्रहण शक्ति हस्तेन्द्रिय में, अधिष्ठातृ देव इन्द्र प्रकटे। इन दोनों के आश्रित जो हों, वह कर्म भी प्रकट हुए।।

अभीष्ट स्थान पर जाने की, वांछना जब उनमें उठी। तभी पाद ने वा तन में, अपनी स्थान जा ग्रहण करी।।
चरणेन्द्रिय के अधिष्ठाता, यज्ञ रूप हरि स्वयं हुए। विष्णु स्थित वहां हो गये, और आवागमन आरम्भ हुए।।
इसी चरणेन्द्रिय से चलकर, तीर्थ आदि सब भ्रमण करें। इसी के आसरे ही तो जीव, एकत्रित यज्ञ सामग्री करें।।

सन्तान रति और स्वर्गभोग, की कामना जब उनमें उठी। विराट् के शरीर में, लिंग की उत्पत्ति हुई।।
उपस्थेन्द्रिय में प्रजापति, देवता बन संग में रहें। इन दोनों के आसरे ही, काम सुख अनुभव होए।।
जब मल त्याग की इच्छा उठी, तो गुदा द्वार वहां प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वहां वायु देव, और मित्र देवता भी प्रकटा।।
इन दोनों के मिलने से, ही इन्द्रिय क्रिया यह हो। इन दोनों के आसरे हो, जिसे मल त्याग की क्रिया कहो।।

अपान मार्ग से तन त्यज, जब दूजे में जाना चाहा। इस इच्छा के परिणाम रूप, नाभि द्वार फिर प्रकट हुआ।।
उससे ही अपान प्राण, और मृत्यु देवता प्रकट हुए। इन दोनों का आसरा ले, अपान और प्राण बिछुड़े।।

अन्न जल ग्रहण करने की, जब इच्छा उठी विराट में। तब कोख आन्त और नाड़ियाँ, प्रकट हुई विराट् में।।
कुक्षि के अधिष्ठातृ देव, सागर ही हैं अधिदेवता। नदियों को ही नाड़ियों का, जानो तुम अधिदेवता।।
तुष्टि और पुष्टि जानो, दोनों फिर उत्पन्न हुए। जिन विषयों के आश्रित वह, फिर वह भी उत्पन्न हुए।।

अपनी माया पर जब उन, विचार आप करना चाहा। इसी हेतु विराट में, हृदय ने फिर रूप धरा।।
उससे मन रूपा इन्द्रिय, और मन का देवता चन्द्रमा। संकल्प वहां पे प्रकटे फिर, उपजी विषयों की कामना।।
विराट पुरुष के शरीर में, पृथ्वी, जल और तेज से। त्वचा चर्म मांस रुधिर, मेदा मज्जा अस्थि प्रकटे।।
सप्त धातुएँ कहें इन्हें, जो विराट तन से उपजीं। इसी विधि आकाश जल, वायु से प्राण उत्पत्ति हुई।।

श्रोत्रादि सब इन्द्रियाँ, शब्दादि विषय ग्रहण करें। सभी विषय अहंकार से, ही हों उत्पन्न जान ले।।
सब विकारों का जन्म स्थान, इस मन को ही कहते हैं। बुद्धि से पदार्थ सब, बोध होते रहते हैं।।
श्री हरि के स्थूल रूप का, वर्णन तुमको कर दिया। आठ आवरणों ने इसे, बाहर से है घेरा हुआ।।
पृथ्वी जल, तेज वायु, अहंकार और आकाश। महतत्त्व प्रकृति मिली, इस विधि हुए यह आठ।।

इन सबसे परे भगवान का, सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप है। निर्विशेष अव्यक्त आदि रहित, मध्यहीन विलक्षण रूप है।।

अन्त भी उसका नाहीं हो, सदा नित्य ही वह रहे। मन वाणी निज सामर्थ से, उस तक न पहुँच सकें।।
जैसा मैंने वर्णन किया, स्थूल और सूक्ष्म रूप का। व्यक्त और अव्यक्त रूप, दोनों का वर्णन कर दिया।।
दोनों रूप ही उनके, हैं उनकी माया ने ही रचे। विद्वान जन इन दोनों को, ही स्वीकार नहीं करते।।

वस्तुत: निष्क्रिय हैं वह, निज शक्ति से सक्रिय बनें। फिर ब्रह्मा या विराट का, स्वयं रूप धारण करें।।
वाच्य और वाचक बनकर, आप स्वयं ही आ जायें। शब्द और वा अर्थ बनी, प्रकट आप ही हो जायें।।
वह एक ही अनेक नाम, और रूप स्वीकार करें। अकर्ता रूप वह स्वयं सदा, सर्वक्रिया स्वीकार करें।।

हे राजन् सब प्रजापति, मनु देव पितर और ऋषि। सिद्ध चारण गन्धर्व सभी, विद्याधर असुर और यक्ष भी।।
किन्नर अप्सरा किम्पुरुष, उरग मातृका सर्प नाग। राक्षस प्रेत भूत पिशाच, गणेश कूष्माण्ड और उन्माद।।
ग्रह पक्षी और बेताल, मृग पशु और यातुधान। सब उनमें ही हैं प्रकटे, उनकी ही माया यह महान्।।
वृक्ष पर्वत सांप आदि, नाम रूप जो भी जग में। उनके ही हैं सब नाम रूप, नहीं उनसे भिन्न कोई जग में।।

इस विश्व में चर अचर, दो प्रकार के भेद से। जरायुज अण्डज स्वेदज और, उद्भिज्ज चार प्रकार से।।
जलचर हैं और थलचर जो, आकाशचारी भी प्राणी हैं। शुभ अशुभ और मिश्रित सब, कर्म अनुरूप फल ही हैं।।
सतो प्रधान बनें देवता, रज प्रधान मनुष्य बनें। तमोगुण की प्रधानता से, नारकीय योनि मिले।।
इनमें भी जब एक गुण, द्वौ से प्रभावित हो जाये। तब प्रत्येक गति पुन:, त्रै भेद में आगे बंट जाये।।

देव मनुज पशु पक्षी, के रूपों में अवतार लें। आप ही वह सब रूप बनें, अनेक नाम और रूप धरें।।
धर्ममय विष्णु रूप धरी, सम्पूर्ण विश्व पोषण करें। स्वयं आप ही श्री हरि, विष्णु रूप स्वीकार करें।।

अपने ही रचे इस विश्व को, प्रलय काल के आने पर। अपने में ही लीन करें, कालाग्नि रूप रुद्र बन कर।।
ज्यों वायु घनश्याम मेघ, अपने में लीन कर लेती है। त्यों ही प्रलय बेल सृष्टि, लीन उसी में होती है।।
हे राजन् श्री हरि का, ऐश्वर्य अचिन्त्य अकथ्य है। फिर भी ऋषिवर ने उनका, इस विधि किया वर्णन है।।
सृष्टि पालन और प्रलय, इन त्रै में सीमित नहीं करें। तत्त्व ज्ञानी तो जानें सत्, वह तो है तीनों से परे।।

सृष्टि की रचना आदि, कर्मों का निरूपण तो करें। कर्म कतृत्व भाव से, उन प्रभु का नहीं सम्बन्ध रहे।।
माया से ही आरोपित यह, नहीं आवृत्त उनको कर सकें। इन सबका वर्णन तो है, कर्तृत्व निषेध के ही लिये।।

ब्रह्मा जी के महाकल्प, का वर्णन है कर दिया। आवन्तर कल्पों के सहित, ही तुमको सब कह दिया।।
सृष्टि क्रम सब कल्पों का, एक समान ही होता है। महाकल्प प्रारम्भ में, उत्पन्न प्रकृति से होता है।।
महत्तत्त्वादि सब उत्पन्न हों, वैसी ही रहे प्राकृत सृष्टि। नवीन रूप से ही फिर हो, चराचर प्राणियों की सृष्टि।।

काल परिमाण और कल्प, मन्वन्तर उसके अन्तर्गत। हे परीक्षित इन सबकी, कहेंगे, हम आगे चलकर।।
इस पल तुम हो सावधान, इतनी बात मेरी सुनो। पाद्म कल्प का वर्णन तुम, हे राजन् मुझसे सुनो।।
शौनक बोले,
हे सूत जी आपने, परम भक्त श्री विदुर की। बात हमसे थी कही, उनके तीर्थ विचरण की।।

दुस्त्यज निज कुटुम्ब को, भी उन्होने था छोड़ दिया। पृथ्वी के भिन्न तीर्थों में, उन्होंने एकाकी भ्रमण किया।।

उस यात्रा में मैत्रेय ऋषि से, मिलन कहाँ हुआ? अध्यात्म के सम्बन्ध में, उनसे क्या चर्चा हुई?
श्री विदुर के प्रश्न पर, उत्तर था मैत्रेय ने दिया। किस तत्त्व का ऋषिवर ने, था उनको उपदेश दिया?
हे सौम्य हे सूत हमें, विदुर चरित सुनायें आप। निज भाई बान्धव क्यों छोड़े, पुन: क्यों लौटे उनके पास?

सूतजी बोले,
हे शौनक आदि ऋषिवर, था परीक्षित का भी प्रश्न यही। उनके प्रश्नों के उत्तर में, शुकदेव ने जो उन्हें बात कही।।
वही वार्ता आज मैं, आपके सामने धरता हूँ। सावधान होकर सुनें, वही कथा मैं आप से कहता हूँ।।

इति द्वितीय स्कन्ध

** धर्म की शिक्षा साहस, विवेक और शान्ति की शिक्षा देता है पर हमारा धर्म तो चौके चूल्हें में जाकर नष्ट हो गया। हमारा व्यवहार यह देखने लग गया यह हरिजन है, यह अस्पृश्य है। इसके हाथ का पानी नही पीये, इसके हाथ का स्पर्श किया नही खायें। जीवन का यह जो अति व्यर्थ का उपक्रम है इसको ही हम अति मूल्य देने लग गये उसी में हमारा वास्तविक धर्म नष्ट हो गया। जीवन की प्रगति तब होती है जब हम अपने मृत अहंकार की सीढ़ियों पर कदम रखते हुये ऊंचे संस्कारों को पाने के लिये आगे बढ़े।*

** धर्म का हृदय विशाल है उसमें कुरान भी, गीता भी, वेद भी धम्मपद और बाईबल भी समा सकते है।*

** वक्त का हरपल खुशहाल जिन्दगी दे आपको हर दिन हर लम्हा खुशी दे आपको।*

** गम की हवा छूकर भी ना गुजरे आपको, खुदा वो जन्नत सी जिन्दगी दे आपको।।*

** चरित्रहीन शिक्षा, मानवता विहीन विज्ञान और नैतिकता विहीन व्यापार कभी कामयाब नही होते है, हमेशा उनसे खतरा ही है।*

** जिन्दगी में यह चार चीजें कभी भी आ सकती है- नींद, पैसा, मौत, प्यार। इसके लिये कोई समय मुर्कर नही किया जा सकता।*

** जो स्वयं सोया हुआ है वह दूसरों को क्या जगायेगा।*

** जो अन्धेरे में देख सकता है वो तो प्रकाश होने पर भी सब कुछ देख सकता है।*

** हमारा सुन्दर भविष्य भाई चारे में है न कि आपसी भेदभाव में।*

** गुरु केवल मार्ग दिखा सकता है पर रास्ता खोजने का काम तो शिष्य का होता है।*

** जीवन के रास्ते के कांटों पर जिसने चलना सीख लिया वो शिक्षित है, विद्यावान है, विद्वान है, पंडित है, शिक्षक है।*

तृतीय स्कन्ध

विषय सूची

१) विदुर की उद्धव से वृंदावन में भेंट १२८

२) विदुर और मैत्रेय मुनिकी हरिद्वार में भेंट और परस्पर संवाद १३९

३) विराट शरीर की उत्पत्ति १४२

४) मैत्रेय मुनिद्वारा विदुर के प्रश्नों का उत्तर १४५

५) ब्रह्माकी उत्पत्ति और सृष्टि विषयक ज्ञान १४८

६) काल गणना १६३

७) वाराह चरित्र और पृथ्वी का उद्धार १६६

८) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म १७६

९) जय-विजय को शाप १८१

१०) देवहूति और कर्दम का चरित्र १८९

११) कपिलोपख्यान (कपिल गीता, सांख्यशास्त्र) १९९

** इस संसार में कुछ भी बिना कारण घटित नही होता और यह संसार अस्थायी है कभी स्थिर नहीं होता, संसार परिवर्तनशील है और इसके लोग स्वार्थी है।*

** कभी न गिरने में कोई महानता नही, महानता तो गिरकर उठने में है।*

** मनुष्य जन्म तो स्वतन्त्र है परन्तु सर्वत्र जंजीरों में बन्धा हुआ है।*

तृतीय स्कन्ध

१) विदुर की उद्धव से वृंदावन में भेंट

सुख समृद्धि से सम्पन्न, निज घर को छोड़ वन में गए। श्री विदुर प्रभु मैत्रेय को, थे जब उस वन में मिले।।
हे परीक्षित जो प्रश्न, आज तुमने है किया। श्री विदुर ने पूर्वकाल में, मैत्रेय से वही पूछा था।।
सर्वेश्वर श्री कृष्ण जब, दूत बने थे पाण्डवों के। दुर्योधन के दरबार में, संदेश दिये थे पाण्डवों के।।
दुर्योधन का महल छोड़, वह उसी विदुर के घर आये। अपना ही उसे जानकर, बिना आमन्त्रण के आये।।

परीक्षित बोले,
भगवन् आप बताइए, कहाँ विदुर मैत्रेय से मिले? कौन काल वह था कहें, जब विदुर मैत्रेय से मिले?
पावनतम श्री विदुर का, कोई प्रश्न साधारण न होगा। अभिनन्दित उत्तर दे उनको, मान्वित मैत्रेय ने किया।।

सूतजी बोले,
परीक्षित् के इस प्रश्न पर, शुकदेव ने अति प्रसन्न हो। अति मुदित मन से जो कहा, उसकी अब तुम बात सुनो।।

शुकदेव बोले,
अन्धे राजा धृतराष्ट्र ने जब, अन्याय का आश्रय था लिया। अपने दुष्ट शत पुत्रों का, पालन पोषण था किया।।
अनुज पाण्डु के पुत्रों को, लाक्षागृह में था भेजा। उन दिनों की बात है यह, जब अग्नि काण्ड था दिया करा।।

उनकी थी जो पुत्रवधू, पटरानी युधिष्ठिर की। भरी राज्यसभा में दु:शासन, ने अपमानित द्रौपदी की।।
जब उसको केशों से खेंचा, नयनों से अश्रु धार बही। असुअन् जल से वक्ष:स्थल की, केसर सारी धुल गई।।
पर अन्धे उस राजा ने, निज पुत्रों को नहीं रोका। ऐसा कुकर्म सम्मुख हुआ, फिर भी उसने उनको न टोका।।

सत्यपरायण और सरल, युधिष्ठिर थे स्वभाव से। अन्याय से द्यूत में जीत राज्य, दुर्योधन ने बनवास दिये।।
वन से लौट जब उन्होने मांगा, न्यायोचित पैतृक भाग। तब भी मोहवश धर्मराज को, नहीं लौटाया उनका भाग।।

महाराज युधिष्ठिर से प्रेषित, सभा में पहुँचे जगद्गुरु। प्रिय हितकर बोले वचन, भरी सभा में कृष्ण प्रभु।।
भीष्म आदि सब सज्जन तो, अमृत समान उन्हें जान गए। पर कुरुराज उन कथनों का, मोल नहीं पहचान सके।।
जान भी वह कैसे पाते, सब पुण्य तो नष्ट थे हो चुके। कोई सत्कर्म भी नहीं बचा, जो वह सत्य समझ पाते।।

फिर सम्मति लेने के लिए, बुलाया गया श्री विदुर को। श्रेष्ठतम महामन्त्री विदुर, गए राज्यभवन में मिलने को।।
ज्येष्ठ भ्राता ने उनसे, जब प्रश्न यह कर लिया। इस सम्बन्ध में पूछा, उनकी कहें है सम्मत्ति क्या?
तब उन्होंने भ्राता को, शिक्षा दी इस नीति की। नीति शास्त्र के वेता गण, जिसे कहें विदुर नीति।।

विदुर ने कहा हे महाराजा, अजातशत्रु युधिष्ठिर को। उनका भाग दे डालें आप, इसी में तव कल्याण हो।।
असह्य अन्याय आपके, वह सहन सब कर रहे। उस अनुज भीम कालिया सम, उससे तो आप भी डर रहे।।
अनुजों सहित भीम में, प्रतिशोध की ज्वाला जल रही। क्रोध विष सबकी मिलकर, फुंकार हो मानो उगल रही।।

अनभिज्ञ हैं क्या इस सत् से आप, पाण्डव हैं प्रिय अति कृष्ण के। आराध्य देव यदुवंशियों के, हैं द्वारिका में विराज रहे।।
पृथ्वी के सब महाराजा, हैं उनके अधीन ही। ब्राह्मण और देवगण सब, हैं उन्हीं के पक्ष में ही।।
जिसे प्रिय सुत मान आप, समर्थन नित्य ही कर रहे। दुर्योधन रूप में मूर्त्तिमान, सब दोष आपके घर में घुसे।।
साक्षात् हरि श्री कृष्ण से भी, नित्य द्वेष वह करता है। श्री कृष्ण विमुख आपका मुख, श्री हीन ही दिखता है।।
गर चाहें निज कुल का भला, इस दुष्ट को तुरन्त ही त्याग दें। अन्याय असत्य को छोड़ करी, आप भी श्री हरि शरण गहें।।
शुकदेव बोले,
सुन्दर स्वभावी श्री विदुर की, आकांक्षा साधु करते थे। पर उनकी बात यह सुनते ही, कौरव जन सारे भड़क गए।।
कर्ण दु:शासन शकुनि संग, दुर्योधन क्रोधोन्मत्त हुआ। फड़कते होठों से उसने, श्री विदुर का तिरस्कार किया।।
इस कुटिल नीच दासी सुत को, किसने यहां बुलाया है? जिनके टुकड़ों पर यह पला, उनका शत्रु बन आया है।।
विरुद्ध आचार देखकर भी, प्राणा इसके नहीं हरो। पर अपने इस नगर से, तुरन्त ही बाहर इसे करो।।

निज अग्रज के सामने ही, इन कर्ण बाणों से बंधे गए। अति कठोर इन वचनों से, मर्माहत श्री विदुर हुए।।
फिर भी उदारता की मूर्त्ति, विदुर ने बुरा नहीं माना। श्री हरि की मोहिनी माया का, प्रबल प्रभाव इसे जाना।।
निज धनु: राज्य द्वार पे रख, वह हस्तिनापुर से चल दिये। महात्मा विदुर ने दुष्टों से, मानो सब नाते तोड़ दिये।।

विदुर समान महात्मा, थे बहु भाग्य से उन्हें मिले। उनका सम्पर्क ही जान लो, बहु जन्म के पुण्यों से मिले।।
हस्तिनापुर से निकल के वह, पुण्य करन की इच्छा से। भूमण्डल में तीर्थ पाद, श्री हरि क्षेत्र में चले गये।।
ब्रह्मा रुद्र अनन्त आदि, अनेक मूर्त्ति रूप में। श्री हरि आप विराजें वहां, विभिन्न रूप सब धर कर के।।
तीर्थ स्थान नगर और वन, हरि मूर्त्ति से जो सुशोभित थे। निकुञ्ज सरोवर और तीर्थ, सब में एकाकी विचरते रहे।।

अवधूत वेश धर स्वेच्छा से, पृथ्वी पर वह विचरते थे। निज आत्मीय जन भी उनके, उनको न पहचान सके।।
तनोश्रृंगार न कोई था, भोजन पवित्र साधारण था। शुद्ध वृत्ति से ही उनका, जीवन निर्वाह था चल रहा।।
प्रत्येक तीर्थ में स्नान करी, धरती पर ही वह सोते थे। श्री हरि जिनसों प्रसन्न हों, वह सब व्रत पालन करते थे।।

भारतवर्ष में विचरते, प्रभास क्षेत्र में जब पहुँचे। श्री कृष्ण की सहायता पा, युधिष्ठिर थे सम्राट बने।।
इस पृथ्वी पर एक छत्र, अखण्ड राज्य उनका बना। श्री कृष्ण के सहयोग से, ही यह सब सम्भव बना।।

वहाँ पहुँचकर ही उन्होने, महाभीषण यह समाचार सुना। हुआ बन्धु कौरवों का विनाश, उन्होने यह सविस्तार सुना।।
आपसी कलह क्लेश से, थे नष्ट भ्रष्ट वे हो गए। जैसे निज घर्षण से उत्पन्न, अग्नि सब बांस ही भस्म करे।।
यह सब सुनकर हुए शोक ग्रसित, पहुँचे सुरसरी के तीर पर। निज व्यथा शान्त करने हेतु, होई मौन गए उसके तट पर।।

वहाँ पहुँचकर विदुर ने, त्रित उशना मनु और पृथु। अग्नि असित वायु सुदास, गौ श्राद्धदेव और गुह।।
इन नामों से सुप्रसिद्ध, ग्यारह तीर्थ सेवन किए। बन्धु बान्धव की गति की सुन, खिन्न मन थे वह हुए।।

धरा पे अनेकों और भी, हरि मन्दिरों में तीर्थ किया। ब्राह्मणों और देवों ने, था जिनको स्थापित किया।।
प्रभु का प्रधान है आयुध जो, कहें सुदर्शन चक्र जिसे। उन सबके ही शिखरों पर, उसके चिन्ह थे विराज रहे।।

जिनके दर्शन मात्र से, श्री कृष्ण स्मरण हो आता था। ऐसे सभी तीर्थों का, भी उन्होंने सेवन किया।।

धन धान्य से सम्पन्न जो, कुरु जांगल आदि सब देश। वहां से चलकर वह पहुंचे, सौराष्ट्र सौवीर और मत्स्य देश।।
जब कुछ दिन यात्रा करी, वह श्री यमुना तट पहुंचे। वहां परम भागवत उद्धव, के दर्शन उनको हुए।।
प्राख्यात सेवक कृष्ण के वह, नितान्त शान्त स्वभाव थे। पूर्वकाल में बृहस्पति के, शिष्य भी थे रह चुके।।
उनको देख श्री विदुर ने, प्रेम पाश में बान्ध लिया। निज आराध्य और वा आश्रित, स्वजन का कुशल क्षेम पूछ लिया।।
विदुर बोले,
विदुर ने उनसे यूँ कहा, हे उद्धव अब तुम कहो। मेरे आराध्य श्री कृष्ण का, समाचार कुछ तो कहो।।
निज नाभिकमल से प्रकटे जो, उन ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर। पुराण पुरुष बलराम कृष्ण, अवतरित हुए हैं धरती पर।।
सबको आनन्दित वे करें, भूमि का भार उतार कर। कुशल तो हैं न वे दोनों, अपने पिता वसुदेव के घर?

कुरुवंशियों के पूज्यवर, परम सुहृद् वसुदेव जी। पिता समान निज भगिनियों की, इच्छा पूर्ति करते सभी।।
कुन्ति आदि सबके स्वामिन्, प्रसन्न सदा वह करते रहे। वांछित सब वस्तु देकर, आनन्दित उनको करते रहे।।
कहो हे उद्धव हे प्रियवर, वह तो आनन्द में हैं बसे? उनके समाचार के श्रवण को, मेरे कर्ण छिद्र हैं तरस रहे।।

कहो कहो प्रिय उद्धव तुम, सेनापति वीर प्रद्युम्न की। प्रसन्न तो हैं श्री कृष्ण पुत्र, उनकी बात तुम कहो सही।।
पूर्व जन्म में कामदेव, का अवतार था उन्होने लिया। इस जन्म में रुक्मणी ने, ब्राह्मण आराधना से पाया।।

सात्वत वृष्णि और भोज, दाशार्हवंशी यादव अधिपति। उग्रसेन महाराज जो, कहो क्या सुख से हैं वह भी?
निज राज्य की पुनर्प्राप्ति की, आशा को था त्याग दिया। पर कमलनयन श्री कृष्ण ने, पुन: सिंहासन दिलवा दिया।।

सब रथियों में अग्रगण्य, श्री कृष्ण पुत्र हैं साम्ब जो। निज पिता समान ही महिमान्वित, कहो तो क्या कुशल हैं वो?
पूर्व जन्म में पार्वती ने, गर्भ में इनको था धरा। उस अवतार में स्वामीकार्तिक, ही था उनका नाम पड़ा।।
इस जन्म में जाम्बवती, ने है इनको जन्म दिया। अनेकों व्रत उपवास कर, उसने इनको प्राप्त किया।।

अर्जुन से रहस्यमयी, धनुर्विद्या जिन्होने पाई। कुशल मंगल तो हैं न कहो, महाबली श्री सात्यकि?
श्री कृष्ण की सेवा से, अनायास यहां स्थिति हुई सुलभ। भागवत और योगी जन को भी, मिलती है जो अति दुर्लभ।।
प्रभु शरणागत निर्मल हृदय, बुद्धिमान् अक्रूर जी। प्रसन्न और कुशल हैं न, प्रेमी भक्त अक्रूर जी?
श्री कृष्ण चरण से अंकित जो, वज्र मार्ग की रज का है कण कण। प्रेम अधीर हुए लुण्ठित, और जो पावन कर लिया अपना तन।।

अब देवकी मां की बात कहो, भोज वंशी देवक सुता। देवमाता आदिति सम, वह तो है श्री विष्णु माता।।
यज्ञ के विस्तृत अर्थ ज्यों, वेदत्रयी धारण करे। प्रभु विष्णु पधारे इनके गर्भ, ऐसी महिमा इनकी भए।।
वेदों का आदि कारण जो, कहलायें मन के अधिष्ठाता। कुशल तो हैं श्री अनिरुद्ध, जो भक्त जनों के हैं त्राता।।

है सौम्य श्री उद्धव जी, अब कहो आप अन्य सब की। मेरे हृदयेश्वर श्री कृष्ण के, हैं अनन्य जो अनुयायी।।
सत्यभामा सुत चारुदेष्ण, और कृष्ण पुत्र श्री गद। हृदीक् और अन्य भी, श्री कृष्ण के पुत्र जो सब।।
उनकी कहो सब कुशल तो हैं, श्री द्वारिका धाम में। समाचार सबका कहो, जो बसें कृष्ण के धाम में।।

कृष्णार्जुन द्वौ भुजायें बन, धर्मराज का साथ दें। उन आसरे धर्म की मर्यादा, न्यायोचित वह पालन करें।।
मयदानव ने निज कौशल से, राज्य सभा जो थी रची। इनका वैभव देख कर, थी दुर्योधन की डाह जगी।।
क्षणभर भी न सह सके, अपराधियों का अपराध जो। क्या त्यजा भीम ने सर्प मम, दीर्घकालीन क्रोध को?
गदा युद्ध में भिन्न भिन्न, जब पैंतरे वह बदलता था। उसके चरणों की थाप से, धरती का हृदय दहलता था।।

जिसके बाणों के जाल से छिप, किरात वेशधारी शंकर। अतिगुह्य अव्यक्त जो, प्रसन्न हुए थे श्री शंकर।।
सब रथियों-यूथपतियों का, मान बढ़ाते जो अर्जुन। शान्त हुए क्या वा शत्रु, गाण्डीवधारी वह हैं तो प्रसन्न?

ज्यों नेत्रों की रक्षा में, तत्पर रहती हैं पलक सदा। उसी विधि कुन्ति सुत सब, जिनकी करें सम्भाल सदा।।
कुन्ति ने ही अति प्रेम से, पालन पोषण जिनका किया। माद्री सुत सहदेव नकुल, कहो तो हैं कुशल से क्या?
युद्ध में शत्रु से अपना, राज्य उन्होंने था छीना। इन्द्र मुख से अमृत कलश, ज्यौं द्वौ गरुड़ ने ले लीना।।

राजर्षि श्री पाण्डु के, वियोग से थी मृतप्राय सी। कुन्ति ने तो इन पुत्रों के, लिये ही प्राणा धारण की।।
श्रेष्ठ रथी श्री पाण्डु तो, ऐसे अनुपम वीर थे। एक धनुष से एकाकी, ही चहुं दिश उन्होने जीत लिये।।
शोक सन्तप्त है मन मेरा, सोच गति निज भ्राता की। परलोकगामी निज अनुज से, ही थी उन्होने द्रोह करी।।
अध: पतन की ओर वह, भाई मेरा चला गया। निज पुत्रों के समर्थन में, मुझ शुभचिन्तक को भी त्यजा।।

इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं, न ही खेद कोई है मुझको। जगत् विधाता कृष्ण की, ही तो यह सब लीला हो।।
मानव रूप में लीला कर, भ्रमित वह सबको करते हैं। उनकी कृपा से महिमा देख, आनन्द में हम विचरते हैं।।

यद्यपि कौरवों ने उनके, प्रति बहुत अपराध किये। श्री हरि फिर भी सबकी, उपेक्षा ही करते रहे।।
उनके साथ वह सब दुष्टों का, दमन भी करना चाहते थे। निज शरणागत रक्ष को, दुष्टों का वध वह चाहते थे।।
धन विद्या जाति मद ने, था अन्धा जिनको किया। कुमार्गगामी वह थे हुए, ताड़ित पृथ्वी को किया।।

हे उद्धव श्री कृष्ण तो, जन्म और कर्म से हैं परे। फिर भी दुष्टों के दलन को, ही तो श्री हरि जन्म लें।।
लोगों को अपने प्रेम से, वह नित्य आकर्षित करते हैं। इस आकर्षण हेतु ही, दिव्य जन्म वह धरते हैं।।
श्री हरि की तो बात ही क्या, दूजे भी जो गुण से उठें। उनमें से भी एको नहीं, देह बन्धन में बन्धना चाहे।।

अजन्मा होकर भी जिन्होने, जन्म लिया है यदुकुल में। निज शरणागत भक्तन् हेतु, अजन्मा प्रकटे यदुकुल में।।
उन पावनकीर्ति श्री हरि की, महिमा आज सुनाओ तुम। हे उद्धव मेरे प्रिय सखा, पावन मम कर्ण कराओ तुम।।
परम भक्त श्री उद्धव से, प्रियतम श्री कृष्ण की जब पूछी। श्री हरि सम्बन्धित समाचार, विदुर ने जब उनसे पूछी।।
स्वामी की स्मृति उद्धव के, हृदय पटल पे उभर आई। द्रवीभूत हुआ हृदय प्रेम से, वाणी नहीं उत्तर दे पाई।।

जब पांच वर्ष के शिशु यह थे, सर्वप्रिय इन्हें खेल था। श्री कृष्ण का विग्रह बना करी, पूजन अर्चन उसका करना।।
कृष्ण प्रतिमा बनाकर यह, उसमें तन्मय हो जाते थे। माता के बुलाने पर भी वह, सब खान पान बिसराते थे।।

वा सेवा में रहे दीर्घकाल, सारी आयु ही बीत गई। उनकी सेवा में रत रहकर, थी वृद्धावस्था आ पहुंची।।

विदुरजी के प्रश्न पर, निज प्रियतम स्मृति उभर आई। चरण कमल की याद में, चित्त विरह से व्याकुल भई।।
इस विरह अतिरेक से, वाणी गद्‌गद् हो गई। श्री विदुर के प्रश्नों का, कुछ भी उत्तर न दे पाई।।

श्री कृष्ण प्रेम में मदमाते, उद्धव जी कुछ न बोल सके। भक्ति के तीव्र आवेग से वह, भक्ति सुधा में डूब गए।।
दो घड़ी तक उद्धव जी, मौन ही धारे रहे। वह तो निज प्रियतम प्रेम में, आनन्द निमग्न थे हो गए।।
रोमांच हुआ पूर्ण तन में, नयनों से अश्रु बह निकले। उन्हें प्रेम प्रवाह निमग्न देख, कृत्कृत्य श्री विदुर हुए।।

कुछ काल पश्चात् जब, प्रेम धाम सों लौटे वह। शनैः शनैः संसार में आ, निज स्मृति में लौटे वह।।
आर्द्र नेत्र निज पोंछे उन, विस्मित थे स्मरण मात्र से। भगवत् लीला का स्मरण कर, कहने लगे श्री विदुर से।।
विदुर बोले,
सूर्य अस्त हो जाने पर, ज्यों अन्धकार है छा जाता। अदृश्य कृष्ण के होने से, त्यों काल के अजगर ने है डसा।।
श्री हीन हो गए घर अपने, जीवन प्रयोजन चला गया। क्या कुशल सुनाऊं उनकी मैं, मम चित्त विरह में दग्ध हुआ।।

अहो मन्दभागी यह जीव लोक, इसमें यादव अति भाग्य हीन। निरन्तर कृष्ण के साथ रहे, पर न पहचानें उनको दीन।।
ज्यों अमृतमय चन्द्रमा के, सागर में निरन्तर बस रहीं। मछलियां निज में भूली रहीं, नहीं सागर को पहचान सकी।।
अति कुशाग्र बुद्धि यादव, दूजों के भाव पहचाने थे। सान्निध्य श्री हरि का पाकर, उनसे नित क्रीड़ा करते थे।।
फिर भी सब जग के आश्रय जो, श्री कृष्ण को न पहचान सके। सर्वान्तर्यामी कृष्ण को, बस यादव कुल नायक समझे।।

फिर भी विरोधी शिशुपाल के, निन्दा सूचक वाक्यों से। प्रभु माया से मोहित यादव, किंचित् भी भ्रम में नहीं पड़े।।
कभी तप जिन्होंने नहीं किया, उनको भी कृष्ण ने दरस दिया। दर्शन अभिलाषा तृप्ति बिना, अब कैसा यह खेल रचा।।
त्रिभुवन विमोहन निज विग्रह, श्री कृष्ण ने अन्तर्धान किया। निज छवि छिपाकर श्री हरि ने, मानो नयनों को छीन लिया।।

प्रभाव योगमाया का दिखे, प्रभु ने विग्रह जो प्रकट किया। मानव लीला कर पाने को, जो दिव्य रूप उन्होने धरा।।
अद्‌भुत लावण्य देख उसका, सब जग तो मुग्ध ही होता था। उसके सौन्दर्य ने बार बार, प्रभु को भी था विस्मित किया।।
सौन्दर्य और सौभाग्य की, थी उसमें पराकाष्ठा पूर्ण। उसके स्पर्श मात्र को पा, होते विभूषित आभूषण।।

धर्मराज युधिष्ठिर ने, जब राजसूय था यज्ञ रचा। नयनाभिराम हरि रूप को, वहां पे लोगों ने देखा।।
रयियता की रचना शक्ति, कहा पूर्ण कौशलता पाई। मानव सृष्टि की रचना में, यहीं उतरी पूरी चतुराई।।
उनकी लीलामय चितवन से, और प्रेम पूर्ण विनोद से। व्रजबाला ठगी ही रह जातीं, निहारती निर्निमेश उन्हें।।
गृहकार्य कौन देख पाता, चित्त उनमें लय हो जाता था। जड़ पुतलीवत् रह जाती खड़ी, ऐसा उनका कृष्ण से नाता था।।

निज शान्त रूप महात्मन् को, जब असुरों से सन्तप्त देखा। वह घोर आसुरी रूप जो था, वह भी तो उनका आप ही था।।
करुणा भाव से द्रवित हो, साधु संरक्षण को प्रकटे। निज अंश बलराम सहित, अजन्मा ने फिर जन्म लिये।।
प्रभु स्वामी चराचर जगत के, और स्वामी प्रकृति के भी। उन्होने रूप इस विध धरा, ज्यों काष्ठ में प्रकट हुई अग्नि।।

अजन्मा होकर भी प्रभु ने, श्री वसुदेव घर जन्म लिया। इष्ट रूप जो दीख रहा, वह तो है सब उनकी लीला।।
जो सब जग को दें अभय दान, वह कंस के भय से व्रज में छिपे। सर्व पराक्रम सिन्धु स्वयं, भयभीत हो मथुरा छोड़ गए।।

प्रभु की यह अद्भुत लीलाएँ, हृदय में बार बार उभरें। उनकी स्मृति से बार बार, बेचैन मेरा मन हो जाये।।

वसुदेव-देवकी चरणों में, प्रणत होई था उन्होने कहा। कंस से आक्रान्त मैं, न सेवा आपकी कर सका।।
मेरे इस अपराध पर, आप ध्यान न दीजिये। प्रसन्न आप रहें मुझपर, बस इतनी कृपा ही कीजिए।।
जब जब कृष्ण की यह बातें, याद मुझे आ जाती हैं। आज भी मेरे चित्त को यह, अत्यन्त व्यथित कर जाती हैं।।

काल रूप ही बन आया, जिन श्री हरि का भृकुटी विलास। भृकुटी के इक संकेत से ही, उतार दिया सब भू का भार।।
उन श्री कृष्ण के चरण कमल की, रज का जिन्होने सेवन किया। यह कौन पुरुष होगा ऐसा, जो इक क्षण भी उन्हें भूल सका?
राजसूय यज्ञ में यह, प्रत्यक्ष ही देखा सबने। श्री कृष्ण के द्वेषी शिशुपाल ने, सिद्धि पाई थी पल में।
स्पृहा करते हैं जिसकी, महायोगी योग की साधना कर। उस सिद्ध दाता कृष्ण का, विरह कौन सह पाये नर?

उस समान ही अनेकों अन्य, योधा थे महाभारत में। जिन कृष्ण के श्री मुख कमल के, मरकन्द पान किये नयनों से।।
प्राण त्याग किये उन्होने, अर्जुन के बाणों से बिंधकर। कृष्ण दरस से पावन हो, गए परम धाम त्यज तन नश्वर।।

त्रिलोकी के अधीश्वर तो, प्रभु श्री कृष्ण आप हैं। उनसे बढ़कर कोई क्या होगा, नहीं कोई भी उनके समान है।।
निज स्वत: सिद्ध ऐश्वर्य से, वह पूर्णकाम हैं सर्वदा। इन्द्रादि असंख्य लोकपाल, धरते उपहार चरण में सदा।।
उनके चरण की चौकी से, छूकर मुकुटों के अग्रभाग। प्रणाम करी श्री हरि को वह, समझें अपने अहोभाग्य।।

सिंहासन पर जब अपने, उग्रसेन थे विराजते। अपनी राज्य सभा में वह, विचार विमर्श थे जब करते।।
हे देव प्रार्थना सुनें आप, विनम्र भाव से थे कहते। वही कृष्ण कर जोड़ करी, निवेदन उनसे थे करते।।
उनके इस सेवा भाव की जब, स्मृति हृदय में उभरती है। हम जैसे सेवक गण की, चित्त व्यथा से भरती है।।

कालकूट विष से जिसने, निज स्तनों का था लेपन किया। श्री कृष्ण के प्राणा हरने को, जिस अपना दूध पिला था दिया।।
कृष्ण ने उस पापिनी पूतना, को भी गति वह प्रदान की। जो उनकी अपनी धाय मां, के लिये ही उचित थी।।
उन कृष्ण को छोड़ के इस जग में, है और दयालु कौन इतना? जिसकी शरणा हम गहें, और कल्याण भी हो अपना?
मैं मानूं वह असुर भी, महाभक्त श्री हरि के थे। वैर जनित क्रोध कारण, इक क्षण न विस्मृत कृष्ण हुए।।
गरुड़ के कान्धे बैठ हरि, कर में सुदर्शन चक्र लिए। रणभूमि में झपटे उनपर, उनको प्रभु दर्शन होते थे।।

ब्रह्मा जी की विनती सुनकर, श्री हरि थे धरती पर आये। भूमि का भार उतार करी, उसे सुखी करन को थे आये।।
कंस के कारागार में, श्री हरि ने आप ही जन्म लिया। देवकी और वसुदेव का, शिशु बनी कर रूप धरा।।
कंस से अति भयभीत हुए, वसुदेव उनके पिता। तत्क्षण ही व्रज में उनको, नन्द बाबा के पहुँचा दिया।।
बलराम जी के संग वहां, एकादश वर्ष वह छिपे रहे। व्रजभूमि के बाहर प्रभाव, उनका कोई न जान सके।।

हरे भरे वृक्षों पर जिसके, पक्षी यूथ कलरव करते। यमुना तट के उस उपवन में, ग्वालन के संग विचरते थे।।
बछडों को चराते हुए उन्होने, उन्हीं कुंजों में था विहार किया। सखा संग श्री बाल कृष्ण ने, वहीं पे था डेरा डाला।।
आकृष्ट किया व्रजवासियों को, कभी हंसकर कभी रोकर। कभी मुग्ध दृष्टि से देखकर, अनेकों बाल लीलाएँ कर।।

तनिक बड़े जब वह हुए, गोपों को वह रिझाने लगे। अपनी वंशी के वादन से, उनका मन वह बहलाने ले।।
श्वेत बैल और रंग बिरंगी, गायें वह चराने लगे। शोभा मूर्त्ति गोकुल की, सेवा में समय बिताने लगे।।

इसी समय जब कंस ने, मायावी असुरों को भेजा। स्वेच्छा रूप धारी दानव, कृष्ण के प्राण हरन् भेजा।।
तब खेल खेल में कृष्ण ने, उन सबको मार गिराया यूं। कोई शिशु खिलौने निज, खेल खेल में तोड़े ज्यूं।।

विषयुक्त यमुना जल पी, जब मृतक हुए गौ ग्वाल सब। निज माया से श्री हरि ने, उन सबको दिया जीवित कर।।
कालिया नाग का दमन किया, यमुना से ही बाहर भेजा। निर्मल स्वच्छ जल सुविधा दे, सबको आनन्दित किया।।
आवश्यकता निज पूरी हो, जब बढ़ जाये अपना धन। सद्कर्म में उसको व्यय करें, इस कारण किया यह उद्यम।।
श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा, श्री गोवर्धन पूजन हुआ। नन्दबाबा को निमित्त बना, गो यज्ञ यह करवाया।।

हे भद्र इस यज्ञ से, मान इन्द्र का भंग हुआ। क्रुध इन्द्र ने फिर व्रज का, सर्वनाश करना चाहा।।
मूसलाधार मेघ बरसा, थल को जलमय कर दिया। तब करुणामय श्री हरि ने, गोवर्धन को धारण किया।।
खेल खेल में कनिष्टिका पे, पर्वत को ही उठा लिया। पशु पक्षी नर नारी को, मिला उसके नीचे आसरा।।
ज्यों छाते के नीचे आ, वर्षा से सब बच जायें। त्यों ही गोवर्धन कर पर धन, प्रभु सबकी रक्षा किये जायें।।

सन्ध्या के समय वृन्दावन में, जब शरत् चाँदनी छिट जाती। उसका भी मान बढ़ाने को, प्रभु ने इक नव लीला रची।।
गोपिन् के मध्य सुशोभित हो, अति मधुर तान वह छेड़ते। रास विहार में मग्न हुए, स्वर लहरी नई बिखेरते।।

तत्पश्चात् निज जननी जनक, को सुख पहुंचाने के लिये। बलराम सहित वृन्दावन त्यज, मथुरा नगरी हरि आ पहुंचे।।
शत्रु समुदाय का स्वामी, उनका मामा जो कंस था। महात्याचारी घोर अधर्मी, उच्च आसन पर बैठा था।।
सिंहासन से पटक के नीचे, उसके प्राण हर लिये। पृथ्वी पर बहुत दूर तक, उस शव को घसीटते ही गए।।

सन्दीपनि ऋषि ने सांगोपांग, वेद का था उच्चार किया। श्री कृष्ण ने उनसे ही, इस वेद का था अध्ययन किया।।
दक्षिणा रूप में मृतक पुत्र, उनका उन्हें लौटा दिया। पञ्चजन नामक राक्षस के, पेट से लाकर उन्हें दिया।।

रूक्मी के आमन्त्रण से, या रुक्मिणी के सौन्दर्य से। आकर्षित शिशुपाल आये, सहयोगियों को निज साथ ले।।
उन सबके सीस पे चरण धरी, किया रुक्मिणी का हरण। नित्य संगिनी भीष्मक सुता से, पाकर परिणय का आमन्त्रण।।
रुक्मिणी का जब हरण किया, ऐसा स्वर्गीय दृश्य था। गरुड़ जैसे इन्द्र मुख से, अमृत कलश ले जा हो रहा।।

बिन सधे सात बैलों को, स्वयंवर में जब था नथा। नग्नजिति सत्यासे जब, श्री कृष्ण ने विवाह किया।।
मूढ़ राजा जो थे आये, मानें अपमान हुआ उनका। शस्त्र उठाकर उन सबने, सत्या को था हरना चाहा।।
स्वयं बिना आहत हुए, शस्त्रों से वार उनपर किया। उन उद्दण्डी नृपों को, कृष्ण ने स्वयं ही मार दिया।।

सांसारिक विषयी पुरुषों सम, साधारण लीला करते रहे। प्रसन्न हो प्रिया सत्यभामा, ला स्वर्ग से कल्पतरु दिये।।
क्रोधोन्मत्त इन्द्र ने तब, उनपर था आक्रमण किया। अपने सैनिकों को संग ले, धावा उनपर बोल दिया।।
निश्चय ही निज स्त्रियों के, हाथों में क्रीड़ा मृग है बना। इस कारण ही इन्द्र भी, उचित अनुचित न देख सका।।

विशालकाय आकार से, आकाश को भी जो ढक देता। प्रभु के हाथों अपने सुत, भौमासुर को जब मृत देखा।।
पृथ्वी की प्रार्थना सुनी, भौमासुर के पुत्र को। सौंप राज्य भागदत्त को, प्रभु चले अन्त:पुर को।।

अनेक राज्यकन्याओं को, भौमासुर हर लाया था। दीनबन्धु का दर्शन पा, उठकर सबने सत्कार किया।।
लज्जा-हर्ष और प्रेममय, भावों से मुख वा आमृत्त थे। तत्काल ही सबने कृष्ण को, पति रूप में वरण किये।।

निज योगमाया से फिर हरि ने, अपने अनेकों रूप धरे। उन सब कन्याओं के लिये, विभिन्न रूप धरी वह प्रकटे।।
विधिवत् पाणिग्रहण किया, भिन्न-भिन्न प्रासादों में। सब कन्याओं का प्रभु ने, एक ही मुहूर्त में।।
निज लीला के विस्तार को, उस हर पत्नी के गर्भ से। निज समान सब गुणों सहित, दस दस पुत्र उत्पन्न किये।।

कालयवन जरासन्ध, सहयोगी शाल्वादि ने। मथुरा और द्वारिका पुरी को, घेर लिया चहुं ओर से।।
निज जन को अलौकिक शक्ति, स्वयं प्रभु ने दे दीना। उनको निमित्त बनाकर के, स्वयं ही उनका वध कीना।।
शाम्बर द्विविद बाणासुर मुर, बल्वल दन्तवक्त्रादि। इन सबको कभी मरवाया, कभी स्वयं प्रदान की सद्गति।।

फिर तव भ्राता धृतराष्ट्र, तथा पाण्डवगण के सहयोगी। राजाओं का संहार किया, महाभारत के युद्ध में भी।।
यह सब निज सेना सहित, जब थे कुरुक्षेत्र पहुंचे। इन सबके दल बल से, धरती के कण कण दहल उठे।।
कर्ण दु:शासन शकुनि की, दुर्मति से आयु क्षीण हुई। श्री भी नष्ट हुई जिसकी, भीम से थी जंघा टूटी।।
पृथ्वी पे उसको खड़ा देख, थे नहीं हरि प्रसन्न हुए। दुर्योधन के सहयोगी भी, उसके समान अधर्मी थे।।

भीष्म द्रोण अर्जुन और भीम, यह सब हैं जिनके नायक। अष्टादशाक्षौणी सेना, पूर्ण भी यह हो जाये नष्ट।।
तो भी इस धरती का, बोझ कितना टल सका? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि से, अति बलवान है मम सेना।।
उनका महा बल पृथ्वी पर, अभी तो है हुआ बना। श्री कृष्ण ने युद्ध क्षेत्र में, था ऐसा विचार किया।।

मदपान से जब मतवाले हो, रक्तिम नेत्रों में क्रोध भरे। परस्पर यह भिड़ जायेंगे, उससे निज नाश करेंगे यह।।
इसको छोड़ भू भार हरन का, है नहीं उपाय कोई। मम संकल्प मात्र से, होंगे यह अन्तर्धान सभी।।
ऐसा विचार करके प्रभु ने, युधिष्ठिर का किया राज्य तिलक। पैतृक सिंहासन पर उसके, उसको फिर किया स्थापित।।
निज बन्धु-बान्धव सबको, इस विध आनन्दित कर दिया। सत्पुरुषों के योग्य जो, उस मार्ग पे उनका कदम धरा।।

पुरु वंश का बीज जो, अभिमन्यु ने स्थापित किया। उत्तरा के गर्भ को, द्रोण पुत्र ने नष्ट किया।।
प्रभु ने कृपा करी उसको, जीवन पुन: प्रदान किया। ब्रह्मास्त्र की अग्नि से, स्वयं कवच बन बचा लिया।।
तत्पश्चात् युधिष्ठिर से, तीन अश्वमेध रचा दिये। श्री कृष्ण चरण अनुगामी हो, अनुजों सहित धृतराष्ट्र रहे।।
सबने निज पूर्ण बल लगा, पृथ्वी की रक्षा करी। पूर्णतय: आनन्दित थे, धर्म मार्ग पे चल के सभी।।

द्वारिका पुरी में रहकर के, विश्वात्मा श्री भगवान ने। वेद की मर्यादा के, पूर्ण ही पालन किये।।
इष्ट रूप में तो उन्होने, पूर्ण भोगों का भोग किया। पर नित्य स्थित थे सांख्य में, नहीं चित्त आसक्त तनिक भी था।।
मधुमय स्मित प्रेम स्वरूप, अमृत रस लिये थी उनकी वाणी। निर्मल चरित्र सौन्दर्य सब, शोभा की वहां निवास बनी।।
ऐसे दिव्य श्री विग्रह से, किया आनन्दित लोक परलोक। विशेष रूप से यादवों पर, लुटा दिया उन करुणा कोश।।

रात्रि में भार्याओं सहित, विहार किया अनुराग युक्त। समयोचित व्यवहार से, किया सबको आनन्द युक्त।।
इस विधि बीते अनेकों वर्ष, गृहस्थाश्रम में वह रहे। भोग की सब सामग्री से, फिर वैरागी वह भये।।
सब भोग सामग्री और जीव, सब ही हैं ईश्वर अधीन। श्री कृष्ण जो इन सबके स्वामी, वह हो गए इनसे उदासीन।।
तब भक्तियोग से युक्त भक्त, जो हैं उनके ही अनुगामी। कैसे विश्वास करें इनपर, वह तो श्री हरि चरण कामी।।

द्वारिका पुरी में एक दिन, थे बालक कुछ खेल रहे। भोजवंशी और यदुवंशी, बालक एकत्रित थे हुए।।
खेल खेल में इन सबने, ऋषियों का अपमान किया। इससे मुनिवर के आन्तर, तीक्ष्ण क्रोध उभर आया।।
तब यदुकुल का नाश ही, श्री हरि को अभीष्ट मान। शाप दे दिया बालकों को, उस पल इसको ही उचित जान।।

इस घटना के कुछ मास बाद, वृष्णी भोज अन्धक वंशीय। वशीभूत विधि के हो, हर्षित थे सब के सब ही।।
निज रथों पर हो सवार, प्रभास क्षेत्र को सब चले। उत्सव का सा था वातावरण, हृदय सबके आनन्दित थे।।
स्नान करी उस तीर्थ में, तर्पण पितरों का किया। देव और ऋषि तृप्त किये, गौ दान ब्राह्मणों को दिया।।

सोना चान्दी शैय्या वस्त्र, भृगचर्म कम्बल पालकी। रथ हाथी और कन्यायें, आजीविका हेतु भूमि दी।।
नाना प्रकार के सरस अन्न, भी भगवदर्पण किये। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को, दान में वह दे दिये।।
गौ और ब्राह्मण संरक्षण, एकमात्र ध्येय जिनका था। पृथ्वी पर निज सीस धरी, उन ब्राह्मणों को प्रणाम किया।।

आज्ञा पा फिर ब्राह्मणों की, यादवों ने भोजन किया। संग में वारुणी मदिरा, का भी पान उन्होने किया।।
मदिरा पान से पल भर में, विवेकहीन वह हो गए। दुर्वचनों से इक दूजे को, आहत वह करने लगे।।
मदिरा के नशे में उनकी, बुद्धि पूर्णतय: लुप्त हुई। ज्यों परस्पर घर्षण से, बांसों में हो आग लगी।।
इसी विधि आपस में उनके, कलक क्लेश की अग्नि जगी। सूर्यास्त तक इक दूजे की, मार काट होने लगी।।

अपनी माया की विचित्र गति, को जब देखा भगवन् ने। इक वृक्ष के नीचे जा बैठे, सरस्वति जल आचमन ले।।
इस घटना से पहले ही, निज कुल संहार की इच्छा थी। शरणागत दु:खहर कृष्ण ने, मुझे बद्रिधाम जाने की आज्ञा दी।।
हे विदुर यद्यपि इससे ही, उनका आशय था मैं समझ गया। तथापि स्वामी का वियोग, इक पल को न सह सका।।
उनके चरण कमल अनुगमन कर, प्रभास क्षेत्र मैं जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर ही मैंने, इस सब दृश्य को था देखा।।

सबका आश्रय जो स्वयं हैं, पर जिनका आश्रय कोई नहीं। वह मेरे प्रियतम सखा कृष्ण, हैं एकाकी संग कोई नहीं।।
शोभा स्वरूप श्याम सुन्दर, थे सरस्वति तट पर बैठे। संगी साथी कोई पास न थे, वह थे अकेले ही बैठे।।
सौन्दर्य मूर्ति अति पावन, दिव्य सत्त्वमय रूप है। रत्नारे शान्त नयन उनके, श्याम सलोना रूप है।।
चतुर्भुज रूप हरि का देख, रेश्म पीताम्बर लहराता। दूर से ही पहचान लिया, और चरणन् में मस्तक टेका।।

छोटे से अश्वत्थ वृक्ष पर, वह टेक लगाए बैठे थे। बायीं जंघा पर दायां चरण, अपना टिकाये बैठे थे।।
भोजन-पान थे त्याग दिए, फिर भी मुख कमल था खिल रहा। बाह्य विषय सब छोड़ के भी, आनन्द प्रफुल्लित आन्तर था।।
श्री व्यास के प्रिय मित्र, परम सिद्ध श्री मैत्रेय जी। स्वच्छन्द जो विचरें लोकों में, परम भागवत पहुंचे वहीं।।

परम अनुरागी भक्त स्वयं, हैं श्री मैत्रेय हरि के आप। आनन्द और भक्ति भाव से, थी झुकी मूर्धना उनकी आज।।
उनके सम्मुख ही श्री प्रभु ने, प्रेम पूर्ण निज चितवन से। आनन्दमूयी मुसकान से, तब मुझको यह वाक् कहे।।

भगवान बोले,
हे उद्धव आन्तरतम इच्छा, तेरी क्या यह जानता हूँ। अति दुर्लभ है जो सबके लिये, उस साधन की तुझे बात कहूँ।।
पूर्व जन्म में वसु थे तुम, मेरी अराधना ही करते थे। प्रजापति और वसु यज्ञ में एक यही तुम्हारी इच्छा थी।।
इस जग में हे साधो सुनो, अन्तिम ही है यह तेरा जन्म। क्योंकि इस जन्म में आकर ही, प्राप्त किया तूने अनुग्रह मम।।

मर्त्यलोक को छोड़ के अब, निज धाम को जाना चाहता हूँ। काम यहां सब पूर्ण हुए, प्रस्थान अब करना चाहता हूँ।।
अनन्य भक्ति के कारण तुम, एकांत में दर्शन कर पाये। अति सौभाग्य तव उदय हुआ, जो इस पल में यहाँ आये।।
पूर्वकाल की बात कहूँ, पद्मकल्प के आदि में। निज नाभिकमल पर बैठे हुए, ब्रह्मा को थे उपदेश दिये।।
महिमाकारी निज श्रेष्ठ ज्ञान, उनसे था जो मैंने कहा। विवेकी भागवत कहें जिसे, वही आज तुझे दे रहा।।

उद्धव बोले,
हे विदुर मुझपर हर पल, कृपा बरसती थी उनकी। यह आदर और प्रेम पूर्ण, वाणी जब उनकी मैंने सुनी।।
रोम रोम मेरा हर्ष से, रोमांचित था हो उठा। वाणी भी गद्‌गद् हो गई, नयनों से था जल बह निकला।।
उनकी करुणा देख कर, हृदय आद्र मेरा हो गया। कर जोड़ी कर श्री हरि से, फिर मैंने इस प्रकार कहा।।

हे प्रभु आपके चरण कमल, की सेवा के जो अनुरागी। काम अर्थ धर्म मोक्ष, नहीं जग में उन्हें दुर्लभ कुछ भी।।
तथापि कृपा से आपकी, नहीं इन सब की कोई स्पृहा मुझे। तव चरण कमल की सेवा को, यह चित्त हर पल लालायित है।।

नि:स्पृह सर्वथा आप हैं, फिर भी निरन्तर कर्म करें। अजन्मा होकर भी स्वयं, इस धरती पर जन्म लें।।
काल स्वरूप स्वयं आप, पर शत्रु के डर से भागें। द्वारिका के दुर्ग में जा, शत्रु से छिपकर आप रहें।।
आत्माराम हैं आप स्वयं, षोड्‌ष सहस्र पर पत्नियां। विचित्र चरित यह देखकर, भ्रमित रहें विद्वत्त मतियां।।

अखण्ड अभेद अविछिन्न रूप, स्वयं प्रभु हैं सर्व सामर्थ। फिर भी मुझ अकिंचन् से, पूछते थे मेरी सम्मत्त।।
साधारण सरल से जीव समान, हो सावधान पुकारते। आपकी मनमोहक लीला, हम हो के चकित निहारते।।
आपके गुह्य रहस्य को, अनावृत्त जिसने किया। ऐसा दिव्य ज्ञान आपने, था श्री ब्रह्मा जी को दिया।।
यदि वह योग्य हो मेरे लिये, तो आप मुझे भी सुनाइये। भव सागर को सहज तरुं, अब ऐसी विधि बताइये।।

इस प्रकार निज हृदयका, जब भाव निवेदित मैंने किया। कमल नयन श्री कृष्ण ने, मुझे निज स्वरूप उपदेश दिया।।
जगद्‌गुरु श्री कृष्ण से सुन, आत्मोपलब्धि के साधन। श्री चरणों की वन्दना की, और उनकी ली परिक्रमा कर।।
यहाँ पे हूँ मैं आ पहुँचा, पर चित्त है आकुल हुआ। उनके विरह की अग्नि में, पल छिन मैं व्याकुल हुआ।।

पहले तो उनके दर्शन पा, मैं नित्य आनन्दित रहता था। विरह व्यथा ने इस पल तो, पीड़ित अत्यन्त है कर दिया।।
उनका अति प्रिय क्षेत्र जो, बद्रिका धाम हूँ जा रहा। ऋषि नारायण और श्री नर, जहाँ दोनों का अनुग्रह बना।।
दोनों ऋषि बहुकाल से, सब पर कृपा करते हुए। परहित कठिन तपस्या में, ही नित्य हैं लगे हुए।।
शुकदेव बोले,
इस प्रकार उद्धव से सुनी, जब निज बन्धु के विनाश की। असह्य समाचार यह सुन, श्री विदुर का मन उदास हुआ।।

महात्मा विदुर ने उस समय, ज्ञान का ही आश्रय लिया। ज्ञान द्वारा उस शोक को, शान्त उन्होंने कर दिया।।
श्री कृष्ण के अति प्रिय, महाभागवत श्री उद्धव थे। प्रधान चरित उस लीला के, जब बद्रिकाश्रम ओर बढ़े।।
तब कुरुश्रेष्ठ श्री विदुर ने, उनसे यह प्रश्न पूछा। श्रद्धा पूर्ण हृदय लिये, निज संशय उसने चरण धरा।।

विदुर बोले,
योगेश्वर श्री कृष्ण ने, परम ज्ञान कहा आपसे। निज गुह्य रहस्य को प्रकट कर, आख्यान किया जो आपसे।।
कृपा करी उद्धव कहें हमें, यह विनती आपसे करते हैं। प्रभु सेवक तो निज सेवकों के, कल्याण हेतु ही विचरते हैं।।

उद्धव बोले,
इस तत्वज्ञान की प्राप्ति हेतु, मुनिवर मैत्रेय की सेवा करें। श्री हरि का यह दिव्य रहस्य, मैत्रेय ऋषि से आप सुनें।।
इस मर्त्यलोक को छोड़कर, श्री हरि थे जब जा रहे। मेरे सामने ही उन्होने, मैत्रेय को यह आदेश दिये।।
उपदेश वह देकर आपको, रहस्य हरि का सुझायेंगे। श्री मैत्रेय ही आपको, यह तत्व की बात बतायेंगे।।

शुकदेव बोले,
स्वामी कृष्ण के गुणों की, जब विदुर से इस विधि चर्चा हुई। उद्धव जी की वियोग जनित, विरह व्यथा कुछ शान्त हुई।।
यमुना तीरे उस सुधा पान में, क्षण समान रात्री बीती। फिर चल दिये उद्धव यात्रा पर, प्रात: काल के होते ही।।

परीक्षित बोले,
भोज वंश और वृष्णी कुल, के सभी रथी और यूथपति। नष्ट सभी थे हो गए, उन यूथपतियों के भी पति।।
त्रिलोकी नाथ श्री हरि ने भी, निज विग्रह का त्याग किया। सबसे प्रभुम श्री उद्धव का, तन फिर कैसे बचा रहा?

शुकदेव बोले,
जिनकी इच्छा त्रिलोकी में, कभी व्यर्थ नहीं हो सकती। काल निमित्त बना उन्होने, थी ब्राह्मण शाप की रूप धरी।।
यादव कुल का संहार करी, जब विग्रह निज वह त्यजने लगे। श्री हरि ने ऐसे समय, कुछ इस प्रकार विचार किये।।

अब इस लोक को त्यजकर के, मैं स्वधाम हूँ जा रहा। संयमी श्री उद्धव को ही, ज्ञान पात्र हूँ पा रहा।।
मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं, किसी भाँति भी श्री उद्धव। आत्म विजयी वह आप हैं, नहीं होते विषयों से विचलित।।
इस कारण कुछ काल तक, भी वह जग में बने रहें। लोगों को मेरे ज्ञान की, शिक्षा देते हुए विचरें।।

जगद्गुरु श्री कृष्ण तो हैं, वेदों का भी मूल कारण। उनके आदेश को सुन उद्धव, ने किया उसे सीस धारण।।
बद्रिकाश्रम में जाकर, वह कठिन साधना करने लगे। समाधि योग द्वारा हरि की, परम अराधना करने लगे।।

निज लीला से ही कृष्ण ने, अपना विग्रह था प्रकट किया। कुरुश्रेष्ठ परीक्षित हे, लीला से उसे समेट लिया।।
अन्तर्धान होना भी उनका, उत्साह वर्धक धीरों के लिये। अति दुष्कर यह बन आया, पशु तुल्य अधीरों के लिये।।
परम भागवत उद्धव के, मुख से यह सब वृतान्त सुनी। श्लाघा योग्य कर्म उनके, और अन्तर्धान की बात सुनी।।
परम धाम जाते हुए, श्री हरि ने मुझको याद किया। यह सोच कर श्री विदुर का, हृदय प्रेम से भर आया।।
उद्धव जी जब छोड़ उन्हें, बद्रिकाश्रम चले गये। श्री विदुर प्रेम में विह्वल हो, अश्रु विमोचन करने लगे।।

२) विदुर और मैत्रेय मुनिकी हरिद्वार में भेंट और परस्पर संवाद

तत्पश्चात् श्री विदुर जी, यमुना के तट चलते चलते। सिद्ध शिरोमणि आप स्वयं, गंगा जी के तट पर पहुंचे।।
उस तट पर ऋषियों में, श्रेष्ठ मैत्रेय रहते थे। मानो वह श्री विदुर की, प्रतीक्षा में ही बैठे थे।।
शुकदेव बोले,
परम ज्ञानी मैत्रेय मुनि, थे हरिद्वार में विराजमान्। भगवद्भक्ति से निर्मल चित्त, हो श्री विदुर पधारे वहाँ।।
मुनिवर के गुण और शील देख, अभितृप्त श्री विदुर हुए। निज मन में जिज्ञासा पूर्ण, प्रश्न जो थे वह चरण धरे।।

विदुर बोले,
हे भगवन् इस संसार में, सुख के लिये सब कर्म करें। पर दु:ख उनका न दूर होए, और न ही उनको सुख मिले।।
ऐसे कर्मों से तो उनका, दु:ख ही बढ़ता जाता है। सुख तो स्वप्नवत् ही वहां, बहुत दूर रह जाता है।।
इस विषय में आप ही, कहें उचित कर्त्तव्य है क्या? कृपा करके इसमें आप, मार्गदर्शन करें मेरा।।

हतभागी जो इस जग में, कृष्ण विमुख होकर रहें। अधर्म मार्ग पर वह चलें, और अति वह दु:खी रहें।।
उनपर कृपा करने हेतु, भगवद्भक्त जग में विचरें। भाग्यशाली जो आप सम, वह उनको पथ पे डाल दें।।
हे साधुश्रेष्ठ मुझे शान्तिप्रद, उस साधन का उपदेश दें। अनुसरण किये जिसका हरि, निज भक्त हृदय में आ बैठें।।
विराजमान् हों वहां प्रभु, सनातन ज्ञान वह उसको दें। जिसके आधार पे भक्त वह, अपरोक्ष स्वरूप का अनुभव ले।।

सर्वेश्वर त्रिलोक नियन्ता, परम स्वतंत्र हरि आप हैं। अवतार ग्रहण कर वही प्रभु, निज लीला विस्तार हैं।।
नित्य अकर्ता होकर भी, रचें सृष्टि कल्प के आदि में। स्थापित करके इसे पुन:, जीवों का पोषण करें।।
फिर ज्यों निज हृदयाकाश में, लीन इसे कर लेते हैं। योगमाया के आश्रय वह, शयनवृत्ति शून्य हो करते हैं।।
ज्यों योगेश्वर श्री हरि हैं, स्वयं अखण्ड और अविभाजित। फिर भी सृष्टि के कण में, रहें अन्तर्यामी सदा प्रविष्ट।।
हर रूप में व्याप्त वह, अनेकों रूप किस प्रकार धरें? यह रहस्य सुझायें आप, सब लीला वह किस प्रकार करें?

ब्राह्मण गौ और देवता, इन सबके कल्याण हेतु। अनेकों रूप धारण करके, करें दिव्य कर्म लीला हेतु।।
कृपा करी के आप हमें, वह सब वृतान्त सुनाइये। यशस्वी गण के मुकुट मणि, हरि लीलामृत पिलाइये।।
उस सुधा पान से बार बार, नहीं तृषा शान्त मेरी होती। उस मकरन्द के पास से, नहीं मेरे मन की तृप्ति होती।।

भगवान आप ही स्वामी हैं, समस्त लोकपतियों के। लोकपाल और लोकालोक, पर्वत के बाह्य भागों के।।
जिसमें विभिन्न भाँति के जीव, कर्मानुसार ही भिन्न भासें। कृपया हमें सुनाइये, किन तत्वों से वह सब रचें।।

विश्व रचयिता नारायण, स्वयंभू वह आप हैं। स्वभाव कर्म रूप नाम, किस विध रचें प्रजा के हैं?
हे द्विजश्रेष्ठ श्री व्यास के, मुख से तो कई बार सुना। ऊंच नीच वर्णाश्रम धर्म, इन सबका विस्तार सुना।।
पर कृष्ण कथामृत के सिवा, कोई अन्य रुचि अब नहीं रही। क्षणभंगुर सुखद धर्मों से, मेरी वृत्ति अब उठ गई।।

जिनके श्री चरण ही तीर्थ हैं, उन महापावनी श्री हरि के। गुणगान से तृप्त कौन होगा, अब आप उन्हीं की बात कहें।।
आप समान साधु जन की, सभा में भी उनका कीर्तन हो। नारदादि महात्मन् भी, उनके कीर्तन से पावन हों।।

जब पावनकर हरिनाम यह, जीव के कानों में जाये। गृह और मोह आसक्ति के, बन्धन सब उसके कट जायें।।

प्रिय सखा तव व्यास देव, मुनिवर कृष्णद्वैपायन ने। महाभारत का ग्रंथ रचा, प्रभु के गुणगान की इच्छा से।।
विषय सुख का उल्लेख भी, वहां एक लक्ष्य लेकर किया। प्रभु की कथा में लगें जीव, इस कारण सब कह दिया।।
श्रद्धायुक्त हृदय में जब, भगवत्कथा घर करती है। अन्य सभी विषयों से उसे, विरक्त ही फिर यह करती है।।
श्री हरि चरण के चिन्तन में, वह नित्य निमग्न ही रहता है। उस पुरुष के सारे दु:खों का, तत्काल अन्त हो जाता है।।

मुझको तो खेद है उनके लिये, शोचनीय मन्दभागी जो। पूर्व जन्म के पापों से, हुए हरि कथा से विमुख जो।।
अनमोल जीवन यह उनका, नित्य महाकाल का ग्रास बना। वाणी देह और मन सभी, व्यर्थ की ही बातों में सना।।
वाद विवाद व्यर्थ चेष्टा, व्यर्थ चिन्तन में लगे रहें। अति दुर्लभ मानुष जन्म को, कौड़ी के मोल गंवा हैं रहे।।

दीनबन्धु हैं ऋषि मैत्रेय, आप अब इतनी कृपा करें। भंवरेवत् ही आप स्वयं, शुद्ध सार को ग्रहण करें।।
इस लौकिक कथाओं से, सार शहद सम ही ले लें। पवनकीर्ति श्री हरि कथा, को अब हमरे लिये कहें।।
विश्व की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय करने कारण। स्वीकार करी अपनी माया, अनेकों रूप किये धारण।।
सर्वेश्वर ने अवतार ले, लौकिक जो लीलाएँ कीं। कृपा करी भगवन् मुझे, आप सुनाएं वह सब ही।।
शुकदेव बोले,
जीवों के कल्याण हेतु, प्रार्थना विदुर ने जब कीनी। मुनि श्रेष्ठ मैत्रेय ने तब, सम्मान सहित उन्हें कथा कीनी।।
मैत्रेय बोले,
साधु स्वभाव श्री विदुर हे, यह प्रश्न जो पूछा आपने। सब जीवों पर अनुग्रह कर, सर्वोत्तम काज किया आपने।।
निरन्तर आपका चित्त तो, श्री हरि में ही है टिका। इस संसार में भी इससे, आपका सुयश ही फैलेगा।।
श्री व्यास देव के औरस पुत्र, हैं स्वयं आप ही। अनन्य भक्त श्री हरि के हैं, इसमें कोई बड़ी बात नहीं।।

प्रजा को नित्य ही दण्ड जो दें, श्री यमराज वह आप हैं। माण्डव्य ऋषि के शाप से, इस धरा पे उतरे आप हैं।।
विचित्रवीर्य की पत्नी की, दासी के गर्भ सों जन्म लिया। व्यास देव के वीर्य ने, ही तो है यह रूप धरा।।

श्री प्रभु और उन भक्तों के, हैं प्रिय आप सर्वदा ही। निज धाम को जब श्री हरि गए, उन्होने मुझको यह आज्ञा दी।।
आपके लिये ही ज्ञान का, आख्यान अब मैं करूँ। गुह्य रहस्य हरि का जो, उसको आपके लिये कहूँ।।
जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और लय के कारण जो। योगमाया से रूप धरा, श्री हरि ने विस्तृत लीला की।।
भिन्न भिन्न अवतारों का, अब मैं वर्णन करता हूँ। श्री विदुर आपके हेतु ही, प्रकट उन्हें मैं करता हूँ।।

सर्वेश्वर परमात्मा ही, थे एको सृष्टि रचना पूर्व। द्रष्टा और दृश्य का भेद न था, इस सृष्टि रचना के पूर्व।।
नाना वृत्तियों के भेद से, अनेकता जो है दीख रही। सृष्टि काल में उनके सिवा, अन्य नहीं यह कुछ भी थी।।
यह भी वही थे आप स्वयं, एकाकी एको ही वह थे। दूजा उन सम कोई न था, बस स्वयं ही जानो एक थे।।

द्रष्टा होकर आप स्वयं, चहुँ ओर जब निहारे थे। दृश्य कोई भी न देखा, अद्वितीय प्रकाशित स्वयं ही थे।।
ऐसी अवस्था में निज को, असत् समान वह माने थे। सब शक्तियां थीं लय हुईं, वास्तव में वह असत् न थे।।

ज्ञान भी लय अवस्था में, ही था उनका पड़ा हुआ। वास्तव में उस ज्ञान का, कभी भी लोप था नहीं हुआ।।

द्रष्टा और दृश्य का, अनुसन्धान जो करती है। कार्य और कारण स्वरूप, माया शक्ति वह ही है।।
भाव अभाव स्वरूपा यह, अनिर्वचनीय माया है। हे विदुर इससे ही तो, विश्व उभर सब आया है।।
काल शक्ति से त्रिगुणमयी, माया में जब विक्षेप हुआ। इन्द्रियातीत जो चिन्मय रूप, प्रभु ने पुरुष वह रूप धरा।।
चिदाभास के रूप में, स्थापित निज बीज को वहाँ किया। इसी भाँति हे महाभाग, सृष्टि क्रम उत्पन्न हुआ।।

महाकाल की प्रेरणा से, प्रकट हुआ तब महतत्त्व। अव्यक्त रूप जो माया थी, उसने लिया यह रूप धर।।
मिथ्या अज्ञान का नाशक वह, विज्ञान स्वरूप वह स्वयं था। सूक्ष्म रूप में आप में स्थित, प्रपंच प्रकट कारक यह था।।
फिर चिदाभास गुण और काल, इन सबके अधीन हुआ। प्रभु की दृष्टि जब पड़ी, महत्तत्त्व रूप अपना बदला।।

अहंकार उत्पन्न हुआ, महत्तत्त्व की विकृति से। कार्य कारण और कर्ता, इसने तीनों रूप धरे।।
भूत इन्द्रियां और मन का, अहंकार ही कारण है। विभिन्न रूप में बंटकर के, स्वयं करे इन्हें धारण है।।

उस अहंकार के भी, तीन रूप विकार हैं। सत्त्व रजस् और तामस् इनके तीन प्रकार हैं।।
अहं तत्व में पुन:, विकार जब उत्पन्न हुआ। अहंकार से ही तो फिर, मन ने जाकर रूप धरा।।
जिनसे विषयों का ज्ञान हो, इन्द्रियों के देव अधिष्ठाता। रजोमय वह रूप है, इस ही अहंकार का।।

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, उत्पन्न हुईं तैजस् अहं से। सूक्ष्म का कारण शब्द तन्मात्र, हुआ पैदा तामस अहं से।।
उससे उत्पन्न पुन: हुआ, आकाश रूप ही जिसे कहें। यह आकाश दृष्टान्त रूप में, बोध आत्म का करवाये।।
आकाश पे जब दृष्टि पड़ी, परमात्म भगवान की। काल माया और चिदाभास, के योग से स्पर्श तन्मात्र हुई।।
उनमें विकार जब आ गया, वायु की उत्पत्ति हुई। इसी विधि यह सृष्टि रचना, क्रमश: ही चलती रही।।

आकाश सहित प्रबल वायु, में विकार जब पुन: उठा। रूप तन्मात्रा रची गई, वा सों प्रकाशक तेज उठा।।
फिर परमात्मा की दृष्टि से, नव प्रक्रिया आरम्भ हुई। वायु युक्त तेज ने काल, माया चिदंश से योग की।।
इससे जो विकार उठा, रस तन्मात्र का कार्य बना। जल रूप फिर प्रकट हुआ, इस तन्मात्र का कार्य जो था।।

तेजयुक्त जल पर जब, ब्रह्म का दृष्टिपात हुआ। काल माया चित् अंश मिली, गन्ध गुणमयी पृथ्वी को रचा।।
आकाशादि भूतों में से, जो जो भूत तत: उपजें। क्रमश: निज पूर्वज भूतों के, गुण भी उनमें अनुगत रहें।।
विकार इस महत्तत्त्व के, विक्षेप और चेतना अंश। वशिष्ठ देव गण जिन्हें कहें, हरि के ही तो हैं वह अंश।।
पृथक् पृथक् रहने कारण, नहीं सफल हुए निज कार्य में। विश्व रचना जब नहीं हुई, तो प्रभु से विनती करने लगे।।
देव बोले,
हे प्रभु आपके चरण कमल, की वन्दना हम करें। शरणागत जीवों के यह, पाप छत्रवत् दूर करें।।
इनके आसरे ही यति गण, मुक्त हों सारे दु:खों से। भवसागर के कठिन ताप, वह तर जायें सुगमता से।।
हे जगत् रचयिता जगदीश्वर, त्रैताप से हैं व्याकुल सब ही। इस कारण ही जीवों को, नहीं तनिक शान्ति भी मिलती।।
यह देख के श्री हरि हे, हम आपकी शरण में आये हैं। ज्ञानमयी उस छाया को, ही अपना आश्रम पाये हैं।

वेदमन्त्र रूपा पक्षिन् का, आश्रय है मुख आप का। एकाकी मुनिवर उनकी राह, अनुसन्धान करें आप का।।

पाप नाशिनी नदियों में, है सर्वश्रेष्ठ स्थान जिनका। गंगा उद्गम स्थल चरण कमल, का ही लें हम आसरा।।
आपके चवरण कमल की चौकी, का धारण करें आश्रय हम। श्रद्धा से श्रवण कीर्तन भक्ति, राह शुद्ध हुआ जो अन्त:करण।।
यहाँ धारण करके चरण कमल, वैराग्य पुष्ट हो जाता है। वैराग्य से पुष्टित हुआ ज्ञान, वह परम धीर हो जाता है।।

हे प्रभु सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कारण। ही तो आप अवतार लें, करें अनेक रूप धारण।।
आपके ही श्री चरणों की, हम सब सेवक शरण गहें। आपका सिमरन् जो करें, अभय दान उन भक्त को दें।।

देह गेह आदि यह तो, हैं सब तुच्छ पदार्थ ही। इनसे सम्बन्धित जो भी है, उसकी तो है अति गौण गति।।
अहंता ममता का इनमें, जो दुराग्रह दृढ़ रखें। तन में बसें अन्तर्यामी, पर उनके लिये अति दूर रहें।।
सबमें व्याप्त उन श्री हरि के, चरणारविन्द को हम भजें। सब तुच्छ पदार्थ त्यज करके, हम तो श्रीहरि की शरण गहें।।

भक्त जन श्री चरणों के, नित्य ही अनुरागी हैं। उन भक्त का दर्शन कैसे पायें, जो चरण विमुख मन्दभागी हैं।।
इन्द्रिय विषय आसक्ति में, जिनका मन नित्य है भटक रहा। बाह्यमुखी यह पामर जन, न जाने चरण कमल शोभा।।
कथामृत पान से भक्ति वेग ने, जिनका हृदय निर्मल किया। वैराग्य ही जिसका सार है, उस आत्म ज्ञान को प्राप्त किया।।
वह अनायास ही आपके, वैकुण्ठ धाम को पाते हैं। योगी ध्यानी तपी ज्ञानी तो, अति दुर्लभ ही उसे पाते हैं।।

अन्य धीर गण चित्त वृत्ति, निरोध का आसरा लेकर के। बलवती माया को जीतें, आप में ही फिर लय हो के।।
बहुत कठिन है पथ उनका, अति श्रम से वह आते हैं। आपके सेवक सहज में ही, वह परम गति पा जाते हैं।।

सृष्टि रचना की इच्छा से, त्रिगुणमयी देवों को रचा। विभिन्न स्वभाव के वशीभूत, ही तो रहे जीवन प्रवाह।।
इसके कारण ही आपसे, हम सब मिल नहीं पाते हैं। इसके द्वारा तब क्रीड़ामय, ब्रह्माण्ड को रचते जाते हैं।।
यही राह का विघ्न बने, समर्पण हम न कर पायें। आप में लय हो जाने को, निज को असमर्थ ही हम पायें।।

हे अजन्मा प्रभु आप, अब ऐसी कोई विधि करें। इस ब्रह्माण्ड को रचकर हम, समय पे भोग अर्पण करें।।
जहाँ पे स्थित हो हम सब भी, यथायोग्य अन्न ग्रहण करें। यह सब जीव भी सब विधि, सारे विघ्नों से दूर रहें।।
आप और हम दोनों को ही, समर्पित भोग यह जीव करें। ऐसा कोई उपाय करें, निज अन्न यह भक्षण करें।।

सर्वथा निर्विकार आप, परम पुरुष पुराण हैं। अन्य कार्य वर्ग सहित, हम देवों के भी कारण हैं।।
त्रैगुण जन्मादि कर्मों की, कारण रूप जो है माया। चिदाभास रूप में उसमें ही, आपका वीर्य उभर आया।।
अजन्मा होते हुए भी प्रभु, आपने है यह खेल रचना। माया शक्ति के ही तो, गर्भ रूप में बीज धरा।।

हे परमात्म देव अब, चरण पड़ी हम विनती करें। जिस कारज करन हेतु जन्मे, कहें उस सम्बन्ध में क्या करें?
महत्तत्त्व आदि देव गण जो, अनुग्रह हो हमपर आपका। ब्रह्माण्ड रचना के लए, तव क्रिया शक्ति का आसरा।।
साथ साथ ही उसके प्रभु, ज्ञान शक्ति भी दीजिये। इतनी कृपा करें हमपर, चरणानुरक्ति दीजिये।।

३) विराट शरीर की उत्पत्ति

महत्तत्त्वादि शक्तियां, संगठन के अभाव से। विश्व सृजन के कार्य में, असमर्थ थे हो रहे।।
सर्व समर्थ प्रभु ने, जब देखा इस सत्य को। काल को स्वीकार कर, उन्होने तब नव कार्य कियो।।

महत्तत्त्व अहंकार संग, पंचभूत सह तन्मात्रा। त्रयोविंश समुदाय बना, मिली मन सहित इन्द्रियाँ ग्यारह।।
एक साथ ही इन सबमें, श्री हरि स्वयं प्रविष्ट हुए। असमर्थ तत्त्वन् को फिर, हरि क्रियान्वित कर दिये।।

जीवों के सुप्त अदृष्ट को, उन्होने फिर जागृत किया। विलग हुए उस तत्त्व समूह को, क्रिया शक्ति से मिला दिया।।
जब प्रभु ने अदृष्ट को, क्रिया उन्मुख पुन: किया। उन त्रयोविंश तत्त्व समूह ने, अपना कार्य आरम्भ किया।।
प्रभु से प्रेरणा पाकर ही, उन्होने निज अंशों द्वारा। अधिपुरुष विराट् को, ही फिर उत्पन्न कर दिया।।

अंश रूप से जब प्रभु, अपने तन में हुए प्रविष्ट। तब महत्तत्त्वादि स्त्रष्टा, समुदाय मिली हुए एकजुष्ठ।।
इन तत्त्वों का परिणाम, ही तो हैं विराट आप। चर अचर जड़ चेतन यह, जिनमें ही सब जग है व्याप्त।।
जल के भीतर अण्ड रूप, में जो आश्रय स्थान था। हिरण्मय विराट् पुरुष, सब जीवों सहित वहीं पे रहा।।
एक सहस्त्र दिव्य वर्ष, तक वहीं पे वास किया। बीज रूप में सम्पूर्ण, जीव वृन्द भी संग था।।

तत्त्व जो सृष्टि रचना करें, उनका वह ही गर्भ भया। ज्ञान क्रिया और आत्म शक्ति, से स्वयं सम्पन्न था।।
इस शक्ति से क्रमश: उसने, अपने ही विभाग किए। एक हृदय का रूप धरा, और दशधा प्राणा भये।।
श्री हरि ने निज को पुन:, विभाजित किया तीन रूप में। आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक त्रै रूप थे।।

विराट पुरुष यह सर्वप्रथम, प्रकटा जीव ही बनकर के। विद्यमान सब जीवों में, रहे आत्म के रूप में।।
इस कारण जीव रूप है, अंश ही परमात्म का। प्रथम अभिव्यक्ति परम की, आदि अवतार है श्री हरि का।।
सम्पूर्ण भूत समुदाय जो, प्रकाशित इससें ही तो हो। सब रूपों में ही प्रकट, विराट् आप स्वयं ही हो।।
अध्यात्म अधिदैव और, अधिभूत रूप से तीन हैं। प्राण रूप से दस यह, और हृदय रूप से एक हैं।।

(दस इन्द्रियों के सहित मन, यह ही जानो अध्यात्म है। इन्द्रियादि के विषय हैं जो, यह ही तो अधिभूत हैं।।
अधिष्ठाता देव जो इन्द्रियों के, अधिदैव इन्हें जान लो। अध्यात्म अधिभूत है, अधिदैव का यह विस्तार हो।।
प्राण अपान उदान समान, व्यान नाग कृकल कूर्म जो। देवदत्त और धनंजय, दस प्राण इन्हीं को जान लो)।।
विश्वस्त्रष्टा महतत्त्वादि के, अधिपति श्री भगवान ने। तत्त्वों की प्रार्थना याद कर, किया उन्हें प्रकाशित आप ने।।
उनकी वृत्तियां जगाने को, चेतन रूप निज तेज से। जागृत किया विराट् को, प्रकाशित कर निज तेज से।।
जागृत उसके होते ही, देवताओं के लिये। अब सुनो तुम्हें कहता हूं, स्थान कितने प्रकट हुए।।

सर्वप्रथम विराट का, श्री मुख ही वहां प्रकट हुआ। लोकपाल अग्नि उसमें, वागेन्द्रिय सहित प्रविष्ट हुआ।।
यह वाक् इन्द्रिय भी, अग्नि का ही अंश है। इससें ही तो पाये जीव, वदन की सामर्थ है।।
तालु फिर उत्पन्न हुआ, उस विराट पुरुष में। लोकपाल वरनुण फिर, जाकर स्थित हुआ उसमें।।
उसका अंश रसना इन्द्रिय, भी उन संग ही आ गई। सर्व रस ग्रहण करे, है जीव का इक साधव वह ही।।

तत्पश्चात् विराट के, नासिका छिद्र प्रकट हुए। अश्विनी कुमार उन दोनों में, स्वयं फिर प्रविष्ट हुए।।
उनका अंश घ्राणेन्द्रिय भी, संग में उनके आ गई। गन्ध ग्रहण सब करने का, है जीव का माध्यम यही।।
उस विराट के देह में जब, चक्षु: द्वौ प्रकट हुए। निज अंश नेत्रेन्द्रिय सहित, वहां सूर्य देव आकर बैठे।।

लोकपति आदित्य से ही, नित्य प्रकाशित यह होएँ। विविध रूप रंग का ज्ञान, जीव को यह चक्षु: ही दें।।

फिर विराट के विग्रह में, प्राकट्य हुआ त्वचा का। निज अंश त्वक् इन्द्रिय सहित, वायु वहाँ आ स्थित हुआ।।
इस त्वक् इन्द्रिय राही जीव, स्पर्श का अनुभव कर पाये। कोमल कठोर उष्ण शीतल, इस राही ही जाने जायें।।
जब कर्ण छिद्र प्रकटे उसमें, श्रवण करने के लिये। निज अंश श्रवणेन्द्रिय सहित, दिशाओं ने वहाँ प्रवेश किए।।
इन राही ही जीव को, शब्द ज्ञान सब होता है। भला बुरा ऊँचा नीचा, इस राही सब सुनता है।।

विराट के शरीर में, चर्म फिर हुआ उत्पन्न। निज अंश रोमों सहित, औषधियाँ भी हुईं प्रपन्न।।
इन रोमों के द्वारा ही, चर्म के सब अनुभव होएँ। खुजली आदि के सब अनुभव, इस राही ही हो सकें।।
फिर विराट शरीर में, उत्पत्ति हुई लिंग की। निज अंश वीर्य के संग ही, यहां प्रजापति ने प्रवेश की।।

इस इन्द्रिय के राही जीव, आनन्द का अनुभव पाता है। प्रजापति हैं बसे यहां, प्रजनन का इससे नाता है।।
फिर गुदा इन्द्रिय प्रकट हुई, उस विराट पुरुष के। पायु अंश निज संग ले, प्रवेश किया वहाँ मित्र ने।।
इस इन्द्रिय राही ही जीव, मल त्याग नित्य करता है। जिस अन्न ने मल का रूप धरा, उसे त्यज सुख से विचरता है।।

तत्पश्चात् विराट के, हाथ उत्पन्न हो गए। ग्रहण त्याग शक्ति सहित, देवेन्द्र वहाँ स्थित भए।।
इसकी शक्ति से ही जीव, अर्जित करे निज जीविका। इन हाथों के आसरे ही, चले उसकी आजीविका।।
जब उत्पन्न श्री चरण हुए, विराट के शरीर में। निज शयक्ति गति सहित, वहाँ लोकेश्वर विष्णु प्रकटे।।
इस गति के आसरे जीव, पहुँचे निज गन्तव्य को। निर्दिष्ट स्थान पे आवागमन, गति के आसरे ही तो हो।।

विराट्पुरुष के तन में फिर, बुद्धि उत्पन्न हो गई। निज अंश बुद्धि शक्ति सहित, वहाँ ब्रह्मा ने प्रवेश करी।।
वाक्पति श्री ब्रह्मा हैं, बुद्धि शक्ति ही जान सके। इसका आश्रय लेकर जीव, ज्ञातव्य को पहचान सके।।
फिर प्रकटा हृदय इसमें, चन्द्र वहाँ जा स्थित हुआ। उसका अंश जो है यह मन, वह भी उसके संग में था।।
इस मन की शक्ति द्वारा ही, संकल्प विकल्प रूप धरें। इस मन के कारण ही तो, सकल विकार भी आ प्रकटें।।

तत्पश्चात् विराट में, अहंकार उत्पन्न हुआ। क्रिया शक्ति संग रुद्र ने, निज आश्रय में प्रवेश किया।।
इसके ही आधार पे, कर्त्तव्य जीव निज करता है। स्वीकार करी निज धर्म को, इस जग में वह विचरता है।।
अब प्राकट्य हुआ इसमें, जिसको चित्त का नाम दिया। चित्त शक्ति सहित उसमें, महत्तत्त्व ब्रह्मा स्थित हुआ।।
इस चित्तशक्ति से ही जीव, चेतनावान् हो जाता है। इस राही ही जानो जीव, विज्ञान उपलब्धि पाता है।।

विराट् पुरुष के सीस से, उत्पन्न हुआ स्वर्गलोक। उस पाद से पृथ्वी प्रकटी, और नाभि से अन्तरिक्ष लोक।।
सत्त्व रज और तम, क्रमश: इनमें बस रहे। त्रैगुण परिणाम देवता, मनुष्य और प्रेतादि भए।।
सतोगुण की प्रधानता से, देवादि बसें स्वर्ग में। रजोगुण का आधिक्य पा, जीव गौ आदि पृथ्वी में।।
तमोगुणी स्वभाव के, हैं रुद्र के पार्षद गण। स्वर्ग धरा के मध्य रहें, भूत प्रेतादि सब जन।।

इन दोनों के बीच में, हैं विराट का नाभि स्थान। अन्तरिक्ष वह लोक ही, है रुद्रन् का आश्रय स्थान।।
वेद और ब्राह्मण श्री हरि के, मुख सों ही तो हैं प्रकटे। इस कारण वह सबके गुरु, सब वर्णों में श्रेष्ठ कहें।।

क्षत्रिय वृत्ति और उस अवलम्बी, क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। विराट की भुजाओं का, ही लेकर फिर आसरा।।
यह वर्ण भी जान लो, विराट का ही अंश हो। उपद्रवों से वर्णों की, रक्षा को ही उसका जन्म हो।।

दोनों जांघों से प्रभु की, वैश्य वृत्ति उत्पन्न हुई। उससे ही वैश्य वर्ण, की फिर प्रादुर्भाव हुई।।
सबका जीवन निर्वाह हो, यही धर्म है इस वर्ण का। निज वृत्ति से ही यह वर्ण, चलाये सबकी जीविका।।
सब धर्मों की सिद्धि अर्थ, फिर प्रभु के श्री चरण से। सेवा वृत्ति प्रकटी पहले, अधिकारी शूद्र वर्ण प्रकटे।।
इस वृत्ति से श्री हरि, प्रसन्न स्वत: हो जाते हैं। सब धर्मों की सिद्धि का, मूल वह इसमें पाते हैं।

अपनी अपनी वृत्ति सहित, चहुँ वर्ण जहाँ से हैं उपजे। अपने गुरु श्री हरि का, श्रद्धापूर्वक पूजन करें।।
अपने अपने धर्मों का, अनुसरण सब करते हुए। श्री प्रभु से चित्त शुद्धि, की ही प्रार्थना कर रहे।।
हे विदुर यह विराट पुरुष, काल कर्म स्वभाव युक्त। श्री हरि की योग माया, का प्रभाव यह करे प्रकट।।
अनिर्वचनीय इसका स्वरूप, शब्दों की पकड़ में न आये। इसकी महिमा के वर्णन का, साहस कोई न कर पाये।।

तथापि प्रिय श्री विदुर सुनो, निज वाणी पावन कर पाऊँ। अन्य चर्चा से कलुषित जो, उसका मल अब धो पाऊँ।।
जो श्री गुरु मुख से सुना, और निज बुद्धि की शुद्धि हित। श्री हरि सुयश का गान करूं, आपके ही पावन निमित्त।।
महापुरुषों का है यह मत, और कहें यह सन्त सभी। पुण्य कीर्ति हरि गुणगान, है वाणी का इक लभ्य यही।।
विद्वचद जनों के श्री मुख से, कथा रस अमृत पी लेना। है लाभ यही इन कानों का, सुधा रस यह ग्रहण करना।।

हे वत्स हमारी बात ही क्या, कहें आदि कवि श्री ब्रह्मा की। एक सहस्त्र दिव्य वर्ष, रहे विचारते पक्ष सभी।।
योग परिपक्व बुद्धि से, उन्होने भी जब किया ध्यान। तो क्या वह भी पा सके, अनन्त हरि महिमा का ज्ञान?
प्रभु की मोहिनी माया तो, मोहित करती महायोगियों को। अनन्त वा गतियां भ्रमित करें, इस भव भय के रोगियों को।।
स्वयं श्री भगवान् भी, इसकी थाह न पा सकते। फिर दूजों की क्या बात कहें, कोई उसका पार कैसे पा सके।।

मन सहित यह वाणी भी, लौट ही जहाँ से आये हैं। अधिष्ठाता अहंकार के, अभिमानी रुद्र लौट आये हैं।
अधिष्ठाता सहित अन्य इन्द्रियाँ, भी पहुँच वहाँ पे न पायें। उन श्री हरि के चरणों में, पुन: पुन: सीस नवा जायें।।

४) मैत्रेय मुनिद्वारा विदुर के प्रश्नों का उत्तर

श्री मैत्रेय का सम्भाषण सुन, व्यास सुत बुद्ध विदुर ने। प्रसन्न उन्हें करते हुए, निज वाणी से यह वचन कहे।।
हे द्विजश्रेष्ठ श्री हरि तो स्वयं, बोध स्वरूपा आप हैं। सर्वथा निर्गुण हैं वह, और सर्वदा निर्विकार हैं।।
लीला मात्र भी उनके संग, सम्बन्ध गुणों का कैसे होए? क्रिया की भी वहां पहुंच नहीं, किस विध सम्भव यह मिलन होए?

कामना पूर्ण शिशु तो, दूजे संग खेल की इच्छा करे। इसी से वह प्रेरित होकर, अन्य शिशुओं संग खेला करे।।
श्री हरि तो हैं पूर्णकाम, नित्य तृप्त हैं असंग सदा। क्रीड़ा हेतु ही सही, क्यों करेंगे वह संकल्प भला?
निज माया से तीनों गुणों से, जगत् की रचना उसने करी। उसी से पालें पोसें इसे, संहार करेंगे इससे ही।।

देश काल या अवस्था से, नहीं उनका ज्ञान कभी मिट पाये। अपने आप या दूजे निमित्त, नहीं लुप्त कभी भी हो पाये।।
उनका इस माया के साथ, संयोग कैसे हो सके? माया पति वह आप स्वयं, माया में कैसे खो सकें?

समस्त क्षेत्रों में उनके, हैं साक्षी एक भगवान ही। फिर दुर्भाग्य या कर्म जनित, क्लेश क्या छू पायें कभी?
अज्ञान भ्रमित यह मन मेरा, अति खिन्न है हो रहा। मेरे मन में उत्पन्न इस मोह को, आप हरें करके कृपा।।
शुकदेव बोले,
तत्व जिज्ञासु श्री विदुर, से प्रेरणा पाकर के। मैत्रेय ने हरि हृदय में धर, हंसकर वचन कहे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
सर्वथा जो है नित्य मुक्त, और जो सबका स्वामी है। दीन बन्धी बन्धन में पड़े, आश्चर्य जनक यह कहानी है।।
युक्ति विरुद्ध सा दीखे यह, पर यही हरि की माया है। सबका स्रष्टा सबका पति, खुद ही वह बन्धकर आया है।।

ज्यों स्वान का द्रष्टा स्वप्न में, अपनासीस ही काट दे। वास्तव में कुंछ हुआ नहीं, अज्ञान के कारण सत् भासे।।
उसी विधि यह जीव भी, किसी बन्धन में न बन्ध पाये। तो भी अज्ञान के कारण ही, वह बद्धवत् सा दर्शाये।।

यदि कहो कि ईश्वर में, प्रतीति क्यों इनकी नहीं होती? तो इसके उत्तर में तुम, इतनी बात समझो मेरी।।
ज्यों चन्द्रमा की छवि, जब जल में भासित होती है। जल की क्रिया कम्प आदि, छवि में आभास सी होती है।।
आकाश में स्थित चन्द्रमा में, कोई क्रिया भी न होए। त्यों ही देहबद्ध जीव में, धर्मों की प्रतीति सी होए।।
वास्तव में परमात्म में, तो कुछ भी यह धर्म नहीं। देह बन्धन में बन्धा जीव, आत्म का तो कुछ कर्म नहीं।।

निष्काम भाव से धर्म आचरण, का अभ्यास जिसने हो किया। भगवत्कृपा से फिर जिसको, भक्ति योग हो प्राप्त हुआ।।
शनै: शनै: आवरण यह, निवृत्त उसके हो जाते हैं। माया की इस प्रतीति से, मुक्त वह नर हो जाते हैं।।
सब इन्द्रियाँ विषयों से हट, जब हरि में स्थित हो जाती हैं। साक्षभ परम आत्मा में, जब निश्चल यह टिक जाती हैं।।
निद्रा में सुप्त जीव सम, सब विकार छूट जाते हैं। राग द्वेष आदि क्लेश, सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।।

गान श्री कृष्ण के गुणों का, या श्रवण उस कीर्तन का। अनन्त दु:खों की शशि को, भी शान्त है कर देता।।
गर हृदय में चरण रज, सेवन का प्रेम कहीं जग जाये। उसके भाग्य का क्या कहना, जो प्रेम के रस में पग जाये।।
विदुर बोले,
युक्ति युक्त विवेक पूर्ण, तव वचनों के वार से। संशय मेरे सब छिन्न हुए, आपके तर्क की धार से।।
श्री हरि की स्वतंत्रता, और जीव की परतंत्रता। इन दोनों विषयों में ही, चित्त प्रवेश मेरे कर रहा।।

हे भगवन् यह बात तो, आपने पते की है कही। सर्व क्लेश प्रतीति का, आधार है प्रभु की माया ही।।
निर्मूल ही हैं क्लेश सब, और यह मिथ्या ही तो हैं। मूल कारण इस विश्व का, क्योंकि बस माया ही है।।
दो प्रकार के जीव ही, हैं सुखी इस जगत् में। एक तो जो अति मूढ़ हैं, दूजे जो हरि को पा चुके।।
इन दोनों के बीच जो, संशय से नित्य ही ग्रसित रहें। क्लेशों से आक्लान्त वह, नित्य दु:ख ही भोगा करे।।

भगवान आपकी कृपा से अब, यह निश्चय है हो गया। अनात्म वस्तुत: कुछ नहीं, केवल प्रतीत है हो रहा।।
तुमरे चरण कमल की सेवा से, अब यह भी मैं पा लूँगा। इस प्रतीति का प्रभाव, भी मैं अब हटा दूँगा।।
इन श्री चरणों की सेवा से, मधुसूदन श्री हरि के। चरण कमल की प्रीति बढ़े, आनन्द हृदय में जाग उठे।।
आवागमन के दु:ख क्लेश, यह प्रीति हर लेती है। उत्कट प्रीति प्रभु चरण में, सहज प्रसाद यह देती है।।

भगवत्प्राप्ति का सहज मार्ग, हुआ मूर्तिमान महात्मन् हैं। सर्वदा उनके यहाँ होता, श्री परमात्मन् कीर्तन है।।
पुण्यहीन पुरुष का यह, भाग्य उदय न हो पाये। अवसर चरण की सेवा का, उसे कभी न मिल पाये।।
भगवन् आपने अभी कहा, सृष्टि के प्रारम्भ में। क्रमश: महत्तत्त्वादि और, उसके विकार चरे श्री हरि ने।।

उन सब के ही अंशों से, विराट् को उत्पन्न कर दिया। फिर स्वयं पुराण पुरुष, ने प्रवेश उसमें किया।।
सहस्त्र पाद जंघायें भुजा, हैं उस महान् विराट की। आदि पुरुष उन्हें कहें वेद, विस्तृत लोक स्थित उसमें ही।।

उसमें इन्द्रिय और विषय बसें, और इन्द्रियाभिमानी देवता। संग में दशधा प्राण बसें, आपने वर्णन जिनका किया।।
इन्द्रिय तन और मन, बल, तीन प्रकार के हैं कहे। उनसे ही कहा ब्राह्मण आदि, वर्ण सब उत्पन्न हुए।।
अब आप ही अगली बात कहें, ब्रह्मा आदि विभूतियों की। जिससे हुए उत्पन्न पुत्र पौत्र, पुन: नाती और कुटुम्बी सभी।।
भाँति भाँति की प्रजा से फिर, ब्रह्माण्ड पूर्ण भर गया। यह सब विस्तार हुआ किस विध, आप ही मुझको कहें जरा।।

ब्रह्मा आदि प्रजापति के, स्वामी स्वयं ही है विराट्। कौन प्रजापति पैदा किये, कृपा करी यह कहें आप।।
सर्ग अनुसर्ग मन्वन्तरों के, अधिपति इन मनुओं की। आप ही अब मुझको कहें, किस क्रम से रचना करी।।

हे मैत्रेय मनुओं के वंश, फिर वंशधर राजाओं के। उज्ज्वल चरितों की कथा, आप ही अब सुनायें हमें।।
पृथ्वी के ऊपर और नीचे, जो जो लोक भी बसते हैं। भूलोक का भी विस्तार करें, और कहें स्थिति जहाँ रहते हैं।।
तर्यक् देव मनुज आदि, और सरीसृप सर्प आदि भी। पक्षी जरायुज स्वेदज अण्डज, और जो उपजें वह सब भी।।
यह सब प्राणी सृष्टि में, किस प्रकार उत्पन्न हुए। इन सबकी विस्तार से, कृपा करी अब हमें कहें।।

सृष्टि की रचना बेला, उत्पत्ति स्थिति संहार को। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का, रूप उन्होंने स्वयं धरयो।।
गुण अवतार निज धर कर के, लीलाएँ की कल्याणकर। श्री मुनिवर वह भी कहें, विस्तार सहित अब कृपा कर।।

वेश आचरण स्वभावानुकूल, वर्ण आश्रम का विभाग। ऋषियों के जन्म और कर्मादि, फिर वेदों का भी जो विभाग।।
यज्ञों का विस्तृत वर्णन, योग और ज्ञान का मार्ग भी। उनका साधन सांख्य मार्ग, तथा अन्य सभी साधन जो भी।।
नारद पांचरात्र आदि, और तन्त्र शास्त्र भी जिन्हें कहें। विषमता भी जो उत्पन्न हो, विभिन्न पाखण्ड मार्गों से।।

हे भगवन् अब आप ही, सविस्तार सबकी कहें। हम जैसों का आप ही, सब ओर मार्गदर्शन करें।।
उच्च वर्ण की स्त्री से, संयोग हो गौण पुरुष का। कैसी सन्तान वह उत्पन्न हो, उसका गुण प्रकार कैसा होगा?
भिन्न गुणों-कर्मों कारण, जीव की जैसी हो गतियाँ। जितनी भी भाँति की हों, उन सबकी आप कहें कृतियाँ।।

धर्म अर्थ काम और मोक्ष, की कहें अब द्विजश्रेष्ठ। परस्पर विरोधी साधनों की, बात हमें कहें हे ज्येष्ठ।।
वाणिज्य और दण्डनीति, शास्त्र श्रवण की विधि कहें। पितृगणों की सृष्टि की, फिर श्राद्ध की भी विधि कहें।।
काल चक्र में तारा गण, और ग्रह नक्षत्र की स्थिति है क्या? अलग अलग वर्णन करके, अब हमको यह समझा दें।।

दान तप और इष्टापूर्त, कर्मों के फल की कहें। प्रवास और आपत्ति में, है धर्म क्या इसकी भी कहें।।
धर्म मूल प्रभु स्वयं हैं, संतुष्ट वह किस आचरण से हों? किस पर वह अनुग्रह करें, हे अनघ आप वर्णन करो।।
दीन वत्सल श्री गुरु जन, शिष्यों और पुत्रों के लिये। उनके बिना पूछे ही, सम्मत्ति दें उनके हित में

महद् आदि तत्त्व यह, प्रलय किस विध होते हैं? योगनिद्रा में श्री प्रभु की, कौन तत्त्व जो सेवा करते हैं?
कौन कौन तत्त्व तब, लीन प्रभु में हो जायें? इन सबका विस्तार अब, आप ही हमको बतलायें।।
जीवत्व भाव का तत्त्व जो, परमेश्वर का जो स्वरूप। उपनिषदन् प्रतिपादित ज्ञान, गुरु शिष्य का है जो रूप।।
इनका आपस में योजन, क्या है आप ही बतलायें। कृपा करी इन तत्त्वों को, प्रकाशित आप ही कर जायें।।

विद्वानों ने उस ज्ञान की, प्राप्ति के क्या साधन कहे? जिन उपाय को कर करी, उपलब्ध ज्ञान यह हो सके?
ज्ञान भक्ति अथवा वैराग्य, स्वत: प्राप्त नहीं हो सकते। बिना उचित साधना किये, कोई न इन तक पहुँच सका।।
माया मोह कारण मेरी, विवेक शक्ति है क्षीण हुई। आप सुहृद् मुझ अज्ञ के, मैं तो हूं शरणां आपकी।।
हरि लीला जानने के लिये, जो जो प्रश्न हैं मैंने किये। कृपा करी हे द्विजश्रेष्ठ, उनका उत्तर मुझे दीजिये।।

हे निष्पाप श्री मैत्रेय जी, भगवत् तत्त्व उपदेश से। जन्म मृत्यु से मुक्त कर, अभय दान जो जीव को दे।।
इससे अर्जित पुण्य जो, महान् तम ही होता है। वेदज्ञान यज्ञ तप दान, सब न्यून तुला में होता है।।
सब मिलकर षोड्ष अंश, वह इसका कभी न हो पाये। सर्वोत्तम है पुण्य वही, भवभय सों पार जो कर जायें।।
शुकदेव बोले,
कुरुश्रेष्ठ श्री विदुर ने, मुनिवर से जब यह प्रश्न किये। भगवत्चर्चा को प्रेरित हो, श्री मैत्रेय अति प्रसन्न हुए।।
मुसकरा कर विदुर से, फिर वह यूं कहने लगे। पुराण विषयक प्रश्नों का, उत्तर वह देने लगे।।

५) ब्रह्माकी उत्पत्ति और सृष्टि विषयक ज्ञान

शिरोमणि भगवद्भक्तों के, लोकपाल यमराज हैं आप। पुरुवंशज हे विदुर जी, धन्य हुआ तुमरा वंश आज।।
साधु पुरुषों के लिये भी, सेवा योग्य हुआ यह वंश। पग पग पर प्रभु कीर्ति माल में, जड़ रहे आप नित्य नव रत्न।।
क्षुद्र विषय सुख कामना कर, जो जीव लें दु:खों को नित मोल। उन जीवों का दु:खहारी, आरम्भ करूँ यह पुराण अनमोल।।
संकर्षण प्रभु ने स्वयं, सनकादि को यह सुनाया था। श्री भागवत महापुराण यह, इस विधि हमने पाया था।।

अखण्ड अद्वितीय ज्ञान सम्पन्न, पाताल में थे श्री संकर्षण। सनतादि ऋषि सब, प्रपन्न हुए उनकी ही शरण।
परम पुरुषोत्तम ब्रह्म का, तत्त्व जानने के लिये। आदि देव संकर्षण से, कुमारों ने यह प्रश्न किये।
उस समय श्री शेष जी, थे भावमय पूजा निमग्न। निज आश्रम श्री हरि का, ही वह थे करते अर्चन।।
वेद भी जिनको वासुदेव, कहकर निरुपण करते हैं। उनके ध्यान में कमल नयन, श्री शेष के बन्द थे।।
सनतादि का प्रश्न सुनी, उन ज्ञानिन के आनन्द को। अर्धनिमीलित नेत्रों से, उनको श्री शेष निहार लियो।।

मन्दाकिनी के पावन जल से, थीं जिनकी जटायें भीग रहीं। ऋषियों ने निज जटाओं से, वह चरण कमल प्रक्षालन की।।
नागलोक की राजसुतायें, पूजन जिनका करती हैं। वांछित वर प्राप्ति हेतु, उपहार अनेकों धरती हैं।।
सनतादि तो मर्मज्ञ हैं, उनकी दिव्य लीलाओं के। प्रेम से गद्गद् वाणी राह, पुन: पुन: उन्होने गान किये।।
शेष प्रभु के सहस्त्रों फण, उस पल थे लहरा रहे। सहस्त्र मणि किरीटों की, रश्मिन् से जगमगा रहे।।

प्रसिद्ध है प्रभु संकर्षण ने, निवृत्ति परायण सनत् को। भागवत यह सुनाया था, श्री ब्रह्मा के नन्दन को।।

सनत्कुमार से जब पुन:, सांख्यायन मुनि ने प्रश्न किये। फिर कुमार ने कहा इसे, व्रतशील मुनि के लिये।।
परमहंसों के शिरोमणि, स्वयं श्री सांख्यायन जी। श्री हरि की विभूतिन के, वर्णन की जब इच्छा उठी।।
निज अनुगामी परम शिष्य, हमारे पूज्यवर गुरु हैं जो। पराशर और बृहस्पति को, यह श्रवण उन्होने दान दियो।।

तत्पश्चात् अति करुणामय, पराशर जी ने मुझे कहा। पुलस्त्य ऋषि के कहने पर, आदि पुराण की कीनी कथा।।
हे वत्स देख तुझको अनुगत, और तेरी श्रद्धा देख करी। वही आज कहता हूँ तुझे, है निहित जिसमें परम गति।।

सृष्टि रचना के पूर्व जब, जल में था विश्व निमग्न हुआ। श्री नारायण का एकाकी, शयन था शेष पे हो रहा।।
ले योगनिद्रा का आसरा, थे अपने नयन वह मूंदे हुए। किन्तु निज ज्ञान शक्ति को, ज्यों का त्यों थे रखे हुए।।
अवकाश ले सृष्टि कर्म से, आत्म आनन्द में मग्न थे। कोई क्रिया किसी भाँति, उनको कभी न छू सके।।

अग्नि ज्यों निज ज्वलन शक्ति ले, निहित काष्ठ में ही रहे। सब प्राणिन् के सूक्ष्मतन, श्री हरि निज में लय करें।।
निज आधार भूत जल में, फिर श्री हरि ने शयन किया। सृष्टि क्रम पुन: रचने को, बस काल को ही जाग्रत रखा।।

इस विधि स्वरूप भूत अपनी, चित्त शक्ति को साथ ले। एक सहस्र चतुर्युग तक, जल में शयन ही करते रहे।।
तदनन्तर उनसे नियुक्त, उनकी ही काल शक्ति ने। प्रेरित जब उनको किया, जीवों की कर्म प्रवृत्ति में।।
तब हरि ने अपने तन में, लीन अनन्त लोक देखे। उनकी ही महिमा से यह, थे लय अवस्था में पड़े।।

प्रभु दृष्टि जब निज में निहित, लिंगादि सूक्ष्म तत्व पे पड़ी। काल आश्रित रजोगुण से, तब विकार उनमेंउठी।।
सृष्टि रचना के निमित्त, तब उन्होने उद्यम किया। उनके नाभि देश से, वह पुन: प्रस्फुटित हुआ।।
जागृत करने को कर्म शक्ति, काल का ही यह खेल था। श्री विष्णु की नाभि से, सूक्ष्म तत्व वह प्रकट हुआ।।
कमल कोश के रूप में, सहसा वह ऊपर उठा। सूर्य सम निज तेज से उस, देदीप्यमान जल को किया।।

सम्पूर्ण गण उस कमल कोश, से थे प्रकाशित हो रहे। उस सर्वलोकमय कमल में, अन्तर्यामी प्रविष्ट हुए।।
वेदमय विधाता तब, हो मूर्तिमान् वहाँ प्रकटे। ब्रह्माजी को लोग सब, इस कारण ही स्वयंभू कहें।।
उस कमलासन पर बैठ कर, जब कोई लोक उन्हे न देखा। खुले नेत्र से ब्रह्मा जी ने, अपने चहुँ ओर देखा।।
सर्वदिश आकाश में, गर्दन घुमा देखन लगे। इससे ही चहुँ दिशा में, चतुर्मुख उनके हुए।।

प्रलय कालीन पवन के, वेग से थी जो उछल रहीं। उन तरंग मालाओं से, थी कमलासन ऊपर उठी।।
उस पर बैठे श्री आदि देव, ब्रह्मा जी कुछ न जान सके। तत्त्व रूपा कमल और, रहस्य न निज पहचान सके।।

तब श्री आदि ब्रह्मा ने, अपने ही आन्तर सोचा। कौन हूं मैं जो कमल कर्णिका, पर हूं इस पर बैठा हुआ?
बिन अन्य किसी आधार के, यह कमल भी कैसे पैदा हुआ? जल में सहसा यह कमल, उत्पन्न कैसे हो गया?
कोई आधार तो चाहिए, जिसके ऊपर स्थित यह हो। निश्चित ही मूल कोई होगा, जिसका यह परिणाम हो।।

ऐसा विचार करके ब्रह्मा, उस नाल के सूक्ष्म छिद्रों में। होकर सूक्ष्म रूप स्वयं, उस जल में जाकर घुसे।।
नाल कमल आधार को, वहाँ पे जब थे खोज रहे। नाभिप्रदेश के पास पहुँच, कर भी न उसे पा सके।।
उस गहन तिमिर में अपने जन्म, स्थान को खोजते-खोजते। ब्रह्मा जी को इस विधि, हे विदुर दीर्घ काल बीते।।

यह काल ही है श्री हरि का, चक्र जो कहलाता है। प्राणियों को भयभीत कर, आयु वह क्षीण कर जाता है।।

विफल मनोरथ होकर के, अन्त में वहाँ से लौट आये। आधारभूत निज कमलासन, पर आकर वह बैठ गए।।
शनै: शनै: निज प्राण वायु, फिर उन्होने सब जीत लिये। संकल्प रहित निज चित्त को कर, वह समाधि स्थित हुए।।
इस विध पुरुष की पूर्ण आयु, के बराबर काल तक। दिव्य शत वर्ष पर्यंत, भली भाँति योगाभ्यास कर।।
ब्रह्माजी ने तत्पश्चात्, ज्ञान को फिर प्राप्त किया। अधिष्ठान नहीं जो मिल था रहा, निज आन्तर में ही वह दीखा।।

दिव्य दृश्य को ब्रह्मा जी ने, हरि कृपा से देख लिया। प्रलय कालीन जल में तब, उन शेष की शैय्या को देखा।।
कमल नाल सम गौर विशाल, विग्रह की शैय्या बने। पुरुषोत्तम प्रभु आप वहां, अकेले ही थे लेट रहे।।
दस सहस्त्र फण शेष के, थे छत्र सम लहरा रहे। प्रत्येक मस्तक की उनके, किरीट थे शोभा पा रहे।।
उनमें जड़ित मणियों के, परम दिव्य प्रकाश से। चहुं दिशा के अन्धकार, थे दूर स्वत: ही हो गए।।

उस श्याम तनु आभा सम्मुख, सब प्रकाश फीके पड़े। मरकत मणि के पर्वत की, शोभा भी लज्जित हो जाये।।
कटितट की शोभा उनकी, वर्णित कोई कैसे करे। सन्ध्या बेला पर्वतों पर, हिरण्य मेघ भी फीके लगें।।
सीस पे धरें जो स्वर्ण मुकुट, स्वर्णिम शिखर भएं कान्ति हीन। रत्न प्रपात औषधि पुष्प, वनमाल सम्मुख सब हों श्री हीन।।
भुजण्ड वहां के वेणुदण्ड, को हैं न्यून दिखा रहे। उनके पाद वृक्षों को ज्यों, तिरस्कृत करते जा रहे।।

निज परिमाण में वह विग्रह, त्रिलोकी को है नाप रहा। मानो लम्बाई चौड़ाई में, हो त्रिलोक संग्रह हुआ।।
निज शोभा से दिव्य आभूषण, और वस्त्र शोभित करें। फिर भी अपने तन पर वह, पीताम्बर हैं धार रहे।।

अपनी अपनी कामना ले, विभिन्न मार्गों से आते। निज श्रद्धा अनुकूल ही वह, श्री हरि के दर्शन पाते।।
चरण कमल उन श्री प्रभु के, हैं भक्त हेतु इक कल्प तरु। उनकी ही अभिलाषा जिन्हें, देते दर्शन कृपालु प्रभु।।
आंगुली दल नखचन्द्र वा, चन्द्रिका से नित्य चमकते हैं। उस प्रकाश में अलग अलग, स्पष्ट ही सब दिखते हैं।।

सुन्दर नासिका मुख सोहे, कृपा कटाक्ष करें भौंहें। अरुण अधर बिम्बाफल सम, कानों में कुण्डल हैं सोहें।।
उनकी मधुर मुस्कान से, त्रिलोक हित करे मुखारविन्द। निज उपासकों का अभिनन्दन, कर रहें हैं वह इस विध।।

अव्यक्त मूल चन्दन समान, है उनकी छवि शोभायमान। अमूल्य मणि कर्पूर से, सुशोभित वा भुजदण्ड महान्।।
सहस्त्रों शाखायें जैसे, चन्दन वृक्ष की फैली रहें। उसी विधि भुजाएँ उनकी, चहुं ओर विस्तृत रहें।।

श्री हरि के श्री कण्ठ में, वनमाला है ऐसे सोहे। वेद रूपा भंवरे ज्यों, वा कीर्ति गान हों कर रहे।।
सूर्य शशि वायु अग्नि भी, उन तक पहुंच न पाते हैं। त्रिभुवन में गतिवान् आयुध, सुदर्शन परिक्रमा करते हैं।।
इन सबके लिये भी श्री हरि, अत्यन्त दुर्लभ स्वयं हैं। उनका गुण को गा सके, वाणी से परे वह स्वयं हैं।।

तब विश्व रचना के इच्छुक, लोक विधाता ब्रह्मा ने। प्रभु के नाभि सरोवर से, पंच पदार्थ प्रकट देखे।।
कमल जल आकाश वह, वायु और उनका शरीर था। इनके सिवा श्री ब्रह्मा को, और कछु भी न दीखा।।
रज से व्याप्त श्री ब्रह्मा जी, निज प्रजा को रचना चाहते थे। सृष्टि कारणभूत उन्होने, बस पंच पदार्थ ही देखे।।
लोक रचना को उत्सुक, उन चित्त लगाया श्री हरि में। अचिन्त्य गति श्री हरि की, फिर वह पूजना करने लगे।।

बहु काल के बाद आज, हे प्रभु मैं आपको जान सका। स्वरूप न जानें देहधारी, यह कैसा दुर्भाग्य बना।।
अतिरिक्त आपके हे हरि, कोई अन्य वस्तु है ही नहीं। जो प्रतीत भी होती है, वह भी स्वरूपत: सत्य नहीं।।
माया के गुण विक्षिप्त हो, अनेक रूप धर लेते हैं। वस्तुत: अनेकों रूपों में, प्रतीत आप ही होते हैं।।

निज चित् शक्ति से सदा, हैं प्रकाशित आप स्वयं। सदा आपसे दूर रहे, अज्ञान का महातिमिर गहन।।
जिसके नाभि कमल से, प्राकट्य मेरा है हुआ। शतश: अवतारों का मूल, आपका यह ही रूप बना।।
सत्पुरुषों पर कृपा हेतु, आपने प्रकट किया इसको। सर्व प्रथम यही रूप है, प्रकाशित स्वयं किया जिसको।।

अभेद अखण्ड तेजोमय, आनन्दमात्र जो स्वरूप है। इससे भिन्न मैं न जानूं, आपका जो यह रूप हैं।।
विश्व रचयिता होकर भी, मैंने इस रूप की शरण ली। विश्व अतीत आपका यह, अद्वितीय रूप ही गति मेरी।।
अधिष्ठान यही तो है, सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियों का। यह ही तो आधार है, मेरे भी इस रूप का।।

विश्व कल्याणकर्ता हे, मैं आपका ही उपासक हूँ। सर्व विधि हे प्रभु मेरे, मैं तो आपकी शरण में हूँ।।
मेरे हित हेतु आपने, ध्यान में है दर्शन दिया। अद्वितीय रूप अपना प्रभु, कृपा करी दिखला दिया।।
पापात्मा विषयासक्त, जीव न इसको समझ सकें। वह अज्ञ इस रूप का, आदर कभी न कर सकें।।
मैं तो आपके इसी रूप को, नमन पुन: पुन: करूँ। अधिष्ठान आप ही हैं मेरा, मैं तो आपकी शरण गहूँ।।

तव चरण के कमल कोश की गन्ध, वेद रूपा वायु लाये। निज कर्णपुटों से हे स्वामी, ग्रहण इसे जो कर पाये।।
ऐसे भक्त जनों के हृदय, में विराजें आप सदा। इक क्षण भी निज भक्त हृदय, को नहीं त्यजते आप कदा।।
पराभक्ति रूपा डोरी से, आप वहां बन्ध जाते हैं। भक्त भाव की श्रृंखला से, नहीं पाद पद्म छुट पाते हैं।।

अभय प्रद आपके चरणों का, जब लौ न जीव आश्रय पाये। तब लौ ही धन गृह बन्धु के, बन्धन में यह बन्ध जाये।।
इनसे प्राप्त भय शोक लालसा, दीनता लोभ सताते हैं। मैं मेरे दुराग्रह दु:ख कारण, वह इससें छूट न पाते हैं।।

है सर्वविधि मंगल कारक, और अमंगल सब हरे। आपकी कीर्ति का श्रवण, तीनों ताप विमोचन ही कर दे।।
निज इन्द्रियों को इससे हटा, क्षणभंगुर सुख के लिये। दीन लालायित हों जो जन, निरन्तर दुष्कर्मों में लगे।।
करुणायोग्य वह मन्दभागी, है दैव ने उनकी बुद्धि हरी। ऐसों के कल्याण की, नहीं कोई साधन कहीं रही।।

हे अच्युत इस प्रजा को मैं, नित्य दु:खी हूं देख रहा। क्षुधा पिपासा वात पित्त, कफ से व्याकुल हूं देख रहा।।
शीत उष्ण वायु वर्षा, फिर एक दूसरे से भी दु:खी। कामाग्नि दु:सह क्रोध, हैं उसके दु:ख कारण सभी।।
इन कष्टों में देख उन्हें, मेरा चित्त खिन्न हो जाता है। ऐसे में तव चरण छोड़, कहीं अन्य ठौर न पाता है।।

इन्द्रिय और विषय रूपा, माया के प्रभाव से। हे स्वामी जब लौ यह जीव, भिन्न ही निज को देखा करे।।
तब लौ संसार चक्र से, निवृत्त नहीं वह हो पाता। बार बार इस भँवर में, ही वह जीव है भरमाता।।
यद्यपि यह चक्र भी, वस्तुत: है मिथ्या ही। कर्मफल भोग का क्षेत्र है यह, नाना विधि सब इसमें दु:खी।।

हे देव क्या अन्य की बात करूँ, जो हैं स्वयं साक्षात् मुनि। तेरीकथा सों गर विमुख वह हों, तो उनकी भी यह गति बनी।।

वह भी भव बन्धन में फिर, आप स्वयं फंस जाते हैं। भिन्न-भिन्न व्यापारों के कारण, विक्षिप्त चित्त हो जाते हैं।।
रात्रि में भी निद्रा में, अचेत पड़े कभी रहते हैं।। विभिन्न मनोरथ सों ग्रसे, कभी निद्रा भी वह गंवाते हैं।।
दैववश सब उद्यम भी, विफल ही उनके होते हैं। अर्थ उपार्जन को जो करें, नहीं उनका फल वे पाते हैं।।

केवल गुण श्रवण से आपके, प्रभु जानें हम आपकी राह। भक्ति राह शुद्ध हुए हृदय में, निश्चित ही वास हो आपका।।
आपके भक्त जन हे प्रभु, जिस भाव में आपको भजते हैं। वही रूप धरी हे नाथ आप, अनुग्रह उनपर करते हैं।।

हे हरि आप तो एक ही हैं, सब जीवों के हृदय में स्थित। सर्वहितकर अन्तरात्मा, सबके अन्त:करण में स्थित।।
देवतागण भी कामना से, प्रेरित होकर जब आयें। श्री प्रभु आपके पूजन को, विपुल सामग्री ले आयें।।
तो भी आपको उस विधि, वह प्रसन्न न कर पायें। सब पर करुणा बरसाते हुए, ज्यों आप प्रसन्न ही हो जायें।।
वह सर्वभूतहितकर दया, केवल सत्पुरुषों को है सुलभ। असत्पूर्ण पुरुषों के लिये, तो है वह अति दुर्लभ।।

जो कर्म आपके अर्पण हो, उसका कभी नाश नहीं होता। चरणारविन्द में जो अर्पित, अक्षय वह कर्म ही हो जाता।।
नाना भांति के कर्म यज्ञ, दान और कठिन तपस्या भी। व्रतादि सों हों प्रसन्न आप, सब कर्मों का उद्देश्य यही।।
प्रसाद से आपके हे प्रभु, कौन सा फल न सुलभ हो? प्रसन्न आपको करना ही, एको धर्म बस जीव का हो।।

निज स्वरूप प्रकाश से, जीवों का भेद भ्रम तिमिर हरें। ज्ञान के स्वयं जो अधिष्ठान, हम परम पुरुष को नमन करें।।
सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति, संहार को लक्ष्य बना कर के। आपका खेल ही है सारा, जो माया की लीला करें।।
आप ही हैं परम ईश्वर, नमस्कार करूँ बार बार। आपके चरणों में स्वामी, सीस धरूँ मैं बार बार।।

प्राण त्याग की बेला जो, नाम आपका गाते हैं। गुण कर्म आपके याद करी, निज मन में वह दोहराते हैं।।
विवशता पूर्ण भी यदि, वह नाम पुकारें आपका। अनेक जन्म के पापों से, तत्काल ही छूटे पिण्ड उनका।।
माया आदि आवरण रहित, आपकी ब्रह्म लोक है जो। ऐसे जन तो सहज ही, उस ब्रह्म पद को प्राप्त हों।।
नित्य अजम अविनाशी आप, मैं शरण आपकी लेता हूँ। श्री चरण में आपके हे हरि, मैं निज को धर देता हूँ।।

इस विश्व वृक्ष के रूप में, हैं प्रभु आप ही विराजमान्। निज मूल प्रकृति स्वीकार कर, त्रिरूप में हुए विभक्त आप।।
इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कारण। ब्रह्मा विष्णु और महादेव, त्रैरूप प्रधान किये धारण।।
फिर प्रजापति और मनु आदि, शाखा और प्रशाखा में। विस्तृत हो गए आप प्रभु, नमन मेरा स्वीकार करें।।

अपनी ही अराधना को, स्वधर्म बताया आपने। लोकों के कल्याण हित, यह राह सुझाया आपने।।
पर उदासीन हो इसके प्रति, विपरीत कार्य ही सदा करें। ऐसे प्रमाद में खोये जो, नित्य काल का ग्रास बनें।।
तीव्र गति से काल यह, जीवन आशा का ऱ्हास करे। ऐसा करने के लिये, वह हर पल तत्पर रहे।।
महाबली यह काल भी तो, आपका बदला रूप है। नमन करूँ उसे बार बार, क्योंकि यह आपका रूप है।।

हूँ सत्य लोक का अधिष्ठाता, सृष्टि का रचयिता स्वयं हूँ। इस काल रूप से आपके, मैं भी तो भयभीत रहूँ।।
वन्दनीय सब लोकों का, परार्द्ध तलक रहनेवाला। इस काल रूप में आपने, मुझको भी विस्मित कर डाला।।
इससे बचने के लिये, और आपको पाने के लिये। दीर्घ काल तक मैंने भी, बहुत कठिन हैं तप किये।।

अधियज्ञ रूप से आप ही, मेरे इस तप के साक्षी हैं। नमस्कार करूँ आपको, इक आप ही मेरे साथी हैं।।

नहीं इच्छा किसी विषय सुख की, हैं पूर्णकाम ही आप स्वयं। फिर भी निज धर्म मर्यादा की, रक्षा को करें लीला स्वयं।।
पशु पक्षी मनुज देव, आदि सब जीव योनियों में। अपनी इच्छा से तन धर कर, आप अनेकों लीला करें।।
ऐसे श्री पुरुषोत्तम को, नमस्कार मेरा बार बार। सबके स्वामी प्रभु भगवन्, हैं आपके चरणाँ इक आधार।।

हे प्रभु इस संसार को, सतायें जो पांचों क्लेश। अविद्या अस्मिता राग द्वेष, और है पांचवा अभिन्वेष।।
स्वाधीन आप हैं इन सबसे, आपको कोई छू न सके। सबके मध्य में आप बसें, पर इन सबसे रहें परे।।
पूर्वकल्प की कर्म परम्परा, से श्रान्त जो हो गये। उन जीवों पर कृपा करी, विश्राम उन्हें देने के लिये।।
तरंगों से विक्षिप्त है जो, उस प्रलय कालीन जल के ऊपर। सृष्टि निज उदर में लीन करी, हैं कैसी लीला रहे यह कर?
श्री अनन्त के विग्रह की, कोमल शैय्या पे शयन करें। हे प्रभु दिव्य यह आपकी, लीला कोई न समझ सके।।

तव नाभिकमल के भवन से, है मेरा उद्भव हुआ। सम्पूर्ण जगत यह आपके, उदर में ही है समा रहा।।
आपकी कृपा से ही तो मैं, परम उपकार प्रवृत्त हुआ। आपकी प्रेरणा से ही तो, त्रिलोक की रचना कर रहा।।
योग निद्रा को त्यागा अब, नयनाँ तव कमल समान खुले। आपके श्री चरणों में मेरा, बारम्बार है नमन हे।।

जगत् के सुहृद् एक आप, हो सबके अन्तरात्मा। शरणागत वत्सल आप हैं, श्री कृपालु महात्मा।।
निज ज्ञान और ऐश्वर्य से, जग को आनन्दित कर रहे। अपने उस वैभव से हरि, मेरी बुद्धि भी प्रज्ज्वलित करें।।
पूर्व कल्पा की भाँति मैं, इस समय भी रचना कर सकूँ। शक्ति प्रेरणा आपसे पा, अब नव जगत् को मैं रच हूँ।।

हे भगवन् आप तो हैं, भक्तों के वांछित कल्प तरु। आप ही हैं प्राप्तव्य एक, इस मानव जीवन का हेतु।।
निज शक्ति श्री लक्ष्मी सहित, अनेकों गुण अवतार लें। उन अवतारों में श्री हरि, जो जो अद्भुत कर्म करें।।
आपने ही तो रूप धरे, निज इच्छा से अनेक हैं। जग रचना का मेरा उद्यम, भी उनमें से एक है।।
इसको रचते समय प्रभु, प्रेरित आप मुझे कीजिये। सृष्टि रचना अभिमान रूप, मल को निवृत्त ही कीजिये।।

इस प्रलयकालीन जल में प्रभु, आप शयन हैं कर रहे। अनन्त शक्तिमय आपके, नाभि कमल से हम जन्मे।।
विज्ञान शक्ति प्रभु आपकी, ही तो है मेरा स्वरूप। विस्तार प्रभु करते समय, इस जगत् का विचित्र रूप।।
इतनी कृपा प्रभु आप करें, तव रूप गुप्त न हो कहीं। मम वेदरूपा वाणी का, उच्चारण लुप्त न हो कहीं।।

अनन्त अपार करुणामय, परम पुरुष पुराण आप। हे कमल नयन सस्मित अब, अपने नयनाँ खोलें आप।।
शेष की शैय्या से उठकर विश्व के उद्भव के लिये। मृदुल वाणी से अपनी, विषाद मेरा दूर करें।।
मैत्रेय बोले,
इस विधि तप विद्या और, समाधि का ले आसरा। ब्रह्मा ने निज उद्गम स्थान, श्री हरि को जब इस विध देखा।।
मन वाणी की शक्ति से, वह उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति गान करके उनका, मानो थक कर वह मौन हुए।।
मधुसूदन श्री हरि ने जब, देखा उनको घबराये हुए। प्रलय की जलराशि को देख, देखा वह तो विचलित हुए।।
सृष्टि रचना के विषय में भी, निश्चित विचार नहीं उनका। इस कारण ही चित्त उनका, खिन्नता से पूर्ण हुआ।।

उनका अभिप्राय जानकर, उनका खेद शान्त करने के लिये। गम्भीर वाणी में उनको, श्री हरि यूं कहने लगे।।

भगवान बोले,
विषाद के वशीभूत हो, अब प्रमाद तुम नहीं करो। हे वेद गर्भ सृष्टि रचना, के उद्यम में तत्पर होवो।।
हे ब्रह्मा इस पल तुम, मुझसे जो कुछ चाहते हो। वह पहले ही मैं कर मैं चुका, तुम नाहक क्यों घबराते हो?
तुम एक बार पुन: तप करो, और भगवत् ज्ञान अनुष्ठान करो। उसके द्वारा सब लोकों को, निज अन्त:करण में तुम देखो।।

फिर भक्तियुक्त समाहित चित्त, होकर जब तुम देखोगे। सम्पूर्ण लोक और अपने में, व्याप्त मुझे ही देखोगे।।
मुझमें ही तुम फिर अपने को, और इन सब लोकों को। इस विधि आन्तर बाहर, देखोगे तुम बस इक मुझको।।
ज्यों काष्ठ में अग्नि निहित रहे, त्यों सबमें व्याप्त देखे मुझको। जब जीव सत्य यह जान ले, अज्ञान मल से मुक्त वह हो।।
जब निज को देखे भूत इन्द्रिय, गुण और अन्त:करण रहित। मुझसे अभिन्न स्वरूप जान, हो मोक्ष पद में तत्क्षण स्थित।।

नाना भान्ति के कर्मों और, संस्कारों के अनुसार युक्त। जीवों की सृष्टि इच्छा से, भी न चित्त तव हो विक्षिप्त।।
हे ब्रह्मा जी इसको तुम, अतिशय मेरे करुणा फल जानो। तब चित्त न मोहित हो, इस कृपा को अब तुम पहचानो।।
तुम ही तो इस सृष्टि में, हो सर्व प्रथम मन्त्र द्रष्टा। प्रजा उत्पन्न करते हुए भी, निरन्तर तव चित्त मुझमें टिका।।
इस कारण पापमय रजोगुण, कभी बान्ध नहीं तुझे पाता है। बन्धन में वह न पड़े कभी, जिसका मुझसे दृढ़ नाता है।।

तुम ही मेरे स्वरूप को, वास्तव में पहचाने हो। भूत इन्द्रिय गुण अन्तकरण, से रहित मुझे जाने हो।।
देहधारी जीवों के लिये, मेरा ज्ञान अति दुर्लभ है। फिर भी तुमने मुझे जान लिया, लगे इस कारण यह सम्भव है।।
मेरा आश्रय कोई है या नहीं, इस संशय में तुम पड़े हुए। कमल नाल से जल में घुस, तुम अपना मूल थे खोज रहे।।
सो निज स्वरूप तेरे लिये, प्रकाशित है मैंने किया। तेरे अन्त:करण में ही, स्वरूप अपना दिखा दिया।।

मेरी कथा वैभव से युक्त, स्तुति जो तूने की मेरी। और तपस्या में भी जो, दृढ़ निष्ठा ही रही तेरी।।
उसको भी प्रिय ब्रह्मा जी, मेरी कृपा का फल जानो। यह दर्शन प्रकाश यह, अनुकम्पा ही मेरी जानो।।
लोक सृजन की इच्छा ले, हैं सर्व गुण धारण किये। फिर भी निर्गुण स्वरूप की, मम स्तुति करते रहे।।
हे ब्रह्मा उससे तो मैं, अति प्रसन्न हूँ हो रहा। कल्याण हो तेरा सर्वदा, यही आसीस हूँ दे रहा।।

समर्थ हूँ मैं सब कामना, और मनोरथ पूर्ण करूँ। जैसे भाव से भजे कोई, वैसा ही फल उसको दूँ।।
नित्यप्रति इस स्तोत्र से, जो भजन करेगा मेरा। शीघ्र ही मुझे प्रसन्न कर, मेरी कृपा को लेगा पा।।
पूर्त यज्ञ तप दान योग, समाधि से जो प्राप्त हो। परम कल्याणमय जो फल, मुझे प्रसन्न करना ही हो।।
तत्त्ववेत्ता इस सत्य को, पूर्णतय: पहचाने हैं। मेरी प्रसन्नता को ही वह, सब साधना का फल जाने हैं।।

सब आत्म का परमात्मा, हे विधाता स्वयं हूँ मैं। स्त्री पुत्रादि प्रियवर, सों भी अति प्रियतम हूँ मैं।।
निज देहादि भी प्रिय, मेरे ही तो कारण हैं। प्रेम मुझसे ही करो, यह ही जीवन प्रयोजन है।।
पूर्व कल्प समान ही, मुझसे उत्पन्न स्वरूप से। हे ब्रह्मा अपने ही, सर्व वेदमय रूप से।।
जो प्रजा इस पल मुझमें, प्रलय के कारण लीन हो। उसको और त्रिलोकी को, आप स्वयं ही अब रचो।।

प्रकृति पुरुष द्वौ के स्वामी, कमल नयन भगवान आप। सृष्टि कर्ता श्री ब्रह्माको, जगत् प्राकट्य कराकर आप।।
निज नारायण रूप से, अदृश्य ही फिर हो गए। अव्यक्त से थे जो प्रकटे, अव्यक्त में पुन: खो गए।।
विदुर बोले,
ब्रह्मा जी की दृष्टि से, हुए श्री नारायण अन्तर्धान। तत्पश्चात् निज तन मन से, सृष्टि कर दीनी निर्माण।।
श्री ब्रह्मा तो स्वयं ही, सब लोकों के हैं पिता महान्। कितने प्रकार की सृष्टि रची, हे मुनिवर आप करें आख्यान।।
इसके अतिरिक्त भी आपसे, अन्य जो मैंने प्रश्न किये। सबका क्रमश: वर्णन करके, संशय मेरे दूर करें।।
भगवन् सब विज्ञानियों में, आप ही महा श्रेष्ठ हैं। ज्ञान की आयु गर देखूं, तो आप है सभी से ज्येष्ठ हैं।।
सूतजी बोले,
हे शौनक विदुर ने जब, उनसे ऐसा प्रश्न किया। मुनि मैत्रेय ने अति मुदित हो, यूं प्रश्नों का उत्तर दिया।।
मैत्रेय बोले,
अजय प्रभु भगवान ने, जैसा उनको था कहा। ब्रह्मा जी ने चित्त को, समाहित आत्म में किया।।
श्री नारायण में चित्त अपना, ब्रह्माजी ने लीन किया। सौ दिव्य वर्ष पर्यन्त,फिर उन्होने पुन: तप किया।।
जिस कमलासन से उत्पन्न हो, ब्रह्माजी जिस पर थे बैठे। प्रलय वायु के वेग से, देखा वह कमल और जल कांपे।।

हृदय में स्थित आत्म ज्ञान, और प्रबल तपस्या से। विज्ञान बल था उनका बढ़ा, नहीं तनिक भी वह विचलित हुए।।
जल के साथ ही वायु को, भी ब्रह्मा जी पी गए। तत्पश्चात् पुन: वह अपने, रचना कार्य में लग गए।।
जिस आसन पर थे बैठे, आकाश व्यापी उस कमल को देख। कहा पूर्व कल्प के लोक सब, इससे ही पुन: दूँगा रच।।

श्री हरि द्वारा सृष्टि रचना, के कार्य में थे ब्रह्मा नियुक्त। प्रविष्ट हो कमल कोश में, त्रिभागों में किया उसे विभक्त।।
उस एक को ही भू: भुव:, और स्व: में बाँट दिया। वह कमल तो चौदह भुवन से भी, अधिक लोकों में बँट जाता।।
शास्त्रों में यह त्रैलोक ही, जीव भोग के स्थान कहे। निष्काम कर्म करनेवाले की, गति तो सबसे भिन्न कहें।।
मह: तप: जन: लोक, सत्य लोक वह जा पहुँचे। निष्काम कर्म जो नित्य करे, वह ब्रह्म लोक को प्राप्त करे।।

हे द्विजोत्तम अदभुत्कर्मा, विश्व रूप श्री हरि की। काल नाम की जिस शक्ति, की थी आपने बात करी।।
हे प्रभु आप कृपा करके, विस्तार से वर्णन कीजिये। मुझ अज्ञ हेतु हे मुनिवर, प्रकट रहस्य वह कीजिये।।
विषयों का नित्य बदलना ही, काल का आकार है। स्वयं अनादि अनन्त वह, और वह निर्विकार है।।
निमित्त बनाकर काल को, श्री हरि खेल ही खेल में। सृष्टि के इस रूप में, अपने आप को प्रकट करें।।

पूर्ण विश्व जो दीख रहा, प्रभु की माया से हो विलीन। ब्रह्म रूप में ही स्थित था, तुझे कहें पूर्वकालीन।।
उसको श्री हरि ने स्वय, अव्यक्त मूर्तिकाल से। पुन: प्रकट है कर दिया, पृथक् रूप उसके कर के।।
यह जगत् जैसा अब है, वैसा ही पहले भी था। है नियम यह ही प्रभु का, वैसा ही यह पुन: होगा।।
इस जगत् की सृष्टि कहें, नौ प्रकार की होती है। प्राकृत वैकृत भेद से, इक दसवीं सृष्टि और भी है।।

और प्रलयकाल इसका, द्रव्य और गुणों द्वारा। तीन प्रकार से होता है, अब सुन लो वर्णन इनका।।
पहली सृष्टि महत्तत्त्व की है, यह तत्त्व ही इसका रूप हैं। सत्त्वादि गुणों में विकृति, प्रभु प्रेरणा का स्वरूप है।।

दूजी सृष्टि की अब कहें, उसका मूल है अहंकार। पृथ्वी आदि हैं भूत जहाँ, कर्म और ज्ञानेन्द्रिय के विकार।।
तीजी सृष्टि है भूत सर्ग, तन्मात्रा वर्ग जहाँ रहता है। पञ्चमहाभूतों का जनक, ही शास्त्र इसे कहता है।।

चौथी सृष्टि है इन्द्रियों की, ज्ञान क्रिया शक्ति सम्पन्न। सात्विक अहंकार से, हो पञ्चम सृष्टि उत्पन्न।।
इन्द्रियों के अधिष्ठाता, देव यहाँ पे रहते हैं। इसके अन्तर्गत ही तो, मन महाराज भी होते हैं।।

है छटी सृष्टि अविद्या की, इसमें हैं पांच ग्रन्थियाँ। तामिस्र अन्धतामिस्त्र तम, मोह महामोह की ग्रन्थियाँ।।
जीव बुद्धि विक्षिप्त करी, आवृत्त यह उसे कर देती हैं। छः प्राकृति सृष्टियों की, जान ले तू गति ऐसी है।।
अब वैकृत सृष्टियों का, भी मुझसे वर्णन सुनो। उनकी बात अब तुझे कहूं, हे वत्स तुम जान लो।।

अपने चिन्तन में निमग्न, निज भक्त के सारे दुःख हरें। उन श्री हरि की लीला ही, सारी सृष्टियां जान ले।।
श्री ब्रह्मा जी के रूप में, वह स्वयं रजोगुण स्वीकारें। रजोगुण के आश्रय ही, समस्त जगत् की रचना करें।।
छः प्रकार की प्राकृत सृष्टि, तत्पश्चात् वैकृत सप्तम्। छः प्रकार के स्थावर वृक्षों, की होती रचना सप्तम्।।

वनस्पति औषधि लता, त्वक्सार वीरुध् और द्रुम जानो। संचार इन सब में रस का, जड़ उपरि शाख और जानो।।
स्पर्शमात्र अनुभव यह करें, नहीं ज्ञान शक्ति इनपे कोई हो। इनमें से प्रत्येक में, विशेष ही गुण फिर अपना हो।।

आठवीं सृष्टि की कहें, वह तो तिर्यक योनि है। अष्टविंश प्रकार की, मानी जाती वह योनि है।।
नहीं काल का ज्ञान इन्हें, है प्रधान तमोगुण ही। खाना पीना मैथुन करना, यह जानें सोना जगना ही।।
घ्राणेन्द्रिय से ही यह, ज्ञान प्राप्त सब करते हैं। विचार शक्ति या दूरदर्शिता, से अति दूर ही रहते हैं।।

तिर्यक योनि में जानो गौ, बकरा, भैंसा और सूअर। कृष्ण मृग नील गाय भी, रुरु नामक मृग ऊंट और भेड़।।
दो खुरों वाले सभी, पशु इसमें आ जाते हैं। हे साधु श्रेष्ठ विदुर जानो, अष्टम सृष्टि यह बताते हैं।।
गधा घोड़ा और खच्चर, गौर मृग शरभ और चमरी। एक खुर वाले हैं यह, इनको भी तू जान सही।।
अब पंच नख के पशु पक्षिन्, के नाम भी तुझे कहें। हे विदुर इनको भी अब, तिर्यक योनि जान ले।।

कुत्ता गीदड़ भेड़िया, बाघ बिलाव और खरगोश। साही सिंह बन्दर हाथी, कछुआ मगर आदि और गोह।।
बगुला गिद्ध बटेर बाज, भास भल्लूक मोर और हँस। सारस चकवा कौवा उल्लूक, हैं सब पक्षी नभ के स्वच्छन्द।।
नवीं सृष्टि है मनुजों की, अपने में आप अद्वितीय हो। हे विदुर आहार प्रवाह इसका, ऊपर से नीचे ओर ही हो।।
हैं रजोगुण प्रधान जीव, रहते सदा कर्म परायण ही। सुख मानते यह सदा, दुःख रूप विषयों में ही।।

स्थावर पशु पक्षी मनुष्य, यह तीनों ही सृष्टियाँ। तथा आगे भी कहेंगे जो, देव सर्ग है विकृत सृष्टियाँ।।
महत्तत्त्वादि रूप जो, है वैकारिक देव वर्ग। उसकी गणना पहले ही, प्राकृत सृष्टि में दी थी कर।।
सनत्कुमारादि का है, इनसों अलग कौमार सर्ग। वह प्राकृत और विकृत, दोनों प्रकार का ही है सर्ग।।

देवता पितर और असुर, गन्धर्वगण और अप्सरा। यक्ष राक्षस सिद्ध चारण, विद्याधर प्रेत पिशाच कहा।।
किन्नर किम्पुरुष अश्वमुख, आदि भेद से है कही। जिन देवों ने सृष्टि यह रची, वह है आठ प्रकार की।।
हे विदुर जगत्कर्ता, ब्रह्मा जी ने जो रची। दस प्रकार की वह सृष्टि, मैंने तुमको सब कह दी।।

अब आगे मैं वंश और, मन्वन्तर का करूँ वर्णन। सत्य संकल्प श्री हरि स्वयं, बनकर ब्रह्मा करते सृजन।।
प्रत्येक कल्प के आदि में, रजोगुण से व्याप्त हो। स्वयं ही जग के रूप में, अपनी ही रचना करते वो।।

सर्वप्रथम अज्ञान की, पंच वृत्ति को उन्होने रचा। अविद्या अस्मिता राग द्वेष, अभिन्वेष उन्हें नाम दिया।।
इस पापपूर्ण निज सृष्टि को, ब्रह्मा जी ने जब देखा। क्लिष्ट रूप देखी इसका, नहीं उनका मन प्रसन्न हुआ।।
तब मन में हरि का ध्यान धर, पहले पावन उसे किया। फिर पावन चित्त से उन्होने, दूजी सृष्टि को रचा।।

इस बार ब्रह्मा जी ने, ऊर्ध्वरिता मुनि जन्मे। सनक सनन्दन सनातन सनत्, निवृत्ति परायण ही सब थे।।
निज मानस पुत्रों से फिर, ब्रह्मा जी ने बात कही। हे पुत्रो तुम सृष्टि रचना, के कार्य में लगो सही।।
जन्म से ही वह मोक्षमार्ग, में प्रवृत्त थे हो रहे। ऐसा उन्होने करना नहीं चाहा, वह प्रभु ध्यान में तत्पर थे।।

ब्रह्मा जी ने जब देखा, आदेश न मेरा मान रहे। यह पुत्र तो तिरस्कार से, मेरी अवज्ञा कर हैं रहे।।
उस पल ब्रह्मा के मन में असह्य क्रोध उमढ़ आया। बहु यत्न किये वह थम जाये, पर वह रुक ही न पाया।।
बुद्धि द्वारा बहु यत्न किये, पर वह क्रोध न थम सका। प्रजापति की भ्रुवों मध्य, तत्काल ही उसने रूप धरा।।
वहीं पे ही वह क्रोध तब, अद्भुत् शिशु बन कर प्रकटा। नील लोहित शिशु का, रूप उसने था धरा।।

देवों के पूर्वज भव, फिर रो रो कर कहने लगे। हे जगत्पिता विधाता मुझे, नाम और वास स्थान दें।।
तब कमलयोनि भी ब्रह्मा ने, प्रार्थना उनकी सुन करी। मधुर वाणी में कहा उसे, हे बालक तू रो नहीं।।
हे शिशु तेरी इच्छा जो, शीघ्र ही पूरी करता हूँ। तेरा नाम और वास स्थान, अभी तुझे मैं देता हूँ।।

हे देवश्रेष्ठ जन्मते ही, तुम शिशु सम रोने लगे। इस कारण सारी प्रजा, रुद्र नाम से पुकारे तुझे।।
निवास को तेरे पहले ही, एकादश हैं स्थान रचे। हृदय इन्द्रियाँ प्राण आकाश, वायु में भी रह सके।।
अग्नि जल पृथ्वी सूर्य, चन्द्रमा और तप भी हैं। यह सब मिलकर तेरे लिये, तेरा निवास स्थान हैं।।

अब तब नाम कहें तुझे, मन्यु मनु मनिहस, महान्। शिव ऋतध्वज उग्ररेता भव, काल वामदेव धृतव्रत तू जान।।
धी वृत्ति उशना उमा, नियुत सर्पि और इला। अम्बिका और इरावती, सुधा और संग में दीक्षा।।
एकादश यह रुद्राणियां, ही तेरी भार्यायें होंगी। ऐसी ही सृष्टि क्रम में, मैंने है रचना कर दी।।

उपर्युक्त नाम और स्थान, पत्नियां तुम स्वीकार करो। इनके द्वारा तुम प्रजापति, अब प्रजा विस्तार करो।।
लोकपिता श्री ब्रह्मा से, ऐसी आज्ञा पाकर के। आकार स्वभाव में निज समान, प्रजा को वह रचने लगे।।
भगवान रुद्र द्वारा उत्पन्न, असंख्य रुद्र सम्मूह को देख। ब्रह्मा गए संशय से भर, उन्हें भक्षण करते जग को देख।।

उनकी उग्रता देख कर, ब्रह्मा ने रुद्र से कहा। हे सुरश्रेष्ठ आतंक ही, फैला रही यह तुम्हारी प्रजा।।
निज उग्र दृष्टि से सब दिशा, और मुझको भस्म ज्यों कर रही। ऐसी सृष्टि नहीं और चारों ओर विनाश यह कर रही।।
कल्याण हो तेरा हे वत्स, प्राणी जन के सुख के लिये। अब हे रुद्र तुम तप करो, उनके दु:ख हरने के लिये।।
उस तप के प्रभाव से, पुन: रचना संसार की हो। पूर्ववत् उसे रच करी, सन्ताप सब उसके हरो।।

तप के द्वारा ही तो जीव, इन्द्रिय अतीत हो जाता है। हो ज्योतिस्वरूप अन्तर्यामी, सुलभ ही हरि को पाता है।।

मैत्रेय बोले,
ब्रह्मा से यह आज्ञा पा, शिरोधार्य किया उसे रुद्र ने। परिक्रमा करी उनसे अनुमति ले, तप करने वह वन को चले।।
तत्पश्चात् भागवत शक्ति, से सम्पन्न थी ब्रह्मा ने। सृष्टि के लिये संकल्प किया, दस पुत्र पुन: उत्पन्न हुए।।
इस विधि श्री ब्रह्मा के, लोक की अति वृद्धि हुई। उनके संकल्प से सृष्टि की, यह रचना क्रम चलती रही।।
मरीचि: अत्रि: अंगिरा पुल्स्त्य:, पुल: क्रतु: भृगु: महान्। वसिष्ठ: दक्ष: और नारद जी, यह थे दस पुत्रों के नाम।।

नारद जी उत्पन्न हुए, प्रजापति की गोद से। दक्ष अंगूठे से उपजे, वसिष्ठ थे जन्मे प्राणों से।।
भृगु त्वचा से क्रतु हाथ से, पुल: नाभि से पैदा हुए। पुल्स्त्य आये कानों से, अंगिरा ऋषि मुख से जन्मे।।
अत्रि उनके नेत्रों से, और मरीचि हुए मन से। इस भान्ति यह दसों पुत्र, उत्पन्न हुए उनके अंगों से।।

दायें स्तन से फिर उनके, धर्म उत्पन्न हो गया। जिसकी पत्नी मूर्ति ने, श्री नारायण को जन्म दिया।।
श्री ब्रह्मा की पीठ से, अधर्म ने फिर जन्म लिया। संसार का त्राता यम पुन:, अधर्म से ही उत्पन्न हुआ।।
इसी विधि हृदय से उने, काम की उत्पत्ति हुई। भ्रुवों से क्रोध होंठ से लोभ, मुख से उत्पन्न हुई सरस्वति।।
लिंग से जन्मा सिन्धु महां, गुदा से उपजे पाप सीभ। राक्षसाधिपति निवास वहाँ, कहते हैं जिसे निऋृति।।

छाया से उत्पन्न हुए, प्रभु कर्दम देवहूति के पति। इस विधि निज तन मन से, सारी सृष्टि ब्रह्मा ने रची।।
बहु मनहर सुकुमारी थी, ब्रह्मा पुत्री सरस्वती। हमने सुना उसे देखकर, ब्रह्मा का मन विचलित हुआ।।
यद्यपि ब्रह्मा जी स्वयं, सर्व वासना हीन थे। फिर भी प्रभु की माया से, वह काम मोहित हो गए।।

ऐसा अधर्मपूर्ण संकल्प, उनके मन में देखकर। उनके पुत्र मरीचि आदि ने, दी सन्मति विश्वास कर।।
हे पिता श्री त्रिलोकी में, हैं सर्व सामर्थ आप ही। फिर भी निज मन में उठे, पाप की दमन क्यों नहीं करी?
काम के वशीभूत हो, क्यों पापमय संकल्प करो? पुत्री गमन जैसे दुस्तर, पाप की क्यों तुम सोच करो?
आपसे पूर्ववर्ती किसी, प्रजापति ने न किया ऐसा न ही कभी भविष्य में, आचरण करेगा कोई ऐसा।।

हे जगद्गुरो आप सम, तपस्वी को यह न सोहे। इस पापमय आचरण की, कैसे हो मन में सोच रहे?
आप समान श्रेष्ठ जन का, अनुसरण जगत् सब करता है। तुम्हारे आचरण को देखकर, अपना कल्याण वह करता है।।
निज स्वरूप स्थित जगत् को, अपने तेज से प्रकट किया। धर्म के रक्षण में सामर्थ, है उनको ही प्रणाम मेरा।।

निज पुत्र मरीचि आदि, इन सब प्रजापतियों को। अपने को सन्मत्ति देते देख, अति लज्जा आई ब्रह्मा को।।
लज्जित हो तत्काल ही, उन्होने निज तन का त्याग किया। तब उस महा शरीर को, दिशाओं ने स्वीकार किया।।
वह ही कुहरा बन गया, अन्धकार भी जिसे कहें। सृष्टि रचना में ब्रह्मा, ज्योति और तम दोनों बनें।।

एक बार श्री ब्रह्मा जी, थे अपने में सोच रहे। पूर्ववत् सब लोकों की, व्यवस्थित रचना कैसे करें?
उसी समय उनके मुख से, चार वेद आ प्रकट हुए। सब ही कर्म और धर्म के, आख्यान हैं उनमें दिए।।

इनके अतिरिक्त उपवेद, न्यायशास्त्र होता और उद्गाथा। अध्वर्यु और ब्रह्मा चतु:, ऋत्विजों को उत्पन्न किया।।
फिर इनके कर्म और यज्ञों का, विस्तार भी उन्होंने कर दिया। धर्म के चारों चरण सहित, वृत्ति आश्रम धर्म भी रचा।।

यह सब ही श्री ब्रह्मा के, मुख से उत्पन्न हो गए। इस प्रकार से सृष्टि के, रचना क्रम चलते रहे।।
विदुर बोले,
प्रजापतियों के स्वामी परम पितामह ब्रह्मा ने। अपने ही मुख से जब, वेदादि सब रच दिये।।
अपने किस किस मुख से, क्या क्या उन्होने रच दिया। हे तपोधन अब कृपा करी, आप ही मुझे बतायें जरा।।

मैत्रेय बोले,
अपने पूर्व दक्षिण पश्चिम, और उत्तर मुख से क्रमश:। ऋक् यजु: साम और, अथर्व वेद ब्रह्मा ने रचा।।
इसी क्रम से होता कर्म शास्त्र, अध्वर्यु कर्म इज्या रचा। उद्गाथा कर्म स्तुति स्तोम, ब्रह्मा का कर्म प्रायश्चित रचा।।
इसी विधि चिकित्सा शास्त्र, आयुर्वेद को उन्होने रचा। शस्त्रविद्या धनुर्वेद संग, संगीत शास्त्र भी रच दिया।।
गन्धर्व वेद और शिल्पविद्या, फिर स्थापत्य वेद रचा। इन सारे उपवेदों को, पूर्वादि मुख से क्रमश: रचा।।

फिर सर्वदर्शी श्री ब्रह्मा ने, अपने चारों मुखों से ही। इतिहास और पुराण रूप, पंचम वेद की रचना की।।
इसी क्रम से पुन: षोड्षी और, उक्थ चयन और अग्निष्ठोम। अतिरात्र तथा वाजपेय, गोसव और आप्तोर्याम।।
उनके पूर्वादि मुखों से ही, उत्पन्न हुए यह दो दो याम। उनकी रचना शक्ति का, ही तो था यह सारा काम।।

विद्या दान तप और सत्य, यह चार पाद हैं धर्म के। वृत्तियों सहित चहुँ आश्रय भी, इसी क्रम से प्रकट हुए।।
सावित्र प्राजापत्य बाह्य बृहत्, यह चतुर्वृत्ति ब्रह्मचारी की। वार्ता संचय शालीन शिलोंछ, हैं यह चार गृहस्थी की।।
इसी विधि वृत्तिभेद, वानप्रस्थ का भी कहा। वैखानस और बालखिल्य, औदुम्बर और फेनप कहा।।
संन्यासियों के भी लिए, चार भेद बतलाये हैं। कुटीचक बहुदर्क हंस, और निष्क्रिमय यह हैं।।

इसी क्रम से अन्वीक्षिकी, त्रयी वार्ता और दण्डनीति। चहुँ विद्या चार व्याहृतियाँ, चतुर्मुखों से ही प्रकटीं।।
ब्रह्मा जी के हृदयाकाश से, ओम्कार फिर प्रकट हुआ। इसी विधि से जान लो, सृष्टि क्रम का विस्तार हुआ।।

रोमों से उनके इष्णक, त्वचा से गायत्री प्रकटी। मांस से प्रकट हुआ त्रिष्टुप, स्नायु से अनुष्टुप छन्द उपजी।।
अस्थिन् से जगती छन्द उपजा, मज्जा से उपजी पंक्ति, प्राणों से ब्रह्मा जी के, बृहती नाम की छन्द जन्मी।।
इसी विधि यह जीव ही, स्पर्श वर्ण कहलाया। उनका देह ही स्वर वर्ण, का रूप फिर धर आया।।

उन इन्द्रियों को ऊष्ण वर्ण, तथा बल को अन्त:स्थल कहें। उनकी क्रीड़ा से ही तो, सात मधुर यह स्वर निकले।।
शब्द ब्रह्म स्वरूप तात्, ब्रह्मा जी को तुम जानो। वैखरी रूप से व्यक्त उन्हें, ओम्कार रूप अव्यक्त जानो।।
उनसे भी परे सर्वत्र ही, परिपूर्ण जो परब्रह्म है। अनेक शक्ति में विकसित वह, इन्द्रादि रूप में भासे हैं।।

कामासक्त तन ब्रह्मा का, कुहरा रूप था हो गया। हे विदुर तब ब्रह्मा ने, दूजा तन धारण किया।।
फिर विश्व विस्तार का, वह विचार करने लगे। मरीचि आदि ऋषियों से भी, विस्तृति सृष्टि की न होए।।
मन ही मन वह पुन: पुन:, विचार एक करने लगे। अहो आश्चर्य प्रयत्न से भी, सृष्टि विस्तृत न होए।।
ऐसा लगे दैव ही विघ्न कोई है डाल रहा। इस कारण ही सृष्टि का, यथोचित न विस्तार हुआ।।
जब इस विधि विचार में, श्री ब्रह्मा थे निमग्न हुए। तत्क्षण ही तन उनके, दो भागों में बंट गये।।

उनका तन जो विभक्त हुआ, एकनाम हुआ श्री ब्रह्मा का। इस कारण नाम उसका, काया ही है पड़ गया।।
उन दोनों विभागों से, युगल एक फिर प्रकट हुआ। ब्रह्मा के तन से प्रकटा, जोड़ा स्त्री और पुरुष का।।
पुरुष तो सर्वभौम सम्राट, स्वयंभुव भी मनु हुए। उनकी रानी शतरूपा ने, स्त्री रूप में नाम धरे।।
तब वे दोनों ही मिलकर, प्रजा को उत्पन्न करने लगे। इस प्रकार उनके मिलन से, प्रजा के वर्धन होने लगे।।
महाराजा मनु ने तब, सन्तान पंच उत्पन्न करी। शतरूपा महारानी ही, उन पांचों की जननी हुई।।

द्वौ पुत्र उनके हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। आकूति देवहूति प्रसूति, तीन कन्याओं के हैं यह नाम।।
आकूति का परिणय हुआ, पति था वा रुचि प्रजापति। कर्दम ऋषि को ब्रह्मा ने, मंझली कन्या दी देवहूति।।
प्रसूति को दक्ष प्रजापति, से विवाहित कर दिया। इन तीनों की सन्तति से, संसार यह सारा भर गया।।

प्रभु कृपा से जब उनको, पृथ्वी का आधार मिला। स्वयंभुव मनु ने फिर, कौन कौन उपाय किया?
भावी सन्तति की उत्पत्ति, का अवलम्बन कौन हुआ? हे सूत जी हमें कहो, कैसे यह सृष्टि क्रम चला?
महाभागवत् भक्त थे श्री विदुर, श्री कृष्ण सुहृदय अभिन्न थे। इस कारण अग्रज धृतराष्ट्र, कुल सहित ही थे सब त्याग दिये।।
निज सुत दुर्योधन आदि संग, था कृष्ण का अपमान किया। उनके इस अपराध को, विदुर ने कभी न क्षमा किया।।

महर्षि व्यास के पुत्र थे वह, महिमा में उनसे कम न थे। सब भाँति थे श्री कृष्णाश्रित, उन भक्तों के अनुगामी थे।।
तीर्थ सेवन प्रसाद से, था अन्त:करण भी शुद्ध हुआ। हरिद्वार में बैठे ज्ञानी श्रेष्ठ, मैत्रेय से उन्होने क्या पूछा?
दोनों के वार्तालाप की, जो निर्मल धारा बही। श्री हरि चरण से जुड़ी हुईं, अनेकों ही गाथा होंगी।।
श्री हरि चरणोदक गंगा सम, अति पावनकर वे सब होंगी। हे सूत पाप विनाशिनी, श्री हरि की सभी कथा होंगी।।

हे सूत हो मंगल आपका, हमें कथा पवित्र सुनाइए। हैं प्रभु चरित अति कीर्तनीय, उदारता उनकी गाइए।।
कौन रसिक हृदय होगा ऐसा, जो तृप्ति इससे पा जाये? हरिकथा पान करते करते, जिसका जी उकता जाये?
नैमिषारण्य वासी मुनिजन, ने जब उनसे प्रश्न किया। चित्त लगा भगवान में, अब सुनें उन्हें फिर सूत कहा।।
सुतजी बोले,
श्री हरि रसातल में पहुँचे, माया से वराह का रूप धरा। पृथ्वी को उबारा, और हिरण्याक्ष को मार दिया।।
उनकी यह लीला सुनी, अति मुदित हुए विदुर श्री। मुनिवर मैत्रेय से उन्होने, पुन: यह जाकर बात कही।।
विदुर बोले,
हे द्विजवर परोक्ष विषय, के हैं आप परम ज्ञाता। प्रजापति की रचना का, विस्तृत करें वर्णन जरा।।
मरीचि आदि प्रजापतिन्, को श्री ब्रह्मा ने रचा। सब प्रजापति के स्वामी, ब्रह्मा ने फिर क्या किया?
मरीचि आदि मुनिवर ने, और स्वयंभू मनु ने। ब्रह्मा जी से आज्ञा पा, प्रजावर्धन को क्या यत्न किये?

क्या निज भार्या सहयोग से, उन जगत को उत्पन्न किया? या रह स्वतंत्र अपने में ही, इस जगत् को रच दिया?
अथवा संग ही मिल सबने, इस जगत् की रचना की? हे विप्रश्रेष्ठ अब आप कहें, क्योंकर इस जग की सृष्टि हुई?
मैत्रेय मुनि बोले,
अति दुर्ज्ञेय जिसकी गति, उस काल के हेतु का। प्रकृति नियन्ता पुरुष जो, और जीवों के प्रारब्ध का।।

इन तीनों का मेल हुआ, और हरि सान्निध्य मिला। क्षोभ हुआ प्रकृति में, और महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ।।
दैव प्रेरणा जब हुई, रज प्रधान महत्तत्त्व हुआ। सात्विक राजस और तामस, त्रैविध अहं उत्पन्न हुआ।।

उसने ही आकाशादि, इन पंचमहाभूतों से। भिन्न भिन्न प्रकार के, वर्ग अनेकों प्रकट किये।।
अलग अलग रहकर ही सब, रच न सके ब्रह्माण्ड को। प्रभु शक्ति से संगठित हुए, रचा सुवर्ण इक अण्ड को।।
सहस्र वर्ष से कुछ अधिक, चेतना शून्य अवस्था में। कारण जल में वह पड़ा रहा, फिर उसमें प्रभु प्रवेश किये।।

उसमें अधिष्ठित जब वह हुए, उनकी ही नाभि से उठा। सहस्र सूर्य सम दीप्तिमान्, एक कमल फिर प्रकट हुआ।।
उसमें फिर भी ब्रह्मा का, स्वत: ही आविर्भाव हुआ। वह कमल सब जीवों का, एकमात्र ही आश्रय था।।
ब्रह्माण्ड गर्भ रूपा जल में, शयनकर्ता नारायण ने। स्वयं ही जब प्रवेश किया, ब्रह्मा के अन्त:करण में।।
पूर्व कल्प में अपनी ही, निश्चित जो व्यवस्था थी। नाम रूपमय लोकों की, ब्रह्मा ने तब रचना कर दी।।

सर्वप्रथम निज छाया से, पंच विधि अविद्या रची। तामिस्र अन्धतामिस्र तम, मोह और महामोह वह थी।।
तमोमय अपना वह तन, ब्रह्मा जी को न भाया। इस कारण ही इस तन का, ब्रह्मा ने परित्याग किया।।
उस रात्री रूपा तन को फिर, राक्षस और यक्ष ने ग्रहण किया। भूख प्यास उत्पत्ति का, स्रोत जो तन से था उपजा।।

क्षुधा पिपासा से व्याकुल, ब्रह्मा को खाने वह दौड़े। मत छोड़ो इसे अब खा जाओ, ऐसा वह कहने लगे।।
भूख प्यास से अति आकुल, थे यक्ष राक्षस हो रहे। इस कारण है उचित क्या, इसका भी ज्ञान वह भूल गए।।
घबरा कर ब्रह्मा ने कहा, अरे यक्ष और राक्षसों। कैसे तुम यह भूल गए, तुम तो मेरी सन्तान हो?
भक्षण मत तुम मेरा करो, मेरी रक्षा कर्त्तव्य तेरा। इससें ही तो जानो पुत्र, सब विध होगा कल्याण तेरा।।

ब्रह्माजी ने फिर सत्वमयी, निज आभा का आश्रय लिया। देदीप्यमान इससे होकर, मुख्य मुख्य देवों को रचा।।
दिवस रूप प्रकाशमय, ही उनका यह रूप था। क्रीड़ा क्रीड़ा में देवों ने, द्युतिवान् तन ग्रहण किया।।
तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा ने, अपने जघन देश से। कामासक्त असुर जो थे, वह ही उत्पन्न कर दिये।।
अत्यधिक काम लोलुप वह थे, इस कारण उत्पन्न होते ही। ब्रह्माजी की ओर चले, मैथुन की थी प्रवृत्ति बनी।।

यह देख के पहले तो वह हंसे, फिर क्रोधित और भयभीत हुए। असुरों को पीछा करते देख, वह तीव्रता से भागन लागे।।
भक्तों पर अनुग्रह हेतु, भावानुकूल जो दर्शन दें। शरणागत वत्सल वरदे प्रभु, श्री हरि सम्मुख जाकर बोले।।
ब्रह्मा बोले,
रक्षमाम्, प्रभु पाहिमाम्, मेरा संरक्षण कीजिये। पीड़ित हूँ बहुत हो रहा, आप ही दु:ख हर लीजिये।।
आपसे आज्ञा पाकर ही, प्रजा यह थी उत्पन्न करी। पाप प्रवृत्त होकर के यह, मुझको ही ताडित कर रही।।
आर्त जीवों के नाथ हे, हैं एकमात्र त्राता बस आप। पर जो शरण में न आयें, उनके लिये दु:ख विधाता आप।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हृदयस्थ जो सबके हैं प्रभु, प्रत्यक्ष ही उन सब देख लिया। ब्रह्मा की आतुरता देख, उनको ऐसा आदेश दिया।।
काम से दूषित निज तन का, हे प्रजापति तुम त्याग करो। भगवान के यूं कहते ही, ब्रह्मा ने निज तन छोड़ दियो।।

ब्रह्म जी का त्यक्त तन, नव रूप में परिणत हो गया। एक सुन्दरी सन्ध्या देवी का फिर उसने रूप धरा।।
चरण कमल की पायजेब, थी झंकृत वहाँ हो रही। नयना भी मतवाले थे, कमर पे थी करधनी लड़ी।।
उससे और सुन्दर साड़ी से, थी उसकी सुन्दर कटि ढकी। उस सुकुमारी नारी की, अति लावण्यमय शोभा थी।।

उभरे हुए थे स्तन उसके, एक दूसरे से थे सटे। मानो उन दोनों के बीच, कोई अन्तर ही न रहे।।
नासिका उसकी और दन्तावली, अति सुन्दर और सुघड़ थी। मधुर स्मित बहु हाव भाव, से थी असुरों को देख रही।।
श्यामल अलकों से शोभित, सुकुमार उसका मुखड़ा था। पर लज्जा के मारे वह, आंचल में था सिमट रहा।।
हे विदुर उस सौन्दर्य का, ऐसा उनपर प्रभाव हुआ। सब के सब असुरों को ही, मोहित सन्ध्या ने किया।।

अहो कैसा यह विचित्र रूप, कैसा अलौकिक धैर्य बना। इसकी नई अवस्था का, सौन्दर्य हो मानो टपक रहा।।
कामाहत हम असुरों में, कैसी यह बेपरवाह सी हुई। अपनी ही मस्ती में यह, खोई सी हुई यह विचर रही।।
स्त्री रूप ही धर के, जो सन्ध्या थी प्रकट हुई। दुर्बुद्धि उन दैत्यों ने, भाँति भाँति वितर्क करी।।
बहुत आदर मान दिया उसको, और उसका सत्कार किया। प्रेम पूर्ण स्वर में फिर, उससे उन्होंने प्रश्न किया।।
दैत्य बोले,
कौन हो तुम हे सुन्दरी, कहो किसकी पुत्री हो तुम? हे भामिनी कहो हमसे, यहां पे क्योंकर आई तुम?
अनमोल अपने रूप को, बेमोल हो लुटा रही। क्यों हम जैसे अभागों को, हो इस विध तरसा रही?
हे अबले तुम चाहे जो भी हो, तुम्हरा दर्शन हमें मिला। दैव से ही हुआ प्राप्त जो, दुर्लभ सौभाग्य हमारा था।।
गेंद उछाल के हाथ से, तुम जो क्रीड़ा हो कर रही। हम दर्शक जन के मन को तो, निज हाव भाव से मथ रही।।

उछली हुई निज गेंद पे तुम, जब हाथ से थपकी हो देती। चरण कमल चंचल तव हो, नहीं एक जगह है ठहरती।।
बृहत् स्तनों के भार से, तव कटि तो यह थक जाती है। निर्मल दृष्टि में भी तेरी, श्रान्ति झलक दिखाती है।।
अहो केश पाश भी तेरा प्रिय, कैसा सुन्दर है बन रहा। हमरे हृदय को अपने ही, बन्धन में ज्यों बान्ध रहा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
स्त्री रूप में प्रकट हुई, इस सायंकालीन सन्ध्या ने। अति कामासक्त उनको किया, रमणीय रूप धरी सन्ध्या ने।।
स्त्री रूप उसे जान कर, उन मूढ़ों ने उसे ग्रहण किया। इस विधि उन कामातुर, दैत्यों ने आचरण किया।।
कान्तिमय निज मूर्ति ज्यों, निज रूप का आस्वादन करे। अति गम्भीर भाव से, ब्रह्मा जी तब हंसने लगे।।
अप्सरा और गन्धर्वजन, ब्रह्मा जी ने रच दिये। उनके ही सौन्दर्य की, वह मानो प्रतिमूर्ति थे।।

फिर ज्योतिर्मय निज कान्तियुक्त, प्रिय तनु उन त्याग दिया। विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने, मुदित मनी हो ग्रहण किया।।
तब निज तन्द्रा से ब्रह्मा ने, भूत पिशाच आदि रचे। बिखरे वा केश दिगम्बर वेश, देख के नयना मूंद लिये।।

ब्रह्मा जी का त्यजा हुआ, जम्भाई रूप जो शरीर था। भूत पिशाचों ने ब्रह्मा के, त्यक्त तन को ग्रहण किया।।
यही निद्रा बनी जीवों में, इन्द्रिय शिथिलता ले आये। यदि जूठे मुंह सो जाये कोई, आक्रमण पिशाच का हो जाये।।
उसी अवस्था को जानो, उन्माद है यह कहते हैं। सहज अवस्था से अपनी, उस पल दूर ही रहते हैं।।

फिर भावना बनी यह ब्रह्मा की, तेजोमय यम रूप जो। साध्य और पितृगण, उस रूप से उत्पन्न हों।।

निज उत्पत्ति का उद्‌गम, अदृश्य ब्रह्मा शरीर था। पितरों ने ब्रह्मा के, अव्यक्त तन को ग्रहण किया।।
इसी को लक्ष्य बनाकर के, पण्डित आदि सब श्राद्ध करें। पितर साध्यगण हेतु ही, कव्य हव्य अर्पण करें।।

तिरोधान शक्ति से निज, विद्याधर और सिद्धन् को रचा। तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा ने, अपने उस अद्‌भुत तन को त्यजा।।
ब्रह्मा जी ने एकदा, प्रतिबिम्ब अपना जब देखा। अतिरूपवान् उसको जानी, किन्नर किम्पुरुष को उससे रचा।।
ब्रह्माजी ने जब अपने, इस सुन्दर तन का त्याग किया। सौन्दर्यमूर्ति प्रतिबिम्ब को तब, किन्नर आदि ने ग्रहण किया।।
ऊषा काल में ही यह सब, निज भार्याओं को संग लेकर। ब्रह्मा जी के गुण कर्म, आदि का गान हें देते कर।।

सृष्टि की वृद्धि रुकी देख, ब्रह्माजी अति चिन्तित हुए। हाथ पांव आदि अव्यव, फैलाकर वह लेट गए।।
फिर क्रोधित हो उस भोगमय, तन का उन्होंने त्याग किया। इस विधि श्री ब्रह्मा ने, निज आयतन त्याग दिया।।
वा सिर के जो बाल झड़े, वह तो अहि ही हो गए। हाथ पांव सिकोड़ चलें, वह सर्प और नाग हुए।।
फण के रूप में जिनका तन, कन्धों के निकट है फैला हुआ। विष बहुतायत उनमें भरा, अति क्रूर स्वभाव ही है उनका।।

एक बार श्री ब्रह्मा ने, कृत्कृत्य अनुभव किया। ऐसे समय में ही उन्होने, निज मन से मनुओं को रचा।।
यह सब ही नित्य प्रजा की, वृद्धि करनेवाले हैं। इस कारण ही मनु सभी, प्रजापति नाम को धारे हैं।।
निज पुरुष आकार तन, ब्रह्मा ने उन कारण त्यागा। ब्रह्मा द्वारा त्यक्त तन, उन मनुओं ने स्वीकार किया।।
मनुओं को देख वे अग्रज, जो देव और गन्धर्वादि। ब्रह्मा की स्तुति गाने लगे, उनकी सृष्टि के जन सभी।।

वे सब मिलकर कहने लगे, हे विश्वरचयिता ब्रह्मा जी। है सर्वोत्तम ही सबमें, आपकी मनुओं की सृष्टि।।
अग्निहोत्रादि सब पावन, कर्म प्रतिष्ठित हैं इनमें। इसके आसरे ही हमारा, हविष्य अन्न भी मिले हमें।।

फिर आदि ऋषि श्री ब्रह्मा ने, पूर्ण इन्द्रिय संयम किया। तप विद्या योग समाधि से, अपने को सम्पन्न किया।।
फिर प्रिय सन्तान निज, ऋषिगण को उन्होने रच दिया। उनमें से प्रत्येक को, अपने शरीर का अंश दिया।।
अपनी समाधि योग तप, ऐश्वर्य का उनमें अंश भरा। विद्या और वैराग्य मय, उनके तन का अंश वह था।।

६) काल गणना

मैत्रेय बोले,
पृथ्वी आदि कार्य वर्ग का, सूक्ष्मतम जो अंश है। विभक्त जो पुन: न हो सके, नहीं कार्य रूप वह अंश है।।
जिसका अन्य परमाणु से, संयोग नहीं हो पाता है। वह ही तो सृष्टि में, परमाणु कहलाता है।।
निजि संयोग परमाणुओं का, भ्रमित बुद्धि करे जीव की। उनके समुदाय रूप में, होती प्रतीति अव्ययी की।।
अति सूक्ष्मतम अंश यह, परमाणु जिस तत्त्व का। निज सामान्य स्वरूप में स्थित, पृथ्वी आदि की एकता।।
इस सब रूप समुदाय का, नाम परम महान् है। न ही उसमें कहीं वस्तु भेद, का ही कोई काम है।।
उसमें न तो प्रलय आदि, अवस्था भेद की स्फूर्ति है। न नवीन प्राचीन आदि, काल भेद की प्रतीति है।।

हे साधुश्रेष्ठ इस विधि यहाँ, सूक्ष्मतम वस्तु रूप का। और विचार है हो रहा, महत् तम स्वरूप का।।
इस उपमा से परमाणु आदि, अवस्था से जो व्याप्त हो। सृष्टि के व्यक्त रूपों के, भोक्ता आदि सामर्थ्य को।।

अव्यक्त रूप प्रभु काल की भी, सूक्ष्मतम सूक्ष्मता का। अनुमान लगाया जा सकता, है उसके स्थूलतम रूप का।।

व्याप्त है जो प्रपंच की, सूक्ष्मतम अवस्था में। परमाणु में समाया वह, सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप में।।
सृजन से ले प्रलय पर्यन्त, उसकी अवस्था जो भोगे। परम महान् वह स्वयं है, उसको ही तो काल कहें।।
दो परमाणु मिल कर, एक अणु कहलाता है। तीन अणु के मिलने से, इक त्रस रेणु हो जाता है।।
झरोखे से निकला हुआ, सूर्य किरण प्रकाश जो। आकाश में उड़ता हुआ, उसमें देखा जाये वो।।

तीन त्रसरेणु ऐसे जो, उनको पार कर जाने में। सूर्य को जितना समय लगे, उस काल को त्रुटि कहें।।
इसके सौ गुणा काल, एक वेध कहलाता है। तीन वेध ऐसे मिलकर, एक लव बन जाता है।।
तीन लव का एक निमेष, और तीन निमेष का होता क्षण। एक काष्ठा बन जाये, जब मिल जायें पांच क्षण।।
पंद्रह काष्ठा मिलकर के, एक लघु कहलाता है। इसी विधि काल का, चक्र यह चलता जाता है।।

पंद्रह लघु की मिलकर के, कहें बने है नाडिका। एक मुहूर्त कहलाये, जब मिलें द्वौ नाडिका।।
दिन और रात्रि के दोनों, सन्धि मुहूर्त छोड़कर। छ: या सात नाडिका का, कहें है होता एक प्रहर।।
यह प्रहर ही काल का, एक याम कहलाता है। जो जीव के दिवस रात्रि का, चौथा भाग ही होता है।।

छ: पल ताम्बे का इक, बर्तन ऐसा बना लेना। एक प्रस्थ जल आ सके, ऐसा आकार उसका लेना।।
चार माष सोने की फिर, चार अंगुल की सलाई बना। उस द्वारा उस बर्तन के, पेंदे में फिर छिद्र करा।।
जल में उसको छोड़ दें, जब एक प्रस्थ जल भर जाये। उस जल के भर जाने से, बर्तन जब डूब जाये।।
जितना समय उसमें लगे, उस काल को नाडिका कहते हैं। इसी विधि तो काल की, गिनती करते रहते हैं।।

हे विदुर अब मनुज के, दिन और रात्रि की बात कहें। चार-चार प्रहर के, दिन रात यह जो होते हैं।
पंद्रह दिन और रात्रि मिल, एक पक्ष कहलाता है। जो शुक्ल कृष्ण द्वौ भाँति के, भेद से जाना जाता है।।
इन दोनों पक्षों का मिलकर, एक मास हो जाता है। पितरों का वह एक दिन, और एक रात कहलाता है।।
दो मास की एक ऋतु, और छ: मास का अयन हो। इसके भी हों दो भेद, दक्षिण उत्तर अयन हो।।

दोनों अयन यह मिलकर के, देवों का दिन और रात बने। मनुष्य लोक में इसे वर्ष, या फिर बारह मास कहें।।
शत वर्ष को ही नर की, परम आयु है कहते हैं। इसी विधि वह काल की, गणना करते रहते हैं।।
चन्द्रादि ग्रह सब ही, और नक्षत्र अश्विनी आदि। सब तारागण के अधिष्ठाता, काल स्वरूप आदित्य भी।।
परमाणु से संवत्सर तक, द्वादश शशि का रूप धर। सम्पूर्ण भुवन कोश की, निरन्तर रहे परिक्रमा कर।।
सूर्य बृहस्पति सवन चन्द्र, और भेद नक्षत्र सम्बन्धी सभी। संवत्सर परिवत्सर इडावत्सर, अनुवत्सर वत्सर सभी।।
इन पांच प्रकार के वर्षों को, प्रवृत्त करें सूर्य प्रभो। उपहार समर्पित्त करके विदुर, पूजन इनका किया करो।।
पंच महाभूतों में से, यह सूर्य तेज स्वरूप है। निज कालशक्ति से बीजादि, करते अंकुर में परिणत हैं।।
अनेक भाँति निज शक्ति को, कार्य प्रवृत्त यह करते हैं। करी आयु क्षय करें मोह निवृत्त, आकाश में यह विचरते हैं।।
सकाम पुरुषों के यह ही, यज्ञ ग्रहण सब करते हैं। उसके लिये स्वर्गादि का, फल विस्तार यह करते हैं।।

विदुर बोले,
देव पितर् और मनुज की, परम आयु का वर्णन किया। सनकादि ज्ञानी मुनिजन जो, अब उनकी बात भी कहें जरा।।
त्रिलोकी से बाहर ही यह, कल्प पर्यन्त से अधिक रहें। हे मुनीश्वर उनकी भी, अब आयु का वर्णन करें।।
अविरल गति प्रभु काल की, भली भाँति जाने हैं आप। ज्ञानी जन योगसिद्ध दिव्य, दृष्टि से देखें संसार।।

मैत्रेय मुनि बोले,
सत्ययुग त्रेता द्वापर कलि, हे विदुर चारों यह युग। शास्त्र कहें है रहते यह, सन्ध्या और सन्ध्यांशों सहित।।
इनकी अवधि है कहें, देवों के वर्ष द्वादश सहस्र। ऐसा ही है कहा गया, शास्त्रन् में निरूपित कर।।
सत्यादि चतुर्युग की, अब क्रमश: तुझे कहते हैं। चार तीन दो और एक, सहस्र दिव्य वर्ष यह हैं।।
जितने सहस्र वर्ष कहें, प्रत्येक युग में होते हैं। उससे द्विगुण शत वर्ष, सन्ध्या सन्ध्यांशों में होते हैं।।

युग के आदि में सन्ध्या हो, और अन्त में हो सन्ध्यांश। इनकी वर्ष गणना को, करें शतश: वर्षों का आख्यान।।
इनके बीच का काल जो, तत्त्ववेत्ता उसे युग कहें। प्रत्येक युग में एक ही, विशेष धर्म का विधान कहें।।
सत्ययुग के लोगों में, है धर्म प्रधान कहा। अपने चारों चरण सहित, सुख से है वह रह रहा।।
अन्य युगों में अधर्म की, वृद्धि होती जाती है। इसमें इक इक पाद उसकी, क्षय ही होती जाती है।।

त्रिलोकी से जो बाहर हैं, महर्लोक ब्रह्मलोक तक। यहाँ की सहस्र चतुर्युगी, सम हो वहाँ एक दिवस।।
इतनी ही अवधि की उनकी, होती है रात्री भी कहें। इस काल में जगत् रचयिता, ब्रह्मा जी फिर शयन करें।।
उस रात्री का अन्त हो जब, इस लोक का कल्प आरम्भ हो। जब तक ब्रह्मा का दिन रहे, तब तक इस कल्प की अवधि हो।।
उस एक कल्प में फिर, चौदह मनु हो जाते हैं। हे विदुर इस विधि काल की, गति वह बतलाते हैं।।

एक सप्तति चतुर्युगी से, अधिक हर मनु रहता है। इस काल पर्यन्त वह निज, अधिकार भोगता रहता है।।
हर मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा और सप्तर्षि। देव इन्द्र गन्धर्वादि, भोगें अपने अधिकार सभी।।
श्री ब्रह्मा की यह ही तो, प्रति दिन की सृष्टि है। जिसमें तीनों लोकों की, रचना होती रहती है।।
अपने अपने कर्मानुकूल, पशु पक्षी मनुष्य पितर। और नित्य देवों की भी, उत्पत्ति होती रहे है फिर।।
इन सारे मन्वन्तरों में, श्री हरि सत्त्व का आश्रय लें। मनु आदि रूप निज प्रकट कर, सकल विश्व पालन करें।।

काल के इस क्रम से जब, श्री ब्रह्मा का दिन बीते। तब तमोगुण स्वीकार कर, सृष्टि रचना वह स्थगित करें।।
निश्चेष्ठ भाव से अपने में, आप पुन: वह स्थित होए। ऐसा ही श्री ब्रह्मा की, रात्रि का प्रभाव होये।।
उस समय यह विश्व सब, लय उन्हीं में हो जाये। जहां से था उत्पन्न हुआ, पुन: उसी में खो जाये।।
सूर्य और चन्द्रादि रहित, वह प्रलय रात्रि जब आती है। भू: भुव: स्व: त्रै लोक, वा तन में लीन हो जाती है।।

शेष के मुख से निकले हुए, अग्नि रूप भगवान में। तीनों लोक जलने लगें, उसके तेज के तापमान से।।
उस ताप से तपित भृगु आदि, और अन्य मुनीश्वर जन। महर्लोक को त्यज करी, जन लोक को दें प्रस्थान कर।।
इसी काल में सप्त सिन्धु, प्रलय की तीक्ष्ण वायु से। उछलती अपनी तरंगों में, पूर्ण त्रिलोकी लय कर लें।।

तब उस जल के भीतर ही, नित्य शेषशायी हरि। योगनिद्रा से शयन करें, नेत्र अपने मूंद करी।।
जन लोक निवासी मुनि, उस पल स्तुति उनकी करें। हे विदुर प्रलय काल की, है ऐसी महिमा कहें।।
सहस्र चतुर्युग रूप में, प्रतीत हों जिनके दिन और रात। काल की दु:साध्य गति को, वह ब्रह्मा भी होते प्राप्त।।
सौ वर्ष फिर उनकी भी, परम आयु बीत जाये। पलक झपकते ही मानो, काल ही उसको भी खाये।।

ब्रह्मा की आयु का भी, अर्ध भाग जो होता है। काल की गणना में वह, परार्ध ही कहलाता है।।
एक परार्ध तो बीत चुका, अब दूजा है चल रहा। काल का यह चक्र तो, अविराम है चल रहा।।
पूर्व परार्ध आरम्भ में, था ब्राह्म महान् कल्प हुआ। उसी कल्प में तो कहें, ब्रह्मा उत्पन्न था हुआ।।
पण्डित गण इनको ही तो, शब्द ब्रह्म का नाम दें। जो भी रूप जब भी उपजें, हैं ब्रह्म के ही वह जान ले।।

उसी परार्ध के अन्त में, जो कल्प फिर था हुआ। उस कल्प को शास्त्रों में, है पाद्य कल्प कहा।।
इसी कल्प में श्री हरि के, नाभि रूप सरोवर से। सर्वलोकमय कमल का, प्राकट्य हुआ जान ले।।
हे विदुर इस पल भी, जो कल्प है चल रहा। दूसरे परार्थ का, आरम्भ ही है हो गया।।
वराह कल्प के नाम से, यह काल विख्यात है। हरि ने सूकर रूप धरा, इसमें यह ही विख्यात है।।

दो परार्ध का काल जो, है श्री हरि का एक निमेष। अव्यक्त अनन्त अनादि और, विश्वात्मा का यह है विशेष।।
परमाणु से द्विपरार्ध तक, महा विस्तृत है जो काल। सर्व समर्थ यह है जग में, जीवों को शासित करे काल।।
सर्वात्मा श्री हरि इसके पति, उनपर प्रभुता न पा यह सके। देह में बन्धे जीवों को ही, यह अपना दास बना सके।।

प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार, पंचतन्मात्र अष्ट प्रकृति विकार। दस इन्द्रियाँ मन और पंचभूत, सब मिली बने सोलह विकार।।
इनसे मिलकर है बना, जिसको कहते ब्रह्माण्ड कोश। भीतर से है विस्तृत यह, योजन कहें पचास करोड़।।
बाहर चहुँ ओर दस गुणा, सप्त आवरण हैं उत्तरोत्तर। इन सबके सहित जिसमें यह, रहे ज्यों परमाणु बन कर।।
जिसके भीतर अनेक कोटि, ऐसी ब्रह्माण्ड राशि है। वह ही इन सब कारणों का, कारण प्रधानादि है।।
अक्षर ब्रह्म ही उसे कहें, है वह अक्षर सब का कारण। वह ही तो सब रूप धरी, करे सभी सृष्टियों को धारण।।
यही प्रभु श्री विष्णु का, श्रेष्ठ धाम कहलाता है। यह ही तो परम पुराण, पुरुष स्वयं परमात्मा है।।

७) वाराह चरित्र और पृथ्वी का उद्धार

श्री भागवत कथाओं में, अति अनुराग था हो गया। मुनीश्वर से श्री कथा सुनी, विदुर ने पुन: यह प्रश्न किया।।
विदुर बोले,
हे मुने आप अब कहें मुझे ब्रह्मा के प्रिय पुत्र ने। प्रिय पत्नी शतरूपा पाकर, क्या यत्न किए स्वयंभू मनु ने?
हे साधु शिरोमणे, आप ही मुझे बताइए। राजर्षि स्वयंभुव मनु का, पावन चरित सुनाइए।।
श्री मनु तो प्रभु विष्णु की, शरण में ही थे प्रपन्न। अति श्रद्धापूर्ण चित्त से, करना चाहूँ वा चरित श्रवण।।

मुकुन्द चरण जिनके हृदय, रहें सदा विराजमान् उन भक्त जनों के गुणों का, श्रवण है देता फल महान्।।
विद्वान जन यह कहते हैं, दीर्घ कालीन अध्ययन का। यह ही तो मुख्य फल है, शास्त्र अभ्यास के सब श्रम का।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री विदुर तो थे, श्री हरि के शरणागत भक्त। सहस्रशीर्षा प्रभु की कथा का, दिया जब आग्रह कर।।
उनकी बिनती से मैत्रेय का, रोम रोम ही खिल उठा। उनसे कथा की प्रेरणा पा, मुनिवर ने फिर यूं कहा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
निज भार्या शतरूपा संग, जब स्वयंभू मनु का जन्म हुआ। अति विनम्र हो कर जोड़ी, उन ब्रह्मा जी से यूं कहा।।
हे भगवन् इक आप ही तो, सब जीवों के हैं जन्म दाता। हे पिताश्रेष्ठ आप ही तो, देवें सबको आजीविका।।
आपकी ही सन्तति हैं हम, कृपा करी अब हमें कहें। कौन-सा ऐसा कर्म करें, जो आपकी सेवा बन सके?

हे पूज्यपाद कर जोड़ करी, नमन करें तुम्हारे चरणों में। हमारी समर्थ को देखकर, किसी कार्य की आज्ञा दें।।
जिससे इह लोक में सर्वत्र, कीर्ति विस्तृत हो हमरी। और पुन: परलोक में भी, प्राप्त हो जिससे सद्गति।।
हे वत्स तुम दोनों का, कल्याण ही हो सर्वदा। तव आत्म समर्पण देख कर, अति मुदित मैं हो गया।।
निष्कपट भाव से तुमने कहा, मुझे आज्ञा दें अब आप। इस समर्पित भाव से, दूर हुए मेरे सब ताप।।

वीर पुत्रों के लिए है, पिता पूजनीय इसी विधि। वीर भाव दूजों के प्रति, है उनके लिये निषेध ही।।
उचित यही है उनके लिये, पितु आज्ञा का पालन करें। हो सावधान आदरपूर्वक, निज पिता की आज्ञा सीस धरें।।
अपनी इस भार्या से तुम, अपने समान ही गुणवती। धर्मानुकूल उत्पन्न करो, अपने समान ही सन्तति।।
धर्मसहित इस पृथ्वी का, हे मनु तुम पालन करो। और विविध यज्ञों द्वारा, हरि का आराधन तुम करो।।

यह प्रजापालन ही तव, होगी मेरी उत्तम सेवा। प्रजापालन देखी तेरा, होंगे प्रसन्न श्री हरि सदा।।
यज्ञमूर्ति जनार्दन प्रभु, प्रसन्न नहीं जिनपर होते। उनके कठिन परिश्रम भी, व्यर्थ ही हैं सब खो जाते।।
क्योंकि जो अपने ही, आत्म का आदर नहीं करें। उनपर तो श्री हरि भी, कभी प्रसन्न न हो सकें।।
मनु बोले,
हे पिताश्री है किल्लिवष नाशक, आज्ञा शिरोधार्य मेरे। इस जग में मेरा और भावी प्रजा, का निवास स्थान कहें।।
सब जीवों का निवास स्थान, यह धरा तो जल में निमग्न हुई। इस प्रलय काल में पृथ्वी के, उद्धार का यत्न करें कोई।।
मैत्रेय बोले,
अथाह जल में पृथ्वी को, जब देखा डूबी हुई। तब ब्रह्माजी के मन में, पुन: पुन: यह विचार उठा।।
कैसे अब निकालूँ मैं, पृथ्वी को जल भीतर से? कौन उपाय अब करूँ, इसका उद्धार जो हो जाये?

लोक सृजन के कार्य में, व्यस्त था जब मैं हो रहा। तब डूबी जल में पृथ्वी, रसातल तक पहुंची वह जा।।
सृष्टि कार्य में ही तो हमें, श्री हरि ने है नियुक्त किया। अत: ऐसी अवस्था में, है क्या अब कर्त्तव्य मेरा?
जिनके संकल्प मात्र से ही, है मेरा यह जन्म हुआ। सर्वशक्तिमान् वह हरि, ही यह काम सम्भालें मेरा।।

श्री ब्रह्मा जी इस विधि, जब विचार थे कर रहे। उनके नासिका छिद्र से, अकस्मात् ही वराह निकले।।
अंगूठे के परिमाण सम, ही आकार वह उसका था। हे निष्पाप विदुर सुनो, वराह का नन्हा शिशु वह था।।
हे भारत इक महा आश्चर्य, उस समय वहाँ पर हुआ। आकाश में खड़ा वराह शिशु, ब्रह्मा के सामने बड़ा हुआ।।

क्षण भर में नन्हा सा शिशु, हाथी समान ही बढ़ गया। अंगुष्ठ मात्र निज रूप को, क्षण भर में हाथी सम किया।।

उस विशाल आकार की, वराह मूर्ति जब देखी। मरीचि आदि मुनि जन सब, और कुमार सनक आदि।।
स्वयंभू मनु को साथ लिये, ब्रह्मा जी भी सोचन लगे। भाँति भाँति के विचार, उनके मन में उठने लगे।।
अहो सूकर के रूप में, कौन दिव्य प्राणी प्रकटा? अभी अभी मम नासिका रन्ध्र, में से था नि:सृत हुआ।।

पहले तो अंगुष्ठ के भी, एक पोर के समान था। किन्तु क्षणभर में ही यह, शिला समान है हो गया।।
निश्चित ही है यज्ञमूर्ति, श्री भगवान का रूप यह। विविध भाँति यह हम सबके, चित्त को मोहित कर रहे।।
ब्रह्मा जी और उनके पुत्र, अभी सोच ही थे रहे। पर्वताकार हो गए हरि, फिर यज्ञ पुरुष गर्जन किए।।

अपनी गर्जन से हरि ने, दिशाओं में गुंजार करी। प्रतिध्वनित करके गर्जन, ब्रह्मा के चित्त में हर्ष भरी।।
उस ध्वनि को सुन करी, मुदित हुए श्रेष्ठ ब्राह्मण। सर्वशक्तिमान् प्रभु की, थी ऐसी अद्भुत गर्जन।।
मायामय वराह रूप की, घर्घर ध्वनि का नाद सुनी। सब ऋषि और मुनिजन की, खेद मानो सब शान्त हुई।।
जन तप और सत्य लोक, के निवासी आने लगे। तीनों वेद के मन्त्रों से, स्तुति उनकी गाने लगे।।

वेदों में विस्तृत किया, श्री हरि का स्वरूप वर्णन। मुनिवर की वेद रूपा स्तुति, सुन के श्री हरि हुए प्रसन्न।।
एक बार पुन: गर्जन कर, गजराज समान ही की लीला। देवों के हित के लिए, निज विग्रह जल में दिया घुसा।।

यज्ञ रूप हैं स्वयं हरि, फिर भी सूकर का रूप धरा। पूंछ उठा आकाश में, उछले प्रभु सूकर रूप धारण कर।।
गर्दन के बालों को पटका, निज खुरों से फिर आघात किया। उनके इक आघात से, जैसे सब बादल छिन्न हुआ।।
अति कठोर था विग्रह उनका, कठोर थे त्वचा पे उनके बाल। श्वेत दन्त उनपर सोहें, तीक्ष्ण दाढ़ें श्वेत विशाल।।
नेत्रों से तेज था छलक रहा, थी उनकी निराली शोभा बनी। सुर नर सब मिली स्तुति करें, उनके इस अद्भुत रूप की।।

स्वयं ही हैं वह यज्ञ पुरुष, फिर भी सूकर रूप यह धर। नासिका से निज सूंघ सूंघ, पृथ्वी की मानों खोजें खबर।।
अति कठोर दाढ़ें दन्त, अति विकराल थे दीख रहे। फिर भी निज स्तुति में लगे, मरीचि आदि मुनि को देखें।।
सौम्य दृष्टि से निहार उन्हें, किया फिर जल में प्रवेश। सुकर रूप धारी प्रभु, अब करें निज कार्य विशेष।।

पर्वत समान विशाल है, कठोर वज्रविग्रह उन का। जिस परल सागर में गिरा, ज्यों वेग से सागर उदर फटा।।
बादल की गर्जन समान, अति भीषण ध्वनि उठी सागर में। अपनी विशाल तरंगों की, भुजा वह मानो उठाये हुए।।
आर्त स्वर से प्रभु चरण में, मानो बिनती हों कर रहे। प्रभु मेरी रक्षा करो, सब यह ही थे पुकार रहे।।

बाण समान तीक्ष्ण खुरों से, जलनिधि मानो चीर कर। पहुंचे यज्ञ पुरुष तक, जैसे सब जल को पार कर।।
रसातल में उन्होने देखा, एक अद्भुत दृश्य यह। सब भूतों की आश्रय भूत, इस पृथ्वी को पड़े हुए।।
कल्प अन्त में शयन को, उद्यत थे जब प्रभु हुए। अपने उदर में यह पृथ्वी स्वयं ही लय थे कर रहे।।

जल निमग्न इस पृथ्वी को, अपनी दाढ़ों पर धर कर। श्री हरि फिर निकले स्वयं, उस रसातल से ऊपर।।
शोभा अति निराली ही, हरि की थी उस पल बनी। हिरण्याक्ष ने विघ्न बनी उनपर, जल के भीतर ही प्रहार की।।

यह देखकर क्रोध प्रभु का, हुआ तीक्ष्ण चक्र समान। क्रीड़ा क्रीड़ा में मारा उसे, ज्यों सिंह मारे हाथी महान्।।
नथनी और कनपट्टी उनके, थे रक्त से सने हुए। गजराज ज्यों रक्तिम रेणु के, टीले में हों धंसे हुए।।

हे तात् ज्यों गजराज कोई, अपने उग्र महादन्तों पे। कमल पुष्प धारण करे, श्री हरि थे ऐसे भास रहे।।
श्वेत दाँत की नोक पर, पृथ्वी को धारण किये। तमाल नील वर्णी प्रभु को, जब देखा जल से निकलते हुए।।
ब्रह्मा मरीचि आदि का, दृढ़ निश्चय यह हो गया। वराह रूप धारण किया, यह तो है परम पुरुष क्रीड़ा।।
तब दोनों कर जोड़ कर, स्तुति गान वह करने लगे। वेद वाक्यों से उनकी, महिमा वह गाने लगे।।
ऋषि बोले,
जय हो जय हो जय हो प्रभु, हे अजित श्री आपकी। आप स्वयं हैं यज्ञ पति, तीनों वेद है विग्रह आपकी।।
फटकार रहे प्रभु आप उसे, नमन मेरा स्वीकार यह हो। आपके रोम कूपों में ही, सम्पूर्ण यज्ञ यह लीन हों।।
पृथ्वी के उद्धार को, किया सूकर रूप यह है धारण। नमस्कार प्रभु चरण में, जगत् उद्धार के हे कारण।।

अति दुर्लभ यह दर्शन है, दुराचारियों के लिये। इस यज्ञ रूप विग्रह का प्रभु दर्शन कोई न पा सके।।
त्वक् में छन्द गायत्री आदि, रोमावली में समाया कुश। चारों चरण में होतागण, नेत्रों में उनके बसे है घृत।।
अध्वर्यु उद्गाता ब्रह्मा, चरण में ऋत्विक् सारे बसें। अपने अपने कर्म सहित, चरणों में ही रह सकें।।

हे प्रभु मुख के अग्रभाग में बसे हैं रहते स्रुक। उदर में ईडा आपके, स्रुवा बसे हैं नासिका छिद्र।।
कानों में श्री चमस् हैं, और मुख में है प्राशित्र। कण्ठ छिद्र में ग्रह बसे, ऐसा है यह अद्भुत दृश्य।।
चबाना जो है आपका, वह ही तो है अग्नि होत्र। इक तन में ऐसा लगे, है समाया सृष्टि चक्र।।

पुन: पुन: लेना अवतार, है यज्ञस्वरूप दक्षणीय दृष्टि। गरदन ही उपसद कहें, प्रायणीय उदनीय द्वौ दाढ़ बनी।।
जिह्वा है प्रवर्ग बनी, सिर बना सभ्य और आवसध्य। प्राण चिति बनकर प्रकटे, यह है पुरुष स्वरूप यज्ञ।।
सोम वीर्य है आपका, प्रात: सवनादि तीन सवन। सप्त धातु कहें उक्थ, अग्निष्टोम अति अग्निष्टोम।।
बाजपेय अतिरात्र आप्तोर्याम, नाम की संस्थायें सात। शरीर की सन्धियां मिल करी, बनाएं एक सत्र आप।।

सम्पूर्ण यज्ञ और क्रतु रूप, और यज्ञानुष्ठान की इष्टियाँ। आप स्वयं ही सब बनें, सन्धिकर मांसपेशियाँ।।
मन्त्र देव द्रव्य यज्ञ कर्म, आपके ही तो स्वरूप हैं। आपको ही हो नमस्कार, ज्ञान आपका रूप है।।
वैराग्य भक्ति एकाग्रता ही, ज्ञान का अनुभव दे सकें। हैं सबके विद्या गुरु आप, चरणों में तव प्रणाम हे।।

पृथ्वी के धाता हे प्रभु, आपकी दाढ़ों पर रखी। पर्वत आदि से सजी हुई, है पृथ्वी शोभित हो रही।।
ज्यों वन से निकले गज के, दन्त पे कमलिनी हो धरी। अपने पत्तों के साथ वहाँ, हो वह सभी भाँति सजी।।
दन्त पे धारे भूमण्डल, यह वेदमय वराह विग्रह। है ऐसा सुन्दर दीखे, ज्यों मेघ सोहें गिरि शिखर पे।।

चराचर जीवों का सुखमय, आश्रय है यह धरती माता। उनके निवास के लिए नाथ, जल पे करें स्थित जगन्माता।।
आप ही जगत् के हैं पिता, तव भार्या पृथ्वी ही जननी। ज्यों अग्नि अरणि में ही, हर पल है स्थापित रहती।।
आपने इस पृथ्वी में ही, अपना तेज स्थापित किया। स्वीकार करें प्रणाम प्रभु, आप और पृथ्वी माता।।

रसातल में निमग्न हुई, पृथ्वी को बाहर लाने का। प्रभु आपके अतिरिक्त, साहस कौन है कर सकता?
आश्चर्यघन हैं प्रभु आप, फिर इसमें कोई आश्चर्य नहीं। निज माया से आश्चर्यमय, इस विश्व की है सृष्टि कर दी।।
निज वेदमय विग्रह को जब, आप तनिक सा हिलाते हैं। अपनी गर्दन के बालों से, शीतल जल बिन्दु गिराते हैं।।
उनसे भीगे जन तप और, सत्यमय लोक के वासी। मुनिजन सब पावन हो जाये, हैं आप स्वयं पावन राशि।।

आपके दिव्य कर्मों का, पार जो पाना चाहते हैं। है उनकी बुद्धि नष्ट हुई, वह कर्म समझ नहीं पाते हैं।।
योगमाया से आपकी, भ्रमित यह पूर्ण जग हुआ। तीन गुणों के फेर में, ही तो है यह पड़ा हुआ।।
हे प्रभु अब आप ही, कल्याण इसका कीजिये। निज करुणामय दृष्टि से, निवृत्ति अज्ञान की कीजिये।।

मैत्रेय बोले,
ब्रह्मवादी ऋषियों ने जब, इस विधि प्रभु की स्तुति करी। सर्वरक्षक वराह प्रभु ने, निज खुर से जल स्तम्भित की।।
इस जगत् जननी पृथ्वी को फिर, स्थापित जल पे कर दिया। सर्वसामर्थ प्रभु ने इस विधि, पृथ्वी का उद्धार किया।।
रसातल से इस विधि, लीलापूर्वक लाई गई। पृथ्वी को स्थापित कर जल पे, अन्तर्धान हुए श्री हरि।।

कीर्तन योग्य हैं प्रभु के सब, लीलमय चरित विचित्र। इसे सुनकर और कहकर, हो जाती है बुद्धि पवित्र।।
इस मंगलकारी कथा को जो, भक्ति भाव से सुनता है। या फिर इस कथा का, जो कीर्तन ही करता है।।
सारे पाप ताप उसके, दूर स्वत: हो जाते हैं। भक्त वत्सल प्रभु उस पे, शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।।

प्रभु तो सारी कामना की, पूर्ति में हैं सर्व सामर्थ। उनकी प्रसन्नता से जग में, रह जाता है क्या दुर्लभ?
पर अति क्षुद्र यह कामना, उसके किये किस काम की? जिसके चित्त में प्रभु प्रेम की, अनन्य ज्योति है जल चुकी।।
वह अन्तर्यामी उसको, अपना आप दे देते हैं। करुणापूर्ण करुणा करके, परम पद भक्त को देते हैं।।

पशु योनि अतिरिक्त इस, मानव तन को ही पाकर। निज पुरुषार्थ सार को, जाने जो कोई भी नर।।
कौन नहीं ऐसा होगा, जो एक बार श्रवण करके। प्रभु की सुधामयी कथा से, चित्त अपना हटा सके।।

ब्रह्मा से हिरण्यकश्यपु ने, था इक दुर्लभ वर पाया। मृत्यु भय से था मुक्त हुआ, महा धृष्ट वह हो गया।।
निज भुजबल से उसने सब, लोकपालों को वश में किया। इनके साथ साथ ही, त्रिलोकी को भी वश में किया।।
निज अनुज हिरण्याक्ष से, प्रीति अतीव थी उसकी बनी। निज ज्येष्ठ भ्राता के ही प्रिय, कार्य सदा हिरण्याक्ष करी।।
एक दिन हिरण्याक्ष था, युद्ध का अवसर ढूंढ रहा। गदा हाथ में लिये हुए, वह स्वर्ग लोक में जा पहुँचा।।

असह्य वेग ही था उसका, चरणों में स्वर्ण नूपुर बोले। कान्धे पे गदा विशाल धरी, कण्ठ विजयमाला डोले।।
निज तनोबल और मनोबल, इसपर ब्रह्मा का वर जो मिला। इन तीनों ने मिलकर के, मतवाला उसको कर दिया।।
सर्वथा हुआ निरंकुश वह, निर्भय ही था हो गया। उसे देख हुए भयभीत देव, जहाँ तहाँ आश्रय लिया।।
ज्यों सर्प को देख के, छिपें चूहे जा निज बिल में। उसी विधि हिरण्याक्ष देख, छिपे देव अपने घर में।।

जब दैत्यराज ने यह देखा, उसके तेज के सामने। इन्द्रादि महा अभिमानी, देवता भी जा छिप गए।।
सामने उनको न पाकर, भयंकर गर्जन करने लगा। इस विधि हिरण्याक्ष वह, भयभीत सभी को करने लगा।।

मतवाला हाथी कोई, ज्यों जलक्रीड़ा को उद्यत हो। लौट के वहाँ से दैत्य ने, महा सागर में प्रवेश किया।।
सागर की लहरें उस पल, भयंकर गर्जन करने लगीं। सागर की परिधि में मानो, सीमित निज को न कर सकीं।।

ज्यों सागर में उस कदम धरा, जलचर सब घबरा गए। वरुण के सारे सैनिक ही, उससे ज्यों भयभीत हुए।।
बिना किसी प्रहार के, उसकी धाक से ही बहु डर गये। ऐसी मनो अवस्था में, बहुत दूर वह जाय छिपे।।

अनेकों वर्ष वह महाबली, सागर में ही विचरता रहा। अपने सामने जब उसने, कोई प्रतिपक्षी न पाया।।
वायु वेग से उठी हुईं, लहरों पर ही प्रहार किया। अपनी लौहमयी गदा, उनपर ही वह अजमाता रहा।।
भ्रमण करता करता वह, विभाव पुरी में जा पहुंचा। वरुण देव की राजधानी में, उसने फिर प्रवेश किया।।

पाताल लोक के स्वामी वहाँ, और जलचरों के अधिपति। वरुणदेव को देख कर, व्यंगमयी मुसकान भरी।।
उनकी हंसी उड़ाते हुए, उसने उनको प्रणाम किया। नीच पुरुष की भाँति ही, उस दैत्य का यह व्यवहार था।।
कटाक्षपूर्ण वाक्य कही, वरुण को अपमानित किया। युद्ध की भिक्षा दें मुझको, ऐसा उसने प्रस्ताव धरा।।

लोकपालक नृप हैं आप, महान् है कीर्ति आपकी। निज को बलशाली मानें जो, उनकी मद आपने चूर्ण की।।
पूर्व काल में एकदा, सब दैत्य दानव जीत करी। प्रभुत्व निज स्थापित किया, राजसूय थी यज्ञ करी।।
मदोन्मत्त निज शत्रु की, उपहास युक्त जब कथन सुनी। वरुण देव के आन्तर में, क्रोध की ज्वाला भड़क उठी।।

पर बुद्धि बल उसका महान् था, उस अग्र का उन्होने चयन किया। उसके कटाक्ष के बदले में, अति शान्त उन्होने वचन कहा।।
अरे अब तो हमें इस युद्ध का, कोई चाव नहीं रह गया। निज प्रभुत्व दिखाने का, भाव भी अब है मौन हुआ।।
पुराण पुरुष भगवान के सिवा, कोई भी हमें न दीखे। तुम जैसे रणकुशल वीर को, युद्ध से जो तुष्टित करे।।
हे दैत्य राज गहो उनकी शरण, वह ही तव कामना पूर्ण करें। तुम जैसे वीर तो उनका ही, गुणगान नित्य किया करें।।

हैं उद्गम वीरता का वह स्वयं, उनके ही द्वारे जाओ तुम। अभिमान तेरा चूर्ण होगा, उन हाथों सद्गति पाओ तुम।।
वीरोचित शैय्या पर तुम, शयन तब कर पाओगे। उनके हाथों ही मरकर तुम, श्वानों से घिर जाओगे।।
तुम सम दुष्टों के हनन हेतु, और सत्पुरुषों पर कृपा करी। अनेक विधि अनेक रूप, धारण करते हैं श्री हरि।।

वरुण की सुन यह सम्मत्ति, मदोन्मत्त दैत्य हर्षित हुआ। तू मरेगा उनके हाथ, इस बात पे न उसने ध्यान दिया।।
तत्क्षण वह श्री नारद से, पता श्री हरि का पाकर। रसातल में ही चला गया, हे विदुर सागर तल पर।।

उसने देखा सागर तल से, धरणी को ऊपर ले जाते। विश्व विजयी वराह को, दाढ़ों पर पृथ्वी धर के।।
रक्तिम उज्ज्वल नयनों ने, उसका तेज था हर लिया। उन्हें देखकर दैत्य वह, अट्टहास करी के यूं बोला।।
यह जंगली पशु अरे, यहां जल में कैसे आ गया? इसका घर है जंगल में, इस सागर में क्योंकर घुसा?

फिर उसने वराह से कहा, अरे मूर्ख जरा इधर तो आ। इस पृथ्वी को छोड़ तू दे, क्यों नाहक बोझ उठा रहा?
विश्व विधाता ब्रह्मा ने, हमको है इसे सौंप दिया। रसातल के हम वासिन् से, है अब इसका भाग्य बधा।।
हे सूकर अति अधम तू, इसे नहीं ले जा सके। मेरे देखते देखते तू, न इसकी गति करा सके।।

दैत्यों का वध कर जीते उन्हें, अपनी माया से लुक छिप कर। क्या इस कारण हमरे रिपु ने, दिया है तुझको पुष्टित कर?
अरे मूर्ख तेरा बल तो है, तव योगमाया में निहित। नहीं इसमें पराक्रम तेरा कोई, न ही तेरा पुरुषार्थ किंचित।।
आज तुझे कर समाप्त मैं, निज बन्धुन् का शोक हरूँ। युद्ध मैं तुझसे कर करी, इस पल ही तेरा वध करूँ।।

मेरे हाथों छूटी यह गदा, छिन्न- भिन्न तेरा सीस करे। इसके प्रहार से पल भर में, धराशायी तू हो जाये।।
तब तेरे अराधक देवता, और ऋषि नष्ट हो जायेंगे। जड़ से छेदित वृक्ष और, स्वत: अन्त निज पाएंगे।।

दुर्वचन रूप इन बाणों से, था छेदन प्रभु का कर रहा। भयभीत धरा को अपने, दंष्ट्रों पर हरि ने जब देखा।।
मौन ही रह हिरण्याक्ष का, वाक्य बाण वह सहते रहे। उसके दुष्वचन के प्रतिरूप, प्रभु ने न कुछ कर्म किए।।
ग्राह की चोट से अनाहत, हथिनी संग महा गजराज। ज्यों जल से बाहर निकले, निकले त्यों धरा संग प्रभु आप।।

अपनी चुनौती का उसने, जब कोई उत्तर न पाया। प्रभु के इस महामौन पे, दैत्यराज बहु बौखलाया।।
ज्यों ग्रह ने जल के भीतर से, गजराज का पीछा हो किया। हिरण्य केशी तीक्ष्ण दन्ती, उस दैत्य ने हरि अनुकरण किया।।
वज्र समान कठोर तब, वाणी से वह यूं गर्जा। अरे यूं कायर की भाँति ही, तू भाग क्या लज्जित नहीं हुआ?
उचित ही है यह वचन जो, पूर्वकाल में था कहा। असत् पुरुषों के लिए, कोई कर्म अनुचित नहीं रहता।।

जल से बाहर ला प्रभु ने, पृथ्वी को स्थापित जब किया। उपयुक्त स्थान पे धर के उसे, आधार शक्ति से अपनी भरा।।
हिरण्याक्ष सम्मुख ही ब्रह्मा ने, श्री हरि का तब गुणगान किया। सब देवों ने मिलकर फिर, नभ से की पुष्पों की वर्षा।।
स्वर्ण आभूषण और अद्भुत, कवच था जिसने पहरा हुआ। कटु वचनों से अपने था, निरन्तर आहत कर रहा।।
हिरण्याक्ष कर में ले गदा, हरि के पीछे था आ रहा। अत्यन्त क्रोध से भरा हुआ, अट्टहास युक्त प्रभु ने वचन कहा।।

भगवान बोले,
सत्य वचन है तेरा यह, हम तो जंगली जीव हैं। जो तुझ जैसे श्वानों के, आखेट की खोज में रहते हैं।।
अरे दुष्ट कोई भी वीर पुरुष, तुझ जैसे मृत्यु पाश में बद्ध। अभागे जीव की आत्म स्तुति पे, ध्यान नहीं कभी देते धर।।

रसातल वासिन् की धरोहर, हर कर हम यहाँ पे ले आये। भयभीत हुए तव गदा से हम, निर्लज्ज की भाँति यहां धाये।।
तुझ जैसे अद्वितीय वीर, योद्धा सम्मुख कैसे ठहर सकें? हममें सामर्थ ही कहाँ भला, जो तुझसे हम युद्ध करें?
फिर भी जैसे तैसे हम, तेरे सम्मुख हैं खड़े हुए। तुम जैसे वीर से वैर किया, अब कहाँ हम जा सकें?

निज पाद से ही जो चला करें, तू यूथपति उन वीरों का। तेरी महिमा का कहना क्या सरदार है तू अति धीरों का।।
यह उधेड़ बुन छोड़ तू, हमारे अनिष्ट का यत्न कर। नि:शंक ही तू होकर के, अब हमपर प्रहार कर।।
हनन करके हमारा अब, निज बान्धव के अश्रु पोछों। तनिक विलम्ब न इसमें हो, प्रतिज्ञा निज पालन करो।।
जो प्रतिज्ञा का अपनी, पालन कभी नहीं करते। वह असभ्य संस्कृत जन की, संगति योग्य नहीं होते।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर श्री हरि ने जब, उस दैत्य का यूं उपहास किया। इस तिरस्कार को दम्भी, हिरण्याक्ष न सह सका।।
अति विषधर महा सर्प का, ज्यों हाथ में हो खिलौना बना। उस सर्प की भाँति वह, क्रोध से तिलमिला उठा।।

क्रोध के मारे खीझ के वह, लम्बी सांसे भरने लगा। क्षुब्ध हुई इन्द्रियन् से वह, प्रहार प्रभु पर करने लगा।।
उस दुष्ट दैत्य ने लपक कर, श्री हरि पर तब वार किया। अपनी गदा की चोट से, समझा उसने उन्हें मार दिया।।

प्रभु वक्ष:स्थल को लक्ष्य किये, गदा जो उसकी थी उठी। कुछ टेढ़े होकर प्रभु ने, प्रहार से अपनी रक्षा की।।
ज्यों योग सिद्ध हुआ योगी, नहीं मृत्यु पाश से घबराये। वह तो योग के बल से ही, मृत्यु से ऊपर उठ जाये।।
क्रोध से होंठ चबाता हुआ, जब अपनी गदा घुमाने लगा। तब कुपित श्री हरि का कदम, वेग से दुष्ट की ओर बढ़ा।।

निज अरि की दांयी भ्रुव पर, तब प्रभु ने गदा की चोट की। हे सौम्य वीर हरण्याक्ष ने, निज गदा पे ही वह प्रहार ली।।
इस विधि प्रभु और हिरण्याक्ष, थे भीषण क्रोध से दोनों भरे। इक दूजे पर विजयेच्छा से, गदा प्रहार थे कर रहे।।

इन दोनों की आपस में, थी विजय की होड़ लगी। दोनों के अंगों पर ही, गदा प्रहार की चोट लगी।।
निज घावों से बहते हुए, अपने रक्त की गन्ध से। क्रोधोन्मत्त दोनों हुए, थे अपने पैंतरे बदल रहे।।
ज्यों इक गौ के लिए दो साण्ड, हताहत हों इक दूजे से। भयंकर युद्ध हुआ दोनों में, परस्पर जीतने के लिये।।

हे विदुर निज माया से, वराह रूप धारण किये। यज्ञ पुरुष भगवान में, और दैत्यराज हिरण्याक्ष में।।
युद्ध यह होने लगा, पृथ्वी हेतु बन्धे द्वेष में। ऋषियों सहित ब्रह्मा पहुँचे, इस युद्ध के परिवेष में।।
सहस्रों ही ऋषियों से, घिरे हुए थे श्री ब्रह्मा। अभय दैत्य को शूरवीर, और युद्ध में अति सामर्थ देखा।।
दमन उसके पराक्रम का, जब उन्होने अति कठिन देखा। आदिसूकर नारायण से, तब ब्रह्मा ने यह वचन कहा।।

मुझसे वर पाकर हे देव, यह दैत्य प्रबल अति हो गया। तव शरणागत देव विप्र, और गौ को ताडित कर रहा।।
निरपराधी जीवों का, यह अपराधी हो गया। दु:खदायी भयप्रद उनके लिए, और हानिकारक हो गया।।
इस समान दूजा कोई, योधा कहीं न दीख रहा। इस कारण निज सम वीर की, खोज में है यह भटक रहा।।

अति दम्भी और मायावी, दुष्ट निरंकुश यह हुआ। हे हरि ज्यों क्रुध सर्प को, बालक ने हाथ में हो पकड़ा।।
इसी विधि इस दुष्ट से, आप प्रभु अब न खेलें। इस विषैले सर्प से क्यों, खिलवाड़ आप हैं कर रहे?
सीमा उलांघ बल वृद्धि की, प्रबल दैत्य यह हो जाये। उससे पहले ही हे अच्युत, निज योग माया स्वीकार करें।।
इस पापी का हनन कर, इसका प्रभु उद्धार करें। हे देव यह याचना, कृपया हमारी आप सुनें।।

प्रलयकारी भयावह अति, सन्ध्या बेलना आती दीखे। उससे पहले ही हे प्रभु, संहार असुर का आप करें।।
असुर मार के हरि आप, देव विजय साधन बनें। दैत्य दमन और सत् वर्धन, तुम्हारी कृपा से ही तो हो सके।।
अभिजित नामक मंगलकारी, मुहूर्त का भी योग हुआ। अपने सुहृद् हम लोगों का, कल्याण शीघ्र ही दें करा।।
इस दुर्जेय दैत्य से शीघ्र ही, हे प्रभु आप ही निपट लें। इसके आतंक से हे हरि, पूर्ण सृष्टि को मुक्त करें।।

आपके हाथों ही लिखा, है अन्त इस असुर का। स्वयं ही अपने काल रूप, आपके पास यह आ पहुँचा।।
अति सौभाग्य यह हम सबका, ऐसा विधान है आपका। अब युद्ध में वध करके इसका, कल्याण करें सब लोकों का।।
मैत्रेय मुनि बोले,
निष्कपट श्री ब्रह्मा के, जब अमृतमय यह वचन सुने। उनका भोलापन देख प्रभु, सस्नेह मुस्करा दिये।।

प्रेमपूर्ण कटाक्ष कर, प्रार्थना उनकी स्वीकार करी। हे विदुर इस विधि, अनुकम्पा श्री हरि ने करी।।

उनके सम्मुख निर्भय हुआ, शत्रु जो था विचर रहा। उसकी ढोड़ी पर श्री हरि ने, झपट के गदा प्रहार किया।।
असुर गदा से टकरा के, प्रभु हाथ से उनकी गदा छूटी। चक्कर खा के वह पुन:, धरती पर गिर उनकी शोभा बनी।।
किन्तु उस पल सुनो हे विदुर, आश्चर्य युक्त यह घटना हुई। यह सब दृश्य जो वहां घटा, प्रभु की ही तो प्रेरणा थी।।

शत्रु पर वार गिराने का, समुचित मौका हाथ में था। पर निरस्त्र देखी प्रभु को, उसने युद्ध धर्म पालन किया।।
उनपर वार न उसने किया, इसमें भी निहित उसकी नीति थी। क्रोध बढ़े मेरे शत्रु का, इस कारण ऐसा कर्म किया।।
गदा जा गिरी धरती पर, और हाहाकार भी बन्द हुआ। उसकी धर्मबुद्धि सराह करके, प्रभु ने निज चक्र को याद किया।।

तत्क्षण उपस्थित हुआ चक्र, उनके हाथों पे जाय चढ़ा। महा अधम वह दैत्य तो, प्रभु का अपना ही पार्षद था।।
हिरण्याक्ष असुर के साथ वह, क्रीड़ा विशेष करने लगे। देवता गण भी श्री हरि के, वास्तविक प्रभाव को न जान सके।।
सब देव मिलि विचित्र स्वरों में, प्रभु की जय जयकार करे। कहें और न इससे खेलें आप, प्रभु शीघ्र ही इसका वध करें।।

हिरण्याक्ष ने जब सम्मुख देखा, नयनाभिराम श्री हरि को। सामने अपने चक्रधर, कमल दल लोचन श्री हरि को।।
सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसकी, क्रोध से तिलमिलाने लगीं। होंठ वह अपने चबाने लगा, लम्बी उसने आहे भरीं।।
करालदंष्ट्र वह दैत्य फिर, उनको घूरने यूं लगा। मानो निज क्रोध अग्न में वह, भस्म ही उनको कर देगा।।
उछल के फिर उसने कहा, ले तू अब बच नहीं सकता। इस ललकार सहित उसने, निज गदा से हरि पे वार किया।।

शत्रु के देखते देखते ही, प्रभु वराह ने लीला की। वायु सम वेगवान उसकी गदा, पद घात से धरती पर गिरी।।
फिर उस दैत्य को ललकारा, तू मुझे जीतना चाहे गर। अरे दैत्य निज गदा उठा, और पुन: वार तू कर मुझपर।।
प्रभु के ऐसा कहने पर, गदा उठा के चलाई उस। भीषण गर्जना पहले की, फिर दया प्रभु पे वार कर।।

गदा को जब भगवान ने, अपनी ओर आते देखा। जहाँ खड़े थे वहां से ही, अनायास उसको पकड़ा।।
जैसे कोई गरुड़ निज, चोंच में सर्पिणी को पकड़े। उसी विधि श्री हरि ने भी, गदा प्रहार निष्क्रिय किये।।
निज उद्यम को इस विधि, निष्फल होता देखकर। महादैत्य का गर्व विदुर, पल में गया ठण्डा ही पड़।।
तेज भी नष्ट हुआ उसका, हिम्मत वह मानो हार गया। प्रभु के आग्रह पर भी पुन:, गदा को हाथ उस नहीं लिया।।

पर कोई द्विज पे जानो, ज्यों निष्फल अभिचार करे। मूठ आदि चलाये वह, और तीव्र प्रहार करे।।
उस यज्ञ पुरुष पर वार को, दैत्य ने त्यों आचरण किया। प्रज्ज्वलित अग्न सा दहकता, त्रिशूल हाथ में उसने लिया।।
महाबली हिरण्याक्ष का, अति वेग से छोड़ा हुआ। तेजस्वी त्रिशूल वह, आकाश में द्युतिमान् हुआ।।
चक्र की तीक्ष्ण धारा से, प्रभु ने उसको यूं काटा। गरुड़ का त्यक्त पंख ज्यों, इन्द्र देव ने था काटा।।

भगवान् के चक्र से निज त्रिशूल, अति खण्डित हुआ देखकर। अति क्रुध वह असुर हुआ, प्रभाव चक्र का देखकर।।
शोभित श्री वत्स का चिन्ह था, श्री हरि के वक्ष:स्थल पर। अति भीषण मुष्ठि वार किया, प्रभु के अति निकट आकर।।
भयंकर गर्जन करके फिर, अन्तर्धान वह हो गया। इस विधि हिरण्याक्ष और, प्रभु के मध्य था युद्ध हुआ।।

ज्यों पुष्पों की माल कोई, गजराज पे चोट न कर सकती। उसी विधि यह मुष्ठि वार, आदि वराह को छू न सकी।।

उसके भीषण प्रहार से, वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। महा भीषण प्रहार उसका, आहत उन्हें न कर सके।।
फिर महामायावी दैत्य वह, मायापति श्री हरि पर। विविध भाँति की माया, दिखाने लगा प्रयोग कर।।
जिसे देखकर सारी प्रजा, भयभीत ही हो गई। प्रलयकाल अब आ गया, ऐसी सबका अनुमान था।।

प्रचण्ड आन्धियाँ चलने लगीं, सब दिश् धूलि धूसरित हुई। चहुँ ओर से ऐसा लगा, तिमिर घोर छाने लगी।।
सब ओर से पत्थर की, भीषण वर्षा होने लगी। ऐसा लगे गुलेल से ज्यों, पत्थर हो फेंकी जा रही।।
बिजली की चमक और कड़क संग, बादल यूं घिरे आकाश में। सूर्य चन्द्रादि ग्रह छिप गये, अन्धकार हुआ सर्व दिक् में।।
ग्रहों से निरन्तर ही, अशुभ अपावन द्रव्य गिरे। पीब केश रुधिर विष्ठा, मूत्र और अस्थिन बरसे।।

ऐसे विकट महाभीषण, पर्वत भी नजर आने लगे। हे विदुर जो विविध भाँति, थे अस्त्र शस्त्र बरसा रहे।।
हाथों में त्रिशूल लिये, और केश खोले हुए। नग्न राक्षसियों के वहां, ताण्डव भी दिखने लगे।।
पदगामी अश्वारोही बहुत, और गजों पर हुए सवार। आतताई यक्ष राक्षसों की, सैनिकों सहित थी यही पुकार।।
मारो मारो काटो काटो, ऐसा निनाद थे कर रहे। अत्यन्त क्रूर और हिंसामय, कोलाहल कान में पड़ने लगे।।

आसुरी शक्ति से फैले, उस माया जाल के नाश के। यज्ञमूर्ति वराह ने, विमोचित अपना चक्र कियो।।
निज पति कथन को याद कर, दिति हृदय तब कांप उठा। ममता पुत्र प्रति जागी, स्तनों से रक्त बहने लगा।।
निज माया जाल हुआ नष्ट देख, वह दैत्य पुन: प्रभु पास आया। था चूर्ण उन्हें करना चाहता, भुजा पाश में बांध लिया।।
पर उस दैत्य ने क्या देखा, प्रभु तो थे बाहर ही खड़े। उसके क्रोध की सीमा में, वह किसी विधि न आ सके।।

वज्र सम निज मुष्ठि से, जब उसने प्रभु पे वार किया। इन्द्र नरे ज्यों वृत्रासुर पर, था कभी प्रहार किया।।
उसी विधि कनपट्टी पर, प्रभुने एक तमाचा दे मारा। उनके हाथों की मार खा, भ्रमित दैत्य वह हो गया।।
विश्वाधार प्रभु का तो, उपेक्षा भरा तमाचा था। फिर भी उसकी चोट खा, हिरण्याक्ष तो सुध बुध खो बैठा।।
नेत्र निकल आये बाहर, हाथ पांव केश सब क्षीण हुए। आन्धी से उन्मूलित वृक्ष, ज्यों धरती पे निष्प्राण गिरे।।

हिरण्याक्ष का तेज तो, अब भी मलिन था नहीं हुआ। करालदंष्ट्र उस दैत्य को, भूमि पर जब पड़े देखा।।
युद्ध देखने के इच्छुक, जो देवता वहाँ पे थे आये। अहो अलभ्य है मृत्यु यह, प्रशंसा इस विधि करने लगे।।
योगी जन समाधि में, एकान्त में जिनका ध्यान धरें। मिथ्या उपाधि त्याग हेतु, प्रति दिन उनका गुणगान करें।।
उनके इक चरण प्रहार से, उनका दर्शन करते करते। इस दैत्य ने नश्वर तन त्यजा, अहो धन्य भाग्य ही हैं इसके।।

हिरण्याक्ष यह और हिरण्यकश्यपु, हैं पार्षद श्री भगवान के। शाप वश ही हैं दोनों, इस अधोगति को प्राप्त हुए।।
कुछ ही जन्मों में पुन:, निज स्थान पे पहुँच ही जायेंगे। अवधि समाप्त होते ही यह, धाम को अपने आयेंगे।।

देव बोले,
बारम्बार है नमस्कार, आपके चरणों में प्रभु। सब यज्ञों का विस्तार करें, जग की हैं स्थिति भी आप प्रभु।।
शुद्ध सत्वमय दिव्य रूप, मंगलमय विग्रह प्रकट करें। इस दुष्ट दैत्य का वध करके, सब जग आनन्दित आप करें।।
आपके इन श्री चरणों में, भक्ति के दिव्य प्रभाव से। सुख चैन हमने पाई, नित्य शान्त ही हम रहें।।

मैत्रेय मुनि बोले,
महा बली हिरण्याक्ष का, हनन इस भाँति करके। आदि वराह भगवान निज, अखण्ड आनन्द धाम गए।।
ब्रह्मा आदि सब देव गण, उनकी स्तुति थे कर रहे। सर्वश्रेष्ठ उनको जानी, थे सब ही उनकी शरण पड़े।।
अवतार धरी कर श्री हरि, जैसी अद्भुत लीलाएँ करें। भीषण संग्राम में जिस विधि, महाबली हिरण्याक्ष का हनन करें।।
एक खिलौने से ही ज्यों, बालक हो कोई खेल रहा। इसी विधि श्री हरि ने विदुर, हिरण्याक्ष का वध किया।।
यह सब चरित जैसा मैंने, अपने गुरु के मुख से सुना। ज्यों का त्यों मैंने उसको, तुझको है सुना दिया।।
सूत बोले,
हे शौनक मैत्रेय मुख से, श्री हरि की यह कथा सुनी। अति आनन्दित हो गए, परम भागवत श्री विदुर जी।।
परम यशस्वी पावन कीर्ति, महापुरुषों के चरित जो। महा आनन्दित कर देते, सुननेवाले महाभाग को।।
फिर श्री वत्सधारी प्रभु की, लीलाओं की क्या बात करें। उनके तो ललित ललाम चरित, सब भक्तों के चित्त ही हर लें।।

ग्रह ने जब गजराज के, चरणों को था पकड़ लिया। गज भार्याओं ने मिलकर, था भीषण चीत्कार किया।।
तब आर्त हो गजराज ने, था प्रभु चरण का ध्यान किया। तत्काल ही श्री हरि ने, उसका दु:ख था हर लिया।।
सब अन्य आसरे छोड़ कर, जो प्रभु की शरण में आ जाये। सरल हृदय उस भक्त से, प्रभु मुदित सहज ही हो जायें।।
वह ही हरि दुष्टों के लिये, अति दुष्कर दु:साध्य हैं। उनको न प्राप्त हों सहज में, वह उनके लिए अप्राप्य हैं।।

उन प्रभु के उपकारों को, जान कभी जो जाता है। कौन जीव होगा ऐसा, जो उनका सेवन न चाहता है?
पृथ्वी उद्धार हेतु उन्होने, वराह रूप जो था धरा। हे शौनकादि ऋषियो, प्रभु की यह अद्भुत लीला।।
हिरण्याक्ष का वध किया उन्होने, आश्चर्यमयी लीला उनकी। जो गायन कथन या श्रवण करे, ब्रह्म पाप से छूटे सहज ही।।

अति पुण्यदे यह चरित है, परम पवित्र अति पावन घन। धन और यश की प्राप्ति का, है अत्युत्तम यह साधन।।
आयु वर्धक और कामना, पूर्ति हेतु कल्पतरु। युद्ध में प्राण और इन्द्रियों की, शक्ति बढ़ाने का हेतु।।
श्रद्धा पूर्ण हृदय से, श्रवण जो इसका करता है। अन्त में श्री हरि का ही, आश्रय प्राप्त वह करता है।।

८) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म

प्रयोजनवश सूकर बने, श्री हरि की पावन कथा। श्री मैत्रेय मुख से सुनकर, भक्त विदुर हिय नहीं भरा।।
भक्ति व्रतधारी विदुर ने, कर जोड़ी पुन: प्रश्न किया। निज मन का संशय उसने, श्री मैत्रेय सम्मुख धरा।।
विदुर बोले,
हे मुनिवर तव मुख से ही, अभी अभी यह बात सुनी। यज्ञमूर्ति प्रभु ने वध की, आदि दैत्य हिरण्याक्ष का।।
हे द्विजवर लीलावत् ही, जब दाढ़ पे रखकर पृथ्वी को। जल के भीतर से श्री हरि, निकाल रहे थे धरणी को।
दैत्यराज हिरण्याक्ष का, उनसे क्योंकर भिड़ाव हुआ? जल में ही उस दैत्य ने, क्यों उनपर प्रहार किया?

हे विदुर प्रश्न तुम्हारा, यह तो है अत्युत्तम ही। श्री हरि के अवतार के, विषय में तुने प्रश्न करी।।
प्रभु की हर अवतरण कथा, मृत्यु पाश छेदन करे। जीव के बन्धन काट के, उसे श्री हरि तक ले जाये।।
श्री नारद जी के मुख से, सुनकर पावन हरि कथा। उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव, था मृत्यु सागर से तरा।।

इस कथा के प्रभाव से, था मृत्यु को भी पार किया। यम के सीस पे चरण धरी, वह परम पद आसीन हुआ।।

पूर्वकाल में एकदा, इसी वराह अवतार के। हिरण्याक्ष से युद्ध सम्बन्धी, देवों ने थे प्रश्न किये।।
आदि देव ब्रह्मा ने उन्हें, यह इतिहास सुनाया था। उसी परम्परा से यह, कथा मैं भी सुन पाया था।।
एक बार दक्ष सुता दिति ने, पुत्र प्राप्ति की इच्छा से। सन्ध्या समय ही निज पति, कश्यप से काम आग्रह किये।।

मरीचि नन्दन कश्यप तब, अग्निशाला में थे बैठे। सूर्यास्त का समय जान, वह ध्यान में ही निमग्न थे।।
खीर की आहुति दे, अग्निजिह्व भगवत् रूप की। स्वयं यज्ञपति श्री हरि की, आराधना थी उन्होने करी।।
दिति बोली,
मतवाला हाथी जैसे, कदली का वृक्षमसल डाले। पुष्प धनुर्धर कामदेव, प्रहार हैं मुझपर कर रहे।।
मुझ अबला को ताड़ित कर वह विकल मुझे हैं कर रहे। हे विद्वन् आपके ही लिये, यह कामातुर मुझे कर रहे।।
निज पुत्रवती सौतों को देख, मेरे हृदय में है यह डाह उठी। सुख समृद्धि उनकी देख, मैं द्वेष अग्न में जल हूँ रही।।
आप ही मुझपर कृपा करी, इस ज्वाला को शान्त करें। कल्याण आपका हो सदा, हे स्वामी मुझपर कृपा करें।।

जिस गर्भ से आप समान पति, पुत्र रूप में उत्पन्न हो। वह ही स्त्री इस जग में, निज पति से भी सम्मानित हो।।
सुयश उसका संसार में, चारों दिशा में विस्तृत होता है। ऐसा ही भार्याओं का, जन्म सफल तब होता है।।
दक्ष प्रजापति हमरे पिता, अति स्नेहवान् थे पुत्रियों से। अलग अलग हम सबको बुला, उन्होने हमसे यह प्रश्न किए।।
कहो पुत्री संकोच त्यजी, अपने मन की बात कहो। कौन वर तुम्हें चाहिए, कैसे गुण वा वांछित हों?

सब विधि निज सन्तान का, कल्याण ही वह चाहते थे। आशय हम सबका जानकर, उन्होने फिर यह कार्य किए।।
निज गुण और स्वभाव अनुरूप, हम तेरह उनकी पुत्रियाँ। हे प्रियतम उन आपके, साथ परिणय हमारा किया।।
हे कमलनयन मंगलमूर्ति, मेरी इच्छा पूर्ति आज करें। प्रेम स्वरूप हे पति मेरे, निज पुत्र को मेरे गर्भ धरें।।
आप समान महात्मा से, कछु प्राप्ति दुर्लभ न होए। दीनन का तुमरे शरण में, आना निष्फल कभी न होए।।

अति व्याकुल और विवश, दिति देवी थीं हो रहीं। कामदेव के वेग को, सह नहीं थीं पा रहीं।।
इसी विधि बहु बातें कह, दीन भाव से प्रार्थना की। समधुर वाणी से ऋषिवर ने, तब उसको बात यूं समझाई।।
कश्यप ऋषि बोले,
हे भीरु जैसी इच्छा करे, वैसा ही कर दूँगा अभी। अर्थ धर्म और काम की, जिसके द्वारा हो सब सिद्धि।।
ऐसी अपनी भार्या की, कामना पूर्ति करें सभी। अपने इस कर्त्तव्य से, न धर्मपरायण चूकें कभी।।

सब आश्रमों को गृहस्थी, अपना आश्रय देता हुआ। सबका पालन पोषण करे, अपना धर्म निभाता हुआ।।
वह अपने आश्रम द्वारा, स्वयं भी दुःख सागर तरे। ज्यों जहाज पे चढ़कर ही, महासागर कोई तर जाये।।
त्रिविधि पुरुषार्थ की, कामना हो जिस पुरुष को। उस पुरुष की पत्नी तो, उसकी अर्धांगिनी हो।।
निज गृहस्थाश्रम का भार, उसके हाथों सौंप के। हे मानिनी उसका पति, निश्चिन्त जग में विचरा करे।।
अन्य आश्रमों में अति दुर्जेय, इन्द्रिय शत्रु का दमन करना। विवाहिता पत्नी सहित है, अति सुगम इसे वश में करना।।
ज्यों दुर्ग का स्वामी सहज ही, अधीन् करे सब चोर गण। उसी विधि गृहस्थ के भी, नियमन में रहें सब इन्द्रियगण।।

मेरे घर की लक्ष्मी हो, अनन्त उपकार तेरे मुझपर। तुम जैसे सद्गुणी भार्या से, उऋण होऊँ कैसे मैं?
कोई भी गुण ग्राही पुरुष, यह उपकार न चुका सके। आयु तक या जन्मान्तर, पार न उनका पा सके।।

तेरी सन्तति की इच्छा को, मैं निश्चिन्त पूरी कर दूँगा। यथा शक्ति सामर्थ से, तुम्हें उचित ही फल दूँगा।।
पर एक मुहूर्त ठहरो जरा, कहीं मेरी निन्दा न लोग करें। तेरी इच्छा पूर्ति को, कहीं मेरे उपभोग का नाम न दें।।
समय यह है निशाचर का, और अन्य भयावह जन्तुन् का। दृष्ट रूप में भी अति घोर, ही समय यह दिख रहा।।
प्रभु भूतनाथ के भूत प्रेत, आदि गण सब घूमा करें। सन्ध्या बेला में अक्सर, इस जग में वह भ्रमण करें।।

सायंकाल श्री भोले नाथ, निज भूत प्रेत संग में लिये। नन्दी बैल पे चढ़कर के, चहुँ दिशा में विचरा करें।।
श्मशान भूमि की राखी जो, बावण्डर बनकर है उठती। उस राख से ही उनकी, है जटाजूट धूसरित हुई।।
स्वर्णकान्तिमय गौर शरीर में, वही भस्म है रच रही। इस सबसे उनकी शोभा, देदीप्यमान् है हो रही।।
तेजस्वी तेरा श्वसुर वह, सब जग को हैं देख रहे। सूर्य चन्द्र और अग्नि रूप, अपने तीनों नेत्रों से।।

न ही कोई उनका अपना है, न ही इस जग में पराया कोई। न ही अति आदर योग्य कोई, न उनके लिए निन्दनीय कोई।।
अनेक व्रतों के पालन से, मायिक भोगों की इच्छा करें। उपभोग करी उन्हें त्याज्य मान, श्री शंकर सबको त्यजें।।

विवेकी जन अविद्या जनित, अज्ञान आवरण हटाने को। गाते ही रहते हैं नित्य, उनके निर्मल चरितों को।।
उनके समान है कोई नहीं, उनसे बढ़कर कोई क्या होगा? सत् पुरुष ही तो केवल, उन भोले नाथ तक पहुँच सके।।
यह सब होने पर भी वह, आचरण आश्चर्यमय करते हैं। त्रिलोकी नाथ होकर भी वह, पिशाचों के समान ही विचरते हैं।

यह मानुषी तन है जो, है श्वान के भोजन समान। जो अविवेकी इसमें भ्रमे, इसको ही आत्मा जान।।
वस्त्र आभूषण माला चन्दन, से इसको वह सजाते हैं। काल का ग्रास ही यह बने, इस सत्य को भूल वह जाते हैं।।
भाग्यहीन वह शंकर का, आचरण समझ न पाते हैं। उनके रूप पे हंस करी, अपना जीवन वह गंवाते हैं।।

हम लोगों की तो बात ही क्या, सब लोकपाल ब्रह्मा आदि। धर्म मर्यादा पर चलें, जो उनकी ही है बनाई हुई।।
अधिष्ठान वही विश्व के, है यह माया उनकी चेरी। उनकी ही आज्ञा का वह, नित्य अनुसरण है कर रही।।
ऐसा होने पर भी वह, प्रेत समान आचरण करें। जगत् व्यापक प्रभु की मेरे, लीला कोई न समझ सके।।
मैत्रेय मुनि बोले,
पति ने जब इस विधि समझाया, पर दिति तो कुछ भी न समझी। कामातुर दिति उस पल, वेश्या सम थी निर्लज्ज हुई।।
ब्रह्मर्षि श्री कश्यप का, वस्त्र उसने पकड़ लिया। इस विधि पुन: पति सम्मुख, इच्छा पूर्ति का आग्रह किया।।
उस निन्दित कर्म में ऋषि ने जब, निज भार्या का आग्रह देखा। दैव सम्मुख करी नमस्कार, एकान्त समागम उसने किया।।

फिर जल में उन्होंने स्नान किया, प्राण वाणी संयम किए। सनातन ब्राह्य के ध्यान में, उनका ही जप वह करने लगे।।
दिति भी निज आचरण पे, अति लज्जित थी हो रही। शीष झुका ब्रह्मर्षि से वह, इस विधि कहने लगी।।
दिति बोले,
भूतों के तो हैं स्वामी, हे द्विजरव भगवान् रुद्र। मैं अपराधी हूँ उनकी, न करें नष्ट वह मेरा गर्भ।।

भक्तों के लिये हैं कल्पतरु, महादेव उग्र और रुद्र रूप। नमस्कार करूँ कर जोड़ी, सत्पुरुषों के कल्याण रूप।।
करुणामय वह शिवकारी हैं, दण्ड भाव न उनको छू सके। दुष्टों के लिये वह क्रोध मूर्ति, दण्डपाणि धारण करें।।

स्त्री जानकर हम पर तो, व्याध भी करुणा करें। सति पति मम बहनोई, श्री शंकर तो हैं कृपालु बड़े।।
वे मुझपर प्रसन्न हों, मम अपराध को क्षमा करें। कर जोड़ी विनत भाव से, प्रार्थना यह हम करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
सायंकालीन सन्ध्या वन्दन से, कश्यप जब निवृत्त हुए। भयभीत दिति को उन्होने देखा, थर थर ही कांपते हुए।।
निज सन्तान की इहलौकिक, परलौकिक उन्नति चाहे थी। इसी आशय से दिति देवी, प्रार्थना थीं यह कर रहीं।।
कश्यप ऋषि बोले,
काम वासना से तुम्हारी, चित्त मलिन थी हो रही। मेरी और सब देवों की, अवहेलना ही तुमने करी।।
अमंगलमयी हे चण्डिका, पापाचरण जो दिया है कर। अधम पुत्र दो जन्मेंगे, तेरे गर्भ से अति अमंगलकार।।
लोकपालों और लोकों को, अपने अत्याचारों से। अति दु:खी वह कर देंगे, और वह उन्हें रुलाएँगे।।

निरापराध और दीन बहुत, मरेंगे उनके हाथों से। क्षुब्ध होंगे महात्मा जन, स्त्रियों पर अत्याचार होंगे।।
तब जगदीश्वर सबके रक्षक, होकर कुपित लेंगे अवतार। ज्यों इन्द्र दमन करे पर्वत का, वह स्वयं ही देंगे उनको मार।।
दिति बोली,
हे स्वामी तव वचन जो, है मेरी भी इच्छा यही। मेरे पुत्रों का वध करें, स्वयं चक्रपाणि हरि।।
ब्राह्मणादि के शाप से, ही नष्ट वह न होएं। श्री हरि के हाथों मरकर, सद् गति ही वे पाएं।।
जीवों के लिये जो पातकी, सदा त्रास फैलाता है। या ब्राह्मण गण के शाप से, जो जीव दगध हो जाता है।।
किसी भी योनि में जाकर, वह पात्र दया का न होए। नारकीय जीवों के हाथों, नित्य ही वह ताडित होए।।
कश्यप बोले,
हे देवी निज कर्म पर, पश्चाताप जो तुझे हुआ। उचित अनुचित का शीघ्र ही, विचार तुझको हो गया।।
प्रभु विष्णु शिव और मेरे प्रति, भी आदर भाव है दीख रहा। इन सबका हे दिति सुनो, एक शुभ्र फल ही होगा।।
इक पुत्र के चारों पुत्रों में, एक पौत्र ऐसा होगा। जिसके गुणों का गान सदा, भागवत गुणों के संग होगा।।

ज्यों स्वर्ण की सब अशुद्धता, अग्नि में तपकर दूर हो। उसके स्वभाव अनुकरण से, साधुजन हृदय भी शुद्ध हो।।
निर्वैरता आदि उपायों से, साधुजन शुद्ध करें निज चित्त। सत्पुरुष सहज ही यह करें, अनुसरण करी उसका चरित।।
उनका ही अपना रूप जगत, आनन्दित हो जिसकी कृपा से। वह स्वयं प्रकाश श्री हरि भी, होंगे संतुष्ट उसकी भक्ति से।।

भगवद् भक्त उदार हृदय, प्रभावशाली वह शिशु होगा। महापुरुषों का भी पूज्य वह, हे दिति पौत्र तेरा होगा।।
भक्ति भाव से शुद्ध हुआ, भावपूर्ण जो अन्त:करण। श्री प्रभु को वहाँ पे स्थापित कर, देगा देहाभिमान वह त्यज।।

विषयों में वह अनासक्त, सब भाव से होगा शीलवान्। गुण भण्डार स्वयं होगा, देगा सबको आनन्द महान्।।
दूजे के दु:ख को अपना मान, उसके सुख में होगा सुखी। ऐसे सबके हितकारी का, शत्रु न होगा जग में कोई।।
ज्यों शशि शीतल चान्दनी से, सबके ताप है हर लेता। वैसे ही सब संसार के, शोक शान्त वह कर देगा।।

इस जग के बाहर भीतर, हैं सभी ओर जो विराजमान्। निज भक्तों के हेतु की, विविध भाँति धरें रूप महान्।।
श्री लक्ष्मी के रूप की जो, शोभा स्वयं बढ़ाते हैं। जिनके मुख की कान्ति पर, झिलमिल कुण्डल अति भाते हैं।।
परम पावनी श्री हरि वह, तव पौत्र को देंगे दर्शन आप। कमलनयन प्रत्यक्ष हो वह, हरेंगे सारे उसके ताप।।
मैत्रेय बोले,
जब दिति ने यह सुना, मेरे पौत्र परम भागवत् होगा। अति आनन्दित वह हुई, सुन निज पौत्र की यह गाथा।।
श्री हरि के अपने हाथों से, मेरे पुत्र यह मारे जायेंगे। मुदित हुई यह जानकर, सद् गति इस विधि वह पाएंगे।।

मैत्रेय मुनि बोले,
ब्रह्मा जी के कहने से, अन्धकार का कारण जानकर। निवृत्त जब शंका उनकी हुई, देव लौटे सब अपने घर।।
दिति के मन में दूजी ओर, एक आशंका थी बनी। निज पति के कथनानुसार, पुत्रों की ओर से शंकित थी।।
पूर्ण जब शत वर्ष हुए, उस साध्वी का तब प्रसव हुआ। दिति देवी ने दो जुड़वां, पुत्रों को तब जन्म दिया।।

उन शिशुओं के जन्मते ही, स्वर्ग पृथ्वी अन्तरिक्ष में। अनेकों ही उत्पात हुए, लोग अति भयभीत हुए।।
सर्वदिक् दाह होने लगा, पृथ्वी और पर्वत कांप उठे। स्थान स्थान पर अनजाने, उल्कापात होने लगे।।
दामिनी भी आकाश से, पृथ्वी पर गिरने लगी। आकाश में भी अनिष्टकर, धूमकेतु दिखने लगे।।

अति वेगवान वायु चली, शब्द भयंकर करने लगी। उन्मूलन वृक्षों का करके, धरती पर उन्हें धरने लगी।।
असह्य विकट आन्धी उस पल, ज्यों सेना सहित हो आ रही। उड़ती हुई धूलि नभ में, मानो थी उसकी ध्वजा बनी।।
चमक दमक के बिजली भी, अट्टहास थी मानो कर रही। सघन घटाओं ने जैसे, पूर्ण आकाश ही आवृत्त की।।
सूर्य चन्द्रादि सब ग्रह, उनके पीछे ज्यों जाय छिपे। अन्धकार घना वहाँ छा गया, नहीं हाथ को हाथ भी सूझ पड़े।।

आर्त जीव की भाँति ही, सिन्धु कोलाहल करने लगा। तरंगें ऊंची उठने लगीं, सागर का जीवन कठिन हुआ।।
अन्य जलाशय और नदियाँ, भी मानो बौखला गईं। और कमल दल उनमें जो, वह भी उस ताप से शुष्क हुई।।
सूर्य चन्द्र भी पुन: पुन:, ही ग्रसे जाने लगे। चहुं ओर अमंगल ही उनके, मण्डल निज बैठाने लगे।।
बिन बादल ही आकाश में, गर्ज भयंकर होने लगी। गुफाओं में भी घर-घर की, अमंगल ध्वनि उठने लगी।।

गीदड़ और उल्लूकों का, भयावह स्वर उठा गांवों में। मुख सों अग्नि ज्यों उगले, की अमंगल ध्वनि सियारियों ने।।
जहां तहां फिर श्वान भी, गर्दन अपनी उठाकर के। कभी गायन और कभी रुदन, भिन्न भिन्न स्वर करने लगे।।
गर्दभों के समूह विदुर, थे खोदते भूमि खुरों से। कर्कश स्वर करते हुए, वह इधर उधर भागने लगे।।

इस ध्वनि से डरकर के उनकी, पक्षी रोने-चिल्लाने लगे। अपने नीड़ों को छोड़ वह, वायु में मण्डराने लगे।।
अपने खूंटों से बन्धे, या वन में थे जो विचर रहे। गाय भैंस आदि पशु, मल मूत्र त्याग करने लगे।।
भयभीत हुई गायें ऐसी, वहाँ दूध की जा पे रक्त बहा। बादल से भी जल की जगह, पीब ही बरसने लगा।।

देवमूर्ति की आंखों से, अश्रुधार ही बह निकली। बिन आन्धी के वृक्ष सभी, उन्मूलित होकर गिरने लगी।।
बृहस्पति चन्द्र आदि, सौम्य ग्रहों को उलांघ कर। क्रूर ग्रह से चलकर वह, भयभीत सभी को करने लगे।।

वक्र गति से चलकर वह, भयभीत सभी को करने लगे। इक दूजे की उग्रता से, परस्पर युद्ध वह करने लगे।।

ऐसे ही अनेकों अन्य, उत्पातों को जब देखा। सनकादि को छोड़कर सबका चित्त भयभीत हुआ।।
उन उत्पात्तों का निहित मर्म, कोई जीव न जान सका। प्रलय काल है आ पहुँचा, ऐसा सबने विचार किया।।
वह दोनों ही आदि दैत्य, जन्म अनन्तर अति शीघ्र। लौह सम निज तन वर्धित कर, हो गए महा पर्वत सदृश्य।।
पूर्व जन्म में जो उनका, पराक्रम था संग प्रकट हुआ। इस विधि जय और विजय, ने दैत्यों का रूप धरा।।

उनके किरीट का अग्रभाग, स्वर्ग स्पर्श करने लगा। विशाल काया ने उनकी, सर्वदिशा को ढक दिया।।
भुजा में उनकी सोने के, बाजूबन्द थे चमक रहे। पृथ्वी पर जब कदम धरा, भूकम्पवत् पृथ्वी कांपे।।
खड़े वह जब कभी होते थे, करधनी में स्वर्ण की जगमग थी। उनके कटि तट के प्रकाश ने, सूर्य को भी ज्यों मात थी दी।।

जुड़वां थे वह दोनों ही, श्री कश्यप ने संस्कार किया। उनके वीर्य से दिति गर्भ में, जो था पहले स्थापित हुआ।।
प्रजापति कश्यप ने उसे, हिरण्यकश्यपु नाम दिया। जिस दिति के गर्भ को त्यज, पहले जग में प्रवेश किया।।
हिरण्याक्ष के नाम से, जग में वह विख्यात हुआ। इस विधि उन आदि दैत्यों, का जग में प्राकट्य हुआ।।

९) जय-विजय को शाप

दूजों का तेज हरनेवाले, कश्यप के तेज को उदर धरी। निज पुत्रों के देव विरुद्ध, स्वभाव से शंकित थीं दिति।।
शत वर्ष तक उसने अपने, तेज को बाहर नहीं किया। कश्यप वीर्य को इतनी देर तक, निज उदर में ही रखा।।
गर्भस्थ वा तेज से, हुआ क्षीण चन्द्र आदि का प्रकाश। लोकों में सूर्य आदि प्रकाश, तथा क्षीण हुए सब लोकपाल।।
तब ब्रह्माजी के पास जा, विनीत भाव से उन्होने कहा। चहुं ओर अन्धकार से, अव्यवस्थित सारा जगत हुआ।।
देव बोले,
हे प्रभु आपकी ज्ञान शक्ति, है सदा सर्वथा स्वाधीन। कुण्ठित न कर पाये काल, नहीं आपसे है कोई बात निहित।।
इस तिमिर के बारे में भी प्रभु, ज्ञान आपको होगा ही। हम तो काल प्रभाव से, भयभीत ही हो जायें सभी।।

पूर्ण जग के हैं रचयिता आप, लोकपालों के शिरोमणि। छोटे बड़े सब जीवों के, हैं भाव जानते आप ही।।
विज्ञान बल सम्पन्न आप, अपनी माया से ही खेलें। चतुर्मुख धारण करी, फिर रजोगुण स्वीकार करें।।
जान सके न कोई भी, कारण तुम्हारी उत्पत्ति का। नमस्कार हमारा प्रभु, नमस्कार है बार बार।।

सम्पूर्ण यह भुवन ही, स्थित हैं प्रभु आप में। कार्य कारण सब प्रपंच, हैं स्थित प्रभु के ही तन में।।
पर यह सब होकर भी प्रभु, आप परे हैं इन सबसे। सब प्रपंच यह आपके, आपको कभी न छू सकें।।
सबका उत्पत्ति स्थान आप, अनन्य भाव से ध्याये जो। उन सिद्धि योगी जन का, कभी न जग में नाश हो।।
कृपा कटाक्ष आपकी पा, कृत्कृत्य वह हो जाते हैं। प्राण मन और इन्द्रियाँ निज, सब पर विजय वह पाते हैं।।
योग भी परिपक्व हो, वह आपके चरण ही ध्याते हैं। ध्यानस्थ वह योगी तो, आप में ही खो जाते हैं।।

ज्यों रज्जू से बन्धा बैल, नियमन् में चलता जाये। समग्र प्रजा उस बैलवत्, वेद वाणी सों बन्ध जाये।।
आपके ही अनुशासन में, नियमन् पूर्वक यह चलती रहे। कर्म अनुष्ठान आदि सब, चरण में आपके धरती रहे।।

सबके नियन्ता मुख्य प्राण, नमस्कार है आपको। चरण में सीस धर करी, शरण पड़े हम आज तो।।

इस महातिमिर कारण प्रभु, दिन रात अस्पष्ट से ही दीखें। लोकों के सारे कर्म भी, लुप्त ही होते जा रहे।।
इस कारण प्रजाजन सब, दु:ख अतीत हैं पा रहे। कल्याण उनका कीजिये, कृपा दृष्टि से निहार के।।
ज्यों ईंधन पाकर अग्नि, निस दिन ही प्रज्ज्वलित हो। उसी विधि कश्यप का वीर्य, दिति गर्भ में वर्धित हो।।
चारों दिशाओं में अन्धेरा फैलाता हुआ, यह प्रतिदिन है बढ़ रहा। सब ओर दिशाओं में सारी, यह अन्धकार है कर रहा।।
मैत्रेय मुनि बोले
देवों की यह प्रार्थना सुन, ब्रह्मा जी हंसने लगे। निज मधुर वाणी से महाबाहो, मुदितकर वचन यह उन्होने कहे।।
ब्रह्मा बोले,
हे देवो तुम्हारे पूर्वज, मेरे मानस पुत्र सनकादि। मेरे आसीस से ही उन्होने, सब लोकों की रसना त्यागी।।
पूर्ण आसक्ति छोड़कर, आकाश मार्ग से भ्रमण करें। सम्पूर्ण लोकों में वह, स्वच्छन्द ही विचरण करें।।
एक बार प्रभु विष्णु के, विशुद्ध सत्वमय लोक के। शिरोभाग में स्थित है जो, वैकुण्ठ तक वह जा पहुँचे।।

सभी लोग वहाँ विष्णु रूप धर, चिन्मय होकर रहते हैं। अनन्य भक्ति में श्री हरि की, हर पल मग्न वह रहते हैं।।
सम्पूर्ण कामना त्यज कर, भगवद् पूजन ही किया करें। प्रभु शरण तक जाने को, उनकी ही आराधना किया करें।।
वेदान्त प्रतिपादित धर्ममूर्ति, वहां बसें श्री आदिनारायण। हम भक्तों के सुख हेतु करें, शुद्ध सतोमय रूप धारण।।
इसी रूप में हर पल वह, वहाँ विराजित रहते हैं। भक्तों का कल्याण ही, नित्य वह करते रहते हैं।।

उस लोक में नै:श्रेयस, नामक इक वन होता है। मूर्तिमन्त कैवल्य सा, ही जान वह पड़ता है।।
सम्पूर्ण कामनापूर्ति कर, वृक्षों से सम्पन्न है वह। छ: ऋतुओं की शोभा से, सदा सुसज्जित रहते वह।।

गन्धर्व वहाँ निज प्रेयसी संग, प्रभु की पावन लीला गाएँ। विमान में बैठे वे सभी, विचरण वहां करते जाएँ।।
प्रभु की लीला कथाएं यह, पाप पुंज सब भस्म करें। उसी समय सरोवर में, वासन्तिक माधवी लता खिलें।।
मरकन्दमय अति मधुर गन्ध, चित्त आकर्षित करती है। उस गन्ध से न टूटे उनका ध्यान, उनकी स्थिति कुछ ऐसी है।।
जो वायु उस गन्ध को, उन तक ही लेकर आये। उसकी ही अवहेलना कर, निज चित्त वह उससे उठा जायें।।

जब भंवरे स्वर में, हरि नाम की महिमा गाते हैं। तनिक काल को पक्षी सब, कलरव निज शान्त कराते हैं।।
कपोत कोयल सारस चकवे, पपीहे हंस तोते तीतर। मोर भी सब स्वर बन्द करी, हो बेसुद्ध सुनें हरि कीर्तन।।

श्री हरि तुलसी से ही, आभूषित निज विग्रह करें। तुलसी की मधुर सुगन्ध को, सर्वोत्तम आदर हरि दें।।
मन्दार कुन्द कुरकब उत्पल, चम्पक अर्ण और पुन्नाग। नागकेसर बकुल अम्बुज, और सुगन्धित पारिजात।।
वह सब तो तुलसी के ही, तप को सर्वोत्तम मानें। श्री हरि के अंग वह लगी रहे, सौभाग्य यह उसका है जानें।।

उस लोक के विमान सब, बहुमूल्य रत्नों से जड़ित। वैदूर्य मरकत और स्वर्ण, से है उनकी शोभा भासित।।
यह सब किसी पुण्य कर्म के, फल से प्राप्त नहीं होते। श्री हरि के पादपद्म पूजन, का ही है एकमात्र फल ये।।
कृष्णप्रिय भगवद्भक्तों के, चित्त अति पावन वहाँ। अति विचलित उन्हें कभी कर पायें, सुमुखी सुकोमल सुन्दरियां।।

सौन्दर्य स्त्रोत श्री लक्ष्मी की, कृपा को सकल देव तरसें। चंचलता दोष को त्याग के, वह तो श्री हरि भवन में रहें।।
निज चरण कमल के नूपुर की, झंकार वह जब करती चलें। निज हाथ में पकड़े लीला कमल, लीलावत् ही वह घुमाया करें।।
कनक भवन की स्फटिकमयी, दीवारों में प्रतिबिम्बित हों। ऐसा लगे ज्यों कमल से, बुहारें लक्ष्मी भुवनों को।।

निज दासीगण को साथ लिए, वह अपने क्रीड़ा वन में। तुलसी दल के द्वारा ही, श्री हरि का जब पूजन करें।।
निर्मल सरोवर वहाँ के जो, जहाँ मूँगे के हैं घाट बने। उनमें बिम्बित निज छवि देख, श्री हरि से चुम्बित जान उसे।।
उन्नत नासिका और अलकावली, देख के मोहित हो जायें। निज को श्री हरि प्रिया जानी, सौभाग्य पे निज बलि बलि जायें।।

प्रभु की पाप हारी कथा, को त्यजकर जो भाग्यहीन। बुद्धि को नष्ट करनेवाली, काम कथाओं में रहते लीन।।
उस वैकुण्ठ लोक में वह, पहुँच कदापि नहीं पाते। अभागे वह इन सारहीन, बातों में ही हैं भरमाते।।
अनर्थकारी वार्ता यह, सब अर्जित पुण्यों को हर ले। अर्थ काम के चाहुक को, नराश्रित नरकों में डाले।।

अति दुर्लभ योनि मनुज की, है इसकी महिमा भारी। देवता गण भी इसके लिए, लालायित रहते हैं सभी।।
इसी एक योनि में सुलभ कहें, तत्त्व ज्ञान और धर्म भी। जो श्री हरि को अराधें नहीं, इस योनि को पाकर भी।।
वास्तव में प्रभु की ही, विस्तृत माया से मोहित हैं। असत्य को सत्य हैं मान रहे, नहीं जानें सत्य कदाचित हैं।।

देवाधिदेव श्री हरि का जो, निरन्तर चिन्तन करते हैं। इस ध्यान के प्रभाव से, यमराज भी दूर ही रहते हैं।।
परस्पर प्रभु की चर्चा में, ही निमग्न वह सदा रहें। अनुराग जनित विह्वलता वश, वा नयन आद्र ही सदा रहें।।
नेत्रों से बहें अविरल अश्रु, रोमांचित तन यह हो जाये। जिनके शील स्वभाव की, इच्छा हम सब भी किए जायें।।
वे परम भागवत् जन ही तो, हमसे भी ऊपर जाते हैं। वैकुण्ठ धाम श्री हरि का जो, वह तो उसको ही पाते हैं।।

विश्वगुरु श्री हरि के धाम, सनकादि जब जा पहुँचे। सब लोकों के वन्दनीय, और श्रेष्ठ धाम में जब पहुँचे।।
देवों के विचित्र विमानों, से सुसज्जित देखा उसे। निज योग बल के आसरे, ही थे बैकुण्ठ धाम पहुँचे।।
महा आनन्दित हो गये, इस दिव्य दृश्य को देख करी। इस दिव्य दर्शन के लिए, योग शक्ति उनकी प्रबल थी।।

भगवत् दर्शन की लालसा, उनके मन में अति तीव्र थी। अन्य दर्शनीय सामग्री की, उपेक्षा ही उन्होने करी।।
वैकुण्ठ की छ: ड्योड़ियाँ, कर पार पहुँचे सातवीं पर। हाथ में गदा धारे दीखे, दो सम व्यसक वहां पर।।
बाजूबन्द कुण्डल किरीट, सब आभूषण पहरे थे। अमूल्य आभूषणों से उनके, अंग अंग अलंकृत थे।।

श्यामल चतुर्भुजा के मध्य, वनमाल एक वह धारे थे। मधुकर गुंज से गुंजित वह, अति मोदक थी सुगन्ध लिए।।
बांकी थीं बनी भौंहें उनकी, थे नासिका रन्ध्र भी फड़क रहे। नयना भी थे रक्तिम हुए, चेहरे पे क्षोभ के चिन्ह भी थे।।

वह युगल द्वार पे इस विधि, दृष्टि टिकाये बैठे थे। पर कुमार बिन आज्ञा लिये, सप्तम ड्योढ़ी में घुस गए।।
स्वर्ण के संग वज्र के, वहाँ पे थे किवाड़ लगे। पहली छ: ड्योढ़ियों को, वह जैसे लांघ के थे आये।।
उसी विधि बिन पूछे वह, सप्तम ड्योढ़ी में जा पहुँचे। समदृष्टि वह सर्वत्र ही, बेरोक टोक विचरते थे।।
पूर्णतय: तत्त्वज थे, यह चारों सुकुमार ही। सर्वज्येष्ठ सुत ब्रह्मा के, दिखते थे पांच वर्ष के ही।।

दिगम्बर ही थी वृत्ति उनकी, निरावरण वह रहते थे। दिशा ही वस्त्र था उनका बना, दिगम्बर सब उन्हें कहते थे।।

नि:संकोच उन्हें जाते, इस विधि भीतर देख करी। श्री हरि के द्वारपालों ने, विपरीत आचरण ही कर डाली।।
सनकादि कुमारों का, तेज उन्होंने न जाना। व्यंग बाण छोड़ा उनपर, और बेंत उठाकर रोक दिया।।
यद्यपि वे कुमार इस, दुर्व्यवहार के योग्य न थे। फिर भी द्वारपालों ने, यह राह में उनकी दण्ड धरे।।

सर्वश्रेष्ठ पूजा के योग्य, कुमारों को इस विधि रोका। वैकुण्ठवासी देवों सम्मुख, ही जब उनका राह टोका।।
तब निज प्रियतम प्रभु दर्शन की, राह में बाधा देखी आई। क्रोध से नयना लाल हुए, और उन्होने ऐसी बात कही।।
सनत्कुमार बोले,
भागवत् सेवा प्रभाव से, जो इस लोक को प्राप्त हों। निवास यहाँ पर कर पायें, वह भागवत् तो समदृष्टि हों।।
तुम दोनों भी ऐसे ही हो, स्वभाव में क्यों फिर विषमता? परम शान्त हैं स्वयं हरि, फिर क्यों ऐसा विरोध किया?
फिर यहाँ पे को जन है ऐसा, तुम शंका का जो भागी हो? कपट ही है बस रूप तेरा, इस कारण ही शंकित रहो।।

हैं श्री हरि के उदर में, यह सारा ब्रह्माण्ड स्थित। यहाँ के निवासी ज्ञानी जन, नहीं कोई भेद जानें कदाचित।।
महाकाश में घटाकाश सम, वे निज अन्तर्भाव देखें। सृष्टि के कण-कण में वे, श्री हरि को सर्व व्याप्त देखें।।
तुम दोनों देव रूप धारी, फिर भी कहो क्या कौतुक देखा? प्रभु से भेद भाव देखी, भावी भय कल्पना सें कांपा।।

वैकुण्ठ नाथ भगवान के, वैसे तो हो तुम दो पार्षद। पर बुद्धि अति मन्द हुई, इस कारण हुए संशय रत।।
तुम्हरे कल्याण के हेतु ही, दण्ड का अब हम करते विधान। इस बुद्धि कारण तज वैकुण्ठ, तव पाप योनि में हो पतन।।
जहाँ काम क्रोध और मोह रूपा, यह तीनों शत्रु तुममें निवास करें। कल्याण तुम्हारा तब ही हो, जब इन तीनों को तरें।।
ब्रह्मा बोले,
कठोर वचन सनकादि के, और ब्राह्मण जन का शाप सुनी। जाने किसी शस्त्र सम्मूह से, इन्हें निवृत्त न कर पायें कभी।।
हरि के यह दोनों पार्षद, अति दीन भाव मन में धर कर। उनके चरण पकड़ कर के, लोट गए वहीं धरती पर।।
वह जानें उनके स्वामी हरि, ब्राह्मण जन से बहुत डरते हैं। उनके दिए शापों को, वह अपने सीस ही धरते हैं।।

अति आतुर भाव से बोले वे, हम निश्चित ही हैं अपराधी। जो दण्ड दिया प्रभु आपने, वह हमारे लिए है उचित ही।।
हरि का अभिप्राय बिन जाने, आज्ञा का उल्लंघन है किया। इससे जो है पाप लगा, तुम्हारे दण्ड से वह धुल जायेगा।।
दुर्दशा विचार करो हमारी, गर हृदय में करुणा उभर आये। तो इतनी कृपा बस हम पे करना, भागवत् विस्मृति न हो पाये।।
अधमाधम योनि में जाकर, भी याद हरि की बनी रहे। भागवत् स्मृति जो करे नष्ट, उस मोह की प्राप्ति न होए।।

साधुन् के प्रियतम हृदयेश, कमलनाभ ने जब जाना। मम द्वारपालों ने है, अनादर सनकादि का कर डाला।।
श्री लक्ष्मी सहित वह चलकर के, पहुंचे वहाँ उनके चरणों से। परमहँस मुनिजन भी जिन्हें, सहज नहीं हैं पा सकते।।

सनकादि ने देखा जब, इष्ट हो उनकी समाधि के। वैकुण्ठनाथ स्वयं चलकर, नयना गोचर उनके हुए।।
अंग संग उसके पार्षद गण, चलें छत्र चंवरादि लिये। राजहसं के पंख श्वेत, ज्यों चंवर हों दो झुला रहे।।
मुक्ता झालर जो छत्र जड़ी, वायु से इस विध झूल रही। ज्यों चन्द्र की शीतल किरणों से, अमृतमय बिन्दु झर हों रही।।

सद्गुणों के आश्रय श्री हरि, सौम्य थी मुख मुद्रा बनी। उनसे तो मानो सब पर ही, करुणा सुधा ज्यों बरसा रही।।

स्नेहमयी निज चितवन से, भक्तों के हृदय को स्पर्श करें। विशाल श्याम वक्ष:स्थल पे, उनके श्री लक्ष्मी जी सोहें।।
स्वर्ण रेखा के रूप में, वहाँ विराजें श्री लक्ष्मी। दिव्य लोकों के चूड़ामणि, वैकुण्ठ की उनसे शोभा बनी।।

विशाल नितम्ब पे श्री हरि के, पीताम्बर है लहरा रहा। झिलमिल चमके है करधनी, और कण्ठ में सोहे वनमाला।।
भँवरों की गुंजन ने जिसको, मधुर स्वरों से है भरा। स्वर्ण कान्ति से ज्योतिर्मय, कंगन श्री हरि ने कर डाला।।
एक हाथ श्री गरुड़ के, कन्धों पर हैं टिकाये हुए। दूजे में ले कमल पुष्प, लीलावत् उसे घुमा रहे।।

द्युत प्रभा को भी जो फीका करें, ऐसे वा अमोल कपोल बनें। मकराकृति कुण्डल की वह, शोभा हैं बढ़ा रहे।।
सुघड़ नासिका उभरी हुई, अति सुन्दर है उनका मुखड़ा। मणिमय किरीट धरे सीस पे, अति मनमोहक उनका था मुखड़ा।।
चतुर्भुजा के मध्य में, अनमोल हार हैं लटक रहे। गले में है कौस्तुभ मणि, शोभा अति न्यारी पा रहे।।

सौन्दर्य राशि प्रभु विग्रह देख, भक्तों के मन में वितर्क उठे। इनके सम्मुख लक्ष्मी का भी, सौन्दर्य मान सब गलित होए।।
ब्रह्मा ने कहा हे देवता गण, हरि ऐसा विग्रह धर आये। मेरे और महादेव लिये, तुम्हारे हेतु अपना रूप धरे।।
उनको देख कुमारों ने, सीस झुका प्रणाम किया। नयनाभिराम अद्भुत छवि, देख के मन उनका नहीं भरा।।

मुनीश्वर सनकादि तो सदा, ब्रह्मानन्द में निमग्न थे। श्री कमलनयन के चरणों से, निकली तुलसी सुगन्ध से।।
सुगन्धित वायु नासिका राह, अन्त:करण में जब उतरी। निज तन मन न सम्भाल सके, हलचल पैदा उस गन्ध ने की।।
नील कमल सम मुख प्रभु का, अति सुन्दर और मनोहर था। अरुण अधर कुन्दकली सा हास्य, शोभा था उनकी बढ़ा रहा।।
झांकी उसकी देख कर, कृत्यकृत्य वे हो गए। पद्मराग सम नख से सजे, चरणों के ध्यान में खो गए।।

अन्य साधनों से दुर्लभ, अष्ठ सिद्धि सहज जानें। तत्पश्चात् वह मुनिजन, स्तुति हरि के लगे गाने।।
योग मार्ग से मोक्ष की, खोज जो जन करते हैं। उनके ध्यान का विषय है, जो आदर उसका वह करते हैं।।
नयनाभिराम जो पुरुष रूप, प्रकट उसे वह करते हैं। श्री हरि रूप का ध्यान धरी, आन्तर आनन्दित करते हैं।।
सनत्कुमार बोले,
अन्तर्यामी रुप से, सबके हृदय में स्थित हैं आप। दुष्टों के भी हृदय बसें, दृष्टि से रहें ओझल प्रभु आप।।
पर आज सम्मुख इन नेत्रों के, साक्षात् हैं विराजमान्। आपकी सन्तति हमारे पिता ब्रह्मा, किया आपके रहस्य का जब बखान।।
कर्ण रन्ध्रों के राही तो, बुद्धि में आके विराजे आप। प्रत्यक्ष दर्शन का किन्तु, दुर्लभ सौभाग्य हआ आज प्राप्त।।

हे श्री हरि आप तो हैं, परम तत्त्व ही प्रकट हुए। विशुद्ध सत्वमय अपना, विग्रह धर कर साक्षात् हुए।।
निज भक्तों के हृदय को, आनन्दित आप हैं कर रहे। सगुण साकार इस रूप को, वह अपने आन्तर में रखें।।
राग और अहं से मुक्त मुनि, तव कृपा दृष्टि को प्राप्त कर। सुदृढ़ भक्तियोग से, तव छवि को लेते हृदय में धर।।

कीर्तन योग्य है आपका, सुयश प्रभु इस जगत् में। सांसारिक सब दु:खों को, पल में वह निवृत्त कर दे।।
आपके शरणापन्न हुए, कथा रसिक महाभाग जो। आत्यन्तिक मोक्ष प्रसाद को, भी अति तुच्छ ही जानें वो।।
तब भृकुटी की वक्र जिन्हें, भयभीत अति कर देती है। उन इन्द्रादि पद भोगों की, गणना ही कहाँ फिर होती है?

चित्त हमारा भंवरे की तरह, यदि चरण कमल में रमण करे। वाणी यह तुलसी दल समान, तब चरणों से सदा जुड़ी रहे।।

कर्णरन्ध्र तब कथा सुधा के, रस से सदा भरपूर रहें। चाहे किसी पूर्व कर्म कारण, किसी पाप योनि में भी जायें।।
नहीं इसकी कोई चिन्ता हमें, हम प्रभु प्रेम में पगे रहें। इस जीवन को अब जो भी करो, हम तो आपके नाम में रंगे रहें।

विपुल कीर्ति हे हरि सुने, मनोहारी रूप जो प्रकट किया। दुर्लभ दर्शन यह पाकर के, नयनों को अति सुख चैन मिला।।
इन्द्रिय अनुगामी विषय रसिक, नहीं दर्शन यह पा सकें। साक्षात् श्री हरि आप, नयनों सम्मुख हैं प्रकट हुए।।
प्रत्यक्ष यह दर्शन पा करके, बलिहारी हम आपके। बार बार प्रभु बार बार, चरणों में सीस हैं झुका रहे।।

ब्रह्मा बोले,
योगनिष्ठ सनकादि ने, जब इस भाँति स्तुति करी। वैकुण्ठ के स्वामी श्री हरि ने, तब यूं उनकी प्रशंसा की।।
भगवान बोले,
हे मुनिजन यह जय विजय, हैं तो मेरे पार्षद ही। आपके हैं अपराधी यह, उन्होने अवज्ञा आपकी करी।।
आप सभी तो हैं मेरे, अनुगत प्रिय मेरे भक्त भी। जो दण्ड दिया अवज्ञा का, है वह मुझको मान्य ही।।
ब्राह्मण मेरे परम आराध्य, करूँ नित्य ही मैं पूजा उनकी। मेरे अनुचर ने अपमान किया, जानूँ मैं उसको अपनी कृति।।

इस कारण मैं हाथ जोड़, विनती आपसे करता हूं। प्रसन्न हों हे ब्राह्मणों मुझपर, यह भिक्षा याचना करता हूं।।
सेवक जो अपराध करे, स्वामी का ही जग नाम धरे। अपयश दूषित उसकी कीर्ति करे, ज्यों चर्म रोग त्वचा को ग्रसे।।

मेरे निर्मल सुयश सुधा में, जो डुबकी लगाए बारम्बार। चाण्डाल तक सब जगत् ही, पावन हो उसमें करके स्नान।।
इस कारण दे विकुण्ठ नाम, भक्त मुझे पुकारा करें। किन्तु आपके कारण ही, यह कीर्तिमय मुझे नाम मिले।।
जो कोई भी आपके, विरुद्ध आचरण करेगा कभी। चाहे मेरी ही भुजा वह हो, उसे भंजित करूंगा तत्क्षण ही।।

आपकी सेवा के फल से, चरणन् रज मेरे पावन हुई। ऐसी महिमा उसकी बनी, नष्ट पाप करे तत्क्षण ही।।
ऐसा सुन्दर स्वभाव मिला, चाहे रहूँ नित्य उदासीन। क्षण भर को भी श्री लक्ष्मी, न हों दूर मुझसे आसीन।।
इन्हीं की कृपा कटाक्ष को, हैं सारे देवता तरसते। ब्रह्मादि भी नाना भाँति, व्रत नियमों का पालन करते।।

अपने सब कर्मों के फल, मुझपर अर्पित जो करें। इच्छा लाभ सन्तुष्ट सदा, जो इस जग में हैं विचरें।।
वह निष्काम ब्राह्मण तो सदा, हर ग्रास से ही तृप्त रहते। जब घी से सने विभिन्न भाँति, के पकवान ग्रहण करते।।
तब उनके मुख में बैठा, मैं जैसी तृप्ति हूँ पाता। यज्ञ रूप अग्नि मुख में, आहुति से किंचित न पाता।।

हे योगमाया का अखण्ड असीम, ऐश्वर्य मेरे ही अधीन। चरणोदक मेरे पावन गंगा, चन्द्रमौलि के सीसासीन।।
पावनता का स्त्रोत में, किरीट में धूलि करूं धारण। उन ब्राह्मण जन के कर्म को, कौन न कर पाये सहन?

ब्राह्मण और दुधारु गाय, या अनाथ जितने प्राणी। मेरा अपना ही तन हैं यह, नहीं इसमें संशय तनिक भी।।
पापों के द्वारा जिनकी, विवेक दृष्टि है नष्ट हुई। मुझसे भिन्न जो जानें इन्हें, अति कठिन है उनकी गति।।
यमराज के जो गृद्धादि दूत, हैं मेरे ही द्वारा नियुक्त। सर्प समान हैं क्रोधी वह, अपनी चोंचों से लेते नोच।।

अपमान पूर्ण कटुभाषण, गर कोई ब्राह्मण करे। उसमें भी मुझको ही देख, प्रसन्न चित्त जो सदा रहे।।

अमृतमयी मुसकान से, जो उसका आदर सदा करे। प्रेमपूर्ण वचन कहकर, उससे जो प्रार्थना करे।।
ज्यों पिता निज पुत्र को, सदा स्वयं मनाता है। या फिर मेरा आपका, जैसा प्रेम का नाता है।।

उसी विधि जो याचना कर, शान्त ब्राह्मण को करे। वह तो सदा सदा के लिए, मानो मुझको वश में कर ले।।
मेरा अभिप्राय न जानकर, आपका तिरस्कार किया। इन अज्ञ सेवक जन पर, मेरे अनुरोध से करें कृपा।।
निर्वासन जो है दिया इन्हें, अल्प अवधि में समाप्त हो। अधम गति को भोग कर, यह शीघ्र पुन: मुझे प्राप्त हों।।
ब्रह्मा बोले,
हे देवगण सनकादि मुनि, तो क्रोध सर्प से दंशित थे। तो भी उन चित्त प्रभु की वाणी, सुन सुनकर न तृप्त हुए।।
प्रभु की मन्त्रमयी वाणी, है सुमधुर और तृप्तिकर। सुधामयी उनके वचन, आन्तर प्रकाश देते हैं कर।।
प्रभु का कथन मनोहर था, और था मितभाषण लिये। किन्तु था गहरा अर्थ पूर्ण, निहित सार अपने में लिये।।
दुर्विज्ञेय थी उक्ति वह, और अति गम्भीर थी। बहु ध्यान से सुनी विचार करी, न उसकी आशय समझ पड़ी।।

उदारता प्रभु की देख करी, अंग अंग पुलकित हुआ। योगमाया से प्रकट हुआ, श्री हरि का जो ऐश्वर्य था।।
उसे देख वह हाथ जोड़, श्री हरि से बिनती करने लगे। सनकादि कुमारों ने प्रभु चरण में फिर यह वचन कहे।।
सनत्कुमार बोले,
हे स्वयंप्रकाश प्रभु, सर्वेश्वर हैं आप सदा। यह आपने अनुग्रह मुझपे किया, फिर भी आपने क्यों यह कहा?
आपके इस कथन का, अभिप्राय हम न समझ सके। कृपा करी के हे भगवन्, स्पष्ट आप ही इसे करें।।
हैं ब्राह्मणों के हितकारी आप, क्या इस कारण ही ऐसा कहा? लोक शिक्षा के हेतु क्या, आराध्य उन्हें अपना कहा?
वास्तव में तो द्विजों के भी, और देवाधिदेव श्री ब्रह्मा के। हैं आत्म रूप आप ही, और परम आराध्य ही हैं उनके।।

आपसे ही उत्पन्न हुआ, है सनातन धर्म भी। आपने ही अवतार लेई, बार बार उनकी रक्षा करी।।
निर्विकार स्वरूप आप, धर्म का परम गुह्य रहस्य। यही कहा है शास्त्रों ने, यही है सत्पुरुषों का मत।।
आपकी कृपा दृष्टि को पा, पार करें मृत्यु सागर। निवृत्ति परायण योगी जन, सहज तरें यह भव सागर।।
फिर दूजा कौन भला होगा, जो कृपा आप पर कर सके? कृपा सिन्धु श्री हरि स्वयं, उपकार कौन उनपर करे?

निज मस्तक पर धरें सदा, जिनकी धूल्लि अर्थ अर्थी। वह श्री लक्ष्मी आपकी, सेवा में निरन्तर रत रहतीं।।
बड़भागी जो भक्त हैं, तुलसी से चरण कमल सेवें। नवनूतन तुलसी माल पर, भंवरे तो नित्य गुंजर करें।।
आपके चरण कमल त्यजकर कहीं और वह जाना न चाहें। इसी विधि श्री लक्ष्मी भी, उन चरणों में ही सदा रहें।।

निज पावन चरित से सेवा में, रहती हैं निरन्तर जो तत्पर। उन श्री लक्ष्मी जी का भी, नहीं करते आप विशेष आदर।।
आप तो अपने भक्तों से, ही विशेष प्रभु प्रेम करें। सब भजनीय जो गुण जग में, आप ही उनको आश्रय दें।।
जहां तहां जो विचर रहे, क्या उनके मार्ग की धूलि ले। या श्री वत्स का चिन्ह ही, कभी पावन आपको कर सके?
सम्पूर्ण जग की शोभा आप, तब आपकी शोभा कौन बढ़ा सके? महिमा आपकी अति गुह्य, कौन गान उनका गा सके?

धर्म स्वरूप है आप प्रभु, रहें धर्म रूप में विद्यमान। सत्यादि तीनों युग में, प्रत्यक्ष है तव महिमा महान्।।
द्विज और देवों के लिये, तप शौच दया का विधान करें। इन तीनों ही चरण से, चराचर जग की रक्षा करें।।

शुद्ध सत्त्वमय वरदे जो, चिन्मय मूर्ति आप हैं। धर्म विरोधी रज और तम, हमारे अब प्रभु दूर करें।।

हे प्रभु यह ब्राह्मण कुल, रक्षणीय है आप से। धर्म स्वरूप साक्षात् आप, करें रक्षण पूजन आदि से।।
सुमधुर वाणी से आप यदि, इस उत्तम कुल को सराहें नहीं। आप द्वारा सुनिश्चित यह, कल्याण मार्ग न रहे कहीं।।
श्रेष्ठ जन का आचरण, इतना सब अनुसरण करें। उसको ही प्रमाण बना, निज जीवन को दिशा वह दें।।

हैं सत्वगुण का स्रोत आप, सबके कल्याण हेतु उद्यत। राजा रूपा निज शक्ति से, धर्म रिपु संहार दें कर।।
वेदमार्ग का विरोध, नहीं प्रिय कभी आपको। त्रिलोकीनाथ सब जगत् के, आप ही तो प्रतिपालक हो।।
फिर भी ब्राह्मणों के प्रति, विनम्र मूर्ति आप हैं। नहीं तेज न्यू हो इससे कभी, यह तो बस लीलामात्र है।।

सर्वेश्वर हैं आप प्रभु, जो उचित लगे इनको दण्ड दें। या यह द्वारपाल अपने, पुरस्कृत चाहे आप करें।।
सेवक को शापित किया, चाहें तो दण्ड इसका दें। निष्कपट भाव हृदय धर कर, अनुसरण आपका हम करें।।
सहर्ष ही है स्वीकार हमें, प्रभु आप जो निर्णय दें। हम तो सब ही भावों में, हे हरि आपकी शरण गहें।।
भगवान बोले,
सच जानो हे मुनिजन तुम, शाप जो इनको तुमने दिया। यह सब तो मेरी प्रेरणा, का ही इक परिणाम था।।
शीघ्र ही मेरे अनुचर यह, दैत्य योनि में जायेंगे। क्रोधावेश से बढ़ी हुई, एकाग्रता वहाँ यह पायेंगे।।
योग सम्पन्न हो शीघ्र ही, पुन: लौट यहां आयेंगे। शाप की अवधि पूर्ण कर, मुझको ही पुन: यह पायेंगे।।
ब्रह्मा बोले,
तत्पश्चात् कुमारों ने, नयनाभिराम प्रभु विष्णु के। और स्वयं प्रकाश उनके, परम वैकुण्ठ धाम के।।
दर्शन कर परिक्रमा करी, और उन्हें प्रणाम किया। श्री हरि के ऐश्वर्य का, फिर उन्होने गुणगान किया।।
श्री प्रभु की आज्ञा पाकर, प्रमुदित हुए वहाँ से लौटे। व मुनीश्वर तो पुन:, अपनी यात्रा पे चल दिए।।

फिर प्रभु ने निज अनुचरों से, सुमधुर यह सुखद वचन कहे। मत भय करो किसी भी भाँति, कल्याण हो निश्चित ही तुम्हारा हे।।
सर्वसमर्थ हूँ मैं फिर भी, ब्रह्म तेज मिटाना नहीं चाहता। यह ही है मत मेरा जानो, विपरीत मैं जाना नहीं चाहता।।
एकदा योग निद्रा में, स्थिर था मैं जब हो गया। भवन में प्रवेश समय, श्री लक्ष्मी का था पथ रोका।।
उसी समय क्रुद्ध होकर, उन्होने था तुम्हें यह शाप दिया। वही शाप तो मूर्तिमन्त, होकर आज है प्रकट हुआ।।

अब दैत्य योनि में जाकर के, क्रोधाकार वृत्ति होगी। मेरे प्रति उस क्रोध से, एकाकार वृत्ति होगी।।
उससे तुम विप्रों के प्रति, किए पाप से मुक्त हो जाओगे। फिर अल्प काल में ही जानो, पुन: मेरे पास तुम आओगे।।
इस विध द्वारपालों को, आज्ञा दी भगवान ने। विमानों से था सुसज्जित जो, हुए प्रविष्ट निज धाम में।।

देवश्रेष्ठ जय और विजय, तो ब्राह्मण शाप प्रभाव से। श्री हीन ही हो गए, अति दुर्लभ भागवत् धाम में।।
सारा गर्व उन दोनों का, गलित ही मानो हो गया। प्रभु धाम में सेवा करने का, यह उनको प्रसाद मिला।।
फिर वैकुण्ठ लोक से, जब दोनों ही गिरने लगे। विमानों पर आसीन वहाँ, वैकुण्ठ लोक के वासी थे।।
उनके पतन को देख कर, हाहाकार वहाँ होने लगा। उन वैकुण्ठ वासियों की, शान्ति में मानो भंग हुआ।।

दिति के गर्भ में इस पल, जो कश्यप ऋषि का तेज है। भगवान् के उन ही पार्षदों का, हुआ वहां प्रवेश है।।
उन द्वौ असुरों के तेज से ही, है तेज तुम्हारा फीका पड़ा। इस समय इतना जानो, यह ही है श्री हरि इच्छा।।

सब जग की उत्पत्ति स्थित, और लय के जो हैं कारण। उन आदि पुरुष की योगमाया, का पार न पायें योगी जन।।
सत्वादि त्रै गुण के हैं, नियन्ता श्री हरि स्वयं ही। हमारा भी सर्व विधि, कल्याण करेंगे स्वयं ही।।
इस विषय में विशेष विचार, क्या लाभ हमारा कर सकें? हम तो श्री हरि की शरण पड़े, जो सकल पाप ही हर सकें।।

१०) देवहूति और कर्दम का चरित्र

विदुर बोले,
बहु आदरणीय और मान्य है, वंश श्री मनु स्वयं का। प्रजावृद्धि थी हुई उसमें, धर्ममय मैथुन द्वारा।।
हे विप्रवर अब आप मुझे, उसकी कथा सुनाइये। इस कथा प्रवचन से, मेरा भाग्य उदय कर जाइये।।
हे द्विज श्रेष्ठ कहा आपने, स्वयंभू मनु को पुत्र थे दो। प्रियव्रत और उत्तानपाद, यह दोनों के नाम कहो।।
दोनों ने धरती को पाला, जो थी सात खण्डों में बंटी। उनकी पुत्री थी देवहूति, प्रजापति कर्दम को व्याही।।

योग के यम आदि लक्षण से देवहूति सम्पन्न थी। महायोगी कर्दम से उन्होंने, कितनी सन्तानें उत्पन्न की?
कृपा करी यह सब प्रसंग, आप मुझे सुनाइये। जिज्ञासु हूं मैं श्रवण का, प्यास मेरी बुझाइये।।
भगवन इसी विधि रूचि, और ब्रह्मा जी के पुत्र ने। परिणय मनु सुताओं से, किया प्रजापति दक्ष ने।।
किस विधि और कौन कौन, सन्तानें उनके घर जन्मीं? कृपा करी के विप्रश्रेष्ठ, मुझे प्रसंग सुनाएँ वहीं।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री ब्रह्मा ने कदर्म को जब, सन्तति उत्पत्ति की आज्ञा दी। दस सहस्र वर्ष तक उन, सरस्वती तट पर तप करी।।
एकाग्र चित्त हो प्रेम सहित, पूजन और उपचार से। शरणागत वरदे हरि की, आराधना वह करने लगे।।
सत्ययुग के आरम्भ में तब, कमल नयन श्री नारायण। उनका तप यह देख करी, हो गए अति मुदित मन।।
शब्द ब्रह्ममय निज स्वरूप से, मूर्तिमान वह हो गए। इस विध रूप साक्षात् धरी, श्री हरि ने उन्हें दरस दिये।।

भव्यमूर्ति भगवान् की वह, थी सूर्य समान ही तेजोमयी। श्वेत कमल और कुमुद की, माला थी उनके कण्ठ पड़ी।।
मुख कमल को स्निग्ध श्यामल, अलकावली ने था घेरा। निर्मल वस्त्र थे उस तन पर, अलौकिक उनका रूप था।।
सीस पे दमके स्वर्ण मुकुट, और कानों में जगमग कुण्डल। कर कमलों में विराज रहे, शंख चक्र गदा और आयुध।।
क्रीड़ा हेतु इक हाथ में, श्वेत कमल सुशोभित था। चित्तहारी मधुर मुसकान लिये, श्री प्रभु का सुन्दर मुख था।।

श्री गरुड़ के कान्धे पे, थे चरण कमल विराजमान। वक्ष:स्थल पे बैठी लक्ष्मी, कण्ठे कौस्तुभ थी शोभायमान।।
आकाश में स्थित प्रभु की यह, मनहर मूर्त देख के। अति हर्षित हुए कर्दम जी, जैसे सब इच्छा पूर्ण भये।।
आनन्द पूर्ण होकर उन्होने, तब धरती पर सिर टेक दिया। इस विधि कर्दम ऋषि ने, प्रभु को साष्टांग प्रणाम किया।।
प्रेममय चित्त उनका था, नयनों में भी जल भर आया। अपनी मधुमय वाणी में, उन प्रभु का स्तुति गान गाया।।
कर्दम ऋषि बोले,
पूर्ण सतोगुण का आधार, हैं स्तुति योग्य बस आप ही। हे परमेश्वर योगी जन तो, करते बस इच्छा दर्शन आपकी।।

उत्तरोत्तर शुभ योनि में, जन्म वह पाते जाते हैं। योगस्थ वह होके प्रभु, आपका दर्शन पाते हैं।।
दुर्लभ दर्शन यह आपका पा, हैं नेत्र हमारे सफल हुए। जन्म जन्म के पुण्यों के, फल मानो अज प्रकट हुए।।

चरण कमल प्रभु आपके, हैं जहाज भवसागर में। तुच्छ क्षणिक विषय तो सब, नरक में भी हैं मिल सकते।।
माया ने हरी बुद्धि उनकी, जो विषय हेतु चरणाश्रय लें। हे स्वामी आप उदार बहु, उन्हें विषय भोग भी दे देवें।।

कल्प तरु हैं आप स्वयं, हैं सकल मनोरथ पूर्ति कर। है काम से कलुषित मन मेरा, निज भाव प्रभु दूँ चरण में धर।।
मेरे स्वभाव अनुरूप जो, गृहस्थ धर्मपालन करे। शील स्वभाव की कन्या हो, मेरे धर्म में जो सहयोग दे।।
पूजा आदि उपहार सब, चरण में मैं अर्पण करूँ। अपनी मनो इच्छा हे प्रभु, मैं आपके चरण धरूँ।।

जग के ही अनुयायी जो, और रहें सदा विषय आसक्त। आपके भक्त तो उन्हें, जाने बस जड़ कर्मी पशुवत्।।
तव चरणों के आसरे, नित्य ही जो रहते हैं। परस्पर तव गुणगान का, सुधापान वह करते हैं।।
क्षुधा पिपासा आदि सब, देह धर्म शान्त तो करते हैं। पर चित्तभंवर उन भक्तों के, तुम्हारे चरण कमल में विचरते हैं।।

अति प्रबल प्रभु यह काल चक्र, है ब्रह्म ही इसकी एक धुरी। अधिमास सहित त्रयोदश मास, तीन सौ साठ दिन की गिनती।।
छ: ऋतुएं नेमि इसकी, क्षण पल अनन्त धारायें हैं। तीन चतुर्मास इसके, आधारभूत वह नाभि हैं।।
संवत्सर रूप यह काल चक्र, अति वेगवान है गति इसकी। चराचर जगत की आयु का, छेदन् करती यह घूम रही।।
पर भक्तों की आपके, आयु का ऱ्हास न कर सके। वह तो निरन्तर आपके, ध्यान में ही निमग्न रहें।।

ज्यों मकड़ी अपने में से, जाला आप बनाती है। संरक्षण उसका स्वयं करे, फिर निगल आप उसे जाती है।।
आप स्वयं एकाकी ही, इस जगत् की रचना के लिये। निज से अभिन्न योगमाया, को प्रभु स्वीकार करें।।
उसके द्वारा अभिव्यक्त हुई, अपनी सत्त्वादि शक्ति से। स्वयं ही इस जग को रचें, फिर पालन और संहार करें।।

तुलसी माला से सुसज्जित जो, माया से परिछिन्न-सी। सगुण मूर्ति की प्रभु, अति दुर्लभ हमें दर्शन दी।।
शब्दादि विषयों के सुख, निज भक्तों को जो स्वयं दें। मायिक होने के कारण, नहीं रुचिकर हैं वह आपके।।
पर अन्त में शुभ ही हो हमारा, इतनी आप अब कृपा करें। हमारे कल्याण हेतु ही, विषय सुख भी हमें आप ही दें।।

निष्क्रिय स्वरूप है आपका, गतिवान हो माया से संसार। माया के द्वारा ही तो, चले संसार का सब व्यवहार।।
तनिक सी भी उपासना, यदि प्रभु कोई जीव करे। सब वांछित उपभोगों की, वर्षा उसपर आप करें।।
वंदनीय ही हैं सदा, चरण कमल प्रभु आप के। बार बार करूँ नमस्कार, चरण कमल में नाथ के।।
मैत्रेय मुनि बोले,
चंचल थीं प्रभु की भ्रुवें, प्रणयमयी मुसकान से। श्री गरुड़ के कान्धे पर, हरि स्वयं विराजमान् थे।।
निष्पकट भाव से कर्दम ने, जब करी स्तुति श्री हरि की। तब अमृतमय वाणी प्रभु की, कर्दम ऋषि के कर्ण पड़ी।।
भगवान बोले,
आत्म संयम आदि द्वारा, जिस भाव से तूने आराधा मुझे। तव हृदय के भाव को जान के, व्यवस्था उसकी कर चुका हूँ।।
निष्फल कभी भी नहीं जाती, हे प्रजापति आराधना मेरी। अनन्य एकाकी भाव से, है जिनका चित्त मुझको प्रपन्न।।

तुम जैसे ऐसे महात्मा, उपासना जब मेरी करते हैं। अत्याधिक फल उपासना का, प्राप्त वे सब करते हैं।।

स्वयंभू मनु प्रसिद्ध हैं, महा यशस्वी वह सम्राट्। सप्त सिन्धु संग पृथ्वी पर, करते हैं वह स्वयं राज्य।।
हे विप्रवर धर्मज्ञ वह, निज रानी शतरूपा के साथ। तुमसे मिलने आयेंगे, परसों लेकर इक प्रस्ताव।।
रूप अवस्था गुण शील, सम्पन्ना सुता इस पल उनकी। श्याम लोचना वह कन्या, है विवाह के योग्य ही।।
सब भाँति से हे प्रजापति, तुम तो उसके योग्य हो। इस कारण उनके द्वारा वह कन्या तुम्हें समर्पित हो।।

अनेकों वर्ष से तेरा चित्त, जैसी भार्या की चाह रहा। शीघ्र ही उस राजसुता से, तव संयोग बना जा रहा।।
हे ब्राह्मण वधु तुम्हारी बन, सेवा में अर्पित होगी वह। सब भाँति ही यथा इष्ट, सेवा तुम्हारी करेगी वह।।
तव वीर्य को निज गर्भ में धर, करेगी उत्पन्न नौ कन्या। उनसे मरीचि आदि ऋषि, करेंगे उत्पन्न पुत्र महान्।।

मेरी आज्ञा का पालन, सदा भली भाँति किया। इससे ही हे द्विज सुनो, चित्त शुद्ध तेरा हुआ।।
अपने सब कर्मों का फल, फिर मुझको ही अर्पित करके। मुझको ही प्राप्त तुम होवोगे, अपने सब धर्म निभाकर के।।
जीवों पर करते हुए दया, तुम आत्म ज्ञान को पाओगे। अभय दान सबको देकर, फिर प्राप्त मुझे हो जाओगे।।
सम्पूर्ण जगत् में मुझको ही, देखोगे तुम अपने सहित। और फिर तुम मुझको भी, देखोगे अपने में ही स्थित।।

हे महामुने मैं स्वयं भी, निज अंश कला के रूप से। देवहूति के गर्भ में, स्थित होऊँगा तेरे वीर्य से।।
अवतीर्ण हो वा गर्भ से, सांख्य शास्त्र को रच दूँगा। इसी राही हे मुने, जग को इक नया पथ दूँगा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
आन्तर्मुखी इन्द्रियां होने से, श्री हरि हैं प्रकट होते। हे विदुर ऋषि कर्दम से, सम्भाषण इस विधि करके।।
सरस्वती से घिरे हुए, बिन्दुसर उस तीर्थ से। कर्दम ऋषि थे जहाँ तप में रत, प्रभु अपने धाम को फिर लौटे।।
सिद्धेश्वर सब वैकुण्ठ मार्ग की, स्तुति सदा ही गाते हैं। कर्दम के देखते देखते ही, प्रभु अपने धाम को जाते हैं।।
गरुड़ के पंखों से उस पल, थीं साम ऋचायें निकल रहीं। आधार भूत ऋचाएं यह, श्री हरि ने भी श्रवण करीं।।

हे विदुर हरि के जाने पर, वा कथित समय की प्रतीक्षा में। बिन्दु सरोवर तीर्थ पर, ऋषि कर्दम ठहरे रहे।।
इधर मनु भी साम्राज्ञी, शतरूपा को संग लेकर। हुए रत्न जड़ित रथ पे सवार, निज कन्या को भी संग लेकर।।
पृथ्वी पर वह विचरते हुए, भागवत् कथित उस दिवस पर। शान्ति प्रिय ऋषि कर्दम, के पहुँचे वह आश्रम पर।।

बिन्दुसार वह स्थान हैं, जहाँ सरस्वती जल है भरा। निज शरणागत कर्दम के प्रति, कारुण्य प्रभु का जहाँ उमड़ा।।
करुणा के वशीभूत हो, नयनों से अश्रु बिन्दु गिरे। इस कारण यह तीर्थ तो, है अति पावन सबके लिये।।
इसका जल अमृत सम है मधुर, और सदा कल्याणमय। महर्षिगण तो सदा इसका, सेवन ही करते रहें।।

अति पावन वृक्ष लताओं से, घिरा हुआ था बिन्दुसर। मृग और पक्षी जिस वन में, रहे भिन्न स्वरों से निनाद कर।।
ऋतु अनुकूल सब फूल फलों, से भरा वह रहता था। सुन्दर वन श्रेणी से भी, शोभा सम्पन्न सदा रहता था।।
उस वन में मतवाले हुए, पक्षीवृन्द चहचहा रहे। पुष्पों पर मदमत्त हुए, भंवरे थे मंडरा रहे।।
उन्मत्त मयूर पिच्छ फैलाकर, था नट की भाँति नाच रहा। कुहू कुहू कहकर कोयल, जैसे हो सबको बुला रहा।।

दम्ब चम्पक अशोक करंज, बकुल असन कुन्द मन्दार। कुट और नव आम्र वृक्ष, ही थे आश्रम का श्रृंगार।।
जल काग बत्तख आदि पक्षी, थे सब जल पर तैर रहे। हंस सारस चकवा चकोर, सबके कलरव से बन गूंजे।।
हिरन सूअर और स्याही, नीलगाय हाथी वानर। सिंह लंगूर और नेवले, कस्तूरीमृग का था वह घर।।

कन्या सहित महाराज मनु, पहुंचे उस उत्तम तीर्थ में। वहाँ पहुँच उन्होने देखा, कर्दम मुनि को बैठे हुए।।
अग्निहोत्र संस्कार से, निवृत्त होकर अभी बैठे थे। फिर भी भागवत् ध्यान में, निमग्न हुए थे दीख रहे।।
दीर्घ कालीन उग्र तप से, था तन उनका तेजस्वी हुआ। प्रभु की स्नेहमयी चितवन, का था उसने दर्शन किया।।
प्रभु के सुधामय वचनों का, उन्होने पाया कर्णामृत था। इस कारण कठिन तपस्या पर, भी तन नहीं था कृष् हुआ।।

लम्बा उनका शरीर था, थे नेत्र कमल दल के समान। विशाल वह और मनोहर थे, थी शीश पे जटा शोभायमान।।
चीर वस्त्र था कटितट पर, थी उनकी महिमा महान्। मलिन मणि ज्यों सान चढ़ी, ऐसी थी वा कान्ति महान्।।
महाराज स्वयंभु मनु को, निज कुटी में उन्हे आते देखा। वहाँ पहुँच महाराज ने, मुनिवर को प्रणाम किया।।
यथोचित आतिथ्य विधि, से उनका सत्कार किया। आशीर्वचन कहकर उनका, चित्त अति प्रसन्न किया।।

पूजा अर्चा उनकी ग्रहण कर, मनु स्थिर आसन पर बैठे। तब मुनीश्वर कर्दम ने, प्रभु वचन फिर याद किये।।
सुमधुर सम्भाषण से, उन्होंने मनु को प्रसन्न किया। कर्दम ने फिर स्वयंभू से, विनम्र भाव यह वचन कहा।।
कर्दम बोले,
हे देव प्रभु विष्णु की, पालन रूपा शक्ति हैं आप। भ्रमण जो दीखे आपका, कोई योजन निहित लिये हैं आप।।
सज्जनों की रक्षा ही, इक हेतु है आपका। और इसी कारण करें आप, दुष्टों का संहार सदा।।
विष्णु रूप हैं साक्षात्, विशुद्ध रूप से आप प्रभो। भिन्न भिन्न काजों के लिये, विभिन्न रूप धरण करो।।
सूर्य चन्द्र अग्नि इन्द्र, वायु यम धर्म और वरुण। नमस्कार मेरा प्रभो, करें आप ही सब रूप धारण।।

मणि जड़ित जयदे रथ पर, होकर आये सवार आप। प्रचण्ड धनुषटंकार तेरा, और पहियों की घर घर आवाज।।
पापियों को भयभीत करे, और उनके हृदय यह दहला दें। निज सेना के चरणों से, भूमण्डल को हैं रौंद रहे।।
कम्पायमान धरती को करें, विचरें स्वच्छन्द सूर्य के सम। ऐसा आपके करने से, रहे बना धरा अनुपात सम।।
यदि आप ऐसा न करें, प्रभु द्वारा प्रचलित मर्यादा। तत्काल नष्ट कर दें दुष्ट, पूरी ही आश्रम व्यवस्था।।
विषय लोलुप निरंकुश जीव, सर्वत्र अधर्म प्रवृत्त करें। यदि आप हो जायें उदासीन, दुराचारी यह जग नष्ट करें।।

तो भी वीरवर आपसे, एक प्रश्न हूँ कर रहा। इस समय यहाँ आपका, आगमन है किसप्रकार हुआ?
मेरे लिये जो आज्ञा हो, सहर्ष स्वीकार करूँगा मैं। यथा योग्य बल से अपने, पूर्ण उसे करूँगा मैं।।
ऋषि कर्दम ने इस भाँति, मनु गुण कर्म सराहा जब। निवृत्ति परायण उस ऋषि को, सकुचा कर मनु बोले तब।।

वेदमूर्ति श्री ब्रह्मा ने, निज विग्रह की रक्षा के लिये। तप विद्या योगधनी अनासक्त, विप्र मुख से प्रकट किये।।
सहस्त्रपदी विराट् ने फिर, उन आपकी रक्षा के लिये। सहस्त्र भुजाओं से अपनी, हम सब क्षत्रिय उत्पन्न किये।।
इस विधि ब्राह्मण जन सब, उनका हृदय कहलाते हैं। और पूर्ण क्षत्रिय जन को, उनका तन कहे जाते हैं।।

एक ही तन से उत्पन्न हो, इक दूजे की रक्षा करें। उन ब्राह्मण और क्षत्रियों की, श्री हरि स्वयं ही रक्षा करें।।
समस्त कारण और कार्य, रूप हैं प्रभु आप ही। फिर भी हैं वह निर्विकार, वास्तव में हैं उपराम ही।।
हे मुनिवर दर्शन आपके पा, मानो मेरे सब पुण्य जगे। दर्शन मात्र से आपके, सब संशय मेरे दूर भगे।।
प्रशंसा मेरे निमित्त बना, प्रेम सहित कहा आपने। प्रजापालन इच्छुक राजा, का धर्म कहा आपने।।

अति दुर्लभ है दर्शन यह, अजितेन्द्रिय पुरुष को आपका। बड़भागी हूँ मैं प्रभु, जिसने है यह दर्शन पाया।।
आपके चरणों में अपना, सीस मैं यह झुका सका। श्री चरणों की रज को मैं, अपने मस्तक पे चढ़ा सका।।
भाग्य उदय यह हुआ मेरा, जो राजधर्म की शिक्षा दी। मुझपे अनुग्रह करके ही, आपने है यह वचन कही।।
ऐसा लगे मेरे शुभ प्रारब्ध, हे द्विजवर है जाग उठे। आपकी पावन वाणी जो, कान खोलकर मैंने सुनी।।

हे मुनिश्रेष्ठ निज सुता के, स्नेह वश हूँ चिन्तित हुआ। मुझ दीन की यह प्रार्थना, कृपा कर अब सुनें जरा।।
प्रियव्रत और उत्तानपाद, की प्रिय भगिनी है मेरी सुता। निज शील अवस्था और गुण, योग्य पति की करे इच्छा।।
देवर्षि नारद ने इसे, आपके गुणों की बात कही। शील विद्या रूप आयु, इन सबकी वर्णन करी।।
तब से ही इसने अपने, मन में है निश्चय कर लिया। पति रूप में आपको, मन ही मन इसने वर लिया।।

हे द्विजवर श्रद्धापूर्ण, हृदय मैं लेकर आया हूँ। आपके दर निज कन्या को, समर्पित करने आया हूँ।।
आप इसे स्वीकार करें, हे मुनिवर मेरा अनुरोध है। गृहस्थोचित सब धर्मों में, सब भाँति आपके योग्य है।।
यदृच्छा प्राप्त जो हो जाये, उस भोग की अवहेलना। विरक्त के लिये भी उचित नहीं, विषय भोगों की तो बात ही क्या।।

स्वत: प्राप्त हुए भोग का, जो निरादर करता है। फिर दीन बनी किसी कृपण के, सम्मुख याचना करता है।।
बहुत विस्तृत यश भी उसका, नष्ट ही हो जाता है। तिरस्कृत हो सब लोगों से, उसका मान भंग हो जाता है।।
हे विद्वन् मैंने सुना, विवाह हेतु इच्छुक हैं आप। ब्रह्मचर्य भी हो इक सीमा तक, नहीं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं आप।।
हे विप्रवर इस कन्या को, स्वीकार आप अब कीजिये। समर्पित आपको करता हूँ, इससे विवाह कर लीजिये।।
कर्दम ऋषि बोले,
विवाह का इच्छुक मैं हूँ, सत्य आपने है कहा। आपकी इस कन्या का भी, वाग्दान अभी नहीं हुआ।।
इसलिये हम दोनों का, परिणय भी उचित होगा। सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण विधि, से ही यह विवाह होगा।।

वेदोक्त विवाह रीति में, हैं प्रसिद्ध जो मन्त्र कहे। सन्तान उत्पत्ति के हेतु, मनोरथ जो हैं वहाँ कहे।।
तुम्हारी कन्या से सम्बन्ध बना, सफल वे सब हो जायेंगे। इस विधि इस सम्बन्ध से, वृद्धि हम भी पायेंगे।।
जिसके अंग की कान्ति से, आभूषण सब फीके पड़ें। आपकी इस सुकन्या का, कौन है जो आदर न करे?

निज महल की छत पे एकदा, कन्दुक थी यह खेल रही। गेंद के पीछे दौड़ती, चंचल नयना इसकी हुई।।
पैरों की पायजेब भी, झंकार मधुर थी कर रही। विश्वा वसु गन्धर्व जो, विमान से इसको देख करी।।
हो अचेत थे गिर पड़े, ऐसी हमने बात सुनी। इस बाला के सौन्दर्य की, है चारों दिशाओं में महिमा फैली।।

वही सुन्दरी आज यहाँ, स्वयं ही पधार कर। मुझसे ही परिणय हेतु, प्रार्थना रही है कर।।

ऐसा कौन पुरुष होगा, जिसमें किंचित् भी बुद्धि हो। ऐसी अवस्था में जिसको, यह गुणवती स्वीकार न हो?
साक्षात् स्वयंभु मनु की, यह तो दुलारी है सुता। उत्तानपाद की प्रिय भगिनी, रमणियों में रत्नश्रेष्ठा।।
श्री लक्ष्मी के चरणों की, जिसने उपासना नहीं करी। उनके लिये इस श्रीमुख का, दर्शन भी है अति दुर्लभ ही।।

अत: आपकी इस साध्वी, सुन्दर कन्या को वरूँगा मैं। पर साथ ही इस विवाह के, इक शर्त भी धरूँगा मैं।।
जब तक कोई सन्तान इसे, मुझसे प्राप्त न हो जाये। तब तक गृहस्थ बनकर के, मुझसे यह धर्म भी निभ पाये।।
तत्पश्चात् भागवत् कथित, संन्यास प्रधान है मार्ग जो। हिंसा रहित दम शम आदि, का पालन मुझे अधिमान्य हो।।

इस विचित्र जगत् की, उत्पत्ति है जिनसे हुई। जिनके आश्रय हो इसकी स्थिति, और लीन भी हो यह उनमें ही।।
श्रीमन्नारायण वह तो हैं, प्रजापतियों के भी पति। सर्वाधिक प्रिय हैं वही मुझे, वह ही हैं मेरे भी पति।।
मैत्रेय मुनि बोले,
प्रचण्ड धनुर्धर विदुर जी, कर्दम ने बस इतना ही कहा। हृदय में ध्यान हरि का धरा, वाणी राही वह मौन हुआ।।
मन्द मन्द मुस्कान लिये, मुख कमल था उनका खिल रहा। देवहूति का चित्त भंवरा, लोलुप उसीका हो गया।।
महारानी शतरूपा और, निज पुत्री की सम्मत्ति पाकर। स्पष्ट रूप से ही मनु ने, इन दोनों की अनुमति पाकर।।
अनेक गुण सम्पन्न श्री, कर्दम ऋषि महान् को। मुदिन मनी हो उन समान, गुणवती कन्या का दान दियो।।

महारानी शतरूपा ने, निज पुत्री और दामाद लिये। बहुत प्रेम से बहुमूल्य, वस्त्र और आभूषण दिये।।
अन्य भी गृहस्थोचित, पात्र आदि उपकरण जो। निज पुत्री के सुख के लिये, महारानी ने उपहार दिये।।
इस विधि निज सुता को, अति योग्य वर को सौंपकर। निश्चिन्त हुए महाराज मनु, पिता का यह कर्त्तव्य कर।।

सुता छोड़ महाराज मनु, जब वापिस जाने लगे। निज पुत्री के वियोग से, अश्रुपूर्ण उनके नयना थे।।
अति विह्वल था चित्त हुआ, उत्कण्ठा से था कण्ठ रूँधा। निज वक्ष:स्थल से उसे लगा, बेटी बेटी कह विलाप किया।।
थे पुत्री का सिर चूम रहे, नयनों से अश्रु झड़ी लगी। निज अश्रु से भिगो दिये, देवहूति के केश सभी।।

फिर कर्दम ऋषि से पूछकर, और उनकी आज्ञा लेकर। महारानी को संग लिये, वह सवार हुए रथ पर।।
ऋषि कुल सेविक सरस्वती, नदी के दोनों तीरों पर। ऋषि आश्रमों की पंक्तियां, उसको सुशोभित रहीं थीं कर।।
आश्रमों की शोभा देखते, अपने सब सेवक लिये। महाराज मनु फिर आश्रय से, निज राजधानी की ओर लौटे।।

ब्रह्मावर्त की प्रजा ने जब, सुखद यह समाचार सुना। उनके स्वामी हैं घर आ रहे, आनन्दित जन जन वहाँ हुआ।।
स्तुति गीत वह गाने लगे, बहु वाद्य वह बजाने लगे। निज राजा के स्वागत हेतु, सब राजधानी से निकल पड़े।।
सर्वसम्पदा युक्त थी वह, बर्हिष्मती जो नगरी थी। वह ही तो महाराज मनु, के राज्य की राजधानी थी।।
पृथ्वी को रसातल से, बाहर जब ले आये थे। वराह प्रभु ने कम्पित तन, के केश यहीं गिराये थे।।

वह केश ही श्री भगवान् के, कुश और काश फिर बन गए। यही गुण उनका जान लो, निरन्तर हरे भरे वह रहें।।
इनके द्वारा ही ऋषियों ने, यज्ञ पुरुष की आराधना की। तिरस्कार कर असुरों का, यज्ञों द्वारा ही साधना की।।
श्री वराह भगवान् से, भूमि निवास था उन्होंने पाया। महाराज श्री मनु ने भी, इस स्थान का था आदर किया।।

कुश और काश की दरी, इसी जगह बिछाई थी। यज्ञ प्रभु की पूजा भी, इसी जगह रचाई थी।।

जिस राजधानी में श्री, मनु का अपना निवास था। वहां पहुंच त्रितापहारी, भवन में अपने प्रवेश किया।।
निज भार्या और सन्तति संग, मनु वहाँ रहने लगे। धर्म अर्थ और मोक्ष हेतु, उपभोग भोगों का करने लगे।।
प्रात: होते गन्धर्व वहां, निज भार्याओं संग आ जाते। वहाँ पहुँच कर प्रेम से, उनके गुणगान किये जाते।।
परन्तु श्री मनु तो कभी, उनमें आसक्त नहीं होते। प्रेम पूर्ण हृदय से वह, श्री हरि की कथा सुना करते।।

वह तो निज इच्छानुकूल, समर्थ थे सब निर्माण में। किन्तु स्वभाव से मननशील, और भगवत् परायण थे।।
इस कारण कोई भोग उन्हें, विचलित न कर पाते किंचित्। निर्माण की इच्छा कौन करे, प्रभु में निमग्न था उनका चित्त।।
प्रभु विष्णु की कथाओं का, श्रवण ध्यान नित करते थे। उसकी रचना और निरूपण में, पल पल व्यतीत वह करते थे।।
इस कारण उन मन्वन्तर के, जितने भी क्षण और पल थे। काल गति पे आरूढ़ वह, व्यर्थ कभी न जाते थे।।

इसी विधि अपनी जाग्रत, स्वप्न सुशुप्ति अवस्था में। त्रैगुण को अभिभूत कर, श्री हरि की ही कथाओं में।।
अपने मन्वन्तर की सभी, इकहत्तर चतुर्युग पूर्ण की। इसी विधि मनु की भी, आयु अवधि सारी बीती।।
व्यास पुत्र हे विदुर जी, जो हरि आश्रित नित्य रहता है। शारीरिक मानसिक और दैविक, कोई दु:ख न छू उसे पाता है।।
मानुषिक अथवा भौतिक, दु:ख की तो है बात ही क्या? यह सब तो किसी भाँति भी, नहीं कष्ट उन्हें पहुँचा सकता।।

निरन्तर ही सब प्राणियों के, हित में रत मनु रहते थे। क्या कर्त्तव्य किस जीव का, उपदेश यह करते रहते थे।।
मुनियों ने जब श्री मनु से, जीव हित यह प्रश्न पूछा। मनुजों और उनके वर्णाश्रम, सम्बद्ध धर्म वर्णन किया।।
(मनु संहिता रूप में, आज भी वह उपलब्ध है। मनुज धर्म है वहाँ कहा, जो वर्णाश्रम सम्बद्ध है।।)

सर्व प्रथम सम्राट जगत् के, महाराज मनु ही स्वयं थे। सर्वगुण सम्पन्न थे वह, और सदा कीर्तन योग्य थे।।
अद्भुत उनके चरित् का, यह मैंने वर्णन किया। अब उनकी कन्या देवहूति, का प्रभाव भी सुनो जरा।।

मैत्रेय मुनि बोले,
पति अभिप्राय जानने में, कुशल थी देवि देवहूति। माता पिता के जाने पर, प्रतिदिन वह सेवा करने लगी।।
उस साध्वी की प्रीति पूर्वक, सेवा कर्दम प्रति ऐसी थी। जैसे माता पार्वती हों, श्री शंकर को आराध रही।।
कामना वासना दम्भ द्वेष, लोभ पाप और मद त्यागा। सावधानी और लग्न से, जीवन सेवा तत्पर किया।।
विश्वास, पवित्रता और गौरव, संयम, सुश्रुषा, प्रेम पाया। मधुर वाणी आदि गुण से, तेजस्वी पति को तुष्ट किया।।

देवहूति अपने पति को, दैव से बढ़कर जाने थी। इस कारण बहु आशा ले, उनकी सेवा में थी लगी।।
बहु दिन निज अनुवर्तन में, व्रत आदि करते हुए। ऋषि कर्दम ने मनु पुत्री को, देखा अति कृश अवस्था में।।
ऋषिश्रेष्ठ के चित्त में कुछ, खेद और दया उभर आई। प्रेम से गद्गद् वाणी में, उन्होने फिर यह वचन कहे।।
कर्दम ऋषि बोले,
बहु आदर तुमने मेरा किया, हे सौम्या मनुनन्दिनी। उत्तम सेवा से तुष्ट हुआ, तव भक्ति का हूँ मैं ऋणी।।
अति प्रिय और आदरणीय, निज तन हो सब देहधारिन् का। किन्तु मेरी सेवा हेतु तूने, अति क्षीण है उसे किया।।

निज धर्म का पालन करते हुए, तप उपासना समाधि से। और योग के द्वारा जो, भय और शोक से रहित रहे।।
भगवत्प्रसाद के रूप में, विभूतियां जो मुझे प्राप्त हुईं। मेरी सेवा के परिणाम में, उनपर है तेरा अधिकार भी।।
हे भद्रे सुनो दिव्य दृष्टि, अब मैं तुझको देता हूँ। उसके द्वारा तुम देखो उन्हें, यह वर मैं तुमको देता हूँ।।

अन्य भोग सारे जग के, हैं इनके सामने कुछ भी नहीं। प्रभु की भृकुटी विलास से, तत्काल नष्ट हो जायें सभी।।
मेरी सेवा से सौम्ये हे, कृतार्थ तुम हो गई। पतिव्रत धर्म अनुसरण किया, इस कारण दिव्य यह भोग मिली।।
सब भाँति इन्हें भोगने के, अब तुम योग्य हो हे प्रिये। हम राजा हैं इस जग के, सब भोग सुलभ हैं हमारे लिये।।
इस भाँति के अभिमान आदि, विकारों के रहते हुए। अति दुर्लभ है प्राप्ति, इन भोगों की किसी जीव लिए।।

ऋषि कर्दम का यह वचन सुनी, चिन्ता उसकी सब जाती रही। योगमाया और सब विद्या में, निज पति को कुशल थी जान चुकी।।
संकोच भरी उसकी चितवन, और मधुर मुसकान से। मुख कमल था किंचित् खिला हुआ, उस अबला ने यह वचन कहे।।
देवहूति बोली,
हे द्विजश्रेष्ठ यह जानूँ मैं, जो निष्फल कभी नहीं होती। वह योग और त्रिगुणात्मिका, शक्ति हैं तेरे अधिकार में ही।।
सम्पूर्ण ऐश्वर्य इनके, आपको स्वामी प्राप्त है। आपके लिए इस जगत् में, कुछ भी तो नहीं दुष्प्राप्य हैं।।

विवाह के अवसर पर किन्तु, प्रतिज्ञा आपने जो करी। गर्भधान होने तक आप, रहेंगे मेरे संग ही।।
और गृहस्थ के सुख सभी, आप करेंगे भोग भी। अब उसी वचन की हे स्वामी, पूर्ति की वेला आई।।
पति द्वारा प्राप्त हो सन्तति, महा लाभ यही है सती के लिये। अब प्रार्थना आपसे मैं करूँ, इस वचन की पूर्ति के लिये।।

हम दोनों के समागम को, शास्त्र में जो कर्त्तव्य कहा। उसका उपदेश दीजिये अब, है मेरी यह ही इच्छा।।
उबटन गन्ध भोजन आदि, उपयुक्त सामग्री जुटायें अब। अति दीन और कृश काया मेरी, तव मिलन के योग्य बने यह तब।।
आपने ही मेरी कामना, को वर्धित है कर दिया। आपसे मिलन के हेतु ही, मेरा अंग अंग है तड़प रहा।।
हे स्वामी इस विषय में, इक और विचार भी कीजिये। इक उपयुक्त भवन भी, आप बना अब दीजिये।।
मैत्रेय मुनि बोले,
योगस्थ हो ऋषि कर्दम ने, निज प्रिया की इच्छा पूर्ति को। तत्काल ही एक विमान रचा, सर्वत्र जा सकता था जो।।
अति सुन्दर था यह विमान, हे विदुर अलौकिक था निर्माण। सब प्रकार के वांछित सुख, और भोग था कर सकता प्रदान।।
था रत्न जड़ित सब ओर से, उत्तरोत्तर सब सम्पद् सम्पन्न। और मणिमय खम्भों से, थी उसकी शोभा बनी अनन्त।।

सब ऋतुओं में था सुखदायक, यदा कदा दिव्य उपकरण थे। रेशमी पट्ट पताका से, वहाँ चित्र विचित्र श्रृंगार सजे।।
रंग बिरंगे फूलों की, मालायें थीं वहां लटक रहीं। भंवरों के झुण्डों की जहां, सुमधुर ध्वनि की गुंजन थी।।
भाँति भाँति के वस्त्रों से, शोभायमान था बहुत हुआ। कहीं रेशम तो कहीं सूती, वस्त्रों से था वह सजा हुआ।।

एक के ऊपर एक बने, कमरे वहां अनेक थे। शैय्या पलंग पंखे आसन, सबमें अलग अलग थे पड़े।।
महा अट्टालिका की भाँति, अति सुन्दर था दीख रहा। जैसे कोई भव्य भवन, हो आकाश में उड़ रहा।।
जहाँ तहाँ दीवारों में, थी शिल्पकला अपूर्व बनी। पन्ने का वहां फर्श बना, और मूंगों की वेदियां थीं।।
दहलीज भी मूंगों की थी बनी, और द्वार पे थे बहु रत्न जटित। इन्द्र नील मणि के शिखरों पे, सजे थे सोने के कलश।।

हीरे की उन दीवारों में, सुन्दर लाल रत्न थे सजे। उस विमान के नेत्र ज्यों हों, इस भाँति वह थे चमक रहे।।
विचित्र फहराते वस्त्रों से, सजाया गया था वह विमान। बहुमूल्य सुनहरे बन्दनवार, बढ़ा रहे थे उसकी शान।।
जहाँ तहाँ विमान में, कृत्रिम पक्षी भी थे बने। हंस कपोत आदि सब, सजीव से ही थे दीख रहे।।
सजातीय अपना जान उन्हें, बहु पक्षी वहाँ आ जाते थे। अपनी अपनी बोली में, नित नव गीत सुनाते थे।।

सब सुविधा पूर्ण थी उसमें, बैठक आंगन और चौकादि। क्रीड़ा स्थली शयनगृह भी, उसमें थीं सुविधायें सारी।।
यह सब अपूर्व सुविधायें देख, ऋषि कर्दम भी विस्मित हुए। अपनी ही योग रचना को देख, आश्चर्य से वह भरपूर हुए।।
ऐसा सुन्दर घर देख के भी, जब देवहूति न प्रसन्न हुई। तो अन्तर्यामी कर्दम ने, स्वयं ही उससे बात कही।।

हे भीरु इस बिन्दु सरोवर, में स्नान आदि करके। इस विमान पर चढ़ जाओ, अपने को पावन करके।।
प्रभु विष्णु ने इस तीर्थ को, स्वयं ही तो है रचा। इष्ट पूर्ति करे जीवों की, यह ही है इसकी महत्ता।।

निज पति कथन को मानकर, वह कमललोचना देवहूति। सरस्वती के जल से भरे, उस बिंदु सरोवर में उतरी।।
बहुत मलिन वस्त्र थे उसके हुए, सिर के थे बाल भी चिपक रहे। लटा की भान्ति बन्ध थे गए, और तन पे भी बहुत मल चढ़े।।
इसी विधि स्तन भी उसके, कान्ति हीन से हो गए। पूर्व रूप सौन्दर्य उसके, जाने कहाँ थे खो गए।।

जब डुबकी लगाई तीर्थ में, इक महल का दर्शन वहाँ हुआ। देवहूति ने फिर वहाँ, सहस्त्र कन्याओं को देखा।।
सुन्दर थी सभी किशोरियाँ, और मधुर गन्ध से तन भी भरी। मन्द सुगन्धि कमलों की, वहाँ पे थी फैली हुई।।
देवहूति को देखते ही, स्त्रियाँ वे सब खड़ी हुई। करबद्ध वह हो करी, प्रार्थना उसे करने लगीं।।
दासियां हम हैं आपकी, आज्ञा हमको दीजिये। कृपा करी के आप हमें, क्या सेवा है कर्त्तव्य कहें।।

हे विदुर तब स्वामिनी को, सम्मानित कर उन रमणियों ने। बहुमूल्य द्रव्य और गन्धादि, का लेपन उसपर करके।।
मनस्विनी देवहूति को फिर, स्नान जल से कराया उनको। दो नवीन निर्मल वस्त्र, तत्पश्चात् पहनाये उनको।।
फिर बहुमूल्य और कान्तिमय, आभूषण उसे पहरा दिये। सर्वभाँति के भेज और, अमृत से स्वाद आसव दिये।।

देवहूति ने दर्पण में, देखा जब अपना प्रतिबिम्ब। देखा सुगन्धित पुष्पमाल, से सजा था उसका तन।।
निर्मल कान्तिमय हुआ तन, स्वच्छ वस्त्र सब पहन कर। मंगलमय श्रृंगार भी फिर, कन्याओं ने दिया था कर।।
केशों का स्नान हुआ उसका, अंगों में सजे हैं आभूषण। कण्ठ में हैं महा हार, और हाथों में खनकें कंगन।।
चरणों में स्वर्ण पायजेब की, ध्वनि मधुर है गूंज रही। इस विधि उनके अंगों की, है कान्ति चारों दिशाओं में फैल रही।।

है कटितट पर शोभायमान, रत्नमयी स्वर्ण की करधनी। बहुमूल्य मणि और हारों से, उसके अंग अंग की शोभा बनी।।
अंग प्रत्यंग में कुंकुम आदि द्रव्य हैं चर्चित हो रहे। इन सब मंगल श्रृंगारों से, अपूर्व रूप उसके खिले।।
मुख में दन्तावली मोतिन् सी, मनहारी भ्रुवें हैं टेढ़ी सी। है कमल नयन में प्रेम कटाक्ष, ज्यों कमल कली से स्पर्धा बनी।।
उस कमल मुखी को घेर लिया, सुन्दर श्याम अलकावली ने। उसकी छवि ने त्रिलोकी में, मानो सौन्दर्य बिखेर दिये।।

हे विदुर देवहूति ने जब, अपने पति का स्मरण किया। सखियों सहित उसने अपने को, ऋषि कर्दम के निकट पाया।।
सहस्त्रों सखियों सहित उस, निज प्राण नाथ को सम्मुख देखा। उस योग का यह प्रभाव देख, अति विस्मय उसको हुआ।।

हे रिपुदान श्री विदुर जी, ऋषि कर्दम ने जब देखा। स्नान से देवहूति का तन, अति निर्मल है हो गया।
विवाह पूर्व उस राजसुता का, जैसा सुन्दर रूप था। उसी रूप को प्राप्त कर, पुन: अपूर्व बनी शोभा।।
सुन्दर वक्ष:स्थल उसका, है आंचल से ढका हुआ। सहस्त्रों विद्याधरियों ने, सेवा का बीड़ा उठा लिया।।
अत्युत्तम वस्त्र लगा तन से, उसके है शोभा पा रहा। बहु प्रेम से ऋषि कर्दम ने, विमान पे उसे चढ़ा लिया।।

उस पल ऋषि कर्दम का मन, निज प्रिया अति अनुरक्त था। फिर भी निज इन्द्रिय और मन पर, प्रभुत्व न उनका कम हुआ।।
विद्याधरियां सब मिलकर के, तन की सेवा थीं कर रहीं। विकसित कुमुद के पुष्पों से, थी उनकी सब श्रृंगार बनी।।
विमान पर आरूढ़ वह, शोभायमान इस विध हुए। ज्यों आकाश में तारागण, के मध्य में चन्द्र रहे।।

दीर्घकाल तक उस विमान पर, श्री कर्दम ने निवास किया। मेरु पर्वत की घटियों में, कुबेर सम विहार किया।।
अष्ट लोकपालों की है, विहार स्थली यह घटियां। शीतल सुगन्धित मन्द पवन, करे कामदेव को पुष्ट यहां।।
इनकी शोभा का महा, विस्तार नित्य होता रहे। स्वर्ग लोक से गिरती हुई, गंगा का मंगल स्वर गूंजे।।
उस पल भी विद्याधरियों के, यूथ वहां उपस्थित थे। उनकी सेवा में थे निमग्न, और सिद्ध उनका वन्दना करते थे।।

इस विधि निज प्राणप्रिया, देवहूति संग कर्दम ने। वैश्रम्भक सुरसन और नन्दन, चैत्ररथादि उद्यानों में।।
तथा शिव की अपनी स्थली, अति पावन मानसरोवर में। अनुराग युक्त विहार किया, अपने उस दिव्य विमान में।।
इच्छानुकूल चलने वाले, अति कान्तिमय विमान में। वायु गति से सब लोकों में, कर्दम ऋषि थे विचर रहे।।
विमान विहारी देवता भी, सब उनके पीछे रह गए। उनकी गति के सामने, कोई देवता गण न टिक सके।।

श्री हरि के भवभय हारी, चरणों का जिसे हो आसरा। उस धीर पुरुष हेतु जग में, है कौन दुर्लभ भला?
द्वीप वर्ष आदि की जहां, अति विचित्र है रचना हुई। आश्चर्ययुक्त ही है भासे, सारा यह भूमण्डल ही।।
महर्षि निज प्रिया को, यह सब दिखलाकर लौट आये। पूर्ण ब्रह्माण्ड का भ्रमण करा, वापिस निज आश्रम आये।।

रति सुख को थी अत्युत्सुक, वह मनु सुता आनन्दित थी। इस हेतु ऋषि कर्दम ने, अपनी नौ विभाग करी।।
अनेकों वर्षों तक पुन:, उसके साथ विहार किया। इतना लम्बा समय जो था, मुहूर्त सम ही बीत गया।
सुन्दर शैय्या का आश्रय ले, निज प्राण प्रिय संग रहती थी। निज प्रियतम संग अवधि यह, पलक झपकते बीत गई।।
कामासक्त दम्पती ने, अपने ही योग बल से। शतश: वर्ष विहार किया, पर क्षण समान वह सब बीते।।

आत्मज्ञानी श्री कर्दम जी, संकल्प यह सारे जाने थे। सन्तान हेतु उत्सुकता वह, पत्नी को पहचाने थे।।
स्मरण किया भागवद् आदेश, निज रूप को नौ में बाँट दिया। सुताओं की उत्पत्ति हेतु, एकाग्र फिर निज चित्त किया।।
अर्धांङ्ग रूप निज पत्नी जान, गर्भ में वीर्य को धर दिया। इस विधि ऋषि कर्दम ने, पूर्ण अपना वचन किया।।
इस विधि देवहूति के यहाँ, नौ कन्याओं ने जन्म लिया। एक समय में ही सबका, जन्म उसके यहाँ हुआ।।
सर्वांग सुन्दरी ही सब थीं, तन उनके अति कोमल थे। रक्त कमल की गन्ध से, तन उनके सुगन्धित थे।।

शुद्ध स्वभावी सति साध्वी, देवहूति ने तब देखा। संन्यासाश्रम के लिए उद्यत, है पति प्रतिज्ञा में बन्धा।।
आन्तर में आंसू बहाती हुई, मुखड़े पे मधुर मुसकान लिये। सन्तप्त और व्याकुल हृदय से, मीठी वाणी में वचन कहे।।
नखमणि मण्डित चरण कमल से, पृथ्वी थी वह कुरेद रही। सीस झुका संकोच सहित, निज पति से उसने बात कही।।

देवहूति बोली,
हे स्वामी जो प्रतिज्ञा, विवाह समय थी आपने की। वह सब तो कृपा करके, आपने हैं निभा ही दी।।
फिर भी हे पतिदेव मैं, शरणागत हूँ आपके। अब आप हे स्वामी मेरे, अभय दान मुझे दीजिये।।
इन कन्याओं के लिये, होंगे योग्य वर वांछित भी। आप तो वन चले जायेंगे, अकेली कैसे मैं करूँगी सभी?

यह जन्म मरण सम शोक मेरा, दूर कौन कर पायेगा? कोई तो ऐसा चाहिये, जो मेरा सन्ताप मिटायेगा।।
श्री हरि से विमुख होकर, मैं इन्द्रिय भोग में लिप्त रही। वह पल तो इस जीवन की, निरर्थक ही हैं बीत चुकी।।
अज्ञ थी तेरे प्रभाव से, इस कारण इन्द्रिय सुख चाहा। विषयों में आसक्त रही, आपसे भी अनुराग किया।।
तथापि करुणा आपकी, विप्रवर गर हो जाये। भवभय हारी ही यह समय, जीवन में मेरा हो जाये।।

अज्ञानवश असत् पूर्ण, लोगों से जो संग हो। वह तो इस संसार में, बन्धन का ही कारण हो।।
वही संग सत्पुरुषों के, साथ कहीं हो जाये जब। असंगता वह प्रदान करे, और संग के बन्धन काटे सब।।
संसार में जिसके कर्मों से, न तो धर्म सम्पादन हो। न प्रभु की सेवा ही हो, न वैराग्य ही उत्पन्न हो।।
ऐसे पुरुष के इस जग में, जीने से है लाभ क्या वह तो जीते जी जग में, मृतक समान है रह रहा।।

प्रभु की माया ने मुझको, निश्चित पूर्णतय: ठग लिया। मुक्ति दाता पति पाकर भी, कोई यत्न नहीं मैंने किया।।
संसार बन्ध से छूटने की, इच्छा कभी भी नहीं करी। यही देख के आज प्रभु, हृदय मेरी सन्तप्त हुई।।
मैत्रेय मुनि बोले,
सर्वगुणवती मनुसुता ने, वैराग्यमय जब वचन कहे। प्रभु विष्णु कथन को याद कर, कृपालु कर्दम यूं बोले।।
कर्दम ऋषि बोले,
निष्पाप है तू हे राजसुता, न अपने विषय में खेद करो। शीघ्र ही अब तव गर्भ से, अविनाशी विष्णु प्रकट हों।।
अनेक भाँति के व्रतों का, पालन तुमने किया प्रिये। अत: कल्याण तुम्हारा हो, यह तो है निश्चित ही हे।।
संयम नियम तप दानादि, का अब प्रिये अनुष्ठान करो। श्रद्धापूर्वक मन से तुम, अब श्री हरि का ध्यान धरो।।
आराधना तव स्वीकार कर, तेरे गर्भ से अवतीर्ण वह हों। यश मेरा वर्धित करें, मुझपर भी अनुग्रह उनका हो।।
दे ब्रह्मज्ञान का दान तुझे, तेरे भवभय सब हरेंगे वह। तेरे हृदय की अहंमयी, ग्रन्थी का छेदन करेंगे वह।।
मैत्रेय मुनि बोले,
देवहूति की प्रजापति कर्दम में थी श्रद्धा बुद्धि। पूर्ण विश्वास किया उनपर, आराधना प्रभु की करने लगी।।
श्री हरि को वह निर्विकार, जगद्गुरु ही जाने थी। श्रद्धामय हृदय से उन्हें, पुरुषोत्तम ही माने थी।।

११) कपिलोपख्यान (कपिल गीता, सांख्यशास्त्र)

इसी विधि पूजा में, बहुत समय जब बीत गया। ऋषि कर्दम के वीर्य को, निमित्त प्रभु ने बना लिया।।
देवहूति के गर्भ सें, फिर नारायण यूं प्रकटे। शुष्क काष्ठ में छिपी हुई, अग्नि जिस विध रूप धरे।।

आनन्दित हो आकाश में, मेघ भी जल बरसाने लगे। गरज गरज के वह भी मानो, गीत खुशी के गाने लगे।।
गन्धर्व जन भी मधुर मधुर, संगीत स्वर फैलाने लगे। मुदित मनी हो अप्सरागण, ने भी वहाँ तब नृत्य किये।।

देवतागण आकाश से, दिव्य पुष्प बरसाने लगे। सर्वदिशा आनन्द से भरीं, जलाशय भी निर्मल भए।।

सब जीवों के हृदय भी, अति हर्षित ही हो गए। प्रभु के आने पर सभी, ज्यों खुशियां हो मना रहे।।
सरस्वती से घिरे हुए, ऋषि कर्दम के आश्रम पर। ब्रह्माजी तब आ पहुँचे, मरीचि आदि मुनि संग लेकर।।

हे रिपुदमन श्री विदुर जी, श्री ब्रह्मा तो थे स्वत: सिद्ध। थे अजम ज्ञान सम्पन्न वह, उनसे न थी कोई बात निहित।।
प्रभु के इस रहस्य को, वह तो थे पहचान गए। साक्षात् श्री हरि के इस, अवतरण को थे वह जान गए।।
प्रभु श्री विष्णु अपने ही, विशुद्ध सत्वमय अंश से। सांख्य के प्रतिपादन हेतु, हैं यहाँ अवतीर्ण हुए।।

जिस कार्य को श्री हरि ने, इस रूप में करना था चाहा। विशुद्ध चित्त से उसका आदर, अनुमोदन श्री ब्रह्मा ने किया।।
रोम रोम और हर इन्द्रिय, हर्ष से उनकी भर गईं। ऋषि कर्दम से उस समय, ब्रह्मा ने यह बात कही।।
हे प्रिय कर्दम तुम सदा, मान्वित करो दूजों को। मेरी आज्ञा पालन करके, सम्मानित तुम मुझे करो।।
निष्कपट भाव से इस विधि, तुमने मेरी पूजा करी। मेरी आज्ञा पालन जो किया, मेरी पूजा सम्पन्न हुई।।

अपने पिता की सर्वोत्तम, है पूजा यह पुत्रों के लिये। जो आज्ञा ऐसा कहकर, उनके आदेश को सीस धरें।।
सुसभ्य हो तुम हे वत्स सुनो, सुसंस्कृत तव कन्यायें यह। निज वंशों राही सृष्टि का, अनेक विधि वर्धन करें।।
मरीचि आदि मुनिवर को, इनके स्वभाव और रुचि अनुकूल। समर्पित कर निज कन्यायें, करो वर्धित यश निज धर्मानुकूल।।

हे मुने मैं जानूं सत्य यह, सम्पूर्ण की जो निधि। अभीष्ट मनोरथ पूर्तिकर, आदि कारण नारायण ही।।
निज योग माया को वश में कर, कपिल रूप में आये हैं। वह श्रीमन्नारायण ही, अवतीर्ण यहाँ हो आये हैं।।
ब्रह्मा बोले,
हे राजसुता हिरण्यकेश, कमल समान विशाल नयन। शैशव में मारा कैटभासुर, श्री कमल चिन्ह अंकित हैं चरण।।
उन साक्षात् श्री हरि ने ही, तब गर्भ में है प्रवेश किया। ज्ञान विज्ञान के द्वारा वह, उच्छेदन करें वासना का।।
अविद्या जनित मोह ग्रंथी को, स्वत: छिन्न करेंगे वह। इस विधि स्वच्छन्द हो, पृथ्वी पर विचरेंगे वह।।
हैं सिद्धगणों के स्वामी यह, और सांख्याचार्यों में विख्यात। लोकों में विस्तृत कर कीर्ति, होंगे कपिल नाम से ज्ञात।।
मैत्रेय मुनि बोले,
जगत् रचयिता ब्रह्मा फिर, दोनों को आश्वासन देकर। नारद सनकादि साथ लिये, गए ब्रह्म लोक निज हंस पे चढ़।।
ब्रह्माजी के चले जाने पर, कर्दम ने उनका कहा माना। मरीचि आदि प्रजापतियों से, विधिवत् सुताओं को व्याह दिया।।
मरीचि को कन्या कला दी, अनुसूया दी अत्रि को। श्रद्धा अंगिरा को दे दी, हर्विभू दी पुलस्त्य को।।

पुलह को उनके अनुरूप, गति नाम की कन्या दी। क्रतु संग परम साध्वी क्रिया का विवाह करी।।
भृगु ऋषि को ख्याति नाम, की कन्या समर्पित की। वसिष्ठ जी को मान दे, अरुन्धति उनको अर्पित की।।
अथर्वा ऋषि को शान्ति नामक, कन्या अपनी दे दीनी। यज्ञ कर्म विस्तार का, तो है बस साधन यह ही।।
कर्दम ऋषि ने परिणय के, सूत्र में बद्ध उन ऋषियों का। उनकी भार्याओं सहित, बहुत आदर सत्कार किया।।

इस विधि विवाहित होने पर, आनन्दित वे सब ऋषि हुए। ऋषि कर्दम की आज्ञा ले, निज आश्रमों को वह चले गए।।

कर्दम जी ने जब देखा, साक्षात् श्री नारायण ने। है उनके घर अवतार लिया, देवाधिदेव नारायण ने।।
एकान्त में उनके पास गए, और उनको फिर प्रणाम किया। श्री हरि के निकट ही पहुँचकर, उन्होंने हरि को यह वाक् कहा।।

कर्दम ऋषि बोले,
निज पापमय कर्मों कारण, दु:खमय संसार में जो भटकें। नाना प्रकार के कष्टों से, जो पीड़ित नित्य ही होते रहें।।
देवता गण बहु काल तक, परीक्षा उनकी लेते रहें। दीर्घकाल पश्चात् वह, कभी मुदित उनपर हो लें।।

किन्तु जिनके स्वरूप को, योगी जन नित्य ध्याते हैं। अनेक जन्म के साधन से, सुदृढ़ समाधि वह पाते हैं।।
उस समाधि के द्वारा वह, करें यत्न एकान्त में दर्शन का। निज भक्तों के सदा रक्षक, भक्त वत्सल उन श्री हरि का।।
विषय लोलुप हम जीवों की, अवज्ञा पर नहीं ध्यान धरा। आज हमारे घर में ही, है उन्होंने अवतार लिया।।

वास्तव में हे प्रभु आप, मान दें निज भक्तों को, निज वचन सत्य करने के लिये, और सांख्य योग प्रतिपादन को।।
कृपा करी कर हे हरि, धरती पर अब रूप धरा। अहोभाग्य हैं मेरे प्रभु, है मेरे घर अवतार लिया।।
हे प्रभु प्राकृतिक रूप, नहीं आपको बान्ध सके। चतुर्भुजादि दिव्य रूप, ही आपके योग्य रहें।।
मनुज सदृश्य रूप आपके, भक्तों को प्रभु जो प्रिय लगें। निज भक्तन के हेतु ही, रुचिकर से लगें वे आपके।।

चरण कमल प्रभु आपके, नित्य जहाँ विश्राम करें। तत्त्व ज्ञान के जिज्ञासु, के लिये सदा है वन्दनीय।।
ऐश्वर्य वैराग्य यश और ज्ञान, वीर्य और श्री से पूर्ण। आपके रूप में श्री हरि, हैं छहों ऐश्वर्य पूर्ण।।
सर्वविधि से आपका, ही शरणागत प्रभु मैं हूँ। हे प्रभु मैं आपका, सर्वविधि वन्दन करूँ।।

परम ब्रह्म हैं प्रभु आप, सब शक्तियाँ तव अधीन हैं। प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व काल, सबमें बस आप आसीन हैं।।
वित्रिध अहं समस्त लोक, और लोकपालों के रूप में। हे हरि बस आप ही, तो प्रकट हैं हो रहे।।
सर्वज्ञ परम आत्म हैं आप, इस सारे प्रपंच को। निज चेतन शक्ति द्वारा, अपने में ही लीन करो।।
यह सब रूप भी आप धरें, इन सबसे परे भी आप रहें। श्री कपिल प्रभु आपके, शरणागत ही हम रहें।।

कृपा से आपकी हे हरि, तीनों ऋण से मैं मुक्त हुआ। मनोरथ सब मेरे पूर्ण हुए, मैं सर्व कामना मुक्त हुआ।।
संन्यास धर्म का पालन कर, आपका चिन्तन करता हुआ। शोक रहित होकर प्रभु, सभी जगह मैं विचरूँगा।।
स्वामी सारी प्रजा के आप, अत: आपकी आज्ञा चाहता हूँ। इस मार्ग पे चलने के लिये, मैं अनुमति आपकी चाहता हूँ।।
कपिल भगवान बोले,
वैदिक और लौकिक सभी, कर्मों के लिये संसार में। मेरा कथन ही प्रमाण है, हे मुने इस जगत् में।।
मैंने जो तुम से था कहा, जन्म तुम्हारे यहाँ लूँगा। सत्य उसे करने के लिये, अवतार तुम्हारे यहाँ लिया।।
इस लोक में मोक्ष के इच्छुक जो, तनधारी हैं संसार में। लिंग शरीर से मुक्ति की, इच्छा वाले मुनियों के लिये।।
आत्म दरस के सहयोगी, प्रकृति आदि तत्त्व जो। उनके विवेचन अर्थ ही, हे मुनि मेरा जन्म यह हो।।

आत्म ज्ञान का सूक्ष्म मार्ग, लुप्त हुआ बहु काल से। मैंने यह तन है धरा, प्रवर्तित यह करने के लिये।।
निज इच्छा अनुसार ही, संन्यास हेतु मुनि तुम जाओ। आज्ञा मानो इसे मेरी, दुर्जेय मृत्यु पे विजय पाओ।।

सम्पूर्ण कर्म अपने अब, मुझको तुम अर्पित करो। मोक्ष प्राप्ति हेतु तुम, मेरा ही अब भजन करो।।

सब भूतों के हृदय स्थित, हूँ स्वयं प्रकाश परमात्मा। सब में ही रहता हूँ मैं, बनकर के सबका आत्मा।।
बुद्धि विशुद्ध करके अपनी, जब आन्तर में मुझे देखोगे। सब प्रकार के शोक त्यज, निर्भय पद तुम पा लोगे।।
माता देवहूति को भी, वह आत्म ज्ञान दे दूँगा मैं। भव सागर से पार कर, कर्मों से मुक्त करूँगा मैं।।

मैत्रेय मुनि बोले,
प्रभु कपिल के ऐसा कहने पर, मुनि कर्दम ने उनकी परिक्रमा करी। प्रसन्नता पूर्वक फिर उन्होने वन जाने की राह ली।।
अहिंसामय संन्यास धर्म, का वह पालन करने लगे। एकमात्र प्रभु की शरण, को ही वह प्रपन्न हुए।।
निरग्नि: अनिकेत हो, संग भाव को त्यजकर के। परिव्राजक वह बन कर, पृथ्वी पर विचरने लगे।।

जो कार्य कारण से अतीत, सत्वादि गुणों का प्रकाश हो। सर्वथा ही निर्गुण है वह, अनन्य भक्ति से प्रत्यक्ष हो।।
उस परब्रह्म में ही उन्होने, अपना चित्त लगा दिया। अन्य भाव सब त्यज दिये, बस एक आसरा उसका लिया।।
अहं मम सुख दु:ख आदि, द्वन्द्वों से वह छूट गए। समदर्शी होकर सबमें, निज आत्म दर्शन करने लगे।।

बुद्धि भी आन्तर्मुखी, और शान्त उनकी हो गई। चहुं ओर से नदियां ज्यों, हों सागर को प्राप्त हुईं।।
ऋषि कर्दम की स्थिति, उस पल ऐसी थी भास रही। अति शान्त लहरों वाले, धीर गम्भीर सिन्धु जैसी।।
परम भक्ति भाव से, श्री हरि में चित्त उनका स्थिर हुआ। सर्वज्ञ अन्तर्यामी प्रभु, वासुदेव में चित्त टिका।।
कर्दम ऋषि संसार के, सब बन्धनों से मुक्त हुए। सर्वभावेन सर्वथा, परम आत्म में युक्त हुए।।

सम्पूर्ण भूतों में प्रियतम, निज आत्मा श्री भगवान को। आत्म स्वरूप श्री हरि में स्थित, देखा सम्पूर्ण प्राणियों को।।
इस विधि इच्छा द्वेष रहित, सर्वत्र समबुद्धि हुए। सम्पन्न हो भगवद्भक्ति से, कर्दम ने परम पद प्राप्त किए।।

शौनक बोले,
हे सूत अजन्मा होकर भी, स्वयं साक्षात् श्री नारायण। तत्त्वों के सांख्य ज्ञाता, प्रकटे आप कपिल मुनि बन।।
आत्म ज्ञान उपदेश हेतु, थे मनुज तन धर आये। अपनी माया से आप ही, रूप स्वयं वह धर आये।।
बहु चरित सुने हरि के मैंने, फिर भी इन योगीप्रविर की। पुरुश्रेष्ठ कपिल की कीर्ति सुन, मम इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं।।

स्वाधीन प्रभु हैं सर्वदा, फिर भी निज योगमाया द्वारा। भक्तों की इच्छानुकूल, बार बार प्रभु रूप धरा।।
जो जो लीलाएँ आपने करीं, वे सब हैं कीर्तन योग्य ही। आप मुझे वे सब सुनायें, हैं सुनने में अति श्रद्धा मेरी।।
हे मुनि आपकी भान्ति ही, श्री विदुर ने जब यह प्रश्न किया। आत्म विषयक यह प्रश्न सुनी, अति मुदित हुए श्री व्यास सखा।।
श्री मैत्रेय ने तब विदुर को, उस प्रश्न का उत्तर दिया। मन में अति प्रसन्न होकर, विदुर को फिर उन्होने यूँ कहा।।

मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर श्री कपिल के, पिताश्री जब वन को गये। श्री कपिल बिन्दुसर में ही रहे, माता का हित करने के लिये।।
तत्त्वसमूह के पारदर्शी, इक दिन भगवान श्री कपिल मुने। आसन पर थे विराजमान, सब कर्मों से निवृत्त बने।।
उस पल श्री ब्रह्मा के वचन, देवहूति को याद आये। निज पुत्र से देवहूति, ने उस पल यह वाक् कहे।।

देवहूति बोली,
हे भूमन् स्वामी स्थूल के, अब नाच बहुत मैं नाच चुकी। इस इन्द्रिय विषय की लोलुपता, से हूँ बहुत मैं ऊब गई।।
इसकी रसना पूर्ति में लगी, हूँ महा तिमिर में मैं धंसी। आपकी कृपा से हे प्रभु, अब जन्म चक्र की गति रुकी।।
दुस्तर अज्ञान तिमिर से ही, मुझे पार लगाने के लिये। सुन्दर लोचन हे कमल नयन, आप हैं मुझको प्राप्त हुए।।

सब जीवों के स्वामी आप, प्रभु आदि पुरुष स्वयं प्रकटे। घोर अज्ञान से जो नयना, कुछ भी सम्मुख न देख सकें।।
ऐसे अन्धे लोगों के लिये, हैं नेत्र बन कर हरि आये। प्रकाश पुंज सूर्य समान, जीवन में आप हैं आ गये।।
सर्वज्ञ आप हैं सूत्रधार, सब ही अधीन है आपके। मैं मेरे का दुराग्रह जो, देह गेह बद्ध जीव के लिये।।
वह सब भी तो आपकी ही, प्रेरणा से हो हे रहे। कृपा करी अब आप ही, मेरे इस मोह को दूर करें।।

अपने भक्तों के मोह रूपा, दृढ़ अश्वत्थ तरु के लिये। कुठाराघात समान सब, मूल को छिन्न ही कर देते।।
प्रकृति पुरुष के रहस्य की, जिज्ञासु मैं आई हूं। शरणागत वत्सल हे प्रभु, मैं आपकी शरण में आई हूं।।
सर्वश्रेष्ठ हैं आप प्रभु, सब भागवत् धर्मों के ज्ञाता। प्रणाम मेरा स्वीकार करो, हे भव भंजन हे भय त्राता।।
मैत्रेय मुनि बोले,
माता देवहूति ने इस विध, अभिलाषा अपनी प्रकट करी। परम पवित्र मोक्ष पथ में, अनुराग उत्पत्तिकर वह थी।।
आत्मज्ञों और सत् पुरुषों की, हैं गति महामुनि कपिल श्री। मनोमन हुए प्रसन्न यह सुन, निज जननी की स्तुति करी।।
मनोप्रसाद मुनि का यह, सुन्दर मुखड़े पर भी छाया। मुसकाते हुए श्री मुख से, फिर प्रभु ने यह वचन कहा।।
कपिल भगवान बोले,
हे माता यह जानो तुम, यह ही मेरा निश्चित मत है। जीवों का कल्याण हेतु, मुख्य अध्यात्म का पथ है।।
यहाँ दु:ख सुख दोनों की ही, सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। द्वन्द्वों से यह अतीत करे, मुक्ति की राह भी यह ही है।।
सर्व अंग से ही जो जीव, नित्य योग सम्पन्न हो। नारदादि जिज्ञासा करी, उनको मैंने उपदेश कियो।।
वही ज्ञान हे साध्वी, आपको मैं सुनाता हूँ। आज आपने प्रश्न किया, उस ज्ञान को ही दोहराता हूँ।।

जीव के बन्धन मोक्ष का, कारण जानें यह मन ही है। अभिन्न मित्र यह जीव का, और शत्रु भी बने मन ही है।।
विषयों में आसक्त यह मन, बन्धन का हेतु होता है। परमात्म में जब टिका, मोक्ष यही दिलवाता है।।
मैं और मेरे से उत्पन्न हों, काम लोभ इत्यादि विकार। यह मन इनसे मुक्त और, शुद्ध हो जब इन सबको मार।।
दु:ख सुख आदि द्वन्द्वों से, छुटकारा यह पा जाता है। मैं मेरा सब भूले इसे, समत्व योग फिर पाता है।।

फिर ज्ञान वैराग्य और भक्ति, से परिपूर्ण हृदय ले के। एकमात्र अद्वितीय तत्व, जाने आत्म प्रकृति परे।।
दु:ख सुख से है शून्य वह, भेद रहित वह स्वयं प्रकाश। सूक्ष्म अखण्ड और उदासीन, अनुभव से उसे जाने आप।।
निज आत्म से योग जब, इस विधि हो जाता है। प्राकृतिक सब तत्त्वों को, वह शक्तिहीन ही पाता है।।

सर्वात्म रूप परमात्म प्रति, योगी जन की जो है भक्ति। भगवत्प्राप्ति के निमित्त, है सर्वोत्तम साधन वह ही।।
उस समान अति मंगलमय, जग में कोई मार्ग नहीं माता। शीघ्र ही उस राही मिलते, भक्तों के प्रिय वा भय त्राता।।
संग और आसक्ति हैं, बन्धन हेतु इस आत्मा के। विवेकी जन इस बन्धन को, अति कठिन और अभेद्य कहें।।

किन्तु संग आसक्ति वही, गर सन्तों में हो जाये। वह ही साधक के लिये, खुला मोक्ष द्वार ही बन जाये।।

अति करुणापूर्ण सबके सुहृद्, सहनशील हैं अपने लिये। किसी के प्रति भी शत्रु भाव, नहीं अपने चित्त में रख सकते।।
शान्त सरल स्वभावी वह, सत्पुरुषों का सम्मान करें। अनन्य भाव से उनका सदा, मुझमें बना अनुराग रहे।।
सम्पूर्ण कर्मों को वह, मेरे ही अर्पित करें। सकल सम्बन्धी और नाते, सब मेरे लिये वे छोड़ दें।।
मेरे परायण होकर के, वे मुझमें चित्त लगाये रहें। मेरे पावन चरितों का ही, श्रवण और कीर्तन करें।।
उन भक्तों को संसार के, बन्धन बान्ध न पाते हैं। भाँति भाँति के दु:ख ताप, कोई कष्ट नहीं पहुँचाते हैं।।

सर्वसंग परित्यागी जो, महापुरुष और साधु हों। उनके संग की हे साध्वी, आप अब इच्छा करो।।
वे ही तो विषयों की सब, आसक्ति को हर लेते हैं। आसक्ति जन्य सब दोषों को, वह ही दूर कर देते हैं।।
हृदय और प्राणों की जो, अतिप्रिय कथाएँ होती हैं। सत्पुरुषों के समागम से, मम चरित ज्ञान जो देती हैं।।
उनका सेवन करने से, मोक्ष शीघ्र ही प्राप्त हो। श्रद्धा प्रेम और भक्ति का, स्वत: ही वहाँ विकास हो।।

फिर मेरी सृष्टि आदि लीला, के निरन्तर चिन्तन से। प्राप्त हुई भक्ति द्वारा, आत्यन्तिक वैराग्य मिले।।
लौकिक या पारलौकिक, सुख भ्रमित न कर पायें। दक्षता से फिर योग के, साधन में नित्य वह लग जाये।।
भक्ति प्रधान सरल साधनों, से समाहित होकर के। मनो निग्रह के यत्न करेगा, मुझमें चित्त वह धर कर के।।

प्राकृतिक गुणों से उत्पन्न जो, शब्दादि फिर विषयों का। नितान्त ही परित्याग हुआ, मन से ही जब इन सबका।।
वैराग्य युक्त हो ज्ञान प्राप्त, मुझसे योग ही हो जाये। मेरे प्रति सुदृढ़ भक्ति, उस आन्तर में जब जग जाये।।
वह प्राणी अपने में ही, स्थित मुझ अन्तरात्मा को। इस देह में ही रहते हुए, मुझको ही सब विधि प्राप्त हो।।
देवहूति बोली,
भगवन् पूर्ण भक्ति का, स्वरूप क्या है आप कहें। कौन भक्ति है उचित कहें, मुझ जैसी अबला के लिये?
जिस भक्ति का आश्रय ले, सहज आप तक आ सकूँ। हे प्रभु जिसके आसरे, निर्वाण पद मैं पा सकूँ।।
निर्वाण स्वरूप हैं आप प्रभु, कृपा करी अब बतलायें। लक्ष्य बेधी बाण सम, भगवत् प्राप्ति जो करवाये।।
तत्त्व ज्ञान जो दे जाये, ऐसा योग कहा आपने। है योग वह क्या और कौन अंग, अब उसका विस्तार करें।।

कृपा करी के हे हरि, इस विध आप सुझाइये। निज कृपा से मुझ अबला का, मन्द भाग्य जगाइये।।
इस दुर्बोध विषय को मैं, मूढ़ा भी समझ पाऊँ। सुगमता से ही आपके, चरणों का आश्रय पाऊँ।।
मैत्रेय मुनि बोले,
जिस तन राही उन जन्म लिया, उस माता की बात सुनी। उसकी जिज्ञासा देख करी, श्री कपिल हृदय में स्नेह उमड़ी।।
प्रकृति आदि तत्त्वों का, निरुपण है जिस शास्त्र किया। सांख्य जिसका नाम है, उसका ही उपदेश दिया।।
हे विदुर उसके संग संग, भक्ति का भी विस्तार किया। योग का भी वर्णन करके, निज जननी को उन्होंने ज्ञान दिया।।
कपिल भगवान बोले,
हे माता यह चित्त जिसका, हरि चरण में जाय टिका। ऐसे जन की सब इन्द्रियों, का है जो स्वत: प्रवाह।।
सत्स्वरूप श्री हरि प्रति, है स्वाभाविक उसकी प्रवृत्ति। निष्काम यह लग्न उसकी, अहैतुकी ही तो है भक्ति।।

यह भक्ति तो हे माते, है मुक्ति से भी बढ़कर। सम्पूर्ण कर्म संस्कारों के, आशय को देती भस्म यह कर।।
ज्यों जठराग्नि खाये हुए, अन्न को पूर्ण पचाती है। उसी विधि कर्माशय पूर्ण, भक्ति दग्ध कर जाती है।।

मेरे चरण सेवानुरक्त, जो कर्म करें सब मेरे लिये। बड़भागी अनेकों भक्त परस्पर जो मम चर्चा करें।।
ऐसे प्रेम में मस्त वह हों, मुझसे भी मिलना न चाहें। प्रेम मग्न इक दूजे से, मेरे चरितों का ही गान करें।।
अरुण नयन सुन्दर मुखी, परम मनोहर और वरदे। हे माते इस मेरे रूप की, साधु नित्य वह झाँकी लें।।
आपस में वह प्रेम से, सम्भाषण भी जो किया करें। उसके श्रवण को बड़े बड़े, तपस्वी भी तरसा करें।।

दर्शनीय अंग और प्रत्यंग, और उदार मम हास विलास। मधुर वचन सुन्दर चितवन, मम रूप माधुरी का यह जाल।।
उनका मन और इन्द्रियाँ सब, उसमें ही फंस जाते हैं। न चाहकर भी ऐसे भक्त, परम पद को पा जाते हैं।।

इसी विधि अविद्या की, जब निवृत्ति हो जाती है। सर्व कामना उन जन की, सर्वथा शान्त हो जाती है।।
मुझ मायापति के सत्यादि, लोकों के भोग और सम्पत्ति। भक्ति के प्रसाद में, स्वत: प्राप्त हों अष्ठ सिद्धि।।
अथवा वैकुण्ठ में प्राप्त जो, सम्पूर्ण भोगैश्वर्य निधि। किसी भी ऐसे फल की, कामना उनको नहीं रहती।।
तथापि मेरे धाम में, जब भक्त वे आते हैं। यह सब विभूतियाँ और फल, उन्हें स्वत: प्राप्त हो जाते हैं।।

जिनका प्रिय बस मैं ही हूँ, उनका निज अन्तरात्मा। पुत्र मित्र सुहृद् इष्ट, मैं ही हूँ उनका गुरु बना।।
मेरे ही आश्रय हों वह जन, शान्ति धाम वैकुण्ठ स्थित। वहाँ पहुँच इन दिव्य मम, भोगों से नहीं रहते वंचित।।
न ही उन्हें मम काल चक्र, कभी ग्रसित कर सकता है। ऐसा मेरा प्रिय भक्त, बस मुझमें ही विचरता है।।

इह लोक और परलोक, द्यौ लोकों में जो संग रहे। वासनामय संस्कार रूप, लिंग देह जो संग रहे।।
तन से भी सम्बन्धित जो, जग के सारे पदार्थ हैं। धन पशु और गृह आदि, अन्यान्य जो यह पदार्थ हैं।।
यह सब संग्रह छोड़ कर, मेरा ही जो भजन करें। मृत्यु रूपी संसार को, मेरे आसरे ही वह तरें।।

साक्षात् भगवान मैं, प्रकृति पुरुष का भी प्रभु। सब प्राणिन् के आन्तर में, सर्वात्म रूप में मैं ही बसूँ।।
मेरे सिवा किसी अन्य का, आश्रय जो जन लेते हैं। मृत्यु रूपा महाभय से वह, छूट नहीं कभी पाते हैं।।
मेरे भय से यह वायु चले, सूर्य नित्य तपित हो। इन्द्र भी मेरे अधीन बरसे, अग्नि नित्य प्रज्ज्वलित हो।।
मुझसे ही भयभीत हो, मृत्यु भी विचरता है। मेरे अधीन ही होकर के, अपना कार्य यह करता है।।

ज्ञान और वैराग्य से, परिपूर्ण भक्ति योग का। योगी जन निरन्तर ही, लेते हैं जब आसरा।।
परम शान्ति पाने हेतु, रहें सदा इसी के आश्रित ही। मम निर्भय चरण कमल का ही, आश्रय लें योगी जन सभी।।
इस जीवन में और इस जग में, है सबसे बड़ी उपलब्धि यही। तीव्र भक्ति योग से, रहे चित्त सदा मुझमें स्थिर ही।।
भगवान बोले,
प्रकृति आदि तत्त्वों के, लक्षण भिन्न बताऊँ अब। इन्हें जान प्रकृति के, गुणों से मुक्त हो जायें सब।।
आत्म दर्शन रूप ज्ञान, ही हेतु जीव के मोक्ष का। वह ही उसकी अहं रूप, हृदय ग्रन्थी छेदन करता।।
ऐसा सुना है जननी हमने, पण्डित गण के श्री मुख से। उसी ज्ञान का आपके, हेतु अब विस्तार करें।।

जिससें व्याप्त हो पूर्ण जग, और प्रकाशित जिससें हो। उसी आत्म तत्त्व को, पुरुष तत्त्व अब जान लो।।
अनादि और निर्गुण है वह, प्रकृति परे वह आप हैं। अन्त:करण मैं स्फुरित हो, वह तो स्वयं प्रकाश है।।
अपने ही लीला विलास से, पुरुष ने वैष्णवी माया को। स्वेच्छा से स्वीकार किया, त्रैगुणी अव्यक्त माया को।।

लीला परायण प्रकृति ने, निज सत्वादि गुणों द्वारा। उनके ही अनुरूप जो, इस प्रजा को रच दिया।।
ज्ञान आच्छादित जो करे, आवरण शक्ति वह देख कर। पुरुष विमोहित हो गया, निज स्वरूप को भूल कर।।
इस प्रकार अपने से भिन्न, प्रकृति को निज स्वरूप जाना। प्राकृतिक गुणों से हुए कर्म, उनका कर्ता निज को माना।।

वह पुरुष स्वभाव से ही, है स्वाधीन और अकर्ता। आनन्द स्वरूप जो स्वयं है, और परम आश्रय सबका।।
जन्म मृत्यु के बन्धन से, पूर्ण ही स्वतंत्र था। कर्तृत्व भाव ने बान्धा उसे, इन सबका दास बना दिया।।

कार्य रूप शरीर जो, और कारण रूपा इन्द्रियाँ। कर्ता रूप इन सबके, हैं इन्द्रिय अधिष्टातृ देवता।।
इन सब में पुरुष जो, निज को ही आरोपित करे। पण्डित जन इस सबका, प्रकृति को ही कारण मानें।।
वास्तव में जो प्रकृति परे, प्रकृति में आप वह स्थित हुआ। वह पुरुष ही सुख दु:ख के, उपभोग का कारण है बना।।
देवहूति बोली,
इस जगत् के स्थूल सूक्ष्म, कार्य जिसका स्वरूप हैं। जो स्वयं ही इसका कारण है, पर स्वयं जो अरूप है।।
उन पुरुष और प्रकृति का, लक्षण भी अब मुझे कहें। कृपा करी हे पुरुषोत्तम, अज्ञान तिमिर मेरा हरें।।
कपिल बोले,
कार्य कारण रूप जो, अव्यक्त नित्य त्रिगुणात्मिका। निर्विशेष होकर खुद वह, है सब धर्मों का आसरा।।
वह प्रधान तत्त्व जो, प्रकृति उसको कहते हैं। अब उस प्रकृति की, विस्तार से आपको कहते हैं।।

पंच महाभूत कहें, और उनकी पंच तन्मात्रा। संग में अन्त:करण चार, और कहीं दस इन्द्रियाँ।।
इन चौब्बीस तत्त्वों का, मिलकर बना समूह जो। प्रकृति का ही कार्य इसे, माने हैं विद्वान लोग।।
अब पंचमहाभूतों की सुनो, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश। गन्ध रस स्पर्श और शब्द, यह है इनकी तन्मात्रा।।

श्रोत्र त्वचा चक्षु रसना, नासिका वाक् पाणि और पाद। उपस्थ और पायु मिलकर, यह दस इन्द्रियां बनें आप।।
मन बुद्धि चित्त अहंकार, इन चारों के रूप में। एक ही है वह अन्त:करण, जिसको यह लक्षित करें।।
संकल्प निश्चय चिन्ता और, अभिमान रूपी चौथी वृत्ति। इन सबका एकीकृत रूप, जानो है अन्त:करण ही।।

तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने, है इस विधि गणना करी। सगुण ब्रह्म की निवास उन, इन चौबीस तत्त्वों में कही।।
इनके अतिरिक्त जो काल है, पच्चीसवाँ वह तत्त्व हैं। इनके सार को जानना, हे मातु सांख्य तत्त्व है।।

कतिपय जन इस काल को, पुरुष से भिन्न नहीं मानें। ईश्वर की संहार कारिणी, शक्ति हैं उसे जानें।।
माया का जो कार्य है, देह आदि नश्वर तन में। अहमत्व अभिमान कर, मोहित हैं जो हो रहे।।
सब कर्मों का अपने को, ही कर्ता जो मान रहे। वह जीव इस काल से, निरन्तर ही भयभीत रहें।।

निर्विशेष प्रकृति में यह, गुण लय अवस्था में रहें। जिनकी प्रेरणा पाकर के, गतिशील प्रकृति होये।।

वास्तव में वह पुरुष रूप, आप ही तो भगवान हैं। हे मनुसुता जानें आप, उसको ही कहें काल है।।
अपनी माया द्वारा जो, हैं सबमें व्याप्त जीव बन के। वह ही व्याप्त बाहर सबके, हैं काल रूप धारण करके।।
उन भगवान श्री हरि को ही, पच्चीसवां है तत्त्व कहें। हे माते इस भाँति आप, तत्त्वों की संख्या जान लें।।

जीवों के लिये अदृष्ट जो, जीवों का उत्पत्ति स्थान। वह ही तो है परम पुरुष, पुरुषोत्तम की माया महान्।।
अपनी चित्त शक्ति रूपा, वीर्य वहाँ स्थापित किया। तब उससे तेजोमय, महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ।।

जगत् का अंकुर रूप वह, जिसको कहते महत् तत्त्व। लय और विक्षेप के, विकार रहित है महत् तत्त्व।।
अपने में स्थित विश्व जो, उसके ही प्राकट्य को। निज स्वरूप आच्छादितकर, प्रलय कालीन तिमिर जो।।
अपने ही तेज से, पान उसने कर लिया। इस विधि रचना का, कार्य फिर आरम्भ हुआ।।
शुद्ध सतोमय स्वच्छ शान्त, प्रभु उपलब्धि का जो स्थान। वही चित्त है वही महत्तत्त्व, वासुदेव उसीका नाम जान।।

पृथ्वी और अन्य पदार्थ के, संसर्ग से पूर्व ज्यों जल हो। फेन तरंगादि रहित, स्वभाविक रूप में वह जब हो।।
अत्यन्त स्वच्छ विकार शून्य, और शान्त वह होता है। उसी विधि स्वभाविकी, अवस्था में चित्त होता है।।
विकार रहित है स्वच्छ वह, शान्ति ही उसका स्वरूप है। वृत्ति सहित उस चित्त का, यह ही शुद्ध रूप है।।

तदनन्तर श्री हरि की, वीर्य रूप चित् शक्ति से। महत्तत्त्व के विकृत होने पर, क्षोभ जो उत्पन्न हुए।।
उससे क्रिया शक्ति प्रधान, अहंकार उत्पन्न हुआ। वैकारिक तैजस और तामस, वह है तीन प्रकार का।।
उससे ही फिर क्रमश:, मन इन्द्रियां और पंचभूत। उत्पन्न स्वत: ही हो गए, यह ही है उसका स्वरूप।।

भूत इन्द्रिय और मन रूपा, साक्षात् अहंकार को। संकर्षण कहें पण्डित जन, सहस्त्र शीर्षी अनन्त वो।।
इस अहंकार के भी, भिन्न भिन्न लक्षण कहें। देवता रूप कर्तृत्व यह, इन्द्रिय रूप कर्णत्व कहें।।
पंचभूत रूप से, कार्यत्व इसका लक्षण है। फिर त्रैगुण सम्बन्धी जो, भिन्न ही इसके लक्षण हैं।।
सत्व गुण से शान्त यह, रजोगुण से अति घोर है। तमोगुण का लक्षण जो, वह जो बस मूढत्व है।।

उपरिकथित जो दिया बता, त्रैविधि का अहंकार। वैकारिक अहं की विकृति है, जिसे कहें मनो झंकार।।
मन के संकल्प विकल्प से, कामना की उत्पत्ति हो। इसी कामना पर आधारित, पूर्ण जग की विस्तृति हो।।
यह मन: तत्त्व ही सम्पूर्ण, इन्द्रियों का है अधिष्ठाता। प्रसिद्ध है यह अनिरुद्ध के, नाम से ही जाना जाता।।
शीतकालीन नील कमल, सम श्याम वर्ण अनिरुद्ध की। शनै: शनै: मन वश में कर, आराधना इनकी करें योगी।।

फिर तैजस अहंकार में, विकार जब उत्पन्न हुआ। हे साध्वि उसीसे तो, बुद्धि तत्त्व उत्पन्न हुआ।।
वस्तु का ज्ञान स्वत:, आन्तर में जब प्रकट हो। इन्द्रियों के व्यापार में, वह विशेष सहायक हो।।
फिर जग में पदार्थों का, विशेष ज्ञान जो होता है। यह सब माता जानो तुम, बुद्धि का काम ही होता है।।

वृत्तियों के भी भेद अनेक, उनकी भी अब कहते हैं। संशय विपर्यय निश्चय स्मृति, और निद्रा भी कहते हैं।।
वृत्तियों के यह भेद सब, बुद्धि के ही लक्षण हैं। यह बुद्धि तत्त्व जो है कहा, यह ही तो प्रद्युम्न है।।
इन्द्रियां जो कही आये, वह तैजस अहं का कार्य हैं। कर्म और ज्ञान से, इन्द्रियों के द्वौ विभाग हैं।।

कर्मेन्द्रिय प्राण शक्ति, का ही करे निरूपण है। और ज्ञानेन्द्रिय द्वारा, बुद्धि हो शक्ति सम्पन्न है।।

प्रभु की चेतना शक्ति से, तामस अहं विकृत हुआ। उसकी प्रेरणा से ही तो, शब्द तन्मात्रा फिर प्रकटा।।
उस तन्मात्रा से पुन:, आकाश उत्पन्न हो गया। शब्द ज्ञान कराये जो, श्रोत्रेन्द्रिय का जन्म हुआ।।
शब्द तन्मात्रा का जो, अर्थ उसे समझा देना। अव्यक्त वक्ता का भी फिर, शब्द से ज्ञान करा देना।।
आकाश का सूक्ष्म रूप जो, धारण करना वह लक्षण है। विद्वानों के मत में यह सब, ही तो शब्द के लक्षण हैं।।

अवकाश देई सब भूतों को, बाहर भीतर रहे विद्यमान। प्राण इन्द्रिय और मन का, हे सबका यह आश्रय महान्।।
आकाश के ही यह कार्य रूप, उपरि कहे जो लक्षण हैं। वृत्ति रूप आकाश के, कार्य रूप में लक्षण है।।
शब्द तन्मात्रा का जो, कार्य रूप आकाश है। काल गति से उसमें जो, उत्पन्न हो विकार है।।
स्पर्श तन्मात्रा कहें उसे, फिर वह उत्पन्न हो गई। वायु और स्पर्श ग्रहण कर्ता, त्वग् इन्द्रिय फिर उत्पन्न हुई।।

कोमलता और कठोरता, शीतलता और ऊष्णता। वायु का सूक्ष्म हो जाना स्पर्श का यह लक्षण कहा।।
बहु वेग से वृक्ष की, शाखा को हिला देना। तृणादि एकत्रित करना, या सर्वत्र फैला देना।।
गन्धादि युक्त द्रव्य जो, घ्राण तक पहुँचा देना। तथा शब्द को श्रोत्रेन्द्रिय, के निकट ही ले जाना।।
सारी ही इन्द्रियन् को, कार्य शक्ति उनकी देना। यह सब ही लक्षण कहा, वायु की भिन्न वृत्तियों का।।

तत्पश्चात् दैव की, इस विधि से प्रेरणा पा। स्पर्श तन्मात्रा विशिष्ट, वायु जब विकृत हुआ।।
उससे रूप तन्मात्र हुआ, तथा तेज का जन्म हुआ। समस्त रूप दर्शाये जो, नेत्रेन्द्रिय उससे उपजा।।

वस्तु के आकार का, बोध जो करवाता है। न्यून अधिक जो भी होए, वैसा ही दिखलाता है।।
द्रव्य के अंग रूप से, कभी प्रतीत वह होता है। आकार प्रकार परिणाम आदि, उस रूप में लक्षित होता है।।
और फिर उस तेज का, स्वरूप भूत ही हो जाना। यह रूप तन्मात्रा की, ही तो हैं सारी वृत्तियां।।

शोषण क्रिया पाचन क्रिया, शीत को दूर ही कर देना। चमक दमक या भूख प्यास, को तन में पैदा कर देना।।
फिर क्षुधा पिपासा निवृत्ति को, भोजन जलपानादि देना। यह सब तेज के कारण हों, यह सब हैं तेज की ही वृत्तियाँ।।
दैव की प्रेरणा पाकर फिर, तेज जब विकृत हुआ। रूपतन्मात्रामय जो था, वह रस तन्मात्र हुआ।।
जल और रस की ग्रहणकर, इन्द्रिय उत्पन्न हो गई। यह रसेन्द्रिय भाषा में, जिह्वा के नाम से जानी गई।।

अपने शुद्ध स्वरूप में, रस तो है बस एक ही। भौतिक पदार्थ योग हुआ, भिन्न भिन्न उस रूप धरी।
मीठा तीखा खट्टा कड़वा, कसैला कभी बन जाता है। नमकीन कभी बन जाये वह, अनेकों रूप धर आता है।।

तृप्त करी जीवित रखना, और प्यास बुझा देना। गिला करना मिट्टी को, फिर पिण्डाकार बना देना।।
पदार्थ नर्म ही कर देना, और ताप निवृत्ति कर देना। कूपादि से निकल कर भी, पुन: प्रकट वहां हो जाना।।
यह सब जल का रूप है, और हैं यह उसकी कृतियाँ। भिन्न भिन्न जो रूप धरें, हैं जल की ही सारी वृत्तियाँ।।

तत्पश्चात् रसस्वरूप, जल की जब विकृति हुई। दैव प्रेरणा ही यह थी, गन्ध तन्मात्रा प्रकट हुई।।
उससे पृथ्वी जाय बनी, और गन्ध ग्रहण कराये जो। घ्राणेन्द्रिय वह प्रकट हुई, दुर्गन्धि सुगंध बताये जो।।

गन्ध यद्यपि एक ही है, पर भिन्न-भिन्न वह रूप धरे। न्यून अधिक मात्रा मिली, द्रव्यों में भिन्न सी वह भासे।।
कभी सुगन्ध दुर्गनध बने, मिश्रित गन्ध भी बन जाये। कभी मृदु कभी तीव्र बने, अम्ल रूप कभी धर आये।।

प्रतिमा आदि बनकर के, साकार रूप धरे ब्रह्म का। जल आदि तत्त्वों से भिन्न, किसी अन्य से न हो अपेक्षा।।
अपने में ही स्थित रहना, जल आदि को धारण करना। आकाश आदि के भिन्न भिन्न, भेदों को भी सिद्ध करना।।
परिणाम विशेष में प्राणियों के, गुण प्रकट सदा है करती। यह सब जो पृथ्वी के, लक्षण हैं कार्य रूप सभी।।

आकाश का विशेष गुण, शब्द जिसका है विषय। उसको ही तुम जान लो, वह ही तो है श्रोत्रेन्द्रिय।।
वायु का विशेष गुण, स्पर्श जिसका है विषय। उसको ही जानो कहें, वह ही है त्वगिन्द्रिय।।

तेज का विशेष गुण, रूप जिसका है विषय। उसको ही जानो कहें, वह ही है नेत्रेन्द्रिय।।
जल का जो विशेष गुण, रस जिसका है विषय। उसको ही तुम जान लो, वह ही है रसना इन्द्रिय।।
पृथ्वी का विशेष गुण, गन्ध जिसका है विषय। उसका ही तो नाम है, जिसे कहें घ्राणेन्द्रिय।।

वायु आदि कार्य तत्त्वों में, आकाशादि कारण रहते स्थित। उनके गुण भी हैं निहित वहाँ, कारण रहे कार्य में स्थित।।
समस्त महाभूतों के गुण, शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध। पृथ्वी मात्र में ही यह सब, गुण कहें हैं सर्वथा बद्ध।।
महत्तत्त्व अहं और पंचभूत, यह सप्त तत्व न मिल सके। जब यह सातों अपने में, अलग अलग ही रह गए।।

जगत् के आदि कारण तब, श्री नारायण ने सर्वहित। वहां प्रवेश किया आदृष्ट, काल सत्वादि गुणों सहित।।
परमात्म के प्रवेश से, क्षुब्ध जो था हो गया। परस्पर मिले उन तत्त्वों से, एक जड़ अण्ड उपजा।।
उस अण्ड से इस विराट्, पुरुष की अभिव्यक्ति हुई। इस विधि क्रमश: जानो, परम की सृष्टि हुई।।

इस अण्ड का नाम विशेष है, इसके ही अन्तर्गत हो। श्री हरि के स्वरूप भूत, चौदह भुवन निर्माण जो।।
इक दूजे से दसगुणा, ही उनका परिमाण है। जल अग्नि वायु आकाश, अहं महात्तत्त्व उसका नाम है।।
चहुँ ओर से यह क्रमश:, छ: आवरणों से है घिरा। ऐसी ही अण्ड विशेष की, कहें बनी है व्यवस्था।।

इन सबके बाहर जो है, सातवां आवरण कहें। उसका नाम प्रकृति है, जिसको सप्तम् आवरण कहें।।
कारण रूप जल में स्थित, उस तेजोमय अण्ड से उठकर। उस विराट् पुरुष ने, पुन: उसमें प्रवेश कर।।
अनेक भाँति के छिद्र किये, उस विराट अण्ड पर। इस विधि उस अण्ड ने, नव रूप लिया धारण कर।।

सर्वप्रथम वहाँ प्रकटा मुख, उससे वाक् इन्द्रिय हुई। तदनन्तर वाक् अधिष्ठाता, अग्नि उत्पन्न हो गई।।
तत्पश्चात् नासिका के, छिद्र पुन: वहाँ बन गए। प्राण सहित घ्राणेन्द्रिय, फिर उनसे उत्पन्न हुए।।
फिर उसका अधिष्ठाता, वायु देव उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् नेत्र गोलक, ने वहाँ फिर रूप धरा।।
चक्षु: इन्द्रिय वहाँ प्रकट हुई, अधिष्ठातृ सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर कर्ण छिद्र वहाँ प्रकटे, उन का इन्द्रिय श्रोत्र प्रकटा।।

उनके अभिमानी देवता की, फिर वहाँ उत्पत्ति हुई। इसी विधि सृष्टि रचना, की यह क्रम चलती रही।।
तत्पश्चात् विराट पुरुष की, त्वचा उत्पन्न हो गई। उससे रोम मूंछ दाढ़ी, सीस पे केश भी प्रकट हुई।।

उसके बाद त्वचा की भी, अभिमानी औषधियाँ प्रकटीं। इसी क्रम से फिर लिंग की, भी उत्पत्ति हो गई।।

उससे वीर्य उत्पन्न हुआ, लिंग अभिमानी जल प्रकटा। फिर गुदा वहाँ प्रकट हुई, उससे अपान वायु जन्मा।।
तत्पश्चात् वा अभिमानी, देव भयभीत जो लोक करें। समस्त लोक भयभीत हुए, मृत्यु देव वहाँ प्रकट हुए।।
फिर हाथ प्रकट वहाँ हो गए, उनसे बल भी प्रकट हुआ। उसके बाद हस्तेन्द्रिय का, अभिमानी इन्द्र वहाँ प्रकट हुआ।।
तत्पश्चात् चरण प्रकटे, उनसे गति का चलन हुआ। पादेन्द्रिय का अभिमानी देव, विष्णु वहाँ फिर प्रकट हुआ।।

इसी विधि विराट् के, नाडी जाल जब प्रकट हुआ। उनसे रुधिर उत्पन्न हुआ, और नदियों में जल भरा।।
इसी विधि प्राकट्य का, क्रम यह क्रमश: चलता रहा। फिर उस विराट का, उदर प्रकट ही हो गया।।
उसकी राह से क्षुधा पिपासा, की अभिव्यक्ति होने लगी। उदर अभिमानी सागर की, उत्पत्ति तत्पश्चात् हुई।।
इसके बाद विराट के, हृदय का प्राकट्य हुआ। उस हृदय से ही पुन:, मन ने आ फिर रूप धरा।।

फिर मन का अभिमानी देव, चन्द्रमा वहाँ प्रकट हुआ। हृदय से बुद्धि और उसका, अभिमानी देव ब्रह्मा हुआ।।
तत्पश्चात् उठा अहंकार, उसका अभिमानी रुद्र प्रकटा। चित्त और उस अभिमानी, क्षेत्रज्ञ इसी क्रम से प्रकटा।।
क्षेत्रज्ञ के अतिरिक्त सब, देवता गण उत्पन्न जो हुए। असमर्थ रहे विराट को, किसी विधि उठाने में।।

उसे उठाने के लिये, पुन: क्रमश: यत्न वह करने लगे। निज उत्पत्ति स्थानों में, पुन: प्रविष्ट होने लगे।।
अग्नि ने वाणी के संग, मुख में जा प्रवेश किया। पर इसके सब यत्न से, विराट पुरुष न उठ सका।।
वायु भी घ्राणेन्द्रिय सहित, नासिका छिद्रों में घुसा। फिर भी विराट् पुरुष को, किसी विधि वह न उठा सका।।

सूर्य ने चक्षु सहित, नेत्रों में प्रवेश किया। इससे भी विराट् वह, जागृत किसी विधि न हुआ।।
श्रवणेन्द्रिय सहित दिशाओं ने, कानों में प्रवेश किया। इस यत्न से भी जानो, विराट् पुरुष न उठ सका।।
औषधियों ने रोम सहित, जाकर त्वक् प्रवेश किया। फिर भी विराट् उठाने का, प्रयत्न सब निष्फल हुआ।।
जल ने वीर्य के संग संग, लिंग में प्रवेश किया। तब भी विराट् को किसी विधि, वह नहीं जगा सका।।

मृत्यु ने अपान सहित, गुदा में जा प्रवेश किया। उसके इस प्रयत्न से, भी विराट् फिर नहीं उठा।।
इन्द्र ने निज बल सहित, हाथों में प्रवेश किया। पर इससे भी विराट पुरुष, नहीं किसी विधि उठ सका।।
विष्णु ने फिर गति सहित, चरणों में प्रवेश किया। इसके भी सब यत्न से, विराट् पुरुष न उठ सका।।
नदियाँ भी रुधिर सहित, नाडियों में प्रविष्ट हुईं। पर यह सब भी मिल करी, विराट् को न उठा सकीं।।

सागर ने क्षुधा पिपासा सहित, उदर में जा प्रवेश किया। पर इसका भी सारा यत्न, विराट् को नहीं जगा सका।।
चन्द्रमा निज मन सहित, हृदय प्रविष्ट ही हो गया। तो भी पूर्ण यत्न लगा, विराट् पुरुष उससे न उठा।।
ब्रह्मा ने बुद्धि सहित, हृदय में निज प्रवेश किया। तब विराट् पुरुष यह, फिर उससे भी नहीं उठा।।
रुद्र ने फिर अहं सहित, उसी हृदय में प्रवेश किया। तो भी विराट् जगाने का, उसका उद्यम निष्फल रहा।।

चित्त सहित क्षेत्रज्ञ ने, जब हृदय में जा प्रवेश किया। चित्त के अधिष्ठातृ देव, क्षेत्रज्ञ का यह प्रभाव हुआ।।
उसी समय विराट वह, जल से उठकर खड़ा हुआ। क्षेत्रज्ञ की महिमा से, ही प्रयत्न यह सफल हुआ।।

जिस विधि इस लोक में, प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदि। अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ बिना, नहीं सुप्त प्राणी को उठा सकतीं।।
अपने बल से किसी विधि, उसे उठा ही न पायें। इसी विधि विराट् को भी, परमात्म बिना न जगा पायें।।

एकाग्र चित्त हो भक्ति और, वैराग्य आसरे जो प्रकटे। उस ज्ञान राही आत्म स्वरूप, क्षेत्रज्ञ को फिर जान के।।
उसका चिन्तन ही कीजिये, ध्यान उसी का कीजिये। अपने ही तन में जो स्थित, क्षेत्रज्ञ को पा लीजिये।।
कपिल बोले,
जैसे जल में सूर्य का, प्रतिबिम्ब ज्यों का त्यों पड़े। किन्तु जल के गुणों से, सम्बन्ध न उसका कोई रहे।।
उसी विधि प्रकृति का, कार्य यह शरीर है जो। उसमें स्थित आत्म तन के, धर्मों से कभी लिप्त न हो।।
वह आत्मा निर्गुण निर्विकार, स्वभाव से अकर्ता है। ज्यों प्रतिबिम्बित सूर्य में, नहीं किंचित जल चंचलता है।।
किन्तु प्राकृतिक गुणों से जब, सम्बन्ध है अपना जोड़ता। अहंकार से मोहित वह, कर्ता है निज को मानता।।

उस अभिमान के कारण वह, देह के सम्पर्क से जो किये। पुण्य पाप रूपा कर्मों के, दोष सभी निज पर ले ले।।
इसीसे निज स्वाधीनता, और शान्ति वह खो दे। उत्तम मध्यम और नीच, योनिन् में नित्य वह जन्म ले।।
इसी विधि संसार चक्र में, नित्य भ्रमित वह रहता है। आवागमन का क्रम उसका निरन्तर चलता रहता है।।

ज्यों स्वप्न में भय शोक, आदि का कारण कोई नहीं। फिर भी स्वप्न पदार्थ में, आस्था देती है दु:ख सभी।।
उसी विधि भय शोक, अहं मम और जन्म मरण। इनकी सत्ता कोई नहीं, यह तो है बस विषय चिन्तन।।
अविद्या वश इस चिन्तन से, जीव मुक्त नहीं होता है। इस कारण इस भव चक्र से, मुक्त कभी न होता है।।

बुद्धिमान् पुरुष के लिये, एक मार्ग ही उचित है। असत् विषय चिन्तन से, चित्त हटाना उचित है।।
तीव्र भक्तियोग और, वैराग्य ही इसके साधन हैं। इन राही चित्त वश में करे, यही परम अराधन है।।
यम आदि योग साधनों से, श्रद्धापूर्वक अभ्यास करे। चित्त को बारम्बार वह, मुझमें ही एकाग्र करे।।

आस्तिक भाव हो मेरे प्रति, मम कथा का ही वह श्रवण करे। समस्त प्राणियों के प्रति, समत्व भाव ही मन में धरे।।
वैर न किसीसे हो जग में, आसक्ति का परित्याग हो। ब्रह्मचर्य और मौन ही, जिसका सहज स्वभाव हो।।
श्री हरि के ही चरणों में, अर्पत जब सारे कर्म करे। तब ही तो स्वधर्म भी, उसका अति बलिष्ट होए।।
जो कोई नर यह सब करे, ऐसा उसे प्रसाद मिले। प्रारब्ध ने यदृच्छा जो दिया, उसमें ही वह सन्तुष्ट रहे।।
परिमित हो भोजन उसका, सदा एकान्त में वह बसे। सुहृद् सभी का वह भए, शान्त स्वभावी हो जाये।।
धैर्यवान् दयालु सदा, सबके प्रति वह होता है। प्रकृति और पुरुष स्वरूप का, अनुभव फिर उसे होता है।।
उस तत्त्व ज्ञान का पाकर के, जीवन का स्तर ही बदल जाये। पुत्र-पुत्री गृहादि सहित, न तन में अभिनिवेश रहे।।
मैं मेरे का फिर भाव मिटे, इस कारण कोई क्लेश न हो। बुद्धि की जाग्रत आदि, अवस्था से वह भिन्न हो।।
परमात्मा के सिवा वहाँ, अन्य दरस न कोई हो। हर दृश्य उसके लिये, उस परम का ही प्राकट्य हो।।
ज्यों नेत्र यह सूर्य का, स्पष्ट दर्शन पाते हैं। त्यों ही आत्मदर्शी मुनि, साक्षात् परम कर जाते हैं।।
शुद्ध चित्त होकर ही वह, ब्रह्म पद पा जाते हैं। देहादि उपाधि से रहित, अद्वितीय पद वह पाते हैं।।
अहंकारादि मिथ्यात्व में, जो सत्य रूप से भास रहा। जगत् कारणभूता प्रकृति, का है जो अधिष्ठान बना।।

महदादि कार्य वर्ग को, प्रकाशित जो है कर रहा। कार्य कारण रूप सब, पदार्थों में भी व्याप्त रहा।।
उस ब्रह्म तत्व का, साक्षात् तब अनुभव हो। अन्त:करण जब शुद्ध हो, तब ही तो यह सम्भव हो।।

जल में प्रतिबिम्बित सूर्य ज्यों, स्थल सम्बन्ध से भासित हो। उस प्रतिबिम्ब से ही जानो, आकाश में सूर्य का ज्ञान हो।।
यह अहंकार भी उसी विधि, तीन प्रकार का हो जाये। तन इन्द्रिय और मन में, यह विभाजित हो जाये।।
उनमें स्थित हो यह अपने ही, प्रतिबिम्ब से लक्षित हो जाये। फिर सत् स्वरूप परमात्मा के, प्रतिबिम्ब युक्त यह हो जाये।।
सब आवरण ही त्याग के, शुद्ध अहं जब होता है। ज्ञान स्वरूप परमात्मा का, दर्शन उस राह से होता है।।
सुशुप्ति में शब्दादि सब, निद्रा में लीन हो जाते हैं। इन्द्रिय और मन बुद्धि भी, अव्यक्त में खो जाते हैं।।
उस समय भी परमात्मा, सदा जागता रहता है। सर्वथा अहंकार शून्य, सर्वदा वह रहता है।।

जाग्रत में दृश्यवर्ग का, द्रष्टा अनुभव में आता है। यह आत्मा स्पष्टतय:, अनुभव गम्य हो जाता है।।
सुशुप्ति अवस्था में इसकी, उपाधि अहं जब नष्ट भए। भ्रमवश वह अपने को, नष्ट हुआ ही मान ले।।
ज्यों धन का जब ऱ्हास हो, अति आकुल जीव हो जाता है। निज को ही नष्ट हुआ जानी, व्याकुल वह हो जाता है।।
इसी विधि विवश होकर, वह नष्ट प्राय: हो जाता है। पर वास्तव में जान ले, वह नष्ट नहीं हो पाता है।।

हे मातु इन सब तथ्यों का, मनन करे विवेक शील। इस विधि निज आत्म का, अनुभव करे विवेक शील।।
वह आत्म ही प्रकाशक है, वह ही तो अधिष्ठान है। अहं सहित सब तत्त्वों का, वह ही परम स्थान है।।

देवहूति बोली,
प्रकृति पुरुष दोनों ही, आप कहें यह नित्य हैं। और कहें यह सर्वथा, इक दूजे के आश्रित हैं।।
इस कारण इन दोनों का, वियोग नहीं कभी हो सकता। पुरुष भी प्रकृति को, कभी छोड़ नहीं सकता।।

ज्यों गन्ध और पृथ्वी को, अलग नहीं कभी करसकते। रस और जल को भी कभी, पृथक् पृथक् नहीं कर सकते।।
उसी विधि पुरुष और, प्रकृति भी अभिन्न हैं। इक दूजे को छोड़कर, इनका रहना नहीं सम्भव है।।
जिनके आश्रित हो अकर्ता भी, कर्मों में ही बन्ध जाये। उन गुणों के रहते हुए, कैसे कैवल्य कोई पाये?

इस भव बन्धन का तीव्र भय, यदि तत्त्व के चिन्तन से। निवृत्त भी हो जाये कभी, एकाग्र चित्त के ध्यान से।।
निमित्त भूत जो उसके हैं, प्राकृतिक गुण गर नहीं मिटें। किसी समय भी भय पुन:, जागृत यह फिर हो सके।।

कपिल बोले,
अपने से उत्पन्न अग्नि में, अरणि भस्म ज्यों हो जाये। उसी विधि यह प्रकृति भी, लीला पुरुष में हो जाये।।
निष्काम भाव से अपने धर्म, का पालन जब होता है। निरन्तर इस अभ्यास से, अन्त:करण शुद्ध होता है।।
दीर्घकाल तक भगवत्कथा, का श्रवण जब होता है। मम प्रति तीव्र अनुरक्ति का, पोषण उससे होता है।।
इस श्रवण से ही जानो जननी, वैराग्य भी फिर प्रबल हो। साक्षात्कार कराये जो, वह ज्ञान भी उत्पन्न हो।।
व्रत नियमों के सहित जो, ध्यान अभ्यास किया जाये। चित्त की एकाग्रता, इसी दिशा में ले जाये।।
निरन्तर इस अभ्यास के, परिणाम स्वरूप यह फल पाये। अहर्निश क्षीण हो प्रकृति, लय अवस्था को पाये।।

नित्य प्रति जब प्रकृति का, दोष दीखता ही जाये। भुक्तभोग उस प्रकृति का, स्वत: त्याग ही हो जाये।।
स्वरूप स्थित हो वह पुरुष, नित्य स्वतंत्र ही वह रहे। प्रकृति फिर उस पुरुष का, कुछ भी नहीं बिगाड़ सके।।
ज्यों सुप्तावस्था में जीव, शैय्या पर हो सो रहा। स्वप्न में अनेकों ही, अनर्थ अनुभव कर रहा।।
किन्तु जिस पल उस निद्रा, को जीव वह त्याग दे। स्वप्न का कोई भी अनुभव, मोहित उसे न कर सके।।
उसी विधि जिस जाना तत्त्व, और मुझमें निरन्तर चित्त लगा। प्रकृति न कुछ बिगाड़ करे, आत्म रमणी उस महामुनि का।।
दीर्घ काल तक जन्म जन्म, इसी विधि चिन्तन निमग्न रहे। ब्रह्मलोक तक के भोगों से, तब ही जीव वैरागी भये।।

मम महती कृपासे ही, धैर्यवान मम प्रिय भक्त। तत्त्वज्ञान पा आत्मानुभव से, हो जाये सर्व संशय मुक्त।।
फिर लिंग देह उसका नष्ट जो हो, वह मेरे ही आश्रित रहे। निज स्वरूप कैवल्य पद, वह सहज ही प्राप्त करे।।
वहाँ पहुँचकर वह योगी, लौट के कभी न आता है। भवभय बन्धन में पुन:, वह नहीं भरमाता है।।

योग साधना से वर्धित, मायामयी जो सिद्धियाँ हैं। बस योग ही जिनका साधन है, अणिमा आदि जो सिद्धियाँ हैं।।
यदि योगी का चित्त कभी, सिद्धिन् में न भरमाये। वह मेरे अविनाशी परम, पद को प्राप्त ही हो जाये।।
वहाँ पहुंचकर मृत्यु का, भी उसपर प्रभाव नहीं। तन त्यज पहले ही मुक्त हुआ, न मृत्यु का हो घात कहीं।।
कपिल बोले,
हे माता अब मैं आपको, सबीज योग लक्षण कहूँ। ध्येय स्वरूप के आलम्बन, युक्त है जो उसकी कहूँ।।
योग से चित्त यह शुद्ध हो, और प्रसन्न हो जाता है। परमात्मा के मार्ग में, प्रवृत्त स्वत: हो जाता है।।
पूर्ण शक्ति लगा करी, शास्त्र विहित निज धर्म करो। शास्त्र विरुद्ध आचरण का, सर्वथा ही परित्याग हो।।
प्रारब्धानुकूल जो मिल जाये, उसमें ही संतुष्ट रहो। आत्म ज्ञानियों के चरण की, सेवन और अर्चन करो।।

विषय वासना वर्धितकर, कर्मों से फिर दूर रहो। भवबन्धन से जो करें मुक्त, उन धर्मों से प्रेम करो।।
पवित्र और नियमित भोजन, जीवन का आधार हो। निर्भय और एकान्त स्थान, में निरन्तर वास हो।।
मन वाणी और शरीर से, न कोई जीव सताओ तुम। सत्य आस्तेय अपरिग्रह, जीवन आधार बनाओ तुम।।
हो ब्रह्मचर्य तपश्चर्या, बाहर भीतर तव शौच हो। शास्त्र अध्ययन भगवत् पूजा, में चित्त लगा निरन्तर हो।।

नित्य रहे वाणी संयमित, उत्तम आसन अभ्यास हो। तब ही तो स्थिरतापूर्वक, इक आसन में बैठ सको।।
प्राणायाम से शनै: शनै: फिर श्वासा निज जीत लो। इन्द्रियों को विषय विमुख करी, मन द्वारा हृदय में ले आओ।।
मूलाधारादि किसी चक्र में, मन सहित प्राण यह स्थिर करो। भगवल्लीलाओं का इस विध, चिन्तन तुम प्रारम्भ करो।।
सब विषयों से मुख मोड़ करी, चित्त समाहित अब करो। यही विधि है जिससे लक्ष्य में, ध्यान स्वत: एकाग्र हो।।

इन साधनों के द्वारा, तथा व्रत दान आदि सबसे। प्राणों को फिर जीत ले, साधक अतीव दक्षता से।।
कुमार्ग पर यदि कहीं कभी, चित्त उसका जाने लगे। तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा उसे, शनै: शनै: एकाग्र करे।।
परमात्मा के ध्यान में, चित्त को लगा वह दे। इस क्रम से साधक वह, योग पथ अनुसरण करे।।

सर्वप्रथम आसन जीते, फिर प्राणायाम अभ्यास करे। पावन स्थान में कुशमृगचर्म, का आसन बिछा वह ले।।

उस पर बैठी निज काया को, दण्डवत् सीधा करे। स्थिर सुखपूर्वक बैठ करी, फिर योग का वह अभ्यास करे।।
आरम्भ में पूरक कुम्भक, और रेचक के क्रम से। अथवा रेचक कुम्भक और, पूरक के उल्टे क्रम से।।
प्राण का मार्ग वह शोध ले, अशुद्धि सारी दूर करे। इससे चित्त सदा ही स्थिर रहे, और वह निश्चल हो जाये।।

जिस विध वायु और अग्नि में, स्वर्ण जो तप जाता है। निज मल पूर्ण त्याग कर, वह स्वच्छ शुद्ध हो जाता है।।
उसी विधि जो योगी भी, प्राण वायु को जीत ले। उसका मन अति शीघ्र ही, स्वच्छ शुद्ध ही हो जाये।।

सो उचित यह है योगी के लिये, साधना के वह यत्न करे। भिन्न भिन्न साधनों से, आन्तर के दोष वह दूर करे।।
प्राणायाम से वात पित्त, आदि दोषों को दूर करे। धारणा द्वारा अपने ही, पापों से मुक्त वह हो जाये।।
प्रत्याहार राह विषयों से, सम्बन्धित दोष वह दूर करे। राग द्वेष करें प्रभु विमुख, ध्यान धरी उनसे वह उठे।।

निरन्तर योगाभ्यास से, निर्मल चित्त जब हो जाये। एकाग्र भाव से योगी का, चित्त इक लक्ष्य में स्थिर होए।।
नासिका के अग्रभाग पर, फिर दृष्टि टिका वह ले। इस प्रकार योगी वह, भगवत् मूर्ति का ध्यान धरे।।
कमल मुख श्री हरि का, प्रफुल्लित है आनन्द से। कमलकोश सम सुन्दर नेत्र, उसके हें अति रत्नारे।।
श्यामल है उनका शरीर, नील कमल दल के समान। हाथों में हैं शंख चक्र, और गदा के चिह्न महान्।।

कमल के पीले केर सम, है पीताम्बर लहरा रहा। वक्ष:स्थल पर श्री वत्स का, चिह्न है सुन्दर बना।।
कण्ठ में उनके कौस्तुभ की, मणि है झिलमिल दमक रही। कैसी निराली शोभा यह, ध्यान में हरि की है बनी।।
लम्बी वनमाला उनकी, चरण तलक लहरा रही। गन्ध मतवाले भंवरों की, चहुं ओर गुंजार उठी।।
अंग प्रत्यंग में श्री हरि के, बहुमूल्य हैं हार सजे। कंकण किरीट भुजबन्द नूपुर, आभूषण हैं उनपर सजे।।

कटि तट पे लड़ियाँ करधनी की, उनकी शोभा हैं बढ़ा रहीं। भक्तों के हृदय कमल में, है उनकी आसन बनी।।
दर्शनीय स्वरूप उनका, अति सुन्दर शान्त और श्यामल है। आनन्दित करे मनो नयन, उनका अद्भुत सौन्दर्य है।।
किशोरावस्था है उनकी, अति सुन्दर नयनाभिराम। भक्तों पे कृपा करने हेतु, श्री हरि तो आतुर महान्।।
अति मनोहर झांकी यह, चित्त सबका हर लेती है। सब लोकन के द्वारा ही, उनकी छवि यह वन्दित है।।

अति कीर्तनीय है यश उनका, परम पावनी स्वयं हैं वह। राजा बलि आदि के भी, यश वर्धक आप हैं वह।।
इस विध सब अंगों सहित, श्री नारायण का ध्यान धरे। जब तक चित्त उनमें टिका रहे, उनका ही गुणगान करे।।
हैं दर्शनीय लीलाएँ सब, जो मन भायें उन्हें देख ले। खड़े चलते या बैठे हुए, या सुप्त अवस्था में देखे।।
या अन्तर्यामी रूप में स्थित, है उनका जो विशुद्ध स्वरूप। उसका ही चिन्तन करे, चित्त को करके भाव युक्त।।

इस विधि योगी जब, भली भाँति यह देख ले। भगवद्विग्रह में निज चित्त, स्थिर हुआ वह देख ले।।
उनके सब अंगों में है, लगा हुआ योगी का चित्त। विशेष रूप से एक एक, अंग में कर दे उसको स्थित।।
श्री हरि के फिर चरण कमल में, ध्यान लगाना चाहिए। वज्र अंकुश ध्वजा कमल, के मंगलमय चिन्ह वहाँ पाइए।।
उठे हुए शोभामय रक्तिम, नखचन्द्र की सुन्दर चन्द्रिका। योगी का हृदयस्थ तिमिर, दूर है कर देती सदा।।

इन श्री चरणों की धोवन से, प्रकटी सर्वश्रेष्ठ गंगा। जिनके पावन जल को शिव ने, फिर अपने ही सीस धरा।।

श्री हरि के चरणों की, महिमा और हम क्या कहें? इनका पादोदक धारण कर, शिव स्वयं भी शिवमय हो गए।।
इनका ध्यान जो भी धरें, उनके पाप सब क्षय होएँ। वज्र बनी यह चरण कमल, सब पाप शैल वा भस्म करें।।
प्रभु के इन श्री चरणों का, योगी निरन्तर ध्यान धरे। दीर्घकालीन चिन्तन करके, जन्म मरण से वह तरे।।

अजम हैं वह भवभयहारी, ध्यान धरे वा रूप का। दोनों पिण्डलियां उनकी, उससे ऊपर द्वौ घुटनों का।।
देववन्दिता कमल लोचना, श्री ब्रह्मा जी की माता। लक्ष्मी जी निज गोद में रख, करती है जिनकी सेवा।।
अपने कर कमलों से वह, उन पाद का सेवन नित्य करें। कान्तिमय निज हाथों से, नित्य चरण प्रक्षालन वह करें।।

फिर भगवान की जंघा का, अपने चित्त में ध्यान धरे। अलसी के फूल सम नील वर्ण, वहां पूर्ण बल के स्त्रोत रहें।।
श्री गरुड़ की पीठ पर सदा, हैं श्री प्रभु शोभायमान्। फिर श्री हरि के नितम्ब का, करे योगी मन में ध्यान।।
एड़ी तक लटके हुए, पीताम्बर से है वह ढका। पीताम्बर ऊपर सज रही, करधनी की लड़ियों की छटा।।

सम्पूर्ण लोकों के प्रभु, हैं स्वयं ही आश्रय स्थान। उनके उदर प्रदेश स्थित, करे नाभि सरोवर का वह ध्यान।।
ब्रह्मा जी का आधारभूत, सर्वलोकमय कमल जो। इस नाभि सरोवर से, ही उसका प्राकट्य हो।।
फिर प्रभु के मरकतमणि सम, दोनों स्तन का ध्यान करे। वक्ष:स्थल के हारों की, कान्ति से गौर जो दीख रहे।।
तत्पश्चात् वह ध्यान करे, श्री हरि के वक्ष:स्थल का। है महालक्ष्मी का वास वहाँ, मन नेत्र आनन्दित वह करता।।
सब लोकों में पूज्य है जो, प्रभु के श्री कण्ठ का ध्यान धरे। कौस्तुभ मणि की शोभा बढ़े, इस कारण वह उसको धारें।।

श्री हरि की चतुर्भुजा हैं जो, सब लोकपालों का आश्रय स्थान। उनमें धारण हैं कंकण जो, उनकी कान्ति की छटा महान्।।
समुद्र का मन्थन जब हुआ, मन्द्राचल से घर्षण हुआ। इससे कर का आभूषण वह, नव द्युति से चमक उठा।।
और कहें तेज जिसका, असह्य और अति उग्र है। ध्यान धरे सुदर्शन का, सहस्र धार जो चक्र है।।

श्री हरि के कर कमलों में, विराजे राजहंस समान। चिन्तन करे उस शंख का, है जिसकी शोभा महान्।।
रक्त रंजित कौमोदकी, प्रिय गदा श्री हरि की। भंवरों की गुंजन से भरी, वनमाल गले में श्री हरि की।।
कौस्तुभ मणि कण्ठ सोहे, निर्मल स्वरूप सब जीवों की। इस विधि हरि का ध्यान धरे, चित्त उन्हीं में टिका करी।।

साकार रूप प्रभु धर आये, भक्तों पे कृपा करने के लिये। मुख कमल का उनके ध्यान धरे, निज पाप ताप हरने के लिये।।
सुघड़ नासिका से शोभित, मकराकृति कुण्डल लटक रहे। उनकी झिलमिल से शोभित हो, कपोल भी ज्यों प्रकाश भरे।।
श्री हरि की ऐसी छवि, अति मनोहर जान पड़े। प्रियतम का अस रूप देख, हैं भक्तों के वहाँ प्राण अड़े।।

काली घुंघराली अलकावली, घेरे हैं प्रभु का मुखमण्डल। भंवरों से सेवित कमल कोश, उसके सम्मुख गए फीके पड़।।
चंचल विशाल कमल लोचन, उस मीन युगल को भी दें मात। जो कमलकोश पर उछल उछल, न जाने किसीको निज समान।।
सुशोभित भ्रुवलताओं से, श्री हरि का यह मुखारविन्द। दक्षता से धारणा धर, करे योगी ध्यान उनका अहर्निश।।

हृदय गुहा में ध्यान धरे, श्री हरि के नयनों की चितवन्। दीर्घकाल तक भक्तिभाव से, उनमें ही टिका ले मन।।
कृपामयी और प्रेमपूर्ण, स्मित उनके मुख पे फैल रही। विपुल प्रसाद की वर्षा ही, निरन्तर वह करती रहती।।
भक्त जनों के तीनों ताप, हरने के हेतु प्रकट हुई। प्रेम हो सिंचित उनके हृदय, प्रयोजन है उसका यही।।

अति उदार श्री हरि का हास्य, सन्ताप वह सारे ही हर ले। तीव्रतम शोक के अश्रुसिन्धु, को वह पल में शुष्क करे।।
ऋषि मुनियों के हित हेतु, और मदन के मर्दन के लिये। अपनी माया से हरि स्वयं, अपने ही भ्रू मण्डल रचे।।
ऐसी मोहिनी मूर्त उनकी, अपने ध्यान में लाइए। उस एक में ध्यान टिका अपना, अन्य सभी को भुल जाइए।।

हृदयस्थ हैं अपने हरि, बैठै वह खिलखिला रहे। साधक को यह चाहिये, उन्मुक्त हास्य का ध्यान धरे।।
प्रेमाद्र हृदय से वह, ध्यान योग्य यह दृश्य देखे। ऊपर नीचे के दोनों, होठों की लालिमा को देखे।।
छोटी मुक्तावली दाँतों की, अरुणाभ है होठों से हुई। कुन्दकली के समान ही, लालिमा उनपर है छिटकी।।
ऐसे उनके ध्यान में, तन्मय भक्त जब हो जाये। किसी अन्य वस्तु के दर्शन की, इच्छा ही फिर कहाँ रह जाये?

इसी विधि जब श्री हरि का, साधक ध्यान लगाता है। उसे हरि से प्रेम हो जाता है, हृदय भक्ति आर्द्र हो जाता है।।
आनन्दातिरेक के कारण उसका, तन भी रोमांचित हो जाये। उत्कण्ठा जनित प्रेमाश्रु की, धारा उसको नहलाये।।
मछली पकड़ने का कांटा, आकर्षित मछली ज्यों करे। श्री हरि में आकर्षितकर, यह चित्त भी उनसे उठा ही ले।।
साधन रूप यह चित्त था, आकृष्ट हरि में होने को। जब हरि से सम्बन्ध बना, तो चित्त की याद भी किसको हो?

दीप शिखा में पड़ा तेल, समाप्त ही जब हो जाये। निज कारण रूप तेजस में, स्वत: लीन वह हो जाये।।
वैसे ही मन आश्रम विषय, और राग रहित ही हो जाये। ऐसे में वह नितान्त शान्त, और ब्रह्माकार ही हो जाये।।
देह आदि उपाधि जो, वह तो है गुण प्रवाह रूप। उसके निवृत्त हो जाने पर, हो ध्याता ध्येय विभाग रहित।।
एक अखण्ड आत्म को, सर्वत्र व्याप्त वह फिर देखे। ऐसा निरन्तर एक टक, ध्यान तो उसका लगा रहे।।

योगाभ्यास से प्राप्त करे, लय रूप निवृत्ति अविद्या रहित। सुख दु:ख से रहित हो, निज ब्रह्म रूप महिमा में स्थित।।
अज्ञान वश सुख दु:ख का था, भोक्तृत्व देखे स्वरूप में। साक्षात् करी परमात्म का, देखा अविद्याकृत अहं में।।

मदिरा पी जो उन्मत्त हुआ, भूले उसको सब अपनी सुधि। अधोवस्त्र कटि पे रहा या गिरा, इसकी भी नहीं रहे सुधि।।
इसी विधि जो चरम अवस्था, को प्राप्त हुआ पुरुष सिद्ध। निज देह के उठने बैठने की, आवागमन की रहे न सुद्ध।।
वह तो निरन्तर अपने ही, परमानन्द रूप में हुआ स्थित। तन को फिर क्या कब हुआ, इसकी रहे फिर किसको सुद्ध?

तन उसका तो पूर्वजन्म के, संस्कारों के है अधीन। जब तक प्रारब्ध है शेष बचा, तब तक इन्द्रियां रहें कर्मशील।।
समाधि तलक जिसे योग की, स्थिति प्राप्त हो जाती है। परमात्मा की अनुभूति भी, जिस योगी को हो जाती है।।
पुत्र कलत्रादि सहित, पुन: तन को कभी अपनाये न। ज्यों स्वप्न का द्रष्टा जगने पर, पुन: स्वप्न में वापिस जाये न।।
फिर तन भी रहे कुल भी रहे, रेखा बधित सब काज हो। पर अहंता ममता का, कहीं न वहाँ पे भाव हो।।

धन और पुत्र से जीव का, अत्यधिक स्नेह जब बढ़ जाये। उनमें भी आत्म बुद्धि हो, उन्हें अपना आप माने जाये।।
किन्तु गर तनिक विवेचन हो, स्पष्ट नजर उसे आ जाये। यह अलग ही हैं यह मैं नहीं, इतना तो समझ उसे आ जाये।।
इसी विधि देह आदि को, जो अपना आप है मान रहा। ज्ञान से उसने यह जाना, साक्षी तो उनसे पृथक खड़ा।।

जलती हुई लकड़ी से ज्यों, या उससे उठी चिंगारी से। अग्नि से ही प्रकट हुए, या साक्षात् उस धूम से।।
अग्नि रूप ही जो भई, प्रज्ज्वलित हुई उस काष्ठ से। सबमें व्याप्त होकर भी वह, अग्नि सबसे पृथक् रहे।।

उसी विधि तू सबमें व्याप्त, साक्षी आत्म को जान ले। भूत इन्द्रिय अन्त:करण, सबमें वह बसे रहे सबसे परे।।
जीव जो कहलाता है, उस आत्म से भी ब्रह्म है भिन्न। प्रकृति से उसके संचालक, पुरुषोत्तम रहें उससे भिन्न।।

तन के दृष्टिकोण से, गर इस सत्य को जान ले। जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज, सब पंचभूत ही मान ले।।
उसी विधि सम्पूर्ण जीव, भिन्न भिन्न योनि में बसें। आत्म उनमें वह आत्म में, व्याप्त रहें यह जान ले।।
ज्यों एक ही अग्नि पृथक् पृथक्, रूपों का जब आश्रय ले। भिन्न भिन्न आकारों में, विभिन्न ही अपने रूप धरे।।
उसी विधि देव मनुष्य, पशु पक्षी रूप का आश्रय ले। एक ही आत्म इन सबमें, भिन्न भिन्न सा ही भासे।।

सत्य स्वरूप जीव को यह, आवृत्त जो कर देती है। कार्य कारण रूप माया, अचिन्त्य महा शक्तिमयी है।।
श्री हरि भक्त उनकी कृपा से, इस महामाया को जीतकर। निज वास्तविक ब्रह्म स्वरूप में, ही हो जाये नित्य स्थिर।।
कपिल बोले,
हे माता जब जीव का, मनुष्य जन्म आ जाता है। कर्मानुकूल प्रभु प्रेरणा पा, सुयोग अस बन जाता है।।
नर देह प्राप्ति के लिये, जब ऐसा अवसर आये। पुरुष वीर्य कण द्वारा वह, स्त्री उदर प्रवेश पाये।।

स्त्री रज से मिली वहां, इक रात्रि में कलिल बने। पांच रात्रि में वह कलिल, बुद्बुदा रूप हो जाये धरे।।
दस दिन में वह बेर सम, कुछ कठोर ही हो जाये। तत्पश्चात् मांस पेशियां, भी उसकी निकल आयें।।
अण्डज प्राणियों में फिर वह, अण्ड के रूप में परिणत हो। इसी विधि से कहते हैं, मनुज योनि आरम्भ हो।।

एक महीने में उसका, सिर निकल ही आता है। दो मास में हाथ पांव, आदि विभाग हो जाता है।।
तृतीय मास में नख रोम, अस्थि चर्म भी उभर आएँ। स्त्री पुरुष के चिन्ह और, अन्य छिद्र भी बन जाएँ।।
चतुर्थ मास में सप्तादि, धातु भी उत्पन्न हो जाएँ। मांस आदि भी इसी विधि, तन में उत्पन्न हो जाएँ।।
पंचम मास में भूख प्यास, का अनुभव भी होने लगे। षट् मास में झिल्ली में लिपटे, और दाहिनी कोख में वह घूमे।।

माता के अन्न जल ग्रहण से, धातुएँ उसकी पुष्ट हो। मल मूत्र के घर कृमि आदि के, उत्पत्ति स्थान में वह रहे।।
तब अति कोमल उसके तन को, उसके अंग प्रत्यंग को। नोचें भूखे कीड़े वहां, अत्यन्त दु:ख को प्राप्त वह हो।।
क्षण क्षण में उस पीड़ा से, अचेत वह हो जाता है। ऐसी भीषण यातना, गर्भ में जीव वह पाता है।।

माता के द्वारा खाये गए, कड़वे तीखे गर्म नमकीन। रूखे खट्टे पदार्थों के, स्पर्श से पीडित हो प्रतिदिन।।
झिल्ली में वह लिपटा हुआ, माता के गर्भाशय में रहे। मां की आँतों से घिरा, ही उस पल यह जीव रहे।।
सीस पेट की ओर रहे, पीठ और गर्दन मुड़े रहें। कुण्डलाकार आकृति में ही, मानो वह फिर पड़े रहें।।

पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह, पराधीन वह रहता है। निज अंगों को हिलाने में, भी असमर्थ ही रहता है।।
अव्यक्त हरि की प्रेरणा से, फिर स्मरण शक्ति उसकी जाग उठे। शतश: जन्मों के कर्मों की, याद वहाँ फिर जाग उठे।।
व्याकुल हो जाता है वह, उसका दम घुटने लगे। ऐसी अवस्था में उसको, शान्ति कैसे मिल सके?

सप्तम मास आरम्भ जो हो, ज्ञान शक्ति उसकी उत्पन्न हो। प्रसूति वायु के कारण, इक स्थान पे उसका वास न हो।।
उदर में उत्पन्न विष्ठा के, कीड़े समान वह बना रहे। बार बार वह घूमता रहे, ऐसी उसकी गति बने।।

सप्त धातुमय तन से, बन्धा हुआ वह जीव तब। देहात्म दर्शी वह इस, गति से हो भयभीत तब।।
कर जोड़ी वह दीन वाणी में, कृपा याचना करता है। जिसने गर्भ में डाला उसे, उन प्रभु की स्तुति वह करता है।।
जीव की स्तुति
अति अधम हूँ मैं हे देव मेरे, जो यह मेरी गति हुई। मम कर्मों का परिणाम मिला, है यह मेरे योग्य ही।।
निज शरणागत जगत् के, रक्षण के हेतु प्रभु। अनेक रूप धारण करके, पृथ्वी पर प्रकटें आप प्रभु।।
अत: मैं भी भूतल पर बसे, उन चरणारविन्द का आश्रय लूँ। निर्भय सदा करें सबको, मैं तो बस उनकी शरण गहूँ।।

माता के उदर में पड़े हुए, देह इन्द्रिय अन्त:करण रूपा। माया का आश्रय लेकर, हैं आच्छादित रहते सदा।।
पाप पुण्य मेरे कर्मों से, बद्ध से जान वह पड़ते हैं। मेरे संतप्त हृदय में भी, नित्य स्फुरित वह होते हैं।।
उपाधि रहित अविकारी और, बोध स्वरूप परमात्मा को। नमन करूँ मैं बार बार, सब में बसे उस आत्मा को।।

वस्तुत: पंचभौतिक तन में, मैं तो सदा असंग हूँ। दर्शन मात्र ही तो मैं, शरीर से सम्बद्ध दिखूँ।।
इसी कारण इन्द्रिय गुण, शब्दादि विषय और चिदाभास। अहंकार के भाव का, ही मुझमें यहाँ हो आभास।।
शरीरादि आवरणों से, महिमा न जिनकी क्षीण हुई। प्रकृति और पुरुष दोनों के, नियन्ता हैं वह स्वयं ही।।
उन परम पुरुष पुरुषोत्तम की, वन्दना मैं करता हूँ। निज दुर्गति से व्यथित हुआ, मैं उनकी शरण में पड़ता हूँ।।

उनकी माया से भ्रमित हो, स्मृति नष्ट है हो गई। अपने वास्तविक स्वरूप की, याद कभी भी न उभरी।।
सत्त्वादि गुण और कर्मों के, बन्धन में जीव यह बन्धा रहे। भाँति भाँति के कष्ट झेल, संसार मार्ग में ही भटके।।
उस परम पुरुष परमात्मा की, कृपा बिना नहीं हो सके। बुद्धि की किसी युक्ति से, स्वरूप ज्ञान न हो सके।।

यह त्रैकालिक ज्ञान जो, मुझको भी इस पल हुआ। यह तो कृपा करके ही, श्री हरि ने मुझे स्वयं दिया।।
स्थावर जंगल सब प्राणियों में, वह एक रूप से सदा बसें। अन्तर्यामी रूप में वह, सबके आन्तर में विराज रहे।।
जीव रूप में कर्मजनित, भँवर में हम जो हैं फँसे। इन त्रिविध ताप शान्ति हेतु, श्री हरि का ही भजन करें।।

यह देहधारी जीव प्रभु, किसी अन्य के उदर में है पड़ा। उसके भीतर मल मूत्र रुधिर, के कूप में गिरा हुआ।।
उसकी जठर अग्नि से ही, है इसका तन तप रहा। उससे निकलने के लिये, यह अपना समय है गिन रहा।।
हे प्रभु इस दीन की, मुक्ति यहाँ से कब होगी? कृपा करेंगे आप प्रभु, तब ही तो यह सम्भव होगी।।

हे स्वामी अति उदार आप, दया के पुंज ही आप हैं। दस मास के जीव को, उत्कृष्ट ज्ञान दें आप हैं।।
हे दीनबन्धु अपने ही इस, उपकार से आप प्रसन्न हों। आपके इस उपकार का, नहीं मूल्य चुकाना सम्भव हो।।
हाथ जोड़ कर हे प्रभु, चरणों में आपके हम पड़े। दीन हीन अस जीवों को, कहीं अन्य आसरा कहाँ मिले?

पशु पक्षी आदि अन्य जीव, तन के सुख दु:ख का अनुभव लें। निज मूढ़मति अनुसार वह, इतना ही बस जान सकें।।
आपकी ही कृपा से मुझे, नर शरीर यह है मिला। शम दम आदि सब योग के, साधनों से सम्पन्न जो सदा।।
आप पुराण पुरुष को, जो बाहर भीतर बस रहे। अहंकार के आश्रय रूप, बन जो आन्तर में बसे।।
आपके द्वारा दी गई, विवेक वती इस बुद्धि से। उस परमात्मा का इस पल, प्रत्यक्ष अनुभव मुझे मिले।।

अति दु:खमय गर्भाशय में, यद्यपि भीषण कष्ट हों। इससे निकल भव अन्धकूप में, पतन की मेरी इच्छा न हो।।
हे प्रभु मातृ गर्भ छोड़के, संसार में आये जीव जो। माया पाश उसे घेर ले, और इससे ही बन्ध जाये वो।।
देहात्म बुद्धि उपजे, इस तन को ही अपना माने। इसके कारण बार बार, संसार चक्र में जीव पड़े।।

अत: निज व्याकुलता त्यज, हृदय में हरि चरणों को धर। निज बुद्धि का आश्रय ले, स्वत: ही पार मैं लूंगा कर।।
इस संसार समुद्र से, निश्चित ही तर जाऊँगा। अनेक क्लेशों से जो भरा, संसार पुन: न पाऊँगा।।
कपिल बोले,
दस मास का गर्भस्थ शिशु, जब प्रार्थना इस विधि करता है। विवेक सम्पन्न वह हो कर, प्रभु की स्तुति जब करता है।।
उस अधोमुखी शिशु को तब, बाहर आने के लये। प्रसव काल की वायु ही, तत्काल गर्भ से धकेल दे।।
उसके द्वारा धकेला गया, अति व्याकुल वह शिशु हो। नीचे को सिर उसका हो, बहु कष्ट से फिर वह बाहर हो।।
उस समय मानो उसकी, श्वास गति रुक जाती है। पूर्व स्मृति जो थी जागी, वह सब विनष्ट हो जाती है।।

माता के रुधिर और मूत्र में, शिशु वह आये धरती को। विष्ठा के कीड़े समान, छटपटाये अति व्याकुल हो।।
गर्भवास का उसका ज्ञान, पूर्ण नष्ट हो जाता है। देहात्म रूपी अज्ञान, विपरीत गति वह पाता है।।
अपनी ही यह दुर्गति देख, मानो वह बार बार रोए। दुर्दशा के कारण ही उसका, यह भीषण क्रन्दन होए।।

उस शिशु के इस आन्तरिक, अभिप्राय को जो न समझ सकें। वह ही जन इस जग में, उसका पालन पोषण करें।
ऐसी अवस्था में उसको, प्रतिकूलता प्राप्त जो होती है। उसका निषेध करने की भी, नहीं शक्ति उसमें होती है।।

शिशु अवस्था में वह जीव, अपावन सेज पे पड़ा रहे। खटमल आदि स्वेदज जीव, उसकी शैय्या से चिपटे रहे।।
शिशु न पलट सके करवट, न ही शैय्या से उठ सके। खटमल गर उसे काट लें, वह निज को न खुजला सके।।
अपनी असमर्थता के कारण, अति कष्ट वह उठाता है। अपने बचाव को वह शिशु, नहीं कुछ भी कभी कर पाता है।।

अति कोमल उसकी त्वचा पर, मच्छर खटमल डंक मारें। ज्यों काट खायें छोटे कृमि को, उससे बड़े जो हों कीड़े।।
गर्भ में जो उसे ज्ञान था, वह सब लुप्त ही हो जाये। रुदन के अतिरिक्त वह, शिशु नहीं कुछ कर पाये।।
इसी विधि बाल्य और, किशोर अवस्था भोग कर। युवावस्था प्राप्त करे, पीछे यह दु:ख सब छोड़ कर।।
इस अवस्था में यदि, कोई वांछित भोग न प्राप्त हो। अज्ञान वश भड़के उसका क्रोध, और अति शोकातुर हो।।

ज्यों ज्यों देह की आयु बढ़े, अभिमान और क्रोध भी बढ़ जाये। काम के अधीन हो, जीव वह परवश हो जाये।।
दूजे कामना युक्त सभी, पुरुषों से वैर कुमा वह ले। इसी वैर और द्वेष में, वह अपना जीवन नष्ट करे।।
दुर्बुद्धि वह अज्ञानी जीव, पंचभूत के इस तन में। अहं और ममत्व का, आभास कभी न छोड़ सके।।
मिथ्या अभिनिवेश में पड़ा, अपने को तन ही समझे। मैं मेरे के अभिमान में, नित्य ही वह पड़ा रहे।।

जो तन जरा अवस्था में, अनेकों कष्ट इसे देता है। अविद्या कर्म के सूत्र में बन्ध, जो इसका पीछा करता है।।
उसी तन के लिये यह मूढ़मनी, पाप अनेकों करता है। जिनमें बन्धकर यह पुन: पुन:, संसार चक्र में भ्रमता है।।

सन्मार्ग पे चलते हुए कभी, यदि इन्द्रियों में भरमा जाये। जिह्वा और उपस्थेन्द्रिय के, भोगों में जा पुन: लगे।।

ऐसे पुरुषों से कभी, समागम इसका गर होए। उनमें ही आस्था रखकर, यह उनका अनुसरण करे।।
तो पहले की भाँति ही यह, नारकी योनि में जाय पड़े। उस नरक की योनि का, चक्र पुन: आरम्भ होए।।

जिन संगति से जन के, सत्य शौच आदि सब गुण। बुद्धि दया लज्जा क्षमा, और उसकी वाणी का संयम।।
यश धन सम्पद् और ऐश्वर्य, मन इन्द्रियों का भी संयम। यह सब ही सद्गुण उसके, नष्ट हों पाकर जिनका संग।।
स्त्रियों के हाथों में जो, खिलौना बनकर रहते हैं। ऐसे पुरुष अति शोचनीच, और मूढ़ ही होते हैं।।
ऐसे देह आत्म दर्शी, असत् पुरुषों से सदा बचे। विवेकी पुरुष को चाहिए, उनका संग कभी नहीं करे।।

किसी अन्य का संग जीव के, लिये नहीं इतना घातक। स्त्री और स्त्रीगामी संग, ज्यों कर देता है उसको बद्ध।।
एकबार पुत्री सरस्वती के, रूप लावण्य को देखकर। ब्रह्मा मोहित उस पर हुए, लोक लाज सब ही छोड़कर।।
मृगी रूप धर कर कन्या, जंगल में थी भाग रही। मृग रूप धरी ब्रह्मा ने, निर्लज्ज होई अनुगमन की।।

उन्हीं ब्रह्मा ने पुन:, मरीचि आदि प्रजापति रचे। मरीचि आदि ने पुन:, कश्यपादि प्रजापति रचे।।
कश्यपादि प्रजापतियों ने, देव मनुज आदि रचे। इस क्रम से ही सृष्टि के, सकल जीव उत्पन्न हुए।।
स्त्री रूप में माया स्वयं, जिसको न मोहित करे। कौन जीव होगा ऐसा, श्री नारायण को छोड़ के?

अहो जननी इस स्त्री रूपिणी, माया का बल बहुत प्रबल। निज भृकुटी विलास से ही, दिग्विजयी वीर यह करे निर्बल।।
अपने चरण के नीचे ही, कुचल यह उनको देती है। महाबली सब वीरों का, भी मान यह मर्दन करती है।।
योग के परम पद पे, आरूढ़ जो होना चाहता है। या मम सेवा के प्रसाद से, जो आत्म अनात्म का ज्ञाता है।।
उसके लिये अनिवार्य है यह, स्त्री का संग कभी न करे। विवेकशील पुरुष के लिये, इसे खुला नरक का द्वार कहें।।

श्री हरि की यह रची हुई, स्त्री रूपिणी माया जो। शनै: शनै: सेवा आदि, के उपक्रम से यह निकट हो।।
तिनकों से आवृत्त कूप सम, इसको समझना चाहिये। अनजाने में भी पांव पड़े, तो निश्चित मृत्यु पाइये।।

गर स्त्री में आसक्ति हुई, अन्त समय वही ध्यान रहा। आगामी जन्म में ऐसा जीव, स्त्री योनि को प्राप्त होगा।।
इस भाँति स्त्री रूप धर, पुरुष में देखे मेरी माया। धन पुत्र गृह आदि का, पति को ही माने दाता।।
ज्यों व्याध का मधुर गान, आकर्षित सबको करता है। कर्णप्रिय वह लगे उन्हें, निरीह पशु पक्षी फंसता है।।
वह मधुर स्वर ही उन सबके, नाश का कारण बन जाये। उसी विधि प्रिय रूपों में, विधाता मृत्यु बन आये।।

जीव का उपाधि भूत, लिंग देह जो है बना। उसके ही द्वारा जीव, विभिन्न लोक में जा रहा।।
निज प्रारब्ध के कर्मों का, वह भोग निरन्तर करता है। अन्य देह प्राप्ति हेतु, वह कर्म निरन्तर करता है।।

जीव का यह लिंग शरीर, निरन्तर साथ ही बना रहे। मोक्ष पर्यन्त उपाधि रूप में, उसके साथ ही यह रहे।।
भूत इन्द्रिय और मन का, कार्य रूप है स्थूल तन। सारे ही जग के भोगों का, अधिष्ठान यह जाये बन।।
इन दोनों का साथ साथ, प्राकट्य जन्म कहलाता है। परस्पर मिलन का न रहना, ही मृत्यु बन जाता है।।

सम्पूर्ण स्थूल पदार्थों की, उपलब्धि का है स्थान यह तन। उनको ग्रहण न कर पाना, यह ही है इसका मरण।।

स्थूल तन ही स्वयं हूं मैं, इस अभिमान का आ जाना। इस भाव में ही जीना, इसे कहें उसका जन्म होना।।
किसी दोष के कारण जब, नेत्र रूप न देख पायें। उनमें बसी आँखों की इन्द्रियां, भी असमर्थ तब हो जाये।।
जब नेत्र और उसका वासी, चक्षु भी नहीं योग्य रहे। उन दोनों का साक्षी जीव, भी इस योग्यता को खो दे।।

दीनता अथवा मोह कहीं, या मरण आदि से भय। मुमुक्षु पुरुष के योग्य नहीं, इन सबसे ऊपर रहे वह।।
स्वरूप जान के जीव का, हो धैर्यवान् निसंग रहे। इस मायामय संसार में, संग त्यजी विचरण करे।।
योग वैराग्य से युक्त हो, ज्ञानी सम्यक् बुद्धि रखे। नश्वर तन को श्री हरि की, धरोहर जान के ही वर्ते।।
अनासक्त हुआ निज तन प्रति, विचरण वह जग में करे। इस विधि मोहिनी माया का, बन्धन उसे न बान्ध सके।।
कपिल बोले,
सकाम भाव से घर में रह, गृहस्थ धर्म पालन करे। और उसके परिणाम रूप, अर्थ काम उपभोग करे।।
पुन: पुन: वह इनका ही, अनुष्ठान करता रहता है। विभिन्न कामना से मोहित, प्रभु से विमुख हो जाता है।।
श्रद्धापूर्वक यज्ञों से, देव और पितर आराधे वह। भागवत् धर्मों से इस कारण, बहुत दूर हो जाये वह।।

देवता और पितर ही, उपास्य उसके होते हैं। इसी भाँति की श्रद्धा से, युक्त बुद्धि वह होते हैं।।
चन्द्रलोक में जाकर वह, सोम पान करें उनके संग। फिर इस लोक में लौट आयें, जब हो जायें पुण्य उनके भंग।।
शेषशायी प्रभु प्रलय काल में, शेषनाग पर शयन करें। सकाम गृहस्थिन् योग्य लोक, उस पल सब ही लय होएं।।

विवेकी पुरुष निज धर्म को, न वर्ते अर्थ भोग हेतु। श्री हरि को ही प्रसन्न करना, इक मात्र है उस जीवन का हेतु।।
निज धर्मों का पालन वह, इसी उद्देश्य से करते हैं। प्रशान्त शुद्धचित्त अनासक्त, आत्म आरूढ़ वह रहते हैं।।
निवृत्ति धर्म परायण वह, निर्मम और हों निरहंकार। स्वधर्म रूपा सतोगुण से, चित्त हुआ वहाँ निर्विकार।।

अन्त में देवयान पथ से, श्री हरि को वह प्राप्त हों। कार्य कारण जगत् नियन्ता, श्री हरि हैं स्वयं जो।।
उपादान कारण जग का, पूर्ण पुरुष वह आप हैं। उत्पत्ति पालन और संहार, कर्ता भी वह आप हैं।।
परमात्म दृष्टि से जो जन, हिरण्यगर्भ को उपासे हैं। प्रलय पर्यन्त ब्रह्मा जी के, सत्यलोक को पाते हैं।।
दो परार्ध की अवधि कही, ब्रह्मा जी के लोक की। उस काल के लिये वे जन, प्राप्त करें वहाँ भोग सभी।।

देवादि से श्रेष्ठ ब्रह्मा, द्वि परार्ध अधिकार भोग। पंचतत्त्व सहित मन इन्द्रिय, और उनके सब विषयों को भोग।।
अहंकार आदि सहित, सबके संहार की इच्छा से। परमात्मा में लीन हों, इक रूप हो तीनों गुणी शक्ति से।।
तब प्राण और मन को जीते हुए, वह योगी जन इस तन को छोड़। ब्रह्मा में प्रविष्ट हों विरक्त, निज देह से मुखड़ा मोड़।।
उन्हीं के संग पुराण पुरुष, परब्रह्म में लीन वह हो जायें। अहंकार जब लौ रहा, लीन नहीं वह हो पायें।।

हे जननी अब तुम भी, भक्ति भाव हृदय में धर। श्री हरि की चरण शरण जाओ, निज संशय सब निवृत्त कर।।
हृदय कमल सब जीवों का, ही तो उनका मन्दिर है। उनका प्रभाव जो मुझसे सुना, वह तो हर जीव के अन्तर है।।

वेदगर्भ श्री ब्रह्मा तो, आदि कारण सब जीवों के। स्थावर जंगल जो भी है यहाँ, वह ही हैं जनक इन सबके।।
मरीचि आदि ऋषियों के संग, योगेश्वरों और सनकादि सहित। योग प्रवर्तक सिद्धों सहित, निष्काम कर्म द्वारा प्रवृत्त।।

आदि पुरुष पुरुषोत्तम, सगुण ब्रह्म को प्राप्त हों। पर कर्ताभाव और भेद दृष्टि, से नहीं वह रहित हों।।
भगवद् इच्छा से पुन:, सर्गकाल जब आता है। कालेश्वर से प्रेरणा पा, गुणों में क्षोभ उठ आता है।।
तब श्री ब्रह्मा पूर्ववत्, पुन: प्रकट हो जाते हैं। सृष्टि रचना के क्रम को, प्रवृत्त पुन: कर जाते हैं।।

पूर्वोक्त ऋषिगण भी इस विधि, ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य जब। भोग लेते हैं वह पूर्ण, त्रैगुण क्षोभ पाते हैं जब।।
भगवद् इच्छा से पुन:, अपने अपने कर्मानुसार। इस लोक में वह आ जाते हैं, पूर्ण कर कर्मों का हिसाब।।
इस लोक में जो आसक्त चित्त, कर्मों में श्रद्धावान् हैं। वेदोक्त काम्य और नित्य, कर्मों का करें अनुष्ठान हैं।।

रजोगुण के आधिक्य से, बुद्धि कुण्ठित उनकी रहे। मन में कामना जाल बिछा, इन्द्रिय भी न बस में रहें।।
निज गृह में आसक्त वह, पितरों का पूजन करें। नित्य प्रति वह इसी विधि, कामना पूर्ति के यत्न करें।।
अर्थ धर्म और काम के, परायण ही रहें यह लोग। जिनके उपक्रम कीर्तनीय महा, श्री हरि से रहे सदा वियोग।।
भवभय हारी मधुसूदन की, कथा से वे विमुख रहें। उनकी महिमा गुणों का गान, यह जन कभी भी नहीं करें।।

हाय दुर्भाग्य यह कैसाहै, विधाता ने भी कोप किया। विष्ठा भोगी कूकर सूकर, की विष्ठा मानो चाह वह रहा।।
भगवत्कथामृत छोड़कर, विषय वार्ता में जो पड़े रहें। निन्दित ही वह कर्म यह, और भाग्य भी अति मन्द रहे।।
गर्भाधान से लेकर के, अन्त्येष्टि तक के सब संस्कार। विधिवत् यह सब पूर्ण करें, हृदय में धर कामना अपार।।
सूर्य के दक्षिण ओर से, धूम मार्ग से यह जायें। पित्रीश्वर अर्यमा लोक में जा, सन्तति वंश में पुन: आएं।।

पितृलोक के भोग्य भोग, पुण्य क्षीण जब हो जाते हैं। हे माते तब देवगण, उस ऐश्वर्य से च्युत करते हैं।।
विवश हो फिर तुरन्त ही, पतित इस लोक में हो जायें। इस विध वह पुन: पुन:, भव चक्र में ही घूमते जायें।।
इसलिये हे जननी सुनो, भजनीय सदा जो चरण कमल। उन श्री हरि की भक्ति से, करो हृदय अपना निर्मल।।
उनके गुणों के आसरे ही, भक्ति नित्य प्रफुल्लित हो। मन वाणी और शरीर से, बस उनका ही भजन करो।।
प्रभु वासुदेव से प्रेममयी, भक्ति योग गर हो जाये। तुरन्त वैराग्य प्रदान करे, साक्षात्कार का ज्ञान दे।।

वास्तव में समझो रहस्य, भगवत् रूप हैं सभी विषय। ज्ञान दृष्टि से गर देखो, समान रूप हैं सब विषय।।
भक्त का चित्त इन्द्रियों द्वारा, जब प्रिय अप्रिय न भान करे। रस विषमता भूल कर, सर्वत्र हरि को ही देखे।।
संग रहित होकर तब वह, समान रूप से सब में स्थित। त्याज्य और ग्रहणीय सब, दोषों और गुणों से रहित।।
निज महिमा में स्वयं स्थित, अपने ही आत्मा का। ब्रह्म रूप से अपने में, ही है साक्षात् करता।।

वही ज्ञान स्वरूप परम ब्रह्मा, है वही परमात्मा। वही ईश्वर वही पुरुष है, वही एक है सब में आत्मा।।
जीव शरीर विषय इन्द्रिय, अनेक रूप में भासित हो। वास्तव में उस एक का, ही सब में आभास हो।।
सम्पूर्ण संसार में, आसक्ति का अभाव हो। सारे योग साधनों से, योगी का यही अभीष्ट हो।।

परं ब्रह्म तो एक है, ज्ञान स्वरूप और निर्गुण। बाह्यमुखी इन्द्रियों राही, ग्रहण हो धरी अनेकों गुण।।
शब्दादि धर्मों वाले, विभिन्न पदार्थ रूप में। भ्रान्तिवश आभास वा हो, भिन्न भिन्न सब रूप में।।

एक ही परं ब्रह्म ज्यों, भिन्न रूप में भासित हो। महत्तत्त्व वैकारिक राजस और, तामस अहं में भासित हो।।

पंच महात्तत्त्व बने वह फिर, ग्यारह इन्द्रियाँ रूप बने। इनसे योग कर स्वयंप्रकाश, जीव स्वयं फिर कहलाये।।
उसी विधि उस जीव का तन, भी पूर्ण ब्रह्माण्ड में है। ब्रह्म से उत्पन्न यह हुआ, वास्तव में यह ब्रह्म ही है।।

श्रद्धा भक्ति और वैराग्य, के अखण्ड अभ्यास से। योग से चित्त एकाग्र कर, संग रहित इस बुद्धि से।।
वही देख सके ब्रह्म को, जो सबमें आप ही व्याप्त है। यह तन और ब्रह्माण्ड भी, बनकर प्रकट जो आप है।।
हे पूजनीय जननी मेरी, तुम्हें बताया साधन रूप। ब्रह्म साक्षात्कार का, ज्ञान सुझाया साधन रूप।।
पुरुष और प्रकृति के यह, यथार्थ स्वरूप का बोध दे। इसके द्वारा ही तो जीव, निज स्वरूप पहचान ले।।
निर्गुण ब्रह्म विषय का ज्ञान, या मेरे प्रति हो भक्ति योग। दोनों का फल एक ही है, भगवान कहें उसे ही लोग।।

एक ही पदार्थ ज्यों, भिन्न भिन्न सब इन्द्रियों से। भिन्न भिन्न अनुभूति में, ही अनुभव में वह आये।।
जिह्वा में रस बन प्रकटे, घ्राणेन्द्रिय में गन्ध बने। त्वक् के स्पर्श से कोमलता, उसी का अनुभव होए।।
वास्तव में सब अनुभव का, आश्रयभूत है एक वही। इस उपमा से जान ले, परं ब्रह्म की बात भी।।
विभिन्न पथ से शास्त्र के, एक लक्ष्य को ही पायें। नाम चाहे भिन्न धरें, अनुभूति हरि की ही पायें।।

नाना भाँति के क्रिया कर्म, यज्ञ दान तप वेदाध्ययन। कर्मत्याग विविधांगी योग, मीमांसा मन इन्द्रिय संयम।।
भक्तियोग या निवृत्ति और प्रवृत्ति रूपा कर्म। सकाम कर्म भी चाहे करें, या सब हों निष्काम धर्म।।
आत्म तत्व का ज्ञान हो, या दृढ़ वैराग्य ही हो जाये। सभी साधनों का आश्रय, श्री हरि आप ही बन जायें।।
सगुण रूप को उपासे या, निर्गुण स्वरूप को ही ध्याये। साधन जो चाहे अपनाये, स्वयं प्रकाश प्रभु ही पाये।।

हे माता चार प्रकार का, कहा आपको भक्तियोग। सात्त्विक राजस तामस निर्गुण, इसके बने यह चतु: योग।।
जीवों के जन्मादि, विकारों का है जो कारण। दुर्ज्ञेय है गति जिसकी, उस काल का भी किया वर्णन।।
हे देवि अविद्या जनित हो, सारे कर्मों का कारण। जीव भी अनेकों ही, गतियों को करे धारण।।
उन गतियों को प्राप्त कर, वह उनमें ही भरमा जाये। पहचाने न निज स्वरूप, उन्हें अपना ही माने जाये।।

हे जननी ज्ञानोपख्यान यह, जो आपके लिये किया। उसके लिये भी पात्र का, भेद आप अब सुनें जरा।।
दुष्ट घमण्डी दुराचारी, विनयहीन जो दम्भी हो। ऐसे पुरुष के लिये माता, यह ज्ञान बखान कभी न हो।।
विषय लोलुप जो जीव हो, और हो देह गेहादि आसक्त। मेरे भक्तों से द्वेष करे, कदाचित न हो वह मेरा भक्त।।
ऐसे जीव के लिये कभी, उपदेश न इसका हो सके। विरोधी भाव गर हिय में हो, इस ज्ञान को वह न समझ सके।।

जो अत्यन्त श्रद्धालु हो, विनीत भक्त अनुसूय हो। मैत्री सबसे जो रखे, गुरु सेवा में सदा तत्पर हो।।
हो बाह्य विषय में अनासक्त, शान्तचित्त मत्सर रहित। मुझको ही प्रियतम माने, और जिसका हो चित्त पवित्र।।
श्री हरि हैं जिसके परम प्रिय, वह ही उनको जान सके। ऐसे भक्त के लिये सदा, इस ज्ञान का उपदेश करे।।
मुझमें चित्त लगाकर के, श्रद्धा से इक बार कभी। श्रवण या कथन करे इसका, पायेगा मेरे परम पद ही।।

मैत्रेय मुनि बोले,
भगवान कपिल के वचन सुनकर, कर्दम मुनि की प्रिय पत्नी का। मोह आवरण विदीर्ण हुआ, हे विदुर माता देवहूति का।।

तत्त्व प्रतिपादक सांख्य के, इस ज्ञान का हैं आधार वही। प्रणाम करी स्तुति करने लगीं, माता भगवान श्री कपिल की।।
देवहूति बोली,
हे कपिल देव आप ही तो, श्रीमन्नारायण स्वयं हैं। आपके नाभि कमल से ही, प्रकट हुए श्री ब्रह्मा हैं।।
प्रलयकालीन जल में प्रभु, शयन आपने है किया। भूतेन्द्रिय शब्दादि विषय, और मनोमय विग्रह आपका।।
सत्त्वादि गुण प्रवाह युक्त, और बीज जो कार्य कारण का। ब्रह्मा जी ने आपके, इस स्वरूप का ध्यान किया।।

निष्क्रिय सत्य संकल्प आप, सम्पूर्ण जीवों के प्रभु। सहस्त्रों ही अचिन्त्य निज, शक्तिन् से सम्पन्न प्रभु।।
गुण प्रवाह से निज शक्ति, ब्रह्मा आदि में विभाजित कर। उनके द्वारा ही आप स्वयं, विश्व की दें रचना कर।।

कैसा विचित्र आश्चर्य है यह, हे नाथ यह आपकी है दया। प्रलय काल में जिनके उदर, प्रपंच है सारा लय होता।।
जो कल्पान्त में मायामय, बालक का रूप धारण करके। निज कोमल श्री चरण के, अंगूठे को हैं चूस रहे।।
एकाकी ही वटवृक्ष के, पत्ते पर हैं शयन करें। वह श्री हरि स्वयं ही मेरे, गर्भ में आप पधार गए।।

हे स्वयंभू आप स्वयं, पापियों के दमन हेतु। निज आज्ञाकारी भक्तों के, कल्याण और अभ्युदय हेतु।।
स्वेच्छा से ही चिन्मय रूप, देह को धारण करें। जिस विधि वराहादि, अनेकों ही अवतार हुए।।
उसी विधि ही आपका, प्राकट्य हुआ बन कपिलावतार। मुमुक्षुन् हेतु ज्ञान मार्ग के, दर्शन को लिया तन यह धार।।

हे प्रभु आपके नामों का, जो श्रवण या कीर्तन करता है। भूले भटके कभी कभार, जो वन्दन सुमिरण करता है।।
ऐसा नीच चाण्डाल भी, ब्राह्मण समान पवित्र हो जाये। सोमायाजी द्विज के समान, अति पूजनीय वह हो जाये।।
फिर आपका दर्शन जिसे हुआ, कृत्कृत्य वह जीव हो। उसका तो कहना ही क्या, जिसका प्रभु यह सौभाग्य हो।।

अहो श्रेष्ठ चाण्डाल वह है। जिसकी जिव्हा पे विराजे नाम। जो श्रेष्ठ जन अहर्निश, हो मुक्तकण्ठ करें नाम गान।।
उन्होंने तो सब तप हवन, तीर्थ स्नान हो जैसे किया। वेदाध्ययन और सदाचार, सबका फल उन्हें मिल गया।।

साक्षात् परब्रह्म आप, परम पुरुष हैं आप ही। आन्तर्मुखी वृत्ति करके, आन्तर में दीखें आप ही।।
निज तेज से आप ही माया के, गुण प्रवाह को शान्त करें। आप के ही उदर में, वेद तत्त्व सब निहित रहें।।
हे कपिल देव जी आप स्वयं, श्री विष्णु का अवतार हो। साक्षात् विष्णु रूप को, मेरा नमन स्वीकार हो।।

मैत्रेय मुनि बोले,
जब माता ने इस विधि, श्री कपिल देव की स्तुति करी। मातृवत्सल श्री कपिल ने, हो गम्भीर यह वचन कहा।।
कपिल बोले,
हे माता मैंने तुमको, यह सुगम मार्ग जो है कहा। इसका अवलम्बन लेकर आप, शीघ्र परम पद लेंगी पा।।
मेरे इस मत में माता, तुम पूर्ण विश्वास करो। यह पथ तो ब्रह्मवादिन् के, द्वारा नित्य ही सेवित हो।।
इस द्वारा मम जन्म मरण, रहित स्वरूप करोगी प्राप्त। अज्ञ जनों की इस मत से, नहीं मिटे मेरे जन्म मरण की त्रास।।

इस विधि आत्म ज्ञान का, सर्वश्रेष्ठ का उपदेश तुम्हें किया।। ब्रह्मवादिनी माँ से आज्ञा ले, वहाँ से फिर प्रस्थान किया।।
सरस्वती सरिता की, मुकुट सदृश जो आप बनीं। निज आश्रम में पुत्र से, उपदेश प्राप्त कर देवहूति।।

योग साधना द्वारा फिर, योगाभ्यास करती रहीं। दीर्घकाल अभ्यास से, समाधिस्थ वह हो गईं।।

घुंघराली अलकें उनकी, भूरे भूरे रंग की थीं। त्रिकाल स्नान करने से वह, जटायें बन कर उलझ गईं।।
चीर वस्त्रों से आवृत्त, अति सुकोमल उनका तन। उग्र तपस्या के कारण, हो गया वह दुर्बल अति क्षीण।।
प्रजापति कर्दम के तप, और योग बल से प्राप्त जो था। देव दुर्लभ अनुपम गृहस्थ, सुख को पल में त्याग दिया।।

दुग्ध फेन सम स्वच्छ सुकोमल, शैय्या जिस पर बिछ रही। हस्तिदन्त से बने पलंग से, सजे हैंशयनागार सभी।।
स्वर्ण पात्र और स्वर्ण सिंहासन, उनपर कोमल गद्दे बिछे। स्वच्छ स्फटिक मरकतमणि, की भीतों में चित्र सजे।।
रत्न जड़ित मूर्ति सहित, जगमग दीपक हैं जल रहे। फल फूलों से लदे हुए, अनेकों जहाँ पे वृक्ष खड़े।।
भाँति भाँति के पक्षी जहां, स्वरमय कलरव हैं कर रहे। मतवाले भवरों की गुंजन, से है जो उपवन गूंजे।।
कमल सुवासित बावलियों में, स्वच्छ निर्मल जल भरा। सौन्दर्य छटा उद्यान की, प्रतिबिम्बित निज में कर रहा।।
उन जलाशयों में कर्दम संग, क्रीड़ा के लिये जब जाती थीं। गन्धर्व गण के मुख से तब, स्तुति गान वो करती थी।।
देवहूति के उस द्यान को, इन्द्राणियाँ भी लालायित थीं। उस सुन्दर गृह उद्यान की, ममता भी उन्होने त्याग दी।।
किन्तु पुत्र वियोग के, कारण वह हुईं उदास थीं। इस व्याकुलता के कारण, उसका मुख छवि भी मलिन हुआ।।

पति तो पहले वन में गए, अब पुत्र ने भी वन गमन किया। आत्म ज्ञान सम्पन्न भी थीं, पर वियोग न सहन हुआ।।
निज बछड़े के वियोग में, ज्यों गाय व्याकुल हो जाये। उसी विधि मां देवहूति, निज पुत्र वियोग न सह पाये।।
हे वत्स विदुर निज पुत्र कपिल, रूप में प्रकटे श्री भगवन्। देवहूति के आन्तर में, बस था एकाग्र उनका चिन्तन।।
इस ऐश्वर्य पूर्ण घर से, वह शीघ्र ही उपरत हो गईं। श्री हरि के ही ध्यान में, एकाकी भाव से निमग्न थीं।।

श्री कपिल देव ने श्री हरि के, ध्यान की थी जो विधि कही। प्रसन्न वदनारविन्द युक्त, श्री हरि मुख की उन ध्यान करी।।
उनके प्रत्येक अंग का, फिर समग्र रूप था जो। उसके चिन्तन में निमग्न हुई, प्रभु के ध्यान में तत्पर हो।।

भगवद्भक्ति के प्रवाह, और प्रबल वैराग्य से। यथोचित्त कर्मानुष्ठान से, और ब्रह्ममय उस ज्ञान से।।
चित्त शुद्ध उनका हुआ, ध्यान मग्न वह हो गईं। सर्वव्यापक आत्मा के, चिन्तन में वह खो गईं।।
निज स्वरूप प्रकाश से, माया आवरण जो दूर करे। उस आत्म ज्ञान के, प्रकाश में देवहूति रहे।।

जीवों के अधिष्ठान रूप, परम ब्रह्म परमात्म में। बुद्धि जब उनकी स्थिर हुई, सर्वव्यापक आत्म में।।
जीव भाव निवृत्त हुआ, वह सर्व क्लेश से मुक्त हुईं। निज देहानुसन्धान गया, परमानन्द में निमग्न हुई।।
विषयों को सत्य मानकर, भ्रान्ति जो थी हो रही। समाधि में जब जाय टिकीं, विषय जनित सब भ्रान्ति मिटी।।
अपने भी शरीर की, सुध बुध उनको नहीं रही। ज्यों जागृत पुरुष को स्वप्न की, देह की याद नहीं रहती।।

उनका तन का पालन पोषण भी, दूजों द्वारा था होता। नहीं तन उनका क्षीण हुआ, क्योंकि कोई मनो क्लेश न था।।
उनका तेज तो दिन प्रतिदिन, और भी उज्ज्वल हो गया। ज्यों धूम से अग्नि का, सौन्दर्य और है बढ़ जाता।।
केश थे उनके बिखर गये, और वस्त्र भी तन से गिरा। तथापि निरन्तर श्री हरि में, ही था उनका चित्त टिका।।
निज तपोमय और योगमय, तन की भी उन्हें सुधि न थी। दिव्य तेजोमय तन की सुरक्षा, प्रारब्ध ही थी कर रही।।

हे विदुर देवहूति ने इस विधि, श्री कपिल कथित मार्ग द्वारा। अल्प समय में नित्य मुक्त, परमात्म स्वरूप को प्राप्त किया।।
हे वीरवर जिस स्थान पर, उन परम सिद्धि को प्राप्त किया। त्रिलोक में परम पावनी वह, सिद्धपद नाम से ख्यात हुआ।।
योग साधना द्वारा ही, उसका दैहिक मल सब दूर हुआ। साधु स्वभावी विदुर तब, वह तन सरिता बन बह निकला।।
परम पावनी सलिला वह, सेवित है सिद्ध जनों द्वारा। सब प्रकार की सिद्धि की, है स्वयं ही वह परम दाता।।

महायोगी श्री कपिल भी, निज माता से आज्ञा लेकर। चले ईषाणकोण और, निज पिता का आश्रम त्यजकर।।

वहाँ सागर ने उनका पूजन कर, उचित स्थान उनको दिया। तीनों लोकों की शान्ति ही, एक मात्र है ध्येय उनका।।
योगमार्ग अवलम्बन कर, नित्य समाधि स्थित रहें। सिद्ध चारण गन्धर्व मुनि, अप्सरा गण नित्य स्तुति करें।।
सांख्याचार्य गण भी सदा, स्तवन उनका करते रहते हैं। पर इन सब से अछूते ही, समाधिस्थ वह बैठे हैं।

हे विदुर तुमने मुझसे, स्वयं ही था यह प्रश्न किया। देवहूति और कपिल का यह, पावन संवाद सुना दिया।।
गुह्य रहस्य अध्यात्म का, है कपिल देव जी का यह मत। श्रवण या वर्णन जो यह करे, शीघ्र ही हो भक्ति से युक्त।।
भगवान् गरुड़ध्वज की भक्ति, प्रसाद में वह पा जाता है। श्री हरि के चरणारविन्द में, वह साधक खो जाता है।।

इति तृतीय स्कन्ध

** जिस वृक्ष पर फल होते है लोग उसी पर पत्थर मारते है।*

** जिन्दगी में की हुई गलतियां बडी ही दर्दनाक होती है पर इन गलतियों का संग्रह अनुभव कहलाता है जो जीवन में सफलता दिलाता है।*

** सुख की चाह दुखों से दूर करती है।*

** जो दूसरों को सहयोग देते है वे उनको अपना सहयोगी बना लेते है।*

** बुद्धिमान मनुष्य वही है जो सदैव अपने विवेक को जागृत रखता है।*

** जीवन में सबसे बड़ा खतरा है कोई जोखिम न उठाना।*

** अधमरा आदमी और अधमरा समाज किसी काम का नही।*

** अपने आप पर तरस खाना दु:खका कारण बनता है।*

** जीवन की बाजी में हार जीत तो हमारे हाथ नही, पर बाजी खेलना हमारे हाथ में है।*

** बहुत बोलनेवाले व्यक्ति का लोग विश्वास नहीं करते।*

** डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है।*

** पथ पर चले बिना गन्तव्य नही मिल सकता।*

** ज्यादा से ज्यादा मिलता है वही से ज्यादा की अपेक्षा होती है।*

चतुर्थ स्कन्ध

विषयसूची

१) सृष्टि का विस्तार २२८

२) दक्ष प्रजापति और शिव का मनोमालिन्य व सती का चरित्र २३२

३) ध्रुव चरित्र २५२

४) महाराज पृथु का चरित्र २७२

५) प्रचेताओं को उपदेश ३०३

६) पुरंजनोपाख्यान ३०८

७) प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश ३२७

** लालच ईमान को और अहंकार मन को खा जाता है।*

** राह के पत्थर प्रज्ञावान के लिये अवरोध नहीं, सीढ़ियां ही सिद्ध होती है।*

** जिस क्षण कोई गलती करोगे लोग आपके विकल्प ही छीन लेंगे।*

** अतीत का दु:ख व भविष्य का डर ये आत्मा के दो बडे शत्रु हैं।*

** महान लोगों की उदारता का भंडार कभी नही घटता।*

** खूबसूरत जिन्दगी है, ख्वाब की तरह जाने कब टूट जाये कांच की तरह।*
हमें ना भुलाना किसी बात की तरह, अपने दिल में ही रखना एक याद की तरह।।

** इन अन्धेरों से हमें लडना पडेगा, बन के शमा फिर हमें ही जलना पडेगा।*
आदमी से आदमी डरने लगा है, इन दरारों को हमें ही भरना पडेगा।।

** महान तेजस्वी पुरुषों के सम्मुख अल्प तेजवाले पुरुष दब जाते हैं।*

चतुर्थ स्कन्ध

१) सृष्टि का विस्तार-

मैत्रेय मुनि बोले,
स्वयंभु मनु के वंश की, इस विध फिर वृद्धि हुई। साम्राज्ञी शतरूपा ने, पुत्र रत्न दो उत्पन्न की।।
प्रियव्रत और उत्तानपाद, यह दोनों ही पुत्र हुए। तीन कन्याओं को भी, शतरूपा ने थे जन्म दिये।।
आकूति, देवहूति और, प्रसूति नाम ही इनके थे। इस विधि मनुवंश के, पंच सन्तानों ने जन्म लिये।।

भाइयों के होते हुए भी, शतरूपा से अनुमति पा। रुचि प्रजापति के संग, आकूति का विवाह हुआ।।
पुत्रिका धर्म अनुकूल ही, था यह परिणय हुआ। कन्या के प्रथम सुत पर, अधिकार मातामह का था।।
रुचि प्रजापति तो थे, श्री हरि अनन्य चिन्तन सम्पन्न। इस कारण ब्रह्म तेज को, वह तो थे सदा प्रपन्न।।
आकूति गर्भ से उन द्वारा, स्त्री पुरुष युगल जन्मा। इस विधि आकूति गर्भ को, प्रजापति ने धन्य किया।।

यज्ञरूप धारी प्रभु विष्णु, स्वयं पुरुष बन प्रकटे वहाँ। प्रभु से अभिन्न स्त्री रूपा, लक्ष्मी का अंश थी दक्षिणा।।
आकूति के परम तेजस्वी, दिव्य रूप उस पुत्र को। अति मुदितमनी हो मनु, ले आये अपने घर को।।
दक्षिणा पुत्री को प्रजापति, रुचि ने अपना स्नेह दिया। अपने पास ही रखा उसे, और पाल पोस कर बड़ा किया।।

विवाह योग्य जब हुई दक्षिणा, उसके मन यह भाव जगी। यज्ञ पुरुष की ही उसने, पति रूप में इच्छा की।।
यज्ञ पुरुष ने दक्षिणा से, विवाह तब रचा लिया। इससे दक्षिणा के मन में, भी अतिशय सन्तोष हुआ।।
यज्ञ पुरुष भगवान ने, उससे अति प्रसन्न हो। द्वादश पुत्रों की माता, बनने का गौरव दिया।।
तोष प्रतोष सन्तोष भद्र, शान्ति इडस्पति इध्म कवि। विभु स्वह्न सुदेव रोचन, हैं उन सबके नाम यही।।

स्वयंभु मन्वन्तर में, यह तुषित नाम के देव हुए। उस मन्वन्तर में कहें, मरीचि आदि सप्तर्षि थे।।
सब देवों के अधीश्वर इन्द्र, भगवान यज्ञ ही स्वयं थे। महाप्रभावशाली मनुपुत्र, उत्तानपद और प्रियव्रत थे।
उन्हीं दोनों के पुत्रों पौत्रों, और दैहित्रों के वंश से। उस मन्वन्तर में छा गया, उन दोनों का ही अंश यह।।

प्रिय विदुर द्वितीय कन्या, मनु ने ब्याही ऋषि कर्दम से। उसके सम्बन्ध में बस बातें, आप हैं मुझसे सुन चुके।।
प्रभु मनु ने तृतीय कन्या, प्रसूति का विवाह किया। ब्रह्मा जी के पुत्र दक्ष, प्रजापति को उन्होने चुना।।
उसके विशाल वंश की, परम्परा त्रिलोकी में फैली। ऐसी दक्ष प्रजापति की, पूर्ण सृष्टि में महिमा थी।।

मुनि कर्दम के देवहूति से, नौ कन्याओं ने जन्म लिया। नौ ब्रह्मर्षियों से उनकी, सुताओं का था परिणय किया।।
उन सबका वर्णन तो, पहले ही मैं कर चुका। अब सुनो उनकी वंश परम्परा, जो वर्णन मैं कर रहा।।
ऋषि कर्दम की पुत्री कला ने, ऋषि मरीचि से विवाह किया। कश्यप और पूर्णिमा नाम के, दो पुत्रों को उन जन्म दिया।।
उनके वंश से ही यह जग, सम्पूर्ण है भरा हुआ। हे विदुर संसार यह सब, मरीचि का है विस्तारा।।

हे शत्रुतापन विदुर जी, अब इसका विस्तार सुनें। पूर्णिमा के घर विरज और, विश्वग नामक दो पुत्र हुए।।

देवकुल्या नाम की, एक कन्या भी जन्मी। दूजे जन्म में यह ही तो, विष्णु पदी गंगा बनी।।
ऋषि अत्रि भार्या अनुसूया ने, तीन पुत्रों को जन्म दिया। दत्तात्रेय दुर्वासा चन्द्रमा, क्रमश: इनको नाम दिया।।
महायशस्वी थे तीनों, भगवान का अपना अंश ही थे। क्रमश: विष्णु शिव ब्रह्मा के, अंश से थे उत्पन्न हुए।।
विदुर बोले,
जग की उत्पत्ति और स्थिति, संहार के कर्ता हैं यह देव। सर्वश्रेष्ठ इन देवों के, हृदय में था क्या उद्देश्य?
क्या लक्ष लेकर यह सब, अत्रि ऋषि के घर जमें? हे गुरुश्रेष्ठ कृपा करके, मुझसे यह रहस्य कहें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
ब्रह्मज्ञों में सर्वश्रेष्ठ, महर्षि श्री अत्रि को। ब्रह्मा जी ने आज्ञा दी, सृष्टि रचना करने को।।
तब वह निज सहधर्मिणी, अनुसूया को संग ले। तप करने के लिये, कृक्ष नामक पर्वत पे गए।।

पलाश और अशोक के, वृक्षों का था विशाल वन। फूलों के गुच्छों से वहाँ, लदे हुए थे वृक्ष सघन।।
सब ओर से निर्विन्ध्या, नदी निनाद थी कर रही। कल कल ध्वनि से अपनी वह, थी वातावरण को भर रही।।
उस वन में उन मुनिश्रेष्ठ ने, प्राणायाम के द्वारा। वशीभूत चित्त को किया, सौ वर्ष पर्यन्त करी तपस्या।।

केवल वायु का पान किया, एक पांव पर रहे खड़े। सर्दी गर्मी आदि सब द्वन्द्व, थे उन्होंने यह जीत लिये।।
उस समय वह मनोमन, प्रार्थना यह थे कर रहे। सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर जो, हम उनकी ही शरण गहें।।
अपने ही समान वह, सन्तान हमें प्रदान करें। उनके ही गुणों का, उस राही विस्तार भएं।।

प्राणायाम के ईंधन से, प्रज्ज्वलित हुआ अत्रि का तेज। मस्तक से उनके निकल कर, संतप्त किये तीनों लोकोंका तेज।।
यह देख के तीनों जगत् पति, ब्रह्मा विष्णु और महादेव। ऋषिवर के आश्रम आये, शान्त वह करने उनका वेग।।
अप्सरा मुनि गन्धर्व सिद्ध, सब उनका यश थे गा रहे। विद्याधर और नाग भी, स्वर में थे स्वर मिला रहे।।

उन तीनों विभूतियों का, जब एक साथ प्राकट्य हुआ। अत्रि मुनि का अन्त:करण, प्रकाश से जगमग हो उठा।।
एक चरण पर खड़े थे वह, उन देवाधिदेवों को देखा। पृथ्वी पर फिर लेटकर, उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।।
तदनन्तर अर्घ्य पुष्पादि, पूजन सामग्री हाथ में ली। विधिवत् फिर उन देवों की, अत्रि मुनि ने पूजा की।।
तीनों देव अपने अपने, वाहन पे थे विराज रहे। हंस गरुड़ और बैल पर, क्रमश: तीनों थे बैठे हुए।।
निज चिन्ह कमण्डलु और चक्र, त्रिशूलादि से सुशोभित थे। जगत् पति यह तीनों ही, इस विधि अत्रि आश्रम पहुंचे।।

करुणापूर्ण उन नयनों से, करुणा थी मानो बरस रही। मुखारविन्द पे उनके सजी, मन्द हास्य की रेखा थी।।
इस मुसकान में भरी हुई, इन देवों की प्रसन्नता थी। दिव्य तेजस से चुन्धिया कर, मुनिवर ने आंखें मूंद लीं।।
निज चित्त उन्हीं में जोड़कर, करबद्ध हो मुनिवर ने कहा। भावपूर्ण वचनों में फिर, स्तुतिगान उनका बह निकला।।
सब लोकों में सबसे महान्, हैं यह तीनों देवता। अत्रि मुनि ने विनीत भाव से, मधुर वचन में उन्हें कहा।।

प्रत्येक कल्प आरम्भ में, उत्पत्ति स्थिति और लय के लिये। त्रैगुण विभाग कर माया का, भिन्न भिन्न जो रूप धरें।।
ब्रह्मा, विष्णु, महादेव वह, हे भगवन् जानूं आप ही हैं। प्रणाम स्वीकार करें मेरा, सर्वोत्तम बस आप ही हैं।।
कृपा करी के कहें आप, किसको मैंने बुलाया था? महानुभाव कौन आपमें से, जिसको मैंने बुलाया था?

सन्तान प्राप्ति की इच्छासे, सुरेश्वर का चिन्तन किया। इस फल की कामना हिय धरी, बस केवल एक को पूजा था।।
फिर तीनों मिलकर आप यहां, कहो पधारे हैं कैसे? कृपया मेरे योग्य जो हो, आदेश आप वह मुझको दें।।
देहधारिन् का मन भी यह, आप तलक नहीं पहुँच सके। आश्चर्यचकित हुआ देख के, आप यहाँ स्वयं प्रकटे।।
कृपा करी के महानुभाव, रहस्य इसका बताइए। मेरे योग्य जो हो सेवा, आदेश अपना सुनाइए।।
मैत्रेय बोले,
हे सामर्थ्य श्री विदुर जी, अत्रि मुनि के वचन यह सुन। तीनों देव हंसने लगे, सुमधुर वाणी में कहा तू सुन।।
देवता बोले,
सत्य संकल्प हो तुम ब्राह्मण, तुमने था जो संकल्प किया। उचित ही है वह सत्य हो, विपरीत नहीं फल हो सकता।।
जिस जगदीश्वर का अहर्निश, ध्यान तू धरते रहते हो। हम तीनों रूप धर आये हैं, जिनका तू नित्य पूजन करो।।

तव कल्याण हो महर्षि, मनोवांछित फल तुम पाओ। हमरे ही अंश रूप तुम, त्रिलोक विख्यात पुत्र पाओ।।
तुम्हारे घर में उत्पन्न हो, तेरा यश विस्तार करेंगे यह। इस विधि तुम्हारे ख्याति का, जग में प्रचार करेंगे यह।।

मैत्रेय मुनि बोले,
पति पत्नी दोनों ने ही, भली भाँति उनको पूजा। उन देवों से इस दम्पती को, अभीष्ट उनका फल मिला।।
उनके देखते देखते ही, सुरेश्वर अन्तर्धान हुए। अपने अपने लोकों को, फिर वह देवता चले गए।।

ब्रह्मा जी के अंश से, प्रकट हुए श्री चन्द्रमा। योगवेत्ता दत्तात्रेय में, श्री विष्णु का अंश था।।
महादेव के अंश से, ऋषि दुर्वासा प्रकट हुए। इस विधि ऋषि अत्रि के, यह तीनों ही पुत्र हुए।।
अब ऋषि अंगिरा की, सन्तानों की बात कहूँ। किस क्रम से उन्होंने जन्म लिया, उनकी अब मैं तुम्हें कहूं।।

अंगिरा पत्नी श्रद्धा ने, चार कन्याओं को जन्मा। सिनीवाली कुहू राका और, अनुमति उनका नाम था।।
साक्षात् हरि उतथ्य जी, और ब्रह्मनिष्ठ श्री बृहस्पति। इन द्वौ पुत्रों की जननी, भी माता श्रद्धा ही थी।।
स्वारोचित मन्वन्तर में, यह दोनों विख्यात हुए। ऋषि अंगिरा के पुत्रों के, नाम से यह जाने गए।।

पुलस्त्य ऋषि की पत्नी, हविर्भू महाभागी थीं। महातपस्वी विश्रवा, महर्षि अगस्त्य की माता थीं।।
इनमें महर्षि अगस्त्य ही, पुन: जठराग्नि बनकर आये। पुनर्जन्म में उन्होने ही, तो नाम यह थे पाये।।

विश्रवा मुनि की इड़विड़ा, नाम की इक पत्नी थी। उसके गर्भ से यक्षराज, कुबेर का जन्म हुआ।।
दूसरी पत्नी केशिनी से, उनके तीन थे पुत्र हुए। रावण और कुम्भकर्ण, विभीषण उनके नाम थे।।
महर्षि पुलह की पत्नी, परम साध्वी थी गति। कर्मश्रेष्ठ वरीयान् सहिष्णु, त्रैपुत्र उसने उत्पन्न किये।।

इसी विधि क्रतु: पत्नी ने, क्रिया जिसका नाम था। ब्रह्मतेज से दीदीप्यमान, ऋषियों को था जन्म दिया।।
बालखिल्यादि साठ हजार, ऋषि वहाँ उत्पन्न हुए। ब्रह्मतेज वह धारे थे, क्रिया के ही तप के फल से।।
हे रिपुदमन श्री विदुर जी, अब आगे की कहता हूँ। वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती, की सन्तति की कहता हूँ।।
विशुद्ध मनी चित्रकेतु आदि, सात पुत्र उसके जन्मे। वसिष्ठ के यह सातों ही पुत्र, ब्रह्मर्षि ही सब वह थे।।

चित्रकेतु सुरोचि विरजा, मित्र उल्बण और वसुभृद्यान। द्युमान था सातवां सुत, यह पुत्र थे उनके महान्।।
इन्हें छोड़ दूजी पत्नी से, शक्ति आदि कई पुत्र हुए। इस विधि ऋषि वसिष्ठ के, कुल थे अति वर्धित हुए।।
अथर्वा मुनि की पत्नी चिति, के भी यहां इक पुत्र हुआ। तपोनिष्ठ वह पुत्र था, दधीचि उसका नाम था।।
अश्वशिरा के नाम से भी, वह पुकारा जाता था। अब सुनो महर्षि भृगु के, वंश की सारी परम्परा।।

निज भार्या ख्याति से भृगु ने, धाता विधाता सुत पाये। भगवत्परायण पुत्री को, श्री नाम से ही वह पुकारे थे।।
आयति और नियति नामक, ऋषि मेरु की थी सुतायें दो। धाता विधाता से क्रमशः, परिणय उनका कर दियो।।
उनके मृकण्ड और प्राण, नामक पुत्रों का जन्म हुआ। इस विधि उनके भी यहां, वंश का विस्तार हुआ।।

मृकण्ड के मार्कण्डेय और, प्राण के वेदशिरा जन्मे। भृगु के यहां कवि नाम के, एक पुत्र अन्य भी थे।।
उनके यहा श्री उशना, ही जन्म लेकर आये। यह ही तो शुक्राचार्य बन, असुरों के गुरु पुनः कहलाये।।
हे विदुर सब मुनीश्वरों ने, सन्तति पुनः उत्पन्न करी। इस विधि सारी सृष्टि की, इन्होंने ही विस्तार करी।।
ऋषि कर्दम के दौहित्रों की, सन्तान का यह वर्णन किया। जो श्रद्धा से इसे श्रवण करे, पाप नष्ट सब हो उसका।।

ब्रह्मापुत्र दक्ष प्रजापति से, मनुसुता प्रसूति ब्याह किया। अमल लोचना षोड्ष कन्या, को प्रसूति ने जन्म दिया।।
तेरह सुतायें धर्म को दी, एक को अग्नि को सौंपा। एक पितृगण को दे दी, इक को श्री शंकर से ब्याहा।।
प्रभु शंकर तो स्वयं ही, हैं, संहारक इस जग के। उनका भजन करे जो भी, वह जन्म मरण बन्ध से छूटे।।

श्रद्धा मैत्री दया शान्ति, तुष्टि पुष्टि क्रिया उन्नति। बुद्धि मेधा तितीक्षा ऱ्ही, मूर्ति सब धर्म की हैं पत्नी।।
श्रद्धा ने शुभ मैत्री प्रसाद, दया ने अभय को जन्म दिया। शान्ति ने सुख तुष्टि ने मोद, पुष्टि ने अहंकार जन्मा।।
क्रिया ने योग उन्नति ने दर्प, बुद्धि ने अर्थ उत्पन्न किया। मेधा से स्मृति तितिक्षा से क्षेम, ऱ्ही से विनय पुत्र जन्मा।।

समस्त गुणों की स्रोत स्वयं, श्री मूर्ति देवी ने। नर नारायण ऋषियों के, रूप में श्री हरि आप जने।।
इनका जन्म जब हुआ, आनन्दित पूर्ण विश्व हुआ। दिशायें वायु नदी पर्वत, सब जीवों का मन मुदित हुआ।।
आकाश में मंगल ध्वनि, उस समय होने लगी। देवों ने आकाश से, पुष्पों की वर्षा करी।।
मुनि भी हो प्रसन्न मन में, उनकी स्तुति गाने लगे। गन्धर्व और किन्नर भी, निज स्वर उसमें मिलाने लगे।।

अप्सरा गण भी मुदित हो, थीं झूम झूम कर नाच रही। इस विधि आनन्द मंगल, थीं सभी मना रही।।
ब्रह्मा आदि सब देवता गण, स्तुति प्रभु की गाने लगे। विविध स्तोत्रों द्वारा वह, महिमा प्रभु की सुनाने लगे।।
देव बोले,
जिस विधि आकाश में, विभिन्न रूप ही कल्पित हों। उसी विधि माया द्वारा, स्वरूप में सृष्टि कल्पित हो।।
अपने उस स्वरूप को, प्रकाशित करने के लिये। इस समय ऋषि विग्रह धर, वह स्वयं है प्रकट हुए।।
धर्म के घर में श्री हरि ने, आप स्वयं अवतार लिया। उन परम पुरुष पुरुषोत्तम को, नमस्कार ही हो हमारा।।

शास्त्र के आधार पर, केवल अनुमान लगा पायें। जिन श्री हरि के तत्त्व को, प्रत्यक्ष नहीं कोई कर पाये।।
उन श्री हरि ने देवों को, सतोगुण से उत्पन्न किया। संसार की मर्यादा को, वह ही तो हैं रहे चला।।

सब शोभा और सौन्दर्य का, निवास स्थान है कमल जो। प्रभु के नेत्रों के सम्मुख, उसकी महिमा भी क्षीण हो।।
वह करुणा पूर्ण नयनों से, हमारी ओर निहारें अब। शरणागत वत्सल प्रभु स्वयं, उनकी शरण ही हैं हम सब।।
प्रिय विदुर श्री हरि का जब, साक्षात् दर्शन पाया। देवों ने उनकी पूजा की, और उनका स्तुति गान गाया।।
तदनन्तर श्री हरि, श्री नर और श्रीमन्नारायण। गन्धमादन पर्वत पर जा, हुए स्वयं तप परायण।।

श्री हरि के वह अंशभूत, श्री नर और नारायण ही। पृथ्वी का भार उतारन को, अब द्वौ रूप में जन्म ली।।
श्यामल तनधारी यदुभूषण, श्री कृष्ण बनी वह आये हैं। कुरु कुल तिलक श्री अर्जुन भी, उनके ही रूप के साए हैं।।
अग्नि पत्नी स्वाहा ने, भी तीन पुत्रों को जन्म दिया। अग्नि सम ही अभिमानी वह, पावक पवमान शुचि नाम था।।
हवि पदार्थों का भक्षण, यह तीनों ही करते हैं। जो भी समिधा अग्नि में पड़े, उसे ग्रहण यही करते हैं।।

उन तीनों के पुन: पैंतालीस, भाँति के अग्नि पैदा हुए। त्रै पिता एक पितामह; संग, उनचास अग्नि यह कहलाये।।
वैदिक यज्ञ कर्मों में, उनचास अग्नि नामों से। वेदज्ञ आग्नेयी इष्टियां करें, वह तो यही हैं जान ले।।

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप और अज्यप हैं पितर। साग्निक भी हैं इनमें, और निराग्निक भी कोई पितर।।
इन सब पितरों की पत्नी, दक्षकुमारी स्वधा हुई। स्वधा के धारिणी और वायुना, नामक दो कन्यायें हुईं।।
वे दोनों ही ज्ञान और, विज्ञान में पारंगत हैं। और दोनों ही ब्रह्मज्ञान, की महा उपदेशक हैं।।

श्री महादेव जी की पत्नी, श्री सति नाम ही है उनका। सर्वविधि निज पति की ही, सेवा में रहें संलग्न सदा।।
किन्तु निज गुण और शील के, अनुरूप नहीं उन्हें पुत्र मिला। सति के पिता दक्ष ने, अपमानित था शिव को किया।।
बिना किसी अपराध के, था प्रतिकूल आचरण किया। क्रोधावेश में इस कारण, युवती सती ने तन त्यागा।।

२) दक्ष प्रजापति और शिव का मनोमालिन्य व सती का चरित्र

विदुर बोले,
दक्ष तो निज सुताओं से, स्नेह बहुत ही करते थे। निज कन्या सती का वह, अनादर कैसे कर सके।।
अति श्रेष्ठतम शीलवान, श्री महादेव जी स्वयं थे। अपने इस जमाता से, दक्ष द्वेष कैसे कर बैठे।।
चराचर के हैं गुरु स्वयं, शान्त मूर्ति और द्वेष शून्य। जगत् के परम आराध्य देव, आत्म राम वह हैं स्वयं।।
उनसे भला इस जग में कोई, कैसे वैर कमा सके? हे द्विजश्रेष्ठ यह कहें आप, क्योंकर ऐसे वहाँ भाव उठे?

श्वसुर और दामाद में, कैसे यह द्वेष उभर आया? जिसके कारण श्री सती ने, अपने प्राणों को त्याग दिया।।
हे भगवन् आप मुझे, रहस्य यह बताइए। आहुतिवत् निज प्राण क्यों, बलि किये यह सती ने बताइए।।
मैत्रेय मुनि बोले,
पुराकाल में एकदा, प्रजापतियों का यज्ञ हुआ। ऋषि देवता मुनि अग्नि, का वहाँ प्रवेश हुआ।।
अपने अपने अनुयायियों सहित, एकत्रित थे वहाँ सब हुए। हे विदुर उस महायज्ञ के, आयोजन अति महान् थे।।

उसी समय प्रजापति दक्ष, भी पधारे यज्ञ में। निज तेज से वह सूर्यसम, ही प्रकाशवान् थे।।
उनके प्रवेश से सभा के, दूर हुए सब अन्धियारे। उनके तेज को देख सभासद सब, अपने आसन छोड़ हुए खड़े।।

अग्नि पर्यन्त देवता सब, उनको सम्मानित करने लगे। पर ब्रह्मा जी और महादेव, ने आसन निज नहीं त्यजे।।
बैठै बैठे ही दक्ष प्रजापति, का अभिवादन उन्होंने किया। आचरण देख महादेव का, प्रजापति कुछ क्षुब्ध हुआ।।

समस्त सभासदों से जब, भली भाँति सम्मान मिला। जगत्पिता श्री ब्रह्मा को, दक्ष ने फिर प्रणाम किया।।
उनकी आज्ञा लेकर वह, अपने आसनपर बैठ गया। प्रजापतियों का यज्ञ वह, इस विधि फिर आरम्भ हुआ।।

उसने देखा महादेव को, पहले से आसन पर बैठे। अभ्युत्थान के रूप में, आदर सत्कार वहां नहीं मिले।।
उनका यह व्यवहार तो, दक्ष सहन न कर पाये। वक्र दृष्टि से शिव को वह, इस भाँति थे देख रहे।।
मानो निज क्रोध की अग्नि से, भस्म ही उनको कर देंगे। उनके आन्तर के निहित भाव, वाणी से उनकी बह निकले।।

दक्ष बोले,
देवों और अग्नियों सहित, सब ब्रह्मर्षि मेरी बातें सुनें। न तो अज्ञान के कारण ही, न द्वेष से हम यह बात कहें।।
केवल शिष्टाचार की, बात आपसे कहता हूँ। अशिष्ट व्यवहार से हुआ क्षुब्ध आपसे आज मैं कहता हूँ।।
समस्त लोकपालों की, अति पवित्र कीर्ति को। निर्लज्ज महादेव ने, है धूलि धूसरित कियो।।
भद्रगण यह देखें आप, लांछित इसने आचरण किया। सत्पुरुषों के नाम को, है धूलि में मिला दिया।।

सावित्री सम मृगनयनी मेरी, कन्या का पाणिग्रहण किया। अग्नि और ब्राह्मण देवता की, साक्षी में यह सब हुआ।।
सत्पुरुषों के समान ही यह, था इसने आचरण किया। इस विधि एक प्रकार से, यह मेरा पुत्र समान हुआ।।
उचित ही होता गर उठकर, सत्कार मेरा यह कर देता। पुत्रवत् आदर सहित, प्रणाम मुझे यह कर देता।।
बन्दर जैसे नेत्रों वाले, असाधु ने यह नहीं किया। और तो क्या यह कर पाता, नहीं वाणी से भी मान दिया।।

हाय यह कैसा अनर्थ हुआ, ज्यों शूद्र को दे कोई वेद पढ़ा। उसी विधि विधान के, हाथों का मैं यन्त्र बना।।
नहीं इच्छा थी यह मेरी, पर सुकुमारी सुता इसे दी। इसने तो सत्कर्म की, लोप ही पूर्णतय: कर दी।।
सदा अपवित्र यह रहता है, और है यह घमण्ड़ी बड़ा। निज आचरण से इसने की, भंजित लोक की मर्यादा।।

भूत प्रेत का निवास जहां, रहता है मरघट स्थानों में। प्रेतों को संग संग लिये, निरन्तर ही यह भ्रमण करे।।
पूरे पागल की तरह, सिर के बाल बिखेरे हुए। कभी रोता कभी हंसता हुआ, यह नग्न रूप में विचरा करे।।

अपावन भस्म चिता की यह, निज तन पे लपेटे रहे। गले में इसके प्रेतवत्, नरमुण्डों की माला रहे।।
इसके सारे तन में ही, आभूषण अस्थियों के बने। नाम तो इसका शिव कहें, पर महा अमंगल रूप धरे।।
ज्यों यह आप मतवाला है, मतवाले ही इसे प्रिय लगें। भूत प्रेत प्रमथ आदि, है तामस जन का नेता यह।।
ब्रह्माजी के बहकावे में, हाय मैं कैसे आ गया। आचार हीन इस दुष्ट से, निज सुता मैंने दी ब्याह।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर जब दक्ष ने, इस विधि बुरा भला कहा। महादेव ने तब उसका, किसी विधि न प्रतिकार किया।।
निश्चल भाव से पूर्ववत्, वह सभा में बैठे रहे। उनका यह मौन ही दक्ष की, क्रोधाग्नि में ईंधन बने।।
हाथ में जल लेकर के वह, खड़ा सभा में हो गया। महादेव को शापित करने, के लिये तैयार हुआ।।

दक्ष पुन: उनसे बोला, देवों में अधम महादेव आप। इन्द्र उपेन्द्र देवों के संग, नहीं अब से मिले तुम्हें यज्ञ भाग।।
मुख्य मुख्य सभासद जो, उस सभा में उपस्थित थे। बहुत रोका उस दक्ष को, पर वह तो क्रोध के वश में थे।।
अति क्रोधित होकर दक्ष ने, शाप दिया महादेव को। फिर तत्क्षण सभा को छोड़, दक्ष चले अपने घर को।।

श्री शंकर के अनुयायियों में, नन्दीश्वर हैं अग्रणी। दक्ष शाप की यह कथा, जब उनके कानों में पड़ी।।
क्रोध से वह तिलमिला उठे, जिन्होने था दक्ष का साथ दिया। उन ब्राह्मणों सहित दक्ष को, अति भयंकर शाप दिया।।

नन्दीश्वर बोले,
मृत्यु धर्मा इस तन में रह, जो अभिमान है कर रहा। अद्वेष्टा श्री शंकर से, जिसने द्रोह का पाप किया।।
भेद बुद्धि वाला वह दक्ष, तत्त्व ज्ञान से विमुख रहे। जीवन रस सार वह मूर्ख, कभी ब्रह्म ज्ञान न जान सके।।

वेदों में अर्थवाद, रूप में जो हैं वाक्य कहे। चातुर्मास्य यज्ञ से, अक्षय पुण्य प्राप्त होएं।।
इनसे मोहित होकर के, विवेक भ्रष्ट जिनका हुआ। विषय सुख की कामना से, आसक्त गृहस्थ में ही रहा।।
कपटधर्ममय कर्मकाण्ड, में ही लगा वह रहता है। देहादि में ही आत्मभाव, का चिन्तन वह करता है।।
देहात्म बुद्धि में पड़कर, स्वरूप को उसने भुला दिया। साक्षात् पशु समान ही, आचरण है उसका हो रहा।।
अत्यन्त स्त्री लम्पट हो, यह पशु समान ही हो जाये। मानव तन में रहकर भी, बकरे सम उसका मुख हो जाये।।

कर्ममयी अविद्या को, विद्या है मूर्ख समझ रहा। इस कारण यह दुष्ट और, जिन सबने उनका अनुसरण किया।।
प्रभु शंकर के अपमान में, अनुमोदन इसका जिन्होंने किया। जन्म मृत्यु के चक्र में, वे सब पड़े ही रहें सदा।।
वेदवाणी रूपा लता पे फल, श्रुति रूप हैं पुष्प लगे। कर्मफल की मोहक गन्ध से, हैं भ्रान्त इनके चित्त हुए।।
इस कारण शंकर द्रोही, कर्मों के जाल में फंसे रहें। न ही विवेक कभी जागृत हो, न ही इससे वह उभर सकें।।

यह द्विजगण भक्ष्य अभक्ष्य, के विचार को छोड़कर। विद्या तप व्रत का आश्रय लें, केवल निज तन की पुष्टि अर्थ।।
धन तन और इन्द्रिय सुख, को ही सुख यह माना करें। दास उन्हीं का बन करी, जग में भिक्षाटन करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
नन्दीश्वर के मुख से जब, ब्राह्मण कुल को यह शाप मिला। प्रतिकार में ऋषिवर भृगु ने, दे कठिन शाप दण्डित किया।।

भृगु ऋषि बोले,
शिव भक्त जो लोग हैं, और उनके अनुयायी जो हों। सत्शास्त्र विरोधी आचरण करें, और महा पाखण्डी हों।।
शौच आचार विहीन जो लोग, सर्वथा मन्दबुद्धि हैं। जटा राख अस्थियों को जो, अपने पर धारण करते हैं।
दीक्षित हों ऐसे ही लोग, शैव सम्प्रदाय में। मदिरा और आसव जहां, देवों समान ही पूज्य रहें।।

अरे धर्म मर्यादा संस्थापक, और वर्णाश्रमों के रक्षक। ब्राह्मण जन की निन्दा करो, तुम तो दीखो धर्म भक्षक।।
ऐसा भासित है हो रहा, पाखण्ड ही तुम्हारा आधार है। इस कारण ही तुम लोगों का, ऐसा विरोधी विचार है।।
वेदमार्ग ही सनातन है, कल्याणकारी सब जन के लिये। पूर्व पुरुष धर्मधर जो, इस पर ही सदा चलते रहे।।
इसका मूल तो साक्षात्, स्वयं विष्णु भगवान है। इन वेदों के कथन में, वह स्वयं विराजमान् हैं।।

सत्पुरुषों के परम पवित्र, और सनातन मार्ग की। तुम लोगों ने साक्षात्, वेद की है निन्दा करी।।
इस कारण तुम पाखण्ड के, उसी मार्ग को प्राप्त होवो। भूतों के नेता तुम्हरे इष्ट, का जहां पे निवास हो।।

मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर जब भृगु ने, इस प्रकार उन्हें शाप दिया। खिन्न मन होकर श्री शंकर ने, अनुयायियों सहित वहांसे प्रस्थान किया।।

प्रजापति सब मिलकर के, जो यज्ञ वहां थे कर रहे। पुरुषोत्तम श्री हरि स्वयं, उनके उपास्य देव थे।।
एक हजार वर्ष पर्यन्त, चलने वाला अनुष्ठान वह था। इव अवधि में ही उसकी, समाप्ति का विधान था।।
प्रजापतियों ने उस यज्ञ को, विधिवत् जब सम्पन्न किया। श्री गंगा यमुना संगम में, यज्ञान्त उन्होंने स्नान किया।।
प्रसन्न मनी अपने अपने, स्थानों को वह चले गए। इस प्रकार महायज्ञ वह, विधिवत् सब सम्पूर्ण हुआ।

मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर इस विधि, परस्पर द्वेष से भरा हुआ। श्वशुर और जमाता का, दीर्घ समय व्यतीत हुआ।।
ब्रह्मा जी ने इसी अवधि में, दक्ष को आधिपत्य दिया। समस्त प्रजापतियों का उसे, अधिपति बना दिया।।
इस कारण दक्ष का गर्व, पहले से भी बहुत बढ़ा। पहले ही श्रेष्ठ निज को माना, अब तो गुमान का अन्त न था।।

भगवान श्री शंकर आदि, ब्रह्मनिष्ठों का अपमान किया। उन सबको यज्ञ में, उनका भाग नहीं दक्ष दिया।।
पहले तो इस विध उसने, वाजपेय नामक यज्ञ किया। फिर बृहस्पतिसव नाम का, महायज्ञ आरम्भ हुआ।।
यज्ञोत्सव में सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि देवगण और पितर। सब के सब पत्नियों सहित, यज्ञ स्थल में पधारे तब।।
सबने ही मिल जुल के वहाँ, सम्पन्न मांगलिक कार्य किये। दक्ष ने भी उत्साह से, सबके स्वागत सत्कार किये।।

आकाश मार्ग से जाते हुए, देवतागण परस्पर में। दक्ष के महायज्ञ की, महिमा का गान थे कर रहे।।
उनके मुख से दक्षकुमारी, सती ने भी यह बात सुनी। निज पिता के घर हो रहे, यज्ञ की चर्चा कानों में पड़ी।।

सती ने देखा उसके निवास, कैलास के पास से होकर के। बहुत सुन्दर सजे विमान थे, दम्पतियों को लिये जा रहे।।
गन्धर्व यक्षों की स्त्रियाँ, सब ओर से थीं चंचल नेत्रा। स्वर्णिम कुण्डल गले के हार, रहे थे जगमग छटा फैला।।
निज पतियों संग विमानों में, यज्ञोत्सव में हैं जा रही। यह देखकर सती के मन, उत्सुकता इक जाग उठी।।
निज पति श्री भूतनाथ से, सविनय सती ने यह कहा। अपने मनोभाव को, सामने उनके धर दिया।।
सती बोली,
हे वामदेव है मैंने सुना, तव श्वशुर प्रजापति दक्ष के। महान् यज्ञ उत्सव के, आयोजन ही हैं हो रहे।।
यह देवता गण सारे, वहां पे ही हैं जा रहे। यदि आपकी इच्छा हो, तो हम भी वहां के लिए चलें।।
इस अवसर पर मेरी बहिनें सब, निज पतियों संग वहाँ आयेंगी। आत्मीय जन को मिलने का, वह मौका नहीं गंवायेंगी।।
हे देव यह इच्छा है मेरी, मैं भी जाऊँ वहाँ आपके संग। माता पिता के दिये हुए, वस्त्राभूषण फिर पाऊँ सब।।

अपने अपने पतियों से, अति सम्मानित मेरी बहिनें। मौसियों और मम जननी से, मिलने को मन है तरस रहा।।
इस अवसर पर महर्षियों ने, श्रेष्ठ यज्ञ भी रचाया है। उसको देखने को भी प्रिय, इस पल मेरा मन ललचाया है।।

हे अजम प्रभु इस जगत् की, उत्पत्ति का हैं हेतु आप। तीनों जगत माया रचित यह जग, रहा आश्चर्यमय आपमें भास।।
अनभिज्ञ हूँ मैं अबला जो हूँ, आपके तत्त्व को न जानूँ। हूँ दीन हीन मैं आपकी, महिमा को न पहचानूँ।।
पर इस पल हे देव मेरे, आतुर बहुत हूँ हो रही। जन्म भूमि निज देखने को, धैर्य हूँ अपना खो रही।।

हे नीलकण्ठ अनादि आप, देखें इन सब की महिमा। नहीं दक्ष से नाता भी कोई, ऐसी अनेकों रमणियां।।
निज पतियों के संग वहां, अति सज धज कर हैं जा रहीं। अनेकों झुण्डों में यह सब, मेरे पिता के घर की ओर चलीं।।
राजहंस समान श्वेत, इनके विमान हैं अति सुन्दर। इन सबके सौन्दर्य से आज, है सजा आकाश मण्डल।।

हे सुरश्रेष्ठ ऐसे में क्या, पुत्री का मन न व्याकुल हो? निज पितृगृह में उत्सव का, समाचार सुन न आकुल हो?
पति गुरु या माता पिता, ऐसे सुहृदयों के यहां। बिना आमन्त्रण पाये भी, जाने का है विधान सदा।।

अत: देव हों प्रसन्न मुझपे, मेरी इच्छा यह पूर्ण करें। अति करुणामय हैं आप प्रभु, अनुग्रह मुझपर आप करें।।
पूर्ण ज्ञानी होकर भी, आपने मुझे स्वीकार किया। मुझ अज्ञा को आपने, अर्धांगिनी का स्थान दिया।।
अब मेरी इस याचना पर, ध्यान आप प्रभु दीजिए। मेरे पितु गृह जाने का, अब आयोजन कीजिए।।
मैत्रेय मुनि बोले,
प्रिया सती ने इस विधि, श्री शंकर से जब प्रार्थना करी। कल्याणकारी श्री शंकर की, स्मृति पुन: उभर आई।।
समस्त प्रजापतियों सम्मुख, दक्ष ने थे जो वचन कहे। मर्मभेदी उन वचन रूप, बाणों के घाव पुन: हरे हुए।।
हंसकर तब भोले शंकर, निज प्रिया सती सों यूं बोले। उनको समझाने के लिये, गुह्य रहस्यमय वचन कहे।।
शंकर बोले,
हे सुन्दरि जो तुने बात कही, निज बान्धव के घर जाने की। बिना बुलाये भी उसके, उत्सव में मिलकर आने की।।
सो तो ठीक ही बात है, पर उसमें भी है विधान एक। कब ऐसा करना उचित हो, इसका भी दें शास्त्र आदेश।।
प्रबल देहाभिमान जनित, मद और क्रोध से आवृत्त हो। जब तक उनकी दृष्टि, द्वेष दोष से युक्त न हो।।
तब तक ही यह विधान है, बिना बुलाये जाओ वहाँ। द्वेष दोष गर वहां भरा, तो काम है क्या जाने से वहाँ?

विद्या तप धन सबल शरीर, युवावस्था और उच्च कुल। सत्पुरुषों के यह छ: सद्गुण, नीच के लिये बनें अवगुण।।
क्योंकि इन सबको पाकर, अभिमान उसका बढ़ जाता है। दोष दृष्टि जब उठी आये, विवेक नष्ट हो जाता है।।
इससे आवृत्त होकर वह, नहीं जानें महापुरुष का प्रभाव। गुण ग्राही दृष्टि का, वहाँ सर्वथा हो अभाव।।

जो अपने यहाँ आये हुए, पुरुषों का अपमान करें। कुटिल बुद्धि वह भौं चढ़ाकर, दृष्टि में भी रोष भरें।।
अव्यवस्थित चित्त उन लोगों से, निज नाता भी भुलाइए। यह हमारे बान्धव हैं, इस भाव से वहाँ न जाइए।।

हे देवि जब शत्रु भी, अपने बाणों से बेन्ध दे। उस व्यथा से भी इस विध, हृदय यह पीड़ित न भए।।
ज्यों कुटिल बुद्धि स्वजनों के, कुटिल वचन ही बेन्ध दें। बाण तो तन आहत करे, पर वचन तो मन ही बेन्ध दें।।
तन घायल जब हो जाये, ज्यों त्यों निद्रा विश्राम दे। दुर्वचन से मर्माहत हो, दिन रात हृदय बेचैन रहे।।

सौन्दर्यमयी निश्चित ही मैं, नहीं इस सत्य से भी अनजान। परमोन्नत दक्ष प्रजापति की, तुम हो परम प्रिय सन्तान।।

फिर भी क्योंकि मेरी पत्नी हो, तुम मान नहीं वहाँ पाओगी। मुझसे बहुत वह द्वेष करे, सन्ताप ही वहाँ उठाओगी।।
जीव की चित्त वृत्ति का, साक्षी है यह अहंकार। अहं से जो हैं हुए शून्य, उनकी तो है महिमा अपार।।

उनकी समृद्धि देखकर, जिसका हृदय सन्तप्त हो। इन्द्रियां भी उसकी व्यथित रहें, नहीं इक पल उसको शान्ति हो।।
वह पुरुष उनके पद को, सुगमता से नहीं पा सके। ज्यों दैत्य प्रभु से द्वेष करें, वह हर पल उनपे कुढ़ता रहे।।
सुमध्यमे यह जानें हम, तुम्हारे हृदय का भाव जो। आदर क्यों सभा में नहीं किया, तुम हमसे यह कह सकती हो।।
सम्मुख जाकर प्रणामादि, विनम्रता सहित जो लोकाचार। तत्त्वज्ञानियों द्वारा तो, हो इनका उचित व्यवहार।।
अन्तर्यामी रूप से, सबके अन्त:करण में स्थित। उस परम पुरुष वासुदेव को, ही प्रणाम करें वह नित्य।।
देहाभिमानी पुरुष को, नहीं नमस्कार वह करते हैं। तत्त्वज्ञ वह देह सम्मुख, झुका नहीं कभी करते हैं।।

विशुद्ध अन्त:करण का ही, नाम कहें है वासुदेव। उसमें ही तो दर्शन हो, परोक्ष अनुभव से वासुदेव।।
इन्द्रियों से है अतीत जो, उस शुद्ध चित्त में स्थित रहे। उन वासुदेव प्रभु को ही, सदा मेरा नमस्कार भए।।

इसलिये हे प्रिया सुनो, प्रजापतियों से जब भरी सभा। निरापराधी ही था मैं, पर अपने कटु वचन द्वारा।।
उसने किया मम तिरस्कार, नहीं मैंने कोई प्रतिकार किया। यद्यपि वह दक्ष ही तेरा, तन का है जन्म दाता।।
फिर भी उसने मेरे प्रति, शत्रुवत् व्यवहार किया। उससे और उसके अनुयायियों से, क्या हो सके सम्बन्ध तेरा?
इसलिए मेरी बात सुनो, यह विचार तुम छोड़ दो। उनको देखने मिलने की, बात भी निज उर नहीं धरो।।

अवज्ञा यदि मेरी करके, तुम वहां पे फिर भी जाओगी। तो प्रिय तुम्हें सत्य कहूं, विपरीत ही फल तुम पाओगी।।
जब कोई आत्मीय जन ही, निज बन्धु का अपमान करे। उसको सह पाना कठिन है, तत्काल वह मृत्यु निमित्त बने।।
मैत्रेय मुनि बोले,
इतना कहकर प्रभु शंकर, पुन: मौन ही हो गये। दोनों ही अवस्था में, सती मनो दशा वह जाने थे।।
यदि रोका गया उनको, या फिर जाने भी दिया। दोनों ही अवस्था में, है प्राण त्याग सम्भावना।।
दूजी और श्री सती का मन, भी खिन्न था बहुत हुआ। एक ओर का निर्णय वह, कर नहीं थीं रहीं पा।।
बन्धु जन मिलने की इच्छा, बाहर थी उन्हें ले आती। कहीं शंकर रुष्ट न हो जायें, यह सोच पुन: उन्हें लौट आती।।
इस प्रकार किसी एक ओर, का निर्णय नहीं वह कर सकीं। अति चंचल था चित्त हुआ, दुविधा में थीं वह पड़ीं।।

बान्धव जन को मिलने की, इच्छा में जब विघ्न पड़ा। खिन्नमनी वह हो गईं, उद्विग्न उनका चित्त हुआ।।
स्वजनों के स्नेह विवश, उनकी हृदय थी प्रेम भरी। अति व्याकुल था मन हुआ, आंखों से अश्रुधार बही।।
तन भी थर थर था कांप रहा, नयनों में था अति रोष भरा। ऐसी दृष्टि करी शंकर पे, मानो भस्म उन्हें कर देगा।।

शोक और क्रोध कारण, था चित्त उनका बेचैन हुआ। स्त्री स्वभाव के कारण था, मूढ़ता ने बुद्धि को ग्रसा।।
प्रीति के वश जिन शंकर ने, निज अर्ध अंग था उन्हें दिया। सत्पुरुषों के प्रिय शंकर को, भी उस पल सती ने छोड़ दिया।।
लम्बी आहें भरती हुई, वह पिता के घर की ओर चलीं। इस विधि श्री सती के मन के, भावों की वहाँ जीत हुई।।

सती को जब स्फूर्ति से, अकेले ही जाते देखा। महादेव के मणिमान् मद, और सहस्रों सैनिकों ने देखा।।

प्रभु के वाहन वृषभराज तो, उन सबसे आगे हुए। अनेकों यक्ष पार्षदों सहित, निर्भय सब उनके पीछे चले।।

वृषभ देव पर महासती, को उन्होने बिठा दिया। फिर सारी सामग्री ले, दल बल उनके पीछे चला।
मैना गेंद दर्पण कमल, आदि खेल सामग्री ली। श्वेत-छत्र चंवर माला, राजचिन्ह भी संग में ली।।
दुन्दुभी शंख और बांसुरी, गायन वादन साथ लिये। इन सबसे सुसज्जित हो, सती के साथ वह चल दिये।।

समस्त सेवकों सहित सती, पहुँची दक्ष की यज्ञशाला। ब्राह्मणों की वेदध्वनि में, आपसी होड़ का भाव था।।
सबका यह ही भाव था, सर्वोच्च स्वर उसका गूंजे। सब ओर वहाँ ब्रह्मर्षि और, देवता गण थे विराज रहे।।
जहाँ तहाँ यज्ञशाला में, थे चमकीले पात्र पड़े। मिट्टी काठ लोहे सोने, डाभ और चर्म के बने वह थे।।

जब सती पितृ गृह पहुँची, पिता ने उसकी अवहेलना की। दक्ष के भय से किसी ने भी, आदर सत्कार न उसकी करी।।
केवल जननी और बहिनों से, सती को मन भर प्यार मिला। बहिनों ने और माता ने, गले से उसे लगा लिया।।
पिता द्वारा अपमानित हो, सती ने भी प्रतिकार किया। कुशलक्षेम और प्रेम पूर्ण, बहिनों का वार्तालाप जो था।।
माता और मौसियों ने, जो आसन उपहार दिया। क्षुब्ध सती ने उन सबको, तनिक भी न स्वीकार किया।।

यज्ञमण्डप में तो था, सर्वेश्वरी का अपमान हुआ। नहीं शंकर का कोई भाग वहां, यह भी उन्होंने देख लिया।।
पिता दक्ष पतिदेव का, अपमान बहुत है कर रहा। यह देख करी सती के मन में, आवेग क्रोध का उमड़ पड़ा।।
उनके मुख पे रोष का, भाव था ऐसा प्रदुर हुआ। मानों सम्पूर्ण लोकों को, अपने में भस्म वह कर देगा।।

कर्म मार्ग अनुसरण कर, था दक्ष अति घमण्डी हुआ। अंग अंग से उसके तो, शिव प्रति द्वेष था फूट रहा।।
यह देख सती संग आये भूत, उद्यत हुए उसे मारने को। निज तेज से श्री सती ने, उन सबको ही रोक दियो।।
सब लोगों को सुनाकर के, सती ने पिता की निन्दा की। क्रोध विक्षिप्त वाणी से, पिता को उसने वचन कहा।।
सती बोली,
प्रभु शंकर से बड़ा जग में, हे पिता दूसरा कोई नहीं। हैं आत्म वही देहधारियों के, नहीं उनके सिवा कोई कहीं।।
न तो प्रिय कोई है उनका, न ही अप्रिय है कोई भी। न ही किसी भी प्राणी से, रखें इस जग में वैर कभी।।
सबके कारण वह आप ही हैं, स्वयं ही हैं वह सर्व रूप। आपको छोड़ के नहीं कोई, कभी जा सके उनके विरुद्ध।।

रही दुर्गुण की तो बात दूर, सबको जानें जो गुण रूप। भोले शंकर की बात ही क्या, वह तो हैं सद्गुण स्वरूप।।
थोड़े से भी गुण को वह, बहुत विस्तृत करना चाहते हैं। श्रेष्ठ वह साधु हैं जग में, जो गुण पे दृष्टि टिकाते हैं।।
खेद हुआ यह देख मुझे, आपने यह अपराध किया। ऐसे महापुरुष पर भी, दोषारोपण कर दिया।।
आप सदृश हैं लोग जो, देखें परगुण में भी दोष। क्या महिमा समझ सकें उनकी, जो हैं स्वयं ही आशुतोष।।

शव रूपा इस जड़ तन को, ही आत्म जो हैं मान रहे। यदि ईर्ष्यावश वह सर्वदा ही, महापुरुषों की निन्दा करें।।
है इसमें नहीं आश्चर्य कोई, महापुरुष न उसपे ध्यान दें। पर उस चरण की धूलि तो, इस अपराध को नहीं सहे।।
वह तो ऐसे जीवों का, सम्पूर्ण तेज ही नष्ट करे। श्रेष्ठ जनों की निन्दा तो, दुष्ट पुरुष ही कर सकें।।

दो अक्षर के शिव नाम, की है यह महिमा अपार। इक बार भी गर मुख से निकले, सब पापों का कर दे वह नाश।।

जिनकी आज्ञा की जग में, नहीं कोई अवज्ञा कर सके। पावन कीर्ति मंगलमय, उस शिव से आप हैं द्वेष करें।।
निश्चय ही पाप कोई आपका, उदय होई उठ आया है। जिस कारण यह अमंगलमय, रूप आपने धराया है।।

ब्रह्मानन्द रसपान के, पिपासु महापुरुषों के मन। जिनके श्री चरणों का सदा, करते रहते हैं सेवन।।
सकाम पुरुषों को जिनके, चरण कमल दें अभीष्ट फल। विश्व बन्धु उन शिव के प्रति, कैसे धरा मन में यह मल?

हैं केवल नाममात्र वह शिव, है वेष अमंगल और अपवित्र। नहीं मानते इस बात को, कोई देवता आपके अतिरिक्त।।
मरघट के निवासी शिव, नरमुण्ड माला पहनते हैं। चिता की भस्म और अस्थियां, ही आभूषण जिनके हैं।।
भूत पिशाचों के संग वह, बाल बिखेरे रहते हैं। श्मशान भूमि ही निवास स्थान, वहाँ पे नित्य वह रहते हैं।।
उनके चरणों से ही जो, अमृत बनकर बहता है। ब्रह्मा आदि सब देवों का, शिरोधार्य वह होता है।।

धर्म मर्यादा के रक्षक, अपने पूज्य स्वामी की। निरंकुश लोगों ने कभी, उद्दण्डता से गर निन्दा की।।
यदि शक्तिहीन हों स्वयं वह, उनका प्रतिकार न कर सकें। बन्द करी निज कर्णरन्ध्र, उस स्थान से प्रस्थान करें।।
यदि शक्ति आपको प्रभु ने दी, तो बलपूर्वक उसे दण्ड दें। बकवादी अमंगलकार, उस जिह्वा को ही काट दें।।
धर्म यही है जीव का, यह पाप रोकने के लिये। यदि आवश्यक हो जाये, तो अपने प्राण भी त्यज दे।।

प्रभु नीलकण्ठ की आपने, है इस विधि निन्दा करी। आपसे जन्म मिला जिसको, उस तन को नहीं मैं रख सकती।।
यदि विषैली वस्तु कोई, प्राणी भूल से खा जाये। वमन करी बाहर वह करे, तभी शुद्ध वह हो पाये।।

जो मुनिगण निरन्तर ही, निज स्वरूप में रमण करें। वेद के विधि निषेध का, अनुसरण नहीं उनकी बुद्धि करे।।
ज्यों देवों और मनुष्यों की, गति एक नहीं होती है। त्यों ही ज्ञानी अज्ञानी की, स्थिति भिन्न ही होती है।।
इसलिए जीव को चाहिए, सदा अपना धर्म अनुसरण करे। फिर भी किसी दूजे जीव के, मार्ग की निन्दा नहीं करे।।

प्रवृत्ति और निवृत्ति के, दोनों जो हैं कर्म कहे। वास्तव में यह दोनों ही, उचित ही तो हैं कहे।।
वेद में दो प्रकार के, हैं उनके अधिकारी कहे। रागी प्रवृत्ति है एक की, दूजे की वैरागी कहें।।
परस्पर दोनों एक दूसरे, के विरोधी मार्ग कहे। एक पुरुष के द्वारा ही, अनुसरण न द्वौ का हो सके।।
प्रभु शंकर तो स्वयं ही, परम ब्रह्म परमात्म हैं। दोनों में से एको कर्म, नहीं उनके लिये अनिवार्य है।।

हे पिता हमारा तो, अव्यक्त ही ऐश्वर्य हो। कोई आत्म ज्ञानी पुरुष ही, उसके सेवन् में सामर्थ हो।।
उस ऐश्वर्य का आप कभी, अनुमान भी न लगा सकें। यज्ञशाला में हवि अन्न से, बस तृप्ति आप ही पा सकें।।
इस विधि प्राण पोषण करके, महिमा न उनकी जान सकें। कर्मठ लोग सदाशिव का, ऐश्वर्य नहीं पहचान सकें।।

आपने प्रभु शंकर के, प्रति है अपराध किया। आपसे उत्पन्न निन्दनीय, इस तन से अब क्या काम मेरा।।
लज्जित हूँ मैं आप सम, दुर्जन से है सम्बन्ध मेरा। धिक्कार है मेरे जन्म को, ऐसा अपराधी जनक मेरा।।

हूँ आपसे सम्बन्धित मैं, यह दर्शाने के हेतु। हंसी में ही दाक्षायिणी, कहकर पुकारेंगे प्रभु।।
उस पल विनोद को भूल कर, लज्जा और खेद करूँगी मैं। इस कारण अब उस पल की, प्रतीक्षा नहीं करूँगी मैं।।

उससे पहले आपके द्वारा, उत्पन्न हुए इस तन को। शवतुल्य ही जानकर, त्यजूं मैं उसी त्क्षण ही इसको।।
मैत्रेय मुनि बोले,
कामादि शत्रुओं को, जिसने है अपने वश में किया। उस दक्ष को हे विदुर, यज्ञशाला में यह वचन कहा।।
ऐसा कहकर सती देवी, मौन होकर बैठ गईं। उत्तर दिशा में भूमि पर, ही आसन उन्होंने ग्रहण किया।।
आचमन करके उन्होंने, पीत वस्त्र तन पे ओढ़ा। अपना तन छोड़ने को फिर, योग मार्ग में स्थित किया।।

आसन को फिर स्थिर करके, उन्होंने प्राणायाम से। नाभिचक्र में स्थिर किये, प्राण अपान एक करके।।
फिर उदान वायु को, नाभि चक्र से उठा। धीरे धीरे बुद्धि संग, हृदय में स्थापित कर दिया।।
तत्पश्चात् आनन्दिता, और निर्मल स्वरूपा सती। हृदयस्थ वायु कण्ठ मार्ग से, भृकुटी बीच में ले गईं।।

महापुरुषों के भी पूज्य जो, ऐसे प्रभु महादेव ने। अनेकों बार आगोश में, लिया जिसे बहु आदर से।।
दक्ष पर अति क्रुद्ध हो, त्यागने की उसे इच्छा की। मनस्विनी सती ने अंगों में, वायु और अग्नि की धारणा की।।

निज पति जगद्गुरु शंकर के, श्री चरण कमल का ध्यान कर। अन्य सभी कुछ भुला दिया, उस मरकन्द का पान कर।।
उन श्री चरणों के सिवा, नहीं था कुछ भी दीख रहा। सर्वथा वह निर्दोष हुई, नहीं देहाभिमान तनिक भी रहा।।
दक्षसुता ही हूँ मैं, यह भी नहीं उन्हें याद रहा। योग अग्न से तुरन्त ही, उनका तन जलने लगा।।

वहाँ उपस्थित देवादि, जिन्होंने था देखा यह दृश्य। इस चरित्र को देख कर, हुए महाश्चर्य चकित।।
हाहाकार वह करने लगे, भयंकर कोलाहल हुआ। आकाश और पृथ्वी तल सब, उस ध्वनि से गूंज उठा।।
सब ओर से एक ही, ध्वनि थी कान में पड़ रही। दक्ष के दुर्व्यवहार से, हाय सती अति कुपित हुई।।
देवादिदेव महादेव की, अर्धांगिनी उनकी प्रिया। सती ने पितु का भाव देख, निज तन को ही त्याग दिया।।

चराचर जीव जगत् के सब, इस दक्ष की ही सन्तान हैं। फिर भी इस दक्ष ने देखो, करी दुष्टता यह महान् हैं।।
इसकी पुत्री शुद्धहृदया सती, तो थी सदैव मान योग्य। किन्तु निरादर इसने किया, त्यागा उन्होंने निज प्राण का मोह।।
वास्तव में ब्राह्मण द्रोही, और असहिष्णु है यह दक्ष। संसार में अब तो फैलेगा, इसका यह महा अपयश।।
इसकी पुत्री सती ने जब, इसके अपराध का द्रोह किया। हुईं प्राण त्यागने को उद्यत, नहीं इसने कोई विरोध किया।।

जिस समय सब लोग परस्पर, ऐसी बात थे कर रहे। सती का अद्भुत प्राण त्याग, देखी शिव पार्षद स्तब्ध थे।।
अस्त्र शस्त्र लेकर के वह, उद्यत हुए दक्ष वध के लिये। शिव पार्षदों ने इस विधि, निज स्वामी सेवन् किये।।
उनके आक्रमण का वेग देख, महर्षि भृगु उठ खड़े हुए। यज्ञ में विघ्न न डाले कोई, इस उद्देश को हृदय धरे।।
अपहतं रक्ष आदि मन्त्रों का, उच्चारण करते हुए। दक्षिणा अग्नि आहूति दी, यज्ञ में महर्षि भृगु ने।।

अध्वर्यु भृगु ने ज्यों ही, आहूति छोड़ी अग्नि में। यज्ञकुण्ड से ऋभु नामक, सहस्त्रों तेजस्वी देव प्रकटे।।
निज तपस्या के बल पर, था चन्द्रलोक को प्राप्त किया। श्री महर्षि भृगु का तो, ऐसा ही प्रभाव था।।
ब्रह्म तेज से सम्पन्न देवों ने, ज्वलनशील लकड़ी को ले। आक्रमण किया जब उन जन पे, गुह्यक प्रमथ गण भाग गए।।

देवर्षि नारद के मुख से, महादेव ने जब वृतान्त सुना। अपमानित हो पिता दक्ष से, सती ने प्राणों को त्यागा।।

यज्ञवेदी से प्रकट हुए, सहस्त्रों ही ऋभुओं ने। उनकी सेना को मार दिया, और पार्षद शिव के नष्ट हुए।।
यह सुनकर श्री महादेव, क्रोध आवेग से भर गए। उन्हें दण्ड देने के लिये, उग्र रूप वह स्वयं हुए।।

उग्र रूप था धर लिया, क्रोध से होंठ थे रहे चबा। निज जटा की एक लटा, को उन्होंने उखाड़ लिया।।
विद्युत और अग्नि ज्योति सम, वह प्रज्ज्वलित थी हो रही। सहसा खड़े होकर शिव ने, अति गम्भीर अट्टहास करी।।
फिर उस जटा को उन्होंने, पृथ्वी पर ही पटक दिया। उससे विशालकाय पुरुष, तुरन्त एक उत्पन्न हुआ।।
इतना विशाल था तन उसका, स्वर्ग को स्पर्श था कर रहा। सहस्त्रों ही भुजाओं से, वह शरीर सम्पन्न था।।

मेघ सम श्यामल सुन्दर, ही उस पुरुष का वर्ण था। सूर्य सा कान्तिवान वह, तीनों नेत्र में मानो अग्न भरा।।
विशाल द्रष्टा थी उसकी, और रक्तिम् थे केश बने। गले में नरमुण्डों की, भाला था वह पहने हुए।।
भाँति भाँति के अस्त्र शस्त्र, से सुसज्जित हाथ था। मानो संहार वह करने को, इक पल में तत्पर हुआ।।

हाथ जोड़ कर शंकर से, कर्त्तव्य प्रथम अपना पूछा। हे शंकर कहें मैं क्या करूं, है मेरे लिए आदेश क्या?
अपना मानी श्री भूतनाथ ने, तब उससे यह वचन कहे। वीर रुद्र तू जान ले, मेरा ही तू अंश है रे।।
मेरे पार्षदों का अधिनायक, बनकर तुरन्त वहाँ जाओ। दक्ष और उसके यज्ञ को, तुरन्त ही तुम विध्वंस करो।।

देवादिदेव प्रभु शंकर ने, जब क्रोध युक्त हो आज्ञा दी। तब वीरभद्र तत्पर हुए, और महादेव की परिक्रमा करी।।
उस समय उनको ऐसा, अनुभव था कुछ हो रहा। मानो इस जग में उनका, नहीं सामना कोई कर सकता।।
दूजी ओर वह अति महान्, वीरों के वेग भी सहन करें। इस विश्वास और श्रद्धा से, वह दक्ष यज्ञ में जा पहुँचे।।

कराल त्रिशूल हाथ में ले, अति भयंकर नाद करी। दक्ष के यज्ञ मण्डप की, ओर उन्होंने मुख करी।।
त्रिलोकी का ही संहारक, मानो उसका त्रिशूल था। वह तो स्वयं ही मृत्यु का, भी संहार था कर सकता।।
प्रभु रुद्र के अन्य भी, बहुत वीर बहु सैनिक थे। गर्जना करते हुए सभी, उनके पीछे हो लिये।।
वीरभद्र के चरणों में, नूपुर जो थे बन्ध रहे। झननन् पायल के समान, वह ध्वनि थे कर रहे।।

दूजी ओर यज्ञशाला में, ऋत्विज यजमान और सदस्य। ब्राह्मण और उनकी पत्नियों ने, उत्तर अभिमुख हो देखा जब।।
वहां से उड़ती धूलि देख, उनके मन में यह सोच उठी। अन्धेरा यह कैसा हुआ, यह धूलि कहाँ से छा गई?
न तो कहीं आन्धी चली, न ही दस्यु: का शोर कहीं। दे कठिन दण्ड अपराधियों को, राजा जीवित हैं प्राचीनबर्हि।।
गोधूलि का समय भी, अभी तलक तो नहीं हुआ। फिर धूलि कहां से यह उठी, क्या आई जग की प्रलय बेला?

तब दक्ष सुता प्रसूति तथा, अन्य स्त्रियों ने यह वचन कहे। व्याकुल हृदय थे उनके हुए, पीडित ही उनके उद्गार थे।।
प्रजापति दक्ष ने आज, सब कन्याओं के सामने। निरपराधी सती के हैं, इस विधि तिरस्कार किये।।
ऐसा प्रतीत हो यह सब तो, उसका ही फल है मिल रहा। तड़पाया निरपराध को, विधाता भी है कुपित हुआ।।

संहारमूर्ति रुद्र के, अनादर का परिणाम है यह। काल की गति से ज्यों, प्रलयकाल उपस्थित हो जाये।।
निज जटाजूट फैला कर के, शस्त्र सुसज्जित भुजा फैला। ऐसा ही इस पल भासे, ज्यों ताण्डव काल का हो रहा।।
उनके त्रिशूल की नोकों से, महादिग्गज भी बिन्ध जाते हैं। महाकाल के प्रभाव से, नहीं कभी कोई बच पाते हैं।।

मेघ की गर्जन के समान, भयंकर वा अट्टहास हो। उस गर्जन से ऐसा लगे, दिशायें सब विदीर्ण हों।।

उनका तेज असह्य है, अति कुटिल टेढ़ी भौहें। विशाल दाढ़ौं से उनकी, अस्त व्यस्त नक्षत्र भएं।।
क्रुधित हुए प्रभु शंकर को, बार बार जो कुपित करे। कल्याण कभी उसका न हो, चाहे वह विधाता ही होए।।
दक्ष यज्ञ में आये हुए, जो थे महात्मा जन बैठे। भय कारण इक दूजे को, कातर दृष्टि से निहारे थे।।
इस भाँति वह तरह-तरह, की बातें थे कर रहे। धरती आकाश में इतने में, भयावह सहस्त्र उत्पात हुए।।

हे विदुर फिर उसी समय, आए रुद्र के सेवक सब। उस महायज्ञमण्डप के, चारों ओर से घेरा डाला तब।।
भाँति भाँति के अस्त्र शस्त्र, उन सबने थे उठाये हुए। भिन्न भिन्न ही रूपों में, योधा वह थे सब खड़े।।
कोई तो बौने थे उनमें, अन्य कोई भूरे रंग के। पीतवर्ण थे अन्य कोई, मगर सम पीठ और मुंह वाले।।

उनमें से किसी ने तो, प्राग्वंश तोड़ डाला। किसी न पश्चिम ओर स्थित, पत्नीशाला को नष्ट किया।।
किन्हीं अन्य ने सामने का, सभा मण्डप ही तोड़ दिया। मण्डप के आगे जो स्थित, थी उत्तर में अग्नीध्रशाला।।
किन्हीं ने अपने तेज से, उसको नष्ट ही कर दिया। यजमान और अतिथि गृह को, नष्ट भ्रष्ट ही कर दिया।।

यज्ञ अर्थ जो पात्र भी, था वहां पे पड़ा हुआ। नष्ट किया उसको किसी ने, तो किसी ने अग्नि ही दी बुझा।।
यज्ञकुण्ड को मूत्र से, अपावन किसी ने कर दिया। किसी ने वेदी सीमा के, सूत्रों को ही तोड़ दिया।।
कोई मिलकर मुनियों को, ही ताड़ित करने लगे। स्त्रियों के निकट जा अन्य कोई, भयभीत उन्हें करने लगे।।
किन्हीं ने अपने निकट से, घबरा कर जाते हुए। देवों को ही पकड़ लिया, बल अपना दिखलाते हुए।।

मणिमान ने मिलकर के, भृगु ऋषि को बान्ध लिया। वीरभ्रद ने प्रजापति, दक्ष को अपना बन्दी किया।।
चण्डीश ने पकड़ा पूषा को, नन्दीश्वर ने भग देव को। इस विधि सब रुद्रों ने, मिलकर यह उत्पात कियो।।
श्री शंकर के पार्षदों की, भयंकर लीला देखकर। उनके कंकर और पत्थरों की, मार से बहुत तंग आकर।।
ऋत्विज देवता और सदस्य, जहाँ तहाँ सब भाग गए। रुद्रों से निज रक्षण हेतु, विभिन्न दिशा में जाय छिपे।।

हाथ में स्रुवा लिये भृगु, हवन वहाँ थे कर रहे। दाढ़ी मूंछ से पकड़ कर, वीरभद्र ने नोच लिये।।
प्रजापतियों की सभा में, इन्होंने था अट्टहास किया। मूंछें ऐंठ कर अपनी, महादेव का था उपहास किया।।
क्रोधोन्मत्त हो भगदेव को, पृथ्वी पर उसने पटका। और उसके नेत्रों को, अपने हाथों से नोच लिया।।
देव सभा में दक्ष ने जब, बुरा भला था उन्हें कहा। उत्साह बढ़कर दक्ष का, था इन्होंने ही प्रेरित किया।।

अनिरुद्ध के विवाह पे ज्यों, बलराम ने थे उखाड़े दाँत। कलिंग राज के दाँतों को, उखाड़ दिया उन्होंने फेंक।।
उसी विधि पूषा के भी, तोड़ दिये इस पूर्ण दाँत। वीरभद्र के क्रोध का, नहीं हुआ कहीं भी विराम्।।
क्योंकि जब दक्ष ने दीं थीं, महादेव को गालियां। तब दाँत दिखाकर हंसे थे यह, नहीं करुणा का कहीं नाम था।।

फिर दक्ष की छाती पर चढ़कर, इक तीव्र धार हाथों में लिये। जब सीस छिन्न उसका करने लगे, सफल वह उसमें नहीं हुए।।
बहुत प्रयत्न करने पर भी, धड़ सिर से अलग न कर सके। किसी विधि वह दोनों को, अलग अलग न कर सके।।
जब किसी भाँति के अस्त्र शस्त्र, दक्ष त्वचा न काट सके। आश्चर्य चकित हो वीरभद्र, बहुत देर विचार निमग्न रहे।।

यज्ञ मण्डप में यज्ञ पशु को, जिस विधि मारा जाता था। उसी विधि यजमान दक्ष का, सीस अलग धड़ से किया।।

भूत प्रेत पिशाच आदि, मुदित हुए यह देखकर। वाह वाह वह करने लगे, उसके इस कर्म को देखकर।।
पर दक्ष के दल के सभी लोग, हाहाकार करने लगे। ऐसी क्रूरता देख करी, हृदय ही उनके दहल गए।।
वीरभद्र ने कुपित हो, अग्निकुण्ड में डाल दिया। दक्ष के उस सीस को, दक्षिणाग्नि में डाल दिया।।
फिर यज्ञशाला में आग लगा, यज्ञ को विध्वंस किया। ऐसा करके वीरभद्र, पुन: कैलास को लौट चला।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर इस भाँति जब, रुद्रों ने देव परास्त किये। अंग प्रत्यंग देवों के, प्रेतों के आयुधों ने भेदे।।
त्रिशूल पट्टिश और खड्ग, गदा परधि और मुद्गर। इनसे हुए सब छिन्न-भिन्न गए देव इससे बहुत डर।।
तब ऋत्विज अन्य सदस्यों सहित, भयभीत हो ब्रह्मा पास गये। प्रणाम उनको कर दिया, फिर यज्ञ के सब वृत्तान्त कहे।।

श्री ब्रह्मा और श्री नारायण, तो थे सर्व अन्तर्यामी। इस भावी उत्पात की, सम्भावना पहले से ही थी।।
इस कारण वह दक्ष के, यज्ञ में थे नहीं गए। विनाशकारी इस लीला से, वह दोनों थे दूर रहे।।
अब देवों के मुख से उन्होंने, यह सारी कहानी सुनी। फिर देवों से दोनों ने, यह पते की बात कही।।
परम समर्थ तेजस्वी पुरुष से, दोष भी गर कभी बन आये। तो भी प्रतिकारी जीवों का, भला नहीं कभी हो पाये।।

फिर तुमने तो यज्ञ में, महादेव का भाग ही नहीं दिया। प्राप्य भाग न देकर के, है उनका अपराध किया।।
पर भोलेनाथ शिवशंकर वह, प्रसन्न शीघ्र ही हो जायें। शुद्ध हृदय से चरण पकड़, उनसे क्षमा याचना करें।।

कटुवचन रूप उस दक्ष के, बाणों से बिन्धा हृदय उनका। इस पर प्रिया सती सती वियोग का, वज्रपात उनपर हुआ।।
यदि चाहो हे देवो तुम, यह यज्ञ पुन: आरम्भ हो। तो उनके चरण में जाकर के, क्षमा याचना तुम करो।।
नहीं तो उनके कोप से, बच नहीं कोई पायेगा। लोकपालों के संग ही सब, लोकों का क्षय हो जायेगा।।

परम स्वतंत्र हैं प्रभु रुद्र, न उनका तत्त्व कोई जान सके। उनकी शक्ति सामर्थ्य को, कोई नहीं पहचान सके।।
ऋषि मुनि सब देवतागण, न यज्ञ स्वरूप देवेन्द्र ही। रहस्य उनका समझ सकें, न समझ सकूं उनको मैं भी।।
फिर दूसरा कोई इस जग में, कैसे उनको जान सके? उनकी अपार महिमा का यहां, कैसे कोई अनुमान करें?
ऐसी अवस्था में उनको, शान्त कौन कर सकता है? महादेव के रोष को, कौन जीव हर सकता है?

देवों सम्मुख श्री ब्रह्मा ने, शिव का ऐसा गुण गान किया। फिर उन्होंने प्रजापतियों, और पितरों को भी संग लिया।।
अपने लोक को छोड़ के वह, पर्वत श्रेष्ठ कैलास गए। प्रभु शंकर के परम प्रिय, धाम में वह जा पहुंचे।।
तप योग औषधि और मन्त्र, इन सबसे सिद्धि पाये जो। जन्म सिद्ध देवगण का, भी वहां नित्य निवास हो।।
किन्नर, गन्धर्व और अप्सरागण, नित्य कैलास पे बने रहें। ऐसे श्री कैलास की, परम पवित्र है महिमा कहें।।

विविध धातु सजे मणिमय शिखर, रंग बिरंगे दीख रहे। भाँति भाँति के वृक्ष लता, गुल्मादि वहां छाये हुए।।
झुण्ड के झुण्ड ही जंगली पशु, उन वनों में विचरा करें। इन सबसे उन पर्वतों की, महिमा अति न्यारी बने।।
निर्मल नीर के झरने वहां, कल कल करते बहते हैं। गहरी गुफायें ऊंचे शिखर, महिमा की गाथा कहते हैं।।

निज प्रियतम संग विहार करें, वहाँ सिद्ध जनों की पत्नियाँ। क्रीड़ा स्थल यह बना उनका, ऐसी है इसकी महिमा।।

सब ओर मचा मोरों का शोर, मदान्ध भ्रमर गुंजर करें। कुहू कुहू बोले कोयल, पक्षिन् की कलरव ध्वनि उठे।।
ऊंचे कल्प वृक्षों की, डालियां मन्द मन्द झूमें। पक्षीगण को अपने पास, मानों वह हों बुला रहे।।
हाथियों के भ्रमण से, लगे कैलास ज्यों चल रहा। कल कल करते झरनों की, ध्वनि में वार्तालाप भरा।।

मन्दार पारिजात सरल तमाल, शाल ताल और कचनार। असन और अर्जुन वृक्षों से, बनी पर्वत शोभा अपरम्पार।।
आम कदम्ब नीम नाग, पुन्नाग चम्पा और गुलाब। अशोक मौलश्री और कुन्द, कुरबक हिरण्यकमल शतपात।।
ईला और मालती की लता, बहु मनोहर और अति सुन्दर। कुब्जक मोगरा और माधवी, की बेलों की छटा सुन्दर।।

कटहल गूलर पीपल पाकर, बढ़ गूगल और भोज वृक्ष। औषध जाति के पेड़ सभी, सुपारी राजपूग खजूर।।
जामुन आमड़ा आम पियाल, महुआ और लिसौड़ादि। विभिन्न प्रकार के वृक्षों की, बनी छटा अति सुन्दर न्यारी।।
खाली और ठोस बांसों के, हैं झुरमुट पर्वत पर खड़े। इनकी छटा से पर्वत भी, अति मनोहर दीख रहे।।

वहां सरोवर में कुमुद, उत्पल कलहार और शतपत्र। अनेक जाति के कमल, फैलाते ज्यों हैं अपने छत्र।।
उनकी शोभा से मुग्ध हुए, पक्षिन् के झुण्ड वहाँ आते हैं। कलरव मधुर वह कर कर के, सबके मन को सुहाते हैं।।

हरिण वानर सूकर और सिंह, जहां तहां हैं घूमते। रीछ साही नीलगाय, शरभ बाघ शोभित हुए।।
कृष्णमृग भैंसे कर्णान्त्र, एकपद अश्वमुख भेड़िये। कस्तूरी मृग भी जगह जगह, हैं वहाँ पे भ्रमण करें।।
कदली दल से घिरे हुए, हैं वहाँ के जलाशय। इस कारण उनकी शोभा, न्यारी ही कुछ बन आये।।
चहुँ ओर वहाँ नन्दा नामक, नदी ने है वन को घेरा। सती ने नित्य वहाँ स्नान किया, है पावन सुरभित जल उसका।।

वहां सुरम्य अलकापुरी, सौगन्धिक नामक वन देखा। सौगन्धिक नाम के कमलों की, सुगन्ध से वह था महक रहा।।
उस नगर के बाहर नन्दा और, अलकनन्दा दो नदियाँ हैं। श्री हरि की चरण रज स्पर्श से, अति पावन हुईं वह नदियाँ हैं।।
हे विदुर उन नदियों में, देवांगनागण नित्य स्नान करें। सरिताओं का निर्मल जल, उनकी सारी श्रान्ति हरे।।
निज निवास से आकर वह, उस जल में क्रीड़ा करें। जल में प्रविष्ट वह होकर के, निज प्रियतम पर जल फेंके।।

उनके अंग का कुंकुम धुलकर, पीतवर्ण कर दे जल को। आकर्षित हाथी गन्ध से हों, और ग्रहण करें वह उस जल को।।
स्वयं भी जल वह पीते हैं, और पिलायें हथनियों को। प्यास यद्यपि न भी हो, फिर भी खींचे उन्हें गन्ध का मोह।।
अलकापुरी के आकाश में, शतश: विमान थे विचर रहे। चान्दी सोने और बहूमूल्य, मणियों से थे वह जड़े।।
अनेकों यक्षपत्नियां, विमानों में निवास करें। इनके कारण ऐसा भासे, आकाश में विद्युत मेघ बने।।

यक्षराज कुबेर की, राजधानी वह अलकापुरी। पीछे छोड़ उसे देवगण, पहुंचे सौगन्धिक वन में ही।।
वहां रंग बिरंगे फल फूल, और वृक्षों पर पत्ते थे लगे। अनेकों ऐसे कल्प वृक्ष, उसकी शोभा थे बढ़ा रहे।।
कोकिलादि के स्वरों का, संगीत वहां लहरा था रहा। भंवरों की मधुर गुंजन ने, था वातावरण में प्रेम भरा।।
राजहंसों के परम प्रिय, कमल दल थे वहाँ खिले। अति मनोहर जलाशय, कमलों से थे भरे हुए।।
हरि चन्दन के वृक्ष को, हाथियों के तन ने जब रगड़ा। स्पर्श उनका पाकर के, वायु भी सुगन्धित हो गया।।

यक्ष पत्नियों के मन को, आकर्षित नित्य था कर रहा। सुगन्धित वायु उस वन का, सबका चित्त था हर रहा।।
बावलियों के सौपान वहां, वैदूर्यमणि के थे बने। उनके निर्मल जल में तो, थे अनेकों कमल खिले।।
अनेकों दिव्य पुरुष वहां, मनोरंजन को थे आते। ऐसी अद्भुत शोभा उनकी, थे देवतागण निहार रहे।।
देवता गण वह दृश्य देख, जब उससे कुछ आगे बढ़े। पास में ही इक वट वृक्ष, देख के चकित वह हो गए।।

सौ योजन ऊंचा था वह, शाखायें भी अति विस्तृत थीं। पचहत्तर योजन तक थीं, टहनियां उसकी फैल रहीं।।
चहुँ ओर उस वृक्ष के, सघन छाया अविचल बनी। नीड़ न था उसपे कोई, पर घाम की कोई कष्ट न थी।।
महायोगमय वृक्ष वह, मुमुक्षुओं का था आश्रयभूत। उसके नीचे बैठे शंकर, देवों ने किये दर्शन अपूर्व।।
क्रोध रहित वह प्रभु स्वयं, थे काल समान विराज रहे। देवों ने आशुतोष के, तब ऐसे दर्शन पाये।।

प्रभु भूतनाथ का श्री अंग, शान्त स्वरूप सा था बना। उनकी सेवा में थे निमग्न, सनन्दनादि सिद्ध सखा।।
यक्ष राक्षसों के स्वामी, कुबेर भी वहाँ उपस्थित थे। श्री महादेव की सेवा में, वह स्वयं थे लगे हुए।।

सबके हैं सुहृद् स्वयं, श्री महादेव जी जगत्पति। स्नेहवश सर्व कल्याण में, रहें लगे वह सर्वदा ही।।
सर्वलोक हित में सदैव, लगे रहें वह सर्वथा। ध्यान टिका एकाग्र वह, उपासना में रहें रत सदा।।
समाधि के साधनों का, वह प्रतिपादन करते हैं। स्वयं तो श्री शंकर जी, समाधिस्थ नित्य रहते हैं।।

तन उनका श्यामल सुन्दर था, सन्ध्या के बादल समान। भस्म दण्ड जटा मृगचर्म, तपस्वियों के सभी चिन्ह वहाँ।।
मस्तिष्क पर अपने वह थे, चन्द्रकला धारण किये। इस महा तपस्वी रूप में, शिव के दर्शन सबने किये।।
कुशा के इक आसन पर, श्री महादेव जी बैठै थे। साधु श्रोता अनेकों ही, उनको घेर के बैठे थे।।
सनातन ब्रह्म ज्ञान का, उपदेश था हो रहा। देवर्षि नारद जी के, प्रश्न के उत्तर में था बहा।।

प्रभु शिव का बायां चरण, था दायीं जंघा पर धरा। बायां हाथ बायें घुटने, पर था उनके टिका हुआ।।
कलाई में रुद्राक्ष की, माला थे धारण किये। ज्ञान मुद्रा में ही शिव, स्वयं विराजमान् थे।।
योगपट्ट का आसरा, लिये हुए वह बैठे थे। एकाग्र चित्त से ब्रह्मानन्द, का अनुभव थे कर रहे।।
लोकपालों सहित सभी, मुनियों ने उन्हें प्रणाम किया। जो सर्वश्रेष्ठ हैं मनन शील, शंकर सम्मुख दिया सीस झुका।।

समस्त देवगण और जो, दैत्यों के भी हैं अधिपति। श्री महादेव के चरणों की, वन्दना करते हैं सभी।।
फिर भी ब्रह्मा जी को निज, धाम पे आया देख के। उनके सम्मान में महादेव, तुरन्त ही उठकर खड़े हुए।।
ज्यों वामन अवतार में, परम पूज्य प्रभु विष्णु ने। कश्यप जी की वन्दना की, वैसे प्रणाम किया श्री शिव ने।।

प्रभु शिव के चहुं ओर जो, सिद्ध और महर्षि बैठे थे। उन्होंने भी कर जोड़ करी, श्री ब्रह्मा को प्रणाम किये।।
सब जन जब श्री ब्रह्मा को, नमस्कार थे कर चुके। चन्द्रमौलि श्री शंकर तो, प्रणाम मुद्रा में रहे खड़े।।
ब्रह्माजी ने हंसते हुए, श्री शंकर को यह वचन कहा। उनकी स्तुति करने लगे, और कथन उन्होंने किया।।
ब्रह्मा बोले,
हैं पूर्ण जगत् के स्वामी आप, हे देव मैं इतना जाने हूँ। प्रकृति पुरुष से परे आप, इक रस परब्रह्म पहचाने हूँ।।
निज स्वरूप शिव शक्ति से, क्रीड़ा आप ही करते हैं। मकड़ी समान अपने में से, लीला वत् जग यह रचते हैं।।

आप ही पालन सबका करें, फिर संहार भी करते हैं। आपकी ही लीला है सब, और आप में ही विचरते हैं।।

धर्म अर्थ की प्राप्ति, का साधन जो वेद हैं। उनकी रक्षा के लिये, प्रकट कर दिये यज्ञ हैं।।
दक्ष को ही निमित्त बना, प्रतिपादित यज्ञ को कर दिया। है आपकी ही बान्धी हुई, वर्णाश्रम की सब मर्यादा।।
नियमनिष्ठ ब्राह्मण जन सब, इसका पालन करते हैं। श्रद्धापूर्वक अनुसरण उनका कर, निज जीवन सफल वह करते हैं।।

हैं शिवस्वरूप महेश्वर आप, शुभ कर्मी लोगों के लिये। स्वर्ग अथवा मोक्ष को, स्वयं आप प्रदान करें।।
पाप कर्म करने वालों को, घोर नरक में डाल दें। फिर भी कभी कभी देखा, किसी किसी व्यक्ति के लिये।।
इन कर्मों का फल जो है, विपरीत ही क्योंकर मिले। आपकी यह महिमा प्रभु, केवल आप ही जान सकें।।

आपके ही श्री चरणों में, समर्पित अपने को जो करें। समस्त प्राणियों में जो जन, आपकी ही झांकी देखें।।
अभेद दृष्टि से सबमें जो, आपको ही देखा करें। प्राय: वह जन पशु समान, क्रोध के बस में नहीं रहें।।

भेद बुद्धि के कारण जो, आसक्त सदा कर्मों में रहें। दूजे की उन्नति देख कर, जो नित्य द्वेष में जला करें।।
नीयत जिनकी भली नहीं, सदा दु:खी दूजे को करें। मर्मभेदी निज वचनों से, दूजे का चित्त जो बेन्ध दें।।
महादेव हैं आप तो, उनका हनन है उचित नहीं। विधाता ने ही मारा जिन्हें, दण्ड देना उनको उचित नहीं।।

प्रभु कमलनाभ की माया प्रबल, मोहित गर वह जीव करे। उससे मोहित होकर के, गर वह भेद बुद्धि में पड़े।।
हे देवश्रेष्ठ साधु तो है, परदु:ख हेतु कातर स्वभाव। ऐसे दीन हीन पर तो, वह कृपा दृष्टि ही करें सदा।।
दैववश विवश हुआ, जो कुछ भी होता जाता है। साधु पुरुष परिवर्तन का, यत्न कभी नहीं करता है।।

सर्वज्ञ आप हैं महादेव, नहीं माया आपको छू सके। दुस्तर माया यह परम की, बुद्धि आवृत तब नहीं करे।।
जिनका चित्त माया के वश हो, कर्म में ही आसक्त रहे। यदि अपराधी भी वह हों, तो भी कृपा के पात्र भए।।

सबका मूल प्रभु आप हैं, यज्ञों के पूर्ण कर्ता। यज्ञभाग पाने का भी, पूर्ण अधिकार है आपका।।
फिर भी दक्ष के बुद्धिहीन, याज्ञकों ने जो यज्ञ किया। हे महादेव उन आपका, भाग आपको नहीं दिया।।
इस कारण ही यज्ञ का, विध्वंस आपके द्वारा हुआ। कृपा करके आप ही, पुनरुद्धार करें यज्ञ का।।

कोई विधि ऐसी करें, यजमान दक्ष पुन: जीवित हो। भगदेव को पुन: नेत्र मिलें, भृगु भी दाढ़ी सम्पन्न हों।।
हे प्रभु पूषा भी फिर, पूर्ववत् ही हो जाये। पहले के समान ही, दाँत उसके आ जायें।।
अस्त्र शस्त्र पाषाणों की, हे रुद्र देव बौछारों से। आहत हुए ऋत्विज और देव, हैं अंग अंग पीड़ित उनके।।
गर कृपा आपकी हे प्रभु, फिर से ठीक वह हो जायें। हे रुद्र आपकी करुणा से, वह पूर्व रूप अपना पायें।।

यज्ञ के पूर्ण होने पर, जो कुछ भी प्रभु शेष रहे। आपका ही वह भाग हो, अर्पित तव चरण में ही होए।।
हे यज्ञ विध्वंसक आपसे, विनय आज यह करते हैं। आपके भाग से ही यह यज्ञ, पूर्ण हो इतना कहते हैं।।
मैत्रेय मुनि बोले,
ब्रह्माजी ने शंकर से, जब इस विधि की प्रार्थना। तब हँस के महादेव ने, कहा आप सुनिए जरा।।

महादेव बोले,
हे प्रजापते माया मोहित, दक्ष के अपराध की। न ही मैं चर्चा करूँ, नहीं करूँ उसे याद कभी।।
केवल उसको तनिक सा, सावधान था मैंने किया। मर्यादा भंग न करे कोई, थोड़ा सा था उसे दण्ड दिया।।
दक्ष प्रजापति का सिर तो, यज्ञ अग्न में भस्म हुआ। बकरे का मुख और सीस, उसके धड़ पर धरें जरा।।
भगदेव भी मित्रदेव के, नेत्रों से देखें यज्ञ भाग। तभी तो यज्ञ आरम्भ यह हो, गर सबको मिले उनका नियमित भाग।।

पूषा केवल पिसे हुए, अन्न का ही भक्षण करें। यजमान के दाँतों से उसका, वह अबसे भक्षण करें।।
अन्य सभी देवों के भी, अंग प्रत्यंग सब स्वस्थ हों। मम भाग यज्ञ में दे दिया, इस कारण अब वह स्वस्थ हों।।
अध्वर्यु आदि याज्ञिकों की, जो भुजायें हैं टूट गई। वह सब तो आश्रय लें, अश्विनी कुमारों की भुजदण्ड की।।
जिनके हाथ हैं नष्ट हुए, पूषा के हाथ से काम वह लें। तथा भृगु के आज ही, दाढ़ी मूंछ पुन: हो जायें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री शंकर के यह वचन सुनी, हे विदुर सभी प्रसन्न हुए। मुदित मनी वह होकर के, धन्य धन्य पुकार उठे।।
सब ऋषियों और देवों ने, महादेव से यह प्रार्थना की। दक्ष की यज्ञशाला में, उन संग पधारें शंकर भी।।
तब उनको और श्री ब्रह्मा को, साथ ले यज्ञशाला गए। उनकी उपस्थिति में उन्होंने, अद्भुत ही वहाँ दृश्य देखे।।

जैसा जैसा प्रभु शंकर ने, उनसे था वर्णन किया। उसी विधि यक्ष धड़ से, यज्ञपशु का सिर जोड़ा।।
जब सीस उसका जुड़ गया, रुद्र देव पर दृष्टि पड़ी। तत्काल ही वह जागृत हुए, जैसे निद्रा त्यागे कोई।।
निज सम्मुख श्री शंकर को, तब उन्होंने ऐसे देखा। ज्यों निद्रा को त्याग कर, जागृत हो कोई देवता।।

शंकर द्रोही दक्ष का, कालिमा से था तन दूषित। शिव का दर्शन पाते ही, हुआ शरत्कालीन स्रोत सम शुद्ध।।
श्री महादेव जी की स्तुति, वह तो गाना चाहते थे। मृत सुता सती को याद कर, नयनों में अश्रु भर आये।।
स्नेह और उत्कण्ठा से, उनका हृदय गद्गद् हुआ। उनके मुख से एक भी, शब्द न फिर निकल सका।।
अति प्रज्ञावान् हुए प्रेम विह्वल, प्रजापति ने हृदय आवेग रोका। विशुद्ध भाव से शंकर की, स्तुति वह फिर करने लगा।।
दक्ष बोले,
हे प्रभु मैंने तो, अपराध आपका था किया। प्रतिकार में दण्ड जो मुझे दिया, वह तो मम शिक्षा हेतु था।।
अनुग्रह यह मुझपे किया, नहीं उपेक्षा मेरी करी। आचार हीन बस नाम मात्र, ब्राह्मण भी बने कृपा भागी।।
फिर हम जैसे यज्ञ याग के, कर्ता को क्यों भूलेंगे? हे करुणा पूर्ण प्रभु, हम तो बस आपकी शरण पड़े।।

हे विभु सर्वप्रथम आपने, श्री ब्रह्मा का रूप धरा। आत्म तत्त्व रक्षण हेतु, निज मुख से ब्राह्मण दिये बना।।
विद्या तप और व्रतादि, धारण कर्ता ब्राह्मण सदा। आप ही रक्षक हैं उनके, ज्यों गौर रक्षक गोपाल बना।।

अनभिज्ञ था मैं प्रभु आपके, तत्त्व के प्रभाव से। भरी सभा में आप पर, वाग्बाण मैंने छोड़े।।
मेरे उस अपराध का, नहीं आपने कोई विचार किया। अपने अपराध के कारण ही, मैं तो था नरक में जा रहा।।
निज करुणा दृष्टि डाल कर, आपने मुझे उबार लिया। अब भी प्रसन्न करूँ आपको, नहीं कोई गुण मुझमें भरा।।
अपनी ही उदारता से, हे प्रभु आप प्रसन्न हों। मुझ जैसे निकृष्ट जन, का कल्याण तभी प्रभु हो।।

मैत्रेय मुनि बोले,
आशुतोष श्री शंकर से, अपराध क्षमा निज करवाये। ब्रह्माजी का आदेश पा, पुन: यज्ञ आरम्भ करवाये।।
उपाध्याय और ऋत्विज सब, सहायक दक्ष के हुए। उनकी ही सहायता से, पुन: यज्ञ कर्म आरम्भ हुए।।

ब्राह्मणों ने तब यज्ञ को, सम्पन्न करने के लिये। भूत पिशाच और रुद्रों के, संसर्ग से थे जो दोष हुए।।
उनकी शुद्धि के लिये, तब प्रयत्न आरम्भ किया। त्रिपात्रों में प्रभु विष्णु के, लिये जो तैयार किया।
पुरोडाश नाम के, चरु का हवन आरम्भ किया। इस विधि सबने मिलकर, अशुद्धि को फिर दूर किया।।

उस हवि को हाथ में ले, अध्वर्यु जब खड़े हुए। यजमान दक्ष ने शुद्धचित्त से, उस पल हरि के ध्यान धरे।।
सहसा श्री हरि स्वयं ही, प्रकट वहाँ पर हो गए। इस विधि फिर दक्ष के, यज्ञ पुन: आरम्भ हुए।।

बृहत् और रथन्तर नामक, साम स्रोत हैं जिनके पंख। उन श्री गरुड़ पे चढ़कर ही, प्रभु पहुँचे दक्षमण्डप।।
प्रभु के श्री अंग की कान्ति से, उज्ज्वल दसों दिशायें हुईं। ऐसा लगे मानो उन्होंने, सब देवों की तेज हरी।।
उनके सामने सबकी ही, कान्ति फीकी पड़ गई। श्री हरि की ही कान्ति की, चमक थी सर्वदिशा फैली।।

श्याम वर्ण उनका सुन्दर, कटितट में स्वर्णिम करधनी। शोभित पीताम्बर था तन पे, महिमा उनकी प्यारी बनी।।
सूर्यसमान दीप्तिमान्, किरीट था सीस पे सजा हुआ। मुखकमल पे नीली अलकावली, और कानों में कुण्डल की छटा।।
स्वर्णाभूषण से सर्जी, थीं उनकी आठों भुजा। भक्तों की रक्षा के लिये, वे उद्यत रहती हैं सदा।।
शंक चक्र पद्म बाण, धनुष गदा खड्ग और ढाल। यह सब आयुध लिये हाथों में, खिले कनेर सम रहे भास।।

हृदय पे था श्री वत्स चिन्ह, वनमाला कण्ठ सुशोभित थी। उदार हास्य लीला कटाक्ष, ने आनन्द से जग भरी।।
दोनों ओर उनके पार्षद, चंवर थे झुला रहे। राजहंसों के समान, श्वेत वर्ण के चंवर वह थे।।
मस्तक पर श्री हरि के, छत्र था सुहा रहा। चन्द्रमा के समान ही, शुभ्र और उज्ज्वल वह था।।

श्री हरि पधारे उनके मध्य, सहसा दृश्य यह देखकर। इन्द्र ब्रह्मा और महादेव, देवेश्वरों सहित समस्त देव।।
गन्धर्व और ऋषि आदि सब, सम्मान में उठकर खड़े हुए। मिलकर के सबने ही, श्री हरि को तब प्रणाम किए।।
उनके तेज के सामने, फीकी पड़ी सबकी कान्ति। श्री हरि सम्मुख जिह्वा भी, थी उनकी लड़खड़ा रही।।
घबरा कर उन सबने ही, मस्तक पर अंजलि धरी। श्री हरि के सामने खड़े हुए, दोनों कर को जोड़ करी।।

श्री हरि की महिमा तक, ब्रह्मादि भी न पहुँच सकें। उनकी मति की समझ भी, बहुत ही पीछे रह जाये।।
तो भी भक्तों पर कृपा कर, प्रभु दिव्य रूप में प्रकट हुए। अपनी अपनी बुद्धि अनुरूप, सभी स्तुति उनकी करने लगे।।
प्रथम प्रजापति दक्ष ने, उत्तम पात्रों में सामग्री ली। पूजा की सब सामग्री उन, योगेश्वर की भेंट करी।।
नन्द सुनन्दादि पार्षदों ने, उनको थे घेरा हुआ। परम गुरु प्रजापतियों के, योगेश्वर को उन था घेरा।।

आनन्दित मन विनीत भाव से, कर जोड़ प्रार्थना करी। श्री हरि के शरणापन्न हो, प्रभु से दक्ष बिनती करी।।
दक्ष बोले,
अपने शुद्ध स्वरूप में, जाग्रत आदि अवस्था रहित। हे प्रभु आप हैं शुद्ध स्वरूप, चिन्मय निर्भय और भेद रहित।।

तिरस्कार कर माया का, स्वतंत्र आप हैं विद्यमान। फिर भी माया स्वीकार करी, रहें जीव भाव में विराजमान्।।
उस माया में ही स्थित होकर, अज्ञानी से दर्शाते हैं। सर्वज्ञान का स्रोत आप, अज्ञान में ही बन्ध जाते हैं।।
ऋत्विज बोले,
उपाधि रहित हैं प्रभु आप, हम तत्त्व आपका न जानें। प्रमुख सेवक श्री रुद्र के, शाप ग्रसित निज को मानें।।
बुद्धि हमारी कर्मकाण्ड के, फेर में ही है भरमाई। अमुक कर्म का अमुक देव, इसी व्यवस्था में खोई।।
धर्म प्रवृत्ति प्रयोजक, वेद तीनों प्रतिपादित यज्ञ। उसका ही पूजन हम करें, स्वरूप उसी को समझ कर।।
यज्ञ सदस्य बोले,
आश्रय दाता सब जीवों के, हे प्रभु हैं आप ही। अनेकों क्लेशों से भरी, है अति दुर्गम जग की घाटी।।
काल रूप भयावह सर्प, है ताक लगाये बैठा हुआ। द्वन्द्व रूपा गढ़ों में ही, जीव है धंसता जा रहा।।
दुर्जन रूपा जंगली जीव, घात लगाये बैठे हैं। शोक रूप दावानल में पल छिन ही धधकते रहते हैं।।
विश्राम नहीं कहीं पल भर का, दर दर पे जीव है भटक रहा। मृगतृष्णा रूपा जल के लिये, है तृषा से वह पीडित हुआ।।
देह गेह का कठिन बोझ, सीस पे अपने उठाये हुए। आपके चरण कमल की शीतल, छांव को कैसे पायेंगे?
रुद्र बोले,
हे वरदे प्रभु आपके, चरण कमल सब फल दायक। सकाम जीव के सकल यत्न, की फल प्राप्ति के वर दायक।।
सर्वकामना शून्य जो, ऐसे निष्काम मुनि जन भी। पूजन करते रहते सदा, इन चरण कमलों का ही।।
उनमें है चित्त टिका मेरा, अज्ञानी जन चाहे जो भी कहें। परम अनुग्रह से आपके, वा कथन में चित्त मेरा नहीं भ्रमे।।
भृगु ऋषि बोले,
दुस्तर तव गहन माया ने, है आत्म ज्ञान को लुप्त किया। इस माया के कारण जीव, अज्ञान की निद्रा में सोया।।
ब्रह्मा आदि भी आपका, तत्त्व न अब लौ जान सके। आत्म ज्ञान का हेतु देह, यह नहीं पहचान सके।।
फिर भी प्रभु निज शरणागत, भक्तों के आप हैं नित्य सखा। मेरी आत्म और सुहृद् आप, प्रसन्न हों मुझ पर आप सदा।।

पृथक् पृथक् पदार्थों को, यह इन्द्रियाँ जनवाती हैं। इनके द्वारा जो ग्रहण हो, स्वरूप उसका जान न पाती है।।
ज्ञान शब्द श्रोत्रादि विषय, और इन्द्रियों के अधिष्ठान आप। यह सब अध्यस्त हैं आपमें, पर इन सबसे परे हैं आप।।
इन्द्र बोले,
हे अच्युत यह आपका, है रूप जगत् प्रकाशितकर। देव द्रोही संहार हेतु, रहे अष्ट भुजा को धारण कर।।
इनमें आप सदैव ही तो, आयुध विभिन्न धारण करें। हमारे मन और नेत्रों को, परम आनन्द प्रदान करें।।

ऋषि पत्नी बोली,
हे हरि आपके पूजन को, ब्रह्माजी ने यज्ञ रचा। दक्ष पे कुपित हो पशुपति ने, है अब इसको नष्ट किया।।
हैं यज्ञमूर्ति आप प्रभु, आप ही पावन कीजिए। भ्रष्ट हुए इस यज्ञ का, पुनरुत्थान अब कीजिए।।
श्मशान भूमि सम कान्तिहीन, और उत्सवहीन हुए यज्ञ को। नील कमल सम नेत्रों से, निहार के पावन अब करो।।

ऋषि बोले,
विचित्र आपकी लीला प्रभु, सब कर्म करी निर्लिप्त रहें। जिस वैभव की क्षुधा लिये, सब जन श्री लक्ष्मी को पूजें।।

वह श्री आपकी पूजा में, नित्य निरन्तर लगी रहें। तो भी न उनका मान कर, नि:स्पृह: आप सदा उनसें रहें।।
सिद्ध बोले,
हे देव यह मन रूपा हाथी, नाना क्लेशों से क्लान्त हुआ। जग दावानल में दग्ध यह, तृषा से नित्य है तड़प रहा।।
तेरी अमृत कथा की सरिता में, निमग्न रहें यह अहर्निश। उसमें ही गोता लगाये हुए, बैठा है यह रैन दिवस।।
वहां ब्रह्मानन्द में लीन सा, नित्य हुआ यह जाता है। न तो दावानल याद इसे, न ही नदी छोड़ यह आता है।।

यजमान बोले,
स्वागत आपका हे प्रभो, हैं सर्व सामर्थ परमेश्वर आप। प्रसन्न हों आप प्रभु मुझपर, हो नमस्कार मेरा बार बार।।
हे लक्ष्मी पति निज प्रिया, लक्ष्मी सहित करें हमपे कृपा। आप हैं सर्वसामर्थ प्रभु, करें आप हमारी भी रक्षा।।
हे योगेश्वर ज्यों सीस बिना, नहीं धड़ कछु भी सुहाता है। त्यों सभी अंग पाकर के भी, नहीं तव बिन यज्ञ सुहाता है।।

लोकपाल बोले,
है अनन्त परमात्म आप, साक्षी सब अन्त:करण के। समस्त जगत ही यह रहे, आपकी ही कृपा दृष्टि में।।
नेत्र आदि यह इन्द्रियाँ, मायिक पदार्थ ही ग्रहण करें। माया रचित इन इन्द्रियों से, आप ग्रहण न हो सकें।।
वस्तुत: तो हे प्रभु आप, हैं पंचमहाभूतों से पृथक्। फिर भी इस भौतिक तन से, हो आपका सम्बन्ध प्रतीत।।
आपकी ही माया है यह, जो ऐसा भास रहा। छाया में ही सूर्य का, मानो है चिदाभास हुआ।।

योगेश्वर बोले,
सम्पूर्ण विश्व के आत्म आप, जो निज को भी जाने अभेद। वही सर्वप्रिय है आपका, नहीं उससे अधिक प्रिय कोई देव।।
फिर भी हे भक्तवत्सल प्रभु, जो स्वामी आपको मान लें। अनन्य भक्ति हृदय में धर, जो आपकी ही सेवा करें।।
हे हरि उनपर भी आप, कृपा सदैव कीजिए। अपनी कृपा से हे प्रभु, झोली उनकी भर दीजिये।।

जीवों के संस्कारवश सत्त्वादि गुण धरें भिन्न रूप। निज माया से उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करें जो नित्य।।
ब्रह्मा आदि भिन्न रूप धरी, स्वयं बुद्धि में भेद करें। किन्तु अपने स्वरूप में स्थित, वह भेद बुद्धि से दूर रहें।।
त्यों ही सभी गुण रचकर भी, वह गुणातीत ही सदा रहें। ऐसे श्री हरि को बार बार है नमस्कार हमारा हे प्रभु।।

ब्रह्मा बोले,
धर्मादि की उत्पत्ति हेतु, शुद्ध सत्त्व स्वीकार करें। सब गुण निज से उत्पन्न करके, आप सदा निर्गुण रहें।।
आपके इस दिव्य तत्त्व को, हम नहीं पहचान सके। ब्रह्मा आदि सब प्रजापति, भी नहीं इसे कभी जान सकें।।
आपको है बस नमस्कार, हे प्रभु हमारा बार बार। आपके चरणों में ही प्रभु, हम नमन करें हजार बार।।
अग्नि बोले,
आपके ही तेज से, प्रज्ज्वलित प्रभु मैं नित्य रहूं। यज्ञों में सब देवों तक, घृत मिश्रित हवि मैं पहुँचा दूँ।।
साक्षात् यज्ञ पुरुष हैं आप, और यज्ञ के रक्षक हैं। अग्निहोत्र दर्श पौर्णमास, चतुर्मास्य पशु सोम पंच रूप हैं।।
पांच प्रकार के यह यज्ञ, आपके ही स्वरूप हैं। आश्रावय अस्तु श्रौष्ट यजे, ये यजामहे वषट वा रूप हैं।।
इन पांच यज: मन्त्रों से, आपका पूजन होता है। ऐसे सबके प्रभु आपको, प्रणाम ही मेरा होता है।।

देव बोले,
हैं आदि पुरुष हे देव आप, पूर्व कल्प के अन्त में। कार्य रूप प्रपंच आपने, निज उदर में लीन किये।।
प्रलयकालीन जल के भीतर, शेषनाग की शैय्या पर। आपने ही प्रभु शयन किया, अति कोमल उस शैय्या पर।।
जनलोक के वासी सिद्ध गण, आध्यात्मिक तुम्हारे स्वरूप का। निज हृदय में ही चिन्तन करें, आपके सत्य स्वरूप का।।
वही महानतम प्रभु अहो, नेत्र सम्मुख हैं प्रकट हुए। अपने भक्तों की प्रभु, आप स्वयं रक्षा करें।।

मरीचि आदि ऋषि सभी, ब्रह्मा रुद्र और देव सभी। आपके वंश के अंशतम, रूप करें धारण सभी।।
सम्पूर्ण विश्व यह आपके, खेल की ही सामग्री है। हे नाथ प्रणाम है आपको, हम आपके ही अनुगामी हैं।।
विद्याधर बोले,
परम पुरुषार्थ प्राप्ति का, साधन रूप है मानव देह। इसको पाकर के भी जीव, तुम्हारी माया से मोहित रहे।।
इस देह में ही मैं मेरे का, अभिमान वह करते रहते हैं। दुर्बुद्धि निज आत्मीय जन से, भी तिरस्कृत होते हैं।।
फिर भी असत् विषयों की ही, लालसा रत वह रहते हैं। पर ऐसी अवस्था में भी जो, कथामृत सेवन करते हैं।।
अन्त:करण के मोह से वह, सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। कथामृत के श्रवण की, महिमा ऐसी बताते हैं।।
ब्राह्मण बोले,
हे प्रभु आप ही यज्ञ हैं, आप स्वयं ही हैं हवि। आप ही तो सब मन्त्र हैं, आप स्वयं ही हैं अग्नि।।
आप ही समिधा आप कुशा, आप ही यज्ञपात्र भी हैं। सदस्य आप ऋत्विज भी आप, और स्वयं यजमान भी हैं।।
वा धर्मपत्नी और देवता, अग्नि होत्र और स्वधा। सोमरस घृत और पशु, और यज्ञ की सारी ही समिधा।।

हे वेदमूर्ति यज्ञ और उनका संकल्प भी आप हैं। वराह रूप धारण कर्ता, पूर्व काल के आप हैं।।
रसातल में डूबी हुई, पृथ्वी को निज लीला से। अपनी दाढ़ों पर धर कर, थे इस विध बाहर किये।।
गजराज ज्यों निज दन्त पर, कमलिनी को धारण करे। धीरे धीरे उस समय, गर्जन आप थे कर रहे।।
योगी जन यह अति अद्भुत, रूप देख के चकित हुए। हे परम पुरुष वह आपका, स्तुति गान करने लगे।।

हे योगेश्वर जब कीर्तन, आपके नाम का होता है। तब यज्ञ की राहों का विघ्न, स्वत: नष्ट हो जाता है।।
यज्ञरूप यह सत्कर्म, था नष्ट हमारा हो गया। अत: आपके दर्शन की, इच्छा ने चित्त उद्विग्न किया।।
हे देव आप प्रसन्न हों, और करें हम पर कृपा। आपके ही श्री चरणों में, नमन करें हम बार बार।।
मैत्रेय मुनि बोले,
भ्राता विदुर जब इस विधि, प्रभु की स्तुति सब करने लगे। यज्ञ रक्षक हृषीकेश की, महिमा सब थे गा रहे।।
परम चातुर्य से दक्ष ने, यज्ञ पुन: आरम्भ किया। रुद्र ने किया विनष्ट जिसे, उसका पुनरूत्थान किया।।
सर्वान्तर्यामी प्रभु यद्यपि, हैं सब भोगों के भोक्ता। त्रिकपाल पुरोडाश रूप, निज भाग ले हुए प्रसन्न कहा।।
दक्ष को सम्बोधित कर, श्री हरि ने उसको कहा। अपनी महिमा का वर्णन, दक्ष को सुना दिया।।
भगवान बोले,
हूँ मैं ही परम कारण, हे दक्ष जानो जगत् का। हूँ ब्रह्मा मैं महादेव भी, और हूँ आत्मा मैं सबका।।
मैं ही हूँ ईश्वर जानों, और हूँ सबका साक्षी भी। स्वयं प्रकाश मैं आप हूँ, और उपाधि शून्य भी।।

निज तीनों गुणी माया को, स्वयं ही मैं स्वीकार करूँ। मैं ही रचना करूं जग की, पालन और संहार करूँ।।
उन कर्मों के अनुरूप ही, ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धरे। हे विप्रवर तुम जान लो, यह तीनों हैं मेरे रूप।।

अस भेद रहित विशुद्ध रूप, पर ब्रह्म स्वरूप हूँ मैं आप। उसी में ब्रह्मा रुद्र जीव, रहे भिन्न भिन्न अङ्गों को भास।।
ज्यों जीव अपने तन के, भिन्न भिन्न सब अंगों में। अपने ही सीस हाथ पांव, आदि विभिन्न सब अंगों में।।
मुझसे भिन्न ही हैं यह सब, नहीं ऐसी बुद्धि कभी करे। उसी विधि मेरे भक्त भी, नहीं प्राणी मात्र में भेद करे।।

हे ब्राह्मण हम तीन रूप, ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। स्वरूपत: तीनों एक ही हैं, प्रकटें जीव का रूप धर।।
जो कोई भी हम सबमें, भेद न किंचित् देखता। वही जीव तो परम शान्ति, को प्राप्त है कर सकता।।
मैत्रेय मुनि बोले,
भगवान से आज्ञा पाकर के, प्रजापति नामक दक्ष ने। त्रिकपाल यज्ञ द्वारा हरि के, पूजन और अर्चन किये।।
फिर प्रधान और अंगभूत, दोनों प्रकार के यज्ञों से। अन्य सभी देवों के भी, पूजन और अर्चन किये।।

हो एकचित्त प्रभु शंकर का, यज्ञशेष से यजन किया। उनके भाग से यजन कर, यज्ञ को फिर सम्पन्न किया।।
उध्वसान नामक कर्म से, सोमपायी अन्य देवों का। यजन करने यज्ञ का, उपसंहार उन्होंने किया।।
अन्त में ऋत्विजों सहित, अवभूथ स्नान उन्होंने किया। इस प्रकार दक्ष का यह, यज्ञ सम्पूर्ण हुआ।।

जिनको निज पुरुषार्थ से, थीं प्राप्त हुई बहु सिद्धियाँ। उन दक्ष प्रजापति को, देवों ने आशीर्वचन कहा।।
बुद्धि तुम्हारी सदा ही, धर्म का अनुसरण करे। यह कहकर सब देवतागण, स्वर्ग लोक को चले गए।।
हे विदुर सुना है यह, जब दक्षसुता ने तन त्यागा। हिमालय पत्नी मेना के, गर्भ से पुन: उसने जन्म लिया।।

ज्यों प्रलय काल में लीन हुई, शक्ति पुन: जागृत होए। सृष्टि के आरम्भ में, पुन: ईश्वर का आश्रय ले।।
उसी विधि अम्बिका ने, जो थीं अनन्य परायणा। उस जन्म में भी प्रियतम, शंकर का ही वरण किया।।
दक्ष यज्ञ विध्वंस में, प्रभु शंकर के इस चरित का। बृहस्पति शिष्य परम भागवत्, उद्धव से था श्रवण किया।।

हे कुरुनन्दन महादेव का, परम पावन यह चरित। यश आयु वर्धित करे, पाप पुंज यह करे नष्ट।।
भक्ति भाव से नित्य जो, श्रवण और कीर्तन करे। तत्काल ही पाप राशि से, वह विमुक्त रे हो जाये।।

३) ध्रुव चरित्र

मैत्रेय मुनि बोले,
सनकादि नारद ऋभु, हंस आरुणि और यति। श्री ब्रह्मा की यह सन्तति, नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही थी।।
इन पुत्रों ने गृहस्थाश्रम, में नहीं प्रवेश किया। अत: इनकी सन्तति का, क्रम नहीं पुन: चल सका।।
अधर्म भी श्री ब्रह्मा का, अपना ही तो पुत्र था। उसकी जो पत्नी हुई, नाम उसका था मृषा।।
दम्भ नामक उनका पुत्र था, और माया नामक पुत्री हुई। निर्ऋति उनको ले गया, क्योंकि कोई उनके सन्तान न थी।।

दम्भ और माया से पुन:, लोभ और शठता जन्में। उनके क्रोध और हिंसा हुए, पुनश्च गाली कलह जन्में।।
दुरुक्ति से कलि ने, भय मृत्यु को जन्म दिया। उन दोनों के संयोग से, यातना नरक युगल प्रकटा।।

हे निष्पाप श्री विदुर जी, संक्षेप से आपको यह कहा। प्रलय का कारण रूप यह, अधर्म का वंश बता दिया।।
तीन बार श्रवण जो इसका करे, मनोमल पूर्ण दूर होए। अधर्म त्याग करा के यह, पुण्य करन का हेतु बने।।

हे कुरुनन्दन श्री हरि के अंश, ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुए। उनके अंश से जो उत्पन्न, महाराज स्वयंभु मनु के।।
पुत्रों के ही वंश का, वर्णन तुम्हारे लिये करूँ। कैसे वर्धित हुआ मनुवंश, अब उसकी मैं तुम्हें कहूँ।।
स्वयंभू मनु और उनकी पत्नी, महारानी शतरूपा के। प्रियव्रत और उत्तानपाद, नामक द्वौ पुत्र हुए।।
प्रभु वासुदेव की कला से ही, दोनों ने था जन्म लिया। इस कारण संसार की, रक्षा में थे तत्पर सदा।।

सुरुचि और सुनीति नामक, द्वौ पत्नियां उत्तानपाद की थीं। उनमें से सुरुचि ही, अधिक प्रिय राजा की थी।।
सुनीति का पुत्र जो, ध्रुव नाम से विख्यात हुआ। पर उस रानी पर पति का, स्नेह था कम होने लगा।।
इक दिन राजा उत्तानपाद, सुरूचि के पुत्र उत्तम को। निज आगोश में लेकर के, स्नेह न्यौछावर उसपे किये।।
उसी समय पुत्र ध्रुव भी, गोद में आना चाहता था। किन्तु राजा ने वहाँ उसका स्वागत नहीं किया।।

घमण्डी रानी सुरूचि ने, जब सौतन के सुत को देखा। पिता की गोद में आने का यत्न था वह कर रहा।।
डाह से उसका अन्त:करण, था मलिन बहु हो गया। अति क्षुब्ध हो सुरुचि ने, ध्रुव को यह कटु वचन कहा।।
सुरूचि बोली,
यद्यपि तूने राजा के, घर में ही हैं जन्म लिया। हे शिशु नहीं अधिकारी तू, इस आसन पर बैठने का।।
तुझको तो मैंने अपनी, कोख में धारण नहीं किया। इस कारण पितु गोद में; क्योंकर शिशु तू बैठेगा?

अभी तो तू नादान है, राज तू इसका न जाने। किसी अन्य मां ने जन्मा तुझे, दुर्लभ यह गोद है तेरे लिये।।
यदि इच्छा है सिंहासन की, तो उग्र तपस्या तुम करो। परम पुरुष नारायण की, अब आराधना तुम करो।।
अपनी इस तपस्या से, उनकी कृपा के पात्र बनो। उनके अनुग्रह से ही तुम, पुन: मेरे गर्भ से जन्म लो।।
मैत्रेय मुनि बोले,
दण्ड की चोट से आहट हो, सर्प ज्यों हो फुंकार रहा। विमाता के कटु वचन सुनी, घायल त्यों बालक ध्रुव हुआ।।
क्रोध के कारण लम्बी लम्बी, आहें वह भरने लगा। पिता दूर से देखे गया, उस एक शब्द भी नहीं कहा।।
तब आंखों में आंसू लिये, ध्रुव निज जननी के पास गया। पिता से मुख उसने मोड़ लिया, माता के महल में जा पहुंचा।।
दोनों होंठ थे फड़क रहे, और सिसक सिसक था रो रहा। सुनीति ने निज पुत्र को, गोद में उठा लिया।।

महल के दूजे लोगों से, जब सौत की उसने बात सुनी। निज पुत्र को दु:खी देख, वह भी आन्तर में तड़प गई।।
धैर्य उसका क्षीण हुआ, शोक संतप्त हृदय उसका था। दावानल में ज्यों दग्ध बेल, मुख उसका मुरझा गया।।
नेत्रों में अश्रु भरी, विलाप वह करने लगी। सौत के वचन को याद कर, धैर्यहीन वह हो गई।।

निज दु:ख के पारावार का, नहीं अन्त था कोई दीख रहा। गहरी सांस लेकर उसने, अपने पुत्र से यह कहा।।
हे पुत्र किसी के भी लिये, नहीं चित्त में विरोधी भाव धरो। जो किसी को भी दु:ख दे, उस दु:ख का भागी स्वयं वह हो।।
जो कुछ भी कहा सुरुचि ने, वास्तव में वह सत्य ही है। पत्नी तो क्या मानेंगे मुझे, दासी कहने में भी लज्जित हैं।।
हे पुत्र तेरा दुर्भाग्य है यह, तूने मेरे गर्भ से जन्म लिया। मेरे ही दूध से पलकर के, हे शिशु मेरे तू बड़ा हुआ।।

विमाता तेरी होकर भी, बात सुरुचि ने ठीक कही। राजपुत्र उत्तम समान, सिंहासन पर बैठना चाहो तुम।।
तो द्वेष भाव को छोड़कर, श्री हरि की तुम सेवा करो। अन्य भाव सब भूल कर, श्री हरि के चरण कमल में जाओ तुम।।

संसार के पालन के लिये, करें सतोगुण वह स्वीकार। उन श्री हरि के चरणों की, गायें कैसे महिमा अपरम्पार?
उनके ही श्री चरण कमल, आराधे पितामह ब्रह्मा ने। इसके ही परिणाम रूप, सर्वश्रेष्ठ पद उन्होंने पाये।।
प्राण मन और इन्द्रिय को भी, जिसने है वश में किया। वह पद तो उनके लिये, भी वन्दनीय है सदा।।

इसी विधि पितामह तेरे, स्वयंभु श्री मनु ने। ऐसे बहु दक्षिणा युक्त, अनेकों ही थे यज्ञ रचे।।
अनन्य भाव से श्री हरि की, आराधना उन्होंने थी करी। दुर्लभ लौकिक अलौकिक और, मोक्ष सुख फल उन्हें मिली।।
हे प्रिय पुत्र तुम भी उन्हीं, श्री हरि का ही आश्रय लो। शरणागत निज भक्तों के, वत्सल हैं वह स्वयं प्रभो।।
जन्म मृत्यु के चक्र से, विमुक्त हैं जो होना चाहे। ऐसे मुमुक्षु जन सदा, मार्ग चरण में ही पाते।।

स्वधर्म के पालन राही, चित्त तेरा पावन हुआ। अन्य चिन्तन छोड़ करी, श्री हरि को ही अब वहां बिठा।।
उनके ही शरणागत हो, उनको ही तू भजता जा। गर सत्यता हृदय में तेरे होगी, निश्चित ही लेगा उनको पा।।
कमल नयन श्री हरि बिना, नहीं दुख तेरा कोई हर सके। ब्रह्मादि सब देवता गण, प्रसन्न जिन्हें करना चाहें।।
वह लक्ष्मी जी भी हाथ में, कमल रूप दीपक लिये। निरन्तर ही उन श्री हरि को, ही हर पल ढूंढा करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
माता सुनीति के वचनामृत, सन्मार्ग दिखाने वाले थे। सर्वोत्तम लक्ष्य जो जीवन का, उस पथ पे लानेवाले थे।।
उन्हें सुनकर बालक ध्रुव ने, बुद्धि से सम्माहित चित्त को किया। तत्पश्चात् पितु राज्य छोड़, वह तपस्या को निकला।।
सुनकर यह सब समाचार, और जान करी ध्रुव की पुकार। श्री नारद जी भी आ पहुँचे, जहाँ थे ध्रुव कर रहे विचार।।
अपना पाप नाशक हाथ, उन्होंने ध्रुव मस्तक पे धरा। मन ही मन अति विस्मित हो, श्री नारद ने विचार किया।।
नारद बोले,
अहो विचित्र है तेज यह, मनस्वी जन क्षत्रियों का। तनिक सा भी मानभंग, उनसे सहन नहीं होता।।
देखो तो ध्रुव यह नन्हां सा, शिशु ही तो है यहाँ खड़ा। विमाता के कटु वचनों ने, फिर भी हृदय विदीर्ण किया।।
हे पुत्र अभी तू है शिशु, खेल कूद में मस्त रहो। हम न मानें इस आयु में, मान अपमान कोई सम्भव हो।।

यदि मान अपमान का, विचार भी तेरे मन में हो। तो जानो वत्स इस जीव के, सुख दुख का कारण मोह ही हो।।
वास्तव में निज कर्मानुसार, ही मिलें सब मान अपमान। सुख दुःख आदि सबको ही, अपनी ही कर्मगति तू जान।।
हे वत्स विचित्र है प्रभु की गति, उसपर अब तुम विचर करो। दैववश मिले जो भी स्थिति, विवेकी नहीं सन्तुष्ट हो।।

माता का उपदेश पा, जिनको प्रसन्न तू करने चला। योग साधना के द्वारा, तू जिनकी राह पे है चला।।
मैं मानूं है अति कठिन, प्रसन्न उनको कर पाना। साधारण जीवों के लिये, इस कठिन मार्ग पे चल पाना।।
अनेक जन्म जन्मान्तरों तक, यानि गण जिन्हें प्रसन्न करें। हो अनासक्त समाधि राह, अति कठिन साधना करें।।
फिर भी भगवान के मार्ग का, पता नहीं वह पाते हैं। निज तन को भी पीड़ित करें, पर व्यर्थ यत्न सब जाते हैं।।

तुम भी हे बालक नाहक, हठ करना यह छोड़ दो। मेरी बात तुम मान के, निज घर को ही लौट चलो।।

जब आयु कुछ तेरी बढ़े, परमार्थ साधन कर लेना। उचित समय आने पर ही, इस दिशा में कदम तू धर लेना।।
विधाता के विधान से, जीवन में जो भी मिल जाये। सुख या दु:ख जो भी मिले, चित्त वहीं सन्तुष्ट रहे।।
इस सीख का जो अनुसरण करे, मोहमय संसार में पार वह हो। विधान की स्वीकृति में ही, सुख का राज निहित जानो।।

अपने से अधिक गुणवान को, देख करी तो मुदित रहे। जीव को यह चाहिये, अपने से न्यून पर दया करे।।
निज समान गुण वालों से, मैत्री भाव ही बना रहे। गर जीवन में आचार यह हो, तो दु:ख न कभी दबा सके।।

ध्रुव बोले,
जिनका चित्त सुख दु:ख से, अति चंचल हो जाता है। उत्तम उपाय कहा आपने, जिससे वह शांत हो पाता है।।
पर मुझ सम अज्ञानी मूढ़, राज न इसका जान सके। दृष्टि मेरी वहां न पहुंचे, रहस्य न यह पहचान सके।।

फिर मिला प्रबल क्षत्रिय स्वभाव, इस कारण विनय अभाव ही है। माता सुरुचि के वाक् बाणों से, हृदय मेरा आहत ही है।।
इस कारण यह उपदेश जो, आपने मुझको है दिया। मम प्रवृत्ति के कारण, नहीं मेरे हृदय में ठहर रहा।।

हे विप्रवर उस पद पर, अधिकार मैं करना चाहता हूँ। सर्वोत्तम जो त्रिलोकी में, उस आसन को मैं चाहता हूँ।।
मेरे पिता पितामह कोई भी, जिस पर आरुढ़ कभी नहीं हुए। उसकी प्राप्ति का हे देव, मुझको अब साधन कहें।।
श्री ब्रह्मा जी के पुत्र आप, सूर्यवत् त्रिलोक में विचर रहे। सर्व कल्याण हिय में धर, वीणा लेकर भ्रमण करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
ध्रुव की बातें सुनकर के, श्री नारद अति प्रसन्न हुए। कृपा करी फिर ध्रुव पर, उपदेश उसे यूं करने लगे।।

नारद बोले,
तेरी माता सुनीति ने, जो कुछ तुमसे है कहा। हे पुत्र वही तेरे लिये, मार्ग है तेरे कल्याण का।।
प्रभु श्री वासुदेव ही, उपाय हैं इसका जान ले। तेरे लिए है उचित यही, तू अहर्निश उनको ही भजले।।
जो भी जीव अपने लिये, अभिलाषा करे पुरुषार्थ की। धर्म अर्थ और काम की, और मोक्ष रूप परमार्थ की।।
इन सबकी प्राप्ति हेतु बस, एक उपाय ही वह करे। श्री हरि के चरण कमल की, अहर्निश वह सेवा करे।।

हे पुत्र तेरा कल्याण तो, निश्चित ही हो जायेगा। श्री यमुना के तटवर्ती, मधुवन प्रदेश में अब तू जा।।
श्री हरि तो नित्य ही, निवास वहाँ पे करते हैं। निज भक्तों का हित हरि, सदा हृदय में धरते हैं।।

कालिन्दी के निर्मल जल में, स्नान तीन बार कर। निवृत्त नित्य कर्म से हो, विधिवत् आसन बिछा कर।।
स्थिर भाव से बैठकर, प्राणायाम तू कर लेना। रोचक कुम्भक और पूरक, तीनों का आश्रय ले लेना।।
शनै: शनै: प्राण मन और, इन्द्रिय दोषों को दूर कर। धैर्यमुक्त मन से सद्गुरु, श्री हरि का ध्यान तू लेना धर।।

नेत्र और श्री मुख प्रभु का, सदा मुदित ही रहता है। ऐसा लगे भक्तों के लिये, उद्यत वरदे सदा रहता है।।
नासिका भ्रुवें और कपोल, हैं श्री हरि के अति सुन्दर। सभी देवों में अनुपम हैं, वह तो हैं सौन्दर्य मूर्त।।
तरुण अवस्था है उनकी, सुडौल उनका अंग विशाल हैं। बिम्बाफल सम अरुण होंठ, रक्तिम नेत्र विशाल हैं।।
प्रणत जनों के इक आश्रय, श्री हरि स्वयं आप हैं। शरणागतवत्सल सुख दायक, वह दया के सागर आप हैं।।

वक्ष:स्थल पर श्री वत्स का, चिन्ह सुशोभित है उनके। श्यामवर्ण सुन्दर सोहे, जैसे हों जलधर जल से भरे।।
वह श्याम सुन्दर परम पुरुष, हैं गले में वनमाला धारे। चार भुजाओं में उनकी, शंख चक्र गदा पद्म सजे।।
अंग प्रत्यंग सजे उनके, भाँति भाँति के आभूषण से। किरीट कुण्डल केयूर और, कंकणादि हैं साज रहे।।
कौस्तुभ मणि की शोभा भी, कण्ठ को छूकर है बढ़ी। श्री हरि के कान्तिमय तन पर, पीताम्बर है लहरा रही।।

कटि तट पर है स्वर्ण की, करधनी उनके बन्धी। चरण में भी स्वर्ण की, पैंजनियों ने स्वर भरी।।
यह दर्शनीय रूप उनका, आनन्दित सबको कर रहा। उनका शान्त स्वरूप यह, मन और नयन को हर रहा।।
जो भी जन श्री हरि का, मानस पूजन करते हैं। उनके अन्त:करण में, श्री हरि स्वयं ही बसते हैं।।
उसका हृदय कमल की कर्णिका पर, निज पाद वह स्थापित करते हैं। नखमणि विभूषित चरण कमल, श्री हरि के वहाँ पे बसते हैं।।

इस धारणा से साधक का चित्त, स्थिर एकाग्र जब हो जाये। तब श्री वरदे प्रभु को वह, अपने मन में इस विधि ध्याये।।
वह मेरी ओर हैं देख रहे, प्रेम भरे निज नयनों से। मन्द मन्द मुस्कान का उनकी, फिर नित चित्त में ध्यान धरे।।
प्रभु की मंगल मूर्ति का, ध्यान जो इस विधि करता है। हो परमानन्द में लीन वह मन, पुन: नहीं उभरता है।।

हे राजपुत्र इस ध्यान संग, परम गुह्य तुम मन्त्र सुनो। इसका जप करना चाहिये, रहस्य तू इसका अब सुनो।।
सात दिवस और रात्रि को, जपन जो इसका जीव करे। आकाशचारी सिद्धों का, दुर्लभ दर्शन वह पाये।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ही मन्त्र है दिव्य यह। देश काल का विचार कर, पूजा सामग्री इकट्ठी करे।।
विभिन्न भाँति सामग्री से, आराधना वह आरम्भ करे। इस मन्त्र के द्वारा ही, द्रव्यमयी वह पूजा करें।।

शुद्ध जल पुष्पन् माला, जंगली फूल और फल आदि। दुर्वादि अंकुर और वल्कल, और प्रभु की प्रेयसी श्री तुलसी।।
यह सब सामग्री संग ले, पूजा श्री हरि की आरम्भ करे। इस मन्त्र से ही साधक, उपासना उनकी नित्य करे।।
यदि शिला की मूर्त मिल जाये, तो आह्वान उसमें करे। अथवा पृथ्वी जल आदि, में श्री हरि को पूजा करे।।
सर्वदा संयत मननशील, शान्त चित्त वह मौन रहे। जंगली फल और मूल का, संयमित वह आहार करे।।

श्री हरि स्वयं अवतार ले, चरित जो करनेवाले हैं। अनिर्वचनीय निज माया से, स्वेच्छा तन जो धारे हैं।।
उनके मनोहर चरितों का, मन ही मन वह ध्यान धरे। मन को समाहित कर करी, निमग्न उन्हीं में वह रहे।।
प्रभु की पूजा के लिये, है निज उपचारों का विधान। द्वादश मन्त्र के द्वारा वह, श्री चरणों में हों अर्पितवान्।।

हृदयस्थ हरि की मन वाणी, तन से भक्तिमय पूजा करे। निश्छल जो भजन करे उनका, उसका वह मूल्य बढ़ा ही दें।।
निज भक्तों पर श्री हरि, स्वत: ही ऐसी कृपा करें। धर्म अर्थ काम मोक्ष, उनको इच्छानुसार वह दें।।
हरि कृपा से यदि उपासक, इन्द्रिय भोग सों मुख मोड़े। तो ही मोक्ष की प्राप्ति को, निरन्तर हरि का भजन करे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री नारद से आदेश यह पाकर, परिक्रमा उनकी करी ध्रुव ने। प्रणाम कर दिया नारद को, फिर उस राजसुत ने।।
तदनन्तर श्री ध्रुव ने, यात्रा करी फिर मधुवन की। परम पावनी जो धरा, श्री हरि पद चिन्त से चिन्हित थी।।
इस विधि जब बालक ध्रुव, तपोवन की ओर चला। श्री नारद उत्तानपाद, के महल में पहुँचे जा।।
राजा ने भी यथायोग्य ही, अर्चना पूजा उनकी की। सुख आसन पर बैठ कर, उन राजा से यह प्रश्न किया।।

नारद बोले,
हे राजन् तब मुख शुष्क हुआ। बहु बहन विचार में हो पड़े। क्या धर्म अर्थ और काम में, तेरे हैं कोई विघ्न पड़े?
राजा उत्तानपाद बोले,
हे द्विजवर स्त्री लोलुप, अति निर्दय है हृदय मेरा। पंच वर्षीय नन्हा सुत, मैंने माता सहित निकाल दिया।।
हे ब्राह्मण वह शिशु मेरा, अत्यन्त बुद्धिमान् था। मैं अन्धा हुआ निज मोह में, नहीं सत् उसका पहचान सका।।

मुख कमल हाय उसका, क्षुधा से मुरझाया होगा। थककर के वह शिशु मेरा, राह में कहीं पड़ा होगा।।
उसकी याद में हे द्विजवर, है मन मेरा अशान्त हुआ। किसी भेड़िये ने उसका, भक्षण तो नहीं कहीं कर दिया?
कुटिलता तो मेरी देखो, स्त्री का मैं दास बना। प्रेमवश आगोश मेरी, वह बालक था मांग रहा।।
किन्तु दुष्ट हृदय मैंने, नहीं उसका सत्कार किया। मेरे नेत्रों सम्मुख ही, रानी ने उसे दुत्कार दिया।।
नारद बोले,
हे राजन् निज बालक की, तो तुम चिन्ता नहीं करो। उसके रक्षक भगवान हैं, उनपर ही उसे छोड़ दो।।
उसके प्रभाव को हे राजन्, तुम नहीं हो जान रहे। सब जग में फैले यश उसका, तुम ही नहीं पहचान रहे।।
लोकपाल जिन्हें न कर सकें, वह उद्यम हैं उसने किये। वह बालक बड़ा सामर्थ है, तुम नहीं उसे पहचान सके।।
निज कार्य को पूरा करके वह, शीघ्र लौट ही आयेगा। इस शिशु के कारण तेरा भी, यश वर्धित हो जायेगा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
नारदजी की बात सुनी, उत्तानपाद हो गए विरक्त। उदासीन हुए राज्य से, थे अहर्निश सुत चिन्ता में रत।।
इधर कालिन्दी के तट पे, मधुवन में जब ध्रुव पहुँचे। यमुना जी में स्नान करी, पावन हो उपवास किये।।
श्री नारद के उपदेश में, एकाग्र चित्त उन्होंने किया। परम पुरुष नारायण की, उपासना को आरम्भ किया।।

तीन रात्री के अन्तर से, कैथ और बेर के फल खाये। तन के निर्वाह के लिये, यह भक्षण अनिवार्य थे।।
इस विधि अल्पाहारी हो, श्री हरि की उस उपासना की। उसकी इस प्रक्रिया में, एक मास यूं बीत गई।।
दूसरे मास में उसने, छः दिन के अनन्तर ही। सूखे पत्ते और घास खा, श्री हरि का पूजन किया।।

तीसरे मास आहार की, अवधि फिर कुछ और बढ़ी। नौ दिन में केवल जल पीकर, समाधि योग की आश्रय ली।।
श्री हरि की उपासना में, लीन वह होते गए। इस विधि ध्रुव के समान भी, कठिनतर होते गए।।
चतुर्थ मास में उन्होंने, स्वासवों को अपने जीत लिया। बारह दिन के अन्तराल में, केवल वायु पान किया।।
ध्यान योग द्वारा उन्होंने, श्री हरि की उपासना की। इस विधि ध्रुव की तप भी, उग्रतर नित्य ही होती गई।।

पंचम मास आरम्भ हुआ, श्वासों को ध्रुव ने जीत लिया। परं ब्रह्म के चिन्तन में, इक चरण पे खम्भवत् हुआ खड़ा।।
शब्दादि विषय और इन्द्रियों से, निज मन को उसने खींच लिया। एकाग्र किया हृदयस्थ में चित्त, प्रभु का अनन्य चिन्तन किया।।
महादादि सब तत्त्वों के, आप ही हैं जो आधार। प्रकृति पुरुष अधीश्वर जो, परब्रह्म को लिया हृदय में धार।।
तब उसके महातेज को, तीनों लोक नहीं सह सके। घबरा कर उस तेज से, तीनों लोक ही कांप गए।।

राजकुमार सुत ध्रुव ने जब, एक पांव पर भार धरी। उनके अंगूठे से दबकर, पृथ्वी आधी इस विधि झुकी।।

ज्यों गजराज के चढ़ने से, नाव हो डगमगा रही। कभी दायें कभी बायें को, पग पग पर झुकती जा रही।।

इन्द्रिय द्वार निज रोक लिये, और प्राणों को भी रोक लिया। अनन्य बुद्धि से विश्वात्मा, हरि का ध्यान वह करने लगा।।
समष्टि प्राण सें अभिन्नता, को वह प्राप्त कर चुका। इस कारण श्वास उनके रुकने से, सब जीवों का श्वास रुका।।
समस्त लोक और लोकपाल, बहु पीडित इससे हो गए। इससे सब घबरा कर के, श्री हरि की शरण में जा पहुँचे।।

देव बोले,
स्थावर जंगल सब जीवों के, प्राण यकायक रुक गए। प्रभु के चरण में जाकर सब, आर्त भाव से यूं बोले।।
हे प्रभु ऐसा अनुभव तो, पहले हमें कभी नहीं हुआ। स्वास यह हैं रुक रहे, और संकट में प्राण पड़ा।।
शरणागत वत्सल आप प्रभु, हम शरण आपकी आए हैं। हे हरि हरो सन्ताप यह, यह ही बिनती लाये हैं।।

भगवान बोले,
उत्तानपाद के सुत ध्रुव ने, चित्त समाहित मुझमें किया। विश्वात्मा मुझमें ही, लीन है उसने निज को किया।।
मेरे साथ इस पल उसकी, अभिन्न धारण सिद्ध हुई। इस कारण प्राण निरोध से उसके, मानो तुम्हारा भी प्राण रुका।।
हे देवों न भयभीत हो, निज लोकों को अब तुम लौटो। वह बालक इस दुष्कर तप से, मेरी कृपा से निवृत्त हो।।

मैत्रेय मुनि बोले,
श्री हरि ने जब इस विधि, देवों को आश्वस्त किया। हे विदुर उन देवों का, भय सारा जाता रहा।।
प्रभु को वह प्रणाम करी, घरों को अपने चले गए। निज गरुड़ पे हो सवार हरि, भक्त मिलन मधुवन को चले।।

तीव्र योगाभ्यास से, बुद्धि भी एकाग्र हुई। विद्युय सम देदीप्यमान, छवि प्रभु की थी उसने देखी।।
हृदयाकाश से वह छवि, लुप्त ही मानो हो गई। जिसमें था समाहित चित्त हुआ, वह आधार ही नहीं रही।।
घबरा कर उस शिशु ने, ज्यों ही नयन अपना खोला। प्रभु के उस ही रूप को, बाहर सामने खड़ा देखा।।

प्रभु का यह दर्शन पाकर, बालक ध्रुव को आश्चर्य हुआ। प्रेम अधीर वह हो गया, और दण्डवत् प्रणाम किया।।
फिर निज नयनों में प्रेम भरी, उनका दर्शन वह करने लगा। निर्निमेश देखे गया, रसपान ज्यों रूप का कर लेगा।।
भुजा थी फैल रहीं उसकी, मानों उनमें प्रभु भर लेगा। मुख भी था कौतुक भरा, ज्यों चुम्बन हरि का कर लेगा।।

कर बद्ध होई के श्री हरि के, सम्मुख था वह खड़ा हुआ। ऐसा लगता था वह उनकी, स्तुति ही था करना चाहता।।
पर कैसे वह स्तुति करे, कोई विधि नहीं वह जाने था। सर्वान्तर्यामी हरि ने उसका, हृदय भाव पहचान लिया।।
कृपा करी निज वेदमय, शंख को आगे उसने किया। अति कोमल उसके कपोल को, स्पर्श शंख से कर दिया।।

शिशु ध्रुव तो भविष्य में, अविचल पद का अधिकारी था। शंख स्पर्श से वेदमयी, दिव्य वाणी को प्राप्त हुआ।।
जीव एवं ब्रह्म के, स्वरूप का निश्चय हो गया। भक्तिपूर्ण हृदय से वह, स्तुति श्री हरि की करने लगा।।
अति धैर्यवान चित्त उसका था, हरि कीर्तन वह गाने लगा। विश्वकीर्ति प्रभु महिमा से, द्रवीभूत हुआ हृदय उसका।।
ध्रुव बोले,
हे प्रभो आप स्वयं, सर्वशक्तिमान् हैं। मेरे अन्त:करण में विराज रहे, आप ही तो मम प्राण हैं।।

आप ही के तेज से, हो सजीव मेरी वाणी। मेरे हाथ पैर कान त्वचा, और अन्य इन्द्रियाँ सभी।।
फिर अन्तर्यामी रूप से, प्रवेश उसीमें करते हैं। इन्द्रियादि असत् गुणों में, अधिष्ठातृ देव बन जाते हैं।।
अधिष्ठाता देव सभी में स्थित, अनेकों रूपों में दिखें। ज्यों भिन्न काष्ठ में प्रकट अग्नि, उनके आकार की होवे।।

सृष्टि के आदि में नाथ, ब्रह्मा ने आपकी शरण ली। आपके ही दिये ज्ञान से, देखा जग स्वप्नवत् ही।।
हे दीनबन्धु आपके उन, चरणों को आश्रय लें सदा। मुक्त पुरुष भी उनकी ही, छाया में रहते हैं सदा।।
कोई भी कृतज्ञ जीव, कैसे भुला कभी पाये उन्हें? वह ही तो आधार हैं, हर क्रिया का उसकी वह जानें।।

है शव समान ही यह शरीर, इसके द्वारा है युक्त जो। इन्द्रिय विषय संसर्ग से, प्राप्त उसका दीखे सुख जो।।
जीव नरक में भी उसको, कर सकते हैं प्राप्त सदा। उस विषय सुख के लिये, हैं लालायित जो सदा।।
जन्म मरण से मुक्तिप्रद, नहीं आप में हो उनकी श्रद्धा। मानव शरीर पाकर के भी, है जन्म यह उनका व्यर्थ हुआ।।
भगवद् प्राप्ति से अन्य ही, उद्देश्य कोई मन में धरे। इस कल्पतरु की उपासना, जो जीव हैं कर रहे।।
उनकी बुद्धि आपकी, माया द्वारा है ठगी गई। इस कारण ही सत्यता के, आभास से वह अनभिज्ञ रही।।

हे नाथ आपके चरण कमल, जिनके चित्त में रहते हैं। जो नित्य ही आपके भक्तों के, पावन चरितों को सुनते हैं।।
वह आनन्द जो पाते हैं, ब्रह्मानन्द में भी नहीं मिलता। आपके श्री चरितों का ध्यान, ही तो है सबसे ऊँचा।।
फिर काल की तलवार से, नित्य जो कटते रहते हैं। स्वर्ग के विमानों से, ऐसे पुरुष नित्य गिरते हैं।।
ऐसे अलौकिक सुख की वह, कल्पना भी न कर सकें। आपके चरण कमल आश्रित, भक्त आपके जिसमें बसें।।

हे परमात्मन् आप तो बस, इतनी कृपा मुझपे कीजिये। विशुद्ध हृदय महात्मन्, भक्तों का संग मुझे दीजिये।।
जिनका हे हरि आपमें, एकाग्र भक्ति भाव है। उनकी संगति में आपकी, कथाओं का नित्य ही पान है।।
तव कथा सुधा को पी पी कर, उन्मत्त मैं हो जाऊँगा। सहज ही मैं इस दु:खरूपा, भव सागर से तर जाऊँगा।।

हे कमलनाभ हे नारायण, आपके चरण कमल की सुगन्ध। है जिनके चित्त को लुभा लेती, आपके चरणों की मरकन्द।।
ऐसे भक्तों का जो लोग, संग कहीं पा जाते हैं। अत्यन्त प्रिय निज तन और उसके, नातों को भूल वह जाते हैं।।
पुत्र मित्र और गृह द्वारा, की भी सुधि नहीं रहती उन्हें। वह तो सदा बस आपकी, कथामृत में हैं रहते है मस्त।।

हे अजम आप परमेश्वर हे, मैं कैसे आपको जन्म सकूँ। पशु वृक्ष पर्वत खग सर्प, आदि ही मैं पहचान सकूँ।।
देवता दैत्य मनुज आदि, से परिपूर्ण जो रूप हैं। महदादि कारण सम्पादित, सत् असत् जो आपका रूप हैं।।
मैं तो आपके विश्वरूप, को ही केवल जान सकूँ। नहीं वाणी की गति जहाँ, वह परम स्वरूप कैसे जानूँ?

कल्पान्त में योगनिद्रा में जो, करें विश्व लीन निज उदर में। शेष के साथ जो करें शयन, नित्य उन्हीं की गोद में।।
नाभि से जिनकी प्रकट हुए, सर्व लोकमय स्वर्ण कमल से। तेजोमय वह श्री ब्रह्मा भी, आप ही हैं वह भगवन् हे।।
आप ही के श्री चरणों में, प्रणाम प्रभु मैं करता हूँ। सर्वश्रेष्ठ हैं आप प्रभु, मैं सीस चरण में धरता हूँ।।

हैं साक्षी आप स्वयं प्रभु, अखण्ड चिन्मयी दृष्टि से। बुद्धि की अवस्था में सभी, आप स्वयं देखा करें।।
नित्य मुक्त शुद्ध सतोमय, सर्वज्ञ परमात्म स्वरूप। षडैश्वर्य सम्पन्न पुरुष, त्रिगुण के अधीश्वर रूप।।

सर्वथा भिन्न हैं जीव से, संसार स्थिति के अधिष्ठाता। विष्णु रूप में विराज रहे, सम्पूर्ण सृष्टि के त्राता।।

विद्या अविद्या विरोधी गति, वाली अनेकों गतिविधियाँ। निरन्तर आपसे प्रकट हों, सम्पूर्ण ही यह शक्तियाँ।।
जगत् के कारण आप हैं, अखण्ड अनादि और अनन्त। आनन्दमय ब्रह्म स्वरूप आप, मैं आपके ही हूँ शरणापन्न।।

परम आनन्द की मूर्ति, हे भगवन् हैं आप स्वयं। ऐसा जान के लोग जो, करते नित्य हैं आपका भजन।।
राज्यादि भोगों में नहीं, चित्त उनका कभी भ्रमता। आपको ही नित्य जान कर, जो भजन आपका ही करता।।
जैसे नवजात शिशु का प्रभु, रक्षण गौ नित्य करती है। दूध पिलाती है उसको, और व्याघ्रादि से बचाती है।।
उसी विधि आप भी हे प्रभु, भक्तों पे कृपा करने के लिये। हम जैसे जो हैं विकल जीव, है सदा सकाम हृदय लिये।।
कामना पूर्ण कर उनकी, संसार भय से बचाते हैं। हे प्रभु आप ही सर्वविधि, रक्षण हमारा करते हैं।।
मैत्रेय मुनि बोले,
शुभ संकल्पी ध्रुव ने विदुर, जब इस विधि की उनकी स्तुति। भक्त वत्सल श्री हरि ने तब, प्रशंसा उसकी इस विधि की।।
भगवान बोले,
उत्तम व्रतधारी राजपुत्र, संकल्प हृदय का मैं जानूँ। है अति दुर्लभ यद्यपि वह पद, मैं वही तुम्हें प्रदान करूँ।।

अविनाशी तेजोमयी जिस, लोक को नहीं किसी ने प्राप्त किया। अभी तक उस लोक का, पात्र नहीं कोई बन पाया।।
चारों ओर जिसके तारागण, नक्षत्र ग्रह चक्र है काटते। जिस विध मेंढी के चहुँ ओर, बैल चक्र हैं काटते।।
कल्प पर्यन्त रहनेवाले, लोक भी नष्ट हो जायें जब। उस स्थिति में भी वह लोक, सदा सर्वदा बना ही रहता तब।।
तारागण संग सप्तर्षि, प्रदक्षिणा जिसकी करते हैं। धर्म अग्नि कश्यप शुक्रादि, नक्षत्र जहां विचरते हैं।।
वह ध्रुव लोक है शिशु सुनो, आज तुम्हें मैं देता हूँ। प्रसन्न होई तेरे तप से, तुझे स्थित वहीं पे करता हूँ।।

यहाँ पे भी जब पिता तेरे, दे दें तुझको सिंहासन। कर्त्तव्य मुक्त ही होकर वह, करेंगे जब वन को गमन।।
तब तू छत्तीस हजार वर्ष, पर्यन्त करेगा धर्म से राज्य। पृथ्वी का पालन करते हुए, नहीं क्षीण होगा कोई इन्द्रिय काज।।
आगे चलकर भाई तेरा, आखेट में मारा जायेगा। कार्य अपना पूर्ण कर, संसार से वह उठ जायेगा।।
माता सुरूचि खोजती उसे, बन बन में फिर भटकेगी। दावानल में प्रवेश कर, अपने प्राण वह तज देगी।।

है यज्ञ ही मेरा हृदय जान, अनेकों यज्ञ करेगा तू। विशाल दक्षिणायुक्त यज्ञ से, मेरा पूजन करेगा तू।।
इह लोक के उत्तम भोग करी, अन्त में याद करेगा मुझे। हे बालक निश्चिन्त तू हो, अन्त में प्राप्त करेगा मुझे।।
सब लोकों में वन्दनीय, मेरे धाम को ही तू जायेगा। सप्तर्षियों से भी ऊपर, मेरे धाम में स्थान तू पायेगा।।
वहां पहुंचकर वत्स जान, फिर पुन: लौटना नहीं हो। जन्म मरण के चक्र में, पुन: आवागमन फिर नहीं होगा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
बालक ध्रुव से इस विधि, श्री हरि पूजित हुए। अपने प्रिय उस भक्त को निज धाम के वरदान दिये।।
निज पद प्रदान करके उसको, फिर देखते ही देखते। गरुड़ ध्वज श्री नारायण, अपने लोक को चले गये।।
प्रभु की चरण सेवा से, संकल्प तो पूर्ण हुआ। संकल्प तो निवृत्त हो गया, पर चित्त न अति मुदित हुआ।।
वन को छोड़ करी फिर ध्रुव अपने नगर को लौट गए। तपस्या करके पूर्ण वह, पुन: अपने राज्य की ओर चले।।

विदुर बोले,
हे द्विजश्रेष्ठ मायापति का, परम पद है अति दुर्लभ। उन चरण कमल की उपासना से, ही हो सकता है यह सुलभ।।
सार असार वस्तु का, पूर्ण विवेक था श्री ध्रुव को। एक जन्म में ही उन्होंने, उस परम पद को प्राप्त किया।।
फिर भी उन्होंने अपने को, अकृतार्थ ही क्यों माना? परम पद को पाकर भी, क्यों हृदय सन्तुष्ट उनका नहीं हुआ?
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री ध्रुव का हृदय विमाता के, वाग्बाणों से बिद्ध था। वर याचना की बेला भी, उस स्मृति से नहीं वह मुक्त था।।
इसी कारण मुक्तिदाता, श्री हरि से मुक्ति नहीं मांगी। भगवद्दर्शन से मनोमलिनता, उनकी मानो सारी धुली।।
अपनी इस महा भूल पे, पश्चाताप से वह भरे। इस कारण परम पद पा, कर भी न सन्तुष्ट हुए।।
ध्रुव बोले,
सनकादि ऊर्ध्वरिता सिद्ध भी, अनेक जन्म तक तप करें। अनेक जन्म समाधि लगा, जिनको प्राप्त वह कर सकें।।
उन श्री चरणों की छाया, छ: मास में ही मैंने पा ली। किन्तु मेरे चित्त में भी, अन्य वासना बाकी रही।।
हा उनके दर्शन पाकर भी, उनसे दूर मैं हो गया। मन्दभाग्य के कारण ही, विवेक उदय न मुझमें हुआ।।

हाय देखो मुझ समान, हतभागी की मूर्खता। संसार पाश जो काट दें, उन हरि का दर्शन भी पाया।।
उनके श्री चरण को पाकर भी, मुझ मूर्ख ने क्या किया। उन हरि से भी नाशवान्, वस्तु को ही मैंने मांग लिया।।
देवतागण भी स्वर्ग भोग कर, पुन: अधोगति पाते हैं। शायद वह भगवत्प्राप्ति की, श्रेष्ठता नहीं समझ पाते हैं।।

अत: उन्होंने ही मेरी, बुद्धि को भी नष्ट किया। देवर्षि नारद की सम्मति मैं अज्ञ नहीं पहचान सका।।
यद्यपि इस संसार में, आत्म के सिवा कोई अन्य नहीं। तथापि स्वप्न में ज्यों पुरुष, देखे दृश्य विभिन्न ही।।
अपने द्वारा ही कल्पित जो, व्याघ्रादि से वह डरे। उसी विधि मुझ मूढ़ का मन, माया से ही ग्रसित रहे।।
माया से मोहित हो मैंने, निज भ्राता को शत्रु माना। इस कारण मैं व्यर्थ ही, द्वेषाग्नि में जलने लगा।।

अति दुर्लभ है जिनको पाना, और प्रसन्न जिन्हें करना। विश्वात्मा उन श्रीहरि को, तप से मैंने प्रसन्न किया।।
पर जो कुछ भी मांगा उनसे, वह तो सब बस व्यर्थ ही था। जिसकी आयु समाप्त हुई, सर्वोत्तम ज्यों उनकी चिकित्सा।।
अहो अति मन्दभागी मैं, वह मैंने क्या कर दिया। संसार पाश जो काट सकें, हरि से जग ही मांग लिया।।

पुण्यहीन हूँ मैं बहुत, इस कारण ही ऐसा हुआ। जैसे हो कंगाल कोई, किसी सम्राट से मांग रहा।।
चक्रवर्ती को मुदित कर, ज्यों चावल कण कोई मांगे। उसी विधि मूर्खतावश, अभिमान वर्धक मैंने पद मांगे।।
श्री हरि दर्शन तो आत्मानन्द, है प्रदान करने वाला। उसकी महिमा को भूला मैं, भ्रम में मेरी बुद्धि ने डाला।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे तात् तुम जैसे जन, मुकुन्द के चरणारविन्द के। अमृत रस के मधुकर हैं, उनका ही सेवन हैं करते।।
जिनका मन यदृच्छा से, जो मिले उसी में तुष्ट रहे। वह श्री हरि से अपने लिये, नहीं अन्य पदार्थ मांगते।।
बस श्रीहरि की सेवा ही, उनके लिये है फल वांछित। उसे छोड़ जग का भी राज्य, नहीं अपने लिये कभी है इच्छित।।

दूजी उत्तानपाद, ने जब यह समाचार सुना। उनका प्रिय सुत ध्रुव पुन: घर की ओर है लौट रहा।।

उनको तो इस बात पर, विश्वास ही पहले नहीं हुआ। ज्यों यम लोक को प्राप्त हुआ, पुन: जग में लौट नहीं सकता।।
उन्होंने सोचा मुझ मन्दभागी का, ऐसा भाग्य कहाँ होगा? कि मुझे त्याग कर गया पुत्र, पुन: लौट घर आयेगा।।

फिर उनको देवर्षि नारद, की बात का स्मरण हुआ। इस कारण उनका हृदय, पुन: विश्वास से भर गया।।
आनन्द के अतिरेक का, हृदय में आवेग उठा। जिसने यह सुसमाचार दिया, उसे बहुमूल्य इक हार दिया।।

राजा तो निज पुत्र का, मुख देखन को उत्सुक था। बहुत से ब्राह्मण कुलवृद्ध, मन्त्री बन्धु को साथ लिया।।
उत्तम घोड़ों से जुते हुए, स्वर्ण रथ पर वह हुए सवार। तुरन्त ही फिर आ पहुंचे, वह निज नगर के बाहरी द्वार।।
आगे आगे उन सबके, वेद ध्वनि थी गूंज रही। शंख दुदुम्भी वंशी आदि की, मंगल ध्वनि थी वहाँ उठी।।

सुनीति और सुरुचि भी, उनकी दोनों महारानियाँ। स्वर्णमय आभूषणों से, थी सजी पट्रानियाँ।।
राजकुमार उत्तम संग, पालकियों पर चढ़ कर के। ये सब भी ध्रुव से मिलने, नगर के बाहर थे चले।।
इतने में श्री ध्रुव भी उपवन के निकट पहुँचे। उन्हें वहाँ पर देखकर, उत्तानपाद रथ से उतरे।।
पुत्र के दर्शन के लिये, बहु दिन से वह उत्कण्ठित थे। प्रेमातुर होकर राजा, झटपट फिर आगे बढ़े।।
लम्बी सांसे लीं उन्होंने, और ध्रुव को निज भुजा में भरा। इस भाँति राजा ने निज, स्नेह का प्रदर्शन किया।।
ध्रुव भी अब पहले वाले, ही ध्रुव तो थे नहीं रहे। श्री हरि का पाद स्पर्श पाकर, सब बन्धन थे उनके कटे।।

राजा उत्तानपाद की, पूर्ण हुई मनोकामना। पुत्र के सिर को बार बार, स्नेह सहित उन्होंने चूमा।।
आनन्द और प्रेम भरे, ठण्डे आँसू थे बह रहे। निज पुत्र को आँसुओं से, मानो वह थे नहला रहे।।
तदनन्तर श्री ध्रुव ने, जो हैं सज्जनों में अग्रणी। निज पिता के चरणों में, विनम्रता पूर्वक सीस धरी।।
उनसे पाया आशीर्वाद, और कुशल क्षेम के प्रश्न किये। तत्पश्चात् माताओं के, चरणों के उन्होंने स्पर्श किये।।

निज चरणों पर झुके हुए, ध्रुव को माता सुरुचि ने। अपने गले लगाकर के, कोटिश: आशीश दिये।।
आँसुओं से गद्गद् वाणी, श्री सुरूचि की हो रही। चिरंजीवी हो पुत्र तुम, ध्रुव को यह आसीस दी।।
ज्यों जल का प्रवाह सदा, नीचे को स्वत: बहता है। हरि भक्त का हृदय सदा, हरि गुण से पूर्ण ही रहता है।।
मैत्री आदि गुणों कारण, श्री हरि प्रसन्न जिस जीव पे हों। उसके सम्मुख तो स्वत: ही, सम्पूर्ण जग नतमस्तक हो।।

फिर उत्तम और ध्रुव दोनों, भाई इक दूजे से मिले। गले से लग इक दूजे के, आँसु थे निरन्तर बह रहे।।
इक दूजे का पाकर अंग स्पर्श, रोमांचित दोनों ही हुए। नेत्रों से भी बार बार, अश्रु प्रवाह थे बह निकले।।
माता सुनीति ने प्राण प्रिय, पुत्र लगाया अपने गले। उसके वियोग के सब सन्ताप, पल में माता को भूल गए।।
सुकुमार वा अंगों का, स्पर्श जननी ने पाया। आनन्द के तीव्र वेग से, हृदय था उसका भर आया।।

माता सुनीति की अंग अंग, आनन्दाश्रु से थी भीगी। स्नेह वश उनके स्तन से, दुग्ध की धारा बहने लगी।।
पुरवासी भी सब उसकी, स्तुति उस पल करने लगे। उसके भाग्य सराह की, उससे यूं कहने लगे।।
हे महारानी पुत्र आपका, बहुत दिनों से खोया था। हम सबके सौभाग्य से, आज लौट वह आया है।।
हम सबका दु:ख दूर करे, भूमण्डल पर यह राज्य करे। दीर्घ काल तक पुत्र तेरा इस भू का भार हरे।।

आपने है निश्चित ही की, पूजा शरणागत्वत्सल की। जो निरन्तर ध्यान धरे उनका, वह जीत ले दुर्जेय मृत्यु भी।।
हे विदुर सब जन इस विधि, जब ध्रुव से लाड़ थे कर रहे। उत्तम सहित तब राजा ने, हथिनी पर ध्रुव बिठा दिये।।
हर्षित उत्तानपाद ने, राजधानी में प्रवेश किया। जन जन उस पल जगत का, था उनका भाग्य सराह रहा।।

स्थान स्थान पर नगर में, सुन्दर तोरण थे बने हुए। मानो मगर आकार के ही, द्वार थे सब हो गए।।
फल फूलों के गुच्छों से, थे कदली स्तम्भ सजाये गए। सुपारी के पौधे भी थे, नगर की शोभा बढ़ा रहे।।
जल कलश पड़े थे द्वार द्वार, जिन पर थे दीपक सजे। आम्रपत्र वस्त्र पुण्य, तथा मुक्तामाल सुसज्जित थे।।

परकोटों द्वारों और अनेकों, महलों से थी सजी नगरी। स्वर्णमय रंगों से सब पर, थी सजावट करी गई।।
उनके शिखर भी कान्तिमय, इस विधि थे हो रहे। ज्यों आकाश विमानों की, शोभा से हों द्युतिवान् हुए।।
नगर के चौक गली अटारी, और राजपथ थे जितने। झाड़ बुहार के उन सबको, थे चन्दन जल छिड़काव किये।।
जहाँ जहाँ खील चावल, पुष्प फल थे पड़े हुए। जौ और अन्य सामग्री से, थे सब स्थान ही सज रहे।।

राजमार्ग से जा रहे, महा तपस्वी श्री ध्रुव थे। शीलवती सुन्दरियों के, मन भी दर्शन को उत्सुक थे।।
वात्सल्य भाव रख उनके प्रति, आशीर्वाद थीं दे रहीं। सरसों दही जल अक्षर और, पुष्पों की वर्षा थी कर रहीं।।
उनके मनोहर गीतों को, मार्ग में ध्रुव ने भी सुना। इस विधि पिता के महल में, उन्होंने फिर प्रवेश किया।।

बहुमूल्य मणि की लड़ियों से, वह भवन था सजा हुआ। निज पिता का लाड़ चाव, भी था न्यौछावर वहाँ हुआ।।
ज्यों स्वर्ग में देव गण, आनन्द पूर्वक हैं रहते। त्यों ही ध्रुव निज पितृ गृह में, सुख पूर्वक रहने लगे।।
फेन समान श्वेत कोमल, परिधान थे शैय्याओं पे बिछे। हाथी दांत के पलंग बने, और सुनहरे कढ़े पर्दे।।
बहुमूल्य आसन थे बिछे, स्वर्ण का भी था बहु सामान। इस प्रकार उस भवन की, थी शोभा बनी अति महान्।।

दीवारें उसकी ऐसी थीं, स्फटिक और पत्रे की बनी। उनके ऊपर रत्नों से बनी, अति सुन्दर थी स्त्री मूर्ति।।
मणिमय दीपक उनपर धरे, थे झिलमिल जगमगा रहे। इस विधि निज ज्योति का, प्रकाश थे वह फैला रहे।।
चहुँ ओर उस महल के, दिव्य बने उद्यान थे। अनेक जाति के वृक्षों पर, कलरव थे पक्षी कर रहे।।

मतवाले भंवरों की गुंजन, से था गूंज रहा वह बाग। नर मादा पक्षी मिलकर थे, सुना रहे स्वरमय निज राग।।
बावलियां उन उद्यानों की, थीं ऐसी सुन्दर बनीं। पुखराज की बनी सोपानों से, वह अत्यन्त सुशोभित थीं।।
रक्त श्यामल और श्वेत, कमल खिले वहाँ रहते थे। हंस कारण्डव चकवा सारस, क्रीड़ा उनमें सब करते थे।।

अपने पुत्र के अति अद्भुत, प्रभाव का था जो वृतान्त। राजर्षि उत्तानपाद ने, नारद मुख से था लिया जान।।
अब प्रत्यक्ष ही उसका वह, दर्शन स्वयं पाने लगे। निज सुत की महिमा देखी, आश्चर्यचकित हुए जाने लगे।।
फिर देखा जब उन्होंने, ध्रुव को तरुण अवस्था में। मन्त्री वर्ग के मध्य भी, देखा ध्रुव अति मान्वित थे।।
फिर प्रजा का अनुराग भी, उनपर ही था बना हुआ। यह सब देख भूमण्डल के, राज्य पे उन्हें आसीन किया।।
निज वृद्धावस्था आई देख, आत्म स्वरूप चिन्तन के लिये। संसार से विरक्त हो, उत्तानपाद बन को चले।।

प्रजापति शिशुमार की पुत्री, भ्रमि से ध्रुव ने किया विवाह। कल्प और वत्सर नामक, द्वौ पुत्रों को उसने जन्म दिया।।
महाबली ध्रुव की दूजी, पत्नी थी वायु पुत्री इला। उत्कल नामक पुत्र और इक कन्या रत्न को उसे जन्मा।।

उत्तम अभी अविवाहित था, था आखेट को वह गया। हिमालय पर्वत पर बलवान्, यक्षोंने उसे मार दिया।।
उसका वियोग माता उसकी, पल भर को न सह सकी। पुत्र शोक में उस माता, सुरुचि ने भी निज प्राण त्यजी।।

भाई के वध होने का, ध्रुव ने जब समाचार सुना। उसका हृदय क्रोध शोक, और उद्वेग से भर गया।।
विजयप्रद रथ पे हो सवार, वह युद्ध करने चले। सम्राट ध्रुव अति तीव्र गति से, यक्ष देश में जा पहुँचे।।
उत्तर दिशा में जाकर के, सुरम्य हिमालय घाटी में। यक्षों से थी जो भरी हुई, पहुँचे वह उस अलकापुरी में।।
उस पुरी में अनेकों ही, रहते थे भूत पिशाचादि। अनेकों रुद्र अनुचरों की, उस नगरी में वास थी।।

वहां पहुँचकर हे विदुर, किया ध्रुव ने निज शंख निनाद। उस ध्वनि से गूंज उठे, सम्पूर्ण दिशाओं सहित आकाश।।
यक्षपत्नियां ध्वनि वह सुन, भयभीत अति हो गई। सुन्दर कमल नयन उनकी, भय के कारण कारत हुई।।
महावीर बलवान यक्ष, वह शंखनाद न सह सके। भाँति भाँति के अस्त्र-शस्त्र, उन सबने अपने धार लिये।।
अपने आयुधों सहित सभी, नगर से बाहर आ गये। महावीर ध्रुव पर वे सब, मिली प्रहार करने लगे।।

महारथी ध्रुव स्वयं भी तो, महा प्रचण्ड धनुर्धर थे। प्रत्येक यक्ष पे एक साथ, तीन तीन बाण छोड़े।।
यक्षों ने निज मस्तक में, तीन तीन बाण लगी देखी। तव विश्वास हुआ उनकी, निश्चित पराजय ही होगी।।
इस अद्‌भुत पराक्रम को, देख के सब जन चकित हुए। मन्द मन्द स्वरों में सब, प्रशंसा ध्रुव की करने लगे।।

ज्यों सर्प किसी के पाद का, प्रहार सहन नहीं कर सकता। ध्रुव के इस पराक्रम को, यक्षों ने नहीं सहन किया।।
उन्होंने भी उनके बाणों का, उचित ही प्रतिकार किया। एक साथ ही द्विगुणे उन, छ: छ: बाणों को छोड़ दिया।।

महा विशाल थी सेना उनकी, संख्या थी उनकी तेरह आयुत। श्री ध्रुव से बदला लेने को, ये यक्षगण सब की कुपित।।
परधि खड्ग प्रास त्रिशूल, फरसा शक्ति ऋष्टि आदि। भुशुण्डी तथा चित्र विचित्र, बाणों की वृष्टि करी।।
सारथी सहित ध्रुव पर सब, अस्त्र शस्त्र उन्होंने छोड़ दिये। ऐसा लगा ज्यों अपने क्रोध का, प्रदर्शन थे वह कह रहे।।

शास्त्रों की भीषण वर्षा से, ध्रुव पूर्णतय: ढक गये। ज्यों भीषण वृष्टि में कोई, पर्वत शिखर न दीख सके।।
आकाश में स्थित जो सिद्ध गण, यह अद्‌भुत दृश्य थे देख रहे। हाय हाय कहकर वे सब, शोक से सन्तप्त हुए।।
ध्रुव जो उनको न दीखा, हाहाकार वहाँ मच गया। यक्ष सेना सागर में ज्यों, मानव सूर्य हो अस्त हुआ।।

निज विजय घोषणा करके यक्ष, सिंहवत् गर्जन करने लगे। इसी बीच ध्रुव भी वहां, प्रकट ही सहसा हो गये।।
ज्यों कुहरे में छिपा सूर्य, प्रकट यकायक हो जाये। उसी विधि लुप्त थे जो हुए, पुन: प्रकट ध्रुव हो गये।।
निज धनु: की दिव्य टंकार से, शत्रु हृदय विदीर्ण किये। प्रचण्ड बाणों की वर्षा से, शस्त्र अस्त्र छिन्न भिन्न किये।।
ज्यों आन्धी के आने पर, सब बादल हो बिखर रहे। त्यों ही ध्रुव के बाणों का वेग, अस्त्र शस्त्र न सह सके।।

उनके धनुष से छूटे हुए, अति तीक्ष्ण उन बाणों ने। यक्ष राक्षसों के कवच, पल भर में ही बेन्ध दिये।।
कवच भेद वह उनके तन में, इस विधि से जाय घुसे। ज्यों इन्द्र का छोड़ा हुआ, वज्र गिरी में प्रवेश करे।।

हे विदुर ध्रुव के बाणों ने, काट दिये यक्ष मस्तक। सुन्दर कुण्डल मण्डित सीस, पड़े हुए थे धरती पर।।
सुनहरी ताल वृक्ष समान, थीं कटी पड़ीं जाँघें उनकी। विभूषित भुजा हार भुजबन्द, मुकुट पगड़ी भूपर गिरी।।

इनसे थे रणभूमि सजी, वीरों के मन को भा रही। यक्षों की वह समरभूमि, थी शोभा बहु पा रही।।

जो यक्ष कहीं जीवित बचे, अंग अंग थे क्षत विक्षत। क्षत्रिय श्रेष्ठ ध्रुव बाणों ने, किया था उनको अति आहत।।
युद्ध क्रीड़ा में सिंह सों ज्यों, गजराज परास्त हो भागे। उसी विधि खा ध्रुव के बाण, यक्ष थे रण से भाग रहे।।

नरश्रेष्ठ श्री ध्रुव ने , जब अपने चहुँ ओर देखा। रणभूमि में शस्त्र लिये, नहीं कोई भी शत्रु बचा।।
तो अलकापुरी देखन की, इच्छा उनके मन में उठी। पर उस मायापुरी भीतर, ध्रुव ने निज चरण नहीं धरा।।
यह मायावी किसी पल भी, जाल नया क्या रचा देंगे। इनकी इस छलनी माया को, मनुज कोई न समझ सके।।
सारथी से ऐसा कहकर, निज रथ में ही रहे बैठे। शत्रु के नव आक्रमण की, आशंका थे हृदय में लिए।।
भयंकर गर्ज सागर समान, आन्धी का भयावह शब्द सुना। दिशाओं से उठती धूलि ने, सारे आकाश को ढक लिया।।

क्षण भर में सारा आकाश, घिरा मेघ मालाओं से। चहुँ ओर भयंकर गर्जन संग, दामिनी भी चमका करे।।
रक्त कफल पीब विष्ठा, मूत्र और चर्बी बरसी। ध्रुव सम्मुख आकाश से, धड़ों की वर्षा होने लगी।।
फिर विशाल पर्वत एक, आकाश में दर्शितवान् हुआ। चारों ओर गदा परिघि खड्ग, मूसल और पाषाण गिरा।।

ध्रुव ने देखा बहुत सर्प, वज्र सम फुंकार रहे। रोष भरे नेत्रों से, अग्नि हो ज्यों उगाल रहे।।
अनेकों झुण्ड मतवाले हुए, हाथियों के चले आ रहे। सिंह और बाघ भी, उनकी दिशा में दौड़े आ रहे।।
प्रलयकाल सम उग्र रूप, सागर ने भी धर लिया। उठी हुई तरंगों से, जैसे धरती वह डूबो देगा।।
भयंकर गर्जन करता हुआ, वह उनकी ओर बढ़ा आया। मानों अपनी आगोश में, सबको ही वह समेटेगा।।

क्रूर स्वभावी असुरों ने, निज आसुरी ऐसी माया से। अनेकों ही कौतुक किये, जिससे कायर सब काम्प उठे।।
श्री ध्रुव पर इन असुरों ने, दुस्तर माया फैलायी है। यह समाचार फैला चारों ओर दिश, और मची दुहाई है।।
यह सुनकर कुछ मुनिगण, श्री रणक्षेत्र में आ पहुँचे। श्री ध्रुव के कल्याण की, मंगल कामना करने लगे।।

उत्तानपाद नन्दन श्री ध्रुव, शरणागत भव भंजन हरि। श्री नारायण संहार करें, तेरे सारे शत्रुअन् की।।
श्री हरि का तो नाम ही, है ऐसा कल्याण प्रद। श्रवण और कीर्तन जिसका, दुस्तर मृत्यु से पार दे कर।।
मैत्रेय मुनि बोले,
ऋषियों का ऐसा कथन सुनकर, महाराज श्री ध्रुव ने। आचमन जल का लेकर, नारायणास्त्र चढ़ाया धनु: पे।।
वह बाण चढ़ाते ही धनु: पे, यक्षों की माया नष्ट हुई। ज्यों ज्ञान उदय हो जाते ही, हो क्लेश अविद्या नष्ट सभी।।

अति उत्तम इस अस्त्र की, स्मृति हृदय में आते ही। ऋषिवर नारायण अविष्कृत, यह अस्त्र धनु: पे चढ़ाते ही।।
राजहंस के पंख सम, फैले तीखेस्वर्ण बाण। धनु: से निसृत होने लगे, अति भीषण अनेकों बाण।।
ज्यों मयूर ध्वनि करते हुए, बन में जा घुस जाते हैं। साँय साँय ध्वनि करते बाण, अरि सेना में घुस जाते हैं।।

उस तीक्ष्ण धार के बाणों ने, बेचैन कर दिया शत्रु को। रणक्षेत्र में सम्भाले अस्त्र, यक्षों ने अति कुपित हो।।
ज्यों गरुड़ के उकसाने पे, सर्प करे निज फन विस्तृत। पूर्ण बल से अपने वह, प्रहार करे उसपे अविछिन्न।।
उसी विधि यक्ष सब, इधर उधर धावन लगे। सबके सब मिल इस विधि, श्री ध्रुव पर ही टूट पड़े।।

शत्रु को सामने आते देख, श्री ध्रुव ने छोड़े अपने बाण। उदर भुजा कन्धे उरू किये, छिन्न-भिन्न और निष्प्राण।।
उन यक्षोंको सर्वश्रेष्ठ, लोकों में ध्रुव ने भेज दिया। जिसमें जाते उर्ध्वरिता भेदन कर सूर्य मण्डल का।।

पितामह स्वयंभू मनु ने जब, देखा यह रुद्र ताण्डव। निरपराध यक्षों को हैं, मार रहे रथ पे चढ़े ध्रुव।।
तब उनका हृदय यक्षों के लिये, अति करुणा से भर आया। बहुत से ऋषियों को उन्होंने तब अपने संग में लिया।।
सब मिलकर रण में पहुंचे, ध्रुव को वह समझाने लगे। पौत्र ध्रुव को पितामह, यह वचन कही मानने लगे।।
मनु बोले,
बस करो अब पुत्र तुम, इतना क्रोध तो उचित नहीं। यह क्रोध तो नरक का द्वार है, इसके वश में तू होना नहीं।।
इसके अधीन ही होकर के, पाप यह तुमसे है हुआ। निरीह अनेकों यक्षों का, वध है तुमने कर दिया।।
हे वत्स निर्दोष यक्षों को, हो मृत्यु घाट उतार रहे। नहीं कुल के योग्य यह कर्म तेरा, साधुजन इसकी निन्दा करें।।

जानूं मैं निज भ्राता पे तेरा, बहुत तीव्र अनुराग था। उचित ही है अनुराग यह, पर देखो तुमने क्या किया।।
इक यक्ष ने था अपराध किया, तेरे भाई को मार दिया। सन्तप्त इससे हो करी, संहार किया अनेकों का।।
जड़ तन को मान के आत्मा, पशु की भाँति जो इसे पाले। जो निज तन के पोषण को, प्राणिन की हिंसा करे।।
भगवत्सेवी साधु के लिये, है उचित यह कर्म नहीं। केवल इक तन हेतु ही जिये, यह तो है मानव धर्म नहीं।।

अति कठिन है ईश आराधना, पर तुमने तो बचपन में की। सब भूतों का आश्रय हैं जो, सर्वात्म भाव से हरि भजी।।
अपनी इस आराधना से, प्रसन्न हरि को तूने किया। सबमें हरि के दर्शन पा, परम पद तूने प्राप्त किया।।
श्री हरि भी तुमको अपना, प्रिय भक्त ही माने हैं। भक्त जन भी परम पूज्य तुमको अपना जाने हैं।।
साधु जन के लिये भी तुम, स्वयं ही पथ प्रदर्शक हो। फिर ऐसा निन्दनीय कर्म, तुमसे क्योंकर प्रिय सम्भव हो?

सर्वात्म श्री हरि को तो, प्रिय है एक विशेष स्वभाव। अपनों से बड़ों के प्रति, सदा रहे सहिष्णु भाव।।
छोटों के प्रति हो दया भाव, अपने समान से मैत्री हो। समता हो सब जीवों के लिये, इससे प्रसन्न श्री हरि हों।।
प्रकृति पुरुष के गुण सारे, और उनका कार्य यह लिंग शरीर। श्री हरि प्रसन्न जब हो जायें, इन सबसे ही हो मुक्त जीव।।
परमानन्द स्वरूप वह, ब्रह्म पद पा जाता है। आवागमन के चक्र से, मुक्त वह हो जाता है।।

पंचभूत ही देह आदि, रूप में परिणत होते हैं। उससे ही स्त्री पुरुष के, रूप प्रकट फिर होते हैं।।
पारस्परिक समागम से, पुन: अन्य की उत्पत्ति हो। इस विधि से नित्य ही, विस्तृत यह सब सृष्टि हो।।
इस विधि प्रभु की माया से, न्यूनाधिक यह गुण होए। ज्यो भूतों की रचना हो, त्यों ही स्थिति और लय होए।।

ज्यों चुम्बक के आश्रित लोहा, उसी दिशा में भ्रमण करे। जिधर को चुम्बक का मुख हो, उस ओर ही वह घूमा करे।।
उसी विधि हे पुरु श्रेष्ठ, है निमित्त मात्र परमात्मा। कार्य कारणात्मक यह जगत्, है उसके आश्रित ही भ्रमता।।

सत्त्वादि सब गुणों में, काल से जब क्षोभ हो। लीलामय प्रभु कि शक्ति भी, सृष्टि आदि में विभक्त हो।।
अकर्ता होकर भी प्रभु, सब जगत् की रचना करते हैं। संहारक नहीं कदापि वह, फिर भी संहार वह करते हैं।।
सत्य ही है अचिन्त्य यह, लीला उस परमात्मन् की। सब करके वह छिपे रहें, है गुह्य रहस्य यही उनकी।।

काल स्वरूप हैं अव्यय वह, अन्त रहित हैं आप स्वयं। हैं जग संहारक भी आप, सबके काल स्वरूप स्वयं।।
अनादि हैं वह प्रभु आप, पर स्वयं ही हैं आदि कर्ता। इक जीव से दूजे जीव के, वह ही तो हैं उत्पन्न कर्ता।।
सारे संसार की सृष्टि भी, प्रभु स्वयं ही करते हैं। मृत्यु द्वारा हन्ता का, भी संहार वह करते हैं।।

काल रूप में वह हरि, प्रविष्ट हैं सबमें समान रूप। न तो कोई उनका मित्र पक्ष, न ही है कोई शत्रु रूप।।
ज्यों वायु के चलने पर, धूलि भी उसके साथ रहे। त्यों ही जीव निज कर्मानुकूल, काल गति अनुसरण करे।।
अपने अपने कर्मानुसार, वह दु:ख सुख आदि फल भोगे। इस कारण निरन्तर वह, आवागमन में पड़ा रहे।।

हैं सर्वसमर्थ वह श्री हरि, इस जग का निर्माण करें। कर्म चक्र अनुरूप जीव की, आयु क्षय का विधान करें।।
पर स्वयं वह इन दोनों से रहित, निज स्वरूप में स्थित रहें। आदि अन्त यह कर्म चक्र, नहीं उन्हें कभी छू सकें।।
भिन्न जीव भिन्न भिन्न, नामों से पुकारे उन्हें। निज भाव अनुकूल ही, जग में सभी निहारें उन्हें।।

हे राजन मीमांसक गण, कर्म रूप उन्हें माने हैं। वैशेषिक मत से काल रूप, चार्वाक स्वभाव उन्हें जाने हैं।।
ज्योतिषी गण दैव के, नाम से उन्हें पुकार लें। काम शास्त्री काम रूप, कहकर उन्हें निहार लें।।
वह तो किसी भी इद्रिय का, और प्रमाण का विषय नहीं। महदादि सब शक्तियां भी, उनसें ही हैं प्रकट हुई।।
वह क्या करना चाहते हैं, रहस्य न कोई जान सके। अपने मूल कारण को, कौन कभी पहचान सके?

हे पुत्र सत्य यह जान लो, कुबेर के यह अनुचर सब। तव भ्राता के हन्ता नही, यह तो बने हैं निमित्त सब।।
क्योंकि जीव के जन्म मरण का, कारण कोई अन्य है। ईश्वर जिसको कहते हैं, वास्तविक कारण कोई अनन्य हैं।।
इस जग के सृष्टा पालक और, संहारक हैं एक वही। किन्तु कर्तृत्व भाव का, कहीं वहाँ पे लेश नहीं।।
इस कारण गुण और कर्मों से, वह सदैव निर्लिप्त रहें। इस जग के कोई गुण कर्म, श्री हरि को कभी न बान्ध सकें।।

सबके अन्तरात्मा वह, वह ही तो सबके नियन्ता हैं। वह ही प्रभु इस सृष्टि के, एको रक्षक कर्ता हैं।।
अपनी माया शक्ति को, स्वयं प्रभु धारण करें। सम्पूर्ण सृजन पालन संहार, इसके द्वारा ही वह करें।।

मालिक का बोझा उठाये बैल, ज्यों नकेल बन्धे नाक में। उस विधि ब्रह्मा आदि भी, नाम रूप डोरी से बन्धे।।
हर पल उनकी आज्ञा का, पालन वह करते रहते हैं। सृष्टि की रचना पालन, संहार में तत्पर रहते हैं।
एकमात्र आश्रय जग के, अभक्त हेतु मृत्यु स्वरूप। भक्तों के लिये अमृत स्वरूप, वह तो अरूप हैं सर्व रूप।।
हे तात् सर्वभाँति ही तुम, उन्हीं राम की शरण गहो। केवल श्री हरि की शरण ही, सर्वकल्याण का साधन हो।।

बाल्यावस्था में तूने, था जननी गोद को त्याग दिया। पंचवर्ष का ही जब था, मर्माहत वाग्बाणों से हुआ।।
श्री हृषीकेश हरि को तूने, तप द्वारा ही आराधा था। त्रिलोकी से भी ऊपर जो, ध्रुव पद तुमने था प्राप्त किया।।
द्वेष हीन तेरे सरल हृदय में, जो हैं विराजमान् हुए। वात्सल्य वश वह श्री हरि, विशेष रूप से तुझे मिले।।
निर्गुण अविनाशी अद्वितीय, और नित्य मुक्त परमात्म को। निज अन्त:करण में तुम, अध्यात्म दृष्टि से ढूंढो।।

अद्वैत एक वह निर्विकार, भेद भाव वहां कोई नहीं। फिर भी प्रपंच प्रतीति हो, यह ही तो माया है उनकी।।
जब तुम ऐसा कर पाओगे, भक्ति नित्य तेरी दृढ़ होगी। सर्वान्तर्यामी श्री अनन्त, हरि में तेरी लग्न लगी होगी।।

उसके प्रभाव से मैं मेरे की, दृढ़ हुई इस ग्रन्थी का। छेदन तुम कर पाओगे, अविद्या रूप इस भ्रान्ति का।।

हे राजन् ज्यों औषधि से, तन का रोग सब शान्त हो। मम उपदेश पे ध्यान धरी, तुम क्रोधाग्नि निज शान्त करो।।
जीव के कल्याण मार्ग का, है परिपन्थी क्रोध यह। इसका त्याग करो तुम वत्स, श्री हरि तव कल्याण करें।।
क्रोधी से तो सभी जीव, भयभीत ही रहते हैं। इस कारण जो हैं बुद्धिमान्, वह क्रोध से दूर ही रहते हैं।।
जो अभय दान देवे सबको और स्वयं भी अभय रहे। उस प्राणी को चाहिये, क्रोध से सदा ही मुक्त रहे।।

तुमने जो यह समझ लिया, तेरे भ्राता का इन्होंने हनन किया। इतने सारे यक्षों को, जो तुमने है मार दिया।।
श्री शंकर सखा कुबेर का, है तुमने अपराध किया। अब विवेक की शरण में जा, और क्रोध मुक्त ही तू हो जा।।
हे वत्स महापुरुषों का तेज, तेरे कुल को आक्रान्त करे। इससे ही पूर्व विनम्र हो, मृदुवचन से उन्हें प्रसन्न कर ले।।
मैत्रेय मुनि बोले,
इस विधि स्वयंभू मनु ने जब, पौत्र ध्रुव को उपदेश दिया। विनम्र हो कर श्री ध्रुव ने, पितामह चरण में सीस धरा।।
तत्पश्चात् महर्षिगण संग, वह अपने लोक को चले गए। पौत्र ध्रुव को सन्मति दे, स्वयंभू मनु ने वहाँसे प्रस्थान किया।।

ध्रुव का क्रोध है शान्त हुआ, और यक्षों को छोड़ दिया। यह सुनकर श्री कुबेर, पहुंचे तब उनके पास वहाँ।।
यक्ष चारण और किन्नर, स्तुति थी उनकी गा रहे। देखी कुबेर श्री ध्रुव स्वयं, करबद्ध होकर खड़े हुए।।
तब कुबेर भी स्नेह पूर्वक, ध्रुव को थे निहार रहे। ध्रुव की प्रति तब श्री कुबेर, मृदु वचन यह कहने लगे।।
कुबेर बोले,
हे शुद्ध हृदय क्षत्रिय कुमार, पितामह का उपदेश पा। दुस्त्यज वैर और क्रोध को, तुमने जो है त्याग दिया।।
इससे कुमार मेरा हृदय, तुम पर अति प्रसन्न हुआ। योगी जन का भी दुष्कर जो, ऐसा है तुमने काम किया।।
सत्यता तुम यह जान लो, न यक्षों को तुमने मारा। न ही तेरे भाई को, इन यक्षों ने था मारा।।
सब जीवों की उत्पत्ति और, विनाश का है कारण एक। काल ही कहते हैं जिसको, वह एक ही रूप धरे अनेक।।

अज्ञानवश जब स्वप्न सम, तन को ही आत्मा मान ले। तब ही यह मैं तू की, भेद बुद्धि उत्पन्न होए।।
यह बुद्धि ही जीव के, बन्धन और दु:ख का कारण है। इस कारण ही जीव यह, करे द्वन्द्वों को धारण हैं।।

कल्याण करें प्रभु तेरा ध्रुव, अब पुत्र तुम प्रस्थान करो। संसार पाश से मुक्ति हेतु, समदृष्टि से सबको देखो।।
सर्वभूतात्म श्री हरि का, नित्य ही तुम भजन करो। उन्हीं की कृपा से जान लो, इस भव बन्धन का छेदन हो।।
संसारोत्पत्ति आदि हेतु, त्रैगुणी माया सों युक्त हों। धारण करके इस शक्ति को, भी नित्य वह इससे मुक्त हों।।
उनके चरण कमल ही तो, हैं भजन योग्य सबके लिये। मानव तन पाकर ही जीव, ऐसा उद्यम कर सके।।

हे प्रियवर हमने सुना, तुम सदा रहो हरि चरणों में। प्रभु कमलनाभ के प्रिय भक्त, तेरा ध्यान रहे सदा उनमें।।
इस कारण तुम निश्चित ही, वर पाने के योग्य हो। निज वांछित वर हे प्रिय, निस्संकोच मुझसे मांगो।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर कुबेर ने जब, इस भाँति आग्रह किया। तब महाभावगत श्री ध्रुव ने, उनसे एको वर मांगा।।
हे देव इतनी कृपा करें, अखण्ड स्मृति हरि की रहे। उनके श्री चरण का आश्रय ले, दुस्तर भव सागर जीव तरे।।

इडविडा पुत्र कुबेर ने, प्रसन्न मन होकर कहा। अति दुर्लभ भगवत्स्मृति के, वर से तुझे सम्पन्न किया।।
फिर देखते ही देखते, अन्तर्धान वह हो गये। तत्पश्चात् श्री ध्रुव भी, निज राजधानी को लौट चले।।

वहां पे रह बहु दक्षिणा युक्त, अनेकों महान यज्ञों से। श्री यज्ञ पुरुष भगवान के, पूजन और अर्चन किये।।
वस्तुत: श्री हरि स्वयं हैं, द्रव्य क्रिया और सभी कर्म। देव सम्बन्धी भी कोई, जो भी करे जैसा भी धर्म।।
सब कर्मों का फल भी तो बनें प्रभु खुद आप हैं। सगरे कर्मफल के दाता, श्री हरि इक आप हैं।।

सर्व उपाधि शून्य हैं जो, हैं सर्वात्म श्री अच्युत। उनमें प्रबल दृढ़ भक्ति भाव, से सम्पन्न थे श्री ध्रुव।।
अपने सहित सब जीवों में, श्री हरि को सर्व व्यापक देखा। कण कण में ही श्री हरि को, विराजमान् उन्होंने देखा।।
थे ध्रुव अति शील सम्पन्न, ब्राह्मण भक्त दीन वत्सल। प्रजा पिता उन्हें माने थी, थे धर्म मर्यादा के रक्षक।।

विभिन्न ऐश्वर्य भोगों से, अनुष्ठान किया उन पुण्य का। त्यागपूर्ण यज्ञादि कर्म कर, क्षय किया उन पाप का।।
इसी विधि छत्तीस सहस्र, वर्ष तक शासन किया। पृथ्वी को उनके रूप में, एकछत्र सम्राट मिला।।
जितेन्द्रिय महात्मा श्री ध्रुव ने, धर्म अर्थ काम सब कुछ पाया। दीर्घकाल पश्चात् पुत्र, उत्कल को राज्य वह सौंप दिया।।

सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच को, अविद्या रचित ही जान लिया। स्वप्न गन्धर्व लोक सम, निज से कल्पित सब मान लिया।।
शरीर द्वारा पुत्र मित्र, सेना और विस्तृत कोश सब। अन्त:पुर सुरम्य विहार, और राज्य समुद्र पर्यन्त सब।।
जान लिया श्रीमत ध्रुव ने, हैं काल के गाल में सब पड़े। इन सबसे मुखड़ा मोड़ करी, ध्रुव बद्रिकाश्रम ओर चले।।

पावन जल में वहाँ स्नान कर, निज इन्द्रियों को विशुद्ध किया। फिर आसन पे हो आसीन, प्राणायाम से वायु को जीता।।
फिर मन के द्वारा उन्होंने, बाह्य विषय से इन्द्रियां हटा। निज मन को श्री हरि के स्थूल, विराट रूप में स्थिर किया।।
उस रूप का चिन्तन करते हुए, वह ध्याता ध्येय भेद भूले। भेदशून्य निर्विकल्प, समाधि में वह लीन हुए।।
उस अवस्था में पहुँच, विराट रूप भी त्याग दिया। साकार का आश्रय त्यज कर, वह निर्विकार निराकार हुआ।।

श्री हरि के प्रति उनके आन्तर में, भक्ति सरिता थी बह रही। नयनों में आनन्द अश्रु की, ज्यों बाढ़ भी पुन: पुन: उठती।।
हृदय द्रवीभूत हुआ उनका, और तन रोमांचित हो गया। देहाभिमान भी गलित हुआ, अस्तित्व ही मानो खो गया।।
अति सुन्दर विमान एक, आकाश से था उतर रहा। निज द्युति से दसों दिशाओं को, आलोकित था उसने किया।।
मानो पुनम का चाँद ही, हो आकाश में उदय हुआ। श्री ध्रुव ने इस दिव्य दृश्य, का तत्क्षण दर्शन किया।।

श्रेष्ठ पार्षद दो वहां, निज गदा सहारे थे खड़े। चतुर्भुजा धारी थे वह, सुन्दर श्यामल उनके तन थे।।
किशोरावस्था थी उनकी, और अरुण कमल सम नेत्र थे। सुन्दर वस्त्र किरीट हार, भुजबन्ध कुण्डल विभूषित थे।।
श्री हरि के सेवक जान उन्हें, सहसा ही श्री ध्रुव खड़े हुए। उनके दर्शन पा पूजा आदि, का क्रम भी वह भूल गए।।
प्रभु के प्रधान पार्षद जानकर, श्री हरि नाम कीर्तन किया। हाथ जोड़ कर फिर ध्रुव ने, उन दोनों को प्रणाम किया।।

ध्रुव का मन फिर श्री हरि के, चरण कमल में लीन हुआ। विनम्रता से कर जोड़ करी, सीस उन्होंने दिया झुका।।
तब श्री हरि के प्रिय पार्षद, नन्द और सुनन्द ने। ध्रुव के निकट मुसकाते हुए, फिर उनको यह वचन कहे।।
भगवान के पार्षद बोले,
हे राजन् सर्वविधि, हो कल्याण आपका। हमारी बात अब सुनें आप, सावधान होकर जरा।।

पांच वर्ष की आयु में ही, उग्र तप किया आपने। सर्वेश्वर श्री हरि को, था प्रसन्न किया आपने।।
अखिल जगत् के नियन्ता उन, प्रभु विष्णु के सेवक हैं हम। श्री हरि के धाम ले जाने को, ही आपके सम्मुख आये हम।।

अति दुर्लभ है जो सबके लिये, उस विष्णु लोक को प्राप्त किया। हमारी भक्ति के प्रभाव से, है अधिकार यह तुम्हें मिला।।
परम ज्ञानी सप्तर्षि भी, वहां तक न पहुंच सकें। नीचे से ही उस लोक का, वह तो दर्शन नित्य करें।।
सूर्य चन्द्रादि सब ग्रह, नक्षत्र और तारागण भी। उस लोक की तो करते, रहते सदा प्रदक्षिणा ही।।
चलिये हे राजन अब आप, उस लोक में निवास करें। विष्णु धाम में भक्तवर अब आपका आवास रहे।।

हे प्रियवर पूर्वज आपके, या कोई अन्य जन भी कभी। उस पद तक तो वे सब, पहुँच ही न पाये कभी।।
है सब जग में वन्दनीय, प्रभु विष्णु का वह परम धाम। वहाँ पे चलकर भक्तवर, अब आप हों विराजमान्।।
पुण्यकीर्ति शिखामणि श्री हरि ने, है भेजा आपके लिये विमान। इस पर चढ़ने के योग्य, हैं आप श्री आयुष्मान्।।
मैत्रेय मुनि बोले,
प्रमुख सेवकों से प्रभु के, अमृतमय जब यह वचन सुने। परम भागवत् श्री ध्रुव ने, स्नानादि सब कर्म किये।।
फिर संध्या वन्दन नित्य कर्म, आदि से निवृत्त हुए। मंगलमय अलंकार सब, निज तन पे धारण किये।।
तत: बद्रिकाश्रम निवासी गण, ऋषियों को प्रणाम किया। इस विधि श्री ध्रुव ने, आशीर्वाद सबका लिया।।

तत्पश्चात् विमान की, पूजा प्रदक्षिणा उन्होंने करी। पार्षदों को प्रणाम किया, स्वर्णकान्ति दिव्य रूप धरी।।
तब विमान पे चढ़ने को, श्री ध्रुव जब तैयार हुए। उन्होने देखा मूर्तिमन्त, श्री काल के सम्मुख थे उनके खड़े।।
मृत्यु के सीस पे पांव धरी, श्री ध्रुव तब कुछ आगे बढ़े। मृत्यु को वह जीत कर, अद्भुत विमान पर जा चढ़े।।

दुन्दुभी, मृदंग ढोलकादि, मंगल वाद्य बजने लगे। गन्धर्वों ने किया गान, फूल आकाश से फिर बरसे।।
विमान पे बैठ के ज्यों ध्रुव ने, परम धाम को किया प्रस्थान। माता सुनीति की याद ने, घेर लिया वा मन को आन्।।
ध्रुव ने सोचा क्या अकेला ही, परम धाम मैं जाऊँगा? निज माता को यहीं छोड़कर, दुर्लभ वैकुण्ठ मैं पाऊँगा?

नन्द सुनन्द ने श्री ध्रुव के, हृदय के मन की इच्छा जान ली। दर्शाया उनको माता सुनीति, दूजे विमान पे जा थीं रही।।
राह में क्रमश: सूर्यादि, सब ग्रहों को देख लिया। मार्ग में उन्होंने जहाँ तहाँ, देवों के विमानों को देखा।।
अपने विमानों में बैठे, थे उनकी स्तुति वह गा रहे। देवगण भी श्री ध्रुव पर, थे पुष्प बहु बरसा रहे।।

उस दिव्य विमान पे बैठकर, त्रिलोक को ध्रुव ने पार किया। सप्तर्षि मण्डल से ऊपर, श्री विष्णु धाम वह जा पहुँचा।।
इस विधि श्री ध्रुव ने, अविचल गति को प्राप्त किया। प्रभु विष्णु की कृपा हुई, ध्रुव पद उन्होंने ग्रहण किया।।
स्वयं प्रकाशित है यह लोक, त्रिलोक प्रकाशित यह करे। जीवों के प्रति निर्दय जो हो, वह न यहाँ पे पहुँच सके।।
अहर्निश जो जीवों का, कल्याण ही करते रहते हैं। शुभ कर्मों में जो नित्य लगें, वही पहुँच यहाँ पाते हैं।।

शान्त समदर्शी शुद्धचित्त, सब जीवों को प्रसन्न करें। भगवद्भक्तों को ही अपना, सच्चा सुहृद् जो मान लें।।
ऐसे लोग सुगमता से, इस धाम को पा जाते हैं। दुर्लभ जो है सब जग के लिये, वह सुलभ उन्हें हो जाते हैं।।
भगवत्परायण श्री ध्रुव जी, उत्तानपाद के प्रिय पुत्र। त्रिलोकी से ऊपर है जो, उस लोक में जा हुए वह स्थित।।

उस लोक की भी चूड़ामणि बन, श्री ध्रुव हुए विराजमान्। श्री हरि कृपा से उनके लिये, हुआ नित्य जानो यह धाम।।

हे कुरुनन्दन जिस विधि, बैल नित्य ही घूमा करे। दायं चलाने के समय, खम्भ के गिर्द ही वह भ्रमे।।
त्यों ही गम्भर यह वेगवान्, ज्योति चक्र भी भ्रमण करे। उस अविनाशी लोक के, आश्रय ही यह नित्य घूमे।।
उसकी महिमा यह देखकर, प्रचेता यज्ञशाला में। देवर्षि नारद वीणा सहित, यह तीन श्लोक थे गा उठे।।
नारद बोले,
पति परायण सुनीति सुत, श्री ध्रुव उग्रतम तप कर के। अद्भुत शक्ति सम्पन्न हुए, और जिस गति को प्राप्त हुए।।
निस्संदेह अति दुर्लभ है, भागवत् धर्मों के आलोचक जो। वेदवादी मुनिजन की, भी वहाँ न पहुँच हो।।
फिर नित्य भोग में रत जो हैं, उन नृपगण की बात ही क्या। सांसारिक वैभव के आश्रय,कोई वहाँ न पहुँच सका।।

अहो पांच वर्ष की अवस्था में, हुए मां के वचनों से आहत। दु:खी हृदय से तब श्री ध्रुव, वन को गए सब वैभव त्यज।।
मेरी सन्मति से अनुसरण किया, उन अजय प्रभु को जीत लिया। प्रभु के भक्तों के गुण ही, प्रभु को बस कर सकें सदा।।
कुछ दिन ही तपस्या कर कर के, पंच छ: वर्षीय अवस्था में। श्री ध्रुव ने परम पद पा लिया, श्री हरि को प्रसन्न करके।।
किन्तु उनके अधिकृत पद को, क्या अन्य क्षत्रिय कोई पा सके। क्या उग्र तपस्या करके भी, कोई वहां तक जा सके।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर जो तुमने पूछा था, वह तुमको बतला दिया। श्री ध्रुव के उत्तम चरित को, सविस्तार सुना दिया।।
साधुजन इस चरित का, गुणगान बहुत ही करते हैं। इसके श्रवण कीर्तन से, नव उत्साह हृदय भरते हैं।।
धन यश और आयु की, वृद्धि करने वाला है यह। परम पवित्र है यह चरित, और है यह अति मंगलमय।।
स्वर्ग और अविनाशी पद, की प्राप्ति यह करवाये। देवत्व भी यह दे सके, समस्त पाप भी हर जाये।।

भगवद्भक्त ध्रुव के इस, पावन चरित को जो सुनें। श्रद्धा पूर्वक बार बार, जो जन इसका श्रवण करें।।
है सर्वदु:ख विनाशक जो, प्रभु भक्ति को वह प्राप्त हों। श्री हरि की भक्ति से तो, सर्व क्लेश का नाश हो।।
इसका श्रवण शीलादि गुण, प्रसाद में श्रोता को दे दे। जो महिमा अपनी चाहें, महिमान्वित उनको यह करे।।
जो तेजवान् होना चाहें, उनके लिये यह तेज दे। और मनस्वी जन का यह, नित्य मान वर्धन करे।।

पवित्र कीर्ति श्री ध्रुव का, यह जो है महान् चरित। प्रात: और सायंकाल, कीर्तन योग्य है नित्य चरित।।
एकाग्र चित्त होकर जानो, द्वि जातियों के समाज में। इस पावन चरित को, नित्य ही सुनना चाहिये।।
श्री हरि के परम पावन, चरण की है जो शरण हुआ। निष्काम भाव से जो इसको, है दूजों को सुना देता।।
द्वादशी या श्रवण नक्षत्र, पूर्णिमा या अमावस्या। संक्रान्ति हो या रविवार, तिथिक्षय हो या व्यतीपात।।

श्रद्धालु पुरुषों के मध्य जो कोई इसको वांच ले। आत्मा में सन्तुष्ट रहें, और नित्य सिद्ध वह हो जाये।।
साक्षात् भगवद् विषयक, अमृतमय यह ज्ञान है। अनभिज्ञ हैं जो प्रभु मर्म से, उनको यह करे जो दान है।।
उस दीन वत्सल कृपालु पर, देव अनुग्रह करते हैं। भक्ति से भरपूर वह, उसका जीवन करते हैं।।

सर्वत्र प्रख्यात और परम पवित्र, हैं श्री ध्रुव के सब कर्म। शैशव में ही मोह त्यज, वह तो गये श्री हरि शरण।।
हे कुरुनन्दन उनका चरित, मैंने तुम्हें सुना दिया। जो था तुमने प्रश्न किया, उसका है उत्तर बतला दिया।।

४) महाराज पृथु का चरित्र

सूतजी बोले,
हे शौनक श्री विदुर ने जब, मैत्रेय मुख से आख्यान सुना। ध्रुव हुए विष्णु पद आरूढ़, इसका जब वृतान्त सुना।।
उनके हृदय श्री विष्णु की, भक्ति का वेग उभर आया। श्री मैत्रेय से उन्होंने पुन:, प्रश्न का क्रम आरम्भ किया।।
विदुर बोले,
भगवत्परायण मुने कहो, यह प्रचेता कौन थे? किसके पुत्र थे यह कहें, और यह किसके वंशज थे?
कहाँ कहाँ प्रचेता ने, यज्ञ किया यह भी कहें। उनके चरित की पूर्ण कथा, हे द्विजवर हमसे कहें।।
श्री हरि के दर्शन पाकर, परम भागवत् श्री देवर्षि। कृतार्थ ही हैं हो चुके, ऐसी है मान्यता मेरी।।
उन्होने ही पंचरात्र, का है यह निर्माण किया। श्री हरि की पूजा पद्धति रूप, क्रिया योग उपदेश किया।।

स्वधर्म आचरण में लगे, जिस समय प्रचेता जन। प्रभु यज्ञेश्वर की आराधना, में हुए थे वह मग्न।।
उस पल ही भक्त शिरोमणि, देवर्षि नारद पहुँचे वहाँ। श्री ध्रुव के चरित्र का, फिर उन्होंने गुणगान किया।।
हे द्विजश्रेष्ठ उस स्थान पर, जो लीला कथायें कहीं प्रभु की। मैं जानना उनको चाहता हूँ, कृपा कर आप सुनायें सभी।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर महाराज ध्रुव, वन को गए जब राज्य त्यज। सुत उत्कल ने ऐश्वर्य युक्त, सिंहासन नहीं स्वीकारा तब।।
जन्म से ही वह शान्तचित्त, आसक्ति शून्य समदर्शी था। आत्म में पूर्ण लोकों का, लोकों में आत्म का दर्शी था।।
योगाग्नि में अन्त:करण की, वासना मल थी भस्म हुई। विभिन्न बोध रस से अभिन्न, सर्वव्याप्त आत्म की दर्शन थी।।
अभेद प्रशान्त ब्रह्म को, निज स्वरूप वह जाने था। निज आत्म से भिन्न कभी, कुछ भी नहीं वह माने था।।

राजमार्गादि स्थानों में, अज्ञ जब उससे मिलते थे। ज्वालाहीन अग्नि समान, मूर्ख ही उसे समझते थे।।
अन्धा बहरा गूंगा पागल सा, उनको था वह भासता। पर वास्तव में तो उत्कल में, ऐसा दुर्गुण कोई न था।।
कुलवृद्धों और मन्त्रीगण ने, पागल उसको समझ लिया। उनका अनुज भ्रमिसुत वत्सर को, उन्होने राज्य वह दे दिया।।

उसकी प्रिय भार्या स्ववीथी ने, छ: पुत्रों को जन्म दिया। पुष्पार्ण तिग्मकेतु ईष उर्ज, वसु और जय उनका नाम था।।
पुष्पार्ण की दो भार्यायें थीं, प्रजा और दोषा नाम थे। प्रात: मध्यदिन और सायं, प्रजा ने यह तीन पुत्र जने।।
दोषा के प्रदोश निशी व्युष्ट, त्रै पुत्रों का जन्म हुआ। व्युष्ट भार्या पुष्कारिणी ने, सर्वतेजा नामक पुत्र जना।।

उसकी पत्नी आकूति से, चक्षु: नामक पुत्र हुआ। चक्षुष् मन्वन्तर में वही, मनु नाम से जाना गया।।
उसकी पत्नी नडवाला के, द्वादश पुत्रों का जन्म हुआ। पुरु कुत्स त्रित और द्युम्न, ऋत व्रत और सत्यवान।।
अग्निष्ठोम अतिरात्र प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक थे नाम। सबके सब बालक उनके, थे सम्पन्न सतोगुणवान।।

उल्मुक पत्नी पुष्करिणी से, अंग पुष्कर्णा ख्याति हुए। क्रतु अंगिरा और गय, यह छ: पुत्र उत्पन्न हुए।।
अंग पत्नी सुनीथा ने, क्रूरकर्मा वेन को जन्म दिया। उसकी दुष्टता से उद्विग्न हो, राजर्षि अंग ने नगर छोड़ दिया।।

हे प्रिय विदुर मुनिजन के वाक्, वज्र समान अमोघ हों। कुपित होकर उन सबने, वेन को था शापित किया।।

वेन की जब मृत्यु हुई, तब कोई राजा नहीं रहा। इस कारण लुटेरों ने, प्रजा को अति ताडित किया।।
यह देख कर मुनियों ने, वेन की दाहिनी भुजा को मथा। जिससे विष्णु अंशावतार, महाराज पृथु प्रकट हुआ।।
विदुर बोले,
महाराज अंग तो शीलवान्, साधु स्वभाव थे महात्मा। उन जैसे ब्राह्मण भक्त के, वेन सम दुष्ट क्योंकर जन्मा।।
उसके कारण व्यथित होई, नगर छोड़ उन्हें जाना पड़ा। किस कर्म का यह परिणाम था, रहस्य भी इसको कहें जरा।।
राजा वेन का भी कहें, ऐसा क्या अपराध था? जो धर्मज्ञ मुनीश्वरों ने, शाप रूप ब्रह्म दण्ड दिया।।

प्रजापालक राजा से यदि, पाप भी कोई हो जाये। प्रजा का यह कर्त्तव्य है, उसका त्याग वह नहीं करे।।
निज प्रभाव से राजा तो, अति तीव्र तेज धारण करे। अष्ट लोकपालों के, समान ही उसका तेज रहे।।
हे द्विजश्रेष्ठ भूत भविष्य के, ज्ञाता आप हैं सर्वश्रेष्ठ। वेन के दुष्कर्मों की, कहें कथा मुझको हे ज्येष्ठ।।
आपका मैं श्रद्धालु भक्त, आपसे जानना चाहता हूँ। वेन ने क्या दुष्कर्म किये, उनको भी अब सुनना चाहता हूँ।।
मैत्रेय मुनि बोले,
एक बार राजर्षि अंग ने, अश्वमेध अनुष्ठान किया। वेदवादी ब्राह्मणों ने, महायज्ञ में आह्वान किया।।
फिर भी देवगण वहाँ, निज भाग लेने नहीं आये। आश्चर्यचकित हुए ऋत्विज, क्यों देवता गण नहीं आये?
विस्मित होकर होताओं ने, यमजान अंग से यूँ पूछा। हे राजन् आहुति रूप, घृतादि पदार्थ हवन किया।।
क्यों आपके द्रव्य को, नहीं देवों ने स्वीकार किया? रहस्य न इसका जाने हम, राज न इसका समझ पड़ा।।

होम सामग्री आपकी, हम जानें हैं दूषित नहीं। श्रद्धापूर्व भाव भरी, एकत्रित आपने सब करी।।
वेदमन्त्री जो कहे, वह भी तो बलहीन नहीं। उनके प्रयोक्ता ऋत्विज सब, उचित नियम पालें सभी।।
हम तो कुछ ऐसा नहीं देखें, जहां देवों का तिरस्कार हुआ। कर्माध्यक्ष देवों ने फिर भी, अपना भाग क्यों नहीं लिया?

ऋत्विजों की बात सुन, यजमान अंग हुए बहु उदास। अनुमति लेकर किया मौन भी, और कहा हृदय का अपना भाव।।
हे होतागण यज्ञ में, आह्वान आपने है किया। फिर भी यज्ञ में आ देवों ने, सोमपात्र है नहीं लिया।।
हे श्रेष्ठ गण अब आप कहें, है मुझसे क्या अपराध हुआ? जिस कारण यज्ञ में देवों ने, नहीं अपना भाग स्वीकार किया?
ऋत्विज बोले,
हे राजन् इस जीवन में तो, नहीं तनिक तेरा अपराध हुआ। हां पूर्वजन्म का एकमात्र, अपराध आपके भाग्य पड़ा।।
उसके कारण ही सर्वगुण, सम्पन्न होकर भी राजन् आप। पुत्र सुख से रहे वंचित, इस कारण ही हुआ यह ताप।।
कल्याण हो राजन् आपका, कोई उपाय अब करें। सुपुत्र प्राप्ति करने की, किसी युक्ति का आश्रय लें।।
यदि पुत्र कामना हृदय में धर, उस हेतु यज्ञ करेंगे आप। यज्ञेश्वर निश्चित आपको, कर पुत्र प्रदान हरेंगे ताप।।

यज्ञ पुरुष श्री हरि का जब, सन्ताप हेतु हो आह्वान। तब देव भी सब स्वत: अपना भाग करेंगे आके ग्रहण।।
मैत्रेय मुनि बोले,
जिस जिस वस्तु की इच्छा, श्री हरि भक्त कभी भी करे। श्री हरि भी कृपा करके, वांछित वस्तु उसको सब दें।।
जिस इच्छा से श्री हरि की, आराधना कोई करते हैं। वैसा ही फल देकर वह, झोली उसकी भरते हैं।।

राजा अंग की पुत्र प्राप्ति, हेतु यह निश्चय करके। ऋत्विजों ने पशु में बसे, यज्ञ रूप रहने वाले।।
श्री विष्णु भगवान का, पूजन करने के लिये। पुरोडाश नामक चरु, समर्पित्त उनको कर दिये।।
आहुति अग्न में पड़ते ही, कुण्ड से एक पुरुष प्रकटे। शुभ्रवस्त्र और स्वर्ण हार, से वह पुरुष सुशोभित थे।।
स्वर्णपात्र में सिद्ध खीर, थे अपने हाथों में वह लिये। उन दिव्य पुरुष ने पात्र वह, राजा के हाथों में दिये।।

उदार राजा अंग ने, याजकों से फिर अनुमति ली। अपनी अंजलि में उसने, दिव्य खीर वह ग्रहण करी।।
स्वयं गन्ध लेकर उसकी, निज पत्नी को उसे दिया। अति प्रसन्न हृदय से यह, प्रसाद रानी को दिया।।

पुत्रहीना रानी ने, दिव्य खीर वह ग्रहण करी। निज पति सहवास कर, फिर गर्भ उसने धारण करी।।
उचित समय आ जाने पर, इक पुत्र को उसने जन्म दिया। यज्ञ कुण्ड में से निकली, खीर का ही प्रभाव यह था।।
बाल्यावस्था से वह शिशु, अधर्म प्रवृत्ति सम्पन्न था। अधर्म के वंश में था जन्मा, नाना मृत्यु का वंशज था।।

धनु: पे बाण चढ़ाकर के, वह दुष्ट बन में जाता था। भोले भाले हरिणों को, व्याध समान गिराता था।।
उसको आता देखकर, पुरवासी भय से कांपते। वेन आया वेन आया, इस भाँति वह पुकारते।।
ऐसा क्रूर निर्दयी वह था, निज समान बालकों को। क्रीड़ा स्थल में ही पशु भाँति, था मार वह देता क्रोधित हो।।

इस दुष्प्रवृत्ति को देखकर, अति व्यथित राजा अंग हुए। उसे सुधारने के निमित्त, उन्होने बहुत से यत्न किये।।
सन्मार्ग पे उसको लाने को, सफल नहीं राजा हुआ। इस कारण उसके दुष्कर्मों से, उनका हृदय विदीर्ण हुआ।।
मन ही मन थे सोच रहे, है भाग्यवान् वह गृहस्थ बड़ा। जिसके यहाँ कुपूत ने, जन्म ही है नहीं लिया।।
पूर्व जन्म में उसने तो, श्री हरि आराधना की होगी। पुत्र के दुष्कर्मों की उसे, असह्य क्लेश नहीं सहनी पड़ी।।

जिसकी करनी से माता-पिता, का सुयश मिले मिट्टी में। जिसके कारण माता-पिता, अधर्म के भागी बनें।।
सबसे विरोध ही हो जाये, अनन्त चिन्ता घर आए। घर में दु:ख क्लेश के, साधन सब ही बन जाएं।।
वास्तव में तो सुपूत से, है कुपूत ही बहु भला। क्योंकि सुपूत को छोड़ना, है अतिशय क्लेश भरा।।
कुपूत तो अपने ही घर को, नरक समान है कर देता। इस कारण उससे सहज ही, छुटकारा मन का हो जाता।।

इसी विचार में रात भर, महाराज अंग नहीं सो सके। उनके भाव गृहस्थी के, बन्धन से विरक्त हुए।।
अर्धरात्री के समय ही, वह निज शैय्या से उठे। देखा वेन की माता को, बेसुद्ध शैय्या पर सोए हुए।।
राजा ने सबका मोह तोड़ा, ऐश्वर्य सम्पन्न राज्य छोड़ा। आभास भी किसी को नहीं हुआ, उन बन की ओर निज मन मोड़ा।।

विरक्त ही होकर महाराजा, निज घर से हैं निकल पड़े। यह जानी प्रजाननी मन्त्रीगण, सुहृद् सब शोक में डूब गए।।
पूरी पृथ्वी पर सब जन, राजा को ढूंढन लगे। ज्यों निज हृदय में स्थित प्रभु को, योगहीन बाहर ढूंढे।।
जब अपने स्वामी का वह, कहीं पता नहीं लगा सके। तब निराश होकर सभी, अपने नगर को लौट आये।।
वहाँ मुनि जन जो एकत्रित थे, विधिवत् उनको प्रणाम किया। आँखों में अश्रु भरी उनसे, राजा न मिले वृत्तान्त कहा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
सब लोकों के कुशलेच्छुक, भृगु आदि मुनि ने जब देखा। अंग के प्रस्थान से, रक्षक न रहा कोई पृथ्वी का।।

पशु समान सब जीव वहाँ, उच्छृंखल होते जा रहे। हे विदुर उन्होंने देखा, संयम नियम कोई नहीं रहे।।
मन्त्रियों ने जब नहीं साथ दिया, माता को उन संग लिया। भूमण्डल के राज्य पर, अभिषेक वेन का कर दिया।।

अति कठोर शासक था वेन, राज सिंहासन पर बैठा। चोर डाकुओं का मन तब, उसके भय से कांप उठा।।
सर्प से ज्यों भयभीत हो, चूहा निज बिल में जाय छिपे। उसी विधि सब परिपन्थी, जहाँ तहाँ जी जाय छिपे।।
वेन राज्य सिंहासन पर, जब पृथ्वी के बैठ गया। अष्ट लोकपालों के, ऐश्वर्य ने उत्मत्त उसे किया।।
अभिमान वश अपने को ही, सर्वोच्च मानने वह लगा। राज्य मद वशीभूत होई, महापुरुषों का अपमान किया।।

ऐश्वर्य मद से अन्धा हुआ, रथ पे वह आरूढ़ हुआ। निरंकुश गजराज के सम, सर्वत्र था वह विचर रहा।।
धरती और आकाश भी, उसके भय से कांप उठा। बिना रोक टोक ब्रह्माण्ड में, सब दिक् था भ्रमण किया।।
कोई भी द्विज कभी कहीं, यज्ञ दान न हवन करे। ढिंढोरा यह पिटवा कर, धर्म कर्म सब बन्द किये।।

वेन का अत्याचार देख, ऋषि मुनि हुए सब एकत्रित। संसार पे आया कष्ट देख, करुणा वश करने लगे सम्मत्त।।
ज्यों दोनों ओर जलती हुई, अग्नि से जीव पड़े संकट में। वैसे ही सारी प्रजा, पड़ी कठिन इस झंझट में।।
एक ओर राजा का ऐसा, अति भीषण है अत्याचार। दूजी ओर परिपन्थीगण, चोर डाकुओं की है मार।।

अयोग्यता वेन की जान के भी, राजा उसे बना दिया। अराजकता न कहीं पनपे, सिंहासन पर बिठा दिया।।
अब उसके कारण ही सारी, प्रजा है भयभीत हुई। ऐसी अवस्था में प्रजा, सुख शान्ति कैसे पा सकती?
सुनीथा पुत्र वेन तो है, अति दुष्ट स्वभाव से। दुग्ध दे सर्प सम पाला इसे, बना अनर्थ का हेतु यह।।

नियुक्त किया था हमने इसे, प्रजा की रक्षा के लिये। आज यह है तुला हुआ, उसे ही नष्ट करने के लिये।।
इतना सब होने पर भी, समझाना इसे अब चाहिये। ऐसा करके सब पापों के, स्पर्श से बच पाइये।।

दुराचारी इसे जान के भी, राजा हमने बनाया था। हमारी सम्मति से भी गर, नहीं किसी विधि यह सुधरेगा।।
लोक धिक्कार से दग्ध कर, निज तेज से भस्म करेंगे इसे। ऐसा विचार कर सब मुनि जन, राजा वेन के पास गए।।
अपना क्रोध छिपा करी, प्रिय वचनों से समझाने लगे। राजा बेन के पास जा, उन सबने यह वचन कहे।।
मुनि बोले,
हे राजन् इसपे ध्यान दें, जो बात हम हैं कर रहे। आयु कीर्ति और बल, निश्चित् आपकी इससे बढ़े।।
जीव यदि मन वाणी तन, और बुद्धि से धर्म पे चले। तो स्वर्गादि शोक रहित, लोकों को वह प्राप्त करे।।
यदि भाव उस जीव का, सर्वथा निष्काम हो। तब उसी धर्म राह जीव को, अनन्त मोक्ष प्रदान हो।।

इसलिये हे वीरवर, है प्रजा का जो कल्याण रूप। आपके द्वारा राजन्, कहीं नष्ट न हो उसका स्वरूप।।
धर्म नष्ट हो जाने से, राजा भी गिर जाता है। अधर्म मार्ग पे जो चले, निश्चित वह च्युत हो जाता है।।
दुष्ट मन्त्री चोरादि से, प्रजा की जो रक्षा करे। प्रजा की रक्षा करते हुए, न्यायपूर्वक कर जो ग्रहण करे।।
वह राजा इह लोक में, और परलोक में सुख पाये। उस राजा की सम्पन्नता, नष्ट कभी न हो पाये।।

जिसके राज्य या नगर में, वर्णाश्रम धर्म के अनुयायी। आराधना यज्ञपुरुष की करें, स्वधर्म पालना के राही।।

अपने आज्ञापालक उस राजा से हरि हों अति मुदित। वे ही सब विश्व की आत्मा हैं, सब भूतों के वे ही रक्षक।।
ब्रह्मा आदि जगदीश्वरों के, भी परम ईश्वर हैं वे। उनके प्रसन्न हो जाने पर, दुर्लभ कुछ भी नहीं रहे।।
इन्द्रादि सहित सब लोकपाल, पूजा उन्हीं की करते हैं। सब ही लोक बहुत आदर से, अर्पित्त उपहार उन्हें करते हैं।।

श्री हरि तो स्वयं नियन्ता हैं, सब लोकपालों और लोकों के। वेदत्रयी और द्रव्य रूप, तप स्वरूप वह स्वयं बने।।
जो पुरवासी आपकी उन्नति को, यजन करें बहु यज्ञों से। आपको राजा उन सबके, अनुकूल ही रहना चाहिए।।
ब्राह्मण जन तब राज्य में, जब करेंगे यज्ञों को अनुष्ठान। मुदित हो प्रभु के अंश देव, करें मनोवांछित फल प्रदान।।
अत: वीरवर यज्ञादि सब, धर्मानुष्ठान न बन्द करें। इस विधि हे राजन् आप, न देवों का तिरस्कार करें।।

बेन बोले,
हत मूढ़जनो तुम सबने तो, अधर्म में की धर्मबुद्धि। तभी तो अन्य की उपासना करते हो तुम, भूले हो मैं ही हूँ तुम्हारा पति।।
मूर्खता वश जो राजा रूप, ईश्वर की करें उपेक्षा। न इहलोक न ही परलोक, में सुख उन्हें कभी मिल सकता।।
अरे जिसमें तुम लोगों की, है ऐसी अनन्य भक्ति। यज्ञ पुरुष वह कौन है, उसकी बात तुम कहो सही।।
यह तो ऐसी ही बात है, ज्यों कुलटा निज पति त्यजे। विवाहित पति से प्रेम न कर, किसी अन्य प्रति आसक्त रहे।।

विष्णु ब्रह्मा महादेव, इन्द्र वायु यम और सूर्य। मेघ कुबेर चन्द्रमा, पृथ्वी अग्नि और वरुण।।
तथा इनसे भी अतिरिक्त जो, कहीं भी हैं कोई देव गण। वर और श्राप देने में, हैं जो देव सदा सम्पन्न।।
वे सबके सब ही राजा के, तन में ही रहें विराजमान्। सर्व वेदमय है राजा, हैं अन्य देव उनके अंश समान।।

सो हे द्विजगण मत्सर त्यज, तुम मेरा ही पूजन करो। सब कर्मों द्वारा पूजो मुझे, और बलि भी मुझे समर्पित करो।।
अग्रपूजन का मुझे छोड़, हो सके भला अधिकार किसको? सर्वश्रेष्ठ ही जानो मुझे, और आराधन मेरा ही करो।।
मैत्रेय मुनि बोले,
इस उल्टी बुद्धि के कारण, अति पापी और कुमार्गी था। क्षीण पुण्य उसका हुआ, इस कारण उसे न समझ पड़ा।।
ऋषि मुनियों ने विनम्रता से, प्रार्थना उससे थी करी। पर घमण्डी वेन ने, कान ही उसपे नहीं धरी।।
अति बुद्धिमान् निज को मान, ऋषियों का जब अपमन किया। निज प्रार्थना को असफल देख, वह मुनि वृन्द अति कुपित हुआ।।

मरो मरो इस पापी को, स्वभाव से ही अति दुष्ट यह। यदि यह जीवित बच गया, सब जग ही भस्म कर डालेगा यह।।
यह दुराचारी किसी भाँति भी, है सिंहासन के योग्य नहीं। साक्षात् यज्ञपति विष्णु की, इस निर्लज्ज ने निन्दा करी।।
जिनकी कृपा से सब ऐश्वर्य, और इसे यह राज्य मिला। अभागे वेन के सिवा, कौन करे हरि की निन्दा?

इस विधि निहित निज क्रोध को, उन ऋषियों ने प्रकट किया। दुष्ट वेन के वध का, उन सब ने निर्णय लिया।।
प्रभु की निन्दा करके वह तो, पहले ही था मर चुका। केवल इक हुंकार से ही, उनने उसका काम तमाम किया।।

ऐसा करके जब सब मुनिजन, आश्रमों को अपने अपने गये। वेन की शोकाकुल माता, मन्त्रबल और अन्य युक्तियों से।।
पुत्र वेन के मृत शव की, रक्षा वह करने लगी। इस विधि सुनीथा की, दिनचर्या थी बीत रही।।
सरस्वती के पावन जल में, इक दिन मुनियों ने स्नान किया। अग्निहोत्र से निवृत्त हो, हरि चर्चा का वहाँ क्रम चला।।

लोक में बहु आतंकवादी, उपद्रव होते उन्होंने देखे। ऐसा देखकर के वे मुनिजन, वार्तालाप यूं करने लगे।।
पृथ्वी पर आजकल, कोई उसका रक्षक नहीं रहा। चोर लुटेरों से उसका, अमंगल तो कहीं न होगा?
ऐसे विचार में वह ऋषिगण, अभी निमग्न थे हो रहे। सब दिक् में देखा उन्होंने, धूलि बावण्डर उठते हुए।।
सब ओर से चोर डाकुओं ने, धावा था वहाँ कर दिया। इस कारण ही धूलि का, बादल था यह उठ रहा।।

यह देखते ही वह समझ गए, महा अराजकता फैली। राजा वेन है मर गया, इस कारण यह परिणाम हुआ।।
शक्तिहीन है राज्य हुआ, हैं चोर और डाकू बढे। लोगों का धन हरने वाले, उपद्रवी यह सब कर रहे।।
निज तेज और तपोबल से, थे सामर्थ उन्हें रोकने में। पर दुष्प्रवृत्ति यह देख के भी, निवारण उसके नहीं किए।।

फिर उन्होंने अपने ही, आन्तर में यह विचार किया। ब्राह्मण यदि समदर्शी हो, और हो शान्त स्वभाव का।।
फिर भी यदि दीनों के प्रति, रखे भाव उपेक्षा का। तप उसका नष्ट ही हो जाये, ज्यों फूटे घट में जल हो पड़ा।।
फिर सोचा राजर्षि अंग का, वंश नाश भी नहीं होए। भगवत्परायण शक्तिवान, अनेकों राजा इसमें हुए।।

ऐसा निश्चय कर उन्होने, मृत राजा की जंघा को मथा। अति बौना उसमें से फिर, एक पुरुष उत्पन्न हुआ।।
कौए समान काला था वह, भुजा और अंग भी थे छोटे। टांगे छोटी नाक चपटी और थे जबड़े बहुत बड़े।।
लाल नेत्र ही थे उसके, और केश थे ताम्बे के रंग के। विस्मयकारी रूप और रंग, से युक्त वह पुरुष थे।।

विनम्र अति दीन भाव से, युक्त हो उसने यह पूछा। क्या करूँ मैं मुझे कहें, कृपया कहें कर्त्तव्य मेरा।।
ऋषियों ने उसे निषीद कहा, जिसका अर्थ है बैठ जा। इस कारण ही वह पुरुष, निषाद नाम से जाना गया।।
लेते ही जन्म निषाद ने, पहले एकही काम किया। वेन के सब पापों को, उसने अपने ऊपर ले लिया।।
अत: उसके सब वंशधर, निषाद ही थे फिर कहलाये। हिंसा लूट पाट आदि, इन कर्मों को हैं अपनाये।।
गांव नगर में न टिककर, वह वन और पर्वत में ही रहें। वहां से ही हिंसा अधर्म, पूर्ण ही सब काज करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
तत्पश्चात् ब्राह्मणों ने, राजा वेन की भुजा मथी। वहाँ से प्रकटा एक युगल, एक था नर और इक नारी।।
युगल की उत्पत्ति देख, ब्रह्मवादी ऋषि मुदित हुए। श्री हरि का अंश उसे जान कर, ब्रह्मवादी गण यूं बोले।।
ऋषि बोले,
प्रभु विष्णु की विश्वपालिनी, कला अंश प्रकटा यह पुरुष। यह स्त्री उनकी अभिन्न शक्ति, श्री लक्ष्मी का ही है रूप।।
निज यश का विस्तार कर, सम्राट पृथु होगा यह पुरुष। नर का सर्वप्रथम राजा, यह ही तो होगा वह पुरुष।।
अर्चि नामक यह रूपमति, पृथु को अपने लिये वरे। सुन्दर है दन्तावली इसकी, आभूषित गुण भूषण भी करे।।

साक्षात् हरि पृथु रूप धरी, पृथ्वी के रक्षण को जन्मे। वा नित्य सेविका सहचरी, श्री आईं अर्चि रूप धरे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर ब्राह्मण जन मिल, स्तुति पृथु की गाने लगे। अप्सरागण ने नृत्य किया, गन्धर्वों ने गुणगान किये।।
सिद्ध गण आकाश से, फूल ही बरसाने लगे। इन दोनों के प्राकट्य की, खुशियाँ सभी मनाने लगे।।
शंख तुरही मृदंग दुन्दुभी, वाद्यों से गूंज उठा यह नभ। समस्त देव ऋषि और पितर, पहुँचे वहाँ स्वधाम तज।।

देव देवेश्वर संग लिये, आये जगद्गुरु ब्रह्मा जी। उन पृथु के दायें हाथ में, देखी रेखा प्रभु विष्णु की।।
चरणों में कमल का चिन्ह देख, श्री हरि का अंश उन्हें मान लिया। है पृथु प्रभु का अपना अंश, ऐसा उन्होंने पहचान लिया।।
जिन हाथों में हो कटा चक्र, नहीं अन्य कोई भी रेखा हो। वह तो निश्चित जान लो, श्री भगवान का ही अंश हो।।

वेदवादी द्विजों ने मिल, अभिषेक का आयोजन किया। सब लोगों ने मिल जुल कर, सामग्री सब ही दीनी ला।।
फिर नदी समुद्र और पर्वत, सर्प गौ पक्षी और मृग। स्वर्ग पृथ्वी तथा अन्य भी, सब ने दिये उपहार भिन्न।।
सुन्दर वस्त्राभूषणों से, अलंकृत राजा पृथु हुए। इस भाँति पूर्ण विधिवत्, राजा के अभिषेक हुए।।
विविध भाँति के अलंकार से, थीं महारानी अर्चि सजी। उनके संग पृथु ऐसे लगे, ज्यों प्रकट हो अग्नि रूप धरी।।

हे विदुर कुबेर ने उन्हें दिया, अति सुन्दर स्वर्ण का सिंहासन। वरुण ने छत्र दिया उनको, था श्वेत द्युतिमय जो शशि सम।।
जल की फुहारें नित्य ही, उस छत्र से झरती रहती थीं। सारे वातावरण को, वह शीतल करती रहतीं थीं।।

वायु ने दिये दो चंवर, धर्म ने कीर्तिमयी माला। इन्द्र ने मनहर मुकुट दिया, यम ने दिया दण्ड दमन वाला।।
ब्रह्मा ने वेदमय कवच दिया, दिया सरस्वति ने सुन्दर हार। प्रभु विष्णु दिया सुदर्शन चक्र, श्री प्रियाजी ने दी सम्पद् अपार।।
कोश पे चन्द्राकार दस, सौंपी रुद्र ने वह तलवार। अम्बिका माँ ने दी वह ढाल, जिसपर थे बनें सौ चन्द्राकार।।
अमृतमय अश्व दिये शशी ने, विश्वकर्मा ने दिया सुन्दर रथ। बकरी और गौ की सींगों का, अग्नि ने दिया सुदृढ़ धनुष।।

सूर्य ने दिये तेजोमय बाण, पृथ्वी ने दी पादुका विचित्र। चरण स्पर्श होते ही उससे, प्राप्त थे होते स्थान अभीष्ट।।
आकाश के अभिमानी देव, द्यौ की जब बारी आई। नित्य नूतन पुष्पों की, माला उसने पहनाई।।
सिद्ध गन्धर्व आदि जो, थे विचरते आकाश में। नृत्य गायन वादन ज्ञाता, और अन्तर्धान थे हो सकते।।
उन सबने ही मिलकर, यह शक्तियाँ उनको सौंप दीं। इस विधि राजा पृथु की, शक्ति दिनों दिन बढ़ती गई।।
ऋषियों ने दिया आशीर्वाद, जो है सदा रहता अमोघ। समुद्र ने उसको शंख दिया, है सागर सम जिसका उद्घोष।।
सातों समुद्र पर्वत नदियों, ने मिलकर उपहार दिये। निष्कंटक ही मार्ग सब, उसके लिये बना दिये।।
तत्पश्चात् सूत मागध, और बन्दीजन भी आने लगे। वे सब मिल राजा पृथु के, स्तुतिगान गाने लगे।।

उन स्तुति करने वालों का, अभिप्राय पृथु ने जान लिया। महा प्रतापी वेन पुत्र, गम्भीर स्वर में फिर बोला।।
पृथु बोले,
हे सौम्य सूत मागध सुनो, और सुनो सब बन्दी जन। अभी तक इस लोक में, नहीं प्रकट हुआ मेरा कोई गुण।।
फिर कौन से गुण लेकर तुम सब, स्तुति मेरी अब गाओगे? मेरे विषय में यह वाणी अपनी, क्यों व्यर्थ ही तुम गंवाओगे?
सो जानो कहूं मैं आपसे, स्तुति किसी अन्य की गाइए। मुझसे भिन्न किसी अन्य की, महिमा गाकर जाइए।।

हे मृदुभाषी कालान्तर में, जब गुण प्रकट मेरे हो जायें। तब जी चाहे भरपेट आप, मधु स्वर में स्तुति मेरी गायें।।
पावनकीर्ति श्री हरि के, गुण सम्मुख ही रख करके। शिष्ट पुरुष किसी तुच्छ जीव की, स्तुति नहीं किया करते।।

महत् गुणों को भी अपने में, धारण कभी जो करता है। पर तनिक भी बुद्धि है जिसपे, वह दृष्टि ऱ्हास पे धरता है।।
वह स्तुति के इन बन्दी जन से, क्या अपनी स्तुति करायेगा। क्या गुण सम्भावना लेकर ही, गुणगान कराना चाहेगा।।

यदि करता यह विद्याभ्यास, तो ऐसे गुण इसके होते। इस प्रकार की स्तुति से तो, वांछना जीव की ही होए।।
वह मन्दमति न जाने यह, लोग तो उसका उपहास करें। ऐसा गुणगान उन्होने कर करी, वास्तव में हंसी उड़ा हैं रहे।।

ज्यों लज्जाशील उदार पुरुष, निज चर्चा से संकोच करे। अपने किसी निन्दित कर्म की, चर्चा को भी न बुरा समझे।।
उसी विधि गुणवान् समर्थ, लोक विख्यात भी पुरुष जो। निज स्तुति को ऐसे में, निन्दित ही तो माने वो।।

हे सूतगण यह जान लो, अभी कोई भी हमको न जाने। श्रेष्ठ कर्म कोई नहीं किये, अप्रसिद्ध अभी हम बने।।
ऐसा कोई कर्म भी, अभी तक है नहीं किया। जिसकी प्रशंसा हो सके, कोई गुण प्रकट ही नहीं हुआ।।
तब किसी बालक के समान, कैसे स्तुति निज करवायें? तुम लोगों के द्वारा ही, कैसे स्तुति गान यह सुन पायें?
मैत्रेय मुनि बोले,
जब महाराजा पृथु ने, इस विधि उनसे वचन कहा। वचनामृत आस्वादन कर, सूतादि वृन्द अति मुदित हुआ।।
मुनिजन से प्रेरणा पा, वे सब फिर स्तुति गाने लगे। राजा पृथु को इस विधि, वह गुणगान सुनाने लगे।।
बन्दीजन बोले,
साक्षात् श्री नारायण आप, निज माया से अवतीर्ण हुए। आपकी महिमा गान को, नहीं हम समर्थ हैं।।
जन्म तो आपका वेन के, मृतक शरीर से है हुआ। पौरुष आपका देव प्रवर, श्री ब्रह्मा को भी दे चकरा।।

यद्यपि आपकी कथामृत का, अति आदर हम करते हैं। पर मुनिवर उपदेशानुसार, उन्हीं से प्रेरणा पाते हैं।।
प्रशंसनीय आपके कर्मों का, विस्तार करना चाहते हैं। इस कारण इस वाणी से, आपकी कथा सुनाते जाते हैं।।
आप तो साक्षात् स्वयं, श्री हरि के कलावतार हैं। उदार हैं आप स्वयं प्रभु, आपकी कीर्ति अति उदार है।।

राजा पृथु तो हैं कहें, धर्मधारियों में अति श्रेष्ठ। विरोधी को देकर यह दण्ड, करें लोक को धर्म प्रवृत्त।।
इस विधि धर्म मर्यादा की, रक्षा करेंगे स्वयं यह। स्थापित यह इस धरती पर, धर्म के राज्य को कर देंगे।।
समय समय पर एक ही यह, निज तन में धरें भिन्न लोकपाल। पालन पोषण अनुरंजन यह, करें प्रजा का उस अनुसार।।
यज्ञादि के प्रचार से यह, स्वर्णादि का हित धारेंगे। वृष्टि व्यवस्था कर करी, पृथ्वी का भाग्य उभारेंगे।।

सूर्य समान यह अलौकिक, महिमा के होंगे धनी। महा प्रतापवान् होंगे, और यह होंगे समदर्शी।।
ज्यों सूर्य देव तपें आठ माह, और जल सारा खेंच लें। वर्षा ऋतु जब आ जाये, सबका सब वह उड़ेल दें।।
उसी विधि कर आदि से, यह प्रजा का धन संचय करें। और कभी प्रजाहितार्थ ही, वह सबका सब ही व्यय करें।।

अति दयालु होंगे यह, होंगे सहिष्णुता की मूर्त। यदि दीन कोई अज्ञान वश, मस्तक पें पांव भी दे कभी धर।।
तो भी पृथ्वी के समान यह, दुर्व्यवहार सदा सहन करें। प्रतिकार में यह उसको कभी, कटुवचन किंचित् न कहें।।
यदि कभी वर्षा न हो, और प्रजा प्राण पड़ें संकट में। तो राजवेषधारी हरि, इन्द्रवत् जल की वर्षा करें।।
अनायास वह इस विधि, लेंगे प्रजा की रक्षा कर। कौन कौन गुण गायें हम, यह तो हैं सबके रक्षक।।

निज अमृतमय मुखचन्द्र की, अति मनोहर मुसकान से। करेंगे लोक आनन्दमय, प्रेमभरी निज चितवन से।।
कोई समझ न पाये इनकी गति, कार्य भी अति गुह्य होंगे। उनको सम्पन्न कराने के, ढंग भी अति गम्भीर होंगे।।

सदा सुरक्षित रहेगा धन, नहीं होगा कहीं भी कोई भय। अनन्त माहात्म्य और गुण का, होंगे यह एकमात्र आश्रय।।
इस प्रकार मनस्वी पृथु, होंगे वरुण समान ही। इनके अनन्त गुणों का, कैसे करे बखान कोई?

वेन रूप अरणि मन्थन से, प्रकटे अग्न समान पृथु। रिपुदमन करेंगे यह सदा, और दु:सह होंगे श्री पृथु।।
शत्रु के पास भी रहकर यह, बहुत दूर ही उससे भागेंगे। सेना आदि से सुरक्षित यह, इन्हें कोई हरा नहीं पायेंगे।।

जीव के आन्तर में स्थित जो, प्राण रूप है आत्मा। बाह्य आन्तर सब कर्मों का, साक्षी एक यह आत्मा।।
सब कुछ देख के यह सबसे, उदासीन ही बना रहे। भला बुरा सब जान कर, प्रभावित उससे नहीं भए।।
उसी विधि गुप्तचरों से यह, सबके व्यापार को जानेगा। प्रकट या गुह्य वह जो भी करें, सबको ही पहचानेगा।।
अपनी निन्दा और स्तुति, जो भी सबसे सुनेगा यह। उदासीन दोनों के प्रति, ही राजा रहेगा यह।।

यह धर्म मार्ग में स्थित होगा, नहीं राग द्वेष में डोलेगा। यदि शत्रु पुत्र नहीं दण्ड योग्य, तो उसको दण्ड न यह देगा।।
दूजी ओर गर अपना पुत्र, दण्डनीय कोई काज करे। तो राजा दण्ड उसे देने में, पल भर न संकोच करे।।

मानसोत्तर तक सूर्यदेव, प्रकाश फैलायें रश्मि भेज। उस सीमा तक इसका राज्य, निष्कण्टक और होगा सतेज।।
अपने कर्मों से यह तो, सब लोकों को करेंगे सुखी। रंजन यह उनका करेंगे सदा, नहीं देखेंगे किसीको दु:खी।।
मनोरंजनात्मक काज सब, प्रजा के मन को भायेंगे। इस कारण प्रजा द्वारा, राजा यह कहलायेंगे।।

दृढ़ संकल्प यह सत्य प्रतिज्ञ, होंगे द्विजभक्त वृद्ध सेवी। शरणागत वत्सल मानदेय, हों दीन हित दयालु भावी।।
परस्त्री में जननी समान, ही इनकी भक्ति होगी। अर्धांगिनी तो इनकी, अपनी ही भार्या होगी।।
पिता समान प्रजा पे यह, अपना प्रेम सदा वारेंगे। और ब्रह्मवादियों के, नित्य ही सेवक यह होंगे।।

दूजे प्राणी भी अपने ही, तन समान इन्हें चाहेंगे। सुहृदयों का यह सर्वदा, आनन्द ही बढ़ायेंगे।।
वैराग्यवान पुरुषों से सदा, विशेष प्रेम करेंगे यह। हो दण्डपति दुष्टों के लिये, दण्ड देने को रहें उद्यत यह।।
तीन गुणों के अधिष्ठाता, निर्विकार श्री नारायण। इस रूप में निज ही अंश से, किया साक्षात् अवतार ग्रहण।।
अविद्यावश इनमें जो, नानत्व भी प्रतीत हो। पण्डित गण तो जानें यह, मिथ्या ही यह नानत्व हो।।

अद्वितीय वीरवर होंगे यह, और बनेंगे एकछत्र सम्राट। उदयाचल तक एकाकी ही, भूमण्डल की करें रक्षा।।
जयशील निज रथ पे चढ़ी, और धनुषबाण को हाथ में ले। सूर्य समान सर्वत्र ही, प्रदक्षिणा करेंगे यह।।

तब यहाँ वहाँ सब लोकपाल, भेंट इनको चढ़ायेंगे। पृथ्वीपाल भी इनके ही, समर्पित सब कर जायेंगे।।
उनकी स्त्रियाँ भी मिलकर, गुणगान करेंगी जब इनका। इन आदिराज को हरि ही जान, मान करेंगी वह इनका।।
राजाधिराज होंगे यह स्वयं, सारे ही प्रजापालकों के। फिर भी प्रजापालन के लिये, दोहन पृथ्वी का करेंगे यह।।
देवराज सम निज धनु: की, नोकों से बात ही बात में। तोड़ गिरायेंगे पर्वत, पृथ्वी को समतल कर देंगे।।

रणभूमि में कोई भी, नहीं सह सकेगा इनका वेग। ज्यों पूंछ उठायें सिंह से सब, भयभीत होई बनें निस्तेज।
जब निज आजगव धनु: की, टंकार करी यह विचरेंगे। भूमण्डल के सब दुष्ट जन, इधर उधर छिप जायेंगे।।

उद्गम स्थान पे सरस्वती के, यह शतश: यज्ञ करेंगे। अन्तिम अनुष्ठान की बेला, इन्द्र इनके अश्व हरेंगे।।

निज महल के उद्यान में, यह मिलेंगे सनत्कुमार से। अकेले ही महात्मन् की, सेवन् अर्चन करेंगे यह।।
भक्तिपूर्वक सेवा कर यह, पायेंगे उनसे निर्मल ज्ञान। परं ब्रह्म की प्राप्ति का, निहित है जिसमें सब सामान।।
इस विधि पराक्रम इनके जब, जन सम्मुख आ जायेंगे। तब महा पराक्रमी राजा यह, जहाँ तहाँ भी जायेंगे।।
अपने पावन चरित की, चर्चा ही सुनते जायेंगे। इस विधि महाराज यह, जगत्प्रसिद्धि पायेंगे।।

विरोध न कर सकेगा कोई, कभी भी इनकी आज्ञा का। सब दिशा जीत कर यह राजा, प्रजा के सब दु:ख हर लेगा।।
सम्पूर्ण भूमण्डल का, एक ही शासक यह होगा। देव असुर सब मिली करें, वर्णन इसके प्रभाव का।।
मैत्रेय मुनि बोले,
बन्दी जन ने जब इस विध, गुण कर्मों का बखान किया। राजा पृथु की प्रशंसा कर, उनका जब गुणगान किया।।
तब राजा ने भी बढ़ाई की, और उन्हें भी तुष्ट किया। मनोवांछित वस्तु उनको दी, और उन्हें सन्तुष्ट किया।।
ब्राह्मण आदि चार वर्ण, सेवक मन्त्री पुरोहित जन। पुरवासी और देशवासी, व्यवसायों से भिन्न भिन्न।।
तथा अन्य भी जो आज्ञावर्ती, उन सबका ही सत्कार किया। इस विध महाराजा पृथु ने, सबको ही सन्मान दिया।।
विदुर बोले,
हे द्विजवर यह धरती तो, अनेक रूप ही धर सके। फिर उस पृथ्वी ने कहो, क्यों गौ रूप धारण किए?
जब महाराजा पृथु ने, पृथ्वी का दोहन किया। हे ब्राह्मण कहें आप ही, तब कौन था बछड़ा बना?
कौन बना वह पात्र कहें, जिसमें दुहा गया यह दुग्ध? हे देव यह सब कह करी, मुझे करें जिज्ञासा मुक्त।।

स्वभाव से ही पृथ्वी यह, ऊँची नीची थी बनी। क्योंकर पृथु के हाथों से, यह पृथ्वी समतल हुई?
फिर यह भी अब देव कहें, क्योंकर अश्व उनका हरे गये? यज्ञ सम्बन्धी अश्वों को, देवेन्द्र कैसे ले गए?
सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी श्री, सनत्कुमार से सुना ज्ञान। विज्ञान प्राप्त कर राजर्षि, किस गति को हुए प्राप्तवान्?

सर्वेश्वर श्री कृष्ण ने ही, पृथु रूप में था अवतार लिया। उस अवतार सम्बन्धी जो, उन पावन चरित की कहें कथा।।
आपका और श्री कृष्ण का, अति अनुरक्त भक्त हूँ मैं। उनके कथामृत पान को, आपकी शरण पड़ा हूँ मैं।।
सूत बोले,
प्रभु वासुदेव की कथा वदन, को प्रेरणा दी जब विदुर ने। प्रशंसा कर उसकी मैत्रेय, मुदित मन हो कहने लगे।।
मैत्रेय बोले,
हे विदुर ब्राह्मण जन ने, अभिषेक किया तब पृथु का। प्रजा का रक्षक जान करी, उद्घोषित राजा उसे किया।।
कुछ ऐसा विधान बना, अन्नहीन थी पृथ्वी हुई। क्षुधा से सारी ही प्रजा, अति पीडित थी हो रही।।
अपने स्वामी पृथु के पास, सब ही जन मिलकर आये। अपनी व्यथा सुनाने को, उन्होंने फिर यह वचन कहे।।
प्रजाजन बोले,
हे राजन् कोटर अग्न से, ज्यों वृक्ष दग्ध हो जाता है। त्यों ही क्षुधा की ज्वाला में, तन नित्य यह जलता जाता है।।
शरणागतवत्सल आप हैं, और आप ही रक्षक हैं हमारे। हे अन्नदाता प्रभु हमरे, हम आपकी शरण में आ पड़े।।

समस्त लोकों के रक्षक, भी आप महाराज हैं। हम सबकी आजीविका के, भी स्वामी इक आप हैं।।
हम क्षुधा पीडितों को राजन्, अब शीघ्र ही अन्न का दान दें। कहीं अन्न ग्रहण से पूर्व ही, यह प्राण न तन को तज जायें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
सुन करुण क्रन्दन प्रजा का, बहु देर पृथु ने विचार किया। अन्त में अन्न अभाव का, कारण उन्होंने जान लिया।।
पृथ्वी ने अन्न और औषधि, अपने भीतर छिपा लिया। अपनी बुद्धि से श्री पृथु ने, इस बात का निश्चय किया।।
निज धनुष उन्होंने उठा लिया, क्रुद्ध हुए त्रिपुरारी सम। धनुष पे बाण चढ़ा लिया, लक्ष्य करी पृथ्वी को।।

उनका शस्त्र उठा देखकर, पृथ्वी भय से कांप गई। ज्यों व्याध से डर हरिणी भागे, गौ रूप धरी पृथ्वी भागी।।
यह देखी राजा पृथु की, आंखें क्रोध से लाल हुईं। वह धनु: पे बाण चढ़ाये हुए, भागे जिस ओर भी पृथ्वी गई।।
दिशा विदिशा स्वर्ग अन्तरिक्ष, वह जहाँ भी थी दौड़ी जाती। धनुष उठाये श्री पृथु को, अपने पीछे ही थी पाती।।

ज्यों जीव को मृत्यु से, कभी कोई न बचा सके। उसी भाँति त्रिलोकी में, पृथ्वी त्रता कोई नहीं मिले।।
वेन पुत्र श्री पृथु से जब, रक्षक कोई नहीं मिला। भयभीत होई दु:खी चित्त से, उसने फिर पीछे कदम लिया।।
मैत्रेय बोले,
महाभाग श्री पृथु से फिर, पृथ्वी ने यह वचन कहे। धर्मतत्त्व के ज्ञाता आप, राजन् शरणागत्वत्सल हे।।
तत्पर हैं आप सृष्टि में, सबकी रक्षा के लिये। हे स्वामी अब मेरी भी, आप ही रक्षा कीजिये।।
निरपराध हूँ मैं राजन्, और अति मैं दीन हूँ। क्यों मारना चाहो मुझे प्रभो, मैं तो अबला अति क्षभण हूँ।।
फिर तत्त्वेत्ता आप तो, धर्मज्ञ ही माने जाते हैं। फिर मुझ अबला के वध हेतु, कैसे उद्यत हो पाते हैं?

अपराध यदि स्त्री से हो, साधारण जीव भी क्षमा करे। अबला उसको जान करी, ताड़ना उसकी नहीं करे।।
फिर आप समान दीन वत्सल, और करुणामयी यह कैसे करें? मुझ निर्बल के हनन की, सोच भी कैसे हृदय में धरें?
हे राजन् मैं तो हूँ ही, एक सुदृढ़ नैया समान। सारा जगत् ही तो स्थित है, मुझको ही आधार मान।।
मुझे तोड़कर आप स्वयं, और इस अपनी प्रजा को। जल ऊपर कैसे रख पायेंगे, आप विचारें हे प्रभो।।
पृथु बोले,
हे पृथ्वी तुमने तो, मेरी आज्ञा है उलांघ दी। यज्ञ भाग लिया देव रूप, किन्तु बदले में अन्न नही दी।।
इस कारण हे धरिणी सुनो, दण्ड मैं दूँगा तुमको आज। यज्ञ हवि को ग्रहण किया, पर नहीं किया तूने अपना काज।।
प्रतिदिन हरित घास का तू, पृथ्वी भक्षण कर लेती है। प्रतिरूप में उसके तू लेकिन, स्तन से दूध नहीं देती है।।
ऐसी दुष्टता करने पर, उचित ही है तुझको दण्ड देना। अनुचित नहीं कोई कह सकता, ऐसे में ताडित कर देना।।

हे मूढ़मति नहीं समझ तुझे, तूने बहुत अपराध किया। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने, तुझे अन्न और बीज का दान दिया।।
अज्ञान वश उसे अपने में, लीन ही तुमने कर लिया। मेरी अवज्ञा कर रही, नहीं गर्भ से बाहर उसे किया।।
निज बाणों से छिन्न-भिन्न, अब मैं तुझको कर दूँगा। क्षुधातुर प्रजा का यह क्रन्दन, तुमसे अब शान्त मैं कर दूँगा।।

जो दुष्ट करे अपना पोषण, दूजों के प्रति निर्दय रहे। वह पुरुष हो या फिर स्त्री हो, या निपुंसक ही वह भए।।
उसका वध राजा के लिये, है अवध के समान ही। उसका हनन कभी राजा के, पाप का कारण बने नहीं।।

अति गर्वमयी मदोन्मत्त तू, माया से गौ का रूप धरा। नष्ट करूँ बाणों से तुझे, धारूँगा योग बल से मैं प्रजा।।

मैत्रेय मुनि बोले,
उस पल राजा पृथु बने, क्रोध का मूर्तिमन्त रूप। यह शब्द सुनी उनके पृथ्वी, कांपी होकर अति भयभीत।।
हाथ जोड़ विनीत भाव से, आर्त स्वर में वह बोली। राजा पृथु के सामने, उसने अपनी बिनती धरी।।

पृथ्वी बोली,
साक्षात् परम पुरुष हैं आप, निज माया से भिन्न तन धरें। विभिन्न गुणमय रूपों में, वैसे गुणवाले जान पड़ें।।
वास्तव में अधिभूत भाव, अधिदैव और अध्यात्म जो। आत्म अनुभव से आप तो, सबके अभिमान से परे ही हों।।
इनसे उत्पन्न जो राग द्वेष, हैं उनसे आप सर्वथा अतीत। स्वीकार करें मेरा नमस्कार, आपके चरणों में प्रणत मम सीस।।

विधाता पूर्ण जगत् के, त्रिगुणमयी सृष्टि को रचा। समस्त जीवों का आश्रय, आपने मुझे बना दिया।।
सर्वथा प्रभु स्वतंत्र आप, जो चाहें वह स्वयं करें। मेरे हनन को उद्यत आप हुए, फिर किसकी शरण हम जाय पड़ें?
कल्प आदि में आपने ही, अपने आश्रित निज माया से। जगत् चराचर रच दिया, अनिर्वचनीय इस माया से।।
उस माया के द्वारा ही, उनके पालन को तत्पर हुए। धर्म परायण आप सदा, धर्म का ही पालन करें।।

फिर गौ रूप धारी मेरा, वध क्योंकर करना चाहें? ऐसी भीरुता प्रभु मेरे, नहीं आपके योग्य हे।।
एक रूप हैं आप प्रभु, मायावश हैं भासें अनेक। ब्रह्मा को भी स्वयं रची, दिया सृष्टि रचना का आदेश।।
सर्वेश्वर हैं साक्षात् स्वयं, कोई नहीं लीला आपकी जान सके? अजितेन्द्रिय लोग आपको, कभी नहीं पहचान सकें।।

पञ्चभूत और इन्द्रिय जो, उसके अधिष्ठातृ देवता। बुद्धि और अहंकार रूप, निज शक्तियों द्वारा ही क्रमश:।।
जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और संहार भी आप करें। भिन्न काज अर्थ भिन्न समय पर, शक्ति का अविर्भाव करें।।
फिर तिरोभाव भी आप करें, हैं आप स्वयं ही परम पुरुष। जगत् विधाता स्वयं आप, आपके चरण में है मेरा सीस ईश।।

हैं अजम अनादि आप प्रभो, पर आपकी ही सब रचना है। भूत इन्द्रिय और अन्त:करण, आपकी ही संरचना है।।
इस जगत् की स्थिति हेतु, वराह रूप धरा आपने। आदि वराह स्वयं बनकर, लाये बाहर रसातल में।।

उद्धार करी इस विध मेरा, धराधर नाम ही था पाया। आपने आज स्वयं ही क्यों, बाण यह मेरे लिए साधा?
मेरे ऊपर रहने वाली, प्रजा की रक्षा के हेतु। जल ऊपर नौका समान, ही स्थित हूँ मैं स्वयं प्रभु।।
दूध न देने का अपराध, मुझसे जो प्रभु हो गया। उसके दण्ड स्वरूप ही, मेरे हनन को है यह बाण उठा।।

रचयिता त्रैगुणी सृष्टि की, आपकी दुस्तर माया से। मुझ जैसे साधारण जीव, मोह ग्रसित हैं हो रहे।।
तव भक्तों का लीला आशय, मुझ सम अज्ञ जन न जानें। फिर क्या आश्चर्य वह आपके, क्रिया उद्देश न पहचानें।।
इन्द्रिय संयम द्वारा जो जन, वीरोचित यज्ञ विस्तार करें। ऐसे आपके भक्तों को, हो करबद्ध हम नमस्कार करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
महाराज पृथु के होंठ इस समय, थे क्रोध से कांप रहे। इस विधि स्तुति करके उनकी, पृथ्वी ने पुन: विचार किये।।
हृदय के भाव समाहित कर, डरते डरते उनको कहा। आन्तर भाव जो था उसका, सामने उनके धर दिया।।

पृथ्वी बोली,
शान्त आप हों हे प्रभो, निज क्रोध त्याग अब दीजिये। जो प्रार्थना आपसे कर रही, तनिक ध्यान तो दीजिये।।
बुद्धिमान्, जो जीव हैं, भ्रमर समान ही होते हैं। जो रस जब भी जहाँ मिले, वह उसे ग्रहण कर लेते हैं।।
इहलोक और परलोक में, तत्त्वदर्शी मुनियों ने। जीव के कल्याण को, उपाय अनेकों हैं कहे।।
कृषि अग्निहोत्र आदि, बहु साधन हैं कह दिये। यह सब साधन ऋषियों ने, कार्यान्वित भी हैं किये।।

उन प्राचीन ऋषियों के, बताये हुए उपायों का। इस पल भी श्रद्धापूर्वक, जो पुरुष है पालन करता।।
सुगमता से ही अभीष्ट फल, प्राप्त वह है कर लेता। नहीं उसके मार्ग में किसी विधि, कोई विघ्न ठहर सकता।।
पर जो अज्ञानी पुरुष कभी, अनादर उनका करता है। निज मनोकल्पित उपायों का, ही आश्रय जो लेता है।।
उसके सभी उपाय कहें, निष्फल ही हैं हो जाते। बार बार किये जो यत्न, नहीं उसके लिए कोई फल लाते।।

हे राज्न पूर्वकाल में, धन धान्य जो ब्रह्माजी ने दिया। मैंने दिया दुराचारिन् ने, ही भक्षण उसका किया।।
यम नियम आदि व्रत का, पालन न कोई कर रहे। ऐसे लोग ही ब्रह्मा रचित, धन धान्य का हैं उपभोग करें।।
राजा लोगों ने भी मेरा, पालन और आदर नहीं किया। इस कारण ही चोरवत्, सबका है आचार बना।।
इसीलिये सब औषधि को, आन्तर में अपने छिपा लिया। यज्ञ अर्थ यह मिल सकें, इस कारण इन्हें निहित किया।।

अब अधिक समय हो जाने से, वह धान्य उदर में जीर्ण हुए। अब आप ही पूर्वाचार्यों की, विधि से उन्हें निकाल लीजिए।।
सब प्राणियों के लिये अभीष्ट, बलवर्धक अन्न को गर चाहो। हे लोकपालक वीर तब, साधन कुछ ऐसा बना डालो।।
मेरे योग्य बछड़ा लाओ, दोहन को पात्र भी संग में हो। मुझको दुहने के लिये, फिर कोई प्रबन्ध भी हो।।
बछड़े के स्नेह से द्रवित हो, दुग्ध मैं आपको दे दूँगी। दुग्ध रूप में आपकी, अभीष्ट वस्तु सभी दूँगी।।

हे राजन् अब एक और, बात मैं कहना चाहती हूँ। समतल मुझको कीजिये, यही आपसे चाहती हूँ।।
वर्षा ऋतु जाने पर भी, सर्वत्र ही जल यह बना रहे। इन्द्र ने जो बरसाया था, प्रभाव उसीका बना रहे।।
मेरे आन्तर की आर्द्रता, अब सूख कभी भी न पाये। यदि आप यह कर पायें, अति मंगल आपका हो जाये।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री पृथु ने इन हितकर प्रिय, वचनों को स्वीकार किया। स्वयंभु मनु को बछड़ा बना, सब धान्य निज कर से दोहा।।
अन्य विज्ञ भी पृथु समान, सब जगह से सार को ग्रहण करें। पृथु वश हुई वसुन्धरा से, अभीष्ट वस्तु अपनी दोह लें।।
ऋषियों ने फिर बृहस्पति, को बछड़ा बना लिया। इन्द्रियों का पात्र बना करी, धरा से वेद दुग्ध दोहा।।

देवों ने इन्द्र की कल्पना, की बछड़े के रूप में। दुग्ध दोहने के लिये, फिर स्वर्णमय उन पात्र लिये।।
वीर्य ओज और तनोबल, रूप दुग्ध ही उन्हें मिला। इस विधि देवों ने मिल, धरती का दोहन किया।।
असुर श्रेष्ठ प्रह्लाद जी, बने वत्स दैत्य दानवों के। लौह पात्र में फिर उन्होंने, मदिरा आसव के दुग्ध दोहे।।

अप्सरा और गन्धर्वों के, बछड़ा बने श्री विश्वावसु। कमल का ही था पात्र बना, उसमें लिया उन दुग्ध दुह।।
संगीत माधुर्य सौन्दर्य रस, का था उन्होंने दूध दोहा। उनका जीवन इस विधि, संगीतमय और सुन्दर बना।।
अधिष्ठाता जो श्राद्ध के, पितृगण ने भेजे अर्यमा। वत्स बना पित्रीश्वर को, मिट्टी का कच्चा पात्र दिया।।

फिर उस पात्र में श्रद्धापूर्वक, कव्य को उन्होंने दोह लिया। इसी कव्य को पितरों के, अर्पित है किया जाता।।

फिर सिद्धों ने कपिलदेव को, बछड़ा पुन: बना दिया। आकाश पात्र में उन्होने, अणिमादि अष्ट सिद्धि को दुहा।।
विद्याधरों ने इसी समय, फिर उसको दोहन किया। आकाश गमन आदि विद्या, को ग्रहण उन्होंने कर लिया।।
अब बारी आई किम्पुरुषादि, अन्य सभी मायावियों की। मय दानव को बछड़ा बना, दोहन की उन्होंने पृथ्वी की।।
विचित्र रूप धारण करना, और अन्तर्धान ही हो जाना। दुग्ध उन्होंने दोह लिया, संकल्प जनित मायाओं का।।

इसी विधि यक्ष राक्षस, और भूत पिशाचादि ने रुद्रनाथ को बछड़ा बना लिया, फिर दोहन आरम्भ करी।।
कपाल को पात्र बना लिया, और दोहन वह करने लगे। रुधिर रूप आसव से वह, उस पात्र को भरने लगे।।
फन रहित सांप और फन वाले, बिच्छफ नागादि विषजीवी। तक्षक को वत्स बना करके, मुख पात्र में उन्होंने विष दोह ली।।

प्रभु रुद्र के वाहन बैल को, पशुओं ने वत्स बना लिया। वन रूपा पात्र में उन्होंने, फिर तृण रूपा दुग्ध दोहा।।
विशाल दंष्ट्रधारी हैं जो, और हैं जो मांस भक्षी। उन्होंने दुग्ध दोहन हेतु, बछड़ा बनाकर भेजा सिंह।।
निज तन रूपा पात्र में, कच्चे मांस का दुग्ध दोहा। फिर गरुड़ को अपना वत्स बना, पक्षियों ने वहाँ भेजा।।
चर रूप कीट पतंग आदि, और अचर जो फल आदि। पक्षीगण ने धरती से, इन सबकी दोहन करी।।

वृक्षों ने वट वृक्ष को ही, अपना वत्स बना भेजा। अनेक भाँति के रसों को, इस विधि उन्होने दोहा।।
पर्वतों ने भी हिमालय रूप, बछड़ा अपना भेज दिया। शिखिर रूप निज पात्रों में, विभिन्न धातुओं को दोहा।।
पृथ्वी तो सबकी अभीष्ट, वस्तुओं की ही है दातृ। और वह भी इस समय, श्री पृथु के अधीन थी।।
अत: अपनी अपनी जाति के, मुखिया को वत्स बना करी। भिन्न भिन्न पात्रों में, सबने ही भिन्न पदार्थ दुहा।।

हे कुरुश्रेष्ठ श्री विदुर जी, इस विधि पृथु आदि ने। सब अन्नभोजियों ने मिलकर, विभिन्न दोहन पात्र लिये।।
भिन्न वत्सों को भेज कर, उस पृथ्वी का दोहन किया। निज विभिन्न अन्न रूपा, दूध को पृथ्वी से दोहा।।
इन सबसे महाराज पृथु, इस भाँति अति मुदित हुए। सर्वकामदे पृथ्वी प्रति, पुत्रीवत् स्नेह से आद्र हुए।।
धरा को फिर श्री पृथु ने, कन्या रूप में किया स्वीकार। सबको ही मनोवांछित फल दे, है सब पर उसका उपकार।।

फिर महाराज पृथु ने, अपने धनु: की नोक से। प्राय: सब पर्वत तोड़ के, धरातल यह समतल किये।।
पिता समान वह तो निज, प्रजा के पोषण में थे लगे। पालन पोषण की सारी, व्यवस्था के प्रबन्ध किये।।
समतल भूमि में जहाँ तहाँ, उन्होंने फिर विभाग किया। यथा योग्य प्रजावर्ग को, इस विधि निवास स्थान दिया।।

अनेकों गांव कसबे नगर, दुर्ग अहीरों की बस्ती। पशुओं के भी निवास स्थान, खानें और विविध दीं छावनी।।
कृषिकों को भी ग्राम दिये, बसाई पर्वत की घाटी। इस विध महाराज पृथु ने, प्रजा हित सारी व्यवस्था करी।।
उनसे पहले इस धरती पर, पुर ग्राम आदि विभाग न थे। सब लोक निज सुविधा से, जहाँ तहाँ बस जाते थे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री मनुक्षेत्र ब्रह्मावर्त में, है पूर्वमुखी जहाँ सरस्वती। शत अश्वमेध यज्ञों की, राजा पृथु ने दीक्षा ली।।
यह देख कर श्री इन्द्र के, मन में एक विचार उठा। इस विधि तो पृथु कर्म हों, श्रेष्ठ मेरे कर्म अपेक्षा।।

इसलिए यह यज्ञ महोत्सव, इन्द्र सहन न कर सके। अपने ही आन्तर में वह, इस डाह से जलने लगे।।

महाराज पृथु के यज्ञ में, अन्तरात्मा सब भूतों के। सर्वपूज्य श्री जगदीश्वर, सबके स्वामी श्री हरि ने।।
यज्ञेश्वर रूप से प्रकट हो, था साक्षात् दर्शन दिया। इस विधि श्री पृथु के यज्ञ को, आशीर्वाद अपना दिया।।
उनके साथ ही ब्रह्मा रुद्र, तथा लोकपाल भी पधारे थे। अपने अपने अनुचर ले, सब देव वहाँ थे आ पहुँचे।।
गन्धर्व मुनि और अप्सरागण, थे प्रभु की कीर्ति गा रहे। अपने अपने स्वरों में सब, प्रभु महिमा थे सुना रहे।।

सिद्ध विद्याधर दैत्य दानव, यक्ष सुनन्द नन्द आदि। प्रभु के मुख्य पार्षद जो, रहें सेवा उद्यत नित्य ही।।
वे कपिल नारद दत्तात्रेय, एवं सनकादि योगेश्वर। सबके सब ही पहुँचे वहाँ, इन सबके ही संग चलकर।।
उस यज्ञ में धरती ने, किया कामधेनु रूप धारण। सब यज्ञ सामग्री दे उसने, यजमान की करी वांछा पूर्ण।।

नदियाँ ईख और दाखादि, सब रस को बहाकर लातीं थीं। बड़े बड़े वृक्षों से भी, मधु की धारा टपकाती थीं।।
दूध दही घृत और अन्न, अर्पित सामग्री करते थे। इस विधि सब अंश प्रकृति के, सब भाँति सम्पन्न थे।।
सागर भरता था रत्नकोष, पर्वत उपहार ही देते थे। भक्ष्य भोज्य चोष्य और लेह्य, चतुर्विध अन्न वह देते थे।।
लोकपालों के सहित, सम्पूर्ण लोक भी दें उपहार। इस विधि उनके चरणों में, समर्पित था सारा संसार।।

राजा पृथु तो श्री हरि को ही, अपना स्वामी माने थे। उनकी कृपा से यज्ञानुष्ठान में, उनके अति उत्कर्ष हुए।।
पर यह सब ईष्या वश ही, देवेन्द्र न किसी विधि सह सके। इन सबमें कैसे विघ्न पड़े, ऐसी चेष्टा वह करते रहे।।
अन्तिम यज्ञ से श्री पृथु, प्रभु यज्ञपति थे आराध रहे। ईर्ष्यावश तब इन्द्र ने, छिपकर उनके अश्व हरे।।

अपनी रक्षा के लिये, पाखण्ड रूप था कवच रचा। जो अधर्म में धर्म का, भ्रम सा था उत्पन्न कर रहा।।
जिसका आश्रय लेकर के, पापी भी लगे धर्मात्मा। इस वेश में अश्व को हर कर, आकाश मार्ग से वह चला।।
तीव्र गति से इस विधि, इन्द्र था जब जा रहा। प्रभु अत्रि की तीक्ष्ण दृष्टि, से नहीं वह बच सका।।

उनका आदेश पा पृथु पुत्र, जो महारथी था स्वयं बड़ा। इन्द्र का वध करने के लिये, उसका पीछा करके दौड़ा।।
क्रोधित होकर वह बोला, ठहर ठहर तू खड़ा तो हो। इस विधि इस अश्व को, यज्ञ से न ले जा सको।।
जटाजूट था सीस पे, और तन पे भस्म रमाये था। ऐसे वेश में पृथु सुत ने, धर्म मूर्ति उसको समझा।।
सो बाण नहीं छोड़ा उसपे, धर्म जानी उसे मुक्त किया। सम्मुख इन्द्र को देख करी, भी न वह पहचान सका।।

इस विध इन्द्र पे वार किये, बिना ही जब वह लौट आया। महर्षि अत्रि ने पुनः, उसके वध का आदेश दिया।।
देवों में अधम इस इन्द्र ने, हे वत्स यज्ञ में विघ्न किया। मार ही डालो तुम इसे, उचित ही हो यह कर्म तेरा।।
अत्रि मुनि से पा उत्साह, पृथु कुमार भी क्रुद्ध हुआ। अति तीव्र गति से इन्द्र भी, था आकाश में जा रहा।।
इन्द्र के पीछे पृथु कुमार, फिर ऐसे ही जा झपटा। ज्यों आकाश में जाते हुए, रावण पर था जटायु पड़ा।।

जब स्वर्गपति इन्द्र ने, देखा उसको पीछे आते। उस वेश और अश्व को छोड़कर, वह वहीं पे अन्तर्धान हुए।।
वह वीरवर निज पशु को ले, यज्ञशाला में लौट आया। इस विधि निज पिता के, यज्ञ का रक्षण उसने किया।।
हे शक्तिशाली श्री विदुर जी, उसका यह कौतुक देखकर। उसका नाम विजिताश्व ही, महर्षियों ने फिर धर दिया।।

चषाल और यूप में यज्ञपशु, फिर से वह बान्धा गया। शक्तिशाली इन्द्र ने फिर, महाघोर अन्धकार किया।।
उस तिमिर में छिपकर वह, पुन: अश्व को ले गया। स्वर्ण श्रृंखला सहित ही, इन्द्र ने उसका हरण किया।।
तीव्र गति से जाते हुए, आकाश में उसको देख लिया। अत्रि मुनि ने इन्द्र की, माया को विदीर्ण किया।।
किन्तु कपाल खट्वाङ्ग को, धारण था उसने किया। यह देख पृथु पुत्र ने, नहीं उनका मार्ग अवरुद्ध किया।।

तब अत्रि ने राजपुत्र को, पुन: पुन: उकसा दिया। क्रोधित हो निज धनुष पर, उसने अपना बाण चढ़ा दिया।।
अपने पे लक्षित बाण देख, देवराज हुए अन्तर्धान। उस वेश और उस अश्व को त्यज, इन्द्र ने किया प्रस्थान।।
विजिताश्व निज अश्व को ले, लौटा पितु यज्ञशाला में। इन्द्र के निन्दित वेश को, अपनाया जो मन्द बुद्धि थे।।

अश्व हरण की इच्छा से, जो रूप इन्द्र ने थे धरे। पाप खण्ड थे वे सभी, पाखण्ड ही वे फिर कहलाये।।
खण्ड शब्द यहां चिन्ह का, ही वाचक हैं कह रहे। पाखण्ड का अर्थ है, पाप चिन्ह ही जो बने।।
इस विधि पृथु यज्ञ का, विध्वंस करने के लिये। यज्ञपशु को चुराते हुए, कई बार ग्रहण कर त्यागे थे।।
उन नग्न रक्ताम्बर और कापालिक, आदि सब आचारों में। जीव की बुद्धि मोहित हो, पाखण्ड पूर्ण व्यवहारों में।।

यह नास्तिक मत दर्शन में, तो दीखें अति सुन्दर। बड़ी बड़ी युक्ति देकर, करते हैं अपना पक्ष धर।।
पर वास्तव में यह सब तो, हैं उपधर्म मात्र ही। भ्रमवश मान धर्म इन्हें, करे जीव इनमें आसक्ति।।
इन्द्र की इस कुचाल का, पृथु को जब आभास हुआ। महापराक्रमी महाराज के, आन्तर में तब क्रोध उठा।।
उन्होंने अपना धनुष उठाकर, उसपे बाण चढ़ा दिया। क्रोधाग्नि में उनकी मानो, ज्यों इन्द्र भस्म हो जायेगा।।

उनको क्रोधावेश में, कोई देख नहीं सकता था उन्हें। ऋत्विजों ने देखा पृथु, हैं उद्यत इन्द्र हनन के लिये।।
तब सबने आगे बढ़कर, पृथु को रोकने हेतु कहा। हे राजन् बुद्धिमान् आप, इस पर भी ध्यान अब धरें जरा।।
आपने तो है दीक्षा ले रखी, यज्ञ का संकल्प किया। यज्ञ पशु को छोड़कर, नहीं उचित है वध किसी अन्य का।।

इन्द्र ने शत्रु बनकर के, तव यज्ञ भंग करना चाहा। सुयश देख आपकी ईर्ष्यावश, निस्तेज स्वत: वह हो रहा।।
अमोघ आवाहन मन्त्र कही, हम यहीं उसे बुला लेंगे। बलात्कार से अग्नि में, फिर उसका हवन ही कर डालेंगे।।
हे विदुर यजमान से जब, इस भाँति उन्होंने मन्त्रणा करी। याजकों ने फिर क्रोध से, इन्द्र की वहां आह्वान की।।
स्रुवा द्वारा वह सब मिली, आहुति डालना चाहते थे। जगत्पिता श्री ब्रह्मा जी, रोकने उन्हें वहाँ आ पहुँचे।।

ब्रह्मा बोले,
ब्रह्माजी ने उन्हें कहा, हे याजकों इन्द्र वध उचित नहीं। यज्ञ संज्ञक इन्द्र तो हैं, हरि की अपनी ही मूर्ति।।
यज्ञ द्वारा जिन देवों का, आराधन तुम हो कर रहे। इन्द्र के ही तो अंग हैं वे, कैसे इसे यज्ञ में मारोगे?
पृथु के यज्ञानुष्ठान में, विघ्न डालने के लिये। इन्द्र ने जो पाखण्ड किये, हैं सब ही धर्म विरोधी वे।।
इस बात को तुम जान लो, नहीं इससे अधिक विरोध करो। इन्द्र के द्वारा जानो अब, नहीं अधिक पाखण्ड प्रचार हो।।

परम यशस्वी पृथु के तुम, निन्यानवें यज्ञ ही रहने दो। फिर ब्रह्मा ने कहा हे राजन्, तुम स्वयं मोक्ष धर्म जानो।।
अत: आपके लिये यह सब, यज्ञानुष्ठान अनिवार्य न हों। यहीं पे ही अब यज्ञ यह, अपना तुम सम्पन्न करो।।

हे वत्स हो मंगल आपका, आप और इन्द्र दोनों ही। तनु हैं श्री भगवान के, जो हैं स्वयं पावनकीर्ति।।
अपने ही स्वरूप भूत, इन्द्र के प्रति आपको। क्रोध नहीं करना चाहिये, यह उचित न लगे आपको।।

चिन्ता न करें हे राजन् आप, कि यज्ञ नहीं निर्विघ्न हुआ। मेरी बात आदर से सुनों, और स्वीकार उसे करो जरा।।
जो जीव विधाता के द्वारा, बिगाड़े गए किसी काम को। स्वयं बचाने के लिये, विचार में निमग्न हो।।
उसका मन अत्यन्त ही, क्रोध से भर जाता है। ऐसा जीव फिर भयंकर, मोह में फंस जाता है।।

बस इस यज्ञ को बन्द करो, इसको यहीं पे रोक दें। इसके कारण ही इन्द्र के, द्वारा पाखण्ड चलाये गए।।
उनके कारण ही धर्म का, महा विनाश है हो रहा। क्योंकि देवों का दुराग्रह, भी भीषण ही है होता।।
जरा देखों तो यह इन्द्र जो, अश्व चुराए जा था रहा। आपके यज्ञ में जो महा, विघ्न था डालना चाह रहा।।
उसी के रचे हुए इन सब, मनभावन पाखण्डों की ओर। सब जनता आकर्षित हो, सत्य और धर्म को छोड़।।

आप तो हैं महाराज पृथु, प्रभु विष्णु के साक्षात् अंश। वेन के दुराचार से, जब लुप्त हुआ था धर्म वंश।।
उसके ही शरीर से, आपका रूप यह था प्रकटा। धर्म की रक्षा के लिये, था आपने वह अवतार लिया।।
अत: प्रजापालक पृथु आप, उद्देश्य को अपने याद करें। भृगु आदि विश्वरचयिता जो, मुनीवर संकल्प को पूर्ण करें।।
पाखण्ड के पथ के रूप में, इन्द्र की मोहमयी माया। अधर्म की ही जननी है, आप करें नष्ट इस माया को।।
मैत्रेय मुनि बोले,
जगत्गुरु श्री ब्रह्मा के, इस प्रकार समझाने से। परम पराक्रमी पृथु ने फिर, यज्ञ के आग्रह छोड़ दिये।।
निर्वैर थे वह स्वयं, इन्द्र प्रति कोई द्वेष न था। इन्द्र के साथ भी प्रीतिपूर्वक, सन्धि का प्रस्ताव किया।।
तत्पश्चात् यज्ञान्त स्नान, करके जब वह निवृत्त हुए। उनके यज्ञों से तृप्त हुए, देवों ने अभीष्ट उन्हें वर दिए।।

आदिराज श्री पृथु ने भी, अत्यन्त श्रद्धा हृदय में भर। उदार दक्षिणा देकर के, भरे ब्राह्मणों के सब घर।।
ब्राह्मणजन भी उनसे यह, सत्कार प्राप्त कर तुष्ट हुए। मुदित मनी हो उन सबने, अमोघ आशीर्वचन यह कहे।।
ऋत्विज बोले,
हे महाबाहो आपने जो, यज्ञ में आह्वान किया। जिन पितर देव और जीवों ने, यज्ञ में था भाग लिया।।
उन सभी का आपने, है बहुत सत्कार किया। विशाल दान और मान दे, उनका सम्मान बढ़ा दिया।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर महाराज पृथु के, किये नियानवें यज्ञों से। यज्ञेश्वर यज्ञभोक्ता विष्णु, भी अति सन्तुष्ट हुए।।
इन्द्र सहित उनका भी, यज्ञ में प्राकट्य हुआ। प्रभु विष्णु ने उपस्थित हो, फिर पृथु को यह वचन कहा।।
भगवान हरि बोले,
हे राजन् इन्द्र ने विघ्न किया, तब पावन संकल्प में। शत अश्वमेध संकल्प था, वह पूरे न होने दिये।।
अब यह राजन् द्वार पे तेरे, क्षमा मांगने आये हैं। इनको क्षमा ही तुम कर दो, इतना ही यह चाहते हैं।।
हे नरश्रेष्ठ जो साधु हों, और हों सद्बुद्धि सम्पन्न। वह अन्य से कभी न द्रोह करें, न ही रखें मन में कछु भ्रम।।
क्योंकि वह जानें एक सत्य, यह तन तो आत्मा है नहीं। क्यों द्वेष कमाएं इसके लिये, जिसका अस्तित्व ही है नहीं।।

यदि तुम जैसे ज्ञानी जन भी, मेरी माया से मोहित हो। तो जान लो ज्ञानी जन की सब, सेवा बस मात्र इक श्रम ही हो।।
ज्ञानवान जाने तन को, अविद्या वासना कर्म पुंज। आसक्त नहीं वह इसमें हो, जान के इसको क्षणभंगुर।।
इस विधि इस तन से ही, आसक्त नहीं जो कभी होता। जो भी इससे उत्पन्न हों, विवेकी कैसे वहाँ खोयेगा?
गृह द्वारा धन सुत आदि, में आसक्त वह कैसे होगा? अहं और ममत्व भाव से, वह ग्रसित फिर कैसे होगा?

आत्मा तो है स्वयं प्रकाश, शुद्ध और निर्गुण है सदा। सर्वव्यापी आवरण रहित, सब गुणों का आश्रय स्थान सदा।।
सबका साक्षी वह स्वयं है, और वह अनन्य है। आत्मा तो जान लो, शरीर से अति भिन्न हैं।।
देह में स्थित इस आत्मा को, जो जाने पुरुष देह के अतिरिक्त। प्रकृति में रहते हुए भी वह, रहे सदा गुणों से अलिप्त।।
क्योंकि वह तो मुझमें ही, स्थित सदैव रहता है। मुझ परमात्म से सदा, अभिन्न ही उसका नाता है।।

हे राज्न निष्काम कोई, निज वर्णाश्रम धर्मों द्वारा। श्रद्धापूर्वक जो नित्य ही, आराधना मेरी है करता।।
उसका चित्त शनैः शनैः, शुद्ध ही है हो जाता। मलिनता का इक कण भी, वहाँ नहीं फिर टिक पाता।।
चित्त शुद्ध जब हो जाये, न विषयों से सम्बन्ध रहे। तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति, उसको सहज ही स्वतः भये।।
तत्पश्चात् वह मेरी ही, समत्व स्थिति को प्राप्त करे। यह ही है परम शान्ति, इसे ब्रह्म हें कैवल्य कहें।।

जो पुरुष यह जान ले, साक्षी सबका है आत्मा। शरीर ज्ञान क्रिया मन का, साक्षीवत् जाने आत्मा।।
पर कूटस्थ वह सदा रहे, न इनसे कभी भी लिप्त हो। इस तथ्य को जो पहचान ले, कल्याणमय मोक्ष को प्राप्त वह हो।।

हे राजन् अब जान लो, आवागमन भी किसका हो। गुण प्रवाह चिदाभास भूत, इन्द्रियाभिमानी देव का हो।।
इन सबका समष्टि रूप, लिंग शरीर जो बन जाये। सबके साक्षी आत्मा से, उसका सम्बन्ध न हो पाये।।
दृढ़ अनुराग जो मुझसे करें, वह जानें इस सत्य को। विवेकी सम्पत्ति विपत्ति में, नहीं हर्ष शोक के वश में हों।।

इसलिये हे वीरवर, समत्व भाव को प्राप्त करो। उत्तम मध्यम अधम पुरुष को, एक ही दृष्टि से देखो।।
दुःख सुख को भी सम जानो, मन इन्द्रिय निज वश में करो। मुझ द्वारा ही दिए गए, हैं तुमको यह साधन जो।।
मन्त्री आदि सब राजकीय, पुरुषों की सहायता से। रक्षा करो सब लोकों की, जानो यह मेरा आदेश है।।

जान लो राजा का कल्याण, हो प्रजापालन में ही। प्रजा को पुण्य का छटा भाग, प्राप्त करे परलोक में भी।।
पर इसके अतिरिक्त जो, प्रजा की रक्षा नहीं करे। प्रजा को ही हेतु बना, कर वसूल जो करता रहे।।
उसका सारा पुण्य ही, प्रजा छीन ले जाती है। बदले में प्रजा के पापों से, झोली उसकी भर जाती है।।

यदि ऐसा विचार के तुम, लो ब्राह्मण जन की सम्मत्ति। पूर्वजों से प्राप्त धर्म को, बना लो अपना मुख्य रथी।।
कहीं पे भी आसक्त न हो, न्यायपूर्वक धरा पालन करो। तो राजन् प्रजाजन के, हृदय का प्रेम सहज पा लो।।
फिर कुछ ही दिनों में घर बैठे, सिद्धों के दर्शन पाओगे। सनकादि कुमारों का, साक्षात्कार कर जाओगे।।

तव गुण और स्वभाव ने, है मुझको भी वशीभूत किया। अतः जो भी इच्छा है तेरी, मुझसे माँग लो हे राजा।।
क्षमा आदि गुणों से रहित, गर यज्ञ तप और योग भी हो। हे राज्न उनके द्वारा भी, मुझको पाना सरल न हो।।
मेरा तो निवास जान, उसी हृदय में होता है। जिनके चित्त में बसा, समत्व भाव सदा होता है।।

मैत्रेय मुनि बोले,
जगद्गुरु श्री हरि ने जब, इस विधि उनसे बात कही। प्रभु आज्ञा उसे जान करी, जग पालक पृथु ने सीस धरी।।
अति लज्जित थे देवराज, उनके चरण में गिरना चाहते थे। राजा पृथु ने प्रेमपूर्वक, निज अलिंगन में लिये।।
मनोमालिन्य आन्तर से, पूर्ण ही निकाल दिया। द्वेष वहां कैसे टिक पाता, वहां श्री हरि का निवास था?

फिर विश्वात्मा भक्त वत्सल, श्री हरि का उन्होंने पूजन किया। क्षण क्षण में उमड़ भक्तिवश, श्री प्रभु चरणों को पकड़ लिया।।
हरि वहाँ से जाना चाहते थे, पर पृथु प्रति वात्सल्य था। उसने रोक लिया उनको, उनका चरण न उठ सका।।
निज कमलनयन से पृथु को, अपलक वह निहारे गए। उसके प्रेम में बन्धे हुए, प्रभु न वहाँ से जा सके।।

आदिराज महाराज पृथु के, नेत्रों में जल भर आया। सजल नयनों के कारण, उन प्रभु का दर्शन न पाया।।
वाणी भी प्रेम से थी, उनकी गद्गद् हो रही। इस कारण प्रभु के सम्मुख, वह कुछ भी न कह सकी।।
हृदय से किया आलिंगन बद्ध, और हाथ निज जोड़ दिये। स्तब्ध होई जड़वत् जानो, ज्यों के त्यों पृथु खड़े रहे।।

श्री हरि भी निज चरणों से, भूमि का स्पर्श थे किये खड़े। कर के अग्र भाग को, थे गरुड़ के उच्च कान्ध पे धरे।।
महाराज पृथु ने तब अपनी, आँखों के आँसू पोंछ लिये। अतृप्त नयन से प्रभु देख, महाराजा पृथु फिर यूं बोले।।
पृथु बोले,
हे मोक्षपति मेरे स्वामी हे, समर्थ हैं वर देने के लिये। ब्रह्मादि वरदे देव सब, आप से ही तो वर पायें।।
कोई भी विवेकी जीव, कस भोग पदार्थ माँग सके? भोग्य देहाभिमानियों के, अति न्यून हैं उसके लिये।।
नारकी जीव भी ऐसे सब, भोगों को तो पा सकें। अत: तुच्छ इन विषयों की, माँग आपसे क्यों करें?

महापुरुषों का हृदय कमल, चरणामृत से भरा रहता है। उनकी वाणी से पल पल, वह मरकन्द ही बहता है।।
जहां पे इस सुधा रस को, निरन्तर ही मैं न पाऊँ। ऐसे मोक्ष पद को भी, हे हरि कदाचित् नही चाहूँ।।
जहाँ आपकी पुण्य कीर्ति, कथा श्रवण ही नहीं मिलता। ऐसा मोक्ष पद हे प्रभु, है मेरे किस काम का?
मेरी तो बस एक ही, इच्छा है प्रभु आपसे। दस सहस्त्र मुझे कान दें, आपकी लीला श्रवण जो कर सकें।।

हे पावन कीर्ति हरि सुनें, तव चरण कमल से अमृत ले। महापुरुषों के मुख कमल से, अमृत कण जो बह निकलें।।
महा पावनी शक्ति वहां, निहित रूप में रहती है। हम भूले भ्रष्ट योगियों को, जागृत पुन: तत्त्व में करती है।।
अत: एवं श्री हरि सुनें, नहीं दूजा वर कोई चाहिये। बस नित्य ही निज कथा रस का, मुझे अमृत पान कराइए।।

सत्संगत में संयोग से, सुयश गर आपका सुन पायें। कोई पशुवत् बुद्धि वाला पुरुष, चाहे उससे तृप्ति पाये।।
गुण ग्राही तो किसी विधि नहीं, कभी छोड़ उसे पाता है। सर्व पुरुषार्थ सिद्धि का, यह ही तो इक दाता है।।
श्री लक्ष्मी जी भी नित्य ही, तव सुयश को सुनना चाहती हैं। नित्य निरन्तर श्रवण कर, वह तृप्त नहीं हो पाती हैं।।

श्री प्रिया जी के समान ही मैं, उत्सुक हूँ सेवा के लिये। सर्वगुणों के धाम आप, चित्त एकाग्र सेवा में रहे।।
किन्तु प्रभु कहीं ऐसा न हो, इक स्वामी की सेवा के लिये। दोनों में स्पर्धा हो उत्पन्न, और परस्पर कलह छिड़े।।
जगत्जननी श्री लक्ष्मी प्रति, सम्भावना है विरोध की। क्योंकि अनुराग है उनका जहाँ, लालायित सेवा को मैं भी।।

पर दीन वत्सल आप तो, सदा दया करें अति दीनों पर। उनके क्षुद्र कर्मों को भी, मानें प्रभु अधिक ही कर।।
सो आशा करूँ मैं आपसे, होंगे आप मेरे पक्षधर। इस कलह में हे प्रभु, होंगे आप मेरी ही तरफ।।
आत्म राम हैं आप तो, निज स्वरूप में रमण करें। लक्ष्मी जी के वैभव से, आपको क्या कभी काम रहे?

इस कारण ही महात्मा जन, रहते सदा निष्काम जो। ज्ञान प्राप्ति होने पर, रहते हैं भजन में निमग्न वो।।
माया कार्य अहमादि का, आपमें है सर्वथा अभाव। आपके भक्तों पर भी प्रभु, नहीं रहता उसका प्रभाव।।
श्री चरणों का चिन्तन बस, उनका एकमात्र प्रयोजन है। सत् पुरुषों के जीवन का, मैं मानूं यही इक योजन है।।

मैं श्री प्रभु निष्काम भाव से, भजन आपका करता हूँ। वर मांगो जो कहा प्रभु, इस वचन से आपके डरता हूँ।।
आपकी इस वाणी को मैं, मोह रूप ही जाने हूँ। यह तो क्या मैं वेद वाणी, को भी जग भ्रामक माने हूँ।।
वेदवाणी ने ही तो सारे, जगत् को बान्ध के रखा है। उससे बन्धा मोहित जीव, सकाम कर्म ही करता है।।

हे प्रभु आपकी माया ने, विमुख किया आपसे। वास्तविक स्वरूप निज भूल कर, अज्ञान में जीव हैं भ्रमित हुए।।
स्वरूप भूल के अन्य की, वह वांछा करता रहता है। पुत्र द्वारा गृहादि में, नित्य आसक्त वह रहता है।।
फिर भी पिता ज्यों पुत्र की, याचना की न प्रतीक्षा करे। उसके बिन मांगे भी वह, कल्याण हेतु उपचार करे।।
उसी विधि प्रभु आप भी, करुणा दृष्टि हम पर करें। हमरी इच्छा न देखें अब, बस हित अर्थ ही यत्न करें।।

आदि राज श्री पृथु ने जब, इस विधि स्तुति करी हरि की। सर्वसाक्षी श्री हरि ने, तब उसे यह बात कही।।
हे राजन् दूँ यह वर तुमको, मुझमें तेरी भक्ति बनी रहे। यह बड़भाग्य ही है तेरा, तेरा चित्त अनुरक्त जो है मुझें।।
इस विधि से पुरुष मेरी, माया को सहज तर जाते हैं। जिसको छोड़ना योगी भी, अति दुस्तर ही पाते हैं।।
सावधानी से हे राजा, मेरी आज्ञा पालन करते रहो। जो आज्ञा पालन करे मेरा, सर्वत्र ही उसका मंगल हो।।

हे विदुर इस विधि प्रभु ने, मान किया पृथु वचनों का। सारगर्भित उनके वचन को, प्रभु ने आदर से सुना।।
फिर पृथु ने की उनकी पूजा, प्रभु भी तब जाने लगे। पृथु पे सब विधि कृपा करी, वह अपने धाम सिधाने लगे।।

वहाँ पे आये थे जो देव, पितर गन्धर्व सिद्ध ऋषि। चारण नाग और किन्नर, अप्सरा मनुष्य और पक्षी।।
अनेक भाँति के प्राणी वहां, और प्रभु के पार्षद आये थे। भगवद् बुद्धि से पृथु ने, उन सबके पूजन किये।।
मृदु वाणी और द्रव्य से, कर बद्ध हो पूजन किया। तत्पश्चात् उन सबने, निज स्थानों को प्रस्थान किया।।

प्रभु अच्युत ने राजा पृथु का, चित्त मानो चुरा लिया। उनके पुरोहित जन पर भी, प्रभु का ऐसा ही प्रभाव था।।
श्री हरि भी गरुड़ पे चढ़, अपने धाम को चले गए। उनकी रूप माधुरी से, सब जन वहां के थे छके।।
निज स्वरूप दिखाकर के, प्रभु जो अन्तर्धान हुए। अव्यक्त प्रभु को नमन करी, पृथु भी अपने नगर लौटे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर उस समय पृथु नगर, था विविध भाँति सजा। मोतिन् लड़ियां सर्वत्र बनीं, फूलमालाओं की शोभा।।
स्वर्णमय तोरण रंग बिरंगे, वस्त्र भी थे वहाँ सजे। वायु मण्डल भी सुगन्धित थे, धूपों की मधु सुरभि से।।
गलियां चौक और राजपथ, थे सिंचित चन्दन अरगज से। पुष्प अक्षत फल आदि, यवांकुर खील भी सज थे रहे।।

दीपक आदि सब मांगलिक, द्रव्य वहाँ थे सजे हुए। इस विधि पूर्ण जगत की, शोभा वह थे बढ़ा रहे।।

स्थान स्थान पर फल फूलों के, गुलदस्ते थे सजे हुए। कदली स्तम्भ और सुपारी के, वृक्ष भी अति सुन्दर दीखें।।
चहुँ ओर से इनको घेरे थीं, आम्रादि की बन्धनवार। इन वृक्षों के नव पल्लवों ने, मानो वहाँ ला दी नव बहार।।
महाराजा ने जब अपने, नगर में प्रवेश किया। सब प्रजाजन ने उनका, उत्साहित हो स्वागत किया।।
दीपक उपहार और विविध, मंगलमय सामग्री ली। सुन्दर कर्णकुण्डल शोभित, कन्याओं ने अगवानी की।।

शंख और दुदुम्भी आदि, बाजे वहाँ बजने लगे। ऋतिवज जन सब मिल कर, वेद ध्वनि करने लगे।।
बन्दीजन ने भी वहाँ, स्तुति गान आरम्भ किया। यह सब देख और सुनकर भी, नहीं अहं भाव पृथु में उठा।।
इस विधि वीरवर राजा ने, महल में अपने प्रवेश किया। उनके स्वागत में जिसका, हर कोना ही था सजा।।

मार्ग में भी जहाँ तहाँ, पुरवासी और देशवासी। अभिनन्दन थे कर रहे, उनका सब जन मिलकर ही।।
परम यशस्वी राजा ने, भी उनको सन्तुष्ट किया। मुदितमनी होकर उसने, सबको मनोवांछित फल दिया।।
महापुरुष महाराज पृथु, थे सबके ही पूजनीय। अनेक उदार कर्म करके, पृथ्वी पर उन्होने शासन किया।।

निज यश का विस्तार कर, अन्त में पाया परम पद। भू पर अपनी अवधि बिता, वह तो गए निज स्वामी घर।।
सूतजी बोले,
इस विधि मैत्रेय मुख से, महाराज पृथु का यश सुना। गुणवानों से प्रशंसित था, विविध गुणों से वह सना।।
हे शौनक जब विदुर ने, इस गुणगान का श्रवण किया। उनका अभिनन्दन करके, विदुर ने फिर उनसे कहा।।
विदुर बोले,
हे द्विजवर ब्राह्मणों ने, श्री पृथु का अभिषेक किया। समस्त देवों ने भी मिल, उनको विविध उपहार दिया।।
निज भुजाओं में पृथु ने, वैष्णव तेज धारण किया। और उनसे फिर पृथु ने, पृथ्वी का दोहन किया।।
उनके पराक्रम से उच्छिष्ट, जो बचे हैं विषय भोग। लोकपाल और राजाजन, आज भी करें उनका उपभोग।।
कौन विवेकी होगा भला, उनकी कीर्ति न सुनना चाहे? अत: आप तनिक कुछ और मुझे, उनका पावन चरित सुना जायें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
साधु श्रेष्ठ हे विदुर जो, गंगा यमुना के मध्य देश। प्रारब्ध दत्त ही भोगों को, महाराज पृथु थे रहे भोग।।
ब्राह्मण जन और श्री हरि के, वैष्णव भक्तों के अतिरिक्त। था अबाध शासन उनका, जो भी थे बसे सातों द्वीप।।
महाराजा पृथु ने एकबार, महासत्र की दीक्षा ली। सब देव ब्रह्मर्षि राजर्षि, की थी विस्तृत सभा लगी।।
उस सभा में राजा ने, यथायोग्य अतिथि सत्कार किया। नक्षत्रों में ज्यों चन्द्र हों, थी वैसी बनकर उनकी शोभा।।

बहुत ऊंचा था तन उनका, भुजायें भारी और विशाल थीं। था गौर वर्ण रक्तिम नयन, कमल समान थी उनकी छवि।।
मनहर मुख सुन्दर नासिका, उनकी सौम्य स्वरूप थी। ऊंचे कान्धे मुख पे थी स्मित, दाँतों की मुक्तावली सजी।।
पृष्ठ भाग उनका स्थूल था, वक्ष:स्थल था अति विशाल। सुडौल उदर में बल थे पड़े, सुन्दर था अश्वत्थ पत्र समान।।
गम्भीर थी नाभि भंवर सम, शरीर था उनका तेजवान्। पांवों के पंजे थे उठे, जंघा थी स्वर्ण सम दीप्तिमान्।।

थे श्यामल केश उनके स्निग्ध, और थे अति सूक्ष्म वे। रेखांकित शंख सी थी मूर्धा, अनेकों उतार चढ़ाव बने।।

उत्तम और बहुमूल्य वह, अधोवस्त्र थे पहने हुए। उससे ही मिलता हुआ, था अंग वस्त्र कान्धे पे धरे।।

समस्त आभूषण तो उन्होने, निज तन से थे उतार दिये। दीक्षित होने के लिये, वहां पे थे यह नियम बने।।
इसीसे अंग प्रत्यंग की, थी शोभा न्यारी बनी। स्वभाविक निज स्वरूप में, स्पष्ट थी वह झलक रही।।
तन पर था मृगचर्म श्याम, हाथों में थे वह कुशा लिये। उनके तन की कान्ति में, थे इस विध चारों चाँद लगे।।
नित्य कर्म सारे अपने, थे विधिवत् सम्पन्न किये। इस विधि महाराज पृथु, सत्र में थे दीक्षित हुए।।

सारी सभा को पृथु ने मानो, हर्ष से परिपूर्ण किया। निज शीतल स्नेहमय नेत्रों से, चहुँ ओर उन्होंने देखा।।
फिर महाराजा पृथु ने, सम्भाषण आरम्भ किया। सभी सभासदों को उन्होंने, फिर यह मंगल वचन कहा।।
उनका भाषण अति सुन्दर था, विचित्र पदों से था वह युक्त। मधुर गम्भीर नि:शंक था, और था वह अति स्पष्ट।।
ऐसा लगता था उस समय, उपकार वह सबका कर थे रहे। ज्यों अपने अनुभव के ही, अनुवाद हों मानो उन्होने किये।।
पृथु बोले,
कल्याण हो आपका सज्जनों, आप यहाँ जो पधारे हैं। कृपया ध्यान दें प्रार्थना पर, जो उद्‌गार हमारे हैं।।
जिज्ञासु पुरुषों के लिये, है यह ही बस उचित कर्म। सन्त समाज में बैठ कर, करें निज निश्चय निवेदन।।
इस लोक में मुझको जो, राजा है बनाया गया। प्रबन्धन प्रजा आजीविका का, प्रजा रक्षण सौभाग्य मिला।।
उनको मर्यादा में उनकी, सर्वविधि मैं रख पाऊँ। और प्रजाजन पर शासन, धर्म पूर्वक कर पाऊँ।।

इसका यथावत पालन ही, गर धर्म जान के मैंने किया। तब उन धर्ममय लोकों पर, उचित ही हो अधिकार मेरा।।
वे सभी मनोरथ पूर्ण करें, ऐसा वेदवादी मानें। सब कर्म के साक्षी श्री हरि, प्रसन्न हों गर तभी वह दें।।
जो राजा कभी प्रजा को, धर्म की शिक्षा नाहीं दे। केवल जो प्रजाजन से, कर बटोरता ही रहे।।
वह तो केवल प्रजा के, पाप का भागी होता है। और वैभव ऐश्वर्य से निज, हाथ ही वह धोता है।।

अत: प्रिय प्रजाजन अपने इस, राजा का हित हिय में धर। परलोक में उसकी सद्‌गति हो, इतनी कृपा अब आप दें कर।।
परस्पर दोष दृष्टि त्याग, हृदय से प्रभु को याद करें। निज कर्त्तव्य का आप सब, सर्वदा ही पालन करें।।
आपके भी सर्व स्वार्थ, इस विधि से ही सधें। और मुझपर भी बना, आपका यह अनुग्रह रहे।।

हे शुद्ध चित्त देवता गण, पितर और महर्षि जन। अनुमोदन करें आप भी, विनम्र याचना का इस मम।।
क्योंकि कोई भी कर्म हो, मृत्यु उपरान्त जो फल उसका। कर्ता उपदेष्टा समर्थक को, समान रूप से है मिलता।।
किन्हीं श्रेष्ठ महानुभावों का, माननीय मत सब जन जानें। सब कर्मों के फल प्रदाता, यज्ञपति हरि को मानें।।
इह लोक और परलोक में, हों उनके तन अति तेजोमय। उनके तेज की शक्ति से, हो सर्व लोक ही द्युतिमय।।

उत्तानपाद धरती पति ध्रुव, श्री प्रियव्रत और पितामह अंग। ब्रह्मा शिव प्रह्लाद बलि, और अन्य भी इस कोटि के जन।।
उनके अनुसार कहें, धर्म अर्थ काम और मोक्ष के। चतुर्वर्ग और स्वाधीन नियामक, स्वर्ग और अपवर्ग के।।
कर्म फल प्रदाता रूप, प्रभु विष्णु ही एक कहें। इस विषय में तो बस मृत्यु के, दोहते श्री वेन के।।
और धर्म विमूढ़ हुए, कुछ अन्य शोचनीय जन के। ऐसे कुछेक मतभेद को, विवेकी जन न महत्व दें।।

जिनके श्री चरण कमल की, सेवा की अनबुझ लालसा। उनके चरण नख से निकली, गंगा सम है पावन सरिता।।
संसार ताप से जीव जो, सन्तप्त रहते हैं सदा। उनके संचित मनोमल को, ले जाये तत्काल बहा।।
जिनके चरण के आश्रित हो, मनोमल सब धुल जाता है। वैराग्य साक्षात्कार से, दु:ख चक्र से मुक्ति पाता है।।
जिनके चरण कमल ही सब, मनोकामना पूर्ण करें। उन श्री हरि को आप सब, अपने कर्मों राही भजें।।
निज आजीविका हेतु आप, जिस भी धर्म को हैं पाये। वर्णाश्रमोचित जो भी कर्म, आपके भाग्य में हैं आये।।
मानसिक वाचक और निज, तनोक्रिया के द्वारा भजें। हृदय में किसी प्रकार का, कोई कपट कभी न रखें।।
और यह निश्चय मन में करें, फल निश्चित ही पायेंगे। निज अधिकार और योग्यता के, अनुसार ही फल घर आयेंगे।।

श्री हरि तो स्वरूप से, हैं विशुद्ध विज्ञान घन। समस्त विशेषण से रहित, अपने में आप हैं वह सम्पन्न।।
पर इस कर्म मार्ग में, अनेक भाँति की कही क्रिया। जौ चावल आदि विविध द्रव्य, शुक्लादि गुण अवघात क्रिया।।
अर्थ आशय तथा लिंग, और विविध मन्त्रों के द्वारा। योष्टोम आदि नामों से, सम्पन्न हैं होते सदा।।
अनेक विशेषण से जो युक्त, यज्ञ रूप में प्रकट हों। अव्यक्त हैं जो सदा निर्विकार, यज्ञ बन प्रकाशित हों।।

विविध आकार के काष्ट में, ज्यों एक ही अग्न प्रकाशित हो। आकार के अनुरूप ही, उस अग्नि का आभास हो।।
उसी विधि सर्वव्यापी प्रभु, हैं परम आनन्द स्वरूप ही। प्रकृति काल और वासना के, अदृष्ट से जो है तन बनी।।
उससे विषयाकार हुई, उस बुद्धि में स्थित होकर। यज्ञ यागादि फल स्वरूप, अनेक रूप लें मानो धर।।

धरा पर मेरे प्रजाजन जो, यज्ञ के अधीश्वर का। इकनिष्ठ हों पूजन करें, निज धर्मों के द्वारा हरि का।।
वे जन मुझपर करुणा कर, अत्यन्त अनुग्रह करते हैं। उनकी कृपा पा मुझसे जन, श्री हरि चरण में रहते हैं।।
सहिष्णुता तप और ज्ञान तो, विशेष विभूतियाँ हैं हरि की। वैष्णव और द्विज वंश तो, उज्ज्वल हैं इनके कारण ही।।
धनैश्वर्य समृद्धि आदि से, राजकुल का तेज जो हो। प्रभाव उनपर न डाले, शास्त्र का यही विधान हो।।

ब्रह्मा आदि महापुरुषों में, हैं सबसे ही जो अग्रणी। ब्राह्मण भक्त पुराण पुरुष, हरि ने भी इनकी वन्दना की।।
इस चरण वन्दना से उन्होने, प्राप्त अविचल लक्ष्मी की। जगत् को पावन करनेवाली, कीर्ति भी उन्होंने पा ली।।
आप लोग भी तो श्री हरि के, धर्म के पालन कर्ता हैं। लोक संगह हित जो वह करें, उसके ही अनुकर्ता हैं।।
सर्व अन्तर्यामी प्रभु, सन्तुष्ट हों विप्र की सेवा से। अत: आप को विनम्रता से, द्विज सेवा करनी चाहिये।।

इनकी नित्य ही सेवा से, चित्त शुद्ध शीघ्र हो जाता है। स्वत: जीव फिर परम् शान्ति, रूप मोक्ष को पाता है।।
अत: इस लोक में ब्राह्मण ही, देवों का मुख बनकर के। साकार होकर के लो, हविष्य भोग को ग्रहण करें।।

उपनिषदों के ज्ञानमय, वचन खरे उतरें जिन पर। श्री हरि ही ग्रहण करें हवि को, इन्द्रादि देव स्वयं बनकर।।
तत्त्वज्ञानियों के द्वारा, ब्राह्मण मुख में श्रद्धापूर्ण। हवि पदार्थ को स्वयं, उत्साह से करें वह ज्यों ग्रहण।।
वैसे वह चेतना शून्य, अग्नि में डाले गये। विविध द्रव्य को श्री हरि, स्वयं कभी न ग्रहण करें।।

जिस विधि स्वच्छ दर्पण में, प्रतिबिम्ब भासित होता है। उसी विधि जिससे इस सब, प्रपंच का ज्ञान ही होता है।।
उस शुद्ध सनातन ब्रह्म को, परमार्थ की उपलब्धि अर्थ। श्रद्धा तप सत् आचरण से, जीवन में जो लेते हैं भज।।

स्वाध्याय विरोधी वार्तालाप, का त्याग जो हैं करते। संयम और समाधि को, अभ्यास से धारण जो करते।।
उन ब्राह्मण जन के चरण कमल, की धूलि अपने मुकट धरूँ। आयु पर्यन्त उनकी चरण रज, मैं सदा निज सीस धरूँ।।
क्योंकि सदा उसे सीस चढ़ा, सब पाप नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण गुण उसकी, सेवा तत्पर हो जाते हैं।।

उस सुशील गुणवान कृतज्ञ, और गुरुजन की सेवा में रत। पुरुष के चरणों में सब सम्पद्, सदा ही रहती है अर्पित।।
अत: मेरी तो एक ही, अभिलाषा अब है बनी। द्विजकुल गोवंश भक्तों सहित, प्रसन्न हों मुझपर श्री हरि।।
मैत्रेय मुनि बोले,
महाराज पृथु का यह विनय से युक्त सम्भाषण सुन। देव पितर ब्राह्मण साधु, सब ही हुए अति प्रसन्न।।
साधु साधु कह कर के, प्रशंसा उनकी करने लगे। उनकी कीर्ति के गान से, थे भूमि नभ सब गूंज उठे।।
प्रजा बोली,
सबने मिलकर यह कहा, पुत्र के शुभ कर्मों द्वारा। दुष्पिता भी पुण्यलोकों को, ही प्राप्त है कर सकता।।
श्रुति का कथन यह, सर्वथा ही यथार्थ है। ब्राह्मणों से शापित था वेन, हुआ आज कृतार्थ है।।
पृथु के पुण्य बल ने, नरक से है निस्तार किया। अपने शुभ कर्मों से इसने, अपने पिता को तार दिया।।

इसी विधि हिरण्यकशिपु ने, थी निन्दा की भगवान की। निज दुष्कर्मों के कारण, नारकी गति उसकी होती।।
पर निज पुत्र प्रह्लाद के, प्रभाव से वह बच गया। नरक योनि से इस कारण, ही तो था वह बच सका।।
हे वीरवर श्री पृथु जी, आप तो पृथ्वी के हैं पिता। सर्वलोक स्वामी हरि में, अविचल आपकी भक्ति सदा।।
इसलिये अनन्त काल तक, हे स्वामी आप जीवित रहें। अपने पुण्य कर्मों से, कल्याण सदा सबका करें।।

अति पावन है हे राजन्, सुयश कीर्तिमय आपका। उदार चित्त से आपने, प्रचार सदा हरि कथाका किया।।
परम सौभाग्य हमारा है, स्वामी रूप में आप मिले। आपके राज्य में हम सब तो, निज को प्रभु राज्य में ही मानें।।
हे निज आश्रितों के स्वामी, उपदेश दिया जो आपने। इस श्रेष्ठ उपदेश से, नहीं हुआ आश्चर्य हमें।।
क्योंकि अपनी प्रजा के लिये, करुणामय स्नेह यह बरसाना। महापुरुषों का स्वभाव ही है, कल्याण सदा करते जाना।।

प्रारब्ध से विवेकहीन, हम जग आरण्य में थे भटके। आपने यह उपदेश दे, अज्ञान तिमिर से पार किये।।
शुद्ध सत्वमय परम पुरुष, हे महाराजा हैं आप स्वयं। ब्राह्मण जाति में प्रविष्ट हो, करें क्षत्रियों की रक्षा स्वयं।।
फिर क्षत्रियों में भी प्रविष्ट हो, ब्राह्मण जन की रक्षा करें। दोनों में ही प्रतिष्ठित हो, सब जग की रक्षा आप करें।।
नमस्कार हमारा प्रभु, शत शत कोटि हो नमस्कार। महाराज पृथु के रूप में, हो श्री नारायण को स्वीकार।।
मैत्रेय मुनि बोले,
परम पराक्रमी पृथ्वीपालक, पृथु से प्रार्थना कर थे रहे। प्रजाजन सब मिल कर, उनका गुणगान थे कर रहे।।
उसी समय उस स्थान पर, चार तेजस्वी मुनि आये। सूर्य समान उन सबके, चेहरे थे बहुत चमक लिये।।
राजा और उनके अनुचरों ने, उन्हें देखा और पहचान लिया। निज दिव्य कान्ति से सिद्धों ने, लोकों को पाप विमुक्त किया।।
आकाश से अवतीर्ण हो, सिद्धेश्वर थे वह आ रहे। मानों सूर्य स्वयं प्रकाश, बन धारा पे छा रहे।।

विषयी जीव ज्यों नित्य ही, विषय ओर दौड़ा जाये। सनकादि के दर्शन पा, राजा के प्राण उस ओर चले।।

निज अनुयायी सदस्यों के, संग राजा फिर हुए खड़े। मानों उन्हें रोकने को, ही हों उनके प्राण अड़े।।
मुनिजन ने अर्ध्य स्वीकार किया, और आसन पर बैठ गये। शिष्टों में सर्वश्रेष्ठ पृथु, प्रभावित उनके गौरव से हुए।।
विनयवश गर्दन झुका, विधिवत् उनकी पूजा की। इस विधि पृथु ने तब, अगवानी करी मुनिजन की।।

फिर चरणोदक को उनके, सीस पे अपने छिड़क लिया। शिष्ट जन उचित आचार का, तब पालन आदर किया।।
ऐसा करके दिखाया यह, उचित जो सत्पुरुषों के लिये। ऐसा ही शिष्टाचार, व्यवहार में होना चाहिये।।

सनकादि मुनीश्वर तो, हैं प्रभु शंकर के भी अग्रज। सोने के सिंहासन पर, उनको दिया सुशोभित कर।।
आसन पर बैठै हुए, वह इस विधि थे सोह रहे। जैसे अपने स्थानों पर, अग्नि देव हों बैठे हुए।।
महाराज पृथु ने श्रद्धापूर्वक, संयम से उनको कहा। प्रेम पूर्ण वचनों से, फिर वार्तालाप आरम्भ हुआ।।

पृथु बोले,
योगिन के लिये भी अति दुर्लभ, हैं दर्शन मुनिवर आपके। मुझे स्वत: ही हैं दर्शन दिये, हैं कौन पुण्य मेरे जगे?
जिसपे ब्राह्मण और उनके संग, विष्णु शंकर भी प्रसन्न हों। इह लोक और परलोक में, क्या उनके लिये कुछ दुर्लभ हो?
हैं सर्वव्याप्त महतत्त्वादि, इस दृश्य प्रपंच के कारण। किन्तु सर्वव्यापी आत्मा को, नहीं इद्रियां कर पायें धारण।।
इसी विधि आप भी, सब लोकों में विचरण करें। तो भी अनाधिकारी लोग, आपको नहीं देख सकें।।

आप समान पूज्य पुरुष, जिस भी घर में जा पहुँचें। वहाँ का जल तृण और धरा, या अन्य पदार्थ ग्रहण करें।।
गृहस्वामी सेवक आदि से, गर कुछ भी वह स्वीकार करें। धनहीन चाहे वह हो, पर धन्य धन्य सब उसको कहें।।
भगवद्भक्तों के श्री चरण, जिस घर में कभी नहीं पड़े। ऐसा घर सम्पन्नता से, चाहे हर पल भरा रहे।।
सब ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण घर, है ऐसे ही वृक्ष समान। अति सुन्दर फल तो लदे वहाँ, पर घेरा सर्पों का महान्।।

स्वागत ही मुनिजन आपका, मुमुक्षु जन के अग्रणी। बाल्यावस्था से ही आपने, इस पथ की अनुसरण करी।।
एकाग्रचित्त हो ब्रह्मचर्यादि, महान् व्रत अनुष्ठान किया। श्रद्धापूर्वक ही हे मुनिजन, आपका सदा व्यवहार रहा।।
निज कर्मों के अनुरूप हम, विपत्ति के इस क्षेत्र रूप। भव सागर में पड़े हुए, भोगों को ही जाने स्वरूप।।
क्या हम जैसे लोगों का, उद्धार कभी भी सम्भव हो? कोई उपाय कहीं है क्या, निस्तार हमारा जिससे हो?

क्या पूछें कुशल क्षेम हम, आप तो हैं नित्य आत्म राम। कुशल अकुशल की वृत्तियों से, नहीं आपको कोई काम।।
परम सुहृद् हैं उनके आप, संसार अनल में तप्त जो। अत: आपमें ही विश्वास धर, आपसे ही यह प्रश्न हो।।
इस संसार में जीव का, कल्याण किस विधि हो पाये? कोई सुगम साधन कहें आप, जिससे भवसागर तर जायें।।

है निश्चित ही यह प्रभु, जो आत्मवान में आत्मा बन। स्वयं प्रकाशित होते हैं, उपासक हृदय में उपास्य बन।।
वे अजम प्रभु नारायण ही, भक्तों पे कृपा करने के लिये। आप समान सिद्ध बनकर, इस धरा पर हैं विचर रहे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
महाराज पृथु के युक्तियुक्त, गम्भीर परिमित मधुर वचन। सुनकर मुनि सनत्कुमार, तो हो गए अति प्रसन्न।।
सस्मित राजा पृथु से फिर, सनत्कुमार यह कहने लगे। अपनी मधुर वाणी से, वह राजा पृथु से यूं बोले।।

सनत्कुमार बोले,
सर्वविज्ञ हो राजन् तुम, फिर भी जग कल्याण को। बहुत श्रेष्ठ ही प्रश्न आज, हे राजन् तुम पूछे हो।।
सत्य कहें साधु पुरुषों की, बुद्धि ऐसी होती है। निज अवस्था को भूली, वह सर्व कल्याण में खोती है।।
श्रोता वक्ता दोनों के लिये, है श्रेष्ठ मिलन सत्पुरुषों का। क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर से, सबका कल्याण ही है होता।।

प्रभु मधुसूदन के चरण कमल, गुणगान में तव अविचल प्रीति। बहुत कठिन है सबके लिये, ऐसी सद्भावना की प्राप्ति।।
यदि कहीं यह प्राप्त हो, तो वासना सर्वथा नष्ट करे। जो किसी अन्य उपाय से, सुगमता से न छूट सके।।
भाँति भाँति के विचार, शास्त्र कहें कल्याण हेतु। आत्म से भिन्न देहादि प्रति, वैराग्य ही परं कल्याण हेतु।।
निज आत्म स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में, दृढ़ अनुराग ही चाहिये। यह ही तो जीव कल्याण का, निश्चित साधन कहे जाइए।।
शास्त्र और गुरु वचन में, कहें गर विश्वास रहे। भागवत् धर्मों अनुकूल ही, जीवन में गर आचरण करे।।

तत्त्व की जिज्ञासा हो, और ज्ञान योग्य में निष्ठा हो। श्री हरि की उपासना हो, उनकी कथा श्रवण में प्रीति हो।।
धन और इन्द्रिय भोगों में, जो जन नित्य आसक्त रहें। उनकी गोष्ठी में साधक, अपनी प्रीति न रखे।।
उन्हें प्रिय जो पदार्थ हैं, आसक्ति पूर्ण न संग्रह हो। भवगत्गुण अमृत पान कर, निज आत्म में सन्तुष्टि हो।।
एकान्त सेवी वह भए, नहीं कष्ट दे किसी जीव को। निवृत्ति परायण हो कर, आत्म हित अनुसन्धान हो।।
श्री हरि के पावन चरित रूप, अमृत का आस्वादन हो। निष्काम भाव से यम नियम, आदि का गर पालन हो।।
किसी की निन्दा नहीं करे, न ही योग क्षेम के यत्न करे। शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को, सहज में ही वह सहन करे।।
भक्त जनों के कर्णप्रिय, श्री हरि के गुण का गान करे। और नित्य वर्धित भक्ति से, स्वत: वैराग्य ही वह पा ले।।
तो कार्य कारण सम्पूर्ण जड़, प्रपंच स्वत: छुट जाता है। आत्म रूप निर्गुण ब्रह्म में, अनायास आसक्त हो जाता है।।

जब परं ब्रह्म में जीव की, प्रीति सुदृढ़ ही हो जाये। फिर वह जीव सद्गुरु की, शरण स्वत: ही प्राप्त करे।।
ज्ञान विज्ञान के वेग से फिर, चित्त यह वासना शून्य हो। अविद्यादि क्लेशों से, स्वत: ही फिर वह मुक्त हो।।
अहंकारमय लिंग शरीर को, भस्म फिर वह स्वयं करे। ज्यों काष्ट से प्रकट हुई अग्नि, काष्ट को ही भस्म करे।।

इसी विधि लिंग देह, का नाश जब हो जाये। कर्तृत्वादि गुणों से उसके, स्वत: मुक्त वह हो जाये।।
ज्यों स्वप्नावस्था में प्राणी, विभिन्न पदार्थ को देखे। पर जब जागे स्वप्न से, वहां कोई पदार्थ नहीं रहे।।
उसी विधि पुरुष वह, तन के बाहर घट घट जो हो। अथवा सुख दु:ख आदि, उसके भीतर गम्य हैं जो।।
इन सबसे उस जीव का, सम्बन्ध नहीं कोई रहता। सब होते हुए भी यह सब तो, प्रभावित उसे नहीं करता।।
जब तक यह स्थिति न प्राप्त हो, यह पदार्थ ही भेद करें। आत्मा और परमात्मा के, मध्य यही विच्छेद करें।।

जब तक अन्त:करण रूपा, उपाधि है यह बनी हुई। तब यह जीवात्मा इन्द्रिय विषय, अहं की अनुभव हो रही।।
बाह्य जगत् में भी यह तथ्य, है बार बार देखा गया। जल दर्पण आदि निमित्तों के, रहते ही है प्रतिबिम्ब पड़ता।।
गर निमित्त यह नहीं रहें, बिम्ब प्रतिबिम्ब का भेद मिटे। इसी विधि उपाधि के, रहते ही सब दर्शन होए।।

विषय चिन्तन में ही सदा, भ्रमित हुए जो जन रहें। उनकी इद्रियां तो हर पल, विषयों में ही फंस जायें।।
मन को भी वह अपने संग, उस ओर खींच ले जाती हैं। विचार शक्ति उनकी बुद्धि का, फिर स्वत: क्षीण हो जाती है।।

ज्यों जलाशय के तीर पर, कुशा आदि जो घास लगे। अपनी जड़ों से निरन्तर ही, जलाशय का जल वह खेंचे।।
उसी विधि इन्द्रियासक्ति यह, मन बुद्धि को हर लेती है। विवेकशीलता पुरुष की, क्षीण ही वह कर देती है।।

विचार शक्ति जब नष्ट हो, स्मृति भी जाती रहती है। स्मृति नष्ट हो जाने पर, फिर ज्ञान विनष्ट हो जाती है।।
ज्ञान का नष्ट हो जाना तो, है आत्म हनन ही हो जाना। खुद आप ही अपना नाश हो, है पण्डित जन का यह कहना।।
जिसको लक्षित कर अन्य पदार्थ, प्रिय लगें सब जीव को। उस आत्म का अपने द्वारा, ही कहें जब नाश हो।।
उससे जो स्वार्थ हानि, इस लोक में जीव की होती है। उनसे बढ़कर कोई भी, हानि नहीं लोक में होती है।।

धन और इन्द्रिय विषय चिन्तन, नाश करे पुरुषार्थ का। क्योंकि इनकी चिन्ता से ही, ज्ञान विज्ञान नष्ट होता।।
इनसे भ्रष्ट ही होकर वह, स्थावर योनि में जन्म ले। वृक्षादि के रूप में, जड़ ही फिर वह बन जाये।।
इस कारण ही कहते हैं, जो चाहे अज्ञान का तम तरना। वह पुरुष इन विषयों में, आसक्ति कभी नहीं करता।।
धर्म अर्थ और काम मोक्ष की, राह में यह ही बाधक हैं। विषयों में आसक्ति ही, साधक की राह में भ्रामक हैं।।

सर्वश्रेष्ठ है मोक्ष ही, इन चारों पुरुषार्थ में। क्योंकि अन्य तीनों में तो, लगा काल का भय रहे।।
प्रकृति के गुण क्षोभ से, जो भी पदार्थ प्रकट हुए। उत्तम या अधम वह हों, सब ही तो काल का ग्रास बने।।
सदैव रह सके जो कभी, ऐसा कोई पदार्थ नहीं। अपने चरण आघात से, काल कुचल दे सबको ही।।

देह इन्द्रिय प्राण बुद्धि, और अहं से आवृत्त जो। स्थावर जंगल सब जीवों के, हृदय में हरि का वास हो।।
वह अन्तर्यामी आत्म तो, सर्व प्रकाशित हो रहे। सबके नियन्ता बनकर के, वह साक्षात् हृदय में बसें।।
हे राजन् तुम भी उनको, निज स्वरूप ही जान लो। मैं वह ही हूँ ऐसा करके, राजन् तुम सत् पहचान लो।।

ज्यों माला को जब देख लो, सर्प आभास वहाँ न हो। उसी विधि विवेक हुए, माया प्रपंच कहीं न हो।।
जिसमें कारण कार्य रूप, यह प्रतीत सब हो रहा। और स्वयं जो कर्म फल, प्रकृति से है निर्लिप्त सदा।।
उस नित्य मुक्त ज्ञान स्वरूप, निर्मल प्रभु को प्राप्त हूँ मैं। उस परमात्म सर्वनियन्ता, का हूं अपना आप ही मैं।।

जिनके श्री चरण कमल नख की, छटा को हृदय में याद कर। कर्म जन्य अहं ग्रन्थी को, ज्यों सन्त छिन्न देते हैं कर।।
सब इन्द्रिय प्रत्याहार करी, करें अन्त:करण जो विषय रहित। ऐसे संन्यासी जन के लिए, भी कर पाना है अति दुर्लभ।।
अत: सबके आश्रय वासुदेव, का हे राजन् तुम भजन करो। सारे सहारे छोड़करी, तुम एक उन्हीं का आश्रय लो।।

मन इन्द्रिय रूपा मगरों से, है भरा हुआ यह भव सागर। योग के कठिन साधनों से, जो चाहें इसको जायें तर।।
उनके लिये इस सागर से, पार पहुंचना कठिन है। क्योंकि उनको अस कर्णाधार, श्री हरि का नहीं आश्रय है।।
अत: राजन् तू उनके ही, चरण कमल की नौका बना। अनायास ही इस दुस्तर, सागर से पार हो जा।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री ब्रह्मा जी के आत्मज, आत्म ज्ञानी श्री सनत् से। यह आत्म तत्त्व उपदेश पा, महाराज पृथु फिर यूं बोले।।
पृथु बोले,
हे भगवन दीनबन्धु हरि ने, थी पहले मुझपर कृपा करी। आप यहाँ पे पधारे हैं, उसको पूर्ण करने को ही।।

दयावान् हैं आप सभी, आपने बहुत उपकार किया। जिस काज अर्थ पधारे थे, उसको है सम्पन्न किया।।
अब इसके प्रतिरूप में, मैं क्या आपको दे सकूँ? यह तन और इसके संग, जो कुछ भी मैं पाये हूँ।।
वह सब तो आप महाजनों, का प्रसादमात्र ही है। ऐसा कुछ भी पास नहीं, जिसे कह सकूँ मेरा वह है।।

हे द्विजवर यह प्राण भी, और यह स्त्री पुत्र सभी। सब भोग सामग्री से पूर्ण, दीखें जो राज्य प्रासाद भी।।
राज्य सेना पृथ्वी और कोष, सब आपका ही है दिया हुआ। अत: आपके चरणों में, अर्पित पुन: यह कर रहा।।
वास्तव में राज्य और दण्डविधान, या इसका सैन्य पतित हो। सब लोकों के शासन का, वेदज्ञ द्विज ही अधिकारी हो।।

ब्राह्मण अपना ही खाता है, जो पहने वह भी है अपना। दान भी वह ही देता है, जो उसका ही है अपना।।
क्षत्रिय आदि सब अन्य तो, उनकी कृपा के भोजन होते हैं। उसकी कृपा होने पर ही, वह अन्न ग्रहण कर पाते हैं।।

वेद पारंगत ज्ञाता आप, अध्यात्म तत्त्व पे विचार किया। सारांश सब वेद का, निश्चित हमको समझा दिया।।
श्री हरि की भेद अभेद, भक्ति ही वह साधन है। उपलब्ध वह जिस भी राह से हो, वही परम आराधन है।।
परम कृपालु ही हैं आप, इस दीन के उद्धार के। कर्म से ही हे प्रभु, आप सदा सन्तुष्ट रहें।।
आपके इस उपकार का, क्या बदला कोई दे सके? उसका प्रयत्न करना भी मात्र, है अपनी हंसी उड़ाना हे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
महाराजा पृथु ने फिर विदुर, पूजा की श्रेष्ठ आत्मज्ञ की। सनकादि ने भी मिलकर, शील की उनकी प्रशंसा की।।
फिर सब लोगों के सामने ही, आकाश मार्ग से चले गए। उनका यह कौतुक देख कर, आश्चर्य चकित सब लोग हुए।।

महात्मा जन के अग्रणी, महाराज श्री पृथु ने। चित्त वृत्ति एकाग्र की, आत्मोपदेश को पाकर के।।
आत्म में वह स्थित हुए, और कृत्कृत्य वह हो गए। इस विधि सन्त कुमारों ने, पृथु के परम कल्याण किये।।
ब्रह्म अर्पित बुद्धि से वह, काज कर्म नित्य करते थे। समय स्थान शक्ति न्याय, धन अनुसार वर्तते थे।।
एकाग्रचित्त हो कर्म फल, श्री प्रभु के अर्पण करते थे। कर्मों का साक्षी आत्मा जान, प्रकृति से सदा निर्लिप्त रहे।।

सूर्य देव सबके लिये, समभाव से प्रकाश करें। किसी वस्तु के गुण दोष से, वह नित्य निर्लिप्त रहें।।
इस विधि ही पृथु विस्तृत, राज्य लक्ष्मी से थे सम्पन्न। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी, वह थे सर्वथा अहं शून्य।।
इस कारण वह इन्द्रियों के विषयों में नहीं आसक्त हुए। अनासक्त ही रहकर के, उन्होंने सब ही कर्त्तव्य किए।।

आत्म निष्ठा में स्थित हो, यथोचित ही सब रीति से। अपने कर्त्तव्य कर्मों का, अनुष्ठान करते हुए।।
भार्या अर्चि के गर्भ से, पांच पुत्र उत्पन्न किये। गुण और कर्म से वह सब ही, उनके ही अनुरूप थे।।

विजिताश्व और धूम्रकेश, हर्यक्ष द्रविण और वृकृ। यह सब उनके नाम थे उनके ही गुण के अनुरूप।।
महाराज पृथु तो स्वयं ही, श्री भगवान के अंश थे। भीर पड़े वह अकेले ही, सब गुण धारण करते थे।।
प्रिय और हितकर वचन, इसपर उनका उदार मन। मनहर मूर्ति सौम्य गुणों से, उन्होंने प्रजा का हरा था मन।।
चन्द्र समान ही उनका, राजा नाम सार्थक हुआ। निज प्रजा में शीतलता, सुख का उन प्रसार किया।।
ज्यों सूर्य ग्रीष्म काल में, पृथ्वी का सब जल खेंच ले। वर्षा ऋतु आ जाने पर, पुन: धरा पर बरसा दे।।

अपनी किरणों से सदा, ऊष्णता वह सबको दे। उसी विधि कर रूप में, प्रजा धन ग्रहण वह करते थे।।
दुष्काल पड़े मुक्त हस्त से, प्रजा पर ही खर्चते थे। इस विधि वह सब पर ही, प्रभाव बनाये रहते थे।।

प्रज्वलित तेज था अग्नि सम, इन्द्र समान अजेय थे। पृथ्वी समान थे क्षमावान्, स्वर्ग सम कामदे थे।।
समय समय पर प्रजा जन को, तृप्त करने के लिये। उनके अभीष्ट को मेघ सम, थे मुक्त कर से लुटा देते।।
सागर समान गम्भीर थे वह, थे धैर्यवान् मेरु समान। ऐसे उन महाराजा के, थे सब सद्गुण अति महान्।।

दुष्टों का दमन करने हेतु, वह तो थे यमराज समान। विविध आश्चर्यजनक संग्रह, थे उनके पर्वतराज समान।।
कोष की समृद्धि में, थे वह बने कुबेर समान। धन को छिपाने के लिये, वह थे आप वरुण समान।।
तनोबल इन्द्रिय पटुता, और निज पराक्रम में। गतिशील वायु सम ही, थे उन्होंने रूप धरे।।
असह्य उनका तेज बना, श्री शंकर के तेज समान। सौन्दर्य में थे वह कामदेव, उत्साह में थे सिंह के समान।।

वात्सल्य में थे स्वयं वह, स्वयंभुव मनु के समान। मनुजों के अधिपत्य में, बने आप वह ब्रह्मा समान।।
ब्रह्मविचार में बृहस्पति, इन्द्रिय जय में श्री हरि। गौ ब्राह्मण गुरुजन एवं, भगवद्भक्तों के प्रति भक्ति।।
लज्जाशील विनय एवं, परोपकार थे निर्मल ही। ऐसे पृथु की किन किन, शब्दों में गायें हम स्तुति?

त्रिलोकी में उच्च स्वर से, कीर्तिगान उनका होता। सन्नारियों के कानों में, भी था उसका प्रवेश होता।।
जैसे सत्पुरुषों के हृदय में, रहते प्रभु श्री राम सदा। उसी भाँति श्री पृथु का भी, स्थान सभी हृदयों में बना।।
मैत्रेय मुनि बोले,
इस विधि मनस्वी पृथु ने, पुर ग्रामादि की व्यवस्था की। अन्न आदि की भी उन्होने, सर्गादि की भी व्यवस्था की।।
स्थावर जंगम सबकी ही, आजीविका का प्रबन्ध किया। साधु जनोचित धर्मों का, भी खूब पालन किया।।
मम आयु अब ढल गई, ईश्वर आज्ञा भी पूर्ण हुई। जिस कारण था मम जन्म हुआ, प्रजारक्षण भी हो चुकी।।
अत: अन्तिम पुरुषार्थ ही, अब मेरे लिये कर्त्तव्य है। मोक्ष हेतु ही एकमात्र, अपना इक कर्त्तव्य है।।
ऐसा सोच निज भार्या संग, अकेले ही वन को चले। प्रजा को रोते बिलखते छोड़, फिर जंगल में उन्होंने गमन किये।।
अपने विरह में रोती हुई, अपनी प्रिय पुत्री पृथ्वी का। उन्होने भार निज पुत्रों के, हाथ में ही सब सौंप दिया।।

वानप्रस्थ आश्रम अनुकूल, कठिन तपस्या में लगे। ज्यों पहले गृहस्थ में, अखण्ड व्रत थे धरे हुए।।
पृथ्वी का दोहन करने में, थे पूर्ण बल लगा के लगे। गृहस्थाश्रम में रहकर भी, सब व्रत थे पालन उन्होंने किये।।
कुछ दिन तो कन्द मूल फल, खाकर उन्होने बिता दिये। कुछ दिन सूखे पत्तों के, ही आहार पर वह रहे।।
फिर कुछ पखवाड़े तक, केवल जल का ही पान किया। तत्पश्चात् उन्होंने केवल, वायु पर निर्वाह किया।।

मुनि वृत्ति से वीरवर, पृथु फिर रहने लगे। ग्रीष्म ऋतु के आने पर, थे पंचाग्नि तप में जुटे।।
बरसात में खुले मैदान में, प्रहार थी करती जल धारा। शीत ऋतु में कण्ठ तक, तन जल में था डूबा रहता।।
प्रतिदिन मिट्टी की वेदी पर, ही शयन वह करते थे। भोग विलास में भूले से, नहीं स्वप्न में भी चित्त धरते थे।।

शीतोष्ण और सब भाँति के, द्वन्द्वों को उन्होंने सहा। मन वाणी का संयम कर, ब्रह्मचर्य पालन किया।।

इस विधि श्री पृथु ने फिर, प्राणों को अपने अधीन किया। श्री कृष्ण आराधना के लिये, इस विध सर्वोत्तम तप किया।।

इस क्रम से उनकी तपश्चर्या, भी अतीव पुष्ट हुई। उसके प्रभाव से उनकी सब, कर्मजम मल भी धुल गई।।
इस कारण जानें उनकी, चित्तवृत्ति सर्वथा शुद्ध हुई। प्राणायाम द्वारा उनकी, मन इन्द्रियां निरुद्ध हुई।।
वासना जनित उनके मानो, सब ही बन्धन तब कट गए। इस विधि श्री पृथु स्वयं, सब बन्धन से मुक्त हुए।।

तब श्री सनत्कुमार ने, उनको जो थी शिक्षा दी। परम उत्कृष्ट अध्यात्मयोग, की उसमें थी सार भरी।।
तदनुसार वह श्री हरि की, परम आराधना करने लगे। इस विधि वह वानप्रस्थ, धर्म का पालन कर रहे थे।।
भगवत्परायण होकर के, श्रद्धापूर्ण सदाचारी थे। निरन्तर साधना रत थे वह, अनन्य भक्ति को प्राप्त हुए।।

भगवदुपासना से उनका, चित्त शुद्ध सात्त्विक हुआ। निरन्तर भगवद् चिन्तन का, प्रभाव ही कुछ ऐसा था।।
इस अनन्य भक्ति से, वैराग्य और ज्ञान उपजे। फिर तीव्र ज्ञान के द्वारा उन, अहंकार भी नष्ट किये।।
उपाधि भूत यह अहंकार, सब संशय विपर्यय का आश्रय है। इस पर ही आधारित सब, प्रपंच जगत् यह रहता है।।

अहं नाश से निवृत्त हो, देहात्म बुद्धि जीव की। परमात्म स्वरूप श्री कृष्ण की, फिर जागृत हो अनुभूति।।
अन्य सभी सिद्धिन् से हैं, उदासीन वह हो गये। कोई भी सिद्धि कभी, उन्हें भ्रमित न कर सके।।
जिसका आसरा लेकर के, यह जीवकोश था नष्ट किया। उस तत्त्व ज्ञान के लिये भी वह, अब कोई यत्न नहीं करता।।
योग मार्ग राही साधक, जब तक न कथामृत रसित बने। केवल योग्य साधना से, मोह जनित प्रमाद न दूर हटे।।

वीरवर श्री पृथु का जब, अन्तकाल ही आ पहुँचा। निज चित्त को दृढ़तापूर्वक, परमात्म में उन्होंने स्थिर किया।।
ब्रह्म भाव में स्थित होकर, उसने निज तन का त्याग किया। इस विधि राजा पृथु ने, इस जग से प्रस्थान किया।।
एड़ी से रोका गुदा द्वार, प्राण वायु नियमन किया। मूलाधार से ऊपर फिर, प्राणों को उठा लिया।।
शनै: शनै: क्रमश: उनको, नाभि फिर हृदय में स्थिर किया। फिर वक्ष:स्थल में लाकर, कण्ठ राही मस्तक धरा।।

फिर तनिक और ऊपर ले जा, ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर किया। भोगासक्ति लालसा से, पूर्ण ही वह मुक्त हुआ।।
फिर यथा स्थान विभाग कर, तत्त्व में तत्त्व लौटा दिया। समष्टि प्राण दिये वायु को, पृथ्वी को पार्थिव तन दिया।।
इस तन के तेज अंश को, समष्टि तेज में लीन किया। हृदयाकाश आदि जो था, महा आकाश में लीन हुआ।।
तन में रुधिरादि जलांश, जल को उन्होंने लौटा दिया। इसी विधि फिर पृथ्वी को, जल में उसने लीन किया।।
जल को तेज और तेज को, वायु में लौटा दिया। फिर वायु को भी जाकर, आकाश में ही लीन किया।।

फिर उन्होने इस मन को भी, इन्द्रियों में जाकर लीन किया। इन्द्रियों को उनकी तन्मात्रा, कारण रूप में दिया समा।।
इन तन्मात्राओं में भी, सूक्ष्मभूत है कारण जो। उस अहंकार द्वारा, आकाश इन्द्रिय तन्मात्रा को।।
उस अहं में लीन किया, फिर महतत्त्व में अहं गया। इस विधि उत्तरोत्तर सब, लीन परस्पर होता रहा।।

फिर सम्पूर्ण गुणों की, अभिव्यक्ति जिसकी राह से हो। उस महत्तत्त्व को माया उपाधिक, जीव में फिर स्थित किया।।
तदनन्तर माया रूप, जीव की उस उपाधि को। ज्ञान और वैराग्य के, प्रभाव से ही त्याग दियो।।
निज शुद्ध ब्रह्म स्वरूप में, इस विधि वह स्थिर हुए। यूं देहात्म भाव त्यज, महाराज पृथु आत्म में टिके।।

उनकी भार्या महारानी अर्चि, भी थी वन में साथ गई। अति सुकुमारी कोमल थी, नहीं चरण धरती पर पड़ती।।
फिर भी निज स्वामी संग उन्होंने, व्रत और नियम पालन किये। अतीव सेवा करी उनकी, कन्दमूलादि पर ही थे जिये।।
यह सब करके यद्यपि, वह अति दुर्बल थी हो गईं। पर प्रियतम का स्पर्श पा, सब कष्ट से वह अति दूर थीं।।

पृथ्वी स्वामी निज प्रियतम की, देह देख जब निष्प्राण हुई। चेतना रहित उसको देखी, महासती ने फिर विलाप करी।।
फिर पर्वत के ऊपर ही, सती ने उसकी चिता रची। उस चिता पर निज पति की, नश्वर देह उसने धरी।।

समयोचित सब कृत्य करी, नदी में उसने स्नान किया। जलांजलि दे फिर निज पति का, उसने यूं सत्कार किया।।
वन्दना की आकाश स्थित, उसने सब ही देवों की। तीन परिक्रमा चिता की ले, फिर अपने पति पर ध्यान धरी।।
फिर स्वयं चिता की अग्नि में, प्रवेश वह भी पा गई। इस भाँति उस सती ने भी, निज पति संग प्राणा त्यजा।।

परम साध्वी अर्चि ने, इस विधि पति अनुगमन किया। उसके इस महत् प्रेम को, वरदायिनी देवियों ने देखा।।
निज पतियों को संग लिये, वह स्तुति उसकी गाने लगीं। इस विध सब देवों ने मिल, सति अर्चि की प्रशंसा की।।
देवों के वाद्य बजने लगे, मन्द्राचल शिखर से बरसे सुमन। देवांगनाएं सब मिली, परस्पर करने लगी कथन।।

देव बोले,
अहो धन्य है यह नारी, इसने निज पति की सेवा की। राज राजेश्वर पृथु की इस, मन वचन कर्म से सेवा की।।
ज्यों श्री लक्ष्मी यज्ञेश्वर, प्रभु विष्णु की सेवा करें। उसी विधि इस नारी ने, तन मन सब पति पे वार दिये।।
निश्चित ही निज अचिन्त्य, उच्च कर्मों के प्रभाव बन्धी। निज पति के संग उलांघ हमें, हैं उच्च लोक को जा रही।।
इस लोक में जीवन है नश्वर, फिर भी जिन्हें आत्म ज्ञान हो। इस लोक का कोई पदार्थ भी, क्या उनके लिये कभी दुर्लभ हो।।

अति दुर्लभ मोक्ष का साधन जो, भूलोक में मिला है मानुष देह। इसको पाकर के भी जो, हैं विषयों में ही रहते फंसे।।
निश्चित हैं आत्मघाती वे, है व्यर्थ ही जीवन उनका हुआ। हाय मनुज देह पाकर भी, विषयों से मानो ठगा गया।।
मैत्रेय मुनि बोले,
जिस पल देवांगनागण मिली, ऐसी स्तुति थी गा रही। महारानी अर्चि भी थीं, पति लोक में जा रहीं।।
सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञ पृथु, जिस परम धाम को प्राप्त हुए। सती को भी भगवत्प्रिय, पति के लोक में स्थान मिले।।
ऐसा प्रभाव था श्री पृथु का, उनके चरित हैं अति उदार। वर्णन किया तेरे लिए, उसका विदुर है सविस्तार।।

श्रद्धापूर्ण निष्काम भाव से, जो यह पावन चरित सुने। पठन करे श्रद्धा से जो, या इसका पाठन करे।।
वह जन भी महाराज पृथु, का पद प्राप्त कर लेते हैं। प्रभु के परम धाम को, सहज ही वह जन पाते हैं।।

सकाम भाव से भी इसका, जो जन पठन करता है। ब्राह्मण तो इस पठन से, ब्रह्मतेज को धारण करता है।।
क्षत्रिय ऐसा गर करे, पृथ्वी पति हो जाता है। वैश्य भी व्यापारी जन, में प्रधानता पाता है।।
शूद्र भी गर पठन करे, उसमें साधुता आ जाये। निज वर्ण धर्म अनुकूल ही, फल सब इसका पा जायें।।

स्त्री हो अथवा पुरुष, जो तीन बार इसको सुने। आदर और श्रद्धा से वह, गर इस चरित का श्रवण करे।।
सन्तानहीन हो पुत्रवान्, धनहीन बने फिर महाधनी। कीर्तिहीन यशवान् बने, पण्डित बन जाये मूर्ख भी।।

जीवमात्र के लिये ही यह, चरित है अति कल्याणकर। श्रद्धा से गर श्रवण हो, सर्व अमंगल ले यह हर।।

धन यश और आयु की, है वृद्धि करने वाला यह। कलियुग के सब दोष हरे, और स्वर्ग की प्राप्ति करवा दे।।
धर्मादि चतुर्वर्ग की, प्राप्ति में भी सहायक यह। श्रद्धा से इसका करे श्रवण, जो चारों की सिद्धि चाहे।।
विजय के लिए प्रस्थान समय, जो राजा इसका श्रवण करे। आगे चलकर पृथु समान, राजाओं से उपहार मिले।।
अन्य आसक्ति छोड़कर, श्री हरि में हो निष्काम भक्ति। विशुद्ध भाव से पढ़े सुने, सुनावे कथा पृथु चरित की।।

हे विदुर प्रभु माहात्म्य को, प्रकट जो है कर रहा। पावन चरित यह पृथु का, है तुमको सुना दिया।।
इसमें प्रेम जो भी रखे, वह भवसागर तर जाता है। वह पुरुष महाराज पृथु, की सी गति ही पाता है।।
इस पृथु चरित का जो पुरुष, प्रतिदिन कीर्तन और श्रवण करे। निष्काम भाव से नित्य ही, जो नर इसमें रमण करे।।
श्री हरि चरणन् में उसका, दृढ़ अनुराग ही हो जाये। प्रभु के श्री चरण कमल, भव सागर तरणी बन जायें।।

७) प्रचेताओं को उपदेश

मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर पृथु के बाद सुनो, राजा उनके पुत्र विजिताश्व हुए। था परम स्नेह भ्राताओं से, स्वयं वह महा यशस्वी थे।।
चारों भाइयों को उन्होंने, इक इक दिशा का अधिकार दिया। पिता के राज्य को इस विधि, समान भाग में बांट दिया।।
हर्यक्ष को दी पूर्व दिशा, धूम्रकेश को दी दक्षिण। द्रविण को उत्तर सौंप दिया, और वृक् को दिया पश्चिम।।

अन्तर्धान होने की शक्ति, इन्द्र से थी प्राप्त करी। अन्तर्धान ही जान लो, इस कारण दूजा नाम पड़ा।।
उनकी धर्मपत्नी का, नाम था शिखण्डिनी। उस महारानी ने जानो, तीन पुत्रों को जन्म दी।।
उन पुत्रों के नाम थे, पावक पवमान और शुचि। पूर्वकाल त्रै अग्न यह थी, शापित मुनि वसिष्ठ ने की।।
उन अग्निन् ने अपने ही, नामों से था जन्म लिया। योग मार्ग से आगे चल, अग्न रूप पुन: उनका हुआ।।

नभस्वती नाम की थी, उनकी एक अन्य पत्नी। उससे हविर्धान नामक, पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।।
महाराज अन्तर्धान थे, अति उदार महान् पुरुष। इन्द्र ने जब पिता के यज्ञ, अश्व को लिया था हर।।
यह जान कर भी उन्होंने, उसका वध था नहीं किया। योगी भेस में देख करी, उन्होंने उसको छोड़ दिया।।

कर लेना या दण्ड देना, या करना जुर्माना वसूल। अति कठोर जानी उनको, प्रजा कष्ट क़े करना चाहे दूर।।
दीर्घ कालीन यज्ञ में, दीक्षित होने का बहाना ले। अपने राज्य काज के, कर्म सब ही छोड़ दिये।।
यज्ञ कार्य में लगकर भी, उस आत्मज्ञानी राजा ने। भवभयभंजन भक्त रंजन, श्री हरि की आराधना से।।
सुदृढ़ समाधि के द्वारा, दिव्य लोक फिर प्राप्त किये। पूर्णतम् परमात्मा की, भक्ति के यह परिणाम मिले।।

हे विदुर हविर्धान पत्नी, का नाम था हविर्धानी। बर्हिषद् गय शुक्ल कृष्ण, सत्यव्रत जित पुत्रों की नाम थी।।
इनमें श्रीमत् बर्हिषद् तो, योगाभ्यास में थे कुशल। यज्ञादि कर्मकाण्ड में, वह जानो विदुर थे अति प्रवर।।
अपने इन गुणों के कारण ही, प्रजापति पद प्राप्त किया। उनके इन कर्मों का यश, पूर्ण भू पर था फैल गया।।

उत्तरोत्तर भिन्न स्थानों पर, निरन्तर उन्होंने यज्ञ किये। पूर्व दिशा में भूमि के, अग्रभाव से विस्तृत कुशा पटे।।
इस कारण ही आगे चलकर, प्राचीनबर्हि वह कहलाये। इसी नाम से जगत् में, बर्हिषद्, थे विख्यात हुये।।

श्री ब्रह्मा के कहने पर उन, सागर सुता से विवाह किया। सर्वांग सुन्दरी किशोरी का, शतद्रुति ही नाम था।।
वस्त्राभूषणों से सजकर, वह आई विवाह मण्डप में। जब घूमने वह लगी, फेरे लेने के लिये।।
तो स्वयं अग्निदेव भी, उस पर यूं मोहित हुए। जैसे शुकी देवी के लिये, थे उनके मन में भाव भरे।।

दिशा विदिशा के देव असुर, गन्धर्व मुनि और सिद्ध जो थे। मनुष्य और नाग भी, जो जहाँ पर रहते थे।।
नव व्याहता शतद्रुति ने, निज नूपुर की झंकार से। सब के सब ही वे जन, अपने ही वशीभूत किये।।
प्राचीनबर्हि को शतद्रुति से, प्राप्त हुए फिर दस पुत्र। प्रचेता सबका नाम था, धर्मज्ञ थे वे सदाचार युक्त।।

पिता ने निज पुत्रों को दिया, सन्तानोत्पत्ति का आदेश। तप हेतु उन सबने तब, पाया सिन्धु में प्रवेश।।
दस हजार वर्ष पर्यन्त उन्होंने सागर में तप किया। तप के फल प्रदाता जो, आराधना की उन श्री हरि की।।
तपस्या करने के लिये, जब निज घर से वह थे निकले। मार्ग में श्री महादेव ने, उनको दर्शन थे दिये।।
कृपा पूर्वक जिस तत्त्व का, उपदेश उन्होंने था दिया। एकाग्रचित्त होकर उसका, पूजन ध्यान उन्होंने किया।।
विदुर बोले,
हे द्विजवर मुझे कहें आप, महादेव जी उनको कैसे मिले? उन पर प्रसन्न हो शंकर ने, उनको क्या क्या उपदेश दिये?
सार गर्भित यह रहस्य, आप मुझे बतलाइये। प्रचेतागण क्या पाये ज्ञान, मुझको भी समझाइये।।
श्री शंकर से मिलना तो, देहधारिन् को है अति दुर्लभ। अन्य तो क्या मुनिजन भी उन्हें, हे ब्रह्मर्षि न पाते सुलभ।।
वे सर्वासक्ति त्याग कर, निरन्तर उनका ध्यान धरें। सारे यत्न वह कर करी, सहज न उनको पा सके।।

आत्म राम हैं महादेव, उन्हें अपने लिये कुछ पाना नहीं। इस सृष्टि में तो उनका, तनिक भी कर्त्तव्य नहीं।।
फिर भी इस लोक सृष्टि की, रक्षा करने के लिये। अपनी शिवा शक्ति लेकर, सर्वत्र ही हैं वह विचर रहे।।
मैत्रेय मुनि बोले,
साधु स्वभाव प्रचेताजन, पितु आज्ञा को सीस धर। तप में चित्त टिका के विदुर, पश्चिम को चले प्रस्थान कर।।
चलते चलते ही उन्होंने, विशाल सरोवर इक देखा। सागर समान अनन्त ही, थी उसकी विशालता।।
महापुरुषों के चित्त समान, अति निर्मल और स्वच्छ था वह। उसमें बसे मत्स्यादि भी, अति प्रसन्न थे भास रहे।।
दिन में सायं में रात्री में, कमल वहाँ पर खिलते थे। नील और रक्त वर्ण के कमल, इन्दीवर पद्म भी वहाँ पे थे।।
उसके तट पर हंस सारस, चकवां और कारण्डव थे। सब जल पक्षी मिल करी, महा किलोल थे कर रहे।।

चहुँ ओर से भाँति भाँति की, वृक्ष और लता ने था घेरा। उनपर मतवाले भंवरों ने, डाला था अपना डेरा।।
उनकी मधुर गुंजन की ध्वनि, रोमांचित थी उन्हें कर रही। कमल कोश की पराग भी, वायु से चारों दिशाओं में थी फैली।।
मानो पराग वह उड़ उड़ कर, उत्सव हो कोई मना रही। चहुँ दिशा में वह अपनी, मधु सुरभि थी फैला रही।।
मृदंग पणव वाद्यों के संग, अनेकों दिव्य स्वरों की तान। आश्चर्य चकित हुए राजपुत्र, सुनकर यह गायन महान्।।

इतने में उन्होंने देखा, विस्मित होकर एक दृश्य। सरोवर से फिर प्रकट हुए, प्रभु शंकर निज अनुचरों सहित।।
उनका तन तप्त स्वर्णराशि, के समान था कान्तिवान्। नीलवर्ण था उनका कण्ठ, त्रै नेत्र थे विशाल महान्।।
उद्यत थे निज भक्तों पर, वह अनुग्रह करने के लिये। अनेक गन्धर्व किन्न मिल, सुयश थे उनका गा रहे।।
सहसा प्रभु का दर्शन पा, कौतुहल उनमें जाग उठा। श्री शंकर के चरणों में, उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया।।

शरणागत भयहारी श्री शंकर, प्रसन्न हुए वह धर्मवत्सल। निज दर्शन से महामुदित हुए, धर्मज्ञ और अति शीलनधर।।
प्रचेता जन कल्याण ही, अपने हिय में उन्होंने धरा। राजपुत्रों को उन्होंने फिर, मुदित होकर वचन कहा।।

रुद्र बोले,
महाराजा प्राचीनबर्हि के, पुत्र हैं आप सभी। कल्याण सदैव हो आपका, यह ही है आसीस हमरी।।
मैं जानूं तुम्हारे हृदय में, इस पल है जो उद्देश्य भरा। तुम सबपर कृपा हेतु ही, मैंने है आज यह दरस दिया।।
अव्यक्त प्रकृति और जीव, इन दोनों के हैं नियामक जो। साक्षात् श्री वासुदेव, की शरण ले पुरुष जो।।
हे राजपुत्रो जान लो, परम प्रिय वह मेरा है। तत्क्षण ही भक्त मुक्त हो, जो जन्म मरण का फेरा है।।

अपने वर्णाश्रम धर्म का, भली भाँति करें पालन जो। सौ जन्म बाद ऐसे पुरुष, ब्रह्मा के पद को प्राप्त हो।।
इससे भी अधिक गर पुण्य हों, मुझको प्राप्त वह हो जायें। अनन्य भक्ति श्री हरि की, और ही फल उन्हें दे जाये।।
रुद्र रूप में स्थित मैं भी, अन्य देवता गण भी सभी। प्राप्त जिसको कर पायें, अधिकार समाप्ति बाद ही।।
तनो त्याग के बाद वह, सीधे श्री विष्णु लोक जायें। सर्व प्रपंचय अतीत जो, उस परम पद को पा जायें।।

भगवद्भक्त हो तुम प्रिय, प्रभु सम ही मुझको हो प्यारे। प्रभु भक्तों को भी इसी विधि, कोई मुझसे प्रिय न हो सके।।
तुम्हारे लिये अति पावन और जो है मंगलकर। कल्याणकारी स्तोत्र का, रहा हूँ मैं उपदेश कर।।
शुद्ध भाव से तुम सब ही, इसका जप करते रहना। कल्याण ही होगा आपका, गर मानोगे मेरा कहना।।
मैत्रेय मुनि बोले,
अपने सामने हाथ जोड़, जो राजपुत्र थे खड़े हुए। श्री नारायण के पराजय जो, करुणाद्र हृदय श्री शंकर ने।।
उन प्रचेता जन सबका, कल्याण करने के लिये। उनके लिये निज श्री मुख से, यह स्तोत्र फिर कह दिये।।

रुद्र बोले,
हे प्रभु प्राकट्य आपका, है आत्मज्ञ कल्याण हेतु। निजानन्द का लाभ लिये, और मेरे कल्याण हेतु।।
सर्वदा ही स्थित हैं आप, निज परमानन्द स्वरूप में। सर्वात्म आत्म स्वरूप को, है मेरा नमस्कार है।।
सर्वलोक कारण हैं आप, हे हरि श्री पद्मनाभ। सर्वेन्द्रिय के नियन्ता आप, सूक्ष्मभूत तन्मात्र आप।।
शान्त सर्वदा एकरस, स्वयं प्रकाश श्री वासुदेव। है नमस्कार प्रभु आपको, हैं चित्त के अधिष्ठातृ देव।।

अनन्त अव्यक्त आप स्वयं, और आप स्वयं हैं संकर्षण। अहंकार के अधिष्ठाता, करें लोक नाश संहारक बन।।
प्रकट ज्ञान जो इस जग का, बुद्धि है उसका उद्गम स्थान। है नमस्कार प्रभु आपको, उनको अधिष्ठाता प्रद्युम्न जान।।
इन्द्रियों के स्वामी आप ही, मन: तत्त्व अधिष्ठाता अनिरुद्ध। बार बार है नमस्कार, हे प्रभु आपको हो करबद्ध।।
निज तेज से इस जग में व्यों, सूर्य देव बन आप स्वयं। न वृद्धि क्षय पूर्ण में हो, हे देव देव नमस्कार है मेरा।।

स्वर्ग और मोक्ष के द्वार आप, पावन हृदय में वास करें। नमस्कार मेरा प्रभु, आपके श्री चरणों में हे।।
सुवर्ण रूप से वीर्य युक्त, और चतुर्होत्र कर्म साधन। विस्तृत करें उन्हें अग्नि देव, है चरणों में प्रणाम मेरा।।
पितर और देवों के पोषक, सोम रूप भी आप स्वयं। त्रिवेदों के हैं अधिष्ठाता, करें स्वीकार यह नमन मेरा।।
सब जीवों की तृप्ति का, साधन रूप जल आप हैं। हे सर्वरस प्रभु आपको, मेरा नमस्कार है।।

सब प्राणिन के देह बने, पृथ्वी और विराट हैं। इस त्रिलोकी के रक्षक, प्राण रूप भी आप हैं।।
मन इन्द्रिय शरीर में, वायु बनकर विचरें आप। हे देव आपके चरणों में, विनम्र हो मेरा नमस्कार।।

निज गुण शब्द के द्वारा आप, सब पदार्थ का ज्ञान दें। बाह्य भीतर आप ही, आकाश रूप में भेद करें।।
महापुण्यों से प्राप्त स्वर्ग, वैकुण्ठादि है लोक जो। महातेजोमय रूप जो, आप स्वयं ही तो प्रभु हो।।
पुन: पुन: हो नमस्कार, हे हरि मेरा आपको। आपके श्री चरणों में प्रभु, बारम्बार प्रणाम हो।।

प्रवृत्ति कर्म प्रतिरूप में, पितृ लोक भी मिले जो। या निवृत्ति रूपा कर्म से, देव लोक जो प्राप्त हो।।
अधर्म के फल स्वरूप मिले, दु:खदे मृत्यु भी आप ही हो। नमस्कार मेरा प्रभु, आपको स्वीकार हो।।

पुराण पुरुष हैं नाथ आप, अधीश्वर सांख्य और योग के। श्री कृष्ण हैं आप स्वयं कामना पूर्ति सबकी करें।।
साक्षात् मन्त्र मूर्ति आप, महा धर्म स्वरूप हैं। न कुण्ठित हो कभी शक्ति, नित्य मुक्त ज्ञान स्वरूप हैं।।
नमस्कार प्रभु आपको, बारम्बार है नमस्कार। हे नाथ आपके चरणों में, हो नमन मेरा स्वीकार।।

कर्ता कर्म और कर्ण, इन तीनों के हैं आश्रय आप। अहंकार के अधिष्ठाता, रुद्र देव हैं स्वयं आप।।
ज्ञान और उसके क्रिया स्वरूप, भी प्रभु हैं आप स्वयं। चतुर्विध वाणी के भी, अभिव्यक्तिकार हैं आप स्वयं।।
वाणी के परा पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी हैं चार प्रकार। इन सबके आधार आप, तव चरणों में मम नमस्कार।।

अभिलाषा है हमें प्रभु, आपके श्री दर्शन की। भक्त आपके पूजें जिसे, अनन्त प्रिय तुमरे निज जन की।।
अपने अनूप उस रूप की, झाँकी हमको दीजिये। तुष्टिकर रूप के दर्शन दे, तृप्त आप हमें कीजिए।।
वर्षाकालीन मेघ सम, है स्निग्ध श्याम सौन्दर्य सार। अति मनहर मुखारविन्द, चतुर्भुजा हैं अति विशाल।।

स्वर्ग का शासक इन्द्र भी, आपको पाना चाहता है। विशुद्ध आत्म ज्ञानियों के, इक मात्र आप ही त्राता हैं।।
देहधारियों के लिये, हैं अति दुर्लभ आप प्रभु। केवल भक्तिमान् पुरुष, के लिये सुलभ हैं आप प्रभु।।
सत्पुरुषों के लिये भी है, अनन्य भक्ति जो अति दुर्लभ। प्रभु की प्रसन्नता मात्र से, ही हो जाती है सुलभ।।
जिनको प्रसन्न कर पाना भी, भक्ति के बिना है साध्य नहीं। उन चरणों के बिना फिर कौन, अन्य कभी चाहे कुछ भी।।

अदम्य उत्साह पराक्रम से, निज भौहों के संकेत से। काल जो सारे जगत् का, पल भर में संहार करे।।
आपकी शरण को प्राप्त हुए, प्राणी को वह न छू सके। शरणागत आपके भक्तों पर, अधिकार न अपना कर वह सके।।
अस भगवत्प्रेमी भक्तों का, आधे पल को भी समागम हो। स्वर्ग या मोक्ष की उनके सम्मुख, अति गौण ही शोभा हो।।
फिर मर्त्यलोक के क्षणिक और, तुच्छ भोगों की तो बात ही क्या? सन्त समागम की तुलना में, ठहरें वह इक पल भी न।।

हे प्रभु आपके श्री चरण, सब पाप राशि हर लेते हैं। सारी मल वह बहाकर के, यह हृदय प्रेम से भरते हैं।।
आपकी कीर्ति और तीर्थ में, निज आन्तरिक बाह्य स्नान किया। मन के और इस तन के, सारे पापों को धो डाला।।
है राग द्वेष से रहित उनका मन, जीवों के प्रति हृदय में दया। इन गुणों सहित जिनके चित्त में, भरी है निर्मल आर्जवता।।
इन गुणों से युक्त जो, हैं प्रभु आपके प्रिय भक्त। उन भक्त जनों के संग में, रहे हमरा चित्त सदा अनुरक्त।।
यही आपकी हम पे प्रभु, सबसे बड़ी कृपा होगी। मन वचन और कर्म से, जीवन तब भक्तिमय होगी।।

भक्तियोग से शुद्ध और ,अनुगृहित हुआ हो जिसका चित्त। बाह्य विषय अज्ञान में, ऐसा साधक न होता लिप्त।।
अनायास ही आपके, स्वरूप के दर्शन वह पा ले। अपने इस मानुष जन्म का, सच्चा लाभ उठा वह ले।।
जिसमें दीखे यह सारा जगत्, और सब जगत् में जो व्यापे। आकाश समान जो है विस्तृत, परम प्रकाशमय जो रहे।।
ब्रह्म तत्त्व वह आप ही हैं, आपके बिना है कोई नहीं। हे प्रभु अतिरिक्त आपके, नहीं कोई भी अन्य कहीं।।

हे प्रभु माया आपकी, रूप अनेकों धरती है। इन्हीं द्वारा जग की सृष्टि पालन संहार वह करती है।।
जैसे कोई सद्वस्तु ही, कहीं पे हो भगवान मेरे। किन्तु इससे आपमें न, किसी विधि कोई भी विकार उठे।।
आपकी माया कारण ही, दूजों में भेद बुद्धि उपजे। श्री परमात्म तत्त्व पे, अपना प्रभाव यह कर न सके।।
परम स्वतंत्र ही आपको, हम सब मानें हे प्रभु। इन सबके प्रभाव से, अति दूर हैं आप प्रभु।।

महाभूत इन्द्रिय अन्त:करण, का प्रेरक है आपका स्वरूप। जो कर्मयोगी सिद्धि हेतु, आश्रय ले के भिन्न कर्म रूप।।
इस सगुण साकार रूप का, भली भाँति पूजन करें। उनको ही वेद और शास्त्रों के, सच्चे मर्मज्ञ जान लें।।

हे प्रभु आप अद्वितीय हैं, आप ही हैं आदि पुरुष। सृष्टि के पूर्व माया शक्ति, आपकी रहती है यह सुप्त।।
फिर उसी के द्वारा सत्व रज, और तमोगुण भेद हो। तत्पश्चात् गुणों से ही, महत्तत्त्व अहं भी उत्पन्न हो।।
आकाश वायु अग्नि जल, पृथ्वी देवता और ऋषि। समस्त प्राणियों से पूर्ण, इस जगत् की हो फिर उत्पत्ति।।

फिर आप ही अपनी इस, माया शक्ति से रचे हुए। जरायुज अण्डज स्वेदज और, उद्भिज्ज सभी पदार्थों में।।
चार भाँति के शरीरों में, अंश रूप से प्रवेश करें। उन शरीरों में रहकर, फिर तुच्छ विषय उपभोग करें।।
ज्यों मधुमक्खी अपने द्वारा, ही उत्पादित मधु का। आस्वादन स्वयं ही करती रहती है सदा।।
उसी विधि उस तन में रह, विषयोपभोग सब आप करें। आपके इस अंश को, शास्त्र पुरुष या जीव कहें।।

तत्त्वज्ञान प्रभु आपका, प्रत्यक्ष नहीं अनुमान से हो। काल स्वरूप आपका, प्रभु प्रलय काल में उपस्थित हो।।
प्रचण्ड असह्य वेग से निज, पृथ्वी आदि विचलित करें। समस्त लोकों का प्रभु, आप स्वयं संहार करें।।
प्रचण्ड वेग से वायु ज्यों, छिन्न भिन्न करे बादल को। उसी विधि हे प्रभु आप, नष्ट करें, सब लोकों को।।

मोह ग्रसित यह जीव हुआ, प्रमाद के वश में रहता है। यह काज करूँ अब वह करूँ, इस चिन्ता के वश रहता है।।
वर्धित हो नित्य लोभ उसका, विषयों की लालसा बनी रहे। पर इस सबसे न प्रभावित हो, आप सदा ही सजग रहें।।
ज्यों लपलपाती जिह्वा से, सर्प चूहे को खा जाये। उसी विधि काल स्वरूप आप, जीव का सहसा क्षय करें।।

आपकी कर अवहेलना, निज आयु को जो व्यर्थ करे। कौन विद्वान होगा ऐसा, जो चरण कमल को बिसार दे?
काल की आशंका से, इनकी पूजा तो सबने करी। स्वयंभू आदि चौदह मनु, या हमारे पिता श्री ब्रह्मा जी।।
बिना किसी अन्य विचार के, केवल श्रद्धा को मन में धर। आपके श्री चरणों को ही, हर पल थे रहते हृदय में धर।।

हे ब्रह्मन इसविधि सारा जगत्, भयभीत है रुद्र रूप से। काल के भय से सब जीव, व्याकुल होकर कांप रहे।।
तत्त्वज्ञान के तो हे प्रभु, हैं आप ही भय रहित आश्रय। हम लोगों के हे हरि, हैं इकमात्र आप ही आश्रय।।
हे राजसुतों विशुद्ध भाव से, स्वधर्म का आचरण करो। भगवान में चित्त लागकर तुम, मम कथित स्तोत्र का जपन करो।।
जान लें आपका नित्य ही, मंगल करेंगे श्री हरि। मार्ग की सब बाधाओं को स्वयं हरेंगे श्री हरि।।

अपने अन्त:करण में स्थित, श्री हरि का उन परमात्म का। बार बार चिन्तन करो, सर्वभूतान्तर स्थित आत्म का।।
स्तवन और चिन्तन राही, ही उनका पूजन करो। अहर्निश उनका ध्यान धरी, यह जीवन अपना सफल करो।।
योगादेश नाम का यह, स्तोत्र जो तुम्हें सुनाया है। मन में धारण करो, इसे रहस्य जो तुम्हें सुझाया है।।
मुनिव्रत का आचरण करो, एकाग्रता से अभ्यास करो। आदर पूर्वक इस स्तोत्र को, अपने जीवन में उतार लो।।

पूर्वकाल में यह स्तोत्र ब्रह्मा जी ने सुनाया था। प्रजाविस्तार के इच्छुक जो, उन प्रजापतियों को बताया था।।
हमने और भृगु आदि ने, निज पुत्रों को यह सुझाया था। सब प्रजापतिन् के जो पति, उन श्री ब्रह्मा ने सुनाया था।।
हम प्रजापतियों को जब, प्रजा विस्तार की आज्ञा दी। तब इसीके द्वारा हम सबने, अपने अज्ञान की निवृत्ति की।।
और अनेक भाँति की, प्रजा थी उत्पन्न हमने करी। इस विधि इस सृष्टि की, वृद्धि थी होती रही।।

भगवत्परायण जो अब भी, एकाग्रचित्त नित जपे इसे। शीघ्र ही परम कल्याण, उस जीव का हो जाये।।
इस लोक में सब प्रकार के, कल्याण के विविध साधनों में। मोक्ष दायक ज्ञान को, ही सबसे हैं श्रेष्ठ कहें।।
इस ज्ञान की तरणी पर, जो जीव चढ़ जाता है। अनायास ही दुस्तर इस, भव सागर से तर जाता है।।

यद्यपि आराधना श्री हरि की, दु:साध्य अति मानी जाये। मम कथित इस स्तोत्र का, श्रद्धा से पाठ जो कर पाये।।
सुगमता से श्री हरि को, प्रसन्न वह कर पायेगा। ऐसा भक्त तो सहज ही, भव सागर से तर जायेगा।।
सर्व कल्याणमय साधनों के, प्रिय प्राप्तव्य हैं एक हरि। मम कथित स्तोत्र के गान से, हों प्रसन्न तत्काल हरि।।
उनको प्रसन्न कर स्थिर चित्त से, जो चाहे उनसे पा लेगा। इस स्तोत्र के राही श्री हरि को, भक्त वह रिझा लेगा।।

ऊषाकाल में उठ जो पुरुष, श्रद्धा पूर्वक इसको पढ़े। हाथ जोड़ जो इसे सुने, या दूजे को सुना ही दे।।
सब प्रकार के कर्मों से, वह बन्धन मुक्त हो जाता है। ऐसा भक्त तो सहज ही, भवभय से दूर हो जाता है।।
हे राजसुतो मैंने यह तुम्हें, महास्तोत्र जो सुनाया है। परम पुरुष परमात्मा का, रहस्य जो सुझाया है।।
एकाग्र चित्त हो इसे जपो, और महान् तपस्या करो। पूर्ण तप जब हो जाये, अभीष्ट फल इससे पा लो।।

६) पुरंजनोपाख्यान

मैत्रेय मुनि बोले,
हे विदुर श्री शंकर ने दिया, प्रचेताजन को यह उपदेश। भक्ति भाव हृदय में धर, उन्होंने पूजे शंकर देव।।
तत्पश्चात् कुमारों के, सम्मुख ही अन्तर्धान हुए। श्री शंकर उपदेश दे, अपने धाम को चले गये।।
सब प्रचेताजन ने तब, जल में ही खड़े रहकर। उनके कहे स्तोत्र का किया, जप तप वर्ष दस सहस्र।।
राजा प्राचीनबर्हि का चित्त, था कर्म काण्ड में रमा हुआ। अध्यात्म ज्ञान के विशारद श्री, नारद ने उन्हें उपदेश दिया।।

नारद जी फिर राजा से, इस विधि कहने लगे। हे राजन् इन कर्मों से, कौनसा कल्याण निज कर हो रहे?
आत्यन्तिक नाश दु:ख का, और परम आनन्द की प्राप्ति। जीव के कल्याण का, है बस एक स्वरूप वही।।
पर कर्मों के द्वारा तो, जीव न उसको पा सके। कर्म तो हैं वह राह नहीं, जिससे वहाँ तक जा सके।।
प्राचीनबर्हि राजा बोले,
हे महाभाग श्री नारदजी, मेरी बुद्धि है कर्मों में फंसी। इसलिये परम कल्याण की, नहीं बात यह सोच सकी।।

कृपा करी हे देव आप, उपदेश ज्ञान का दीजिए। छूटूं कर्म बन्धन से मैं, विशुद्ध ज्ञान मुझे दीजिये ।।
गृहस्थाश्रम में रहकर जो, माने परम पुरुषार्थ एक। पुत्र द्वारा धन सम्पद् ही, जिस जीवन का हो आशय एक ।।
अज्ञानवश संसार के, आरण्य में ही वह भटका करे। ऐसे नर के कल्याण का, साधन कोई भी न दीखे ।।
नारद बोले,
हे राजन् देखो देखो, यज्ञ में जो निर्दयता की। सहस्रों निरीह पशुओं की, यज्ञों में थी जो बलि भी दी ।।
उनको अब आकाश में, हे राजन तुम देख लो। शुभ कर्म जिन्हें समझे थे, उनका क्या परिणाम हो ।।
जो पीड़ा तुमने दी इनको, उस सबको याद यह कर रहे। बदला लेने के लिये, यह बाट तुम्हारी देख रहे ।।
इस तन को जब त्यागकर, परलोक में तुम जाओगे। इन सब द्वारा लोहे के, सींगों से छेदे जाओगे ।।

इस विषय में तुमको मैं, प्राचीन आख्यान सुनाता हूँ। हो सावधान सुनो यह चरित, पुरंजन का मैं बताता हूँ।।
पुराकाल में पुरंजन नामक, अति यशस्वी राजा था। अविज्ञात नामक मित्र, उसका अति प्रियवर था ।।
उसकी सब चेष्टाओं को, कोई समझ न पाता था। इस कारण ही मित्र वह, अविज्ञात कहलाता था ।।

निज आवास की खोज में, पुरंजन ने ढूंढी पृथ्वी। मनभावन स्थान जो नहीं मिला, चित्त उसका उदास हो ।।
भाँति भाँति के भोगों की, थी लालसा चित्त में भरी। उन्हें भोगने के लिये, उचित स्थान कोई नहीं मिला ।।
संसार में थे जितने भी, नगर ग्राम उसने देखे। उनमें से कोई भी, उसके मन को नहीं जंचे ।।

इक दिन हिमालय के दक्षिण, के तटवर्ती शिखरों पर। देखा भारत खण्ड में उसने, नव द्वार का एक नगर ।।
सब भाँति के शुभ लक्षण, थे उस नगर के दीख रहे। सब सुलक्षणों से कहें, उसके थे घर द्वार सजे ।।
नगर के चहुँ ओर थे, बड़े बड़े परकोटे बने। उद्यान अटारी खाई झरोखे, और थे राज द्वार बने ।।
सोने चान्दी और लौह के, शिखरों से थे सजे भवन। खचाखच था वह नगर भरा, ऐसे थे वहाँ अनेकों भवन ।।

महलों के फर्शों पर नीलम, स्फटिक वैदूर्य और मोती जड़े। पन्ने और लालों से भी, फर्श वह थे सज रहे ।।
निज कान्ति से वह नगरी, भोगवती के समान बनी। नाग लोक की महा प्रसिद्ध, ही जो राजधानी थी ।।
जहाँ तहाँ थे सभासदन, चौराहे और राजपथ थे। क्रीड़ा भवन बाजार और, विश्राम स्थान भी अनेकों थे ।।
ध्वजा पताका भी सभी, वहाँ पे थे लहरा रहे। जगह जगह मूंगों के बने, चबूतरे भी सुशोभित थे ।।

उस नगर के बाहर इक, महा दिव्य उद्यान था। दिव्य वृक्ष लताओं से, वह उद्यान था भरा हुआ ।।
उसके मध्य में एक सुरम्य, सरोवर भी था बना हुआ। भंवरों की गुंजन थी वहाँ, और पक्षीगण का किलोल था ।।
झरनों के जलकण लिये, शीतल बसन्ती पवन से। तटीय तरुवर के डालन पात, मन्द मन्द थे हिल रहे ।।
इस विधि उसके तट की, शोभा को वह थे बढ़ा रहे। डाल डाल और पात पात, मुदित हो गीत ज्यों गा रहे ।।

वन्य पशु भी उस स्थल के, मुनिजन के समान ही थे। अहिंसा आदि व्रतों का, पालन वह सब करते थे ।।
इस कारण इक दूजे को, नहीं कष्ट कोई पहुंचा था रहा। कोकिल ध्वनि में ऐसा लगे, मानो हो कोई बुला रहा ।।
मार्ग में चलते यात्री गण, को ऐसा भ्रम हो जाता था। मानो यह उद्यान उन्हें, विश्राम हेतु ही बुलाता था ।।

उस अद्भुत वन में थे, जब पुरंजन घूम रहे। अपनी दिशा में आती हुई, इक सुन्दरी देख के वह चौंके ।।

उसके संग दस सेवक थे, जो थे अति महान् रथी। एक शत नायिकाओं का, प्रत्येक सेवक था पति।।
पांच फन वाला नाग एक, था द्वारपाल वहाँ का बना। सब ओर से ही उस सुन्दरी की, रक्षा था वह कर रहा।।
भोली भाली किशोरी वह, निज पति की खोज में थी चली। विवाह हेतु वह श्रेष्ठतम, वर को ही थी ढूंढ रही।।

नासिका उसकी दन्तावली, कपोल मुख थे अति सुन्दर। समकर्णों में दोनों ओर, थे झिलमिल करते कुण्डल।।
श्यामल वर्ण ही था उसका, कटि प्रदेश अति सुन्दर था। स्वर्ण करधनी पहरे थी, और पीत उसका अम्बर था।।
चलते हुए चरणों से उसके, नूपुर झंकार थी उठ रही। और क्या हम कह सकें, इक देवी सम थी भास रही।।

गज गामिनी वह बाला, थी निज स्तनों को ढांप रही। लज्जावश ही किशोरी वह, निज रूप सौन्दर्य थी छिपा रही।।
प्रेम से चंचल थी भौंहें, और तिरछी प्रेम भरी चितवन। इस प्रेम बाण के वार से, हुए आहत राजा श्री पुरंजन।।
लज्जायुक्त मुस्कान से, सौन्दर्य और भी बढ़ गया। उस युवती से फिर मधुर वचन, में पुरंजन ने कहा।।
पुरंजन बोला,
हे कमलनयनी मुझे कहो, तुम कौन हो कन्या हो किसकी? हे साध्वी इस पल तुम, कहां से हो आ रही?
इस पुरी के समीप कहो, कौन तुमको काम हो? जिस कारण इस पल यहां, हे भीरु तेरा आगमन हो?
ग्यारहवें इस संचालक के, अनुगामी दस सेवक हैं कौन? यह सखियां तेरी और इन सबका, अग्रणी है यह सर्प कौन?

हे सुन्दरी तुम हो साक्षात्, लज्जा का मूर्तिमान रूप। अथवा उमा रमा या, ब्राह्मणी का ही हो स्वरूप?
वन में मुनिवत् एकान्त वास, क्योंकर हो तुम कर रही? क्या निज पति देव को तुम, इस वन में हो ढूंढ रही?
चरण कमल की उनके तुम, कामना होकर रही। पूर्णकाम हो जायेंगे, यह सोच कर ही तेरे पति।।
हे देवी गर साक्षात्, कमला देवी ही तुम हो। तो तुम्हारे हाथ का, क्रीड़ा कमल फिर कहाँ गया?

हे सुभगे ऐसा जान पड़े, नहीं इनमें से तुम कोई हो। क्योंकि तोरे चरणों का, स्पर्श तो इस धरती से हो।।
यदि तुम हो कोई मानवी, तो यह प्रस्ताव मेरा सुनो। पराक्रमी हूँ अति वीर मैं, पति रूप में मुझे वरो।।
ज्यों लक्ष्मी जी प्रभु विष्णु संग, शोभित करें वैकुण्ठ को। उसी विधि मेरे संग तुम, अलंकृत करो इस नगरी को।।

तेरे नयन कटाक्ष से, आहत है मन मोरा हुआ। लज्जापूर्ण मुसकान और, भौहों का जो संकेत मिला।।
शक्तिशाली यह कामदेव, है मुझको पीड़ित कर रहा। इसलिये हे सुन्दरी, अब तुम मुझपर करो कृपा।।
लम्बी और काली अलकावली, से घिरा है तेरा मुखारविन्द। सुन्दर भौंहें और अति सुन्दर, हैं उनपे यह कमल नयन।।
तेरे वचन भी हों अति मधुर प्रिय, पर लज्जावश मुझे न देखो। तनिक मुखड़ा उठाकर के, हे देवी मुझको दरस तो दो।।
नारद बोले,
अधीर होई पुरंजन ने, जब करी याचना इस विधि। हंसकर फिर उस बाला ने, भी उसकी अनुमोदन की।।
वह भी राजा को देखकर, अति मोहित थी हो चुकी। अपनी मधुर वाणी में, उसने फिर यह वचन कहा।।
सुन्दरी बोली,
हे नरश्रेष्ठ मैं न जानूँ, किसने मेरी उत्पत्ति की। न ही जानूँ निज नाम का, या किसी अन्य का गोत्र भी।।
हे वीरवर हम सब यहाँ, आज इस पुरी में आये हैं। इसके सिवा नहीं जानूँ कुछ, क्योंकर यहाँ सिधाये हैं।।

मैं तो यह भी न जानूँ, किसने यह पुरी बनाई है। हमारे ही आवास के लिये, मानो यह नगरी सजाई है।।

हैं पुरुष यह मेरे सखा और, ललनायें हैं यह मेरी सखियाँ। सो जाने पर मेरे यह सर्प, करता है पुरी की रक्षा।।
अतिसौभाग्य है मेरा यह, जो आप यहाँ पधारे हैं। हे रिपुदमन तुम्हारा मंगल हो, विषय भोगेच्छा मन धारे हैं।।
निज सखा संग मिलकर मैं, पूर्ति उनकी कर दूँगी। जो भी भोग चाहेंगे आप, सामने आपके धर दूँगी।।

इस नवद्वार पुरी में प्रभु, वांछित भोगों को भोगें आप। मेरे द्वारा ही लाये गये, भोगों का आनन्द लें आप।।
शतश: वर्षों तक इसमें, आप हे देव निवास करें। इसमें रहते हुए मेरे संग, सब विषयों का उपभोग करें।।
जो न जाने रति सुख को, न भोग ही भोगना वह जानें। न परलोक की सोचें वह, न कल का ही विचार करें।।
पशु तुल्य ही जो जियें, क्यों उनके संग मैं रमण करूँ ? आपको छोड़ के भला किसी, अन्य के संग मैं क्यों जाऊँ?

इह लोक में गृहस्थाश्रम, में ही जो जन वास करे। सुयश स्वर्गादि दिव्य लोक, इस राह से ही वह प्राप्त करे।।
इस आश्रय में रहकर ही, सन्तान सुख भी मिल सके। धर्म अर्थ काम मोक्ष, इसके राही ही तो संधे।।
संसार त्यागी यतिजन जो, न इसकी कल्पना कर सकें। गृहस्थाश्रम के सुखों की, कल्पना से वह दूर रहें।।

महापुरुषों का कथन है यह, सबका आश्रय है गृहस्थ ही। पितर देव ऋषि जीव, तथा सम्पूर्ण प्राणी भी।।
निज कल्याण का हेतु तो, जानें गृहस्थाश्रम को ही। सबका ही कल्याण हो, इस आश्रम के ही राही।।
इस लोक में ही वीरवर, को स्त्री होगी मुझ समान। जिसे स्वत: प्राप्त हो सुप्रसिद्ध, उदार पति आप समान।।
आपको छोड़कर भला, दूजा क्यों कभी चाहेगी? भागवत् देने से मिला स्वर्ग, कैसे छोड़ वह पायेगी?

सर्पवत् गोलाकार कोमल, सुन्दर भुजायें आपकी। उनमें स्थान पा जाने को, कौन ललना न ललचायेगी?
अपनी मधुर मुसकान भरी, करुणामयी निज दृष्टि से। हम जैसी अबलाओं के, मनोताप शान्त करने के लिये।।
आप तो ऐसा रूप धर, पृथ्वी पर आप हैं विचर रहे। इस पृथ्वी पर आपसे, श्रेष्ठ कौन भला हो सके?
नारद बोले,
इस विध उस नर नारी ने, समर्थन इक दूजे का किया। सौ वर्ष तक पुरी में रह, पूर्ण आनन्द उपभोग किया।।
गायक गण भी मधुर स्वर में, राजा की कीर्ति गाते थे। ग्रीष्म ऋतु में राजा वह, जल क्रीड़ा मग्न हो जाते थे।।
उस नगर के नौ जो द्वार थे, सात थे नगरी के ऊपर। दो द्वार थे नीचे को, ऐसा था उसका परिसर।।
उस नगर के राजा के लिये, भिन्न देशों को प्रस्थान था। इस कारण ही इन द्वारों का, निर्माण था ऐसा किया गया।।

पांच द्वार थे पूर्वान्मुख, था एक द्वार दक्षिण की ओर। इक द्वार उत्तर ओर था, और थे दो द्वार पश्चिम की ओर।।
हे राजा उन द्वारों के, नाम तुम्हें अब कहता हूँ। नवद्वार उस पुरी के जो, विस्तार से उनकी कहता हूँ।।
खद्योता और अविर्मुखी, इक स्थान पे थे यह पूर्व द्वार। मित्र द्युमान को साथ ले, पुरंजन जाता उनसे बाहर।।
विभाजित नामक देश को, इन द्वारों से प्रस्थान था। मित्र को साथ लिये राजा, इनसे उस देश को जाता था।।

इसी विधि उस दिशा में, नलिनी नालिनी थे द्वार दो। इक ही स्थान पर यह द्वार, बनाये गये थे दोनों।।
उन द्वारों से अवधूत संग, राजा बाहर जाता था। सौरभ नाम के देश को, प्रस्थान वहाँ से पाता था।।

पूर्व का पंचम द्वार जो, नाम उस द्वार का था मुख्या। रसज्ञ और विपण ले संग, बाहर वहां से जाता था।।
बहूदन और आपण नाम के, देशों में वह था जाता। क्रमश: दोनों मित्रों का ही, इस यात्रा में सुयोग था।।

उस पुरी के दक्षिण की ओर, पितृहू नामक द्वार था। श्रुतधर नामक मित्र उनका, उस द्वार से राजा के संग था।।
दक्षिण पांचाल देश को, उस द्वार से राजा जाता था। इस यात्रा में श्रुतधर ही, साथ उसका निभाता था।।
उत्तर की ओर देवहू, नामक द्वार था नगर का। उस द्वार से श्रुतधर संग लिये, उत्तर पांचाल को जाता था।।

पश्चिम दिशा में आसुरी, नाम का था दरवाजा। दुर्मद को साथ लेकर उससे, वह ग्रामक देश को था जाता।।
निर्ऋति नाम का दूसरा, पश्चिम ओर जो द्वार था। उससे लुब्धक के साथ वह, वैशस देश को जाता था।।
निर्वाक पेशस्कृत नामक दो, अन्धे नागरिक थे इस पुर के। आंखों वाले नागरिकों के, अधिपति राजा पुरंजन थे।।
फिर भी इन नेत्रहीन की ही, सहायता थे वह सदा लेते। जहाँ तहाँ जाते थे वह, और सारे कार्य भी जो करते।।

राजा प्रधान सेवक अपने, विषूचीन को साथ ले। वह राजा जब भी आता, था अन्त:पुर में अपने।।
सुत दारा धन के कारण, मोह हर्ष आदि विकारों का। राजा पुरंजन को तत्क्षण, अनुभव इन सबका होता।।
भाँति भाँति के कर्मों में, चित्त था उसका फंस रहा। कामवश वह मूढ़मनी, रमणी द्वारा था ठगा गया।।
जो जो काज उसकी रानी, जब जब करने लगती थी। दुष्मति उस राजा की, अनुगमन उसीका करती थी।।

जब मद्यपान वह करती थी, वह भी मदिरा पीने लगता। उन्मत्त हो उस मदिरा से, उसी भाँति वह था विचरता।।
भोजन जब भी वह करती, यह भी भोजन करने लगता। जब कुछ भी चबाती वह, यह भी चबाने था लगता।।
इसी विधि जब गाती वह, यह भी था गाने लगता। उसके रोने पर ही वह, उसकी भाँति रोने लगता।।
हंसने पर हंसने लगता, और बोलने पर था बोलता। इस भाँति निज रानी का, अनुगमन ही था बस वह करता।।
जब दौड़ती वह तो धावता, खड़ी होने पे खड़ा होता। सोती तो सोता उसके साथ, बैठने पे आप भी बैठता।।

कभी कुछ सुनने लगती वह, तो यह भी सुनने लगता। कुछ देखती वह तो देखता, कुछ सूंघती वह तो सूंघता।।
किसी वस्तु को छूती वह, तो यह भी छूने लगता। कभी शोकाकुल होती प्रिया, तो स्वयं भी व्याकुल हो जाता।।
प्रसन्न उसको देखकर, प्रसन्न आप भी हो जाता। आनन्दित उसके होने पर, खुद भी आनन्द था वह पाता।।

राजा पुरंजन रानी के, द्वारा था यूं ठगा गया। सब प्रकृति परिकर ही, था उसको धोखा दे रहा।।
वह मूर्ख निज कामना के, हाथों था विवश हुआ। न चाहते हुए भी वह, था बन्दरवत् ही नाच रहा।।

नारद बोले,
पुरंजन ने इक दिन राजन्, अपना विशाल धनुष लिया। स्वर्ण कवच उसने पहना, अक्षय तरकश धारण किया।।
पञ्चाश्वों का रथ उसका, अति शीघ्र गामी वह था। ग्यारहवां सेनापति उसका, था उसका साथ निभा रहा।।
रथ में थे दो ईषादण्ड, दो पहिये और थी एक धुरी। तीन ध्वजदण्ड पांच डोरियां, इक लगाम इक सारथि।।
एक बैठने का था स्थान, पंचायुध और थे दो जुए। सात आवरण थे उस रथ के, साज बाज सुनहरे थे।।
पांच प्रकार की चालों से, वह अति द्रुतगति से चलता था। ऐसे रथ पे बैठकर, पुरंजन इक दिन बन को चला।।

यद्यपि प्रिया से क्षणिक वियोग, राजा के लिये था अति दुष्कर। किन्तु उस दिन आखेट का, व्यसन था उससे भी बढ़कर।।
प्रिया की भी परवाह न कर, वह गर्व से रथ पर चढ़ गया। धनुष बाण उठाकर के, आखेट करने वह चला।।
आसुरी वृत्ति थी हुई प्रधान, चित्त भी अति कठोर हुआ। दयाहीन पुरंजन ने बहुत, निरीह पशुओं का वध किया।।
अपने तीक्ष्ण बाणों से, उसने जंगली पशु मारे। बहुत से प्राणी इस विधि, अपने प्राण गंवा बैठे।।

मांसाहारी जो राजा हो, शास्त्र निर्दिष्ट ही कर्म करे। आवश्यकता अनुसार ही वह, केवल अनिषिद्ध पशु मारे।।
व्यर्थ पशु हिंसा न करे, शास्त्र का यह आदेश है। उच्छृंखल प्रवृत्ति नियन्त्रण को, ऐसा ही दिया आदेश है।।
जो नर इस विधि शास्त्रानुकूल, कर्म आचरण ही करता है। कर्मानुष्ठान से ज्ञान पा, वह कर्म लिप्त नहीं होता है।।

अन्यथा जो कर्मों में भी, मनमानी करता जाता है। ऐसा पुरुष अभिमान के, वशीभूत हो जाता है।।
कर्मों में बन्धकर फिर वह, गुण चक्र में उलझ ही जाता है। विवेक बुद्धि जब नष्ट हो, अधम योनियां पाता है।।
पुरंजन के भिन्न भिन्न, बाणों से आहत हुए। अनेकों प्राणी तड़प तड़प के, प्राण त्याग थे कर रहे।।
निर्दयता पूर्ण उसका यह, जीव संहार देख कर। दयालु पुरुष न सह सके, अति व्यथित हुए यह देख कर।।

खरगोश वराह भैंसे साही, नील गाय और कृष्ण मृग। अनेकों अन्य भी पशु वध, करके राजा गया अति थक।।
फिर व्यथित हो क्षुधा पिपासा से, वह राज महल में लौट आया। यथा योग्य उस स्नान किया, और भोजन से निवृत्त हुआ।।
तनिक विश्राम किया उसने, थकान भी कुछ कुछ दूर हुई। इस भाँति उस राजा की, आखेट अभियान यह पूर्ण हुई।।

फिर गन्ध चन्दन माला आदि, से सुसज्जित वह हुआ। सब अंगों में सुन्दराभूषण, को धारण उसने किया।।
तब उसको अपनी रानी, अपनी प्रिया की याद आई। कामोन्माद से फिर उसकी, मन पुन: थी भर आई।।
भोजनादि से तृप्त हुआ, हृदय में वह आनन्दित था। मद से वह उन्मत्त हुआ, और काम से व्यथित हुआ।।
अपनी सुन्दर भार्या को, वह खोजने फिर चला। किन्तु महल में कहीं भी, उसको न वह ढूंढ सका।।

व्यथित चित्त होकर उसने, कहा अन्त:पुर की स्त्रियों से। निज स्वामिनि संग पहले की तरह, मंगल कुशल तो हैं सब हे?
क्या कारण है घर की शोभा, पहले जैसी नहीं दीख रही? जिस घर में दो नहीं रहें, माता या पतिव्रता स्त्री।।
बिन पहिये के रथ समान, ऐसा घर हो जाता है। बुद्धिमान फिर दीन पुरुष सम, कौन वहाँ रह पाता है?

अत: बताओ ललनाओ, है वह सुन्दरी कहाँ गई। दु:ख सागर में डूबे हुए, मुझको जो सदा उबारती।।
विवेक बुद्धि को पग पग पर, वह जागृत करती रहती। मेरे जीवन के संकट सब, बार बार हरती रहती।।
दासी बोली,
हे स्वामी न जानें हम, आज आपकी प्रिया ने क्या ठानी। हे रिपुदमन बिन बिस्तर के, धरती पर है वह पड़ी हुई।।
नारद बोले,
उस स्त्री संग से पुरंजन का, विवेक नष्ट था हो चुका। धरा पे लेटी देख उसे, राजा अति व्याकुल हुआ।।
दु:खी हृदय हुए राजा ने, मीठे वचनों से समझाया। किन्तु निज प्रेयसी के आन्तर, प्रणय चिन्ह कोई न पाया।।
उसे मनाने में राजा, पुरंजन भी था अति कुशल। शनै: शनै: पत्नी को उस, मनाने का फिर किया यत्न।।
पहले उसके चरण छुए, फिर अंक में उसे बिठा लिया। बहुत प्यार से फिर राजा, रानी को यूं कहने लगा।।

पुरंजन बोला,
हे सुन्दरी ऐसे सेवक तो, हैं निश्चय ही दुर्भाग्य पूर्ण। जिनके अपराध से स्वामी, उन्हें दण्ड न दें शिक्षापूर्ण।।
सेवक को दिया स्वामी का दण्ड, तो उसपर अनुग्रह होता है। मूर्ख हितकारी स्वामी का, उपकार समझ नहीं पाता है।।
सुन्दर दन्तावली और मनोहर, भावों से है मुख शोभा बनी। अब इस क्रोध को दूर करो, मानो है मनस्विनी।।
इक बार जान अपना मुझको, अब मुखड़ा यह उठाओ तुम। प्रणयाग्रह लज्जा से झुका, मधु स्मित चितवन यह दिखाओ तुम।।
भ्रमर पंक्ति सम श्यामल सी, है सोहे तेरी अलकावली। उन्नत नासिका मधुर वचन, मनमोहिनी तेरा मुख कमल बना।।

यदि किसी अन्य ने कहीं, अपराध तुम्हारा है किया। ब्राह्मण कुल का गर वह नहीं, तुरन्त दण्ड उसे मैं दूँगा।।
त्रिलोकी या उससे बाहर, श्री हरि भक्तों को छोड़कर। नहीं देख सकूं मैं कहीं कोई, तेरे प्रति अपराध जो दे कभी कर।।
फिर निर्भय हो आनन्द से, इस जग में कहीं जी सके। तेरा अपराध कर सुन्दरी, कोई चैन से श्वास न ले सके।।

हे प्रिये आज तक तेरा मुख, कभी बिंदी हीन मैंने न देखा। मुरझाया हुआ उदास यह, या क्रोध से विकृत न देखा।।
कान्तिहीन और स्नेह रहित, भी यह मुख कभी न देखा। तेरे सुन्दर स्तन को अश्रुन् से, भीगा हुआ कभी न देखा।।
बिम्बाफल सदृश अधर तव, कैसे हैं केसर रहित हुए। हे प्रिये आज किस कारण तुम, ऐसा रूप हो धारे हुए।।

बिन तुमसे पूछे व्यसन वश, ही आखेट को चला गया। इस कारण ही जानूं प्रिये, मैं अपराधी हूं तेरा।।
फिर भी अपना जान मुझे, प्रसन्न तू मुझपे हो जाओ। काम के बाणों से बिंधा, अधीन सदा मुझे तुम पाओ।।
कौन स्त्री ऐसी होगी, निज प्रिय पति न स्वीकार करे? उचित कार्य के लिये उसे, कौन पत्नी न अधिकार दे?
नारद बोले,
इस विधि उस रूपमति ने, पुरंजन वश में किया भ्रम से। विहार वह करने लगी, आनन्दित उसको करते हुए।।
सुस्नान कर उस रानी ने, अनेकों ही श्रृंगार किये। भोजनादि से तृप्त हो, फिर राजा पास आगमन किये।।
राजा ने मनोहर मुख वाली, रानी का अभिनन्दन किया। इस विधि उस राजा ने, भी आनन्दित उसे किया।।

इक दूजे का परस्पर, आलिंगन उन्होंने किया। फिर एकान्त में मनभावन, रहस्य की बातों में खोया।।
ऐसा मोहित था राजा हुआ, था कामिनी में ही चित्त लगा। रात और दिन के भेद से, दुस्तर गति काल की न समझा।।
मदोन्मत्त था राजा हुआ, निज प्रिया की भुज पर सीस धरा। बहुमूल्य शैय्या पर वह, हर पल था निमग्न पड़ा।।
उस रमणी को ही जीवन का, परम फल वह माने था। अज्ञानावृत्त आत्म परमात्म, ज्ञान नहीं वह जाने था।।
कामातुर होकर हे राजन्, पुरंजन ने यूं विहार कर। पलक झपक के समान ही, उनकी युवावस्था बीत गई।।
हे प्रजापति उस रानी से, पुत्र हुए उनके ग्यारह सौ। एक सौ दस कन्यायें हुईं, मातृ पितृ सुयशकर जो।।
उदारता और सुशीलता, उनके यह थे सहज गुण। पुरंजन से उत्पन्न हुईं, पौरंजनी नाम थे इस कारणा।।
इतने में उस सम्राट की, दीर्घायु भी क्षय हुई। देखते ही देखते यूं, आधी आयु बीत गई।।

पांचालराज पुरंजन ने, फिर पितृवंश वृद्धि के लिये। अपने पुत्रों के विवाह, वधुओं से रचा दिये।।
इसी विधि कन्याओं हेतु भी, योग्य वर उसने ढूंढ लिये। और निज सुताओं के, विधिवत उसने विवाह किये।।
उन पुत्रों में प्रत्येक ने, सौ सौ पुत्रों को जन्म दिया। पुरंजन वंश यूं वृद्धि पा, पूरे पांचाल में फैल गया।।

इन पुत्र पौत्र गृह कोश सेवक, मन्त्री आदि में ममता हुई। इस कारण इन विषयों से, बन्धन उसकी अति दृढ़ हुई।।

फिर तेरी भाँति उसने भी, अनेक भोग की कामना की। दीक्षा लेकर यज्ञ की, हिंसामय अनेकों यज्ञ करी।।
इन घोर यज्ञों से उसने, देव और पितर आराधना की। अनेकों भूपतियों की भी, इस विध पूजा उस द्वारा हुई।।
जीवन पर्यन्त इस विधि, कुटुम्ब पालना उसने किया। आत्म कल्याण के साधन कर्म की, याद ही उसको नहीं रही।।
अन्त में वृद्धावस्था का, वह काल भी आ पहुँचा। जो स्त्री लम्पट पुरुषों को, लगता है बहुत ही बुरा।।

हे राजन् जानो चण्डवेग, नाम का एक गन्धर्व है। तीन सौ साठ महाबली, गन्धर्वों का वह अधिपति है।।
मिथुन भाव से स्थित इस संग, हैं उतनी ही गन्धर्वनियाँ। कृष्ण और शुक्ल वर्णों में, हैं बंटी यह सब गन्धर्वनियाँ।।
भोग विलास सामग्री से, जो भरी हैं हर पल ही रहती। क्रमश: चक्र लगाकर यह, इस नगरी को हैं लूट रही।।

गन्धर्वराज चण्डवेग के, अनुचरों ने जब आ घेरा। पुरंजन के उस नगर को, जब लूटना उन्होंने शुरू किया।।
पंचफन धारी सर्प तब, रोकने उनको खड़ा हुआ। उस महा प्रजागर ने, गन्धर्व सेना का विरोध किया।।
पुरंजनपुरी का रक्षक यह, सर्प अति बलवान था। सौ वर्ष तक यह अकेला, युद्ध में संलग्न रहा।।
सात सौ बीस गन्धर्व और, गन्धर्वनियों का था सामना। पर यह भी था सावधान, निज आत्म बल इस न छोड़ा।।

एकमात्र निज सम्बन्धी, देखा राजा ने प्रजागर को। बहुत से वीर विरोधियों से, अकेले ही युद्ध करते को।।
बलहीन हुआ उसे देखकर, राजा चिन्तित हो गया। राष्ट्र नगरवासिन् और सब, बन्धुन का भी यही हाल था।।
पांचाल देश के नगर में, था इतने दिनों से रह रहा। दूतों द्वारा कर को पाकर, विषय भोगों में था मस्त हुआ।।
स्त्री के वशीभूत था वह, इस कारण सत्य न देख सका। आवश्यम्भावी इस भय से, वह तो था अनभिज्ञ रहा।।

हे बर्हिष्मन् इन्हीं दिनों, इक कन्या थी भटक रही। काल की इस कन्या को, उचित वर की खोज थी।।
फिर भी उस कन्या को, स्वीकार किसी ने नहीं किया। त्रिलोक में भटक भटक कर भी, उचित वर उसे नहीं मिला।।

काल की कन्या जरा ही है, है वह सर्व भाग्य हीना। इस कारण लोगों ने उसे, दुर्भगा नाम ही है दिया।।
राजर्षि पुरु ने एकबार, स्वेच्छा से था उसे वरा। पिता को निज यौवन देने, हेतु ही उपक्रम यह करा।।
इससे प्रसन्न होकर उसको, था राज्य प्राप्ति वर दिया। इस विधि काल कन्या ने फिर, राजा का प्रत्युपकार किया।।
इक दिन ब्रह्म लोक से, जब पृथ्वी लोक पर मैं उतरा। तब उस काल कन्या ने, भ्रमण करते मुझे देखा।।
नैष्ठिक ब्रह्मचारी जान के भी, मुझको वरने को उद्यत थी। कामातुर उस कन्या को, नहीं उचित अनुचित का ज्ञान था।।
जब उसकी इस याचना को, स्वीकार मैंने नहीं किया। अत्यन्त कुपित होकर उसने, मुझको दु:सह शाप दिया।।
तुमने मेरी प्रार्थना को, है स्वीकार जो नहीं किया। इक स्थान पे अधिक न टिक पाओ, यह है तुमको अभिशाप मेरा।।

तब मेरी ओर से निराश हो, मुझसे सम्मति उसने ली। यवन राज भय सम्मुख जा, पति रूप में वर उससे मांगी।।
कालकन्या बोली,
उसके पास फिर जा के कहा, हे वीरवर श्रेष्ठ हैं यवनों में। प्रेम करूँ मैं आपसे, और चाहूँ पति के रूप में।।
आप प्रति जो भी कभी, संकल्प किसी ने है किया। ऐसा है विधान यह, व्यर्थ नहीं वह कभी होता।।

शास्त्र अथवा लोक की, दृष्टि से है जो देने योग्य। जो पुरुष उस वस्तु का, दान न कर करे उपभोग।।
अथवा शास्त्र की दृष्टि से, जो लेने का अधिकारी हो। फिर भी ऐसा दान करें, जिसको नहीं स्वीकार हो।।
वह दोनों ही हैं दुराग्रही, और कहें अति मूढ़ हैं। अतैव अवस्था दोनों की, अति शोचनीय और विमूढ़ है।।

हे भद्र आपकी सेवा में, उपस्थित हुई हूँ इस पल मैं। स्वीकार करें मुझको हे नाथ, अनुगृहीत होऊँगी मैं।।
पुरुष का सर्वोत्तम धर्म, है दीनों पर दया करना। इस कारण मुझे दीन जान, उपेक्षा मेरी न करना।।

नारद बोले,

काल कन्या की बात सुन, यवन राज फिर हंस दिये। विधाता का इक गुप्त कार्य, करने हेतु यह वचन कहे।।

भय बोला,

योगदृष्टि से देखकर, तव योग्य पति है ढूंढ लिया। सबका अनिष्ट करती है तू, तुझे कोई स्वीकार नहीं करता।।
तू किसीके मन को न भाये, इस कारण सब ही दूर रहें। अब एक ही विधि जो है बची, उसको कहूं तेरे लिये।।
इस कर्म जनित लोक का तू, अलक्षित होकर भोग कर। मेरी सेना लेकर तू जा, और बलात्कार से भोग कर।।
इस सेना के आसरे, सब प्रज को नष्ट तू कर सके। समर्थ तेरी के सामने, फिर कोई भी न टिक सके।।

यह प्रज्वार नाम का, है इक मेरा प्रिय भ्राता। तुमसे यह प्रस्ताव करूँ, तू बहिना मेरी बन जा।।
तुम दोनों के साथ मैं, भयंकर सेना संग में ले। सब लोकों में विचरूँ फिर, अपनी अव्यक्त ही गति से।।

नारद बोले,

हे राजन् तबसे भय यवन, के आज्ञाकारी सैनिक। प्रज्वार और काल कन्या संग, पृथ्वी तल पर हैं रहे विचर।।
एकदा वृद्ध सर्प से सुरक्षित, पुरंजन पुरी को उन्होंने घेरा। सब प्रकार की सुख सुविधा, वहाँ थी सारी सम्पदा।।
वशीभूत हो जिसके पुरुष यह, शीघ्र नि:सार है हो जाता। बलात्कार से काल की उस, कन्या ने प्रजाजन को भोगा।।
उस काल कन्या से भुक्त पुरी, का नाश यवन भी करने लगा। चहुँ ओर से भिन्न द्वारों से घुस, विध्वंस वह उसको करने लगा।।

उस पुरी के स्वामीत्व का, अभिमान था जिसमें भरा। ममता ग्रसित बहु कुटुम्बी, वह पुरंजन राजा था।।
काल कन्या से ताड़ित, निज पुरी को उसने जब देखा। उसके मन को भी अनेकों, क्लेशों ने फिर आ घेरा।।
आलिंगन उस कन्या का पा, वह राजा था श्री हीन हुआ। विषयासक्ति कारण वह, अति दीन था हो गया।।
विवेक शक्ति भी नष्ट हुई, ऐश्वर्य भी सारा लुट गया। यवनों ने बलात्कार से, नष्ट भ्रष्ट था सब किया।।
उसने देखा सारा ही नगर, नष्ट भ्रष्ट है हो गया। पुत्र पौत्र भृत्य आमात्य, सभी वर्ग प्रतिकूल हुआ।।
सभी अनादर करने लगे, स्त्री भी स्नेह रहित हुई। मेरी देह भी काल कन्या, के ही वश में है पड़ी।।
पांचाल देश शत्रुओं के, हाथ में पड़कर नष्ट हुआ। यह सब देख पुरंजन तो, महाचिन्ता में डूब गया।।
किस विध इससे छूट सकूँ, यह ही था वह सोच रहा। इस विपदा से मुक्ति का, उसे कोई उपाय न दीख पड़ा।।

जिन उपभोगों का सार था, काल कन्या ने छीन लिया। उन्हीं की लालसा से राजा, अति व्यथित और दीन हुआ।।
बन्धु जनों के स्नेह से, वह वंचित हो गया। परलोक की गति का तो, उसको ध्यान ही कभी न था।।
उसका चित्त तो बस केवल, पुत्र स्त्री में था लगा। उनकी ललना पलना में, ही व्यस्त था रहता सदा।।

उन सबसे बिछुड़ने की, तनिक न इच्छा उसकी थी। फिर भी विवश होकर उसे, वह पुरी छोड़नी ही पड़ी।।
क्योंकि उस नगरी को तो, गन्धर्व यवन ने घेरा था। काल कन्या ने भी उसे, कुचल के ही था रख दिया।।
तब यवनराज श्री भय के, ज्येष्ठ भ्राता प्रज्वार ने। उस पुरी को अग्नि में झोंका, निज भ्राता का हित मन में धरे।।

अति व्यथित हुआ राजा, उस पुरी को जलता देखकर। सन्तान सेवक पुरवासी, कुटुम्ब की स्वामिनी संग लेकर।।
कालकन्या के वशीभूत, अपनी नगरी को देख कर। व्यथित हुआ वह सर्प भी, जो उसकी रक्षा रहा था कर।।
उसके भी निवास पे था, यवनों का अधिकार हुआ। और प्रज्वार भी बार बार, आक्रमण था उसपे कर रहा।।

उस नगर की रक्षा करने में, जब पूर्णतय: असमर्थ हुआ। नष्ट भ्रष्ट हुई नगरी का, बचाव नहीं था कर सकता।।
ज्यों जलते हुए वृक्ष की, कोटर में जो सर्प बसे। उससे निकलने के लिये, फिर वह सारे यत्न करे।।
उसी विधि महाकष्ट से, कांपने लगा वह सर्प भी। उसने भी वहाँ से जाने की, उस पल फिर इच्छा करी।।

थे क्षीण हुए वा अंग प्रत्यंग, छीनी शक्ति गन्धर्वों ने। उसे जाते देख जब रोक दिया, यवन रूप उन रिपुओं ने।।
तब अति पीड़ित होकर के, वह भी रुदन करने लगा। अपनी पीड़ा को इस विध, प्रकट वह फिर करने लगा।।

गृहासक्त पुरंजन तो, था देह गेह में अति आसक्त। मैं और ममत्व भाव से, थी बुद्धि हुई पूर्णतय: नष्ट।।
पत्नी के प्रेम पाश बन्धा, वह अति दीन था हो चुका। अब इन सबसे बिछुड़ने का, समय उपस्थित हो गया।।
तब निज पुत्री पुत्र पौत्र, पुत्रवधु और दामाद। गृह सेवक अन्य पदार्थ भी, था जिनमें ममत्व भाव।।
भोग तो कभी का छूट चुका, पर संग था वहाँ से नहीं गया। उन सबके लिये भी वह, इस विधि चिन्ता करने लगा।।
पुरंजन बोला,
हाय मर्म भार्या तो है, विशाल गृहस्थ की स्वामिनी। परलोक को जब जाऊँगा मैं, निर्वाह कैसे कर पायेगी?
असहाय ही होकर फिर यह, चिन्ता ग्रस्त हो जायेगी। इन बाल बच्चों की चिन्ता, ही इसको डस जायेगी।।

मेरे भोजन किये बिना, यह भोजन न कर पाती थी। मेरे स्नान बिना यह भार्या मेरी, स्नान भी न कर पाती थी?
सदा ही मेरी सेवा में, तत्पर हर क्षण रहती थी। कभी रूठ मैं जाता था, तो भयभीत हो जाती थी।।
कभी डांट भी मैं देता उसे, तो मौन ही थी यह हो जाती। इसी विधि सब भाँति यह, थी साथ मेरा देती जाती।।

गर भूल कहीं मैं कर देता, तो सचेत मुझको करती। परदेस कभी गर जाता मैं, तो क्षीण अति यह हो जाती।।
इतना अधिक है स्नेह मुझपर, नहीं बिरह कभी भी सह पाती। वीरों की मां होने पर भी, क्या मेरे बिना रह पायेगी?
गृहस्थाश्रम की गाड़ी यह, अकेली कैसे चलायेगी? मेरे चले जाने पर क्या, यह जीवित भी रह पायेगी?

एकमात्र मेरे ही सहारे, रहते हैं यह शिशु मेरे। पुत्रियां और पुत्र भी, कैसे जीवन धरेंगे ये?
बीच सिन्धु में टूटी नाव के, यात्री ज्यों व्याकुल होएं। मेरे जाने पे यह सब, उसी प्रकार से रोयेंगे।।
नारद बोले,
यद्यपि ज्ञान बुद्धि से था, ऐसा शोक अनिवार्य नहीं। फिर भी अज्ञान के कारण ही, थी ऐसी दीन वा सोच बनी।।
निज स्त्री पुत्रादि के लिये, पुरंजन शोकाकुल था हुआ। उसी समय उसे पकड़ने, भय यवन वहाँ आ धमका।।
जब पशु समान उसे बान्धकर, यवन लोक संग ले चले। अति आतुर और शोकाकुल हो, उसके अनुचर भी संग चले।।

जिस सर्प को बलवत् ही, यवनों ने था रोक लिया। वह भी पुरी को छोड़कर, इनके साथ ही चल दिया।।
उसके जाते ही सारा नगर, छिन्न-भिन्न ही हो गया। और अपने कारण में, पुन: लीन सब हो गया।।
इस भाँति जब महाबल, यवन ने बलपर्वूक खेंचा। पुरंजन भी अज्ञान के, पूर्णतय: वशीभूत हुआ।।
निज पुरातन और हितैषी, मित्र को भी वह भूल गया। अविज्ञात को उस पल भी, याद उसने नहीं किया।।

निर्दयी बन उस राजा ने, जिन यज्ञपशुन् की बली थी दी। उस पीड़ा की स्मृति से उन, हो क्रुध कुठार से घात करी।।
अनन्त काल तक वह राजा, विवेक हीन हो पड़ा रहा। घोर अन्धकार में, निरन्तर कष्ट था भोग रहा।।
स्त्री की आसक्ति से, दुर्गति यह पाई थी उसने। इस कारण ही इस निमित से, मुक्ति कहीं भी न दीखी उसको।।

अन्त समय में भी उसको, चिन्तन स्त्री का ही था बना। इस कारण अगले जन्म में, नारी का उसे रूप मिला।।
नृपश्रेष्ठ विदर्भ राज की, पुत्री बनकर जन्म लिया। महा सुन्दरी कन्या बन, उनके घर उत्पन्न हुआ।।
जब सुन्दर राजकुमारी यह, विवाह अवस्था को पाई। तब उसके स्वयंवर की, घोषणा उसके पिता ने की।।
सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी वीर, ही कोई ब्याह सकेगा इसे। ऐसी सुनी अनेकों ही, श्रेष्ठ राजा वहां पहुँचे।।
रिपु दमन पाण्डय नरेश, मलयध्वज भी वहाँ पहुँचे। समरभूमि में सबको जीत, कन्या को उन्होंने वरण किये।।

उससे राजा मलयध्वज के, श्यामलोचना कन्या हुई। उसके अनुज सात पुत्रों, को रानी ने फिर जन्म दी।।
आगे चलकर वही सात, द्रविड़ देश के राजा हुए। इसी विधि उसके कुल के, फिर वर्धन होते रहे।।
उनमें से प्रत्येक पुत्र के, फिर अनेकों पुत्र हुए। जिनके वंशधर पृथ्वी को, मन्वन्तर अन्त तक भोगेंगे।।

ज्येष्ठ पुत्री मलयध्वज की, थी सुशील अति व्रतधारी। उचित समय के आने पर, ऋषि आगस्त्य ने वह वरी।।
उससे दृढ़च्युत नाम का, पुत्र उत्पन्न उनका हुआ। फिर दृढ़च्युत के पुत्र का, नाम इध्मवाह हुआ।।
मलयध्वज ने अन्त में, सारी पृथ्वी को बांट दिया। निज पुत्रों में इस विस्तृत राज्य, का उन्होंने विभाग किया।।
श्री कृष्ण अराधना के हुत, वह राजर्षि चले गये। मलय पर्वत पर उन्होंने, फिर अपने डेरे किये।।

ज्यों चन्द्रमा का चान्दनी, हर ही जगह अनुगमन करे। उसी विधि मत्तलोचना, वैदर्भी के आचरण थे।।
निज घर पुत्र और भोग सभी, उस सती ने त्याग दिये। सर्व विधि पाण्ड्य नरेश, के ही उसने अनुसरण किये।।
चन्द्रवसा ताम्रपर्णी वटोदका, थी वहां तीन नदियाँ। उनके पावन जल में वे, प्रतिदिन स्नान थे करते वहाँ।।
निज तन और अन्त:करण को, अति निर्मल वह करते थे। कन्द बीज मूल फल फूल, पत्ते तृण भक्षण करते थे।।

निर्मल जल पे निर्वाह करी, अति कठोर उन तप किया। धीरे धीरे उनका तन, अति क्षीण ही हो गया।।
राजा ने पाई समदृष्टि, शीतोष्ण वायु वर्षा में रहे। क्षुधा पिपासा प्रिय अप्रिय, सुख दु:ख आदि सब द्वन्द्व जीते।।

वासना को निर्मूल किया, उन्होंने तप उपासना से। यम नियमादि द्वारा, इन्द्रिय प्राण मन वश में किये।।
फिर वह निज आत्म में ही, ब्रह्म भाव को पा गये। दिव्य शत वर्षों तक यूं, वह जड़वत् ही बैठे रहे।।
निश्चल भाव से एक ही, स्थान पे था आसन लगा। श्री कृष्ण में उनकी दृढ़ भक्ति थी, निज तन आभास ही नहीं रहा।।

गुरु रूप हरि ने स्वयं, था उनको जो उपदेश दिया। निज अन्त:करण में भी, था स्फुरित ज्ञान जो हो रहा।।

विशुद्ध विज्ञान दीप के, प्रकाश में उन्होंने यह देखा। अन्त:करण की वृत्ति का, प्रकाशक आत्मा है सदा।।
स्वप्नावस्था की भाँति, व्याप्त है सब उपाधियों में। पर वास्तव में तो सदा, इन सबसे ही वह पृथक् रहे।।
ऐसा अनुभव पाकर वह, उदासीन ही हो गये। निज देह आदि उपाधि के प्रभाव कोई वहाँ नहीं रहे।।

फिर परं ब्रह्म में आत्म को, और आत्म में ब्रह्म को देखा। अभिन्न इनको देख कर, सब ही चिन्तन मौन हुआ।।
अभेद चिन्तन का भी फिर, स्वत: त्याग ही हो गया। वह सर्वथा शान्त हुए, और पूर्ण मौन ही हो गया।।
पति परायण वैदर्भी, भी सब भोगों को त्यागकर। परम धर्मज्ञ पति की, सेवा में प्रेम से थी तत्पर।।

थी चीर वस्त्र धारण किये, व्रतादि का पालन करती। उपवास आदि के कारण वा, तन अति क्षीण थी हो गई।।
केश थे उसके उलझ गए, और जटायें थीं बनीं। उस समय निज पति संग, सुशोभित थी वह हो रही।।
धूम रहित अग्नि के संग, अंगारों को ज्यों प्राप्त हुई। अग्नि की ही शान्त शिखा, ज्यों रही हो पड़ी कहीं।।

पति तो थे परलोक गये, पर आसन स्थित थे पूर्ववत्। बिन जाने इस रहस्य को, थी वह सेवा में ही रत।।
चरण सेवा करते समय, जब ठण्डा चरणों को पाया। तब झुण्ड से बिछुड़ी मृगी समान, चित्त उसका व्याकुल हुआ।।
बीहड़ वन में पाया निज को, दीन हीन अवस्था में। शोकाकुल अश्रुधारा से, स्तन उसके थे भीग रहे।।
जोर जोर से वह सती, रुदन तब करने लगी। रुदन करी निज पति प्रति, फिर वह यूँ कहने लगी।।
वैदर्भी बोली,
उठिये उठिये हे राजर्षे, सागर से घिरी यह वसुन्धरा। परिपन्थिन् और धर्महीन, राजाजन से आक्रान्त धरा।।
रक्षा इसकी कीजिये, यही धर्म है आपका। ऐसे दुष्कर समय में देव, यही कर्म है आपका।।
नारद बोले,
पति के साथ ही वन को, वह अबला थी चली गई। रो रो कर विलाप करी, वह पति चरण में गिर गई।।
लकड़ी की चिता बनाकर के, पति शव उसपे धर दिया। अग्नि दे उस चिता को फिर, सती होने का निर्णय लिया।।
तत्क्षण वहाँ पुरातन मित्र, आत्म ज्ञानी ब्राह्मण पहुँचा। रोती हुई उस अबला को, मधुर वाणी में उसने कहा।।
अविघात मित्रने बोला,
है कौन तू किसकी है पुत्री, और किसके लिये तू शोक करे? नरश्रेष्ठ यह कौन हैं, जो इस शैय्या पर सो रहै?
मैं वही मित्र तुम्हारा हूँ, क्या तू मुझको न पहचाने? विचरन् था तेरा मेरे संग, याद भूली क्या सब मन से?

हे सखे क्या कभी तुम्हें, याद भी अपनी आती है? अविज्ञात तुम्हारा सखा था मैं, स्मृति क्या कोई बाकी है?
पृथ्वी के भोग भोगन हेतु, आवास की तुमको खोज थी। इस कारण ही सखा सुनो, तूने साथ मेरा छोड़ दी।।
हे आर्य तुम और मैं दोनों, इक दूजे के मित्र थे। हम दोनों ही नित्य मुक्त, मानस निवासी हँस थे।।
सहस्त्रों वर्ष तक दोनों ही, बिना निवास के रहतेथे। इक दूजे के साथ ही, नित्य निरन्तर रहते थे।।

किन्तु विषय उपभोग की, जब इच्छा तेरी प्रबल हुई। पृथ्वी तल पर ही प्रिय, तुमने तब आगमन करी।।
यहां भ्रमण करते, करते रमणीय स्थान तुमने देखा। इक नारी का रचा हुआ, विचित्र ही वह नगर था।।

नव द्वार उस नगर के थे, और थे वहां पांच उद्यान। छ: थे वैश्य कुल वहां, और बने थे पांच बाजार।।

तीन परकोटे वाले नगर का था इक द्वारपाल। पांच उपादान कारण, की रचना था वह संसार।।
स्वामिनी इस स्थान की, एक स्त्री थी बनी। जिनकी बातें सब करी, उसके ही अधीन थी।।

इन्द्रियों के पांच विषय, हे राजा वह बगीचे थे। नौ थे इन्द्रिय छिद्र द्वार, तेज अन्न जल परकोटे थे।।
मन और पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, इन छ: को वैश्यकुल कहें। कर्मेन्द्रिय रूप क्रिया शक्ति, ही उसका बाजार बने।।
पंचभूत ही अक्षय उसके, उपादान साधन थे भये। स्वामिनी थी इनकी बनी, बुद्धि शक्ति ही कहें।।
ऐसा था यह नगर सुनो, इसमें प्रवेश को पाते ही। ज्ञान शून्य हो जाता पुरुष, निज स्वरूप को भूल करी।।

उस नगर में उसकी स्वामिनी, के फंदे में पड़कर के। उसके साथ विहार करी, तुम भी स्वरूप निज भूल गये।।
उसी के संग से आज यह, दुर्दशा तुम्हारी है हुई। हे भ्राता तुम याद करो, विस्मृति जो तुमको हो गई।।
न तो हो तुम जान लो, विदर्भराज की पुत्री ही। न यह वीर मलयध्वज ही, है तुम्हारा कोई पति।।
जिसने नवद्वार की पुरी में, था तुझको किया बन्दी। उस पुरंजनी के भी नहीं, हो सको तुम कभी पति।।

पूर्व जन्म में तुम निज को, ही पुरुष थे मान रहे। और सती के रूप में ही, इस पल अपने को जान रहे।।
यह सब तो सच ही जानो, विस्तृत सारी मेरी माया है। वास्तव में न तुम पुरुष हो, न स्त्री रूप धराया है।।
हम दोनों तो हँस हैं, अक्षय हमारा साथ हो। वास्तविक स्वरूप हमारा जो, उसका अब अनुभव करो।।

हे मित्र जो हूँ मैं ईश्वर रूप, वह ही जीव रूप तुम हो। विचार कर राही जानो यह, नहीं मुझसे तनिक भी भिन्न तू हो।।
वास्तव में मैं भी हूँ वही, जो तुम मेरे मित्र हो। ज्ञानी पुरुष यह जान सकें, भेद तनिक वहाँ कोई न हो।।

ज्यों कोई पुरुष प्रतिबिम्ब निज, दर्पण में ही देख ले। या किसी अन्य के नेत्र में, प्रतिबिम्बित उसको देख ले।।
वास्तव में इन दोनों में, कोई भेद न हो सके। एक ही आत्म विद्या और, अविद्या उपाधि भेद से।।
अपने को ही ईश्वर और, जीव रूप में देखा करे। सच तो यह इन दोनों में कभी, कोई भेद न हो सके।।

इस भाँति जब परमहँस ने, सावधान उसको किया। मानसरोवर का वह हँस, स्वरूप में अपने जा बैठा।।
मित्र के वियोग में, जो था अपने को भूल गया। उस मित्र के संयोग से, पुन: आत्म ज्ञान के प्राप्त हुआ।।

प्रचीनबर्हि तेरे लिये, उपाख्यान यह सुनाया है। परोक्ष रूप से आत्म ज्ञान का, दिग्दर्शन यह कराया है।।
क्योंकि जगत् के कर्ता जो, परम देव जगदीश्वर को। परोक्ष रूप से ही उनका, वर्णन यह अति प्रियतर हो।।
प्राचीनबर्हि बोला,
आपके श्री वचनों का प्रभु, अभिप्राय नहीं पहचान सका। है सुगम विवेकी जन के लिये, मैं कर्म भ्रमित न जान सका।।
नारद बोले,
पुरंजन नगर का निर्माता, जान लो राजा जीव है। अपने लिये करे देह निर्माण, शरीर ही तो उसका पुर है।।
कभी एक पदी कभी द्विपदी, त्रिपदी चतुष्पदी रूप धरे। कभी बहुत पैर या बिन पैरों, के ही पुर निर्माण करे।।
अविज्ञात नामक सखा, जीव का परमेश्वर है। किसी नाम या गुण कर्म से, रहे वह अज्ञात है।।

जब सुख दु:ख सब ही प्राकृत, विषयों की जीव ने इच्छा की। उनके उपभोग के लिये, नव द्वार पुरी ही श्रेष्ठ लगी।।

द्वौ हस्त द्वौ पाद युक्त, मानव देह ही भाई उसे। अन्य शरीरों की अपेक्षा, यह ही थी सुहाई उसे।।
बुद्धि या अविद्या को, ही जानो तुम पुरंजनी। इस नारी के कारण ही, अहं ममत्व ने जन्म ली।।
देह इन्द्रियों में जानो, अहं ममत्व जब जाग उठा। इसी का आश्रय ले तन में, जीव ने विषय उपभोग किया।।

दस इन्द्रियाँ ही हैं उसके मित्र, जो ज्ञान लें और सब कर्म करें। इन्द्रियों की सब वृत्तियों को, ही उनकी सखियाँ कहें।।
प्राण अपान व्यान उदान, समान ही हैं वह पांच फन। इन्हें धार प्राण वायु रूपा, सर्प है नगर की रक्षा मग्न।।
दोनों प्रकार की इन्द्रियों का, नायक यह है महाबली। ग्यारहवां योधा यह ही है, जो रहे है सबसे अग्रणी।।
शब्दादि जो पांच विषय, पांचाल देश जानो यह है। इसके बीच ही बसा हुआ, नौ द्वारा वाला नगर यह है।।

उस नगर में इक स्थान पर, जो दो दो द्वार थे कहे गये। नेत्र गोलक दो नासिका छिद्र, और दो कर्ण उन्हें जान ले।।
इनके साथ फिर मुख है द्वार, लिंग और गुदा भी दो भये। इन सबको मिलाकर के, इनकी गणना नौ करें।।
इन्हीं के द्वारा जीव यह, इन्द्रियों को भी संग लेकर। जाये बाह्य विषयों में, और फिर लौटे भ्रमण कर।।
दो चक्षु दो नासिका छिद्र और एक मुख हैं पूर्व द्वार। दाहिना कान है दक्षिण का, और बायां कान है उत्तर द्वार।।

गुदा और लिंग दो आधो छिद्र, जानो पश्चिम के द्वार हैं। खद्योता अविर्मुखी जानो, इक स्थान पे कहे द्वौ द्वार हैं।।
नेत्र गोलक हैं वह द्वार, रूप विभाजित देश है। इन द्वारों की सहायता से अनुभव करे सब जीव है।।
चक्षु इन्द्रिय को ही पहले, द्युमान नामक सखा था कहा। इसको ही संग लेकर के, विभ्राजित देश का भ्रमण हुआ।।

नासिका छिद्र ही दोनों यह, नलिनी और नालिनी द्वार हैं। उनका विषय है गन्ध यह, सौरभ देश का नाम है।।
घ्राणेन्द्रिय ही जानें इसे, अवधूत नामक जो मित्र है। मुख्य नामक है द्वार मुख, वागिन्द्रय विपन्न उसमें स्थित है।।
रसना इन्द्रिय के जानें, रसज्ञ रसविद् मित्र हैं। भिन्न द्वारन् के लिये, भिन्न भिन्न ही मित्र हैं।।

वाणी व्यापार आपण है, और भिन्न भिन्न अन्न है बहूदन। दायां कर्ण है पितृहू, और देवहू है बायां कर्ण।।
कर्मकाण्ड है प्रवृत्ति मार्ग, निवृत्ति है उपासना और शास्त्र। यह ही क्रमश: दक्षिण और, उत्तर के हैं देश पांचाल।।
श्रुतधर की सहायता से, कर्णेन्द्रिय इसे ग्रहण करे। पितृयान और देवयान, पथ से क्रमश: जीव जाये।।

आसुरी नामक लिंग ही, पश्चिम का है द्वार कहें। स्त्रीप्रसंग ग्रामक है देश, उपस्थेन्द्रिय दुर्मद मित्र कहें।।
गुदा निर्ऋति नाम का, पश्चिम का दूजा द्वार है। नरक वैशस नामक है देश, पायु इन्द्रिय लुब्धक मित्र है।।
इनके अतिरिक्त दो पुरुष, थे अन्धे भी कहे गए। उनका रहस्य भी हे राजन्, अब तू मुझसे जान ले।।
हाथ और पांव हैं वह, कुछ भी न वह देख सकें। फिर भी इनकी सहायता ले, सगरे कर्म ही जीव करे।।

हृदय ही है वह अन्त:पुर विषूचि जहाँ पे रहता है। प्रधान सेवक जीव का, अपने को माने बैठा है।।
सत्वादि गुणों के कारण ही, हर्षादि मन में विकार उठें। प्रसन्नता और मोह को, ही जीव फिर प्राप्त करें।।

महारानी पुरंजनी को, जान लो जीव की ही बुद्धि। स्वप्नावस्था में जिस विध, है प्राप्त विकारों को होती।।
अथवा जागृत में सदा, विकृत इन्द्रिय आदि करती। उसके गुणों से लिप्त जीवात्म, अनुकरण उसी का है करती।।
यद्यपि सत्य तो इतना है, वह केवल साक्षी मात्र है। निर्लिप्त ही वह रहे सदा, न उपजे कोई विकार है।।

यह तन ही जानो वह रथ है, जिसमें पांच हैं अश्व जुते। दुष्ट रूप में काल समान ही, उनका वेग है जान पड़े।।
पर वास्तव में यह जान लो, गति हीन ही है यह रथ। पाप पुण्य दो पहियों पर, ही है खड़ा अविचल यह रथ।।
तीनों गुण हैं ध्वजा उसकी, पंच प्राण बनी डोरी। मन ही है लगाम उसकी, और बुद्धि ही है सारथी।।

सुख-दु:ख के द्वन्द्व बने दो जुए, और हृदय में है आसन बनी। पंचेन्द्रियों के विषय सभी, उसमें रखे आयुध हैं यही।।
त्वक् आदि सप्तधातु की, है वहां आवरण बनी। इस विधि ही इस रथ की, है विचित्र रचना हुई।।

पंच कर्मेन्द्रियां हैं जो, वह पांच प्रकार की हैं गतियाँ। आसीन रथी मृगतृष्णावत्, विषयों की ओर है दौड़ता।।
मन सहित दस इन्द्रियाँ ही, उसकी सेना है बनी। पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अन्याय पूर्वक विषय पकड़ी।।
यह ही तो उस जीव का, है आखेट का खेलना। बिन सोचे समझे ही है, व्यसन की यह अधीनता।।

काल का ज्ञान जो दे उसे, संवत्सर ही है चण्डवेग। तीन सौ साठ उसके अधीन, बताये गए हैं जो गन्धर्व।।
वह दिन हैं और इतनी ही, गन्धर्वनियाँ हैं रात्री बनीं। क्रमश: भ्रमण यह कर कर के, आयु को क्षभण हैं कर रहीं।।

अब लो कालकन्या की सुनो, साक्षात् वह वृद्धावस्था है। कोई भी पुरुष इस जग में, नहीं स्वेच्छा से उसे वरता है।।
फिर यवनराज मृत्यु ने ही, उसे अपनी बहिन बना लिया। लोक संहार हेतु उन्होंने, इसको निमित्त स्वीकार किया।।
यवनराज के पैदलसैनिक, हैं यह आधि और व्याधि। पीड़ित करें प्राणियों को, शीतोष्ण हैं ज्वर दो भाँति।।
प्रज्वार नाम का भाई यह, मृत्यु मुख में धकेले जीव। अपनी इच्छा से इसके निकट, न जाना चाहे कोई जीव।।

देहाध्यासी जीव यह, अज्ञान से इस विध आवृत्त हो। अनेक भाँति के अधिभौतिक, आध्यात्मिक दैवी कष्टों को।।
उपभोग वह करता है, मानुषी देह में पड़ा हुआ। सौ वर्ष तक इस पिंजरे में, ही है वह बन्दी हुआ।।

वास्तव में तो वह निर्गुण है, सभी गुणों से है परे। प्राण इन्द्रिय और मन के, धर्म आरोपित निज पे करे।।
मैं मेरे के बन्धन में, व्यर्थ ही वह बन्ध जाता है। क्षुद्र विषयों के चिन्तन, में इस विध फंस जाता है।।
भाँति भाँति के कर्म फिर, स्वत: वह करता जाता है। निर्गुण होता हुआ भी वह, गुण बधित हो जाता है।।

यद्यपि स्वंय प्रकाश है वह, प्रकाशित न कोई उसे करे। जब तक सबके परम गुरु, आत्म स्वरूप को न जाने।।
तब तक यह प्रकृति के ही, गुणों में बधित हो रहता है। इस विधि जन्म मरण के, चक्र में भ्रमित वह रहता है।।
गुण अभिमान है जब तक उसे, विवश कर्म वह करता है। सत्त्व रज तमोगुण बन्धा, विविध योनि में भटकता है।।

सात्त्विक कर्मों द्वारा कभी, स्वर्गादि को प्राप्त करे। सत्त्व के प्रकाश से, हैं दीप्तिमान् यह लोक हुए।।
राजसिक कर्मों द्वारा कभी, वह रजो लोक में जाता है। दु:खमय इन लोकों में जा, कर्मों के क्लेश वह पाता है।।
कभी तमोगुणी कर्मों से, तममय योनि में जन्म वह ले। शोक और मोह से पूर्ण, अन्धकारमय योनि हैं वे।।

निज गुण और कर्मानुसार, विभिन्न योनि वह पाता है। कभी देव योनि पाये, मनुष्य कभी बन जाता हैं।।
या पशु पक्षी की योनि में, जन्म वह लेकर आता है। कभी नपुंसक स्त्री कभी, पुरुष कभी बन जाता है।।
अज्ञान से अन्धा हुआ जीव, इस विधि भटकता रहता है। भिन्न भिन्न योनिन् में यूं, भ्रमण वह करता रहता है।।

भूख से व्याकुल कूकरवत्, वह दर दर पे भटकता है। कहीं भात उसे मिल जाये, रेखा से दण्ड कहीं मिलता है।।
उसी विधि यह जीव भी, चित्त में अनेकों वासना ले। ऊँचे नीचे मार्ग से, कर्मानुसार ही भ्रमण करे।।
उच्च नीच या मध्यलोक में, ही भटकता रहता है। निज कर्म अनुसार वह, दु:ख सुख भोगता रहता है।।

तीन भान्ति के दु:ख उसे, अधिभौतिक दैविक आध्यात्मिक। किसी एक से भी जीव यह, हो नहीं पाये सर्वथा मुक्त।।
यदि कभी कभार उसको, आभास है सुख का हो जाता। है तत्कालिक दु:ख निवृत्ति, नहीं परम शान्ति वह पाता।।
सीस से भारी बोझा उतार, कोई कान्धे पे जैसे रख ले। उसी विधि दु:ख निवृत्ति के, सारे यत्न ही जान ले।।
किसी उपाय से यदि कहीं, एक दु:ख छुट भी जाये। तत्क्षण ही कोई दूजा दु:ख, सीस पे उसके आ बैठे।।

स्वप्न में स्वप्नान्तर ज्यों, है स्वप्न निवृत्ति की राह नहीं। केवल कर्मभोग उस विधि, कर्ममुक्ति की राह नहीं।।
कर्म और कर्मफल भोग, हैं दोनों ही अविद्या युक्त। इन दोनों में बन्धा जीव, न हो पाये बन्धन से मुक्त।।

स्वप्न में निज मन से ही जीव, स्वप्न शरीर को रचता है। पदार्थ स्वप्न के हैं ही नहीं, उन्हें सत्य जानी विचरता है।।
उसी विधि यह दृश्य पदार्थ, वास्तव में कहीं हैं नहीं। अज्ञान की निद्रा जब तक है, इनका अस्तित्व है तब तक ही।।
जन्म मरण के चक्र से, यह जीव छूट नहीं पाता है। बिन आत्म ज्ञान में जागृति के, यह स्वप्न टूट नहीं पाता है।।

जिस अविद्या के कारण, अनर्थ जीव का है हुआ। परमात्म स्वरूप आत्म यह, जन्म मरण में जाय पड़ा।।
परम गुरु श्री हरि चरण में, दृढ़ भक्ति गर हो जाये। इस परम्परा से जीव की, मुक्ति सम्भव हो पाये।।
एकाग्र और समभाव से, श्री हरि चरणों में हो भक्ति। ज्ञान वैराग्य का पुनर्जागरण, वह ही तो है कर सकती।।
हे राजर्षे यह भक्तिभाव, हो पुष्ट भागवत कथाओं से। श्रद्धापूर्वक जो पढ़े सुने, वह शीघ्र ही भक्ति प्राप्त करे।।

जहाँ रहें विशुद्ध हृदय भक्त, तत्पर कथा श्रवण और कथन में। भगवान के गुण ही नित्य वह, गाते और सुनते रहें।।
महापुरुषों के मुख से सदा, अमृत की बहें धाराएँ। श्री मधुसूदन के दिव्य चरित, की ही कहें वह गाथाएँ।।
जो निज कर्णकटोरों से, नित्य ही पान करें छक कर। अतृप्त चित्त ही रहें सदा, वह यह अमृत पी पी कर।।
भूख प्यास मोह शोकादि, या भय भी राह न रोक सके। निरन्तर उनकी जब लगी, नहीं ध्यान को कोई भी टोक सकें।।
क्षुधा पिपासा आदि सब, विघ्नों ने जीव को है घेरा। फिर भी हरि कथामृत से, है प्रीति वह नहीं करता।।

प्रजापतियों के साक्षात् पति, प्रजापितामह ब्रह्मा जी। प्रभु शंकर स्वयंभू मनु, और दक्षादि सब प्रजापति।।
सनकादि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ऋषि मरीचि और अत्रि। अंगिरा पुल्स्य पुलह: क्रतु:, भृगु वसिष्ठ और मैं भी।।
यह सब ब्रह्मवादी मुनिगण, है सर्ववाङ्मय अधिपति। तप उपासना और समाधि, की जब सबने आश्रय ली।।
ढूंढ ढूंढ कर हार गये, पर प्रभु की दर्शन न पाई। सर्व साक्षी परमेश्वर की, आज तक नहीं सुधि पाई।।

अति विस्तृत हैं वेद सभी, नहीं सुलभ पार उनका पाना। आलोचना उनकी अनेकों करें, पर तत्त्व किसी ने न जाना।।
मन्त्र कथित गुणों से मुक्त, इन्द्रादि सब देवों की। भिन्न भिन्न कर्मों द्वारा, हैं आराधना करते वही।।
यह सब करके भी सभी, परमात्म का ही यजन करें। फिर भी उसके स्वरूप को, तो यह सब नहीं जान सकें।।

बार बार हृदय में जीव, जब चिन्तन उनका करता है। श्री हरि की अनुकम्पा का, प्रसाद वह जिस पल पाता है।।

तभी सारा लौकिक व्यवहार, और वेदों में निष्ठा जो। इन सबमें आस्था रखकर, तत्क्षण ही फिर मुक्त हो।।
हे बर्हिष्मन् इन कर्मों को, परमार्थ तुम न जानो। अति प्रिय लगें यह श्रवण में, परमार्थ से पर स्पर्श न हो।।
यह जो दर्शनमात्र में, परमार्थवत् हैं दीख रहे। हे राजन इस सबका, अज्ञान ही है कारण कहें।।

कर्मवादी जो लोग हैं, वेद को कर्म का सार कहें। मलिन मति वह वास्तव में, मर्म नहीं उनका समझें।।
साक्षात् श्री हरि जहां, आप विराजमान् रहें। निज स्वरूप निज आत्म को, वह नहीं पहचान रहे।।

पूर्वोन्मुखी कुशाओं से, अग्रभाग है जिसका ढका। उस भूमण्डल पर तूने, अनेक पशुअन् का वध किया।।
ऐसा करके तुम राजन्, कर्माभिमानी उद्दण्ड हुए। कर्म और उपासना का, रहस्य नहीं पर जान सके।।
वास्तव में हैं कर्म वही, जो श्री हरि को प्रसन्न करे। उनके ही मन भावन जो, उसको ही विद्या कहें।।

सब देहधारियों के आत्मा, नियन्ता और कारण हैं वे। उनके चरण कमल ही तो, इकमात्र आश्रय हैं जीव के।।
उन चरण तलों का आश्रय ही, कल्याण का एको साधन है। इस भूमण्डल पर जानो, यह ही सच्चा आराधन है।।
अणुमात्र भी भय जिससे, नहीं किसीको होता है। वहीं तो प्रियतम है उसका, वह ही तो उसका आत्म है।।
जो पुरुष सत्य यह जाने है, वही तो सच्चा ज्ञानी है। सच्चा ज्ञानी ही है गुरु, वह तो साक्षात् हरि ही है।।

जो प्रश्न था तुमने किया, समाधान उसका हुआ। हे पुरुश्रेष्ठ जो अभी कहा, उससे तव उत्तर हो चुका।।
अब भली भाँति निश्चित् है जो, गुह्य रहस्य बताता हूँ। ध्यान देकर सुनो इसे, यह साधन तुम्हें बताता हूँ।।

पुष्प वाटिका में अपनी, हरिणि संग विहार करे। मदमस्त हरिण है दूब के, छोटे छोटे अंकुर चरे।।
भंवरों की मधुर गुंजार का, रसपान कर्ण वे कर रहे। उसके सम्मुख ही भेड़िये भी, ताक लगाये हैं खड़े।।
दूजे जीवों को मारकर, जो अपना पेट हैं भर रहे। पीछे व्याध इक है खड़ा, तरकश से बाण जो है छोड़े।।
बेसुध है अपने में ही हरिण, इन सबसे ज्यों अनजान है। क्या है गति होने वाली, इसका नहीं उसे ज्ञान है।।
हे राजन् अब एक बार, इस हरिण पे तुम ध्यान धरो। उसकी वास्तविक दशा पे, ही अब तुम विचार करो।।

हे राजन् इस रूप का भी, अब तुम यह आशय सुनो। यह मृतप्राय: हरिण हो तुम, निज दशा पे अब विचार करो।।
पुष्पवत् स्त्रियाँ यह सब, दर्शन में हैं सौन्दर्य वान्। निवास स्थान ही इन सबका, जानो है सुन्दर उद्यान।।
इसमें रहकर तुम पुष्प मधु, और सुगन्ध समान हैं जो। क्षुद्र सकाम कर्म के, फल स्वरूप सुख ढूंढे हो।।
जिह्वा के लिये प्रिय है जो, और जननेन्द्रिय सुख चाह रहे। भोजन और स्त्रीसंग के, तुच्छ भोगों में हो लुभा रहे।।
नित्य स्त्रियों से ही घिरे, मन वहीं तुम्हारा फंस गया। दारा सुत के मधु गुंजन में, भंवरेवत् कर्ण आसक्त हुआ।।
सम्मुख भेड़ियों के समान, काल अंश दिन रैन लगे। हर क्षण ही तन आयु का, हरण वह हैं कर रहे।।
पर उनकी ओर न देख के तुम, गृहस्थ में ही हो मस्त हुए। उसको ही परम सुख मान करी, काल की गति न देख रहे।।
पीछे गुपचुप तेरे लगा हुआ, है काल रूप शिकारी ये। अपने निहित बाण से तव, हृदय को बेन्धना वह चाहे।।

निज को मृगवत् ही जानो तुम, चित्त हृदय में निरुद्ध करो। नदियावत् जो बहे बाहर, श्रवणेन्द्रिय चित्त में स्थिर करो।।
कामी पुरुषों का चर्चा स्थान, गृहस्थाश्रम अब छोड़ दो। परम हंसों के परम आश्रय, श्री हरि को अब प्राप्त करो।।

क्रमश: सभी विषयों से तुम, राजन् विरत रे हो जाओ। परम शान्ति मिले इसी विधि, परम विश्राम रे तुम पाओ।।

कृपा करी प्रभु आपने, उपदेश जो मुझको है दिया। ध्यान से उसको मैंने सुना, और उसपर है विचार किया।।
कर्मोपदेश जिन मुझे दिया, आचार्य वह इसको न जानें। यदि वह जानते है यह विष, उपदेश मुझे भी दे देते।।

हे विप्रवर उन आचार्यों ने, आत्म तत्त्व के विषय में। मेरे हृदय में जान लें, थे अनेकों संशय भरे।।
आपकी कृपा से आज वह, छिन्न सभी हैं हो गए। आपने यह उपदेश दे, पूर्ण संशय मेरे शान्त किए।।
इस विषय में इन्द्रियों की, गति कहीं न हो सके। इस कारण मन्त्र द्रष्टा, ऋषि भी मोहित हो जायें।।

वेदवादी तो स्थान स्थान पर, कथन करें इस तथ्य को। इह लोक में स्थूल शरीर से, जीव है करता कर्म जो।।
उस देह को इसी लोक में त्यज, ही परलोक में जाये जीव। कर्मों से बनी दूजी देह, को पाये है वहाँ जीव।।
उस राही ही इन कर्मों का, फल है पाये वहाँ जीव। किन्तु कैसे हो सत्य यह, यह तो समझ न पाये जीव।।
उनका कर्ता यह स्थूल तन, तो यहीं नष्ट हो जाता है। फिर कर्म भी जो किया जाये, क्षण में अदृश्य हो जाता है।।
परलोक में फिर वही कर्म, प्रकट हैं कैसे हो सकते? लुप्त हों जो इस लोक में, वह रूप वहाँ कैसे धरते?
नारद बोले,
मनो प्रधान सूक्ष्म तन जो, उसीसे जीव यह कर्म करे। मृत्यु के बाद भी वह तन तो, जीव के साथ ही बना रहे।।
अत: परलोक में जाकर भी, स्वयं अपरोक्ष रूप से। उसी शरीर के द्वारा वह, केवल कर्मों को भोगा करे।।
स्वप्नावस्था में भी जीव, स्थूल तनो अध्यास त्यजे। किन्तु इसी समान या, पशु पक्षी का तन वह रचे।।
मन में हैं स्थित संस्कार जो, उस देह के राही वह। इन कर्मों का उपभोग करें, संस्कारों की राही वह।।

इस मन के द्वारा ही जीव, स्त्री पुत्रादि को कहे मम। और देहादि में भर दे, निरर्थक ही यह जीव अहम्।।
यह मेरे हैं और यह मैं हूँ, ऐसा कहकर है मानता। उनके पाप पुण्यों को भी, है अपने ऊपर ले लेता।।
उनके कारण ही पुन: जन्म चक्र में है आता। व्यर्थ ही इस कारण वह, पुन: जन्म मरण में फंस जाता।।

ज्यों ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय, दोनों मिलकर कर्म करें। उनकी चेष्टा से उनके प्रेरक, चित्त का फिर अनुमान लगे।।
उसी विधि इस चित्त की, भाँति भाँति की वृत्तियाँ। संकेत करें पूर्व में, हैं हुईं जो भी गतियाँ।।
कभी कभी इस जीवन में, ऐसा भी है देखा जाता। जिस वस्तु का इस तन में, अनुभव कभी भी नहीं हुआ।।
न कभी भी देखा है जिसको, और जिसे कभी भी नहीं सुना। स्वप्न में उस वस्तु का ही, ज्यों का त्यों अनुभव हो जाता।।

निश्चय यह तुम मानो राजन्, लिंग देह अभिमानी जीव को। अपने इस लिंगदेह का, अनुभव पूर्व जन्म में भी हो।।
क्योंकि जिस वस्तु का कभी, अनुभव पहले नहीं हुआ। उसकी वासना से यह मन, लिप्त है कैसे हो सकता?

जीव के पूर्व रूपों का, और उसके भावी रूपों का। यह मन ही तो जान लो, हे राजन् है इक ज्ञाता।।
तव कल्याण ही हो राजन्, मन ही इनका संकेत दे। जिनका नहीं अगला जन्म हो, ऐसे तत्त्व वेताओं के।।
विदेह हो जाने का पता, उनका मन ही पाता है। जो जहाँ भी है जग में, यह मन ही उसका ज्ञाता है।।

देश काल क्रिया से बन्धी, जो बातें कभी भी न देखीं। कभी कभी स्वप्न में वह, सबकी सब हैं दीखतीं।।

इन सबके दर्शन में हैं, दोष एको निद्रा का। सुप्त अवस्था में ही तो, आभास स्वप्न का है होता।।

अनुभव गम्य जो इन्द्रियों के, वही भोग बनी बनी कर आयें। मन सम्मुख वह आकर के, अपना अनुभव दे जायें।।
भोग समाप्त हो जाने पर, वह लुप्त हो जाते हैं। नहीं ऐसा कोई पदार्थ वहां, जिसका अनुभव नहीं पाते हैं।।
इसका कारण यह जान लो, सभी जीव हैं मन सहित। कोई अनुभव न कर सके, गर यह जीव हो मन रहित।।

एक एक ही करके जीव, विषयों का आभास करे। साधारणतय: वह एक साथ, पदार्थ सब न भोग सके।।
भागवत चिन्तन में लगा यह मन, विशुद्ध सत्त्व में स्थित रहे। प्रभु का शुभ संसर्ग पा, अनुभव सब विश्व का कर सके।।
ज्यों राहू तो जान लो, है दृष्टि का विषय नहीं। चन्द्रमा का सम्पर्क पा, वह दुष्ट हो उसमें ही।।

गुणों का परिणाम है जो, बुद्धि मन और इन्द्रिय विषय। इन सबका समूह जब तक, लिंग देह अनादि बना रहे।।
तब तक अहं ममत्व का, अभाव जीव में न होये। हे राजन् यह जान लो, देह के प्रति यह भाव रहे।।
अत्यन्त दु:ख और तीव्र ज्वर, सुशुप्ति या मूर्छा घेरे। या साक्षात् मृत्यु ही गर, आकर के डाले डेरे।।
इद्रियां जब व्याकुल हो जायें, आभास स्पष्ट यह नहीं रहे। किन्तु मैं मेरे अभिमान तो, निहित रूप में बना रहे।।

स्पष्ट रूप से युवावस्था, में प्रतीत जो होता है। एकादश इन्द्रिय युक्त यह, तन दुष्ट जो होता है।।
गर्भावस्था और बाल्यकाल, में भी रहता है सदा। पर इन्द्रिय विकास न हो, अव्यक्त ही हो प्रतीति वा।।
ज्यों अमावस रात्रि में, चन्द्र तो हो पर दीखे न। उसी विधि यह लिंग रूप, तन रहे तो है पर दीखे।।

ज्यों वास्तव में स्वप्न में, अस्तित्व किसी वस्तु का नहीं। किन्तु जब तक स्वप्न है, सब वस्तु दीखे सत्य ही।।
बिन निद्रा त्यागे स्वप्न जनित, अनर्थ न निवृत्त हो कभी। उसी विधि इस जग की भी, अवस्था तुम जानो ऐसी।।
यद्यपि जग की सब वस्तु, स्वप्न वत् असत ही है। अविद्या वश ही उन सबके, चिन्तन में जीव रत है।।
इस कारण ही जन्म मरण के, चक्र में है वह घूम रहा। इस संसार चक्र से, नहीं मुक्त वह हो सकता।।

पंच तन्मात्रा से बना, सोलह तत्त्वों के रूप में। विकसित है जो हो रहा, तीन गुणों से युक्त यह।।
इन सबका सम्मूह जो, लिंग शरीर ही इसे कहें। चेतन शक्ति से हो युक्त, तब ही इसको जीव कहें।।
इसके द्वारा ही पुरुष, विभिन्न देह धारण करे। और यही लिंग शरीर, पुन: देह का त्याग करे।।
हर्ष शोक भय दु:ख और सुख, इसके द्वारा ही सम्भव हों। जब तक तन में यह रहे, तब तक ही यह सब अनुभव हों।।

ज्यों जोंक दूजे तृण का, आश्रय जब तक नहीं पाती। तब तक पहले तिनके से, वह पाद नहीं उठा पाती।।
उसी विधि जीव सम्मुख, गर मरण काल भी आ जाये। संचित कर्म की समाप्ति पर, जब तक दूजा तन न पाये।।
तब तक पहले तन का वह, अभिमान नहीं है छोड़ता। मन प्रधान यह लिंग देह, ही जन्म मरण कारण है बना।।

इन्द्रिय जनित भोगों का ही, जब जीव यह चिन्तन करता है। बार बार उन्हें लक्ष्य बना कर, ही कर्म वह करता है।।
अविद्या वश देहादि के, कर्मों में वह बन्ध जाता है। इनके कारण ही पुन: पुन:, जन्म मरण वह पाता है।।
इस कर्म बन्धन से गर, छुटकारा तुम पाना चाहो। समस्त जगत् को श्री हरि का, रूप ही तुम देखे जाओ।।
सब भाँति सब कर्मों से, श्री हरि भजन ही तुम करो। इस जग की उत्पत्ति स्थिति, और लय सब उसी में हो।।

मैत्रेय मुनि बोले,
भक्त शिरोमणि नारद ने, प्राचीनबर्हि को ज्ञान दिया। जीव और ईश्वर स्वरूप का, दिग्दर्शन करा दिया।।
तत्पश्चात् देवर्षि ने, राजा से फिर ली विदा। हे विदुर तब उन्होंने, प्रस्थान सिद्ध लोक को किया।।
राजा प्राचीनबर्हि ने फिर, निज पुत्रों को राज्य सौंपा। दे प्रजापालन का दायित्व, कपिलाश्रम को वह चला गया।।

सब विषयों से आसक्ति त्याग, मन को एकाग्र किया उसने। श्री हरि के चरण कमल में ही, चित्त लगाया वीरवर ने।।
भक्तिपूर्वक श्री हरि का ही, वह चिन्तन करता रहा। इस भाँति प्राचीनबर्हि, सारुप्य पद को प्राप्त हुआ।।
देवर्षि नारद ने जो, परोक्ष रूप कहा आत्म ज्ञान। हे निष्पाप विदुर जी, जो जीव करे इसका सम्मान।।
इसको जो भी सुनेगा पुरुष, या जो भी इसे सुनायेगा। शीघ्र ही वह लिंगदेह के, बन्धन से मुक्त हो जायेगा।।

श्री नारद के मुख से निसृत, यह आत्म ज्ञान है हरि महिमा। पावन करे यह त्रिलोकी को, मल धो दे अन्त:करण का।।
परमात्म पद को भी, प्रकाशित कर दे वह ज्ञान। इसके श्रवण से जान लो, कट जायें बन्धन महान्।।
इस संसार चक्र में, नहीं पुन: आना पड़े। श्रवण कीर्तन जो करे, मुक्त जीव वह हो जाये।।

हे विदुर परोक्ष रूप में, आत्म ज्ञान की यह कथा। गृहस्थाश्रमी पुरंजन का, रूपक था श्री गुरु से सुना।।
तात्पर्य इसका जान करी, बुद्धि युक्त जो जीव हो। देहाभिमान से पल भर में, जान लो मुक्त वह जीव हो।।
परलोक में जीव कस, कर्म फैल को पाये हैं? इस सम्बन्ध में भी उसके, सारे संशय मिट जाये हैं।।

७) प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश

विदुर बोले,
राजा प्राचीनबर्हि के जिन, पुत्रों का वर्णन किया। हे द्विजवर रुद्र गीत द्वारा, महिमा गा उनको क्या मिला?
श्रीमन्नारायण स्वयं है, कहें मोक्ष के अधिपति। उनके प्रियतर महादेव की, मिली अचानक सन्निधि।।
हे बृहस्पति पुत्र कहें, मुक्ति निश्चित ही मिली होगी। पर उससे पूर्व उनकी गति, इहलोक परलोक में क्या होगी।।
कृपा करके आप मुझे, रहस्य यह बतलाइये। प्रचेतागण ने जो पाया, उसका राज सुझाइये।।
मैत्रेय मुनि बोले,
पिता के आज्ञाकारी पुत्र, थे प्रचेताजन हे विदुर। सागर के बीच खड़े होकर, किया रुद्र गीत का जप यज्ञ।।
बहुत भीषण तपस्या का, उन सबने अभ्यास किया। जप तप द्वारा सबके जनक, श्री हरि को प्रसन्न किया।।
यूं जप तप करते करते, दस हजार जब बीते वर्ष। यह देखी श्रीमन्नारायण, के हृदय में भरा हर्ष।।
तप जनित उनके क्लेशों को, फिर शान्त करने के लिये। मनहर कान्ति युक्त निज, सौम्य शरीर को ले प्रकटे।।

गरुड़ के कान्धे पे बैठे, प्रभु ऐसे थे सुहा रहे। जैसे सुमेरु शिखर पर, श्यामल मेघ हों छा रहे।।
श्री अंग पे पीताम्बर था, उनके बहुत शोभायमान्। कण्ठ में कौस्तुभ मणि प्रभा, का फैला प्रकाश महान्।।
उनकी दिव्य आभा से ही, तिमिर था सारा दूर हुआ। सब दिशा का अन्धकार, भयभीत हो मानो भाग गया।।

स्वर्णाभूषणों से उनके, मुख की थी शोभा निराली बनी। कमनीय कपोल मुखड़ा सुन्दर, अपूर्व ही कान्ति उनकी थी।।
मस्तक पर झिलमिल करता, था किरीट शोभायमान। अष्ट भुजा में आठ ही, आयुध थे विराजमान्।।

देव मुनि और पार्षद सब, सेवा में उपस्थित थे। किन्नरों संग गरुड़ के पंख, भी साम गान थे कर रहे।।
इन पंखों की ध्वनि से, प्रभु कीर्ति गान थे हो रहे। इस विधि सब मिल जुल के, प्रभु महिमा गान में मग्न थे।।

स्थूल अष्ट महाभूज में, थी वनमाला झूल रही। मानो श्री लक्ष्मी से ही, उसकी हो स्पर्धा लगी।।
आदि पुरुष श्री नारायण, इस भाँति वहाँ अवतीर्ण हुए। निज शरणागत प्रचेता को, दया दृष्टि से निहारे गए।।
मेघ समान गम्भीर स्वर, था उनकी वाणी में भरा। श्री हरि ने प्रचेता जन, के सम्मुख यह वचन कहा।।
भगवान बोले,
हे राजसुतो कल्याण हो तेरा, परस्पर प्रेम में हो बन्धे। स्नेह वश मिलकर तुम सब, एक ही धर्म निभा रहे।।
आदर्श सौहार्द तव देखकर, मैं हूँ अति प्रसन्न हुआ। प्रचेता जन तुमसे कहूँ, वर मांग लो कोई मन चाहा।।
जो भी प्रतिदिन सायंकाल को, स्मरण तुम्हारा कर लेगा। अपने भ्राता जग में उसका, निज समान ही स्नेह होगा।।
सब जीवों के प्रति भी वह, मैत्री भाव ही रखेगा। सबका सुहृद् और मित्र ही, ऐसा जीव बन जायेगा।।

प्रात: और सायंकाल में, रुद्रगीत जो गायेंगे। एकाग्रचित्त हो उस द्वारा, जो महिमा मेरी सुनायेंगे।।
उनसे प्रसन्न होकर मैं, अभीष्ट वर उनको दूँगा। बुद्धि भी उन सब जन की, जानो शुद्ध ही कर दूँगा।।
बहुत प्रेम और प्रसन्नता से, पितृ आज्ञा को सीस धरा। इस कारण तव कीर्ति का, सब लोकों में विस्तार होगा।।

हे कुमारों अति विख्यात, एक पुत्र पाओगे तुम। गुणों को उसके ब्रह्मा जी के, ही समान पाओगे तुम।।
निज सन्तान से जानो वह, त्रिलोकी पूर्ण कर देगा। उसके राही तुम जानो, जग में नाम तुम्हारा होगा।।

हे राजसुतो इक बात सुनो, थे कुण्डु ऋषि तपस्या रत। इन्द्र ने भेजी प्रम्लोचा, अप्सरा तप के नाश अर्थ।।
उस अप्सरा से कमललोचना, कन्या थी उत्पन्न हुई। कन्या को छोड़ इह लोक में, अप्सरा स्वर्ग को लौट गई।।
तब वन के वृक्षों ने मिलकर, ही कन्या वह पाली थी। प्रकृति के अंक में इस विधि, कन्या थी वह बड़ी हुई।।

जब क्षुधा से व्याकुल हो, वह कन्या रोने लगी। औषधि अधिपति चन्द्र के तब, मन में दया थी उमड़ पड़ी।।
बाला के मुख में उसने, अपनी तर्जनी अंगुली दी। वास्तव में वह अंगुली, जानो अमृत वर्षायिनी थी।।
तुम्हारे पिता तो आजकल, हैं मेरी सेवा में मग्न। उन्होंने आज्ञा दी तुमको, तुम सन्तान करो उत्पन्न।।
अत: शीघ्र ही देव सम, उस कन्या से विवाह कर लो। और अपने पिता की तुम, आज्ञा का पालन करो।।

तुम सबका एक स्वभाव है, और एक ही धर्म में हो तत्पर। अनुकूल ही धर्म स्वभाव युक्त, उस कन्या को तुम सब लो वर।।
तुम सब में ही उस कन्या का, एक समान होगा अनुराग। जानो मेरी कृपा ही इसको तुम, जागेंगे इससे सबके भाग्य।।
मेरी कृपा से दस लाख, दिव्य वर्ष तक जिओगे तुम। पूर्ण वीर्य से पार्थिव और, दिव्य भोग भोगोगे तुम।।

अविचल भक्ति से अन्त में, हृदय का मल धुल जायेगा। समस्त वासनामय सब मल, मेरे प्रेम में ही जल जायेगा।।
इस लोग और परलोक के, सब भोग जान के नरक तुल्य। इन सबसे उपरत होकर, मम धाम में जाओगे मुझसे मिल।।
भगवदर्पण ही सब कर्म, जिन लोगों के होते हैं। मम कथा वार्ता में व्यतीत, जिनके सब क्षण ही होते हैं।।
गृहस्थाश्रम में रहते हुए, भी बन्धन से नहीं बन्धते वे। घर या कोई काज भी उनके, बन्धन कारक न हो सकें।।

नित्य प्रति मम लीलाओं का, श्रवण वह करते रहते हैं। ब्रह्मवादी वेताओं से, स्वरूप का वर्णन सुनते हैं।।
ज्ञान स्वरूप परब्रह्म मैं, नित्य नव हूँ उन्हें भासता। मुझे प्राप्त कर लेने पर, न हर्ष या शोक कोई रहता।।
मैत्रेय मुनि बोले
श्री हरि के दर्शन पाकर, तम रज मल था नष्ट हुआ। सकल पुरुषार्थ के आश्रय, सुहृद् हरि ने जब यह कहा।।
करबद्ध हो तब गद्गद् वाणी, से प्रचेता कहने लगे। श्रीहरि के चरणों में तब, विनम्र भाव निज उन्होंने धरे।।

प्रचेता बोले,
नमस्कार हमारा प्रभु, भक्तों के कष्ट हरने वाले। उदार नाम गुण का जिनके, हैं वेद निरूपण कर रहे।।
मन वाणी के वेग से भी, बढ़कर है वेग प्रभु आपका। इन्द्रियाँ वहाँ न पहुँच सकें, अतिन्द्रिय स्वरूप है आपका।।
बार बार है नमस्कार, हे प्रभु चरण में आपके। हो स्वीकार यह नमस्कार, हम तो हैं दास प्रभु आपके।।

स्वरूप में अपने नित्य स्थित, नित्य शुद्ध और शान्त हैं। मन रूप निमित्त के कारण ही, मिथ्या यह द्वैत आभास है।।
वस्तुत: जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण। माया गुण को स्वीकार कर, करें ब्रह्मा विष्णु रूप धारण।।
नमस्कार हमरा प्रभु, बारम्बार है नमस्कार। कृपा करें हे देव अब, नमस्कार यह हो स्वीकार।।

विशुद्ध सत्व रूप आप, तव ज्ञान से छिन्न हों सब बन्धन। स्वामी हैं सब भागवतजन के, आप ही वसुदेव नन्दन।।
हे कृष्ण हे यादव वासुदेव, चरणों में आपके नमस्कार। स्वीकार करो इसको भगवन्, यही कहें हम बार बार।।

आपकी श्री नाभि से ही, प्रकटा यह कमल ब्रह्माण्ड रूप। कण्ठ में आपके कमल कुसुम, की माला है अति शोभित।।
कोमल हैं चरण यह कमल सम, और हैं लोचन ज्यों अरविन्द। कमल कुसुम की केसर सम, बना तव अम्बर पीत इव।।
सबके साक्षी आप स्वयं, सब भूतों के हैं आश्रय आप। आपके श्री चरणों में करें, सीस झुका हम नमस्कार।।

हे प्रभु स्वरूप यह आपका, सब लोकों के क्लेश हरे। अविद्या अस्मिता राग द्वेष, इन सब क्लेशों में हम पड़े।।
इनसे पीडित हम सबको, दर्शन आपने हैं दिये। इससें बढ़कर हे प्रभु, और कृपा क्या हो सके?
हे सर्व अमंगलहारी प्रभु, दीनों पे दयालु सर्व समर्थ। बस इतनी कृपा करते रहें, यदा कदा हम दीनों पर।।
यह हैं हमारे इस विधि, याद उन्हें करते रहें। इस स्मृति से हे प्रभु, दु:ख उनके सब हरते रहें।।
इस सोच से ही उनके चित्त को, शान्त सदा प्रभु आप करें। क्षुद्रतम जीव के आन्तर भी, बन अन्तर्यामी स्वयं रहें।।
फिर आपके उपासक हम, कामना जो जब भी करें। हमारी उस इच्छा को, प्रभु आप कैसे न जानें?
हे जगदीश्वर मोक्ष मार्ग के, पथ प्रदर्शक आप हैं। पुरुषार्थ रूप भी आप स्वयं, और परमार्थ भी आप हैं।
आप प्रसन्न हुए हम पर, कोई अन्य वर हम क्या मांगे? अपना अभीष्ट वर तो है एक, आप ही हमपे मुदित रहें।।

तथापि नाथ एको वर, आपसे हम हैं रहे मांग। प्रकृति आदि से आप परे, हैं आप अनन्त विभूतिवान्।।
यदि भ्रमर कहीं अनायास, कल्प वृक्ष को पा जाये। तो क्या कभी दूजे वृक्ष का, वह सेवन करना चाहे?
तब आपकी शरण में आ, कहें प्रभु हम क्या मांगे? आपके दर्शन पाकर के, हैं सर्व मनोरथ पूर्ण हुए।।

आपसे एका वर प्रभु, हम मांगना चाहते हैं। आपकी माया से मोहित, इस जग में हम आते हैं।।

निज कर्मानुसार जब तक, इस चक्र में भ्रमते रहें। इतनी ही प्रभु कृपा करें, प्रेमी भक्तों का संग मिले।।
भगवद्भक्तों का क्षणभर का, है संग भी मिलना अति दुर्लभ। स्वर्ग और मोक्ष को उनके सम्मुख, हम तो जानें प्रभु अति सुलभ।।
फिर इन मानुषी भोगों की, तो बात ही क्या करें। हे प्रभु आपके भक्तों का, संग सदा ही बना रहे।।

भक्तों के समाज में हो, भागवत कथायें नित्य ही। उन मधुर कथाओं को सुनकर, है भोग तृष्णा शान्त होती।।
भगवद्भक्तों में कभी कोई, वैर विरोध नहीं रहता। उद्वेग कहाँ पे उठ पाये, वहाँ बहे प्रेम की ही गंगा।।
सुन्दर कथा प्रसंग को ले, सदा प्रभु गुण गान ही हो। निष्काम भाव से उन्हें भजें, संन्यासिन् के हैं आश्रय जो।।

वह भक्त प्रभु आपके, निज चरण जब धरती पे धरें। इस भाँति वह तीर्थ स्थल, को भी हैं पावन करें।।
संसार के क्लेशों से, भयभीत जो हर पल ही रहें। ऐसे प्राणियों के लिये, इससे उत्तम वर कहाँ मिले?
आपके प्रिय सखा शंकर का, क्षणिक समागम हमें मिला। उसके परिणाम में साक्षात्, आपका दर्शन आज हुआ।।
जन्म मरण के कठिन रोग के, श्रेष्ठतम वैद्य हैं आप ही। अत: अन्य आश्रय छोड़ी, अब आपकी शरण है हमने गही।।

समाहित चित्त से हे प्रभु, है जो कुछ भी अध्ययन किया। निरन्तर सेवा से द्विज वृद्ध, और गुरुजन को प्रसन्न किया।।
सुहृद् बन्धु सब प्राणी वर्ग, के प्रति विनम्र ही भाव रही। दोष दृष्टि को त्यागकर, है श्रेष्ठ जन की वन्दना की।।
अन्न आदि को त्याग कर, दीर्घ काल तक जल में रहे। वहाँ खड़े होकर हमने, तपश्चर्य जो भी किये।।
वह सब आप ही पुरुषोत्तम, के सन्तोष का कारण हो। इतनी कृपा प्रभु आप करें, यह ही वर सीस पे धारण हो।।

स्वयंभू मनु श्री ब्रह्मा स्वयं, शंकर भी निरन्तर स्तुति करें। तप और ज्ञान से शुद्ध चिति, ऋषि आपके ध्यान में मग्न रहें।।
फिर भी प्रभु आपकी महिमा का, पार नहीं वह पाते हैं। हम भी इस सीमित बुद्धि से, तुम्हारा यशोगान ही गाते हैं।।
सर्वत्र सम शुद्ध स्वरूप, परम पुरुष हैं आप प्रभु। सत्त्वमूर्ति श्री वासुदेव, को नमस्कार हम करें प्रभु।।

मैत्रेय मुनि बोले,
प्रचेतागण ने इस विधि, हे विदुर प्रभु की करी स्तुति। उनसे अति प्रसन्न हुए, शरणागत वत्सल श्री हरि।।
तथास्तु कहकर श्री हरि, चलने को उद्यत हुए। उनकी मधुर मूर्ति के, दर्शन से नयन न तृप्त थे।।
इस कारण प्रचेता वह, रोकना उनको चाहते थे। तथापि प्रभु निज धाम को, उस पल वहाँ से चले गए।।

तत्पश्चात् प्रचेतागण, सागर से बाहर आये। जल से निकल उन्होने देखा, पृथ्वी पे बहुत ही वृक्ष बढ़े।।
ऊंचे ऊंचे वृक्षों ने, था पृथ्वी को ढक लिया। मानो स्वर्ग को जाने का, मार्ग हो अवरुद्ध किया।।
यह देख उन वृक्षों पर, प्रचेताजन अति कुपित हुए। तब पृथ्वी को वृक्ष लता, आदि से रहित करने के लिये।।
निज मुख से प्रचण्ड वायु, और अग्नि को उन्होंने छोड़ा। ज्यों प्रलय काल में रुद्र ने ही, कालाग्नि को हो छोड़ा।।

जब ब्रह्माजी ने यह देखा, सब वृक्ष भस्म कर हैं रहे। तब श्री प्रजापति ही स्वयं, प्रचेतागण सम्मुख प्रकटे।।
युक्तिपूर्वक समझाया उन्हें, और क्रोध उनका शान्त किया। श्री ब्रह्मा ने कालाग्नि को, स्वयं ही प्रशान्त किया।।
जो भी वृक्ष वहाँ थे बचे, भयभीत होई ब्रह्मा पे गए। उनके आदेश को मान कर, उस कन्या को वह ले आये।।

फिर ब्रह्मा के आदेश को, प्रचेतागण ने मान लिया। मरिषा नामक कन्या से, उन सबने विवाह किया।।

ब्रह्मा पुत्र श्री दक्ष ने, थी महादेवी की अवज्ञा की। इस कारण ही उन्हें अपनी, तन की त्याग थी करनी पड़ी।।
पूर्व तन का त्याग कर, उन्होंने ही पुन: जन्म लिया। मरिषा के गर्भ से ही, उनका था यह जन्म हुआ।।

चाक्षुष मन्वन्तर आने पर, जब पूर्व सृष्टि सब नष्ट हुई। इन्हीं ने प्रभु से प्रेरणा पा, नवीन प्रजा उत्पन्न करी।।
लेते ही जन्म निज कान्ति से, छीना तेज तपस्वियों का। अति कर्म कुशल थे यह, इस कारण दक्ष था नाम पड़ा।।
ब्रह्मा जी ने फिर इनको, प्रजापति नायक बना दिया। सृष्टि की रक्षा के लिये, इनको फिर नियुक्त किया।।
इन्होंने क्रमश: मरीचि आदि को, निज कार्यों में लगा दिया। इस विधि नव सृष्टि का, क्रम पुन: आरम्भ हुआ।।

मैत्रेय मुनि बोले,
दस लाख हजार वर्ष बीते, प्रचेतागण को विवेक हुआ। स्मृति जाग गई उस पल, प्रभु कथन फिर याद किया।।
निज भार्या मरिषा को, पुत्र के पास ही छोड़ दिया। प्रचेतागण ने तुरन्त ही, गृह त्याग तब कर दिया।।
पश्चिम दिशा में उसी स्थान पर, सागर तट पर जा पहुँचे। पूर्वकाल में मुनि जाजली, सिद्धि को जहां थे प्राप्त हुए।।
सब भूतों में है एक ही, आत्म तत्व विराजमान। इस आत्म विचार के ब्रह्म सत्र, का किया संकल्प महान्।।

प्राण मन वायु दृष्टि, को संयम में उन्होंने किया। निश्चेष्ट स्थिर सीधा तन कर, आसन को फिर जीत लिया।।
चित्त को फिर शुद्ध स्वरूप, परम ब्रह्म में लीन किया। देवासुर दोनों के पूज्य, नारद ने तब उनको देखा।।
देवर्षि को आया देख, प्रचेतागण सब खड़े हुए। और प्रणाम उन्हें करके, सत्कार सहित पूजन किए।।
देश काल अनुकूल ही, विधिवत् आसन उन्हें दिया। जब नारद सुखपूर्वक बैठे, प्रजेताजन ने उन्हें कहा।।

प्रचेता बोले,
स्वागत है आपका देवर्षे, बड़े भाग्य से दर्शन आज हुआ। हे द्विजवर सूर्य समान ही, आपका है यह भ्रमण हुआ।।
ज्ञान लोक में जीवों के, कल्याण हेतु यह होता है। समस्त जीवों को प्रभु, यह अभय दान ही देता है।।
श्री शंकर और प्रभु विष्णु ने, हमको था जो उपदेश दिया। गृहस्थ में आसक्त हमें, प्राय: विस्मृत ही वह हुआ।।

कृपा कर अब आप ही, परमार्थ तत्त्व का ज्ञान दें। अध्यात्म ज्ञान हमारे हृदय, पुन: प्रकाशित आप करें।।
साक्षात्कार से देवर्षे, हम दुस्तर भव सागर से तरें। हृदय तिमिर यह दूर हो, यदि आप प्रभु कृपा करें।।
मैत्रेय मुनि बोले,
श्री नारद का चित्त तो, रहे सर्वथा कृष्ण मग्न। प्रचेतागण के प्रश्न पर, किया उन्होंने यह कथन।।

नारद बोले,
हे राजाओं इस लोक में, सफल वही है मनुज जन्म। वही कर्म वही आयु, सफल वही हैं वाणी मन।।
जो भी हरि का सेवन, अहर्निश करते रहें। सर्वात्मा सर्वेश्वर श्री, हरि भजन में मग्न रहें।।

कर निज स्वरूप का साक्षात्, जिन श्री हरि ने प्राप्त किया। इस मनुष्य जीवन का, उनको भला क्या लाभ लिया?
माता-पिता की पावनता, या यज्ञोपवीत संस्कार से। यज्ञ दीक्षा में प्राप्त हुए, त्रैविध श्रेष्ठतम जन्मों से।।
देव समान दीर्घायु, या वेदोक्त सब कर्मों से। वाणी की चतुराई से, शास्त्र ज्ञान से या तप से।।

अनेक भाँति की स्मरण शक्ति, या फिर तीक्ष्ण बुद्धि से। इन्द्रिय पटुता महाबल से, या योग और सांख्य से।।
संन्यास और वेदाध्ययन से, या व्रत वैराग्यादि से। सब कल्याण साधन करके, भी उनका जीवन व्यर्थ भए।।
वास्तव में सब कल्याणों की, है पराकाष्ठा आत्मा ही। आत्म ज्ञानदे श्री हरि ही, हैं सबके प्रियतम आत्मा ही।।

ज्यों वृक्ष की जड़ गर सींच लें, उसका अंग अंग पुष्टित भए। तना शाखा या उपशाखा, सबका ही पोषण होए।।
ज्यों अन्न दे प्राणों को, जीव इन्हें जब तृप्त करे। समस्त इन्द्रियां उस अन्न सें, ही उसकी तब पुष्ट होएं।।
उसी विधि श्री हरि की ही, पूजा में सबकी पूजा है। वास्तविकता यह जान लो, हरि बिन कोई न दूजा है।।

ज्यों वर्षाकाल में जल यह, सूर्य के ताप से उत्पन्न हो। ग्रीष्म ऋतु में उसकी ही, किरणों में पुन: प्रविष्ट हो।।
चराचर भूत प्राणी ज्यों, पृथ्वी से ही उत्पन्न होए। और पुन: उस माटी में, ही जाकर वह लीन होए।।
उसी विधि जड़ चेतन, यह सारा प्रपंच जो। श्री हरि से ही उत्पन्न हो और लय पुन: उन्हीं में हो।।

वस्तुत: विश्वात्मा प्रभु का, स्वरूप है सर्व उपाधि रहित। कभी कभी गन्धर्व नगर सम, स्फुरित हो उनमें यह जगत्।।
ज्यों सूर्य की आभा कभी, भिन्न उससे नहीं हो सकती। उसी विधि जग की सत्ता, श्री हरि से भिन्न है कुछ भी नहीं।।
जागृत अवस्था में इन्द्रियां, क्रियाशील ज्यों रहती हैं। किन्तु सुशुप्ति में उनकी, सब शक्ति लीन हो जाती हैं।।
उसी विधि यह जगत् भी, सर्ग में प्रभु में प्रकट हो। कल्पान्त हो जाने पर, यह जाकर उन्हीं में लय फिर हो।।
द्रव्य क्रिया और ज्ञान रूप, त्रिविध अहं के कार्यों की। उनके निमित्त होनेवाले, नहीं भेद भ्रम की सत्ता कोई।।

ज्यों बादल तिमिर और प्रकाश, प्रकट आकाश से होते हैं। उससें ही यह रूप धरी, पुन: लय उसी में होते हैं।।
किन्तु आकाश इन सबसे, लिप्त कभी न हो सके। उसी विधि यह त्रैगुणी, शक्ति उत्पन्न हो उसीसे।।
और कभी उसमें ही जा, करके यह सब लय हो। सत्त्व रज और तम की, बस इतनी ही सत्ता हो।।
इसी विधि निरन्तर यह, प्रवाह चलता ही रहे। असंग है जो आकाश सम, परमात्म में न विकार भए।।

ब्रह्मादि सब लोकपालों, के हैं अधीश्वर श्री हरि। निज से अभिन्न जानो उन्हें, भजो सदा तुम श्री हरि।।
सब देहधारियों में जो स्थित, वही तो एक आत्मा हैं। वही नियन्ता पुरुषोत्तम, वह ही तो परमात्मा हैं।।
निमित्त कारण काल रूप, उपादान कारण प्रधान हैं। गुण प्रवाह रूपा प्रपंच, जग संहारक वह आप हैं।।

जो सब जीवों पर दया करे, यदृच्छा लाभ संतुष्ट रहे। विषयों से इन्द्रिय निवृत्त करी, सर्वभाव से शान्त रहे।।
भक्त प्रिय हरि उस जीव से, शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। उसके विकार सब हर कर, उसे निज स्वरूप दे जाते हैं।।

पुत्रैष्णा आदि सब, वासना का जब नाश हो। इनके अभाव से अन्त:करण, जिन सन्तों का शान्त हो।।
हृदय में हरि का चिन्तन ही, जिनके तीव्रतर होए। उस डोरी से बन्धे हुए, अविनाशी हरि खिंचे आयें।।
हैं हरि सदा भक्त अधीन, इस उक्ति को चरितार्थ करें। नहीं हृदयाकाश की भाँति हटें, सर्वत्र वहाँ वह व्याप्त रहें।।

सर्वस्व जो माने है उनको, उस निर्धन से प्रभु प्रेम करें। परम रसज्ञ हैं प्रभु स्वयं, वह प्रेम रस ही सदा चखें।।
अकिंचन् भक्त का अनन्य, आश्रय है भक्ति अहैतुकी। उसके माधुर्य की मिठास, तो है प्रभु से छिपी नहीं।।
निज शास्त्र ज्ञान धन कुल कर्म, के मद में जो उन्मत्त रहे। निष्किंचन साधु जन का, निज दम्भ अर्थ तिरस्कार करें।।

ऐसे दुर्मति जन की पूजा, स्वीकार कभी प्रभु नहीं करें। वह तो अकिंचन् भक्त की, भक्ति के ही वश में रहें।।

हैं निज स्वरूप में ही मग्न, आनन्द स्वरूप वह आप स्वयं। निज भक्तों के ही अधीन रहें, सब लोकों के जो स्वामी स्वयं।।
निज सेवा रत लक्ष्मी जी की, भी उनको परवाह कहाँ। फिर लक्ष्मी पूजक देव और, नरपतियों का हो स्थान कहाँ।।
अहो ऐसे करुणा सिन्धु जो, प्रभु आप हैं सृष्टि में। कोई भी कृतज्ञ पुरुष, पल भर कैसे उन्हें छोड़ सके?
मैत्रेय मुनि बोले,
देवर्षि नारद ने यूं, प्रचेताजन को ज्ञान दिया। भगवत्सम्बन्धी अन्य भी, बहु बातों को आख्यान किया।।
तत्पश्चात् श्री नारद ने, ब्रह्म लोक की पकड़ी राह। प्रयोजन निज पूर्ण कर, उन्होंने फिर प्रस्थान किया।।
सम्पूर्ण जगत् के पाप रूप, मल को जो पूर्ण धो दें। प्रचेतागण ने नारद के, श्री मुख से भागवत चरित सुने।।
फिर प्रभु के चरणारविन्द का, ही चिन्तन वह करने लगे। और अन्त में वह सब ही, श्री भगवद्धाम को प्राप्त हुए।।

इस विधि आपने मुझसे जो, हे विदुर था प्रश्न किया। नारद प्रचेतागण का जो, भागवत संवाद सुनना चाहा।।
सविस्तार वह आपको, है मैंने सुना दिया। इस आख्यान को सुनकर के, क्या आपका संशय शान्त हुआ?
शुकदेव बोले,
हे राजन् यह तो किया वर्णन, उत्तानपाद के वंश का। जो स्वयंभुव मनु का, अपना ही ज्येष्ठ पुत्र था।।
अब उसे दूजे पुत्र, प्रियव्रत की भी कथा सुनो। उनके वंश का क्या हआ, अब उसका विवरण सुनो।।
राजा प्रियव्रत को भी नारद, जी से था उपदेश मिला। आत्म ज्ञान यह पाकर भी, था पूर्ण राज्य उपभोग किया।।
अन्त में सारी पृथ्वी को, निज पुत्रों में बांट दिया। इस विधि प्रियव्रत भी कहें, परम धाम को प्राप्त हुआ।।

इधर विदुर ने हे राजन्, हरि गुण की सुनी पवित्र कथा। श्री मैत्रेय मुख से यह सुनकर, उनका हृदय प्रेम परिपूर्ण हुआ।।
भक्ति भाव बढ़ जाने से, नयनों से बही अश्रुधारा। अपने हृदय में फिर उन्होंने, श्री हरि चरण का स्मरण किया।।
कृतज्ञ भाव था हृदय भरा, गद्गद् वा कण्ठ था हो रहा। निज मस्तक मुनिवर मैत्रेय, के चरण में उन्होंने धर दिया।।
विदुर बोले,
अति करुणामय हैं महायोगी, अज्ञान तिमिर से पार किया। जहाँ बसे अकिंचन् के सर्वस्व, उस पार मुझे पहुँचा दिया।।
शुकदेव बोले,
निज बन्धु बान्धव से बिछुड़े, बहुत काल था बीत गया। उनको मिलने के लिये, श्री विदुर के मन में उठी थी चाह।।
कृतज्ञता पूर्ण वचन कहे, और चरणों में प्रणाम किया। विदुर ने आज्ञा ली उनसे, और हस्तिनापुर प्रस्थान किया।।
प्रभु शरणागत परम भागवत, राजाओं के पावन चरित। जो भी सुनेगा हे राजन्, इनको होकर श्रद्धा से युक्त।।
दीर्घायु धन और सुयश, क्षेम और सद्गति पायेगा। वैभव और ऐश्वर्य भी, उसको चँवर झुलायेगा।।

इति चतुर्थ स्कन्ध समाप्त

** महान आदमी अपनी उपेक्षा से उतना नहीं जितना अति प्रशंसा से मर जाता है।*

** सब नया है लेकिन मनुष्य पुराना पड गया है।*

पंचम स्कन्ध

विषय सूची

१) ऋषभ देव का चरित्र ३३५

२) जड़भरत चरित्र ३५१

३) जड भरत का राजा रहूगण को उपदेश ३५८

४) भवाटवी का उपदेश ३६४

५) जड़भरत के वंश का वर्णन ३७१

६) खगोल-भूगोल ३७३

१) भुवन कोश का वर्णन ३७३

२) शिशुमार चक्र का वर्णन (अन्य ग्रहों की स्थिति और गति) ३९३

३) अध: लोकोंका वर्णन ३९४

४) अठ्ठाईस नरकों का वर्णन ४००

** जैसे ही मन में श्रद्धा भाव का उदय होता है, वैसे ही तर्क शान्त पड जाता है।*

** संसार में अपना मत ही सबसे सम्मानित वस्तु लगता है।*

** वासना तृप्ति का आश्वासन देती है लेकिन अतृप्ति में ले जाती है।*

** अपने प्रति जिसका अनुराग हो, उसकी किसी प्रकार उपेक्षा उचित नहीं।*

** प्रेम ही जीवन और स्वार्थ मृत्यु है। प्रेम के मार्ग में चतुराई करना अच्छा नहीं है।*

** वक्त की कीमत क्या होती है पूछो मरनेवालों से, दिल की दौलत क्या है पूछो मरनेवालों से। साथ कुछ नहीं जाता है, धरा यही सब कुछ रह जाता है, दुनिया की हकीकत क्या है पूछो मरनेवालों से॥*

पंचम स्कन्ध

१) ऋषभ देव का चरित्र

राजा बोले,
प्रियव्रत तो थे भगवद्भक्त, और स्वयं थे आत्माराम। हे मुनिवर गृहस्थाश्रम में, फिर कैसे हुई अविराम?
उसमें फंसकर जीव को, हो विस्मृति स्वरूप की। कर्म बन्धन में फंसने का, है कारण यह आश्रम ही।।

हे द्विजवर नि:संग महाभागों, का यह संग तो उचित नहीं। गृहस्थाश्रम में इस विधि, अभिनिवेष वा उचित नहीं।।
पुण्यकीर्ति श्री हरि के, चरणों की छांव का आश्रय ले। सर्व विकार शून्य होकर, जिनके चित्त हैं शान्त हुए।।
वह महापुरुष तो कभी भी, कुटुम्बादि में सक्त न हों। तनिक भी संशय नहीं इसमें, वह किसी विधि भी बद्ध न हो।।

हे विप्रवर मेरे मन में, इस पल है यह संशय उठा। प्रियव्रत महाराज का चित्त गर, पुत्र दारा गृह आसक्त था।।
किस भान्ति से थी उनको, परम सिद्धि की प्राप्ति हुई? श्री कृष्ण चरण में उनकी कहें, अविचल भक्ति क्योंकर थी?
शुकदेव बोले,
उचित कहा तूने राजन्, जिनके चित्त में श्री हरि रहें। श्री हरि चरण मरकन्द से, चित्त पात्र जिनके छलकें।।
यदि विघ्न या बाधा कोई, राह में उनके आ जाये। तो भी प्रियतम वासुदेव की, कथा श्रवण न छूट पाये।।
भगवद्भक्त परमहंस, कल्याण मार्ग जानें इसको। श्री हरि कथामृत ही एको, उनके जीवन का आश्रय हो।।

कुमार प्रियव्रत तो राजन्, जानो थे अति भगवद्भक्त। श्री नारद चरण सेवा से उन्हें, था मिला तत्त्व का बोध सहज।।
निरन्तर ब्रह्म अभ्यास में, जीवन वह बिताना चाहते थे। ब्रह्म सत्र की दीक्षा नियम, लेने को वह उद्यत थे।।
तत्क्षण उनके पिता स्वयंभु मनु, ने देखे उनमें श्रेष्ठ गुण। पृथ्वी पालन के योग्य सभी, थे शास्त्र कथित सब गुण सम्पन्न।।

प्रियव्रत तो अखण्ड योग, में थे अचल समाधि युक्त। अपनी सब इन्द्रिय क्रियाओं को, था उन्होंने किया हरि के अर्पित।।
पिता ने उनको राज्य शासन, के लिये फिर आज्ञा दी। पिता की यह आज्ञा तो, नहीं उलंघन योग्य थी।।
फिर भी पुत्र प्रियव्रत ने, नहीं किया उसको स्वीकार। उसके मन में तो उस पल, था उठा यह ही विचार।।
राज्याधिकार पाकर स्वरूप, मेरा आच्छादित हो जायेगा। स्त्री पुत्रादि प्रपंच से, आत्म स्वरूप ढक जायेगा।।
राज्य और कुटुम्ब की, चिन्ता में मैं फंस जाऊंगा। परमार्थ तत्त्व है सत्य जो, प्राय: उसे भूल ही जाऊँगा।।

आदि देव प्रजापति तो, निरन्तर एक विचार करें। इस गुणमय प्रपंच की, वृद्धि किस विध क्योंकर होये?
संसार के सारे जीवों का, अभिप्राय जानते रहते हैं। सृष्टि के वर्धन के लिये, उन्हें प्रेरित करते रहते हैं।।
जब उन्होने देखी प्रियव्रत की, ऐसी विरक्त ही प्रवृत्ति। उतरे वह निज लोक से, आ पहुँचे उस स्थल पर ही।।
मूर्तिमान चहुँ वेद ले संग, और संग ले मरीचि आदि। उनका था उद्देश्य एक, प्रियव्रत को देना सन्मति।।

जहाँ जहाँ विमान आरूढ़, थे आकाश में देवता। इन्द्रादि प्रधान देवों ने, उनका फिर पूजन किया।।
मार्ग में थीं टोलियां, सिद्ध गन्धर्व चारणों की। साध्य और मुनिजन ने भी, मिलकर उनकी स्तुति करी।।

जगह जगह उनका इस विधि, आदर और सम्मान हुआ। नक्षत्रनाथ शशि की न्याईं, प्रकाश था उनका फैल रहा।।
गन्धमादन की घाटी में, उनकी आभा फैल गईं। इस विधि वाहन उनकी, प्रियव्रत के निकट पहुँची।।

आत्म विद्या उसे देने को, नारद भी वहाँ उपस्थित थे। ब्रह्मा का वाहन हंस देख, पितृ आगमन हुआ जान गए।।
स्वयंभू मनु और प्रियव्रत संग, तुरन्त खड़े वह हो गए। सबने ही कर जोड़ कर, श्री ब्रह्मा को प्रणाम किए।।
नारद जी ने हे परीक्षित्, अनेक विधि उनका पूजन की। सुमधुर स्वरों में उनके गुण, और उत्कृष्टता वर्णन की।।
तब आदिपुरुष श्री ब्रह्मा ने, देखा प्रियव्रत दयादृष्टि से। मन्द मन्द मुसकाते हुए, फिर उसको यह वचन कहे।।
ब्रह्मा बोले,
हे तात् तनिक तुम ध्यान धरो, तुम्हें कहूं सत्य सिद्धान्त की। श्री हरि के प्रति न हो, तेरे मन में तनिक दोष दृष्टि।।
तुम तो क्या महादेव और मैं, स्वयंभू मनु तुम्हारे पिता। और तुम्हारे गुरु नारद, करें आज्ञा पालन विवश उनका।।
उनका विधान तो है अटल, न उसको कोई टाल सके। तप विद्या योग बुद्धि बल से, न अर्थ या धर्म से टाल सके।।
न तो स्वयं अपने बल से, या दूजे की सहायता से। देहधारी कोई भी तो, नहीं विधान उलांघ सके।।

उस अव्यक्त ईश्वर ने, प्रियवर जो भी तन है दिया। उस राही ही जन्म मरण, और शोक मोह अनुभव है हुआ।।
भय और दु:ख सुख का भी, अनुभव इस राही ही करें। और कर्म सब करने को, ही इसको धारण करें।।

ज्यों रस्सी से पथा पशु, बोझा ढोये मनुष्य का। त्यों ही वेद वाणी रूपा, हरि की रज्जू में बन्धा हुआ।।
सात्विक आदि गुण कर्मों, और ब्राह्मण आदि वाक्यों की। दृढ़ डोरी से जकड़े हुए, उनकी इच्छा से करें कर्म सभी।।
उन कर्मों के द्वारा वत्स, हम उनकी पूजा करते हैं। इस विधि यह जान लो, विवश ही चक्र में भ्रमते हैं।।

गुण कर्म अनुसार प्रभु, जिस भी योनि में डाल दें। दु:ख सुख सारे भोगें हम, प्रभु जैसी भी व्यवस्था करें।।
ज्यों किसी नेत्रहीन द्वारा, अनुसरण हो दृष्टि वाले का। प्रभु की इच्छानुकूल ही, जीवन चक्र यह चल रहा।।

मुक्त पुरुष भी प्रभु इच्छा से, रेखा बधित सब भोग रहा। उनकी इच्छा होने पर, वह तन भी धारण है करता।।
ज्यों निद्रा से जागृत जीव, स्वप्नानुभव को याद करे। स्वप्न तो लीन है हो चुका, पर स्मृति उनकी बनी रहे।।
त्यों ही इस अवस्था में, अभिमान उसे नहीं होता है। पुनर्जन्म का कारण जो, संस्कार वहाँ न बनता है।।

इन्द्रियों के वशीभूत है जो, चाहे वन वन विचरण करे। जन्म मरण का भय उसके, मन में फिर भी बना रहे।।
अजित इन्द्रिय और मन रूपा, उसके हैं यह छ: शत्रु। उसका पीछा नहीं छोड़ते, हर पल ताड़ित करें यह रिपु।।
विवेकी जीते निज इन्द्रियां, आत्म में ही है रमण करे। गृहस्थ आश्रम भी उसका, भला है क्या बिगाड़ सके?

जो भी जीव इन छ: अरिअन को, है विजय करना चाहता। घर में रहकर ही पहले, निरोध है इनका कर सकता।।
वहीं पे यत्न कर पहले, वश में इनको वह कर ले। सुरक्षित किले में रहकर ही, ज्यों राजा निज शत्रु से लड़े।।
प्रबलतम शत्रु को भी, सहज जीत वह लेता है। क्षीण हो जब शत्रु का बल, इच्छानुसार विचरता है।।

यद्यपि कमलनाभ श्री हरि, के चरणारविन्द का आश्रय ले। उस दुर्ग में रह सुरक्षित तुम, इन असुरन् को हो जीत चुके।।
तथापि परम पुरुष के दिये, भोगों को पहले तुम भोगो। तत्पश्चात् नि:संग होकर, आत्म स्वरूप में स्थित होवो।।

शुकदेव बोले,
त्रिलोकी गुरु श्री ब्रह्मा ने, प्रियव्रत को जब इस विधि कहा। छोटा जान के अपने को, विनम्र भक्त का सीस झुका।।
जैसे आपकी आज्ञा कह, आदेश को उसने सीस धरा। श्री ब्रह्मा जी का उसने, इस विधि सम्मान किया।।

स्वयंभू मनु ने मुदित हो, ब्रह्माजी की पूजा करी। विधिवत् ही प्रजापति की, उन्होंने फिर अर्चना करी।।
जो हैं मन वाणी के परे, और हैं उनके अनन्य आश्रय। सर्व व्यवहार से जो अतीत, उस ब्रह्म का चिन्तन करते हुए।।
श्री ब्रह्मा जी आपने ही, लोक को पुन: चले गये। प्रियव्रत और श्री नारद थे, उन्हें सरल भाव से देख रहे।।

श्री ब्रह्मा की कृपा से जब, मनोरथ उनका पूर्ण हुआ। स्वयंभुव मनु ने फिर, देवर्षि से ली आज्ञा।।
सब भूमण्डल की रक्षा का, दायित्व दिया प्रियव्रत को। विषय रूप विष से भरे, जल रूप गृहस्थ जलाशय को।।
त्याग कर स्वयंभू मनु, फिर आत्म ज्ञान प्रवृत्त हुए। दुस्तर इस संसार की वह, भोगेच्छा से निवृत्त हुए।।

हरि इच्छा से अब प्रियव्रत, शासन में नियुक्त हुए। पृथ्वीपति महाराजा ने, सब राज्य काज सम्भाल लिए।।
सम्पूर्ण जग के बन्धन जो, स्वयं ही पल में काट सकें। उन आदि पुरुष भगवान के, चरणों का स्मरण नित्य करने से।।
रागादि उनके सब विकार, नष्ट ही थे हो चुके। अति पावन था हृदय हुआ, शुद्ध अन्त:करण वह भक्त थे।।
तथापि बड़ों की आज्ञा का, पालन करने के लिये। उनके वचन का मान रख, पृथ्वी पर शासन करने लगे।।

प्रजापति विश्वकर्मा की, पुत्री थी बर्हिष्मति। तदनन्तर प्रियव्रत ने, उससे थी विवाह करी।।
बर्हिष्मति से प्रियव्रत के, दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन समान गुण शीलवान, कर्मनिष्ठ और पराक्रमी थे।।
उनकी अनुजा उर्जस्वती, नामक कन्या भी हुईं इस प्रकार प्रियव्रत के, कुल की थी वृद्धि हुई।।

आग्नीध्र इध्वाजिह्व यज्ञबाहु, महावीर और हिरण्यरेता। धृतपृष्ठ सवन मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि नाम था।।
ये सब के सब ही अग्नि के, ही दूजे कहें नाम हैं। तेज में प्रियव्रत पुत्र सब, मानो अग्नि के समान हैं।।
कवि महावीर और सवन, तीनों थे नैष्ठिक ब्रह्मचारी। बाल्यावस्था से ही इन, आत्म विद्या अभ्यास करी।।
अन्त में जा संन्यासाश्रम, को इन्होंने स्वीकार किया। इस जीवन का इस विधि, परम लाभ उन्होंने लिया।।

निवृत्ति परायण महर्षि यह, संन्यासाश्रम में रहते हुए। प्रभु वासुदेव के परम सुन्दर, चरणारविन्द चिन्तन रत थे।।
यही चरण कमल तो हैं, सब जीवों का अधिष्ठान। भवभय से त्रस्त जीवों का, है यही इक आश्रय स्थान।।
प्रियव्रत की दूजी भार्या ने, जन्म दिया तीन पुत्रों को। उत्तम तामस और रैवत, यह हैं नाम इनके जानो।।
इनके तीनों नामों से ही, तीन मन्वन्तर हुए। निज नाम के मन्वन्तर के, तीनों ही अधिपति हुए।।

कवि आदि तीनों पुत्र, निवृत्ति परायण जब हुए। प्रियव्रत ने ग्यारह अर्बुद वर्ष, पृथ्वी पर शासन किये।।
अखण्ड पुरुषार्थ और वीर्य, से युक्त अपनी भुजाओं से। धनु: की डोरी खेंचकर, जब टंकार वह थे करते।।
धर्मद्रोही भयभीत हो, न जाने कहाँ छिप जाते थे। उनके भय से धर्म विरुद्ध, आचरण नहीं कर पाते थे।।
प्राणप्रिया बहिर्ष्मती के, नित्य आमोद प्रमोद से। स्त्रीजनोचित हाव भाव, लज्जायुक्त मन्द हास्य से।।
मनभावन चितवन उसकी, और सरल स्वभाव विनोद से। महामना प्रियव्रत जैसे, आत्म विस्मृत ही होकर के।।

अविवेकी पुरुषवत् ही, सब भोगों को थे भोग रहे। पर वास्तव में वह तो उनमें, तनिक भी आसक्त न थे।।

हर बार इन्होंने जब देखा, सूर्य को परिक्रमा करते हुए। सुमेरु पर्वत के ही गिर्द, सूर्य देव थे घूम रहे।।
लोक पर्यन्त पृथ्वी का, जो भी भाग प्रकाशित हो। उसमें से केवल आधा ही, आलोकित सा भासित हो।।
आधे में तो अन्धकार, ही छाया रहता देखा। यह रुचिकर उन्हें नहीं लगा, तो उन्होंने यह संकल्प किया।।
रत्रि को भी दिन में ही, निश्चय मैं बदल दूंगा। यह निश्चय कर सूर्य समान, वेगवान इन्होंने रथ लिया।।
ज्योतिर्मय उस रथ पे चढ़, सूर्य का फिर पीछा किया। दूजा सूर्य ज्यों सूर्य के, पीछे ही हो दौड़ रहा।।
सूर्य की भान्ति पृथ्वी को, सात परिक्रमा कर डाली। श्री हरि की उपासना से, अलौकिक प्रभाव भी बढ़ी।।

रथ के पहियों से उस पल, रेखायें थीं जो भी बनीं। वे ही सात समुद्र हुए, और सात द्वीप उनसे ही बनीं।।
सात समुद्र जो हैं कहे, क्रमश: उनके यह नाम जान। जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश, क्रौंच शोक पुष्कर हैं जान।।
पहले द्वीप की तुलना में, अगले परिमास है द्विगुणे। सागर के बाहिरी भाग में यह, पृथ्वी के चहुं ओर बनें।।

क्रमश: खारा जल ईख का रस, मदिरा घी दूध और मट्ठा भरा। सातवां सागर जो कहें, है मीठे जल से भरा हुआ।।
सात द्वीपों की खाइयों के, ही समान है यह सागर। परिमाण में अपने भीतर के, द्वीप समान है यह सागर।।
इनमें से क्रमश: एक एक, है भिन्न द्वीप घेरे हुए। सातों द्वीपों के बाहर, ही स्थित हैं सातों सागर ये।।
बर्हिष्मती पति प्रियव्रत ने, निज अनुगत सातों पुत्रों को। अग्नीध्र इध्मजिह्नु यज्ञबाहु, हिरण्यरेता धृतपृष्ठ को।।
मेधातिथि और वीतिहोत्र को, क्रमश: इक इक द्वीप दिया। जम्बू आदि द्वीपों का फिर, इक इक को राजा दिया बना।।

निज कन्या ऊर्जस्वती का, परिणय शुक्राचार्य से किया। उसीके गर्भ से शुक्रसुता, देवयानी का जन्म हुआ।।
श्री भगवद् चरणारविन्द का, है प्रभाव ही कुछ ऐसा। तन की भूख प्यास मोह शोक, जरा मृत्यु को जैसे जीता।।
अथवा मन सहित ही षष्ठेन्द्रिय, पर है विजय जिसने पाई। उन भगवद्भक्तों का ऐसा, पुरुषार्थ नहीं आश्चर्य कोई।।
चाण्डालादि नीच योनि, भी गर हरि का नाम लें। इक बार नाम उच्चारण से, तत्काल ही बन्धन मुक्त भयें।।

अतुल्य बल पराक्रम युक्त, महाराज प्रियव्रत एकबार। देवर्षि की चरण शरण में, पुन: एकबार पहुंचे जा।।
दैववश ही प्राप्त हुए, प्रपंचें निज को फंसे देख। अशान्त सा देखा अपना मन, विरक्त होई कर की यह सोचें।।
अहो यह तो नहीं भला हुआ विषय लोलुप इन्द्रिय वश में पड़ा। अविद्या जनित विषय रूप, विषकूप में इन्होंने दिया गिरा।।
हा। बहुत हुआ यह खेल अब, मैं क्रीड़ा मृग स्त्री का बना। धिक्कार ही है यह मुझपे बहुत, जो बन्दरवत् ही मैं नाचा।।
इस भान्ति अपने को वह, बहु बुरा भला कहने लगे। धिक् धिक् कहकर अपना ही, तिरस्कार वह करने लगे।।
परम आराध्य श्री हरि की, अनुकम्पा उनपे महान् हुई। इस तन के रहते रहते ही, विवेक जागृत उनकी हुई।।

सारी पृथ्वी उन यथायोग्य, अनुगत पुत्रों में बांट दी। जिस महारानी संग उन्होने, विभिन्न भोग सब भोगी थी।
साम्राज्य लक्ष्मी सहित फिर, उस पत्नी का भी त्याग किया। ज्यों मृत देह का किसी से भी, नहीं रहता कोई नाता कदा।।
वैराग्य हृदय में धारण कर, प्रभु लीला का चिन्तन किया। उसके प्रभाव से श्री नारद, प्रदर्शित पथ अनुसरण किया।।

प्रियव्रत से सम्बन्धित है, एक प्रसिद्ध लोकोक्ति। उस राजा की जान लो, है लोक प्रसिद्ध एक उक्ति।।

प्रियव्रत ने जो कर्म किये, ईश्वर बिन कौन वह कर सके? सूर्य देव के रथ के ही, उसने तीव्र अनुगमन किये।।
रात्रि अन्धकार मिटाने को, निज रथ के पहियों से खींची। सात लकीरों से ही उन, सागर सात बना थी दी।।

आपस में रहे प्रेम भाव, पृथ्वी के सात विभाग किये। हर द्वीप में नदियां भिन्न-भिन्न, पर्वत और वन बना दिये।।
भगवद्भक्त वह श्री नारद, आदि के प्रेमी भक्त थे। पाताल देव और मृत्युलोक, के भोग तुच्छ ही जाने थे।।
कर्म और योग की शक्ति से, भोग जो भी प्राप्त हों। ऐसे ऐश्वर्य भोग को भी, नरक तुल्य ही जानें वो।।
शुकदेव बोले,
पिता प्रियव्रत तपस्या में, इस भान्ति जब हुए मग्न। राजा अग्नीध्र ने उनकी, आज्ञा का किया पालन।।
जम्बुद्वीप की प्रजा का वह, पुत्रवत् पालन करने लगे। धर्मानुसार भूखण्ड पर, राज्य वह करने लगे।।
पितृलोक की कामना से, सत्पुत्र प्राप्ति के लिये। पूजा की सब सामग्री जुटा, मद्राचल की घाटी में गए।।
सुर कन्याओं की क्रीड़ा स्थली, अति सुरम्य वह घाटी थी। तप में तत्पर अग्नीध्र ने, श्री ब्रह्मा की आराधना की।।
आदि देव ब्रह्मा जीने, उनकी अभिलाषा जान ली। निज सभा की गायिका पूर्वचित्ति, अप्सरा उनको भेज दी।।

अग्नीध्र के आश्रम के समीप, रमणीय इक उपवन था। वही उद्यान उस अप्सरा का, विचरन् का फिर स्थान बना।।
भान्ति भान्ति के सघन वृक्ष, थे वहाँ पर फैले हुए। उनकी शाखाओं पर जैसे, थे स्वर्णलता के जाल बिछे।।
मयूरादि अनेकों ही, स्थलाचारी पक्षिन् के युगल। उनपर बैठे बैठे ही, मधुर किलोल रहे थे कर।।
षड्ज में उनकी ध्वनि को सुन, जल पक्षी भी ज्यों सजग हुए। अपने अपने स्वरों में ही, कृजन वह भी करने लगे।।
सरोवर कमल दलों से सजे, भी थे इससे गूंज उठे। दिव्य स्वर्गीय शोभा सब, वह उपवन था लिये हुए।।

पूर्वचित्ति की गति मन्द, और थी अति विलास पूर्ण। जहां भी पांव वह धरती निज, हो नूपुर ध्वनि झंकार पूर्ण।।
उस मधुर ध्वनि को सुनकर के, अग्नीध्र भी जैसे चौंक गए। निमीलित कमल नयन अपने, फिर शनै: शनै: उन्होंने खोले।।
उस पल अपने समीप ही, अप्सरा के दर्शन किये। उसकी रूप माधुरी को, ठगे से थे वह देख रहे।।
भ्रमरीवत् ही फूल फूल के, पास थी वह जा रही। दिव्य सुगन्धी उनकी ले, थी अपना जी बहला रही।।
देवों और मनुजों के नयन, और मन थी वह चुरा रही। गति में विलास लज्जा विनय, अति चंचल चितवन थी उसकी।।
सुन्दर अंग और मधुर वाणी, जैसे खुला इक द्वार ही थी। इन राही कामदेव को वह, पुरुषों के मन थी बुला रही।।

हँसकर जब वह बोलती, मुख से सुधामय मधु झरता। उसके नि:श्वास की गन्ध से, था भंवरा दल उन्मत्त हुआ।।
उसके मुखारविन्द को था, वह चहुँ ओर से घेर रहा। ज्यों कमल के चारों ओर हो, उनका गुंजन स्वरमय बना।।
उनसे बचने के लिये, उनकी की गति तीव्र थी हो जाती। उसकी वेणी और करधनी, हिलती और स्वर करती जाती।।
इन सबसे श्री कामदेव, प्रविष्ट हुए अग्नीध्र हृदय। उनके अधीन हुए राजसुत, उनको प्रसन्न करने के लिये।।
उस रूप से मोदन्मत्त हो, तप से विचलित वह हुए। फिर पागल की भान्ति ही, उस सुरकन्या सें यू बोले।।
अग्नीध्र बोले,
हे मुनिजन के वरणयोग्य, क्या ढूंढो तुम इस पर्वत पे? क्या परम पुरुष नारायण की, माया ने हैं यह रूप धरे?
हे प्रिय सखे बिन डोरी के, द्वौ धनु: यह क्यों धारण किये? क्या इसमें तुम्हारा अपना ही, है कोई प्रयोजन हे?

या फिर संसार आरण्य में, मुझ जैसे उन्मत्त मृगों का। शिकार हो करना चाहती तुम, क्या यह प्रयोजन है तेरा?

यह कटाक्ष बाण तेरे, हैं अति सुन्दर और तीक्ष्ण। लागे हैं कमल दल पंख इनके, अति शान्त भी हैं दीखे न पंख।।
विचरण करके इस वन में, किसपे यह चलाना चाहती हो? जो इनके सामने टिक पाये कोई ऐसा महारथी न हो।।
यह पराक्रम तेरा प्रिय, कल्याणकारी हो हमरे लिये। तेरा सौन्दर्य बाण से हत, हम तो हैं जड़ बुद्धि हुए।।
भवरे जो हैं मुख को घेरे, क्या शिष्य अध्ययन हैं कर रहे? वह तो निरन्तर अति गुह्य साम गान में मस्त हुए।।
अपने ही भगवान की, जैसे स्तुति हों कर रहे। जैसे ऋषिगण मिलकर, वेदों का हैं अनुसर करें।।
उसी विधि तव वेणी से, जो फूल हैं झड़ रहे। उनका ही मिलकर के यह, भंवरे हैं सवन कर रहे।।

हे द्विजवर तव चरणों के, पिंजरे में बन्द जो तीतर हैं। शब्द तो उनका सुन रहा, पर नजर न आये नूपुर हैं।।
कदम्ब कुसुम की सी आभा, नितम्बों पर कैसे उतरी? इस पीताम्बर से ही तो, कटि प्रदेश तव ढक रही।।
इसके ऊपर तो ऐसा लगे, अंगारे ज्यों हों दमक रहे। हे सखे कहो वल्कल वस्त्र, हैं तुम्हारे कहाँ गये?

कुंकुम से सजे वक्ष:स्थल पर, उभार में है क्या निधि भारी? रत्नों से है भरपूर यह, कृश कटि जो बोझ है उठा रही।।
यहां पे आकर तो मानो, मम दृष्टि ही ज्यों अटक गई। यह रक्तिम् लेपन तुमने, इन श्रृंगों पर क्या है करी?
इसकी सुगन्ध से तो मेरा, आश्रम ही सारा महक उठा। इस सुरभि ने तो जैसे, मदान्ध है मुझको किया।।

हे मित्रवर प्रदेश निज, मुझको तुम दिखला ही दो। जिसके वसिन् के वक्ष:स्थल, पर यह अद्भुत अव्यय हो।।
हम जैसे प्राणिन् के चित्त, को क्षुब्ध है इसने किया। मुख पे विचित्र हैं हाव भाव, भाषण सरस और प्रिय बना।।
अधरामृत का अनूठी रस, लिये जो अपने में है सजा। ऐसे प्राणी का निवास, है कहो कहो किस देश का?

क्या भोजन है प्रिय तेरा, जो मुख इतना सुवासित है? हवन सामग्री की सुगन्ध, ज्यों वातावरण में व्याप्त हैं।।
ऐसा लगे श्री विष्णु की, ही कला का अंश हो तुम। निज कानों में मकराकृति के, कुण्डल धारण किये हो तुम।।
मुख कमल तुम्हारा हे सखे, है सुन्दर सरोवर सम। चंचल द्वौ नेत्र जो हैं उसपे, भयभीत हुई मछली के सम।।
अति सुन्दर दन्तावली यह, ज्यों मानस के हंस ही हों। घुंघराली यह अलकावली, ज्यों श्यामल भंवरों का दल हो।।

अपने हाथों से जब, गेंद को तुम थपकाती हो। दिशा दिशा में उछले यह, चंचल मेरे नेत्र कराती हो।।
मेरे मन में विक्षेप भी, उत्पन्न तब हो जाता है। यह जटा जूट तेरा खुला, क्या तुमसे सम्भल नहीं पाता है?
कैसा है धूर्त वायु यह, प्रहार जो अपना कर रहा। सुन्दर नाभि प्रदेश से, तेरे वस्त्र हरण यह कर रहा।।

हे तपोधन किस तप के, प्रभाव से रूप यह है पाया? तपस्वी जन के तप को जो, नष्ट भ्रष्ट है कर रहा।।
आओ सखे मेरे संग रहकर, कुछ दिन अब तुम तप करो। विश्व विस्तार की इच्छा से, क्या ब्रह्मा कृपा यह मुझ पर हो?

वस्तुत: श्री ब्रह्मा की ही, हो अनुपम भेंट तुम प्रिय मुझे। अब जो मिली हो आन मुझे, नहीं पल भर छोड़ सकूँ मैं तुझे।।
मेरा मन और यह नयन मेरे, इस विधि तुझसे हैं उलझ गये। तुझको यह छोड़ अन्यत्र कहीं, जाना ही अब न चाहें।।
हे सुन्दर अंगिनी अब मुझे, जहाँ भी चाहो ले चलो। अनुचर हूँ मैं तुम्हारा सखे, निज सखियों को भी संग ही लो।।

शुकदेव बोले,
देवों समान बुद्धिमान वह थे, स्त्रीजन के कुशल प्रियकर। चातुर्यमयी मधु वाणी से, यूं लिया अप्सरा का मन हर।।
वीर समाज के अग्रणी, थे स्वयं अग्नीध्र राज। रूप अवस्था बुद्धि शील, लक्ष्मीवान् और थे उदार।।
उनसे आकृष्ट हो पूर्वचिति, सहस्त्रों वर्ष पृथ्वी पे रही। जम्बू द्वीप पे उनके संग, पृथ्वी और स्वर्ग भोग भोगी।।

फिर नृपवर अग्नीध्र ने, उनके गर्भ से पाये नौ पुत्र। केतुमाल भद्राश्व हिगर,ण्यमय रम्यक्, इलावृत्त हरिवर्ष और किम्पुरुष।।
नौ वर्षों में उनको, प्रति वर्ष दिया उस एक पुत्र। राजभवन में ही छोड़े, नौ के नौ उसने यह सुत।।
ब्रह्मा जी की सेवा में, वह पुन: उपस्थित हो गई। धरती पे अपना काम करी, पूर्वचिति निज धाम गई।।

मातृ अनुग्रह से यह सुन, सुड़ौल सबल तन पाये थे। स्वभाव से ही यह सब गुण, नव पुत्रों ने पाये थे।।
अग्नीध्र ने जम्बूद्वीप को, नौ भागों में फिर बांटा। उन समान नाम वाले, व भागों को बना दिया।।
एक एक पुत्र को, उन्होंने वह सब सौंप दिये। अपने अपने राज्य का, उपभोग वह सुत करने लगे।।

दिन दिन भोगों को भोग कर, अग्नीध्र अतृप्त ही बने रहे। उस सुरकन्या को अपना, परम पुरुषार्थ ही माने थे।।
वैदिक कर्मों को कर के, फिर उसी लोक को प्राप्त किया। सृकृति आसरे पितृगण, जहाँ भोगें में रत रहें सदा।।
पिता जब परलोक गए, नौ भाईयों ने विवाह किये। यथायोग्य अपने जानीं, मेरु की कन्याओं से।।
मेरु देवी प्रतिरूपा लता, उग्रदंष्ट्री और रम्या। श्यामा नारी भद्रा और, देववीति उनका नाम था।।

शुकदेव बोले,
अग्नीध्र पुत्र नाभि के यहाँ, नहीं कोई सन्तान थी। निज भार्या मेरु देवी संग, पुत्र कामना हिय धरी।।
एकाग्र चित्त से यज्ञ पुरुष, का उन्होंने फिर यजन किया। विधिवत् आहुति देकर के, उनका ही पूजन किया।।

जो हैं स्वयं सर्वांग सुन्दर, सौन्दर्य मूर्ति श्री भगवान। द्रव्य देश काल मन्त्र ऋत्विज, दक्षिणा और विधि महान्।।
यह सब साधन मिलकर भी, सहज न पायें उन्हें कभी। फिर भी निज भक्तों पर तो, सदा बरसे कृपा उनकी।।
राजा नाभि ने जब उनकी, विशुद्ध भाव से प्रार्थना की। अभीष्ट वर दें भक्त को, थी प्रभु के मन भी चाह उठी।।
वह तो स्वतंत्र हैं सर्वदा, राजा ने कर्म अनुष्ठान किया। मनमोहक नयनाभिराम, सौन्दर्य मूर्ति प्राकट्य हुआ।।
सुन्दर अंगों से युक्त वह, हृदय आकर्षक रूप था। यज्ञ के परिणाम में, सबके सामने प्रकट हुआ।।

श्री अंगों पर रेशम का, पीताम्बर था पड़ा हुआ। वक्ष:स्थल पर वत्स चिन्ह, वहां सुशोभित था हुआ।।
शंख चक्र गदा पद्म ले, प्रकटे चतुर्भुजा धारी। गले में थी वा वनमाल, बनी कौस्तुभ की शोभा न्यारी।।
मणिमय किरीट था भाल पर, किरणें अपनी बिखेर रहा। अंग प्रत्यंग की कान्ति से, किरण जाल ज्यों हो बिछा।।
कुण्डल कंगण करधनी, हार और भुजाबन्द भी। नूपुर आदि आभूषणों से, सर्व अंग विभूषित थी।।
परम तेजस्वी पुरुष विशेष, चतुर्भुजा धारी प्रकटे। ऋत्विज सदस्य यजमान आदि, यह देख के आनन्दित हुए।।
जैसे कोई निर्धन कहीं, धन राशि अतुल्य ही पा जाये। उसके वैभव से चुन्धियाकर, वह फूला नहीं समा पाये।।
फिर सबने सीस झुकाकर के, आदर पूर्वक प्रभु पूजा की। अर्घ्य आदि चढ़ाया उन्हें, स्तुति गान ऋत्विज ने की।।

ऋत्विज बोले,
हे पूज्यतम प्रभु नमन हो, हम आपके अनुगत भक्त हैं। पूजा की विधि भी न जानें, चरणों में बस अनुरक्त हैं।।
बार बार हम आपको, नमस्कार प्रभु करते हैं। महापुरुषों से हे प्रभु, बस इतना ही हम सीखे हैं।।
प्राकृत गुणों के कार्यभूत, इस प्रपंच में बुद्धि फंसी। आपके गुणगान तो, प्रभु यह कभी न कर सकी।।
प्रकृति पुरुष दोनों से ही, सर्वथा हैं प्रभु आप परे। आपके स्वरूप का, निरूपण कौन है कर सके?

परम मंगलमय आपके गुण, जीवों के सब दु:ख हरें। वर्णन साहस कोई करे यदि, तो अंशमात्र ही कह पाये।।
पर यदि आपके भक्त प्रभु, प्रेम से गद्‌गद् वाणी से। स्तुति समय जल पुष्प तुलसी, और दूब के अंकुर से।।
आपकी ही प्रभु पूजा और, अर्चना में निमग्न हों। तो आप भी प्रभु सर्वविधि, इस पूजा से संतुष्ट हों।।
द्रव्य कालादि अनेकों अंग, वाले हैं विभिन्न यज्ञ याग। इक ही प्रयोजन दीखे हमें, आपमें जागे दृढ़ अनुराग।।

सर्व पुरुषार्थ फल स्वरूप, परम आनन्द जो कहलाये। आपसे वह निरन्तर ही, उत्पन्न स्वत: क्षण क्षण होये।।
साक्षात् आनन्द स्वरूप, हे प्रभु है आप स्वयं। इस भान्ति के यज्ञादि से, आपका है क्या प्रयोजन?
तथापि अनेकों भान्ति की, काम सिद्धि चाहें हम लोग। मनोरथ सिद्धि का यही, साधन पर्याप्त कहें हैं लोग।।

ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ जनों में, सर्वश्रेष्ठ हैं आप प्रभु। निज परम कल्याण का हम, साधन भी न जानें प्रभु।।
न ही यथोचित पूजा हम, आपकी कर पायें कभी। तथापि करुणा पूर्ण पुरुष, न करे आमन्त्रण प्रतीक्षा भी।।
केवल अहैतुकी कृपा करी, अज्ञानी के वह जायें निकट। उसी विधि आप भी हे हरि, करुणावश ही हों प्रकट।।
मोक्षदे निज परम पद, अभीष्ट हमारा देने को। अन्य साधारण यज्ञ दर्शकों, के समान ही प्रकट हों।।

हे पूज्यतम सर्वोत्तम वर, तो दिया आपने पहले ही। ब्रह्मा आदि वरदायकों में, हैं श्रेष्ठतम प्रभु आप ही।।
राजर्षि नाभि के यज्ञ में, साक्षात् आप हैं प्रकट हुए। चर्म नेत्र को दरस दिये, अब और भला हम क्या मांगे?

परम मंगलमय है प्रभु, आपके मंगल गुणों का गान। ज्ञान प्रज्वलित वैराग्य करे भस्म हो अन्त: मल महान्।।
राग द्वेषादि सब विकार, जलकर स्वत: ही राख होएँ। जिनका स्वभाव प्रभु आपके, समान ही हर पल शान्त रहे।।
वे आत्म राम मुनिजन भी, निरन्तर आपका गान करें। आपके ही वह गुण गाएँ, और वहीं विश्राम करें।।

अत: आपसे एक ही वर माँगे, हर पल ही आपका गान करें। ठोकर खायें या गिर जायें, छींकें या फिर जम्भाई लें।।
संकटादि के समय में भी, ज्वर या फिर मृत्यु भी आये। यदि स्मरण गुणों का हो न सके, कलिमलहर नाम ही हम गायें।।
भक्त वत्सल दीनबन्धु, करुणामय हे करुणानिधान। कुछ ऐसी युक्ति बना दीजो, पुकारें हम यह तुम्हारे नाम।।

इसके अतिरिक्त अकथ्य इक, बिनती आपसे और करें। हैं साक्षात् परमेश्वर आप, स्वर्ग अपवर्ग सब दे सकें।।
तथापि कोई कंगाल ज्यों, अति धनवान पे जा पहुंचे। उदारमनी उस दानी से, केवल भूसा ही मांग ले।।
उसी विधि यजमान यह, नाभि हमारे राजर्षि। सन्तान प्राप्ति को ही निज, परम पुरुषार्थ मान करी।।
आपके समान पुत्र, प्राप्त करने के लिये। इस यज्ञ के द्वारा वह, आराधना आपकी कर हैं रहे।।

नहीं इसमें कोई आश्चर्य कहीं, तेरी माया का कहीं पार नहीं। न ही किसी के वश हो वह, न ही है उसका सार कहीं।।

महापुरुषों के चरणों का, आश्रय जिन्होंने नहीं लिया। कौन है उनमें से ऐसा, जो उसके वश में नहीं हुआ?
जिसकी बुद्धि पर उसका, आवरण नहीं है पड़ जाता? विषय विष रूपी वेग वा, स्वभाव न दूषित कर जाता?

हे आदिदेव निज भक्तों के, सब काज संवारें आप। मन्दमति कामना विवश हम, आज आये आपके द्वार।।
इस तुच्छ काज के लिये प्रभु, आवाहन आपका है किया। वास्तव में हम जान रहे, यह तो है अनादर आपका।।
किन्तु आप हैं समदर्शी, इस कारण साहस कर सकें। हम अज्ञानी जन की यह, धृष्टता आप ही क्षमा करें।।

शुकदेव बोले,
धराधिपति नाभि के पूज, ऋत्विज ने प्रभु की वन्दना की। उनके चरणों में सीस झुका, पूर्वोक्त जब स्तुति करी।।
तब देवश्रेष्ठ हरि का हृदय, करुणा से भरपूर हुआ। करुणा वश श्रीहरि ने फिर, ऋत्विज को यह वाक् कहा।।

भगवान बोले,
हे ऋषिजन आपने तो, दुविधा में मुझे डाल दिया। सत्यवादी हैं महात्मा सब, यह दुर्लभ वर क्या मांग लिया?
राजर्षि नाभि के यहाँ, मेरे समान ही पुत्र हो। कहो कहो हे ऋषिजन आप, वर यह सम्भव कैसे हो?
अपने समान मैं स्वयं ही हूं, क्योंकि मैं तो अद्वितीय हूँ। फिर भी ब्राह्मण वचन को, झूठा नहीं मैं कर सकूं।।
द्विज कुल तो मेरा मुख ही है, उसे निभाना ही होगा। उनके मुख से निकला जा वाक्, उसे सत्य बनाना ही होगा।।

इसलिये मैं स्वयं ही, निज अंश कला का आश्रय ले। अग्नीध्र सुत नाभि के यहाँ, होऊँगा प्रकट अवतार ले।।
निज समान इस जग में मैं, नहीं देख सकूँ कोई दूजा। अपने सिवा फिर दूजा कोई, पुत्र रूप उसे क्या दूँगा?

शुकदेव बोले,
महारानी मेरुदेवी ने, भी प्रभु की यह बात सुनी। ऋत्विजों के सम्मुख ही, उसके पति से जो बात कही।।
ऐसा कहकर श्री हरि की, मूर्त फिर अन्तर्धान हुई। कृत्कृत्य किया सबको, और हरि ने प्रस्थान किया।।

महर्षियों ने उस यज्ञ में, श्री हरि को जब प्रसन्न किया। प्रभु ने यजमान नाभि को, प्रियकर वर ही तब दिया।।
अन्त:पुर में उस महारानी, मेरुदेवी के गर्भ से। सत्त्वमय शुद्ध विग्रह धर, श्री हरि स्वयं ही प्रकट हुए।।
इस अवतार में श्री प्रभु ने, किया कल्याण मुनिजन का। धर्म संस्थापन उन्होंने किया, दिगम्बर संन्यासी जन का।।
शुकदेव बोले,
नाभि नन्दन के अंग तो, जन्म से ही विभूषित थे। प्रभु विष्णु के वज्र अंकुश, आदि चिन्हों से युक्त थे।।
समता शान्ति वैराग्य और, ऐश्वर्यादि विभूतियों से। उनका प्रभाव था दीखता, दिन प्रति दिन बढ़ते हुए।।
प्रकृतिवर्ग प्रजा मन्त्री, ब्राह्मण और सब देव मिली। उत्कट अभिलाषा करने लगे, पृथ्वी पर शासन हो उनकी।।

सुन्दर और सुडौल तन, विपुल कीर्ति तेज और बल। पराक्रम और शौर्य उनका, ऐश्वर्य और महायश।।
इन सब गुणों को देखकर, श्रेष्ठता उनकी पहचान ली। नाभि ने यह सब गुण पहचान, ऋषभ ही उनका नाम धरा।।
देवेन्द्र के मन में जब, उठी उनके प्रति ईर्ष्या। उनके राज्य में एक बार, उसने नहीं करी वर्षा।।

तब योगेश्वर ऋषभ हँसे, इन्द्र की यह मूर्खता देख। निज योगमाया का प्रभाव, दिखाया उन्होंने अपने प्रदेश।।

अजनाभ खण्ड था उनका देश, खूब जल बरसाया वहाँ। इस विधि देवेन्द्र का, अभिमान चूर्ण कराया वहाँ।।

महाराजा नाभि को अपनी, इच्छा अनुकूल ही पुत्र मिला। श्रेष्ठ पुत्र ऐसा पाकर, उनका के हृदय आनन्द भरा।।
स्वेच्छा से यह तनधारी, पुराण पुरुष श्री हरि की। मन्त्र मुग्ध होकर उन्होंने, लीला विलास प्रभु की देखी।।
लालन पालन उनका करते हुए, सप्रेम वचन उनसे कहते। गद्‌गद् कण्ठ से वत्स। तात्। ऐसा कहकर बहु सुखी रहते।।

जब देखा उस राजा ने, मन्त्री जन और नागरिकों को। ऋषभ देव से अनन्य प्रेम, करते देखा जब जनता को।।
तो धर्म मर्यादा का, रक्षण करने के लिये। ऋषभ को राज्य तिलक दिया, ब्राह्मण संरक्षण में छोड़े।।
निज पत्नी मेरुदेवी संग ले, बद्रिकाश्रम को चले गये। अहिंसा वृत्ति से फिर वहाँ, तपस्या वह करने लगे।।
अति दक्ष हो कुशलता से, उपासना उन्होंने वहाँ करी। उद्विग्न न हो किसीका चित्त, ऐसी उन्होंने तप समाधि धरी।।
प्रभु वासुदेव के नर नारायण, रूप की उन्होंने आराधना की। उचित समय आ जाने पर, स्वरूप में जा समाधि ली।।

हे पाण्डवनन्दन जान लो, प्रसिद्ध है जो लोकोक्ति। नाभि जैसे उदार कर्म, कोई दूजा न कर पाये कभी।।
जिनके शुद्ध आचरणों से, श्री हरि भी सन्तुष्ट हुए। साक्षात् श्री हरि स्वयं, उनके पुत्र ही हो गए।।
महाराजा नाभि के समान, ब्राह्मण भक्त भी कौन हो? जिनसे दक्षिणा पाकर के, सब ब्राह्मण वर्ग सन्तुष्ट हो।।
निज मन्त्र बल के प्रभाव से, नाभि की यज्ञशाला में। साक्षात् प्रभु विष्णु के, दर्शन ही थे करा दिये।।

निज देश अजनाभ को, अपनी कर्मभूमि माना। लोक संग्रह हेतु वह, गुरुकुल में कुछ काल रहा।।
दक्षिणा दे गुरुदेव को, गृहस्थ प्रवेश की आज्ञा ली। फिर लोगों को गृहस्थ धर्म की, शिक्षा निज आचरण से दी।।
देवेन्द्र सुता जयन्ती से, फिर उन्होंने विवाह किया। श्रौत स्मार्त दोनों विधि के, शास्त्र उपदिष्ट कर्मों का।।
आचरण करते हुए उन्होंने, गृहस्थाश्रम भी दिया निभा। इस विधि ऋषभ का, जीवन इक आदर्श हुआ।।
जयन्ती गर्भ से निज समान, गुणवान् पुत्र उत्पन्न किए। संख्या थी उनकी एक सौ, गुणों में ऋषभ समान ही थे।।

सर्वज्येष्ठ और सर्वश्रेष्ठ, उनमें से थे भरत देव। अजनाभ खण्ड वा नाम से ही, पुकारा गया फिर भारत देश।।
उनके अनुज थे कुशावर्त, इलावर्त और ब्रह्मवर्त। मलय केतु भद्रसेन, इन्द्रस्पृक् विदर्भ और कीकट।।
शेष नवदश भाईयों से, यह दश भ्राता थे ज्येष्ठ श्रेष्ठ। इनके चरित और गुण भी, सर्वोत्तम थे सर्वश्रेष्ठ।।

उनसे छोटे थे कवि हरि, अन्तरिक्ष प्रबुद्ध और पिप्पलायन। अविर्होत्र और द्रुमिल, चमस और श्री करभाजन।।
यह नौ राजकुमार जो, हैं हुए प्रसिद्ध भगवद्भक्त। भागवत धर्म प्रचार में, अनुरक्त थे यह सबके सब।।
प्रभु महिमा से महिमान्वित हैं, परम शान्त पावन चरित। नारद वासुदेव प्रसंग में, कहें आगे वा महिमा उपयुक्त।।

इनसे छोटे जयन्ती के, थे इक्यासी पुत्र हुए। पिता के आज्ञाकारी सभी, और सभी विनीत थे।।
वेदों के महाज्ञाता थे, और करते थे निरन्तर यज्ञ। पुण्य कर्म अनुष्ठान कर, थे हो गए ब्राह्मण वह शुद्ध।।

परम स्वतंत्र थे प्रभु ऋषभ, अनर्थकारी कर्मों से हीन। आनन्दानुभव स्वरूप थे, ईश्वर थे साक्षात् स्वयं।।
तो भी अज्ञानी जन में वह, उसके समान ही विचरते थे। काल अनुकूल जो मिला उन्हें, धर्म आचरण वह करते थे।।
तत्त्वहीन लोगों के लिये, यूं धर्म की उन्होंने शिक्षा दी। उन समान ही दीखे थे, पर आचरण आदर्श थी।।

सम शान्त सुहृद् वह सबके थे, करुणापूर्ण स्वभाव था। धर्म अर्थ यश सन्तान, भोग सुख सब प्राप्त था।।
मोक्ष के साधन करते हुए, नियमित निज जीवन किया। गृहस्थाश्रम में इस विधि, लोगों को प्रणाम दिया।।

जैसा जैसा आचरण श्रेष्ठ जन, निज जीवन में करते हैं। अन्य लोग भी उसका ही, अनुकरण नित्य ही करते हैं।।
सब धर्मों का गुह्य सार, रहस्य वेद का जाने थे। तो भी ब्राह्मण जन कथित, विधि विधान को माने थे।।
साम आदि सब नीति से, जन पालन वह करते थे। शास्त्रोक्त विधि से वह, राज्यानुशासन करते थे।।

शास्त्र और ब्राह्मणों से, उनको जो आदेश मिले। भिन्न भिन्न देवों के लिये, भिन्न- भिन्न उन्होंने यज्ञ किये।।
द्रव्य देश काल आयु, श्रद्धा और ऋत्विज से सम्पन्न। सभी भान्ति के शतश: यज्ञ, उन्होंने थे किये सम्पन्न।।

ऋषभ देव के शासन काल में, हर ही जीव निराला था। अपने लिये किसी से भी, कभी इच्छा कोई न करता था।।
अपने लिये तो एकमात्र ही, कामना थी सबके मन में। प्रभु से प्रीति बढ़े मेरी, यही याचना थी सबके मन में।।
आकाश में ज्यों अनेकों ही, कुसुमादि आकृति बने। पर वास्तव में तो सब, ही हैं अविद्यमान यह।।
इसी भान्ति किसी अन्य की, सुन्दरतम वस्तु देखकर। भी असत् जानी उसको, नहीं दृष्टिपात सकते थे कर।।

एक बार प्रभु ऋषभ देव, ब्रह्मावर्त में जा पहुंचे। बड़े बड़े ब्रह्मर्षियों की, सभा में सब उपस्थित थे।।
निज समाहित चित्त से, और विनय प्रेम से संयत थे। प्रजा सम्मुख ही ऐसे निज, पुत्रों को शिक्षा देने लगे।।

ऋषभदेव बोले,
इस मर्त्यलोक में हे पुत्रो, नहीं मनुष देह भोगों के लिये। दु:खमय विषय तो कूकर सूकर, आदि योनि में भी मिलें।।
मनुष्य देह तो मिली हमें, दिव्य तप करने के लिये। ब्रह्मानन्द प्राप्ति हेतु, आन्तर शुद्ध करने के लिये।।

महापुरुषों की सेवा को, शास्त्र कहें हैं मुक्ति द्वार। स्त्रीसंगी कामी जन का, संग ही है नरक का द्वार।।
क्रोधहीन परम शान्त, सदाचारी और समत्व स्थित। सर्वहितचिन्तक हैं जो, वह ही तो हैं महापुरुष।।
परमात्म के ही प्रेम को, इकमात्र पुरुषार्थ मानें जो। विषय चर्चा स्त्री सुत, धनादि से सम्पन्न घर जो।।
उसमें ऐसे लोगों की, तनिक भी न आसक्ति हो। रेखा बधित जो मिल जाये, उसमें ही उनका विचरन् हो।।
लौकिक कार्यों में जो जन, तन निर्वाह हेतु ही लगें। उनको ही तुम जान लो, महापुरुष है यहाँ कहें।।

प्रमाद वश ही जीव यह, कुकर्म में लग जाता है। इन्द्रिय तृप्ति कारण ही, यह प्रवृत्ति वह पाता है।।
नहीं भली यह मुझको लगे, क्योंकि यह तन का कारण है। आनन्द स्वरूप आत्म करे, दु:खदे असत् तन धारण है।।

जब लौ जीव में आत्म तत्त्व, जिज्ञासा न उत्पन्न हो। तब लौ ही अज्ञान वश, देहादि के वह वश में हो।।
निज स्वरूप को जीव यह, विस्मृत करके बैठा है। लौकिक वैदिक कर्मों में, हर पल फंसा यह रहता है।।
तब लौ मन भी कर्म की, वासना में ही भटका करे। और इन्हीं से पुन: पुन:, देह बन्धन में जाय फंसे।।

अविद्या से आत्म स्वरूप, आवृत्त जब हो जाता है। वासना के वशीभूत चित्त, पुन: कर्म प्रवृत्त कराता है।।
जब लौ मुझ वासुदेव में, प्रीति नहीं उसकी होती। तब लौ देह के बन्दीगृह से, मुक्ति नहीं उसकी होती।।

स्वार्थ में उन्नत जीव गर, विवेक का न ले आसरा। इन्द्रियों की चेष्टाओं को, मिथ्या नहीं देख सकता।।
तब लौ आत्म स्वरूप की, विस्मृति के कारण वो। विषय प्रधान गृहादि में, अज्ञान वश आसक्त हो।।
भान्ति भान्ति के क्लेश, वह जीव उठाता रहता है। जन्म जन्म के चक्र में, इस विध भरमाता रहता है।।

स्त्री पुरुष दोनों का जो, परस्पर है दाम्पत्य भाव। दुर्भेद्य ग्रन्थी हिय की, रहे पण्डित जन इसे ही मान।।
देहाभिमान रूप की, सूक्ष्म ग्रन्थी पहले ही बन्धी। इस कारण ही देह इन्द्रियों, में है यह आसक्ति बनी।।
फिर घर खेत पुत्र स्वजन, और धन ऐश्वर्य में भी। अहं-ममत्व भाव उत्पन्न, होता मोह जनित ही।।

कर्मवासना से पड़ी, दृढ़ग्रन्थी तनिक सी ढीली हो। तभी इस दाम्पत्य भाव से, स्त्री पुरुष भी निवृत्त हो।।
सब संसार का कारण जो, इस अहंकार को त्याग कर। सब बन्धन से मुक्त हो, फिर परम पद को प्राप्त ले कर।।

संसार सागर तरने को, जो पुरुष कभी उद्यत हो। दक्ष हो वह धैर्यवान्, सतोगुण सम्पन्न वह हो।।
सबके आत्म और गुण स्वरूप, मुझ प्रभु में वह भक्ति रखे। उसको इतना ही चाहिए, मेरे परायण सदा रहे।।
तृष्णा का वह त्याग करे, दु:ख सुख आदि सब द्वन्द्व सहे। दु:ख हेतु हैं सब ही योनि, इस चिन्तन और विचार से।।
सकाम कर्म का त्याग करे, तप और तत्त्व जिज्ञासा करे। मेरे लिये सब कर्म करे, मेरी कथा का नित्य ही श्रवण करे।।
मेरे भक्तों का संग करे, कीर्तन मेरे गुणों का हो। वैरभाव को त्याग कर, शान्ति समत्व अभ्यास हो।।
देह और गेह आदि में, मैं मेरे भाव का त्याग हो। अध्यात्म शास्त्र अध्ययन हो, और एकान्त में वास हो।।
इन सब द्वारा वह प्राण मन, और इन्द्रिय संयम करे। शास्त्र और सत्पुरुषों के, वचनों में सत्य बुद्धि रखे।।
पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत ले, दक्षता से कर्त्तव्य करे। वाणी का संयम करे, सर्वत्र मेरी सत्ता देखे।।
अनुभव और विज्ञान सहित, फिर तत्त्व का विचार हो। योग साधना द्वारा फिर, अहंकार का नाश हो।।

जीव का यह कर्त्तव्य है, सावधान वह सदा रहे। अविद्या जनित हृदय ग्रन्थी, के बन्धन वह काट दे।।
शास्त्र में यह साधन जो कहे, इनका ही वह आश्रय ले। तभी तो वह भली भान्ति, इस बन्धन से मुक्त हो।।
कर्मन् के संस्कारों का, यही तो महा आशय बने। इसका छेदन जब हो जाये, तो साधन भी परित्याग करे।।

मेरे अनुग्रह को ही जो जीव, परम प्राप्तव्य है मानता। अथवा मेरे लोक की इच्छा ही, है सर्वश्रेष्ठ जिसको सदा।।
निज प्रजा को ऐसी शिक्षा दे, यदि रेखा वश वह हो राजा। पिता पुत्रों को और गुरु, शिष्यों को दे यह ही शिक्षा।।
अज्ञानवश गर वे जन, अनुसरण न इसका कर पायें। और कर्म को ही पुरुषार्थ, अपना परम माने जायें।।
तो भी न उनपर क्रोध करे, प्रेम से उनको समझाये। कर्म बन्धन में न वह बन्धें, इसकी युक्ति किए जाए।।
किसी विषयासक्त को, काम्य कर्म में लगा देना। तो मानो इक अन्धे को, ही है गढ़े में धकेलना।।

अपने वास्तविक कल्याण को, लोग नहीं हैं जानते। भोग कामना में फंसकर, तुच्छ् क्षणिक सुख मांगते।।
इस कारण ही आपस में, वैर ठान वह लेते हैं। निरन्तर विषय भोग हेतु, ही यत्न वह करते हैं।।
वह मूर्ख इस बात पे, तनिक ध्यान न धरते हैं। इस वैर विरोध से नरकादि, वह दु:ख आमन्त्रित करते हैं।।

यदि अन्धा हो कोई सामने, उल्टी राह पे जा रहा। सम्मुख गढ़े में गिरने को, हो गर उसका पांव बढ़ा।।

तो आंख वाला पुरुष उसे, हाथ पकड़ कर रोक ले। विनाश उसका देख कर, उस दिशा में जाने उसे न दे।।
त्यों ही अविद्या बधित जब, अज्ञानी दु:ख की ओर चले। कौन दयालु ज्ञानी हो, उस राह पे उसे जो जाने दे?

जो अपने प्रियतर बन्धु को, न भक्ति का उपदेश दे। भगवद्भक्ति की राह पे लगा, यम फन्द से न उसे मुक्त करे।।
न तो वह स्वजन ही है अपना, न ही वह गुरु है हो सकता। न ही वह पिता न माता है, न ही वह इष्ट कभी हो सकता।।
नहीं वह पति है सच्चा पति, जो प्रभु की ओर न ले जाये। है एको सच्चा नाता वही, जो भक्ति हृदय में दे जाये।।

मैंने इस अवतार में, यह तन जो है ग्रहण किया। बुद्धि गम्य वह है नहीं, जग के साधारण लोगों का।।
शुद्ध सत्व है मेरा हृदय, और धर्म की उसमें है स्थिति। अधर्म तो अपने से पीछे, है बहुत ही दूर धकेल दी।।
इस कारण ही सत्पुरुष, ऋषभ नाम से पुकारें मुझे। सत्य धर्म के संस्थापन, हेतु ही वह निहारें मुझे।।

तुम सब मेरे शुद्ध सत्वमय, हृदय से हो उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ भ्राता भरत की, करो सेवा मत्सर त्याग के।।
उनकी सेवा करना जानो, है मेरी ही सेवा करना। यही तुम्हरा प्रजापालन भी है, यही धर्म पर है चलना।।

अन्य भूतों की अपेक्षा, वृक्ष ही अति श्रेष्ठ कहें। जो गतिवान् हैं चलें फिरें, उनको वृक्षों से श्रेष्ठ कहें।।
उनमें भी जो कीटादि हैं, पशुओं को उनसे श्रेष्ठ कहें। मनुष्य को पशुओं से भी, और उससे प्रमथ गण श्रेष्ठ कहें।।
प्रमथों में हैं गन्धर्व श्रेष्ठ, गन्धर्वों से भी सिद्ध जन। सिद्धों से भी श्रेष्ठ कहें, देव अनुयायी किन्नर जन।।

उनसे असुर असुरों से देव, देवों से भी हैं इन्द्र श्रेष्ठ। ब्रह्मा के पुत्र दक्षादि जो, इन्द्र से भी है अति श्रेष्ठ।।
ब्रह्माजी के पुत्रों में भी, जानो रुद्र हैं अति श्रेष्ठ। हैं श्री ब्रह्मा से उत्पन्न वह, इस कारण ब्रह्मा उनसे श्रेष्ठ।।
वह भी मुझसे ही उत्पन्न हों, और मेरी उपासना करते हैं। इससे जानो हे वत्स सत्य, उनसे भी श्रेष्ठ मुझे कहते हैं।।
लेकिन इतना अब जानो तुम, ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं। पूज्य उन्हें मैं भी मानूं, ब्रह्म भाव सभी से श्रेष्ठ हैं।।

कोई अन्य जीव नहीं मान्य मुझे, हे द्विजवर ब्राह्मण समान। फिर उनसे अधिक कोई हो सके, इसका है ही प्रश्न कहाँ?
श्रद्धापूर्ण भाव से, उनके मुख में जो आहुति दे। अन्नादि समिधा देकर, उनकी क्षुधा जो शान्त करे।।
जिस प्रसन्नता से उसे, ग्रहण स्वयं मैं करता हूँ। अग्निहोत्र होम में दत्त, समिधा ग्रहण न करता हूँ।।

इस लोक में जिन्होंने, अध्ययन आदि है किया। वेद रूप सुन्दर पुरातन, मूर्त को धारण है किया।।
शम दम सत्य दया और तप, परम पवित्र जो सतोगुण। तितीक्षा और ज्ञानादि, अष्ट गुणों से जो सम्पन्न।।
उन ब्राह्मणों से बढ़कर, अन्य भला कोई हो सके? ऐसे ब्राह्मण जन जानो, हैं मेरा ही स्वरूप अरे।।

ब्रह्मा आदि से श्रेष्ठ मैं, अनादि और अनन्त हूँ। स्वर्ग मोक्ष आदि भी सब, देने में सामर्थ हूँ।।
किन्तु मेरे अकिंचन् भक्त, तो हैं ऐसे नि:स्पृह:। मुझसे भी कभी उन्होंने, नहीं रखी कोई आशा।।
फिर राज्यादि तुच्छ भोगों की, इच्छा कैसे वह कर सकें? वह तो बस मेरे प्रेम में, ही अहर्निश छके रहें।।

हे पुत्रों चराचर सब जगत्, को मेरे विग्रह ही मान लो। शुद्ध बुद्धि से पग पग पर, उसकी तुम सेवा करो।।
यह ही तो वास्तव में, है मेरी पूजा जानो। सर्वभूतात्म आत्मा ही, हे पुत्रो मुझको तुम मानो।।

मन वचन दृष्टि या अन्य, इन्द्रियाँ भी हैं जो पाईं। उन सबकी चेष्टाओं का, है वास्तविक इक फल यह ही ।।
यह ही मेरा पूजन है, जो महा मोह से मुक्त करे। इसके बिना दूजा साधन, नहीं काल पाश से छुड़ा सके ।।
शुकदेव बोले,
ऋषभ देव के पुत्र सब, सुशिक्षित थे जानो राजन्। तो भी लोकहित अर्थ ही, दिया उन्हें उपदेश गहन ।।
महा प्रभावशाली और, परम सुहृद् थे ऋषभ देव। यज्ञ ज्ञान कहा उन्होंने, लोक कल्याण था इक उद्देश्य ।।
सौ पुत्रों में ऋषभ के, भरत ही सबसे ज्येष्ठ थे। भगवद्भक्तों के परायण वह, भगवान के अति प्रेष्ठ थे ।।
पृथ्वी पालन हेतु उन्हें, सिंहासन पर बिठा दिया। उपशमी निवृत्ति परायण, उन्होंने रूप स्वयं धारण किया ।।
महामुनि जन के लिये, भक्ति ज्ञान वैराग्य की। परम हंसोचित धर्मों की, उन्होंने विरक्त हो शिक्षा दी ।।
केवल तन का परिग्रह रखा, अन्य सभी परिग्रह छोड़ा। घर में रहते हुए ही उन, सब संचय से नाता तोड़ा ।।
वस्त्र भी त्यागे फिर उन्होंने, दिक् को ही अम्बर लिया बना। केश भी बिखर गए उनके, उन्मत्त का सा ही वेष धरा ।।
अग्निहोत्र की अग्नि को, अपने में ही लीन किया। संन्यासी वेश धर ऋषभ देव ने, ब्रह्मावर्त का त्याग किया ।।

सर्वथा मौन वह हो गए, नहीं कोई चेष्टा वहाँ रही। कोई बात भी गर चाहे करना, तो प्रत्युत्तर कोई न थी।
जड़ अन्धे या बधिर सम, मूक पिशाच पागलों सी। चेष्टा करते थे विचर रहे, अवधूत रूप उन्होंने धरी ।।

कभी जाते गांव या नगरों में, कभी किसानों की बस्ती। उद्यानों में पहाड़ों में, सेना की छावनियों में कभी ।।
गोशाला कभी तो कभी अहीरों, की बस्ती में चले जाते। कभी यात्री जन के टिकने के, स्थानों में जा ठहर जाते ।।
कभी घाटी कभी जंगलों में, कभी आश्रमों में ही जाते वह। जिस भी नगर, गांव या पथ, किसी भी राह से जाते वह ।।
ज्यों वन में विचरते हाथी को, मक्खियां बहुत ही तंग करें। उसी विधि मूर्ख और दुष्ट, राह में उनके पीछे लगते ।।
धमकी देता था कोई, तो कोई था उनको मारता। कोई थूक देता उनपर, तो कोई मूत्र था कर देता ।।
कोई ढेला उनको मारता, कोई विष्ठा धुल फेंकते थे। अधोवायु कोई छोड़ता, खरी-खोटी अन्य सुनाते थे ।।
इस सब तिरस्कार पे वह, ध्यान कभी न धरते थे। भ्रम से सत्य सा जो भासे, इस तन में तनिक न मोहित थे ।।
मिथ्या शरीर में अहँता और, ममता का कहीं न भाव था। कार्य कारणमय इस प्रपंच का, साक्षी वहां पे रहता था ।।
निज परमात्म स्वरूप में, वह निरन्तर हो स्थित थे। अखण्ड वृत्ति से अकेले ही, पृथ्वी पर थे वह विचर रहे ।।

हाथ पांव और वक्ष:स्थल, महाबाहु कान्धे विशाल। कण्ठ मुखादि अंगों की, थी आकृति अति सुकुमार ।।
स्वभाव से ही मुख सुन्दर था, और थी अति मधुर मुसकान। नेत्र नवीन कमल दल सम, अति विशाल मनहर थे जान ।।
थीं पुतलियां भी सन्ताप हरक, शीतल कुछ कुछ लाली लिये। उन नेत्रों के कारण वह, अति आकर्षक थे भास रहे ।।
कपोल नाक और नासिका थे, आकृति समान ही लिये हुए। इस कारण यह सबके सब, अति सुन्दर थे दीख रहे ।।
था हास्ययुक्त मनोहर मुख, चंचल चितवन थी मनहरनी। पुरनारी के मन में भी, काम का आवाहन करती ।।
तथापि उनके मुख सम्मुख, लटकीं रहतीं लम्बी जटा। अवधूतों सम धूलि धूसरित, देह पे था बहुत भार पड़ा ।।
इस कारण वह ग्रह ग्रसित, जीव समान थे दीख रहे। इस बाह्य आवरण के पीछे, न निहित सत्य कोई देख सके ।।

जब ऋषभ देव ने यह देखा, सब जनता है विघ्न समान। योग साधना के पथ में, यह तो है अवरोध महान्।।

तो इससे बचने के लिये, बीभत्सवृत्ति आश्रय लिया। तब श्री ऋषभ देव ने, अजगर वृत्ति को धारण किया।।
लेटे लेटे ही एक जगह, वह खाने पीने चबाने लगे। इस भान्ति उसी स्थान पर, मल मूत्र भी उन्होंने त्याग किये।।
निज मल में निज तन को भी, लिप्त आप ही कर लेते। बीभत्स वृत्ति से इस विधि, जीवन यापन थे वह करते।।

किन्तु उनके मल में दुर्गन्ध, नहीं कदाचित थी कभी। उससें तो सुगन्धि ही, चहुँ दिशा थी फैल रही।।
उसकी सुगन्धि से वायु, भी सुवासित थी हुई। दस योजन तक उनके सब, देश में थी सुगन्ध भरी।।
इसी विधि गौ काकादि, मृग वृत्ति भी की स्वीकार। उनके समान ही चलते कभी, कभी उठते बैठते बार बार।।
कभी लेटे लेटे ही वह, खाने पीने भी लग जाते। इसी विधि अनेकों बार, मल मूत्र त्याग भी वह करते।।

हे राजन् परम हंसों को, त्याग की शिक्षा देने को। मोक्षपति प्रभु ऋषभ ने, योगचर्या अनेकों धार लियो।।
महा आनन्द का वह स्वयं, निरन्तर अनुभव करते थे। आत्मभाव में ही सदा, ऋषभ देव रमण करते थे।।
सब जीवभूत में आत्म का, ही वह दर्शन करते थे। प्रभु वासुदेव से किसी भान्ति, न भेद का अनुभव करते थे।।
सब पुरुषार्थ ही उनके, इसविधि थे पूर्ण हुए। मन की गति समान ही, जहां चाहते वह पहुंच जाते।।
आकाशगमन अन्तर्धान, सहज ही वह सब थे पाते। पर इन सब सिद्धियों से वह, पल भर भी न थे भरमाते।।

परकाया प्रवेश और, दूर की बातें सुन लेना। दूर से दर्शन लेना, यह सब प्रकार की सिद्धियाँ।।
अपने आप ही उनके पास, थीं सेवा में आ गईं। पर अपने मन के द्वारा, नहीं एक भी उन्होंने ग्रहण करीं।।
परीक्षित बोले,
योग रूप वायु से जो, ज्ञान अग्न प्रज्वलित हो। हे भगवन् उस अग्नि में, कर्म बीज सब दग्ध हो।।
ऐसे मुनि को स्वत: ही जब, सिद्धियां प्राप्त हों दैववश। उनके लिये तो राग द्वेष का, न कारण हों किसी भी वश।।
फिर भी प्रभु ऋषभ ने उनको, स्वीकार क्योंकर नहीं किया? कृपा करी निवृत्त करें, आप यह संशय मेरा।।
ऋषि बोले,
बात तो तुमने ठीक कहीं, पर ज्यों चतुर है व्याध जो। निज हाथ में आये मृग पे भी, उसको विश्वास कभी न हो।।
उसी विधि हैं विवेकी जो, चंचल चित्त का न भरोसा करें। इस कारण विवेक दृष्टि से, उसको सदा वह देखा करें।।
ऐसा ही है कहा गया, चंचल चित्त से न मैत्री करो। इसपर विश्वास किया जिसने, उसका कल्याण तो दुर्लभ हो।।
श्री महादेव ने भरोसा किया, तो मोहिनी रूप में फंसा दिया। चिरकाल का संचित तप, इस कारण था क्षीण हुआ।।

व्याभिचारिणी स्त्री ज्यों, परपुरुषों से संग करे। उनके द्वारा निज विश्वासी, पति का वध ही करवा दे।।
उसी विधि जो योगी जन, इस मन पर विश्वास करें। उनका मन काम क्रोध आदि, शत्रु जन का सहयोग दे।।
उनको अवसर देकर यह, वार स्वामी पर करवा दे। जन्म जन्म के संचित तप, नष्ट भ्रष्ट ही वह कर दे।।

काम क्रोध मद लोभ मोह, और भय आदि सब शत्रुन् का। और कर्म बन्धन का भी, मूल तो है इस मन को कहा।।
कोई भी बुद्धिमान् पुरुष, कैसे करे इस पर विश्वास ? वह तो सदा ही दक्ष रहे, कहीं कर न दे यह उसका विनाश।।

प्रभु ऋषभ देव इन्द्रादि सभी, देवों के यद्यपि थे भूषण। तो भी वह जड़ पुरुषों वत्, करते थे धरती पर विचरण।।
विविध वेश अवधूत के धर, रहता था निहित ईश्वरीय स्वरूप। उनके आचरण या भाषा से, कोई समझ न पाता था स्वरूप।।

अन्त में योगी जन के लिये, देह त्याग की शिक्षा देने को। निज तनो त्याग करने का, स्वयं ही उन्होंने निश्चय कियो।।
निज अन्त:करण में अभिन्न रूप, परमात्म को देखा उन्होंने। पूर्ण वासना निवृत्त हो, लिंग देह से भी वह मुक्त हुए।।

उपराम हुए श्री ऋषभ देव, लिंग देह अभिमान से। प्राप्त योगमाया से था, केवल अभिमान आभास से।।
उनका यह दिव्य तन, पृथ्वी पर था विचर रहा। दैववश वह कोंक बेंक, दक्षिण में कर्णाटक गया।।
मुंह में जैसे पत्थर डाले, और जटाएँ बिखेरे हुए। दिगम्बर वह उन्मत्त से, कुचकाचल वन में भ्रमण किये।।

तभी अति घोर झंझावत से, बांसों की घर्षण हुई। दावानल वहाँ धधक उठी, पूर्ण वन ही लपेट में ली।।
अपनी लाल जिह्वाओं से, अग्नि ने वन को भस्म किया। ऋषभ देव के सहित ही, सारा वन उसने निगल लिया।।
कलियुग में अधर्म की, राजन् जब वृद्धि होगी। कोंक बेंक और कुटक देश का, नृप होगा अति मन्दमति।।
अर्हत नामक वह राजा, लोगों से सुनेगा यह वृत्तान्त। आश्रम अतीत श्री ऋषभ के, आचरण का यह आख्यान महान्।।

स्वयं वह ग्रहण करेगा उन्हें, दैववश यह हो परिणाम। लोगों के पूर्व संचित ही, पापों का होगा कार्य महान्।।
स्वधर्म पथ का त्याग कर, हो भय रहित वह विचरेगा। पाखण्ड पूर्ण निज वृद्धि से, कुमार्ग प्रचार वह कर देगा।।

देवमाया से हो मोहित, अधर्म अनेकों कलियुग में। शास्त्रोक्त आचार और शौच, अपना त्याग ही वह देंगे।।
अधर्म प्रधान कलियुग के, प्रभाव से बुद्धि हीन हो। नहीं स्नान आचमन करें कभी, अशुद्ध ही बने रहेंगे वह।।
केशादि नुचवा कर वे, पाखण्ड स्वीकार ही कर लेंगे। ईश्वर विरोधी धर्म राह, तिरस्कार प्रभु का कर देंगे।।
मनमानी वे करेंगे सदा, वेद और ब्राह्मण को त्यागेंगे। यज्ञ पुरुष श्री हरि की भी, निन्दा ही वह कर देंगे।।

अवैदिक स्वेच्छाचार की, इस प्रवृत्ति के कारण। अन्धपरम्परा में निज, मतवाले रहने के कारण।।
स्वयं ही घोर नरकों में, ऐसे जन जाय पड़ेंगे। अपने आचरणों से अपना, वह सर्वनाश ही करेंगे।।
प्रभु का यह अवतार तो, हुआ था लोक शिक्षा हेतु। रजोगुणी सब लोगों के, मोक्ष मार्गदर्शन हेतु।।

इनके गुणों का वर्णन तो, लोग किया करते हैं यह। प्रभु के अवतारों हेतु, लोगों का है कथन यह।।
सप्त सिन्धु वाली पृथ्वी के, हैं जो सातों द्वीप और वर्ष। सबमें है पुण्यतम भूमि वह, जिसे कहें हैं भारत वर्ष।।
क्योंकि यहां के लोग सब, श्री हरि की लीला गायें। उनके मंगल अवतारों की, नित्य कथा कहते जायें।।

अहो महाराज प्रियव्रत का, है उज्ज्वल वंश सुयशपूर्ण। पुराण पुरुष नारायण ने, किया जहां अवतार ग्रहण।।
ऋषभ रूप अवतार ले, मोक्ष के साधन किये। पारमहंस्य धर्म के भी, आचरण प्रमाणित कर दिये।।

अजन्मा प्रभु श्री ऋषभ का, अनुसरण कौन जन कर सकें? कोई अन्य योगी तो सोच में भी, ऐसा कर्म न कर सकें।।
जो योग सिद्धियों के लिये, लालायित हर पल ही रहें। इसी उद्देश्य को लेकर के, वह सारे योग और श्रम करें।।
वह स्वत: प्राप्त हुई इनको, और ऋषभ ने सबको त्याग दिया। असत् जान के इन सबको, नहीं इनकी ओर था मुख किया।।

सम्पूर्ण वेद, लोक और देव, परम गुरु ब्राह्मण गौ के। प्रभु ऋषभ देव का यह चरित, कहा है मैंने तेरे लिये।।
समस्त पाप हरनी है यह, और सबका यह कल्याण करे। यह मंगलमय पावन चरित, श्रद्धा से सुनाये और जो सुने।।

दोनों की ही भगवान् में, अनन्य भक्ति हो जाती है। प्रभु वासुदेव के चरणों की, प्रीति उनको मिल जाती है।।

विभिन्न पापों से परिपूर्ण, संसार ताप में तप्त जो। निज अन्त:करण को पण्डित जन, भक्ति सरिता में डुबोते जो।।
परम शान्ति वह पाते हैं, आनन्द मग्न हो जाते हैं। स्वत: प्राप्त हुए मोक्ष को भी, उसके सम्मुख ठुकराते हैं।।
इस विधि प्रभु का प्रेम पा, जो उनके ही हो जाते हैं। सब पुरुषार्थ जीवन के, उनके सिद्ध हो जाते हैं।।

हे राजन् श्री कृष्ण स्वयं, पाण्डव और यदुजन के रक्षक। गुरु सुहृद् और कुलपति, थे स्वयं ही उनके दृष्ट देव।।
कभी कभी उन सबके वह, सेवक भी बन जाते थे। आज्ञाकारी बन के वह, सेवक धर्म निभाते थे।।
इसी विधि प्रभु अन्य भी, भक्तों के सब काज करें। है प्रभु के लिये कुछ कठिन नहीं, वह मुक्ति भी उनको दे दें।।
पर मुक्ति से भी बढ़कर के, है जो उनका भक्तियोग। उसे सहज नहीं वह दें, ऐसा दुर्लभ है भक्ति योग।।

विषय भोग अभिलाषा में, निरन्तर रत जो रहते थे। निज श्रेय प्रति चिरकाल से, बेसुद्ध हुए जो बैठै थे।।
करुणावश ही उनको निर्भय, आत्म तत्त्व उपदेश दिया। निज आत्म स्वरूप का ही, सतत था जिन अनुभव किया।।
सब भान्ति की तृष्णा से, सर्वथा ही वह मुक्त थे। है नमस्कार उन चरणों में, हे ऋषभ देव है नमन हे।।

२) जड़भरत चरित्र

शुकदेव बोले,
अति भगवद्भक्त थे हे राजन्, जान लो महाराजा भरत। निज संकल्प से ऋषभ देव ने, किया पृथ्वी पालक उन्हें नियुक्त।।
पिता की आज्ञा मानकर, गृहस्थाश्रम प्रवेश किया। सुकन्या विश्वरूप की, पंचजनी से विवाह किया।।

ज्यों तामस अहं से हों, पंच तन्मात्रा उत्पन्न। उसी विधि पंचजनी ने, पंच पुत्रों को दिया जन्म।।
सुमति राष्ट्रभृत और सुदर्शन, धूम्रकेतु आवरण थे नाम। यह ही पांच पुत्र हुए, सद्गुणी थे सब पिता समान।।
यह भूमिखण्ड अजनाभ के, नाम से था जाना जाता। राजा भरत के समय से ही, भारतवर्ष था नाम पड़ा।।

बहुत ज्ञानी थे महाराज भरत, प्रजा पालन करने लगे। पिता पितामह के समान, वात्सल्य भाव परिपूर्ण वह थे।।
अपने अपने कर्मों में, प्रजा थी उनकी लगी हुई। स्वधर्म में ही स्थित रहकर, प्रजापालना भरत ने की।।
होता अध्वर्यु उद्गाता और, ब्रह्मा चार है जो ऋत्विज। इनके द्वारा हैं होते जो, प्रकृति विकृति सब अग्निहोत्र।।
दर्श पूर्णमास चातुर्यमास, पशु और सोमादि। छोटे बड़े सब यज्ञों से, श्रद्धापूर्वक उन्होंने यजन किया।।

अंग और क्रियाओं सहित, भिन्न यज्ञ करते हुए। अध्वर्युगण आहुति हेतु, हवि अपने हाथ में जब लेते।।
यजमान भरत उस यज्ञ से, प्राप्तव्य उस पुण्य को। श्री वासुदेव हरि चरणों में, अर्पित कर देते उस फल को।।
वास्तव में वह पर ब्रह्म ही, सब देवों के प्रकाशक हैं। वास्तविक प्रतिपाद्य हैं मन्त्रों के, देवों के भी नियामक हैं।।
वह ही तो हैं मुख्य कर्ता, वह ही प्रधान देव हैं। इन्द्रादि सब देवों के, वह ही आराध्य देव हैं।।
भगवदर्पण बुद्धि से जब, कुशलता पूर्ण यह यज्ञ किया। राग द्वेषादि मल सब, हृदय से उनके धुल गया।।
सूर्यादि सब देवों को, वह प्रभु के नेत्र ही माने थे। प्रकृति के हर अंग को, वह उनका अंश ही माने थे।।

इस विधि कर्म की शुद्धि से, अन्त:करण उनका शुद्ध हुआ। तब हृदय में वेगवती, भक्ति का प्रादूर्य हुआ।।

अन्तर्यामी रूप में, जो हैं हृदय में विद्यमान्। हृदयाकाश में ही जिनका, सदा होता है आविर्भाव।।
महापुरुषों के सब लक्षणों से, जो लक्षित हैं श्री वासुदेव। ब्रह्म स्वरूप जो स्वयं हैं, सबके आराध्य वह आदिदेव।।
श्री वत्स चिह्न कौस्तुभ मणि, और गले में वन माला। शंख चक्र और गदा पद्म, से सुशोभित चतुर्भुजा।।
नारद आदि निज जन के, हृदय में स्थित जो हैं रहते। निश्चल भाव से ही उनके, आन्तर में हैं जो बैठे।।
उन श्री हरि के चरणों में, उत्कृष्ट भक्ति जाग उठी। श्री हरि से ही संग हुआ, और चरणों में अनुराग हुई।।

एक करोड़ वर्ष जब, इस प्रकार से बीत गए। राज्य भोग प्रारब्ध तब, क्षीण हुआ निज जान गए।।
वंश परम्परागत जो, सम्पत्ति उन्होंने थी भोगी। यथायोग्य अपने ही सब, पुत्रों में उन्होंने बांट दी।।
सर्व ऐश्वर्य युक्त अपने, राजमहल को उन्होंने त्यज। हरिहर क्षेत्र में पुलह आश्रम, को उन्होंने प्रस्थान किया।।

इस आश्रम के निवासिन् पर, है प्रभु की अति वात्सल्यता। आज भी दृष्ट रूप में उनसे, मिलते हैं वह यदा कदा।।
वहां चक्र नदी गण्डकी में हों, चक्राकार शालिग्राम शिला। नीचे ऊपर दोनों ही ओर, है नाभि चिह्न बना रहता।।
सब ओर से ऋषियों के आश्रम, को पावन वह शिलाएँ करें। उन शिलाओं में प्रभु का, पूजन अर्चन सब ऋषि करें।।

पुलहाश्रम के उपवन में, एकान्त स्थान में अकेले ही। पत्र पुष्प तुलसीदल जल, आदि देकर उपहार सभी।।
प्रभु की आराधना करने लगे, वह अपनी साधना करने लगे। विषय अभिलाषा से हो मुक्त, आन्तर दे द्वन्द्व सब शान्त हुए।।
अन्त:करण जब शुद्ध हुआ, परम आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ। इस विधि श्री भरत ने, अपनी पूजा का फल पाया।।

नियमपूर्वक जब श्री भरत, परिचर्या प्रभु की करने लगे। उससे प्रेम के वेग भी, उनके आन्तर में बढ़ने लगे।।
द्रवीभूत हुआ उनका हृदय, और शान्त फिर हो गया। आनन्द वेग अति प्रबल हुआ, तन में फिर रोमांच हुआ।।
हृदय में जो उत्कण्ठा थी, नयनों से अश्रु बन के बही। उन अश्रुन् के बहने से, दृष्टि वा अवरुद्ध हुई।।
हृदय रूप गम्भीर सरोवर, परम आनन्द से था भरा। फिर भागवत बुद्धि जो थी, उसका भी वहां पे लय हुआ।।
नियम पूर्वक विधि विधान से, जो पूजा थी हो रही। भक्ति भाव उद्वेग में, याद ही उसकी नहीं रही।।

भगवद् सेवा भगवद्भक्ति, ही उनका जीवन नियम बना। मृगचर्म बना तनो वस्त्र, केशों ने जटा का रूप धरा।।
त्रिकाल स्नान से भूरी वह, जटायें बहुत थीं भली बनी। सूर्योदय समय वा कण्ठध्वनि, थी ऋचाओं से गूंजती।।
ज्योतिर्मय परम पुरुष, की आराधना वह करते। श्रीमन्नारायण चरण में, भाव वह अपने यूँ धरते।।
भरत बोले,
प्रकृति परे प्रभु सूर्य का, तेज है कर्म फल दायक। उसके ही संकल्प से तो, उत्पन्न हुआ है यह जगत्।।
अन्तर्यामी रूप से, वह ही इसमें प्रवृष्ट होकर। विषय लोलुप जीवों की, चित् शक्ति द्वारा रक्षा कर।।
बुद्धिदे उसी तेज की, शरण हम भी लेते हैं। भस्मीभूत करें सब मल, यही याचना करते हैं।।
शुकदेव बोले,
गण्डकी नदी में स्नान किया, एकबार श्री भरत ने। तत्पश्चात् निवृत्त वह हुए, नित्य नैमित्यिक कृत्यों से।।
तीन मुहूर्त तक फिर वह, नदी किनारे बैठे रहे। निरन्तर ही प्रणव का, जाप थे वह कर रहे।।
उसी समय इक हरिणी राजन्, अति आकुल हो प्यास से। नदी के तीर पे आ पहुँची, अकेली जल पीने के लिये।।

अभी वह जल पी ही थी रही, पास ही भीषण गर्ज हुई। लोक भयंकर सिंह की, हृदय भेदी वह दहाड़ थी।।

हरिण जाति तो स्वभाव से, ही होती है भीरु अति। पहले ही चौकन्नी हो, चारों दिशाओं में थी देख रही।।
जैसे ही कानों में उसके, यह भयावह शब्द पड़ा। कातर हुए नेत्र उसके, भय से कलेजा धड़क उठा।।
प्यास अभी नहीं शान्त हुई, पर प्राणों पर आन पड़ी। भयवश अचानक वह हरिणी, नदी में ही जा कूद पड़ी।।

गर्भवती थी वह हरिणी, जब वह भय से उछल पड़ी। निज स्थान से गर्भ उसकी, विचलित इससे हो गई।।
योनि द्वार से निकल कर, वह नदी में जाय गिरी। कृष्ण मृगी वह अकस्मात्, थी अतीव भयभीत हुई।।
सिंह का भय गर्भ गिरना, और छलांग से श्रान्त हुई। अति व्यथित थी हरिणी वह, अपने झुण्ड से बिछुड़ करी।।
प्राणों को धारण करने की, कोई कारण न उसे दीख पड़ी। किसी गुफा में जाकर के, फिर उस मृगी ने प्राण त्यजी।।

राजर्षि भरत ने देखा तब, एकाकी शावक जल में यहा। निज बान्धव से बिछुड़ के था, शीतल जल में ठिठुर रहा।।
उनके हृदय में अति दया, और करुणा के भाव उठे। निज आत्मीय ही जान उसे, निज आश्रम में ले आये।।
उस मृग प्रति श्री भरत की, ममता दिनोदिन बढ़ने लगी। उनके खाने पीने का प्रबन्ध, और सिंह से रक्षा होने लगी।।
व्याघ्रादि से बचाव उसका, और लाड़ प्यार बहुत होने लगा। पुचकार और चिन्ता में ही, समय व्यतीत उनका होने लगा।।
कुछ ही दिनों में यम नियम, पूजा आदि सब छूट गये। हरिण के मोह में ही पड़ कर, एक एक विस्मृत हुए।।

उनके चित्त में एक ही, विचार था उठता बार बार। अहो खेद यह मृग शावक, है बना काल का ही शिकार।।
निज बन्धु यूथ सुहृद् गण से, यह शिशु है बिछुड़ गया। असहाय और दीन होकर, यह मेरी शरण में आ पड़ा।।
मेरे सिवा किसी अन्य को, नहीं है यह पहचानता। मुझे ही अपना संगी साथी, है छैना यह मान रहा।।
मुझे ही अपना माता-पिता, और भाई बन्धु है जान रहा। मेरे प्रति इसके हृदय, में है अति विश्वास भरा।।
शरणागत की उपेक्षा के, दोष भी मुझसे नहीं छिपे। इस कारण इस शरणागत में, दोष बुद्धि मेरी नहीं रहे।।
इस आश्रित का भली भान्ति, मुझे पालन करना चाहिए। इस अनाथ छैना को, मेरा लाड़ प्यार भी चाहिए।।
शान्त स्वभावी दीनबन्धु, परोपकारी जो सज्जन बनें। ऐसे शरणागत रक्षण को, निज स्वार्थ सब वह छोड़ दें।।

इस विधि हरिण शावक में, आसक्ति उनकी बढ़ गई। उठते बैठते सोते जागते, या उद्यान में टहलते भी।।
भोजन भी जब वह करते, चित्त उसी शिशु में टिका रहता। उसे मृग शिशु की स्नेह भी, मानो इक पाश ही बन गई।।
जब कुशा पुष्प समिधा आदि, सामग्री वह लाना चाहते। पत्र फुल फल आदि भी, लाने वह जंगल में जाते।।
वृक् और कुत्तों का भय, उनके मन में बना रहता। इस कारण वह हरिण शिशु, हर पल ही उनके संग रहता।।

राह में कोमल और हरी, घास शिशु जब देखता। मुग्ध होई कर वह शावक, वहीं पे था अटक जाता।।
अत्यन्त प्रेम उनके हृदय, उस पल था उमड़ आता। नन्हें हरिण को वह उस पल, कान्ध पे अपने लेते बिठा।।
कभी भरते अंक में इस विधि, कभी वक्ष:स्थल से लगाते उसे। इस भान्ति दुलार उसे, अतीव सुख वह थे पाते।।

नित्य नैमित्तिक कर्म भी, जब वह करने जाते थे। बीच बीच में उठकर के, मृगबाल को देखे जाते थे।।
जब उसपर दृष्टि पड़ती, तो चित्त शान्त उनका होता। मंगल कामना कर कहते, कल्याण पुत्र हो सदा तेरा।।

यदि कभी वह मृग शावक, आंखों से ओझल हो जाता। तो जैसे किसी व्यक्ति का, सब धन ही हो लूट गया।।
दीन हीन वह हो जाते, उद्विग्न मन उनका होता। उस शावक के वियोग में, व्याकुल सन्तप्त वह हो जाता।।
करुणावश उत्कण्ठित हो, मोह ग्रसित वह हो जाते। शोक मग्न होकर वह फिर, इस प्रकार कहने लगते।।
भरत बोले,
अहो क्या कहूं वह मातृहीन, मृग शावक क्या लौट आयेगा? दुष्ट व्याध की बुद्धिवत्, विश्वास क्या मेरा कर पायेगा?
मुझ पुण्यहीन अनार्य को, क्या अपना मान वह पायेगा? मेरे अपराधों को क्या वह, सत्पुरुष की भान्ति भुलायेगा?
प्रभु कृपा से आश्रम के, उपवन में क्या दर्शन होंगे? निर्विघ्न हरी दूब चरते, क्या उसे पुन: हम देखेंगे?
कही किसी कूकर या सूकर ने, मार तो उसको नहीं दिया? या फिर एकाकी व्याघ्र ने ही, उसका हो शिकार किया?

सम्पूर्ण जगत् के त्राता सूर्य, वेदत्रयी रूप पावक। अस्ताचल की हैं ओर चले, कहां गया मेरा मृग शावक।।
क्या हरिणों का वह राजकुमार, पास पुन: मेरे आयेगा? मुझ पुण्य हीन को मनोहारी, निज क्रीड़ा पुन: दिखलायेगा?
स्वजन शोक हर कर के क्या, पुन: आनन्दित मुझे कर देगा? वह मृग शावक कहो अहो, मेरा सन्ताप क्या हर लेगा?

जब कभी प्रणय कोप में, खेल मैं उससे था करता। असत्य ही आंख मूंदी जब मैं, समाधि का विभ्रम करता।।
वह चकित चित्त मेरे पास आ, निज नन्हें कोमल सींगों से। मेरा ध्यान था बांटता, कैसे मेरे अंग को छूकर के।।

कुशा पे हवन सामग्री कभी, मैं अपनी था रख देता। दांतों से खेंच उस कुशा को, अपावन था वह कर देता।।
जब मैं क्रुध होता उसपर, अति भयभीत वह हो जाता। उछल कूद सब छोड़ कर, हो शान्त मनी वह बैठ जाता।।
समस्त इन्द्रियां रोक कर, इस विध वह स्थिर हो जाता। जैसे ऋषि कुमार कोई, हो समाधि में बैठा हुआ।।
शुकदेव बोले,
फिर पृथ्वी पर शावक के, खुर चिन्ह जब वह निहारते। उनकी ओर देखकर, इस विधि वह थे विचारते।।
इस तपस्विनी धरा ने, अहो क्या हैं तप किये? उसके छोटे सुन्दर सुखकर, सुकोमल चरण चिह्न जो पड़े?
निज मृगधन लुट जाने से, अति दीन हीन मैं हो रहा। मुझको मेरे द्रव्य प्राप्ति का, है राह दिखाती यह धरा।।
अपने तन को वा चिन्हों से, यह पृथ्वी विभूषित कर रही। ज्यों स्वर्ग अपवर्ग इच्छुक द्विजगण, के लिये हो यज्ञ स्थली यह बनी।।

फिर चन्द्रमा में श्याम चिन्ह, देखकर वह मानते। मेरा ही है वह कृष्ण मृग, ऐसा उसे वह जानते।।
जिसकी जननी सिंह के भय से, थी प्राण विहीन हुई। आज वही शावक उनका, निज आश्रम से बिछुड़ गया।।
अनाथ देख उस बालक को, क्या चन्द्र देव कृपा कर रहे? दीन वत्सल शान्त शशि, क्या उसकी रक्षा कर रहे?

निज पुत्रों से वियोग की, दावानल से था दग्ध हुआ। विषय ज्वाला से हृदय कमल, था मेरा कुम्हला गया।।
इस नन्हें मृग शावक का ही, था मैंने आश्रय लिया। उसके चले जाने से अब, हृदय पुन: मेरा जलने लगा।।
क्या इस कारण नक्षत्रनाथ, शीतल किरणें बरसा रहे? शान्त सस्नेह अमृत रश्मि, संतप्त हृदय शीतल करें।।

हे राजन् यूं असम्भव से, विविध मनोरथ करने लगे। ऐसे सब मनोरथ से, चित्त भरत के व्याकुल होने लगे।।
मृग शावक के रूप में, प्रारब्ध कर्म ही उभरे थे। तपस्वी भरत भगवदाराधन, योगानुष्ठान से च्युत हुए।।

अन्यथा मोक्षमार्ग में, विघ्नरूप जिनको माना। निज आत्मज दुस्त्यज जो, पुत्रों का मोह था त्याग दिया।।
एक हरिण शावक में उनकी, प्रीति ऐसी भला क्यों होती? भागवद् बुद्धि श्री भरत की, इक हरिण के मोह में क्यों खाती?
इस विधि राजा भरत, विघ्नों के वशीभूत हुए। उस मृग शावक के मोह में योग के पथ से भ्रष्ट हुए।।
उसके पालन पोषण और, लाड़ प्यार में भूल गए। आत्म स्वरूप जो था उनका, उसी लक्ष्य को भूल गए।।
उसी समय अटल प्रबल, अति वेगवान् फिर काल आया। ज्यों चूहे के बिल में जानो, विषधर सर्प हो घुस आया।।

उस पल भी वह नन्हां शावक, उनके पास था बैठा हुआ। पुत्र समान ही वह उनको, शोकातुर हो था देख रहा।।
उनका चित्त भी उसमें ही, उस पल भी था लगा हुआ। मृगासक्ति में ही निज तन, मृग के साथ ही छूट गया।।
अन्तकाल का भाव जो हो, वही जीव को प्राप्त हो। यह कथन साधारण जीव की, तरह वहां भी सत्य हो।।
इस उक्ति अनुसार ही, मृग शरीर उन्होंने पाया। किन्तु थी साधना वा पूर्ण, स्मृति का नहीं अभाव हुआ।।

पूर्व जन्म की आराधना, का प्रभाव वहाँ था बना। इस मृगयोनि का कारण भी, तत्काल भरत ने जान लिया।।
अत्यन्त पश्चाताप में, फिर राजा वह खो गए। अपनी गति यह देखकर, वह इस प्रकार थे सोच रहे।।

अहो खेद मैं पतित हुआ, संयमी सत्पुरुषों के पथ से। मैंने तो धैर्यपूर्वक, आसक्ति के थे त्याग किये।।
एकान्त और पावन वन का, आश्रय था मैंने लिया। वहाँ रहकर चित्त को, प्रभु चरण में था लगा दिया।।
सर्वभूतात्मा वासुदेव के, गुणों का ही था श्रवण किया। उन्हीं का मनन और संकीर्तन, था एको ही ध्येय मेरा।।
जीवन के हर पल को ही, उनके आराधन में दिया। उनके सिरमन् में स्थिर भाव, से यह चित्त था टिका दिया।।
मुझ मूढ़ का वह ही मन, लक्ष्य से क्योंकर च्युत हुआ? अकस्मात् नन्हें शावक के, मोह में सब कुछ लुटा दिया।।

इस विधि मृग रूप में, वैराग्य जो जागृत हुआ। राजर्षि ने उसे छिपा, निज माता मृगी को त्याग दिया।।
निज जन्म स्थान कालंजर पर्वत, को फिर उन्होंने छोड़ दिया। शान्त स्वभाव मुनियों के प्रिय, प्रभु क्षेत्र में आ निवास किया।।
शालीग्राम तीर्थ में वह, आये पुन: उस आश्रम में। पुलस्त्य और पुलह ऋषि, के जो दिव्य स्थान थे।।

उस आश्रम में रहकर भी, प्रतीक्षा थी उन्हें काल की। आसक्ति के कारण यह, मन उनकी अति भयभीत थी।।
बस अकेले रहकर वह, जीवन यापन थे कर रहे। सूखे पत्ते घास वृक्ष, ही आहार बने उनके।।
जिस प्रारब्ध के कारण वह, थे मृगयोनि को प्राप्त हुए। उसके क्षय होने की, बाट थे वह देख रहे।।
अन्त में उस मृग तन का, अर्ध भाग नदी में डुबा। इस विधि श्री भरत ने, मृग तन का फिर त्याग किया।।

अंगीरस गोत्र में हे राजन्, इक ब्राह्मण थे अति उच्च। शम दम तप स्वाध्याय, वेद त्याग सन्तोष युक्त।।
तितिक्षा विद्या विनय अनुसूय, आत्मज्ञ और आनन्द सम्पन्न। यह सब तो जान लो, थे उनके सहज स्वभाविक गुण।।
उनकी ज्येष्ठ पत्नी से, उनको नौ पुत्र रत्न मिले। जो उन्हीं समान थे रूपवान्, विद्याशील सम्पन्न थे।।
छोटी पत्नी ने उनकी, जुड़वां सन्तान को जन्म दिया। एक कन्या थी उनमें, और दूजा उनका पुत्र था।।

इन जुड़वां में पुत्र था जो, वह थे भरत परम भागवत्। मृग तन का परित्याग कर, यही था उनका अन्तिम जन्म।।
राजर्षि शिरोमणि जो, उन्होंने ही था यह रूप धरा। महापुरुष विद्वानों से, ऐसा ही है हमने सुना।।

इस जन्म में भी उनपर, प्रभु कृपा अतीव हुई। पूर्व जन्म परम्परा की, उनको पूरी स्मृति रही।।
आशंकित थे रहते सदा, कही विघ्न न पुन: उपस्थित हो। निज स्वजनों के संग से, रहते वह सदा भयभीत हो।।
जिनका स्मरण श्रवण कीर्तन, सब बन्धन से मुक्त करे। वह युगल चरण श्री हरि के, हृदय में थे सदा बसते।।
दूजों की दृष्टि में सदा, पागल से वह बने रहते। मूर्ख अन्धे और बधिर, सम्मान ही थे वह दीखते।।

पिता के मन में उनके लिये, था वैसा ही स्नेह बना। इस भाव से पिता ने वा, उपनयन संस्कार किया।।
विवाह पूर्ण समावर्तन तक, सभी संस्कार जो उचित थे। शास्त्रानुकूल सब संस्कार, पिता उनका करना चाहते थे।।
पिता का यह कर्त्तव्य है, पुत्र को उचित वह शिक्षा दे। इस शास्त्रोक्ति अनुकूल, शौच आचमन सिखा दिये।।
यद्यपि श्री भरत नहीं, यह धर्म निभाना चाहते थे। फिर भी पिता ने शास्त्र कथित, अपने धर्म निभा दिये।।

किन्तु श्री भरत तो, अपने पिता के सामने ही। विपरीत आचरण थे कर देते, उनके उपदेश को सुनते ही।।
पिता की तो यह चाहना थी, वेदाध्ययन आरम्भ करूँ। वर्षा ऋतु के आते ही, निज पुत्र को यह शिक्षा दूँ।।
पर ग्रीष्म ऋतु के चारों ही, महीने जब वह पढ़ाते रहे। चैत्र वैशाख ज्येष्ठ आषाढ़, सारे मास यों ही बीत गए।।
व्याहृत और प्रणव मन्त्र, नहीं गायत्री भी पठा सके। सारे यत्न कर कर भी, भली भान्ति भरत ने नहीं याद किए।।

ऐसा सब होने पर भी, निज पुत्र में अति अनुराग था। निज आत्म समान ही, उन्हें प्रिय यह उनका आत्मज था।।
प्रवृत्ति नहीं यह उसकी थी, फिर भी वह शिक्षा देते रहे। शिक्षित हो सुत कर्त्तव्य यह, उक्ति यह पूर्ण करते रहे।।
शौच वेदाध्ययन व्रत, नियम गुरु अग्नि सेवा। ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का, अनुचित ही आग्रह किया।।
किन्तु पुत्र को शिक्षित, करने का चाव न पूरा हुआ। स्वयं भी थे व्यवसाय व्यस्त, भगवद्भजन था भूला हुआ।।
सदा सजरा प्रभु काल ने, उनपर आ हमला किया। मनोरथ सब अधूरे रहे, प्राणों को उनके हर लिया।।

तब उनकी छोटी भार्या ने, जुड़वां शिशु दिये सौत को। स्वयं सती होकर वह भी, गई संग पति लोक को।।
भरत के भ्राता कर्मकाण्ड, को ही श्रेष्ठ अति मानते थे। ब्रह्म ज्ञान पराविद्या से, पूर्णतय: अनभिज्ञ वह थे।।
इस कारण श्री भरत के, प्रभाव को वह न जाने थे। उन्हें मूढ़ मूर्ख और अज्ञ, वह सब भ्राता मानते थे।।
पिता गए परलोक जब, शिक्षा का आग्रह छोड़ दिया। भरत को विद्या देने को, कोई उद्यम उन्होंने नहीं किया।।

श्री भरत में मान अपमान, का कोई विकार न था। साधारण जीव नर पशु जब, थे करते उसकी अवज्ञा।।
पागल मूर्ख या बहरा, कहकर जब उन्हें पुकारते। तो वह भी अनुरूप ही, उसके आचरण थे कर देते।।
जो कोई जैसा भी उनसे, काम था करवाना चाहता। अपनी इच्छा अनुरूप ही, सेवा उनसे वह था पाता।।
प्रतिरूप में याचना पर, या बिन मांगे जो मिल जाता। अच्छा बुरा जो भी मिलता, वही अन्न क्षुधा मिटा जाता।।
जिह्वा की रसना उन्हें, तनिक भी नहीं सताती थी। इस कारण जो स्वत: मिले, सब ही उनको स्वीकार्य थी।।
नहीं अन्य किसी कारण से मिले, स्वत: सिद्ध जो ज्ञानानन्द। आत्म स्वरूप उन्हें प्राप्त था, वह रहते नित्यानन्द मग्न।।
शीतोष्ण मान अपमान आदि द्वन्द्व न उन्हें सताते थे। इनसे उत्पन्न दु:ख सुख आदि, न देह स्फूर्ति जगाते थे।।

सर्दी गर्मी वर्षा आन्धी, समान रूप से सब यह सहते थे। वह तो सांड की भान्ति सदा, नग्न ही पड़े रहते थे।।

सर्व अंग थे हृष्ट पुष्ट, और शरीर गठीला था। न घर बार ही था कोई, पृथ्वी पर ही वसीला था।।
तेल उबटन आदि का वह, प्रयोग कभी न करते थे। न ही नित्य स्नान के, उन्होंने कभी उद्यम ही किये।।
इस कारण तन पर उनके, मैल बहुत थी जम गई। धूलि से ढकी मणि की तरह, ब्रह्म तेज थी उनकी छिपी।।
कमर में अपना मैला सा, वस्त्र वह पहने रहते थे। यज्ञोपवीत भी मैल सों, पूर्णतय: थे ढके गए।।
यह द्विज है कोई अधो ब्राह्मण हैं, जनता यूँ तिरस्कार करती। स्वच्छन्द ही वह विचरते थे, नहीं ऐसे कथन पे ध्यान धरी।।

दूजों की मजदूरी कर, यह अपना पेट है पाल रहा। भाईयों ने यह देखकर, निज खेत में काम पे दिया लगा।।
तब उनके इस काज को भी, प्रेम से वह करने लगे। समतल भूमि ऊँची नीची, या छोटी बड़ी न जाने थे।।
चावल की कनी खली भूसी, या भुने उरद जो भी देते। बरतन में लगी जली खुरचन, भी भाई उनको दे देते।।
उन सबको अमृत समान, ही श्री भरत ग्रहण करते। प्रभु प्रसाद उसे मान कर, अपना पेट थे वह भरते।।

किसी समय डाकुओं के, एक मुखिया ने कभी। पुत्रेच्छा से भद्रकाली को, मनुज बलि देनी चाही।।
जो पुरुष बलि देने को, उसने पकड़ बुलाया था। दैव वश वह नर पशु, फंदा छुड़ाकर भाग गया।।
उसे खोजने के लिये, सेवक उनके चारों ओर गए। अर्धरात्रि के तिमिर में, लेकिन उसे न ढूंढ सके।।
अग्निरस गोत्रीय वह कुमार, मृग वराह आदि से। खेतों की रक्षा के लिये, नियुक्त थे इस कर्त्तव्य में।।
दैवयोग से अकस्मात् ही, दृष्टि पड़ी कुमार पर। वीरासन में थे बैठे जो, खेतों की रखवाली पर।।

उन्होंने देखा यह पशु तो है, सब ही शुभ लक्षण वाला। इससे हमारे स्वामी का, सब कार्य सिद्ध हो जायेगा।।
यह सोचकर मुख उनके, आनन्द से फिर खिल उठे। रज्जू से बान्ध कुमार को, वह चण्डी मन्दिर ओर ले चले।।

तदनन्तर उन चोरों ने, अपनी पद्धति के अनुसार। विधिपूर्वक दिया स्नान उसे, और किया अभिषेक श्रृंगार।।
नव वस्त्र पहनाये उसे, और नाना भान्ति के आभूषण। चन्दन माला से विभूषित कर, दिया भरपेट उसे भोजन।।
फिर धूप दीप माला अंकुर, खील पत्ते और फल आदि। सब उपहार सामग्री दे, आरम्भ करी बलिदान विधि।।
स्तुति गान करने लगे, ढोल और मृदंग बजे। उस नर पशु को भद्रकाली, के सम्मुख वह ले गए।।
सिर नीचा करके उसको, फिर वहाँ बिठा दिया। इस विधि श्री भरत को, बलि के लिये तैयार किया।।

दस्युराज का पुरोहित भी, जो डाकू था बना हुआ। नर पशु रक्त से देवी को, तुष्ट उसे करना चाहा।।
देवी मन्त्रों से अभिमन्त्रित, तीक्ष्ण इक खड्ग उठाया उस। इस विधि श्री भरत का, वध करने को था वह उद्यत।।

प्रकृति से ही चोर तो, रजोगुणी और तमोगुणी थे। धन के मद से चित्त उनके, और भी थे उन्मत्त हुए।।
हिंसा में भी उनकी रुचि, सहज स्वभाविक ही तो थी। प्रभु के अंश ही ब्राह्मण की, तिरस्कार थी इस पल की।।
स्वच्छन्दता से कुमार्ग पर, ही दस्यु थे जा रहे। ब्राह्मण वध करके समझें, है धर्म का कार्य करा रहे।।
आपत्ति काल में शास्त्र ने, जिस हिंसा की है आज्ञा दी। उसमें भी ब्राह्मण वध की, सर्वथा है निषेध करी।।
यह तो थे ब्रह्मभाव को, प्राप्त हुए ब्राह्मण कुमार। समस्त प्राणियों के सुहृद्, सर्वथा वैर रहित थे आप।।
इक ब्रह्मर्षि कुमार की, यह बलि चढ़ाना चाहते थे। भीषण कुकर्म यह देखकर, ब्रह्म तेज के दाह से।।

भद्रकाली के शरीर में, स्पन्दन फिर होने लगा। मूर्ति भंजन कर एकाएक, भद्रकाली प्राकटय हुआ।।

असह्य क्रोध कारण उनकी, भौहें थीं ऊपर चढ़ीं। कराल दंष्ट्र रक्तिम नेत्र, मुख भी भयावह थी अति।।
इस विकराल रूप को देख, ऐसा था कुछ भास रहा। इस क्रुध हुई महाकाली से, जग का संहार ही अब होता।।
कड़क कर उन क्रोध से, अति भीष्ण अट्टहास किया। इस अभिमन्त्रित खड्ग से ही, सब पापियों का सिर काट दिया।।
उनके सिरों से अति ऊष्ण, जो रक्त था बह रहा। निज गणों सहित मां कालिका ने, उस आसव का पान किया।
उन्मत्त हो अति उच्च स्वर में, गाने नाचने वह लगीं। कटे सिरों की गेंद बना, वह क्रीड़ा ज्यों हो कर रहीं।।

सत्य कहा महापुरुषों के, प्रति जो अत्याचार हो। उस अपराध का इसी विधि, अपने पर ही प्रहार हो।।
देहाभिमान की दृढ़ ग्रन्थी, जिनके हृदय की छूट गई। सुहृद् आत्मा सबके जो, निर्वैर हैं जो सबके प्रति।।
साक्षात् प्रभु स्वयं ही, भिन्न भिन्न वहाँ रूप धरें। भद्रकाली के रूप में, अचूक काल से रक्षा करें।।
श्री हरि के निर्भय चरण कमल, का है जिनको आसरा। उन परमहंस भगवद्भक्तों की, महिमा कौन है गा सकता?
सीस काटने की बेला, भी अति शान्त वह सम रहे। उनके लिये तो इसमें भी, है नहीं कोई आश्चर्य कहें।।

३) जड भरत का राजा रहूगण को उपदेश

शुकदेव बोले,
एक बार सिन्धु सौवीर, देश का स्वामी जो राजा। रहूगण था नाम वा, निज पालकी पर था जा रहा।।
जब वह इक्षुमति नदी, के किनारे पर पहुँचा। कहारों का पति जो था, उसे कहार इक चाहिये था।।
खोजते खोजते दैववश, यह ब्राह्मण देवता मिल गए। हृष्ट पुष्ट अंगों वाला, है गठीला युवक यह।।
इस कारण यह बैल या, गधे का काम भी कर देगा। भली भान्ति से बोझा, सारा ही यह उठा लेगा।।
यह सोच के अन्य कहारों संग, इनको भी लगा दिया। बलात्कार से पकड़ कर, पालकी में जुता दिया।।
महात्मा भरत किसी भान्ति भी, इस कार्य के योग्य न थे। फिर भी वह चुपचाप ही, पालकी थे उठा रहे।।

कोई जीव मेरे चरण तले, दबकर न मर जाये कहीं। इस सोच में दृष्टि उनकी, रहती सदा भूमि पे गड़ी।।
दूजे कहारों की चाल से, नहीं चाल थी इनकी मिल रही। इस कारण उस राजा की, पालकी टेढ़ी होने लगी।।
राजा ने तब पालकी के, कहारों को फटकार दिया। क्यों पालकी का चलन, ऊँचा नीचा है हो रहा?
अरे कहारो पालकी को, भली भान्ति उठाओ तुम। एक चाल से सब चलो, सन्तुलन यह बनाओ तुम।।

आक्षेपपूर्ण वाक् स्वामी के, सुनकर कहार सब डर गए। कहीं राजा दण्ड ही न दे दे, उन्होंने निवेदन ऐसे किए।।
हे महाराज हम सत्य कहें, यह प्रमाद हमारा नहीं। ठीक ले जायें पालकी हम, मर्यादा के अनुसार ही।।
यह एक नया कहार अभी, है पालकी में लगाया गया। यह ही इस धरती पर, नहीं उचित कदम है धर रहा।।
इसके साथ यह पालकी, हम नहीं ले जा सकते। यह साथ हमारे नहीं चले, सन्तुलन इस कारण बिगड़े।।

सुन दीन वचन यह कहारों के, राजा ने फिर यूँ सोचा। संसर्ग से उत्पन्न दोष गर, रहे एक व्यक्ति में भी बना।।
सम्बन्धित सब पुरुषों में भी, वह दोष है आ सकता। समय रहते ही यदि, प्रतिकार इसका नहीं किया।।

तो यह दोष सबमें ही, स्वत: ही आ जायेगा। यह सबकी चाल बिगाड़ेगा, सबको विभ्रान्त कर जायेगा।।
ऐसा सोच के राजा के, मन में क्रोध फिर उठ आया। क्षत्रिय स्वभाव से विवश ही, रजोगुण वहाँ व्याप्त हुआ।।
यद्यपि उस राजा ने तो, महापुरुषों का सेवन था किया। पर अपने इस क्रोध को, वशीभूत न वह कर सका।।
ज्यों भस्म से आवृत्त अग्नि की, लाली नहीं कभी दीख सके। उसी विधि द्विजश्रेष्ठ के, ब्रह्म तेज तो निहित ही थे।।
राजा ने फिर व्यंगपूर्ण, बाणों से उनपर वार किया। बिन जाने वास्तविकता उनकी, श्री भरत को यह वचन कहा।।

अरे भाई हुआ कष्ट बहुत, बहुत ही तू है थक गया। क्या इन तेरे साथियों ने, तनिक सहारा नहीं दिया?
अकेले ही बहुत दूर से, हो पालकी तुम उठाये हुए। तन भी नहीं तेरा हृष्ट पुष्ट, न ही अति स्थूल भी यह दीखे।।
और मित्र जरा ने भी, है तुमको दबोचा हुआ। इस प्रकार राजा ने फिर, उस पर बहुत ही व्यंग कसा।।
पर पहले की भान्ति वे, पालकी थे उठाये हुए। इस व्यंग के प्रतिरूप में, प्रतिक्रिया से रहित वह थे।।
उनकी दृष्टि में यह तन, महाभूत का रचा बसेरा था। इन्द्रिय और अन्त:करण संग, यह अन्तिम उनका डेरा था।।
अविद्या का ही कार्य था यह, नहीं सत्ता इसकी कोई थी। विविध अंग तो दीखे थे, वस्तुत: स्थिति नहीं कोई थी।।
उनमें से मैं मेरा का, भाव था निवृत्त हो गया। मिथ्या आभास से रहित हुआ, बस ब्रह्म स्वरूप था वर्त रहा।।

यह पालकी तो अब भी, नहीं सीधी चाल से चल रही। यह देखी राजा के आन्तर, क्रोध की ज्वाला धधक उठी।।
क्रोधित हो चिल्लाया वह, क्या जीते जी तू मर गया? निरादर मेरा करके तू, आज्ञा उल्लंघन कर रहा।।
ऐसा लगे तू सर्वथा, है प्रमादी बहुत बड़ा। इस कारण मेरे दण्ड का, भय भी तुझको नहीं रहा?
ज्यों यमराज सब लोगों के, अपराधों का उन्हें दण्ड दें। उसी विधि मैं भी आज, उपाय तेरा करूंगा रे।।
अरे मूढ़ तब ही तेरे, होश ठिकाने आयेंगे। अन्यथा यह कदम तेरे, ठीक से चल नहीं पायेंगे।।

अभिमान था रहूगण को बहुत, अपने राजा होने का। इस कारण वह अनप शनप, बहुत बातें बोले गया।।
पण्डित वह माने था निज को, था अभिमान के वशीभूत। तिरस्कार किया श्री भरत का, थी जिनपर प्रभु प्रीति अतीव।।
योगेश्वरों की विचित्र गति, की उसको पहचान न थी। कच्ची बुद्धि उसकी देख, हंसे वह ब्राह्मण देव भी।।
सब प्राणियों के थे सुहृद् वह, वह तो सबके थे आत्मा। ब्रह्मभूत श्री भरत के, मन में कोई अभिमान न था।।
फिर राजा रहूगण से, उन्होंने ऐसे वचन कहे। आन्तर में गुह्य ज्ञान, रहस्य था जो निहित लिये।।
भरत ब्राह्मण बोला,
जो भी कहा तुमने राजन्, वास्तव में वह सत्य ही है। नहीं है मन में दोष कोई, न ही कोई प्रतिकार ही है।।
यदि भार नाम की वस्तु कोई, तो है वह वाहक के लिये। और यदि कोई मार्ग है, तो है वह चलने के लिये।।
स्थूल रूप भी उसीका है, यह सब विशेषण तन के लिये। नहीं आत्म पर कुछ भी लागू, हैं ज्ञानी जन यह जानते।।

स्थूलता कृशता आधि व्याधि, क्षुधा पिपासा कलह भय जो। इच्छा जरा निद्रा प्रेम, क्रोध अभिमान और शोक जो।।
यह सारे ही धर्म हैं जो, देह अभिमान से उत्पन्न हों। हे राजा इन सब धर्मों का, मुझमें तो कहीं लेश न हो।।

जीवन मृत्यु की हे राजन्, तुमने जो है बात कही। सी विकारी पदार्थों में, दोनों स्थिति देखी जाती।।
क्योंकि सब पदार्थ ही, हैं आदि और अन्त वाले। न ही सेवक और स्वामी का, भाव भी स्थिर कभी रह सके।।

आज्ञा पालन के नियम भी, लागू वहां ही हो सकें। हे राजन् यशस्वी हो, अन्यथा यह सब कहां रहें?

हो तुम राजा और मैं प्रजा, है ऐसी जो भेद बुद्धि। व्यवहारिक स्तर के बिना नहीं, मैं इसकी सत्ता देखूँ कभी।।
परमार्थ दृष्टि से गर, देखो तुम इस सत्य को। कौन कहो फिर सेवक है, और कौन फिर राजा हो?
फिर भी हे राजन् तुम्हें, स्वामित्व का गर अभिमान है। कहो क्या सेवा करूँ तेरी, आदेश तेरा मुझे मान्य है।।

हे राजन् मैं तो जड़वत्, उन्मत्त हूँ आत्म स्थिति में ही। मेरी चिकित्सा कर राजा, क्या पाओगे तुम कभी?
यदि वस्तुत: हूँ मैं जड़, और अति प्रमादी भी। तो भी शिक्षा देती मुझे, पूर्णतय: ही व्यर्थ होगी।।
ज्यों पिसे हुए चने को पुन:, पीसना किस काम का? जो तन में ही रहे नहीं, शिक्षण क्या उसके काम का?
शुकदेव बोले,
हे परीक्षित मुनिवर ने, यथार्थ तत्त्व उपदेश किये। इतना उत्तर दे राजा का, वह ऋषिवर पुन: मौन हुए।।
देह आत्म बुद्धि ही तो, सब हेतुभूत अज्ञान है। उसका अभाव हुआ पूर्ण ही, इस कारण आन्तर शान्त है।।
इतना कहकर पुन: भरत, प्रारब्ध क्षय करने के लिये। पहले की भान्ति चलने लगे, कान्धे पे पालकी लिये हुए।।

सिन्धु सौवीर नरेश रहूगण, भी उत्तम श्रद्धा धारी था। तत्त्व की जिज्ञासा का, वह तो पूर्ण अधिकारी था।।
समर्थित योग ग्रन्थों द्वारा, हृदय भेदी जब वाक् सुने। द्विजवर का यह ज्ञान सुनी, तुरन्त पालकी से उतरे।।
राज मद था दूर हुआ, उन चरणों में निज सीस धरा। अपराध मेरा प्रभु क्षमा करें, वह याचना इस विध करने लगा।।
रहूगण बोला,
हे देव आपने द्विजचिन्ह, है यज्ञोपवीत किया धारण। कौन हैं आप हे देव कहें, जो करें स्वच्छन्द विचरण?
क्या दत्तात्रेय आदि, अवधूतन् में से हैं कोई? किसके पुत्र हैं आप कहें, और कहाँ पे थी आपका जन्म हुआ?
हे दिवजश्रेष्ठ यहां पे आप, कहें कैसे पधारे हैं? मेरा कल्याण ही करने को, क्या रूप आप यह धारे हैं?
साक्षात् सत्व की मूर्ति, कहीं कपिल देव तो नहीं हैं आप? हे द्विजवर अब शीघ्र ही, आप हरें मेरा सन्ताप।।

नहीं इन्द्र के वज्र का भय मुझे, नहीं यम के दण्ड से मैं डरूँ। श्री महादवे के त्रिशूल से भी, भयभीत मैं नहीं होऊँ।।
अग्नि सूर्य चन्द्र वायु के, अस्त्र शस्त्र का भय नहीं। पर ब्राह्मण कुल के अपमान, से रहूँ भयभीत ही।।

अत: कृपया अब कहें मुझे, हे देववर कौन हैं आप? निज विज्ञान और शक्ति छिपा, जड़वत् क्योंकर विचरें आप?
विषयों से तो आपको, है सर्वथा आसक्ति नहीं। आपके रूप को देखकर, नहीं आपकी थाह है मिल रही।।
योगयुक्त तव वचनों की, अलोचना भी गर बुद्धि करे। हे साधो मेरे हृदय का, सन्देह दूर यह न होए।।

परम गुरु आत्मज्ञों के, श्री हरि के ज्ञान के जो अवतार। जिज्ञासा शान्त निज करने को, जा रहा था कपिल मुनि के द्वार।।
इस लोक में एक मात्र, कौन है वास्तविक शरणागति? किसकी शरण में जाकर के, जीव यह पाये परम गति?
हे देव वह कपिल मुनि, कहें कहें क्या आप ही है? लोकों की जांचें दशा, आवृत्त हो विचरें आप हैं?
निज घर में आसक्त हुए, विवेक विहीन जो पुरुष हैं। कैसे समझें गति उनकी, जो योगेश्वर आप हैं।।

युद्धादि कर्मों में मैंने, निज को श्रान्त होते देखा। इसलिये है अनुमान मेरा, आपको भी अतिश्रम होगा।।

भार यह वाहन करते हुए, और मार्ग में चलते हुए। हे द्विजवर आप भी, अति श्रान्त हुए होंगे।।

देहादि के कर्मों का, नहीं आत्म पर प्रभाव हो। व्यवहारिक दृष्टि से जानूं, ऐसी बात भी नाहीं हो।।
अग्नि पर रखा बर्तन जब, तप्त हो जाये अग्नि से। उसमें पड़े जल में भी, तब उबाल आने लगे।।
फिर उस खौलते जल में पड़ा, चावल भी पूरा पक जाये। बाहर भीतर दोनों ही अंश, पूर्णतय: ही पक जाये।।
देह इन्द्रिय प्राण और मन की, सन्निधि करे आत्म धारण। इसी विधि निज उपाधि के, धर्मों के पालन के कारण।।
उनके धर्म श्रम आदि का, अनुभव उसे होता ही है। अपनी ही उपाधिन् का, यह प्रभाव उस पर ही है।।

दण्डादि सब व्यर्थ ही हैं, द्विजवर आप जो बात कहो। प्रजा शासन पालन हेतु, राजा तो उसका दास हो।।
उन्मत्तादि को दण्ड देना, नहीं व्यर्थ है उसका हो सकता। पिसे हुए को पीसना, इस बात का फिर है आशय क्या?
निज धर्म का जो अनुसरण करे, भगवान् की सच्ची सेवा करे। ऐसा करके ही तो जीव, निज पाप राशि सब नष्ट करे।।

राजत्व के अभिमान में, मैं उन्मत्त था हो गया। हे साधु मैंने आपकी, करी है भीषण अवज्ञा।।
हे दीनबन्धु अब कृपा करें, अपराध से मुक्त मैं हो जाऊँ। साधु अवज्ञा जो करी, इसका फल अब मैं न पाऊँ।।

सर्वथा देहाभिमान शून्य, श्री हरि के अनन्य भक्त हैं आप। समत्व भाव में स्थित आप, नहीं उठे कभी कोई विकार।।
मान अपमान से आपको, प्रभु कोई न भेद पड़े। तथापि मुझ सा साधारण जीव, ऐसा अपमान यदि कभी करे।।
अपने इस अपराध से, शीघ्र नष्ट ही हो जाये। साक्षात् महादेव का भी, प्रभाव चाहे वहां दर्शाये।।
भरत ब्राह्मण बोले,
अज्ञानी हो तुम वास्तव में, पर पण्डितवत् हो बोल रहे। ऊपरी तर्क वितर्क से, निज को हो सत्य सिद्ध कर रहे।।
इसलिए श्रेष्ठ ज्ञानी जन में, नही तेरी गणना हो सके। अविचार पूर्ण स्वामी सेवक, के व्यवहार की बात कहे।।
तत्त्व विचार से ज्ञानी जन, नहीं इसको कभी स्वीकार करें। भेद पूर्ण दृष्टि से वह, नहीं कभी व्यवहार करें।।

लौकिक व्यवहार समान ही, वैदिक व्यवहार भी सत्य नहीं। वेदों में भी गृहस्थिन् के, कल्याण की प्राय: बात कही।।
यज्ञ याग विधि के ही, विस्तार में वह व्यस्त रहें। राग द्वेषादि दोष रहित, नहीं तत्त्व ज्ञान की बात कहें।।
गृहस्थोचित यज्ञादि कर्म, प्राप्त हों जिसे स्वर्ग सुख। जो जीव नहीं जानता, स्वानवत् उनको असत्।।
वह तो तत्त्व ज्ञान का, अधिकारी ही नहीं हो सकता। उपनिषद् वाक भी उसके लिये, ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता।।

जब लौ जीव का मन जानो, तीनों गुणों के वश में रहे। तब लौ बिना अंकुश के वह, उसे कर्मों में प्रवृत्त करे।।
ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, निरन्तर कर्म में लगी रहें। शुभ अशुभ कर्मों का फेर, उसका नहीं कभी छूट सके।।
वासनामय विषय आसक्ति, ही तो है इस मन का रूप। गुण प्रेरित विकारवान्, भूतेन्द्रिय सोलह कला का मुख्य।।
भिन्न भिन्न नामों से यही, जीव कभी कभी देव बनें। तनो उपाधि भेद से, उत्तम या अधम वह जाय बने।।

मायामय मन संसार चक्र, में ही है भरमाने वाला। देहाभिमानी जीव का, है यह ही साथ निभा रहा।।
काल चक्र से प्राप्त हुए, सुख दु:ख का यह ही भोग करे। इसके सिवा यह मोह रूप, अनिवार्य फलों की सृष्टि करे।।
जब लौ इस मन की सत्ता है, तब तक जागृत और स्वप्न रहे। द्वौ का व्यवहार प्रकाशित हो, जीव का वह दृश्य बने।।

पण्डित जन इस मन को ही, जानें कारण संसार का। त्रिगुणमयी माया ने ही, है अधम यह रूप धरा।।

गुणातीत हो जाना ही, ज्ञानी परम श्रेष्ठ मानें। तीनों गुणों से उठ जाना ही, मोक्ष का कारण वह जानें।।
संसारासक्त यह मन ही तो, भव भय बन्धन कारण है। विरक्त हुआ वह ही मन तो, शान्त मोक्षपद धारक है।।
ज्यों घृतसिक्त बाती भक्षक, दीपक से धूम्र शिखा निकले। घी समाप्त जब हो जाये, निज कारण अग्न में लीन होए।।
उसी विधि विषय कर्मों में, आसक्त हुआ यह मन। भिन्न भिन्न वृत्तियों का ही, आश्रय करे नित्य धारण।।
जिस पल उनसे मुक्त यह हो, निज कारण में लीन होए। अपने मूल तत्त्व में ही, जाकर यह विलीन होए।।

पंच कर्मेन्द्रिय और पांच ही, ज्ञानेन्द्रियों का है विस्तार। इन दस वृत्तियों के सहित, है ग्यारहवां जो अहंकार।।
यह ही मन राजन् जान लो, फिर पांच प्रकार के कर्म जो। पांच ही तन्मात्रा उनकी, और एक यह तन है जान लो।।
यह ग्यारह ही मिलकर के, आधारभूत उसका बनें। इनको ही तो जान लो, मन के आधार जो विषय कहें।।

गन्ध रूप स्पर्श रस शब्द, हैं पंच ज्ञानेन्द्रिय विषय। मल त्याग सम्भोग गमन भाषण, हैं लेन देन कर्मेन्द्रिय विषय।।
इस तन को मेरा कहकर, ही स्वीकार कर लेना। अहंकार का ही विषय है, इस तन को अपना कहना।।
कुछ लोग इस अहम् को, मन की द्वादशी वृत्ति कहें। उसका आश्रय यह तन जो, बारहवां विषय ही मान लें।।

यह मन की ग्यारह वृत्तियां, द्रव्य स्वभाव और संस्कार। कर्म और काल द्वारा, शतश: रूप हैं लेते धार।।
सहस्त्रश: और कोटिश:, भेदों में यह बंट जाते हैं। पर वास्तव में निज सत्ता, आत्म से ही यह पाते हैं।।
क्षेत्रज्ञ की सत्ता से ही तो, इन सबका आभास हो। परस्पर मिलकर के भी सब, सत्तावान् कभी न हों।।

इतना बस होने पर भी, क्षेत्रज्ञ बन्धे न इस मन से। जीव के द्वारा ही तो मन, है माया रचित उपाधि यह।।
प्राय: यह बन्धन कारक, कर्मों में ही लगा रहे। कर्मों में प्रवृत्त होई, भव बन्धन में यह डाल दे।।
उपरि कथित वृत्तियाँ इसकी, प्रवाह रूप में नित्य बहें। जागृत और स्वप्न में प्रकट हों, सुषुप्ति में वह छिप जायें।।
क्षेत्रज्ञ विशुद्ध जो चिन्मय है, दोनों ही अवस्था में। मन की इन वृत्तियों को वह, साक्षी बनकर देखा करे।।

जो है जगत् में सर्व व्याप्त, जगत् का आदि कारण जो। पूर्ण अपरोक्ष वह परमात्म, स्वयं प्रकाश अजम ही हो।।
ब्रह्मा आदि का नियन्ता वह, उसकी माया अधीन उसके। सबके अन्त:करण में बैठ, सब जीवों को प्रेरित करे।।
सब भूतों का आश्रय रूप, श्री वासुदेव यह आप हैं। सब रूप वह आप धरें, फिर नियमन कर वह आप हैं।।

वायु ज्यों स्थावर जंगल, सम्पूर्ण प्राणी गण में रहे। प्राण बन प्रविष्ट हो, और उन्हें प्रेरित करे।।
उसी विधि श्री वासुदेव, हैं सबके परमात्मा। सारे प्रपंच के साक्षी बन, सबमें हैं व्याप्त बन आत्मा।।

ज्ञानोदय द्वारा ही जीव, इस माया से उठ सके। सब आसक्ति छोड़कर, षड् रिपुओं को जीत सके।।
जब लग ऐसा कर करी, नहीं जाने मन को उपाधि मात्र। दु:ख का क्षेत्र यह मन ही है, इस पर आश्रित है यह संसार।।
इस ज्ञान में जागृति, जब लौ जीव की न होये। तब लौ ही इस लोक में, वह यूँ ही भ्रमता जाये।।
क्योंकि यह चित्त ही तो उसके, सारे क्लेशों का कारण है। शोक मोह रोग राग लोभ, वैरादि करे धारण है।।
ममता की और संस्कारों की, यह वृद्धि करता रहता है। इनके कारण ही तो जीव, इस भव बन्धन में उलझता है।।

यह मन ही तो जान लो, महा बलवन् अरि तेरा। उपेक्षा तूने करी इसकी, इस कारण यह महा बली भया।
यद्यपि यह स्वयं तो, है सर्वथा ही मिथ्या। तथापि आत्म स्वरूप को, इसने आवृत्त कर दिया।।
इसलिए हो सावधान, गुरु उपासना अब करो। श्री हरि प्रेम के अस्त्र से, इसका तुम अब हनन करो।।
राजा राहूगण बोला,
आपके श्री चरणों में है, हे भगवन् मेरा नमस्कार। तन धरा यह आपने, जगत् का हो जाये उद्धार।।
निज परमानन्द स्वरूप का, अनुभव आपने है किया। हे योगेश्वर निज तन के प्रति, उदासीन तेरा भाव हुआ।।
नित्य ज्ञानमय निज स्वरूप, जड़ ब्राह्मण बनकर छिपा दिया। नमस्कार करूँ बार बार, हे ब्राह्मण हो नमन मेरा।।

जड़ ग्रसित रोगी के लिये, है मीठी औषध सुधा समान। प्रचण्ड सूर्य से तप्त जीव, शीतल जल पीये अमृत मान।।
विवेक बुद्धि मेरी को, देहाभिमान विषधर ने डसा। आपके अमृत वचनों ने, है महा औषधि रूप धरा।।
निज संशयन् की निवृत्ति तो, बाद में ही कराऊँगा। इस समय जो आपने, अध्यात्म का है उपदेश दिया।।
उसको पूर्ण ही समझ लूँ, यह ही है मेरी उत्कण्ठा। सरल कर के समझायें, हे देव करें यह आप कृपा।।

आपने जो यह बात कही, भार उठाने की क्रिया। और उसके फल स्वरूप, जो श्रम भी है हो रहा।।
हैं दोनों प्रत्यक्ष ही, पर हैं केवल व्यवहार में। वास्तव में तत्त्वविचार से, सत्य नहीं यह हो सकते।।
इस विषय में मेरा मन, अति भ्रमित है हो गया। आपके इस कथन का, मर्म नहीं मैं समझ सका।।
भरत ब्राह्मण बोला,
हे पृथ्वीपते यह देह भी तो, पृथ्वी का ही विकार है। फिर इसमें और पाषाण में, आप कहो क्या भेद है?
जब किसी कारण से यह, पृथ्वी पर है चलने लगता। भार वाहक आदि जब इन, नामों से है जाना जाता।।
दो चरण हैं इसके और, टखनी पिण्डली घुटने जांघ। क्रमश: अनेकों अन्य हैं अंग, कमर वक्ष मूर्धा और कान्ध।।

कान्ध के ऊपर है धरी, यह लकड़ी की पालकी। उसमें बैठे सौवीर राज, हैं पार्थिक एक विकार ही।।
उसमें आत्म बुद्धि का, है अभिमान जो भर गया। सिन्धु देश नरेश हूं मैं, इस मद ने अन्धा कर दिया।।

किन्तु इससे तो कोई तेरी, श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती। वास्तव में हो तुम अति क्रूर, और हो तुम अति धृष्ट ही।।
इन दीन दु:खी कहारों को, बेगार में हो पकड़ लाये। पशुवत् ही निज पालकी में, इनको हो तुम जुतवाये।।
फिर महापुरुषों की सभा में तुम, बढ़ चढ़ कर बातें करते हो। लोकों की रक्षा मैं करूँ, ऐसी बात उनसे कहते हो।।
यह बात राजन् तुम्हें, शोभा कुछ भी नहीं देती। न ही ऐसी बात से, सम्मान तेरी कुछ भी बढ़ती।।

हम तो निरन्तर देख रहे, सम्पूर्ण चराचर भूत जो। पृथ्वी से ही उत्पन्न हुए, पुन: पृथ्वी में ही लीन हुए।।
क्रिया भेद के कारण ही, भिन्न हैं उनके नाम पड़े। इसके अतिरिक्त तुम कहो, क्या है व्यवहार का मूल रे?

इसी विधि पृथ्वी शब्द, का व्यवहार भी मिथ्या है। वास्तविक नहीं है इसमें कुछ, इसका रहस्य भी इतना है।।
इसके उपादान कारण, अति सूक्ष्म परमाणु जो। अन्त में यह जाकर के, उसमें ही तो लीन हों।।
फिर जिनके मिल जाने से, कार्य रूप की सिद्धि हो। वह भी तो अविद्या वश, इस मन से ही कल्पित हो।।

वास्तव में उनकी भी, जान लो सत्ता कोई नहीं। मन से ही वह उत्पन्न होकर, हो लीन भी मन में जाकर ही।।

इसी विधि अन्य भी जो, गुणों के सब प्रपंच हैं। पतला मोटा छोटा बड़ा, कार्य कारण आदि द्वन्द्व हैं।।
उसे भी द्रव्य स्वभाव आशय, काल कर्म के नामों से। भगवान की ही माया के, कार्य रूप तू जान ले।।
विशुद्ध परमार्थ जिसे कहें, वह तो है अद्वितीय तत्त्व। आन्तर बाह्य भेद रहित, परिपूर्ण ज्ञान ही है इक सत्व।।
सबके आन्तर ही वह बसे, और सर्वथा है वह निर्विकार। उसका ही नाम भगवान है, पण्डित कहें वासुदेव पुकार।।

केवल यज्ञ तप आदि कर्म, अन्न आदि दान या अतिथि सेवा। गृहस्थोचित धर्म अनुष्ठान, या फिर दोनों की सेवा।।
वेदाध्ययन जल अग्नि, सूर्य आदि की उपासना से। परमात्म ज्ञान नहीं प्राप्त हो, अन्य किसी भी साधना से।।
महापुरुषों की चरणधूलि को, सीस पे अपने चढ़ा लेना। उस धूलि से ही अपना, अंग अंग नहला लेना।।
यह ही तो इक साधन है, उस परम ज्ञान को पाने का जिज्ञासा है गर तत्त्व की, तो सत्पुरुषों की शरण में जा।।

कारण इसका भी है एक, महापुरुषों के समाज में। श्री हरि कीर्ति की कथा, सतत वहां होती रहे।।
विषय वार्ता पास कभी, फटक नहीं उनके पाती। कोई अन्य विषय कभी, भ्रान्त नहीं उन्हें कर पाती।।
जब श्री हरि कथा का नित्य, सेवन होने लगता है। मुमुक्षु जीव का शुद्ध चित्त, प्रभु चरण में जा तब टिकता है।।

पूर्वजन्म में मैं भी सुनो, भरत नाम का राजा था। ऐहिक पारलोकिक दोनों ही, सुखों का था मैंने त्याग किया।।
विषयों से विरक्त हो, आराधना प्रभु की करता था। फिर भी इक मृग छैने की, आसक्ति में मैं डूब गया।।
इस कारण राजन् जानो, परमार्थ पथ से भ्रष्ट हुआ। अगले जन्म फिर मृग का ही, रूप मुझे धरना पड़ा।।
मृग के रूप में वन वन में, हे राजा मुझे विचरना पड़ा। आसक्ति के कारण ही, मैं इस भंवर में पुन: फंसा।।

किन्तु श्री कृष्ण आराधना की, प्रभाव भी अति प्रबल थी। जिस कारण मृगयोनि पाकर, भी पूर्व स्मृति मेरी बनी रही।।
इस कारण जन संसर्ग से, हे राजन् मैं भयभीत रहूँ। असंग भाव से सर्वदा, गुप्त रूप में ही विचरूँ।।

सारांश इसका जान लो, सत्पुरुषों की ही शरण गहो। सत्संग के परिणाम में, प्राप्त जान खड्ग जो हो।।
उससे ही इहलोक में जीव, मोह के बन्धन काट सके। श्री हरि लीला का कथन, और श्रवण वह नित्य करे।।
भगवत्स्मृति आन्तर में, इससे निरन्तर बनी रहे। सहज ही वह भवसागर तर, श्री हरि को फिर प्राप्त करे।।

४) भवाटवी का उपदेश

ब्राह्मण भरत बोले,
हे राजन् यह जीव समूह, है व्यापारी दल समान। सुख रूपा धन में आसक्त, भ्रमते वह देश प्रदेश महान्।।
माया ने प्रवृत्ति मार्ग में, इसको है लगा दिया। इस कारण तीन गुणों अनेकों, कर्मों में हैं यह फंसा।।
उन कर्मों में भटक भटक, संसार अरण्य में जा पहुँचा। वहां तनिक भी सुख शान्ति, का अनुभव इसे नहीं मिला।।

उस जंगल में हे राजा, छ: डाकू हैं रह रहे। इस व्यापारी वृन्द के, नायक के मन अति कपट भरे।।
उसको नेता बना कर, जब वृन्द यह वन में पहुँचा। तब लुटेरों ने बल से, सब ही माल उसका हरा।।
भेड़ों के झुण्ड में घुसकर वृक्, ज्यों बल से भेड़ें खेंच ले। इसी विधि जो गीदड़ भी, इस वणिक वृन्द के संग रहे।।

असावधान इसको देखी, धन को इधर उधर लूटे। व्यापारी दल सब माल निज, इस विधि ही गंवा बैठे।।

बहुत सी लता वृक्ष और झाड़, उस जंगल में उपज रहे। इन सबके कारण वहाँ अति दुर्गम हैं पथ हुए।।
तीव्र दंश और मच्छर भी, इसे चैन न लेने दें। गन्धर्व नगर कभी दीखे वहाँ, चंचल बैताल कभी दीखे।।
व्यापारी दल इस जंगल में, इधर उधर ही भटका करे। निवासस्थान धन जल आदि, की आसक्ति में वह पड़े।।
आन्धी से उठी धूलि से जब, चतुर्दिशा ही आवृत्त हों। आंखों में भी धूलि भरे, दिशा ज्ञान भी विस्मृत हो।।

कभी अदृष्ट झींगरों का, कर्ण कटु स्वर गूंज उठे। चीत्कार उल्लूकों का, कभी इसके मन को व्यथित करे।।
कभी क्षुधा सताने लगे, तो वृक्षों का यह आश्रय ले। कभी प्यास से व्याकुल होकर यह, मृगतृष्णा की ओर बढ़े।।
कभी जल से हीन नदियों की ओर, यह प्राणी भागा फिरे। कभी अन्न न मिलने से, इक दूजे से स्पर्धा यह करे।।
कभी दावानल में घुसकर यह, अग्नि में झुलस ही जाता है। यक्ष प्राण जब खेंच लें, तो खिन्न मनी हो जाता है।।

कभी अपने से बलवान लोग, धन इसका सब ही हर लें। शोक मोह से दु:खी होई, फिर यह ही अचेत भए।।
कभी गन्धर्व नगर में जा, सब ही दु:ख अपने भूले। घड़ी भर के ही लिये सही, खुशियाँ वहाँ मानने लगे।।
पर्वत पे चढ़ना चाहे कभी, तो कांटे पद छलनी करें। पत्थर कंकर से आहत हो, अति व्याकुल यह हो जाये।।
अति विस्तृत कुटुम्ब हो जब, नहीं उदर पूर्ति विधि मिले। भूख प्यास से व्याकुल हो, बन्धु बान्धव पर खीझ उठे।।

कभी अजगर मुख का ग्रास बने, वन में मृतवत् ही पड़ा रहे। उस पल तो निज तन मन की, सुध बुध इसको नहीं रहे।।
कभी अन्य विषैले जन्तु इसे, काटने ही दौड़े आयें। विष प्रभाव से नयन हीन हो, अन्ध कूप में गिर जाये।।
दु:खमय अन्धकार के, कूप में सदा यह गिरा रहे। अपनी होश ही नहीं जिसे, दूजे की होश वह क्या करे?

कभी मधु की खोज में यह जाये, तो मक्षिका नाक में घुस जाये। उनकी ताड़ना से इसका, सारा अभिमान ही नष्ट होए।।
यदि दैवयोग वश किया जो श्रम, उसका फल भी पा लिया। दुष्ट लूट ले जायेंगे, बलपूर्वक सब तेरी सम्पदा।।
कभी शीत ग्रीष्म आन्धी वर्षा, से रक्षा निज करना चाहे। पर ऐसा करने में वह, असमर्थ ही है निज को पाये।।
कभी परस्पर थोड़ा सा, व्यापार भी करना वह चाहे। धन लोभ के कारण धोखा दे, दूजे से वैर ही उठी आये।।

कभी कभी आरण्य में उनका, धन सारा ही नष्ट हो। शैया आसन निवास स्थान, वाहन आदि सब भ्रष्ट हों।।
तब दूजों से ही इनकी वह, करने लगता है याचना। पर मांगे पर भी जब, दूजे से नहीं वह यह पाता।।
तो दृष्टि में अपनी ही, इसके पाप है भर जाता। उसके कारण जग भर से, तिरस्कार यह है पाता।।

इक दूजे से द्वेष भाव, चाहे यहाँ बढ़ जाता है। फिर भी व्यवहारिक स्तर पे वह, अपना सम्बन्ध निभाता है।।
विवाह आदि सम्बन्ध भी यह, आपस में स्थापित करे। मार्ग में भान्ति भान्ति के, कष्ट भी वह भोगा करे।।
धन क्षय आदि संकट ही, बार बार इसको आयें। इनको सहते सहते यह, मृत प्राय: ही हो जाये।।

अपने संगी जन में फिर, जो जो मृतक हो जाता है। उसको वहीं पे छोड़ के, सम्मूह आगे बढ़ जाता है।।
नव जात शिशु को संग लिये, वह यात्रा बनी बढ़ाता है। बाजीगर नाटक का यूं, दृश्य बदलता जाता है।।
उनमें से कोई प्राणी, नहीं आज तक वापिस लौटा। न ही दुर्गम पथ पार कर, कोई परमानन्द की शरण गया।।

बड़े बड़े दिग्पालों पर, भी विजय जिन्होंने पाई। धीर वीर वह पुरुष भी, कहते हैं पृथ्वी को मेरी।।
ऐसे अभिमान से आपस में, वैर भाव को प्राप्त वे हों। द्वेष भाव से परिपूर्ण, संग्राम भूमि में पहुँचे वो।।
प्रभु विष्णु का अविनाशी पद, प्राप्त नहीं वह कर सकते। अनुसूय परमहंसों के लिये, सहज ही जो प्राप्तव्य रहे।।

बाजीगरों का यह दल जो, इस भवाटवी में भटक रहा। किसी लता की शाख पे बैठे, मधुभावी पक्षिन् मोह में फंसा।।
कभी सिंहों के सम्मूहों से, भय मनाने यह लगे। बगुला कंक गिद्ध आदि, से कभी प्रीति बढ़ा यह ले।।
जब उनसे यह धोखा खाये, प्रवेश यह हंसों में चाहे। किन्तु उसका आचार तो, अनुकूल न उनके हो पाये।।
वानरों से मिल इस कारण, उनकी जाति स्वभाव अनुसार। वह भोगे दाम्पत्य सुख, विषय भोगों में ही हो व्यवहार।।
निज इन्द्रिय तृप्ति के वह, हर पल यत्न ही करता है। इक दूजे का मुख देख देख, सब आयु निज क्षय करता है।।

वहां वृक्षों में क्रीड़ा वह करे, और दारा सुत के मोह में बन्धे। वासना उसकी दिन प्रति दिन, इस कारण बढ़ती रहे।।
भान्ति भान्ति के दुर्व्यवहार से, अति दीन यह हो जाये। पर विवश ही सब वह सहे, नहीं इनसे मुक्त वह हो पाये।
पर्वत की गुफा में कभी, असावधान हो गिरने लगे। तो उसमें बसे हाथी से वह, भयभीत हो लता पे ही लटके।।

यदि दैववश किसी विधि, इस आपत्ति से छूटे वह। तो फिर से जा अपने ही, वणिक सम्मूह से मिले है वह।।
माया से प्रेरित जो भी जीव, इस मार्ग में फंस जाये। भटक भटक के अन्त तक, परम को जान ही न पाये।।

हे रहूगण तुम भी इसी, मार्ग में हो भटक रहे। इसीलिये प्रजा आदि, को दण्ड देने में हो लगे।।
अब कार्य यह सब छोड़कर, सब जीवभूत के सुहृद् बनो। विषयों में अनासक्त हो, प्रभु की अब सेवा में लगो।।
भगवत्सेवा से हुई तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग को कर में लो। तुम इस दुष्कर मार्ग को, उसके ही आसरे पार करो।।
राजा रहूगण बोले,
अहो प्रभु सब योनिन् में, है मनुज योनि ही सर्वश्रेष्ठ। देवादि सब योनियों से, भी यह है अति उत्कृष्ट।।
उन योनिन से क्या लाभ है, जहां प्रभु का पावन नाम न हो। शुद्ध चित्त आप सम सन्त का, समागम जहाँ पे नाही हो।।
आपके चरण कमल की जिन, रज कण का सेवन किया। पाप ताप हुए नष्ट सभी, प्रभु की भक्ति को प्राप्त किया।।
नहीं इसमें आश्चर्य कोई, है मेरा निजि अनुभव यह ही। दो घड़ी मिला सत्संग मुझे, कुतर्क अज्ञान हुए नष्ट सभी।।

ब्रह्मज्ञानियों में जो भी, हैं व्योवृद्ध उन्हें नमस्कार। शिशु युवा या क्रीड़ारत, बालक को भी नमस्कार।।
अवधूत वेश में पृथ्वी पर, ब्रह्मज्ञ जो ब्राह्मण बन विचरें। ऐश्वर्योन्मत्त राजाओं का, कल्याण वही तो कर सकें।।
शुकदेव बोले,
जिस सिन्धु नरेश रहूगण ने, अपमान था उनका किया। प्रभावशाली ब्रह्मर्षि ने, उसपर करी अतीव कृपा।।
उस राजा को ही उन्होंने, आत्म तत्त्व उपदेश दिया। दीन भाव को प्राप्त हुआ, वह चरण वन्दना करने लगा।।

उनकी सत्संगति से, आत्म तत्व का ज्ञान पा। सौवीर पति ने देहात्म, बुद्धि का परित्याग किया।।
अन्त:करण पे अविद्या ने, ही यह बुद्धि आरोपी थी। सत् से संग जब जाग गया, तब इसकी निवृत्ति हुई।।
हे राजन् भगवत् आश्रित, भक्तों की जो शरण ले। उसके पास अविद्या का, टिकाव नहीं फिर हो सके।।

राजा रमण बोले,
परम विद्वान आप हैं, महाभागवद् हे मुनि श्रेष्ठ। संसार मार्ग की बात कही, अप्रत्यक्ष यह रूपक दे।।
यह कल्पना भी तो है, विवेकी जन की बुद्धि की। मुझ अल्पज्ञ की समझ में, सहज नहीं यह आ सकती।।
अत: आपके श्री चरणों में, है प्रार्थना यह मेरी। स्पष्टीकरण प्रभु करें आप, इस दुर्बोध विषय की भी।।
जड़भरत बोले,
देहाभिमानी जीव से, हे राजन् त्रिविध कर्म हो। शुभ अशुभ और मिश्रित, त्रैगुण भेद से कर्म हों।।
उन कर्मों द्वारा है निर्मित, संयोग वियोग रूप संसार। पंच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन, अनुभव हेतु बने छ: द्वार।।
इनसे विवश ही होकर के, मार्ग भूले यह जीव आप। नाना भान्ति के शरीरों में, जीव को जो भी हों प्राप्त।।
धन लोभी बंजारों सम, वन वन में यह भटका करे। प्रभु आश्रित माया के वश हो, वन समान दुर्गम पथ ले।।
संसार रूप बीहड़ वन में, जाकर के यह पड़ता है। श्मशान समान अशुभ है जो, इस वन का रूप न दिखता है।।
जब लौ इस दुर्गम वन में, ही जीव भटका करे। निज कर्मों के फल का उसे, उपभोग तो करना ही पड़े।।
अनेकों विघ्न हों राह में, व्यापार में सफल वह हो नहीं। फिर भी श्रम को जो शान्त करें, उन हरि चरण को गहे नहीं।।
श्री हरि और गुरु देव के, चरणारविन्द हैं मधुकोश। रसिक भ्रमर भक्तों के लिये, है मार्ग यही राजन् निर्दोष।।
संसार के इस गहन वन में, मन सहित पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। निज कर्मों क दृष्टि से, हैं यह ही डाकू समान।।

अतीव श्रम लगाकर जीव, है धन कुमाने में लगा। सदुपयोग उस धन का तो, बस धर्म कर्म में हो सकता।।
वही धर्म साक्षात् हरि, की आराधना रूप गर हो। परलोक में श्रेय का तब, निश्चित ही वह हेतु हो।।
किन्तु जिस जीव की बुद्धि रूप, सारथि हो विवेक रहित। और मन की लगाम भी, नहीं हो वश में इन्द्रियों सहित।।
दर्शन स्पर्शन् श्रवण जिघ्रण, और रसना से रस लेना। मन में उठे संकल्प विकल्प, और हो सब निर्णय लेना।।
यह सब मिलकर ही उसे, संसार के भोगों में फांसे। सारा धन उस जीव का, आपस में मिलजुल कर बांटें।।
ज्यों अपने छलिया मुखिया का, अनुगमन करे हैं बाजीगर। असावधान हुए उनका धन, चोर और डाकू लें हर।।

संसार वन में कुटुम्बी भी, दारा सुतादि कहे जायें। कर्म तो उन सबके वृक् और, गीदड़ समान ही हो जायें।।
उस अर्थ लोलुप जीव का धन, उसके न चाहने पर भी। उससे हैं हर लेते सभी, उसके देखते देखते ही।।
ज्यों गडरिये से सुरक्षित, भेड़ें वृक् उठा ही ले। उसी विधि सम्बन्धी भी, उसका धन सब छीन लें।।

यदि खेत के बीजों का, अग्नि के द्वारा नाश न हो। खेती के समय झार झंखाड़, लता तृण आदि उत्पन्न हों।।
चाहे हल लेकर जितना भी, क्षेत्र को जोता ही जाये। पर इस व्यर्थ की उपज से, गहन ही वह होता जाये।।
उसी विधि यह गृहस्थाश्रम, भी तो कर्म की खेती है। कामना पुंज इस क्षेत्र में, कर्मों की क्षय नहीं होती है।।

आसक्त जीव तो धन को ही, माने अपने प्राण समान। नीच पुरुष हरना चाहें, वही तो मच्छर और हों डांस।।
टिड्डी पक्षी चोर चूहे, नित्य क्षति उसकी करें। भटक भटक इस मार्ग में, सदा दु:खी ही वह रहे।।
अविद्या कामना कर्मों से, अपावन उसका चित्त हुआ। दोष दृष्टि के कारण ही, वह सत्य देख नहीं सकता।।
मर्त्यलोक वास्तव में है, असत् गन्धर्व लोक समान। उसमें ही यह भ्रान्त रहे, उसको ही अन्तिम सत्य जान।।

फिर खान पान में पड़ा रहे, सम्भोग आदि व्यसनों में फंसे। मृग तृष्णा के समान ही, मिथ्या विषयों का पीछा करे।।
बुद्धि जब रजोगुण के, वशीभूत ही उसकी हो जाये। सर्व अनर्थ का मूल जो, स्वर्ण के पीछे वह भागे।।
उसको ही सारे सुख का, साधन वह समुझे जाये। लालायित होकर उसको ही, सब जग में हेरे जाये।।
ज्यों जाड़े में ठिठुर रहा, वन में जीव अग्नि हेरे। बेताल को ही अग्नि घेरे, उसकी ओर वह दौड़ा करे।।

कभी इस देह के रक्षक जो, घर अन्न जल और धन आदि। अभिनिवेश इनमें करके, वह दौड़े इधर उधर को ही।।
कभी स्त्री की आगोश में, जाकर जब यह बैठा करे। बावण्डरवत् ही आंखों में, इसके धूलि भर जाये।।
कामान्ध हो तत्काल ही, सब मर्यादा यह भूले। सत्पुरुषों का आचरण भी, याद इसे तब नहीं रहे।।
नेत्रों में रजोगुण की, धूलि जब भर जाती है। उससे जीव की बुद्धि भी, मलिन ही हो जाती है।।
निज कर्मों के साक्षी जो, दिशा के देवों को भूले। धर्म मर्यादा सभी भूल, वह इस के वश में ही हो ले।।

कभी कभी स्वत: ही यह, मिथ्यात्व जान ले विषयों का। पर अनादि काल से जो, है देहात्म बुद्धि में फंसा।।
विवेक बुद्धि जो नष्ट हुई, मृगतृष्णा में ही पुन: भ्रमा। उन विषयों के पीछे ही, बार बार वह दौड़ रहा।।
कभी प्रत्यक्ष ही शत्रु का, उल्लूक समान हो चीत्कार। परोक्ष रूप से झींगर सम, कभी राजा की हो कटु फटकार।।
दिल ही दहल जाये इनसे, और कानों को अति कटु लगे। मन और कर्णेन्द्रिय दोनों, यह सुनकर अति व्यथित भए।।

पूर्व पुण्य जब क्षीण हों, तो जीवित मृतक समान बने। विषपूर्ण फलदे पाप वृक्ष, यह उसकी शरण में जाय पड़े।।
विष से भरे जो कूप हैं, और जो लता है विष समान। इह लोक या परलोक में, नहीं आये जिनका धन कछु काम।।
जीते जी भी इस जग में जो, मृतक सम आयें न किसी के काम। आश्रित होकर उन कृपणों के, करे यह जीवन अपना तमाम।।

असत् पुरुषों के संग से, जब बुद्धि इसकी बिगड़ जाये। सूखी नदी में गिरकर ज्यों, जीव दु:खी ही हो जाये।।
इस विधि ही दु:खदायी, पाखण्ड में जाकर वह फंसे। जो इहलोक परलोक में, दु:ख ही दु:ख बस उसको दें।।
जब दूजों को सताकर भी, अन्न उसको नहीं मिले। तब अपने ही सगे सम्बन्धी, को ही खाने वह दौड़े।।
पिता पुत्र या पुत्र पिता का, निज स्वार्थ में ऱ्हास करे। जिसके पास उसे कुछ दीखे, उससे ही वह छीन ले।।

प्रिय विषयों से शून्य घर, दावानल सम ही दु:खदे है। इष्ट जनों के वियोग की, अग्नि वहाँ पे भड़के हैं।।
उसी में वह सन्तप्त हो, खिन्न मन बहु हो जाये। आरम्भ में जो था अति प्रिय, परिणाम में दु:ख ही दे जाये।।
काल समान भयावह ही, कभी राजकुल उसे लगे। बन राक्षस वह परम प्रिय, धन रूप प्राण का हरण करे।।
धन ही परम इष्ठ इसका, वियोग यह उसका सह न सके। मृतप्राय: यह होकर के, निर्जीव समान ही पड़ा रहे।।

मनभावन पदार्थ जो, वास्तव में सब हैं असत्य। पिता पितामह: आदि सब, सम्बन्धों को वह माने सत्य।।
उनके ही सहवास में, क्षणिक सुख अनुभव करे। वास्तव में स्वप्न समान हैं वे, अस्तित्व नहीं उनका कुछ रे।।

गृहस्थाश्रम के हेतु ही, विस्तृत है सारा कर्मकाण्ड। दुर्गम पर्वत आरोहण सम, ही तो हैं वा अनुष्ठान।।
अन्य जन की देखा देखी, जब भी जीव उस पथ पे चले। क्लेशपूर्ण उस राह पे वह, कंकर और कण्टक से उलझे।।
ऐसी अवस्था में वह जीव, कष्ट बहुत उठाता है। अपनी हालत देख कर, अत्यन्त दु:खी हो जाता है।।

कभी जठर अग्नि उसकी, व्यथित उसे करने लगे। तो अपने ही कुटुम्ब के, अन्य जनों पर वह बिगड़े।।
फिर निद्रा रूपी अजगर के, चंगुल में जब फंस जाता है। अज्ञान रूपा गहन तिमिर के, वन में यह खो जाता है।।
एकान्त स्थल पे मृतक सम, यह जीव सोया रहे। उस पल किसी भी बात की, सुधबुध इसको नहीं रहे।।

कभी दुर्जन जो जीव हैं, काटने इसको आते हैं। तिरस्कार अपमान से, झोली इसकी भर जाते हैं।।
तो गर्व रूप इसके यह दान्त, था जिनसे अन्य को काटता। इस प्रहार से गर्व का, दंश क्षीण है हो जाता।।
अशान्त मन यह पुन: कभी, चैन की नींद नहीं सोता। मर्म वेदना के कारण, हर पल विवेक क्षीण होता।।
अन्त में अन्धे की भान्ति, है नरक में ही यह जा गिरता। ज्यों इक अन्धा नयनहीन, नहीं कूप सामने देखता।।

विषय सुख के मधुकण कभी, स्थान स्थान पर ढूंढे जब। छिप छिप कर परस्त्री या, परधन हरना चाहे जब।।
तो उनके स्वामी या राजा, के हाथ से मारा जाता है। नहीं जिनका ओर छोर है कोई, ऐसे नरकों में जाता है।।
इस कारण ही तो कहें, प्रवृत्ति में रह जो कर्म किये। इह लौकिक या वैदिक, जैसे भी वह कर्म थे।।
यह सब कर्म ही जीव को, भव बन्धन में बान्ध दें। दोनों ही भान्ति के कर्म, संसार की प्राप्ति उसको दें।।

किसी विधि राजा आदि के, बन्धन से गर छूट गया। अन्याय से परस्त्री और, परधन का जो हरण किया।।
उन्हें देवदत्त नामक कोई, दूजा व्यक्ति छीन ले। विष्णुमित्र नामक या तीसरा, पुन: यह उससे छीन ले।।
इसी विधि वह भोग भी, स्थिर न रहें किसी एक जा। एक से दूजे व्यक्ति पे, ही यह विचरते हैं सदा।।

कभी कभी वायु शीतादि, अधिदैविक जो है शक्तियाँ ये। अधिभौतिक और आध्यात्मिक, दु:ख की स्थिति में डाल दें।।
उनको निवृत्त करने की, सामर्थ्य नहीं निज में पाता। अपार चिन्ता हिय बसा, है उदास यह हो जाता।।
कभी आपस में लेन देन, का व्यपार करे यह जब। दूजे का तनिक सा भी, दमड़ी भर धन चुराये जब।।
तो इस धोखे के कारण ही, वैर वहाँ ठन जाता है। वास्तव में आत्म ग्लानि का, वह भाव भूल नहीं पाता है।।

इस मार्ग पर चलते हुए, उपरोक्त विघ्न सब राह में हों। फिर सुख दु:ख राग द्वेष भय, अभिमान प्रमाद उन्माद हों।।
शोक लोभ मोह मात्सर्य, ईर्ष्या क्षुधा प्यास अपमान। आधि व्याधि जन्म जरा, और मृत्यु आदि विघ्न महान्।।

विघ्न पूर्ण इस मार्ग में, हर पल ही भटके यह जीव। देवमाया इव स्त्री मोह, में फंसे अविवेकी जीव।।
उसीके लिये विहार भवन, आदि की यह चिन्ता करे। उसीके आश्रित पुत्र पुत्री, अन्य स्त्री फिर देखे।।
मधुर वचन चंचल चितवन, और आसक्त हो चेष्ठा में। चित्त उन्हीं में अटका रहे, और इन्द्रियों का वह दास बने।।
इसी विधि वह गहनतम, अन्धतम नरकों जाये। इस मोहपाश में बन्धकर वह, अपना पतन करा जाये।।

प्रभु विष्णु का आयुध है, साक्षात् यह काल चक्र। परमाणु से लेकर जिसमें, द्वि परार्ध तक सब अव्यय।।
सदा सजग वह होकर के, निरन्तर ही घूमा करे। कभी बाल युवा फिर वृद्ध बने, सब उसीका ही तो खेल है ये।।
ब्रह्मा आदि से लेकर, क्षुद्रतम तिनके तक। सब भूतों के संहार में, वह तो है निरन्तर रत।।
कोई शक्ति संसार की, उसकी गति न रोक सके। हर प्राणी ब्रह्माण्ड का, इस काल से भयभीत रहे।।

जिनका आयुध है काल चक्र, उन प्रभु विष्णु को भूलकर। उस यज्ञ पुरुष भगवान की, ही अराधना छोड़कर।।

मन्दमति यह जीव जो, पाखण्ड के बस में हैं पड़े। शास्त्रों में बहीष्कृत जो, उन शक्तिन् का आसरा लें।।
कंक गिद्ध बगुला बटेर, के समान ही हैं यह देव। अप्रमाणिक शास्त्र ही, जिनका करते है उल्लेख।।

यह पाखण्डी स्वयं भी, धोखे में नित्य ही रहते हैं। इनकी शरण में जो जाये, वह नित्य ठगे ही रहते हैं।।
जब इनसे दु:खी हो जाये जीव, तो ब्राह्मण शरण में जाता है। पर शास्त्रोक्त आचरण तो, नहीं इसके मन को भाता है।।
उपनयन संस्कार फिर, रौत स्मार्त जो कर्म कहे। प्रभु यज्ञ पुरुष की अराधना, के हेतु जो धर्म कहे।।
निज शुद्धि के अभाव में, इन सबका वह त्याग करे। कर्म शून्य शूद्र कुल में जाकर फिर प्रवेश करे।।
जिसका स्वभाव वानर समान, है केवल स्त्री सेवन। उनके समान ही अपने इक, कुल का करता वह पोषण।।

स्वेच्छा से बिन रोक टोक, विहार वहाँ पे करता है। बुद्धि का भी क्षय हो वहां, अति दीन हुई विचरता है।।
इक दूजे का मुख देखी, विषय भोग में फंसा रहे। अपनी मृत्यु के समय पर, स्मरण ही इसकी नहीं रहे।।

लौकिक सुख ही फल जिसका, वृक्ष समान है वह घर ही। उनमें ही सुख मानकर, विचरे यह वानरवत् ही।।
सुत दारा आदि में यह, निरन्तर ही आसक्त रहे। विषय भोग में ही अपनी, आयु यह व्यतीत करे।।
प्रवृत्ति मार्ग में पड़ इस विध, निरन्तर सुख दु:ख भोगा करे। फिर रोग रूप गुहा में, ही जाकर यह गिर जाये।।
उस गुहा में वास है, मृत्यु रूपा हाथी का। उसके भय से जीव यह, निरन्तर त्रस्त ही है रहता।।

अधिदैविक अधिभौतिक और, आध्यात्मिक भी दु:ख जो हों। शीत वायु गर्मी आदि, ऐसे जो भी दु:ख हों।।
उनकी निवृत्ति करने में, असफल जब यह हो जाये। अपार विषयों की चिन्ता, उस पल इसको तड़पाये।।
कभी व्यापार आपस में करे, क्रय और विक्रय यह करे। अति कृपण बनकर तनिक, धन उसके हाथ में आ जाये।।

कभी नष्ट यह धन जब हो, सब सुविधा ही लुट जाये। शैया आसन या अन्न, कोई सामग्री न पाये।।
इच्छित भोग जब नहीं मिलें, तो चोरी पर उतर आये। बुरे उपाय से ही उन्हें, पाने का निश्चय करे।।
इससे जहां तहां इसको, अपमानित ही होना पड़े। तनिक कहीं सम्मान था जो, पल भर में उसको खो दे।।

धन में जब आसक्ति हो, वैर भाव आपस में बढे। फिर भी पूर्व वासना, के ही यह वशीभूत रहे।।
विवश ही उनसे होकर यह, सम्बन्ध बनाता रहता है। कभी नये नाते जोड़ ले, कभी उन्हें तोड़ता रहता है।।

संसार मार्ग में जीव को, अनेकों कष्ठ उठाने पड़ें। अनेक विघ्न बाधायें ही, आकर इसको घेर लें।।
फिर भी राह में जिसपे कभी, कोई आपत्ति आ जाये। या फिर निज आयु को भोग, कोई काल का ग्रास ही बन जाए।।
उसे वहीं पर छोड़कर, नवजात हैं जो उन्हें साथ ले। अपने में ही मस्त जीव, इस यात्रा पे चलता रहे।।
कभी शोक करे किसी के लिए, दु:ख देख किसी का मूर्छित हो। कभी वियोग की आशंका, से ही वह भयभीत हो।।
किसी से झगड़ा करे कभी, आपत्ति पड़े रोने लगे। रुचि अनुकूल अगर कहीं मिले, तो यह खुशी से झूम उठे।।
कभी गाने लगे आनन्दित हो, कभी उनके लिये यह बन्ध जाये। साधुगण पास न आयें कभी, साधु संग से वंचित यह रहे।।
जहां से यात्रा शुरू थी की, और जो है उसका अन्त भी। उन प्रभु के पास तो, अभी तक वह लौटा नहीं।।

योग शास्त्र की भी पहुँच, नहीं है उस परमात्म तक। जो जन त्याग हैं कर देते, अधिकार पूर्ण ही शासन सब।।

निवृत्ति परायण संयमी जो, वह मुनि जन ही पाते हैं। अन्यथा भोग विलास में, मिया जीवन गंवाते हैं।।

बड़े बड़े जो राजर्षि, महायज्ञों का अनुष्ठान करें। युद्ध क्षेत्र में अनेकों ही, शत्रुन् को वह जीत लें।।
वह भी न पहुँचे वहां, नहीं उनकी गति वहां हो सके। युद्ध भूमि के शत्रु सम्मुख, वह प्राण त्याग ही कर सकें।।
जिस भूमि को मेरी है, कहकर था वैर उसने बना लिया। उस पृथ्वी सहित अपना तन भी, यहां पे ही सब रह गया।।
तन के सहित उसकी सम्पदा भी, धरी यहीं पर रह गई। तृप्ति थी अभी हुई नहीं, काल खड्ग आ सीस पड़ी।।

पुण्य कर्म रूपा लता, का आश्रय जब जीव ले। विपदा भरे इस नरक से, कभी मुक्त भी हो जाये।।
फिर इसी संसार मार्ग में, पुन: लौट के वह आये। भटका हुआ आकर पुन:, जन समुदाय में मिल जाये।।
स्वर्गादि ऊर्ध्वलोकों में, भी जो जन चले जाते हैं। यही गति तो ऐस जन, भी वहां पे पाते हैं।।

ज्यों मक्षिका कोई भी, गरुड से होड़ न कर सके। मन से भी कोई राजा, अनुगमन न उनका कर सके।।
श्री हरि में ही अनुरक्त हो, यौवन में ही त्याग किया। स्त्री पुत्र मित्र राज्य, सब विष्टा सम उन्होंने छोड़ा।।
किसी अन्य के लिये तो, कल्पना भी अति कठिन है ये। इन सबके परित्याग की, साधारण जन न सोच सकें।।

पृथ्वी पुत्र स्वजन स्त्री, सम्पद् सब उन्होने त्याग दिये। दुस्त्यज जिन्हें यह जरा माने, उनक ओर नहीं मुख किये।।
जिनके लिये बड़े बड़े देव, भी लालायित रहें सदा। उनकी कृपा दृष्टि के लिये, जो स्वयं प्रतीक्षा रत थीं सदा।।
उन श्री लक्ष्मी जी की, भरत ने तनिक न इच्छा की। ऐसी भावना हे राजन्, उनके लिये तो उचित ही थी।।
जिनका चित्त मधुसूदन की, सेवा में अनुरक्त हुआ। उनको तो मोक्ष पद भी, अति तुच्छ है दीखता।।

जब उन्होंने मृग शरीर, का भी त्याग करना चाहा। उच्च स्वर से उन्होंने तब, यह ही था उद्घोष किया।।
धर्म अनुष्ठान में निपुण, हैं धर्म के रक्षक जो। सांख्य प्रतिपादन जिन्होंने किया, केवल योग गम्य हैं जो।।
अधीश्वर इस प्रकृति के, हैं जो सर्व अन्तर्यामी। यज्ञमूर्ति श्री हरि को है, नमन मेरा मेरे स्वामी।।

हे राजन् श्री भरत के, पावन गुण कर्म जो हैं कहे। भक्त जन भी उन सबकी, सराहना ही करते रहें।।
यह चरित अति पावन और, है अति कल्याण करे। आयु और धन वर्धन करे, लोकों में सुयश को भर।।
अन्त में स्वर्ग और मोक्ष की, प्राप्ति भी यह करवा दे। जो पुरुष सुने सुनाये यह, या अभिनन्दन इसका करे।।
कामना पूर्ण हों सारी, नहीं मांगना किसीसे कुछ भी पड़े। ऐसी महिमा श्री भरत के, चरित की तू जान ले।।

५) जड़भरत के वंश का वर्णन

शुकदेव बोले,
हे राजन् पहले ही था कहा, भरत पुत्र था सुमति। पितामह ऋषभ देव के, मार्ग की उस अनुसरण की।।
इस कारण ही कलियुग में, अनार्य पाखण्डी है जो जन। वेद विरोधी कल्पना कर, देव उसे मानेंगे जन।।
उसकी पत्नी वृद्धसेना ने, एक पुत्र को जन्म दिया। देवताजित उस पुत्र का, नाम भी उसने रख दिया।।

असुर नामक पत्नी के, गर्भ से जन्मा देवद्युम्न। धेनुमति ने जन्मा परमेष्ठी, पिता थे उसके देवद्युम्न।।
परमेष्ठी की पत्नी का, नाम था सुवर्चला। सुवर्चला के गर्भ से, प्रतीह नामक पुत्र हुआ।।

शुद्ध चित्त होकर साक्षात्, नारायण का अनुभव किया। अन्य पुरुषों को इसने, आत्म विद्या उपदेश किया।।

प्रतीह की भार्या ने फिर, तीन पुत्रों को जन्म दिया। प्रतिहर्ता प्रस्तोता और, उद्गाता उनका नाम था।।
यज्ञादि कर्मों में अति, निपुण थे यह तीनों ही। इनमें से प्रतिहर्ता की, भार्या का था नाम स्तुति।।
उसके गर्भ से पुनः, दो पुत्रों का जन्म हुआ। अज और भूमा कहें, इन दोनों का नाम था।।

भूमा पत्नी ऋषितुल्या से, जन्मा उद्गीथ नाम का सुत। उद्गीथ की पत्नी देवकुल्या, ने जन्मा प्रस्ताव सुत।।
नियुत्सा के गर्भ से फिर, प्रस्ताव पुत्र विभु जन्मा। रति के उदर से विभु पुत्र, पृथुषेण उत्पन्न हुआ।।
पृथुषेण की पत्नी का, नाम कहें था आकूति। आकूति ने फिर जन्मा, नक्त नामक पुत्र ही।।
नक्तपुत्र थे उदारकीर्ति, और श्रेष्ठ राजर्षि श्री गय। द्रुति ही माता थी उनकी, और विष्णु कला अंश थे वह।।
जगत् की रक्षा के लिये, जो सत्वगुण स्वीकार करें। संयमादि गुणों कारण, अस गणना हो महापुरुषों में।।

प्रेम से राजा गय ने किया, पालन पोषण निज प्रजा का। लाड़ चाव रंजन शासन, विविध यज्ञ अनुष्ठान किया।।
भगवत्प्रीति में हो निष्काम, निज धर्मों का आचरण किया। सब कर्मों को हरि अर्पित कर, परमार्थ रूप बना दिया।।
ब्रह्म वेता महापुरुषों का, चरण सेवन उन्होंने किया। इन सबके प्रसाद में, भक्तियोग को प्राप्त किया।।
निरन्तर भगवत् चिन्तन से, अपने चित्त को शुद्ध किया। देहादि अनात्म वस्तु से, अहं भाव निवृत्त किया।।
आत्म में ही ब्रह्म स्वरूप, का अनुभव वह करने लगे। निरभिमान यूं होकर वह, धरती का पालन करते रहे।।

हे राजन् प्राचीन इतिहास, के महात्मन जो ज्ञाता। राजर्षि गय के विषय में, उन्होंने कही है यह गाथा।।
राजा गय की बराबरी, निज कर्मों से को कर सके? वह तो प्रभु श्री विष्णु की, साक्षात् कला ही थे।।
बहु यज्ञों का था उन्होंने, विधिवत् ही अनुष्ठान किया। मनस्वी थे अति ज्ञानवान्, थे धर्म के ही रक्षक सदा।।
लक्ष्मी के प्रिय पात्र थे, साधु समाज के शिरोमणि। उन्हें छोड़ सत्पुरुषों का, को सेवक अस हो सके कभी?

सत्य संकल्पी परम साध्वी, श्रद्धा मैत्री दया आदि। दक्ष सुताओं सहित इन, अति पावन गंगा आदि।।
सबने मिल अति मुदित हो, अभिषेक इनका था किया। वसुधा ने इनपर रीझकर, रत्नादि से भर दिया।।
ज्यों बछड़े के स्नेह में, गाय दूध सबको दे दे। उसी विधि इनकी प्रजा को, रत्न आदि धरा ने दिए।।

थे कामना रहित वह सर्वथा, वेदोक्त सभी थे कर्म किए। इन कर्मों के परिणाम में, सब प्रकार के भोग मिले।।
युद्ध भूमि में राजा अनेक, वा बाणों से सत्कृत हुए। नाना भान्ति के उपहार, उनके चरण में लाय धरे।।
दक्षिणा आदि कर्मों से, ब्राह्मण जन को संतुष्ट किया। परलोक में प्राप्त धर्म का उन्होंने, छटा अंश राजा को दिया।।
उन यज्ञों में सोमपान से, इन्द्र अति उन्मत्त हुआ। श्रद्धा युक्त विशुद्ध मनी, निश्चल भक्ति सम्पन्न वह था।।
उसके यज्ञार्पित फल को, श्री हरि ने था ग्रहण किया। साक्षात् प्रकट होकर, उसका भोग था लिया लगा।।

देव मनुष्य पशु पक्षी, वृक्ष और तिनके तक भी। जिनकी तृप्ति से यह भी, तत्काल तृप्त हो जायें सभी।।
वह विश्वात्मा श्री हरि, रहते हैं जो नित्य तृप्त। राजर्षि गय के यज्ञ से, वह भी हुए थे संतृप्त।।
उनके सम दूजा कोई, जीव कहां कभी हो सके? परम पुरुष श्री हरि को भी, निज कर्मों से जो तृप्त करे?

गयन्ती नाम की कन्या से, उसने फिर विवाह किया। चित्ररथ सुगति अवरोध, तीन पुत्रों का नाम था।।
उनमें चित्ररथ की पत्नी, का नाम था ऊर्णा। उसके गर्भ से पुन:, सम्राट नामक सुत जन्मा।।

सम्राट की पत्नी उत्कला ने, जन्म दिया मरीचि को। उसकी पत्नी बिन्दुमति थी, जन्म दिया बिन्दुमान को।।
बिन्दुमान की पत्नी का, सरघा ही कहें नाम था। उसने मधु नाम के, पुत्र को फिर जन्म दिया।।
मधु पत्नी थी सुमना, वा पुत्र वीरव्रत हुआ। वीरव्रत पत्नी भोजा से, मन्थु प्रमन्थु ने जन्म लिया।।
मन्थु की पत्नी थी सत्या, भौवन जन्में वा गर्भ से। त्वष्टा ने फिर जन्म लिया, भौवन पत्नी दूषणा से।।
विरोचना से त्वष्टा ने, था कहें विवाह किया। विरज नाम का पुत्र फिर, इनके यहाँ उत्पन्न हुआ।।
विशूचि नाम की भार्या से, विरज ने जन्में सौ पुत्र। इक कन्या का भी जन्म हुआ, शतजित आदि थे उनके पुत्र।।

विरज के विषय में, प्रसिद्ध है कहें यह उक्ति। ज्यों प्रभु विष्णु से ही, शोभा बढ़े सब देवों की।।
उसी विधि प्रियव्रत वंश में, उत्पन्न हुए जो सबके बाद। राजा विरज ने निज यश से, लगा दिये थे चार चान्द।।

६) खगोल-भूगोल - १) भुवन कोश का वर्णन

परीक्षित बोले,
जहाँ तक फैले कहा, सूर्य का प्रकाश है। तारों के संग दीखता, जहाँ तक शशि आप है।।
वहाँ तक ही भूमण्डल, का विस्तार कहा आपने। हे मुनिवर इतना विस्तृत, भूमण्डल कहा आपने।।

उसमें भी यह कह दिया, प्रियव्रत के रथ के पहियों से। सप्त रेखा जो थीं खिंचीं, सात सिन्धु वह बन गए।।
इनके कारण भूमण्डल, सात द्वीप में बंट गया। इन सबका परिणाम है क्या, और कहें है लक्षण क्या?
हे द्विजवर मैं जिज्ञासु हूँ, पूर्ण विवरण कहें इसका। आपके श्री मुख से सुनकर, कौतूहल शान्त मेरा होगा।।
यह मन जो प्रभु के स्थूल, गुणमय विग्रह में लगे। उनके निर्गुण स्वरूप में भी, टिकाव है सम्भव उसका कहें।।
वासुदेव नामक स्वयं प्रका, सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप हैं वे। हे गुरु देव इस विषय का, वर्णन करने की कृपा करें।।
शुकदेव बोले,
श्री हरि के गुणों की है, माया अति विस्तृत जानो। देवों की आयु पाकर भी, मन वाणी से न जान सको।।
नाम रूप परिणाम और, लक्षण की जो बात कहो। प्रधान लक्षण लेकर ही, विशेषता का वर्णन सुनो।।
भूमण्डल रूपा कमल के सात कोश हैं सात द्वीप। इनमें से जो आन्तरतम, उसे कहें हैं जम्बुदवीप।।
इस खण्ड में हम रहते हैं, परिमाण है इसका योजन लाख। कमल पत्र समान ही, आकृति है इसकी गोलाकार।।
नव सहस्र योजन वाले, हैं जान लो इसमें नौ वर्ष। इनकी सीमा का विभाग करें, हैं बीचों बीच आठ पर्वत।।

मध्य में इनके इलावृत्त, नामक है दसवां वर्ष। उसके बीच विराज रहे, पर्वतराज मेरु पर्वत।।
भूमण्डल रूपा कमल की, मानो है वह कर्णिका। आकार लाख योजन ऊंचा, है स्वर्णमय कण कण उसका।।
शिखर पर विस्तार वा, है बत्तीस सहस्र योजन। तलहटी में आकार है, उसका सोलह सहस्र योजन।।
इतना ही वह भूमि के, गर्भ के भीतर छिपा हुआ। भूमि के बाहर है आकार, चौरासी सहस्र योजन उसका।।

इलावृत्त वर्ष के उत्तर में, क्रमश: हैं तीन पर्वत। नील श्वेत और श्रृंगवान्, दिये हैं उनके नाम धर।।

यह तीनों पर्वत ही, सीमा बान्धें त्रि वर्षों की। रम्यक हिरण्मय और कुरु, नाम है इन त्रि वर्षों की।।
पूर्व से पश्चिम तक यह, फैले है खारे सागर तक। प्रत्येक की चौड़ाई तो, है दो सहस्त्र योजन तक।।
लम्बाई जो पीछे कही, क्रमश: दशमांश से अधिक है कम। चौड़ाई और ऊंचाई तो, कहें सभी की है एक सम।।

इसी विधि इलावृत्त के, दक्षिण ओर भी है क्रमश:। निषध और गिरि हेमकूट, हिमालय कहें है तीसरा।।
नीलादि पर्वत समान, हैं फेले यह भी पूर्व पश्चिम। इन सबकी ऊंचाई कहें, है दस दस सहस्त्र योजन।।
इनसे क्रमश: विभाग हो, इन तीनों की सीमाओं का। हरिवर्ष और किम्पुरुष, तीसरा भारतवर्ष कहा।।

अब इलावृत्त के पूर्व, और पश्चिम की बात कहें। उत्तर में नील पर्वत, दक्षिण में निषध तक फैले।।
गन्धमादन और माल्यवान्, नामक हैं यह दो पर्वत। अति पावन और हरित बने, सृष्टि श्रृंगार हैं यह पर्वत।।
दो दो सहस्त्र योजन ही, दोनों की चौड़ाई कहें। भद्राश्व और केतुमाल, दो वर्षों की सीमा यह बनें।।

मन्दर मेरु मन्दर सुपार्श्व, और कुमुद इनके सिवा। दस दस हजार योजन ऊंचे, बने हैं यह सब ही पहाड़।।
उतने ही चौड़े पर्वत हैं, ज्यों मेरु की हों आधार शिला। इस भूमण्डल का राजन्, है ऐसा ही विस्तार बना।।
इन चारों के ऊपर ही, जैसे हो इनकी चार ध्वजा। आम जामुन कदम्ब और बढ़ के, चार वृक्ष लगे क्रमश:।।
ग्यारह सौ योजन ऊंचा, है हर वृक्ष का आकार। इनकी शाखाओं का भी, है इतना ही तो विस्तार।।
इन पेड़ों की मोटाई, भी है सौ सौ योजन की। ऐसी है अद्भुत छटा, बनी है जो इन वृक्षों की।।

हे भरतश्रेष्ठ इन पर्वतों पर, बने हैं चार सरोवर भी। जिनमें है दूध मधु ईखरस, और वहाँ मीठा जल ही।।
इनका हैं सेवन करते, उपदेश यक्ष किन्नर आदि। स्वभाव से ही स्वत: प्राप्त इन्हें, योग सिद्धियाँ हैं सारी।।
इनपर बने हैं चार दिव्य, स्वर्ग समान सुन्दर उपवन। नाम हैं इनके सर्वतोभद्र, वैभ्राजक चैत्ररथ और नन्दन।।

प्रधान देवतागण यहाँ, देवाँगना सहित विहार करें। सुरांगनागण के नायक बन, प्रेम का वह व्यवहार करें।।
गन्धर्वादि उपदेव भी तब, इनका महिमा गान करें। पर्वत घाटी सब उपवन भी, गान से उनके गूंज उठें।।
मंद्राचल की गोद में, देवों का है जो आम्र वृक्ष। ग्यारह सौ योजन की, ऊँचाई का है वह आम्र वृक्ष।।
गिरि शिखिर समान वहाँ, बड़े बड़े फल लगते हैं। अमृत समान मीठे फल वे, पेड़ों से गिरते रहते हैं।।

फट जाते हैं पककर जब ये, सुगन्धित मीठा रस बहे। लाल रस इन फलों का, अरुणोदा नदी बन बह जाये।।
मंद्राचल के शिखर से गिर, पूर्व भाग में यह बहे। इलावृत्त वर्ष का पूर्वांचल, यह नदी सींचा करे।।

यहाँ यक्षपत्नियाँ हैं जो, श्री पार्वती जी की अनुचरी। इस सुगन्धित नदी के, जल का है वे सेवन करतीं।।
अंग अंग इससे उनका, है सुगन्धित हो जाता। उनका स्पर्श पा कर के, वायु भी है जो बहता।।
दस दस योजन तक वह देश, सुगन्धित से है भर जाता। उस सुरभि से वातावरण, सारा ही है महक जाता।।

इसी विधि जामुन के वृक्ष से, गिरें विशालकाय जामुन। नहीं कोई गुठली उनमें, हैं आकार में हाथी सम।।
बहुत ऊंचाई से गिरकर, वे फल भी हैं फट जाते। उस रस से बहे जो नदी, जम्बू नाक उसको कहते।।
मेरु मन्दर पर्वत के, शिखर से है वह नद गिरती। दस हजार योजन से गिर, दक्षिण भू भाग में है बहती।।

इलावृत्त क्षेत्र का वही भाग, है नदी वह सींचती। अपना रस देकर वह उसे, हरा भरा है कर देती।।

दोनों कूलों की मिट्टी, जब उसके रस से भीगती। सूर्य वायु संयोग से, पुन: वह जब है सूखती।।
जम्बूनद नाम का स्वर्ण बन, वही हिरण्मय हो जाती। देवलोक के कण कण को, विभूषित वह ही है करती।।
किरीट कंकण करधनी, इस स्वर्ण से बन जायें। तरुणी भार्याओं सहित, देवों गन्धर्वों पर यह सजें।।

सुपार्श्व पर्वत पर बना, विशाल कदम्ब का वृक्ष कहें। उसके पांच कोटरों से, मधु की धारायें बहें।।
उनकी मोटाई भी है, पांच पुर आकार की। शिखर से गिरकर पर्वत के, पश्चिम को सुगन्धित है करती।।
इस दिव्य मधु का, पान देवगण जो करें। उनके मुख से निकली वायु, सुवासित वातावरण करे।।
शतश: योजन तक सौरभ, चहुँ ओर है फैल रहा। सारे पर्यावरण को, सुगन्धित यह है कर रहा।।

कुमुद गिरि पर जो खड़ा, शतवल्श नाम का वट वृक्ष। जटाओं से नीचे की आरे, बहें हैं उसके अनेकों नद।।
वह प्रवाह सब ही वांछित, भोगों को देने वाले। दूध दही मधु घृतादि, उनसे हैं सब मिल सकते।।
गुड़ अन्न वस्त्र शैय्या, आसन और आभूषण दें। इलावृत्त देश के उत्तरी, भाग को यह सींचा करें।।

वहाँ की प्रजा इनके दिये, पदार्थों का उपभोग करे। भान्ति भान्ति के कष्टों से, वह प्रजा सदा ही बचे।।
त्वक् में झुर्रियां नहीं पड़ें, न ही केश उनके श्वेत हों। न ही घेरे श्रान्ति कभी, न ही दुर्गन्धित श्वेद हो।।
शीतोष्ण जरा और रोग, न ही मृत्यु सताये कभी। कान्तिहीन न तन कभी हो, अंगों में पीड़ा न आये कभी।।
जीवन पर्यन्त पूर्ण सुख को, ही प्रजा वह भोगा करे। ऐसा ही उन दिव्य सब, पदार्थों का है प्रभाव हे।।

कुरंग कुर कुसुम्भ वैकंक, त्रिकूट शिशिर पतंग रुचक। निषध शिनीवास कपिल शंख, वैदूर्य जारुधि और हंस।।
ऋषभ नाम कालंजर और, नारदादि विंश पर्वत वृन्द। मेरु गिरी को घेरे रहें, कर्णिका के केसर के सम।।

मेरु की पूर्व दिशा में, अठ्ठारह हजार योजन लम्बे। जठर देवकूट नामक, दो विशाल पर्वत हैं बने।।
दो दो हजार योजन वह, चौड़े हैं और ऊंचे बने। पवन और परियात्र नामक, दो पर्वत हैं पश्चिम में।।
कैलास और करवीर बने, दोनों हैं उसके दक्षिण में। विशालकाय इन पर्वत की, शोभा ही है निराली बने।।
उत्तर की ओर त्रिश्रृंग और, मकर नाम के पर्वत हैं। इन आठ पहाड़ों से घिरा, स्वर्णगिरि मेरु पर्वत है।।
अग्नि सम वह हिरण्मय, पर्वत जगमग चमक रहा। अपनी आभा से चारों ओर, वह प्रकाशित कर रहा।।

मेरु के शिखर के मध्य में, हें हैं ब्रह्मा जी की पुरी। कोटि योजन विस्तार की, समचौरस है वह स्वर्णमयी।।
उसके नीचे पूर्वादि आठ, दिशा उपदिशा जो बनी। उनके अधिपति इन्द्रादि अष्ट, लोकपालों की पुरियां वहीं।।
अपने अपने स्वामी अनुरूप, उन्हीं दिशाओं में फैली। परिमाण में एक चौथाई हैं, वह श्री ब्रह्मा की पुरी की।।
शुकदेव बोले,
यज्ञशाला में बलि की, जब यज्ञमूर्ति प्रभु प्रकट हुए। त्रिलोक नापने के लिये, प्रभु विष्णु थे कदम उठे।।
चरण नख की ठोकर से, ऊर्ध्वभाग में छिद्र हुआ। उस छिद्र से बह निकली, ब्रह्माण्ड की बाहरी जलधारा।।
उन चरण कमल को उस धोया, वा केसर वे वह लाल हुई। निर्मल धारा के स्पर्श से, नष्ट हों जग के पाप सभी।।

किन्तु सदा सर्वदा, निर्मल ही है वह रहती। कोई अन्य नाम न उसको दे, धरा वह बहती रहे।।
सहस्त्रयों युग भी बीते जब, धारा वह बहती रहे। स्वर्ग शिरोमणि ध्रुव लोक में, विष्णुपदी भी इसे कहें।।

सुनो वीर परीक्षित् हे, उस लोक में हैं भागवत् श्री ध्रुव। भक्तों के वह शिरोमणि, उत्तानपाद के प्रिय पुत्र।।
नित्य प्रति भक्तिभाव, उनका बढ़ता ही जाये। कुलदेव का है चरणोदक यह, यह मान वह सादर सीस धरें।।
प्रेमावेश में उनका हृदय, गद्गद् तब हो जाता है। स्वत: निमीलित नयनों से, निर्मल अश्रु बह जाता है।।
प्रभु की याद से रोम रोम, में रोमांच ही उठ आए। श्री विष्णुपदी का आचमन, बार बार वह किए जाएं।।

तत्पश्चात् आत्मनिष्ठ, ऋषिगण जानें प्रभाव को। आत्यन्तिक सिद्धि सब तप की, श्री विष्णु पदी को मानें वो।।
आज भी आदर सहित उसे, अपनी जटा पे धार लें। ज्यों मुमुक्षु मुक्ति को, ही है अपने सीस धरे।।
सर्वथा हैं निष्काम यह, प्रभु भक्ति जानें धन महान्। अन्य कामना सब छोड़ी, न्यून और उन्हें त्याज्य जान।।
आत्म ज्ञान को भी भक्ति, के सामने खड़ा न होने दें। निश्चित भक्ति श्री कृष्ण की, सर्वश्रेष्ठ ही यह मानें।।

वहां कोटि विमानों से घिरी, गंगा आकाश से उतरे है। चन्द्रलोक सींच मेरु गिरि पर, ब्रह्म पुरी में गिरे वह है।।
वहाँ पहुँच चतुर्धारा, में यह पुन: विभाजित हो। सीता अलकनन्दा चक्षु, और भद्रा उनका नाम हों।।
अलग अलग धाराओं में, यह चतुर्दिशा में बहती है। अन्त में नदियों के स्वामी, सागर में जा गिरती है।।

सीता ब्रह्मपुरी से गिर, पहुँचे केसर के शिखरों में। फिर नीचे की ओर बहे, यह गन्धमादन के शिखरों पे।।
भद्राश्व को फिर सींचती, पूर्व दिशा में जाती है। वहां से जा पुन: क्षार सागर, में समा यह जाती है।।
इसी विधि चक्षु नदी भी, जाये माल्यवान् के शिखर पे। केतुमाल वर्ष में बहे पुन:, बिना किसी रोक टोक के।।
पश्चिम की ओर यह बहती हुई, क्षार सिन्धु में जा मिले। अपना पूर्ण अस्तित्व ही, उसमें जाकर लय यह करे।।

भद्रा मेरु पर्वत के, शिखर से जाये दिशा उत्तर। एक एक पर्वत श्रृंग पर, जाती है वह उत्तरोत्तर।।
अन्त में श्रृंगवान के, शिखर से जाकर वह गिरे। उत्तर कुरुदेश से होकर के, उत्तर की ओर वह बह निकले।।
वहां पे जाकर यह भी पुन:, सागर में ही लय होए। निज स्वामी के अंग लगी, अपना अस्तित्व ही यह खोए।।

ब्रह्मपुरी के दक्षिण में, जाय गिरे अलकनन्दा। शिखिर अनेकों उलांघ इसे, गिरि हेमकूट पे स्थान मिला।।
अति तीव्र वेग से हिमालय के, शिखरों को वह चीर दे। भारत वर्ष से होती हुई, दक्षिण सागर में जाय मिले।।
इसकी पावन धारा में, स्नान जो भी कर जाते हैं। अश्वेध राजसूय के फल, सहज ही वह पा जाते हैं।।

प्रत्येक वर्ष में अन्य भी, शतश: ही है नद नदियां। मेरु आदि पर्वत से निकल, धरती पर बहतीं यह नदियां।।
सब वर्षों में भारत वर्ष, ही है कर्मभूमि तू जान। शेष आठ जो वर्ष हैं, वह पुण्य भोगने का हैं स्थान।।
स्वर्गभोग से बचें जो पुण्य, स्वगवासी जन के महान्। इस भूलोक के स्वर्ग भी, उन आठों को ही तू मान।।

देवतुल्य हैं जीव वहाँ, मानवी गणना के अनुसार। दीर्घायु उनकी होती, मानव के वर्ष दस हजार।।
दस दजार हाथी का बल, होता इक इक देव में। वज्र समान हैं तन उनके, शक्ति यौवन उल्लास भरे।।
उनके कारण बहुत काल तक, यह विषय भोगते रहते हैं। मैथुन आदि भोगों में, अनुरक्त सदा यह रहते हैं।।

भोगों की समाप्ति पर, जब आयु बचे बस एक वर्ष। तब जाकर स्त्रियाँ उनकी, करती हैं धारण वा गर्भ।।
सर्वदा त्रेता युग जैसा, समय बना वहाँ रहता है। सम्पूर्ण सुख उपभोग का, साधन सम्पन्न सब रहता है।।

ऐसे आश्रम भवन और वर्ष, हैं पर्वतों की घाटियाँ। सुन्दर वन उपवन जिनके, सुशोभित वृक्ष और लता जहाँ।।
सब ऋतुओं के फूलों फलों, से झुकी रहें वा डालियाँ। नव नूतन पल्लवों की छवि से, सजी रहे हर वस्तु वहाँ।।
निर्मल जल से भरे हुए, ऐसे वहाँ जलाशय हैं। भान्ति भान्ति के नवनूतन, कमल वहाँ पे खिलते हैं।।
उन कमलों की सुगन्धि से, अति मुदित रहें जलपक्षी गण। जलमुर्ग कारण्डव सारस, चकवा आदि और राजहंस।।
भान्ति भान्ति की बोली से, वह कलरव करते रहते हैं। विभिन्न जाति के मतवाले, भंवरे भी वहां विचरते हैं।।
उनकी मधुर झंकार से, सब वातावरण ही हो गुंजित। कलि कलि का रस वह लें, उस गान से हों जन मन भी मुदित।।
इन आश्रम भवन घाटियों में, और वहाँ बने जलाशयों में। देवांगनागण संग देवेश्वर, स्वच्छन्द वहां विचरण करें।।
वा हास विलास लीला कटाक्ष, आकृष्ट करें नयन और मन। जल क्रीड़ा आदि खेल में, रहते हैं उन संग निमग्न।।
प्रधान अनुचर जो उनके, सत्कार वा करते रहते हैं। भिन्न भिन्न सामग्री से, सम्मान वह उनका करते हैं।।
श्री आदि पुरुष नारायण भी, जीवों पर अनुग्रह सदा करें। इन नव वर्षों में विराजमान्, विभिन्न मूर्ति वह धर के रहें।।

इलावृत्त क्षेत्र में प्रभु शंकर, ही पुरुष हैं एकमात्र। नहीं अन्य पुरुष प्रवेश करे, पार्वती श्राप जो जाने मात्र।।
असंख्य ही दासियों सहित, पार्वती जी द्वारा सेवित। प्रभु शंकर तो सदा वहाँ, रहते हैं नित्य ध्यान स्थित।।
परम पुरुष श्री वासुदउेव, प्रद्युम्न अनिरुद्ध और संकर्षण। चतुर्व्यूह मूर्ति में अपनी, जो कारण रूपा संकर्षण।।
तम प्रधान मूर्त चौथी, का मनोमय विग्रह बना। उसका ही चिन्तन करें, ध्यान में स्थित होकर सदा।।
इस मन्त्र का उच्चारण कर, स्तुति वह उसकी करते हैं। यह भाव उस स्तुति में, फिर वह अर्पित करते हैं।।
भगवान बोले,
जिनके राही सारे गुण, अभिव्यक्ति अपनी कर पायें। अनन्त हैं वह अव्यक्त मूर्ति, ओंकार वह कहलायें।।
परम पुरुष श्री ओंकार, स्वरूप को है मेरा नमस्कार। परम रूप में ओंकार, ही है सब जग का आधार।।
भक्तन् का आश्रय चरण कमल, हैं परम भजनीय आप प्रभु। सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी जो, उनका भी आश्रय आप प्रभु।।
भक्तों के सम्मुख ही आप, हैं प्रकट करते निज स्वरूप। कृपा कर उनपर प्रभु, भव बन्धन से भी करें मुक्त।।
अभक्त जन को आप सदा, नित्य नव बन्धन में डालें। सर्वेश्वर हैं आप ही, आपका ही हम भजन करें।।

क्रोध के इस आवेग पर, नहीं प्रभु है बस हमारा। क्षण भर में दृष्टि पाप से, लिप्त यह हो जाती सदा।।
संसार के नियमन हेतु प्रभो हैं साक्षी आप संसार के। आपसे कोई छिप न सकें, संसार के व्यपार ये।।
मायिक वृत्तियों और कृतियों का, तनिक प्रभाव न आप पे हो। हमारी ओर आपकी दृष्टि में, निरन्तर प्रेम और करुणा हो।।
ऐसा कौन जीव होगा, जो मन को वश करना चाहे। आपके ऐसे चरणों में, न अपना सीस झुका जाये?

मधु आसव पान से नयना यह, रक्तिम से आभास रहे। जिन पुरुषों को आप प्रभु, मतवाले से हैं दीख रहे।।
माया के वशीभूत हो वह, ऐसा दर्शन करे हैं। महिमा से वह आपकी, वंचित ही रह जाते हैं।।
चरण स्पर्श पा आपके, चंचल चित्त जो हो जातीं। नागपत्नियां लज्जाशील हो, आपकी पूजा कर ही न पातीं।।

वेदमन्त्र कहें आपको ही, उत्पत्ति स्थिति और लय कारण। इन त्रैविकार से रहित स्वयं, करें आप अनन्त रूप धारण।।
सहस्त्र मस्तक आपके, पर भूमण्डल हैं यूँ धरा। ज्यों विशाल धरातल पर, सरसों का इक दाना हे पड़ा।।
आप तो यह भी न जानें, कहाँ पे है वह धरा हुआ। विशालता आपकी के सम्मुख, है इस भू का अस्तित्व ही क्या?

आपसे हूं उत्पन्न हुआ, अहंकार रूप मैं स्वयं हूँ। निज त्रिगुणमय तेज से, देव, इन्द्रिय और भूत रचूँ।।
विज्ञान आश्रय श्री ब्रह्मा जी, प्रथम गुणमय स्वरूप हैं। आपके ही महतत्त्व का, ही तो वह इक रूप हैं।।
महत्तत्त्व और अहंकार, इन्द्रियाभिमानी देव सभी। इन्द्रियाँ और पंचभूतादि, और संग ही हम सब भी।।
डोरी से बन्धे पक्षी की तरह, आपके ही वशीभूत र हें आपकी कृपा शक्ति से ही, इस जगत् की रचना करे रहें।।

सत्वगुण के वश में हुआ, जीव बहुत गर यत्न करे। बन्धन में बान्धे जो माया, उसे आपकी रचना जान भी ले।।
किन्तु उससे मुक्ति का, उपाय जान नहीं पाता है। सहज में वह इस बन्धन से, मुक्त तो हो नहीं पाता है।।
जगत् की उत्पत्ति प्रलय, आपके ही तो रूप हैं। नमन मेरा स्वीकार करें, सर्वोपरि जो रूप हैं।।
शुकदेव बोले,
भद्राश्ववर्ष में हे राजन्, रहें धर्मपुत्र श्री भद्रश्रवा। उनके सेवक मुख्य जो, वे भी सब रहते हैं वहाँ।।
प्रभु वासुदेव की हयग्रीव, नामक धर्ममयी मूर्ति वे। हृदय में स्थापित हैं करते, अत्यन्त समाधि निष्ठा से।।
इस मन्त्र का जप करके, स्तुति वह इस विधि करते हैं। परम पुरुष वासुदेव की, महिमा गान वह करते हैं।।

भद्राश्रव बोले,
ओंकार स्वरूप प्रभु, चित्त को जो विशुद्ध करें। धर्म स्वरूप भगवान् को, है हमरा नमस्कार हे।।
विचित्र प्रभु की लीला है, जिसमें जीव है भरमाया। संहारक जो सब लोकों का, उस काल को नहीं यद देखता।।
तुच्छ विषय सेवन हेतु, है पाप अतीव कमा रहा। पापमय भावों की ही, उथल पुथल में लगा हुआ।।
अपने ही हाथों से अपने, पिता या पुत्र को अग्नि दे। उनके शव को दग्ध कर, जीने की खुद इच्छा करे।।

विद्वद् जन इस जगत् को, नश्वर ही बताते हैं। सूक्ष्मदर्शी आत्म ज्ञानी, अनुभव से मान यह जाते हैं।।
तो भी हे अजन्मा प्रभु, मोहित आपकी माया करे। आश्चर्यमयी कृति आपकी, कोई जीव न समझ सके।।
हे अनादि अनन्त हरि, नमस्कार करूँ आपको। आपके श्री चरणों में, मेरा नमन स्वीकार हो।।

अकर्ता है प्रभु आप तो, माया आवरण से दूर रहें। फिर भी उत्पत्ति स्थिति प्रलय, हैं आपके कर्म ही माने गए।।
इसमें भी हे परमात्मन्, आश्चर्य नहीं है किंचित् भी। सब कार्यों के कारण क्योंकि, सर्वात्म रूप हैं आप ही।।
अपने शुद्ध स्वरूप में, हैं आप इन दोनों से परे। कार्य अथवा कारण भी, नहीं आपको कोई छू सके।।

विग्रह आपका अश्व और, है मनुष्य का ही संगम। प्रलय काल में वेदों को, ले गए चुरा जब दैत्यगण।।
तब ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर, आप रूप यह धर आये। इस रूप में ही रसातल से, बाहर उनको ले आये।।
ऐसे अमोघ लीला धर की, स्तुति मैं किस विध कर सकूँ? सत्यसंकल्पी आपके, चरणों में मैं नमन करूँ।।

भगवान् के नृसिंह रूप का, आराधन करें महाभागवत। प्रह्लाद तथा उस लोक के, अन्य जन भी हैं जो सब।।

निष्काम अनन्य भक्ति से, उपासना उनकी करते हैं। महापुरुषों के गुण सभी, प्रह्लाद की सेवा करते हैं।।
दैत्य और दानवों के, कुल को पवित्र है कर दिया। ऐसा शील आचरण और, उज्ज्वल उनका चरित्र था।।
वह इस स्तोत्र और मन्त्र का, पाठ नित्य ही करते हैं। इसके राही निज इष्ट की, उपासना नित्य वह करते हैं।।

है नमस्कार नृसिंह देव, ओंकार स्वरूप प्रभु। अग्नि आदि तेजों भी, हैं महातेज ही आप प्रभु।।
नमस्कार है आपके, श्री चरणों में हे प्रभु। वे वज्रदन्त और वज्रनख, निकट प्रकट हों आप प्रभु।।
हमारी कर्म वासना को, हे प्रभु आप ही दग्ध करें। अज्ञान रूप अन्धकार को, प्रभु आप ही नष्ट करें।।
ॐ स्वाहा कहें देव, आन्तर में हमारे प्रकट हों। अभय दान देते हुए, अब प्रकाशित आप हों।।

विश्व का हो कल्याण नाथ, दुष्टों की बुद्धि शुद्ध हो। सब प्राणियों में बनी, सद्भावना परस्पर हो।।
एक दूजे के हित का, सदा ही चिन्तन सब करें। मन सबका हे प्रभु मेरे, शुभ मार्ग में प्रवृत्त रहे।।
हम सबकी बुद्धि भी देव, निष्काम भाव में सदा रहे। इतनी ही याचना करें प्रभु, श्री हरि में ही प्रवेश करें।।

गृह सुत दारा और धन में, आसक्ति न हो बन्धुजन में। यदि कोई आसक्ति रहे तो हो, बस आपके प्रेमी भक्तों में।।
संयमी जीव जो तन के ही, निर्वाह को अन्न पा तुष्ट रहे। शीघ्र ही वह नर सिद्धि को, भगवद् कृपा से प्राप्त करे।।
इन्द्रिय लोलुप पुरुष की, सिद्धि शीघ्र नहीं होती है। उसकी तो इन्द्रियाँ और मन, विषयानुरक्त ही रहती है।।

भगवद्भक्तों के संग से, प्रभु के चरित हम सुन पायें। तीर्थ तुल्य यह पावनकर, पवित्र हमें भी कर जायें।।
उनकी शक्ति और प्रभाव, की वह चरित बताते हैं। बार बार सेवन जो करे, प्रवेश प्रभु हृदय पाते हैं।।
कानों की राह प्रवेश पा, प्रभु हृदय जा स्थित हों। सभी प्रकार के दैहिक और, मानसिक मल वह दे धो।।
फिर कौन जीव ऐसा होगा, जो संग न चाहे भक्तों का? परम पावनी प्रभु चरण, के तीव्र अनुरक्तों का?

जिसके हृदय में श्री हरि की, भक्ति रहे निष्काम सदा। धर्म ज्ञान संग देवता सब, सद्गुण का वहाँ वास बना।।
जो है प्रभु का भक्त नहीं, वहां सद्गुण कैसे आयेंगे? भान्ति भान्ति के संकल्प, ही उसको तड़पायेंगे।।
निरन्तर ही बाह्य विषय, की ओर वह दौड़ता है। तुच्छ भोगों की प्राप्ति में, नर जीवन व्यर्थ वह खोता है।।

ज्यों मछली को जल अति प्रिय, वा जीवन का आधार है। श्री हरि ही त्यों सबमें बसें, सबके प्रियतम वा आत्म हैं।।
यदि कोई अभिमानी जीव, उन्हें विस्मृत करके जिए। निज घर ुल की आसक्ति में, ही जीवन अपना दे दे।।
वह तो बस आयुमात्र से ही, ज्येष्ठ माना जायेगा। गुण दृष्टि से स्त्री पुरुष, ऐसा कोई मान क्या पायेगा?

अत: अनुरगण तुम्हें कहूँ, सम्मति मेरी मान लो। तुष्णा राग विषाद क्रोध, अभिमान इच्छा का त्याग करो।।
भय दीनता मानसिक, सन्ताप का है मूल जो। जन्म मरण के भव चक्र, को चलाने वाला जो।।
उस गृह आदि को छोड़कर, प्रभु चरण का आसरा लो। अभय दानी प्रभु नृसिंह के, चरण कमल अब तुम भजो।।

केतुमाल वर्ष की अब, बात सुनो हम तुम्हें कहें। लक्ष्मी जी का वास वहाँ, सम्पन्न सदा वह वर्ष रहे।।
संवत्सर नामक प्रजापति, की सन्तान के प्रियकर जो। कामदेव के रूप में, प्रभु का वहाँ निवास हो।
रात्रि के अभिमानी देव, हैं कन्यायें ही वहाँ। और दिवस अभिमानी रूप, है पुत्रों का वास वहां।।

मनुष्य की सौ वर्ष की, आयु के दिन रात जो। उनके अनुसार ही कहें, छत्तीस सहस्त्र वर्ष हो।।
वे ही पुरुष उस वर्ष के, जान लो हैं अधिपति। कन्यायें वहाँ की चक्र के, तेज से हैं बहुत डर जाती।।
इस कारण उन कन्याओं का, गर्भ ठहर नहीं पाता है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में, उनका गर्भ नष्ट हो जाता है।।

अति सुन्दर है उनकी चाल, मधुर मधुर है मुसकान। मनहर लीलामयी चितवन्, है उठी भ्रुवों की छटा महान्।।
करबद्ध हुए प्रभु राशि राशि, निज सौन्दर्य बिखेर रहे। सौन्दर्य देवी श्री लक्ष्मी को, वह हैं आनन्दित कर रहे।।
स्वयं भी अपनी छटा से वह, आनन्दित होते रहते हैं। केतुमाल वर्ष में उनके, रूप माधुर्य ही ऐसे हैं।।

महामायामय उस रूप की, लक्ष्मी करें आराधना। निज समाधि योग से, प्रभु की वह करें उपासना।।
रात्रि के समय संवत्सर की, कन्यायें उनके साथ रहें। दिवस में उनके पति सभी, आराधन में उनका साथ दें।।
इस मन्त्र का जाप वह करती हुई, स्तुति प्रभु की गाती हैं। निज प्रियतम को यह मन्त्र कही, लक्ष्मी जी रिझाती हैं।।

सब इन्द्रियों के नियमन कर्ता, श्रेष्ठ वस्तु सब ही हैं आप। क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति, संकल्प शक्ति भी बने आप।।
चित्त के सारे धर्मों के, और विषयों के अधीश्वर हैं। ग्यारह इन्द्रियां और पांच विषय, इन सोलह कला सम्पन्न हैं।।
जिनको प्राप्त करने की है, विधि एक वेदोक्त कर्म। हैं अन्नमय अमृतमय, वह तो सर्वमय हैं स्वयं।।
मनो इन्द्रिय तनोबल स्वरूप, सौन्दर्य मूर्ति हैं कामदेव। ऊँ ह्रीं ह्रीं ह्रूं हैं बीजमन्त्र, सब ओर से करूं मैं नमन देव।।

हे प्रभु सर्व इन्द्रियों के, हैं अधीश्वर आप ही। कठोर व्रतों से स्त्रियां, करें आराधना आपकी।।
अन्य लौकिक पतियों की, वह हृदय में इच्छा करती हैं। किन्तु परतंत्र है वह सब ही, जिनकी वह इच्छा करती हैं।।
प्रिय पुत्र धन आयु की, रक्षा नहीं वह कर सकते। जो स्वयं अधीन हैं सेवकवत्, वह किसी की रक्षा क्या करें?

सच्चा पति वह हो सके, जो स्वयं सर्वदा निर्भय हो। उसके संरक्षण में कोई, भयभीत कहीं भी कभी न हो।।
ऐसे पति तो एकमात्र, प्रभु आप ही हो सकें। यदि ईश्वर भी अनेक हों, इक दूजे से भयभीत रहें।।
अपनी प्राप्ति से बढ़कर, नहीं अन्य लाभ कोई मानें आप। कोई दूजा आप समान न हो, हैं एक अद्वितीय तत्त्व आप।।

जो भी स्त्री हे प्रभु, आपके चरण कमल चाहे। कोई अन्य वस्तु कभी, उसका मन न लुभा पाये।।
सभी कामनायें उसकी, पूर्ण स्वत: हो जाती हैं। किन्तु किसी एक कामना से, जो स्त्री आपको ध्याती है।।
केवल वही वस्तु दें उसको, जो काल से नष्ट हो जाती है। भोग समाप्त हो जाने पर, सन्ताप ही उसके घर आता है।।

इन्द्रिय सुख के अभिलाषी जो, ब्रह्मा और इन्द्र भी चाहें मुझे। सब सुर असुर मेरे लिये, घोर तपस्या में लगे।।
किन्तु आपके श्री चरण, ही हैं आश्रय जिन भक्तों का। उनके सिवा दूजा कोई, कभी नहीं मुझे पा सकता।।
क्योंकि मेरा मन तो सदा, आपमें ही है लगा रहता। आपके श्री चरणों से मुझे, अलग नहीं कोई कर सकता।।

हे अच्युत निज वन्दनीय, कर कमल धरें भक्तों के सीस। कृपा करी उनको प्रभु, धरें आप मेरे भी सीस।।
हे वरेण्यम् आप मुझे, बस चिन्ह बना धरे वक्ष:स्थल। आप तो सर्वसामर्थ हैं, कौन जाने आपकी माया छल?
निज माया से हे प्रभु, लीला आप जो करते हैं। कोई जान न सके रहस्य उसका, क्रीड़ा आप जो करते हैं।।
पूर्वकाल ममें सम्यक् वर्ष में, उनके अधिपति मनु के लिये। प्रभु ने पर प्रिय अपने, मत्स्य रूप के दरस दिये।।

श्री मनु इस काल में भी, करें भक्तियुक्त उपासना। प्रभु के मत्स्य रूप की, इस मन्त्र से करें आराधना।।
सत्त्व प्रधान मुख्य प्राण, सूत्रात्मा तथा मनोबल। इनके साथ है जो हमपे, इन्द्रिय बल और तनोबल।।
है ओंकार का रहस्य जो, श्रेष्ठतम भगवान् नमन। है मत्स्य रूप भगवान् को, बार बार मेरा नमन।।

हे प्रभु नट जिस विधि, नाच नचाये पुतली को। उसी विधि इस विश्व की भी, डोरी आपके हाथ ही हो।।
प्रेरक हैं आप ही सबके प्रभु, पर अदृश्य हैं सबके लिये। ब्रह्मा आदि सब लोकपाल, भी नहीं आपके देख सकें।।
समस्त प्राणियों के भीतर, प्राण रूप से आप रहें। और बाह्य वायु रूप में, निरन्तर ही संचार करें।।
हे भगवान यह वेद ही, शब्द महान् है आपका। इस शब्द के राही ही, नियमन् विश्व का हो रहा।।

इन्द्रियाभिमानी देवों की, जब प्राण रूप से डाह उठी। तब आपने यह शरीर, इक पल में ही छोड़ दी।।
मनुष्य पशु स्थावर जंगल, जितने भी यह तन दीखें। सब देव मिली बहुत यत्न से, उनकी रक्षा कर न सके।।

समस्त औषधि और लताओं, का आश्रय है जो पृथ्वी। उसको ले संग विशाल तरंगी, प्रलयकालीन है जो जलधि।।
हे अनादि प्रभु तब भी, मुझे संग में लेकर के। अति उत्साह से उसमें ही, आपने थे विहार किये।।
विश्व प्राण समुदाय के, नियन्ता आप हैं हे प्रभु। नमस्कार तव चरणों में, है बार बार मेरा प्रभु।।

हिरण्मयवर्ष में प्रभु, कच्छप रूप में रहते हैं। पितृराज अर्यमा वहां, प्रजा संग उपसना करते हैं।।
वही प्रियतम मूर्ति है, श्री हरि की उस लोक में। निरन्तर ही इस मन्त्र से, वे स्तुति प्रभु की करते रहें।।
सम्पूर्ण सत्त्वगुण से, परिपूर्ण हैं जो स्वयं। नहीं निश्चय जिनके स्थान का, जल में है जिनका विचरण।।
काल की मर्यादा से, जो सर्वथा परे रहें। सर्वव्यापक सर्वाधार, कच्छप रूप हैं जो धरें।।
उन ओंकार स्वरूप को, नमस्कार है बार बार। उनके श्री चरणों में ही, नमन मेरा होवे स्वीकार।।

हे प्रभु अनेकों रूपों में, प्रतीत जो है हो रहा। है मिथ्या ही वास्तव में, यह प्रपंच जो दीख रहा।।
वास्तव में तो हे प्रभु, है इसकी सत्ता कोई नहीं। माया से प्रकाशित यह, है फिर भी आपका रूप ही।।
अनिर्वचनीय ऐसा स्वरूप, हे प्रभु जो अपरम्पार। नमस्कार मेरा प्रभु, नमस्कार है बार बार।।

आप ही तो हैं एकमात्र, भिन्न भिन्न जो रूप धरें। जरायुज स्वेदत और अण्डज, उद्भिज्ज स्थावर जंगल बनें।।
देवर्षि और पितृगण, भूत इन्द्रिय स्वर्ग आकाश। पृथ्वी पर्वत नदी समुद्र, द्वीप ग्रह और तारा आप।।

असंख्य नाम रूप आकूति, हे प्रभु हैं आपकी। कपिलादि विद्वानों ने, चौबीस तत्त्व जो है कही।।
जिस तत्त्व दृष्टि के आने पर, सब ही निवृत्त हो जाते हैं। वस्तुत: वह स्वरूप भी, आपका ही प्रभु पाते हैं।।
ऐसे सांख्य सिद्धान्त रूप, आपको है मेरा नमन हे। नमस्कार चरणों में ही, स्वीकार हो प्रभु आपके।।

उत्तर कुरुवर्ष में यज्ञ पुरुष, वराह मूर्ति धारण करें। उस क्षेत्र में इसी रूप में, प्रभु विराजमान रहें।।
साक्षात् पृथ्वी देवी वहाँ, अपने निवासिन के सहित। अविचल भक्ति भाव से, उपासना में वह रहती रत।।
इस परमोत्कृष्ट मन्त्र का, जाप वह करती रहती हैं। साक्षात् पृथ्वी स्वयं, स्तुति निमग्न ही रहती है।।

यज्ञ और क्रतु: दोनों रूप, जो स्वयं ही आप हैं। अंग हैं जिनके महा यज्ञ, जो तत्त्व मन्त्रों से ज्ञात हैं।।

ओंकार स्वरूप उज्ज्वल कर्मी, त्रियुग मूर्ति भगवान आप। पुरुषोत्तम उन वराह को, बार बार मेरा नमस्कार।।

ज्यों ऋत्विज जन अरणि में निहित, अग्नि को हैं प्रकट करें। काष्ठ खण्ड में छिपी हुई, अग्नि का वे मन्थन करें।।
उसी विधि कर्म की आसक्ति, और कर्मफल की कामना में। छिपा हुआ है जिनका रूप, उनके दर्शन की इच्छा से।।
विवेक युक्त है जीव जो, मनो रूप काष्ठ के मन्थन से। तन और इन्द्रियादि का, जो पण्डित जन मन्थन करें।।
इस मन्थन के राही जो, निज स्वरूप को प्रकट करें। श्री चरणों में उन प्रभु के, नमस्कार मेरा होवे।।

यम नियम आदि सभी, योग के भिन्न साधनों से। विचार के द्वारा जिनकी, बुद्धि निश्चयात्मिका बने।।
वे महापुरुष विषय और, इन्द्रियों के व्यपार से। इन्द्रिय अधिष्ठाता देवों से, और उनके अयन इस तन से।।
ईश काल कर्ता आदि, माया कार्यों को देख कर। जिनके वास्तविक स्वरूप का, निर्णय वह लेते हैं कर।।
ऐसी मायिक आकृतियों से, रहित ही हैं जो स्वयं प्रभु। आपके श्री चरणों में ही, हो नमस्कार मेरा प्रभु।।

ज्यों लोहा जड़ होकर भी, जब चुम्बक के निकट आये। चलता फिरता सा दिखे वह, स्पन्दन सा उसमें हो जाये।।
उसी विधि उस सर्वसाक्षी की, इच्छा जो सर्व हित की। प्रकृति निज गुणों से, उत्पत्ति स्थिति प्रलय करती।।
ऐसे सम्पूर्ण गुणों और, कर्मों के साक्षी आप जो। आपके ही श्री चरणों में, प्रभु मेरा नमस्कार हो।।

जगत् के कारण भूत आप, आप ही आदि सूकर हैं। प्रलय सिन्धु में लुप्त हुई, धरा के आप ही रक्षक हैं।।
एक हाथी जैसे किसी, दूजे हाथी को पछाड़ दे। उसी विधि गजराज के, समान ही क्रीड़ा करते हुए।।
हिरण्याक्ष दैत्य को युद्ध में, कर दिया दलित प्रभु आपने। दाढ़ों की नोक पे अपनी धर, बाहर था निकाला प्रभु मुझे।।
हे सर्वशक्तिमान् प्रभु, चरणों में करूँ मैं नमस्कार। आपके ही श्री चरणों में, है नमन मेरा प्रभु बार बार।।
शुकदेव बोले,
किम्पुरुष वर्ष में हे राजन्, श्री लक्ष्मण के भ्राता अग्रज। सीता प्रियतम श्री राम के, चरण कमल के अविचल भक्त।।
परम भागवत हनुमान रहें, अन्य किन्नरों के सहित। निरन्तर भक्ति भाव से, रहें राम उपासना में वह रत।।
अन्य गन्धर्वों सहित वहाँ, आर्ष्टिषेण गुण गाथा कहें। उनके स्वामी प्रभु राम की, पुण्यमयी वह कथा कहें।।
बहुत प्रेम से हनुमत सुने उसे, और स्वयं भी मन्त्र का जाप करें। मन्त्र जाप करते हुए, वह इस विधि प्रभु की स्तुति करें।।

ओंकार स्वरूप पावन कीर्ति, प्रभफ राम को हम करें नमन। आचरण शील है आपका, सत्पुरुषों के हैं सब लक्षण।
संयतचित्त हैं आप प्रभु, लोकाराधन में तत्पर। हैं आप कसौटी साधुता की, और हैं आप ब्राह्मण भक्त।।
अस महापुरुष श्री राम को, पुन: पुन: प्रणाम है। महाराज राम के चरणों में, हम दासों का विश्राम है।।

विशुद्ध बोध स्वरूप प्रभु, हैं अद्वितीय आप स्वयं। निज स्वरूप प्रकाश से, बनें गुणों के कार्य रूप स्वयं।।
जाग्रतादि सम्पूर्ण ही, अवस्था आपमें लीन हो। सर्वान्तर आत्म बन के प्रभु, आप ही जन जन में बसो।।
शुद्ध बुद्धि के द्वारा ही, हे प्रभु आपको जान सकें। हैं आप नितान्त अहं शून्य, नाम रूप से परे रहें।।
हे प्रभु आपका दास मैं, आप की ही शरण हूँ। आप ही के चरण में, बार बार मैं नमन करूँ।।

मनुज अवतार यह आपका, केवल राक्षस वह हेतु नहीं। मुख्य उद्देश्य अवतार का, है जीवों को शिक्षा देनी।।

अन्यथा निज स्वरूप में ही, रमण नित्य रे जिनका हो। जगदात्मा जगदीश्वर आप, सीता वियोग में दु:खी क्यों हो?
धीर पुरुष के आत्म रूप, और प्रियतम वासुदेव हैं। त्रिलोकी की हर वस्तु से, आसक्ति रहित हे देव है।।
श्री सीता जी के मोह में, नहीं आप प्रभु फंस सकें। न ही श्री लक्ष्मण का भी, परित्याग प्रभु कर सकें।।

यह व्यापार प्रभु आपके, हैं केवल शिक्षण मात्र ही। उत्तम कुल जन्म या सुन्दरता, वाक्चातुरी या बुद्धि।।
या फिर अति श्रेष्ठ योनि, प्रसन्न न आपको कर सके। यह सब दर्शाने के ही लिये, प्रमाण आप जीवन में दें।।
सर्वगुण हीन वन के वासी, वानरगण से मित्रता की। अपनी उदारता की प्रभु, प्रमाण आपने इस विधि दी।।

देव असुर वानर या मनुज, है सबका कर्त्तव्य यही। सब प्रकार से करे भजन, भगवान प्रभु श्री राम की ही।।
नर रूप में आप प्रभु, नारायण हैं प्रकट हुए। थोड़े किये को भी प्रभु, बहुत हैं करके मानते।।
शरणागत वत्सल हैं प्रभु, जब दिव्य धाम को पधारे थे। सब उत्तरकोसल वासियों को, भी अपने साथ थे ले गये।।

भारत वर्ष में भी प्रभु, नर नारायण का रूप धर। प्रकट आप ही हों प्रभु, संयमी जन पर अनुग्रह कर।।
कल्प अन्त तक आप प्रभु, रहें सदा तपस्या रत। धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य, शान्ति उपरति की वृद्धि कर।।
अन्त में आत्म स्वरूप की, उपलब्धि भी हो पाये। ऐसी तपश्चर्या का, प्रसाद जीव फिर ही पाये।।

देवर्षि नारद स्वयं, प्रभु कथित सांख्य और योग सहित। पांचरात्र दर्शन उपदेश, करें मुनि सावर्णि हित।।
यह शास्त्र भागवत महिमा, को प्रकट ही करता है। प्रभु का कीर्ति गान कर, यह चित्त सबका हरता है।।
भारत वर्ष की वर्णाश्रम, धर्मावलम्बिनी प्रजा सहित। अत्यन्त भक्ति भाव से, वे प्रभु की महिमा में है रत।।
श्री नर और नारायण की, उपासना सब मिल करते हैं। इस मन्त्र का जप और स्तोत्र का, गायन वे सब करते हैं।।

निरहंकार श्री ओंकार, हैं निर्धन का धन रूप आप। शान्त स्वभाव ऋषिश्रेष्ठ, नर नारायण को मेरा नमस्कार।।
परम गुरु हैं आप प्रभु, परम हंस नित्य मुक्तों के। अधीश्वर आत्म राम को हे, बार बार हम नमन करे।।

यह गायें वह बार बार, यह ही है उनका नाद भी। विश्व की उत्पत्ति के, हैं जो कर्ता आप ही।।
कर्तृत्व भाव अभिमान से, आप सर्वथा रहें परे। तन में आपका वास हो, पर तनो धर्म न बान्ध सकें।।
भूख प्यास इत्यादि के, वशीभूत न हों कभी। द्रष्टा होने पर भी सदा, नहीं दृष्टि दूषित होती कभी।।
असंग और विशुद्ध स्वरूप, साक्षी रूप बस आप हैं। ऐसे नर नारायण के, चरणों में मेरा प्रणाम है।।

हिरण्यगर्भ श्री ब्रह्मा ने, कही यही सफलता योग की। अन्तकाल में जीव का, चित्त लगे प्रभु के चरण में ही।।
देहाभिमान छोड़ के वह, मन भक्ति भाव में लगा पाये। गुण रहित निज प्राकृत स्वरूप, में वह चित्त टिका पाये।।
इहलौकिक और पारलौकिक, भोगों के हैं जो लोलुप जीव। दारा सुत धन के वियोग की, कल्पना से ही हों भयभीत।।
यदि विद्वान भी इसी विधि, भयग्रस्त हो इनके छूटने से। तो सारा यत्न ज्ञान हेतु, उसका श्रम मात्र ही रह जाये।।

अत: हे प्रभु आप हमें, निज भक्ति दान ही दीजिये। स्वभाविक प्रेम स्वरूप जो, वह ही प्रदान हमें कीजिये।।
आपकी माया के कारण, इस शरीर में बन्ध गए। क्षणभंगुर इस वन को ही, अपना आप हैं मान रहे।।
दुर्भेद्य अहंता ममता यह, कृपा से आपकी काट सकें। भक्ति की खड्ग लेकर, इस दृढ़ ग्रन्थी का नाश करें।।

इस भारतवर्ष में भी राजन्, हैं बहुत सी नदियां और पर्वत। मलय मलंग प्रस्थ मैनाक, त्रिकूट कूटक और ऋषभ।।
कोल्लक सह्य देवगिरि, ऋष्यमूक श्रीशैल वैंकट। वारिधर विन्ध्य शुक्तिमान्, ऋक्षगिरी परियात्र महेन्द्र।।
द्रोण चित्रकूट गोवर्धन, रैवतक कुकुभ और नील। गोकामुख कामगिरि आदि, और पर्वत्त है इन्द्रकील।।
इसी विधि अनेकों ही, शतश: सहस्त्रश: पर्वत हैं। तट प्रान्तों से इन पर्वत के, निकलें अनेक नदियां नद हैं।।
यह नदियाँ तो नाम मात्र से, पावन जीव को कर देती। इन्हीं के जल में भारत की, प्रजा स्नान सारी करती।।

मुख्य मुख्य उन नदियों के, नाम अब तुम जान लो। चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा, कृतमाला कुछ एकके नाम हों।।
वैहायसी वेणी कावेरी, पयस्विनी और शर्करावर्ता। कृष्णा वेण्या भीमरथी, गोदावरी और तुंगभद्रा।।
निर्विन्ध्या गोमती और सरयू, रधोस्वती और सरस्वती। सुषोमा शतद्रू चन्द्रभागा, मरुद वृधा और वितस्ता।।
प्रमुख नदियों के हैं यह नाम, असिक्री और जानो विश्वा। अन्ध और शोण नाम के, द्वौ नद की भी कहते हैं।।
भारतवर्ष के नद नदियों के, वैभव ही कुछ ऐसे हैं।।

इस वर्ष में जन्में जो जीव, निज गुण अनुसार जो कर्म करें। सात्विक राजसिक तामसिक, जैसे भी वा कर्म भएँ।।
उसके अनुसार नाना प्रकार की, योनि वह पा जाते हैं। दिव्य मनुष्य या नारकी, योनियों में वह आते हैं।।
कर्मानुसार सब जीवों को, सभी योनियाँ प्राप्त हों। किसी भी योनि में जीव का, कर्म से जाना सम्भव हो।।
इसी वर्ष में वर्णाश्रम, धर्म का है विधान भी। अपने वर्ण और आश्रम के, अनुकूल वर्तें जो जन ही।।
नियत धर्म का अपने जो, विधिवत् पालन करते हैं। निज धर्म आचरण राही वह जीव, मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।।

सब भूतों के आत्म जो, राग आदि दोषों से रहित। निराधार हैं जो अनिर्वचनीय, जिनको कहें प्रभु वासुदेव।।
उनमें अनन्य अहैतुकी, भक्ति ही तो है मोक्षपद। इस भक्ति भाव की प्राप्ति भी, कहें सम्भव हो विधिवत्।।
अविद्या रूप ग्रन्थी हिय की, अनेक गति जो प्रकट करे। जब हरि कृपा हो यह ग्रन्थी, जीव की तब ही खुल सके।।
प्रभु के प्रेमी भक्तों का, सत्संग तभी तो प्राप्त हो। इस नर जीवन का कहें, सर्वश्रेष्ठ फल यही तो हो।।

भारत वर्ष के लोगों की, महिमा गाएं देव भी। कहें ऐसे भाग्य के लिये, तो तरसें हैं हम सभी।।
प्रभु की सेवा योग्य जिन्होंने, भारत वर्ष में जन्म लिया। मनुष्य जन्म यह प्राप्त किया, अहो क्या पुण्य कहो उनका।।
श्री हरि ने स्वत: कृपा करी, या मुदित वह इनपर हो गए। जो ऐसे शुभ जन्म के, इनको हैं सौभाग्य दिये।।

अति कठोर तप व्रत और यज्ञ, दानादि जो कर्म किये। क्या लाभ हुआ जो इन सबसे, तुच्छ स्वर्ग अधिकार मिले?
इन्द्रिय भोग अधिकता से, यहाँ स्मरन् शक्ति भी जाती रहे। श्री नारायण के चरण की, विस्मृति यहाँ पे हो जाये।।

यह स्वर्ग तो क्या ब्रह्मलोक भी, जहां दीर्घायु हो एक कल्प। किन्तु वहाँ से लौट पुन:, जीव गिरे संसार भंवर।।
उसमें तो जाने से, अच्छा है भारत वर्ष ही। श्रेष्ठ है वहां पे ही जन्म, कम आयु के रहते भी।
यहां धीर पुरुष क्षण भर में ही, सब अर्पित प्रभु को कर सकें। मृत्यु धर्मा इस तन के कर्म, उनके ही चरण में धर सकें।।
ऐसा करके क्षण भर में ही, अभय पद वह पा सकें। जन्म मरण के चक्र से, मुक्ति सहज ही पा सकें।।

जहाँ प्रभु कथा के अमृत की, सरिता कभी बहती नहीं। उसके उद्गम साधु जन का, है जहाँ पे निवास नहीं।।

जहां नर्तन गायन सहित कभी, पूजा न हो भगवान की। श्री यज्ञपुरुष की अर्चना, सत्कार से नहीं कर जाती।।
ऐसे भोगों को क्या करना, जहां हरि प्रेम न पाइये। चाहे वह ब्रह्म लोक ही हो, नहीं सेवन करना चाहिए।।

जिन जीवों ने इस पुण्य भूमि, भारत वर्ष में जन्म लिया। ज्ञान भी है जिनको मिला, तदनुकूल कर्म भी हुआ।।
उन कर्मन् के उपयोगी, द्रव्यादि सामग्री भी पाई। मानव जीवन की सुख समिधा, भी सारी गर मिल पाई।।
फिर भी गर आवागमन के, चक्र से न उठना चाहै। तो उसकी गति और दीनता, की क्या बात कही जाये?
व्याध के फंद से छुटकर भी, उसी वृक्ष पे विहार करे। फल आदि के लोभ को, वह पक्षी न छोड़ सके।।
वनवासी पक्षी समान, वह पुन: जाल में फंस जाये। स्वर्णिम अवसर पाकर भी, नहीं उसका लाभ उठा पाये।।

कैसा अनुपम सौभाग्य है, भारत वर्ष के वासियों का। दुर्लभ अवसर है उन्हें मिला, प्रभु से प्रीति वर्धन का।।
यज्ञ में भिन्न देवों को, विभिन्न आहुति देने को। अलग ही भाग रख कर के, यह हवि प्रदान हैं करते जो।।
विधि मन्त्र द्रव्य आदि से, यह पूजा उनकी करते हैं। इन्द्र आदि भिन्न नामों से, उनका आवाहन करते हैं।।
पूर्णकाम श्री हरि स्वयं, जो सबकी कामना पूर्ण करें। प्रसन्न होकर स्वयं ही, इनकी हवि को ग्रहण करें।।

सत्य है यह सकाम जीव, जब प्रभु से प्रार्थना करते है। प्रभु से निज वांछित वस्तु, वही जीव पा जाता है।।
पर वास्तव में जानो तुम, यह तो है प्रभु का दान नहीं। कामना पूर्ति राह से, कभी जीव हो आप्तकाम नहीं।।
किन्तु जो भक्त निष्कामता से, उनके भजन में ही रहते हैं। मुदित होई हरि उनको तो, निज चरण कमल दे देते हैं।।
इन चरणों की प्राप्ति से, सब इच्छा शान्त हो जाती है। जन्म मरण के चक्र में, पुन: भ्रमण नहीं हो पाती हैं।।

जो अब तक भोगा स्वर्ग सुख, यदि पूर्वकृत कोई पुण्य बचे। यज्ञ प्रवचन या शुभ्र कर्म, कोई भी हों शेष बचे।।
उनके प्रभाव से हे प्रभु, हमें भारत वर्ष में जन्म मिले। प्रभु की स्मृति से परिपूर्ण, हमको मानव जन्म मिले।।
श्री हरि तो निज भक्त का, कल्याण सदा ही करते हैं। जो उनका ही भजन करे, उनका योगक्षेम खुद वो करते हैं।।
शुकदेव बोले,
राजा सगर के पुत्रों ने, यज्ञाश्व निज ढूंढा था। हे राजन् इस पृथ्वी को, चहुँ ओर से खोदा था।।
कुछ लोगों का कहना है, उपद्वीप आठ वहां बन गए। जम्बूद्वीप के अन्तर्गत, ही आठों यह द्वीप थे।।
स्वर्णप्रस्थ और चन्द्रशुक्ल, आवर्तन और रमणक कहा। मन्दरहरिण पांचजन्य, सिंहल और आठवां है लंका।।
हे भरतश्रेष्ठ जैसा मैंने, श्री गुरु मुख से था सुना। वैसा ही जम्बूद्वीप के, वर्षों का विभाग कहा।।
शुकदेव बोले,
परिमाण स्थिति और लक्षण के अनुसार ही हे राजन्। प्लक्षादि अन्य द्वीपों के, वर्ष विभाग का सुन वर्णन।।

ज्यों मेरु पर्वत कहा, है जम्बूद्वीप से घिरा हुआ। त्यों ही जम्बूद्वीप भी, है क्षार सिन्धु से घिरा हुआ।।
उसके ही सम परिमाण और, विस्तार है इस सागर का। जिसने जम्बूद्वीप को, चहुं ओर से है घेरा।।
फिर खाई भी कोई जैसे, बाह्य उपवन से घिरी रहे। उसी विधि सागर भी द्विगुणे, प्लक्षद्वीप से घिरा रहे।।
जम्बूद्वीप में जामनु का, जितना विस्तृत वृक्ष है। उतना ही विस्तृत यहां, स्वर्णिम प्लक्ष का वृक्ष है।।
उस कारण ही इस द्वीप का, नाम प्लक्षद्वीप हुआ। उस वृक्ष से ही इस द्वीप ने, यह नाम रे है पाया।।

हैं सम जिह्वा धारी जो, वह अग्नि देव यहां रहते। इस द्वीप के अधिपति, प्रियव्रत पुत्र इध्मजिह्व थे।।
उन्होंने ही सात वर्ष में, इसे विभक्त था कर दिया। उन वर्षों के सम नाम के, निज पुत्रों को इन्हें सौंप दिया।।
अध्यात्म योग का आसरा ले, स्वयं वह उपरत हो गए। राज काज सब त्यज कर, इध्वजिव्ह वन को गए।।

इन वर्षों के नाम हैं, शिव यवस सुभद्र शान्त। क्षेम अमृत और अभय, यही थे पुत्रों के भी नाम।।
इनमें भी प्रसिद्ध हैं, सात ही पर्वत कहें। और सात नदियों की भी, अति प्रसिद्धि यहां कहें।।

वहाँ मणिकूट वज्रकूट, इन्द्रसेन और ज्योतिष्मान्। सुपर्ण हिरण्यष्टीव मेघमाल, हैं यह सात पर्वत महान्।।
अरुणा नृम्णा अंगीरसी, सावित्री और ऋतम्भरा। सात महानदियाँ यहाँ, सुप्रभाता और सत्यम्भरा।।
हंस पतंग ऊर्ध्वायान सत्यांग, यह चार हैं वर्ण वहाँ। इस नदियों में स्नान कर, इनका रज तम हो क्षीण वहाँ।।
एक सहस्त्र वर्ष यहाँ, तन की आयु होती है। श्रान्ति श्वेद से रहित यह, देवों की भान्ति होती है।।
सन्तान उत्पत्ति भी, देवों समान ही हो यहाँ। त्रयी विद्या में वर्णित जो, स्वर्ग का द्वार है कहा गया।।
उसी सूर्य देव की, यह लोग उपासना करते हैं। सूर्य देव के चरणों में, यूँ भाव वह अपने धरते हैं।।

जो स्वयं हैं अधिष्टाता, वेद और शुभ अशुभ फल के। सत्य के और ऋत के, सबक ही फल हैं जो देते।।
पुराण पुरुष विष्णु स्वरूप, उन सूर्य देव की चरण पड़ें। सूर्य देव के चरणों में, बार बार हम नमन करें।।
प्लक्षादि पंचद्वीप की, है एक विशेषता कही। जन्म से ही वहां जीवों की, इन्द्रिय बल आयु सम रहती।।
मनो इन्द्रिय और तनोबल, भी समान ही बने रहें। बुद्धि और पराक्रम भी, समान रूप से सिद्ध रहें।।

प्लक्षद्वीप के चहुं ओर, इस सम ही विस्तृत सागर है। इक्षुरस से भरा हुआ, ही कहें यह सागर हैं।।
उससे द्विगुणा उसके आगे, परिमाण में है शाल्मली द्वीप। आकार में जो है उस समान, मदिरा सागर से घिरा द्वीप।।

प्लक्षद्वीप में अतिविशाल, है प्लक्ष का वृक्ष जो। उस समान ही शाल्मली, का यहां पे वृक्ष हो।।
निज वेदमय पंखों से, जो नित्य प्रभु की स्तुति करें। उन पक्षीराज श्री गरुड़ का, निवास स्थान यह वृक्ष कहें।।
इस कारण ही इस द्वीप का, शाल्मली है नाम पड़ा। इस वृक्ष की तो कहें, इस कारण ही है महत्ता।।

प्रियव्रत पुत्र यज्ञबाहु, थे अधिपति इस द्वीप के। उन्होंने पुन: इस द्वीप के, सात विभाग कर दिये।।
सुरोचन सौमनस्य रमणक, देववर्ष पारिभद्र नाम थे। आप्यायन और अविज्ञान, यह ही सात विभाग थे।।
इन्हीं नामों से पुत्र भी, प्रियव्रत के विख्यात थे। सातों पुत्रों को उन्होंने, सातों भाग ही सौंप दिये।।

इनमें भी हैं सात गिरि, और सात नदियाँ प्रसिद्ध। पर्वतों के नाम कहें, स्वरस वामदेव शतश्रृंग।।
कुन्द और मुकन्द हैं, पुष्पवर्ष और सहस्त्रश्रुति। इन सबकी मिलकर बने, सात की ही कहें गिनती।।
नदियां हैं वहां पावनी, अनुमति सिनिवाली सरस्वती। सातों के हैं नाम कहे, कहू राका नन्दा और रजनी।।

इस वर्ष में रहने वालों के, चतुर्वण ही है कहें। श्रुतधर वीर्यधर वसुन्धर, और इषन्धर नाम हैं ये।।
देवमय आत्म स्वरूप, प्रभु चन्द्रमा के उपासक ये। वेदमन्त्रों से उनकी यह, सदा उपासना हैं करते।।
शुक्ल और कृष्ण पक्ष में, निज रश्मि का विभाग करें। देव पितर और प्राणिन्, सबको ही वह अन्न दें।।

वह चन्द्रदेव ही हम सबके, रंजन का साधन कहें। नमन है चन्द्रदेव को, हैं वही हमारे राजा रे।।

इसी विधि मदिरा सागर के, आगे हैं कहें कुशद्वीप। परिमाण में इस सागर से, यह द्विगुणा है कहें द्वीप।।
पूर्वोक्त द्वीपों के सम, यह भी सागर से घिरा हुआ। इस सागर में कहें पुन:, घृत का है भण्डार भरा।।
प्रभु का रचा हुआ इसमें, एक कुशा का झाड़ है। उस कारण ही द्वीप यह, इस नाम से विख्यात है।।
निज कोमल शिखाओं की, कान्ति चहुँ दिश फैला रहा। ऐसा लगे जैसे दूजा, अग्निदेव ही हो खड़ा।।

इस द्वीप के अधिपति, महाराज हिरण्यरेता थे। हे राजन् प्रियव्रत के, ही एक वह पुत्र थे।।
उन्होने पुन: इस द्वीप के, सात विभाग कर दिये। और प्रत्येक पुत्र हेतु, एक एक उन्होंने भाग दिये।।
उनके पुत्रों के नाम थे, वसु वसुदान दृढ़रुचि। नाभिगुप्त स्तुत्यव्रत वामदेव, और सप्तम् थे विवक्ति।।
इन पुत्रों को सौंप सब, स्वयं वह तप को वन में गए। परम पुरुष परमेश्वर की, आराधना वह करने लगे।।

उन सबकी सीमाओं को, सात गिरि निश्चित करें। और वहां पे सात ही, पुण्यमयी सरिता बहें।।
चक्र चतु:श्रृंग और कपिल, चित्रकूट और देवनीक। हैं पर्वतों के नाम यह, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण।।
मित्रविन्दा और श्रुतविन्दा, देवगर्भा और रसकुल्या। नदियों के नाम हैं घृतच्युता, मन्त्रमाला और मधुकुल्या।।

कुशल द्वीप के वासी भी, हैं चार वर्णों में बंटे। कुशल कोविद अभियुक्त, और कुलक हैं चार ये।।
इन नदियों में स्नान कर, अर्चन पूजन वह सदा करें। अग्नि स्वरूप श्री हरि का वे, यज्ञादि से पूजन करें।।
हे अग्नदेव साक्षात् ब्रह्म को, हवि आप पहुंचाते हैं। निज यज्ञों को सफल सभी, तव सही कर पाते हैं।।
प्रभु के ही जो अंग हैं, उन देवों का यजन करें। सबका यजन ही करके प्रभु, उस परम पुरुष को ही पूजें।।

हे राजन् घृत सिन्धु के, आगे कहें है क्रौंच द्वीप। आकार में है द्विगुणा यह, घृत सिन्धु से क्रौंच द्वीप।।
ज्यों कुशाद्वीप घृत से घिरा, यह द्वीप क्षीर सिन्धु से घिरा। इस द्वीप के ही परिमाण का, विस्तार कहें उस सिन्धु का।।
क्रौंच नाम का अति विशाल, इक पर्वत है यहां बना। उसके नाम से ही तो, इस द्वीप का नाम पड़ा।।

पूर्व में स्वामी कार्तिकेय, के शस्त्र के प्रहार से। कटिप्रदेश और लताकुंज, क्षत विक्षत थे सब हुए।।
किन्तु क्षीर समुद्र से, जब इनको पुन: सींचा गया। वरुण देव से सुरक्षित हो, निर्भय पुन: यह हो गया।।

इस द्वीप के अधिपति, प्रियव्रत सुत धृतपुष्ट थे। महाराज धृतपृष्ट भी, पिता समान ही ज्ञानी थे।।
उन्होंने भी इस द्वीप को, सात विभाग में बांट दिया। अपने सातों पुत्रों को, उत्तराधिकार इनका दिया।।
उनके ही नामों से, इन द्वीपों के नाम हुए। पुत्रों को यह द्वीप सौंप, स्वयं प्रभु खोजन वह चले।।
सब जीवों के आत्म रूप, परम मंगलमय कीर्तिवान्। श्री हरि के चरण कमल की, शरण में ही पाया विश्राम।।

महाराज धृतपृष्ट के, थे कहें पुन: सात पुत्र। आम मधुरूह मेघपृष्ट, सुधामा और भ्रजिष्ट।।
लोहितार्ण और वनस्पति, यह ही इनके नाम थे। थीं सात नदी उन वर्षों में, और सप्त ही वर्ष पर्वत थे।।
शुक्ल भोजन नन्द नन्दन, उपबर्हिन और वर्धमान। और सर्वतोभद्र ही, सप्त गिरि के हैं यह नाम।।
अभया अमृतौघा आर्यका, तीर्थवती वृत्तिरूप नदी। शुक्ला और पवित्रवती, यह सात नाम की हैं नदी।।

चार वर्ण में ही बंटे, वहाँ के भी हैं लोग कहें। पुरुष ऋषभ द्रविण और, देवक चतुर्वण हैं ये।।
इन नदियों के निर्मल पवित्र, जल का वह सेवन करते हैं। अंजलि में जल लेकर यह, जल देव उपासना करते हैं।।

हे अपो देव परमात्मा से, ही प्राप्त किये सामर्थ्य हो। भू: भुव: स्व: तीनों ही, लोकों को पावन आप करो।।
स्वरूप से ही पापों के, हर्ता हैं जलदेव आप। पावन स्पर्श से ही अपने, सब पापों का करें नाश।।
अपने तन से आपका, हे देव स्पर्श हम भी करें। अंग अंग इस तन का देव, आप ही अब पावन करें।।

इसी विधि क्षीर सिन्धु के, आगे की अब बात कहें। बत्तीस लाख योजन विस्तृत, शाकद्वीप है वहाँ कहें।।
निज समान परिमाण के ही, सागर से वह घिरा हुआ। उस सागर के अन्दर है, मट्ठा दही का भरा हुआ।।
शाक नाम का अति विशाल, है वृक्ष एक इस क्षेत्र में। इस कारण ही शाकद्वीप, इस द्वीप का नाम पड़े।।
अति मधुर सुगन्ध उसकी, चहुँ दिक् फैली रहती है। इस सुरभि से शाकद्वीप, हर पर ही महकती रहती है।।

मेधातिथि राजा उसके, प्रियव्रत के ही पुत्र थे। उन्होंने भी निज द्वीप के, सप्त वर्ष में विभाग किये।।
उन समान गुणों वाले, सात पुत्र थे उनके भी। अधिपति रूप में पुत्रों को, इक इक क्षेत्र राजा ने दी।।
पुरोजव मनोजव धूम्रानीक, चित्ररेफ और पवमान। बहुरूप और विश्वाधार, यह थे उन सातों के नाम।।
इनको सौंप के राज्य वह, अनन्त में हुए दत्तचित्त। तपोवन को वह चले गए, एकाग्र कर के अपना चित्त।।

इन वर्षों में भी कहें, सात हैं मर्यादा गिरि। और यहां पे भी बहतीं, हैं सात ही महानदी।।
ईशान ऊरुश्रृंग बलभद्र, शतकेसर और सहस्त्रस्त्रोत। देवपाल और महानत्म, हैं यहां के पर्वत सप्त।।
अब नदियों के नाम कहें, हैं अनघा आयुर्दा उभयस्पृष्टि। अपराजिता और पंचपदी, सहस्त्रस्त्रुति और निजधृति।।

वहां के जीवों के भी, कहें हैं चार ही वर्ण। ऋतव्रत और सत्यव्रत, दानव्रत अनुव्रत हैं यह वर्ण।।
प्राणायाम द्वारा यह सब, रज तम अपना क्षीण करें। समाधिस्थ हो यह वायु रूप में, हरि को पुन: आराधा करें।।
प्राणादि निज ध्वजा को ले, प्रवेश करें सब प्राणिन् में। इन प्राणों द्वारा ही आप, सब प्राणिन को हैं पाल रहे।।
दृश्य जगत् यह सम्पूर्ण, ही जिनके अधीन रहे। साक्षात् प्रभु वायु ही, अब हमारी रक्षा करें।।

मट्ठे के सागर के आगे, चहुँ ओर है उसके पुष्कर द्वीप। द्विगुणा है उसका आकार, सागर से घिरा सब ओर वह द्वीप।।
इस सागर में है भरा, अमृत समान ही मीठा जल। आकार है द्वीप समान ही, जिसको घेरे यह मीठा जल।।
अग्नि शिखा के समान ही, है जो अति देदीप्यमान्। लाखों स्वर्ण पंखुड़ियों का, बना है पुष्कर वहाँ महान्।।
उस कमल को ही प्रजापति, ब्रह्मा का आसन कहें। उसके नाम से ही यह द्वीप, भी पुष्कर ही कहलाये।।

उस द्वीप के मध्य में, मानसोत्तर नाम का पर्वत है। पूर्वी पश्चिमी भाग की, मर्यादा करे वह निश्चित हैं।।
दस हजार योजन की, ऊंचाई है उस पर्वत की। इतनी ही उस पर्वत की, लम्बाई भी है कही गई।।
इसके ऊपर चहुं दिशा में, बन कहें चारों पुरियाँ। इन्द्रादि लोकपालन् की, कहें जिन्हें चारों पुरियाँ।।
मेरु पर्वत की परिक्रमा, चहुं ओर करे सूर्य रथ। संवत्सर पहिया उसका, दिन रैन देवों का गणना कर।।
उत्तरायण और दक्षिणायन, के क्रम से घूमा करे। उस पहिये वत् काल की, गति सदा चलती रहे।।

उस द्वीप का अधिपति था, प्रियव्रत पुत्र वीतिहोत्र। रमणक और धातकि, यह दोनों थे उसके पुत्र।।
दोनों वर्षों का अधिपति, इन दोनों को बना दिया। स्वयं निज अग्रजों का, उसने भी अनुसरण किया।।
वह भी भगवत्सेवा में, ही तत्पर रहने लगा। इस विधि उसने भी, जन्म सफल अपना किया।।

उस लोक के निवासी जन, पूजे हरि ब्रह्मा रूप में। ब्राह्म सालोक्यादि की, प्राप्ति करें उन कर्मों से।।
इस विधि श्री ब्रह्मा की, वह उपासना करते हैं। उनकी आराधना करते हुए, स्तुति गान वह करते हैं।।
साक्षात् कर्मफल रूप आप, परमेश्वर में पूर्णतय: स्थित। जिनकी लोग पूजा करें, ब्राह्मज्ञान के जो हैं साधन रूप।।
अद्वितीय परम शान्त स्वरूप, श्री ब्रह्मा को मेरा नमस्कार। ब्रह्ममूर्ति भगवान को, मेरा नमस्कार अब हो स्वीकार।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् इसके आगे, लोकालोक पर्वत हैं कहें। पृथ्वची के चहुं ओर से, सूर्यादि जो प्रकाश करें।।
उससे जो प्रदेश वहाँ, उज्ज्वल और अन्धियारे रहें। उन दोनों के बीच में, विभाग यह पर्वत ही करे।।

मेरु पर्वत से मानसोत्तर, पर्वत तक जितना अन्तर। उतनी ही भूमि शुद्धोदक, सिन्धु से है दूजे छोर तक।।
स्वर्णिम भूमि उससे आगे, है स्वच्छ दर्पण समान। एक बार गिरे जो वस्तु, नहीं उसका पायें नामोनिशान।।
वहाँ पे देवों के अतिरिक्त, कोई अन्य प्राणी नहीं रहे। ऐसे ही उस स्वर्णमयी, भूमि के हैं कौतुक कहें।।
सूर्यादि से प्रकाशित और, अन्धमय भागों के मध्य रहे। इस कारण नाम इसका, लोकालोक पर्वत पड़े।।

त्रिलोकी के बाहर इसे, सीमा रूप में स्थित किया। श्री परमात्मा ने इसे, चहुं ओर स्थापित किया।।
यह पर्वत इतना ऊंचा, और यह है लम्बा कहें। एक ओर से तीनों लोकों, को प्रकाशित जो करे।।
सूर्य से ध्रुव पर्यन्त हैं, जितने भी ज्योतिर्मण्डल। उनकी किरणें इन्हें पार करी, नहीं जा पायें किसी लोक तक।।

प्रमाण लक्षण और स्थिति, अनुसार कहा विद्वानों ने। सम्पूर्ण लोकों के ही, इतने विस्तार किये उन्होंने।।
इस समस्त भूगोल का, परिमाण पचास कोटि योजन। इसका एक चौथाई भाग, है कहें लोकालोक पर्वत।।
इसके ऊपर चारों दिशाओं में, सरी सृष्टि के जो गुरु। स्वयंभू श्री ब्रह्मा ने, सब लोकों की स्थिति हेतु।।
चार महा गजराज ही, नियुक्त हैं यहाँ कर दिये। ऋषभ पुष्करचूड वामन, अपराजित ही नाम कहें।।

अपने इन दिग्गज्जों की, और अंश रूप इन्द्रादि की। शक्ति और वृद्धि हेतु, और कल्याण हित लोकों की।।
परम ऐश्वर्य के अधिपति, सर्वान्तर्यामी श्री हरि। विष्वक्सेन आदि सेवकों संग, हैं इस गिरि पे विराजित ही।
धर्म ज्ञान वैराग्यादि, अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न। अपने विशुद्ध इस विग्रह को, किये हुए हैं वह धारण।।
श्री प्रभु के कर कमलों में, उनके श्री चिह्न सुशोभित हैं। शंख चक्र पद्मादि, और आयुध से वह सुशोभित हैं।।

निज योगमाया से रचे, विविध हैं उनके लोक यह। उन सबकी व्यवस्था को, सुरक्षित रखने के लिये।।
इन रूपों में प्रभु वहाँ, सब ओर से स्थापित रहते हैं। अपने लीलामय रूपों में, वह कल्प अन्त तक रहते हैं।।
लोकालोक के भीतर भी, भूभाग का जितना है विस्तार। उसीसे उसके दूजी ओर, अलोक देश परिमाण जान।।
उससे आगे की गणना, तो नहीं कभी हो सकती। योगेश्वर जन की ही गति, उससे परे है हो सकती।।

स्वर्ग और पृथ्वी के बीच, ब्रह्माण्ड का केन्द्र है जो राजन्। वहां पे ही तुम सूर्य की, स्थिति जान लो हे राजन्।।
सूर्य और ब्रह्माण्ड गोलक, के बीच का जो अन्तर कहें। सब ओर से पच्चीस करोड़, योजन उसको जान ले।।
सूर्य इस मृत अण्ड में, वैराज रूप से विराज रहे। इसीसे इनका एक नाम, मार्तण्ड भी है कहें।।
हिरण्मय ब्राह्मण से, सूर्य देव यह प्रकट हों। इसीसे इनका नाम कहें, हिरण्यगर्भ भी प्रचलित हो।।

दिशा आकाश द्यूलोक, भूलोक स्वर्ग और मोक्षदेश। नरक और रसातल भी, अन्य भी जो सारे प्रदेश।।
इन सबका विभाग कहें, सूर्य के द्वारा होता है। सब भागों का ही विभाग, सूर्य देव ही करता है।।
तिर्यक् मनुष्य सरीसृप लता, वृक्षादि जीव समूह जो। इनके आत्मा नेत्रेन्द्रिय के, अधिष्ठाता सूर्य देव ही हों।।
शुकदेव बोले,
परिमाण और लक्षण सहित, भूमण्डल का है यह विस्तार। हे राजन् उनका वृत्तान्त, है कहा तुमसे सविस्तार।।
इसी समान विद्वान जन, द्युलोक का भी परिमाण कहें। ज्यों चना या मटर में, इक का स्वरूप भी जान लें।।
उसीकी उपमा ले कर, दूजे को भी जान सकें। ज्यों ही भूलोक से, द्युलोक परिमाण भी जान सकें।।
इन दोनों लोकों के मध्य, अन्तरिक्ष लोक ही स्थित रहे। अन्तरिक्ष लोक को, इन द्वौ का सन्धि स्थान कहें।।

इसके मध्य में स्थित हैं, ग्रह और नक्षत्रों के स्वामी। सूर्य ताप प्रकाश से निज, त्रैलोक करें प्रकाशित भी।।
उत्तरायण दक्षिणायन् विषुवत्, तीन हैं यह गति उनकी। मन्द तीव्र और समान, क्रमश: यह ही गति उनकी।।
समयानुसार इन गतियन् से, मकरादि राशि में जाते हैं। ऊंचे नीचे समान स्थान पे, निज प्रकाश पहुंचाते हैं।।
इसके अनुसार ही दिन रात, छोटा बड़ा या समान करें। इन गति से सूर्यदेव, निरन्तर ही विचरा करें।।

जब सूर्य प्रभु मेष या, तुला राशि में आते हैं। तब ही दिन और रात यह, समान ही हो जाते हैं।।
वृषादि पंच राशि पे जब, सूर्यदेव यह चलते हैं। प्रति मास तब रात्रि को, इक घड़ी न्यून वह करते हैं।।
उसी हिसाब से दिन भी वहाँ बढ़ते ही चले जाते हैं। सूर्य गति का ही तो, परिणाम यहाँ बताते हैं।।

वृश्चिकादि पंच राशिन् में, यही भास्कर देव जब चलें। तब दिवस और रात्रि में, उलटा परिवर्तन ही करें।।
इस विधि दक्षिणायन्, आरम्भ होता है जब तक। दिवस ही बढ़ते रहते हैं, इस चक्र में तब तक।।
जब उत्तरायण लग जाये, तब जान लो इसकी गति। उस काल में जान लो, रातें ही होती हैं लम्बी।।

मानसोत्तर पर्वत पर, है सूर्य परिक्रमा मार्ग। नौ करोड़ इक्यावन लाख, योजन है उसका विस्तार।।
उस पर्वत्त पर मेरु के, पूर्व इन्द्र की देवधानी। दक्षिण में उसके कहें, यमराज की है संयमनी।।
पश्चिम निम्लोचनी वरुण की, उत्तर में शतिश की विभावरी। चारों ही दिशाओं में, बसी हैं यह चारों पुरी।।
मेरु की चहुं दिशाओं में, इन पुरियों में समय समय पर। सूर्योदय मध्याह्न सायंकाल, और अर्धरात्रि समय लेते धर।।
इन्हीं के कारण जीवों की, प्रवृत्ति या निवृत्ति हो। ऐसी ही तुम सूर्य की, गति हे राजन् जान लो।।

सुमेरु पर्वत पर राजन्, जो प्राणी भी रहते हैं। मध्यकालीन रहकर सूर्य, उन्हें तपाते रहते हैं।
अश्विनी आदि नक्षत्रों को, अपनी गति से वह जायें। मेरु पर्वत को बायीं ओर, ही अपने वह रखकर जायें।।
प्रवर्तित कर ज्योतिर्मण्डल, प्रवह वायु दायें को बहे। उससे प्रवर्तित हो वह भी, दाईं ओर से चलते ही जाने।।

जिस पुरी उदय हों सूर्यदेव, विपरीत दिशा अस्तांचल हो। विपरीत दिशाओं में उनका, उलटा ही प्रभाव हो।।
जिस लोक में प्राणी श्वेद बहा, ताप से सब श्रान्त हों। उसके विपरीत दिशा के जन, रात्रि निद्रा में शान्त हों।।
मध्याह्न काल में जिनको, उनका दर्शन स्पष्ट हो। जब सौम्य दिशा में सूर्य चलें, नहीं उनका दर्शन सम्भव हो।।

जब इन्द्रपुरी से सूर्यदेव, यमराज पुरी को जाते हैं। पंद्रह घड़ी में अति विस्तृत, यात्रा वह कर जाते हैं।।
सवा दो करोड़ और, योजन साढ़े बारह लाख। इससे तनिक अधिक वह चलें, लगभग योजन पच्चीस हजार।।
इसी क्रम से पुन: वरुण और, चन्द्र पुरी को पार करें। इनको पार कर सूर्य देव, पुन: इन्द्र पुरी में जा पहुँचे।।
यों चन्द्रादि ग्रह सभी, अन्य नक्षत्र भी साथ लिये। ज्योतिष्चक्र में साथ साथ, हैं उदय अस्त होते रहते।।

इसी विधि वेदमय रवि की, गति की अब वह बात कहें। चौंतीस लाख आठ सौ योजन, प्रति मुहूर्त वह चले।।
इस गति से चलता हुआ, चारों पुरियों में घूमा करे। सूर्य का रथ तो निरन्तर ही, इस गति से चलता रहे।।

संवत्सर नाम का इस रथ का, पहिया एक कहा जाता। बारह अरे हैं मास रूप, जिससे है यह सजा हुआ।।
छ: नेमियां ऋतु रूप, इसमें हैं प्रभु बना दीनी। इसमें हैं तीन नाभि, तीन चौमासों की बनीं।।
एक छोर इसकी धुरी का, मेरु की चोटी पर है। दूजा अन्त मानसोत्तर, पर्वत की चोटी पर है।।
इसमें स्थित चक्र है जो, वह सदा घूमता रहता है। कोल्हू के पहिये समान, मानसोत्तर ऊपर भ्रमता है।।

इस धुरी के भीतर ही, अन्य धुरी इक और है। मूलभाग जिसकी है जुड़ी, वह धुरी इक और है।।
लम्बाई में वह इससे, है एक चौथाई जान लो। उस धुरी का ऊर्ध्व भाग, ध्रुव लोक में ही स्थित हो।।

इस रथ का कहें आसन भी, अति विशाल ही है बना। छत्तीस लाख योजन लम्बा, और नौ लाख योजन चौड़ा।।
जुआ भी इस रथ का जो, है छत्तीस लाख योजन लम्बा। अरुण नाम का सारथि, इस रथ को है चला रहा।।
गायत्री आदि छन्दों के, हैं सात उसमें अश्व जुते। इस रथ पे बैठे सूर्य को, वह ही तो हैं ले जा रहे।।

सूर्य देव के आगे उनके, सारथि अरुण हैं बैठे हुए। उनकी ओर मुख करके ही, वह अपना काज हैं कर रहे।।
प्रभु सूर्य के अगले अंगुष्ट, के इक पोर के समान। आकार वाले वालखिल्यादि, साठ हजार हैं ऋषि महान्।।
स्वस्ति वचन के लिये, नियुक्त सदा वह रहते हैं। निरन्तर सूर्य देव की, स्तुति वह करते रहते हैं।।

इनके अतिरिक्त हैं जो सब, गिनती है जिनकी चौदह ही। ऋषि गन्धर्व अप्सरा नाग, यक्ष राक्षस और देवादि।।
युगल में ही यह सदा रहें, इस कारण सात गण इन्हें कहें। प्रत्येक मास में भिन्न भिन्न, नाम यह गण धारण करें।।
भिन्न भिन्न कर्मों से यह, हर मास में भिन्न ही नाम धरें। आत्म स्वरूप प्रभु सूर्य की, दो दो मिली पूजा करें।।

इस विधि भूमण्डल के, घूमे सूर्य गिर्द ही। नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है जिसकी परिधि।।
प्रति क्षण में वह दो हजार, और दो योजन को पार करें। इस गति से सूर्य देव, निरन्तर ही चलते रहें।।
परीक्षित बोले,
हे प्रभु आपने जो कहा, जब सूर्य राशि की ओर चलें। मेरु ध्रुव को दाईं ओर, ही रखकर चलते से लगे।।
किन्तु वस्तुत: उनकी स्थिति, दक्षिणावर्त नहीं होती है। इस विषय में हमरी मति, हे प्रभु कुछ भ्रमित ही है।।

शुकदेव बोले,
जैसे कुम्हार के घूमते, चाक पे जो बैठी हुई। चींटी आदि उस चाक के, साथ साथ ही घूम रही।।
वास्तव में उसकी गति, तो चाक से भिन्न ही होती है। भिन्न भिन्न समय पे वह, भिन्न स्थान में चक्र के दिखती है।।
उसी विधि राशि नक्षत्र से, है उपलक्षित जो काल चक्र। उसमें पड़कर ध्रुव मेरु को, रख दायें घूमे जो सूर्य चक्र।।
और अन्य ग्रहों की भी, गति वास्तव में भिन्न ही है। काल भेद से क्योंकि वा, राशि नक्षत्र भिन्न ही है।।

वेद और विद्वान भी, जानना चाहें जिनकी गति। वे साक्षात् आदि पुरुष, प्रभु नारायण ही लोकहित।।
और कर्मशुद्धि के लिये, निज वेदमय विग्रह काल का। विभाग स्वयं ही वह कर दें, निज विग्रह रूपा काल का।।
बारह मासों में विभक्त करी, छः ऋतु का विभाग करें। वसन्तादि ऋतुओं में, यथायोग्य गुणों का विधान करें।।

इस लोक में वर्णाश्रम, धर्म का जो अनुसरण करें। वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित, न्यूनाधिक सब कर्म करें।।
इन्द्रादि देवों के रूप में, और योग के साधन से। अन्तर्यामी श्री हरि की, श्रद्धामय आराधना करें।।
सुगमता से ही परम पद, प्राप्त वह कर सकते हैं। निज धर्म अनुसरण के, सहज ही पथ कहें उनके हैं।।

सूर्य देव तो सम्पूर्ण, लोकों के ही हैं आत्मा। ज्यों साक्षात् विग्रह धरें, अव्यक्त वह परमात्मा।।
पृथ्वी और द्युलोक के, मध्य में स्थिति आकाश में। काल चक्र में स्थित होकर, हैं बारह मास को भोगते।।
हैं मास यह अंग संवत्सर के, मेषादि राशि हैं इनके नाम। प्रत्येक मास के शुक्ल कृष्ण, चन्द्रमाँ से द्वौ पक्ष जान।।
पितृमान से एक रात और, एक दिन है कहा जाता। सौरमान से सवा दो, नक्षत्र का है कहा जाता।।
छटा भाग संवत्सर का, जिस काल में सूर्य देव भोगें। काल के उस अंश को, ऋतु कहें तू जान ले।।

भगवान भुवनेश्वर का, आकाश में जो मार्ग है। जितने समय में पार करें, आधा ही वह मार्ग है।।
उस काल को अयन का, नाम ही वह देते हैं। इस कारण ही सूर्य के, दो अयन हैं कहते हैं।।
जितने काल में अपनी गति, मन्द तीव्र समान से। स्वर्ग और पृथ्वी मण्डल संग, आकाश को पूर्ण भ्रम लेते।।
आवन्तर भेद से उसको ही, कहें संवत्सर परिवत्सर। और क्रमशः हैं उनके नाम, इडावत्सर और अनुवत्सर।।

इसी विधि सूर्य की रश्मि से, है एक लाख योजन ऊपर। चन्द्रमा उसको कहते हैं, गति में है अति तीव्रतर।।
सब नक्षत्रों से सदा, आगे ही वह रहता है। इक वर्ष के सूर्य के मार्ग को, इक मास में पार यह करता है।।
इक मास के सूर्य के मार्ग को, पार करे सवा दो दिन में। और इक पक्ष के मार्ग को, तय कर ले यह इक दिन में।।

कृष्ण पक्ष में क्षीण ही, हो जाती हैं इसकी कला। और शुक्ल पक्ष में, है वर्धित होती इसकी कला।।
कृष्ण पक्ष से पितृन् के, दिन रात का विभाग करें। और शुक्ल पक्ष से देवों के, दिन और रात को बांट दें।।
तीन मुहूर्त में ही यह, प्रति नक्षत्र को पार करे। अन्नमय और अमृतमय, ही है इसका स्वरूप कहें।।
समस्त जीवों का यही, प्राण और कहें जीवन है। जीवों के प्राणों का आधार, यह ही अमृत और अन्न है।।

सोलह कला से युक्त यह है, मनोमय अन्नमय अमृतमय। पुरुष स्वरूप भगवान् हैं, चन्द्रमा यह सर्वमय।।
यह ही देवता पितर जीव, भूत पशु और पक्षी भी। सबके प्राणों को पुष्ट करे, सरीसृप हों या वृक्षादि।।

तीन लाख योजन ऊपर, हैं चन्द्र के स्थित सभी नक्षत्र। अभिजित के ही सहित कहें, गणना में अट्ठाईस नक्षत्र।।
इनको भी काल चक्र में, प्रभु ने है नियुक्त किया। मेरु को दाईं ओर कर, ही इनका भ्रमण है हो रहा।।

इनके भी ऊपर दो लाख, योजन का कहें है अन्तर। वहां पे ही शुक्र के, दर्शन हो सकते हैं सम्भव।।
सूर्य की मन्द तीव्र और, समान कहें हैं त्रि गति। उनके अनुकूल ही तो रहे, है इस नक्षत्र की भी गति।।
उन्हीं समान कभी आगे, कभी पीछे होकर चलता है। कभी उनके ही संग हो, साथ साथ यह चलता है।।
यह ग्रह तो वर्षा आदि, का जल बरसाता रहता है। इस कारण लोकों के यह, प्राय: अनुकूल ही रहता है।।
अपनी गति से ऐसा लगे, विपरीत ग्रहों को शान्त करे। वर्षा के जो अवरोधी ग्रह, उनका यह उपशमन करे।।

शुक्र की गति अनुकूल, है बुद्ध ग्रह की भी गति। इसकी व्याख्या के संग संग, उसकी व्याख्या भी हो गई।।
चन्द्र पुत्र शुक्र से है, दो लाख योजन यह ऊपर। प्राय: इसका स्वभाव ही, कहते हैं अति मंगल कर।।
किन्तु सूर्य गति का यह, जब उल्लंघन करता है। तो बहुत अधिक आन्धी बादल, सूखे की सूचना देता है।।

दो लाख योजन इससे, ऊपर है मंगल का ग्रह। प्राय: अमंगल सूचक है, और अशुभ ही है यह ग्रह।।
यदि गति का वक्र न हो, त्रै पक्ष में इक राशि भोगे। इस विधि बारह राशियों, को ग्रह यह पार करे।।
इससे दूर दो लाख योजन, हैं प्रभु बृहस्पति जी। यदि वक्र गति से नहीं चलें, इक वर्ष में भोगें इक राशि।।
ब्राह्मण कुल के लिये प्राय:, अनुकूल यह रहते हैं। सदा ज्ञान भण्डार को, यह देव खोलते रहते हैं।।

बृहस्पति से दो लाख, योजन ऊपर है जिनकी स्थिति। उनको ही तो जान ले, कहते हैं शनीचर सभी।।
यह तीस तीस महीने तक, इक इक राशि में रहते हैं। अत: तीस वर्ष में ही, सब राशि पार यह करते हैं।।
है अशान्ति कारक यह, प्राय: सबके ही लिये। मानो दुष्कर्मों का सबके, वह स्वयं ही हैं फल देते।।

इसके ऊपर भी ग्यारह लाख, योजन की अति दूरी पर। कश्यप आदि सप्तर्षि, के ही होते हैं दर्शन।।
सब लोकों की सदा ही वह, मंगल कामना करते हैं। प्रभु विष्णु धाम ध्रुव लोक की, ये सदा प्रदक्षिणा करते हैं।।

२) शिशुमार चक्र का वर्णन (अन्य ग्रहों की स्थिति और गति)

शुकदेव बोले,
सप्तर्षियों से तेरह लाख, योजन है ऊपर ध्रुव पद। इसको ही तो कहते हैं, प्रभु विष्णु का परम पद।।
उत्तानपाद के प्रिय पुत्र, परम भक्त श्री ध्रुव जी। विराजमान यहीं पे रहें, हैं परम भागवत स्वयं वही।।
अग्नि इन्द्र और प्रजापति, कश्यप और धर्म कहें। सब मिलकर अति आदर से, प्रदक्षिणा इस लोक की करें।।
कल्प पर्यन्त भी जो लोक, है दीर्घकाल रहने वाले। उन सबका आधार भी, यह ध्रुव लोक ही है कहें।।

सदा सजग अव्यक्त गति, प्रभु काल के द्वारा जो। ग्रह नक्षत्र ज्योतिर्गण, निरन्तर ही प्रवर्तित हों।।
उनका आधार स्तम्भ प्रभु ने, ध्रुवलोक को ही बनाया है। सदा स्थिर यह इक स्थान में, प्रकाशित होता रहता है।।

अनाज खूँदने के लिये, दाँय चलाने के समय। क्रमानुसार ही पशु सभी, खूंटे से हैं बान्धे जाते।।
ज्यों छोटी बड़ी और मध्यम, रज्जू से पशु बान्धे जायें। निकट दूर और मध्य में रह, चहुं ओर घूमते ही जायें।।
स्तम्भ के चहुँ ओर वह, मण्डल बनाकर ही घूमें। त्यों ही सब ग्रह नक्षत्रगण, ध्रुव लोक की ही परिक्रमा करें।।

काल चक्र में नियुक्त सभी, बाहर और भीतर के क्रम से। सभी ग्रह नक्षत्र निरन्तर, ध्रुव के गिर्द ही घूम रहे।।
उसका ही आश्रय लेकर, और वायु से पा प्रेरणा। कल्प के अन्त तक ही, बना रहे यह घूमना।।
ज्यों मेघ और बाज आदि, पक्षी आकाश में उड़ते हैं। वायु के अधीन रही, निज के आसरे उड़ते हैं।।
उसी विधि यह सब ही, निज कर्मानुसार ही चलते हैं। चक्र यह चलता ही जाये, नहीं भूमि पर यह गिरते हैं।।

प्रभु की योगमाया ही, आधार है ज्योतिश्चक्र का। कई पुरुषों ने तो इसका, शिशुमार है नाम धरा।।
शिशुमार यह कुण्डली, मारे बैठा रहता है। मुख इसका सदा कहें, नीचे की ओर ही रहता है।।
इसकी पूंछ के अन्त पर, ध्रुव ही है स्थित कहें। मध्य भाग में प्रजापति, अग्नि इन्द्र और धर्म रहें।।
पूंछ की जड़ में इसकी कहें, धाता और विधाता है। कटि प्रदेश में इसके कहें, सप्त ऋषि का वासा है।।
दाहिनी ओर से सिकुड़ के, कुण्डली यह है मारे हुए। अभिजित से पुनर्वसु तक, चौदह नक्षत्र उत्तरायण के।।
दाहिने भाग में इसके, वह कहें हैं स्थित रहें। पुष्य से उत्तराषाढ पर्यन्त, चौदह नक्षत्र दक्षिणायन के।।
वह सब वाम भाग में, ही इसके कहें स्थित रहें। शिशुमार में ग्रहों की, ऐसी ही है स्थिति कहें।।
शिशुमार जब लोक में भी, कुण्डलाकार में होता है। दोनों ओर के अंगों की, संख्या में सम वह होता है।।
इसी विधि नक्षत्रों की, संख्या में भी समानता है। पीठ में अजवीथी इसके, उदर में आकाश गंगा है।।

दायें बायें कटितटों में, हैं पुनर्वसु और पुण्य नक्षत्र। पीछे के दोनों चरणों में, आर्द्रा और अश्लेषा नक्षत्र।।
दायें बायें नथुनों में क्रमशः, हैं अभिजित उत्तराषाढ़ा। दायें बायें नेत्रों में इसी विधि, है श्रवण और पूर्वाषाढ़ा।।
दायें बायें कान में हैं, धनिष्ठा और मूल नक्षत्र। बायीं पसली में हैं इसके, दक्षिणायन के आठ नक्षत्र।।
विपरीत इसके मृगशिरादि, उत्तरायण के नक्षत्र आठ। अन्य नक्षत्रों की भी, अब राजन् तू गति जान।।
शतभिषा और ज्येष्ठा दो, नक्षत्र हैं दाहिने बायें कान्ध। ऊपर की थूथनी में आगस्त्य, नीचे की चुबुक में हैं यमराज।।
मुख में मंगल लिंग में शनि, कुकुर में हैं बृहस्पति। वक्षे सूर्य हृदि नारायण, मन में चन्द्र और शुक्र नाभि।।
स्तनों में अश्विनी कुमार हैं, प्राण अपान में रहे बुध। गले में राहु अंगों में केतु, और रोमों में तारागण स्थित।।

हे राजन् प्रभु विष्णु का, यह सर्ववेदमय स्वरूप है। नित्य प्रति सायंकाल को, चिन्तनीय यह रूप है।।
पावन मौन होकर इसका, दर्शन करना चाहिये। यह मन्त्र जप करते हुए, स्तुवन उनका करना चाहिये।।
आश्रय सब ज्योतिर्गणों के, काल चक्र स्वरूप प्रभु। सर्वदेवाधिपति परम पुरुष, परमात्म हैं हमारे प्रभु।।
उनका ही हम ध्यान धर, नमस्कार उन्हें करते हैं। बार बार उनके ही चरण, में नमन हम करते हैं।।

ग्रह नक्षत्र तारागण के, रूप में हैं प्रकटे प्रभु। इनमें ही प्रकाशित हो, प्रभु का आधिदैविक स्वरूप।।
तीन समय जो उपरि कथित, मन्त्र का जाप ही हैं करते। उनके पाप विकार तो, इस मन्त्र से नष्ट हैं हो जाते।।
प्रातः मध्याह्न और सायं, त्रिकाल में जो ध्यान करे। आधिदैविक इस रूप का नित्य, चिन्तन और वन्दन करे।।
उस समय में किये हुए, पाप सभी उनका नष्ट हों। तुरन्त और तत्काल ही, सब पापों से मुक्त वह हो।।

३) अधः लोकोंका वर्णन

दस सहस्त्र योजन नीचे, सूर्य से राहू घूम रहा। हे राजन् कुछ लोगों ने, ऐसा ही है कथन किया।।
सिंहिका सुत यह अधम असुर, इस पद के तो योग्य न था। केवल हरि कृपा से ही, देव और यह ग्रह बना।।

सूर्य के उग्र मण्डल का, विस्तार है योजन दस सहस्त्र। चन्द्रमा के मण्डल का, विस्तार है योजन बारह सहस्त्र।।
और राहु के मण्डल का, विस्तार है योजन तेर सहस्त्र। अमृत पान की बेला इस, देव रूप लिया था धर।।
सूर्य चन्द्र के बीच में, यह आकर था बैठ गया। उस समय दोनों ने ही, भेद था इसका खोल दिया।।
उस वैर को यह राहु, पुन: याद जब करता है। अमावस और पूर्णिमा को, आक्रमण यह उनपर करता है।।

यह देख के उनकी सुरक्षा को, श्री हरि ने यह प्रबन्ध किया। निज आयुध सुदर्शन को, उनके निकट नियुक्त किया।।
निरन्तर ही इन दोनों की, परिक्रमा वह करता रहता है। उसके असह्य तेज को, राहु यह सह नहीं पाता है।।
उद्विग्न और चकित चित्त यह, मुहूर्त मात्र टिक पाता है। प्रचण्ड तेज से घबराकर, सहसा लौट वह आता है।।
उतनी देर जो दोनों के, सामने ठहर वह जाता है। वह ही तो इन दोनों पर, ग्रहण लगा कहलाता है।।

राहू से दस हजार योजन, नीचे के स्थान की अब कहें। सिद्ध चारण और विद्याधर, आदि सब यहीं पे रहें।।
उनके नीचे जहाँ तक, भी वायु गतिवान् भए। अन्तरिक्ष लोक वही तो है, जहां पे बादल दीख पड़े।।
यक्ष राक्षस और पिशाच, विहार यहाँ पे करते हैं। भुत और प्रेत सब, यहाँ पे ही तो विचरते हैं।।

उसके नीचे सौ योजन, की दूरी पर है पृथ्वी। हंस गिद्ध बाज गरुढ़, प्रधान जो पक्षिन् की गिनती।।
जहाँ तक यह पक्षीगण, उड़ान अपनी भर सकें। वहां तक ही पृथ्वी की, सीमा राजन् तू जान ले।।

पृथ्वी की स्थिति और, विस्तार का वर्णन पहले किया। इसके नीचे भी सात स्थान, भूगर्भ स्थित हैं जिन्हें कहा।।
अतल वितल और सुतल, तलातल और महातल कहें। रसातल और पाताल यह, सब मिलकर ही सात बनें।।
एक से नीचे एक यह, है दस सहस्त्र योजन दूरी। लम्बाई चौड़ाई प्रत्येक की, भी है इतने योजन ही।।

भूगर्भ में स्थित यह बिल कहें, इक भान्ति के यह स्वर्ग ही हैं। विषयभोग ऐश्वर्य आनन्द, सन्तति सुख धन सम्पन्न हैं।।
यहाँ के वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीड़ा स्थल हैं। दैत्य दानव नाग यहां, मायावी क्रीड़ा में रत हैं।।
भिन्न भिन्न क्रीड़ायें कर, यहाँ निवास वह करते हैं। सब के सब ही गृहस्थ धर्म, का पालन यहाँ करते हैं।।
दारा सुत बन्धु बान्धव, और सेवक भी अति प्रेम करें। प्रेम पूर्ण इन लोकों में, सबके सब ही प्रसन्न रहें।।
पृथ्वी से भी कहीं श्रेष्ठ, इनकी सब भोग सामग्री है। उसमें बाधा डालने की, नहीं इन्द्र की भी सामर्थ्य है।।

मयदानव द्वारा रचित यहां, अनेक ही अद्भुत हैं पुरी। अति शोभा से वह सब ही, हैं जगमग जगमग करतीं।।
अनेकों श्रेष्ठ सुन्दर मणियों, से रचे हुए हैं वहाँ भवन। चित्र विचित्र हैं परकोटे, नगर द्वार और सभा भवन।।
मन्दिर बड़े बड़े आंगन, और घरों से यह सुशोभित है। जिनके फर्शों पर निरन्तर, क्रीड़ा में यह सब रत हैं।।
नाग और असुरों के जोड़े, क्रीड़ा में यहाँ मग्न रहें। कबूतर तोता मैना आदि, के किलोल से गूंजें यह।।
राजमहल हैं अति भव्य, पाताल के उन अधिपतियों के। इनसे उन पुरियों की शोभा, भी अतुल्य सी ही दीखे।।

उद्यान भी इन पुरियों के, हैं देवलोक से अति उत्तम। अनेकों वृक्ष उनमें लगे, जिनकी शोभा है अनुपम।।
फल और फूलों के गुच्छे, उनकी डालों पर लटक रहे। कोमल कपोल के भार से, हैं वृक्ष वहां के झुके हुए।।
भान्त भान्त की लताओं ने, उन्हें अंग पाश में बान्धा हुआ। जलाशयों में भी वहां, है निर्मल शीतल जल भरा।।

विविध पक्षीगण के जोड़े, क्रीड़ा विलास वहां करते हैं। इन वृक्षों और जलाशयों से, उद्यान सुशोभित रहते हैं।।
जलाशयों में मछलियां जब, क्रीड़ा करती सी उछलती हैं। उनके शान्त जलों में भी, तरंगे ही तब उठती हैं।।
जल के ऊपर जो खिले कमल, कुमुद कुवलय और कह्लार। नील रक्त शतपत्र कमल, दल भी हिलते हैं उनके साथ।।
इन कमल दलों में रहें जो खग, अविराम वह क्रीड़ा करते हैं। भान्ति भान्ति के कलरव से, वे सबके मन को हरते हैं।।
उनकी मीठी बोली सुन, आनन्दित हों मन और इन्द्रियाँ। जैसे कोई उत्सव ही, इनके लिये हो छा गया।।

उन लोकों तक सूर्य का, प्रकाश पहुँच नहीं पाता है। इस कारण दिन रात का, विभाग भी हो नहीं पाता है।।
बड़े बड़े नागों के, मस्तक में स्थित हैं जो मणियां। सम्पूर्ण तिमिर वहाँ का तो, दूर करें यह ही मणियां।।

इन लोकों के निवासी जन, जो पदार्थ सेवन करें। औषधि रस रसायन अन्न, पान और स्नानादि करें।।
यह सबके सब पदार्थ ही, दिव्य यहां पर होते हैं। इनके सेवन से आधि और, व्याधि से मुक्त वह होते हैं।।
न चेहरे पर पड़े झुर्रियाँ, न ही बाल वहां श्वेत हों। न ही जरा घेरे वहाँ, न ही तन कान्तिहीन हो।।
पसीना भी न आये वहाँ, तन से दुर्गन्ध का नाम नहीं। शिथिलता या थकावट का, भी वहाँ कहीं काम नहीं।।
आयु के साथ वहाँ पे कभी, तनो की अवस्था न बदले। सुन्दर स्वस्थ शक्ति सम्पन्न, और तन सदा युवा ही रहे।।

श्री हरि के तेज स्वरूप, आयुध सुदर्शन के सिवा। अन्य नहीं कोई साधन, उन पुण्य पुरुष का हनन करता।।
सुदर्शन के आते ही वहाँ, रमणियाँ अति भयभीत होएं। इससे ही उनका गर्भ स्त्राव, या गर्भपात भी हो जाये।।

अब सुनो अतल लोक की, मयपुत्र असुर बल वहाँ रहे। छयानवें भान्ति की उसने, माया रची यह जान ले।।
उनमें से आज भी, कोई कोई तो दीख पड़े। मायावी पुरुषों में ही, कभी कभी वा दरस होए।।
एक बार जब असुर बल, ने मुख खोल जम्भाई ली। स्वैरिणी कामिनी पुश्चली, त्रै भान्ति की स्त्रियां प्रकटीं।।
उस लोक के पुरुषों को, हाटक नाम का रस यह दें। उसे पिला उन पुरुषों को, यह सम्भोग के योग्य करें।।
फिर भावमयी निज चितवन से, और प्रेमपूर्ण मुसकान से। प्रेमालाप आदि द्वारा, यथेष्ट ही उन संग रमण करें।।
उस रस को पीकर तो जीव, मदान्ध सा हो जाता है। दस सहस्त्र हाथी का बल, अपने में माने जाता है।।
मैं ईश्वर हूं, मैं सिद्ध हूं, फिर ऐसी बातें करता है। अपने ही मनोभ्रम में, फिर वह जीव विचरता है।।

अब उसके नीचे की कहें, वितल नाम का लोक है। हाटकेश्वर प्रभु महादेव, का ही जानो वह लोक है।।
निज पार्षद भूतगणों के सहित, महादेव वहाँ रहते हैं। सृष्टि वर्धन के लिये, भवानी संग वह रहते हैं।।
उन दोनों के तेज से, बहे हाट नाम की वहाँ नदी। उसके जल का पान करे, वायु द्वारा प्रज्वलित अग्नि।।
फिर हाटक नाम का स्वर्ण वह, निज मुख से निकाले हैं। उससे तैयार आभूषण जो, दैत्य युगल सब डाले हैं।।

अब वितल के नीचे की कहें, सुतल नाम का लोक है। महायशस्वी विरोचन के, पुत्र बलि का लोक वह है।।
अदिति गर्भ से श्री हरि, वटु वामन रूप धरी प्रकटे। इन्द्र के हित उस रूप में, त्रैलोक थे बलिसे छीन लिये।।
फिर श्री हरि की कृपा से ही, प्रवेश मिला इस लोक में। इस लोक में जिस सम्पत्ति, और ऐश्वर्य को वह भोगें।।
वह तो स्वर्ग लोक में, इन्द्र के पास भी हैं नहीं। ऐसी इस लोक की, उत्कृष्टता की है उपमा दी।।

उन्हीं पूज्यतम हरि की वह, आराधना करते रहते हैं। धर्म आचरण वह सदा करें, निर्भयता पूर्वक रहते हैं।।

सबके हैं जो आत्म स्वरूप, और सब के नियन्ता है। प्रभु वासुदेव हैं पूज्यतम, पवित्रतम पात्र वह आप हैं।।
उनको सामने पा कर, अति श्रद्धा पूर्ण स्थिर चित्त से। भूमि दान बलि ने दिया, नहीं उसका कोई मुख्य फल यह।।
सुतल लोक का ऐश्वर्य, बलि को प्राप्त ही हो गया। यह तो नश्वर अनित्य ही है, नहीं इसमें अमरत्व भरा।।
किन्तु वह भूमि दान तो, साक्षात् मोक्ष का द्वार है। अपना सर्वस्व जो उनको दे, वहां हरि पधारें आप हैं।।

विवशता से भी एक बार यदि नाम लें भगवान का। छींकने गिरने फिसलने से, गर नाम यह मुख से कभी निकला।।
तो सहसा ही कर्म बन्धन, नाम काट यह देता है। योगादि साधन से जो कठिन, दुर्भेद्य द्वार यह खोलता है।।
अन्य उपायों के आश्रय, बहुत कठिन है जिसको तर पाना। नाम लिये यह भव सिन्धु, मुमुक्षु सहज है तर जाता।।

सब जीवों के आत्म स्वरूप, जो सबके आन्तर में बसें। निज संयमी भक्त और प्राणियों को, निज स्वरूप ही वह दे दें।।
सर्वात्मा श्री हरि को, किया दान यह आत्म भाव से। केवल भोग विलास ही, उसका फल न हो सके।।
बलि ने श्री हरि चरणों में, सर्वस्व दान ही था किया। मायिक भोगैश्वर्य दे, कोई कृपा दान प्रभु नहीं किया।।
यह सब तो उन प्रभु को, विस्मृत करा ही देते हैं। यदि यही दिये प्रभु ने उसे, तो उसपर अनुग्रह कैसे हैं?

अन्य उपाय न देख प्रभु ने, छल जब बलि से था किया। याचक बनकर ही उससे, त्रिलोक का राज्य था छीन लिया।।
उसके पास मात्र उसका, इक तन ही शेष रहने दिया। वरुण के पाश में बान्धकर, पर्वत की गुफा में डाल दिया।।
दानवराज बलि ने तब, प्रभु से थी यह बात कही। वरुण पाश में बन्धकर के, उसने थी यह कथन करी।।
बलि बोले,
ऐश्वर्यशाली यह इन्द्र, वैसे तो है बहुत विद्वान्। फिर भी सच्चा सुख कहां, सर्वथा रहा इससे अनजान।।
श्री बृहस्पति को इसने, अनन्य मन्त्री बनाया निज। पर सन्मति उनकी न मानी, अवहेलना उनकी करी थी इस।।
प्रभु विष्णु से अति दुर्लभ, दास्य नहीं उनका मांगा। उनके द्वारा मुझसे ही, क्षणिक भोग इसने मांगा।।
इन तीनों लोकों की तो, अवधि है एक ही मन्वन्तर। अनन्त काल में है यह तो, केवल एक अव्यय मात्र।।
प्रभु की चाकरी के सम्मुख, इन भोगों का भला मोल क्या? प्रभु का दास्य अमूल्य है, यह करेंगे उसका तोल क्या?

पितामह भी प्रह्लाद के, पिता जब प्रभु के हाथों मरे। हिरण्यकश्यपु की मृत्यु पर, प्रभु सेवा का ही वर मांगे।।
प्रभु तो श्री प्रह्लाद को, राज्य वह देना चाहते थे। पिता ने निष्कण्टक छोड़ा, उसे वह देना चाहते थे।।
तो भी प्रभु से मिलन की, राह में विघ्न इसे जानकर। पितामह: ने निज पिता का सब, राज्य दिया अस्वीकार कर।।

पितामह: प्रल्हाद तो, थे अतीव महानुभाव। प्रभु विष्णु के चरणों में, था उनका अनुपम अनुराग।।
मुझपर तो प्रभु की कृपा नहीं, न मेरा मन ही शान्त है। वासना का हुआ नहीं, वहाँ अभाव नितान्त है।।
फिर मेरे जैसा कौन पुरुष, करेगा साहस जाने का? उनके श्री चरणों की, धूलि तक पहुँच ही पाने का?

निज भक्तों के लिये सदा, प्रभु के हिय से दया बहे। अखिल जगत् के पूज्य गुरु, प्रभु नारायण निज हाथ में।।
सुतल लोक में बलि द्वार पर, गदा लिये सदा खड़े रहें। भक्त वछल चाकर बनकर, सुरक्षा उनकी करते रहें।।

एक बार दिग्विजय कर, दम्भी रावण जब वहाँ गया। प्रभु के पांव की ठोकर खा, वह लाखों योजन दूर गिरा।।

अब सुतल लोक के नीचे की, बात है राजन् तुम्हें कहें। त्रिपुराधिपति मयदानव, इस तलातल में ही रहें।।
पहले तीनों लोकों को, शान्त करने के लिये। प्रभु शंकर ने उसके तीनों, पुर भस्म थे कर दिये।।
फिर उनकी कृपा से ही, यह स्थान उसे पुन: मिला। श्री महादेव से सुरक्षित है, महागुरु वह मायावियों का।।
महादेव का आश्रय ले, नहीं भय सुदर्शन चक्र से भी। बहुत आदर हैं उसका करते, उस लोक के वासी सभी।।

उसके नीचे है महातल, अब उसकी हूँ तुम्हें कहता। क्रोधवश नाम के सर्पों का, इक समुदाय है वहाँ रहता।।
कद्रू से उत्पन्न अनेक सिरों, वाले सर्प वहां रहते हैं। कुहक तक्षक कलिय सुषेण, प्रमुख यह जाति कहते हैं।।
बड़े बड़े फन अपने वह, सदा ही खोले रहते हैं। पक्षीराज श्री गरुड़ से, भयभीत हुए सदा रहते हैं।।
फिर भी कभी निज पत्नी सुत, और मित्रों को संग लिये। कुटुम्ब सहित प्रमत्त होकर, वह हैं विहार करने लगते।।

उसके नीचे रसातल में, रहें दैत्य दानव पणि नाम के। निवातकवच कालेय और, हिरण्यपुर वासी कहलाते।।
देवताओं से इनका, विरोध सदा ही बना रहे। जन्म से ही अति बलवान्, और महा साहसी हैं यह।।
जिन श्री हरि का प्रभाव, विस्तृत है सारे लोकों में। उन श्री हरि के तेज से, बल अभिमान वा चूर्ण हुए।।
अब सर्पों के समान यह, लुक छुप कर सदा रहते हैं। इन्द्र की दूती सरमा के, वाक्य से डरे यह रहते हैं।।
मन्त्र वर्ण रूपा यह, इन्द्र वाक् से सदा डरें। इस कारण लुक छुप कर रही, इस लोक में यह सदा रहें।।

रसातल के नीचे कहें, वहाँ का है लोक पाताल। वहाँ रहें अति क्रोधी और, बड़े बड़े फन वाले नाग।।
शंख कुलिक और महाशंख, श्वेत धनंजय और धृतराष्ट्र। शंखचूड कम्बल अश्वत्तर, और देवदत्त अति क्रोधी नाग।।
इन सबमें प्रधान है, जिसे वासुकी नाग कहें। पांच सात या शत भी, किसी के सहस्त्र भी सीस कहें।।
उनके फनों में अति उज्ज्वल, मणियां ही हैं चमक रहीं। निज कान्ति से पाताल का, तिमिर नष्ट वह कर रहीं।।
शुकदेव बोले,
पाताल लोक से भी नीचे, है योजन दूर तीस हजार। प्रभु की तामसी नित्य कला, अनन्त नाम से है विख्यात।।
अहंकार का रूप है यह, द्रष्टा और दृश्य को एक करे। दोनों को खेंचकर, एकत्व में उनकी यह लाये।
पांचरात्र आगम के, जो भी हैं अनुयायी जन। उन भक्तन् ने ही दिया, नाम है इनको संकर्षण।।

इन प्रभु अनन्त के, एक सहस्त्र तो मस्तक हैं। उनमें से इक पर रखा, यह सारा ही भूमण्डल है।।
भूमण्डल इसपे जो रखा, दीखे सरसों के दाने सम। सारी ही भूमण्डल की, इतनी सी वहाँ पे महातम।।
प्रलय काल के आते ही, यह विश्व संहार करना चाहें। क्रोधावेश से भृकुटी मध्य, से रुद्र प्रकट ही हो जाएं।।
नाम है उनका संकर्षण, और व्यूह संख्या एकादश है। त्रि नेत्र ही सबके हैं, और हाथ में भी त्रिशूल है।।

प्रभु संकर्षण के चरण नख, हैं गोल स्वच्छ और अति सुन्दर। अरुण वर्ण नखमणियों के, समान ही दीखें अति उज्ज्वल।।
भक्तों सहित नाग राज, प्रणाम उनको जब करें। प्रधान वा भक्तों सहित, अनन्य भक्ति भाव धरें।।
उन नखमणियों से उनकी, मनहर छवि प्रतिबिम्बित हो। कुण्डल की चमक से स्वर्णमयी, मुखारविन्द की झांकी हो।।

मनमोहिनी उनकी छवि देख, आनन्द से सबका मन भरे। श्री संकर्षण के चरण नख की, ऐसी सुन्दर महिमा भए।।

चान्दी के खम्भों समान, हैं उनकी श्वेत महाबाहु। अनेक नाम कन्यायें मिल, हैं करतीं वहाँ लेप बहु।।
अरगजा चन्दन कुंकुमपंक का, लेप प्रेम से करती हैं। अनेक कामना वे सब ही, अपने मन में धरती हैं।।
अंग स्पर्श उनका पाकर, हृदय में काम संचार हो। अरुण नयन कमलों से सजे, प्रेमोन्मत्त उनके रूप को।।
उस मुदिर मुखारविन्द को, सप्रेम सलज्ज निहारें वो। मधुर मधुर मुसकान पगे, करुणामय नयन निहारें वो।।

अनन्त गुणों के सागर वह, आदि देव प्रभु श्री अनन्त। अमर्ष और रोष के वेग को, हैं अपने में रोके अन्त।।
सब लोकों के कल्याण को, वह वहाँ विराजमान् रहें। ऐसे प्रभु श्री अनन्त की, है अनन्त महिमा कहें।।

देव असुर और नाग सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर और मुनिगण। प्रभु अनन्त के ध्यान में, ही वह रहते हैं निमग्न।।
नेत्र निरन्तर ही उनके, प्रेम मद से छके रहें। ऐसी मनहर छवि उनकी, चंचल और वह विह्वल रहें।।
निज पार्षदगण के प्रति, मृदु वचनामृत बरसायें। और सेनापति भी निज, नित्य ही वह सन्तुष्ट करें।।
अंग पे नीलाम्बर धारे, कानों में कुण्डल एक ही। सुन्दर और सुभज हाथ उनका, धरा है हल की मूठ पे ही।।
प्रभु संकर्षण गले में निज, वैजयन्ती माला हैं धारे हुए। ज्यों ऐरावत के गले, स्वर्ण श्रृंखला झूमा करे।।
ऐसी नवीन तुलसी की गन्ध, और मधुर मरकन्द से। उन्मत्त हुए भंवरे सदा, निरन्तर मधु गुंजन करें।।

प्रभु संकर्षण माहात्म्य का, इस विध जो श्रवण और ध्यान करे। मुमुक्षु के हृदय में वह, स्वयं ही प्रकट रे हो जायें।।
सत्व रज और तम से भरी, कर्म वासना से जो पड़ी। अविद्या की इस ग्रन्थी का, छेदन करें तत्काल ही।।
एक बार ब्रह्मा के पुत्र, श्री नारद ने था गान किया। तुम्बुरु गन्धर्व को संग ले, ब्रह्मा सभा में बखान किया।।

उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के, हेतुभूत ही गुण हैं जो। जिनके दृष्टिपात से ही, सब गुण निज कार्य सामर्थ हों।।
अनादि और अनन्त वह, एकाकी और वह अद्वितीय। नाना रूप धारी प्रकृति, हैं अपने में धारण किए।।
श्री संकर्षण का तत्त्व, कैसे भला कोई जान सके? अपार उनकी महिमा को, कोई जीव न पहचान सके।।

यह कार्य कारण रूप सब, प्रपंच है जिनमें भास रहा। स्वजनों का चित्त हरने के लिये, करी वीरता पूर्ण जो लीला।।
मृगराज अति पराक्रमी सिंह, आदर्श उन्हें अपना माने। उनके अद्भुत कार्य का, अनुकरण ही करना वह चाहें।।
उन्हीं प्रभु संकर्षण ने, लीला अपनी अतीव करी। विशुद्ध सत्वमय रूप यह, हमारे लिये धारण करी।।

जिसके नाम का सुनकर के, या सुनाकर आश्रय ले। पीड़ित अथवा पतित भी, जब अकस्मात् ही उसे कहे।।
अपने संग दूजे के भी, पाप नष्ट तत्काल करे। ऐसे श्री शेष प्रभु को छोड़, मुमुक्षु अन्य पे क्यों जाये?

पर्वत नदियों और सागर से, परिपूर्ण है जो यह भूमण्डल। सहस्त्रशीर्ष प्रभु के इक, मस्तक पर रखा ज्यों रजकण।।
अनन्त हैं वह उनके वीर्य, का परिमाण न हो सके। एक सहस्त्र गर जिह्वा हों, तो भी वा गान न हो सके।।
सर्वव्याप्त उन श्री हरि के, कौतुक की महिमा कैसे कहें? उन अनन्त के गुणगान का, कैसे साहस कोई कर सके?

अतिशय गुण प्रभाव उनका, और वीर्य भी है इसीम। वैभव शाली प्रभु श्री अनन्त, हैं रसातल मूल में स्थित।।

अपनी महिमा में आप ही, वह स्वतंत्र हैं नित्य प्रभु। लीलावत् है पृथ्वी धारी, सब लोकों की स्थिति हेतु।।
भोगों की कामना वाले पुरुष, की हैं यह चारों गतियाँ। निज कर्मानुसार ही सब, प्रभु की रचित हैं यह गतियाँ।।
जिस प्रकार गुरु मुख से, मैंने इनको जाना था। हे राजन् ज्यों का त्यों ही, वैसा तुम्हें सुना दिया।।

प्रवृत्ति रूपा धर्म के, परिणाम में जो प्राप्त हो। परस्पर विलक्षण ऊँची और, नीची सब गति हैं जो।।
तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में, उन सबको है कह दिया। अब कहो हे राजन् तुम, आगे क्या है प्रश्न तेरा?

४) अट्ठाईस नरकों का वर्णन

परीक्षित् बोले,
हे महर्षे लोगों को जो, ऊँची नीची यह गतियाँ मिलें। उसमें इस विविधता का, कारण कृपया हमें कहें।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् त्रैगुण विभाग, से जीव सब होते हैं। सात्विक राजस या तामस, उनके कर्म सब होते हैं।।
उसी विधि श्रद्धा में भी, उनके भेद यह होता है। स्वभाव और श्रद्धा भेद से, गति में भेद यह होता है।।
न्यून या अधिक रूप में, यह गतियाँ प्राप्त सभी को हों। कर्मानुकूल ही कर्म के, कर्ता को गति फिर प्राप्त हो।।

इसी विधि निषिद्ध कर्ममय, पाप का जो अनुसरण करें। श्रद्धा समान न उनकी हो, समान फल नहीं उन्हें मिले।।
अविद्या यह अनादि है, वशीभूत जो इसके कर्म करे। कामना से प्रेरित हैं जो, निषिद्ध ही वह कर्म कहें।।
उनके परिणाम में सहस्त्रों, ही गति जो होती हैं। विस्तार से उनको कहेंगे अब, नारकी गति जो होती है।।
परीक्षित् बोले,
जिन नरकों का हे प्रभु, वर्णन आप हैं करने लगे। क्या इस पृथ्वी पर हैं यह, या कोई देश विदेश हैं ये?
अथवा कहें त्रिलोकी से, बाहर का कोई स्थान है क्या? या इसके ही भीतर है, हे ऋषिवर आप यह कहें जरा।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् त्रिलोकी के, भीतर ही यह स्थान हैं। दक्षिण की ओर पृथ्वी से अधाधे, जल ऊपर स्थित वह स्थान हैं।।
अग्निष्वात् आदि पितृगण, इसी दिशा में रहते हैं। निज वंशधर हेतु वह, नित्य मंगल कामना करते हैं।।

उस नरक लोक में सूर्यपुत्र, पितृराज श्री यम रहें। अपने सेवकों सहित वह, प्रभु आज्ञा नहीं उलाँघ सकें।।
उनके दूत उनकी आज्ञा से, मृत प्राणी वहाँ ले जाते हैं। निज कर्मों के अनुकूल ही, पाप का दण्ड वह पाते हैं।।

कई लोग इन नरकों की, संख्या इक्कीस बताते हैं। नाम रूप लक्षण सहित, क्रमश: वह तुम्हें सुनाते हैं।।
तामिस्त्र अन्धतामिस्त्र रौरव, महारौरव और कुम्भीपाक। कालसूत्र और असिपत्रवण, सूकरमुख अन्धकूप कहा।।
कृमिभोजन संदंश तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी। पूयोद प्राणरोध विशसन, लालाभक्ष और सारमेयादन।।
अवीचि और अय:पान, यह सब हैं क्रमश: इनके नाम। हे राजन् कुछ और भी, तुम्हें कहें नरकों के नाम।।
इनके अतिरिक्त क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन शूलप्रोत। दन्दशूक अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचिमुख।।
यह सात मिलाकर कुल, बनते हैं अट्ठाईस नरक। विभिन्न यातनाओं को, भोगने के यह स्थान नरक।।

जो पुरुष किसी दूजे के, धन पुत्र या स्त्री हरे। अति भयावह यमदूत, कालपाश में बान्ध के।।

बलात्कार से ही उसे, तामिस्र नरक में फेंक दें। अन्धकारमय उस नरक में, अन्न जल उसे नहीं मिलें।।
डण्डे लगा भयभीत कर, पीड़ित उसको किया जाता है। अनेक भान्ति से उसको, ताड़ित भी किया जाता है।।
अत्यन्त दु:खी होकर के वह, मूर्छित हो यकायक ही। तामिस्र नरक में जाकर के, हो ऐसी उसकी दुर्गति।।

इसी विधि जो पुरुष कभी, दूजे को धोखा देता है। किसी अन्य के स्त्री आदि, भोगों को वह भोगता है।।
अन्धतामिस्र नरक में, ही जाकर वह गिरता है। यातना वहां की पाकर वह, मानो जड़ से कट गिरता है।।
उसी वृक्ष समान वह, वेदना से सुध बुध खो दे। जड़वत् ही वह हो जाये, कुछ भी सुधि उसे नहीं रहे।।
इस कारण इस नरक को, अन्धतामिस्र हैं कहें। अपने पाप कर्मों का, परिणाम यहां ऐसा मिले।।

इस लोक में तन को ही, अपना आप जो माने है। स्त्री धन और कुटुम्ब को, ही अपना जो जाने है।।
ऐसी बुद्धि रखकर के, दूजे से द्रोह जो करता है। निरन्तर निज कुटुम्ब की, ही जो पालन करता है।।
निज तन के छुट जाने पर, वह पतित स्वयं हो जाता है। अपने पाप के कारण वह, रौरव नरक में जाता है।।

इस लोक में जीवों को, ज्यों कष्ट था पहुँचाता रहा। परलोक में यम यातना, देने को उन रूप धरा।।
रुरु बनकर उसी विधि, वह कष्ट उसे पहुँचाते हैं। इस कारण इस नरक का, रौरव नाम बताते हैं।।
सर्प से तीव्र ही विषपूर्ण, क्रूर स्वभाव का जीव जो। रुरु उसीको ही कहें, उसका ही यह नाम हो।।

महारौरव नाम का, ऐसा ही दूजा नरक है। महास्वार्थी प्राणिन् के, लिये कहें यह नरक है।।
केवल निज शरीर का, पालन पोषण जो करता है। किसी अन्य की ओर न देखकर, केवल निज पेट ही भरता है।।
कच्चा मांस खाने वाले, रुरु वहाँ पे रहते हैं। मांस के लोभ से ही उसे, वह नित्य काटते रहते हैं।।

क्रूर जीव इस लोक में जो, निज पुष्टि को ही खाता है। जीवित पशु या पक्षी को, रान्ध के, वह बनाता है।।
हृदयहीन वह प्राणी है, राक्षसों से भी अति अधम। अन्त काल में वह प्राणी, होता है यमदूतों के वश।।
कुम्भीपाक नरक में ही, यमदूत उसे ले जाते हैं। खौलते तैल के पात्र में, उसको वहां पकाते हैं।।

माता-पिता ब्राह्मण और, वेद से जो विरोध करें। यमदूत उसे कालसूत्र, नाम के नरक में ले जायें।।
दस हजार योजन ही, है कहें परिधि इसकी। इसकी भूमि तल भी कहें, ताम्बे की है बनी हुई।।

तपा हुआ मैदान यहाँ, ऊपर से पाये सूर्यताप। नीचे से इसको तापे, अग्नि का अति भीषण दाह।।
वहाँ पहुँचा हुआ पापी, भूख प्यास से व्याकुल हो। उसके तन के अन्दर बाहर, व्याप्त जलन अति दु:खकर हो।।
बैचेनी उस जीव की, यहाँ तक बढ़ जाती है। कभी लेटे कभी बैठे वह, कभी तन वा छटपटाती है।।
कभी खड़ा हो जाये वह, तो कभी दौड़ने लगता है। उस नर पशु का कहें, ऐसा हल ही होता है।।
वा तन के जितने रोम हैं, उतने ही सहस्र बरस। इस दुर्गति से जीव वह, होता है पल पल ही त्रस्त।।

बिना किसी आपत्ति पड़े, धर्म जो अपना छोड़ दे। वैदिक धर्म को छोड़ कर, मिथ्या पाखण्ड का आश्रय ले।।
यम के दूत असिपत्रवन, नामक नरक में ले जायें। वहां ले जाकर इसपर वह, कोड़ों की मार ही बरसायें।।
जब उस मार से बचने को, यह इधर उधर धावन लागे। तब अंग सारे उसके, तालवन पत्र से कटने लगें।।
तालवन के पत्ते तो, हों तीव्र ज्यों तलवार की धार। इनके दोनों ओर से, अति तीखा हो इनका वार।।

अत्यन्त वेदना से फिर वह, बार बार चिल्लाता है। हाय मरा मैं कहता हुआ, पग पग मूर्छा वह पाता है।।
अपने धर्म को छोड़कर, पाखण्ड मार्ग पे जो चले। इस कुकर्म का उसे, फल तो भोगना ही पड़े।।

इस लोक में राजा या, अधिकारी भी कोई हो। दण्ड गर कहीं दे वह दे, किसी निरपराध को।।
अथवा किसी ब्राह्मण को, गर तन का दण्ड वह देता है। महापापी मृत्यु उपरान्त, सूकरमुख नरक में गिरता है।।
महाबली यमदूत वहाँ, अंगों को उसके कुचलते हैं। कोल्हू में पड़े ईख समान, जब उसकी ताड़ना करते हैं।।
निरपराध प्राणी जैसे, इस लोक में उसने सताये थे। उसकी ताड़ना खाकर वह, अति रोए और चिल्लाये थे।।
उसी विधि उस लोक में वह, आर्त स्वर से चिल्लाता है। जब सह न पाये यह पीड़ा, तब मूर्छित वह हो जाता है।।

जो पुरुष इस लोक में, मच्छर खटमल आदि मारे। उनसे द्रोह के कारण वह, अन्धकूप नरक में जाय गिरे।।
प्रभु ने स्वयं उन जीवों की, वृत्ति ऐसी बनाई है। दूजों का रक्तपान करके, ही उन जीवन पाई है।।
उनको तो यह भी ज्ञान नहीं, दूजे को दु:ख है हो रहा। किन्तु मनुष्य की वृत्ति में तो, प्रभु ने है यह ज्ञान भरा।।
विधि निषेध का भी उन्होने, वहां विधान है कर दिया। दूसरों के कष्ट का, भी उसको अनुमान दिया।।
उस नरक में पहुंचकर, दुर्गति उस जीव की हो। मृग पक्षी पशु सरीसृप, मच्छर खटमल से सामना हो।।
जिनसे उसने था द्रोह किया, सभी ओर से वे उसको काटें। इससे निद्रा और शान्ति, उसकी बनी न रह सके।।
चैन पाने के लिये, उसे कोई स्थान ही नहीं मिले। बेचैन ही होकर वह सदा, इस लोक में भटका करे।।
ज्यों रोग ग्रसित शरीर में, जीव नित्य ही तड़पा करे। उस महाघोर अन्धकार में, जीव यह वैसे ही तड़पे।।

इस लोक में जो भी जीव, बिना पंचयज्ञ किये। जो मिले उसे बिन बांटे, गर अकेला ही खा ले।।
उस मनुष्य को तो यहाँ, है कौए के समान कहा। परलोक में कृमिभोजन नामक, नरक में जाकर वह गिरता।।
एक लाख योजन जिसकी, लम्बाई और चौड़ाई है। इक ऐसे ही कीड़ों के, कुण्ड की वहां पे खाई है।।
कीड़ा बनकर उसमें ही, उस जीव को रहना पड़ता है। जब लौ प्रायश्चित न पूर्ण हो, उसको दु:ख सहना पड़ता है।।
बिना दिये बिना हवन किये, जो स्वयं ही सब खाता रहा। इस महादोष का भली भान्ति, जब तक नहीं शोधन हो जाता है।।
तब तक वहीं पे पड़ा पड़ा, वह कष्ट भोगता रहता है। कीड़े उसको वहाँ नोचा करें, वह भी कीड़ों को खाता है।।

इस लोक में जो भी जीव, चोरी या बरजोरी से। ब्राह्मण या किसी अन्य के, धन स्वर्ण और रत्न हरे।।
मरने पर यमदूत उसे, संदंश नरक में ले जायें। तप्त लौह के गोलों से, उसके तन को दागे जायें।।
और कुल्हाड़ी लेकर के, वे उसकी खाल को नोचा करें। इस विधि इस नरक में, पाप का उसको फल वे दें।।

इस लोक में पुरुष यदि, अगम्या से सम्भोग करे। अथवा स्त्री भी कोई, अगम्य नर से व्यभिचार करे।।
तप्तसूर्मि नामक नरक में, यमदूत उसे ले जायें। उस लोक में कोड़ों की, मार वह उसपर बरसायें।।
स्त्री पुरुष की लोहे की, तप्त मूर्तियां वहां रहें। स्त्री को पुरुष और पुरुष को, स्त्री आलिंगन करवायें।।

जो जीव इह लोक में, पशु आदि से व्याभिचार करे। वज्रकण्टकशाल्मली नरक में, मृत्यु के वह बाद गिरे।।
यमदूत उस नरक में, ही उसको ले जाते हैं। वज्र सम कठोर कण्टीले, सेमर वृक्ष पे चढ़ाते हैं।।
फिर वहां से नीचे खेंचकर, इस विध उसको तड़पाते हैं। व्यभिचार जो था किया, उसका ऐसा फल पाते हैं।।

श्रेष्ठ कुल में जन्म पा, हो राजपुरुष या हो राजा। जो धर्म मर्यादा का, है उल्लंघन कर देता।।
मरने पर इस कारण वह, वैतरणी नदी में जाय गिरे। नरक लोक की खाई के, समान ही तो यह नदी कहें।।
मल मूत्र रक्त पीब, केश नख अस्थि चर्बी। मांस मज्जा आदि सब, गन्दी वस्तु से भरी हुई।।
जल के जीव इधर उधर से, नोचें फिर उस जीव को। किन्तु महा पीड़ा पाकर भी, इस तन का वहां त्याग न हो।।
पाप के कारण इस तन का, वाहन प्राण करते रहें। अपनी इस दुर्गति को वह, पाप का फल निज मान लें।।
मन ही मन यह जीव यहाँ, सन्तप्त ही होते रहते हैं। इस विधि निज पापों का, फल वह आप ही सहते हैं।।

शौच और आचार के, नियमों का जो जन त्याग करें। लोक लाज को छोड़कर, विपरीत आचरण ही जो करें।।
शूद्राओं से सम्बन्ध बना, पशु समान आचरण करें। मृत्यु उपरान्त वह जीव, पूयोद नाम सागर में गिरें।।
पीव विष्ठा मूत्र कफ, आदि से भरा यह सागर है। अत्यन्त घृणित वस्तु से ही, परिपूर्ण यह सागर है।।
विवश होकर इन सबका वे, भक्षण वहाँ पे करते हैं। निज पाप के प्रतिरूप में, इस गति में वह विचरते हैं।।

पाखण्डी लोग जो यज्ञों में, भी पाखण्ड का आश्रय लें। यज्ञवेदी पर हिंसापूर्ण, पशुवध करके बलि वह दें।।
वैशस नामक नरक में, यमदूत हैं उनको डालते। वहाँ के अधिकारी उन्हें, अति पीड़ा देकर काटते।।
कामातुर होकर जो द्विज, अपनी सवर्णा भार्या को। निज वीर्यपान कराता है, उच्च वर्णा उस आर्या को।।
मृत्यु पाछे यमदूत उसे, वीर्य की नदी में डाल दें। फिर उसको विवश कर, इस वीर्य का पान वह करवायें।।

जो कोई चोर या राजपुरुष, या फिर राजा स्वयं ही। किसी को विष ही दे देवे, या फूँक दे किसी का वह घर ही।।
अथवा गाँवों या वणिकों की, टोली को वह लूट ले। मृत्यु बाद सारमेयादन, नामक नरक में जाय पड़े।।
वज्र समान दाढ़ोंवाले, सात सौ बीस यमदूत वहाँ। श्वान रूप धर करके, उसको वह हैं काटें वहाँ।।

इस लोक में जो पुरुष, किसी की झूठी गवाही दे। व्यापार में या दान में, किसी विधि भी झूठ कहे।।
मृत्यु पर आधार शून्य, अवीधिमान् नरक में पड़े। सौ योजन ऊँचे पर्वत से, वहां उसे गिराया ही जाये।।
उस नरक की भूमि तो, बनी कठोर पाषाण सवे। पर दूर से वह ही जान पड़े, नीले जल के ही समान रे।।
इस कारण इस नरक का, नाम अर्वचिमान पड़े। इतनी ऊँचाई से गिरकर, तन तो टुकड़ों में ही बंटे।।
फिर भी सहजता से इसके, प्राण पिण्ड नहीं त्यजते हैं। इस कारण इसे पुन: पुन:, ऊपर ले जा के पटकते हैं।।

जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी, हों किसी भान्ति व्रत में स्थित। या कहें कोई अन्य करे, मद्यपान प्रमाद वश।।
क्षत्रिय और वैश्य भी, सोमपान जो करता है। यमदूतों के द्वारा वह, अय:पान नरक में जाता है।।
उसकी छाती पर पांव रख, वह ताड़ित उसको करते हैं। आग में गला हुआ लोहा, वह उसके मुख में देते हैं।।

इस लोक में जो जीव, निम्न श्रेणी में जन्म ले। पर अपने को ही बड़ा मान, कर जग में व्यवहार करे।।
जन्म तप विद्या आचार, वर्ण या फिर आश्रम से। अपने से बड़ों का ही, सत्कार विशेष जो नहीं करे।।
जीवित होते हुए भी वह, है तो मृतक समान ही। धर्म और मर्यादा का, उसको कुछ भी ज्ञान नहीं।।
क्षारकर्दम नाम के, नरक में जीव वह जाता है। मरने पर सिर नीचा कर, उसे वहाँ गिराया जाता है।।
अनन्त पीड़ायें वहाँ, उसको भोगनी पड़ती हैं। ऐसी उच्छृंखलता की कहें, फल भीष्ण ही होती है।।

इस लोक में नरबलि दे, भैरव यक्ष राक्षस पूजे। या जो स्त्री पशु समान, नर का ही भक्षण करे।।
पशुओं सम मृतक वह पुरुष, यमलोक में जा राक्षस बने। तरह तरह की ताड़ना दे, उसको वह ताडित करें।।
रक्षोगणभोजन नाम के, नरक में वह जन जाता है। कसाईवत् कुल्हाड़ी से, तन उसका बीना जाता है।।
राक्षस वहां रक्त उसका, पीकर आनन्द मनाते हैं। रक्तपान करके उसका, नाचने और वह गाते हैं।।
ज्यों मांसभोजी इस लोक में, मुदित हों मास का भक्षण कर। उसी विधि उस लोक के गण, मुदित हों इस को ही खाकर।।
वन या गांव के निरपराध, जीवों को जो बहकाये। फुसलाकर बुलवाने उन्हें, निज प्राण संरक्षण जो चाहे।।
फिर कांटे से बेन्धे उसे, या रस्सी से बान्धा करें। भान्ति भान्ति की पीड़ा दे, उससे वह खिलवाड़ करे।।
ऐसे जन को मृत्यु पश्चात्, शूलप्रोत नामक नरक मिले। यम यातना रूप में, शूलों से उसे बेन्धा जाये।।
उस समय जब भूख प्यास, उसको सहनी पड़ती है। तीखी चोंच के कंक बटेर, पक्षिन् की मार भी पड़ती है।।
यह सब मिलकर जब अपनी, चोंचों से उसको नोचते हैं। तब अपने किये पाप सारे, याद उसे आ जाते हैं।।

हे राजन् इस लोक में, है अति उग्र जिसका स्वभाव। सर्पों के समान ही, पीड़ा देना उनका एक काज।।
मरने पर वह दन्दशूक, नाम के नरक में गिरते हैं। वहाँ पाँच या सात मुखी, सर्प निकट उनके आते हैं।।
चूहे के समान ही, उनको निगल वह जाते हैं। अपने सब दुष्कर्मों का, इस विधि फल वह पाते हैं।।

दूजे प्राणियों को जो जीव, डाले अन्धेरी गुफाओं में। अन्धेरी खाईयों में या, कोठों में उनको डाल दें।।
परलोक में यमदूत भी, वैसे ही स्थान में डालें उसे। विषैली आग के धुएं से, स्वास वह उनका बन्द करें।।
इसीलिए इस नरक को, अवटनिरोधन कहते हैं। अपने किए की उसी भान्ति, प्राणी सजा भुगतते हैं।।

आगन्तुक अतिथि अभ्यागत, का जो तिरस्कार करे। जो गृहस्थ कुटिल और, क्रुधित दृष्टि से देखे उसे।।
मानो अपनी दृष्टि की, अग्न में भस्म ही कर देगा। अपने घर में आने का, अतिथि को ऐसा फल देगा।।
पर्यावर्तन नाम के, नरक में जब वह जाता है। तब अति कठोर चोंच वाले, पक्षिन् को सामने पाता है।।
गिद्ध बटेर काक कंक, सब ही उस पर प्रहार करें। पाप दृष्टि को उसकी वह, निज चोंच से विवश निकाल दें।।

निज को धनवान् मान के जो, अभिमान के मद में चूर रहे। दूजों को न्यून ही समझे वह, और टेढ़ी नजर से ही देखे।।
विश्वास किसी का नहीं करे, सन्देह दृष्टि सब पर रखे। धन के व्यय और नाश की, चिन्ता सदा उसे बनी रहे।।
जिसका हृदय और मुख भी, इस कारण सूखे रहते हैं। तनिक चैन नहीं जिन्हें मिले, यक्ष समान जो बैठे हैं।।
धन उपार्जन उनका वर्धन, फिर रक्षण की चिन्ता रहे। इसी उद्देश्य को चित्त धरी, वह तरह तरह के पाप करें।।
ऐसा नराधम मरने पर, सूचिमुख नरक में गिरता है। अर्थ का लोलुप पापात्मा, पिशाच रूप ही धरता है।।
यमदूत अंग उसके सारे, सूई धागे से सीते हैं। दर्जी के समान ही, उसकी गति वह करते हैं।।

यमलोक में ऐसे ही हैं, शतश: सहस्त्रश: नरक कहे। जिनका यहाँ उल्लेख किया, या जिनके विषय कुछ नहीं कहे।।
अधर्म परायण जीव सभी, क्रमश: उन लोकों में जायें। अपने अपने कर्मानुकूल, ही फल वहाँ पे वे पायें।।
इसी विधि हे राजन् जान, जायें महात्मन् स्वर्गादि को। नरक और स्वर्ग के भोगों से, जब पाप पुण्य उनका क्षीण हों।।
तब बचे हुए पाप पुण्यमय, कर्म जो बाकी रह जायें। उनको लेकर पुन: जन्म को, यह इसी लोक में लौट आयें।।

चौदह भुवन के रूप में, पुराणों ने जिसको कहा। वह ब्रह्माण्ड कोश तो, जान ले तू बस है इतना।।

साक्षात् श्री परम पुरुष, नारायण का है रूप यह। अपनी माया के गुणों युक्त, उनका ही स्थूल रूप है यह।।
इसका वर्णन भी राजन्, तुमको है सुना दिया। अनिर्वचनीय जो स्वरूप, उसका तुम्हें बता दिया।।
उपनिषदों में जो कहा, उसका निर्गुण स्वरूप है। मन बुद्धि और इन्द्रियों की, पहुँच परे यह रूप है।।
इस स्थूल रूप को वह पढ़े, या फिर उसे सुना ही दे।।
श्रद्धा और भक्ति से, बुद्धि उसकी शुद्ध भए। वह उस सूक्ष्म रूप का, भी अनुभव तब कर सके।।

यति को यह ही चाहिये, दोनों रूपों का श्रवण करे। स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही, प्रभु के रूप वह जान ले।।
पहले स्थूल रूप में वह, अपने चित्त को स्थिर करे। फिर धीरे धीरे वहाँ से वह, चित्त सूक्ष्म में ले जाये।।

हे परीक्षित् तुमसे अब, मैंने सारा वर्णन किया। पृथ्वी उसके अन्दर जो द्वीप, वर्ष नदी पर्वत कहा।।
आकाश समुद्र पाताल की, भी बात तुमसे कही। दिशा नरक ज्योतिर्गण और, लोकों की स्थिति भी बतला दी।।
समस्त जीव समुदाय का, हैं आश्रय श्री हरि स्वयं। प्रभु का अति अद्भुत रूप यह, स्थूल रूप उन धरा स्वयं।।

पंचम स्कन्ध समाप्त

** कई लोगों की आदत होती है, वे कार्यस्थल की परेशानी, वहीं न छोड़कर घर साथ, ले आते हैं।*
खुद तो दु:ख पाते ही हैं, परिवार को भी दु:ख के, अंधेरे में डुबो देते हैं।
** यह संसार फूल सेमर को, सुन्दर देखि लुभायो।*
चाखन लागो, रुई गयी उड़ि, हाथ कछु नहिं आयो।
हम देख चुके इस दुनियाको, यह सब धोखे की टट्टी है।
** वह नहीं ज्ञान जो नफरतों का मारा है, इल्म का मतलब तो आपस में भाईचारा है।*
** एक लहर अगर मचल जाये तो तूफान बन जाता है, गर फूल चाहे तो गुलिस्तान बन जाये।*
महज एक खून के कतरे में दम है इतना, कि वह किसी के इतिहास में पहचान बन जाता है।।
** कत्ल करते जर जमीनों, माल के खातिर यहां। सिरफिरे कुछ लोग हैं, दीवानगी के वास्ते।*
देखते देखते ही शैतान बन जाते है लोग, ईमान के बजार में बेईमान बन जाते है लोग,
किस कदर बदली हुई है सूरत हर इन्सान की, कल जो खुदा थै आज वो क्यों शैतान बन गये।
** हम शेरे वफा के लोगों का तुम हाल भला क्या जानोगे, हम दिल की चोट छुपाते है और आंसू तक पी जाते है। कह तो देते हैं हम बडी शानसे कि हम २१ वी सदी के लोग है, पर इस २१ वीं सदी के लोगों को भी लगे है १९ वी सदी के रोग।*
** मौत से भी कब मिटे हैं जिन्दगानी के निशान, हर कहानी छोड़ जाती है कहानी के निशान।*
इस जमीन पर जिन्दगी बना दी है अजाब, ढूंढता है चांद पर वो जिन्दगी के ख्वाब।।

षष्ठम स्कन्ध

विषय सूची

१) अजामिल उपाख्यान ४०७

२) प्रचेताओं को नारद का उपदेश और
दक्ष की साठ कन्याओं का विवरण ४१९

३) इन्द्र का बृहस्पति का त्याग और विश्वरूप का वरण ४३०

४) नारायण कवच का उपदेश ४३४

५) इन्द्रको ब्रह्महत्या का पाप ४३७

६) वृत्रासुर आख्यान ४३८

७) वृत्रासुर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त ४५२

८) मरूद्गणों की उत्पत्ति ४६७

** पैसा इसलिये ही मोटा हो गया है, दिल आदमी का तंग और छोटा हो गया।*

** नही कमी कुछ इस दुनिया में सब कुछ है जरूरत से ज्यादा,*
मगर आदमी भूल गया है, हिस्सा उसका आधा आधा।
खुद पर कब्जा करने भाई से लड जाता है, सोच नही पाता कुछ जिद पर जो अड जाता है।
पैसे के लिये आदमी का प्यार खो गया, बन तो गया वो ज्ञानी पर गंवार हो गया।

** हम हवा नही जो खो जायेंगे, हम वक्त नहीं जो गुजर जायेंगे,*
हम मौसम नहीं जो बदल जायेंगे, हम तो वो आंसू है जिसे हमेशा अपने करीब पायेंगे।

** आदमी इतना खुदगर्ज है कि शमा को रात भर जलाता है, और हर सुबह बुझा देता है।*

षष्ठम स्कन्ध

१) अजामिल उपाख्यान

परीक्षित बोले,
पहले आपने हे प्रभु, निवृत्ति मार्ग वर्णन किया। उसके द्वारा ब्रह्मलोक में, ज्यों क्रमश: जाये जीव कहा।।
फिर ब्रह्मा के साथ वह, मुक्त स्वत: हो जाता है। हे भगवन् कहा आपने, वह जैसे परम पद पाता है।।
प्रवृत्ति मार्ग का भी प्रभु, भली भान्ति वर्णन किया। त्रिगुणमयी स्वर्ग आदि, लोकों को प्राप्त जिससे करता।।
प्रकृति से सम्बन्ध वहाँ, छूट नहीं कभी पाता है। जन्म मरण के चक्र में, जीव पुनि पुनि आता है।।

यह भी बताया आपने, अधर्म मार्ग की गति है क्या? इस पथ पर जो भी चले, नरकों में उसकी गति है क्या?
सविस्तार प्रभु आपने, वर्णन इसका है कर दिया। मनु के पहले मन्वन्तर, का भी वर्णन है किया।।
प्रियव्रत और उत्तानपाद के, चरितों का विस्तार किया। उनके चरित और द्वीप वर्ष, सागर पर्वत का भी कहा।।
नदी उद्यान और विभिन्न, द्वीपों का विस्तार किया। उनके विभिन्न वृक्षों का, भी निरूपण कर दिया।।

भूमण्डल की स्थिति है क्या, द्वीप वर्ष के विभाग क्या। उनके लक्षण और परिमाण, इन सबके बारे में कहा।।
नक्षत्रों की स्थिति कही, अतल वितल की भी कही। सात पाताल और प्रभु की, सारी सृष्टि की बात कही।।
हे महाभाग अब आपसे, जानना चाहूं उपाय है क्या? नरकों में पतन से बचने की, आप कहें है विधि क्या?
किस अनुष्ठान से आप कहें, नरक की यातना से बचें? हे भगवन् अब कृपा करी, आप मुझे वह विधि कहें।।
शुकदेव बोले,
मन वाणी और तन से ही, जीव पाप सारे करे। यदि इस तन के रहते ही, इनका प्रायश्चित वह नहीं करे।।
तो मृत्यु पश्चात् ही, फैल उनका निश्चित मिले। भयंकर यातना से भरे, नरकों में जाना पड़े।।
उन सबका विस्तार से, वर्णन तेरे लिये किया। क्या गति हो नरकों में, सब है तुम को बतला दिया।।

सावधान और सजग हो, मृत्यु और रोग से पहले ही। पापों की गुरुता लघुता, शीघ्रतिशीघ्र विचार सही।।
उनका अवलोकन कर कर, प्रायश्चित उनका तुम करो। तब ही तो परिणाम से, उनके मुक्त तू हो सको।।
ज्यों कुशल चिकित्सक रोग का, कारण और लक्षण जान ले। गुरुता लघुता उसकी जान, उसका तत्काल निदान करे।।
परीक्षित बोले,
राजदण्ड और समाजदण्ड, लौकिक यह जो साधन हों। शास्त्रोक्त नरकादि गमन, पारलौकिक इन कष्टों को।।
जानकर भी हे भगवन्, कि पाप ही उसका शत्रु है। विवश ही वासना वशीभूत, हो पाप कर्म में प्रवृत्त है।।
ऐसी अवस्था में कहें, उसका प्रायश्चित क्योंकर हो? अपने ही पापकर्मों से, निदान क्योंकर सम्भव हो?

कभी प्रायश्चित करके वह, छुटकारा उनसे चाहता है। पुन: उन्हीं कर्मों में कभी, प्रवृत्त वह हो जाता है।।
ज्यों स्नान के बाद भी, हाथी, बालू से आवृत्त हो जाये। उसका सारा स्नान भी, इक पल में व्यर्थ ही हो जाये।।
वैसे ही जीव का वह, प्रायश्चित भी किस काम का? गर पुन: पाप प्रवृत्त वह हो, तो साधन सब किस काम का?

शुकदेव बोले,
वस्तुत: सत्य यह जान लो, कर्म से कर्म का नाश न हो। अज्ञानी ही तो कर्म करे, इस कारण वह निर्बीज न हो।।
जब लौ अज्ञान यह बाकी है, पाप समूल यह नहीं मिटे। तत्त्व ज्ञान उपलब्धि ही, इक सच्चा प्रायश्चित जान ले।।

जो पुरुष सुपथ्य का, ही केवल सेवन करे। उस स्वस्थ पुरुष को, वशीभूत रोग न कर सके।।
ऐसे ही तुम जान लो, जो जीव नियम पालन करे। शनै: शनै: वह पाप वासना, से मुक्त ही हो जाये।।
तत्पश्चात् कल्याणप्रद, तत्त्वज्ञान वह पा सके। तत्त्व ज्ञान हो जाने से, पुन: स्वस्थ वह हो सके।।

ज्यों बांसों के झुरमुट में, आग कहीं कभी लग जाये। पूर्ण समूह बांसों का, भस्मीभूत वह कर जाये।।
वैसे ही धर्मज्ञ और, श्रद्धावान जो पुरुष हो। तप ब्रह्मचर्य इन्द्रिय दमन, मनोस्थिरता धीर के लक्षण हों।।
दान सत्य अन्दर बाहर, की पावनता बनी रहे। यम और नियम की जीवन में, निरन्तरता सदा बनी रहे।।
मन वाणी शरीर से, अति भीषण जो पाप हुए। इन नौ साधन के आसरे, सबको नष्ट वह कर सके।।

प्रभु के शरणागत भक्त जो, अति विरले ही होते हैं। केवल निज भक्ति के द्वारा, सब पाप नष्ट वह करते हैं।।
ज्यों सूर्य के प्रकाश से, कुहरा सब लुप्त हो जाता है। त्यों जहाँ प्रभु की भक्ति हो, वहाँ पाप नहीं टिक पाता है।।

हे राजन् तुम जान लो, सर्वोत्तम साधन शुद्धि का। जीवन भर जो पाप किये, उनसें शीघ्र ही मुक्ति का।।
प्रभु पे आत्म समर्पण कर, जैसी शुद्धि पापों से हो। प्रभु के भक्तों के सेवन से, पाप मुक्त त्यों हो सको।।
तपस्या आदि द्वारा भी, वैसी शुद्धि न हो पाये। ज्ञान और यज्ञादि भी, वैसी पावनता न लायें।।

इस जग में भक्ति का मार्ग, ही सर्वश्रेष्ठ है जान लो। भयरहित कल्याण स्वरूप, इसको ही तुम मान लो।।
इस मार्ग पे हे राजन्, भगवत्परायण ही चल सकें। सुशील और साधुजन ही, अनुसरण इसका कर सकें।।
जैसे मदिरा का भरा घड़ा, नदिया पावन न कर सके। वैसे ही महा प्रायश्चित् गर, बार बार भी किये गए।।
भगवत विमुख जो जीव है, पावन उसे न कर सकें। सब साधन उसके लिये, राजन् कहें असमर्थ रहें।।

जिनका चित्त श्री हरि के, चरणों का अनुरागी हुआ। श्री कृष्ण के चरणारविन्द का, मरकन्द जिस इक बार चखा।।
जान लो उस मन मधुकर के, सारे प्रायश्चित् ही हो गए। स्वप्न में भी उसे यमराज, या दूत के दर्शन न होएँ।।
फिर नरकों की क्या बात कहें, वह तो बहुत ही दूर रहे। श्री कृष्ण प्रेम सुधा रस पी, वह तो है अलमस्त हुए।।

इस विषय में महात्मा जन, हैं एक प्राचीन कथा कहते। उसमें प्रभु विष्णु और यम के, दूतों के हैं संवाद भरे।।
हे राजन् अब तुम भी, मुझसे यह ही वृतान्त सुनो। पुरातन काल में जो कहा, अब तुम वह इतिहास सुनो।।
कन्याकुब्ज नगर में था, एक दासी पति ब्राह्मण। अजामिल उसका नाम था, अति दूषित था वह ब्राह्मण।।
दासी के संसर्ग से, सदाचार था नष्ट हुआ। अपने कुल का मान और, मर्यादा भी था भूल चुका।।

कभी राहगीरों को बान्धकर, स्तेनवत् था लूटता। कभी लोगों को द्यूत में ही, छल से था वह हरा देता।।
धोखाधड़ी से किसी का वह, धन सारा था हर लेता। किसी की चोरी करके वह, अपना घर था भर लेता।।
अति निन्दनीय कर्मों में, ही वह लिप्त सदा रहता। दूजों को बहुत सताकर वह, निज कुल का पोषण था करता।।

इसी विधि वहाँ रहकर वह, दासी के शिशु सब पाले गया। उसके जीवन का दीर्घ काल, अठ्ठासी वर्ष का यूँ बीता।।
वृद्ध हुआ जब अजामिल, दस पुत्रों का पिता वह था। उनमें जो सबसे छोटा था, नारायण उसका नाम धरा।।
माता पिता दोनों का ही, अतीव लाडला पुत्र वह था। सबसे छोटा था इस कारण, दोनों की आँख का तारा था।।

वृद्ध अजामिल ने अपना, हृदय पुत्र को था सौंपा। अत्यन्त मोह के कारण ही, नारायण पुत्र में चित्त टिका।।
शिशु की बाल सुलभ लीला, जब वृद्ध पिता था देखता। उसकी तुतलाती भाषा सुन, वह फूला नहीं समाता था।।

निज बालक के स्नेह पाश में, इस विध था वह बन्ध गया। नारायण के सिवा उसे, जग में कुछ नहीं था दीखता।।
जब स्वयं वह भोजन खाता थाए, तो उसे भी संग सिखलाता था। जब पानी पीता आप वह, तो उसे भी संग पिलाता था।।
निज बालक के मोह में, अतिशय मूढ़ था वह हुआ। मृत्यु हैं मेरे सीस खड़ी, इस बात का पता ही नहीं चला।।

वह मूढ़ तो इसी विधि, जीवन था अपना बिता रहा। बिन उसके पहचाने ही, मृत्यु का समय भी आ पहुँचा।।
निज शिशु नारायण में, ही था उसका चित्त टिका। सोच विचार भी सब उसका, उस बालक पर ही केन्द्रित था।।
इतने में अजामिल ने देखा, तीन भयानक दूतों को। उसको लेने आये जो, भयप्रद उन यमदूतों को।।
हाथ में उनके थी फाँसी, मुँह टेढ़े थे हो रहे। और उनके तन के रोएँ, भी खड़े हो रहे।।

उस समय बालक भी वह, कुछ दूरी पर था खेल रहा। यमदूतों को देखकर, अजामिल अति व्याकुल हुआ।।
बहुत जोर लगाकर के, ऊँचे स्वर से पुकारा उसे। नारायण नारायण कह, कातर नयनों से निहारा उसे।।
प्रभु विष्णु के पार्षदों ने, देखा अति विस्मित होकर। निज स्वामी नारायण के, नाम का स्वर उसके लब पर।।
हमारे प्रभु नारायण का, नाम संकीर्तन कर यह रहे। यह सोचकर यकायक ही, बहुत वेग से वहाँ वह आ पहुँचे।।

यमदूत उस क्षण उसके, प्राण थे तन से खेंच रहे। दासी पति अजामिल का, सूक्ष्म तन वे ले जा रहे थे।।
विष्णु दूतों ने बलपूर्वक, यमदूतों को रोक दिया। अपने साथ अजामिल को, ले जाने उनको नहीं दिया।।
जब उन्होने ऐसा किया, यमराज के दूत भी भड़क गए। कहा कौन हो तुम जो धर्मराज, की आज्ञा में बाधा बने?
यमदूत बोले,
किसके दूत हो तुम कहो, किसकी आज्ञा से आये हो? इसको ले जाने आये हम, तुम राह क्यों हमरी रोके हो?
क्या तुम हो कोई देवता, या उपदेवता हो कहो? अथवा कोई सिद्ध श्रेष्ठ हो तुम, अपना परिचय तो हमको दो।।
तुम सबके नेत्र हम देख रहे, हैं कमल दल सम कोमल। रेशमी पीताम्बर आप सभी, धारण किये हो निज तन पर।।
सीस किरीट हैं सोह रहे, कानों में कुण्डल लहरायें। गले में कमल के हार भी, मन्द मन्द ज्यों मुसकाये।।

नूतन अवस्था है सबकी, सुन्दर चतुर्भुज धारी हो। सभी कर कमलों में धनु: तरकश, तलवार और गदाधारी हो।।
शंख चक्र और कमल के, सब पर सुशोभित चिन्ह हैं। कहो आप सब कौन हैं, जिनपे सब ही दैवी चिन्ह हैं?
अंग कान्ति तुम सबकी, दिशायें ज्योतिर्मय करे। प्राकृत प्रकाश भी इस द्युति के, सामने फीका सा लगे।।
धर्मराज के सेवक हम, उनके भेजे ही आये हैं। क्यों रोके हो तुम हमें, यह हम समझ न पाये हैं।।
शुकदेव बोले,
यमदूतों ने जब उनसे, इस प्रकार बहुत बात कही। हंस दिये श्री नारायण के, सेवक आज्ञाकारी सभी।।

मेघ समान ही गहरी और, गम्भीर उनकी वाणी थी। यमदूतों को फिर उन्होंने, सस्मित ही यह बात कही।।
विष्णुदूत बोले,
हे यमदूतों गर सचमुच तुम, यमराज के आज्ञाकारी हो। धर्म के लक्षण और तत्त्व, की तुम हमें भी बात कहो।।
कौन दण्ड का पात्र कहो, और कैसे दण्ड दिया जाये? क्या कुछ पापाचारी ही, कहो दण्ड के पात्र बनें?
या सबको ही वा पापाचरण, का दण्ड कहो मिलता है? किस आधार पे तुम कहो, इसका निर्णय होता है?
यमदूत बोले,
वेदों ने जिन कर्मों का, है विधान कहें कर दिया। उन कर्मों को ही तो, जान लो है धर्म कहा।।
जिनका वहाँ निषेध किया, उनको ही अधर्म कहा। वेद को तो प्रभु का ही, अपना है स्वरूप कहा।।
स्वभाविक हैं जो श्री हरि के, श्वास प्रश्वास ही वेद हैं। यही सुना है हमने तो, स्वयं प्रकाश ही वेद हैं।।

त्रिगुणमय इस जगत् के, कहें जो भी पदार्थ हैं। सत्व रज और तमोमय, जितने भी प्राणी जग में हैं।।
अपने परम आश्रय प्रभु, में ही स्थित सब रहते हैं। ज्ञानी जन सब हमने सुना, ऐसा ही तो कहते हैं।।
वेद ही उनके गुण नाम, कर्म और रूप अनुसार। उचित विभाजन उनका करें, यह ही कहें विद्वद विचार।।

शरीर अथवा मन से भी, जीव जो जो कर्म करे। प्रभु की रची इस सृष्टि में, बहुत से उसके साक्षी रहें।।
सूर्य अग्नि और आकाश, वायु इन्द्रिय और चन्द्रमा। सन्ध्या रात्रि दिन दिशा, जल पृथ्वी काल और धर्म कहा।।
इनके द्वारा भी अधर्म का, पता चल ही जाता है। उसके आधार पे दण्डपात्र, का निर्णय हो जाता है।।
अपने अपने कर्मों के, अनुसार दण्ड सब पाते हैं। पाप कर्म में लगे जीव, दण्डित यूँ हो जाते हैं।।

हे अनघ यह जान लो, जो भी प्राणी कर्म करें। गुणों से ही वह हैं बन्धे, उनसे नियन्त्रित ही रहें।।
इस कारण सबके द्वारा कुछ कर्म तो पुण्य बनें। और कर्म कुछ ऐसे हों, जिनको हम यहाँ पाप कहें।।
फिर जब तक देह यह बनी रहे, कर्म तो होते ही रहें। बिना कर्मके कोई जीव, इस पल भी न रह सके।।

इस लोक में जो भी जीव, जैसा जैसा कर्म करे। धर्म या अधर्म का, जितना उसमें पुट रहे।।
परलोक में उसका वैसा ही, फल भी भोगना पड़ता है। यह तो नियम है बना हुआ, कर्म चक्र यूँ चलता है।।

सत्त्व रज और तम, इन तीन गुणों के भेद से। इस लोक में भी पात्रिभान्ति, के प्राणी ही दीख पड़ें।।
पुण्यात्मा या पापात्मा, या पाप पुण्य दोनों से युक्त। सुखी कोई और दु:खी कोई, या सुख दु:ख मिश्रण से जो युक्त।।
वैसे ही परलोक में भी, त्रिविधता का अनुमान है। हे देवशिरोमणि इसी भान्ति, सब गुण के वहाँ परिणाम हैं।।

वर्तमान का काल ही, अनुमान दे भूत भविष्य का। वैसे ही पाप पुण्य जो, वर्तमान इस जन्म का।।
भूत और भविष्य के, पाप पुण्य संकेत करे। इस जन्म को देखकर, उन दोनों को तू जान सके।।
अजम प्रभु यमराज तो, सर्वज्ञ हैं स्वामी हमारे। सबके अन्त:करण में, वह स्वयं ही हैं विराज रहे।।
अपनी आन्तर्दृष्टि से, वह सब रूपों को जान लें। पूर्व रूप के साथ साथ, वह भावी का भी विचार करें।।

स्वप्न में ज्यों सुप्त जीव, अज्ञानमय निद्रा में सोया। स्वप्न के कल्पित तन को ही, वास्तव में अपना जान रहा।।

सोये हुए या जागृत तन, की पहचान ही नहीं रहे। वैसे ही यह जीव भी, पूर्व जन्म को भूला रहे।।
बस वर्तमान तन ही जाने, नहीं याद है आगे पीछे कुछ। भूत भविष्य की सुधि नहीं, केवल आधुनिक में ही है चित्त।।

इस शरीर में बसा जीव, जो भी जग में लेवे देवे। चलना फिरना आदि भी, करे कर्म पंच कर्मेन्द्रियों से।।
रूप रसादि पाँच विषय का, ले अनुभव ज्ञानेन्द्रियों से। सोलहवें मन के साथ वह, सत्रहवाँ आप भी मिल जाये।।
कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय और, इस मन का उपभोग करे। अकेला ही वह त्रै विषय, का स्वयं ही भोग करे।।

त्रैगुण और सोलह कहा युक्त, है जीव का यह लिंग शरीर। सब भावों और अनुभव का, उद्गम स्थान है लिंग शरीर।।
बार बार यही हर्ष शोक, भय और पीड़ा भी दे। जन्म मृत्यु के चक्र में, जीव को यह ही डाल दे।।

अज्ञान वश ही जीव यह, छः शत्रु के वश में रहे। काम क्रोध लोभ और मोह, मद मत्सर न जीत सके।।
बिन चाहे विवश ही वह, वासना अनुकूल कर्म करे। रेशम के कीड़े की तरह, अपने ही जाल में फँस जाये।।
अपने हाथों वह अपने ही, मोह का फिर शिकार बने। जन्म मरण का पहिया यह, इस विध ही घूमा करे।।

कोई तन धारी इक क्षण भी, बिना कर्म न रह सके। स्वभाविक गुण हर जीव के, विवश कर्म प्रवृत्त करें।।
पूर्व जन्म के पाप पुण्य के संस्कारों के अनुसार। स्थूल और सूक्ष्म तन का, वैसा ही पाये अधिकार।।
प्रबल वासना उसकी उसे कभी माता जैसा रूप दे। कभी स्वभाविक गुणों से, वह पिता समान ही पुरुष बने।।

प्रकृति के संसर्ग से ही, है विपरीत यह ज्ञान हुआ। वास्तविक स्वरूप विपरीत जीव, निज को लिंग तन है मान रहा।।
यह विपर्यय भगवान के, भजन से दूर हो जाता है। प्रभु कीर्तन की ध्वनि सुन, यह भ्रम भंजित हो जाता है।।
हे देवजनो यह जानो आप, अजामिल तो शास्त्र था। सदाचार शील और सद्गुण का, मानों स्वयं वह कोश ही था।।
विनीत जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, और वह सत्यनिष्ठ था। मन्त्रवेत्ता भी वह था, और वह अति पवित्र था।।

गुरु अग्नि अतिथि और, वृद्ध जनों का सेवक था। अहंकार से तो प्रायः, नितान्त ही वह निवृत्त था।।
सर्वभूत सुहृद् था वह, सबका उपकार भी करता था। मितभाषी था स्वयं वह, स्वभाव से ही अनुसूय था।।
इक दिन आदेश पिता का पा, वह ब्राह्मण वन में गया। फल फल समिधा कुशा, लेकर घर था लौट रहा।।

राह में देखा अभद्र पुरुष, अति कामी और निर्लज्ज जो था। मद्यपान वह कर करी, वेश्या के संग था विचर रहा।।
वेश्या भी मदिरा पान कर, मतवाली थी हो रही। नशे के कारण नयना वा, अति चंचल गति से नाचे थीं।।
अर्धनग्न अवस्था में, ही थी वेश्या वह पड़ी। वेश्या संग कभी गाता शूद्र, उसके संग कभी हँसता भी।।
भान्ति भान्ति की चेष्टा कर, वह उसे मुदित था कर रहा। इस प्रकार दुराचार निज, प्रदर्शित था वह कर रहा।।

कामोद्दीपक द्रव्यों से, थे अंग अंग उसके सजे। उस शूद्र की भुजाओं में, अंग रागादि थे लगे।।
उनसे वह उस कुलटा का, आलिंगन था कर रहा। ऐसी अवस्था देख उनकी, अजामिल मोहित हो गया।।
सहसा काम ने उसपर, भी अपना प्रहार किया। सदाचारी उस ब्राह्मण को, अपने वश में कर लिया।।

धैर्य और निज ज्ञान से, अजामिल ने बहुत यत्न किये। काम वेग से विचलित था, मन को वश में न कर सके।।

पूरी शक्ति लगाकर भी, अजामिल असमर्थ हुआं अपने मन के हाथों ही, था अति विवश वह हो गया।।

उस वेश्या को निमित्त बना, काम पिशाच ने उसे ग्रसा। अजामिल के मन को उसने, पूर्णतय: मोहित किया।।
शास्त्र सम्बन्धित चेतना, और सदाचार सब नष्ट हुआ। मन ही मन उस वेश्या का, चिन्तन वह करने लगा।।
इस विधि निज धर्म से, अजामिल था विमुख हुआ। सदाचार को छोड़ कर, कदाचारी वह बन गया।।

सुन्दर वस्त्र और आभूषण, जिनसे प्रसन्न वह होती थी। अजामिल ने सब ही लाकर, उसे वेश्या के चरण धरी।।
फिर तो यह नित्य का, ही था उसका काम बना। निज पिता की सारी सम्पद् को, उसने इसीमें लुटा दिया।।
उस वेश्या को रिझाना ही, इक मात्र इसका काम रहा। किस विधि वह रीझेगी, बस वैसी ही चेष्ठा करता।।

स्वच्छन्द चारिणी कुलटा की, तिरछी चितवन ने चित्त को हरा। कुलीन और नवयुवा विवाहित, पत्नी तक का त्याग किया।।
पाप की भी देख लो, कहीं भला कोई सीमा है? मन के पीछे जो लगे, परिणाम यही तो होना है।।
न्याय या अन्यायपूर्वक, जहाँ से भी वह धन पाता। वह दुर्बुद्धि सत्य भूल, वहीं से उसे उठा लाता।।
उस वेश्या के विस्तृत ही, कुटुम्ब का पालन वह करता। दिन रात बस इसी काज में, अति व्यस्त था वह रहता।।

इस पापी ने शास्त्र आज्ञा, का उल्लंघन है किया। अपने मन का अनुसरण कर, स्वच्छन्द आचरण ही इसका रहा।।
सत्पुरुषों के द्वारा तो, निन्दित है ऐसा आचरण। बहुत दिनों तक वेश्या के, अन्न पे किया जीवन यापन।।
इस कारण उसका सारा, जीवन पापमय बन गया। यह ही इसकी दुर्गति, का है कारण बन गया।।

अब तक अपने पापों का, इस प्रायश्चित् कोई नहीं किया। इस कारण अजामिल यह, दण्ड का है भागी बना।।
दण्डपाणि यमराज के, पास जब यह जायेगा। पापों का वहाँ दण्ड भोग, फिर पावन यह हो जायेगा।।
शुकदेव बोले,
यमदूतों का अभिभाषण सुन, विष्णु दूत उनसे बोले। नीति निपुण थे वे राजन्, और धर्म का मर्म भी जाने थे।।
विष्णुदूत बोले,
बहुत आश्चर्य और खेद की, बात है यह तो यमदूतों। धर्मज्ञों की सभा में यूँ, अधर्म का प्रवेश हो।।
वहाँ निरपराध अदण्डनीय, जीवों को दण्ड दिया जाये। व्यर्थ में ही जीवों को वहाँ, तड़ित ही किया जाये।।

प्रजा के स्वयं जो रक्षक हैं, परोपकारी शासक समदर्शी। यदि विषम व्यवहार हो उनका ही, फिर किसकी शरण प्रजा लेगी?
ज्यों श्रेष्ठ जन आचरण करें, साधारण जन भी वहीं करें। जिस कर्म को निज आचरण से, धर्मानुकूल वह सिद्ध करें।।
जनता भी फिर उसका ही, अनुसरण करने लगती है। सत्पुरुष वर्तें जैसे, वह भी वैसा ही वर्तती है।।

पशु समान साधारण जन, स्वरूप न जानें धर्म का। अधर्म को भी वह न समझें, विश्वास किसी साधु पे जमा।।
उसकी आगोश में सीस धर, निर्भय वह हो जाते हैं। उसपे ही सब छोड़ कर, निश्चिन्त वह हो सो जाते हैं।।
वह दयालु सत्पुरुष, विश्वास पात्र जो जीव का। अपना हितैषी समक्ष जिसे, आत्म समर्पण उन्होंने किया।।
मित्र जान उसको अपना, कल्याण उसी पे छोड़ दिया। अज्ञानी जीवों के प्रति वह, विश्वासघात कैस कर सकता?

हे यमदूतो अजामिल तो, पूर्ण प्रायश्चित है कर चुका। कोटि जन्मों की पापराशि, इस कारण यह है काट चुका।।

विवशता से ही सही इसने, प्रभु का नाम पुकार लिया। मोक्षप्रद हरि नाम का, उच्चारण तो इसने किया।।
नारायण नाम के चार अक्षर, जिस पल इसने पुकार लिये। इतने से ही इस पापी के, सारे पाप ही नष्ट हुए।।

चोर शराबी मित्रद्रोही, गुरुपत्नी गामी या ब्रह्मघाती। इनके सम्पर्क में भी रहे, ऐसा जीव जो पतित अति।।
स्त्री राजा पिता और गौ, इन सबका चाहे हन्ता हो। चाहे जितना भी भारी और, जटिल पापी भी जितना हो।।
सबके लिये सर्वोच्च ही, इसको है प्रायश्चित कहा। श्री हरि के शुभ नामों का, गर वह उच्चारण है करता।।
प्रभु नाम को ले बुद्धि रमे, वा गुण लीला और रूप में। प्रभु की भी उनके प्रति, आत्मीयता फिर बन जाये।।

महाब्रह्मवादी ऋषियों ने, पापों के बहुत प्रायश्चित कहे। कृच्छ्र चन्द्रायण आदि, अनेक भान्ति के व्रत कहे।।
इन सबसे पापी की बुद्धि, मूल से शुद्ध नहीं होती। जैसे प्रभु के नाम गान, और कीर्तन से है वह धुलती।।
प्रभु के नाम उनकी कीर्ति, वा गुण का ज्ञान दे देते हैं। इस विधि वह चित्त को, नितान्त शुद्ध कर देते हैं।।

यदि प्रायश्चित करके भी, मन पुन: पाप की ओर लगे। तो वह प्रायश्चित भी ऐकान्तिक, नहीं है इतना जान ले।।
निज पाप कर्म और वासना का, समूल नाश गर चाहे कोई। प्रभु के नाम गान से, बड़ा नहीं साधन कोई।।
उससे चित उस जीव का, सर्वथा शुद्ध हो जाता है। पापमय भाव या कर्म कोई, फिर पास न उसके आता है।।

इसलिये हे यमदूतो, अजामिल को न ले जाओ। पापों का प्रायश्चित इसने किया, इतना जान ही तुम जाओ।।
मृत्यु बेला आने पर, श्री हरि का इसने नाम लिया। नाम उच्चारण से इसने, अन्दर बाहर सब शुद्ध किया।।

महापुरुष और सन्त जन, तो जाने हैं इस तथ्य को। जिस किसी भी बहाने से, हरि का नाम गर मुख से लो।।
परिहास में या अवहेलना में, या फिर तान आलाप में। संकेत में भी किसी विधि, गर हरि नाम मुख से निकले।।
सारे ही पापों को वह, स्वत: नष्ट कर देता है। जिसने प्रभु का नाम लिया, वह उनके धाम ही जाता है।।

गिरते समय या फिर कभी, पाँव के फिसलने पर। अंग भंग हो जाने पर, या फिर साँप के ढसने पर।।
आग में जलने से कभी, या फिर चोट के लगने पर। हरि हरि जो पुकार उठे, चाहे किसी भी विवशता पर।।
उसके सारे पापों का, प्रायश्चित स्वत: हो जाता है। फिर वह यम की यातना का, पात्र नहीं बन पाता है।।

जान बूझ कर ऋषियों ने, अनेकों प्रायश्चित हैं कहे। छोटे या बड़े पापों के, अनुरूप ही हैं यह सब कहे।।
उन तप दान जप आदि से, पाप नष्ट हो जाते हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं, प्रायश्चित फल यह लाते हैं।।
पर पापों से जो मलिन हुआ, वह हृदय शुद्ध न हो पाये। प्रभु चरण की सेवा से, वह स्वत: शुद्ध ही हो जाये।।

जाने या अनजाने में, अग्नि का स्पर्श गर हो जाये। अग्नि का सान्निध्य पा, ईंधन भस्म ही हो जाये।।
हे यमदूतों उसी भान्ति यदि, भली भन्ति उसे जान के ही। प्रभु का नाम लिया जाये, या उसको बिन जाने ही।।
उनके नाम संकीर्तन से, सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मूल से ही वह जल जायें, पुन: उभर नहीं वह पाते हैं।।

ज्यों परम पावनी अमृत के, गुण जीव कोई न जाने। अनजाने में भी गर पिये, अमरत्व प्रसाद में उसे मिले।।
वैसे ही बिन जाने भी, गर हरि का नाम लिया जाये। वह तो अपना फल उसे, निश्चित रूप से दे जाये।।

शुकदेव बोले,
विष्णु दूतों ने इस विधि पूर्ण भागवत धर्म कहा। अजामिल को उन्होंने राजन्, यम पाश से बचा लिया।।
पार्षदों की यह बात सुनी, यमदूत धर्म राज पे गए। सारे ही वृतान्त उन्हें, ज्यों के त्यों सुना दिये।।
अजामिल यमदूतों के, फंदे से फिर छूट गया। इस विधि हे राजन् वह, पुन: निर्भय और स्वस्थ हुआ।।
प्रभु के प्रिय पार्षदों के दर्शन पा आनन्दित हुआ। सीस झुकाकर उसने फिर, उन सबको प्रणाम किया।।

विष्णु दूतों ने जब देखा, अजामिल है कुछ कहने लगा। तब अन्तर्धान हुए सभी, उसके सम्मुख से ही सहसा।।
अजामिल ने इस अवसर पर, विष्णु दूतों से श्रवण किया। विशुद्ध भागवत धर्म से, था उसका परिचय हुआ।।
यमदूतों के मुख से भी, वेदोक्त धर्म उसने सुना। सगुण धर्म का रूप भी, उसने इस विधि जान लिया।।

सर्वपापहर श्री हरि की, महिमा उसने थी सुनी। शीघ्र हृदय में इस कारण, भक्ति उत्पन्न हो गई।।
निज पापों को याद कर, प्रायश्चित से चित्त भर गया। अपने किये पर फिर उसको, पश्चाताप होने लगा।।
अजामिल बोला,
मन ही मन अजामिल फिर, अति दु:खी होने लगा। इन इन्द्रियों का दास बनी, हाय यह मैंने क्या किया।।
इक दासी के गर्भ से, पुत्रों को उत्पन्न मैंने किया। स्वत: प्राप्त ब्राह्मणत्व को, इस विधि मैंने नष्ट किया।।
बार बार धिक्कार मुझे, अति निन्दित पापात्मा हुआ। अपने ही कुल को भी, कलंकित मैंने कर दिया।।
अबोध और सती अपनी, कुलीन भार्या का त्याग किया। सुरापान करनेवाली, कुलटा का संसर्ग किया।।

वृद्ध और तपस्वी थे, माता पिता दोनों मेरे। नहीं कोई रहा उनकी सेवा को, वह सर्वथा असहाय हुए।।
मैंने उनका भी परित्याग किया, नहीं सेवा उनकी करी। अहो कृतघ्न मेरे जैसा, क्या इस जग में होगा कोई।।
निश्चित ही अति भयावह, नरकों में पतन मेरा होगा। पापात्मा कामी धर्मघाती, यम यातना भोगें जहाँ सदा।।

अति अद्भुत जो देखा अभी, क्या मेरा स्वप्न मात्र ही था? अथवा जागृत अवस्था में, ही प्रत्यक्ष अनुभव हुआ?
अभी अभी हाथों में फंदा, लिये थे मुझको खेंच रहे। वे यमदूत जो आये थे, जाने कहाँ वह चले गए।।
अपने फंदा में फाँस मुझे, थे धरा के नीचे जा रहे। पर सौन्दर्यमय चार सिद्ध, न जाने कहाँ से आ प्रकटे।।
उन्होंने ही आकर मुझको, इनके पाश से छुड़ा लिया। ऐसा उपकार किया मुझपर, फिर जाने कहाँ सब लुप्त हुआ।।

यद्यपि इस जन्म में तो, अति पापी नीच पामर हूँ मैं। फिर भी किसी पूर्व जन्म के, पुण्य उदय होने का हुआ हूँ भागी मैं।।
तभी तो ऐसे श्रेष्ठ जन, के दर्शन मुझे हो पाये। उनकी स्मृति से हृदय मेरा, पुलकित अब भी हो जाये।।
अपावन मैं कुलटागामी, कोई शुभ कभी मैंने नहीं किया। फिर भी इस जिह्वा से, अन्त में हरि का नाम बहा।।
यदि पूर्व जन्म का भी कोई, पुण्य कर्म कहीं न होता। तो मनमोहक यह हरि नाम, इस मुख से कैसे बह पाता?

कपटी पापी निर्लज्ज मैं, ब्रह्म तेज निज नष्ट किया। नारायण नाम श्री हरि का यह, अति मंगलमय पावन कर्ता।।
सचमुच ही इस नाम से, धन्य धन्य मैं हो गया। पाप पूर्ण जीवन भी यह, कृतार्थ ही मेरा है हुआ।।
मन इन्द्रिय प्राणों को, अब निज वश में करूँगा मैं। पूर्ण सामर्थ लगाकर के, अब ऐसा यत्न करूँगा मैं।।

पुन: घोर तिमिर के नरक में, कहीं डूब न जाऊँ मैं। अपने को इस पतन से, अब यत्न कर के बचाऊँ मैं।।

अज्ञान के मैं वशीभूत हुआ, अपने को तन ही मान लिया। कामना कर उसके लिये, वा पूर्ति को सब कर्म किया।।
उसीके फल स्वरूप मैं, इस बन्धन में आन पड़ा। इसे काट अब सब भूतों, के हित में रत रहूँगा।।
निज वासना शान्त कर, सुहृद् बनूँगा सबका ही। संयमित जीवन मेरा होगा, दुखियों पर सदा दया होगी।।

प्रभु की अपनी माया ने, सुन्दर स्त्री का रूप धरा। मुझ अधम कामी पुरुष को, अपने पाश मे फाँस लिया।।
क्रीड़ा मृग की भान्ति मुझे, उसने बहुत नाच नचाया है। अब मुक्त करूँगा अपने को, इससे जो प्रभु की माया है।।
सत्य सार इस जीवन का, प्रभु को अब पहचान लिया। तनत्व भाव और मैं मेरे के, भाव का अब अभाव किया।।
भगवन्नाम संकीर्तन से अपने को शुद्ध करूँगा मैं। मन की शुद्धि कर करी, हरि नाम से उसे भरूँगा मैं।।
शुकदेव बोले,
प्रभु पार्षद महात्मन् का, क्षणिक ही था सत्संग मिला। इतने से ही अजामिल का, चित्त जग से उपराम हुआ।।
तीव्र वैराग्य उसमें जगा, सबसे सम्बन्ध और मोह त्यजा। सब त्यजकर अजामिल ने, हरिद्वार की पकड़ी राह।।
उस देवस्थान में प्रभु मन्दिर, में आसन उसने लगा लिया। योगमार्ग का आश्रय ले, सब इन्द्रियों को वश में किया।।
विषयों से हटाकर के, मन में लीन उन्हें कर दिया। और पुन: इस मन को भी, बुद्धि में जा लीन किया।।

तत्पश्चात् आत्म चिन्तन, में ही चित्त लगा दिया। इस विधि निज बुद्धि को, विषयों से उस पृथक् किया।।
प्रभु के धाम अनुभव स्वरूप, परम् ब्रह्म में जोड़ दिया। इस विधि अजामिल ने, निज को हरि में युक्त किया।।

त्रिगुणमयी प्रकृति से जब, बुद्धि उसकी ऊपर उठी। माया जाल से मुक्त हो, प्रभु के स्वरूप में स्थित हुई।।
तब देखा उसने सामने, वे ही पार्षद थे खड़े हुए। जिनका दर्शन पूर्व पाया, वही पुन: आ प्रकट हुए।।
सीस झुका अजामिल ने, नमस्कार उनको किया। अपना सर्वस्व ही उसने ज्यों, उनके चरण में धर दिया।।

उनका दर्शन पाकर तीर्थ में, गंगा तट पर निज प्राण त्यजे। तत्काल ही वह प्रभु पार्षदों, के स्वरूप को पा गये।।
प्रभु पार्षदों के संग ही वह, स्वर्ण विमान पे जाय चढ़े। आकाश मार्ग से लक्ष्मीपति, श्री हरि के धाम वैकुण्ठ गए।।

हे राजन् अजामिल ने, दासी का था सहवास किया। धर्म कर्म उसने अपना, सारा था चौपाट कर दिया।।
इस निन्दित कर्म के कारण वह, अति पतित था हो गया। धर्म से च्युत होकर के वह, नरकों में था जा रहा।।
किन्तु श्रीमन्नारायण का, नाम उच्चारण मात्र किया। इस कारण तत्काल ही वह, यम पाश से मुक्त हुआ।।

निज चरण स्पर्श से ही प्रभु, तीर्थ को तीर्थ कर देवें। उनके नाम से बढ़कर के, नहीं मुक्ति का साधन कोई भी रे।।
जो जीव भव बन्धन से, मुक्ति हैं पाना चाहते। हरि के पावन नाम का, ही आश्रय वह जन ले लें।।
नाम का आश्रय लेकर के, पुन: कर्म बन्ध में नहीं पड़े। अन्य कोई प्रायश्चित भी, मन को निर्गुण कभी नहीं करे।।
रजोगुण और तमोगुण से, ही ग्रसित वह रहता है। किसी अन्य साधन से भी, नहीं पाप समूल यह मिटता है।।

इस अत्यन्त गोपनीय, इतिहास को तुम जान लो। सब पापों को यह नष्ट करें, परीक्षित् यह तुम मान लो।।
श्रद्धा और भक्ति सहित इसे, जो श्रवण कीर्तन करता है। नरकों की यातना में, वह जीव कभी नहीं पड़ता है।।

यमराज के दूत उसे, नहीं आँख उठाकर देख सकें। जीवनभर के पाप भी, क्षणभर में सारे क्षय होएँ।।
बैकुण्ठ लोक में भी जानो, पूजा उसकी सदा होती है। हरि के नाम की जान लो, ऐसी महिमा होती है।।

हे परीक्षित् देखो तुम, भगवत् नाम का चमत्कार। अजामिल जैसे पापी ने, पुत्र बहाने लिया उच्चार।।
उसको भी वैकुण्ठ की, सहज ही प्राप्ति हो गई। यमदूतों के पाश से, तत्काल ही मुक्ति उसकी हुई।।
फिर श्रद्धापूर्ण हृदय से जो, श्री हरि का नाम उच्चार लें। उनकी गति की हे राजन्, तुमसे क्या हम बात कहें।।
परीक्षित बोले,
देवाधिदेव धर्मराज के, वश में हैं जीव सारे। उन्हीं की आज्ञा भंग करी, श्री विष्णु के पार्षदों ने।।
यमराज के दूतों को, अपमानित पार्षदों ने किया। यमपुरी में जा यमदूतों ने, अजामिल का वृतान्त कहा।।
अपने दूतों से हे मुनिवर, जब धर्मराज ने सब सुना। फिर प्रत्युत्तर में उसके, उन निज दूतों से क्या कहा?

हे ऋषिश्रेष्ठ ऐसी बात, नहीं पहले कभी मैंने सुनी। किसी ने कभी किसी कारण, अवहेलना धर्मराज की करी।।
इस विषय में लोग बहुत, संशय करेंगे हे भगवन्। नहीं आपसे अन्य कोई, कर पाये जो संशय का हरण।।
ऐसा निश्चय है मेरा, सो मुनिवर आप ही कृपा करें। निज वचनामृत से प्रभु, यह भ्रम मेरा दूर करें।।
शुकदेव बोले,
श्री हरि के पार्षदों ने, पूर्ण विफल जब उन्हें किया। तब यमदूतों ने जाकर, संयमनी पुरी में कदम धरा।।
उसके शासक अपने स्वामी, श्री धर्मराज के पास गए। उनकी शरण में पहुँचकर, निवेदन उनसे करने लगे।।
यमदुत बोले,
हे प्रभु संसार में, जीव यह तीनों विधीसे कर्म करे। पाप हों या वह पुण्य हों, या दोनों मिश्रित ही रहें।।
जीवों को उन कर्मों का, फल कौन प्रभु देता है? संसार में कितने शासक हैं, जिनसे फल यह मिलता है?

यदि शासक हों बहुत से, जो दण्ड यह दे सकें। तो सुख दु:ख किसे कैसे मिलें, व्यवस्था एक सी कैसे होए?
इस जग में अनेकों ही, जीव अनेकों कर्म करें। यदि उन सब जीवों के, शासक भी अनेक भएँ।।
तो उन सबका शासन भी नाममात्र बस रह जाये। जैसे इक सम्राट् के, अधीन अनेक सामन्त रहें।।

हम तो इतना ही जानें, शासक हैं बस आप ही। सब जीवों और उनके स्वामिन के, भी हैं अधीश्वर आप ही।।
सबके पाप और पुण्य के, निर्णायक प्रभु आप हैं। सबके शासक और दण्डदाता, भी हे देव इक आप हैं।।
आपने इस संसार में, जिसके लिए जो विधान किया। अवहेलना उस दण्ड की, कभी नहीं कोई कर सका।।
पहली बार ऐसा हुआ, अद्भुत सिद्ध चार प्रकटें। आपने जो आज्ञा थी दी, उल्लंघन उसका कर सके।।

आपकी आज्ञा पा के प्रभु, इक पापी हम ले जा थे रहे। यातनागृह की ओर ही, उसके थे हमने मुख किये।।
पर उन सिद्धों ने बलपूर्वक, आपका फंदा काट दिया। जो आपके पाशों में था बन्धा, उस पापी को मुक्त किया।।

हे प्रभु हम आपसे, रहस्य जानना चाहते हैं। यदि पात्र समझें आप हमें, करें कृपा चरण में बैठे हैं।।
अत्यन्त ही आश्चर्यजनक, घटना उस पल प्रभु घटी। अजामिल के मुख से अभी, नारायण ध्वनि निकली ही थी।।

तत्क्षण ही फिर चमत्कार, एक हवाँ ऐसी हुई। भयभीत न होना तुम, ऐसी सान्त्वना उसे मिली।।
ऐसा कहकर तत्क्षण ही, झपट कर वहाँ सिद्ध पहुँचे। और हमारे पाश से, मुक्त कर उसे ले गए।।
शुकदेव बोले,
दूतों का यह प्रश्न सुन, धर्मराज अति मुदित हुए। देवशिरोमणि स्वयं वह थे, और प्रजा के शासक थे।।
श्री हरि के चरण कमल, का ध्यान उन्होंने किया। फिर जो प्रश्न था दूतों का, उसका यह उत्तर दिया।।
यमराज बोले,
मेरे अतिरिक्त जानो तुम, इस जगत् का स्वामी एक अन्य। सारी सृष्टि यह सारा जगत्, उसमें ही रचित हुआ है धन्य।।
ज्यों वस्त्र में सूत ही, ओत प्रोत हो कण कण में। उसी विधि वह व्याप्त हैं, चराचर जगत् के हर कण में।।
ब्रह्मा विष्णु और शंकर, वा अंश उन्हीं के अधीन हैं। उत्पत्ति स्थिति प्रलय जग की, उनके ही तो अधीन है।।
नथा हुआ ज्यों बैल हो, विवश ही रहे वह घूमता। उनके अधीन सारा ही जग, उसी विधि है घूम रहा।।

जैसे किसान निज बैलों को, बान्धे छोटी रस्सियों से। फिर इक बड़ी आड़ी रज्जू में, उन सबको ही बान्ध वह दे।।
वैसे ही चारों वर्ण और, चारों आश्रम के नाम जो। उन सबको जगदीश्वर की, छोटी रज्जू तुम जान ले।।
इन सब नामों में बाँधकर, पुन: वेदवाणी में बाँध दें। उस बड़ी रज्जू पे ही, सब छोटी रस्सियाँ टिकी रहें।।

सारे जीव इस नाम और, कर्म पाश में बँधे रहें। भयभीत होकर वह उनको, निज सर्वस्व ही भेंट करें।।
इन्द्र निर्ऋति वरुण चन्द्र, अग्नि शंकर और वायु सूर्य। बारह आदित्य विश्वदेवा, ब्रह्मा और आठों वसु साध्य।।
उन्चास मरुत और ग्यारह रुद्र, सिद्ध और बहु देव श्रेष्ठ। रज तम से रहित भृगु प्रजापति, हैं सत्व प्रधान जो भी ज्येष्ठ।।
सबके सब उनकी माया, के अधीन ही रहते हैं। प्रभु की कब क्या इच्छा है, उससे अनभिज्ञ ही रहते हैं।।
तब दूजों की तो बात ही क्या, कोई न उनको जान सके। सबके स्वामी जगदीश्वर को, कोई न पहचान सके।।

ज्यों दृश्य का विषय हों, रूपवान् पदार्थ जो। अपने प्रकाशक नेत्र को, देखने में असमर्थ वह हों।।
अपने अन्त:करण में स्थित, वैसे ही प्रभु साक्षी जो। इन्द्रिय मन प्राण हृदय, या वाणी जो भी साधन हो।।
उनकी ही सत्ता से तो, यह सब सत्तवान् हों। किसी भी साधन से उन्हें, जानना सम्भव नाहीं हो।।

सबके स्वामी हैं वह प्रभु, परम स्वतंत्र हैं वह स्वयं। उनके दूत इस लोक में, प्राय: विचरें हैं स्वयं।।
उन मायापति पुरुषोत्तम के, दूत भी उन सम हैं सुन्दर। परम मनोहर रूप गुण, और स्वभाव से हैं सम्पन्न।।
देवता गण से भी पूजित, परम अलौकिक वह पार्षद। प्रभु विष्णु के इन दूतों का, दर्शन भी है अति दुर्लभ।।
प्रभु के भक्तजनों को वह, सदा सुरक्षित रखते हैं। उनके शत्रु विपदा अग्नि, मुझ यम से रक्षा करते हैं।।

श्री हरि ने स्वयं ही, धर्म मर्यादा को रचा। न जानें ऋषि या सिद्ध उसे, न ही जानें उसे देवता।।
ऐसे में फिर जीव या, विद्याधर चारण और असुर। यह सब कैसे जान सकें, उनकी जो माया दुस्तर।।

परम शुद्ध अति गोप्य है, भागवत धर्म जो उन्होंने रचा। अति कठिन है उनके इस, भागवत धर्म को जानना।।
उसको जान जो लेता है, भागवत धर्म ही पा ले वो। हम बारह जन ही इस धर्म, के रहस्य के ज्ञाता हों।।

श्री ब्रह्मा देवर्षि नारद, प्रभु शंकर और सनत्कुमार। कपिलदेव स्वयंभू मनु, राजर्षि जनक और प्रह्लाद।।

भीष्म पितामह और बलि, शुक देव जी और मैं धर्मराज। इनके अतिरिक्त न जाने कोई, इस भागवत धर्म का राज।।
इस जगत् में जीवों का, सर्वोच्च धर्म बस यह ही है। सबसे बड़ा कर्त्तव्य भी, सब जीवों का यह ही है।।
नाम संकीर्तन आदि से, प्रभु के चरण में ही रहें। जिस किसी भी उपाय से, भगवत् भक्ति ही प्राप्त करें।।

प्रभु के नाम उच्चारण की, महिमा तो देखो प्रिय दूतो। अजामिल जैसे पापी की, सद्गति हुई तुम यह देखो।।
इक बार नाम उच्चारा उस, वह मृत्यु पाश से छूट गया। नाम का यह प्रभाव था, वह मुझसे भी न बन्ध सका।।

प्रभु के नाम गुण लीला का, दत्तचित्त होई जो गान करे। उनके नाम का संकीर्तन, कोटि पापों को भी हर ले।।
यह तो सहज है फल इसका, साक्षी से इसे जान लो। मृत्यु बेला अजामिल ने, चंचल चित्त से ही नाम लियो।।
अपने पुत्र का नाम ही, नारायण उसने बुलाया था। पाप क्षीण हुआ सारा, संग वह मुक्त भी हो गया।।

बड़े बड़े विद्वान् भी, माया से मोहित हो जायें। कर्मों के खट्टे मीठे, फल वह भी चखना चाहें।।
अर्थवाद रूपिणी जो, वेदवाणी से मोहित हों। यज्ञ योग आदि जैसे, सब कर्मों में संलिप्त वे हों।।
अति सुगम इस नाम की, महिमा से अनभिज्ञ रहें। अति खेद की बात है यह, रहस्य नहीं वे जान सकें।।

बुद्धिमान यह विचार कर, निज चित्त चरण में लगाता है। श्री अनन्त के चरण में, निज भक्ति भाव जगाता है।।
ऐसा जीव तुम जान लो, मेरे दण्ड का पात्र नहीं। सर्वप्रथम तो जान लो, वह पाप कभी करते ही नहीं।।
यदि कभी संयोगवश, पाप हो जाये उनसे कहीं। श्री हरि के गुणगान से, तत्काल नष्ट हो जायें सभी।।

समदर्शी जो साधु हैं, प्रभु को ही साध्य साधन जानें। सब भान्ति हरि पे ही, वे सदा निर्भर रहें।।
महादेव और सिद्धजन, उनके पावन चरित का गान करें। प्रेम से ही सदा उनकी, महिमा का बखान करें।।
उनकी रक्षा सदा करे, हे दूतो प्रभु की अपनी गदा। उनके पास तो भूल से, भी न जाना तुम कदा।।
उन्हें दण्ड देने की तो, सामर्थ्य न हममें हो सके। साक्षात् प्रभु काल स्वयं, नहीं उनका कुछ भी बिगाड़ सको।।

सब जग और निज तन में भी, अहं मेरे मिटाकर के। जिस दिव्य रस का लोभ महा, परमहंस न छोड़ सकें।।
अकिंचन् वह निरन्तर ही, मुकुन्द चरण में नित्य रहें। उनके चरणारविन्द का, मरकन्द रस ही पान करें।।
उस दिव्य सुधा से विमुख जो, नरके के द्वार पे पड़े हुए। तृष्णा की गठरी बान्ध कर, उसका बोझा हैं ढो रहे।।
घर गृहस्थी की दलदल में, ही निरन्तर फंसे रहें। उनको ही तुम बार बार, मेरे पास ले आना रे।।
जिनकी जिह्वा श्री हरि के, गुण नाम को नहीं उच्चारती। जिनका चित्त श्री हरि के, चरणारविन्द अनुरक्त नहीं।।
जिनका सीस श्री कृष्ण के, चरणों में कभी झुका नहीं। भगवत्सेवा विमुख हैं वह, पापी जानो यम ग्रास ही।।

मेरे दूतों ने आज प्रभु, पार्षदों का है अपराध किया। ऐसा करके प्रभु का ही, है उन्होंने तिरस्कार किया।।
मेरे दूतों का दोष तो, मेरा ही है अपराध यह। पुराण पुरुष प्रभु नारायण, क्षमा करें अपराध यह।।
अज्ञानी होने पर भी हम, हैं तो उनके अपने ही। अंजलि बान्धे खड़े हैं हम, आज्ञा पाने को उत्सुक ही।।
हैं परम प्रभु के योग्य यही, अपने जन को वह क्षमा करें। सर्व अन्तर्यामी प्रभु को, बार बार हम नमन करें।

शुकदेव बोले,
हे परीक्षित् इसलिये, तुम भी यह ही समझ लो। संसार में कल्याण का, सर्वोत्तम साधन यह ही हो।।
बड़े बड़े पापों का भी, सर्वोत्तम प्रायश्चित यह ही हो। पाप वासना सारी का, उन्मूलनकर यह ही हो।।
केवल प्रभु के गुणों और, लीला का गान किया जाये। उनके नाम संकीर्तन से, पाप नष्ट सब हो जायें।।

पुन: पुन: प्रभु के जो, उदार चरित का श्रवण करें। या कृपापूर्ण चरित्रों का, सप्रेम जो संकीर्तन करें।।
उनके हृदय में प्रेममयी, भक्ति उदय हो जाती है। उस भक्ति से फिर स्वत:, आत्म शुद्धि हो जाती है।।
किसी भी व्रत या नियम से, ऐसी शुद्धि न हो पाये। हरि नाम संकीर्तन से, स्वच्छता जैसी चित्त आये।।

श्री कृष्ण चरणारविन्द के, सुधा रस का जिसे लोभ रहे। स्वभाव से दुखद और व्यक्त, वह मायिक विषयन् में न रमे।।
किन्तु उस दिव्य सुधा रस से, जो विमुख हैं हुए हुए। विवेक बुद्धि रहित जो,ख कामना ग्रसित हैं हुए हए।।
निज पापों की शुद्धि को, प्रायश्चित में वह पड़े रहें। अपनी शुद्धि के कारण, भान्ति भान्ति के कर्म करें।।
उन सब कर्मों को करके भी, नहीं मिटे नितान्त वासना। उत्पत्ति हो जाती है पुन:, वैसे ही दोषों की वहाँ।।

यमदूतों ने निज स्वामी के, मुख से हरि की महिमा सुनी। श्री धर्मराज के मुख से सुन, पुन: उसकी सिमरन् करी।।
तब उनके आश्चर्य की, सीमा नहीं रही कोई। हरि नाम की महिमा तो, निज आँखों से थी देख ली।।
धर्मराज की बात पर, विश्वास उन्होंने कर लिया। हरि भक्त के पास नहीं जाते, निज नाश की कर वे आशंका।।
और तो क्या इक बार वे, आँख भी नहीं उठा पाते। उसकी ओर दृष्टि करते, वह तो हैं घबरा जाते।।

हे परीक्षित् जान लो यह, इतिहास है अति गोपनीय। अजामिल ही यह पुण्य कथा, है अति रहस्यमय।।
श्री अगस्त्य मलय पर्वत, पर हैं सदा विराजमान्। उनके ही श्री मुख से, सुना था मैंने यह वृतान्त।।

२) प्रचेताओं को नारद का उपदेश और दक्ष की साठ कन्याओं का विवरण

परीक्षित बोले,
हे प्रभु, स्वयंभुव मनवन्तर में, सृष्टि का कैसा क्रम था।
देवता असुर मनुष्य की, रचना कही कैसे हुई। सर्प और पशु पक्षी की, सृष्टि कही कैसे हुई।।
अब आपसे उसका ही, विस्तार मैं सुनना चाहता हूँ। परम कारण प्रकृति का जो, उसे भी जानना चाहता हूँ।।
प्रभु अपनी जिस शक्ति से, ही रचें सारी सृष्टि। जिज्ञासा है उसे जानने की, आप ही करें कृपा दृष्टि।।
सुत बोले,
व्यास सुत शुकदेव ने, परीक्षित् का यह प्रश्न सुना। सुन्दर प्रश्न यह सुन कर, अभिनन्दन करके यह कहा।।
शुकदेव बोले,
राजा प्राचीनबर्हि के, प्रचेता नाम के दस थे पुत्र। जब निकले सागर से बाहर, तब उन्होंने देखा यह दृश्य।।
निवृत्ति परायण पिता हुए, यह फिर उन्होंने जान लिया। इस कारण सारी पृथ्वी को, वृक्षों ने है आ घेरा।।
अति क्रुध हुए वृक्षों पर वह, तपोबल ने अग्न आहुति दी। वृक्षों को जलाने के लिये, मुख से वायु अग्नि निकली।।
उनके मुख से निसृत वायु अग्न, फिर वृक्षों को जलाने लगी। वृक्षों के अधिपति चन्द्रमा ने, वा क्रोध शान्त करनी चाही।।

इसी उद्देश्य से चन्द्रमा, प्रचेतागण से कहने लगे। क्रोध शान्त वा करने को, फिर उन्होंने यह वाक् कहे।।
चन्द्रमा बोले,
यह वृक्ष तो अति दीन हैं, प्रचेता आप महान् हैं। नहीं उचित है द्रोह इनसे, प्रजापति की यह सन्तान हैं।।
प्रजा की वृद्धि चाहें आप, आप ही तो हैं प्रजापति। इस रहस्य को जानते, इस जग के हैं लोग सभी।।
महात्मन हे प्रचेताओं, सब प्रजापतियों के अधिपति। अविनाशी श्री हरि ने ही, है वनस्पति सारी रची।।
प्रजा के हित के अर्थ ही, औषधियाँ भी सब दे दीं। उन्हीं के खान-पान की, है सारी व्यवस्था करी।।

चर प्राणी निज पंखों से, जो आकाश में उड़ सके। फल फूलादि उनका भोजन, अचर पदार्थ दे दिये।।
पैरों से चलने वाले जो, पशु और चौपाये हैं। घास तृणादि पदार्थ जो, बिन पैरों के बनाये हैं।।
हाथ वालों के लिये दिए, वृक्ष लता बिन हाथ के। दो पाँव पर चलनेवाले, मनुष्य आदि के लिये।।
धान गेहूँ अन्न आदि, सब भान्ति के भोजन दिये। चौपाए बैल ऊँठ आदि, खेती के साधन दे दिये।।

हे निष्पाप प्रचेता जन, तव पिता ने यह आदेश दिया। देवाधिदेव श्री हरि ने भी, आपसे है यह ही कहा।।
प्रजा की सृष्टि करना ही, एक आपका धर्म कहा। वृक्षों को ऐसे जला देना, नहीं उचित आपका हो सकता।।
शान्त करें निज क्रोध को, सत्पुरुषों का अनुसरण करें। पिता पितामह प्रपितामह के, पदचिन्हों पर आप चलें।।

ज्यों माता पिता रक्षण करें, हर हाल में निज शिशु का। पलकें रक्षण करें नेत्रों का, पति जैसे करे निज पत्नी का।।
गृहस्थ रक्षण करे भिक्षुक का, ज्ञानी करे अज्ञानियों का। वैसे ही प्रजा की रक्षाहित, उत्तरदायित्व है राजा का।।
सब जीवों के आन्तर में बसें, सर्वसामर्थ वह स्वयं ही। आत्म रूप में सबके हृदय, में विराजें आप वही।।
सब जीवों को आप प्रभु, का निवास ही मान लें। ऐसा करने से जानो, श्री हरि अति प्रसन्न होए।।

हृदय में हो जो उठा हुआ, क्रोध का अति भीषण तूफान। आत्म विचार के द्वारा जो, तन में ही कर ले उसे शान्त।।
तन के बाहर जाने का, अवसर उसको नहीं वह दे। समय के आने पर वह ही, तीनों गुणों को जीत सके।।

इन दीन हीन वृक्षों को, अब और न जलायें आप। जो कुछ भी है बच रहा, रक्ष उसकी करें आप।।
इससे ही आपका भी, कल्याण कहूँ हो जायेगा। इस श्रेष्ठ कन्या का पालन, भी वृक्षों ने ही है किया।।
पत्नी रूप में आप ही, स्वीकार इसे अब कीजिये। इस विधि प्रचेतागण, विधान वर्तने दीजिये।।
शुकदेव बोले,
वनस्पति और औषधि के, अधिपति चन्द्र देव ने। समझाकर उन्हें शान्त किया, शीतल चन्द्र देव ने।।
प्रम्लोचा अप्सरा की, सुन्दरी कन्या उनको दी। पाणिग्रहण विधिवत् हुआ, चन्द्र ने तब प्रस्थान किया।।

उस कन्या के गर्भ से, प्रचेतस: दक्ष उत्पन्न हुए। उन्हीं प्रचेतागण के ही, पुत्र कहें यह दक्ष थे।।
फिर दक्ष ने सृष्टि का, चक्र पुन: आरम्भ किया। अपनी ही प्रजा से उसने, त्रिलोकी को भर दिया।।
निज सुताओं पर इनका, अतीव स्नेह था जान ले। निज संकल्प और वीर्य से, विविध प्राणी इन्होंने रचे।।
सावधान होकर सुनो, अब उनकी तुम्हें सुनाता हूँ। दक्ष प्रजा कैसे बढ़ी, उसकी बात बताता हूँ।।

दक्ष ने जल थल के वासी, हे राजन् पहले रचे। आकाश वासी देवता, और असुर भी रच दिये।।
मनुष्य आदि प्रजा की सब, सृष्टि निज संकल्प से की। इस भान्ति दक्ष ने, प्रजा की पहली सृष्टि की।।
जब उन्होंने यह देखा, कि सृष्टि नहीं है बढ़ रही। विन्ध्याचल के निकट ही तब, पर्वत पर घोर तपस्या की।।

है अति श्रेष्ठ इक तीर्थ वहाँ, नाम है उसका अघमर्षण। निज नाम अनुरूप ही, सब पापों का कर दे मार्जन।।
उस तीर्थ में प्रजापति, त्रिकाल स्नान करते थे सदा। श्री हरि की आराधना में, मग्न थे वह तप के द्वारा।।

इन्द्रिय अतीत श्री हरि की, थी प्रजापति ने स्तुति करी। हँसगुह्य नामक स्तोत्र, से आराधना उनकी करी।।
उस स्तोत्र को सुनकर के, श्री हरि अति प्रसन्न हुए। उस स्तोत्र को हे राजन्, अब मेरे मुख से सुन तू ले।।
प्रजापति बोले,
प्रभु आपकी अनुभूति, और चित शक्ति निष्पाप है। जीव प्रकृति दोनों से, ही परे प्रभु आप हैं।।
नियमन उनका आप करें, और स्वयं ही सत्तावान् करें। जो इस त्रिगुणमयी सृष्टि, को ही वास्तविक सत्य जानें।।
आपके सत्य स्वरूप को, वह नहीं पहचान सकें। कोई भी प्रमाण तो, आप तक न जा सके।।
कोई अवधि या सीमा, नहीं प्रभु आपको बान्ध सके। मेरा नमस्कार हे स्वयं प्रकाश, हैं आप स्वयं परात्पर हे।।

जीव और ईश्वर यूँ तो, हैं इक दूजे के सखा। इस तन में साथ-साथ, ही तो है निवास इनका।।
हे सर्वसामर्थ आपके, साख्य को जीव न पहचाने। जैसे रूप रस गन्ध विषय, निज इन्द्रिय को न जानें।।
इस जीव और जगत् के, द्रष्टा आप है स्वयं प्रभु। दृश्य नहीं हैं आप तो, किसी भी इन्द्रिय के प्रभु।।
हे महेश्वर आपके भी, चरणों में मेरे नमस्कार। पुन: पुन: मैं सीस झुका, करूँ आपको नमस्कार।।

देह प्राण इन्द्रिय और, अन्त:करण की सब वृत्तियाँ। पंचमहाभूत हैं जो, और उन सबकी तन्मात्रा।।
जड़ हैं यह सब इस कारण, अपने को न जान सकें। अपने सिवा किसी अन्य को, भी नहीं यह जान सकें।।
पर जीव तो जाने इन सबको, और इनके कारण तीन गुण को। वह भी दृश्य या ज्ञेय रूप से, जान सके न आपको।।
आप ही सबके ज्ञाता भी, और अनन्त हैं आप प्रभो। मेरा सीस तो आपकी, स्तुति में ही नतमस्तक हो।।

प्रमाण विकल्प और विपर्यय, समाधि में सब लुप्त हों। विविध ज्ञान और स्मृति सभी, समाधि में सब गुप्त हों।।
इन नाम रूप से युक्त जग, का जो निरूपण करता है। समाधि काल में वह ही मन, उपरत इनसे हो जाता है।।
सच्चिदानन्द स्वरूप है, प्रभु आपकी स्थिति सदा। मन के बिना भी हे प्रभु, प्रकाशित आप ही रहें सदा।।
परं शुद्ध प्रभु आप शुद्ध, हृदय मन्दिर में निवास करें। हे हरि निज चरणों में मेरा नमन आप स्वीकार करें।।

ज्यों काष्ठ में अग्नि तो, निहित रूप में सदा रहे। याज्ञिक यज्ञ में मन्त्रों, के द्वारा उसे प्रकट करे।।
त्यों ही सारी शक्तियों में, गुह्य रूप से निहित रहें। ज्ञानी पुरुष शुद्ध बुद्धि से, निज हृदय में आपको ढूँढ लें।।

जग में जो भिन्नता दीख रही, सब माया का खिलवाड़ है। माया का गर निषेध हो, परम सुखदे बस आप हैं।।
सुख का साक्षात् स्वरूप, फिर आप ही बाकी रह जायें। जब विचार करने लगें, माया भी आप हैं जान ले।।
आपके ही तो हैं प्रभु, यह सारे जो हैं नाम रूप। प्रसन्न मुझपर हों प्रभु, मुझे दें आत्म प्रसाद रूप।।

जो भी वाणी यह कह सके, मन बुद्धि इन्द्रिय जो ग्रहण करें। हे प्रभु वह आपका, स्वरूप तो नहीं हो सके।।
वह सब तो गुण रूप है, गुणों का ही खिलवाड़ है। गुणों की उत्पत्ति प्रलय का, आप ही तो आधार हैं।।
केवल प्रतीति मात्र ही, हो गुणों की आप में। गुण राही प्रभु आपको, कभी कोई न जान सके।।

आपसे ही निकला यह जगत्, और आप में ही है स्थित प्रभु। आपने आप स्वत: ही तो, निर्माण है इसका किया प्रभु।।
इसकी उत्पत्ति को नहीं, किसी अन्य का लिया आसरा। आपके लिये यह है बना, और नितान्त है आपका।।
इसको बनानेवाले आप, इस रूप में प्रकट भी आप हैं। बनने बनाने की सभी, प्रक्रिया भी प्रभु आप ही हैं।।
आप स्वयं ही हैं प्रभु, सबसे काम भी आप ही लें। कार्य कारण भेद रहित, स्वत: सिद्ध स्थित आप रहें।।
सत्य तो यह है आप स्वयं, ही सबके कारण बनें। जीव जगत् के भेद रहित, सर्वथा अद्वितीय आप रहें।।
स्वयं ब्रह्म हैं आप प्रभु, प्रसन्न हों मुझ अकिंचन् पर। शरणागत हुआ आपके, सब अन्य आश्रय छोड़कर।।

वादी और प्रतिवादी के, वाद संवाद का विषय हों जो। हे प्रभु वह आपकी, ही तो अपनी शक्तियाँ हों।।
बार बार वह भी इनसे, मोहित होते रहते हैं। आप ही इनमें निहित रहें, यह वह देख न पातें हैं।।
सबके कल्याण स्वरूप आप, अनन्त गुणों से हैं सम्पन्न। पार कोई न पा सके, हे प्रभु आप तो हैं अनन्त।।

आपके भी चरणों में, है मेरा नमस्कार प्रभु। बार बार मैं आपके, चरणों में निज सीस धरूँ।।
भक्त तो यह ही कहें, हैं साकार हमारे प्रभु। सांख्यवादी आपको, निराकार ही जानें प्रभु।।
एक आपके ही प्रभु, परस्पर विरोधी धर्म कहें। फिर इन द्वौ धर्मों में, नहीं कोई विरोधाभास रहे।।
वास्तव में तो दोनों ही, एक परम में ही हैं बसे। साकार कहें या निराकार, आपके ही द्वौ रूप हैं ये।।
बिना आधार के रूप या, अव्यय कहीं न हो सकें। और इस निषेध की, अवधि भी कोई चाहिये।।
आप वही आधार हैं और, निषेध भी हैं आप ही। साकार और निराकार, दोनों रूप हैं आप ही।।
पर इन दोनों से परे, सम रूप में ही सदा स्थित रहें। परं ब्रह्म हैं आप प्रभु, आपको ही हम नमन करें।।

हे प्रभु आप अनन्त हैं, प्राकृत नाम और रूप परे। चरण कमल जो भी ध्याये, उसपे आप अनुग्रह करें।।
अनेक रूप में प्रकट हो, अनेक लीलायें करते हैं। उन रूपों और लीलाओं के, अनुरूप नाम फिर धरते हैं।।
हे प्रभु आप मुझे, निज कृपा प्रसाद ही दीजिये। मुझ अकिंचन् को प्रभु, अब अपनी शरण में लीजिये।।

प्राय: जीव की उपासना, साधारण श्रेणी की ही हो। सबके हृदय प्रभु आप बसें, प्रकट भाव अनुरूप ही हों।।
भिन्न भिन्न देवों के प्रभु, रूप में आप ही भास रहे। सब ही रूप प्रभु आप हैं, पर किसी एक में नहीं बन्धें।।
ज्यों वायु गन्ध सम्पर्क सों, सुगन्धित सी प्रतीत होए। पर वास्तव में तो प्रभु, वह सुगन्धित नहीं भए।।
सबके भावों अनुकूल ही, हे हरि आप हैं रूप धरें। हे प्रभु मेरी भी सब, अभिलाषा आप ही पूर्ण करें।।
शुकदेव बोले,
विन्ध्याचल के अघमर्षण, तीर्थ में जब यह स्तुति करी। प्रजापति दक्ष सम्मुख, श्री हरि ने रूप निज प्रकट करी।।
गरुड़ के कान्धे पर तब, निज चरण टिकाये थे भगवन्। विशाल रूप और हृष्ट पुष्ट, अष्ट भुजा धर थे भगवन्।।
चक्र शंख तलवार ढाल, बाण धनुष और पाश लिये। अष्ट भुजा में गदा सहित, यह आयुध थे प्रभु ने धारे।।

वर्षाकालीन मेघ समान, श्यामल तन था उनका बना। पीताम्बर अति कोमल सा, था उसपर लहरा रहा।।
अति प्रफुल्लित मुख मण्डल, नेत्रों से करुणा बरस रही। घुटनों तक लम्बी उनकी, गले से वनमाला लटकी।।

वक्ष:स्थल पर स्वर्ण रेखा, श्री वत्स चिन्ह सुशोभित था। श्री कण्ठ में कौस्तुभ मणि का, जगमग प्रकाश था फैल रहा।।
मकराकृति कुण्डल करधनी, अंगूठी और सुन्दर कड़े। बहुमूल्य किरीट और कंगन, श्री हरि पर थे सजे हुए।।
चरण में नुपूर और भुजा, बाजूबन्द से सुशोभित थी। प्रभु के अंग को छूकर के, आभूषण भी थी धन्य हुई।।

त्रिभुवन पति श्री हरि का, त्रैलोक्य विमोहक रूप था। नारद नन्द सुनन्दादि, पार्षदों ने था उनको घेरा।।
इन्द्रादि देवेश्वर गण, स्तुति थे उनकी गा रहे। सिद्ध गन्धर्व और चारण, गुण गान में थे लगे।।
अत्यन्त अलौकिक प्रभु का यह, आश्चर्यमय ही रूप था। इस रूप का दर्शन पा, दक्ष अति हतप्रभ हुआ।।

अति आनन्दित हो उसने, साष्टांग प्रणाम किया। श्री हरि के चरण कमल में, प्रजापति ने सीस धरा।।
ज्यों झरनों के जल ने हो, नदियों को परिपूर्ण किया। इक इक इन्द्रिय को उसकी, परमानन्द ने भर दिया।।
आनन्द के इस वेग से, वाणी उसकी गद्‌गद् हुई। प्रभु के दर्शन पाकर के, इक शब्द भी न मुख से निकली।।

अत्यन्त विनम्र भाव से, श्री हरि सम्मुख वह झुक गया। अन्तर्यामी प्रभु ने भी, हृदय का भाव उनका जान लिया।।
प्रजापति की भक्ति और, प्रजावृद्धि की चाह देख ली। श्री हरि ने प्रजापति दक्ष को, फिर ऐसी थी वचन कही।।

भगवान बोले,
महा भाग्यवान हो दक्ष तुम, तपस्या पूर्ण हुई तेरी। हृदय में मेरा प्रेम हैं, मुझमें है श्रद्धा तेरी।।
इस सृष्टि के वर्धन हेतु, है तपस्या तुमने करी। इससे ही हे प्रजापति, प्रसन्नता तुमने मुझको दी।।
यह मेरी ही इच्छा है, सर्वत्र सब समृद्ध हों। सब ही प्राणी जगत के, हे दक्ष अभिवृद्ध हों।।

ब्रह्मा शंकर और तुम समान, जितने भी हैं प्रजापति। स्वयंभू मनु देवेश्वर इन्द्र, सब ही हैं विभूति मेरी।।
सभी प्राणियों की यह सब, वृद्धि करने वाले हैं। मेरे ही द्वारा तो यह, कर्म में रत हुए सारे हैं।।

हे ब्रह्मन् यह जान लो, तपस्या मेरा है हृदय। विद्या ही मेरा शरीर है, आकृति कर्म को जान ले।।
यज्ञ अंग यह मेरे हैं, धर्म ही मन मेरा जानो। देवता मेरे प्राण हैं, हे दक्ष तुम यह पहचानो।।

सृष्टि की उत्पत्ति से, पहले था केवल मैं ही मैं। निष्क्रिय निराकार ही, जानो था केवल इक मैं।।
बाहर भीतर कहीं पे भी, अन्य कभी कुछ था ही नहीं। न तो कोई द्रष्टा ही था, न ही था कोई दृश्य कहीं।।
केवल ज्ञान स्वरूप ही मैं, अव्यक्त रूप में था पड़ा। मानो चारों ओर से, सुषुप्ति का ज्यों हो घेरा।।

आधार अनन्त गुणों का मैं, और स्वयं मैं अनन्त हुआ। गुणमयी इस माया में, क्षोभ उत्पन्न जब हुआ।।
तब ही तो मुझमें से यह, ब्रह्माण्ड शरीर प्रकट हुआ। इसमें से स्वयंभू तब, आदि पुरुष ब्रह्मा हुआ।।
जब उसमें चेतना और शक्ति, के मैंने संचार किये। तब देव शिरोमणि ब्रह्मा भी, सृष्टि हेतु उद्यत हुए।।
सृष्टि की रचना करने को, निज को असमर्थ ही उन्होने पाया। अपने आपसे उनसे यह, सृष्टि कार्य न बन पाया।।

उस समय उनको मैंने, आज्ञा दी कि तप करो। श्री ब्रह्मा ने अपने को, तप में तब संलग्न किया।।
उस तप के प्रभाव से, पहले रचे नौ प्रजापति। उसके ही परिणाम में, हुई तुम सबकी यह सृष्टि।।
हे प्रिय दक्ष यह देखो तुम, कन्या पंचजन प्रजापति की। आसिक्नी इसका नाम है, ग्रहण करो इसको पत्नी।।

गृहस्थ बनकर के अब तुम, स्त्री सहवास स्वीकार करो। आसिक्नी भी इस धर्म में, सहचारिणी तुम्हारी हो।।
तब इसके द्वारा तुम बहुत, प्रजा उत्पन्न कर पाओगे। इस विधि सृष्टि का भी, वर्धन तुम कर पाओगे।।

हे प्रजापति अब तक तो, सारी सृष्टि थी मानसी। पर अब तेरे बाद से, उत्पत्ति होगी तन से ही।।
मेरी माया से ही अब, स्त्री पुरुष संयोग होगा। उससे ही फिर प्रजा, और सन्तति का वर्धन होगा।।
यह सारी प्रजा जानो, रहे तत्पर मम सेवा में। इसी में ही तो इन सबका, कल्याण निहित ही रहे।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर विश्व के प्राणाधार, अन्तर्धान यूँ हो गए। जैसे स्वप्न टूटते ही, सब स्वप्न पदार्थ लय होएँ।।
श्री हरि शक्ति संचार से, दक्ष परम समर्थ हुए। पंचजन सुता असिक्नी से, उन्होंने पुत्र उत्पन्न किए।।
हर्यश्व नाम के वह, दस सहस्त्र पुत्र थे। हे राजन् प्रभु की ही, महिमा का यह परिणाम थे।।

एक सा ही आचरण और, इक जैसा ही स्वभाव था। सन्तानोत्पत्ति का उनको, दक्ष ने फिर आदेश दिया।।
आदेश पिता से जो पाया, उसे पूरा करने के लिये। तपस्या के विचार से, दक्षिण दिशा को वह गए।।
पश्चिम दिशा में सिन्धु नदी, और सागर के संगम पर। एक महान तीर्थ है, नाम है नारायण सरोवर।।
महा ऋषि और सिद्ध जन, निवास वहाँ पर करते हैं। अहर्निश प्रभु नाम और, तपस्या में रत रहते हैं।।

नारायण सरोवर में स्नान करी, अन्त:वृत्ति वा शुद्ध हुई। हर्यश्वों की बुद्धि भी, भागवत धर्म में लग गई।।
निज पिता दक्ष की आज्ञा से, फिर भी वह थे बन्धे हुये। इस कारण ही वहाँ पे वे, उग्र तपस्या करते रहे।।
देवर्षि नारद ने जब, देखा इन कुमारों को। भागवत् धर्म में रुचि तो है, फिर भी तत्पर प्रजावृद्धि को।।
तब नारद उन दक्षसुतों, से जाकर यूँ कहने लगे। प्रजापति हो तो क्या हुआ, हर्यश्वों तुम मूर्ख निकले।।
जब तुमने इस पृथ्वी का, अन्त तो देखा ही नहीं। अति खेद फिर सृष्टि की, है कल्पना ही कैसे करी?

देखो इक ऐसा देश है, उसमें पुरुष बस एक है। बहु रूपिणी ही वहाँ, स्त्री रहती एक है।।
इक बिल वहाँ ऐसा बना, जिसके बाहर न जा सकें। इक ऐसा ही पुरुष वहाँ, व्यभिचारिणी का जो पति भये।।
इक ऐसी है नदी वहाँ, जो दोनों ही दिशा में बहे। पच्चीस पदार्थों से बना, इक अति विचित्र वहाँ घर रहे।।
इक ऐसा है हँस वहाँ, कथा है जिसकी अति विचित्र। धुरे और वज्र से बना, वहाँ पे है इक अद्भुत चक्र।।
अपने आप में आप से ही, वह सदा ही रहता घूमता। मूर्ख हो हर्यश्वो तुम, नहीं इन सबको तुमने देखा।।
जब लग निज सर्वज्ञ पिता का, उचित आदेश न समझ लो। और जो ऊपर हैं कहीं, यह सब वस्तु तुम देख न लो।।
तब लग उनकी आज्ञा का, पालन कैसे कर पाओगे? उनके कथन अनुसार तुम, सृष्टि कैसे कर पाओगे?

हर्यश्व तो जन्म से ही, थे अत्यन्त बुद्धिमान्। देवर्षि नारद की पहले, सुनकर हुए विचारवान्।।
अति गुह्य यह वचन जो, नारद जी ने थे कहे। अपनी ही बुद्धि से वे, समाधान उनका करने लगे।।

हर्यश्व बोले,
(सोचा देवर्षि का कथन, झूठा नहीं कभी हो सकता। फिर उन्होंने जो बात कही, उसका है रहस्य का?)
लिंग शरीर साधारणत: जीव नाम से कहा जाये। पृथ्वी इसको ही कहें, आत्म का अनादि बन्धन यह।।
इसका अन्त देखे बिना, कोई साधन है किस काम का? जो कर्म मोक्ष न दे पायें, उनको करने से भला लाभ है क्या?

सचमुच ईश्वर एक ही है, वहाँ दूजा कोई न हो सके। जागृतादि अवस्था और, अभिमानी देव जो हैं उनके।।
उनसे सदा ही भिन्न है वह, साक्षी उनका वह तुरीय है। उसका आश्रय नहीं कोई कहीं, पर वह सबका आश्रय है।।
प्रकृति आदि से अतीत वह, वह ही तो भगवान् है। उस नित्य मुक्त परमात्मा का, दर्शन जीवन का काम है।।
जो कर्म श्री हरि के, चरण में अर्पित नहीं हुए। वह कर्म इस जीव के, जीवन में किस काम के?

बिल रूप पाताल को, जी जीव चला जाये। उससे बाहर निकल कर, पुन: लौट वह न आये।।
वैसे ही प्राप्त जिसे होकर, संसार में वापिस न आयें। आन्तर्ज्योति स्वरूप वही, परमात्म उसको ही कहें।।
उसको जाने बिना ही जो, कर्म किये क्या लाभ हुआ? स्वर्गादि सब फल भी मिले, विनाशवान् ही सब होगा।।

बुद्धि ही बहु रुपिणी, सत्व रज और तम से रंगी। हावभाव नित ही बदले, व्याभिचारिणी यह स्त्री।।
इस जीवन में गर इसका, अन्त न हमने जान लिया। इसका पीछा छोड़ कर, गर विवेक न प्राप्त किया।।
नित्य अशान्तकर कर्म, करने से फिर क्या होगा? इन सारे ही कर्मों का, है भला प्रयोजन क्या?

यह बुद्धि ही वह कुलटा है, जिसके संसर्ग में जीव फँसा। इसके संग से पुरुष का, ऐश्वर्य सारा नष्ट हुआ।।
स्वाधीनता नष्ट हुई उसकी, पराधीन वह हो गया। इसका अनुसरण करके ही, न जाने कहाँ वह भटक रहा।।
इसकी विभिन्न गति और चाल, गर हमने न जान ली। विवेक रहित ही कर्म किये, गर इसके पीछे चल करी।।
तो उन कर्मों से क्या होगा, नहीं सिद्धि मिल पायेगी। सारी श्रम उन कर्मों की, व्यर्थ ही तो जायेगी।।

माया ही है वह नदी, दोनों ओर जो बहती है। सृष्टि भी करती है यह, और प्रलय भी करती रहती है।।
इससे निकलने के लिये, तप विद्या का तट जो पकड़ें। उनको रोकने के लिये, अति उग्र रूप ही यह धरे।।
अहं क्रोधादि के वेग में, तीव्र गति से बहने लगे। उससे विवश हुआ उसकी, गति से वह अनभिज्ञ रहे।।
मायिक कर्म यह कर करी, वह क्या लाभ उठायेगा? क्षणभंगुर हैं उनके फल, यहीं पे सब रह जायेगा।।

यह पच्चीस तत्त्व जो हैं कहे, अद्‌भुत ही इनका आलय है। पुरुष ही उसका कहें, आश्चर्यजनक इक आश्रय है।।
कार्य कारण रूप जगत्, का वही अधिष्ठाता है। इस सत्य को बिन जाने, स्वतंत्र नहीं हो पाता है।।
झूठी स्वाधीनता में रहकर, जो कर्म किये क्या लाभ हुआ? अन्तवन्त वे सब ही हैं, इक दिन सब नष्ट हो जायेगा।।

शास्त्र ही वह हँस है, नीर क्षीर जो अलग करे। इनके आश्रित विवेकी जीव, प्रभु स्वरूप इंगित करे।।
बन्ध मोक्ष जड़ और चेतन, इनको अलग अलग वह करे। सत्य स्वरूप जो है इनका, उसका ही परिचय वह दे।।
ऐसे अध्यात्म शास्त्र रूप, हँस का आश्रय छोड़कर। सत्य को जाने बिना ही हम, जिन कर्मों को रहे हैं कर।।
बहिर्मुखी यह कर्म जो, इनसे होगा लाभ क्या? वह सत्य तो जाना नहीं, जो निज आन्तर में बसा।।

काल ही तो वह चक्र है, निरन्तर जो घूमा करे। क्षुरस्य धार तीक्ष्ण इसकी, और यह वज्र समान रहे।।
सारे जगत् को अपनी ही, ओर यह चक्र है खेंच रहा। परम स्वतंत्र यह चक्र है, नहीं इसको कभी कोई रोक सका।।
कर्मों के फल को नित्य समझ, जो इस सत्य को न जानें। सकाम कर्म में लगे रहें, अनुष्ठान उनका ही करें।।
अनित्य और क्षणभंगुर जो, क्या लाभ उस कर्म का? अनभिज्ञ वह उससे रहें, जो वास्तविक जीवन मर्म था।।

शास्त्र ही है वह पिता, जो जीव को दूजा जन्म दे। नहीं कर्म प्रवृत्ति उसका कथन, वह तो कर्म निवृत्त करे।।
जो इस सत्य को न जाने, गुणमय विषयों में श्रद्धा धरे। कर्म निवृत्ति की आज्ञा का, पालन वह कैसे कर सके?
शुकदेव बोले,
हर्यश्वों ने इक मत से, यह ही निर्णय कर लिया। हे राजन् फिर देवर्षि, का उन्होंने परिभ्रमण किया।।
वे सब ही उस मोक्ष पथ, के अनुगामी बन गए। इस पथ पर जो जीव चले, कदाचित् नहीं वह लौट सके।।
तत्पश्चात् ही नारद ने, स्वर ब्रह्म का आश्रय लिया। नारायण के स्वर में ही, लय अपना सर्वस्व किया।।
श्री कृष्ण के चरणों में, अपने चित्त को स्थिर किया। लोक लोकान्तर में पुन:, विचरण उन्होंने आरम्भ किया।।

जब दक्षप्रजापति ने जाना, शीलवान वा पुत्र जो थे। नारद का उपदेश पा, कर्त्तव्य से च्युत वह हो गए।।
व्याकुल हुए वह शोक से, पश्चाताप उन्हें होने लगा। अच्छी सन्तान का होना भी, सन्ताप का उनके कारण था।।
ब्रह्माजी ने फिर प्रजापति, को अत्यन्त सान्त्वना दी। आसिक्नी गर्भ से पुन: एक, सहस्त्र पुत्र की जन्म हुई।।
इन पुत्रों के नाम फिर, शबलाश्व हो गए। इसी नाम से दक्ष के, सहस्त्र पुत्र यह जाने गए।।

निज पिता दक्ष की आज्ञा पा, प्रजा सृष्टि उद्देश्य लिये। तप करने के लिये वह फिर, उसी नारायण सर पे गये।।
जहाँ पे जा उनके अग्रज, जन ने सिद्धि पाई थी। नारद जी का उपदेश पा, निवृत्ति की राह अपनाई थी।।
शबलाश्वों ने वहाँ जाकर, सरोवर में फिर स्नान किया। स्नान मात्र करने से ही, आन्तर का मल सब धुल गया।।
परब्रह्म स्वरूप प्रणव का, जाप उन्होंने आरम्भ किया। इस विधि महान् तप, में उन्होंने निज चित्त दिया।।

कुछ मास तक फिर उन्होंने, केवल जल का पान किया। उसको भी फिर छोड़ के, वायु पे ही निर्वाह किया।।
नमस्कार कर चरणों में, ओंकार स्वरूप नारायण के। एकाग्र अपने चित्त को कर, हम उन्हीं का ध्यान करें।।
सर्व अन्तर्यामी वह, विशुद्ध हृदय में वास करें। सर्वव्यापक स्वयं वह, परम हंस स्वरूप हैं रे।।
इस मन्त्र के अभ्यास से, श्री हरि की आराधना की। सर्व मन्त्र अधिपति स्वयं, जो श्री हरि हैं आप ही।।

हे परीक्षित् दक्षपुत्र, शबलाश्व तप संलग्न थे। प्रजासृष्टि के लिये ही, उग्र तप थे कर वह रहे।।
देवर्षि नारद पुन:, उनके पास भी आ पहुँचे। पहले के समान ही, कूट वचन उनको भी कहे।।
नारद बोले,
हे दक्षप्रजापति के पुत्रो, ध्यान से मेरी बात सुनो। उपदेश मैं तुमको देता हूँ, उसपर अपना कान धरो।।
निज अग्रज भ्राताओं से, तुम सब बहुत ही प्रेम करो। इसलिये उन सबके ही, मार्ग का तुम अनुसरण करो।।

धर्मज्ञ जो भी भाई, निज भ्राता का अनुसरण करे। श्रेष्ठ मार्ग अग्रज जो लिया, उसके पदचिन्हों पर ही चले।।
सच्चा भाई है वही, पुण्यवान वही पुरुष भए। परलोक में मरुत् गणों के साथ, आनन्द भोग उसको मिले।।

शुकदेव बोले,
शबलाश्वों को उपदेश दे, नारद तो वहाँ से चले गये। शबदलाश्वों ने भी निज अग्रज, भ्राताओं के अनुसरण किये।।
क्योंकि देवर्षि का दर्शन, व्यर्थ नहीं कभी जाता है। भगवद् भक्तों के लिये तो वह, महाप्रसाद ही लाता है।।
वह उस पथ के पथिक बने, जो अन्तर्मुखता सों मिले। अति सुन्दर वह कहें, भगवत्प्राप्ति अनुकूल रहे।।
जो रात्री है बीत चुकी, वह लौट के कभी भी न आये। इसी विधि इसके पथिक की, पुनरावृत्ति न हो पाये।।

दक्ष प्रजापति ने देखा, बहुत अपशकुन हैं हो रहे। पुत्र अनिष्ट की आशंका उनके चित्त को थी घेरे।।
तभी उन्हें यह ज्ञात हुआ, नारद जी ने क्या किया। पहले की भान्ति ही, पुत्रों को चौपट कर दिया।।
कर्त्तव्य च्युत हुए पुत्र देख, शोक ने चित्त में घर किया। इस शोक ने फिर नारद पर, क्रोध का प्रहार किया।।
जब देवर्षि उनको मिले, क्रोध से होंठ थे फड़क रहे। क्रोध के आवेश में, नारद जी से वह यूँ बोले।।

दक्ष बोले,
अरे दुष्ट तूने व्यर्थ में ही, साधु का रूप है धर लिया। अबोध मेरे पुत्रों को, भिक्षुक तुमने है कर दिया।।
इस विधि तुमने तो हमारा, नारद बहुत ही बुरा किया। साधु का यह बाना तेरा, कहो कहो किस काम का?

ब्रह्मचर्य आश्रम द्वारा, नहीं ऋषि ऋण वे चुका पाये। नहीं देव ऋण दिया यज्ञ से, नहीं कर्त्तव्य यह उन्होंने किए।।
पुत्रोत्पत्ति करके वह, पितृ ऋण से न मुक्त हुए। कर्मफल की नश्वरता, को भी वह न जाने थे।।
हे पापात्मा तूने तो, दोनो ही लोक बिगाड़ दिये। इह लोक और परलोक का, सुख नहीं वह भोग सके।।

निष्ठुर हो तुम तुम्हारे हृदय में, दया का कहीं भी नाम नहीं। बालकों की बुद्धि बिगड़े, है तुम्हारा काम यही।।
प्रभु के पार्षदों में रहकर, कलंकित उनको तुमने किया। निर्लज्ज हो तुम जो तुमने, मेरे पुत्रों को च्युत किया।।
प्रभु के पार्षद तो सदा, दया हैं करते दुखियों पर। दु:ख दूर करने के लिये, वह तो सदा रहते तत्पर।।
किन्तु तुम तो हे नारद, प्रेम भाव के विनाशक हो। जो कभी वैर कहीं न करें, उनसे भी द्वेष कमाते हो।।

यदि तुम इतना ही समझो, वैराग्य स्नेह पाश काटे। विषयासक्ति का बन्धन, इसकी राह से कट सके।।
तो उचित नहीं यह तुम्हारी सोच, झूठे स्वांग से कुछ न हो। तेरे रूप को देखकर, वैराग्य न उत्पन्न किसी में हो।।
विषयों का अनुभव किये बिना, कोई कटुता उनकी न जाने। दु:ख रूप वा अनुभव पा, वैराग्य स्वत: उत्पन्न होए।।
निज अनुभव से वैराग्य जो हो, उसका तो कोई मोल नहीं। दूजों के बहकाने से, सम्भव वैसा वैराग्य नहीं।।

सद्गृहस्थ लोग हैं, निज मर्यादा में ही रहें। पहले भी था अपकार किया, उसको तो हम थे सह गए।।
तुम तो हमारी वंश परम्परा, के ही नाश में हो लगे। पुन: दुष्ट व्यवहार से, तुम इसपे ही उतारु हुए।।
इसलिये अरे मूढ़ तुम, जाओ सदा ही भटका करो। लोक लोकान्तर में कहीं, ठौर प्राप्त तुम्हें नाहीं हो।।

शुकदेव बोले,
सन्त शिरोमणि श्री नारद, ने फिर सीस झुका दिया। साधु कहकर ही उन्होंने, दक्ष शाप स्वीकार किया।।
यही तो जान लो इस जग में, साधुता का लक्षण है। अपकार दूसरे का सह ले, चाहे हो सर्व सक्षम वह।।

शुकदेव बोले,
तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा ने, दक्ष से अनुनय विनय करी। आसिक्नी गर्भ से फिर उसने, साठ कन्यायें उत्पन्न करी।।
सब ही अपने पिता दक्ष से, प्रेम अतीव करतीं थीं। दक्ष की यह कन्यायें सब, उसको अति प्रियतर थीं।।

दस कन्याओं का उसने, धर्म के साथ विवाह किया। तेरह कन्याओं को उसने, कश्यप ऋषि को दे दिया।।
चन्द्रमा को दी सत्ताईस, दो भूत को दो अंगिरा को दीं। तार्क्ष्यनामधारी को चार, और दो कृशाश्व को व्याह दीं।।
इन दक्ष सुताओं और, इनकी सन्तति के नाम सुनो। हे राजनृ इनके वंशों से, ही त्रिलोक यह विस्तृत हों।।

धर्म की थीं दस पत्नियाँ, भानु लम्भा कुकुभ जामि। विश्वा साध्या और वसु, मुहूर्ता संकल्पा मरुत्वति।।
हे राजन् अब इनके, पुत्रों के भी तुम नारम सुनो। वंश विस्तृत हुआ जैसे, अब उसकी तुम बात सुनो।।
भानु का पुत्र था देवऋषभ, और उसका पुत्र था इन्द्रसेन। लम्भा का पुत्र हुआ विद्योत, और उसका पुत्र था मेघगण।।

कुकुभ का पुत्र हुआ संकट, और संकट पुत्र था कीकट। पृथ्वी के दुर्ग अभिमानी, देव के हुए जनक कीकट।।
जामि का जो पुत्र हुआ, स्वर्ग नाम ही उसका था। स्वर्ग के यहाँ फिर सुनो, नन्दी नाम का पुत्र हुआ।।
विश्वा के पुत्र हुए विश्वेदेव, इनको कोई सन्तान न थी। साध्या के साध्यगण हुए, पुत्र था उनका अर्थ सिद्धि।।

मरुत्वती के हुए दो पुत्र, जयन्त और मरुत्वान। प्रभु वासुदेव का अंश जयन्त, उपेन्द्र नाम उसका महान्।।
मुहूर्ता से मुहूर्त के, अभिमानी देव उत्पन्न हुए। अपने अपने मुहूर्तों में, कर्म फल यह जीवों को दें।।
संकल्पा का था पुत्र संकल्प, और पुन: वा पुत्र था काम। वसु के पुत्र थे आठ वसु, मुझसे सुनो अब उनके नाम।।

द्रोण प्राण ध्रुव और अर्क, अग्नि दोष वसु विभावसु। यह ही आठों वसु कहें, राजन इनको जान ले तू।।
द्रोण की पत्नी का, नाम है जानो अभिमति। हर्ष शोक भय आद के, अभिमानी देव उस उत्पन्न की।।
प्राण पत्नी ऊर्जस्वती, के यहाँ तीन पुत्र हुए। सह आयु और पुरोजव, यह ही उनके नाम थे।।
ध्रुव की पत्नी धरणी ने, अनेकों पुत्र उत्पन्न किए। वह तो अनेकों नगरों के, अभिमानी देवता हुए।।

अर्क की पत्नी वासना सो, तृषा आदि पुत्र हुए। अग्नि की पत्नी धारा से, द्रवणिक आदि बहु पुत्र हुए।।
कृत्तिकापुत्र स्कन्द भी, अग्नि का ही पुत्र था। उससे फिर विशाख आदि, अन्य पुत्रों का जन्म हुआ।।
दोष की पत्नी शर्वरी ने, शिशुमार को जन्म दिया। शिशुमार को जान ले, हरि का कला अवतार कहा।।

वसु की पत्नी अंगीरसी से, फिर विश्वकर्मा जन्मे। शिल्प कला के अधिपति, ही यह विश्वकर्मा थे।।
विश्वकर्मा की पत्नी, का नाम था जानो कृति। उसने ही तो चाक्षुष, मनु को फिर जन्म दी।।
इन्हीं चाक्षुष मनु के, पुन: जो उत्पन्न पुत्र हुए। विश्वदेव और साध्य गण, ही तो उनके नाम थे।।

विभावसु की पत्नी उषा ने, तीन पुत्र को जन्म दिया। व्युष्ट रोचिस और आतप, यह ही उनका नाम था।।
आतप के फिर दिवसर नाम, का पुत्र उत्पन्न हुआ। सभी जीव रहें कार्य मग्न, इसका वह कारण बना।।

भूत की पत्नी दक्षसुता, का नाम सरूपा था। कोटि कोटि रुद्रगणों को, उसने उत्पन्न कर दिया।।

इनमें रैवत अज और भव, भीम उग्र वृषाकपि वाम। अजैकपाद और अहिर्बुन्ध्य, थे बहुत रूप और महान्।।
मुख्य एकादश रुद्र हुए, फिर भूत की पत्नी भूता से। भयंकर भूत और विनायक, आदि के फिर जन्म हुए।।
ग्यारहवें प्रधान रुद्र, महान के यह पार्षद हुए। इस विधि इन रुद्रों का, यह है क्रम तू जान ले।।

अंगिरा प्रजापति की, पहली पत्नी थी स्वधा। उसने ही तो जान ले, पितृगण को उत्पन्न किया।।
दूसरी पत्नी सती ने फिर, उत्पन्न पुत्र कोई नहीं किया। अथर्वांगिरस वेद को ही, पुत्र रूप में स्वीकार किया।।
कृशाश्व की पत्नी अर्चि से, धूम्रकेश का जन्म हुआ। धिषणा से हुए चार पुत्र, देवल वायुन मनु देवाशिरा।।

तार्क्ष्यनामधारी कश्यप, की थी सुनो चार पत्नी। उनके नाम थे विनता कद्रू, पतंगी और यामिनी।।
पतंगी ने पक्षियों को, उत्पन्न क्रमश: कर दिया। और यामिनी के यहां, पतंगों का ही जन्म हुआ।।
विनता के हुए पुत्र गरुड, जो वाहन हैं प्रभु विष्णु के। दूजे पुत्र वा तरुण हैं, जो सारथि हुए प्रभु सूर्य के।।
कद्रू ने अनेकों ही, नागों को उत्पन्न कर दिया। नाग वंश जो है जग में, उनकी ही है परम्परा।।

कृत्तिकादि सत्ताईस यह, नक्षत्राभिमानी देवियाँ। जान ले तू हे राजन्, हैं चन्द्रमा की पत्नियाँ।।
इनमें से रोहिणी थी, चन्द्रमा की विशेष प्रिया। इस कारण दक्ष ने, शाप उनको दे दिया।।
इस शाप के परिणाम में, क्षय रोग चन्द्रमा को हो गया। इस कारण सन्तान का, पिता नहीं वह बन सका।।

चन्द्रमा ने दक्ष को, पुन: प्रसन्न कर लिया। कृष्ण पक्ष की क्षीण कला, हो शुक्ल में पूर्ण वर पाया।।
नक्षत्राभिमानी देवियों से, नहीं प्राप्त कोई सन्तान हुई। अब कश्यप पत्नियों के, मंगलमय नाम तुम सुनो सही।।
लोकमातायें हैं वही, उनसे सृष्टि उत्पन्न हुई। दिति अदिति दनु काष्ठा, अरिष्ठा सुरसा हला मुनि।।
क्रोध वशा ताम्रा सुरभि, नाम हैं सरमा और तिमि। अब विस्तार से तुम सुनो, इनकी जो सन्तति हुई।।
जलचर जन्तु सारे ही, तिमि के पुत्र हैं जान लो। बाघादि सब हिंसक जीव, सरमा के ही पुत्र हों।।

सुरभि के अब पुत्र कहें, गाय भैंस पशु जिनके दो खुर। ताम्रा की सन्तान बाज, गीधादि पक्षी जो क्रूर।।
मुनि के फिर सौन्दर्यमयी, अप्सरा उत्पन्न हुईं। अपने हाव भाव से, यह सबका चित्त हर लेतीं।।

क्रोध वशा के पुत्र हुए, अतीव विषैले जो जन्तु। इनमें प्रधान तुम जान लो, हैं विषधर सर्प और बिच्छू।।
पृथ्वी से जो उत्पन्न हो, ऐसी सारी वनस्पति। वृक्ष लता आदि यह सब, इला की ही सन्तान हुई।।
सुरसा से फिर जान लो, राक्षस उत्पन्न हो गए। इस विधि इस सृष्टि में, यातुधान के कुल बढ़े।।

अरिष्टा के गन्धर्व हुए, काष्ठा से घोड़े आदि। एक खुर वाले पशु, इस धरती पर जो सभी।।
दनु के इकसठ पुत्र हुए, इतना ही तुम जान लो। इनमें से प्रधान जो, उनके अब तुम नाम सुनो।।
स्वर्भानु सुता थी सुप्रभा, नमुचि ने उसको ब्याहा। वृषपर्वा सुता शर्मिष्ठा विवाह, नहुष सुत ययाति से हुआ।।

दनुपुत्र वैश्वानर की थीं, चार सुन्दरी कन्यायें। उपदानवी हयशिरा पुलोमा और, कालका उनके नाम थे।।
उपदानवी का परिणय, हुआ राजा हिरण्याक्ष से। क्रतु: ने विवाह किया, इनमें से हयशिरा से।।
ब्रह्मा जी की आज्ञा पा, प्रजापति श्री कश्यप का। वैश्वानर सुता पुलोमा और, कालका से विवाह हुआ।।

पौलोम और कालकेय, नामक दानव उत्पन्न हुए। यह अति रणवीर थे, गणना में साठ हजार थे।।
इनका ही दूसरा नाम, निवात कवच भी था पड़ा। यज्ञ कर्म विध्वंस ही, इनका एको काम था।।
तुम्हारे पितामह अर्जुन ने, अकेले इनको मार दिया। प्रसन्न इन्द्र को करने को, उसने था यह काम किया।।
उन दोनों की बात है यह, जब अर्जुन स्वर्ग में थे गए। इन्द्र से ही तो अर्जुन ने, दिव्य शस्त्र थे प्राप्त किए।।

विप्रचिति की पत्नी का, नाम था राजन् सिंहिका। उसके गर्भ से एक सौ एक, पुत्रों ने था जन्म लिया।।
सबसे ज्येष्ठ ही था राहु, नक्षत्रों में उनकी गणना हुई। शेष शतपुत्रों की तो, केतु ही जान लो नाम थी।।
हे परीक्षित् अब क्रमशः, अदिति के वंश की भी सुनो। सर्वव्यापक देवाधिदेव श्री, नारायण यहाँ प्रकट हों।
अपने अंश से वामन रूप में, उन्होंने स्वयं अवतार लिया। अपने जन्म से इस कुल को, श्री हरि ने था धन्य किया।।

आदिति के पुत्र ही थे, बारह आदित्य जो कहलाये। विवस्वान् और अर्यमा, पृषा त्वष्टा सविता वे थे।।
भग धाता विधाता और, वरुण मित्र और इन्द्र हुए। और बारहवें त्रिविक्रम, वामन स्वयं जो आप थे।।
महासौभाग्यवती संज्ञा, विवस्वान् की थीं पत्नी। उन्होंने वैवस्वत् मनु और, जन्मीं युगल यम और यमी।।
संज्ञा ने फिर घोड़ी का, रूप धारण कर लिया। भूलोक में सूर्यपुत्र, अश्विनी कुमारों को जन्म दिया।।

विवस्वान् की दूसरी, पत्नी का नाम था छाया। शनैश्चर और सवर्णि मनु, नामक पुत्रों को जन्म दिया।।
तपती नाम की इक कन्या, उनके यहाँ उत्पन्न हुई। तपती ने संवरण की, पति रूप में वरण करी।।ग
अर्यमा की पत्नी का, नाम था मातृका। उसने चार्षणी का, पूर्ण ज्ञान उनको था।।
कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का, पूर्ण ज्ञान उनको था। मानव की रचना का, आधार वही ब्रह्मा का बना।।

पृषा की अब बात कहें, सन्तान नहीं कोई उसके हुई। प्राचीन काल में शिव जी ने, दक्ष पे जब थी क्रोध करी।।
तब दान्त दिखा कर पृषा ने, उनकी हँसी उड़ाई थी। इस कारण ही वीरभद्र ने, दान्त थी उनकी तोड़ दी।।
तब से ही पृषा यह, कुछ भी चबा नहीं पाता है। इस कारण ही पिसा हुआ, अन्न ही पूषा खाता है।।

दैत्यों की अनुजा कुमारी, रचना थी त्वष्टा पत्नी। दो पुत्र उसके जन्मे, संनिवेश विश्वरूप पराक्रमी।।
विश्वरूप थे यद्यपि, शत्रु वर्ग के सम्बन्धी। फिर भी जब देवेन्द्र से, अपमानित हुए थे बृहस्पति।।

देवतागण का उन्होंने, परित्याग था कर दिया। विश्वरूप को देवों ने, पुरोहित अपना बनाया था।।

३) इन्द्र का बृहस्पति का त्याग और विश्वरूप का वरण

परीक्षित बोले,
देव आचार्य बृहस्पति ने, किस कारण देवों को त्यागा? निज प्रिय शिष्य देवों पर तो, उनका अतिशय प्रेम था।।
देवों ने निज गुरु देव का, कौनसा था अपराध किया? हे भगवन् यह कहें मुझे, मुझ पर आप यह करें कृपा।।

त्रिलोकी के ऐश्वर्य को पा, इन्द्र मदोन्मत्त हो गये। धर्म मर्यादा सदाचार, का वह उल्लंघन करने लगे।।
इक दिन भरी सभा में वह, पत्नी सहित थे बैठे हुए। ऊँचा सिंहासन था उनका, उन्चास मरुद्गण घेरे थे।।
आठ वसु ग्यारह रुद्र, आदित्य ऋभुगण विश्वेदेव। साध्यगण दोनों अश्विनीकुमार, थे सब उनको रहे सेव।।

सिद्ध चारण और गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनिगण विद्याधर। अप्सरागण किन्नर पक्षी, नाग थे सब सेवा में रत।।
सब मिल कर देवेन्द्र का, कर रहे थे स्तुति गान। ललित स्वरों में चहुँ ओर, हो रहा था उनका कीर्ति गान।।
शशि सम श्वेत छत्र उनके, सीस पे था शोभायमान। महाराजाओं के योग्य चँवर, और पँखे थे झूले महान्।।
यथा स्थान सब सामग्री, उस सभा में सुसज्जित थी। इस दिव्य समाज में, इन्द्र की शोभा अनुपम थी।।

सब देवों सहित देवेन्द्र के, परम आचार्य श्री बृहस्पति। इसी समय उस इन्द्रसभा में, उनकी थी आगमन हुई।।
सुर असुर सब ही मिलकर, आदर इनका करते हैं। गुरु श्रेष्ठ इन्हें मान कर, सम्मान इनका करते हैं।।
सभा में यह पधारे हैं, यह तो इन्द्र ने जान लिया। पर न सम्मान में खड़े हुए, न ही उनको आसन दिया।।
वह तो अपने स्थान से, तनिक भी हिले डुले नहीं। गुरु का सत्कार वहाँ, उन्होंने कुछ भी किया नहीं।।

त्रिकालदर्शी बृहस्पति, स्वयं ही हैं सर्व समर्थ। उन्होंने पल में देख लिया, यह तो है ऐश्वर्य का मद।।
चुपचाप वहाँ से निकल के वह, अपने घर को चले आए। इस विधि इन्द्र की सभा में, देव गुरु अपमानित हुए।।
हे राजन् तत्क्षण ही फिर, देवराज कुछ सजग हुए। अवहेलना की निज गुरु की उन, यह तो उस पल समझ गए।।
भरी सभा में स्वयं ही, अपनी निन्दा वह करने लगे। अपने ही आचरण पर, पश्चाताप वह करने लगे।।

इन्द्र बोले,
अत्यन्त खेद की बात है, हाय यह मैंने क्या किया। ऐश्वर्य के मद में चूर हो, निज गुरु का भी अपमान किया।।
भरी सभा में मूर्खता, का मैंने आचरण किया। यह कुकर्म तो मेरा, निश्चित ही निन्दा योग्य था।।
भला कौन विवेकी होगा जो, स्वर्ग के राज्य भोग चाहे? देखो तो सही इसके कारण, हम सदाचार भी भूल गए।।
देवराज होकर भी मैंने, असुरों सम व्यवहार किया। इसी राज्य लक्ष्मी ने मुझे, रजोगुण से आवृत्त किया।।

सर्वोच्च सिंहासन पर बैठा, कभी भी जो हो सम्राट। जो कहे है उसके लिए, किसी का नहीं सम्मान अनिवार्य।।
किसी के भी आने पर वह, सिंहासन त्याग के नहीं उठे। धर्म के मूल स्वरूप को, वह अज्ञ नहीं हैं जानते।।
ऐसा उपदेश जो करते हैं, कुमार्ग की ओर ले जाते हैं। स्वयं तो नरक में गिरते हैं, दूजों को भी गिराते हैं।।
उनकी ऐसी बातों पर, जो भी जन विश्वास करें। पत्थर की नाव की भान्ति, वह भवसागर में डूब मरे।।

मेरे गुरुदेव श्री बृहस्पति, हैं ज्ञान के अथाह सागर। मैंने जो शठता उनसे करी, गिरूँगा उनके पाँव पर।।
उनके चरण में सीस झुकाकर, उनको मैं मनाऊँगा। अपराध घोर किया मैंने, कैसे उससें मुक्ति पाऊँगा।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री देवराज, इन्द्र थे इस विध सोच रहे। गुरु बृहस्पति निज घर से निकल, योग से अन्तर्धान हुए।।
इन्द्र ने निज गुरुदेव को, बहुत ढूँढा और ढुँढवाया भी। किन्तु उनका अता पता, देवराज ने पाया नहीं।।
बिना गुरु वह अपने को, सुरक्षित कभी भी न जानें। देवों के संग निज बुद्धि, से उपाय ढुंढन लागे।।
स्वर्ग की रक्षा क्योंकर हो, यह चिन्ता उन्हें घेरे थी। निज बुद्धि के आसरे, उपाय उन्हें कोई नहीं मिली।।
चित्त अशान्त ही बना रहा, समाधान कुछ हुआ नहीं। देवों के रक्षण का उन्हें, साधन कोई सूझा नहीं।।

हे राजन् दैत्यों को भी, समाचार यह मिल गया। देवगुरु और इन्द्र का, आपस में मतभेद हुआ।।
असुर तो स्वभाव से ही, आततायी मदोन्मत्त थे। अपने गुरु श्री शुक्राचार्य, से आदेश उन्होंने लिये।।
देवों पर विजय पाना, ही था एक लक्ष्य उनका। इसी उद्देश्य को ले कर, धावा उनपर बोल दिया।।

तीक्ष्ण बाणों की उन्होंने, देवों पर ऐसी वर्षा की। उनके मस्तक जंघा भुजा, सब अंग कटकर गिरने लगी।।
तब इन्द्र सहित सब देवता, प्रजापति के पास गए। सीस झुका लिये व्यथित हृदय, उनके सम्मुख वह थे खड़े।।
स्वयंभू और सर्वसमर्थ, ब्रह्मा जी ने जान लिया। देवतागण की दुर्दशा, को उन्होंने पहचान लिया।।
उनकी दशा देख ब्रह्मा का हृदय, करुणा वश अति आद्र हुआ। देवों का धीरज बना रहे, उनको फिर यह वचन कहा।।
ब्रह्मा बोले,
अत्यन्त खेद की बात है यह, हे देवो तुमने बुरा किया। ऐश्वर्य के मद में अन्धे हो, हाय यह तुमने क्या किया।।
ब्रह्मज्ञानी और वेदज्ञ, श्री बृहस्पति का अपमान किया। इक संयमी ब्राह्मण का, सत्कार सभा में नहीं हुआ।।
उसी अनीति का फल यह, आज है तुमको मिल रहा। अति समृद्ध होकर के भी, हाल यह आज है हो रहा।।
अपने निर्बल शत्रु को भी, तुम हरा नहीं पा रहे। उसके सम्मुख इस भान्ति, नीचा हो देखे जा रहे।।

हे इन्द्र तेरे शत्रु ने भी, निज गुरु के थे अपमान किये। तिरस्कृत शुक्राचार्य को कर, अति निर्बल थे वह हुए।।
किन्तु अब भक्तिभाव से, वे उनकी आराधना करते हैं। इस कारण धन जन से पुन:, पूर्णतय: वह सम्पन्न हैं।।
हे देवो मुझको तो, आभास है ऐसा हो रहा। शुक्राचार्य को ही जिन्होंने, आराध्य देव अपना माना।।
यह दैत्य कुछ दिनों में ही, स्वर्ग तो विजय करेंगे ही। मेरा ब्रह्मलोक भी, संग में छीन ये लेंगे ही।।

भृगु वंशियों से इनको, पूरी ही है शिक्षा मिली। अर्थशास्त्र की भी इन्होंने, पूर्ण ज्ञान है प्राप्त करी।।
यह जो करना चाहते हैं, अति गुप्त उसे रखते हैं। तुम लोगों को यह उसका, तनिक आभास न होने देते हैं।।
अति गुह्य सम्मति उनकी, कोई अन्य न उसको जान सके। स्वर्ग तो क्या वह जिसे चाहें, उस ही लोक को जीत लें।।
सच तो यह जो श्रेष्ठ पुरुष, ब्राह्मण गोविन्द और गौ को। सर्वस्व अपना मानें और, जिनपे कृपा इन सबकी हो।।
त्रिलोकी में कभी उनका, अमंगल नहीं है हो सकता। निश्चित नियम यह जान लो, मंगल हजी सदा उनका होता।।

इसलिये अब शीघ्र ही, त्वष्टा पुत्र के पास तुम जाओ। विश्वरूप के पास जा, अब उसकी सेवा तुम करो।।
तपस्वी और वह संयमी, सब विधि सच्चा ब्राह्मण है। है असुरों का सम्बन्धी, पर सत्य निष्ठ वह ब्राह्मण है।।
असुरों के प्रति प्रेम उसका, यदि क्षमा कर पाओगे। सम्मान यदि करोगे तुम, अपने साथ उन्हें पाओगे।।
शुकदेव बोले,
जब ब्रह्मा जी ने देवों को, इस भान्ति से सम्मति दी। उनसे सान्त्वना पाकर, चिन्ता उसकी सब दूर हुई।।
त्वष्टा के पुत्र ऋषि विश्वरूप, के पास फिर वह गए। हृदय से उसे लगाकर के, उससे यूँ वह कहने लगे।।
देवता बोले,
हे विश्वरूप कल्याण हो तेरा, हम पितर समान ही हैं तेरे। तेरे आश्रम में हे वत्स, अतिथि बने हैं आज तेरे।।
इसलिये हे पुत्र तुम, समयोचित सत्कार करो। अभिलाषा जो हम लाये हैं, उसको तुम पूर्ण करो।।

सन्तानवान् पुत्रों का भी, है सर्वोच्च धर्म यही। पिता और गुरुजन सेवा में, तत्पर रहें वह सदा ही।।
फिर ब्रह्मचारी हैं जो, उनकी बात तो करें ही क्या। सबसे ऊँचा धर्म यही, गुरुजन की सेवा और पूजा।।

हे पुत्र रहस्य की बात एक, आज हम तुम्हें कह रहे। आचार्य को तू वेद की, पिता ब्रह्मा की मूर्ति जान ले।।
भाई को तू जान इन्द्र, और माता को साक्षात् पृथ्वी। भगिनी को दया की मूर्ति जान, अतिथि धर्म की है मूर्ति।।
अभ्यागत को अग्नि की, ही मूर्ति तू जान ले। ऐसा भाव हिय में धर, सबका ही सम्मान करे।।
जगत् के सारे प्राणी जो, वे आत्म मूर्ति होते हैं। सब जीवों के रूप में, आत्म स्वरूप ही होते हैं।।

हे वत्स तुम्हारे पितर हैं हम, शत्रुओं ने हमको जीत लिया। अत्यन्त दु:खी हम हो रहे, तुम ही कल्याण करो हमारा।।
अपने तपोबल से अब तुम, दारिद्र्य पराजय दु:ख टालो। हे विश्वदेव अब इसी विधि, तुम हमारा सत्कार करो।।
ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो तुम, अत: जन्मजात हो हमारे गुरु। आचार्य रूप तुझे वरण करे, अनायास हम जीतेंगे शत्रु।।

आवश्यकता जब आन पड़े, उचित है चरण में जा पड़ना। अपने से छोटों के भी, स्पर्श चरण का कर लेना।।
अवस्था का बड़ा होना, नहीं कारण किसी बढ़प्पन का। वेदज्ञान को छोड़कर, नहीं हो सकता कोई भी बड़ा।।

शुकदेव बोले,
जब देवों ने इस विधि, विश्वरूप से बात करी। अपना पुरोहित बनने की, हे राजन् जब प्रार्थना की।।
तब परम तपस्वी विश्वरूप, उनसे अति प्रसन्न हुए। देवों से फिर अति मधुर, और प्रिय उनको वचन कहे।।

विश्वरूप बोले,
पुरोहिती का काम यह, ब्रह्म तेज को क्षीण करे। धर्मज्ञ महात्मन् द्वारा यह, काज तो है अति निन्दनीय।।
किन्तु मेरे स्वामी हैं आप, और होकर लोकेश्वर भी। आपने मुझ बालक सम्मुख, प्रार्थना यह है करी।।
ऐसी स्थिति में मुझ जैसा, जीव नकार ही नहीं सके। सेवक हूँ मैं आपका, आपकी आज्ञा पालन धर्म बने।।

हे देवगण हम जैसे, जीव तो हैं अकिंचन् ही। अपने पास परिग्रह कर, रखते नहीं है कुछ कभी।।
खेती कटने या अनाज की, हाट के उठ जाने पर। गिरे हुए कुछ दानों को, हम तो एकत्रित लेते कर।।
उसी से अपने देवकार्य, और पितृकार्य सम्पन्न कर लें। जब जीविका इस विध चल है रही, पुरोहिती हम क्यों करें?
हे लोकपालों तुम तो जानो, अति निन्दनीय है वृत्ति यह। इससे प्रसन्न वह हो सकें, जिनकी बुद्धि बिगड़ी रहे।।

आप सब मिलकर जो काम, मुझसे करवाना चाहते हैं। नहीं श्रेष्ठ कोई काज वह, जिसमें लगाना चाहते हैं।।
फिर भी आपके काज से, मुख मैं मोड़ नहीं सकता। तनिक सी माँग है आपकी, तन मन धन दे पूर्ण करूँगा।।

शुकदेव बोले,
विश्वरूप थे अति तपस्वी, राजन् तू यह जान ले। देवों से प्रतिज्ञा कर, उनकी पुरोहिती में वह लगे।।
शुक्राचार्य के नीति बल से, असुर सम्पदा सुरक्षित थी। विश्वरूप ने वैष्णवी, विद्या की फिर आश्रय ली।।
उसके प्रभाव से वह सम्पद, असुरों से उस छीन ली। देवराज इन्द्र को, ही सम्पद वह दिलवा दी।।
जिस विद्या से सुरक्षित हो, इन्द्र ने असुरों को जीता। उदार बुद्धि विश्वरूप ने, था उसका उपदेश किया।।

४) नारायण कवच का उपदेश

राजा परीक्षित बोले,
देवेन्द्र जिसको प्राप्त कर, हुआ था पूर्णतय: सुरक्षित। चतुरंगी सेना शत्रु की, हुई खेल में ही ज्यों पराजित।।
त्रिलोकी की राज्यलक्ष्मी, का उसने उपभोग किया। आप मुझे बतलाइये, वह नारायण कवच है क्या?
यह भी मुझे सुनाइये, सुरक्षा कैसे प्राप्त थी की? रणभूमि में किस भान्ति, शत्रु पर थी विजय पाई?
शुकदेव बोले,
विश्वरूप को देवों ने, पुरोहित जब बना लिया। देवराज इन्द्र ने तब, उनसे था यह प्रश्न किया।।
विश्वरूप ने उसको तब, नारायण कवच का उपदेश किया। दत्तचित्त होकर राजन्, तुम भी उसको सुनो जरा।।
विश्वरूप बोले,
हे देवराज जब भय उठे, नारायण कवच करो धारण। अपने शरीर की रक्षा का, जानो सर्वोत्तम यह साधन।।
उसकी विधि प्रथम जानो, धो हाथ पाँव आचमन करे। कुशा के पावन तृण को, हाथ में फिर धारण करे।।
उत्तर दिशा की ओर फिर, मुख करके आसन धरे। कवच धारण पर्यन्त फिर, वाणी के मौन का निर्णय ले।।
ॐ नमो नारायण, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। इन मन्त्रों के द्वारा फिर, हृदयादि अंग का न्यास करें।।
इन मन्त्रों के साथ ही, अंगुष्ठादि करन्यास करे। ॐ नमो नारायणाय पहले अष्टाक्षर मन्त्र कहे।।
ॐ आदि अष्ट अक्षरों, से क्रमश: यह न्यास करे। पाँव घुटने उरू पेट हृदय, वक्ष मुख सीस का न्यास करे।।
अथवा इसके मकार से, ओंकार पर्यन्त चले। सिर से फिर आरम्भ कर, विपरीत क्रम से न्यास करे।।

तदनन्तर ॐ नमो भगवते वसुदेवाय मन्त्र कहे। इस द्वादशाक्षर मन्त्र के, ॐ आदि बारह अक्षरों से।।
दाईं से बाईं तर्जनी तक, हाथ की आठ अंगुलियों की। दो दो गाँठों में न्यास करे, और करे दोनों अंगूठों की।।

फिर ॐ विष्णवे नम:, इस मन्त्र को लेकर के। ॐ का हृदय में और वि का, ब्रह्म रंध्र में न्यास करे।।
ष का भ्रुवों के मध्य में, ण का चोटि में न्यास करे। वे का दोनों नेत्रों में, न का तनो ग्रन्थी में न्यास करे।।
तदनन्तर ॐ म: फट, कहकर वह दिग्बन्ध करे। इस भान्ति जो न्यास करे, और इस विधि को जान ले।।
वह पुरुष तू जान ले, मन्त्र स्वरूप ही हो जाये। श्री नारायण कवच को फिर, धारण वह ही कर पाये।।

तत्पश्चात् निज इष्ट देव, श्री हरि का वह ध्यान धरे। जो ऐश्वर्य धर्म यश लक्ष्मी, ज्ञान वैराग्य परिपूर्ण हैं रे।।
तद्रूप उनके होकर फिर, अपने को भी जान ले। तत्पश्चात् विद्या तेज, तप रूप कवच का पाठ करे।।

श्री हरि गरुड़ की पीठ पर, चरण कमल निज धरे हुए। अणिमा आदि सब अष्ठ सिद्धि, सेवा में हैं लगे हुए।।
आठों हाथों में उन्होंने, शंख चक्र ढाल तलवार। गदा बाण धनुष और पाश, यह आयुध हैं लिये धार।।
वे ओम्कार स्वरूप प्रभु, चहुँ ओर से मुझको घेरे रहें। सब ओर से सब विधि, वह प्रभु ही मेरी रक्षा करें।।

मत्स्यमूर्ति प्रभु स्वयं, जल के भीतर जल जन्तु से। हर हाल में मेरी रक्षा करें, वरुण के भी पाश से।।
माया से ब्रह्मचारी का, रूप जिन्होंने धर लिया। स्थल पर वामन बनकर के, अवतार जिन्होंने था लिया।।
और आकाश में त्रिविक्रम, रूप वह धारण करें। ऐसे प्रभु स्थल और, आकाश में मेरी रक्षा करें।।

जिनके घोर अट्टहास से, दिशा थीं सारी गूँज उठीं। दैत्यों की सब पत्नियों की, भयभीत हो गर्भ थी गिर गई।।
दैत्यों की सेना के शत्रु, प्रभु नृसिंह मेरी रक्षा करें। किले जंगल रणभूमि सब, कठिन स्थान में रक्षा करें।।
अपनी दाढ़ों पर जिन्होंने, था पृथ्वी को धर लिया। मार्ग में वही वराह प्रभु, सदा रक्षण करें मेरा।।
परशुराम जी पर्वतों के, शिखिर पे मेरी रक्षा करें। लक्ष्मण के अग्रज भ्राता, प्रभु राम प्रवास में रक्षा करें।।

मृत्यु से या मूर्छा से, या फिर घोर प्रमाद से। श्रीमन् नारायण स्वयं, आकर मेरी रक्षा करें।।
ऋषिवर नर बचायें मुझे, सब प्रकार के गर्व से। योगेश्वर श्री दत्तात्रेय, योग विघ्न सब दूर करें।।
तीनों गुणों के अधिपति, भगवान कपिल देव हैं जो। कर्म बन्धनों से मेरी, उनके द्वारा ही रक्षा हो।।

ब्रह्मचारी श्री सनत्कुमार, कामदेव से बचायें मुझे। मुझ पर इतनी कृपा करें, हरि चरण में टिकायें मुझे।।
मार्ग में चलते हुए गर मैं, न देव मूर्ति को नमन करूँ। इस अपराध से रक्षा को, मैं हयग्रीव की शरण पड़ूँ।।
देवर्षि नारद मेरी, सेवा दोषों से रक्षा करें। और प्रभु श्री कच्छप जी, नरकों से मुझे बचा ही लें।।

श्री प्रभु धन्वन्तरी मेरी, रक्षा करें कुपथ्य से। जितेन्द्रिय प्रभु ऋषभ देव, सुख दु:ख आदि द्वन्द्वों से।।
लोक अपवाद अपमान से, प्रभु यज्ञदेव रक्षा करें। जीवों से प्राप्त हो दु:ख जो, बलराम ही उनसे बचाये मुझे।।
क्रोधवश नामक सर्पों के, जो भी गण जहाँ भी रहें। श्री शेष उन सबसे ही, मेरी सदा रक्षा करें।।

श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी, अज्ञान से सदा बचायें मुझे। श्री बुद्धदेव पाखण्डिन् और, प्रमाद से मेरी रक्षा करें।।
धर्म की रक्षा के लिये, महावतार जो धर लेवें। कलिकाल के सब पापों से, श्री कल्कि मेरी रक्षा करें।।
प्रात:काल श्री केशव, निज गदा लेई के आ जायें। दिन कुछ और जो आगे बढ़े, वंशी गोविन्द धारण करें।।
दोपहरी से पहले प्रभु, नारायण तीक्ष्ण शक्ति से। मध्याह्न में प्रभु विष्णु, निज चक्र से मेरी रक्षा करें।।

मधुसूदन तीसरे प्रहर में, निज धनुष से मेरी रक्षा करें। ब्रह्मादि त्रिमूर्ति धारी माधव, सायंकाल में रक्षा करें।।
श्री हृषीकेश सूर्यास्त के, बाद मेरी रक्षा करें। श्री पद्मनाभ अर्धरात्रि पूर्व, और अर्धरात्रि में रक्षा करें।।
वत्सधाम श्री हरि करें, रक्षा रात्रि के पिछले प्रहर। खड्गधारी प्रभु जनार्दन, करें रक्षा मम ऊषा प्रहर।।
सूर्योदय से पूर्व मेरी, रक्षा करें श्री दामोदर। सम्पूर्ण सन्ध्याओं में कालमूर्ति श्री विश्वेश्वर।।

रथ के चक्र समान ही, आकार है आप सुदर्शन का। प्रलय की अग्नि के समान, अति तीव्र किनारा आपका।।
श्री हरि की प्रेरणा से, नित्य निरन्तर घूमें आप। वायु का सहयोग पा, प्रचण्ड हो ज्यों अग्नि का ताप।।
सारे सूखे पत्ते घास, इक क्षण में जला वह दे। वैसे ही शत्रु सेना को, आप भी पल में भस्म करें।।

कौमोदकी गदा सम्पर्क से, चिंगारी जो भी उत्पन्न हो। व्रज के समान ही, असह्य वा सम्वेग हो।।
अजित प्रभु की प्रिया गदा, और मैं उनका सेवक हूं। आपके चरण में पड़ कर, मैं आपसे ही बिनती करूं।।
कूष्माण्ड विनायक और यक्ष, राक्षस भूत और प्रेत आदि। इन सबका मर्दन आप करें, करें चूर चूर शत्रु आदि।।

हे शंख श्रेष्ठ श्री कृष्ण के, मुख से आप जब जाय लगें। उनके मुख की वायु पा, अतिभयंकर शब्द करें।।
मेरे शत्रुओं के हृदय, निज ध्वनि से भयभीत करें। यातुधान और प्रमथ, प्रेत मातृका न ठहर सकें।।

पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस को, शीघ्र ही आप भगा देवें। हे शंखराज निज तुमुल ध्वनि, से यह चमत्कार करें।।।

हे प्रभु के प्रिय खड्ग अब, आपकी शरण में आया हूँ। अति तीक्ष्ण धार है आपकी, यह जान के आया हूँ।।
प्रभु से प्रेरणा पाकर के, मम शत्रु करें छिन्न-भिन्न। प्रभु की ढाल पर भी बने, शतश: चन्द्राकार चिह्न।।
पापदृष्टि पापात्मा के, नेत्र आप बन्द कर दें। उनके दर्शन की क्षमता, सदा के लिये आप हर लें।।

सूर्यादि ग्रह सभी, और धूमकेतु आदि केतु। दुष्ट मनुष्य सरीसृप आदि, दाढ़ों वाले हिंसक पशु।।
भूत प्रेत आदि सभी, और भी पापी प्राणी जो। जिनसे भी हमको भय हो, मंगल विरोधी जो भी हों।।
प्रभु के नाम और रूप का, और आयुध का जब कीर्तन हो। उसकी ध्वनि के श्रवण से, तत्काल ही सारे नष्ट हों।।

बृहद् रथन्तर आदि जो, सामवेद के स्तोत्र हैं। उनसे स्तुति हो जिनकी सदा, वेदमूर्ति श्री गरुड़ हैं।।
और विष्वक्सेन भी, निज नाम के प्रभाव से। सब भान्ति की विपदा से, सब विधि हमारी रक्षा करें।।
श्री हरि के नाम रूप वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद जो। बुद्धि इन्द्रिय मन प्राण को, सब आपद् से बचायें वो।।

कार्य कारण रूप यह, जगत् है जो भी भास रहा। वास्तव में श्री हरि का, ही तो रूप यह है सारा।।
इस सत्य के प्रभाव से, उपद्रव सारे नष्ट हों। हे प्रभु आपकी, सब ओर से ऐसी कृपा ही हो।।

ब्रह्म और आत्म का एकत्व, जो अनुभव हैं कर चुके। उनकी दृष्टि में श्री हरि के, रूप में कोई न भेद रहे।।
फिर भी निज माया शक्ति से, वह रूप अनेकों धरते हैं। भूषण आयुध और नाम रूप, सब ही वह धारण करते हैं।।
यह तो निश्चित सत्य है, इसको कोई न बदल सके। सर्वज्ञ सर्वव्यापक वह हरि, सर्वत्र हमारे रक्षा करें।।

सब लोगों के भय को जो, निज अट्टहास से ही हर लें। सबके तेज को निज उग्र, तेज से ही वह ग्रसित करें।।
उन नृसिंह प्रभु के हम, चरण पकड़ के बिनती करें। दिशा विदिशा नीचे ऊपर, बाह्यान्तर वह रक्षा करें।।
विश्वरूप बोले,
यह नारायण कवच तुम्हें, देवेन्द्र है सुना दिया। इस कवच से अपने को, तुम सुरक्षित करो जरा।।
फिर अनायास ही सब पर, विजय प्राप्त कर लोगे तुम। दैत्यों के सब सेनापति, वश में कर सकोगे तुम।।
इस नारायण कवच को, जो भी पुरुष धारण करे। जिसको वह नेत्रों से देखे, या चरणों से जिसको छू ले।।
सर्वभय से वह जीव, तत्काल मुक्त हो जाता है। नारायण कवच का प्रभाव, ऐसा परिणाम दे जाता है।।

जो जीव इस वैष्णवी, विद्या को धारण कर ले। राजा डाकू प्रेत पिशाच, नहीं हिंसक जीव का भय रहे।।
प्राचीन काल की एक कथा, देवेन्द्र तुम्हें सुनाता हूं। कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण की, गाथा तुम्हें बताता हूं।।
इस विद्या को धारण करके, उसने योगाश्रय लिया। योग धारणा से निज तन, मरुभूमि में त्याग दिया।।

गन्धर्व चित्ररथ एक दिन, सहपत्नी विमान पे जा था रहा। जहाँ पर उस ब्राह्मण का, मृतक शव था पड़ा हुआ।।
वहाँ पहुँचे ही नीचे की, ओर सीस को किए हुए। विमान सहित आकाश से, पृथ्वी पर वह गिर पड़े।।
इस घटना से चित्ररथ, अति आचम्भित हो गए। बालखिल्य मुनियों ने तब, यह परिचय उनको दिये।।
नारायण कवच किया धारण, उसका ही यह प्रभाव हुआ। उस ब्राह्मण देव की अस्थिन् को, एकत्रित तब उसने किया।।

पूर्ववाहिनी सरस्वती में, प्रवाहित उनको कर दिया। तत्पश्चात् वह स्नान कर, अपने लोक को चला गया।।
शुकदेव बोले,
जो पुरुष इस नारायण, कवच को समय पे सुनता है। आदर सहित राजन् इसे, जो भी धारण करता है।।
उसके सम्मुख प्राणी सभी, आदर से झुक जाते हैं। इस प्रकार से जीव वे, भय से युक्त हो जाते हैं।।
आचार्य विश्वरूप से, इन्द्र ने यह विद्या पाई। वैष्णवी विद्या पाकर ही, असुरों पर विजय पाई।।
त्रैलोक्य लक्ष्मी का पुन:, उपभोग वह करने लगे। श्री नारायण कवच का, ही प्रभाव यह जान ले।।

५) इन्द्रको ब्रह्महत्या का पाप

शुकदेव बोले,
थे विश्वरूप के सीस तीन, हे राजन् हमने ऐसा सुना। इक मुख से पीते सोमरस, दूजे से थे पीते सुरा।।
तीजे से अन्न वह खाते थे, यह थे तीनों मुख के काम। विश्वरूप का तो हमने, सुना है ऐसा ही वृतान्त।।
उसके पिता त्वष्टा आदि, बारह आदित्य देव थे। यज्ञ समय प्रत्यक्ष रूप से, उच्च स्वर में आहुति देते।।
विनय भाव हृदय में धर, आहुति थे देवों को देते। उच्च स्वर की नाद से, थे वातावरण गुंजित होते।।

पर संग ही संग वह छिपकर के, असुरों को भी थे दे देते। माता थीं असुर कुल की, वह मातृ स्नेह वशीभूत थे।।
यज्ञ करते समय वह उन, असुरों को भाग भी दे देते। देव अर्थ आहुति जो थी, इस विध बांट उसे देते।।
देवराज श्री इन्द्र ने, उनका यह कर्म देख लिया। देवों के प्रति अपराध और, धर्म की ओट में कपट भरा।।
भयभीत हुए इन्द्र इससे, और क्रोध को वश में कर न सके। बहुत ही फुर्ती से उसके, तीनों सिर उसने काट दिये।।

सोमरस पीने वाला, मुख पपीहा बन गया। सुरापान करने वाला, मुख गौरैया रूप धरा।।
अन्न खाने वाला मुख, फिर तीतर ही हो गया। विश्व रूप के तीनों मुख, का जानो यह हश्र हुआ।।

यदि चाहते इन्द्र विश्वरूप, के वध से जो था पाप हुआ। उस हत्या के दोष को, दूर तो कर सकते तदा।।
ऐसा करना लेकिन इन्द्र, ने उचित ही न समझा। दोनों कर को जोड़ कर, इस पाप को अपने सीस धरा।।
एक वर्ष तक फिर उसने, नहीं छुटने का उपाय किया। तदनन्तर सबमें निज, शुद्धि को प्रकट करना चाहा।।
अपनी ब्रह्म हत्या का पाप, उन चार भाग में बांट दिया। उसको बांट के पृथ्वी जल, वृक्ष और स्त्रियों को दे दिया।।

पृथ्वी ने फिर बदले में, परीक्षित् यह वरदान लिया। जहाँ कहीं गड्ढा होगा, समय से स्वत: भर जायेगा।।
यह वरदान उस ले कर, चतुर्थ अंश स्वीकार किया। इन्द्र की ब्रह्म हत्या का, इतना भार अपने पे लिया।।
वही ब्रह्महत्या पृथ्वी में, कहीं ऊसरता बनकर दीखे। कुछ अंश इस पृथ्वी का, ऊसर ही सदा बना रहे।।

हत्या का दूजा चतुर्थांश, वृक्षों ने अपने पर लिया। इसके प्रतिरूप में उनको भी, जानो इक वर मिल गया।।
गर उनका अपना अंग कोई, किसी विधि कभी कट जाये। है वरदान यह प्राप्त उन्हें, स्वत: ही पुन: उभर आये।।
उनमें अब भी गोंद के, रूप में द्रव्य जो दीखता। इन्द्र की ब्रह्म हत्या की, याद वही है दिला रहा।।

स्त्रियों को भी इन्द्र से, पुन: एक वरदान मिला। सहवास कर सकें पुरुषों का, सदा ही यह इक वर दिया।।
हत्या का तृतीय चतुर्थांश, उन्होंने भी स्वीकार किया। प्रत्येक माह ब्रह्म हत्या वह, रज रूप में दर्शन देती जा।।

जल ने भी ब्रह्म हत्या का, चौथा चतुर्थांश स्वीकार किया। प्रतिरूप में उसको भी, इन्द्र से इक वर मिल गया।।
व्यय होने पर भी उसका, नित्य सदा वर्धन होगा। निर्झर झरनों के रूप में, वह नित्य ही बहता जायेगा।।
फेन बुदबुदे बनकर के, जल में वह दिखाई दे। ब्रह्म हत्या इस रूप में, जल में पुन: पुन: प्रकटे।।
उनको ही हटाकर जीव, जल ग्रहण यह है करता। इस विधि ब्रह्म हत्या दोष, जल के सीस पे है धरा।।

६) वृत्रासुर आख्यान

विश्वरूप जब मर गया, उसके पिता ने यज्ञ किया। हे इन्द्र के शत्रु उत्पन्न हो, करो हनन शीघ्र ही शत्रु का।।
इस मन्त्र से बार बार, त्वष्टा यज्ञ करने लगा। इन्द्र का शत्रु अब जन्मे, इस कारण यज्ञ था कर रहा।।
यज्ञ जब यह समाप्त हुआ, एक महान आश्चर्य हुआ। अन्वाहार्य अग्नि से इक, महा दैत्य उत्पन्न हुआ।।
रूप था इतना भयावह, मानो साक्षात् काल ही हो। मानो लोकों के नाश अर्थ, प्रलयकालीन विकराल वह हो।।

प्रतिदिन अपने तन को वह, बाण समान बढ़ाता था। था डील डौल पर्वत समान, और रंग भी दग्ध पहाड़ सा था।।
उसके तन से बार-बार, बिजली ज्यों निकलती रहती थी। सन्ध्या कालीन बादलों सम, दीप्तिवान् तन उसकी थी।।
सिर के बाल और दाढ़ी मूंछ, थे लाल तपे ताम्बे समान। नेत्र भी अति प्रचण्ड थे, दोपहरी के सूर्य समान।।

तीन शिखा वाला त्रिशूल, जब वह हाथ में ले लेता। नाचने कूदने और चिल्लाने, उसके साथ वह जब लगता।।
पृथ्वी भी ऐसे समय, कम्पायमान् ही हो जाती। ऐसा लगता त्रिशूल पर, अन्तरिक्ष ही उठा हो ली।।

बार बार मुंह खोलकर, वह जम्भाई लेता था। कन्दरा के समान वा, गम्भीर मुख खुल जाता था।।
ऐसा लगता मानो सारे, आकाश को वह पी जायेगा। जिह्वा से जैसे सारे, नक्षत्र चाट ही जायेगा।।
विकराल विशाल दाढ़ों वाले, मुख से निगलेगा तीनों लोक। भयभीत हुए उस रूप से, भागे चहुंदिश् भयभीत लोग।।

त्वष्टा के तमोगुणी पुत्र ने, सब लोकों को था घेर लिया। उस पापी और अति क्रूर पुरुष, का नाम वृत्रासुर पड़ा।।
सब अनुयायियों के सहित, महादेव ही उस पर टूट पड़े। अपने अपने दिव्य अस्त्र, लेकर उन्होंने प्रहार किये।।
उनके सारे अस्त्र शस्त्र वृत्रासुर ने निगल लिये। इस विधि वह देवतागण, उसका कुछ न बिगाड़ सके।।

देवों के आश्चर्य की, अब कोई सीमा न रही। सारी रोब दाब प्रभाव, देवों की जाती रही।।
वे सबके सब ही दीन हीन, और अति निराश हुए। हृदयस्थ श्री आदि पुरुष, नारायण की वह शरण गए।।
देव बोले,
वायु आकाश अग्नि जल, पृथ्वी यह महाभूत जो। इनके अधिपति श्री ब्रह्मा, और बने यह तीनों लोक जो।।
हम सब देवता गण भी रहें, भयभीत जिस काल से। पूजा की सामग्री सब, नित्य ही उसके चरण धरें।।
वह काल भी स्वयं है, रहता भयभीत श्री हरि से। इसलिये वही एक प्रभु, हैं एक मात्र रक्षक हमरे।।

हे प्रभु आपके लिये कहीं, है कुछ भी विस्मयकारी नहीं। निज स्वरूप में आप प्रभु, हैं पूर्णकाम और शान्त ही।।
आपकी शरण को छोड़कर, जो अन्य की शरण में जाता है। श्वान पुच्छ के आसरे वह, ज्यों सागर तरना चाहता है।।

पिछले कल्प के अन्त में, जिनके विशाल सींग में। पृथ्वी रूपा नौका को बान्ध, वैवस्वत मनु थे तर गए।।

अनायास प्रलय के वह, संकट से थे बच गए। उन मत्स्य भगवान की, शरण में आज हैं हम पड़े।।
वृत्रासुर के दुस्तर भय से, निश्चित वह हमें बचायेंगे। शरणागतवत्सल प्रभु, हम जानें वचन निभाएंगे।।

प्राचीनकाल में पवन के, प्रचण्ड वेग प्रहार से। सागर में उठती हुई, तराल तरंग की गर्जन से।।
श्री हरि के नाभि कमली से ब्रह्मा, प्रलय के जल में ि गिरे। यद्यपि वह असहाय थे पर, हरि कृपा से बच वह सके।।
वह ही प्रभु हमको भी, इस संकट से पार करें। हम आपकी शरण में आये हैं, प्रभु आप ही अब उद्धार करें।।

प्रभु स्वयं अद्वितीय हैं, निज माया से हमको रचा। उनके अनुग्रह में हम सबसे, सृष्टि संचालन हो रहा।।
यद्यपि हमारे सामने ही, वह सब प्रकार की चेष्टा करें। फिर भी हम अपने को ही, स्वतंत्र ईश्वर है मान रहे।।
अपने इस अभिमान से, हैं नेत्र हमारे अन्धे हुए। उनके वास्तविक स्वरूप को, देख नहीं हम पा रहे।।

करुणामय प्रभु जब यह देखें, हैं देवता पीड़ित हो रहे। निर्विकार होकर भी वह, ताड़ित हैं बहुत हो रहे।।
निर्विकार होकर भी वह, निज माया का आसरा लें। देव ऋषि पशु पक्षी, और मानव योनि में प्रकटें।।
युग युग में हमें अपना समझ, वह प्रभु हमारी रक्षा करें। निज शरणागत भक्तों को, प्रभु स्वयं ही सम्भालें।।

सबके आत्मा हैं वही, परम आराध्य देव सबके। प्रकृति पुरुष के रूप में, विश्व का कारण वही बनें।।
पृथक् हैं विश्वरूप से वह, पर वह विश्व भी हैं स्वयं। शरणागतवत्सल श्री हरि की, शरण में आन पड़े हैं हम।।
आपके अपने जन हैं प्रभु, हम देवों का कल्याण करें। उदार शिरोमणि हे प्रभु, अब आप ही हमारी बिनती सुनें।।
शुकदेव बोले,
हे महाराज जब देवों ने, इस विधि प्रभु की स्तुति करी। तब उनके आन्तर प्रकटे, शंख चक्र पद्म गदाधारी।।
उनके नेत्र शरत्कालीन, कमल समान थे खिल रहे। सोलह पार्षद उनके साथ, थे सेवा में लगे हुए।।
दर्शन में वे सब ही, थे भगवान् समान ही। केवल वक्ष पे वत्स चिन्ह, और गले में कौस्तुभ मणि न थी।।

प्रभु के दर्शन पाकर के, सब देवता आनन्द विह्वल हुए। धरती पे लेट के उन सबने, साष्टांग दण्डवत् किए।।
फिर धीरे धीरे उठकर के, वे स्तुति प्रभु की गाने लगे। उनके गुणन् के गान फिर, हो मुक्त कण्ठ देवों ने किये।।

देव बोले,
यज्ञ में स्वर्ग दें और उनकी, जो सीमा भी निश्चित रखें। वह काल भी हे प्रभु, आप स्वयं ही तो हैं बनें।।
यज्ञ विघ्नकर दैत्यों को, चक्र से छिन्न भिन्न करें आप। हैं असीम किसी नाम में, आपको न सके कोई बान्ध।।
हे प्रभु आपको हम तो, बार बार हम तो नमस्कार करें। आपके श्री चरणों में ही, हे प्रभु हम सीस धरें।।

आप ही हैं विधाता प्रभु, आप ही गति प्रदान करें। सत्व रज और तम अनुसार, उत्तम मध्यम निकृष्ट भएं।।
इन सबके नियन्ता आप हैं, नहीं जाने कोई भी परम पद। इस कार्य रूप जगत् का, आधुनिक जीव तो है हतप्रभ।।
भगवन् नारायण वासुदेव, आदि पुरुष पुरुषोत्तम आप। असीम आपकी महिमा है, अनन्त आपका है विस्तार।।
मंगलमय परम कल्याण स्वरूप, और हैं परम दयालु आप। सब जग के आधार आप, जगत् स्वामी अद्वितीय आप।।
सौन्दर्य मृदुलता की देवी, लक्ष्मी के पति सर्वेश्वर आप। परमहंस परिव्राजक, विरक्त महात्मन् के प्रिय आप।।

आत्म संयम रूपा परम, समाधि में जब चिन्तन हो। तत्क्षण उनके शुद्ध हृदय में, भगवद्भजन का उदय हो।।
परमहंसों का परम धर्म, तो बस केवल भजन यह है। आन्तर अज्ञान रूपा पट, खोले इक यह भजन ही है।।
उनके आत्म लोक में, परमानन्द प्रकट हों आप। बिना किसी आवरण के, स्वच्छ रूप में प्रकटें आप।।
आपका अनुभव पाकर के, वे निहाल हो जाते हैं। आपके इस स्वरूप को, पुन: नमस्कार हम करते हैं।।

अति कठिन है जानना, प्रभु तव लीला रहस्य को। बिना किसी भी आश्रय के, बिन तन के आप प्रभु प्रकट हों।।
नहीं किसी भान्ति का भी, सहयोग अनिवार्य आपको। सृजन रक्षण संहार करो, पर निर्गुण निर्विकार रहो।।
हे भगवन् हम लोग तो, ठीक से समझ भी नहीं सकें। सृष्टि कर्म में आप किसी भी, जीव समान ही बन जायें।।
किसी भी देवदत्त व्यक्ति, के समान गुण धार लें। कार्य रूप इस जगत् में, जीव रूप से प्रकट भए।।

निज कर्मों के अधीन ही, भले बुरे सब फल भोगें। अथवा आत्माराम आप, शान्त स्वभाव ही बने रहें।।
उदासीन सबसे होई, साक्षी मात्र ही बने रहें। सबको समान भाव से, समदृष्टि से ही देखें।।

यदि यह दोनों बातें भी, आप में इक साथ रहें। तो भी हम तो यह मानें, नहीं इसमें कोई विरोध रहे।।
असंख्य हैं गुण आपके, आप स्वयं भगवान हैं। अनन्त है महिमा आपकी, आप सर्वशक्तिमान हैं।।
आधुनिक जन अनेक भान्ति, के विकल्प वितर्क करें। झूठे प्रमाण कुतर्क ले, शास्त्रों का अध्ययन करें।।
अपने हृदय को इस विधि, दूषित वह कर लेते हैं। इस कारण जीवन भी वह, दुराग्रह पूर्ण करते हैं।।
वाद विवाद का भी उनको, आपस में अवसर नहीं मिले। आपका सत्य स्वरूप तो है, माया से सर्वथा परे।।
अपनी माया से उसे, आप छिपाये रहते हैं। कौन सी ऐसी बात है, जिसे कहें आप तो ऐसे हैं।।
साधारण जीवों के समान, कर्ता भोक्ता भी आप बनें। और महापुरुषों समान, उदासीन भी आप रहें।।
कर्तृत्व और भोक्तृत्व भाव, आपमें कभी न हो सके। उदासीनता भाव भी, आपको कभी न बान्ध सके।।
इन सबसे विलक्षण ही, अनिर्वचनीय हैं आप प्रभु। आपके दिव्य गुणों का मैं, कथन कैसे कर सकूँ।।

इक रज्जू का टुकड़ा ज्यों, हो कहीं पे पड़ा हुआ। भिन्न भ्रान्त पुरुषों को वह, है भिन्न रूप में भासता।।
सर्प या माला कभी लगे, धारा कभी प्रतीत हो। किन्तु ज्ञानी तो जाने, वास्तव में रज्जू है वो।।
त्यों ही भ्रान्त बुद्धि वाले, देखें अनेकों रूप ही। कर्ता भोक्ता अनेकों रूप, मढ़ दें वह आप पे भी।।
ज्ञानी तो शुद्ध सच्चिदानन्द, रूप आपको जाने है। सभी की बुद्धि से सदा, तद्रूप आप हो जाये हैं।।

सब वस्तु का अस्तित्व बनी, सबमें आप विराज रहे। सब जगत् के कारण ब्रह्मा और, प्रकृति के कारण आप बनें।।
सबके स्वामी आप हैं, और अन्तर्यामी अन्तरात्मा। जो भी गुण दोष हैं जगत् में, हैं आपकी ही प्रतीतियां।।
अधिष्ठान हैं सबके आप, सब आपका ही संकेत करें। श्रुति ने भी नेति-नेति, कहकर सब निषेध किये।।
अन्त में केवल आप ही, तो वहाँ पे शेष रहें। आपके अतिरिक्त प्रभु, नहीं इस जग में कोई भी हे।।

रस का अनन्त सिन्धु हैं आप, अमृतमयी महिमा आपकी। निरन्तर बहे आनन्द धारा, गर एक बून्द भी चख ले कोई।।
जग के विषय भोगों का, क्षणिक सुख जो भी पाया। या परलोक के विषयों का, भी है जो गुणगान सुना।।

उस रस को पाकर जिसने, सबका सब है भुला दिया। सबके सुहृद् परम प्रियतम, सर्वात्म आप में मन लगा।।
ऐश्वर्य निधि परमेश्वर में, जिस अपने मन को लगा लिया। आपके चिन्तन के सुख में, निरन्तर है जो मग्न हुआ।।
अनन्य प्रेमी प्रभु आपको ही, जाने स्वार्थ परमार्थ निज। चरण कमल सेवन को प्रभु, नहीं त्यागें वह सबके सुहृद्।।
इन चरण कमल की सेवा में, निरन्तर युक्त ही हो जायें। जन्म मरण संसार चक्र, से सर्वथा मुक्त वह हो जायें।।

हे प्रभु बस आप ही हैं, त्रिलोकी के इक आश्रय। सबके आत्म स्वरूप आप, कण कण में है आप बसे।।
तीनों लोकों को आपने, त्रैपद से अपने नाप लिया। संचालन भी प्रभु आप करें, इन तीनों ही लोकों का।।
आपकी महिमा अपरम्पार, त्रैलोकी का यह मन हरे। दैत्य दानव असुर भी सब, हैं आपकी ही विभूतियां हे।।
तथापि नहीं है यह समय, उनकी उन्नत्ति का जान के। अपनी ही योगमाया से, विभिन्न रूप प्रभु आप धरें।।
देव पशु मनुष्य नृसिंह, सब रूपों में अवतार लें। कभी मत्स्यादि जलचरों का, रूप भी आप ही धार लें।।
उनके अपराधों के अनुसार, दण्ड उन्हें देवें प्रभु। यदि उचित आप जानें इसे, वृत्रासुर नाश भी करें प्रभु।।

हमारे पिता पितामह आप, सर्वस्व हमारे आप प्रभु। निरन्तर सीस झुकाये खड़े, आपके अपने जन हे प्रभु।।
तुम्हारे चरण कमल ध्याते ध्याते, है हृदय प्रेम में बन्ध गया। दिव्य गुणों से युक्त यह, विग्रह हमारे सम्मुख प्रकटा।।
कृपा करी प्रभु आपने, इस विधि हमको अपनाया। कृपालु देव हुई आपकी, अनायास ही हमपे कृपा।।
आपके चरण में आ के प्रभु, यही प्रार्थना हम करें। निज दयामयी सुन्दर शीतल, मुसकान ही अब प्रभु बरसायें।।
आपकी सुन्दर वाणी से, सुधा बिन्दु जो नित्य बरसें। हमरे हृदय की जलन ताप, उससे ही अब शान्त करें।।

अग्नि का ही अंश ज्यों, चिंगारियां अग्नि की बनें। पर अग्नि की महानता, प्रकाशित नहीं वह कर सके।।
त्यों ही हम भी आपके, सम्मुख कुछ भी न कह सकें। अपना स्वार्थ और परमार्थ, कहने में असमर्थ रहें।।
आपकी महिमा तो प्रभु, कौन कभी भी गा सके? उत्पत्ति स्थिति लय जग के, माया विनोद भए आपके।।
सब जीवों के आन्तर में, अन्तर्यामी बन आप रहें। आत्म रूप में आप प्रभु, हैं सबके आन्तर में बैठे।।
प्रकृति बन के बाहर भी, आप ही हैं विराज रहे। जगत् में जो भी देश काल, तनो अवस्था आदि बने।।
उपादान हैं आप ही, फिर आप ही उनका अनुभव लें। सब वृत्तियों और भावों के, साक्षी भी प्रभु आप बनें।।
आकाशवत् हो सर्वंगत, सर्वथा रहें निर्लिप्त आप। स्वयं परब्रह्म आप हैं, हैं सबके परमात्म आप।।

हे प्रभु अभिप्राय निज, हम आपके चरण धरें। सर्वान्तर्यामी हे प्रभु, न इसकी उपेक्षा आप करें।।
जो निहित अभिलाषा ले, हम आपकी शरण में हैं आए। हे सर्वज्ञ श्री हरि आप, स्वयं उसे पूर्ण करें।।
अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न आप, और जगत के परम गुरु। आपके श्री चरणों की ही, छाया को प्राप्त हैं हम प्रभु।।
जन्म मृत्यु रूपा जग में, निज पापों कारण जो भटकें। आपके चरणों की छाया, इस सारी श्रान्ति को हर ले।।

हे सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु, वृत्रासुर ने है त्रस्त किया। हमरा प्रभाव और अस्त्र-शस्त्र, वह सारे है निगल गया।।
अब तो तीनों लोकों को, भी है ग्रसने में लगा। हे प्रभु कृपा कर आप ही, उसको नष्ट कर दें जरा।।

शुद्ध स्वरूप हैं आप प्रभु, हृदयस्थ ज्योतिर्मय आकाश। अनादि अनन्त सबके साक्षी, उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न आप।।
सन्तजन बस आपका ही, एकमात्र संग्रह रकें। संसारी भी भ्रमते हुए, थक के शरण में जब पहुँचे।।

अन्त में आप आनन्द स्वरूप, वांछित फल उनको दे दें। और जन्म जन्म के दु:खों से, आप प्रभु उन्हें मुक्त करें।।
इस विधि प्रभु सबके ही, कष्ट आप ही दूर करें। आपके श्री चरणों में ही, हे प्रभु हम नमन करें।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् आदर सहित, जब देवों ने यह स्तवन किया। प्रसन्न हुए प्रभु यह सुनकर, फिर देवों से उन्होंने कहा।।
भगवान बोले,
स्तुति सहित ज्ञान से, देवों तुमने उपासा मुझे। तुम लोगों के भाव से, तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ रे।।
इस स्तुति से जीवों में, स्वरूप स्मृति हो जायेगी। और मेरी भक्ति भी उन्हें, इससे प्राप्त हो जायेगी।।
हे देवो मेरे प्रसाद से, कुछ दुर्लभ नहीं है रह जाता। फिर भी मेरा अनन्य प्रेमी, नहीं मेरे बिना कुछ भी चाहता।।

जगत् के विषयों को ही, जो जीव सत्य है समझ रहा। वह अज्ञ निज कल्याण को, वास्तव में नहीं जान रहा।।
इस कारण ही विषयों की, वह चाहना करता रहता है। किन्तु यदि कोई ज्ञानी भी, वांछित वस्तु दे देता है।।
तो वह भी उस जैसा ही, अज्ञानी है हो जाता। वास्तविक कल्याण जो जीव का, उससे वंचित ही है रखता।।

मुक्ति के स्वरूप को जो, वास्तविकता में जाने है। अज्ञानी को भी कर्मों में, फंसने को न बहकावे है।।
जैसे रोगी गर वैद्य से, कुपथ्य का सेवन ही चाहे। सद्वैद्य कदापि भी, उसकी बात न मान सके।।
हे देवेन्द्र कल्याण हो तव, अब तनिक देर तुम नहीं करो। सर्वश्रेष्ठ दधीचि की, शरण में शीघ्र ही तुम जाओ।।
उपासना व्रत तपस्या से, अति दृढ़ है तन उनका हुआ। वह शरीर ही उनका, उनसे अब तुम मांगो जरा।।

शब्द ब्रह्म का ज्ञान उन्हें, शुद्ध रूप में प्राप्त है। आप्त काम हैं पूर्ण वह, निज स्वरूप को प्राप्त हैं।।
अश्विनी कुमारों को, घोड़े के मुख से ज्ञान दिया। इस कारण ही एक नाम, उनका अश्वशिर भी पड़ा।।
आत्म विद्या का उन्होंने, था जो भी उपदेश दिया। दोनों अश्विनी कुमारों को, उसने ही जीवन मुक्त किया।।

अथर्ववेदी दधीचि ऋषि ने, ही त्वष्टा को था कहा। नारायण कवच जो मम स्वरूप, था उसका उपदेश किया।।
त्वष्टा ने विश्वरूप को दिया, और विश्वरूप से तुम्हें मिला। इस विधि यह अमोघकवच, हे देवो तुम तक पहुँचा।।

धर्म के परम मर्मज्ञ, जान लो हैं दधीचि ऋषि। गर अश्विनी कुमारों ने, जाकर उनसे मांग करी।।
अपने तन के सारे अंग, निश्चित वह तुमको दे देंगे। इस विधि तुम्हारी समस्या का, समाधान वह कर देंगे।।
विश्वकर्मा द्वारा फिर तुम, आयुध उससे बनवा लेना। मम शक्ति से सम्पन्न हो, वृत्रासुर का फिर वध करना।।

वृत्रासुर के मर जाने पर, हे देवी फिर तुम पाओगे। पुन: तेज और अस्त्र शस्त्र, सब सम्पद् भी तुम पाओगे।।
निश्चित ही यह जान लो, कल्याण आपका होगा ही। क्योंकि मेरे शरणागत को, नहीं सता सकता कोई।।
शुकदेव बोले,
सबके जीवन दाता हरि ने, इन्द्र को यह आदेश दिया। देवों के सामने ही राजन्, उनका फिर अन्तर्धान हुआ।।
अथर्ववेदी दधीचि मुनि, अति उदार हृदय के थे। प्रभु की आज्ञा पाकर के, देव उन्हीं के पास गए।।
उनकी याचना सुन कर, अति आनन्दित ऋषि हुए। देवों से फिर हंसकर के, मुनिवर ने यह वचन कहे।।

दधीचि ऋषि बोले,
हे देवो क्या तुम न जानो, है मृत्यु अति दु:खदाई। जब तक चेतना बनी रहे, सहनी पड़े पीड़ा भारी।।
अन्त में फिर वह प्राणी, मूर्छित ही हो जाते हैं। बहुत कठिनता से जानो, इस देह का त्याग कर पाते हैं।।
जो चाहें इस जगत् में, सदा ही जीवित वे रहें। यह तन अमूल्य है उनके लिये, उनका तो प्रियतम है ये।।
प्रभु विष्णु भी यदि जीव से, उसके तन को मांग लें। तो उनको भी निज तन देने, का साहस कौन है कर सके?
देव बोले,
हे द्विजवर अति उदार आप, और दयालु महापुरुष। जिनके कार्यों की स्तुति सदा, करते हैं महायशस्वी पुरुष।।
जीवों के कल्याण को, भला कौन कर्म नहीं आप करें? कौन वस्तु कहीं ऐसी है, न्यौछावर जिसे न कर सकें?

है इसमें प्रभु सन्देह नहीं, याचक तो स्वार्थी होता है। दाता की कठिनाइ का, विचार न उसको होता है।।
यदि इतनी समझ होती उसपे, तो याचना ही वह क्यों करता? दाता के कष्ट को देखकर, मौन ही धारण वह करता।।
इसी विधि दाता भी नहीं, जाने समस्या याचक की। अन्यथा उसके मुख से तो, न निकल नहीं सकती थी।।
इसलिये विपत्ति जानकर, अब याचना पूर्ण कीजिये। आपके द्वार पे आये हम, निराश न हमको कीजिये।।
दधीचि ऋषि बोले,
हे देवो आपके मुख से मैं, सुनना चाहता था धर्म की। आपकी इस मांग की, उपेक्षा इस कारण थी करी।।
यह लो निज प्रिय शरीर को, तुम्हारे लिये हूँ छोड़ रहा। क्योंकि इक दिन तो निशचित, यह मुझको छोड़ ही देगा।।

इस नश्वर तन से जो जीव, नहीं दु:खियों पर दया करे। मुख्यत: धर्म फिर यश का, उपार्जन जो जन नहीं करे।।
उसका जीवन तो जड़वत् ही, है वृक्षों से भी न्यून ही। मानव शरीर को पाकर भी, किया यह जीवन व्यर्थ ही।।
बड़े बड़े महात्मा जन, अविनाशी धर्म उपासा करें। उसका स्वरूप तो इतना ही, हे देव श्रेष्ठ अब जान लें।।
किसी भी प्राणी के दु:ख में, जीव करे अनुभव दु:ख का। और किसी के भी सुख में, प्राणी अनुभव ले वा सुख का।।

क्षणभंगुर हैं पदार्थ सब, जग के जन धन तन आदि। नहीं अपने काम किसी आते, जगत् के यह पदार्थ सभी।।
अन्त में तो यह दूजे के, काम किसी विधि आयेंगे। हम तो इन सबको ज्यों का त्यों, यहां पे ही त्यज जायेंगे।।
अहो कैसी यह कृपणता, अति शोचनीय यह अवस्था है। मृत्यु धर्मा तन से नहीं, उपकार किसी का करता है।।
शुकदेव बोले,
अथर्ववेदी ऋषि ने राजन्, फिर ऐसा निश्चय किया। अपने को परब्रह्म श्री, परमात्म में लय किया।।
स्थूल तन जो पंच तत्त्व, की ही रचना का कार्य था। तत्क्षण ही देवों के लिये, ऋषिवर ने उसे त्याग दिया।।

इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि, सब ही संयत थे उनके। तत्त्वमयी थी वा दृष्टि, थे सारे बन्धन छिन्न हुए।।
प्रभु से युक्त होकर के वह, जब पूर्णतय: स्थित हो गए। उनका तन कब छूट गया, इस बात से भी अनभिज्ञ रहे।।

प्रभु की शक्ति पाकर के, इन्द्र का बल पौरुष बढ़ा। दधीचि की अस्थियों से, था विश्वकर्मा ने वज्र घड़ा।।
उसे हाथ में लेकर इन्द्र, ऐरावत पर सवार हुए। उनके साथ साथ सभी, देवता भी तैयार हुए।।
बड़े बड़े ऋषि मुनि, देवेन्द्र स्तुति गाने लगे। वृत्रासुर के वध की ठान, त्रिलोक को हर्षित करते हुए।।

पूरी शक्ति लगाकर के, इन्द्र ने धावा बोल दिया। जो स्वयं रुद्र ने क्रोधित हो, काल पे हो आक्रमण किया।।
हे राजन् वृत्रासुर भी, अपने मोर्चे पर था डटा। दैत्य सेनपतिन् के संग, नेतृत्व विशाल सेना का था।।
वैवस्वत मनवन्तर जो, इस समय है चल रहा। इसकी प्रथम चतुर्युगी का, था त्रेता युग आरम्भ हुआ।।
उसी समय नर्मदा के, तट पे यह संग्राम हुआ। देवों और दैत्यों का, अति भयंकर युद्ध यह था।।

देवेन्द्र हाथ में वज्र लिये, रुद्र वसु आदित्य संग। पितृगण दोनों अश्विनीकुमार, अग्नि मरुद्गण और ऋभुगण।।
साध्यगण और विश्वेदेव, आदि भी थे साथ लिये। अपनी अद्भुत कान्ति से, शोभायमान थे हो रहे।।
वृत्रासुर आदि दैत्यों ने, जब उन सबको सम्मुख देखा। इन देवों को देख कर, क्रोध अधिक उनका भड़का।।

तब नमुचि शम्बर और अनर्वा, अम्बर ऋषभ और द्विमूर्धा। ह्यग्रीव शंकुशिरा विप्रचिति, अयोमुख पुलोमा वृषपर्वा।।
प्रहेति हेति उत्कल सुमाली, माली सहस्रों दैत्य दानव। स्वर्ण के सजे समान से, थे सुसज्जित यक्ष राक्षस।।
देवेन्द्र की सेना का, अवरोध वह करने लगे। पर देवों की सेना तो, काल के लिये भी थी अजय।।

गर्वोन्मत्त वह असुर सब, सिंह नाद कर आगे बढ़े। अति सावधान हो देवों की, सेना पर वह टूट पड़े।।
अनेकों अस्त्रों शस्त्रों से, प्रहार देवों पर किया। गदा परिघ बाण प्रास, मुद्गर तोमर से वार किया।।
शूल फरसे और तलवार, तोपों भुशुण्डि आदि से। बौछार करी ऐसा लगे, चहुँ और से सब ही देव ढके।।

चहुँ ओर से बाणों की, वर्षा ही ज्यों हो थी रही। देवों पर पूरी तरह, उन बाणों की चादर पड़ी।।
ज्यों बादल के आ जाने पर, आकाश के तारे न दीखें। त्यों इन बाणों के पीछे, देवतागण सब छिप गए।।
अस्त्रों शस्त्रों की वह वर्षा, देवों को छू भी नहीं सकी। आकाश में ही निज वज्र से, छिन्न भिन्न थी सब करी।।

इस विधि जब असुरों के, अस्त्र शस्त्र सब समाप्त हुए। पर्वत के श्रृंग वृक्ष और, पत्थर फिर बरसाने लगे।।
किन्तु देवों ने उनको, पहले की भाँति गिरा दिया। कोई प्रहार भी असुरों का, आहत न उनको कर सका।।

जब असुरों ने यह देखा, नहीं देवों को वह मार सके। असंख्य अस्त्र शस्त्र भी, देवों का कुछ न बिगाड़ सके।।
वृक्ष चट्टानों पर्वतों, से उनपर प्रहार किया। पर उनके शरीर का तो, इक बाल भी बांका नहीं हुआ।।
सबके सब वे सकुशल हैं, वृत्रासुर ने जब यह देखा। सेना सहित वह असुर, तब अति भयभीत हुआ।।
देवों की पराजय का, जो भी यत्न वह करते थे। वह सब ही यत्न उनके, निष्फल ही हो जाते थे।।
ज्यों श्री कृष्ण के द्वारा जो, भक्त सुरक्षित सदा रहें। क्षुद्र जीव के अति कठोर, वचन न उनको छू सकें।।
भगवद्विमुख असुरों ने जब, देखा सब ही व्यर्थ हुआ। उत्साह हीन वे हो गए, घमण्ड भी सब जाता रहा।।
निज स्वामी वृत्रासुर को, रणभूमि में ही छोड़ दिया। भागे सब रणक्षेत्र से, देवों ने बल पौरुष छीना।।
जब धीर वीर वृत्रासुर ने, देखा अनुयायी भाग रहें असुरों के सैनिक सारे, हैं अति भयभीत हुए।।
सेना भी नष्ट मेरे हो रही, और वह है अब बिखर रही। तब हँस कर वृत्रासुर ने, निज सेना से यह बात कही।।

समयोचित वीरवाणी से, वृत्रासुर फिर यूं बोला। विप्रचिति नमुचि पुलोमा, आदि दैत्यों से यह कहा।।
मय अनर्वा शम्बर सब, दैत्यों तुम इक बात सुनो। हे असुरो तुम भागो मत, एक बात मेरी सुन लो।।

निश्चित है जानो यह नियम, जो जन्मा है वो मृत्यु भी पायेगा। इस जगत् में मृत्यु से, बचाव का कोई उपाय है क्या?
विधाता ने भी मृत्यु से, बचने की विधि न कोई कही। ऐसे में मृत्यु के द्वारा, स्वर्गादि सुयश यदि मिले कोई।।
तो कौन वह होगा बुद्धिमान्, नहीं श्रेष्ठ मृत्यु वरेगा जो? ऐसी सर्वोत्तम मृत्यु के, वरण से कभी डरेगा जो?

दो प्रकार की मृत्यु ही, अति दुर्लभ और श्रेष्ठ जग में। इक तो है योगी पुरुष की, निज प्राणों को वश में करके।।
ब्रह्म का चिन्तन करते हुए, इस नश्वर तन को त्यागना। दूजा है रणभूमि में, बिन पीठ दिखाये मर जाना।।
क्यों ऐसे शुभ अवसर को, हे दैत्यो तुम हो खो रहे? युद्ध क्षेत्र में प्राणों को, त्यजने से तुम हो डरे?
शुकदेव बोले,
अति भयभीत हो असुर सेना, थी दिशा दिशा में भाग रही। अचेतप्राय: सैनिक थे हुए, उन स्वामी की नहीं वचन सुनी।।
वृत्रासुर ने देख लिया, अनुकूल काल उनके हुआ। इस कारण ही देवों ने, है असुरों को खदेड़ दिया।।
असुर सेना इस विधि, छिन्न-भिन्न है हो रही। मानो बिन नायक के ही, हो यह सेना भटक रही।।

यह देख के वृत्रासुर, क्रूध और असहिष्णु हुआ। बलपूर्वक देव सेना को, आगे बढ़ने से रोक दिया।।
अति तीक्ष्ण वाग्बाणों का, उसने देवों पर प्रहार किया। उनको डांट करी उसने, इस भाँति ललकार लिया।।

वृत्रासुर बोला,
रणभूमि में पीठ दिखाकर, कायर असुर जो भाग रहे। उनकी पीठ पे पीछे से, प्रहार में क्या है लाभ रे?
यह क्षुद्र तो निज मात-पिता, के मल मूत्र समान हैं। तुम निज को शूरवीर मानो, क्या कर्म तुम्हारा महान् है?
भीरु को मार गिराना तो, नहीं है मान की बात कोई। न ही ऐसी बात तुम्हें, है स्वर्ग के योग्य बना सकती।।

यदि तुम्हारे मन में भरा, शक्ति और उत्साह है। वीरोचित विधि से ही, युद्ध करने की चाह है।।
जीवन के मोह विषय भोग की, लालसा ने गर नहीं ग्रसा। तो क्षणभर मेरे सम्मुख आ, युद्ध का चख लो तुम मजा।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् यह जान लो, वृत्रासुर था महाबली। अपनी डील डौल से ही, उसने शत्रुवर्ग भयभीत करी।।
क्रोधोन्मत्त होकर उसने, अति भीषण सिंहनाद किया। बहुत से देव अचेत हुए, श्रवण मात्र करके उसका।।
उसकी भयानक गर्ज सुनकर, देवता मूर्छित हो गए। वह धरती पर यूं गिरे, मानो बिजली हो गिरी उनपर।।

मदोन्मत्त गजराज ज्यों नरकट का वन सब रौंद दे। त्यों ही रणबांका वृत्रासुर, हाथों में त्रिशूल लिये।।
मुंदे नेत्र भयभीत पड़ी, देवों की सेना पर टूटा। अपने पांव के तले, उनको रौंदने वह लगा।।
वृत्रासुर के वेग से, धरती भी फिर डोल उठी। रणभूमि में उस योद्धा की, कुछ ऐसी थी प्रभाव बनी।।

वज्रपाणि देवेन्द्र भी उसकी यह चाल न सह सके। जब उनपर ही वह झपटा, तब उससे बहुत वह चिढ़ गए।।
चिढ़कर अपने शत्रु पर, महा गदा चलाई इन्द्र ने। गदा वहाँ पहुँची न थी, राह में रोका वृत्रासुर ने।।
क्रोध से आग बबूला हो, गदा से फिर प्रहार किया। ऐरावत के सीस पे, पराक्रमी असुर ने गर्ज करी।।
उसके इस कौतुक को देख, प्रशंसा सब करने लगे। हताहत इन्द्र वाहन हुआ, वृत्रासुर स्तुति करने लगे।।

वज्राहत पर्वत समान, ऐरावत फिर गया तड़प। गदा के प्रहार से वह, हो गया था अति आहत।।
सीस था उसका फट गया, रक्त था वहाँ से बह रहा। अति व्याकुल हो उस इन्द्र को, अट्ठाइस हाथ पीछे करा।।
निज वाहन ऐरावत को, जब देखा मूर्छित होते हुए। यह परिदृश्य देख इन्द्र, अति विषाद ग्रस्त हुए।।
वृत्रासुर भी रणभूमि के, धर्म के मर्मज्ञ थे। इन्द्र की यह हालत देखी, फिर गदा प्रहार उसने नहीं किये।।
अमृतस्रावी निज हाथ को, ऐरावत सीस पे फेर दिया। इस विधि देवेन्द्र ने, उसका सारा दु:ख हरा।।
घायल हाथी की व्यथा मिटा, पुन: रणभूमि में आ डटे। ऐरावत सहित देवेन्द्र फिर, युद्ध को पुन: तैयार हुए।।

जब वृत्रासुर ने देखा, इन्द्र को अपने सामने। भ्राता विश्वरूप का, हन्ता था हाथ में व्रज लिये।।
तब उसके पाप कर्म की, स्मृति हृदय में जाग उठी। शोक और मोह मिश्रित, मुसकान से उसने वचन कहा।।
वृत्रासुर बोला,
निज गुरु ब्राह्मण और मेरे, अग्रज भ्राता के हत्यारे। अति सौभाग्य यह है मेरा, तुम शत्रु मेरे सम्मुख खड़े।।
पाषाण समान कठोर हृदय, तेरा विदीर्ण करूँगा मैं। अति शीघ्र शूल से इसे बेन्ध, भ्राता से उऋण होऊँगा मैं।।
अहो महा आनन्ददे और, सौभाग्य ही यह मेरा होगा। मेरे भ्राता का हन्ता जब, हताहत मुझसे ही होगा।।

आत्मवेता और निष्पाप, अग्रज भ्राता मेरा मार दिया। यज्ञ में दीक्षित ब्राह्मण था, हे इन्द्र तुम्हारा गुरु वह था।।
विश्वास दिलाकर के तुमने, तलवार से तीनों सिर काटे। स्वर्ग की कामना ले निर्दयी, ज्यों यज्ञ में पशु का सिर काटे।।

दया लज्जा लक्ष्मी और, कीर्ति हैं तुमको छोड़ चुकी। ऐसा नीच तूने कर्म किया, निन्दा जिसकी करें राक्षस भी।।
मेरे त्रिशूल से आज तेरा, तन टूक टूक हो जायेगा। बहुत कष्ट से इन्द्र तू, अपनी मृत्यु को पायेगा।।
तेरे जैसे पापी को, अग्न भी नहीं जलायेगी। गीधादि सब पक्षी वृन्द, तुझे नोच नोच कर खायेंगी।।

तुझ जैसे नीच और क्रूर के, अनुयायी बने सब देवतागण। सबके सब ही मिलकर के, लगे मुझपर प्रहार करने।।
तीव्र त्रिशूल से अपने मैं, उनकी गर्दन काटूँगा। भैरव भूतनाथ गण को, उनकी बलि चढ़ाऊँगा।।
हे वीर शिरोमणि इन्द्र कहूँ, सम्भव है यह भी हो सकता। मेरी सेना छिन्न भिन्न करके, तू वज्र से काटे सीस मेरा।।

तब तो पशु पक्षीगण को, निज तन की बलि चढ़ाऊँगा। कर्मबन्ध से मुक्त हो, महापुरुष शरण मैं पाऊँगा।।
उनकी चरण रज कण लेकर, उनके ही लोक को जाऊँगा। जहाँ पे जायें महापुरुष, वहाँ पहुँच ही जाऊँगा।।
तेरे सम्मुख हूँ खड़ा हुआ, शत्रु हूँ तुम्हारा देवेन्द्र। क्यों नहीं छोड़ते अब मुझपर, तू अपना यह अमोघ वज्र?
निस्संदेह तू जान इन्द्र, ज्यों मेरी गदा निष्फल हुई। कृपण से याचना के समान, निष्फल यह वज्र तेरी होगी।।

श्री हरि के तेज ऋषि दधीचि, के तप से शक्तिमान् है वज्र। प्रभु विष्णु से मम हनन की, आज्ञा भी पाई तुमने इन्द्र।।
इसलिये उसी वज्र से, मुझको तुम अब मार दो। जिस पक्ष में रहते हैं हरि, अन्तिम विजय उसीकी हो।।
विजय श्री और सारे गुण, निवास वहीं पे करते हैं। श्री हरि जिस ओर स्वयं, आप विराजित रहते हैं।।

प्रभु संकर्षण की आज्ञा पा, निज मन उनके चरण में लीन करूँ। एकाग्र करी निज चित्त को मैं, एक प्रार्थना चरण धरूँ।।
मेरे विषय भोग के बन्धन को, तेरा वज्र वेग छिन्न कर दे। तन त्यागने पर मुनिजन के, समान ही मुझको गति मिले।।

श्री हरि के जो अनन्य प्रेमी, उनके ही अपने जन हैं। नहीं देते सम्पद् स्वर्ग उन्हें, जो उनके प्रिय जन हैं।।
क्योंकि यह सब तो परमानन्द, की प्राप्ति नहीं करवाते। द्वेष उद्वेग मनो पीड़ा, अभिमान कलह ही हैं बढ़ाते।।
दु:ख और श्रान्ति हो तो, इनसे हाथ में आते हैं। इस कारण सच्चे भक्त, इनको कभी न चाहते हैं।।

हे इन्द्र हमारे स्वामी तो, हैं अति करुणामय भक्त प्रति। अर्थ धर्म और काम के, प्रयास व्यर्थ करते सभी।।
सच पूछो तो इसमें ही, कृपा उनकी महान् है। अकिंचन भक्तों के लिए, प्रसाद का यह अनुमान है।।
है अनुभव गम्य यह उनके लिये, नहीं दूजे इसको समझ सकें। अन्य जन के लिये कहें, अति दुर्लभ यह कृपा रहे।।

(फिर प्रभु को अपने सम्मुख, प्रत्यक्ष उसने किया। वृत्रासुर ने यह वचन, फिर निज प्रभु के चरण धरा।।)
हे प्रभु मुझपर तो आप, इतनी कृपा ही कीजिये। अनन्य भाव से चरण कमल, का सेवन ही सदा दीजिये।।
आपके ही दासों की सदा, सेवा मैं करता रहूँ। अगामी जन्म में भी प्रभु, ऐसा अवसर मैं प्राप्त करूँ।।
हे प्रियतम प्राणनाथ मेरे, सुमिरण नित्य करूँ गुणों का। वाणी उन्हीं का गान करे, तन हो सेवा में लगा हुआ।।

सब सौभाग्य का स्रोत आप, मैं तो आपकी शरण पड़ूँ। स्वर्गलोक या ब्रह्मलोक, भूमि पाताल भी न चाहूँ।।
योग की कोई सिद्धियाँ या, मोक्ष भी प्रभु मैं न माँगू। आपके श्री चरणारविन्द की, अनन्य प्रीति ही मैं माँगू।।
ज्यों पक्षिन् के पंखहीन, शिशु देखें माता की राह। भूखे बछड़े निज माता के, दूध को आतुर रहें सदा।।
वियोगिनी पत्नी सदा अपने, प्रवासी पति के लिये तड़पे। मेरा मन प्रभु आपके, श्री दर्शन को ही व्यथित रहे।।

नहीं चाहूँ मैं मुक्ति प्रभु, जन्म जन्म चाहे भटका करूँ। नहीं इसकी चिन्ता मुझे, चाहे इस चक्र में पड़ा रहूँ।।
पर जहाँ जहाँ भी मैं जाऊँ, जिस भी योनि में जन्म लूँ। वहाँ वहाँ प्रभु के प्रिय, भक्तों से मैत्री प्रेम करूँ।।
हे स्वामी केवल यही, आप से अब मैं चाहता हूँ। तव माया में आसक्त जो जन, उनसे सम्बन्ध न चाहता हूँ।।

शुकदेव बोले,
वृत्रासुर निज तन को, रणक्षेत्र में था त्यजना चाहता। इन्द्र विजय पाकर नहीं, स्वर्ग राज्य वह था चाहता।।
इस तन को त्यज प्रभु की शरण, ही बस उसको चाहिये थी। प्रलय काल के जल में ज्यों, कैटभ ने प्रभु पे वार थी की।।
त्यों ही त्रिशूल ले इन्द्र पर, वृत्रासुर भी टूट पड़ा। हे राजन् निज मृत्यु का, उसने यह निमित्त चुना।।

प्रलय की अग्नि शिखा समान, तीखी थी नोक त्रिशूल की। घुमाकर तीव्र वेग से, इन्द्र पे उसने वह छोड़ी।।
हो अति क्रुद्ध सिंह नाद किया, इन्द्र से उस यूँ कहा। ऐ पापी इन्द्र अब किसी विधि, तू मृत्यु से नहीं बच सकता।।
वह त्रिशूल ग्रह उल्का संग, है आकाश में घूम रहा। यह देखकर भी इन्द्र, तनिक सा विचलित नहीं हुआ।।
वासुकी नाग समान ही, वृत्रासुर की भुजा जो थी। उस त्रिशूल के साथ ही, इन्द्र ने फिर काट दी।।

सौ गांठों वाले वज्र से, उस पर था प्रहार किया। इस भाँति वृत्रासुर को, इन्द्र ने भुजा से रहित किया।।
एक बांह कट जाने पर, वृत्रासुर क्रोध से भड़क गया। बहुत वेग से वह वज्रधारी, इन्द्र के ऊपर टूट पड़ा।।
उसकी ठोढ़ी और ऐरावत, पर परिध से प्रहार किया। इन्द्र के हाथों से तब, उसका वज्र ही छूट गया।।

अति अलौकिक कार्य यह, वृत्रासुर का जब देखा। देव असुर और सिद्ध चारण, सबने ही गुण गान किया।।
किन्तु इन्द्र का संकट देख, चिन्ता सब ही करने लगे। हाय हाय कहकर वे, सबके सब चिल्ला उठे।।

इन्द्र के हाथ से छूटकर, वज्र इन्द्र के पास गिरा। लज्जित होकर इन्द्र भी, पुन: न उसे उठा सका।।
वृत्रासुर ने फिर राजन्, इन्द्र से इस विधि कहा। निज मृत्यु का ही उसने, मानो हो आवाहन किया।।
नहीं शोक का यह समय, हे इन्द्र अब निज वज्र उठा। प्रहार इससे अब तू कर, निज शत्रु को मार गिरा।।

सर्वज्ञ सनातन आदि पुरुष, भगवान ही हैं सर्व समर्थ। जग की उत्पत्ति स्थिति प्रलय, करने में हैं स्वयं समर्थ।।
देहाभिमानी और युद्ध में, सदा विजय के इच्छुक जो। आततायियों की भी कभी, विजय न उन बिन सम्भव हो।।
कभी जीत और कभी हार, यह तो नियम ही हैं युद्ध के। अपनी इच्छा से मिले न यह, मिले वही जो प्रभु कहें।।

सब ही लोक और लोकपाल, विवश हैं यह उनके हाथों। जाल में फंसे हुए पक्षी की, चेष्टा ज्यों सब विवश ही हो।।
वास्तव में यह काल ही है, कारण विजय पराजय का। काल के अधीन ही तो, यह पूर्ण जगत् है नाच रहा।।
जीव का मनो इन्द्रिय तनो, प्राण बल है काल ही। वही काल तो कारण है, जीवन और मृत्यु का भी।।
इस सत्य को जाने बिना जीव, इक तन में ही भरमा जाये। जड़ तन को ही विजय पराजय, का कारण माने जाये।।

काठ की पुतली और यन्त्र का, हरिण हो जिस विध नाच रहा। सूत्रधारी के हाथ में ही, है उसकी तो हर कला।।
वैसे ही सब जीवों को, प्रभु के अधीन ही तुम जानो। उनके हाथ के यन्त्र हैं सब, हे इन्द्र तुम अब यह मानो।।
श्री हरि कृपा प्रसाद बिन, नहीं समर्थ कोई हो सकता। इस विश्व की उत्पत्ति में, सफल नहीं कोई तत्त्व हुआ।।
प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व अहं, महाभूत इन्द्रियां अन्त:करण। प्रभु के अनुग्रह के बिना, नहीं कर सकते कुछ भी धारण।।

जो इस सत्य को भूला रहे, श्री हरि ही नियन्ता हैं सबके। वह ही परतंत्र जीव को, कर्ता और भोक्ता माना करे।।
वास्तव में श्री हरि स्वयं, निमित्त बनाकर प्राणी को। कभी उसकी रचना करें, और कभी संहार को उद्यत हों।।
जब यह काल विपरीत हो, अपयश मृत्यु की प्राप्ति हो। लाख चाहने पर भी तब, जीव न इनसे मुक्त हो।।
उसी विधि यह काल जब, अनुकूल ही उसके हो जाये। बिन मांगे ही आयु लक्ष्मी, भोग ऐश्वर्य सब दे जाये।।

यश अपयश और जय पराजय, जो भी जीव को मिल जाये। सुख दु:ख जीवन मरण, जो भी स्वत: ही घर आये।।
इच्छा या अनिच्छा नहीं करे, न हर्ष शोक वशीभूत रहे। यदृच्छा जो मिल जाये, समत्व भाव में जीव रहे।।
सत्त्व रज और तम तीनों, गुण हैं इस प्रकृति के ही। नहीं आत्म के गुण हैं यह, न ही आत्म हो लिप्त कभी।।
जो जीव आत्म को बस, साक्षी मात्र उनका जाने। इन गुणों के गुण दोष, से प्रभावित न होए।।

मुझे भी देखो हे इन्द्र, हाथ है तुमने काट दिया। शस्त्र भी छिन्न भिन्न करी, है मुझको परास्त किया।।
फिर भी तेरे प्राण लेने को, उद्यत हो रहा हूँ मैं। यथाशक्ति अपनी लगा, प्रयत्न कर रहा हूँ मैं।।
यह युद्ध भी तो जान लो, द्यूत की तरह खेल ही है। बाणों के पांसे इसमें, और लगता प्राण का दाव है।।
वाहन ही वह चौसर हैं, जिनकी चाल है चल रही। कौन जीतेगा कौन हारेगा, यह बात तो किसी को ज्ञात नहीं।।

शुकदेव बोले,
वृत्रासुर के यह सत्य और, निष्कपट वचन जब इन्द्र सुने। उनका आदर करते हुए, उन्होंने निज वज्र उठा लिये।।
बिना किसी आश्चर्य के, इन्द्र फिर मुसकाने लगे। धैर्य हृदय में धणर कर उन, वृत्रासुर से यह वचन कहे।।

इन्द्र बोला,
निश्चित ही हे असुर श्रेष्ठ, तुम तो सिद्ध पुरुष ही हो। तव धैर्य निश्चय भगवद्भाव, सब ही अति विलक्षण हों।।
सब जीवों के आत्म स्वरूप, सबके सुहृद् जगदीश्वर की। अनन्य भाव से असुरेश्वर, तुमने है भक्ति करी।।
निश्चित ही प्रभु की मोहिनी, माया को तुमने पार किया। तभी तो असुर भाव छोड़, हैं श्रेष्ठ भाव अपना लिया।।

स्वभाव से ही रजोगुणी, प्रकृति तुमको है मिली। फिर भी ऐसी प्रवृत्ति बनी, है अति आश्चर्य की बात यही।।
विशुद्ध सत्व स्वरूप प्रभु में, बुद्धि दृढ़ता से तोरी लगी। श्री वासुदेव के चरणों में, है भक्ति अनुराग जगी।।
कल्याण के स्वामी श्री हरि के, चरणों में जिसकी प्रीति हो। भक्ति जिसकी उनमें हो, भोगों की वहाँ पे गति न हो।।
जो अमृत के सागर में, नित्य निरन्तर वास करे। क्षुद्र गढ़ों के जल से उसे, प्रयोजन क्या कोई हो सके?

शुकदेव बोले,
महापराक्रमी श्रेष्ठ योद्धा, वृत्रासुर और देवेन्द्र दोनों। धर्म तत्त्व जिज्ञासु बने, थे वार्तालाप में रत दोनों।।
साथ साथ इक दूजे से, वे युद्ध थे करते जा रहे। ऐसे अद्भुत युद्ध की, मर्यादा नई बना रहे।।
रिपुदमन वृत्रासुर ने, वाम भुजा से प्रहार किया। धातु का बना परिघ उस, आकाश में घुमा दिया।।
अति भयावह परिघ से, उसने इन्द्र पे वार किया। निज वीरता का उसने, परिचय इस विध दे दिया।।

वह परिघ और हाथी की, सूण्ड सम लम्बी भुजा। निज शतपर्वणा वज्र से, इक साथ ही इन्द्र ने दी गिरा।।
मूल से ही दोनों भूजा, वृत्रासुर की कट गईं। दायें बायें दोनों ही, कन्धों से रक्त की धार बही।।
उस समय वृत्रासुर की, ऐसी छवि थी बन रही। ज्यों इन्द्र के वज्र की चोट से, आकाश से पर्वत श्रृंग गिरी।।

ऐसा था वह दीख रहा, पर्वत ज्यों पांव से चल रहा। दीर्घकाय वृत्रासुर ने, ठोढ़ी के दिया धरती पे टिका।।
ऊपर के होंठ को उसने, स्वर्ग से लगा दिया। आकाश के समान ही, अति गहरा मुख उसका था।।
सर्प समान भयावह थी, जिह्वा लपलपा रही। मृत्युमय विकराल दंष्ट्र, से ज्यों त्रिलोकी हो निगली।।
निज पांव की चोट से पृथ्वी को, था इस विध वह रौंद रहा। अपने प्रचण्ड वेग से मानो, पर्वत जैसे उलट रहा।।
इस विधि वह इन्द्र के, अति समीप ही जा पहुँचा। इन्द्र को उसके वाहन, ऐरावत संग ही निगल गया।।
ज्यों महाविशाल अजगर कोई, हाथी को ही निगल ले। प्रजापति महर्षि देव यह, देखी सभी अति व्यथित हुए।।
हाय अनर्थ यह बहुत हुआ, ऐसा कहकर वह रोने लगे। इन्द्र की यह दुर्गति देख, अति व्यथित सब होने लगे।।

देवेन्द्र ने बल दैत्य के, थे कभी संहार किये। नारायण कवच की सुरक्षा में, वह पूर्ण ही सुरक्षित थे।।
योगमाया के बल से भी, इन्द्र सदा परिपूर्ण थे। वृत्रासुर के निगलने पर, भी वह उससे नहीं मरे।।
निज वज्र से उसका उदर, विदीर्ण उन्होंने कर दिया। बहुत वेग से बाहर निकल कर, पर्वत समान सीस काटा।।

जिस गति से उत्तरायण से, सूर्य दक्षिणायन् जाये। ग्रहों के इस अन्तर में, जितना समय है लग जाये।।
उस एक वर्ष में वृत्रासुर के, वध का योग फिर आ गया। तीव्र वेग से घूम रहे, वज्र ने फिर प्रहार किया।।
सब ओर से काट के गर्दन को, उसने भूमि पे गिरा दिया। इस विधि इन्द्र द्वारा, वृत्रासुर का वध हुआ।।

आकाश में दुन्दुभियाँ फिर, तुमुल स्वर करने लगीं। गन्धर्व सिद्ध महर्षिगण की, मन्त्र ध्वनि भी गूंज उठी।।
वृत्रासुर हन्ता इन्द्र के, पराक्रम के गुण गाने लगे। अति आनन्दित होकर के, फूल वह बरसाने लगे।।
तत्क्षण वृत्रासुर के तन से, आत्म ज्योति बाहर निकली। इन्द्रादि सबके देखते ही, जाकर प्रभु में विलीन हुई।।
सर्व लोक से अतीत प्रभु, में ही वह समा गया। इस विधि वृत्रासुर के, नश्वर तन का अन्त हुआ।।

शुकदेव बोले,
वृत्रासुर की मृत्यु से, प्रसन्न हुए त्रिलोक सभी। इन्द्रदेव को छोड़कर, मुदित थे लोकपाल सभी।।
उनका भय चिन्ता और शोक, सबके सब जाते रहे। वृत्रासुर की मृत्यु से, तत्काल सभी थे मुदित हुए।।
युद्ध समाप्त जब हो गया, सब अपने अपने लोक गए। देव ऋषि पितर भूत, दैत्य गन्धर्व सब चले गए।।
बिन इन्द्र से पूछे ही, सबके सब ही लौट गए। तत्पश्चात् ब्रह्मा शंकर, इन्द्रादि भी चले गए।।

परीक्षित बोले,
देवेन्द्र किस कारण द्विजवर, अप्रसन्न थे हो गए? उनके शोक का कारण क्या, हे प्रभु यह कहें मुझे।।
वृत्रासुर के वध से तो, देवता सब थे सुखी हुए। ऐसे में फिर इन्द्रदेव, किस कारण थे व्यथित भये?

शुकदेव बोले,
वृत्रासुर के पराक्रम से, भयभीत थे देवता और ऋषि। तब उन्होंने मिलकर इन्द्र से, उसके वध की प्रार्थना की।।
ब्रह्महत्या के भय से उसे, इन्द्र न मारना चाहते थे। इस कारण उन लोगों को, इन्द्र ने फिर यह वचन कहे।।

इन्द्र बोला,
विश्वरूप को मार के मैं, ब्रह्महत्या का भागी हुआ। उसे तो स्त्री पृथ्वी जल, वृक्षों ने कृपा करी बांट लिया।।
वृत्रासुर का अब यदि, पुन: वध मैं कर दूँगा। उस हत्या के पाप से मैं, कैसे मुक्त हो पाऊँगा?

शुकदेव बोले,
देवराज की बात सुनी, ऋषिवर ने उसे यूं कहा। तनिक भी भय तुम नहीं करो, कल्याण सदा ही होगा तेरा।।
हम अश्वमेध यज्ञ करा, पाप मुक्त तुम्हें कर देंगे। किसी भी पाप को हे इन्द्र, नहीं तेरे सीस रहने देंगे।।

अश्वमेध यज्ञ द्वारा, आराधना हो नारायण की। सर्वान्तर्यामी शक्तिमान्, परमात्मन् श्री नारायण की।।
सारे जगत् का वध करके, पाप मुक्त इस राही हों। वृत्रासुर का वध तो फिर, छोटी सी ही बात हो।।
प्रभु के नाम संकीर्तन का, है ऐसा अनुपम प्रभाव। ब्राह्मण पिता गौ माता आचार्य, का हत्यारा भी दे तार।।
महापापी श्वानमांस भक्षी, चाण्डाल कसाई भी शुद्ध भए। हे देवराज संकीर्तन के, सम्मुख न पाप कोई ठहर सके।।

अश्वमेध यज्ञ का, अनुष्ठान करेंगे सब मिल जुल। श्रद्धा युक्त हो श्री हरि की, जब आराधना करोगे तुम।।
ब्रह्मा पर्यन्त चराचर जग, हत्या न लिप्त कर पायेगी। दण्डित कर दुष्ट को पाप से, मुक्ति स्वत: हो जायेगी।।

शुकदेव बोले,
ब्राह्मणों से इस विधि, इन्द्र ने प्रेरणा पाई थी। हे राजन् इस कारण ही, वृत्रासुर वध हो पाया था।।
अब जब वह मारा गया, ब्रह्महत्या इन्द्र पे आ गई। निज कर्मों के फल स्वरूप, कष्ट उसे भी सहनी पड़ी।।
उसके कारण इन्द्र को, बहुत क्लेश और जलन हुई। इक क्षण के लिये भी इन सबसे, इन्द्र को चैना नहीं मिली।।
सत्य नियम यह जान लो, कलंक जो सज्जन पे आये। तब धैर्यादि सद्गुण भी, कोई सुख उसे न दे पायें।।

इन्द्र ने देखा ब्रह्महत्या, साक्षात् चाण्डाली बनी। हर स्थान पे ही उनका, पीछा है वह कर रही।।
वृद्धावस्था कारण उसके, सारे अंग हैं कांप रहे। रक्त से लथ़पथ वस्त्र हैं, है क्षय रोग ने घेरा उसे।।

श्वेत बाल हैं बिखरे हुए, ठहर ठहर चिल्ला है रही। श्वासों से उसकी जैसे, मछली की गन्ध है आ रही।।
इस दुर्गन्ध से सारा ही, मार्ग भी दूषित हो रहा। ऐसा उस ब्रह्महत्या का, प्रभाव वहाँ था हो रहा।।
देवेन्द्र भयभीत हुए उससे, थे दिशा दिशा में भाग रहे। आकाश में भी राजन् उन्हें, स्थान कहीं पर नहीं मिले।।
कहीं शरण जब नहीं मिली, पूर्वोत्तर कोने में गए। वहाँ पे मानसरोवर में, शीघ्रता से प्रविष्ट हुए।।

मानसरोवर में खिले, कमल नाल के तन्तुन् में। एक सहस्र वर्ष पर्यन्त, इन्द्र देव छिप कर रहे।।
एक ही सोच थी उन्हें लगी, कैसे मुक्त हो पाऊँगा? ब्रह्महत्या के पाप सें, कैसे अब छुटकारा पाऊँगा?
इतने दिनों तक भोजन की, भी सामग्री नहीं मिली। क्योंकि उनको भोजन तो, अग्नि के मुख सें थी मिलती।।
अग्निदेव जल के भीतर, कमल तन्तु में जा न सके। इस कारण ही इन्द्रदेव, को भोजन पहुँचा न सके।।

जितनी अवधि तक इन्द्र देव, कमल नाल तन्तुन में रहे। राजा नहुष उस काल तक, स्वर्ग का शासन करते रहे।।
निज विद्या तप और योग बल, का ही यह प्रभाव था। जो उसको स्वर्ग के, शासन का सौभाग्य मिला।।
सम्पद् और ऐश्वर्य के, मद से जब वह अन्धे हुए। इन्द्र पत्नी शची संग, अनाचार को उद्यत हुए।।
शचि ने ऋषियों के प्रति, अपराध उससे करा दिया। ऋषियों ने दिया शाप उसे, और सर्प उसे बना दिया।।

सत्य के संरक्षक और, पोषक हैं स्वयं श्री हरि। उनका ध्यान करने से हुए, नष्ट प्राय: जब पाप सभी।।
तब ब्राह्मणों के बुलाने पर, पुन: गए स्वर्ग को इन्द्र। कर्म विहारिणी लक्ष्मी के, संरक्षण में थे श्री देवेन्द्र।।
पूर्वोत्तर दिशा के अधिपति, रुद्र का यह प्रभाव था। इन्द्र के पाप को पहले ही, निस्तेज था उसने किया।।
वह पाप अब इन्द्र पर, आक्रमण नहीं था कर सका। इस कारण ही इन्द्र पुन:, स्वर्ग लोक में जा सका।।

इन्द्र स्वर्ग में जब आये, ब्रह्मर्षि भी वहाँ पहुँचे। श्री हरि की आराधना के, फिर सारे संयोग हुए।।
इन्द्र को अश्वमेध यज्ञ, की उन्होंने दीक्षा दी। इस विधि अश्वमेध, यज्ञ उनसे करवा दी।।

वेदवादी ऋषियों ने जब, यज्ञ यह उनसे करवाया। यज्ञ से सब देवों के देव, प्रभु को इन्द्र ने फिर पूजा।।
पुरुषोत्तम की आराधना का, फिर ऐसा प्रभाव हुआ। वृत्रासुर वध की बहुत बड़ी, पाप शशि का नाश हुआ।।
ज्यों सूर्य उदय हो जाने पर, कोहरा सारा छट जाये। त्यों ही प्रभु की उपासना से, पाप भी सारा हट जाये।।

मरीचि आदि ऋषिवर ने जब, उनसे यज्ञ यह करवाया। विधि विधान पूर्वक उन्होंने, यज्ञपति हरि को पुजवाया।।
सनातन पुरुष की आराधना से, छूटे इन्द्र सब पापों से। अनुष्ठान यह कर करी, वह पूर्ववत् ही पूज्य हुए।।

इस श्रेष्ठ आख्यान में हे राजन्, हुआ वर्णन इन्द्र की विजय का। उनकी पापों से मुक्ति का, प्रभु प्रिय भक्त वृत्रासुर का।।
तीर्थ को भी तीर्थ करे, श्री हरि का अनुग्रह है जो। इस प्रसंग में जान लो, श्री हरि गुणों का कीर्तन हो।।
समस्त पापों को यह, आख्यान पूर्ण ही धो दे। भक्ति का वर्धन करे, प्रभु चरण में प्रीति दे।।

बुद्धिमान् को चाहिए, वह इस कथा को सदा पढ़े। इन्द्र सम्बधी कथा का वह, सदा सर्वदा श्रवण करे।।
विशेष रूप से पर्वों पर, इसको श्रद्धा से सुने। पापों से यह मुक्त करे, और धन यश का वर्धन करे।।
शत्रु पर विजय यह दिलवाये, आयु की भी वृद्धि करे। सर्वविधि मंगल करे, और सदा समृद्धि करे।।

७) वृत्रासुर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

परीक्षित् बोले,
रजोगुणी और तमोगुणी, वृत्रासुर का स्वभाव था। कष्ट वह देवों को पहुँचा, बहुत पाप भी करता था।।
फिर श्री हरि के चरणों में, दृढ़ भक्ति उसकी कैसे हुई? श्री नारायण की भक्ति की, प्रसाद उसे कैसे मिला?
प्राय: शुद्ध सतोगुणी देव, और पावन चित्त ऋषिवर भी। प्रेम रूपा अनन्य भक्ति, से रह जाते वंचित ही।।
अति दुर्लभ है यह भक्ति, जग में श्री भगवान की। उनकी कृपा के बिना इसे, प्राप्त नहीं कर सके कोई।।

असंख्य हैं इस जग के प्राणी, धरती के धूलि कणों के समान। कतिपय मनुष्य या श्रेष्ठ जीव, ही चाहें कभी अपना कल्याण।।
हे द्विजवर उनमें से भी, विरले ही मुक्ति चाहें। सहस्रों मुमुक्षु गण में भी, कोई एक ही यह सिद्धि पाये।।
हे ऋषि श्रेष्ठ उन कोटिश: सिद्धों और मुक्त पुरुषों में। अति दुर्लभ है मिलना उसका, जिसका चित्त सदा शान्त रहे।।
श्री हरि के परायण हो, जो उनके ही आश्रित रहे। ऐसा विलक्षण भक्त प्रभु, इस जग में कभी कहाँ मिले?

वृत्रासुर तो सबको ही, अपने कर्मों से सताता था। असुर था स्वभाव से वह, और बड़ा वह पापी था।।
उस भयंकर युद्ध में, वृत्तियों को संयत कैसे किया? श्री कृष्ण के चरणों में, दृढ़ता से कैसे वह टिका?
संशयपूर्ण यह मन हुआ, इसका रहस्य नहीं समझ सका। राज है क्या यह आप कहें, कौतूहल सुनने को जागा।।
वृत्रासुर का बल पौरुष अहो कैसा महान् था। रणभूमि में देवराज, इन्द्र को भी सन्तुष्ट किया।।
सूत बोले,
परम श्रद्धालु राजर्षि, परीक्षित् का यह प्रश्न सुनी। शुकदेव जी ने अभिनन्दन कर, उसको फिर यह बात कही।।
सावधान होकर राजन्, अब तुम यह इतिहास सुनो। जो प्रश्न पूछा तुमने, उत्तर सविस्तार सुनो।।
पिता व्यास देवर्षि नारद, ऋषि देवल के मुख से सुना। जो उन्होंने कहा मुझे, वही तुम्हें हूँ बता रहा।।

प्राचीन काल में शूरसेन, नाम का इक देश था। महा चक्रवर्ती सम्राट, चित्रकेतु का वहाँ राज्य था।।
उनके राज्य में पृथ्वी स्वयं, अन्न रस सब देती थी। प्रजा की इच्छा अनुकूल, वह उसका पालन करती थी।
एक करोड़ रानियां थीं, चित्रकेतु महाराज की। सन्तति उत्पन्न करने की, उनमें स्वयं सामर्थ्य भी थी।।
किन्तु किसी भी रानी ने, गर्भ धारण नहीं किया। इस कारण सन्तान सुख, उस राजा को नहीं मिला।।

महाराज चित्रकेतु को, किसी भाँति का अभाव न था। सौन्दर्य उदारता युवावस्था, सब कुछ उनको प्राप्त था।।
कुलीनता विद्या और ऐश्वर्य, सम्पद् आदि से सम्पन्न थे। पत्नियां उनकी बांझ थीं, इस कारण वह चिन्तातुर थे।।

एकछत्र सम्राट् थे वह, सारी ही पृथ्वी थी उनकी। सौन्दर्यमयी थीं रानियां, और वे सब भी उसके वश में थीं।।
सब प्रकार की सम्पदा, सेवा में उपस्थित थी रहती। पर यह सब बातें मिलकर, उन्हें सुखी न कर सकीं।।

ऋषि अंगिरा थे सामर्थ, शाप और वरदान में। स्वच्छन्द विचरते वह इक दिन, चित्रकेतु के महल पहुँचे।।
प्रत्युत्थान और अर्ध्य दे, विधिवत् पूजा राजा ने करी। अतिथि सत्कार हो जाने पर, सुख आसन ऋषि ने ग्रहण किया।।
तब राजा चित्रकेतु भी, उनके पास ही बैठ गए। विनम्र भाव से भूमि पर, आसन डाल के बैठ गए।।

महर्षि अंगिरा ने देखा, राजा का अति विनीत भाव। बैठा धरा पे उनके पास, हृदय धर के पूज्य भाव।।
चित्रकेतु को लक्ष्य कर, तब उन्होंने यह बात कही। अति आदर देते हुए, उसको सम्बोधन करी।।
अंगिरा ऋषि बोले,
मन्त्री राष्ट्र गुरु दुर्ग कोष, सेना मित्र प्रकृति तेरी हों। हे राजन् निज प्रकृतियों संग, कुशल से हो न अब कहो?
महत्तत्त्वादि सात आवरण, ज्यों जीव को घेरे रहें। उसी विधि राजा को भी, यह सात प्रकृतियाँ हैं घेरे।।
इन सबके कुशल से ही, राजा की कुशल भी होती है। इस कारण हूँ पूछ रहा, कहो प्रकृति तेरी कैसी है?

ज्यों राजा प्रकृतियों के, अनुकूल रहे ही सुख भोगे। वैसे ही निज रक्षा का, भार राजा पे छोड़ के।।
निज सुख और समृद्धि का, लाभ प्रकृतियाँ उठायें यह। इक दूजे पे इस भाँति, दोनों ही आश्रित रहें।।
हे राजन् तेरी रानियां, प्रजा मन्त्री और सेवक जन। व्यापारी आमात्य नागरिक, देस के वासी यह सब जन।।
मण्डलेश्वर और राजा सब, पुत्र तो हैं न वश में तेरे? कुशल क्षेम अपनी कहकर, अब मेरा चित्त शान्त कर।।

सत्य तो यह है मन जिसका, अपना वश में हो गया। यह सब ही उसके वश में, तत्पश्चात् हैं रहते सदा।।
इतना ही नहीं सब लोक और, लोक पाल भी सेवा करें। सावधान हो भेंट दें, उसकी प्रसन्नता ही चाहें।।
परन्तु मैं हूँ देख रहा, तुम तो स्वयं संतुष्ट नहीं। ऐसा मुझे आभास हो, कोई कामना पूर्ण नहीं हुई।।
मुखड़े पर तेरे राजन्, चिन्ता के चिह्न हैं झलक रहे। क्या खुद ही कारण हो इसका, या अन्य कोई कारण बने?

महर्षि यह जाने थे, क्या चिन्ता है उसके मन में। फिर भी इस सम्बन्ध में, राजा से अनेकों प्रश्न किये।।
चित्रकेतु के मन में तो, सन्तान की चाहना थी बनी। महर्षि ने जब पूछा, झुककर निवेदन उसने करी।।
राजा चित्रकेतु बोले,
तपस्या ज्ञान धारणा ध्यान, और समाधि के द्वारा। सारे पापों को ही जिन, योगियों ने है नष्ट किया।।
कौन सी ऐसी बात है, जिसको न वह जान सकें? प्राणियों के बाहर भीतर, की सारी पहचान सकें।।

ऐसा होने पर भी आप, सब जान के भी हैं पूछ रहे। मेरे मन की चिन्ता का, कारण आप हैं पूछ रहे।।
आपसे ही प्रेरणा और, आज्ञा जो अब मैं पाऊँ। अपने मन की चिन्ता को, आपके ही मैं चरण धरूँ।।
लोकपाल भी पृथ्वी के, जिस साम्राज्य को ललचायें। ऐश्वर्य और सब सम्पद् भी, मेरे चरण यह सहलायें।।
सन्तान अभाव में हे प्रभु, भोगों से तनिक न शान्ति मिले। ज्यों भूखे प्यासे प्राणी को, बिन अन्न जल कुछ न चाहिए।।

महाभाग के महर्षे, मैं तो इस कारण हूँ ही दु:खी। पिण्ड दान के अभाव की, आशंका से हैं पितर् दु:खी।।
कृपा कर हे महर्षि, सन्तान दान हमें दीजिये। परलोक में प्राप्त जो हों, नरकों से उभार ही लीजिये।।

कुछ ऐसी व्यवस्था आप करें, सब ही दु:खों से छूटूं मैं। लोक और परलोक के, दु:खों से मुक्त हो जाऊं मैं।।
शुकदेव बोले,
जब राजा चित्रकेतु ने, इस विध प्रार्थना की उनसे। तब परम कृपालु सर्व समर्थ, ब्रह्मा पुत्र श्री अंगिरा ने।।
त्वष्टा देवता के योग्य, चरु का निर्माण किया। फिर महर्षि ने उससे, त्वष्टा कार ही यजन किया।।
हे राजन् चित्रकेतु की, पत्नियों में श्रेष्ठा ज्येष्ठा जो। सद्गुणवती महारानी का, नाम कृतद्युति ही हो।।
यज्ञ का अवशेष जो, ऋषि ने उसको ही दिया। इस भाँति चित्रकेतु भी, प्रसाद यज्ञ का पा गया।।

राजा चित्रकेतु से, फिर ऋषि ने यूँ कहा। तव पत्नी के गर्भ से, हे राजन् पुत्र तेरा होगा।।
हर्ष शोक दोनों ही, वह तुझको राजन् देगा। ऐसा कहकर अंगिरा, ऋषि ने फिर प्रस्थान किया।।
उस यज्ञशेष प्रसाद को, कृतद्युति ने श्रद्धा से खाया। महाराज चित्रकेतु से, फिर गर्भ उसका ठहर गया।।
ज्यों कृतिका ने निज गर्भ में, अग्नि कुमार धारण था किया। उसी विधि महारानी ने, इस गर्भ को धारण किया।।

शूरसेन नरेश चित्रकेतु, का गर्भ में तेज था। कृतद्युति का गर्भ फिर, दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा।।
शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा, के समान वह बढ़ता रहा। क्रमश: बढ़ते बढ़ते वह, पूर्णता को पा गया।।
फिर जब उचित समय आया, इक सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। जन्म का समाचार पाकर, आनन्दित जन जन वहाँ हुआ।।

सम्राट चित्रकेतु के आनन्द का कोई पार न था। तत्क्षण ही फिर स्नान कर, निज को पावन उसने किया।।
फिर वस्त्र आभूषण से, वह सुसज्जित हो गए। ब्राह्मणों को बुलवाकर के, स्वस्ति वचन उन्होने कहलाये।।
आशीर्वाद उनका लेकर, करवाया जातकर्म संस्कार। शास्त्रोचित विधिवत् ही, हुए उसके सारे संस्कार।।

सोना चान्दी वस्त्र आभूषण, गांव घोड़े हाथी दिये। उन ब्राह्मणों के लिये, छ: अर्बुज गौ के दान दिये।।
राजा चित्रकेतु तो थे, दानशिरोमणि अति उदार। पुत्र के धन यश आयु की, वृद्धि को किया सब उपचार।।
जिसने जो भी मांगा उनसे, वह ही वस्तु दान दी। ज्यों वारिमुच् सब प्राणिन् के, मनोरथ पूर्ण कर दे सभी।।

जैसे किसी कंगाल को, कठिनाई से कोई धन मिले। उस धन में तो उसकी, आसक्ति स्वभाविक ही रहे।।
वैसे ही बहुत कठिनाई से, प्राप्त था उसको पुत्र हुआ। स्नेह बन्धन उसमें राजा का, प्रति दिन दृढ़ होने लगा।।
माता कृतद्युति भी निज, पुत्र के मोह में थी फंसी। पुत्र पर हर क्षण ही वह, अत्यन्त स्नेह थी उड़ेलती।।
किन्तु उनकी सौतन जो, अन्य रानियाँ राजा की। डाह वह उससे करने लगीं। पुत्र कामना हिय धरी।।

बालक के प्रति चित्रकेतु के, मन में था बहुत लाड़ प्यार। उसकी माता कृतद्युति में भी, विशेष स्नेह बना अपार।।
दूजी रानियों के प्रति, नहीं था ऐसा स्नेह रहा। इस कारण उनकी वह, उपेक्षा ही था कर देता।।
सन्तान के अभाव का, दु:ख उनको पहले ही था। डाह की भी जलन थी, निज पति की उपेक्षा पा।।

आपस में अब उन सबका, वार्तालाप होने लगा। बहुत अभागिन है बहनो, पुत्रहीन जो है अबला।।
पुत्रवती सौतन तो, दासीवत् करे उनका तिरस्कार। पति से भी नहीं मिलता, उसे पत्नी सम्मत अधिकार।।
सत्य यह जान लो बहिनो तुम, धिक्कार योग्य है पुत्र हीना। विधाता ने ही इस विधि, सुख वैभव उसका सब छीना।।

क्या दु:ख है भला किसी दासी को, निज स्वामी की सेवा वह करे? प्रतिरूप में निरन्तर ही, सम्मान भी उससे वह पा ले।।
हम अभागिनें तो इस पल, उससे भी अति न्यून हैं। दासियों की भी दासी सम, तिरस्कृत हम अपमानित हैं।।
शुकदेव बोले,
निज सौतन की भरी गोद से, नित्य वे जलती रहतीं थीं। उदासीन राजा भी हुए, इस कारण दु:खी वह रहतीं थीं।।
फल स्वरूप रानियों के, मन में द्वेष का विष भरा। कृतद्युति के प्रति वहाँ, केवल डाह का भाव था।।
द्वेष के कारण उन सबकी, बुद्धि भी थी भ्रष्ट हुई। क्रूरता पूर्ण भावों ने, थी उनके चित्त में घर करी।।
निज पति चित्रकेतु का, पुत्र स्नेह वह सह न सकी। नन्हें राजकुमार को, इस कारण उसने विष दे दी।।

महारानी कृतद्युति तो, पूर्णतय: अनभिज्ञ थी। निज सौतों के पापपूर्ण, कर्म को वह न जान सकी।।
दूर से देख समझ लिया, मेरा शिशु है सो रहा। इस कारण महल में उसका, इधर उधर था ध्यान बंटा।।
बुद्धिमती रानी ने जब, देखा चिरकाल से सुत सोया। कल्याणि। लाल मेरा ले आ, धाय से फिर उसने कहा।।

सुप्त शिशु के पास जा, धाय ने जब उसे देखा। नेत्र की पुतली उलट गई, तब ऐसा उसको भासा।।
प्राण इन्द्रिय और जीवात्म, भी उस तन को त्यज चुके। यह देख कर धाय ने, उच्च स्वर से विलाप किये।।
हाय रे मैं मारी गई, यह कहकर वह धरती पे गिरी। शिशु के इस वियोग को, धाय मां न सह सकी।।

दोनों हाथों से छाती पीट, वह आर्त स्वर से रोने लगी। कृतद्युति वह रुदन सुनकर, जल्दी से वहाँ पे आ पहुँची।।
निज पुत्र के शयन कक्ष में आ, यह दृश्य उसने देखा। नन्हा सा उसका शिशु, है अकस्मात् मारा गया।।
अत्यधिक शोक के कारण वह, तत्क्षण ही मूर्छित हुई। अपने को न सम्भाल सकी, धरती पर वह जाय पड़ी।।
सिर के बाल भी बिखर गए, वस्त्र भी अस्त व्यस्त हुए। अपनी सुधबुध नहीं रही, दारुण दृश्य यह देख के।।

रुदन सुनी महारानी का, सब जन दौड़े आये वहाँ। अन्त: पुर की नारी और, सब नर भी पहुँचे वहाँ।।
सहानुभूति से सबका हृदय, द्रवीभूत ही हो गया। हत्यारी रानियों ने भी आ, प्रदर्शन झूठे दु:ख का किया।।

राजा चित्रकेतु को जब, अकाल मृत्यु का पता चला। अपने प्रिय पुत्र की, अकारण मृत्यु का सुना।।
शोक के आवेग से, अन्धेरा आंखों में छाया। मार्ग में गिरते पड़ते ही, मृत शिशु तक वह आया।।
मन्त्री और ब्राह्मणों ने, राह में उसको था थामा। बालक के पास पहुँचते ही, मूर्छित हो चरण के पास गिरा।।
बिखर रहे थे उसके केश, वस्त्र भी अस्त व्यस्त हुए। दु:ख के आवेग में, वह आहें लम्बी भरने लगे।।
अश्रुधारा आंखों से वही, और गला अवरुद्ध हुआ। ऐसा व्यथित हृदय था उसका, मुख से कुछ न बोल सका।।

पतिव्रता कृतद्युति ने, पति को अति आकुल देखा। इकलौते पुत्र को मृत देख, उसने अति विलाप किया।।
उसका यह दु:ख देख करी, सभासद् सब हुए शोक ग्रस्त। मन्त्री आदि उपस्थित जन, देख के दृश्य यह हुए त्रस्त।।

महारानी के नेत्रों से, अविरल अश्रु थे बह रहे। आंखों का अंजन लेकर, ज्यों वक्ष:स्थल को धो थे रहे।।
अश्रु की उस धारा में, केसर और चन्दन सारे बहे। उनके बाल थे बिखर गए, वेणी के फूल भी गिर गए।।
कुररी पक्षी के समान, वह उच्च स्वरों में रोने लगीं। पुत्र वियोग में महारानी, विविध विलाप थी करने लगी।।

रानी बोली,
दु:खी होई वह कहने लगी, अति मूर्ख है तू विधाता हे। अपनी सृष्टि के प्रतिकूल, ही तू चेष्टा है करे।।
अति आश्चर्य की बात है। बूढ़े वृद्ध तो जीवित हैं। शिशु जो कल के हैं जन्मे, वृद्धों के रहते वह मृत हैं।।
यदि तेरे स्वभाव में, है ऐसी ही विपरीतता। तब तो तू सचमुच में, अमर शत्रु है जीवों का।।

संसार के प्राणियों में गर, नहीं क्रम हो जीवन मरण का। निज प्रारब्ध अनुकूल ही, वह जन्में और मरें सदा।।
तो फिर इस संसार में, है तव आवश्यकता क्या? सृष्टि वर्धन के लिये तूने, यह सब स्नेह बन्धन रचा।।
इस विध शिशुअन् को मार कर, विपरीत ही है तू कर रहा। अपने किये कराये पर, निज हाथों पानी फेर रहा।।

फिर मृत पुत्र निज देख कर, रानी यूं कहने लगी। हे पुत्र तेरे बिना, अति दीन अनाथ हूँ मैं हुई।।
इस विध मुझको छोड़ना, है उचित नहीं तेरे लिये। जरा आंख खोल और देख सही, तव पिता वियोग से तड़प रहे।।
सन्तानहीन जिस घोर नरक, को अति दुस्तर पाते हैं। तुम्हारे आसरे हे पुत्र, हम उसको तरना चाहते हैं।।
यह यमराज है अति निर्दयी, इसके साथ न जाओ तुम। हम बाट तेरी हैं निहार रहे, हे पुत्र लौट ही आओ तुम।।

मेरे प्रिय पुत्र हे राजसुत, उठो उठो अब तुम जागो। सखा तुम्हारे बुला रहे, अब खोलो उनके संग भागो।।
बहुत देर हुई सोते हुए, अब तो भूख लगी होगी। उठो उठो कुछ खा तुम लो, क्षुधा दूर तेरी होगी।।
कुछ और नहीं तो मेरे ही, स्तन का पान तुम पुत्र करो। स्वजन सम्बन्धी हम सबका, दु:ख लल्ला तुम दूर करो।।

मेरे प्रिय पुत्र तेरे मुख पे, मुसकान नहीं अब देख रही। हे लाल मेरे वह प्यारी और, बांकी चितवन तेरी कहाँ गई?
हाय मुझ अभागिन को, नहीं तोतली भाषा सुन रही। क्या सच ही निष्ठुर यम ने, तेरी है अपहरण करी?
क्या वह ही हर कर तुझको, है परलोक में ले गया? जहां सेलौट के कभी कोई, इस लोक में पुन: नहीं आता।।
शुकदेव बोले,
सम्राट् चित्रकेतु ने जब, देखा रानी को इस विधि। मृत पुत्र हेतू राजन्, विलाप बहुत थी कर वह रही।।
तब शोक से सन्तप्त वह, अपने को न रोक सके। लोक लाज सब भूल करी, वह फूट फूट कर रोने लगे।।
विलाप करते हुए देखे, इस भाँति निज राजा रानी। उनकी सारी प्रजा भी, दु:ख से व्यथित हो रोने लगी।।
इस विधि सारा नगर ही, शोक सिन्धु में डूब गया। इस शोक आवेग से, अचेत ज्यों सारा नगर हुआ।।

महर्षि अंगिरा देवर्षि, नारद ने जब यह देखा। पुत्रशोक के कारण राजा, चित्रकेतु है अचेत हुआ।।
उसको समझाने वाला भी, कोई वहाँ पे नहीं रहा। उसको धीर बन्धाने को, तब दोनों ही पहुँचे वहाँ।।
शुकदेव बोले,
शोक निमग्न चित्रकेतु, मृतक प्राय: थे पड़े हुए। निज पुत्र शव के पास वह, अचेत से थे पड़े हुए।।
ऋषि अंगिरा और देवर्षि, नारद उन्हें समझाने लगे। सुन्दर उक्तियां दे कर, जीवन रहस्य सुझाने लगे।।
ऋषि बोले,
हे राजन् दोनों ने मिल, फिर उससे यह वचन कहे। जिसके लिये राजेन्द्र तुम, इतना शोक हो कर रहे।।
वह बालक पूर्व जन्मों में, इस जन्म में तेरा कौन था? कौन से नाते थे तुम उसके, आगे भी क्या सम्बन्ध होगा?

ज्यों जल के वेग से रेत के, कण आपस में मिल जायें। उसी वेग से पुन: यह कण, इक दूजे से बिछुड़ जायें।।
वैसे ही काल प्रवाह में, प्राणी मिलते बिछुड़ते हैं। यह तो नियम है जीवन का, जीवन चक्र यूं चलते हैं।।

जैसे कुछ बीजों से राजन्, नव बीज उत्पन्न होएं। और फिर कुछ काल में, वह बीज भी नष्ट होएं।।
वैसे ही प्रभु की माया में, प्राणी उत्पन्न हों प्राणी से। हे राजन् फिर वह प्राणी, भी नष्ट ही हो जायें।।
हे राजन् हम तुम और अन्य, चराचर जीव जो इस जग के। जन्म पूर्व वह थे नहीं, न मृत्यु बाद रहेंगे वे।।
इससे तुम यह जान लो, आज भी सत्ता इनकी नहीं। क्योंकि सत्य वस्तु तो, रहती है सदा एक सी।।

श्री हरि ही हैं अधिपति, जगत् में सारे जीवों के। जन्म मृत्यु आदि के, विकार न उनको छू सकें।।
न तो कोई इच्छा है उन्हें, न ही कोई उपेक्षा ही। स्वत: ही वह सृष्टि करें, परतंत्र सब प्राणियों की।।
उनके द्वारा ही अन्य की, सृष्टि वह करवाते हैं। फिर उनकी पालना और, खुद संहार कराते हैं।।
ज्यों शिशु मिट्टी के ही, घर घरौंदे बनाया करे। स्वयं ही रचना उनकी करे, फिर उनको वह तोड़ दे।।
इसी विधि वह स्वयं ही, सृजन करें सब सृष्टि का। और स्वयं पालन करके, फिर संहार करें उसका।।

हे राजन् ज्यों एक बीज, से उत्पन्न हो दूजा बीज। त्यों ही पिता की देह से, माता के गर्भ में आए जीव।।
जीव के रूप में माता पिता, और पुत्र सब है देही। बाह्य दृष्टि से गर देखें, वह हैं केवल शरीर ही।।
देही जीव सब कार्यों में, पृथ्वी समान ही नित्य है। और यह शरीर जो, घट आदि सम अनित्य है।।

ज्यों माटी में हे राजन्, घट आदि रूप अनेक बनें। घट आदि जाति और व्यक्ति, विभाग हैं कल्पना मात्र ही रे।।
उसी विधि इस देही और, देह का दीखे विभाग जो। वह भी अविद्या जनित और, केवल कल्पना मात्र ही हो।।
शुकदेव बोले,
जब ऋषियों ने इस विधि, समझाया चित्रकेतु को। तब धैर्य कुछ धारण किया, उठाया शोकाकुल मुख को।।
मुरझाया हुआ अपना मुखड़ा, उसने हाथों से पोंछ लिया। और फिर उन ऋषियों से, उसने राजन् यह वचन कहा।।
राजा चित्रकेतु बोले,
हैं परम ज्ञानवान दोनों, और महान् से भी महान्। अवधूत वेश में अपने को, किया आपने आवृतवान्।।
कृपा करी हे महर्षिगण, प्रकट निज स्वरूप करें। कौन हैं कहाँ से आये आप, सत्यता हमको बतला दें।।
मैं जानूं अनेकों ब्रह्मवेता, और श्री हरि के प्रिय भक्त। मुझ जैसे प्राणियों को, जो रहते विषयों में आसक्त।।
उपदेश करने के लिये, उन्मत्त सा वेश बनाकर के। हे मुनिवर स्वच्छन्द ही, धरती पर विचरा करें।।

सनत्कुमार नारद ऋभु, अंगिरा देवल और असित। श्री वेदव्यास मार्कण्डेय, श्री परशुराम गौतम वसिष्ठ।।
दुर्वासा कपिल और शुकदेव, जातूकर्ण्य और याज्ञवल्क्य। आरुणि रोमश और दत्तात्रेय, आसुरि पाताञ्जलि और च्यवन।।
वेदशिरा बोध्यमुनि पंचशिरा, हिरण्यनाभ और श्रुतदेव। कौसल्य और ऋतध्वज यह, सब और अन्य जो सिद्ध देव।।
ऋषि मुनि इस धरती पर, विचरते रहते हैं सदा। ज्ञान दान करने के लिये, कृपा करें जीवों पे सदा।।

हे स्वामिन् विषय भोगन् में, असक्त हूँ मैं हो रहा। ग्राम्य पशु की भाँति ही, मैं अति मूढ़ बुद्धि हुआ।।
अज्ञान के घोर तिमिर में, हूँ प्रभु मैं डूब रहा। ज्ञान की ज्योति से प्रभु, प्रकाश केन्द्र में लायें जरा।।

अंगिरा ऋषि बोले,
हे राजन् अति लालायित तुम, जब पुत्र प्राप्ति हेतु हुए। मैंने ही तुम्हें पुत्र प्राप्ति, के थे यह वरदान दिये।।
वही अंगिरा ऋषि हूँ मैं, और जो यह सम्मुख हैं खड़े। देवों के भी ऋषि हैं जो, वह ही हैं श्री नारद यह।।

पुत्र शोक के कारण जब, देखा तुम्हें तिमिर में डूबते। तब सोचा तुम तो राजन्, हो भगवान के भक्त प्रिय।।
ऐसा शोक चित्रकेतु, है तुम्हारे योग्य नहीं। इस कारण अनुग्रह करके, पहुँचे हम दोनों यहीं।।
सत्य बात जानो राजन्, है प्रभु और ब्राह्मण भक्त जो। किसी भी अवस्था में, नहीं वह शोक निमग्न हो।।

पहली बार हे राजन् जब, तेरे पास था मैं आया। परम ज्ञान उपदेश ही, तुमको देना था चाहा।।
किन्तु जब देखा मैंने, तेरा हृदय लालसापूर्ण था। पुत्र कामना भरी वहाँ, मानो जीवन ही अपूर्ण था।।
इसलिये ज्ञान न दिया तुम्हें, पुत्रमात्र ही दे दिया। इस विधि जानो हे राजन्, पूर्ण करी तेरी लालसा।।

अब अनुभव से तुम जान रहे, पुत्रवान् का दुःख राजन्। यही बात लागू होती, सब अन्य विषय में भी राजन्।।
स्त्री घर धन ऐश्वर्य सभी, सम्पद् और रूप रसादि विषय। राज्य वैभव पृथ्वी पतित्व, सेना कोश सेवक अमात्य।।
सगे सम्बन्धी इष्ट मित्र, सबको इस भाँति ही देखो। हैं सबके सब अनित्य ही, हे राजन् अब तो जान लो।।

हे शूरसेन इतना जानो, यह सब ही कारण हैं दुःख के। शोक मोह भय के सिवा, इनसे तो कुछ भी नहीं मिले।।
मन के खेल खिलौने यह, कल्पित और मिथ्या ही हैं। वास्तव में यह हैं ही नहीं, जो दीखें वह मायावत् है।।
इक क्षण दीख के इस कारण, दूजे ही क्षण यह लुप्त भएं। स्वप्न गन्धर्वनगर जादू, के समान हैं असत्य यह।।
वासना से नित प्रेरित हो, जो विषयों का चिन्तन करें। उन्हीं का मन अनेक भाँति के, कर्मों की भी सृष्टि करे।।

पंचभूत कर्मेन्द्रिय और, ज्ञानेन्द्रिय का सम्मूह जो। वह ही तो जीवात्मा, का यह नश्वर देह हो।।
जीव के विविध क्लेशों और, सन्तापों का कारण यह। इसका संग ही जन्म मरण के, चक्र में उसे घुमाया करे।।

इसलिये हे राजन् तुम, निज मन को संयत करो। विषयों की भटकन छोड़ कर, अब इसे शान्त और स्वस्थ करो।।
फिर उस मन के द्वारा तुम, वास्तविक स्वरूप अपना जानो। इस द्वैत के भ्रम में नित्य की, अब बुद्धि तुम न रखो।।
परम शान्त स्वरूप अब, परमात्म भाव में स्थित रहो। हे राजन् इस भाव में, ही एकत्व तुम प्राप्त करो।।

नारद बोले,
अपने चित्त को हे राजन्, अब तो तुम एकाग्र करो। और मुझसे अब यह तुम, मन्त्रोपनिषद ग्रहण करो।।
इसको धारण करके तेरा, परम कल्याण हो जायेगा। सप्त रात्रि में तू राजन्, संकर्षण दर्शन पायेगा।।
प्राचीन काल में हे नरेन्द्र, था आश्रय लिया प्रभु शंकर ने। संकर्षण प्रभु के थे वह आश्रित हुए।।
इस कारण ही द्वैत भ्रमण, परित्याग उन्होंने करी। उस महिमा को वह प्राप्त हुए, जिससे बढ़कर कहीं कोई नहीं।।
बढ़कर तो कोई क्या होगा, नहीं उन समान भी है कोई। प्रभु के उस परम पद को, प्राप्त करोगे शीघ्र ही।।

शुकदेव बोले,
तत्पश्चात् श्री नारद ने, मृत जीवात्म प्रत्यक्ष किया। शोक संतप्त स्वजन सम्मुख, बुलाकर राजसुत को कहा।।

नारद बोले,
कल्याण हो जीवात्म तव, देखो यह तुम्हारे माता पिता। सुहृद् सम्बन्धी सबको ही, व्याकुल वियोग ने तेरे किया।।
इसलिये हे जीव तुम, निज तन में पुन: लौट आओ। अपने स्वजन सम्बन्धी संग, शेष आयु बिता जाओ।।
निज पिता के दिये भोगों का, हे राजपुत्र तुम भोग करो। उसके दिये सिंहासन पर, तत्पश्चात् आसीन होवो।।
जीव बोला,
हे देवर्षि निज कर्मानुकूल, अनेक योनि में भटक रहा। कभी देव मनुष्य कभी, पशु पक्षी कई जन्मों में बना।।
कई लोग कई जन्मों में, मेरे माता पिता हुए। उनमें से हे देवर्षि, कहो कौन से हैं मेरे?
विभिन्न जन्म में भिन्न लोग, भाई बन्धु और नाते बने। शत्रु मित्र मध्यस्थ कभी, कभी उदासीन और द्वेषी बने।।

ज्यों स्वर्णादि क्रय विक्रय की, वस्तु का नित्य ही भ्रमण हो। इक दूजे व्यापारी के, हाथों में उसका विचरण हो।।
त्यों ही जीव भी भिन्न-भिन्न, योनियों में आता जाता है। हर योनि में हैं नाते भिन्न, और भिन्न पिता और माता हैं।।
विचार की शरण में गर जाये, तब ही विवेक यह जागृत हो। जीव की अपेक्षा में, अधिक स्थाई हैं पदार्थ जो।।
उन स्वर्णादि का नाता भी, जीव के साथ क्षणिक ही है। जब तक जिससे सम्बन्ध रहे, वहाँ ममत्व भी क्षणिक ही है।।

है नित्य आत्मा जीव यह, और सर्वथा अहं रहित। गर्भ में आकर जीव वह, हो जाता है इक देह में स्थित।।
जब तक उस तन में वास करे, तब तक उसको अपना जाने। इस तन से उस अवधि तक, ही नाता अपना माने।।
है नित्य अविनाशी जीव यह, सूक्ष्म सर्वाश्रय स्वयं प्रकाश। स्वरूप में जन्म मृत्यु आदि, का है नहीं कहीं आभास।।
परमेश्वर रूप यह आप है, माया के गुणों का आश्रय ले। अपने आपको विश्व के, सब रूपों में प्रकट करे।।

न ही तो कोई अपना प्रिय, न उसका है अप्रिय कोई। न अपना कोई है उसका, न ही है कोई पराया ही।।
गुण दोष से पूर्ण जो, शत्रु मित्र की भिन्न वृत्ति। है सबका साक्षी अकेला वह, है वास्तव में अद्वितीय ही।।
है स्वतंत्र और साक्षी यह, आत्मा कार्य कारण का। उनके गुण दोष या, कर्मफल ग्रहण नहीं करता।।
उदासीन भाव में सदा, सर्वदा स्थित वह रहता है। है आत्म सदा साक्षी, स्वरूप भूत ही ऐसा है।।
शुकदेव बोले,
इस भाँति कह कर के, जीवात्म पुन: निराकार हुआ। यह कथन उसका सुनी, सम्बन्धी वर्ग सब विस्मित था।।
उस शिशु के संग उनका, स्नेह का जो बन्धन था बन्धा। उसकी बात सुनकर वह कटा, और शोक भी सारा जाता रहा।।
तत्पश्चात् सजातीय जन, उसकी मृत देह को ले गये। और्ध्वदैहिक क्रियायें सब, और उचित संस्कार किये।।
जिस कारण शोक मोह भय, और दु:ख को प्राप्त हो जीव सदा। दुस्त्यज तन से मोह को, भी उन सबने छोड़ दिया।।

हे राजन् जिन रानियों ने, विष थी उस बालक को दी। बालहत्या के पाप सें, श्री उनकी थी सारी छिनी।।
लज्जा वश वह नयन भी, उठा नहीं थीं पा रहीं। ऋषि अंगिरा का उपदेश पा, मात्सर्य रहित वह हो गईं।।
ब्राह्मणों का आदेश पा, यमुना तट पे वह गईं। इस विधि शिशु हत्या का, प्रायश्चित वह करने लगीं।।

अंगिरा और नारद ऋषि का, उनको जब उपदेश मिला। अन्य भाव सब गौण हुए, विवेक तब जागृत हुआ।।
घर गृहस्थी के अन्धकूप, में था चित्रकेतु गिरा। विवेक के जागृत होने पर, तत्क्षण ही उससे निकाला।।

जैसे कहीं गजराज कोई, कीचड़ के ताल में से निकले। त्यों ही पंक त्यजी मोह का, चित्रकेतु बाहर निकले।।

यमुना जी में फिर विधिपूर्वक, चित्रकेतु ने स्नान किया। तर्पण आदि धार्मिक सब, क्रियाओं का आश्रय लिया।।
तत्पश्चात् हो संयतेन्द्रिय, मौन ही राजा हो गए। देवर्षि नारद अंगिरा के, पाद सेवन में लगे।।
नारद जी ने देखा तब, चित्रकेतु हुए भगवद्भक्त। जितेन्द्रिय वह हो गए, और हुए वह शरणागत।।
अति प्रसन्न होकर उनको, इस विद्या का उपदेश किया। देवर्षि श्री नारद ने, फिर राजा को दी यह विद्या।।
नारद बोले,
ओंकार स्वरूप प्रभु, हैं आप ही वासुदेव प्रद्युम्न। आप स्वयं ही हैं बने, अनिरुद्ध और संकर्षण।।
क्रमश: चित्त बुद्धि मन, और अहंकार के अधिष्ठाता। चतुर्व्यूह आपके रूप को, नमन पुन: पुन: मैं करता।।
शुद्ध विज्ञान स्वरूप आप, परमानन्द स्वरूप सदा। नित्य आनन्द में सदा मग्न, और परम हैं शान्त सदा।।
हैं एकत्व में स्थित सदैव, द्वैत दृष्टि नहीं छू सके। नमस्कार मेरा प्रभु, चरणन् में नमस्कार हे।।

निज स्वरूप आनन्द की, अनुभूति में प्रभु मग्न रहें। राग द्वेषादि माया जनित, दोषों का तिरस्कार करें।।
सबकी समस्त इन्द्रियों के, प्रेरक स्वयं प्रभु हैं आप। महान् से भी हैं महानतम्, और आप हैं अति विराट्।।
नमस्कार प्रभु आपके, श्री चरणों में मेरा नमस्कार। पुन: पुन: श्री चरणों में, करूँ नमन मैं बार बार।।

मन सहित यह वाणी भी, पहुँच आप तक न पाये। आपको जानने जब चले, राहों से ही यह लौट आये।।
उसके उपरत हो जाने पर, जो भी बाकी शेष रहे। नाम रूप के रहित जो, अद्वितीय चेतन मात्र रहे।।
कार्य कारण दोनों से परे, जो भी वस्तुत: सत्य रहे। हे देव आपके चरण पड़े, वह ही हमारी रक्षा करे।।

कार्य कारण रूप जगत्, उत्पत्ति जिससे पाता है। जिनमें स्थित रहता है यह, और जिनमें लीन हो जाता है।।
मिट्टी से बनी वस्तु में, ज्यों माटी ओत प्रोत रहे। उसी विधि जड़ चेतन, सब में वही तो व्याप्त रहे।।
उस परब्रह्म स्वरूप प्रभु, को हो मेरा नमस्कार। श्री चरणों में ही नमन करूँ, मैं बार बार हजार बार।।

आकाश सब बाहर भीतर, हैं एक रस प्रभु व्याप्त आप। मन बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय, हैं सबकी पहुँच से परे आप।।
निज ज्ञान शक्ति से कोई भी, जान न पाये आपको। कर्मेन्द्रिय प्राण भी क्रिया शक्ति सें, छू न पायें आपको।।
है नमस्कार मेरा प्रभो, स्वीकार करें मेरा नमस्कार। पुन: पुन: मैं सीस झुका, चरणन् में करूँ नमस्कार।।

तन इन्द्रिय प्राण और मन, और है जो यह बुद्धि भी। जागृत स्वप्नावस्था में, चैतन्य अंश से युक्त सभी।।
अपने अपने कार्य में यह, सदा लगे ही रहते हैं। चैतन्य अंश से रहित सुषुप्ति, मूर्छा में पड़े रहते हैं।।
अपना अपना काज यह, कर नहीं तब पाते हैं। बाह्य आकार तो वही रहे, पर शक्ति रहित हो जाते हैं।।
ज्यों अग्नि से तप्त लौह, दग्ध करे जो भी छू ले। अग्नि सम्पर्क सें रहित वही, लौह दग्ध न कर सके।।
द्रष्टा भी जिसको कहें, वह एक नाम है आपका। जागृतादि अवस्था में, आपने वह स्वीकार किया।।
वास्तव में आपसे हटकर के, कुछ भी उसका अस्तित्व नहीं। आपसे पृथक् हे देव मेरे, द्रष्टा की सत्ता कोई नहीं।।

महाप्रभावशाली हैं आप, और हैं महा विभूति पति। ओंकार स्वरूप प्रभु, हैं महापुरुष इक आप ही।।

भक्तों के समुदाय मिल, कर कमल से सेवें श्री चरण। युगल श्री पदारविन्द की, सेवा में वह रहें मग्न।।
सर्वश्रेष्ठ हैं आप प्रभु, तेरे चरणन् में मेरा नमस्कार। स्वीकार करें प्रभु बार बार, चरण कमल में नमस्कार।।
शुकदेव बोले
शरणागत चित्रकेतु को, देवर्षि ने उपदेश किया। इस विद्या का हे राजन्, नारद ने उसे ज्ञान दिया।।
महर्षि अंगिरा संग वह, ब्रह्म लोक को चले गए। चित्रकेतु को ज्ञान यह दे, देवर्षि ने प्रस्थान किया।।
देवर्षि नारद ने जिस, विद्या का था उपदेश किया। उनकी आज्ञा अनुसार ही, अनुष्ठान राजा ने किया।।
केवल जल का पान कर, एकाग्रता से चित्त को टिका। उपदिष्ट विद्या को चित्रकेतु, ने फिर आत्मसात् किया।।

उस विद्या के अनुष्ठान में, सप्त रात्रि जब बीत गई। विद्याधर की अखण्ड आधिपत्य, तब चित्रकेतु को प्राप्त हुई।।
तत्पश्चात् कुछ दिन में ही, विद्या का यह प्रभाव हुआ। उसका मन मंजन हुआ, और भी शुद्ध वह हो गया।।
देवाधिदेव श्री शेष के, चरणों समीप वह जा पहुँचा। इस विधि श्री संकर्षण के, सान्निध्य को वह प्राप्त हुआ।।

श्री अनन्त को फिर उसने, सिद्धेश्वर मण्डल में देखा। कमल नाल के समान, गौर वर्ण ही था उनका।।
उसपर नीले रंग का, वस्त्र था लहरा रहा। बाहों में बाजूबन्द थे, सिर पे किरीट था सजा हुआ।।
कटि में करधनी हाथों में, कंगन आदि आभूषण थे। प्रसन्न वदन थे वह हुए, और रत्नारे नेत्र उनके थे।।

प्रभु शेष का दर्शन पाते ही, हुए पाप नष्ट उस राजा के। उसके अन्त:करण भी, स्वच्छ और निर्मल हो गए।।
हृदय में उमड़ा भक्ति भाव, नयनों में प्रेम के आँसू भरे। रोमांचित हुआ रोम रोम, ऐसी स्थिति में वह पहुँचे।।
दोनों कर को जोड़ कर, चित्रकेतु ने नमन किया। श्री शेष सम्मुख सीस झुका, कर वह राजा था खड़ा।।

प्रेमाश्रु की अविरल धारा, थी नयनों से बह रही। प्रभु शेष की चरण चौकी, इन अश्रुन् से भीग गई।।
गद्गद् कण्ठ था उसका हुआ, मुख से वाक् कोई न निकला। प्रभु अनन्त की स्तुति में भी, कोई वचन नहीं कहा।।

तत्पश्चात् सम्भले कुछ वह, वाणी ज्यों पुन: लौट आई। विवेक बुद्धि के आसरे, मन भी उन्होंने समाहित की।।
सब इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति, को उन्होने फिर रोक लिया। फिर जगद्गुरु की स्तुति करी, जिनका शास्त्रों में है कहा।।
पांचरात्रादि भक्ति शास्त्रों, में है जिनका विस्तृत वर्णन। उनके स्वरूप को ध्यान में धरन, राजा ने किया उनका वन्दन।।
चित्रकेतु बोले,
हैं अजित आप हे शेष प्रभु, कोई जीत आपको नहीं सके। जितेन्द्रिय समदर्शी साधु, ही वश में आपको कर सकें।।
आपने भी सौन्दर्य माधुर्य, करुणा आदि निज गुणों से। उन साधुन् के चित्त हैं, प्रभु अपने अधीन किये।।
धन्य धन्य हैं आप प्रभु, महिमा कौन आपकी गा सके? निष्काम भाव से जो भजे, उसे अपना आप ही दे डालें।।

जग की उत्पत्ति स्थिति प्रलय, लीला विलास प्रभु आपके। आपके अंश के अंशमात्र, ब्रह्मा आदि सब देव भयें।।
फिर भी पृथक् निज को मानी, अपने को कर्ता मान रहे। इस कारण इक दूजे से, व्यर्थ ही स्पर्धा में हैं पड़े।।
अणुतम परमाणु से लेकर, महतत्त्व पर्यन्त पदार्थ जो। आदि मध्य और अन्त में, सबके आप विराजे हो।।
पर स्वयं आप प्रभु आदि मध्य, और अन्त से हैं सदा परे। किसी के आदि अन्त में, रहे जो मध्य भी वही रहे।।

ब्रह्माण्ड कोश पृथ्वी आदि, सात आवरणों से घिरा। इक इक आवरण से दूसरा, है दस गुणा ज्यादा बड़ा।।
अपने ही जैसे कोटिश:, ब्रह्माण्ड इसको हैं घेरे। पर यह सब मिली आप में, परमाणु सम ही भास रहे।।
सब मिलकर यह आप में, निरन्तर घूमते रहते हैं। सीमा न आपकी जान सकें, अनन्त आपके कहते हैं।।

जो नरपशु इस जगत् में, चाहें केवल ही विषय भोग। आपका भजन न करके वह, उपासें इन्द्र आदि सब देव।।
आपकी ही हैं विभूति वह, यह सब भूल ही जाते हैं। इस कारण ही देवों की, उपासना में भरमाते हैं।।
ज्यों राजकुल के नाश से, अनुयायी भी उनकी नष्ट हों। वैसे ही क्षुद्र उपास्य देव, जब नष्ट हों भोग भी नष्ट हों।।

ज्ञान स्वरूप हैं आप प्रभु, और निर्गुण भी आप हैं। सकाम भाव भी आपके, प्रति प्रभु निष्काम है।।
अन्य कर्मों के समान, नहीं जन्म मृत्यु का फल वह दे। जैसे भुने हुए बीजों के, अंकुर कभी भी नहीं उगते।।
सुख दु:ख आदि द्वन्द्व जो, जीव को कभी भी प्राप्त हों। सब गुण कारण ही होते हैं, निर्गुण का नहीं परिणाम वो।।

शुद्ध भागवत धर्म का, प्रभु आपने जब उपदेश किया। तत्काल ही सबके मन को, हे अजित आपने जीत लिया।।
सर्वपरिग्रह त्यागी जो, अहंता ममता रहित जो जन। आत्मा राम सनक आदि, जो हैं परम महर्षि गण।।
परम साम्य और मोक्ष के, हेतु उसका ही आश्रय लें। सब अन्य धर्म को छोड़ कर, वह भागवत धर्म की शरण पड़ें।।

अपना और दूजे का भी, अहितकर है सकाम धर्म। न अपना पराया हित हो वहाँ, न ही हो सिद्ध कोई प्रयोजन।।
सकाम का जो अनुष्ठान करे, चित्त उसका जब व्यथित भए। धर्म वह धर्म ही नहीं रहे, अधर्मपूर्ण ही वह भए।।
जिस दृष्टि से प्रभु आपने, भागवत धर्म विस्तार किया। वह तो परमार्थ दृष्टि से, विचलित कभी नहीं होता।।
चर अचर जड़ चेतन में, संत जो समदृष्टि रहें। वह ही तो वास्तव में, भागवत धर्म सेवन करें।।

प्रभु आपके दर्शन मात्र से, क्षीण हो जायें सगरे पाप। आपकी कृपा जो हो प्रभु, नहीं असम्भव कोई बात।।
आपके नाम का एक बार, जिसने श्रवण कभी कर लिया। वह नीच चाण्डाल भी, भव बन्धन से मुक्त हुआ।।
आपके दर्शन मात्र से ही, मेरे अन्त:करण की मल धुली। हे प्रभु यह तो आपकी, कृपा के है अनुरूप ही।।
अनन्य प्रेमी आपके, श्री नारद जी ने जो कहा। हे प्रभु वह सत्य ही है, मिथ्या नहीं वह हो सकता।।

सारे जगत् के आत्मा, हे हरि हैं अनन्त आप। जहाँ पे भी जो प्राणी करें, उन सबको ही जानें आप।।
जैसे जुगनू सूर्य को, प्रकाशित कभी न कर सके। मुझ जैसा क्षुद्र प्राणी, समर्पित प्रभु को क्या करे?
आपकी ही अध्यक्षता में, उत्पत्ति स्थिति और प्रलय भयें। भेद दृष्टि के कारण न, कुयोगी आपको जान सकें।।
आपके शुद्ध स्वरूप से, अनभिज्ञ ही वह रह जाते हैं। हे प्रभु हम चरणों में, करी नमन सीस झुकाते हैं।।

आपकी चेष्टा से ही प्रभु, शक्ति को सब प्राप्त करें। ब्रह्मा आदि सब लोकपाल, चेष्टा में समर्थ बनें।।
आपकी कृपा दृष्टि पाकर, ज्ञानेन्द्रियों में समर्थ आये। अपने अपने विषयों को, फिर ग्रहण यह कर पायें।।
आपके सीस पे भूमण्डल, दीखे सरसों के बीज समान। बार बार करूँ नमस्कार, सहस्र शीर्षा प्रभु महान्।।
शुकदेव बोले,
विद्याधरों के अधिपति, चित्रकेतु ने स्तुति करी। अनन्त प्रभु ने प्रसन्न हो, तब उससे यह बात कही।।

भगवान बोले,
हे चित्रकेतु श्री अंगिरा और, देवर्षि नारद ने जो कहा। मुझ सम्बन्धी जिस विद्या, का था उन्होंने उपदेश किया।।
उसको और मेरे दर्शन को, पाकर तुम हो सिद्ध हुए। मेरा जो भी सत्य है, चित्रकेतु तुम जान चुके।।
सब प्राणिन् के रूप में, मैं ही हूँ जानो बस रहा। मैं ही उनका आत्मा हूँ, और मैं ही हूँ पालन कर्ता।।

शब्द ब्रह्म रूपा जो वेद, और परम् ब्रह्म स्वरूप जो। मेरे ही सनातन रूप तुम, दोनों को राजन् जान लो।।
सब कार्य कारण जगत् में, व्याप्त है इक आत्मा। और जगत् की स्थिति का भी, एक आधार है आत्मा।।
दोनों के ही अधिष्ठान, रूप में स्वयं समाया हूँ। मुझमें ही कल्पित हैं दोनों, दोनों का ही आधार मैं हूँ।।

ज्यों स्वप्न में सोया हुआ पुरुष, निद्रा से जब जाग उठे। स्वप्न के सारे दृश्य को, अपने में ही वह जान ले।।
स्वप्न टूट जाने पर वह, स्वप्न में ही ज्यों जागा करे। अपने को उस संसार के, इक कोने में स्थित देखे।।
पर वास्तव में तुम जान लो, वह भी है स्वप्नमात्र ही। वह भी तो इक रचना है, स्वप्नाकार वृत्ति की ही।।
वैसे ही तुम जान लो, जाग्रतादि स्थिति जीव की। परमेश्वर की ही माया है, है जो भी अवस्था जीव की।।
यह जानकर प्रभु का ही, चिन्तन करना चाहिये। सबके साक्षी माया अतीत, परमात्मन् को ही ध्याइए।।

जिसका आश्रय ले सुप्त पुरुष, निद्रा सुख का अनुभव करे। अनिर्वचनीय और अतीन्द्रिय, ही उस सुख को जान ले।।
मैं ही हूँ वह परम ब्रह्म, निज आत्मा उसको तुम जानो। सब में रहे वह एक रस, इतना सत्व तुम पहचानो।।
निद्रा जागृति दोनों का ही, अनुभव लेता है पुरुष। उनके अनुरूप होकर भी, पृथक् है दोनों से पुरुष।।
सब अवस्था में जो रहे, अखण्ड और सदा एक रस। वह ज्ञान ही ब्रह्म है, जान ले उसको परम तत्त्व।।

मेरे वास्तविक स्वरूप को, विस्मृत जब भी जीव करे। अपने को मुझसे भिन्न ही, पृथक् वत् वह समझा करे।।
इस कारण ही संसार चक्र, में पुन: पुन: वह भ्रमण करे। जन्मान्तर जन्म और मृत्यु से, मृत्यु को वह प्राप्त होए।।
ज्ञान विज्ञान का मूल तो, है मनुष्य योनि ही। आत्म स्वरूप परमात्म को, न जाने जो इसे पाकर भी।।
कहीं किसी भी योनि में, उसको शान्ति नहीं मिले। मानुषी योनि पाकर भी, वह तो इसको व्यर्थ करे।।

सांसारिक सुख हेतु राजन्, जो भी चेष्टाएं की जायें। श्रम और क्लेश है उनमें निहित, केवल दु:ख ही वह घर लायें।।
कर्मों से निवृत्त जो हो, वहाँ किसी भाँति का भय नहीं। बुद्धिमान् मनुष्य तो, जाने है इस सत्य को ही।।
विवेकी पुरुष के चाहिये, नहीं कर्मों का संकल्प करे। और उनके फल से भी, सर्वथा ही वह मुक्त रहे।।

सब नर नारी जगत् के, इस उद्देश्य से कर्म करें। दु:खों से उनका पिण्ड छुटे, और परम सुख उनको मिले।।
किन्तु उन कर्मन् से तो, न दु:ख दूर हो पाता है। और न ही उनके द्वारा कोई, सुख ही प्राप्त हो जाता है।।
निज को अति बुद्धिमान् जान, जो कर्मबन्ध में हैं फंसे। इससे तो विपरीत ही, फल सदा वह पा हैं रहे।।
उनको यह समझना चाहिये, आत्म स्वरूप है अति सूक्ष्म। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति और, अभिमान से वह है विलक्षण।।

विवेकी को यह चाहिये, इस सत्य को वह जान ले। इस लोक के देखे हुए, और परलोक के हैं जो सुने।।
उन विषय भोगों से वह, अपना पिण्ड छुड़ा ही ले। ज्ञान विज्ञान सन्तुष्टात्मा, होकर भक्त मेरा वह बने।।

योगमार्ग का तत्त्व जो, अति निपुणता से जाने। जीव के सर्वोत्तम स्वार्थ, और परमार्थ को पहचाने।।
वह तो बस इतना ही है, अद्वैत का अनुभव वह करे। आत्म और ब्रह्म का, एकत्व अनुभव वह कर ले।।

गर मेरे इस उपदेश को, हो सावधान धारण करो। श्रद्धाभाव हृदय में धरी, राजन् इसे आत्मसात् करो।।
तब ज्ञान और विज्ञान से तुम, शीघ्र सम्पन्न हो जाओगे। हे राजन् तत्काल ही, फिर सिद्धि भी तुम पाओगे।।
शुकदेव बोले,
जगद्गुरु विश्वात्मा, श्री हरि यह समझाकर के। चित्रकेतु को इस भाँति, सारा ज्ञान बताकर के।।
उसके देखते देखते ही, अन्तर्धान वहाँ से हुए। जैसे थे वह प्रकट हुए, उसी भाँति अदृश्य हुए।।
शुकदेव बोले,
प्रभु संकर्षण जिस दिशा में, हे राजन् अन्तर्धान हुए। विद्याधर चित्रकेतु ने, उस ओर ही प्रणाम किये।।
फिर आकाश मार्ग से, स्वच्छन्द वह विचरण करने लगे। इस भाँति चित्रकेतु, पूर्णतय: स्वतंत्र हुए।।

सर्वसंकल्प पूर्तिकारक, सुमेरु पर्वत की घाटी। महायोगी चित्रकेतु ने वहाँ, कोटिश: वर्ष विहार करी।।
तनोबल और इन्द्रिय शक्ति, ज्यों की त्यों ही बनी रही। महामुनि सिद्ध चारण सबने, मिल कर उनकी स्तुति करी।।
विद्याधरों की पत्नियों ने, उनसे ही प्रेरणा पा करके। सबके स्वामी श्री हरि की, लीलाओं के गान किये।।

इक दिन तेजोमय विमान पे, चित्रकेतु आरूढ़ हुए। विष्णु प्रदत्त उस वाहन पर, वह थे विचरण कर रहे।।
उन्होंने देखा उस समय, श्री शंकर सभा में हैं बैठे। सिद्ध और चारण सबकी, सभा में हैं वह बैठे।।
निज अंक में भगवती पार्वती, को है उन्होंने बिठाया हुआ। और एक भुजा से है, आलिंगन बद्ध उनको किया।।
यह देख चित्रकेतु, विमान पे ही उनके निकट गए। उच्च स्वर से हंस करी, भगवती से वह यूं बोले।।
चित्रकेतु बोला,
अहो देखो सब जगत् के, धर्म शिक्षक यह गुरु देव। सारे ही प्राणियों में, इनको जानें सब सर्वश्रेष्ठ।।
इनकी अवस्था ऐसी है, भरी सभा में यह बैठे। निज पत्नी को अंग से, हैं लगाकर यह बैठे।।

यह जटाधारी है महातपी, ब्रह्मवादियों के भी सभापति। साधारण पुरुष की भाँति ही, है इनकी यह गति बनी।।
निर्लज्ज की भाँति गोद में, स्त्री को लेकर बैठे हैं। देखो तुम देखो तो सही, आचरण यह इनके कैसे हैं।।
प्राय: साधारण लोग भी, एकान्त में स्त्री संग करें। किन्तु व्रतधारी होकर भी, भरी सभा में हैं उसे गोद लिये।।
शुकदेव बोले,
प्रभु शंकर की बुद्धि तो, अति अगाध है सागर सम। मौन रहे हंसने वह लगे, चित्रकेतु के कटाक्ष सुन।।
उस सभा में बैठे हुए, उनके अनुयायी भी मौन रहे। प्रभु शंकर के प्रभाव से, चित्रकेतु अनभिज्ञ थे।।
इस कारण ही भला बुरा, उनको वह था कह रहे। जितेन्द्रिय हूँ इस दम्भ के, कारण ही यह बकवाद किये।।
पार्वती जी ने उसकी, अति धृष्टता जब देखी। अति क्रुद्ध होकर उससे, फिर उन्होंने यह वचन कहे।।
पार्वती बोली,
अहो हम जैसे दुष्टों और, निर्लज्जों को यह दण्ड देगा। अपमान हमारा करेगा यह, संसार का शासक यही है क्या?

ऐसा लगे श्री ब्रह्मा जी, भृगु नारद आदि उनके पुत्र। परम ऋषि सनक आदि, कपिल मनु आदि महापुरुष।।
धर्म के रहस्य को, नहीं जानते वह सभी। तभी तो धर्म मर्यादा, इस विधि है भंग हुई।।
मर्यादा के उल्लंघन पर, क्यों सब मौन यह बैठै हैं? प्रभु शिव को यह सब मिलकर, कुछ भी क्यों नहीं कहते हैं?

सब महापुरुष संग ब्रह्मा भी, जिनके चरण कमल ध्यायें। सब मंगल के मंगलकारक, जगद्गुरु शिव को ध्यायें।।
उनके अनुयायी महात्मन् संग, है उनका तिरस्कार किया। उनपर शासन करने की, इस अधम ने करी है धृष्टता।।
दम्भी नीच इस क्षत्रिय ने, भूल करी यह भारी है। इसलिये यह धृष्ट तो, दण्ड का ही अधिकारी है।।

बड़े बड़े सत्पुरुष भी, उपासना जिनकी करते हैं। जिनके युगल चरण में नित्य, सीस वे अपना धरते हैं।।
यह मूर्ख श्री शिव के, चरणों का पात्र न बन सका। अपनी ही महानता के, गर्व में है यह डूब रहा।।

चित्रकेतु सम्बोधित कर, श्री भगवती ने फिर यूं कहा। पार्वती जी ने उसको फिर, फटकारपूर्ण यह वचन कहा।।
अरे दुर्मते तुम पापमय, असुर योनि में ही जाओ। ऐसा होने पर हे पुत्र, अपराध पुन: न दोहराओ।।
फिर कभी किसी महापुरुष का, अपमान नहीं करोगे तुम। अपने किये इस पाप का, इस विध प्रायश्चित करोगे तुम।।
शुकदेव बोले,
जब पार्वती ने इस विधि, चित्रकेतु को शाप दिये। तुरन्त ही निज विमान से, विद्याधर वह उतर गए।।
सीस झुका के माता को, प्रसन्न वह करने लगा। मां पार्वती के चरणों में, तब निवेदन उसने किया।।
चित्रकेतु बोला,
दोनों कर जोड़ी चरण पड़ा, मैया मैं अति प्रसन्न हुआ। आपके इस शाप को, है मैंने अपने सीस धरा।।
देवतागण जीवों को जो, वाक् भी कह देते हैं कभी। उनके प्रारब्ध कर्मों की, है पूर्व सूचना मात्र वही।।
अज्ञान से मोहित जीव यह, हे माता है भटक रहा। संसार चक्र में इस कारण, ही है जीव यह भ्रमित हुआ।।
इस कारण ही सदा सर्वदा, दु:ख सुख यह भोगा करे। सर्वत्र ही सुख दु:ख के, द्वन्द्वों में यह पड़ा रहे।।

सुख दु:ख को देने वाला, न तो स्वयं यह जीव है। हे मैया इस द्वन्द्व का, कारण न दूजा जीव ही है।।
केवल अज्ञानी ही निज को, इनका कर्ता माने है। या फिर वह दूजे को ही, सुख-दु:ख का दाता माने है।।
स्वत: प्रवाह है यह जगत्, सत्व रज आदि गुणों का। क्या शाप की है सत्ता यहाँ, या अस्तित्व क्या अनुग्रह का?
क्या सुख अथवा है दु:ख यहाँ, या फिर क्या हैं स्वर्ग नरक? यह सब तो हैं गुण के खेल, गुण गुणों में रहे वर्त।।

अपनी माया से आप ही, प्रभु स्वयं सब रचना करें। परिपूर्णतम वह आप हैं, नहीं किसी पे भी हैं आश्रित वे।।
सब प्राणी और उनके, बन्धन मोक्ष वह आप रचें। सुख दु:ख आदि द्वन्द्व भी, हैं उसकी रचना खिलवाड़ ही रे।।
हैं सब में सम श्री हरि स्वयं, माया आदि मल से हैं रहित। न बन्धु कोई न प्रिय अप्रिय, अपने पराये के भाव रहित।।
किसी सुख में किसी भाँति, राग न उनका हो सके। तब राग से उत्पन्न क्रोध का, प्रश्न ही वहाँ पे कहाँ उठे?

पाप पुण्य यह सगरे ही, हैं माया शक्ति के सब काज। जीवों के दु:ख सुख हित अहित, का कारण बनें यह आप।।
मृत्यु जन्म और बन्ध मोक्ष, का कारण भी यह ही बनें। इनके कारण ही जीव यह, आवागमन में पड़ा रहे।।

हे देवी नहीं मैं आपके, शाप से मुक्ति चाहता हूँ। मुदित हो शाप से मुक्त करें, नहीं इस कारण गुण गाता हूँ।।
मैं तो इतना चाहता हूँ, जो अनुचित मेरी बात लगी। क्षमा करें माता मुझको, जो भी मेरी भूल थी।।
शुकदेव बोले,
प्रभु शंकर और पार्वती को, इस भाँति प्रसन्न किया। उनके सामने ही राजन्, चित्रकेतु पुन: विमान चढ़ा।।
तत्पश्चात् विद्याधर ने, प्रस्थान वहां से किया। यह सब देखा उन लोगों ने, अति विस्मय ने उन्हें घेर लिया।।
देवता ऋषि दैत्य सिद्ध, और पार्षद जो सभा में थे। उनके सम्मुख श्री शंकर ने, पार्वती से यह वचन कहे।।
शंकर बोले,
प्रभु की दिव्य लीला का, दर्शन तूने देवी किया। उनके नि:स्पृह उदार हृदय, दासों की महिमा को देखा।।
प्रभु के शरणागत भक्तों कहीं पे किसी का भय नहीं। स्वर्ग नरक या मोक्ष में, रहे सदैव समत्व स्थिति।।
वह तो सब में एक के, ही दर्शन सदा पाते हैं। जो भी स्वत: उन्हें मिल जाये, प्रभु को ही देखे जाते हैं।।

प्रभु की लीलामात्र से, संयोग हो जीव का इस तन से। इस कारण सुख दु:ख जन्म मरण, शाप अनुग्रह सब द्वन्द्व मिलें।।
भेद भ्रम से स्वप्न में ज्यों, सुख दु:ख आदि की प्रतीति हो। और जाग्रत में भ्रमवश ही, माला में सर्प की बुद्धि हो।।
वैसे ही अज्ञान में, जीव कल्पना करता है। आत्म में देव मनुष्यादि, गुण दोष भेद निरखता है।।

ज्ञान और वैराग्य के, बल से सम्पन्न हैं जो जन। श्री वासुदेव के चरणों में, भक्ति भाव से हैं प्रपन्न।।
उनके लिये इस जगत् में, कोई भी ऐसी वस्तु नहीं। प्रिय अप्रिय जान जिसे, वह राग द्वेष में पड़ें कभी।।

ब्रह्माजी नारद सनकादि, ब्रह्मा पुत्र भृगु आदि मुनि। और बड़े बड़े देव सभी, और स्वयं मैं शंकर भी।।
प्रभु की अनन्त लीला का, रहस्य जान नहीं पाते हैं। फिर उनकी बात ही क्या करें, जो अणुतम अंश ही उनके हैं।।
अपने को उनसे अलग, जो ईश्वर माने बैठै हैं। उनके स्वरूप को ऐसे जन, जान ही कैसे सकते हैं?

श्री हरि का तो जान लो, प्रिय अप्रिय है कोई नहीं। अपना पराया भी उनका, जान लो कहीं है कोई नहीं।।
आत्म रूप से सबके ही, आन्तर में वह रहते हैं। इस कारण सब जीवों के, प्रियतम उनको ही कहते हैं।।
हे प्रिय तुम जान लो, चित्रकेतु परम यह भाग्यवान्। उनका ही प्रिय अनुचर है, समदर्शी और सदा शान्त।।
मैं भी तो उन श्री हरि का, ही प्रिय हूँ जान लो। वह ही है आराध्य मेरे, इतना अब तुम जान लो।।

इसलिये प्रभु के प्रिय भक्त, समदर्शी शान्त हैं महापुरुष। उनके प्रति निज मन में, न होवो किंचित् तुम विस्मित।।
प्रभु शंकर की यह वाणी सुन, हुई शान्त चित्त वृत्ति उनकी। पार्वती जी की सारी, विस्मय भी फिर दूर हुई।।
स्वयं चित्रकेतु तो थे, श्री हरि के परम प्रिय भक्त। प्रतिरूप में श्री पार्वती को, शाप से कर सकते थे ग्रस्त।।
पर उन शाप न देकर के, अपने सीस पे शाप धरा। हे राजन् तुम जान लो, लक्षण यही साधु पुरुष का।।

इन्हीं विद्याधर चित्रकेतु ने, असुर योनि आश्रय लिया। त्वष्टा की दक्षिण अग्नि से, फिर यह था पैदा हुआ।।
उस योनि में इसका नाम, वृत्रासुर ही था पड़ा। भगवद् स्वरूप का ज्ञान और, भक्तिभाव त्यों बना रहा।।
तुमने जो था प्रश्न किया, वृत्रासुर क्यों दैत्य बना? किस विधि श्री हरि की, भक्ति को वह प्राप्त हुआ?
उसका पूर्ण वर्णन ही, तेरे लिये है कर दिया। वृत्रासुर के पूर्व जन्म, का सारा वृतान्त कह दिया।।

महात्मा चित्रकेतु का, है पावन इतिहास जो। सारे विष्णु भक्तों का, माहात्म्य इसमें निहित हो।।
प्रेम सहित जो भी प्राणी, इस वृतान्त को सुनता है। सच जानो हे राजन् वह; बन्धन मुक्त हो जाता है।।
प्रात: उठकर जो प्राणी मौन ही धारण करता है। श्रद्धा हृदय में धर करी, श्री हरि का चिन्तन करता है।।
इस इतिहास का पठन भी, इसके संग जो करता है। श्री हरि कृपा से परम गति, को ही प्राप्त वह करता है।।

८) मरूद्गणों की उत्पत्ति

शुकदेव बोले,
सविता की पत्नी पृश्नि के, गर्भ से आठ सन्तान हुई। उनमें से कुछ के थे नाम, सावित्री व्याहृति और त्रयी।।
पंचमहायज्ञ और अग्निहोत्र, पशु सोम और चातुर्यमास। पृश्नि की सन्तान का, जान ले इतना ही विस्तार।।
भग की पत्नी सिद्धि ने, तीन पुत्रों को जन्म दिया। महिमा विभु और प्रभु, यह ही क्रमश: उनका नाम था।।
आशिष नाम की इक कन्या, भी उसने उत्पन्न करी। अति सौन्दर्यमयी थी वह, और सदा सदाचारिणी थी।।

धाता की थी पत्नी चार, कुहू सिनीवाली राका अनुमति। सायं दर्श प्रात: पूर्णमास, क्रमश: चारों पुत्र का जन्म हुआ।।
धाता के अनुज विधाता की, पत्नी का था नाम क्रिया। पुरीष्य नामक पांचाग्नियों, को उत्पन्न उसने किया।।
श्री वरुण की पत्नी का, नाम था श्री चर्षणी। उसके गर्भ से महर्षि, भृगु ने पुन: थी जन्म ली।।
इससे पूर्व श्री भृगु, ब्रह्मा जी के पुत्र थे। इस जन्म में वरुण के, घर में आ उत्पन्न हुए।।

महायोगी श्री वाल्मीकि, भी थे वरुण के पुत्र ही। उत्पन्न वाल्मीक् से हुए, नाम पड़ा था वाल्मीकि।।
दर्शन मात्र से उर्वशी के, मित्र और वरुण का मन मचला। दोनों का ही वीर्य उसके, दर्शन से था स्खलित हुआ।।
उन लोगों ने वीर्य को, घड़ों में था डाल दिया। उसीसे मुनि आगस्त्य और, श्री वसिष्ठ का जन्म हुआ।।
इन्हीं मित्र की पत्नी का, नाम था जानो रेवती। उत्सर्ग अरिष्ठ और पिप्पल, तीन पुत्रों को उस जन्म दी।।

अब देवराज इन्द्र की, पत्नी की तुम बात सुनो। पुलोमनन्दिनी शचि ही, जान लो उनका नाम हो।।
हमने ऐसा है सुना, उसके भी त्रै पुत्र हुए। जयन्त ऋषभ और मीढ़वान, यह ही उनके नाम थे।।

प्रभु विष्णु ने माया से स्वयं, था वामन का रूप धरा। त्रैपद पृथ्वी मांग कर, उन तीनों लोक को माप लिया।।
उनकी पत्नी का नाम सुनो, उस जन्म में था कीर्ति। बृहच्छ्लोक नामक पुत्र की, उत्पत्ति उनसे हुई।।
सौभग आदि अनेक ही, अन्य सन्तान उनके हुई। इस विधि उनके भी, कुल की थी वर्धन हुई।।

कश्यप नन्दन प्रभु वामन, अदिति गर्भ से क्यों जन्मे? और इस अवतार में कौनसी, गुण लीला पराक्रम प्रकटे?
इसका विस्तृत वर्णन तो, आगे चलकर करूँगा मैं। हे राजन् इसकी कथा, अष्टम स्कन्ध में आगे कहूँगा मैं।।
कश्यप जी की दूसरी, पत्नी का नाम था दिति। अब सुनाता हूँ तुम्हें, परम्परा दिति सन्तति की।।
प्रभु के प्रिय भक्त प्रह्लाद, का था उसमें जन्म हुआ। बलि ने भी उस कुल में ही, जन्म ले उसको धन्य किया।।

दैत्य और दानवों के, वन्दनीय पुत्र दो दिति के थे। हिरण्यकश्यपु और हिरण्याक्ष, यह ही इनके नाम थे।।
हिरण्यकश्यपु की पत्नी, दानवी कयाधु थी। पिता जम्भ ने उसका परिणय, हिरण्यकश्यपु से था किया।।

कयाधु के थे चार पुत्र, संह्लाद अनुह्लाद ह्लाद प्रह्लाद। सिंहिका नाम की इक बहिन, भी हुई थी इनको प्राप्त।।
विप्रचीति नाम के, दानव से उसका विवाह हुआ। राहु नाम के पुत्र को, फिर उसने उत्पन्न किया।।

इस राहु का सीस ही, चक्र से प्रभु ने काटा था। अमृत पान की बेला में, धर मोहिनी रूप उसे काटा था।।
संह्लाद की पत्नी का, सुनो कृति ही नाम था। पंचजन नाम का ही, पुत्र उसके यहाँ हुआ।।
ह्लाद की पत्नी धमनि के, दो पुत्र उत्पन्न हुए। वातापि और इल्वल, यह ही इनके नाम थे।।
इस इल्वल ने ही महर्षि, आगस्त्य का था आतिथ्य किया। वातापि को पकाकर के, उनको था खिला दिया।।

अनुह्लाद की पत्नी सुर्म्या थी, उसके हुए थे दो पुत्र। उनके नाम जानो राजन्, थे वाल्कल और महिषासुर।।
प्रह्लाद का पुत्र विरोचन था, उसकी पत्नी थी देवी। उसके गर्भ से दैत्यराज, बलि का था फिर जन्म हुआ।।
बलि की पत्नी का नाम, था राजन् जानो अशना। बाण आदि सौ पुत्रों को, इस अशना ने जन्म दिया।।

बलि के पुत्र बाणासुर ने, प्रभु शंकर की आराधना की। उनके गणों के मुखिया की, स्थान यूं उसने प्राप्त की।।
उसके नगर की रक्षा को, प्रभु शंकर आज भी संग रहें। उसकी उपासना का प्रताप, ही राजन् इसे तू जान ले।।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, इन दोनों को छोड़कर। दिति ने था जन्म दिया, उञ्चास पुत्रों को और।।
उन सबको हे राजन्, मरुत् गण ही जान ले। सबके सब विधान से, नि:सन्तान ही बने रहे।।
देवराज इन्द्र ने, उन सबको अपना लिया। अपने ही समान उन्हें, देवता था बना लिया।।
परीक्षित बोला,
मरुत् गण ने कौन सा, था ऐसा सत्कर्म किया? जिसके कारण उनका जन्मजात, असुरोचित भाव था छूट सका?
देवराज इन्द्र ने, कैसे देवता उन्हें बना लिया? हे मुनिवर अब इसकी भी, कथा आप मुझे दें बता।।

हे द्विजवर मेरे संग यह, ऋषिवर भी अति उत्सुक हैं। इस रहस्य को यह सब भी, इस पल जानना चाहते हैं।।
कृपा करके आप हमें, विस्तार से सब बताइए। हे भगवन् आप ही यह, जिज्ञासा शान्त कराइए।।
सूत बोले,
राजा परीक्षित् का यह प्रश्न, था निहित रहस्य छिपाये हुए। बहुत आदर से मित शब्दों में, उसने थे यह प्रश्न किये।।
सर्वज्ञ प्रभु शुकदेव ने, उनका अभिनन्दन किया। प्रसन्नचित्त से उनको फिर, श्री शुक ने यह वचन कहा।।
शुकदेव बोले,
प्रभु विष्णु ने हे राजन्, इन्द्र का था पक्ष लिया। दिति पुत्र हिरण्याक्ष और, हिरण्यकश्यपु वध था किया।।
शोक की अग्नि से दिति में, क्रोध उत्पन्न हो गया। उस क्रोध से सन्तप्त हो, फिर दिति ने यूं सोचा।।
दिति सोचने लगी,
सच ही इन्द्र है अति विषयी, अति क्रूर और निर्दयी। हाय प्रभु निज भाइयों की, ही हत्या करवा डाली।।
कब ऐसा दिन आयेगा, उस पापी को मरवाऊँगी? तब ही तो चैन से, कभी सो भी मैं पाऊँगी।।

देवों और राजाओं के, तन को लोग सब प्रभु कहें। वह भी इक दिन कीड़ा विष्ठा या फिर राख की ढेरी बने।।
इस तन की खातिर जो कोई, अन्य जीव को सताता है। सत्य स्वार्थ परमार्थ से, अनभिज्ञ ही वह रह जाता है।।

ऐसा करके तो इक दिन, नरक में ही वह जाएगा। चैन कहाँ वह पा सके, जो कभी किसी को सतायेगा?

मैं मानू इन्द्र हुआ मतवाला, निज तन को नित्य ही जानकर। है पूर्णतय: वह भूल चुका, तन तो उसका भी है नश्वर।।
अब कोई एक ऐसा उपाय, निश्चित् रूप से करूँगी मैं। इक ऐसे पुत्र की प्राप्ति, प्रभु कृपा से करूँगी मैं।।
जो इन्द्र के इस गुमान को, चूर चूर ही कर दे। निज भ्राताओं के हन्ता का, वह स्वयं प्रतिशोध ले।।

शुकदेव बोले,
मन में ऐसा विचार करी, सेवा में नित्य चित्त धरा। सेवा विनय और प्रेम से, ऋषि कश्यप को मुदित करा।।
निज पति के हृदय का वह, इक इक भाव थी जानती। प्रेम युक्त मधुर वाणी, तिरछी चितवन मुसकान भरी।।
इन सबसे पतिदेव को, मुदित वह करती रहती थी। उनके मन को अपनी ओर, आकर्षित करती रहती थी।।

कश्यप जी थे अति विद्वान्, और वह थे विचारवान्। पर चतुर दिति की सेवा ने, किया उनको भी मोहितवान्।।
विवश होकर फिर दिति से, श्री कश्यप ने यह कहा। हे भद्रे तव इच्छा को, मैं पूर्ण अब कर दूँगा।।
स्त्रियों के सम्बन्ध में यह, कोई आश्चर्य की बात नहीं। हाव भाव निज क्रिया से, पति को वह वश में करतीं।।

सृष्टि के आरम्भ में, जब श्री ब्रह्मा ने देखा। सब जीवों को असंग भाव, की ओर ही जाते जब देखा।।
तब अपने आधे तन से, उन्होंने स्त्री की रचना की। तत्पश्चात् स्त्रियों ने, पुरुष मति आकर्षित की।।
हां तात् सुनो मैं कह था रहा, दिति ने कश्यप सेवा की। इस सेवा से प्रसन्न हुए, दिति पर श्री कश्यप ऋषि।।
ऋषि ने फिर दिति का, उचित अभिनन्दन किया। और मुस्कुरा कर के, उसको फिर यह वचन कहा।।

कश्यप बोले,
हे प्रिये श्रेष्ठतम सुन्दरी, प्रसन्न हुआ हूँ मैं तुमपर। जो भी तुम्हारी इच्छा हो, अब मुझसे तुम मांगो वर।।
पत्नी का है धर्म यही, प्रसन्न पति को कर लेना। लोक परलोक में इससे हो, अभीष्ट वस्तु सम्भव मिलना।।
शास्त्रों में है स्पष्ट कहा, पति है परम आराध्य इष्ट। लक्ष्मीपति श्री वासुदेव, सबके आन्तर में रहते स्थित।।
विभिन्न देवों के नाम रूप, में भी भेद भाव है जो। वास्तव में उन वासुदेव, में ही कल्पित है सब वो।।

चाहे किसी भी देव को, कोई पुरुष उपासा करे। वास्तव में तो उनकी ही, हर रूप में वह पूजा करे।।
उसी भाँति स्त्री के लिये, पति रूप धारण वह करें। पति रूप में ही पत्नी, अपने प्रभु की पूजा करे।।
निज कल्याण की इच्छुक जो, पतिव्रता हैं नारियाँ। अनन्य प्रेम भाव से, पति को पूजती हैं सदा।।
पतिदेव ही प्रिय उनके, परम प्रियतम आत्मा हैं। वह ही ईश्वर हैं उनके, और वही परमात्मा हैं।।

हे कल्याणि भक्ति प्रेम से, पूजा है मेरी तुमने करी। मेरे द्वारा अब सारी, अभिलाषा पूर्ण तव होगी।।
असति स्त्री के जीवन में, नहीं सम्भव ऐसा हो पाना। अति दुर्लभ है उसके लिए, मनोवांछित फल पति से पाना।।
दिति बोली,
हे द्विजवर इन्द्र ने विष्णु के, हाथों मम पुत्र हैं मरवाये। पुत्रहीन हूँ मैं हुई, व्यथा सही मुझसे न जाये।।
यदि वर ही देना चाहें मुझे, तो एक ही वर मैं चाहती हूँ। ऐसा अमर सुत दें जिससे, हो इन्द्र का वध मैं चाहती हूँ।।

शुकदेव बोले,
दिति की बातें सुनकर, अति खिन्नमनी कश्यप हुए। उसको वर क्यों दे दिया, मन ही मन पछताने लगे।।
जीवन में मेरे अहो, अधर्म का अवसर है आया। इससे मुक्ति पाने का, उपाय नहीं कोई दीख रहा।।
हाय अब मैं इन्द्रियों के, विषय भोग सुख में पड़ा। स्त्री रूपिणी माया ने, मेरे चित्त को वशीभूत किया।।
कैसी दीन हीन अवस्था, मेरी हाय है आज हुई। निश्चित ही नरकों में, यह मुझको पहुँचायेगी।।

नहीं दोष कोई इस स्त्री का, इसका स्वभाव यह जन्मजात। निज इन्द्रिय वश में कर न सका, यह तो है मेरा दोष आप।।
अपने सच्चे स्वार्थ और, परमार्थ को न जान सका। इस कारण मुझ मूढ़ को, धिक्कार है जो इस द्वन्द्व पड़ा।।
सत्य है स्त्री चरित को, जानना है अति कठिन। मुख तो ऐसा भासे सदा, ज्यों शरद ऋतु का खिला कमल।।
सम्भाषण इतना मधुर लगे, मानो अमृत हो दिया घोल। पर हृदय तो है इतना तीखा, ज्यों छुरे की कोई तीक्ष्ण छोर।।

है इसमें तनिक सन्देह नहीं, कठपुतली वह निज लालसा की। सच पूछो तो वास्तव में, वह किसी से प्रेम नहीं करती।।
स्वार्थवश निज पति पुत्र, और भ्राता को भी मार दे। या निज कामना पूर्ति को, इनकी हत्या करवा भी दे।।
अब तो मैं हूँ कह चुका, जो मांगेगी वह ही दूँगा। मेरा वचन असत्य कभी न हो, नहीं उचित इन्द्र वध जो कहा।।
इस विषय में अब कोई, नव युक्ति ही करूँगा मैं। धर्म संकट पर जो पड़ा, उसको दूर करूँगा मैं।।

सर्व सामर्थ श्री कश्यप ने, मनोमन अपनी भर्त्सना की। दोनों ही बातें रखने की, उपाय उन्होंने फिर सोची।।
फिर तनिक रुष्ट हो दिति से, उन्होंने मन की बात कही। वचन भी झूठा न पड़े, ऐसी उन्होंने युक्ति की।।
कश्यप बोले,
हे कल्याणि जो मैं कहूँ, यदि वैसा तुम कर पाओगी। इक वर्ष तक विधिवत् तुम, गर व्रत पालन निभाओगी।।
तब निश्चित कहूँ मिलेगा तुम्हें, इन्द्र का हन्ता वीर पुत्र। पर यदि नियम में त्रुटि रही, वह बन जाये देवों का मित्र।।
दिति बोली,
हे द्विजवर जो कहें आप, उस व्रत का पालन करूँगी मैं। कहें आप कर्त्तव्य है क्या, जीवन में धारण करूँगी मैं।।
कौन कौन सा काज कहें, मेरे लिये अब त्याज्य है? और कौन से कर्म कहें, व्रत के लिये आराध्य हैं?
कश्यप बोले,
हे प्रिये अब इस व्रत की, बात ध्यान से तुम सुनो। मन वाणी या क्रिया से भी, किसी प्राणी का हनन न हो।।
न ही शाप किसी को दे, न गाली किसी के लिये कहे। झूठ कभी भी बोले न, सत्य वचन ही सदा कहे।।
तन के नख और रोएं भी, व्रत में काटने न चाहिए। किसी अमंगल वस्तु का, स्पर्श न किसी विधि हो पाए।।

जल के भीतर नग्न घुस कर के, स्नान न करना चाहिये। न वार्तालाप दुर्जन से करो, क्रोध न करना चाहिये।।
बिना धुले वस्त्र को भी, तन पर धारण नहीं करे। और किसी की पहनी हुई, माला को भी न पहने।।
उच्छिष्ट अन्न इस काल में, किसी का भी न ग्रहण करे। भद्रकाली के प्रसाद या, सामिष भोजन से दूर रहे।।
शूद्र का लाया हुआ अन्न, या रजस्वला का दृष्ट अन्न। और अंजलि में जल को, उस अवधि में न करे ग्रहण।।

बिन आचमन जूठे मुंह से, या फिर सन्ध्या काल में। खुले बाल किए बिन श्रृंगार, या बिन वाणी संयम के।।

बिन चादर ओढ़े घर से, बाहर कभी भी न निकले। यह व्रत तब ही तो उसका, विधिवत् पूर्ण हो सके।।
बिन चरण धोये अपवित्र, अवस्था में न सोए वो। गीले पांव उत्तर या, पश्चिम की ओर उसका सीस न हो।।
नग्नावस्था में किसी संग, कभी शयन वह नहीं करे। सुबह शाम ही इस व्रत का, नियम नित्य पालन करे।।

निषिद्ध कर्म का त्याग कर, इस भाँति सदा पवित्र रहे। स्वच्छ वस्त्र धारण करे, सौभाग्य चिह्न से सदा सजे।।
प्रात:काल कलेवे के, पूर्व ही पूजन वह करे। गाय ब्राह्मण लक्ष्मी नारायण, की पूजा वह नित्य करे।।
तत्पश्चात् पुष्पमाला, और चन्दन आदि सुगन्धि ले। नेवैद्य आभूषण आदि से, सुहागिन स्त्री को पूजे।।
फिर निज पति की पूजा कर, उनकी सेवा में संलग्न रहे। है पति तेज मेरे कोख में स्थित, ऐसा भाव मन में धरे।।

इस व्रत का नाम प्रिये, पुंसवन व्रत ही है कहा। बिन किसी त्रुटि के एक वर्ष, पर्यन्त ही पालन हो इसका।।
तब तुम्हारी कोख से, इक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा। इन्द्र हनन वह कर सके, अभीष्ट तेरा पूर्ण होगा।।
शुकदेव बोले,
हे परीक्षित् दिति तो थी, अति दृढ़निश्चयी मनस्विनी। साधु कहकर फिर उसने, ऋषि आज्ञा स्वीकार करी।।
निज कोख में प्रभु कश्यप का, वीर्य उस धारण किया। स्वत: ही व्रत के कथित, नियमों का पालन होने लगा।।
देवराज श्री इन्द्र ने भी, अभिप्राय जान निज मौसी का। बहुत ही चतुराई से, अपना वेश फिर उसने बदला।।
दिति के आश्रम में जाकर, वह उसकी सेवा करने लगे। इस विधि फिर इन्द्र ने, नव प्रपंच ही वहाँ रचे।।

समय समय पर प्रतिदिन वह, फल फूल कन्द मूल लाते। समिधा कुशा पत्ते और दूब, सब ही वह लेकर आते।।
मिट्टी और जल भी लाकर, सेवा में समर्पित वह करते। इस भाँति दिति के मन को, विविध विधि प्रसन्न करते।।

ज्यों बहेंलिया हरिण सी, ही सूरत बना निज ले। फिर वह उसके पास जा, मित्रता उससे करे।।
वैसे ही देवेन्द्र भी, कपट वेश धारण करके। व्रत परायणा दिति की, त्रुटि पकड़ने के लिये।।
उसकी सेवा में निमग्न, सतर्क सदा रहने लगे। अति पैनी दृष्टि थी उनकी, पर त्रुटि कोई न पकड़ सके।।
फिर भी पूर्ववत् ही सदा, उसकी सेवा में निमग्न वह थे। किन्तु उसकी कठिन तपस्या देख, इन्द्र थे चिन्तातुर हुए।।
मन ही मन सोचने लागे, अब कौन उपाय ऐसा करूँ? जिससे मम कल्याण हो, कैसी युक्ति अब करूँ।।

व्रत नियम के पालन से, दिति अति कृशकाय हुई। विधाता ने भी उस समय, बुद्धि उसकी मोहित की।।
इक दिन सन्ध्या के समय, जूठे मुंह ही वह सो गई। न आचमन किया उसने, न ही उसने चरण धोई।।
योगेश्वर इन्द्र ने तब देखा, यह अच्छा अवसर हाथ लगा। तत्काल ही योग बल से वह, दिति के गर्भ में जा पहुँचा।।

हिरण्मयी उस गर्भ पर, निज वज्र से प्रहार किया। सात टुकड़ों में उसने, उसका गर्भ खण्डित किया।।
जब वह गर्भ रोने लगा, मत रो मत रो उसे कहा। प्रत्येक टुकड़े को उस फिर, सात में खण्डित पुन: किया।।
जब इन्द्र थे खण्डित कर रहे, हाथ जोड़ सब कहने लगे। हे देवराज हम सबको, क्यों हो तुम यूं मार रहे?
हम तो तुम्हारे अपने ही, जानो भाई मरुद्गण हैं। नहीं तेरे द्वेष के योग्य हम, हम तो तव प्रेम के पात्र हैं।।

अपने भावी अनन्य प्रेमी, और पार्षद निज उनको जान। मरुद्गण को इन्द्र ने, फिर यूँ कहा निज भाई मान।।

ठीक है यह कश्यप पुत्रो, तुम मेरे भाई ही हो। किसी भी भाँति मुझसे अब, भाइयो मेरे नहीं डरो।।
अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र ज्यों, राजन् कुछ नहीं बिगाड़ सका। वैसे ही दिति के गर्भ पर, भी बनी थी हरि कृपा।।
वज्र के द्वारा टुकड़े-टुकड़े, तो वह गर्भ था हो गया। हरि कृपा थी वहाँ हुई, इस कारण वह नहीं मरा।।

हे राजन् इस बात में तो, तनिक भी है आश्चर्य नहीं। जो जीव इक बार भी, प्रभु की उपासना करे कभी।।
आदि पुरुष नारायण की, आराधना का यह प्रभाव हो। तनिक आराधना करके भी, समानता उनकी प्राप्त हो।।
फिर दिति ने तो वर्ष पर्यन्त, पूजना प्रभु की थी करी। एक वर्ष से कुछ ही कम, अवधि थी उस उपासना की।।

उञ्चास वह मरुद्गण, अब जा कर इन्द्र से मिल गए। इन्द्र सहित वह गणना में, पूरे ही पचास हुए।।
इन्द्र ने भी विमाता के, पुत्रों से द्रोह फिर नहीं किया। सोमपायी देवता ही, अपने संग उन्हें बना लिया।।
निद्रा से जाग देखा दिति ने, अग्नि सम उसके तेजस्वी शिशु। उञ्चास बालक हैं खड़े, इन्द्र निकट जो था शत्रु।।
सुन्दर स्वभाव दिति का था, उसमें कोई वैर न था। शिशुअन् को इन्द्र के संग देख, उसका मन प्रसन्न हुआ।।

इन्द्र को फिर सम्बोधन कर, दिति ने उससे यूं कहा। हे पुत्र इस इच्छा से, मैंने यह कठिन व्रत था लिया।।
अदिति के तुम सब पुत्रों को, भयभीत जो कर सके। ऐसा एक पुत्र मम, गर्भ से उत्पन्न हो जाये।।
मेरा तो संकल्प था, केवल एक पुत्र हेतु। फिर यह उञ्चास पुत्र मेरे, कैसे हुए कहो पुत्र तू?
यदि इस गुह्य रहस्य को, हे इन्द्र तुम जानते हो। झूठ न अब तुम बोलना, सच सच मुझको बतला दो।।
इन्द्र बोले,
हे माता तब व्रत के, उद्देश्य को था मैं जान गया। निज स्वार्थ हेतु इस कारण, स्वर्ग छोड़ तव पास आया।।
मेरे मन में तनिक सी भी, धर्म की भावना थी नहीं। इस कारण व्रत में त्रुटि देख, खण्डित थी गर्भ वह मैंने करी।।
पहले सात टुकड़ों में, उसको मैंने तोड़ दिया। उन सातों ही खण्डों ने, सप्त शिशु का रूप धरा।।
तत्पश्चात् पुन: एक एक के, सात सात मैंने खण्ड किये। तब भी नहीं वह मर सके, बल्कि उञ्चास यह शिशु हुए।।

इस परम आश्चर्यमयी घटना, का दर्शन जब मैंने किया। स्वभाविक ही सिद्धि है यह, फल है श्री हरि उपासना का।।
ऐसा निश्चय मुझे हुआ, और सीस मेरा झुक गया। आपके इन शिशुओं के संग, हूँ आपके सम्मुख खड़ा।।
निष्काम भाव हृदय में धर, उपासना हरि की जो करें। अन्य कामना दूर रही, वह तो मोक्ष भी न चाहें।।
वे ही जन निज स्वार्थ और, परमार्थ राज को जाने हैं। सच्चा सुख है कहाँ बसे, रहस्य इसका जाने हैं।।

हैं सबके आराध्य देव, और सबके आत्मा स्वयं प्रभु। जगदीश्वर वह मुदित होई, निज को ही दान में दे दें प्रभु।।
भला कौन वह बुद्धिमान् है, जो आराधना उनकी करे। और प्रतिरूप में वह उसके, विषय भोग ही मांगा करे?
हे माते यह विषय भोग, तो नरक में भी मिल सकें। इनकी कामना करके क्यों, उपासना अपनी व्यर्थ करें?

स्नेहमयी हैं जननी आप, सब विधि हैं मेरी पूज्या आप। मूर्खतावश करी दुष्टता, और किया मैंने महा पाप।।
मेरे इस अपराध को, क्षमा करो मैया मोरी। यह बड़े सौभाग्य की बात है, नहीं नष्ट हुई गर्भ तोरी।।
खण्ड खण्ड हो जाने पर, जो मृतप्राय: था हो गया। प्रभु कृपा से गर्भ तव, पुन: है जीवित ही रहा।।

शुकदेव बोले,
संतुष्ट हुई दिति राजन्, इन्द्र का शुद्ध भाव देख। मरुद्गण के संग ही, फिर माता से आज्ञा लेकर।।
देवेन्द्र ने माता दिति के, चरणों में प्रणाम किया। तत्पश्चात् सबने मिलकर, स्वर्ग को फिर प्रस्थान किया।।

मरूद्गण का जन्म यह, है राजन् अति मंगलमय। जो प्रश्न किये तुमने मुझसे, उसके उत्तर तुम्हें कह दिये।।
अब कहो परीक्षित् तुम, अन्य क्या जिज्ञासा तेरी? और क्या सुनना चाहो तुम, अब उसकी तुम कहो सही।।
परीक्षित बोले,
हे भगवन् अभी आपने, वर्णन किया है जिस व्रत का। पुंसवन व्रत से प्रसन्न हों, प्रभु विष्णु आपने अभी कहा।।
सो द्विजवर मैं आपसे, विधि वह जानना चाहता हूँ। कैसे व्रत यह निभ सके, अब यह जानना चाहता हूँ।।
शुकदेव बोले,
यह व्रत तो सब कामना का, पूर्ति कारक है राजन्। निज पतिदेव की आज्ञा ले, स्त्री करे इसको आरम्भ।।
मार्गशीर्ष मास में, शुक्ल प्रतिपदा जब आये। उचित समय तब ही है, व्रत आरम्भ यह हो जाये।।

मरुद्गणों के जन्म की, पहले वह यह कथा सुने। तत्पश्चात् ब्राह्मणों से, इस व्रत की वह आज्ञा ले।।
प्रतिदिन प्रात: उठकर के, दाँतों का मंजन करे। तत्पश्चात् स्नान कर, शुभ्र वस्त्राभूषण वह पहने।।
अन्न ग्रहण के पूर्व ही, श्री लक्ष्मी नारायण को पूजे। उनके चरणों में ही फिर, वह अपनी प्रार्थना यूं धरे।।

पूर्णकाम हैं आप प्रभु, नहीं किसी से कुछ भी है लेना। सकल सिद्धि स्वरूप आप, महिमा आपकी क्या कहना।।
सब विभूतियों के स्वामी, आपको अब मैं क्या कहूँ। आपके श्री चरणों में, बार बार मैं नमन करूँ।।
हे मेरे आराध्य आप, कृपा विभूति तेज पूर्ण। महिमा और वीर्य आदि, सारे गुणों से सम्पूर्ण।।
इन्हीं भगों ऐश्वर्यों से, नित्य युक्त ही आप रहें। हे शक्तिमान् इस कारण ही, आपको सब भगवान कहें।।

हे मैया श्री लक्ष्मी जी, अर्धांगिनी श्री भगवान की। महामाया स्वरूपिणी, शक्ति श्री भगवान की।।
हे जग जननी महाभाग्यवती, मुझपर आप प्रसन्न रहें। मैं नमन करूँ माँ आपको, कृपा आपकी बनी रहे।।

हे राजन् इस विधि, स्तुति प्रभु की वह करे। सब वृत्तियों सहित निज चित्त को, एकाग्र प्रभु चरण में करे।।
तत्पश्चात् इस मन्त्र का, उच्चारण फिर वह किया करे। इस मन्त्र के द्वारा ही, प्रभु का नाम वह लिया करे।।
ओंकार स्वरूप महानुभाव, सब महा विभूतियों के स्वामी। श्री पुरुषोत्तम और उनकी, विभूतियाँ जो महान् सभी।।
नमस्कार मैं उन्हें करूँ, अर्पित पूजा सामग्री करूँ। सब पूजा उपहार भी, श्री हरि के चरणों में धरूँ।।
इस मन्त्र से चित्त को स्थिर कर, प्रभु विष्णु का करे आवाहन। अर्घ्य पाद्य स्नान वस्त्र, और कराये आचमन।।
यज्ञोपवीत आभूषण गन्ध, पुष्प दुग्ध और दीप धरे। नैवेद्य आदि समर्पित कर, प्रभु का वह पूजन करे।।

जो नैवेद्य भी बचा रहे, उससे पुन: यह मन्त्र कहे। महा ऐश्वर्यों के अधिपति, पुरुषोत्तम को है नमन हे।।
उनकी सेवा अर्थ ही, हविष्य अन्न का हवन करूँ। सारी भेंट सामग्री को, भी मैं हरि चरण में धरूँ।।
इस मन्त्र के साथ ही, अग्नि में आहुति दे। इस विधि इस यज्ञ को, नित्य ही वह किया करे।।

सब प्रकार की सम्पद् को, प्राप्त जो करना चाहे। भक्ति भाव से प्रति दिन वह, लक्ष्मी नारायण को पूजे।।
वे दोनों ही तो सबकी, अभिलाषा परिपूर्ण करें। वह ही तो इस सृष्टि में, सर्वश्रेष्ठ वरदानी भएं।।
तत्पश्चात् निज हृदय में वह, भक्ति भाव संचार करे। विनम्रता से हरि चरण में, दण्डवत् साष्टांग करे।।
पूर्वोक्त मन्त्र का यूं, दस बार वह जाप करे। तत्पश्चात् इस स्तोत्र का, पुनश्च वह पाठ करे।।

हे श्री लक्ष्मी नारायण, हैं आप दोनों ही सर्वव्याप्त। सम्पूर्ण चराचर जगत् के, अन्तिम कारण बस एक आप।।
नहीं आपका कारण कोई भी, आप विभु हैं स्वयंभू। माता लक्ष्मी ही आपकी, माया शक्ति हैं हे प्रभु।।
अव्यक्त प्रकृति भी तो, यह स्वयं ही बनी रहें। है दुर्लभ इनको जानना, कोई पार न इनका पा सके।।

इस महामाया के प्रभु, आप स्वयं अधीश्वर हैं। परम पुरुष हैं आप प्रभु, आप ही सबके ईश्वर हैं।।
आप ही हैं समस्त यज्ञ, और आप स्वयं ही यज्ञ क्रिया। आप ही भोक्ता हैं फल के, और स्वयं ही उसकी उत्पत्ति क्रिया।।
तीनों गुणों की अभिव्यक्ति, स्वयं हैं माता लक्ष्मी जी। आप ही उनको व्यक्त करें, प्रभु स्वयं है उनके भोक्ता भी।।

हे प्रभु आप तो स्वयं है, सब जीवों के आत्मा। इन्द्रिय अन्त:करण और तन, सबका बनें लक्ष्मी माता।।
मैया तो बनें जगत् के, सगरे ही जो नाम रूप। नाम रूप दोनों के आप, प्रकाशक और आधार स्वरूप।।
पावन कीर्ति प्रभु आपकी है, दोनों ही हैं वरदानी प्रभु। त्रिलोकी के परमेश्वर आप, शरणागत मैं आपकी हूँ।।
मेरी महान आशाएं और, अभिलाषा सब पूर्ण हों। हे स्वामी आपकी कृपा जो हो, तब ही तो यह सम्भव हो।।

इस विधि महावरदानी, लक्ष्मी नारायण की स्तुति करे। नैवेद्य हटाकर वहाँ से, आचमन करा के पूजा करे।।
तत्पश्चात् अति भक्तिभाव, से हृदय परिपूर्ण करे। लक्ष्मी और नारायण की, पुन: पुन: वह स्तुति करे।।
यज्ञशेष की सुगन्ध ले, फिर भगवान की पूजा करे। इस विधि अपने इस, यज्ञ को वह पूर्ण करे।।

तदनन्तर निज पति को, हरि का रूप ही जान ले। उनकी प्रिय वस्तु को ला, परम प्रेम से चरण धरे।।
पति का भी कर्त्तव्य है यह, पत्नी को आन्तरिक प्रेम दे। प्रिय पदार्थ पत्नी के, लाकर समर्पित उसे करे।।
छोटे बड़े सभी उसके, काम सदा करता रहे। इस विधि निज पत्नी को, वह मुदित ही सदा करे।।

पति और पत्नी में से, यदि कोई एक भी कर्म करे। तो भी राजन् जान यह लो, फल दोनों को ही मिले।।
यदि किसी कारणवश ही, पत्नी यह व्रत न कर पाये। एकाग्रता और सतर्कता से, पति अनुष्ठान किये जाये।।

यह व्रत तो है जान लो, संसार के स्वामी विष्णु का। नहीं मध्य में इसको कभी छोड़े, नियम जो इसका है लिया।।
जो भी इस नियम को ग्रहण करे, प्रति दिन विष्णु पूजन करे। माला चन्दन नैवेद्य और, आभूषण आदि से पूजे।।
भक्ति भाव हृदय में धर, ब्राह्मण का भी पूजन करे। और सुहागिन नारी को, भी वह नित्य ही पूजा करे।।

तत्पश्चात् भगवान को वह, उनके ही धाम में पधराये। उनका जो विग्रह बना, विसर्जन उसका वह कर दे।।
तदनन्तर आत्म शुद्धि, की भावना हिय में धर। और सब अभिलाषा की, भी चाहे वह पूर्ति गर।।
पूर्व निवंदित प्रभु प्रसाद, को पुनश्च ग्रहण करे। इस व्रत के पालन से वह, पूर्ण अभीष्ट अपने पा ले।।

साध्वी स्त्री इस विधि, व्रत नियम ले बारह मास तक। वर्ष भर आचरण करे, मार्गशीर्ष अमावस तक।।
अमावस्या के आने पर, उद्यापन का प्रबन्ध करे। उससे सम्बन्धित उपवास, और पूजन सब पूर्ण करे।।
उस दिन प्रात:काल ही, स्नानादि से निवृत्त हो। पूर्ववत् प्रभु विष्णु के, पूजन में प्रवृत्त हो।।
उसका पति भी पाकयज्ञ, की विधि का अनुसरण करे। अग्नि में घृत मिश्रित, खीर की द्वादश आहुति दे।।

ब्राह्मण जब इससे हों मुदित, आशीर्वाद वह इनको दें। विनम्रता पूर्ण आदर से, उसको वह स्वीकार करे।।
भक्तिभाव से चरणों में, नतमस्तक हो प्रणाम करे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा ले, अन्न जल वह ग्रहण करे।।

सर्वप्रथम आचार्य को, ही भोजन करवाये वह। मौन रह के प्रसाद ले, फिर बन्धु बान्धव संग वह।।
तत्पश्चात् हविष्य की, घृतमिश्रित जो खीर बचे। अपनी पत्नी को उसे, प्रसाद रूप में ही दे दे।।
वह प्रसाद ही स्त्री को, सत्पुत्र दे जाता है। सम्पूर्ण सौभाग्य का वह, उसके लिये प्रदाता है।।

श्री हरि के पुंसवन व्रत का, विधिवत् जो अनुष्ठान करे। इस लोक में निज अभीष्ट, सारी वस्तु वह पा ले।।
स्त्री इस व्रत को निभाये जो, सौभाग्य और सम्पद् पाये। सन्तान यश और घर, सब ही उसके पास आये।।
उसका पति भी इस व्रत से, चिरंजीवी हो जाता है। इस विधि इस व्रत का, फल अति शुभ्र ही पाता है।।

जो कन्या भी इस व्रत का, विधिपूर्वक अनुष्ठान करे। सभी शुभ लक्षण से सम्पन्न, मनवांछित पति प्राप्त करे।।
विधवा भी जो इस व्रत का, नियम से पालन करती है। इस व्रत से निष्पाप हो, वैकुण्ठ लोक में जाती है।।
जिसके शिशु इस जगत् में, भाग्य से जीवित न रहें। वह नारी व्रत प्रभाव से, चिरायु पुत्र को प्राप्त करे।।
धनवती होकर के भी, अभागिन है जो स्त्री। उसके सौभाग्य की इस व्रत से, पुन: जागृति है होती।।
कुरूपा भी इस व्रत से, श्रेष्ठ रूप है पा जाती। रोगी की तन प्रसाद से, अति बलिष्ठ है हो जाती।।

श्रेष्ठ इन्द्रिय शक्ति को, प्राप्त वह कर लेता है। श्रद्धा पूर्ण व्रत जो लिया, प्रभाव ही उसका ऐसा है।।
मंगलमय और श्राद्ध कर्म में, जीव जो इसका पाठ करे। उसके पितर और देवता, अनन्त तृप्ति लाभ करें।।

अति सन्तुष्ट होकर वह, हवन के समाप्त होने पर। व्रती की सब इच्छाओं को, पूर्ण ही देते हैं कर।।
इन सबकी सन्तुष्टि हो, हरि भी स्वत: ही तुष्ट भएं। श्री लक्ष्मी नारायण प्रभु, सब यज्ञों के भोक्ता भएं।।
व्रती की सब ही कामना, पूर्ण वह कर देते हैं। उससे प्रसन्न वह होकर के, वर यह उसको देते हैं।।
मरुद्गण के जन्म की राजन्, पुण्यमयी तुझे कथा कही। और संग ही दिति के पुंसवन, व्रत की भी वर्णन कर दी।।

इति षष्ठम स्कन्ध

** जो तीर भी आता है खाली नहीं जाता, मायूस मेरे दर से सवाली नहीं जाता,*
अरे कांटे ही किया करते है फूलों की हिफाजत, फूलों को बचाने कोई माली नहीं जाता।
** मेरा नसीब तो वैसे भी रेत का ही था, बना के कोई घरौंदा मिटा दिया होता,*
बूतों को पूजना उनकी अगर फितरत थी, खुदाया मुझको पत्थर बना दिया होता।

सप्तम स्कन्ध

विषय सूची

१) नारद-युधिष्ठिर सम्वाद ४७७

२) हिरण्यकशिपु का वृत्तान्त और भक्त प्रह्लाद का चरित्र ४८५

३) त्रिपुर दहन की कथा ५१९

४) नारद जी द्वारा युधिष्ठिर को सनातन धर्म की व्याख्या ५२०

१) मानव धर्म ५२०

२) वर्णाश्रम धर्म ५२२

३) नारी धर्म ५२३

४) ब्रह्मचर्याश्रम ५२३

५) वानप्रस्थाश्रम ५२४

६) सन्यासाश्रम (यतिधर्म का निरूपण),

अवधूत-दत्तात्रेय मुनि और भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का संवाद ५२५

७) गृहस्थाश्रम ५२९

८) मोक्ष धर्म ५३२

** जो कुछ भी है यहां पर बे-वजह नहीं है, ये बात अलग है कि यहां कुछ भी तय नहीं है।*
बच्चों ने रोशनी का चेहरा नहीं है देखा, लगता है भाग्य में अब उनके सुबह नहीं है।
** जिन्दगी के उदास लम्हों में खुशी दे जा, धुंधला चुकी है निगाहें, रोशनी दे जा,*
दिल पे बोझ बनी है तन्हाई, खुश्क होते हुये लफ्जों को शायरी दे जा।

सप्तम स्कन्ध

१) नारद-युधिष्ठिर सम्वाद

परीक्षित् बोले,
श्री हरि तो स्वभाव से ही, हैं भेद दृष्टि से सदा रहित। सभी प्राणियों के सुहृद्, और समत्व में सदा स्थित।।
साधारण जीव की भाँति ही भेद भाव उन्होंने कैसे किया? ज्यों निज मित्र का पक्ष ले, शत्रु से वैर कोई ले कुमा।।
त्यों ही प्रभु ने इन्द्र का, पक्ष कैसे ले लिया? उसके लिये ही दैत्यों का, वध उन्होंने क्यों किया?

स्वयं ही हैं परिपूर्ण वह, सबके लिये कल्याण के लिये। देवों से कुछ स्वार्थ भी, उनका कहीं कोई नहीं सधे।।
निर्गुण हैं प्रभु स्वयं आप, दैत्यों से वैर विरोध नहीं। मौन स्वरूप वह आप हैं, मन में कोई उद्वेग नहीं।।
सौभाग्यवान हैं मुनिवर आप, भगवत् प्रेम से हैं सम्पन्न। हरि के समत्व आदि गुण में, मेरा चित्त हुआ संशय पूर्ण।।
कृपा करी के देव हे, संशय आप मिटाइये। प्रभु का है रहस्य क्या, इतना मुझे बताइये।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् अति उत्तम, प्रश्न तुमने है किया। प्रभु के अद्भुत चरित को, जानन की तेरी जिज्ञासा।।
ऐसे प्रसंग प्रह्लाद आदि, भक्तों की महिमा से हैं पूर्ण। जिनके श्रवण मात्र से ही, हो जाये हृदय भक्ति पूर्ण।।
नारदादि महात्मन् सब, बहुत प्रेम से इसको गाया करें। परम पुण्यमय इस प्रसंग की, कथा वह नित्य सुनाया करें।।
अपने पिताश्री व्यास देव, के चरणों में नमन करूँ। प्रभु की लीला कथा का अब, तेरे लिये मैं कथन करूँ।।

वस्तुत: प्रभु हैं अजम निर्गुण, अव्यक्त हैं वह प्रकृति परे। ऐसा होने पर भी वह, निज माया गुण स्वीकार करें।।
वह स्वयं ही मरने वाला बनें, उसका हन्ता भी आप बनें। मरने मारने वाले परस्पर, दोनों विरोधी रूप धरें।।
सत्व रज और तम, यह तो हैं प्रकृति के गुण। परमात्मा का कोई गुण नहीं, वह तो रहे सदा निर्गुण।।
हे राजन् यह तीनों गुण भी, एक समान कभी नहीं रहे। पर एक साथ ही उच्च या गौण, यह गुण कभी भी न होए।।

समय के अनुकूल प्रभु, इन गुणों को भी स्वीकार करें। सतोगुण की वृद्धि में, देवों ऋषियों को अपनायें।।
रजोगुण प्रधान जो हो, तो दानव दैत्य प्रधान भए। तमोगुण जब वर्धित हो, यक्ष राक्षस अभ्युदय होएं।।

ज्यों काष्ठादि भिन्न आश्रयों में, अग्नि तो सदा व्याप्त रहे। फिर भी उनसे भिन्न उसकी, सत्ता कोई न दीखे।।
किन्तु मन्थन करने पर, प्रकट वह हो जाती है। निज आश्रय भूत वस्तु से, भिन्न तब ही दर्शाती है।।
त्यों ही परम आत्मा वह, सब ही तनों में हैं बसे। साधारण जीव अपने से, भिन्न न उनको देख सके।।
विचारवान् जीव जो, निज हृदय मन्थन करे। उनके अतिरिक्त जो हैं सभी, वस्तुन् का निषेध करे।।
अनन्त: अपने हृदय में ही, अन्तर्यामी को प्राप्त करे। सर्वव्याप्त प्रभु के स्वरूप, को वह जीव फिर जान ले।।

जब अपने लिये वह परमेश्वर, तन निर्माण करना चाहें। जब जब विचित्र योनियों में, श्री हरि स्वयं जाना चाहें।।
तब अपनी माया से वह, रजोगुण सृष्टि करते हैं। इस रजोगुण के राही, विभिन्न योनि वह रचते हैं।।
जब प्रभु स्वयं ही, शयन कभी करना चाहें। तमोगुण की वृद्धि कर, तब उसका ही वह आश्रय लें।।

हे परीक्षित् ज्ञान लो तुम, श्री हरि तो हैं सत्य संकल्प। जगत् की उत्पत्ति निमित्त, भूत प्रकृति दे उत्पन्न कर।।
पुरुष के सहयोगी आश्रय, काल की भी सृष्टि करें। वे हैं रचयिता काल के, नहीं काल के हैं अधीन वे।।
यह काल रूप ईश्वर जब, सतोगुण का वर्धन करते हैं। तब सत्वमय देवों के, बल का यह वर्धन करते हैं।।
रजोगुणी और तमोगुणी, दैत्यों का यह संहार करें। परम यशस्वी देव प्रिय, प्रभु तो सदा ही सम रहें।।

इस विषय में हे राजन्, था प्रेम पूर्ण इतिहास कहा। देवर्षि श्री नारद ने, इसका था आख्यान किया।।
यह उस समय की बात है, जब राजसूय था यज्ञ हुआ। तब पितामह धर्मराज ने, उनसे था यह प्रश्न किया।।
उस महायज्ञ में युधिष्ठिर ने, अति विस्मित हो दर्शन किया। सबके देखते देखते ही, शिशुपाल श्री कृष्ण में लीन हुआ।।

देवर्षि नारद जी भी, थे उस सभा में बैठे हुए। बड़े बड़े मुनि और ऋषि, से थे यज्ञमण्डप सजे।।
आश्चर्य चकित हो धर्मराज ने, नारद से यह प्रश्न किया। अपने मन का संशय जो, श्री नारद के चरण धरा।।
युधिष्ठिर बोले,
अति विस्मयपूर्ण मैं हूँ, कैसा विचित्र संयोग हुआ। श्री कृष्ण में समा जाना, है दुर्लभ और है कठिन बड़ा।।
बड़े बड़े अनन्य भक्तों को, भी सौभाग्य यह नहीं मिले। फिर प्रभु के द्वेषी शिशुपाल को, परम गति यह कैसे मिले?
अति विस्मित हम सब हुए, राज यह जान न पाते हैं। हे देवर्षे इसका रहस्य, हम सब ही जानना चाहते हैं।।
पूर्वकाल में प्रभु निन्दक, वेन को नरक ही था मिला। महा ऋषियों ने उसको, नरक में ही था डाल दिया।।

दमघोष सुत पापात्मा यह, शिशुपाल दुर्बुद्धि दन्तवक्र। इनके भाव स्वभाव से, तो हैं परिचित ही हम सब।।
जब से इन दोनों ने अभी, बोलना भी था न सीखा। तब से ही श्री कृष्ण से, इन दोनों ने द्वेष किया।।
पानी पी कर श्री कृष्ण को, यह गाली देते रहे। इस पाप के फल स्वरूप, न तो जिह्वा के कोढ़ हुए।।
न ही अन्धकार मय, घोर नरक की प्राप्ति हुई। आप ही कहें हे देवर्षि, अनहोनी यह कैसे हुई?

जिन भगवान की प्राप्ति है, अति दुर्लभ और अति कठिन। सबके देखते देखते ही, दोनों ही हो गये उनमें लीन।।
अनायास जो गति मिली, क्या कारण इसका आप कहें? हे देवर्षि संशय जो उठा, आप ही उसको दूर करें।।
ज्यों वायु के झोंके से, दीपक की ज्योति विचलित हो। इस दृश्य को देखकर, मेरी बुद्धि भी अति भ्रमित हो।।
सर्वज्ञ हैं आप प्रभु, आप ही हमें बताइए। इस विचित्र घटना का, रहस्य हमें समझाइए।।
शुकदेव बोले,
राजा के यह वचन सुने, देवर्षि अति मुदित हुए। युधिष्ठिर को सम्बोधित कर, भरी सभा में वचन कहे।।
सबको सुनाते हुए उन्होने, यह कथा फिर कह डाली। धर्मराज और सबके ही, मन की भ्रम यूं मिटा ही दी।।
नारद बोले,
हे युधिष्ठिर जानो तुम, निन्दा स्तुति जब जो भी हो। तिरस्कार सत्कार सब, केवल तन के ही तो हो।।
प्रकृति और पुरुष का, उचित विवेक जब लौ न हो। तब लौ ही इस तन की, कल्पना का कारण वह हो।।
भूल से जब इस तन को ही, अपना आत्मा मान लिया। यह मैं हूँ यह मेरा है, ऐसा भाव तब बन गया।।
यह मिथ्या भाव ही जान लो, सब भेद भाव का मूल है। ताड़ना और दुर्वचन से, पीड़ा का यह ही मूल है।।

जिस तन के अभिमान में, जीव यह भूला रहता है। यह मैं हूँ इस भाव से, जो इस तन में रहता है।।
उस शरीर के मरने पर, निज को ही मृत माने वो। किन्तु श्री भगवान तो, ऐसे भाव से रहित हों।।
वह तो हैं अद्वितीय तत्त्व, और हैं सबके आत्मा। दूजे को गर वह दण्ड भी दें, उसें भी हो कल्याण भरा।।
क्रोधवश या द्वेष वश, कोई कर्म उनका न हो। तब उनके सम्बन्ध में, हिंसा की कल्पना कैसे हो?

वैरहीन हो भक्ति भाव, या फिर तीव्र द्वेष से ही। भय स्नेह या कामना से, सम्भव हो जैसे कैसे भी।।
श्री हरि में अपने मन को, पूर्णतय: ही टिकाइए। प्रभु दृष्टि में इन भावों का, भेद न कोई पाइए।।
हे धर्मराज तुम मेरा तो, निश्चय इतना जान लो। भक्तियोग भी दे न सके, तन्मयता वैर से प्राप्त जो हो।।

कीड़ा ज्यों भृंगी को ला, अपने छिद्र में बन्द करे। भय और उद्वेग से, भृंगी का चिन्तन करता रहे।।
उसका चिन्तन करते करते, उसके समान हो जाता है। भृंगी और उस कीट में, कोई भेद नहीं रह जाता है।।
यही बात भगवान कृष्ण, के सम्बन्ध में सत्य है। लीला से मनुज तन धारी वह, सर्व शक्ति सम्पन्न हैं।।
इनसे वैर भी करके जिस, निरन्तर चिन्तन इनका किया। नितान्त पाप रहित होकर, वह इनको प्राप्त ही हो गया।।

एक नहीं अनेकों ही, जीव हैं इस जग में हुए। काम क्रोध भय स्नेह से, निज मन को प्रभु में लगाकर के।।
अपने सब पापों को धो, हैं प्रभु को उसी विधि प्राप्त हुए। जैसे उनको प्राप्त हों, भक्त अनन्य भक्ति से।।

गोपियों ने श्री कृष्ण को, तीव्र प्रेम से उपास लिया। शिशुपाल दन्तवक्रादि ने, था उनसे अति द्वेष किया।।
कंस तो श्री कृष्ण से, अतीव ही भयभीत था। यदुवंशियों ने उनको, अपने परिवार का जान लिया।।
तुम लोगों ने स्नेह से, अपना मन उनमें लगा दिया। हम लोगों ने भक्ति से, निज मन को वहाँ टिका दिया।।

भक्तों के सिवा जो अन्य भी, पांच प्रकार के जन कहे। अपने अपने भाव से, यह प्रभु चिन्तन में लगे रहें।।
राजा वेन की गणना तो, उनमें से किसी में है नहीं। किसी विधि भी मन उसका, हरि चिन्तन में लगा नहीं।।
सार तू इतना जान लो, जैसे तैसे भी सम्भव हो। अपना मन श्री कृष्ण के, भाव में तन्मय तुम करो।।

फिर मौसेरे यह भाई तेरे, शिशुपाल और दन्तवक्र। यह दोनों ही प्रभु विष्णु के, थे कभी मुख्य पार्षद।।
ब्राह्मणों के शाप से, निज पद से च्युत दोनों हुए। विष्णु लोक को छोड़ कर, इस धरती पर आ गिरे।।
युधिष्ठिर बोले,
प्रभु के अपने पार्षदों को, भी यह शाप किसने दिया? उनको भी प्रभावित जिसने किया, कहें शाप वह कैसा था?
प्रभु के अपने अनन्य प्रेमी, फिर जन्म मरण के चक्र पड़े। यह बात तो नारद जी, विश्वसनीय नहीं जान पड़े।।

वैकुण्ठ में रहनेवाले तो, हों तन इन्द्रिय और प्राण रहित। उनपर तो इन सबका, प्रभाव नहीं होता किंचित।।
प्राकृत इस तन से कैसे, कहें हुआ सम्बन्ध उनका? इसकी कथा तो आप हमें, निश्चित् ही देवें सुना।।
नारद बोले,
श्री ब्रह्मा के मानस पुत्र, सनकादि भ्रमण थे कर रहे। स्वच्छन्द विचरण करते हुए, ऋषिवर वैकुण्ठ में जा पहुंचे।।
यूं तो हैं वे पूर्वजों, के भी सनातन पूर्वज ही। पर दर्श में जान पड़ें जैसे, हों पांच वर्ष के बालक ही।।

वस्त्र भी नहीं वह पहनते, अवधूत वेश ही है उनका। साधारण बालक समझकर, उन्हें द्वारपालों ने रोक दिया।।

इससे वे द्वारपालों पे क्रोधित से दर्शाने लगे। धृष्टता उनकी देख कर, द्वारपालों को शाप दिये।।
प्रभु विष्णु के श्री चरण तो, रज और तम से हैं रहित। उनके समीप कैसे रह सको, ऐ मूढ़ो तुम इन गुणों सहित?
शीघ्र ही यहाँ से तुम, अब पतित ही हो जाओ। पापमय असुर योनि, में प्रवेश ही तुम पाओ।।

इस विधि शाप के मिलते ही, वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे। उन महात्मन् के हृदय, करुणा से तब आर्द्र हुए।।
अच्छा तीन जन्म पर्यन्त, इस शाप का भोग तुम करना। तत्पश्चात् तुम पुन:, वैकुण्ठ लोक में आ जाना।।
हे धर्मराज वे दोनों ही, जाकर के बने दिति के पुत्र। अग्रज उनमें था हिरण्यकश्यपु, और हिरण्याक्ष था अनुज।।
दैत्य और दानवों के, वीरों के समाज में। यह दोनों ही जान लो, सब विधि सर्वश्रेष्ठ थे।।

प्रभु विष्णु ने हिरण्यकश्यपु, का वध करने के लिये। अति उग्र नृसिंह के, रूप थे धारण किये।।
पृथ्वी के उद्धार को, वराहावतार का रूप धरा। हिरण्याक्ष का उस ही, अवतार के राही हनन किया।।
हिरण्यकश्यपु पुत्र प्रह्लाद, तो था अति भगवत्प्रेमी। इस कारण अपने पिता से, उसकी कभी भी नहीं बनी।।
निज विष्णु प्रेमी पुत्र को, वह असुर मारना चाहता था। बहुत यातना दीं उसको, था बार बार पीडित किया।।

किन्तु भक्त प्रह्लाद तो थे, सर्वात्म प्रभु के परम प्रिय। नितान्त शान्त था हृदय उनका, समदर्शी थे वह हो चुके।।
श्री हरि के प्रभाव से, वह तो सदा सुरक्षित थे। इस कारण भिन्न प्रयत्नों में, नहीं उनके पिता कभी सफल हुए।।
हे धर्मराज यह दोनों फिर, विश्रवा मुनि के यहां जन्मे। केशनी के गर्भ से, राक्षस बन कर यह जन्मे।।
उनका नाम तुम जान लो, था रावण और कुम्भकर्ण। उन दोनों के उत्पातों से, सब लोकों में ज्यों लगी अग्न।।

उस काल में भी श्री विष्णु ने, रामावतार था ग्रहण किया। शाप मुक्त करने के लिये, था उन दोनों का वध किया।।
हे धर्मराज मार्कण्डेय, ऋषि प्रसंग मैं बताऊँगा। उनके मुख से श्री राम का, जीवन परिचय मिल जायेगा।।

जय विजय दोनों ने ही, अब यह रूप है धर लिया। क्षत्रिय वंश में इन दोनों, ने ही अबकी जन्म लिया।।
मौसी के पुत्र तुम्हारे बने, शिशुपाल और दन्तवक्र। सारे पाप से मुक्त हुए, श्री कृष्ण चक्र का पा के स्पर्श।।
सनकादि के शाप से, सर्वथा हैं वह मुक्त हुए। इस कारण श्री कृष्ण में, जाकर लीन वह हो सके।।

वैरभाव मन में धर कर, श्री कृष्ण का चिन्तन करते रहे। क्षणभर के भी लिये कभी, वह कृष्ण की याद को न भूले।।
तीव्र तन्मयता कारण ही, वह श्री कृष्ण को प्राप्त हुए। और पुन: उनके पार्षद बन, उनके समीप वह लौट गए।।
युधिष्ठिर बोले,
हिरण्यकश्यपु ने अपने ही, पुत्र से क्यों यह द्वेष किया। वास्तव में यह पुत्र तो, उसके स्नेह का पात्र था।।
साधारण पुत्र न होकर के, श्री प्रह्लाद तो थे महात्मा। किस साधन से हुए भगवन्मय, कृपा करी यह भी दें बता।।
नारद बोले,
वराहावतार लेकर प्रभु ने, हिरण्याक्ष का जब वध किया। भाई के मर जाने पर, हिरण्यकश्यपु शोक सन्तप्त हुआ।।
क्रोध से कम्पित होकर वह, अपने होंठ चबाने लगा। क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित नयन, आकाश पे वह टिकाने लगा।।

धूम्र से आकाश पी, धूमिल था कुछ हो रहा। उसपे दृष्टि टिकाकर के, हिरण्यकश्यपु कुछ कहने लगा।।

अति विकराल उसके दंष्ट्र थे, दृष्टि ज्यों आग थी उगल रही। भौहें भी थीं चढ़ी हुई, और मुख अति भयावह थी।।
भरी सभा में त्रिशुल उठा, अति उग्र वाणी से वह बोला। द्विमूर्धा त्रक्ष्य शम्बर शतबाहु, ह्यग्रीव नमुचि और पुलोमा।।
पाक इल्वल और विप्रचीति, शकुनादि सम्बोधन किया। दैत्यों और दानवों मेरी, बात पे ध्यान धरो तो जरा।।
तत्पश्चात मैं जो भी कहूँ, वैसा ही तुम सब कर लेना। हम सबने मिल जुलकर ही, प्रतिशोध है शत्रु से लेना।।

तुम जानो प्रिय मित्रो, मेरे क्षुद्र शत्रु ने क्या किया। विष्णु से मेरे परम हितैषी, प्रिय भाई को मरवा दिया।।
देवों और दैत्यों में विष्णु, का सदा समान भाव रहा। तथापि यत्न अनुनय विनय से, देवों ने उसे निज पक्ष किया।।

अति शुद्ध और निष्पक्ष ही, यह विष्णु तो था पहले। किन्तु माया के आसरे अब, वराहादि का रूप धरे।।
निष्पक्ष अपने स्वभाव से, अब यह च्युत है हो गया। पूर्ववत् उसका चित्त भी, अब तो स्थिर ही नहीं रहा।।
अब तो बालक की भाँति, जो भी उसकी सेवा करे। मूढ़ बाल सम ही विष्णु, उसके पक्ष में ही हो ले।।

अब तो अपने इस शूल से, छेदूंगा मैं उसकी ग्रीवा। उसके रक्त की धारा से, निज भाई का बदला लूंगा।।
निज प्रिय भ्राता का तर्पण, उसके रुधिर से कर लूंगा। तब ही शान्त हो पायेगी, मेरे हृदय की यह पीड़ा।।
मायावी शत्रु नष्ट हो तो, देव स्वत: निष्प्राण भएं। क्योंकि वास्तव में विष्णु ही, है उन सबके प्राण रे।।
ज्यों वृक्ष मूल कट जाने पर, डाल पात सब शुष्क भएं। त्यों ही विष्णु के नाश पर, देवता गण स्वत: नष्ट भएं।।

इस कारण इस पल ही सब, पृथ्वी तल पर अब जाओ। वहां ब्राह्मण और क्षत्रियों को, अति वर्धित इस पल तुम पाओ।।
तपस्या व्रत स्वाध्याय और, यज्ञ में हों जो लोग लगे। दान आदि शुभ कर्म भी, हों वहाँ जो कर रहे।।
उन सबको हे प्रिय सखे, मार ही गिराओ अब। इससे विष्णु की शक्ति का, नाश ही हो जायेगा तब।।

उस विष्णु का मूल तो, निहित है धर्म और कर्म में। द्विजातियों के यज्ञ कर्म, को ही उसका स्वरूप कहें।।
देवता ऋषि और पितर, सब प्राणिन् का वही आश्रय है। समस्त कर्म और धर्म का, वह विष्णु ही तो आश्रय है।।
जहाँ जहाँ भी ब्राह्मण गाय, वेद और वर्णाश्रय हों। पृथ्वी पर जहाँ भी देखो, कोई धर्म और कर्म हों।।
मेरे प्रिय मित्र उन देशों, में ही अब चले जाओ। भस्मीभूत उनको करो, और उनको तुम उजाड़ ही दो।।

सहज स्वभाव है दैत्यों का, दूजों को दु:ख दे सुखी होना। स्वभाविक था हिरण्यकश्यपु की, आज्ञा का पालन करना।।
सीस झुकाकर उन सबने, आज्ञा वह स्वीकार करी। जनता का नाश करने लगे, वह आज्ञा के अनुसार ही।।
नगर गांव और गोशाला, उद्यान खेत और भ्रमण स्थान। ऋषिजन के पावन आश्रम, और रत्नों की बहुमूल्य खान।।
तलहटी के गांव सारे, किसान अहीरों की बस्तियां। व्यापार केन्द्र सब भस्म किये, और नगरों को दिया जला।।

कुछ दैत्यों ने मिलकर के, खनन अस्त्र कर में लिये। पुल परकोटे और नगर के, फाटक भी सब तोड़ दिये।।
कुल्हाड़ी ले कर अन्य ने, फले फूले वृक्ष काटे। कुछ अन्य ने जलती लकड़ी ले, लोगों के घर ही जला डालें।।
निरीह प्रजा का उत्पीड़न, दैत्य सब करने लगे। उस काल में स्वर्ग त्यजी के देव, छिपकर पृथ्वी पे विचरते थे।।

निज भ्राता की मृत्यु से, था हिरण्यकश्यपू अति दु:खी। जब वह कर्त्तव्य विमुक्त हुआ, अन्त्येष्टि कर के उसकी।।
तब अपने भतीजों को, हिरण्यकश्यपु ने समझाया। शकुनि शम्बर धृष्ट भूत सन्तापन, वृक कुछ एक का नाम था।।
कालनाभ और महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच। हिरण्याक्ष के पुत्र यह थे, और थे उसके भतीजे सब।।

उनकी माता रुषुभानु और, अपनी माता श्री दिति को। देश काल अनुकूलन ही, मधु वाणी में उपदेश दियो।।
मेरे प्रिय जननी वधु और पुत्रो, हिरण्याक्ष हेतु न शोक करो। वीर पुरुष को तो ऐसा, अन्त ही वरणीय हो।।
युद्ध क्षेत्र में शत्रु को, चाहें वह हरायें सदा। तत्पश्चात् ही अपने प्राणों, का त्याग हो चाहे वहां।।
वीरों के लिये तो ऐसी ही, मृत्यु है अति श्लाघनीय। धन्य धन्य निज को मानें, जिसको कभी यह मृत्यु मिले।।

हे देवि ज्यों प्याऊ पर, बहुत लोग एकत्रित हो जायें। पर क्षणिक ही मेल यह उनका हो, वह साथ नहीं निभा पायें।।
वैसे ही निज कर्मानुकूल, दैववश से जीव मिलें। कुछ अवधि वह साथ रहें, और पुन: फिर वह बिछुड़ें।।
वास्तव में आत्मा तो, है नित्य शुद्ध और अविनाशी। सर्वगत सर्वज्ञ वह है, देह इन्द्रियादि से पृथक् ही।।
अविद्या के कारण ही वह, देह आदि की सृष्टि करे। भोगों का साधन है जो, सूक्ष्म तन वह स्वीकार करे।।

ज्यों जल के हिल जाने पर, प्रतिबिम्बित वृक्ष लगें हिलते से। नेत्र जब घूमा करें, पृथ्वी भी घूमती सी लगे।।
वैसे ही यह मन भी, विषयों के संग से भटका करे। वास्तव में है जो निर्विकार, आत्म भी उस जैसा दीखे।।
स्थूल और सूक्ष्म तन से, नहीं उसका सम्बन्ध कोई। फिर भी इनसे सम्बद्ध सा, ही भासे वह आत्मा भी।।

वह आत्म तो सब भाँति, सब विधि है शरीर रहित। अज्ञान तो बस इतना ही है, जानना उसको तन सहित।।
प्रिय अप्रिय का योग वियोग, तन से ही तो होता है। कर्मों का सम्बन्ध भी सब, इस तन से ही होता है।।
इसके कारण ही बार बार, संसार चक्र में आना पड़े। यह अज्ञान जब तक रहे, बन्द यह भटकन न होये।।

जन्म मृत्यु और विविध शोक, अविवेक और चिन्ता सारी। विवेक की पूर्ण विस्मृति का, कारण है यह अज्ञान ही।।
इस विषय में महात्मन् ने, है इक प्राचीन इतिहास कहा। मृतक जीव के बन्धुन् का, यमराज से वार्तालाप वहां।।
ध्यान से इस इतिहास को, मम प्रियजन तुम आज सुनो। सत्य के निष्कर्ष पे फिर, स्वयं ही तुम आ पहुँचो।।

उशीनर देश में एकबार, अति यशस्वी राजा था। अति योग्य प्रशासक महावीर, सुयज्ञ उसका नाम था।।
युद्ध क्षेत्र में शत्रु ने, मार गिराया राजा को। तब भाई बान्धु बैठ गए, घेर कर उसके शव को।।

रत्नजड़ित उसका कवच, छिन्न भिन्न था हो गया माला भूषण श्रृंगार सब, नष्ट भ्रष्ट ही था हुआ।।
बाणों के प्रहार से, हृदय था उसका छिन्न हुआ। रक्त से रंजित तन उसका, धरती पर था पड़ा हुआ।।
बिखर गए थे उसके केश, आंखें भी थीं धंस गईं। क्रोध के मरे दाँतों से, होंठ थी उसकी दबी हुईं।।
.उसका कमल समान मुख, धूलि से था ढका हुआ। युद्ध में शस्त्र और भुजदण्ड, का भी था छेदन हुआ।।

दैववश निज राजा की, जब यह अवस्था उन देखी। विदीर्ण हृदय हुईं रानियाँ, इस दृश्य को वह न सह सकीं।।
बेमौत ही हम मारी गई, हैं नाथ हम अभागिनें। वह बार बार छाती पीटें, और पति चरण में गिर पड़ें।।

अति उच्च स्वरों में ही, वे विलाप थीं कर रहीं। वक्ष के कुंकुम से मिलकर, उनके अश्रु भी थी लाल हुई।।
उन असुअन् से निज प्रियतम के, मानो थीं चरण पखार रहीं। निज केश और आभूषण की, भी सुधि उनको नहीं रहीं।।
करुण स्वरों के साथ ही, वह क्रन्दन थीं कर रहीं। जीवों के हृदय में वह उससे, शोक संचार थीं कर रहीं।।

है अति क्रूर विधाता हाय, स्वामी को अदृश्य किया। हे स्वामी आपको आंखों से, ओझल उसने कर दिया।।
सब देश वासियों के प्रभु, आप ही थे जीवन दाता। शोक ही सबको दे रहे, उसने है ऐसा बना दिया।।
हे पतिदेव हमसे तो था, अतीव प्रेम आपका। बहुत मान करते थे आप, थोड़ी सी हमारी सेवा का।।
हम आपके चरण की चेरी हैं, बिन आपके कैसे रह सकें? जहां पे स्वामी आप चले, हमें संग आने की आज्ञा दें।।
शुकदेव बोले,
पति के शव को पकड़े हुए, इस विधि विलाप थीं कर रहीं। मृत तन के संस्कार की, नहीं आज्ञा देना चाहती थीं।।
इतने में ही सूर्य का, अस्त वहां से होने लगा। पर उस शव के नातों ने, ले जाने वहाँ से नहीं दिया।।
राजा के सम्बन्धी जो, महाविलाप थे कर रहे। बाल रूप धर उसे सुनी, यमराज स्वयं वहाँ पहुँचे।।
यम बोले,
है अति विस्मय की बात यह, यह लोग तो मुझसे सयाने हैं। नित देखें जीना मरना, फिर भी यह सत्य न जाने हैं।।
क्यों यह मूढ़ हैं हो रहे, और सत्य न जान रहे? था जहां से आया वहीं गया, इतना भी नहीं पहचान रहे।।
इन सब लोगों ने भी तो, इक दिन वहीं पे जाना है। फिर काहे को सन्ताप शोक, यह सब तो झूठा बहाना है।।

परम धन्य तो हम ही हैं, तुमसे तो लाख गुणा हैं भले। हमरे माता पिता ने तो, पहले ही हमको त्याग दिये।।
इस तन में भी अभी भरा, नहीं पर्याप्त बल कहीं। फिर भी देखो किसी भाँति, की भी चिन्ता हमें नहीं।।
वृकादि हिंसक जन्तु नहीं, कुछ भी बिगाड़ सकें हमारा। जिसने हमें गर्भ में था पाला, वह ही रक्षण करे हमारा।।

अविनाशी प्रभु निज मौज में, इस जग को बना डालें। वही संरक्षण इसका करें, और स्वयं ही वह संहार करें।।
उस प्रभु के हाथ में यह जगत्, है बस एक खिलौना मात्र। किसी को दण्ड परितोषक दें, है यह उनकी ही सामर्थ।।

भाग्य यदि अनुकूल हो, गिरी वस्तु रहे ज्यों की त्यों। तिजोरी में भी डाका पड़े, भाग्य गर प्रतिकूल हो।।
बिना किसी अन्य के आसरे, केवल उसकी दया की दृष्टि से। अकेला जीव भी जंगल में, बहुत दिनों तक जी सके।।
पर भाग्य यदि विपरीत हो, घर की सुरक्षा में रहकर। भी जीव न बच सके, अनायास जाता है मर।।

हर प्राणी की मृत्यु तो, निश्चित है पूर्व कर्म अनुसार। निश्चित समय पर मृत्यु हो, और पुन: जन्म हो तदनुसार।।
किन्तु जानो महारानियो, आत्म तो तन से भिन्न रहे। तन में तो वह रहता है, पर जन्म मरण उसे छू न सकें।।

ज्यों निज घर को जीव यह, अपने से भिन्न ही जाना करे। चेतन खुद को वह माने, माटी का घर ही जाना करे।।
उसी विधि यह तन भी तो, उससे भिन्न माटी का है। मोह वश ही तो इसको वह, अपना माने बैठा है।।
ज्यों बुलबुलें लहरें आदि सब, पानी के ही तो विकार हैं। या फिर घड़ा सुराही सब, माटी के ही विकार हैं।।
आभूषण आदि जो भी बनें, स्वर्ण के ही सब रूप हैं। नित्य बदलते रहते हैं, और अन्त में नष्ट हों रूप जो हैं।।

वैसे ही पंच तत्त्वों के, विकार रूप यह है जो तन। कभी बने और वैसे ही, कभी नष्ट हो जाये तन।।

अग्नि काष्ठ में तो बसे, पर है यह उससे सर्वथा भिन्न। ज्यों देह में वायु व्याप्त रहे, पर उससे नहीं कोई सम्बन्ध।।
आकाश तो सम ही रहे सदा, नहीं गुण दोष से लिप्त वह हो। वैसे ही देह और इन्द्रियों में, सबमें बसे है आत्मा जो।।
यह ही आश्रय है उनका, पर है यह उनसे भिन्न ही। इनके किसी भी धर्म से, नहीं लिप्त हो आत्म कभी।।

अरे मूढ़ो जिसके लिये, तुम सबको है शोक हुआ। सुयज्ञ नाम का वह तन तो, सामने आपके है धरा।।
पूर्व भी इस तन को ही, तुम सब देखते थे सदा। कभी किसी ने देखा नहीं, जो सुनने बोलने वाला था।।
आज भी वह सार तो, दिखाई नहीं है दे रहा। फिर यह गहरा शोक क्यों, कहो इसमें है अनहोनी क्या?

इस तन की सब इन्द्रियों की, चेष्टा का है जो आधार। सबमें प्रधान होने पर भी, नहीं बोलता या सुनता वह प्राण।।
स्वयं तो जड़वत् ही रहकर, सब इन्द्रियाँ क्रियावान् करे। उसकी ही प्रेरणा पा, सब इन्द्रियाँ चेष्टावान् भयें।।
देह और इन्द्रियों के द्वारा, जो भी कार्य जहाँ पे हों। तन और प्राण दोनों से पृथक्, उनका द्रष्टा इक आत्मा हो।।

यद्यपि सबमें व्याप्त है, वह तो है परिछिन्न नहीं। सबमें रहता हुआ भी वह, है तो सबसे भिन्न ही।।
महाभूत इन्द्रिय और मन युक्त, भिन्न भिन्न तन ग्रहण करे। निज विवेक के बल से वह, इन सबसे मुक्त भी हो सके।।
पंच ज्ञान पंच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण बुद्धि और मन। इन सत्रह तत्त्वों से बने, जब लिंग शरीर से हो सम्पन्न।।
तब लौ ही कर्मों के, बन्धन में यह पड़ा रहे। इसके कारण ही मायिक, मोह क्लेश के वश में रहे।।

प्रकृति के गुण और उनसे बनी, वस्तु को सत्य ही समझना। वास्तव में यह ही जानो, झूठ का है आश्रय लेना।।
मन में कल्पित या स्वप्न में, जो वस्तु भी दीख पड़े। वास्तव में मिथ्या है वह, नहीं किंचित भी सार उसमें।।
इसी विधि इन्द्रियों द्वारा, जो कुछ ग्रहण में है आता। वहाँ पे सत्य तो कुछ नहीं, वह तो है सारा मिथ्या।।

तन के और आत्मा के, तत्त्व को जाने है जो पुरुष। न अनित्य तन हेतु रोए, न आत्म हेतु हो शोक युक्त।।
किन्तु नहीं ज्ञान की दृढ़ता जहाँ, शोक वही तो करते हैं। है कठिन बदलना स्वभाव का, भ्रम में पड़े वह रहते हैं।।
इक जंगल में एक बार, एक शिकारी रहता था। मानो विधाता ने उसे, पक्षिन् का काल बनाया था।।
जहां कहीं भी जंगल में, जाल फैला वह देता था। ललचा के उसमें चिड़ियों को, सदा फंसा वह लेता था।।

कुलिंग पक्षी के युगल को, इक दिन दाना चुगते देखा। उनमें से मादा पक्षी को, शीघ्र ही उसने फांस लिया।।
कालवश शिकारी के, जाल के फंदे में वह फंसी। निज पत्नी की विपदा देख, नर हृदय भी अति पीडित हुआ।।
छुड़ा नहीं सकता था उसे, अति विवश था वह हुआ। स्नेहवश निज पत्नी के लिये, वह विलाप करने लगा।।

उसने कहा विधाता तो, वैसे ही सब कुछ कर सकता। पर आज तो वह सचमुच ही, अति निर्दयी है हो गया।।
मेरी सहचरी इक तो अबला, दूजा मुझसे वियोग हुआ। इस शोक में अति दीनता, से रही वह छटपटा।।
इसको लेकर क्या करेगा वह, चाहे तो मुझको ले जाये। निज पत्नी बिन बिधुर जीवन, अधूरा ही मम रह जाये।।
दीनता दुः से भरा यह, जीवन मेरे किस काम का? इसको भी विधाता ले, गर इसमें सुख हो उसका भरा।।

भाग्यहीन मेरे शिशुओं के, अभी तो पंख भी नहीं लगे। माता के मर जाने पर, कैसे वह पुष्ट मुझसे होंगे?
नीड़ में बैठे हुए बालक, माता की बाट निहारे हैं। अपनी तुतलाती भाषा में, माता को ही वह पुकारे हैं।।

इस तरह भाँति भाँति, से विलाप वह करने लगा। निच सहचरी के वियोग में, वह था व्याकुल हो रहा।।
उसके अश्रुन् से उसका, कण्ठ भी था अवरुद्ध हुआ। काल की प्रेरणा जो हुई, शिकारी ने प्रहार किया।।
एक बाण ऐसा मारा, कि वह भी वहीं पे लेट गया। विलाप किया था पत्नी का, पर अपना प्राण ही चला गया।।

अरी मूर्ख हो तुम रानियो, नहीं सत्य देख तुम पा रही। तुम्हरी भी तो जान लो, यह ही है दशा होने वाली।।
अपनी मृत्यु न देखो तुम, और इसके लिये हो रो रही। इसको न प्राप्त पुन: कर सको, शत वर्ष भी गर तुम रोती रही।।
हिरण्यकश्यपु बोला,
उस छोटे से बालक की, जो जन भी बात थे सुन रहे। सबके सब जो वहां पे थे, आश्चर्य चकित ही रह गए।।
राजा के भाई बान्धव और, पत्निन् सबने ही जान लिया। सारा संसार और इसके सब, दु:ख सुख भी अनित्य और हैं मिथ्या।।
यह उपाख्यान सुनाकर के, यमराज तो अन्तर्धान हुए। सम्बन्धियों ने सुयज्ञ की, अन्त्येष्टि के प्रबन्ध किये।।

इसलिये अब तुम सब भी, इस शोक का त्याग करो। अपने या दूजे के लिये, किसी शोक में नहीं पड़ो।।
अपना आप यहाँ कौन है, और अपने से है भिन्न कौन? अपना किसको तुम कहो, और पराया कहो है कौन?
अज्ञान के कारण ही अपने, पराये का यह भेद हो। जीवों की भेद बुद्धि का, कारण अन्य कोई न हो।।

नारद बोले,
निज पुत्रवधु के साथ दिति ने, पुत्र से जब यह बात सुनी। हिरण्यकश्यपु से कथा सुनी, तत्क्षण उस पुत्र की शोक त्यजी।।
निज चित्त को सब ओर से, उसने फिर एकाग्र किया। परम तत्त्व स्वरूप उस, परमात्म में लगा दिया।।

२) हिरण्यकशिपु का वृत्तान्त और भक्त प्रह्लाद का चरित्र

नारद बोले,
अब हिरण्यकश्यपु ने, हे धर्मराज यह विचार किया। मैं अजर अमर अजेय बनूँ, इकछत्र सम्राट् धरती का।।
कोई मेरे सामने, कभी भी टिक ही न पाये। फिर किसीसे द्वन्द्व का तो, प्रश्न ही कहाँ पे उठ पाये।।
मन्द्राचल की इक घाटी में, इसके लिये वह चला गया। वहां बैठकर अति कठिन, तपस्या वह करने लगा।।
ऊपर हाट उठाकर के, आकाश ओर था देख रहा। पांव के अंगूठे के बल, था वह पृथ्वी पर खड़ा।।

जटायें थीं ऐसी चमक रहीं, ज्यों प्रलय काल की सूर्य किरण। इस प्रकार वह जब हुआ, कठिन तपस्या में संलग्न।।
तब देवतागण निज स्थानों पर, जाकर पुन: आसीन हुए। अपने अपने पद पर वह, पुन: प्रतिष्ठित हो गए।।
बहुत दिन कठिन तपस्या करी, तप ने अग्नि की रूप धरी। धूम्र सहित फिर वह अग्नि, सीस से उसके जा निकली।।
चहुँ और वह फैल गई, और सभी को जलाने लगी। ऊपर नीचे और अगल बगल, के, लोक वह तपाने लगी।।

सागर और नदियाँ सारी, उसे ताप से खौल उठीं। पर्वत और द्वीपों समेत, पृथ्वी भी सारी डोल उठी।।
ग्रह नक्षत्र और तारे सब, टूट टूट कर गिरने लगे। दसों दिशाओं में मानो, अग्नि के हों अंगारे उठे।।

हिरण्यकश्यपु के तप की आग, स्वर्ग तक भी जा पहुँची। उस अग्नि की लपटों से, देवों को भी ताप लगी।।
घबराकर वह स्वर्ग से, ब्रह्मलोक को चले गए। सब मिलकर फिर ब्रह्मा से, प्रार्थना यूं करने लगे।।
हे जगत्पिता श्री ब्रह्मा जी, हैं देवों के आराध्य आप। जला रहा है आज हमें, हिरण्यकश्यपु के तप का ताप।।
स्वर्ग लोक में हम सब तो, अब नहीं है रह सकते। हे सर्वाध्यक्ष अनन्त आप, चाहें तो ज्वाला शान्त करें।।
आपकी सेवक जनता का, नाश कहीं न हो जाये। यदि उचित जाने इसे, पहले ही अग्नि शान्त करें।।

सर्वज्ञ हैं आप प्रभु, आप तो सब कुछ हैं जानें। फिर भी अपनी ओर से हम, निवेदन आपके चरण धरें।।
उसकी घोर तपस्या का, अभिप्राय क्या है जान लें। उसके बाद जेसा भी आप, उचित समझें वैसा ही करें।।
वह माने ज्यों ब्रह्मा जी, निज तप और योग प्रभाव से। चराचर लोक की रचना कर, ससे ऊपर ही विराज रहे।।
त्यों ही मैं निज योग बल, और तप के प्रभाव से। वही पद और स्थान पाऊं, जो सत्य लोक में उन्हें मिले।।
क्योंकि काल है सीमा रहित, और आत्मा नित्य है। एक जन्म इक युग न सहीं, अनेकों में तो सम्भव है।।

निज तप की शक्ति से मैं, नियमों को सारे बदल दूँगा। पाप पुण्य को पलट कर, सब उलट पलट मैं कर दूँगा।।
ऐसा मैं चक्र चलाऊँगा, जैसा पहले कभी न था। वैष्णव आदि पदों में तो, नाहक ही है रखा क्या?
कल्प के अन्त में वे सब भी, काल के गाल में जाते हैं। काल के इस चक्र से तो, बच नहीं कोई पाते है।।

हमने ऐसा है सुना, इसी घोर हठ पे वह अड़ा। अति कठिन महा उग्र ही, तपस्या में वह लगा हुआ।।
तीनों लोकों के स्वामी आप, हम आपकी शरण में आन पड़े। उचित समझें आप जिसे, वैसा ही अब आप करें।।
हे ब्रह्मा जी यह आपका, सर्वश्रेष्ठ परमेष्टि पद। ब्राह्मण और गौ की कुशल वृद्धि, विभूति विजय कल्याण कर।।
यदि असुर हिरण्यकश्यपु के, हाथ में यह चला गया। तो सन्त जनों पर जानें आप, संकट का पर्वत टूटेगा।।

हे धर्मराज देवों ने मिल, ब्रह्मा से किया निवेदन यह। भृगु दक्षादि संग ले ब्रह्मा, असुर के आश्रम को गए।।
वहाँ पहुँचकर पहले तो, उसका दर्शन ही नहीं हुआ। माटी घास और बासों से, था उसका तन ढका हुआ।।
चीटियों ने उसका अंग अंग, मांस मज्जा को चट किया। उनके दर्शन को वहाँ, कुछ अवशेष ही नहीं बचा।।

मेघों से आवृत्त सूर्य सम, उसका तेज प्रज्ज्वलित था। निज तपस्या से वह असुर, त्रैलोकी को था तपा रहा।।
उसको देख के श्री ब्रह्मा, भी अति विस्मित हो गए। फिर हंसकर हिरण्यकश्यपु, से उन्होने यह वचन कहे।।
ब्रह्मा बोले,
हे तात् तुम उठो उठो, हो कल्याण तुम्हारा अब। निज तप में हे कश्यप पुत्र, तुमने है सिद्धि पाई सब।।
तुमको वर देने के लिये, तेरे पास मैं आया हूँ। निस्संकोच मनवांछित, वर अब मांगों यह चाहा हूँ।।
तव हृदय का अद्भुत बल, हे तात् मैंने देख लिया। कीड़ों ने तुम्हारी सारी देह, को तो खत्म है कर दिया।।
अस्थिपिंजर के आसरे ही, हैं प्राण तुम्हारे टिके हुए। तेरे आन्तर बल को देखकर, आश्चर्य से हम हैं चकित हुए।।

ऐसी कठिन तपस्या तो, नहीं पहले किसी ऋषि ने करी। नहीं आगे चलकर भी, ऐसा तप करेगा कोई।।
कौन भला ऐसा होगा, जो ऐसा कठिनतम व्रत ले ले। देवों के सौ वर्ष तक, जो बिन जल के जीवित रहे।।

बड़े बड़े धीर जन भी, यह काज कठिनता से ही करें। निज वश में किया दिति नन्दन, मुझे तुमने निज तपनिष्ठा से।।

हे दैत्यों के शिरोमणि, इस तप से मैं प्रसन्न हुआ। जो कुछ भी तुम मांगोगे, वह ही तुमको दे दूँगा।।
मृत्युधर्मा ही तुम हो, और जानो मैं अमर हूँ। निष्फल नहीं कभी हो सकता, गर दर्शन मैं किसी को दूँ।।
नारद बोले,
इतना कहकर युधिष्ठिर हे, कमण्डलु अपने कर में लिया। कीड़ों द्वारा खाये तन पर, वह जल उन्होने फिर छिड़का।।
दिव्य अमोघ प्रभाव युक्त, उनके कमण्डलु का जल था। वाल्मीक् को छूते ही, आश्चर्य जनक प्रभाव हुआ।।
इक चिंगारी के गिरते ही, ज्यों लकड़ी में अग्नि धधके। त्यों ही जल के स्पर्श को पा, उठा माटी बांस के ढेर में से।।

उसने आकाश में जब देखा, श्री ब्रह्मा हँस पे हैं आरूढ़। उन्हें देख आनन्द में, हिरण्यकश्यपु फिर गया डूब।।
अपना सीस धरा पे धर, उनको नमस्कार किया। इस विधि श्री ब्रह्म का, उस दैत्य ने सत्कार किया।।
अंजलि को फिर बान्धे हुए, विनम्र भाव से खड़ा हुआ। बड़े प्रेम से निर्निमेष, नयनों से था उन्हें देख रहा।।
गद्गद् वाणी से उनकी, स्तुति वह फिर करने लगा। आनन्दाश्रु भरे नेत्रों में, और तन भी पुलकित था हुआ।।
हिरण्यकश्यपु बोला,
कल्पान्त में यह सारी सृष्टि, तमोगुण के प्रभाव से। अन्धकार से थी आवृत्त हुई, काल से प्रेरणा पा कर के।।
स्वयं प्रकाश स्वरूप आपने, अपना तेज था प्रकट किया। उस तेज से सृष्टि का, पुन: था प्राकट्य हुआ।।
अपने त्रिगुणमय रूप से, आप ही सगरे काज करें। सृजन रक्षण और पुन:, आप ही तो संहार करें।।
सत्त्व रज और तमोगुण, तीनों का आप ही आश्रय हैं। सबसे परे महान् आप, आपको ही मेरा नमन हैं।।

आप ही हैं मूल कारण, हे प्रभु इस जगत् का। ज्ञान विज्ञान मूर्ति का, आपने ही प्रभु रूप धरा।।
प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि, विकारों का आश्रय लिया। इन सब रूपों में अपने को, ही प्रभु आपने प्रकट किया।।

मुख्य प्राण के रूप में, सुत्रात्मा प्रभु आप बनें। इस चराचर जगत् को, प्रभु आप नियन्त्रण में रखें।।
चित्त चेतना मन इन्द्रिय, सबके हैं स्वामी आप ही। आप प्रजा पालन करें, हैं आप ही उसके रक्षक भी।।
पंचभूत शब्दादि विषय, उनके संस्कार भी जो रचें। महत्तत्त्व का रूप भी, प्रभु आप ही स्वयं धरें।।

वेद होता और अध्वर्यु, ब्रह्मा और जो उद्गाता। इन ऋत्विजों के द्वारा ही, प्रतिपादन करें जो यज्ञों का।।
वह आपके ही तो शरीर हैं, उनसे ही यज्ञ विस्तार करें। अग्निष्टोमादि सप्त यज्ञ का, आप ही तो प्रसार करें।।
सम्पूर्ण जीवों के हे देव, आप स्वयं हैं आत्मा। अन्तर्यामी अनादि अनन्त, अपार सर्वज्ञ अन्तरात्मा।।

काल स्वरूप हैं प्रभु आप, हर पल रहें सतर्क ही। क्षण लव आदि विभाग से, क्षीण करें आयु सबकी।।
फिर भी कोई विकार प्रभु, आपको कभी न छू सके। ज्ञान स्वरूप परमेश्वर आप, हैं आप अजन्मा विभु हे।।
सबके जीवन दाता आप, और सबके अन्तरात्मा हैं। परम पुरुष पुरुषोत्तम आप, आप ही तो परमात्मा हैं।।

कार्य कारण चल अचल, प्रभु कोई भी ऐसी वस्तु नहीं। आपसे भिन्न जो हो सके, कहीं कोई ऐसा है ही नहीं।।
समस्त विद्या और कला, आपका ही तो शरीर है। स्वयं परम् ब्रह्म आप, त्रैगुणी माया से अतीत हैं।।

स्वर्णमय ब्रह्माण्ड यह, आपके गर्भ में ही है स्थित। अपने में से ही इसको, आप ही कर देते हैं प्रकट।।

यह व्यक्त ब्रह्माण्ड तो, आपका स्थूल तन है प्रभो। इन्द्रिय मन प्राण के विषयों का, उपभोग इस राही ही हो।।
उस समय भी आप प्रभु, निज स्वरूप में स्थित रहें। वस्तुत: आप पुराण पुरुष, हैं सूक्ष्म स्थूल दोनों से परे।।
सब जगत् में व्याप्त रहें, अनन्त अव्यक्त स्वरूप से। आपकी ही रहें शक्तियां, चेतन अचेतन दोनों में।।
हे प्रभु आपके चरण में मैं, बार बार ही नमन करूँ। सारे जग के स्वामी हे, मैं तो आपकी चरण पड़ूँ।।

सर्वश्रेष्ठ वरदे हैं आप, यदि वर मुझको देना चाहें। मेरे अभीष्ट वर दें मुझको, अब आपसे इतना ही मांगें।।
आपसे रचित किसी प्राणी, द्वारा मैं न मर सकूँ। मनुष्य पशु प्राणी अप्राणी, देव दैत्य नाग से नहीं मरूँ।।
बाहर भीतर दिन रात्रि में, अतिरिक्त किसी भी जीव से। अस्त्र शस्त्र पृथ्वी आकाश, न कहीं किसी से मृत्यु भए।।
युद्ध में भी किसी योधा को, नहीं सामने अपने टिकने दूँ। सारे प्राणी मात्र का ही, मैं एक छत्र सम्राट् बनूँ।।

इन्द्रादि सब लोकपालों में, आपकी जैसी महिमा है। मेरी भी वैसी महिमा हो, बस यही आपसे कहना है।।
तपस्वी और योगिनों को, अक्षय ऐश्वर्य जो प्राप्त हों। ऐसा अब वरदान दें, मुझको वे सब ही प्राप्त हों।।
नारद बोले,
हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से, अति दुर्लभ जब यह वर मांगे। उसके तप से प्रसन्न हो, उसको वर यह दे दिये।।
ब्रह्मा बोले,
हे तात् जो वर तुम मांग रहे, हैं अति दुर्लभ जीवों के लिये। पर अति दुर्लभ होने पर भी, तुमको यह पूर्ण दे दिये।।
नारद बोले,
श्री ब्रह्मा जी के वरदान, झूठ नहीं कभी हो सकते। सर्व समर्थ वह स्वयं हैं, और हैं भगवत् स्वरूप वे।।
वरदान प्राप्त कर लेने पर, फिर असुर ने उनकी पूजा की। प्रजापतिन् से स्तुति सुनी, ब्रह्मा ने फिर प्रस्थान करी।।
उस दैत्य को ब्रह्मा से, दुर्लभ वर जब प्राप्त हुआ। तन हृष्ट पुष्ट हुआ उसका, स्वर्ण सम कान्तिमय हुआ।।
निज भाई की मृत्यु का, स्मरण वह करने लगा। और प्रभु विष्णु प्रति, मन में वा द्वेष उमढ़ने लगा।।

दैत्य ने सारी दिशाओं और, तीनों लोकों को जीत लिया। देव असुर नरपति गन्धर्व, सब प्राणियों को वश में किया।।
गरुड़ सर्प सिद्ध और चारण, विद्याधर और पितराधिपति। मनुज यक्ष राक्षस पिशाच, प्रेत और सब भूत पति।।
समस्त प्राणियों के राजा, उसके अधीन ही हो गए। लोकपालों की शक्ति स्थान, उस विश्व विजयी ने सब छीने।।

दिव्य उद्यानों के सौन्दर्य, से सजा जो लोक था। वह असुर उस स्वर्ग में, ही जाकर रहने लगा।।
विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, इन्द्र भवन में वास किया। त्रिलोकी का सौन्दर्य सब, उस भवन में मूर्तिमान् था।।
सब प्रकार की सम्पदा से, वह प्रसाद सम्पन्न था। हिरण्यकशिपु उस महल में, ही जाकर रहने लगा।।

सोपान थे मूंगों के बने, पन्नों की थीं ड्योढ़ियाँ। स्फटिक की थीं दीवारें बनीं, थीं माणिक की वहाँ कुर्सियाँ।।
वैदुर्यमणि के खम्भे थे, और रंग बिरंगे चिन्दोवे। दुग्ध फेन सम श्वेत पलंग, मोती के झालर लटक रहे।।
सर्वांग सुन्दर अप्सरागण, उस रत्न भूमि पे विचरती थीं। उनके नूपुर की ध्वनि से, वातावरण सब झंकृत थी।।

उन मणियों में अपनी छवि, प्रतिबिम्बित वह पातीं थीं। कहीं कहीं निज सुन्दर आनन, देखने को रुक जाती थीं।।

महामनस्वी महाबली, हिरण्यकशिपु वहाँ रहता था। सब लोकों को जीत के वह, देवेन्द्र के महल में रहता था।।
एकछत्र सम्राट बनी, स्वतंत्रता से विचरने लगा। अति कठोर उसके शस्त्रन् से, जन जन वहाँ भयभीत था।।
देव दानव सब मिल कर, उसके चरण में बैठे थे। अहर्निश उनके चरण, की वन्दना करते रहते थे।।

भीषण गन्धित मदिरा पीकर, मतवाला ही बना रहता था। नेत्र चढ़े ही रहते थे, और रंग भी उसका लाल था।।
तपस्या योग तनो मनो, बल का वह भण्डार था। ब्रह्मा विष्णु महादेव छोड़, सब देवों पे अधिकार था।।
सभी देवगण हाथों में, भेंट लिये खड़े रहते थे। उस दैत्य की सेवा में, वे हर क्षण तत्पर रहते थे।।

निज पुरुषार्थ से वह जा, इन्द्रासन पे जब बैठ गया। विश्वावसु तुम्बुरु और, हम सबने सामने गान किया।।
गन्धर्व सिद्ध और ऋषिगण, सब उसकी स्तुति गाते थे। विद्याधर और सब अप्सरा जन, भी स्वर अपना मिलाते थे।।
वर्णाश्रम के अनुयाई जो, महादक्षिणापूर्ण यज्ञ करें। उन यज्ञों की आहुति भी, देवों तक न पहुँच से।।
हे धर्मराज वह असुर तो, था इतना तेजस्वी हुआ। सब यज्ञों की आहुति को, बलपूर्वक वह था छीनता।।

पृथ्वी के सातों द्वीपों पर, अखण्ड उसका राज्य था। बिन जोते और बोये ही, धरती से अन्न उपजता था।।
जो कुछ भी वह चाहता था, अन्तरिक्ष से मिल जाता। आकाश विभिन्न दृश्य दिखा, मनोरंजन उसका था करता।।
खाराजल सुधा घृत इक्षुरस, दधि दुग्ध मधुरजल से भरे। सब सागर नदियों सहित, सेवा में उपस्थित थे रहते।।
निज तरंगों पे उसको, वह रत्नराशि पहुंचा देते। इस भाँति पत्नी नदियों सहित, वह उसकी सेवा में थे लगे।।

पर्वत भी अपनी घाटियों में, थे क्रीड़ा स्थान बना देते। ऋतु अनुकूल वृक्ष भी सब, फूल फल उसे ला देते।।
अकेले ने भिन्न लोकपालों के, गुणों को था धारण किया। हे धर्मराज उस असुर का, था ऐसा कुछ प्रभाव बना।।
दिग्विजय और एकछत्र, सम्राट् वह था हो गया। निज रुचिकर विषयों का, स्वच्छन्द भोग कर था वह रहा।।
किन्तु सब विषयों से भी, नहीं तृप्ति उसकी हो सकी। क्योंकि अन्तत: थी वहां, इन्द्रियों की दासत्व बनी।।

याद रहे इस रूप में भी, है तो वह प्रभु का वही पार्षद। सनकादि ने जिसे शाप दिया, जिससे पाई उस यह दुर्गत।।
ऐश्वर्य के मद में भूला वह, मतवाला था हो रहा। इस घमण्ड में चूर हुआ, शास्त्र मर्यादा को छोड़ा।।
काल चक्र तो अपनी गति से, चलता ही था जा रहा। देखते देखते ही उसका, बहुत जीवन व्यतीत हुआ।।
लोकपाल और लोक सब, उसके शासन से घबरा गए। जब अन्य कहीं न ठौर मिली, तो प्रभु की शरण में आ गए।।
देव बोले,
सर्वात्मा जगदीश्वर जहाँ, श्री हरि स्वयं निवास करें। शान्त निरंजन संन्यासी, महात्मा जिसको प्राप्त करें।।
जिसे प्राप्त करी पुन: कभी, लौट नहीं वह आते हैं। प्रभु के उस परम् धाम को, हम नमन किये जाते हैं।।
नारद बोले,
इस भाव को मन में धर करी, इन्द्रियों का संयम किया। मन को समाहित करके खाना, पीना सोना सब छोड़ा।।
हृदय को निर्मल करके वह, प्रभु आराधना करने लगे। एकाग्र भाव से दत्तचित्त हो, वह श्री हरि की शरण पड़े।।

इक दिन मेघ समान ही, गम्भीर स्वर उन्होंने सुना। आकाश से अदृश्य ही, वह स्वर था वहाँ गूंज उठा।।
उसकी गूंज से दिशा सभी, थीं मानो प्रतिध्वनित हुईं। अभय दान देती हुई, वह वाणी साधुओं से बोलीं।।
आकाशवाणी ने कहा,
हो कल्याण सब देवों का, भयभीत न होवो तुम देवो। मम दर्शन मात्र से प्राणी को, परम लाभ की प्राप्ति हो।।
इस नीच दैत्य की दुष्टता को, पहले से ही जानूँ मैं। कुछ दिन प्रतीक्षा और करो, विनाश इसका करूँगा मैं।।
जो वेद देव गाय ब्राह्मण, साधु और धर्म से द्वेष करे। विनाश शीघ्र ही हो उसका, जो मुझसे ही लड़े।।

शान्त निर्वैर महात्मा, इसका पुत्र प्रह्लाद होगा। जब अपने ही पुत्र से, इस दैत्य का द्रोह होगा।।
उसका अनिष्ट यह चाहेगा, भले ही वर है इसे मिला। चाहे पूर्ण बल सम्पन्न है, मेरे ही हाथ से मारा जायेगा।।
नारद बोले,
सबके हृदय में ज्ञान का, संचार प्रभु जो स्वयं करें। उन हरि ने जब देवों को, इस भाँति आदेश दिये।।
तब उनको प्रणाम करी, देवता सारे लौट गए। उद्वेग भी मन का शान्त हुआ, ज्यों हिरण्यकशिपु ही हों मरे।।
हे युधिष्ठिर जान लो तुम, थे उस दैत्य के चार पुत्र। अति विलक्षण गुणवान्, थे उनके यह चारों पुत्र।।
उनमें से प्रह्लाद तो, थे आयु में अनुज ही। पर गुणों में थे सबसे बड़े, वह तो थे सन्त सेवी।।

सौम्य स्वभाव ही था उनका, वह थे ब्राह्मणभक्त अतीव। जितेन्द्रिय वह स्वयं थे, और थे वह सत्य प्रतिज्ञ।।
आत्म उपमा से प्राणिन् के, संग व्यवहार वह करते थे। सबके सुहृद् हितैषी वह, सदा समत्व में ही स्थित थे।।

ज्येष्ठ जनों की सेवा में, विनम्र सदा वह बने रहते। दासों के प्रति पिता समान, स्नेह से थे उनके भाव भरे।।
अपने समान लोगों से, स्नेह था उनका भाई समान। गुरु जनों को पूजते वह, भगवत्स्वरूप ही उनको जान।।
विद्या धन सौन्दर्य और, कुलीनता से सम्पन्न वह थे। फिर भी मान गुमान से, वह सदा ही अछूते रहे।।

बड़े बड़े दु:ख आने पर, तनिक भी वह न घबराते। कोई व्यसन उनको नहीं, बान्ध आसक्ति में पाते।।
लोक परलोक की बातें तो, बहुत सुनी और देखी थीं। किन्तु असत्यता और निसारता, इन सबकी थी जान ली।।
इन्द्रिय प्राण तन और मन, सब ही उनके वश में थे। जन्म तो हुआ असुर कुल में, पर आसुरी गुण वहाँ लेख न थे।।

ज्यों हरि के गुण अनन्त हैं, नहीं प्रह्लाद की गुण सीमा। महात्मन् ने सदा से ही, उनका वर्णन है कीना।।
उनके गुणों को ही सदा, महात्मा जन ने अपनाया। फिर भी वा गुण का सार तो, ज्यों का त्यों है बना हुआ।।

यूं तो देवता गण उनके, हैं जन्म से शत्रु ही। फिर भी भक्तों के चरित, श्रवण को जब सभा होती।।
प्रह्लाद समान कह भक्तों को, उनका सम्मान वह करते हैं। इस विधि उनकी महिमा का, बखान देव भी करते हैं।।
फिर आप तो हैं अजात शत्रु, भगवद्भक्त हे धर्मराज। उनका आदर करेंगे आप, नहीं इसमें तनिक सन्देह आज।।

उनकी महिमा गान को, बहु अन्य गुणों का क्या कहना। केवल एक ही गुण उनका, है सर्वश्रेष्ठ उनका गहना।।
भगवान कृष्ण के चरणों में, स्वभाविक जन्मजात प्रेम। उनकी महिमा के प्राकट्य को, पर्याप्त है उनका परम प्रेम।।

बचपन से ही क्रीड़ा को छोड़, प्रभु ध्यान में वह लग जाते थे। अपनी सुध बुध भूल करी, जड़वत् तन्मय हो जाते थे।।

श्री हरि कृपा रूपी ग्राह ने, था उनके मन को ग्रस लिया। जगत् की सुध बुध नहीं री, न ही उन्हें अपना ध्यान था।।
वह तो निरन्तर प्रभु के ही, आलिंगन में बद्ध रहते थे। उनकी गोद में बैठे हुए, यह अनुभव करते रहते थे।।
सोते जागते खाते पीते, चलते फिरते बातें करते। काज कर्म तो सब होते, पर इनसे वह अनभिज्ञ थे।।

प्रभु मेरे अदृश्य हुए, कभी मन इस भाव में खो जाता। इस भाव में निमग्न मन, रुदन भी था करता जाता।।
कभी सामने उनको पा कर, आनन्द अतिरेक से भर जाते। कभी खुलकर हंसने लगते वह, कभी उनके ध्यान में खो जाते।।
उनके ध्यान माधुर्य से जब, हृदय परिपूर्ण हो जाता। सरस स्वर का रूप धरी, वह गान कण्ठ से बह जाता।।

कभी उत्कण्ठित होकर के, वह उच्च स्वर से चिल्लाते थे। लोकलाज त्यज कर कभी, नृत्य भी करते जाते थे।।
कभी उनकी लीलाओं के, चिन्तन में इस विधि खो जाते । नहीं अपनी याद उन्हें रहती, उनकी ही लीला किये जाते।।
कोमल स्पर्श कभी प्रभु का पा, आनन्द मग्न वह हो जाते। अति शान्त और मौन ही, बाहर से वह दर्शाते।।
रोम रोम उस पल उनके, रोमांचित ही थे हो जाते। अधखुले नेत्र प्रेम पूर्ण, अश्रुजल से ही भर जाते।।

श्री कृष्ण के चरणारविन्द में, यह भक्ति हो प्राप्त तभी। अकिंचन् और भगवद्प्रेमी, महात्मन् का संग मिले जभी।।
इसके द्वारा स्वयं तो, रहते थे नित्य आनन्द मग्न। कुसंग से जो थे दीन हीन, उनको भी शान्ति देते अनन्त।।
प्रह्लाद प्रभु के परम प्रेमी, और थे परम भाग्यवान्। हे धर्मराज वह तो थे, उच्च कोटि के महात्मा जान।।
ऐसे साधु पुत्र को भी, हिरण्यकशिपु न सह सका। अपराधी उसे बता करी, अनिष्ट वह उसका करने लगा।।
युधिष्ठिर बोले,
सुव्रत आप हैं देवर्षे, मैं आपसे जानना चाहता हूं। क्यों पुत्र से द्रोह किया उसने, मैं यह समझ न पाता हूं।।
शुद्ध हृदय महात्मा, थे श्री प्रह्लाद जी। पिता होकर भी हिरण्यकशिपु, ने क्यों उनसे द्रोह किया?
पिता का तो स्वभावित ही, पुत्र से प्रेम बना रहता। यदि पुत्र विरोधी काज करे, तो उसको है वह डांटता।।
पर पुत्र की शिक्षा अर्थ ही, वह यह सब कुछ करता है। शत्रु की भाँति वैर विरोध, पिता कभी नहीं करता है।।

फिर प्रह्लाद तो थे अनुकूल, शुद्ध हृदय और गुरु सेवी। भगवद्भावी अस पुत्र से, ईर्ष्या किसे है हो सकती?
सर्वज्ञ आप हैं देवर्षे, अति कौतूहल मन में जगा। द्वेष के कारण पिता ने ही, क्यों पुत्र का वध करना चाहा?
कृपा करके आप प्रभु, जिज्ञासा शान्त यह कीजिए। प्रश्न आपसे जो किया, उत्तर उसका दीजिए।।
नारद बोले,
पुरोहित अपना बनाया था, गुरु शुक्राचार्य को दैत्यों ने। श्री शुक्राचार्य पिता थे, शण्ड अमर्क द्वौ पुत्रों के।।
हिरण्यकशिपु द्वारा प्रेषित, नीति निपुण प्रह्लाद को। और दैत्यों के पठन योग्य, अन्य सभी बालकों को।।
राजनीति और अर्थनीति, आदि के पाठ पढ़ाते थे। राज महल के पास ही, दोनों गुरु पुत्र वह रहते थे।।

गुरु का पठाया पाठ तो, श्री प्रह्लाद सुन लेते थे। गुरु चरण में ज्यों का त्यों, पुन: उसे धर देते थे।।
किन्तु अन्तरात्मा से, उचित नहीं उसे माने थे। मूल था उसका भेद भाव, झूठा आग्रह उसे माने थे।।
निज पुत्र को असुर ने, बड़े प्रेम से इक दिन गोद लिया। और फिर उसने हे राजन्, पुत्र से यह प्रश्न किया।।
कहो पुत्र तुम कहो सही, कौन बात तुम्हें भली लगे। पाठ गुरु जो पढ़ाते हैं, मन भावन तुझको क्या लगे?

प्रह्लाद बोला,
इस जगत् के प्राणी पिताश्री, मैं मेरे में पड़े रहें। इस मिथ्या भाव में पड़कर वह, सदा अति उद्विग्न रहें।।
ऐसे प्राणियों के लिये, मैं तो उचित यही जाने हूँ। निज अध: पतन के मूल को, त्यजना चाहिये यह माने हूँ।।
अन्धकूप जो घास से, पूर्ण आवृत्त हो गया। उसपे चरण के पड़ते ही, जीव ज्यों पतन को पायेगा।।
उसी विध पतन का कारण गृह, उसको छोड़ वन में जायें। श्री हरि की शरण को प्राप्त हो, परम शान्ति ही वे पायें।।

नारद बोले,
श्री प्रह्लाद के मुख से जब, शत्रु की श्लाघा सुनी। उच्च स्वर से हंसकर के, असुर ने फिर यह बात कही।।
किसी अन्य के बहकावे से, शिशु बुद्धि प्राय: बिगड़ जाये। इसी विधि वह सत्य से, विभ्रान्त ही फिर हो जाये।।
ऐसा लगे गुरु के घर में, विष्णु के पक्षपाती रहें। भेस बदल कर ब्राह्मण वह, राजगुरु के घर में घुसे।।
भली भाँति सतर्कता से, बालक की देख रेख अब हो। विपरीत पक्ष की शिक्षा से, न भ्रमित करे कोई बुद्धि को।।
दैत्यों ने जब प्रह्लाद को, गुरु के घर पहुँचा दिया। पुरोहितों ने पुचकार कर, मधु वाणी में उससें पूछा।।

पुरोहित बोले,
कल्याण हो वत्स तुम्हारा सदा, ठीक ठीक तुम बतलाना। भय वश तुम हे तात सुनो, नहीं झूठे वचन कहे जाना।।
कहो कहो हे पुत्र तुम, विपरीत गति तेरी कैसे हुई? अन्य किसी बालक की तो, बुद्धि ऐसी नहीं भई।।

हे राजसुत बताओ हमें, हम गुरुजन जानना चाहते हैं। क्या सचमुच किसी ने बहकाया, हे पुत्र समझ न पाते हैं।।
या स्वत: ही तेरी बुद्धि, ऐसी वत्स है हो गई? राजा के विपरीत ही, बात यह तुमने कैसे करी?

प्रह्लाद बोले,
जिन जीवों की बुद्धि यह, मोह ग्रसित है हो रही। प्रभु की माया के कारण, झूठे आग्रह में है पड़ी।।
यह अपना और पराया यह, इस भेद भाव में ही रहे। उन मायापति श्री हरि के, चरणों में नमन ही मेरा भए।।
जब कृपा करें वह हरि स्वयं, तो पाश्विक बुद्धि नष्ट हो। मनुष्यों में विवेक बुद्धि, का उदय तब ही तो हो।।
इस पशु बुद्धि के कारण ही, भेद भाव सब होता है। यह मैं हूँ मुझसे भिन्न है यह, मिथ्या भाव यह होता है।।

वही परमात्म है आत्मा, अज्ञानी भेद दर्शन करें। अपना पराया कहकर के, उसी का दर्शन किया करें।।
उनका यह अज्ञान भी, उचित ही है उनके लिये। क्योंकि बहुत ही कठिन है, सत्त्व तत्त्व को जानना रे।।
ब्रह्मा आदि वेदज्ञ भी सब, मोहित इस विषय में रहते हैं। कारण वही परमात्म है, जिसे बुद्धि नाश आप कहते हैं।।

चुम्बक के पास लोहा ज्यों, स्वत: ही खिंचकर आता है। मम चित्त श्री चक्रपाणि के, वशीभूत हुआ रहता है।।
उनकी स्वच्छन्द इच्छा से ही, संसार से मन मेरा दूर हुआ। और उन्हीं की ओर यह, बरबस खिंचा है जा रहा।।
परम ज्ञानी प्रह्लाद जी ने, निज गुरु से यह वचन कहे। इतना कहकर श्री प्रह्लाद, मौन ही फिर हो गए।।

पुरोहित तो थे पराधीन, और राजा के सेवक थे। राजपुत्र की बात सुनी, वह तो अति भयभीत हुए।।
क्रोध से प्रह्लाद को, ताड़ित ही उन्होंने किया। कुपित होई मौन बालक को, फिर उसने यह वचन कहा।।

पुरोहित बोले,
अरे कोई जाकर जरा, मेरा बेंत तो ले आओ। कलंकित ही यह कर रहा, आज हमारी कीर्ति को।।
कुल के इस अंगार को, वश में करना ही होगा। चौथा उपाय दण्ड ही, इसके लिये उचित होगा।।

दैत्य वंश के चन्दन वन में, कहां से यह बबूल आया। इस वन को काट गिराने में, कुल्हाड़ा रूप जो बन आया।।
उस विष्णु का ही इसने, देखो आज है गुण गाया। निज कुल का द्रोही जो है, उसका ही सहायक बन आया।।
नारद बोले,
विविध विधि से इस भाँति, गुरु ने प्रह्लाद को धमकाया। डांट डपट कभी उसकी करी, कभी उसको प्रेम से समझाया।।
अर्थ धर्म और काम की, शिक्षा उसको देने लगे। असुर कुल अनुकूल ही वह, शिक्षा दीक्षा उसे देने लगे।।

कुछ समय जब बीत गया, गुरु ने तब यह जान लिया। साम दाम दण्ड भेद, प्रह्लाद सब पहचान गया।।
तब उनकी जननी के पास, गुरुदेव उन्हें ले गए। माता ने भी लाड़ किया, स्नानादि से स्वच्छ किए।।
नव वस्त्राभूषण से सजा, पिता के पास उसे ले गए। शिक्षा पूर्ण हुई उसकी, तत्पश्चात् यह कहने लगे।।

श्री प्रह्लाद निज पिता के, चरणों में जा लुण्ठित हुए। आशीर्वाद उनको देकर, पिता ने कण्ठ लगा लिए।।
दैत्यराज का हृदय तब, आनन्द से ही भर आया। पुत्र को गले लगाकर के, मन उनका अति हर्षाया।।
प्रसन्न वदन प्रह्लाद को, अपनी गोद में बिठलाया। बार बार निज पुत्र के, सिर को सूंघ कर सहलाया।।
नेत्रों से प्रेमाश्रु गिर, प्रह्लाद का तन नहलाने लगे। तत्पश्चात् निज पुत्र से, फिर राजा ने यह प्रश्न किए।।

हिरण्यकश्यपु बोले,
चिरंजीवी पुत्र बहुत दिनों, गुरु से शिक्षा तूने पाई। कोई अच्छी बात हमें भी कहो, जो समझ तुम्हारे है आई।।
हे पिताश्री प्रभु विष्णु की, भक्ति के हैं कहें नौ भेद। प्रभु गुण लीला नाम के, श्रवण कीर्तन सिमरन् की टेक।।
उनके चरण कमल सेवन, पूजा अर्चा वन्दन और दास्य। आत्म निवेदन चरणों में, और भाव हो उनसे साख्य।।
यदि उनके चरण में अर्पित हो, नवधा यह भक्ति करी जाये। है सर्वोत्तम अध्ययन यही, मन मेरा यह माने जये।।

नारद बोले,
प्रह्लाद के मुख से वचन यह सुन, क्रोध उसका भड़क गया। हिरण्यकशिपु का होंठ भी, उसे क्रोध से फड़क गया।।
गुरु पुत्र को फिर उसने, रोष यूँ अपना दिखलाया। अति क्रूर उस दैत्य ने, इस विधि गुरु को फटकारा।।
हिरण्यकश्यपु बोले,
अरे नीच ब्राह्मण यह कैसी, धृष्टता तूने है करी? कैसी निस्सार शिक्षा इसे दी, घोर अवज्ञा मेरी करी।।
निश्चित ही मेरे शत्रु के, हे ब्राह्मण तू आश्रित है। इस कारण इस शिक्षण का, किया यह तूने साहस है।।

नहीं कमी संसार में, तेरे जैसे लोगों की। मित्र वेश धर कर के जिन, शत्रु की है साथ दी।।
किन्तु रहस्य यह उनका, शीघ्र ही खुल जाता है। ज्यों छिपकर जो पाप करें, उनका पाप सामने आता है।।
रोग रूप में प्रकट होई, पाप उभर वह आता है। गुप्त जो रखना चाहते थे, वह खुलकर सामने आता है।।

गुरुपुत्र बोले,
हे इन्द्र के शत्रु आपका, पुत्र यह जो भी कह रहा। वह मेरे या किसी अन्य के, बहकावे से नहीं कह रहा।।
यह तो जन्मजात ही, स्वाभाविक इसकी है मति। हे राजन् आप क्रुद्ध न हों, नहीं व्यर्थ दोष के हम भागी।।
नारद बोले,
गुरु ने जब उत्तर यह दिया, तब दैत्यराज ने पुन: पूछा। अरे दुर्बुद्धि अहितकर यह, ज्ञान तुझे किसने दिया?
यदि गुरुमुख से यह नहीं मिला, तो बोल है इसका स्रोत कौन। अरे दुष्ट कहो तू नाम मुझे, विपरीत ज्ञान दे तुझको जौन।।
प्रह्लाद बोले,
हे पिताश्री सांसारिक जन तो, पिसे हुए को पुन: पीसें। पुन: पुन: भोगों में पड़, चबाये हुए को चबा हैं रहें।।
इन्द्रियां वश में नहीं उनकी वह भुक्त विषय पुन: पुन: भोगें। इस भोग के हेतु वह, संसार नरक में जाय पड़ें।।
गृहासक्त अस पुरुष जो, न स्वत: ही बुद्धि उनकी जो। न ही किसी के सिखाने से, या निज समान जन के संग से।।
श्री कृष्ण के चरणों में, बुद्धि उनकी नहीं लगे। फिर हे पितु तुझ बालक को, ऐसा ज्ञान कौन दे सके?

जो इन्द्रिय गोचर बाह्य विषयों, को ही परम श्रेष्ठ मानें। मूढ़ वह अन्धों की भाँति, अन्धों का ही अनुसरण करें।।
गहन गढ़े में गिरने को, तीव्र गति से चले जायें। वेदवाणी रूपा रज्जू से, काम्य कर्म में बन्ध जायें।।
निज स्वार्थ और परमार्थ को, वह जन नहीं पहचानें। प्रभु विष्णु ही हैं सत्य सार, वह रहस्य यह, न जानें।।
उनकी प्राप्ति से ही सब, पुरुषार्थ प्राप्त हो सकते हैं। वह अज्ञ इस सत्य से, अनभिज्ञ ही सदा रहते हैं।।

जिनकी बुद्धि श्री हरि के, चरणों का स्पर्श कर लेती है। जन्म मृत्यु रूपा अनिष्ट, उनका वह नष्ट कर देती है।।
अकिंचन और भगवत्प्रेमी, महात्मन् की पावन चरण रज। नहीं स्नान उसमें करते, ऐसे हैं जो मेढ़ अज्ञ।।
काम्य कर्म का पूर्ण ही, सेवन करती उनकी बुद्धि। भगवच्चरण का स्पर्श वह, कदापि नहीं है कर सकती।।
नारद बोले,
इतना कहकर श्री प्रह्लाद, मौन ही पुन: हो गए। हिरण्यकशिपु क्रोध में, अन्धे ही थे हो रहे।।
अपनी गोद से उठकर के, भूमि पर उसे पटक दिया। निज पुत्र के ही मुख से, शत्रु गुणगान वह सुन न सका।।
प्रह्लाद की इन बातों को, वह असुर न सह सका। रोष के मारे नेत्रों का, रंग भी उसका लाल हुआ।।
दैत्यों को उसने आज्ञा दी, इसको बाहर ही ले जाओ। यह तो है मृत्यु योग्य ही, तुरन्त इसे मार डालो।।

देखो तो सही इसकी मति, कैसी भ्रष्ट है हो रही। जिसने चाचा का हनन किया, उसकी ही स्तुति है गा रही।।
निज सुहृद् स्वजन को छोड़, यह शत्रु श्लाघा कर है रहा। यह नीच दास समान ही, विष्णु पूजा में है लगा।।
हो न हो इस रूप में, मेरे भाई का हन्ता ही आया। वह छलिया विष्णु ही पुन:, मेरे पुत्र का रूप है धर आया।।

अब यह विश्वास के योग्य नहीं, यह तो है कृतघ्न बड़ा। पांच वर्ष की आयु में, माता पिता का स्नेह त्यजा।।
ऐसा बालक विष्णु का भी, क्या भला कर पायेगा? जो मात पिता का हो न सका, क्या उससे नाता निभाएगा?

यदि कोई अन्य जीव भी, औषधि सम उपचार करे। गर भलाई हमारी करे, तो है वह भी इक पुत्र ही रे।।
किन्तु यदि अपना ही पुत्र, अहित ही अपना करने लगे। तो जान लो रोग समान ही, वह तो है निज शत्रु रे।।

निज तन के ही किसी अंग से, गर सारे तन की हानि हो। तो उचित ही यह उपचार हो, उस अंग को ही काट दो।।
क्योंकि उसके कट जाने से, बाकी तन सुख से जी सके। पूर्ण तन की सुरक्षा ही, यही विधि है उचित कहें।।

स्वजन का वेश यह धर करी, मेरा शत्रु ही कोई आया है। मेरे सामने ही मेरे शत्रु के, गुणगान का साहस पाया है।।
ज्यों भोग की लोभी इन्द्रियाँ, अनिष्ट किसी योगी का करें। वैसे ही यह बालक मेरे, अहितकर मेरा जान लें।।
अब जैसे कैसे भी हो, जल्द ही इसका हनन करें। खाते सोते बैठते, जिसे किसी उपाय से मार दें।।

हिरण्यकशिपु ने दैत्यों को, जब इस भाँति आज्ञा दी। तीखी दाढ़ें विकराल वदन, थे लाल केश मूंछें दाढ़ी।।
हाथों में त्रिशूल लिये, वह दैत्य यूं चिल्लाने लगे। मारो काटो इसे खत्म करो, ऐसा शोर मचाने लगे।।
इस सब हाहाकार में, प्रह्लाद मौन ही बैठे रहे। दैत्य मिली त्रिशूल से उसके, मर्मस्थल छेदे गए।।

श्री प्रह्लाद का चित्त तब, परमात्म में था टिका हुआ। सब शक्तियों के आधार हैं जो, सर्वात्म ब्रह्म में स्थित वह था।।
मन वाणी से हैं अगोचर जो, वह उनके ध्यान में बैठे थे। सब प्रहार उन दैत्यों के, उनपर निष्फल ही हो गए।।
ज्यों सारे उद्योग ही, भाग्यहीन के व्यर्थ होएं। उसी विधि सारे यत्न, दैत्यों के भी व्यर्थ हुए।।

जब शूलों की मार से, बालक तन छिन्न ही नहीं हुआ। दैत्यराज का मन तत्क्षण, शंका से ही भर गया।।
प्रह्लाद की हत्या के लिये, वह भी हठ पे अड़ गया। भाँति भाँति के उपाय वह, इसके लिये करने लगा।।
महा मत्त राजराजों से, उसको दलित फिर करवाया। अति विषधर सर्प लाकर, उनसे प्रह्लाद को डसवाया।।
पर्वत की चोटी से भी, उसको फिर नीचे गिरवाया। पुरोहितों से कृत्या राक्षसी, को भी उत्पन्न करवाया।।

शम्बासुर से अनेक भाँति, माया प्रयोग भी करवाया। अन्धःतम कोठरियों में, बन्द भी शिशु को करवाया।।
विष भी उसे पिला दिया, अन्न जल भी सब बन्द किया। इस विधि निज बालक की, हत्या का उसने यत्न किया।।

कभी बर्फ पे डाला उसे, कभी अग्नि में भी झोंक दिया। कभी आन्धी में छोड़ दिया, सागर में कभी डुबो दिया।।
पर्वतों के नीचे भी, प्रह्लाद को दबा दिया। किन्तु किसी उपाय से भी, वह बाल न बांका कर सका।।
निष्पाप प्रह्लाद की, हानि किंचित नहीं हुई। यह देखी हिरण्यकशिपु का, मन चिन्ता से ग्रसित हुआ।।
अपनी विवशता देख करी, असुर वह घबरा गया। पुत्र की हत्या के लिये, नहीं सफल कोई उपाय हुआ।।

तब वह दैत्य आन्तर में, इस विधि सोचने लगा। बहुत उपाय किये हनन के, बहुत बुरा भला भी इसे कहा।।
किन्तु मेरे द्रोह और दुर्व्यवहार, का प्रभाव नहीं कोई हुआ। बिना किसी अन्य सहायता के, निज प्रभाव से ही यह बचा।।

बालक होने पर भी यह, प्रह्लाद तो है अति बुद्धिमान्। मेरे साथ ही सदा निःशंक, भाव ही रहता सत्य जान।।
कोई सामर्थ तो इसमें भी, है देव ही बनी हुई। इस कारण कोई प्रहार मेरा, विचलित इसे न कर सकी।।
निज पिता की करनी देखकर, ज्यों शुनःशेप विरोधी हुआ। वैसे ही मम अपकारों को, यह भी कभी न भूलेगा।।

न तो इसे कोई भय ही है, न ही मृत्यु इसकी हो। अनन्त ही इसकी शक्ति है, उसकी भी कोई थाह न हो।।
सम्भव है इसके विरोध में ही, मेरी मृत्यु ही निहित हो। पर यह भी तो सम्भव है, ऐसा कदापि नहीं भी हो।।

ऐसे सोच विचार में, चेहरा कुछ उतर गया। शण्ड और अमर्क ने जब, मलिन मुख उसका देखा।।
एकान्त में फिर जाकर के, उन्होंने उससे बात कही। शुक्राचार्य के पुत्रों ने, सान्त्वना उसको इस विधि दी।।
गुरुपुत्र बोले,
हे स्वामी आपने एकाकी, तीनों लोक हैं विजय किये। भ्रुवें जो आपकी टेढ़ी हों, तो लोकपाल भी काम्प उठें।।
हम तो समझें इसमें भी, नहीं चिन्ता योग्य है बात कोई। बच्चों के खिलवाड़ में, यह भली बुरी क्यों सोच पड़ी?
जब तक हमारे पिताश्री, गुरु शुक्राचार्य न आ जायें। कहीं भयभीत हो भागे न, इसे वरुण पाश में ही बान्धें।।
प्राय: अवस्था बढ़ने से, और गुरु जनों की सेवा से। देखा गया है बुद्धि में, सुधार भी अक्सर हो जायें।।
नारद बोले,
ठीक है कह हिरण्यकशिपु ने, गुरु पुत्रों की सम्मत्ति मानी। वही धर्म इसे सिखलायें, पालन जिसका करें नरपति।।
उसको लेकर ब्राह्मण वह पुन:, पाठशाला में चले गए। क्रमश: धर्म अर्थ और काम, की शिक्षा उसे देने लगे।।
अति विनम्र सेवक बनकर, प्रह्लाद वहां पे रहने लगे। इस विधि हे धर्म राज, शिक्षा ग्रहण वह करने लगे।।

किन्तु गुरुओं की वह शिक्षा, प्रह्लाद के मन को न भाई। धर्म अर्थ और काम में ही, सीमित थी वह शिक्षा सारी।।
यह शिक्षा तो है उनके लिये, जो रोग द्वेष द्वन्द्वों में पड़ें। और विषय भोगों के रस, में ही जो तल्लीन रहें।।
इक दिन गृहस्थी के काज से, गुरु कहीं बाहर गए। छुट्टी पाकर समवयस्क बाल, खेल कूद में लग गए।।
प्रह्लाद को पुकारा उन, वह भी आकर उन संग खेले। पर प्रह्लाद तो उन सब से, दूर ही थे खड़े रहे।।

परम ज्ञानी थे श्री प्रल्हाद, जब उसका प्रेम उन्होंने देखा। अति मधुर वाणी से फिर, उन्हें अपने पास बुला लिया।।
उनके जन्म मरण की गति, भी नहीं थी छिपी उनसे। कृपा करी वह हंसकर के, उपदेश उन्हें करने लगे।।

हे राजन् वे सब बालक थे, उनका आन्तर तो शुद्ध था। रागी द्वेषी विषय भोगी, पुरुषों का जो उपदेश सुना।।
और उनकी चेष्टाओं से, थी बुद्धि दूषित नहीं हुई। इस कारण मान प्रह्लाद का कर, खेल कूद सब छोड़ दी।।
प्रह्लाद को घेर के वे बालक, चहुँ और उनके बैठे। इक टक दृष्टि टिकाकर के, उपदेश उसका सुनने लगे।।
प्रभु प्रेमी भक्त का हिय, करुणा मैत्री से था भरा। अपने प्रेमी सखा गण को, उसने फिर यह वचन कहा।।
प्रह्लाद बोले,
हे सखे इस संसार में, अति दुर्लभ है मानव जीवन। अविनाशी प्रभु की प्राप्ति का, बन सके यह ही साधन।।
यह भी तो है ज्ञान नहीं, किस पल इसका अन्त हो। नहीं युवा या वृद्धावस्था के, आश्रित रहे बुद्धिमान जो।।
बचपन से ही श्री हरि की, प्राप्ति के सब साधनों का। विवेकशील पुरुष तो, अनुष्ठान है कर लेता।।

मानव जीवन पाकर के, जिसने हरि चरण को प्राप्त किया। वास्तव में तो उसने ही, मानव जीवन यह सफल किया।।
क्योंकि श्री हरि ही सबके, प्रिय सुहृद् और स्वामी हैं। वही प्रियतम आत्मा है सबके, वह प्रभु तो अन्तर्यामी हैं।।
इन्द्रियों से जिन विषयों का, उपभोग मन को भाता है। जिस भी योनि में चाहे रहें, वह सब वहाँ भोगा जाता है।।
प्रारब्ध के अनुकूल ही, वह सब स्वत: मिलता जाता है। उसी विधि बिना किसी यत्न, दु:ख भी तो मिल जाता है।।

सो सांसारिक सुख हेतु, उद्योग नहीं करना चाहिए। जो वस्तु स्वत: ही मिल जाये, क्यों परिश्रम व्यर्थ किया जाये?

आयु और निज शक्ति को, नहीं इसमें गंवाना चाहिये। जो इन सबकी प्राप्ति में, ही नित्य उलझे रहें।।
श्री हरि के परम कल्याणमय, चरण कमल से दूर रहें। सब दु:खहारी चरणारविन्द, वह उनके प्राप्त न कर सकें।।

विविध भाँति का भय हमें, सदा सताता है रहता। यह तन जिसे भगवत्प्राप्ति का, सर्वोच्च साधन है कहा।।
जब तक रोग और शोक से, यह ग्रसित नहीं हो जाता। मृत्यु के मुख में ही, जब तक यह नहीं चला जाता।।
तब तक बुद्धिमान् जीव, निज कल्याण की सोचा करे। इस तन के रहते रहते ही, आत्म कल्याण की साध ले।।

जीव की पूर्ण आयु, शास्त्रों ने कही है सौ वर्ष। इन्द्रियों को वश जिन नहीं किया, अर्धायु बीती उनकी व्यर्थ।।
रात्रि में वह घोर तमोगुण, के वश में हो जाते हैं। अज्ञान ग्रसित होकर सोए, वह आधी आयु बिताते हैं।।

शैशव में अपने हित और, अहित का ज्ञान ही नहीं रहे। कुमार अवस्था में पहुंचे, खेल कूद में व्यस्त रहें।।
बीस वर्ष तक का समय, न जाने कहाँ खो जाता है। वृद्धावस्था ने जब ग्रसा, जीव न कुछ कर पाता है।।
जीवन के अन्तिम बीस वर्ष, हो शक्तिहीन वह पड़ा रहे। गर कुछ करना भी कभी चाहे, तो शक्ति नहीं उनका साथ दे।।

मध्य की थोड़ी सी आयु, जो भी शेष रह जाती है। दुष्पूरेण कामना के, वशीभूत हो बीत वह जाती है।।
मोह भी बलात् ही यह, उस काल में पकड़े रहता है। घर द्वार की आसक्ति में, उलझा जीव वह रहता है।।
कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का, नहीं ज्ञान उसे कुछ भी रहता। इस विधि जो आयु बचे, जीव व्यर्थ उसे है खोता।।

गृहस्थी में आसक्त जो, माया ममता की फांसी बन्धा। इन्द्रियां जिसकी वश में नहीं, कौन पुरुष ऐसा होगा?
जो अपने को इस बन्धन से, मुक्त कभी कर पायेगा? इस फांसी से छुटने का, साहस भी जो कर पायेगा?
स्तेन सेवक और वणिक्, जिसे प्राणों से भी प्रिय मानें। निज प्राण की भी बाजी लगा, संग्रह जिसका वह नित्य करें।।
प्राणों से भी सदा अधिक, वांछनीय जो है उनके। उस धन की तृष्णा से भला, मुक्ति को जन पा सके?

निज प्रियतमा पत्नी के संग, एकान्त सहवास में सुखी जो हो। प्रेम भरी बातों और मधुर, सम्मत्ति पर न्यौछावर हो।।
भाई बन्धु और मित्र जन, के स्नेह पाश में जो बन्धा। नन्हें शिशुओं की तुतलाती, भाषा पे दिल जिसका आया।।
इन सबके मोह को भला, छोड़ वह कैसे पायेगा? यह सब बन्धन जो बान्धें उसे, मुक्ति वह कैसे पायेगा?

ससुराल गई निज पुत्रियों को, याद सदा जो करता है। पुत्रों भाइयों भगिनियों के, स्नेह पाश में सदा जो बन्धता है।।
दीन अवस्था को हैं प्राप्त, माता पिता जो हो चुके। और अपने घर अति सुन्दर, सामग्रियों से जो हैं सजे।।
कुल परम्परा अनुकूल, आजीविका के साधन जो बने। पशु और सेवकों के, सिमरन् में जो रमा रहे।।
इन सबको किस भाँति, छोड़ वह नर कभी पायेगा? गर कभी वह छुटना भी चाहे, तो मुक्त नहीं हो पायेगा।।

जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के, सुख को ही सर्वोत्तम माने। नित्य अतृप्त भोग वासना, के ही वश में निज को जाने।।
लोभवश जो कर्मन् में, ही निरन्तर लगा रहे। रेशम के कीड़े समान, निज बन्धन दृढ़ करता जाये।।
असीम जिसका मोह यह, नित्य ही बढ़ता जाता है। क्योंकर विरक्ति पाये वह, नहीं त्याग इसे वह पाता है।।

है मेरा कुटुम्ब यह, इस भाव में रह वह जाता है। उसीके पालन पोषण में, अनमोल जन्म यह गंवाता है।।

इनमें ही खोया वह जीव, यह भी जान न पाता है। वास्तविक उद्देश्य मेरे जीवन का, नष्ट हुआ ही जाता है।।
अनन्त है प्रमाद यह, इसकी सीमा तो है ही नहीं। गर तनिक सुख भी मिलता कहीं, तो भी और ही बात थी।।
किन्तु जहाँ भी जाये वह, नित्य सन्तप्त ही रहता है। दैहिक दैविक और भौतिक, तापों की अग्नि में जलता है।।
फिर भी कैसी विडम्बना यह, वैराग्य का उदय वहाँ न हो। परिवार की ममता में ग्रसित, असावधान ही सदा वह हो।।
धन के चिन्तन में ही सदा, मन तल्लीन उसका रहे। अपनी कामना को कभी, वश में नहीं वह कर सके।।
दूजे का धन चुराने के, दोषों को भी वह जाने। लौकिक पारलौकिक हानि जो, उसको भी वह पहचाने।।
फिर भी इन्द्रिय लोलुप वह, रोक ही निज को न पाये। दूजे का धन चोरी करने, से भी न वह सकुचाये।।

हे बन्धुजन जो इस भाँति, परिवार के पालन में लगे। भगवद्भक्ति के लिये उसे, किंचित् अवकाश ही नहीं मिले।।
विद्वान भी हो गर ऐसा जन, प्रभु को वह न पा सके। अपने पराये का वहाँ, भेद भाव सदा बना रहे।।
अज्ञानियों के समान ही, तम प्रधान गति उनकी हो। आसक्त जीव की जान ले, मुक्ति तो सम्भव न हो।।

कामिनियों के हाथों का, जो क्रीड़ा मृग है बन गया। सन्तान रूप बेड़ियों से, जिस अपने पांव को है बान्धा।।
ऐसा दीन चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो वास उसका। किसी भाँति भी अपना, उद्धार नहीं वह कर सकता।।

इसलिये हे बन्धुजन, निज कल्याण की अब सोचो। विषयासक्त इन दैत्यों का, संग दूर से ही छोड़ो।।
आदिदेव श्री नारायण, की शरण तुम जाय पड़ो। उनकी शरण को प्राप्त कर, ही तो मुक्ति सम्भव हो।।
जिन जन ने संसार की, आसक्ति सारी छोड़ दी। वही हैं प्रिय महात्मन् के, वे ही तो पायें परम गति।।

श्री हरि के रिझाव अर्थ, नहीं कठिन परिश्रम चाहिये। क्योंकि वे तो स्वयं ही, आत्म बन सबमें विराज रहे।।
सर्वत्र सब जन जन में ही, वह सत्ता रूप में व्याप्त हैं। वह तो स्वयं ही सिद्ध हैं, और स्वत: ही सबको प्राप्त हैं।।

ब्रह्मा से ले तृण पर्यन्त, छोटे बड़े सब प्राणियों में। पंचमहाभूतों में वह, और उनसे बनी सब वस्तुओं में।।
सूक्ष्म तन्मात्राओं में, त्रैगुण और महत्तत्त्व में। या गुणों की साम्य अवस्था में, जिसको हैं प्रकृति कहें।।
इक अविनाशी परम तत्त्व, ही तो विराजमान् हैं। सब सौन्दर्य माधुर्य और, ऐश्वर्यों की वह खान हैं।।

वह स्वयं ही हैं द्रष्टा बने, और दृश्य जगत् भी आप हैं। अनिर्वचनीय विकल्प रहित, सर्वान्तर्यामी आप हैं।।
फिर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्त व्यापक रूप में। अनिर्वचनीय होकर भी, उनका निर्वचन किया जाये।।
वस्तुत: तो कोई भी, संकल्प उनमें न होए। सब कुछ ही वह आप बनें, पर सबसे ही परे रहें।।

हैं एकमात्र अनुभव गम्य, आनन्द स्वरूप परमेश्वर वे। उनकी माया के द्वारा ही, सम्पूर्ण गुणमय सृष्टि भए।।
माया ने ही तो उनके, ऐश्वर्य को आवृत्त कर दिया। जिस पल निवृत्ति इसकी हो, है दर्शन उनका हो जाता।।
इस कारण निज दैत्य वृत्ति, आसुरी सम्पद् सब त्याग करो। प्रेम दया निज हृदय में धर, सब जीवों का कल्याण करो।।
य ही साधन हैं प्रिय जनो, श्री हरि को जो प्रसन्न करें। इनका पालन जीवन में करें, तो ही प्राप्त उन्हें हो सकें।।

आदि नारायण श्री हरि, जिस पल मुदित ही हो जायें। कौनसी ऐसी वस्तु है, जीव को मिल जो न पाये?
धर्म अर्थ आदि यह सब, लोक परलोक में प्राप्य जो। गुण बधित वह तो स्वत:, बिन प्रयास के प्राप्त हों।।

जब श्री हरि के चरणामृत, के सेवन में हम लगें। उनके नाम और गुणों के, कीर्तन में ही व्यस्त रहें।।
तो भला फिर मोक्ष की, कामना भी कोई कहाँ करे? अपना तो हर स्वास स्वास, उनके नाम का जपन करे।।

धर्म अर्थ और काम का, है शास्त्रों में वर्णन किया। आत्मविद्या कर्म न्याय, वेदों में प्रतिपादन किया।।
दण्डनीति और जीविका के, भी भिन्न साधन कहे। यह सब भी तो वेदों के, ही तो हैं प्रतिपाद्य विषय।।
यदि यह सब परम प्रियतम, श्री हरि की शरण में ले जायें। हो आत्म समर्पण चरणों में, यदि सम्भव इसे वह कर पायें।।
तब ही सार्थक मानूं इन्हें, अन्यथा सभी निरर्थक हैं। गर हरि शरण में बिठाये न, तो ज्ञान भी सब निरर्थक है।।

अति दुर्लभ है जान लो, यह निर्मल ज्ञान जो तुम्हें कहा। पूर्व में नर नारायण ने, नारद को था उपदेश दिया।।
यह ज्ञान उन सब को ही, नित्य प्राप्त है हो सकता। अनन्य अकिंचन् प्रभु भक्तों, का जिन्होंने आश्रय लिया।।
उनके चरण की धूलि से, जिन्होंने निज तन को नहलाया। इस परम ज्ञान का सार तो, सुलभ ही उनको बन आया।।

विज्ञान सहित यह ज्ञान ही, विशुद्ध भागवत धर्म है। हे सखे तुम जान लो, यह ही तो वास्तविक मर्म है।।
श्री हरि का दुर्लभ दर्शन, जिस नारद ने है किया। उन देवर्षि के मुख सों ही, था सर्वप्रथम यह ज्ञान सुना।।
दैत्य पुत्र बोले,
द्वौ गुरुपुत्रों को छोड़कर, किसी अन्य गुरु को न जानें। न ही देखा हमने कभी, किसी अन्य पे तुझको जाते हुए।।
हे प्रह्लाद यह दोनों ही, हम सबके गुरु और शासक है। ये ही ज्ञान दें हम सबको, सब ज्ञान के यही प्रकाशक हैं।।

इक तो अभी छोटी सी ही, अवस्था मित्र तुम्हारी है। और जन्म से ही लेकर, की रक्षण माँ ने तुम्हारी है।।
महात्मा नारद से मिलना, कहो कैसे तुम्हारा हो पाया? असंगत ही कुछ जान पड़े, यह वचन जो तुमने है कहा।।
हे प्रियवर इस विषय में, विश्वास यदि तू दिला सको। कोई ऐसी बात तुम कहो हमें, जिससे शंका हमारी दूर हो।।
नारद बोले,
जब दैत्य बालकों ने, हे धर्मराज यूं प्रश्न किया। प्रभु प्रेमी प्रह्लाद को, हृदय में मेरा स्मरन् हुआ।।
मीठी सी मुसकान से, मुखड़ा उसका खिल गया। मधुर भाषा में उनको, प्रह्लाद ने यह वचन कहा।।
प्रह्लाद बोले,
जब पिताश्री तपस्या को, मन्द्राचल पर्वत पर गए। इन्द्रादि ने तब दैत्यों से, युद्ध के उद्योग किए।।
ज्यों चींटियां मिलकर के, विषधर सर्प को चाट लें। सबको सताया दैत्य ने, उसे उसके पाप ही खा गए।।

दैत्य यूथपतियों को जब, भीषण उद्योग का पता लगा। देवों के बल की बात सुनी, उनका साहस जाता रहा।।
वह सामना उनका कर न सके, पराजित उनसे हो गए। स्त्री पुत्र मित्र गुरुजन, पशु महल भी सब छोड़े।।
और भी साजों सामान की, चिन्ता कोई नहीं करी। निज प्राण बचाव को जल्दी में, इधर उधर प्रस्थान करी।।

अपनी विजय की चाहना ले, देवगण जो आये थे। राजमहल में घुस करी, उसे लूटने वह लगे।।
राजमहल में महारानी, कयाधु थी मेरी माता। इन्द्र ने उन्हें भी न छोड़ा, अपना बन्दी लिया बना।।
भयभीत हुई माता मेरी, कुररी पक्षी सम रो थी रही। इन्द्र ने तो बलात् ही, उनकी थी अपहरण करी।।
दैववश ही देवर्षि, नारद उधर से आ निकले। और मेरी माता के उन, मार्ग में थे दर्शन किये।।

वह बोले हे देवराज, यह स्त्री तो है निरपराध। उचित नहीं अपहरण करी, इसको ले जाना महाभाग।।
इस सति साध्वी परस्त्री, का अपमान तुम नहीं करो। भला इसीमें तुम्हारा है, तुरन्त इसे तुम छोड़ दो।।
इन्द्र बोले,
देवद्रोही हिरण्यकशिपु का, वीर्य है इसके उदर में। देख रहा हूँ देवर्षि, अति प्रभावशाली वह भए।।
प्रसव पर्यन्त यह माता, मेरे यहां ही वास करे। बालक का जब जन्म हो, उसका हनन हम कर देंगे।।
तत्पश्चात् महारानी को, सादर छोड़ ही दूँगा मैं। निश्चिन्त आप हो देवर्षि, नहीं हानि कुछ भी करूँगा मैं।।
नारद बोले,
साक्षात् प्रभु का प्रेमी भक्त, है इसके गर्भ में पल रहा। परम सेवक अत्यन्त बली, निष्पाप महात्मा वह होगा।।
उसको मार गिराने की, सामर्थ नहीं तुममें देवेन्द्र। सम्मत्ति मानो तुम मेरी, कल्याण इसी में है तेरे इन्द्र।।
प्रह्लाद बोले,
देवर्षि की यह बात सुनी, इन्द्र ने उसका सम्मान किया। आदर सहित ही उसने, मेरी माता को छोड़ दिया।।
भगवद्भक्त है पल रहा, इस भाव से उस प्रदक्षिणा की। इस विध जननी सम्मान करी, अपने लोक की राह पकड़ी।।
तत्पश्चात् श्री नारद जी, माता को निज आश्रम लाये। समझा बुझाकर के उसके, मनो सन्ताप भी दूर किये।।
हे पुत्री जब तक तेरा पति, तपस्या करके न लौटे। इस आश्रम में है सुरक्षित तू, तब तक तू अब यहीं रहे।।

जो आज्ञा कहकर वह सती, उसी आश्रम में रहने लगी। देवर्षि नारद जी की, सुरक्षा में वही निर्भय थी।।
जब तक मेरे पिता श्री, तपस्या से नहीं लौट आये। तब तक वहीं पे वह रही, नहीं कोई कष्ट कभी उस पाये।।
गर्भस्थ मुझ शिशु का वह, निरन्तर मंगल चाहती थीं। निश्चित समय सन्तान उसके हो, गर्भवती वह चाहती थी।।
यही कामना हदय में धर, अति प्रेम और भक्ति से। श्री नारद की सेवा सुश्रूषा, में रहती थी निमग्न वे।।

परम दयालु सर्व सामर्थ, हैं देवर्षि श्री नारद जी। मेरी माता को उन्होने, भागवत धर्म की मर्म कही।।
साथ साथ विशुद्ध ज्ञान, का उनको उपदेश किया। उपदेश करन की बेला उन, मुझपर भी दृष्टि दी थी टिका।।
बहुत समय उसे बीत गया, मेरी माता तो थीं स्त्री। इस कारण उस ज्ञान की, स्मृति भी उनको नहीं रही।।
किन्तु देवर्षि की जो, विशेष कृपा थी मुझपे हुई। उसके कारण इस ज्ञान की, विस्मृति मुझको नहीं हुई।।

यदि मेरी इस बात पर, तुम बन्धु भी श्रद्धा रखो। तुमको भी वह ज्ञान सब, सहज में ही प्राप्त हो।।
क्योंकि है श्रद्धा ही इक, ऐसी परम साधन कही। स्त्री और बालों की बुद्धि, उससे शुद्ध हो मुझ जैसी।।

ज्यों ईश्वर रूपा काल की, प्रेरणा से ही सब कुछ हो। वृक्षों पे लगे फल ठहरें वहां, बढ़ें पकें क्षीण और नष्ट हों।।
त्यों ही जन्म अस्तित्व का भान, वृद्धि परिणाम क्षय और विनाश। इन छः विकारों का सदा, दर्शन तन में ही हो प्राप्त।।
आत्मा से तो इन सबका, कोई भी सम्बन्ध नहीं। यह तो तन के ही विकार हैं, आत्मा को कोई छुए नहीं।।

नित्य अविनाशी शुद्ध एक, विकार हीन आश्रय क्षेत्रज्ञ। स्वयं प्रकाश सबका कारण, व्यापक असंग अनावृत्त आत्म।।
यह द्वादश अति उत्कृष्ट, लक्षण कहे हैं आत्मा के। इनके द्वारा आत्मज्ञ, पुरुष को इतना चाहिए।।
तन आदि में अज्ञान जम, मैं मेरे का जो भाव रहे। इस भाव को मिथ्या जान, तत्काल ही इसे छोड़ दे।।

स्वर्ण की खानों में ज्यों, स्वर्ण हो पत्थर में मिला। स्वर्णकार जाने है विधि, दोनों को ही वह अलग करता।।
स्वर्ण को इस विध अलग कर, स्वर्ण लाभ वह कर लेता। त्यों ही अध्यात्म तत्त्व का, जो वास्तव में है वेत्ता।।
आत्म प्राप्ति के साधन का, आश्रय है वह सदा लेता। तन रूपा क्षेत्र में ही, ब्रह्म पद है साक्षात् करता।।

मूल प्रकृति महत्तत्त्व अहं, और पांच तन्मात्रायें। इन आठों तत्त्वों को ही, आचार्य गण प्रकृति कहें।।
सत्व रज और तमोगुण, यह तीनों उसके गुण कहे। दस इन्द्रियां पंचभूत इक मन, यह सोलह विकार कहे।।
इसको ही तो जान ले, शास्त्र सब हैं क्षेत्र कहें। इन सबमें इक पुरुष तत्त्व, ही तो सर्वव्याप्त रहे।।

इन सबका समुदाय ही, देह यह बन जाती है। स्थावर और जंगम यह, दो भाँति की कहलाती है।।
इसीमें अन्त:करण इन्द्रियां, अनात्म सब वस्तु रहें। न इति आत्म यह जानकर, इसमें आत्मा को ढूंढें।।
सर्वव्याप्त है आत्मा, पर सबसे वह है पृथक् रे। शुद्ध बुद्धि से शनै: शनै:, इस विधि उसको जान ले।।
जगत् उत्पत्ति और स्थिति, प्रलय पर भी विचार करे। न ही मन उद्विग्न यह हो, धैर्य युक्त बुद्धि रखे।।

जाग्रत स्वप्न सुशुप्ति हैं, तीनों बुद्धि की वृत्तियां। इन तीनों के आसरे, है अनुभव जिसका होता।।
सर्वातीत वही तो है, वह ही है सबका आत्मा। सबका साक्षी है वही, जिसे कहें परमात्मा।।
ज्यों गन्ध का आश्रय वायु है, गन्ध से वायु को जानें। यह कर्मजन्य परिवर्तनशील, अवस्था बुद्धि की जानें।।
इनके द्वारा ही इनमें व्याप्त, इन सबका साक्षी जो हो। उस परम तत्त्व को आत्म रूप, में बसा पहचान लो।।

गुण और कर्मों से उत्पन्न, जन्म मरण का चक्र यह हो। आत्म से तन और प्रकृति को, न पृथक करें तब ही तो हो।।
अज्ञान का कारण है यह, और यह है सब मिथ्या ही। फिर भी स्वप्न समान ही, प्रतीति इसकी हो रही।।
जो इन गुणों से उत्पन्न हों, कर्मों के यह बीज सब। सर्वप्रमि इन बीजों का, ही नाश कर दो तुम अब।।
बुद्धि वृत्तियों का प्रवाह, फिर निवृत्त स्वत: हो जाता है। परमात्म से मिलन या फिर, योग यही कहलाता है।।

त्रिगुणात्मिका कर्मों की, जड़ को काटने के लिये। अथवा बुद्धि वृत्तियों का, प्रवाह रोकने के लिये।।
शास्त्रों में अनेकों ही, विभिन्न हैं साधन कहे। किन्तु जिस भी उपाय से, जिस विधि से सम्भव हो जाये।।
श्री हरि में स्वभाविक ही, निष्काम प्रेम जिससे जगा। है सर्वश्रेष्ठ साधन वही, श्री भगवान ने स्वयं कहा।।

हो प्रेमपूर्ण सेवा गुरु की, और जहाँ से जो भी मिले। प्रेमपूर्वक श्री हरि के, चरणों में अर्पित करे।।
भगवत् प्रेमी महात्मन् का, सत्संग नित्य ही प्राप्त हो। श्री हरि की आराधना हो, कथा वार्ता में उसकी श्रद्धा हो।।
उनके गुण लीलाओं का, कीर्तन करना चाहिए। उनके चरण कमल के ध्यान, में निज चित्त टिकाइए।।
मन्दिर जाकर श्री विग्रह का, दर्शन और पूजन करे। इन सब साधनों से प्रभु में, स्वभावित प्रेम ही जाग उठे।।

वह सर्वशक्तिमान् प्रभु, सब जीवभूत में विराज रहे। यह भाव हृदय में धर कर के, सबका सम्मान सेवा करे।।
जो भी प्राणी फिर मिल जाये, यही भावना उसमें रहे। यथा शक्ति उसकी इच्छा, पूर्ण वह करता रहे।।
काम क्रोध लोभ मोह, मद मत्सर छ: शत्रु कहे। इन छ: पर जो विजय पाकर, इनको अपने वश में करे।।
श्री हरि की साधन भक्ति का, इस विधि जो अनुष्ठान करे। श्री कृष्ण चरण में उस राही, अनन्य प्रीति को प्राप्त करे।।

लीला रूप तन से प्रभु ने, अद्भुत पराक्रम जो भी किए। उनके गुण और चरितों का, नित्य ही जो श्रवण करे।।
आनन्द के उस आवेग से, रोम रोम जिसका खिले। प्रेमाश्रु से कण्ठ भी, उसका जब अवरुद्ध भए।।
लोक लाज संकोच छोड़, उच्च स्वर से गाने लगता है। कभी नृत्य की शैली में, उसका चरण थिरकता है।।
ग्रह ग्रसित पागल की तरह, कभी रोता कभी वह हंसता है। कभी ध्यान में बैठे वह, कभी वन्दन सबका करता है।।
तन्मय हो जाता है हरि में, कभी लम्बी सांसें भरता है। हे जगत्पते हरे नारायण, कह संकोच सभी त्यजता है।।
भक्ति योग के प्रभाव से, उसके बन्धन सब कट जाते हैं। भगवद्भाव से हृदय भी उसके, भगवन्मय हो जाते हैं।।
जन्म मृत्यु के बीजों का, वहां कोष ही तब जल जाता है। परम पुरुष पुरुषोत्तम को, प्राप्त वह तब कर जाता है।।

संसार कलिल में फंसकर जो, जीव अपावन स्वयं भए। श्री हरि की यह प्राप्ति, संसार चक्र को मिटा ही दे।।
विद्वान लोग इसे ब्रह्म कहें, निर्वाण कही कोई जान लें। इसलिए मेरे मित्रों हे, निज हृदय में प्रभु का ध्यान धरें।।

हे असुर बालकों अपने ही, हृदय में हैं जो विराजमान्। आकाश समान ही व्याप्त जो, कण कण में रहें विद्यमान्।।
कौन विशेष परिश्रम हो, उनका भजन कर लेने में? समभाव से प्रियतम हैं सबके उन प्रेमी मित्र को भजने में?
और तो क्या वह अपने ही, आन्तर स्थित हैं निज आत्मा। है इससे बड़ी मूढ़ता क्या, उन्हें छोड़ भोगों में भटकना?

धन स्त्री पशु और पुत्र, पुत्री महल पृथ्वी हाथी। सारे ही खजाने और, भाँत भाँत की विभूति सभी।।
भोग सामग्री भी सारी, और जग की धन सम्पद् भी। क्षणभंगुर ही हैं सारी, नश्वर तन को सुख क्या देंगी?

ज्यों इस लोक की सब सम्पद्, प्रत्यक्ष ही है नाशवान्। वैसे ही यज्ञों से प्राप्त, स्वर्गादि सभी हैं नाशवान्।।
आपेक्षित ही हैं लोक यह, इक दूजे से छोटे बड़े। निर्दोष नहीं हैं वह सब भी, उनमें भी हैं गुण दोष भरे।।
निर्दोष निरंजन तो केवल, हैं वह ही परमात्मा। न देखा न ही सुना, किसी ने कोई दोष वहाँ।।
अत: उनकी प्राप्ति के लिये, अनन्य भक्ति भाव से। उन श्री परमात्म का, ही भजन करना चाहिए।।

अपने को विद्वान मान, इस लोक में जिस उद्देश्य से। जो भी जीव इससे भिन्न, बड़े बड़े जो कर्म करे।।
उस लक्ष्य की प्राप्ति हो नहीं, विपरीत फल ही मिला करे। निस्संदेह तुम जान लो, उसके उल्टा ही फल मिले।।
दो ही उद्देश्य रहें सदा, कर्म में प्रवृत्ति के। सुख की प्राप्ति हेतु हों, या हों दु:ख की निवृत्ति से।।
कामना रहित ही होकर के, सुख में जो रहता था सदा। कामना के कारण अब वह, दु:ख ही भोगा करे सदा।।

इह लोक में कर सकाम कर्म, तनो हेतु चाहे भोग वह। वह नश्वर तन ही अपना नहीं, है श्वान स्यारों का भोज्य वह।।
कभी मिले वह कभी बिछुड़े, क्रम यह ही चलता रहता है। जन्म मरण का चक्र यह, निरन्तर चलता रहता है।।
जब तन की ही दशा है यह, तो इसके जो भी हैं संगी। इससे भिन्न पुत्र स्त्री, राज्य महल धन सम्पत्ति।।
सारे कोष हाथी घोड़े, मन्त्री नौकर चाकर गुरु जन। उन सबकी तो बात ही क्या, जो सब कहलायें अपने जन।।

यह तुच्छ विषय तो इस तन के, साथ ही नष्ट हो जाते हैं। हैं दर्शन में पुरुषार्थ सम, पर यह अनर्थ कर जाते हैं।।
आत्मा तो है स्वयं ही, अनन्त आनन्द महा सिन्धु। उसके लिये इन सब वस्तुन्, का मोल ज्यों मानो इक बिन्दु।।
तनिक विचार तो करो सखे, जीव की गति का ध्यान करो। गर्भाधान से लेकर के, मृत्यु पर्यन्त ही देख लो।।

निज कर्मों के अनुसार ही यह, सारी अवस्थाओं में रहे। निरन्तर क्लेश ही भोगा करे, जग में स्वार्थ क्या उसका सधे?

सूक्ष्म तन को ही यह जीव, अपना आत्मा मान ले। उसके द्वारा ही फिर यह, अनेक भाँति के कर्म करे।।
उन कर्मों के कारण ही, पुन: यह तन को ग्रहण करे। तन से कर्म और कर्म से तन, इस भंवर में पड़ा रहे।।
इन सबका कारण भी तो, अविवेक ही होता है। अविवेक के कारण ही, इस चक्र में जीव यह भ्रमता है।।

निष्क्रिय आत्म स्वरूप, उन श्री हरि को जान ले। निष्काम भाव से उनके ही, भजन में नित्य निमग्न रहे।।
धर्म अर्थ और काम सब, उनके ही तो आश्रित हैं। बिन श्री हरि की इच्छा के, नहीं हो सकें यह प्राप्त हैं।।
श्री हरि तो सब जीवों के, हैं ईश्वर आत्मा परम प्रियतम। उनके ही बनाये पंचभूत, और सूक्ष्मभूत आदि जो तन।।
उनमें ही यह विराजमान्, हैं जीव रूप जाने जायें। वास्तव में यह रूप सब, उनको ही तो हैं दर्शाये।।

देवता दैत्य मनुष्य यक्ष, अथवा ही कोई गन्धर्व भी। श्री हरि के चरण कमल की ही, सेवा करता जो कोई भी।।
वह तो सदा सर्वदा ही, कल्याण का भाजन होता है। हमरे ही समान वह, श्री हरि कृपा में रहता है।।

ब्राह्मण देवता या ऋषि, होना ही अनिवार्य नहीं। विविध ज्ञान और सदाचार से, सम्पन्नता भी कार्य नहीं।।
दान तप और यज्ञ, तन और मन की पावनता। बड़े बड़े व्रतों का भी, अनुष्ठान है जो कहा।।
हे दैत्य बालको श्री हरि की, प्रसन्नता इनसे हो नहीं। विडम्बना मात्र ही यह सब हैं, हरि के मन यह भायें नहीं।।
केवल निष्काम भक्ति प्रेम, ही मुदित उन्हें कर सकें। इनके आसरे ही तो जीव, चरण कमल तक पहुँच से।।

हे दानव बन्धु इस कारण, आत्म सम ही जानो सबको। सबमें स्थित सबके आत्मा, सर्वेश्वर प्रभु की भक्ति करो।।
प्रभु की भक्ति का आश्रय ले, बड़े बड़े पातकी तरे। दैत्य यक्ष राक्षस स्त्री, शूद्र गोपाल अहीर तरे।।
पक्षी मृग और जन्तु सब, भगवद्भाव को प्राप्त हुए। श्री हरि की भक्ति का ही, अतुल्य प्रभाव यह जान लें।।

इस संसार में आकर के, इस मानव तन को पाकर के। सबसे बड़ा स्वार्थ उसका, या परमार्थ भी एक कहें।।
श्री कृष्ण के चरणों में, अनन्य भक्ति वह प्राप्त करे। सर्वत्र सर्वदा सबमें ही, श्री हरि का दर्शन वह कर ले।।
नारद बोले,
निर्दोष थे दैत्य बालक वे, प्रह्लाद का जब वचन सुना। तत्काल ही निज हृदय में, उसकी बातों पर ध्यान धरा।।
गुरु की दूषित शिक्षा की, ओर ध्यान ही नहीं दिया। इस कारण जग प्रपंच से, चित्त ही उनका मुक्त हुआ।।
जब देखा गुरु ने सब, विद्यार्थिन् की है एक गति। श्री हरि में है स्थिर हुई, इन सबके चित्त की वृत्ति।।
अति विचलित वह हो गए, तुरन्त ही राजा पास गए। हिरण्यकशिपु के पास जाकर के, उसने निवेदन सब किए।।

निज पुत्र प्रह्लाद की, अप्रिय असह्य बातें सुनकर। गात्र काम्प उठा उसका, क्रोध के वशीभूत होकर।।
अन्त में एक ही निश्चय किया, इसका वध ही उचित होगा। अपने हाथों से ही इसका, कर देना हनन उचित होगा।।

श्री प्रह्लाद के मन इन्द्रिय, उनके अपने वश में थे। कर जोड़ी विनम्रता से, पिता सम्मुख वह थे खड़े।।
नहीं अपमान के योग्य वह थे, पर वह दैत्य था अति क्रूर। फुंकारें वह भरने लगा, पदाहत सर्प ज्यों हो क्रुद्ध।।
पाप पूर्ण वक्र दृष्टि से, उसने बालक को देखा। और कटु वाणी में फिर, बालक को उसने फटकारा।।

हिरण्यकश्यपु बोला,
अरे मूढ़ तू अति उद्दण्ड हुआ, स्वयं तो है तू अति निकृष्ट। अब दैत्य कुल के अन्य बालकों, का भी नाश है तुझको इष्ट।।
अतीव धृष्टता से तूने, अतिक्रमण किया मेरी आज्ञा का। यम के घर तुझे भेजकर, आज ही इसका फल दूंगा।।
मेरे तनिक से क्रोध से, काम्प उठे त्रिलोकी यह। लोकपाल इस क्रोध के, आवेग को इक पल सह न सकें।।
फिर रे मूढ़ किसके आश्रय, तूने दुराग्रह यह किया? मेरी आज्ञा के विरुद्ध, जाने का साहस किया।।
प्रह्लाद बोला,
श्री ब्रह्मा से तृण पर्यन्त, छोटे बड़े जो जीव हैं। चर अचर श्री हरि के सब, वश में ही तो जीव हैं।।
मेरे और आपके ही नहीं, इस सारी सृष्टि के ही। सब बलवानों के ही हैं, एक मात्र बल बस वह ही।।

महा पराक्रमी सर्वशक्ति, सम्पन्न वही प्रभु काल हैं। इन्द्रिय मनो और तनो बल, सबका बने वह आप हैं।।
सबकी इन्द्रियाँ और धैर्य भी, आप वहीं बन आते है। इस विश्व का सृजन रक्षण, संहार वही कर जाते हैं।।
स्वामी हैं त्रै गुणों के वह, हे दैत्यराज यह जान लें। सर्वश्रेष्ठ वह प्रभु ही हैं, इस सत्य को पहचान ले।।

अपने इस असुर भाव का, हे पिताश्री अब त्याग करे। निज मन में सबके प्रति, समत्व भाव ही अब रखें।।
अजितात्मा ही जग में, है एकमात्र शत्रु अपना। कुमार्ग गामी मन ही है अरि, नहीं अन्य कोई रिपु अपना।।
समत्व भाव सबके प्रति, अपने इस मन में ले आना। है सबसे बड़े हरि की पूजा, समत्व में मन को टिका पाना।।

यह छः इन्द्रिय रूपा शत्रु, सर्वस्व ही अपना लूट लें। इन परिपन्थिन् को जो नर, वश में अपने न कर सके।।
इस पर भी दसों दिशाओं का, विजेता अपने को माने। नहीं उस समान मूढ़ कोई, हे पिता सत्य यह पहचानें।।
जितेन्द्रिय ज्ञानी महात्मा जो, सब जीवों में सम रहे। अज्ञानजम काम क्रोध आदि, शत्रु भी जिसके मिटें।।
बाह्य शत्रु की बात ही क्या, नहीं कोई वहां टिक पाते हैं। आन्तर बाहर सर्व शत्रु, उसके नष्ट हो जाते हैं।।
हिरण्यकश्यपु बोला,
अरे मन्दमति अब हुई अति, तेरे इस बहकाने की। मृत्यु को तू पाना चाहे, है यह बात अति स्पष्ट हुई।।
ऐसा व्यर्थ बकवाद तो, वह ही जन कर पाते हैं। जो स्वयं ही अपने काल को, आमन्त्रण देना चाहते हैं।।
अरे अभागे मेरे सिवा, किसी अन्य को जगत् का स्वामी कहा। देखूं तो सही यह जगदीश्वर, तेरा रहता है कहाँ?
क्या कहो सर्वत्र ही, वह परमेश्वर तेरा रहता है? तो इस स्तम्भ में भी कहो, दर्शन क्यों नहीं उसका होता है?

तू कहे इस खम्भ में भी, है तुझको वह दीख रहा। अरे अहंकार में बैठा तू, कैसी डींगें है हांक रहा।।
तत्काल ही तेरे सीस को, धड़ से छिन्न अब मैं करूँ। जिसपे है पूरा भरोसा तुझे, है कहां वह हरि तेरा देखूँ।।
देखता हूँ वह आश्रय तव, कैसे तुझे बचायेगा? मेरे हाथों ही मरेगा तू, वह रक्षण कर नहीं पाएगा।।
नारद बोले,
इस विधि महाबली दैत्य वह, प्रह्लाद को सताने लगा। प्रभु प्रेमी भक्त को बार बार, दुर्वचन कहे वह जाने लगा।।
अपने क्रोधावेग को, वह महादैत्य न रोक सका। हाथ में खड्ग उठाकर वह, सिंहासन से कूद पड़ा।।
तीव्र वेग से स्तम्भ पर, उसने फिर प्रहार किया। अपनी मुष्ठि को ही उस, खम्भे में फिर दे मारा।।

अति भीषण स्वर हुआ स्तम्भ में, मानो ब्रह्माण्ड ही हो फटा। लोकपालों के लोकों में, उस ध्वनि का जब उद्घोष हुआ।।
उसे सुनकर ब्रह्मा आदि, लोकपालों का मन कांपा। ऐसा लगा उन लोकों का, प्रलयकाल ज्यों आ पहुँचा।।

प्रह्लाद के हनन को लक्ष्य बना, था तीव्र गति से वह झपटा। किन्तु घोर उस शब्द ने, दैत्यों का मन भी दहलाया।।
अद्भुत और अपूर्व स्वर, जब सुना हिरण्यकशिपु ने। घबरा कर चहुं ओर ही, देखा फिर उस दैत्य ने।।
कहाँ से ध्वनि यह आई है, किसने है यह शब्द किया? यह जानने के लिये, चहुँ ओर थी घूमी उसकी ग्रीवा।।
किन्तु उस सभा के भीतर वह, किसी को देख ही न पाया। किसने शब्द यह है किया, कुछ भी समझ उसे न आया।।

उसी समय अपने सेवक, प्रह्लाद की रक्षा के लिये। और श्री ब्रह्मा वाणी की, सत्यता सिद्ध करने के लिये।।
चराचर सब ही रूपों में, व्यापकता निज दर्शाने को। उस सभा के भीतर ही, स्तम्भ से रूप अनूप प्रकट्यो।।
अति अद्भुत रूप धर कर के, श्री हरि वहाँ से प्रकट हुए। न ही पूर्ण सिंह वह थे, न ही मानव का रूप थे।।

महाध्वनि यह किसने करी, हिरण्यकशिपु था ढूंढ रहा। उस क्षण खम्भे से निकले, अद्भुत प्राणी को उस देखा।।
फिर विचार उसके कौंधा, अहो न यह पशु न ही है मनुज। फिर नृसिंह का रूप धरी, प्रकटा है कौन अलौकिक जीव?

मनोमन इस उधेड़ बुन, में दैत्य राज वह था पड़ा। उसी समय नृसिंह रूप, उसके सम्मुख आ हुआ खड़ा।।
अति भयावह रूप वह था, और वह था भी अति विचित्र। तप्त स्वर्ण की भाँति ही, थे पीत वर्ण के उनके नेत्र।।
मुख खोले हुए जैसे, जम्भाई थे लेते जा रहे। उनकी गर्दन के बाल भी, थे इधर उधर लहरा रहे।।

अति विकराल विशाल दंष्ट्र, जिह्वा थी ज्यों छुरे की धार। अग्नि समान लेलिह्यमान, मानों तलवार की तेज धार।।
टेढ़ी भ्रुवों के कारण उसका, मुख और भी था दारुण हुआ। निश्चल और विशाल कर्ण, भी था ऊपर की ओर उठा।।
थी नासिका उनकी फूली हुई, और मुख भी था उनका खुला। ऐसा दीख रहा था वह, ज्यों पर्वत में हो कन्दरा।।
खुले हुए जबड़े उनके, भीषण अतीव थे भास रहे। उनके कारण उसका मुखड़ा भी, अति भयावह था दीखे।।

उनका विशाल तन तो मानो, आकाश को ही था छू रहा। कुछ छोटी और मोटी हो, आकार की थी उनकी ग्रीवा।।
विशाल वक्ष उनका था बना, और कमर थी पतली सी। सारे तन पर चान्दनी सम, श्वेत रोम थी चमक रही।।
चहुं ओर शतश: भूजदण्ड, थे उनके फैले हुए। बड़े बड़ वह नख उनके, आयुध का काम थे कर रहे।।

भयभीत हुए उनसे सब ही, साहस न कोई जुटा पाता। कितना भी हो बलवान् असुर, नहीं निकट था उनके जा पाता।।
चक्र और वज्र आदि श्रेष्ठ, अस्त्र और शस्त्रादि से। भगा दिया सब दैत्यों को, अपने श्रेष्ठतम आयुध से।।
हिरण्यकशिपु ने फिर सोचा, है मायावी महाविष्णु यह। उसने ही रचा है रूप यह, मुझे मारने के लिये।।
पर इसकी इन चालों से, कुछ भी नहीं है हो सकता। मुझको तो श्री ब्रह्मा ने, अमरत्व का है वरदान दिया।।

यह सोच हिरण्यकशिपु ने, अति भीषण सिंहनाद किया। गदा हाथ में लेकर के, नृसिंह प्रभु पर वार किया।।
किन्तु पतंगा आग में गिर, ज्यों लुप्त है हो जाता। उसी विधि वह असुर भी, प्रभु तेज में जाकर गया समा।।

नहीं इसमें आश्चर्य कोई, हैं शक्ति तेज के आश्रय रूप। सृष्टि के आरम्भ में ही, प्रलय के ही निमित्त भूत।।

तमोगुण रूपा अन्धकार, को भी स्वयं था पी लिया। प्रभु की अद्भुत लीला में, है कहाँ पे कोई विचित्रता।।
तदनन्तर दैत्य वह, अति क्रोध से लपक पड़ा। अपनी गदा घुमाकर के, प्रभु नृसिंह पर उस वार किया।।

उस प्रहार के करते ही, ज्यों गरुड़ ने सर्प को हो पकड़ा। वैसे ही श्री नृसिंह ने, गदा सहित असुर पकड़ा।।
उसके साथ श्री हरि पुन:, खिलवाड़ नया करने लगे। तब वह दैत्य उनके हाथों, से वैसे ही बच निकले।।
ज्यों क्रीड़ा रत गरुड़ के, चंगुल से सर्प कोई छूटे। उस विधि वह असुर भी, प्रभु की पकड़ से था छूटे।।

उस पल सब ही लोकपाल, छिपे हुए थे बादलों में। हे धर्मराज इस युद्ध को, सब थे छिपकर देख रहे।।
स्वर्ग तो उनका दैत्य ने, पहले ही था छीन लिया। जब उन्होंने यह देखा, वह प्रभु के हाथ से छूट गया।।
पहले ही थे वह डरे हुए, तब और भी वह भयभीत हुए। हिरण्यकशिपु ने समझा, हरि मेरे बल से डर गए।।
वीर्य से मेरे भयभीत हो, उसने है मुझे छोड़ दिया। इस विचार के आते ही, थकान का भ्रम सब दूर हुआ।।
पुन: युद्ध प्रहार को, दैत्य वह तैयार हुआ। ढाल और तलवार लिये, उनकी ओर वह दौड़ पड़ा।।

बाज की भाँति वेग से वह, ऊपर नीचे था जा रहा। उछल कूद के इस भाँति, था पैंतरे वह दिखा रहा।।
तीव्र गति उसकी इतनी थी, अवसर दूजे को नहीं मिले। उसकी चाल यह देख के, श्री हरि ने उच्च अट्टहास किए।।
ऊँचे स्वर में प्रचण्ड और, भयंकर अति अट्टहास वह था। उसकी ध्वनि को सुनकर के, नयन दैत्य का बन्द हुआ।।
बहुत वेग से फिर झपट कर, प्रभु ने जा उसको पकड़ा। ज्यों सांप ने झपट कर, चूहे को हो दबोच लिया।।
जिस हिरण्यकशिपु की त्वक्, नहीं वज्र से भी कभी फटती थी। अब श्री हरि के पंजे में, थी वह छटफटा रही।।

सभा के द्वार पे खेंच के, प्रभु ने फिर उसे ला फेंका। अपनी जंघा पर असुर को, फिर खेल खेल में दिया गिरा।।
तीखे नखों से फिर उसको, ऐसे फाड़ दिया प्रभु ने। जैसे गरुड़ महाविषधर, सर्प को ही हों चीर रहे।।

क्रोधोन्मत्त विकराल नेत्र, प्रभु के थे तब हो रहे। उनकी ओर दृष्टि करना, नहीं था तब सम्भव भए।।
लेलिह्यमान् निज जिह्वा से, थे मुख के कोने चाट रहे। उनका मूख औ ग्रीवा के बाल, थे रंजित रक्त से हो गए।।
हाथी को मार मृगराज ज्यों, उनके आन्त की माला गले पहने। उसी विधि श्री हरि स्वयं, शोभायमान थे हो रहे।।

तीक्ष्ण अपने नखों से उन्होंने, कलेजा उसका चीर दिया। हिरण्यकशिपु का तन उन्होंने, धरती पर फिर दे पटका।।
सहस्त्रों दैत्य और दानव, हाथों में अस्त्र शस्त्र लिये। टूट पड़े सब ही प्रभु पर, उनपर प्रहार करने के लिये।।
पर प्रभु ने अपनी ही भुजा, को सेना अपनी बना लिया। नख रूपा अस्त्र शस्त्र और ,लताओं से शत्रु खदेड़ दिया।।
चहुं दिशाओं में उनको, खिन्न भिन्न प्रभु ने किया। इस विधि उन असुरों का, प्रभु ने स्वयं संहार किया।।

नृसिंह प्रभु की गर्दन के, बालों की फटकार से। ऐसा लगे ज्यों बादल सब, छिन्न भिन्न होने लगे।।
उनके नेत्रों की अग्नि सम्मुख, सूर्य का तेज भी मन्द हुआ। उनके श्वासों के वेग से, सागर भी था अति क्षुब्ध हुआ।।
भयभीत हो सिंहनाद से, चिंघाड़ने लगे महा दिग्गज। ऐसा लगा उस ध्वनि से ज्यों, दिशायें ही जायेंगी फट।।

मूर्धा के बालों से फिर, देव विमान टकराने लगे। अस्त व्यस्त वह हो गए, और स्वर्ग भी डगमगाने लगे।।
उनके चरण की थाप से, भूकम्प ही भूमि में आया। वा वेग से जैसे उड़े पर्वत, उस तेज से सब कुछ चुंधियाया।।

आकाश और दिशाओं का, दर्शन भी तब बन्द हुआ। श्री नृसिंह भगवान का, प्रचण्ड ऐसा वेग था।।

उनका सामना करने को, नहीं कोई था दर्शा रहा। फिर भी उनका क्रोध तो, निरन्तर ही बढ़ा जा रहा।।
हिरण्यकशिपु की राज्यसभा, में विराजमान् वह थे। ऊँचे राजसिंहासन पर, जाकर फिर प्रभु बैठ गए।।
तेजपूर्ण और उनका क्रुद्ध, मुखड़ा, जब देखा सबने। किसीका साहस नहीं हुआ, जा समीप सेवा वह करे।।

त्रिलोकी के सिर की पीड़ा, दैत्य हिरण्यकशिपु था। स्वर्ग की देवांगाओं को, जब यह शुभ समाचार मिला।।
श्री हरि के हाथों युद्ध में, दैत्य वह मारा गया। तब आनन्द उल्लास से, चेहरा सबका खिल उठा।।
बार बार श्री हरि पे वे, पुष्पों की वर्षा करने लगीं। इस विधि हे धर्मराज, उल्लास प्रकट निज करने लगीं।।

श्री हरि के दर्शन के लिये, विमानों पे आरूढ़ जो थे। उन देवों की भीड़ से, आकाश के कण कण थे भरे।।
ढोल और नगारों से, देवों ने फिर नाद किया। गन्धर्वराज गाने लगे, अप्सरागण ने नृत्य किया।।

ब्रह्मा इन्द्र शंकर आदि, देवता गण वहाँ आ पहुँचे। ऋषि विद्याधर पितर सिद्ध, प्रजापति मनु महानाग पहुँचे।।
गन्धर्व अप्सरा और चारण, यक्ष किम्पुरुष और बेताल। किन्नर सुनन्द कुमुद आदि, प्रभु के आये पार्षद आप।।
प्रभु के निकट सभी आये, सिर पर अंजलि बान्धे हुए। तेजस्वी नृसिंह प्रभु के, सिंहासन से कुछ दूर खड़े।।
अलग अलग स्तुति प्रभु की, सब ही फिर गाने लगे। अपने हृदय के भाव वह, प्रभु के चरण चढ़ाने लगे।।
ब्रह्मा बोले,
हे प्रभु आप अनन्त हैं, नहीं पार कोई भी पा सके। पराक्रम हैं विचित्र ही, पवित्र कर्म हैं आपके।।
गुणों के द्वारा लीला कर, जगत् की उत्पत्ति करें। पालन और प्रलय भी फिर, नियमानुसार ही उसका करें।।
फिर भी नहीं सम्बन्ध उससे, हैं आप स्वयं सदा निर्विकार। हे प्रभु आपके चरणों में, मेरा शतश: हो नमस्कार।।
रुद्र बोले,
कल्प के अन्त में ही प्रभु, क्रोध आपका उचित लगे। यदि तुच्छ दैत्य के हनन को, हे प्रभु आपने क्रोध किये।।
तो वह भी अब हे प्रभु, मारा गया है आपसे। उसका पुत्र भी दीनानाथ, शरण पड़ा है आपके।।
हे भक्त वत्सल प्रभु, इस भक्त की रक्षा कीजिये। अनाथ हुआ है बालक यह, संरक्षण इसको दीजिये।।
इंद्र बोले,
हे पुरुषोत्तम आपने, रक्षा करी है हम सबकी। जो यज्ञ भाग लौटाये हैं, वास्तव में हैं वह आपके ही।।
दैत्यों से भयभीत हुआ, संकुचित हृदय हमारा था। हृदय कमल को आपने, आज प्रफुल्लित कर दिया।।
यह हृदय कमल ही आपका, है निवास स्थान प्रभो। स्वर्गादि जो पुन: प्राप्त हुए, वह तो काल का ग्रास ही हों।।
आपके सेवक जन के लिये, तो इनका कुछ भी मोल नहीं। जो आपकी सेवा में लगे, वह तो मुक्ति भी चाहें नहीं।।
फिर अन्य भोग सब दूर रहे, उनकी तो करें बात ही क्या। आपके भक्तों के लिए, सर्वोच्च है आपकी ही सेवा।।
ऋषि बोले,
तप के द्वारा ही आपने, जग की पुन: रचना करी। हे पुरुषोत्तम यह सारी, सृष्टि तो आपमें लीन थी।।
कृपा करी उस आत्म तेज, स्वरूप श्रेष्ठ तपस्या का। उपदेश आपने हे प्रभु, हमारे लिये भी था किया।।

इस दैत्य ने उसी तपस्या का, उच्छेदन था कर दिया। उस तप की रक्षा के लिये, अवतार आपने यह लिया।।
हे शरणागत वत्सल प्रभो, अनुमोदन किया उपदेश का। हमारे लिये आपने ही, तप का रूप है प्रकट किया।।
पितर बोले,
हमारे लिये जो पुत्र थे, पिण्ड दान दिया करते। बलात् ही उनको छीनकर, इस असुर ने भक्षण किये।।
संक्रान्ति आदि के शुभ दिन, या किसी भी पावन तीर्थ में। नैमित्तिक तर्पण थे करते, या तिलांजलि भी देते।।
उन सबको भी यह दैत्य, स्वयं ही पी जाता था। पिण्ड दान और तर्पण भी, भ्रष्ट यही कर जाता था।।

आज आपने अपने नखों से, विदीर्ण जो उसको कर दिया। ऐसा लगे वह सब तर्पण, आपने है लौटा दिया।।
सब धर्मों के आप ही, एकमात्र प्रभु हैं रक्षक। नमस्कार है चरणों में, नृसिंह देव पाप भक्षक।।
इस दुष्ट ने निज योग और, तप से सिद्धि थी पाई। नृसिंह देव इस योग सिद्ध, गति हमारी छीनी थी।।
अपने नखों से आपने, घमण्डी को है चीर दिया। आपके श्री चरणों में, विनीत नमन है हम सबका।।
विद्याधर बोले,
निज बल और वीरता के मद में मत्त मूढ़ यह असुर था। विविध धारणा से जो प्राप्त, उस विद्या को इस व्यर्थ किया।।
यज्ञ पशु की भाँति इसे, हे प्रभु आपने नष्ट किया। निज लीला से नृसिंह बने, नित्य नमन प्रभु को हमारा।।
नाग बोले,
मणियाँ हमारी और सुन्दर, श्रेष्ठ नारियों को छीना। उसके वक्ष को चीर आज, भार्याओं को आनन्द दिया।।
हे प्रभु आपके सामने, खड़े हैं हम सब सीस झुका। आपके श्री चरणों में, देव प्रणाम ही हो हमारा।।
मनु बोले,
हे देवों के आदि देव, हम आपके आज्ञाकारी मनु:। हमारी धर्म मर्यादा भी, की इस दैत्य ने भंग प्रभु।।
अति उपकार किया है प्रभु, इस दुष्ट को मार के। हम सेवक क्या सेवा करें, हे प्रभु आप ही आज्ञा करें।।
प्रजापति बोले,
हे प्रभु आपने तो, प्रजापति हमें बना दिया। किन्तु सृष्टि की रचना में, यह असुर था विघ्न बड़ा।।
विदीर्ण करी इसकी छाती, और यह धरा पे सो गया। संसार कल्याण हेतु ही, अवतार यह आपने ग्रहण किया।।
गन्धर्व बोले,
अभिनेता नर्तक और गायक, सेवक हम प्रभु हैं आपके। निज बल वीर्य पराक्रम से, इसने थे निज वश में किये।।
इस दशा में आपने, आज इसे पहुँचा दिया। कुमार्ग गामी का भी क्या, कल्याण कभी है हो सकता?
चारण बोले,
सज्जनों के हृदयों को, पीडित जो हर पल करता था। हे प्रभो इस दुष्ट को, है नष्ट आपने कर दिया।।
हम तो आपके चरण कमल, की शरण में हैं सदा। जन्म मृत्यु रूपा भव बन्ध, से देते जो मुक्त करा।।
यक्ष बोले,
निज श्रेष्ठ कर्मण कारण, थे मुख्य सेवक आपे हम। किन्तु इस दैत्य के द्वारा, पालकी के बने कहार हम।।
आपके निज जनों को ही, कष्ट जो इस कारण हुए। सृष्टि नियन्ता हे प्रभु, इसको ही आपने नाश किए।।

किम्पुरुष बोले,
अति क्षुद्र हम किम्पुरुष, महापुरुष आप सर्वशक्तिमान्। धिक्कारा इसे सत्पुरुषों ने, इस दुष्ट का किया नाश आज।।
इस अधम असुर को नष्ट कर, हे प्रभु सबका कल्याण किया। इस दैत्य के भार से प्रभु, इस धरती को मुक्त किया।।

वैताल बोले,
ज्ञान यज्ञ सभाओं में, महिमा गान हम करे थे। आपका निर्मल यश गाकर, प्रतिष्ठित हम भी होते थे।।
यह आजीविका दुष्ट ने, नष्ट हमारी कर दी थी। महारोग समान ही, विस्तृति हुई इस दुष्ट की।।
सौभाग्य हमारा उदय हुआ, आपने यह कल्याण किया। इस दुष्ट को मूल से ही, उन्मूलित आपने कर दिया।।

किन्नर बोले,
हम किन्नर आपके सेवक हैं, बेगार काम यह लेता था। हे प्रभु आपने कृपा करी, इस पापी को आज नष्ट किया।।
इसी विधि हे प्रभु आप, अभ्युदय सदा हमारा करें। हम सब तो सब भाँति से, हे प्रभु आपकी शरण पड़े।।

विष्णुपार्षद बोले,
हे शरणागत वत्सल प्रभु, सब लोकों का शान्ति प्रद। नृसिंह रूप यह आपका, प्रभु पहली बार देखा है आज।।
यह दैत्य आज्ञाकारी वही, सेवक था प्रभु आपका। सनकादि ने जिसको, हे नाथ था शाप दिया।।
हम जानें प्रभु आपने, इस पर है उपकार किया। इसके उद्धार के हेतु ही, इसका वध है कर दिया।।

नारद बोले,
ब्रह्मा शंकर आदि सब, देवों ने इस विधि स्तुति करी। पर प्रभु नृसिंह की, क्रोध आवेग न शान्त हुई।।
न ही देवगण यह कोई, उनके पास ही जा सके। श्री हरि का आर पार कोई देव न पा सके।।
श्री लक्ष्मी जी को फिर भेजा, उन्हें शान्त करने के लिये। श्री नृसिंह के अति अद्भुत, जब इस रूप से दरस किये।।
भयभीत हुई माँ लक्ष्मी, उनके पास न जा सकीं। ऐसे विचित्र रूप की उन, नहीं दर्शन श्रवण थी कभी करी।।

भक्त प्रवर प्रह्लाद को, ब्रह्मा जी ने तब कहा। तव पिता पर ही पुत्र, प्रभु ने था यह कोप किया।।
अब उनके ही निकट प्रिय, पुत्र प्रह्लाद जाओ तुम। शान्त करो क्रोध उनका, और अनुग्रह उनका पाओ तुम।।
जो आज्ञा कहकर प्रह्लाद, जाकर धरती पर लोट गए। कर जोड़ी प्रभु के पास जा, उनको साष्टांग प्रणाम किए।।

प्रभु नृसिंह ने जब देखा, नन्हां शिशु है चरण पड़ा। करुणा से उनका हृदय, तब जाकर द्रवीभूत हुआ।।
प्रह्लाद को उठाकर उन, उसके सीस पे अपना हाथ धरा। कालसर्प से भयभीत, जीवों को जो अभय करता।।

श्री हरि के कर कमलों का, प्रल्हाद ने पुण्य स्पर्श पाया। जो भी कहीं था अशुभ बचा, तत्काल ही भस्म वह हो गया।।
परम तत्व का फिर उनको, तत्क्षण साक्षात्कार हुआ। प्रेमानन्द में मग्न हो, चरण कमल को हृदय धरा।।
रोम रोम पुलकित हुआ, हृदय से प्रेम की धारा बही। नयनों से भी तब उनके, प्रेम अश्रु की झड़ी लगी।।

भावपूर्ण हृदय से तब, निर्निमेष नेत्रों को टिका। श्री हरि के अद्भुत रूप का, प्रह्लाद ने फिर दर्शन किया।।
भाव समाधि में उनका, मन एकाग्र था हो रहा। प्रभु का चिन्तन करते हुए, गद्गद् वाणी से उन्होंने कहा।।

प्रह्लाद बोले,

ब्रह्म आदि सब देव गण, ऋषि मुनि और सब सिद्ध पुरुष। उनकी बुद्धि तो निरन्तर ही, सतोगुण में रहे है स्थित।।
निरन्तर आपकी स्तुति करें, और विविध निज गुणों से। वे सब देवता मिलकर भी, सन्तुष्ट न आपको कर सकें।।
फिर मेरा तो जन्म ही है, प्रभु असुर जाति में हुआ। हे प्रभु मैं आपको क्या, सन्तुष्ट कभी कर पाऊंगा?

मैं जानूँ धन कुलीनता, रूप तप विद्या और ओज। तेज प्रभाव बल पौरुष, बुद्धि और समस्त योग।।
यह सब गुण मिलकर भी, श्री हरि को तुष्ट न कर सकें। किन्तु अनन्य भक्ति से तो, गजेन्द्र ने भी प्रभु तुष्ट किये।।

मैं समझूं इन द्वादश गुण से, कोई ब्राह्मण गर युक्त भी हो। यदि प्रभु कमलनाभ के, चरण कमल से विमुख ही हो।।
उससे है वह चाण्डाल भला, जिसके मन वचन कर्म धन प्राण। समर्पित हैं प्रभु चरण में, उनको ही सर्वस्व मान।।
वह चाण्डाल समग्र कुल, अपना पावन कर देता है। श्रेष्ठता का अभिमान लिये, ब्राह्मण न स्वयं भी उभरता है।।

परिपूर्ण हैं स्वयं प्रभु, अपने ही साक्षात्कार से। क्षुद्र जीवों की पूजा, नहीं ग्रहण करें वह अपने लिये।।
करुणा वश ही भोले भाले, निज भक्तों के कल्याण को। उनका वन्दन और पूजना, करते हैं स्वीकार वो।।
ज्यों अपने मुखड़े का सौन्दर्य, दर्पण में जब प्रतिबिम्बित हो। वह प्रतिबिम्ब दर्पण में, और भी सुन्दर भासित हो।।
वैसे ही श्री हरि प्रति, सम्मान कोई जो प्रकट करे। उस गौरव सम्मान को, वह भक्त स्वत: ही प्राप्त करे।।

सर्वथा ही अयोग्य हूँ मैं, और हूँ मैं अनाधिकारी। फिर भी नि:संशय होकर के, निज बुद्धि के अनुसार ही।।
सब प्रकार से प्रभु की ही, महिमा का वर्णन कर रहा। इस महिमा के गायन का, प्रभाव ही है अलौकिक सा।।
अविद्यावश संसार चक्र, में पड़ा जो जीव है। तत्काल ही वह पावन होए, श्री हरि शरण जो जीव है।।

सत्त्व गुण के परम आश्रय, एक आप ही हैं प्रभो। ब्रह्मा आदि सब देव गण, तव आज्ञाकारी भक्त हों।।
हम दैत्यों की भाँति यह, नहीं द्वेष करें प्रभु आपसे। हे प्रभु अति सुन्दर, अवतार आप ग्रहण करके।।
जग कल्याण और धर्म का, अभ्युदय प्रभु आप करें। आत्म आनन्द के हेतु ही, अनेक भाँति लीला भी करें।।

जिस दैत्य के हनन को, प्रभु क्रोध आपने था किया। वह तो आपके हाथों से, मारा ही है जा चुका।।
कृपा कर के प्रभु आप, अपने क्रोध को शान्त करें। ज्यों बिच्छू और सर्प की, मृत्यु से सब ही सुख पायें।।
वैसे ही इस असुर के, संहार से सब हैं सुखी हुए। आपके शान्त स्वरूप के, दर्शन को सब उद्यत हुए।।
भयमुक्ति हेतु जब भक्त जन, करेंगे सिमरन् आपका। इस रूप का चिन्तन करके, भय मुक्त हृदय होगा उनका।।

अति भयावह है प्रभु, विकराल यह मुखड़ा आपका। लेलिह्यमान् जिह्वा है यह, नेत्रों में सूर्य का तेज भरा।।
चढ़ी हुई हैं भौहें भी, और अति तीखी हैं यह दाढ़ें। गले में आन्तड़ियों की माल, मूर्धा के बाल हैं रक्त सने।।
सीधे कान कटार सम, ही जैसे हों खड़े हुए। सिंहनाद यह आपका, महादिग्गजों को भयभीत करे।।
तीक्ष्ण नख यह आपके, विदीर्ण शत्रुओं को करें। इनको देख मेरे हृदय में, तनिक सा भय भी न उपजे।।

यदि है कोई भय मुझे, तो दीनबन्धु बस इतना ही। असह्य उग्र संसार के, चक्र में न मैं पिसूं कभी।।
निज कर्म पाश में बन्धा हुआ, हूं पड़ा भयावह जन्तुन् में। हे स्वामी कब प्रसन्न हो, मुझको आप बुलायेंगे?

सब जीवों की इकमात्र शरण, और जो सबको मुक्ति दे। उन अपने चरण कमल में प्रभु, मुझको भी अब आश्रय दें।।

जिस जिस योनि में भी मैं गया, उन सभी में दुःख ही दुःख पाया। प्रिय से वियोग अप्रिय संयोग, इस शोक अग्न में झुलसाया।।
उन दुःखों को मिटाने की, जो औषधि भी कहीं पाई। यह ही अनुभव किया प्रभु, वह भी तो है दुःखदाई।।
न जाने कितने काल से, इधर उधर मैं भटक रहा। अपने से भिन्न सब वस्तु में, मैं अपना आप हूं ढूंढ रहा।।
हे प्रभु अब आप ही, वह साधन मुझे बताइये। अपनी सेवा भक्ति की, अब राह पे मुझको लाइये।।

प्रियतम हैं प्रभु आप ही, प्रियकर सुहृद् अहैतुकी। परम अराध्य हैं सबके, वास्तव में प्रभु आप ही।।
श्री ब्रह्मा जी ने गाईं, आपकी लीला कथायें जो। उनका गान करते हुए, रागादि गुणों से मुक्ति हो।।
मैं भी प्रभु उन गुणों का, गान ही करता जाऊँगा। इस भयप्रद भव सागर को, सुगमता से तर जाऊंगा।।
आपके युगल चरणारविन्द, के आश्रय रहें जो महात्मा जन। कृपा से प्राप्त सदा होगा, मुझे उन परमहंसों का संग।।

इस लोक में दुःखी जो जन, उनका दुःख मिटाने को। हे प्रभु नृसिंह देव, उपाय भी सब कहे हैं जो।।
क्षणिक ही हों वह उपाय भी, यदि आपकी प्रभु उपेक्षा हो। माता पिता से भी बालक की, रक्षा प्रभु सम्भव न हो।।
बिना आपकी कृपा प्रभु, कोई औषध रोग मिटा न सके। सागर में जो डूब रहा, नहीं नैया पार लगा सके।।

सत्त्वादि विभिन्न गुणों से, बने विभिन्न स्वभाव जो। ब्रह्मा आदि सर्वोच्च देव, काल आदि कनिष्ट हैं कर्ता जो।।
उनमें भी प्रभु आपकी ही, प्रेरणा शक्ति काम करे। जिस आधार में स्थित होकर, और जिस भी निमित्त से।।
जिस भी समय जिस साधन से, जिसकी भी सहायता से। जिस किसी प्रयोजन से, जो भी वह उत्पन्न करें।।
या फिर मूल पदार्थ का, रूप भी चाहे वह बदलें। वे सब भी प्रभु आपके ही, तो विभिन्न स्वरूप कहें।।

काल के द्वारा गुणों में, जब क्षोभ उत्पन्न हो। परम पुरुष की आज्ञा से, फिर माया क्रियान्वि हो।।
मनोप्रधान लिंग शरीर, का निर्माण वह करती है। अनेक नाम रूप आसक्त, बलवान् और छन्दोमय ही है।।
अविद्या द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिय पंच तन्मात्रा। इन सोलह विकारी आरों से, संसार का है यह चक्र बना।।
हे अजम प्रभो है कौन पुरुष, जो आपसे रहकर भिन्न। इस मन रूपा संसार चक्र, को पार कर सके अविछिन्न।।

इन षोड्ष आरों के चक्र में, माया ने है मुझे घेर लिया। ईख समान निरन्तर यह, चक्र मुझे है पेर रहा।।
निज चैतन्य शक्ति से, बुद्धि गुण करें पराजित आप। काल रूप से साधन साध्य, रखें सदा ही अधीन आप।।
हे प्रभु मैं आपकी ही, चरण शरण में आया हूँ। रक्षण करें इससे प्रभु, रहूं चरण में बिनती लाया हूँ।।

सांसारिक जन जिनके लिये, रहें लालायित ही सदा। लोकपालों की वह आयु, स्वर्ग में मिलती है सदा।।
लक्ष्मी और ऐश्वर्य भी, मैंने खूब हैं देख लिये। स्वर्गलोक उपभोग सभी, दूर से देख के देख लिये।।
जब क्रुद्ध हो मेरे पिता, अट्टहास प्रभु किया करते थे। भृकुटी को अपनी उस पल, जग वक्र कर देते थे।।
तब स्वर्ग की उन सब सम्पद् का, ठिकाना नहीं रह जाता था। मेरे पिता के चरणों में, वह लुण्ठित होती थीं सदा।।
मेरे बलवान् पिता का भी, हे प्रभु आपने हनन किया। फिर उस स्वर्ग के सुख वैभव और सम्पद् की तो बात ही क्या।।

ब्रह्मलोक पर्यन्त ही, अगर आयु भी मुझे मिले। लक्ष्मी ऐश्वर्य इन्द्रिय भोग, सांसारिक जन जिन्हें चाहें।।

नहीं मैं उनको चाहूँ प्रभु, हैं काल के द्वारा ग्रसित सभी। आपने ही धारण किया, वह काल रूप शक्ति शाली।।
मुझे तो अपने दासों की, सन्निधि में प्रभु ले चलें। और तो मैं कुछ न चाहूँ, निज चरणों में मुझे स्थान दें।।

विषय भोग की बातें तो, बस श्रवण मात्र को लगें भली। वास्तव में मृगतृष्णा के, जल समान हैं असत्य सभी।।
उन भोगों को भोगने का, साधन मात्र यह तन जो हो। असंख्य रोगों का ही तो, उद्गम स्थान यहाँ पे हो।।
कहाँ वह मिथ्या विषय भोग, और कहाँ रोग का घर यह तन। है दोनों ही क्षणभंगुर यह, फिर भी विरक्त न हो यह मन।।
दुर्लभ भोगों के नन्हें से, मधु कण जो यहाँ प्राप्त हों। उनके राही यह यत्न करे, निज कामाग्नि की शान्ति को।।

इस तमोगुणी दैत्य वंश में, हे प्रभु मैं उत्पन्न हुआ। रजोगुण से मेरा जन्म हुआ, और आपकी यह असीम कृपा।।
सकल सन्ताप हारी यह, प्रसादमय कर आपका। धन्य धन्य प्रभु आपने, उसे मेरे सीस पे रख दिया।।
ब्रह्मा शंकर और लक्ष्मी जी, के सीस पे नहीं वह कभी धरा। मुझ अकिंचन् पर प्रभु, करी अहैतुकी यह कृपा।।

नहीं आपमें हे प्रभु, न्यून श्रेष्ठ कोई भाव रहे। वह तो बस संसार के, जीवों के मन में ही रहते।।
आप तो हैं सबके आत्म, और अहैतुकी प्रेमी भी। फिर भी कल्प वृक्ष सम ही, प्राप्त हो कृपा प्रसाद भी।।
सेवन और भजन से ही, जीवन में उसकी प्राप्ति हो। सेवा के अनुसार ही, जीवों पर कृपा की वर्षा हो।।
जाति या वंश की उच्चता, या न्यूनता का वहाँ नाम नहीं। वह तो सेवन से प्राप्त हो, नहीं पक्षपात का काम कहीं।।

यह जग तो इक अन्ध कूप, ऐसा है प्रभु बना हुआ। काल रूपा सर्प सदा, डसने को वहाँ बैठा हुआ।।
विषय भोग कामी सब जन, उसमें ही हैं पतित हुए। मैं भी था गिरने जा रहा, संग वश उनके ही पीछे।।
देवर्षि नारद ने मुझे, अपनाकर प्रभु बचा लिया। अब आपके भक्तन् की सेवा, छोड़ कैसे मैं हूँ सकता?

हे अनन्त जब पिता मेरे, अन्याय को थे हुए उद्यत। कमर कस के थे खड़े, हाथ में लिए हुए वह खड्ग।।
मुझे कहा यदि मेरे सिवा, कोई अन्य है तेरा ईश्वर। तो आकर मुझे बचाये वह, मैं तो दूंगा वध तेरा कर।।
उस पल हे प्रभु आपने, मम प्राणों की रक्षा करी। मेरे हनन को उद्यत हुए, मेरे पिता की हत्या करी।।
आपके प्रेमी सनकादि, का वचन सत्य करने के लिये। हे प्रभु आपने ऐसे आज, पराक्रम के दर्शन दिये।।

यह सारा जग प्रभु आप ही हैं, नहीं दूजा यहां पे अन्य कोई। एक में ही अनेकता की, आभास मात्र यहाँ हो रही।।
कारण रूप से आप ही, स्थित थे इसके आदि में। अन्त में भी रहेंगे प्रभु, आप ही अवधि रूप में।।
मध्य में जो प्रतीति हो, वह भी आप ही रूप धरें। गुण परिणाम रूप यह जग, माया से प्रभु आप रचें।।
हैं विद्यमान पहले से ही, फिर भी प्रवेश की लीला करें। उन गुणों से युक्त हो, अनेक ही हैं फिर दीख पड़ें।।

कार्य कारण रूप में, जो कुछ प्रतीत प्रभु हो रहा। यह सब तो हैं आप ही, जो भिन्न भी इससे दीख रहा।।
भेद भाव मेरा तेरा, यह तो शब्दों की माया है। जन्म स्थिति लय और प्रकाश, वास्तव में आपसे आया है।।
ज्यों बीज वृक्ष भिन्न भिन्न दीखें, कारण कार्य की दृष्टि से। पर हैं दोनों एक ही, गन्ध तन्मात्रा की दृष्टि से।।

सम्पूर्ण विश्व को अपने में, ही प्रभु समेट लें। हो निष्क्रिय प्रलयकालीन, जल में आप ही शयन करें।।
बाह्य दृष्टि को बन्द करी, निज आत्म सुख का अनुभव लें। निज स्वरूप प्रकाश में, निद्रा को भी विलीन करें।।

तुरीय ब्रह्म पद में प्रभु, सदा स्थित ही आप रहें। न तो तमोगुण में स्थित हों, न विषयों को स्वीकार करें।।

निज काल शक्ति से प्रकृति के, गुणों को प्रेरित आप करें। पूर्ण ब्रह्माण्ड यह जो भी है, है आपका ही शरीर यह।।
पहले तो ब्रह्माण्ड यह, विलीन था प्रभु आपमें। प्रलयकालीन जल के भीतर, शेषनाग पे शयन किये।।
योगनिद्रा समाधि त्यजी, नाभि कमल सों ब्रह्मण्ड उपजा। जैसे किसी वट बीज से, हो विशाल वृक्ष प्रकटा।।

उस कमल पे अति सूक्ष्म दर्शी, ब्रह्मा जी फिर प्रकट हुए। कमल के अतिरिक्त जब, और वह कुछ न देख से।।
बीज रूप में व्याप्त आपको, अपने में न जान सके। अपने से बाहर जान के, जल में ही खोजन लगे।।
शत वर्ष पर्यन्त वह, जल में ही फिर घुसे रहे। पर वहां पर ब्रह्मा जी, कुछ भी ढूंढ ही नहीं सके।।
ज्यों अंकुर फूटने पर, बीज तो उसमें व्याप्त रहे। किन्तु बाहर उसको कोई, अलग रूप न देख सके।।

आश्चर्य चकित होकर ब्रह्मा, फिर उस कमल पे जा बैठे। बहुत काल तीव्र तपस्या कर, हृदय जो उनका शुद्ध भए।।
तब अपने में ही व्याप्त हुए, आपके दर्शन उन्होंने पाये। भूत इन्द्रिय अन्त:करण, अपने में देखा व्याप्त थे।।
सबमें समाये आप प्रभु, सूक्ष्म यह साक्षात्कार हुआ। अति सूक्ष्म तन्मात्रा गन्ध, ज्यों रहती धरा में व्याप्त सदा।।

सहस्रों मुख चरण सिर हाथ, मुख कान जंघा नासिका। नेत्र आभूषण आयुधों से, सम्पन्न विराट पुरुष देखा।।
चौदह लोक भी उनके ही, विभिन्न अंग थे सोह रहे। श्री हरि की लीलामयी, मूर्ति के वह दर्शन थे।।
उसे देख श्री ब्रह्मा जी, अति आनंदित हो गए। इस विधि श्री ब्रह्मा को, आपके दर्शन थे हुए।।

मधु और कैटभ नामक, दो दैत्य अति बलवान् थे। रजोगुण और तमोगुण का, रूप वह मूर्तिमान थे।।
जब दोनों ने मिलकर के, था वेदों को चुरा लिया। तब प्रभु ने ह्यग्रीव का, अवतार रूप था ग्रहण किया।।
उन दोनों का हनन करी, सतोगुण रूपा जो श्रुतियां थीं। सतोगुण ही आपका प्रिय तनु, ब्रह्मा को आपने लौटाई।।
महात्मा जन ने हे प्रभु, इस विधि वर्णन इसका किया। जग कल्याण के हेतु ही, आपने स्वयं यह रूप धरा।।

हे पुरुषोत्तम इस विधि, विभिन्न रूप ही आप धरें। मनुष्य पशु पक्षी ऋषि, देव मत्स्य अवतार लें।।
लोकों का पालन आप करें, और द्रोहियों का संहार करें। प्रत्येक युग में उसके ही, धर्म की रक्षा आप करें।।
कलियुग में छिपकर के आप, गुप्त रूप से रहते हैं। इस कारण कलियुग में, त्रियुग आपको कहते हैं।।

वैकुण्ठनाथ मेरे मन की, हुई आज बहुत दुर्दशा। पाप वासना से कलुषित, और है यह अति दुष्ट बना।।
कामना के कारण यह, अति आकुल ही रहता है। हर्ष शोक लोक परलोक भय, से आतुर ही रहता है।।
धन पत्नी और पुत्र की, चिन्ता इसे सताती है। आपकी लीला वार्ता में, इसको रस नहीं आती हैं।।
इस मन के कारण प्रभु, हुआ दीन और हीन हूं। ऐसे मन से आपके, स्वरूप का चिन्तन कैसे करूँ?

हे अच्युत यह अतृप्त जिह्वा, स्वादिष्ट रसों से लुभाये मुझे। जननेन्द्रिय चाहे सुन्दर स्त्री, त्वक् कोमल स्पर्श दे रिझाये मुझे।।
क्षुधा यह चाहे भोजन को, कर्ण मधुर संगीत ध्वनि। नासिका मन्द सुगन्ध चाहे, और चपल नयन सौन्दर्य मणि।।
इसके सिवा कर्मेन्द्रियां भी, निज विषयों की ओर चलें। मेरी तो दशा इन सबके बीच, है अति दयनीय बनें।।
ज्यों इक पुरुष की बहुत सी, पत्नियां उसको घेरे रहें। अपने अपने भवन में, ले जाना उसको सब चाहें।।

इसी विधि से जीव यह, निज कर्म के बन्धन में बन्धा। संसार रूपा वैतरिणी के, मध्य में है वह गिरा हुआ।।
जन्म से मरण मृत्यु से जन्म, इन राही करे वह कर्म भोग। भयभीत हुआ है जीव यह, करते करते यह सब उपभोग।।
अपना पराया जान के यह, भेद भाव में पड़ा रहे। किसी को जाने अपना मित्र, और किसी को अपना शत्रु के।।
दुर्दशा देख यह जीव की, हे नाथ आप की करुणा करे। भव सिन्धु के उस पार आप, अब जीवों को भी उभार लें।।

हैं प्रभु आप ही जगद्गुरु, सृष्टि पालन संहार करें। इन जीवों को भव सागर से, सहज ही पार उतार सकें।।
हे दीनबन्धु भूले भटके, अति विमूढ़ जो जीव हों। वे ही तो महापुरुषोंके, विशेष अनुग्रह पात्र हो।।
पर हे प्रभु इसकी भी हमें, चिन्ता कोई नहीं रहती। आपके भक्तन् की सेवा, में रहते हम अनुरक्त ही।।

भव वैतारिणी को तर जाना, है सबके लिए प्रभु अति दुर्गम। पर नहीं हूं मैं भयभीत प्रभु, मुझे तो लगे यह अति सुगम।।
मेरा चित्त तो वैतारिणी के, भय सों ग्रसित कभी न हो। आपकी दिव्य लीला में, यह तो निरन्तर मग्न हो।।
स्वर्गीय अमृत को भी जो, पल में तिरस्कृत ही करे। परम अमृत स्वरूप वह, नित्य तृप्त मेरा चित्त करे।।
मेरा शोक तो हे प्रभु, है मूढ़ प्राणियों के लिये। आपके गुणगान से, विमुख ही वह आचरण करें।।
इन्द्रिय विषयों का झूठा सुख, प्राप्त करने के लिये। अपने सिर पे संसार का, भीषण बोझा वे ढोते रहें।।

बड़े बड़े ऋषि और मुनि, निर्जन वन में जायें स्वामी। निज मुक्ति के हेतु वह, धारण मौन करें स्वामी।।
दूजों के कल्याण को, नहीं कोई यत्न वह कभी करें। पर मेरी तो दशा प्रभु, इस सबसे कुछ भिन्न रहें।।
भूले भटके इन जीवों को, मैं छोड़ के जाना न चाहूँ। छोड़ के इन असहायों को, केवल निज मुक्ति न चाहूँ।।
आपके अतिरिक्त प्रभु, नहीं अन्य आसरा कोई इन्हें। भटके हुए इन जीवों को, जो भव से पार करा सके।।

गृहासक्त इन लोगों को, गृहस्थाश्रम में सुख मिले। अति तुच्छ हैं वे सब ही, और केवल दु:ख रूप हैं वे।।
ज्यों दोनों हाथों से कोई, अपने को हो खुजला रहा। पहले तो उस खुजली में, तनिक सा सुख उसे भासता।।
किन्तु उसके बाद तो, केवल दु:ख ही दु:ख वह पाता। यह मूढ़ अज्ञ बहुत दु:ख भोगे, नहीं अब विषय से यह जाता।।
इसके विपरीत जो धीर पुरुष, खुजलाहट आदि सब सह ले। सहने से ही उसका नाश हो, वह काम आदि का वेग सहे।।

हैं साधन दस प्रसिद्ध कहे, हे प्रभु इस मोक्ष के। मौन ब्रह्मचर्य शास्त्रश्रवण, तप और स्वाध्याय कहे।।
स्वधर्म का पालन करना, और शास्त्रों की व्याख्या करना। जप और समाधि कहे, एकान्त का भी सेवन करना।।
किन्तु जिसकी इन्द्रियाँ ही, उसके वश में नहीं रहें। उसके लिये तो यह सब ही, व्यापार का साधन बन जायें।।
दम्भी के लिये यह बने रहें, जब लौ न उसकी पोल खुले। जब उसका भण्डा फूटे, जीवन निर्वाह भी नहीं होए।।

बीज और अंकुर समान, वेदों ने हैं दो रूप कहे। कार्य और कारण है जो, वही वास्तविक आपके रूप कहे।।
वास्तव में प्राकृत रूप, से रहित हैं आप प्रभु। कार्य कारण रूप बिन, नहीं ज्ञान का साधन अन्य प्रभु।।
काष्ठ के मन्थन के द्वारा, अग्नि जिस विध प्रकट भए। भक्ति योग की साधना से, योगी उस विधि ही खोज ले।।
वास्तव में कार्य कारण, दोनों ही आपसे भिन्न नहीं। आपके ही स्वरूप हैं यह, पृथक् आपसे कुछ भी नहीं।।

वायु अग्नि पृथ्वी आकाश, जल और पंच तन्मात्रायें। प्राण इन्द्रिय मन चित्त अहं, सब जग जो निर्गुण सगुण भए।।

यह सब कुछ प्रभु आप ही हैं, मन वाणी ने जो भी कहा। नहीं पृथक् आपसे कहीं भी कुछ, जो कुछ भी हैं कहीं कहा।।

सत्त्वादि यह गुण जो कहे, और गुणों के भी परिणाम जो। महत्तत्त्वादि देव मनुज, और मन आदि इन्द्रियां जो।।
स्वरूप आपका जानने में, प्रभु कोई भी समर्थ नहीं। आदि अन्त वाले यह सब, और आपका आदि अन्त नहीं।।
ऐसा जान के ज्ञानी जन, शब्दों से उपरत हो जायें। सब कीर्ति के हैं आश्रय आप, वे जन ऐसा देख जायें।।

हे पूज्य प्रभु आपकी, सेवा के छ: अंग कहे। नमन स्तुति सेवा पूजा, सब कर्मों का अर्पण करें।।
युगल चरणारविन्द चिन्तन, और लीला कथा का श्रवण। इस षड् अंग सेवा बिना, चरणों में भक्ति कैसे हो प्रपन्न?
भक्ति के बिना हे प्रभु, कैसे प्राप्ति आपकी हो सके? निज भक्तों के प्रियतम हैं आप, उनका तो सर्वस्व भएं।।

नारद बोले,
इस विधि भक्त प्रह्लाद ने, बहुत प्रेम से वर्णन किया। प्रभु के मूलभूत गुणों का, उन्होंने यूँ आख्यान किया।।
तत्पश्चात् प्रभु चरण में, सीस झुकाकर मौन हुए। क्रोध शान्त हुआ हरि का, और प्रेम से फिर वह यूँ बोले।।

नृसिंह बोले,
कल्याण हो हे वत्स तेरा, प्रह्लाद परम कल्याण रूपा। हे दैत्यश्रेष्ठ तुम जानों, मैं तुमसे अति प्रसन्न हुआ।।
जो भी अभिलाषा हो तेरी, वह ही मुझसे मांग लो। जीवों के लिये मैं वरदे हूँ, हे वत्स तू इतना जान लो।।

हे आयुष्मन् जो जीव मुझे, प्रसन्न नहीं है कर लेता। मम दर्शन पाना उसके लिये, अति दुर्लभ ही है होता।।
जो दर्शन मेरा पा ही ले, उसका हृदय फिर शान्त भए। किसी भी भाँति की तृष्णा, उसे जला फिर नहीं सके।।
पूर्ण साक्षी मनोरथ मैं, जीव के जानो कर देता। निज कल्याण के कामी जो, साधुजन भाग्य उदय होता।।
सब वृत्तियों से अपनी वह, प्रसन्न मुझे करना चाहें। जितेन्द्रिय वह होकर के, मुझे उपासे ही जायें।।

नारद बोले,
असुर कुलाभूषण प्रह्लाद, थे प्रभु के अनन्य प्रेमी। महा प्रलोभन देख के भी, मन किंचित् उनकी न डोली।।
नहीं इच्छा करी किसी वर की, न ही प्रभु से उन कुछ मांगा। श्री हरि के चरण कमल में ही, दृढ़ अनुराग जो उनका था।।

नारद बोले,
नन्हें से बालक ही थे, आयु में तो श्री प्रह्लाद। प्रेम भक्ति की राह में, माना विघ्न वरदान आज।।
इसलिये श्री भगवान से, कोई वर उन्होंने न मांगा। मुसकरा कर श्री हरि से, फिर प्रीतिपूर्ण यह वचन कहा।।

प्रह्लाद बोले,
जन्म से ही हे प्रभु रहा, मैं असुर विषय भोगों में सक्त। वर का प्रलोभन देकर के, न करें प्रभु मुझे पथ से भ्रष्ट।।
उन भोगों के संग से डर, और तीव्र वेदना अनुभव कर। उनसे मुक्ति पाने को, हे प्रभु हुआ मैं शरणागत।।
भक्त के लक्षण हैं या नहीं, यही जानने के लिये। निज भक्त को आप प्रभु, वर के लिये प्रेरित हैं करें।।
यह विषय भोग तो हृदय की, ग्रन्थी को और भी दृढ़ करें। पुन: पुन: यह जन्म मरण के, चक्र में ही डाला करें।।

हैं परम दयामय आप प्रभु, क्यों बन्धन में मुझे डालेंगे? मेरी परीक्षा के लिये, हैं आपने ऐसे वचन कहे।।
निज कामना पूर्ति ही, जो सेवक आपका चाहता है। वास्तव में वह सेवक नहीं, वणिक ही बन जाता है।।
नहीं है सच्चा सेवक वह, चाहे स्वामी से इष्ट पूर्ति। जो स्वामी भी सेवा के लिए, कर देता कामना पूर्ति।।
स्वामी बनने के लिये, मनोवांछित वर जो उसको दे। हे प्रभु वह तो उसका, सच्चा स्वामी न हो सके।।

निष्काम मैं सेवक आपका, निरपेक्ष हैं स्वामी आप मेरे। राजा और उनके सेवक का, प्रयोजन वश सम्बन्ध रहे।।
ऐसा तो सम्बन्ध नहीं, हे हरि आपसे यह मेरा। वर कैसे मांगू प्रभु, मैं तो सेवक हूं आपका।।
हे वरश्रेष्ठ यदि आप मुझे, मुंह मांगा वर देना चाहें। बीज नाश हो कामना का, बस इतना ही वर मुझे दें।।
मेरे हृदय में कभी कोई, कामना उठ ही न पाये। आपके चरण कमल ही प्रभु, हर स्वास स्वास मेरा चाहे।।

जिस पल भी हृदय में किसी, कामना का कभी उदय होए। इन्द्रिय मन प्राण देह, धर्म धैर्य बुद्धि न रहे।।
लज्जा श्री और तेज स्मृति, सब ही नष्ट हो जाते है। कामना के सम्पर्क में, कोई सद्गुण रह नहीं पाते हैं।।
मनोगत कामना का जिस पल, जीव त्याग कर देता है। हे कमल नयन तत्काल ही वह, भगवत्स्वरूप पा लेता है।।

नमस्कार मेरा प्रभु, हैं सबके हृदय आसीन आप। उदारता के स्वरूप आप, स्वयं परब्रह्म परमात्म आप।।
अत्यद्भुत् नृसिंह रूप धरी, आज आप हैं प्रकट हुए। बार बार है प्रणाम मम, ऐसे श्री हरि के चरणों में।।
नृसिंह बोले,
प्रिय प्रह्लाद तुम जैसे हैं, जो मेरे अनन्य प्रेमी। इह लोक या परलोक की, नहीं उन्हें कामना इष्ट कोई।।
अधिक नहीं बस थोड़ी सी, मेरी भेंट स्वीकार करो। इस लोक में दैत्याधिपति भोग, मन्वन्तर तक उपभोग करो।।
यज्ञ का भोक्ता बनकर के, सब जीवों के मैं हृदय बसूँ। निज हृदय में दर्शन करो मेरा, मम लीला कथा मैं प्रिय जानूँ।।
उनको ही तुम सुनते रहना, कर्मों से करो आराधना। इस विधि हे प्रिय भक्त, प्रारब्ध कर्म का क्षय करना।।

भोग से पुण्य कर्म के, फल का नाश तू कर लेना। निष्काम पुण्य कर्म से, पाप नष्ट तू निज करना।।
अवधि पूर्ण होने पर, जब तन का त्याग करोगे तुम। सब बन्धन से मुक्त हो, मुझमें प्रवेश करोगे तुम।।
देव लोक में भी प्रिय, तव कीर्ति गाई जायेगी। तव भक्ति की उपमा सदा, वहाँ पे भी सुनाई जायेगी।।

तुमने जो स्तुति मेरी गाई है, कीर्तन इसका करेगा जो। मेरा और तेरा सिमरन्, इसके साक्ष करेगा जो।।
उचित समय के आते ही, कर्मों से मुक्त हो जाएगा। सारे बन्धन तोड़ करी, फिर वह मुझको ही पाएगा।।
प्रह्लाद बोले,
आवरण हैं जो सारे जग में, हैं आप ही स्वामी उन सबके। इक वर और मैं मांगूं प्रभु, आपके चरण में बैठ के।।
मेरे पिता अनभिज्ञ थे, ईश्वरीय तेज से आपके। चराचर के गुरु स्वयं आप, वह शक्ति न पहचान सके।।
उन्होंने निन्दा की आपकी, वह द्वेष आपसे करते थे। विष्णु ने मेरा भ्राता मारा, यह मिथ्या भाव मन धरते थे।।
अपने ही क्रोधावेग को, सहन नहीं वह कर सके। इस कारण आपका भक्त जान, मुझसे भी उन द्रोह किये।।

आपकी दृष्टि पड़ते ही, यद्यपि पावन वह हैं हुए। फिर भी प्रभु आपके चरणों में, है मेरी इक प्रार्थना यह।।
जो जल्दी क्षय न हो सके, उस दुस्तर पाप से हे प्रभु। मम पिता शुद्ध अब हो जायें, इतनी कृपा अब करें प्रभु।।

नृसिंह बोले,
हे निष्पाप प्रह्लाद सुनो, पावन हो तर गए तेरे पिता। यह तो सहज ही प्राप्त हुआ, उनकी तो है बात ही क्या।।
इक्कीस पीढ़ियां भी यदि, पितरों की उनके होतीं। तो सत्य कहूँ वह सब की सब, एक साथ ही तर जातीं।।
तुम जैसा कुल का तारक, पुत्र जो उनको प्राप्त हुआ। इससे बड़ा सौभाग्य कहो, क्या कभी किसी का हो सकता?

समदर्शी और प्रशान्त मेरे, भक्त जहाँ पर वास करें। साधु स्वभावी सदाचारी, धर्म का पालन वह करें।।
चाहे पापपूर्ण हो दरिद्र, पावन ही वह स्थान भए। ऐसा मेरे भक्त का, प्रभाव स्वत: ही उभर आए।।
मेरी भक्ति भाव से जिनकी सब, कामना नष्ट हैं हो गईं। सर्वत्र आत्म भाव की, दर्शन है जिनको हो रही।।
हे दैत्यराज किसी भी प्राणी, को कष्ट नहीं वह पहुँचाते। आत्म रूप सब जानकर, बस प्रेम प्रसार किये जाते।।

जो भी जन इस जगत् में, अनुयायी तेरे होंगे। हे प्रिय तुम जान लो, भक्त वे मेरे होंगे।।
प्रिय वत्स तुम तो मेरे, सब भक्तों के आदर्श हो। अनुसरण करेगा वह तेरा, जो भी कहीं मेरा भक्त हो।।
यद्यपि मेरे अंग का, पावन स्पर्श है पा लिया। इस कारण तव पिता का, पाप है पूर्ण नष्ट हुआ।।
तथापि पुत्र अब तुम उनकी, अन्त्येष्टि का प्रबन्ध करो। तुम जैसी सन्तान मिली, उन्हें उत्तम लोक की प्राप्ति हो।।

अपने पिता के आसन पर, हे वत्स अब तुम स्थित होवो। आज्ञा पाकर वेदज्ञों की, निज मन मुझमें लगा ही दो।।
मेरी शरण में ही रहकर, मेरी सेवा अर्थ सब काज करो। इस दैत्य राज्य का भार तात्, अब से तुम सम्भाल लो।।
नारद बोले,
प्रभु की आज्ञा पाकर के, अन्त्येष्टि कर्म पिता का किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों ने, प्रह्लाद का राज्याभिषेक किया।।
देवऋषि आदि के संग, ब्रह्मा जी ने जब देखा। प्रसन्न वदन श्री हरि हुए, उन पावन वचनों के द्वारा।।
सबने मिल प्रभु चरण में, अपने मन का भाव धरा। वह स्तुति प्रभु की करने लगे, और उनसे यह वचन कहा।।
ब्रह्मा बोले,
हे देवों के परमाराध्य, आप हैं सर्व अन्तर्यामी। जीवों के हैं जीवन दाता, मेरे पिता और मेरे स्वामी।।
इस पापी दैत्य ने बहुत दिनों, लोगों को बहुत सताया था। यह सबका ही सौभाग्य है, आपने इसका वध किया।।
मैंने था इसको वर दिया, मेरी सृष्टि का कोई प्राणी। हनन न कर पाये इसका, हुआ मत्त वह निज को अमर मानी।।
तपस्या योग और बल के, कारण था उद्दण्ड हुआ। वेदविधि का इसने सब, उल्लंघन ही था कर दिया।।

इसका पुत्र परम भागवत, शुद्ध हृदय नन्हा शिशु। मृत्यु के मुख से छुड़ा लिया, अति सौभाग्य यह है प्रभु।।
है अति आनन्द और मंगलमय, ही यह भी संयोग प्रभु। आपकी शरणागत है हुआ, निष्काम भक्त यह नन्हा शिशु।।

नृसिंह रूप का आपके, एकाग्र मन से ध्यान करे। सब ही भाँति के भय से, यह रूप आपका मुक्त करे।।
और तो क्या गर मृत्यु भी, उसको मारने को आये। आपकी कृपा से हे प्रभु, उसको यह छू ही न पाये।।
नृसिंह बोले,
दैत्यों को श्री ब्रह्मा जी, ऐसा वर आप न दिया करें। स्वभाव से ही क्रूर हैं जो, उन पर न आप यह कृपा करें।।
उनको वर देना जैसे, सांपों को दूध पिलाना है। उनका मन वांछित वर दे उनको, असुरत्व ही उनका बढ़ाना है।।

नारद बोले,
ब्रह्माजी की पूजा को, स्वीकार प्रभु ने कर लिया। हे धर्मराज इतना कहकर, निज रूप का उन संवरण किया।।
समस्त प्राणियों के लिये, अन्तर्धान वह हो गए। पर निज भक्त के हृदय से, क्योंकर थे वह जा सकते?
तत्पश्चात् भगवत्स्वरूप, ब्रह्मा शंकर प्रजापति को। देवों को मस्तक टेकी, प्रह्लाद ने प्रणाम किया।।
शुक्राचार्य आदि मुनि संग, श्री ब्रह्मा ने यह काज किया। सब दानव और दैत्यों का, अधिपति प्रह्लाद को बना दिया।।

ब्रह्मा आदि सब देवों ने, प्रह्लाद का अभिनन्दन किया। सबने ही फिर मिलकर के, आशीर्वाद उनको दिया।।
प्रह्लाद जी ने भी सबका, यथायोग्य सत्कार किया। तत्पश्चात् सब देवों ने, निज लोकों को प्रस्थान किया।।
हे धर्मराज भगवान के, जय विजय दोनों पार्षद। दिति के पुत्र थे दैत्य हुए, मन में प्रभु से वैर रख।।
भगवान तो उनके हृदय बसे, उनका उद्धार ही चाहे थे। इस कारण ही श्री हरि ने, उन दोनों के वध किये।।

ऋषि शाप के कारण उनकी, मुक्ति फिर भी नहीं हुई। कुम्भकर्ण और रावण बन, पुन: राक्षसी रूप धरी।।
उस काल में प्रभु राम के, पराक्रम से उनका अन्त हुआ। निज पार्षदों पर प्रभु ने, इस भाँति थी करी कृपा।।
युद्ध में प्रभु राम के, बाणों से कलेजा उनका फटा। पूर्व जन्म की याद आई, हरि सिमरन् करते प्राण त्यजा।।
वे ही इस युग में शिशुपाल, और दन्तवक्र बन आये थे। प्रभु के प्रति था वैर भाव, तेरे सामने उनमें समा गए।।

हे धर्मराज श्री कृष्ण से, जिसने शत्रुता भी रखी। अन्त समय में उन सबको, श्री कृष्ण स्मृति ही बनी रही।।
उनके तद्रूप वह हो गए, पापों से वह मुक्त हुए। जैसे भृंगी से ग्रसित कीट, भय से वैसा ही रूप धरे।।
अनन्य भक्ति से प्रभु भक्त, ज्यों श्री हरि को प्राप्त हो। भेदभाव सब भूल कर, भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो।।
शिशुपालादि नरपति भी त्यों, वैर जनित अनन्य चिन्तन से। भगवान के ही सारुप्य को, सहज प्राप्त ही हो गए।।

तूने पूछा था युधिष्ठिर हे, प्रभु द्वेषी शिशुपाल को। प्रभु सारुप्य कैसे मिला, उसका उत्तर तुझे दे दिया।।

ब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण का यह, परम पावन अवतार है। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, दैत्य वध सविस्तार है।।
परम भक्त प्रह्लाद का, पावन चरित है यहाँ कहा। भक्ति ज्ञान वैराग्य का भी, पूर्ण यहां विस्तार कहा।।

संसार की सृष्टि स्थिति प्रलय, सबके स्वामी श्री हरि का। यथार्थ स्वरूप है यहां कहा, और लीला का वर्णन किया।।
देवों दैत्यों के पदों में यहाँ, परिवर्तन काल क्रम से जो हो। इस आख्यान में उसका भी, सविस्तार निरूपण हो।।
प्रभु प्राप्ति का साधन, भागवत धर्म जो है कहा। उसका भी वर्णन यहां, पूर्णतय: है कर दिया।।
अध्यात्म के सम्बन्ध में, जो भी कहीं ज्ञातव्य है। इसमें सब ही है कहा, जो साधक का कर्त्तव्य है।।

प्रभु के पुनीत पराक्रम से, परिपूर्ण यह आख्यान है। जो नर श्रद्धा से सुने इसे, या करे इसीका गान है।।
कर्म बन्ध से जीव वह, स्वत: मुक्त हो जाता है। श्री हरि के श्री चरणों में, परम शान्ति वह पाता है।।

परम पुरुष परमात्म की, नृसिंह रूप इस लीला को। सेनापतियों के सहित, हिरण्यकशिपु वध गाथा को।।
सन्तों के सरताज जो, अस प्रह्लाद के चरित को। एकाग्र मन से पठन करे, और इसको सुने भी जो।।
श्री हरि के अभय पद, वैकुण्ठ को प्राप्त वह होता है। इस पावन आख्यान का, दिव्य प्रभाव ही ऐसा है।।

हे धर्मराज इस धरती पर, हैं श्लाघनीय तुम्हारे भाग्य। साक्षात् पर ब्रह्म पुरुष, मानव रूप कर धारण आज।।
गुप्त रूप से तुम्हारे ही, घर में हैं निवास करें। प्रियतम सखा तुम्हारे बन, वह हर पल तुम्हारे संग रहें।।
संसार के पावन कर्ता ऋषि, और मुनि यहाँ पधारा करें। उनके दर्शन पाने को, चहुं ओर से डेरा यहां करें।।

बड़े बड़े महापुरुष भी, जिनको नित्य ही खोजा करें। माया तो इक लेश मात्र, भी न उनको छू सके।।
परम शान्त आनन्द स्वरूप, अनुभव गम्य पर ब्रह्म वे। परमात्म स्वरूप हैं, वे ही तुम्हारे प्रियतर हे।।
प्रिय सुहृद् वह मातुलेय, पूज्य आज्ञाकारी गुरु। वह कृष्ण हैं सबके आत्म रूप, और स्वयं ही हैं सबके हितु।।

शंकर ब्रह्मा आदि भी सब, निर्णय कर ही न पायें। सारी बुद्धि का जोर लगा, स्वरूप न वर्णित कर पायें।।
फिर अपनी तो बात ही क्या, उनके गुण कैसे गा सकें? मौन भक्ति और संयम के, द्वारा ही हम उन्हें ध्या सकें।।
हैं भक्त वत्सल प्रभु, पूजा हमारी स्वीकार करें। प्रसन्न हों हम पर प्रभु, निज पूजा का अधिकार दें।।

३) त्रिपुर दहन की कथा

नारद बोले,
हे धर्मराज तुम जान लो, हैं एकमात्र आराध्य वही। प्राचीन काल की बात है, मयदानव असुर था मायावी।।
श्री रुद्र देव की कीर्ति, कलंकित करनी थी चाही। तब इन्हीं श्री कृष्ण ने, उनके यश की थी रक्षा करी।।

युधिष्ठिर बोले,
हे देवर्षि यह मय दानव, क्यों नष्ट था यश को कर रहा? किस कार्य से जगदीश्वर, को कलंकित इसने किया?
श्री कृष्ण ने किस विधि, उस यश की थी रक्षा की? कृपा करी के बतायें आप, प्रसंग सहित यह कथा जो भी।।

नारद बोले,
इक बार इन्हीं श्री कृष्ण से, शक्ति प्राप्त की देवों ने। युद्ध में असुरों पर विजय, पाई थी इस विधि देवों ने।।
तब सबके सब असुर मिल, मय दानव की शरण गए। परम गुरु मय दानव थे, सभी असुर मायावियों के।।

शक्तिशाली मय असुर ने, तीन विमान बना दिये। सोने चान्दी और लोहे के, यह तीनों विमान थे।।
विमान क्या यह तीन तो, मानों तीनों पुर थे बने हुए। गति आभास न था उनमें, ऐसे वह विलक्षण थे।।
अपरिमित सामग्रियाँ, उन विमानों में थीं भरीं। उनकी तो अपनी शोभा, बनी बहुत ही निराली थी।।

दैत्य यूथपतियों के मन, तो वैरभाव परिपूर्ण थे। तीनों लोक और लोकपति, उन्हें फूटी आंख न सुहाते थे।।
इन विमानों में छिपकर, ही अब वह रहने लगे। वहाँ से ही वह छिपकर के, सबका नाश करने लगे।।
लोकपालों के सहित तब, गई प्रजा प्रभु शंकर पे। करी प्रार्थना मिल सबने, शरणागत होकर उनके।।
त्रिपुर में रहनेवाले असुर, हैं नाश हमारा कर रहे। हम तो आपके ही हैं प्रभु, रक्षा हमारी कीजिये।।

आर्त पुकार उनकी सुनी, कृपापूर्ण शब्दों में कहा। डरो नहीं यह वाक् कही, बाणों को त्रिपुरों पर छोड़ा।।
सूर्य के मण्डल से ज्यों, असंख्य रश्मियां निकलें। उसी विधि तीनो बाणों से, असंख्य अनेक बाण निकले।।
ऐसा लगे ज्यों उनमें से, अग्नि की लपटें उठ हों रही। उनके कारण त्रै पुरों की, दर्शन बन्द ही हो गई।।

विमान वासी उनका स्पर्श पा, निष्प्राण होकर गिर पड़े। महामायावी मय को पर, उपाय अनेकों ज्ञात थे।।
उन दैत्यों को वह उठा लाया, और अमृत कुण्ड में डाल दिया। वह अमृत कुण्ड भी मय दानव, ने ही था बनाया हुआ।।
सिद्ध अमृत रस के स्पर्श से, अति तेजस्वी हो गए। असुरों के शरीर वह, वज्र सम सुदृढ़ हुए।।
ज्यों दामिनी पल में ही, बादलों को विदीर्ण करे। विद्युत की अग्नि समान, वह इक क्षण में खड़े हुए।।

शोक ग्रस्त हुए महादेव, संकल्प न उनका पूर्ण हुआ। नव युक्ति विजय हेतु की, जब श्री कृष्ण ने यह देखा।।
इन प्रभु विष्णु ने उस पल, गौ का रूप ही धर लिया। बछड़ा बने तब ब्रह्मा जी, इक नव खेल ही रच दिया।।
मध्याह्न काल में दोनों ही, उन तीनों पुरों में गए। उस सिद्ध रस के कूप का, सारा ही अमृत पी गए।।

उसके रक्षक दैत्य तो, इन दोनों को थे देख रहे। फिर भी प्रभु की माया से, वह मोहित थे ऐसे हुए।।
दोनों को वहां जाता देख, भी न उनको रोक सके। मय दानव सब उपायों के, सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता खुद थे।।
प्रभु की इस लीला का सुन, न विस्मय उन्हें न शोक हुआ। शोकाकुल अमृत रक्षकों से, फिर उन्होंने यह वचन कहा।।
देव असुर मनुष्य या, अन्य कोई भी हो प्राणी। अपने पराये या दोनों के, प्रारब्ध के हैं अधीन सभी।।
जो होना था सो हो गया, उसके लिये अब शोक क्या? हे भ्राता गण यह जान लो, भवितव्य न कोई टाल सका।।
तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, अपनी शक्तियों के द्वारा। प्रभु शंकर के युद्ध की, सामग्री को तैयार किया।।

धर्म से रथ ज्ञान से सारथी, वैराग्य से उसकी बनाई ध्वजा। ऐश्वर्य से घोड़े तप से धनुष, विद्या से कवच तैयार किया।।
क्रिया से बनाये बाण उन, भिन्न शक्तिओं का ले आसरा। अन्यान्य सब युद्ध की, सामग्री का निर्माण किया।।

इन सब वस्तुओं से सज धज कर, प्रभु शंकर रथ पे सवार हुए। अपने कर में धनुष बाण, श्री शंकर ने धारण किये।।
अभिजित मुहूर्त में श्री हरि ने, धनुष पे बाण चढ़ा लिया। उन त्रैपुर नामक दुर्भेद्य, विमानों को उन्होने भस्म किया।।
तत्क्षण ही स्वर्ग में, दुदुम्भी नाद होने लगी। शतश: ही विमानों की, उस पल वहाँ पे भीड़ लगी।।

देवता पितर ऋषि और सिद्ध, आनन्द से जय जय गाने लगे। आकाश से वह सब मिल जुल कर, पुष्प ही बरसाने लगे।।
अप्सरा गण भी मुदित हो, नाचने गाने वहाँ लगीं। अपने आनन्दातिरेक को, इस विधि वे दर्शाने लगीं।।
हे धर्मराज उन तीरों पुरों, को जलाया शंकर ने। त्रिपुरारी का यह नाम भी, तब ही पाया शंकर ने।।
ब्रह्मादि की स्तुति सुनते हुए, वह अपने धाम को चले गए। इस विधि त्रिपुरारी ने, वहां से फिर प्रस्थान किया।।

आत्म स्वरूप हैं जगद्गुरु, श्री कृष्ण निज माया से। इस धरा पर मनुज की, सी ही जो लीलायें करें।।
उन पावनी लीलाओं का, ऋषिवर हैं गान किया करते। कहो अब कौन मैं लीला कहूँ, क्या है तेरी इच्छा हे?

४) नारद जी द्वारा युधिष्ठिर को सनातन धर्म की व्याख्या

१) मानव धर्म

शुकदेव बोले,
साधु समाज में सम्मानित, भगवत्स्वरूप प्रह्लाद का। अति पावन चरित्र सुनी, युधिष्ठिर को आनन्द हुआ।।
सन्त शिरोमणि धर्मराज ने, जिज्ञासा फिर अपनी कही। देवर्षि श्री नारद से, उन्होंने पुन: यह प्रश्न करी।।

युधिष्ठिर बोले,
वर्ण और आश्रम धर्म के, सदाचार से युक्त जो। जीवों का सनातन धर्म, सुनने की अब इच्छा हो।।
धर्म से ही तो जीव यह, ज्ञान को भी पाता है। भगवत्प्रेम और साक्षात्, श्री भगवान को पाता है।।
आप स्वयं ही ब्रह्मा जी, श्री प्रजापति के आत्मज हैं। हे नारद तप योग और, समाधि में भी अग्रज हैं।।
इस कारण अन्य पुत्रों की, अपेक्षा विप्रवर आपका। श्री ब्रह्मा जी के द्वारा, अधिक मान ही है होता।।

श्री हरि के परायण आप, सदाचारी महा दयावान्। आप प्रभु शान्त ब्राह्मण, पहचानें धर्म मर्म महान्।।
नहीं कोई अन्य कभी भी, उस गुह्य रहस्य को जान सके। आपकी भाँति द्विज श्रेष्ठ, कौन उसे पहचान सके?
नारद बोले,
सब धर्मों के मूल कारण, हैं स्वयं श्री हरि आप। चराचर जग कल्याण हेतु, वह ही रूप धरी प्रकटे आज।।
निज अंश से ही धर्म और, दक्ष सुता मूर्ति द्वारा। अवतीर्ण होकर श्री हरि ने, श्री बद्रीधाम में किया डेरा।।
तपस्या रत नारायण के, चरणों में मैं नमन करूँ। उन्हीं के मुख से जो सुना, सनातन धर्म वह तुझे कहूँ।।

श्री हरि हैं सब वेदों का, स्वयं ही मूर्तिमान रूप। वेद तत्त्वज्ञ महर्षिगण, की पुण्य स्मृति रूप।।
वह कर्म जिन्हें करने से, आत्म ग्लानि कभी न हो। आत्म प्रसाद ही दें सबको, वही तो धर्म का मूल हों।।

हे राजन शास्त्रों में हैं, धर्म के लक्षण तीस कहे। सत्य दया तपस्या शौच, तितिक्षा विवेक दम शम कहे।।
अहिंसा ब्रह्मचर्य और त्याग, स्वाध्याय और सरलता। सन्तोष समदृष्टि और, महात्मा जन की सेवा सदा।।
शनै: शनै: उपभोगों की, चेष्टा से हो निवृत्ति। अभिमानपूर्ण कर्मों का सदा, फल मिलता विपरीत ही।।
बुद्धि विचार फिर ऐसा हो, परिणाम हो मौन आत्म चिन्तन। अन्न आदि का जीवों में, यथा योग्य ही हो बंटन।।
जीवों में और विशेषकर, मनुजों के ही रूप में। निज आत्म रूप और इष्ट देव, का ही भाव सदा रखें।।
सन्तों के परम आश्रय, श्री कृष्ण भगवान के। नाम गुण लीला कथा का, श्रवण कीर्तन स्मरण करे।।
उनकी सेवा पूजा नमन, और उन्हें हो नमस्कार। उनके प्रति हो दास्य साख्य, आत्म समर्पण का ही भाव।।
ऐसा तीस लक्षण युक्त, आचरण परम धर्म है कहा। इसके पालन से सर्वात्म, श्री हरि प्रसन्न होते सदा।।

जो चोरी आदि अन्य किसी, पाप कर्म को नहीं करें। उन अन्त्यज चाण्डाल और, वर्ण संकर की अब कहें।।
उनके यहां चली आई हैं, कुल की परम्परा से जो। उनके लिये तो वैसी ही, वृत्तियां अनुसरणीय हों।।

वेददर्शी ऋषियों ने जो, युग युग में प्रतिपादित किया। जीवों के स्वभावानुकूल, धर्म की उन्होंने की व्यवस्था।।
वही धर्म उनके लिये, इस लोक में भी हितकारी है। परलोक में भी वही धर्म, उनका कल्याण कारी है।।
स्वभावित वृत्ति का आश्रय ले, स्वधर्म का पालन जो करे। शनै: शनै: उससे भी उठे, और गुणातीत वह हो जाये।।

बार बार जहाँ उपजे फसल, खेत की शक्ति नष्ट हो। अंकुर न पुन: फूट सकें, जो बोया बीज वहां नष्ट हो।।
उसी विधि यह चित्त जो, वासना का है कोष जहां। स्वत: ऊब जाता है वह, विषय सेवन करता करता।।
किन्तु स्वल्प भोगों से तो, ऐसा हो नहीं पाता है। इस विधि से जीव तो, निज तृष्णा और बढ़ाता है।।
ज्यों इक इक घृत की बून्द से, आग नहीं बुझ पाती है। इक साथ ही घी गर अधिक पड़े, तो स्वत: ही वह बुझ जाती है।।

२) वर्णाश्रम धर्म

हे राजन् जिस वंश में, संस्कार अखण्ड सदा होए। ब्रह्मा जी स्वयं जिन्हें, संस्कार योग्य स्वीकार करें।।
जन्म कर्म से शुद्ध हैं वह, द्विज उन्हीं का नाम है। यज्ञ स्वाध्याय दान ब्रह्मचर्य, कर्मों का विशेष विधान है।।

छ: प्रकार के कर्म कहे, ब्राह्मण जन के लिये कर्त्तव्य। अध्ययन अध्यापन दान यज्ञ, करना करवाना है कर्त्तव्य।।
क्षत्रिय को किसी से भी, दान न लेना चाहिये। यथायोग्य कर और दण्ड से, जीवन यापन किए जाइए।।
राज्य का रक्षक क्षत्रिय जो, ब्राह्मण से कर न ग्रहण करे। अन्य सभी से कर और दण्ड, का वह उचित ही भागी भये।।

वैश्य के लिये भी कहें सदा, ब्राह्मण अनुयायी ही वह रहे। गोरक्षा कृषि व्यापार ही, आजीविका उसकी बनी रहे।।
शूद्र का इक ही धर्म है, द्विजातियों की सेवा करे। उसका स्वामी सदैव उसके, जीवन का निर्वाह करे।।
ब्राह्मण का जीवन निर्वाह, चार साधनों से ही हो। वार्ता शालीन यायावर, और शिलोंछन ही यह हों।।
इनमें भी जो अन्त में, कही दो वृत्तियां श्रेष्ठ हैं। सब साधनों से अपेक्षाकृत, यह साधन सर्वश्रेष्ठ हैं।।

निम्न वर्ण का पुरुष जो है, बिना आपत्ति काल पड़े। उत्तम वर्ण की वृत्तियों का, अवलम्बन कभी भी नाहीं ले।।
क्षत्रिय को यह चाहिये, दान कभी भी वह न ले। द्विज की अन्य पांच वृत्तियन्, का आश्रय वह ले सके।।
आपत् काल में जान ले, सबके धर्म बदल जायें। उस काल में सब ही जन, सब वृत्तियाँ अपना पायें।।
ऋत अमृत मृत प्रमृत, और सत्यानृत का आश्रय लें। इनमें से कोई भी वृत्ति धरें, पर श्वान वृत्ति से दूर रहें।।

बाजार में जो पड़ा हो अन्न, या खेतों में हो पड़ा। उन्हें बीन शिलोंछ वृत्ति से, जीवन निर्वाह को ऋत कहा।।
बिन मांगे यदृच्छा जो मिले, शालीन वृत्ति जीवन निर्वाह। आजीविका की इस वृत्ति को, ही है यहाँ अमृत कहा।।
यायावर वृत्ति के आश्रित हो, नित्य मांग कर ले आना। मृत वृत्ति से ही यही, आजीविका का निर्वाह करना।।
कृषि आदि सब साधनों सें, वार्ता वृत्ति का आश्रय लेना। प्रमृत इसी को कहते हैं, यूं जीविका अपनी चला लेना।।

वाणिज्य ही है सत्यानृत, और निम्न वर्ण की सेवा जो। उसको ही कहें श्वानवृत्ति, हे राजन् तुम जान लो।।
यह वृत्ति अति निन्दित है, इसका आश्रय कभी न ले। ब्राह्मण और क्षत्रिय तो, सदा ही इससे दूर रहे।।
क्योंकि ब्राह्मण तो सर्ववेदमय, ही सबमें है कहलाता। और राजा जो क्षत्रिय है, सर्वदेवमय हो जाता।।

शम दम तप और शौच, सन्तोष सरलता क्षमा ज्ञान। भगवत्परायणता सत्य, ब्राह्मण के तू लक्षण जान।।
युद्ध में शौर्य वीर्य धैर्य, तेज त्याग और मनोजय। ब्राह्मण भक्ति प्रजा रक्षण, अनुग्रह क्षत्रिय के लक्षण यह।।
देव गुरु और प्रभु भक्ति, अर्थ धर्म काम रक्षण। आस्तिक उद्योगी व्यवहार कुशल, वैश्य के कहे हैं यह लक्षण।।

विनम्रता और पावनता, निष्कपट हो स्वामी की सेवा। मन्त्र रहित वह यज्ञ करे, चोरी से दूर ही रहे सदा।।
सत्य गौ और ब्राह्मण का, रक्षण उसे करना चाहिये। शूद्र के हैं धर्म यही, शास्त्र में हैं यही कहे।।

जिस जिस वर्ण के लक्षण से, जो भी जीव जाना जाये। किसी अन्य वर्ण वाले में भी, गर वह लक्षण मिल जायें।।
तो उस उस ही वर्ण का, उसको जानना चाहिये। लक्षण से ही वर्ण की, सच्ची पहचान को पाइये।।

३) नारी धर्म

पतिव्रता स्त्री के अब, धर्म भी राजन् तू सुन ले। पति की वह सेवा करे, उसकी अनुगामी सदा रहे।।
पति के बन्धु बान्धव के, भी अनुकूल वह बनी रहे। और पति के नियमों की, भी रक्षा वह सदा करे।।
साध्वी का है धर्म यह, घर की झाड़ बुहार करे। सब विधि सजाये घर को वह, लीपन करके चौक पूरे।।
सदा स्वच्छ सुन्दर रखे, घर की सारी सामग्री को। सुन्दर वस्त्राभूषण से, अलंकृत रखे निज तन को।।

शम और दम आधार बना, पति की इच्छा पूरी करे। विनय और इन्द्रिय संयम का, साध्वी सदा ही आश्रय ले।।
सत्य और प्रिय वचनों से, पति से सम्भाषण करे। प्रेम पूर्वक सदा ही वह, पति देव की सेवा करे।।

यदृच्छा जो भी मिले, उसमें ही सन्तुष्ट रहे। किसी भी वस्तु के लिये, उसका मन न ललचाये।।
दक्ष हो सभी कार्यों में, और धर्म की ज्ञाता हो। सत्य प्रिय सम्भाषण हो, कर्त्तव्य में अप्रमत्ता हो।।
हो पावन और प्रीतियुक्त, हृदय में प्रेम का वास हो। गर पति धर्म से गिरे नहीं, तो उसके संग सहवास हो।।

नारायण ही हैं मेरे पति, ऐसा भाव मन में रखे। श्री लक्ष्मी जी की भाँति, पति सेवा में तत्पर रहे।।
हरि लोक में उसके पति, हरि रूप ही हो जायें। श्री लक्ष्मी की भाँति वह, सदा आनन्दित वहाँ रहे।।

४) ब्रह्मचर्याश्रम

नारद बोले,
गुरुकुल वासी ब्रह्मचारी, निज इन्द्रिय का संयम करे। निम्न दास सम निज को मान, सदा विनम्रता से रहे।।
श्री गुरुदेव के चरणों में, सुदृढ़ अनुराग ही बना रहे। उनके हित में ही सदा, कर्म भी वह करता रहे।।
प्रात: और सांय नियम से, नित्य उपासना वह करे। गुरु अग्नि सूर्य सभी श्रेष्ठ देवों का पूजन करे।।
मन को वह एकाग्र करे, और मौन ही हो जाये। गायत्री जपन के साथ साथ, द्वौ काल की सन्ध्या वह करे।।

श्री गुरु जब बुलायें उसे, तब ही वहाँ वह जाये। पूर्ण अनुशासन में रहे, और वेदों का अध्ययन करे।।
पाठ के प्रारम्भ में, और पाठ के अन्त में। चरणों में निज सीस धरी, उनको वह प्रणाम करे।।
शास्त्रों की आज्ञानुसार, मेखला वस्त्र मृगचर्म ले। जटा दण्ड कमण्डलु यज्ञोपवीत, हस्त कुशा धारण करे।।

सायं और प्रात: वह नित्य, भिक्षा याचना किया करे। जो भी भिक्षा मिल जाये, लाकर गुरु के चरण धरे।।
उनकी आज्ञा पाकर ही, भोजन नित्य वह ग्रहण करे। यदि कभी आज्ञा न मिले, तो उपवास ही वह धरे।।
शील की अपने रक्षा करे, अल्पाहारी और दक्ष बने। श्रद्धावान जितेन्द्रिय हो, स्त्री से सदा दूर रहे।।
स्त्री के वशीभूत जो हों, उनसे भी वह दूर रहे। जितना अनिवार्य ही बन जाये, उतना ही व्यवहार करे।।

ब्रह्मचर्य व्रतधारी जो, गृहस्थाश्रम में नहीं पड़ा। स्त्री चर्चा से उसे, दूर ही रहना चाहिए सदा।।
अति बलवान हैं इन्द्रियाँ यह, बलात् ही यह मन को हर लें। यत्नशील साधक का मन, क्षुब्ध करी निज ओर करें।।
युवती गुरु पत्नियों से, न युवा शिष्य बनवाये केश। उन द्वारा स्नान तनोमार्जन, उबटन आदि का भी है निषेध।।

स्त्री है अग्नि के सम, और पुरुष है घी का घड़ा। एकान्त में तो निज पुत्री के, साथ भी वास निषेध किया।।

जब वह एकान्त में न भी हो, तब भी उतना सम्पर्क करे। आवश्यकता जितनी पड़े, उतनी ही उससे बात करे।।
आत्मानुभव से जाने वह, देह इन्द्रियाँ हैं प्रतीति मात्र। इस निश्चय को पाकर जीव, न जब तक हो पूर्ण स्वतंत्र।।
मैं पुरुष हूं और यह है स्त्री, तब तक यह द्वैत नहीं मिटता। स्त्री संसर्ग में गर रहे, तो भोग्य भाव निश्चित होगा।।

यह शीलरक्षा आदि के गुण, हैं गृहस्थ यति के लिए भी विहित। गुरुकुल में रह गृहस्थ को, सेवा सुश्रूषा है वैकल्पिक।।
ऋतु गमन कारण उसे, वहां से जाना पड़ता है। गुरु आश्रम से अलग हो, गृहस्थ निभाना पड़ता है।।

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का, व्रत हो धारण कर लिया। अंजन और तैल का प्रयोग, वर्जित उनके लिये किया।।
न उबटन का प्रयोग करें, न चित्र बनायें नारी का। मांस और मद्य से भी, न कभी भी हो सम्बन्ध उनका।।
पुष्प माल सुगन्ध चन्दन, इन सबका वर्जन है कहा। सुन्दर वस्त्र आभूषण का, भी करें त्याग उनको कहा।।

इस भाँति व्रत निभाते हुए, वह गुरुकुल में निवास करे। द्विजातीय को चाहिए, यथा शक्ति अध्ययन करे।।
आवश्यकता अनुकूल वेद, वेदांग और कल्पादि का। उपनिषदों का अध्ययन करी, ले ज्ञान अपना वह बढ़ा।।
यदि सामर्थ्य हो प्रभु ने दी, दे गुरु दक्षिणा मुँह माँगी। गृहस्थ वानप्रस्थ या संन्यास में, प्रविष्ट हो पा आज्ञा गुरु की।।
या आजीवन ब्रह्मचर्य, का ही पालन वह करे। गुरु आश्रम में ही वह रहे, सारे व्रत निभाते हुए।।

स्वरूप से हैं प्रभु सबमें स्थित, एक रस वह सदा रहें। न ही प्रविष्ट वह किसी में हों, न ही किसी से निकल सकें।।
फिर भी गुरु अग्नि आत्मा, और उनके आश्रित प्राणी जो। उनमें तो विशेष रूप से, स्वयं विराजमान् वह हों।।
इसलिए उनपर सदा, दृष्टि अपनी टिकाइए। इन सब ही रूपों में, श्री हरि को पूजे जाइए।।

जो ऐसे आचरण का, जीवन में अनुसरण करे। ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ, या संन्यासाश्रम में रहे।।
विज्ञान सम्पन्न होकर वह, परब्रह्म तत्त्व का अनुभव ले। निज आश्रम में ही रहते हुए, प्रभु को वह साक्षात् करे।।

५) वानप्रस्थाश्रम

अब ऋषियों ने जो कहे, वानप्रस्थ के नियम कहूँ। इन पर जो ऋषि मुनि चले, उनकी सहज मैं गति कहूँ।।
अनायास ही ऋषियों के, लोकों को वह जाते हैं। ऋषि लोक महर्लोक, सहज ही वे पा जाते हैं।।

वानप्रस्थ आश्रम को, जो भी जीव धारण करे। जुती हुई भूमि की वह, अन्न आदि फसल को न खाये।।
बिन जोते भी उत्पन्न जो अन्न, असमय में ही हो पका। है वानप्रस्थी के लिये उचित, उसका भी वर्जन कहा।।
अग्नि पे पकाया हुआ अन्न, या कच्चा अन्न भी न खाये। केवल सूर्य से परिपक्व, कन्द मूल फल वह खाये।।

वन आदि में जो भी धान्य, अपने आप ही पैदा हो। उससे ही नित्य निमित्त चरु, और पुरोडाश का हवन हो।।
जब नव अन्न और फल फूल, ऋतु अनुसार मिलने लगें। पूर्व एकत्रित किए हुए, अन्न का फिर वह त्याग करे।।
अग्निहोत्र की अग्नि की, रक्षामात्र के ही लिये। घर पर्णकुटीर या, पर्वत की गुहा का आश्रय ले।।
स्वयं शीत वायु अग्नि, वर्षा और घाम को सहन करे। इस विधि वानप्रस्थी, तितिक्षा का अभ्यास करे।।

सीस जटा धारण करे, केश रोम नख न काटे। मैल भी न धोये तन से, न दाढ़ी मूंछ ही मुंडवाये।।
दण्ड कमण्डलु मृगचर्म, वल्कल वस्त्र भी रखे पास। अग्निहोत्र की सामग्री, भी सब रखे अपने पास।।

बारह आठ चार दो, या इक ही वर्ष पालन करे। विचारवान् को चाहिये, इन नियमों को धारण करे।।
सावधान वह रहे सदा, न बुद्धि बिगड़े कष्टों से। विचार शक्ति न क्षीण हो, तपस्या के क्लेशों से।।

रोग या वृद्धावस्था जब, वानप्रस्थी को घेर ले। वेदान्त विचार सामर्थ न हो, और न ही कर्म निज कर सके।।
तब उसको निज जीवन में, व्रत आश्रय लेना चाहिए। अनशन आदि व्रत का उसे, फिर पालन करना चाहिए।।
अनशन पे बैठने से पहले, आहवनीय अग्नि समेट ले। उन अग्नियों को पुन:, वह आत्म में ही लीन करे।।
मैं ममत्व भाव का, पूर्णतय: ही त्याग करे। तन को उसके कारणभूत, तत्त्वों में फिर लय करे।।

तन के छिद्राकाशों को, आकाश में वह लीन करे। प्राण को वायु ऊष्णता को, अग्नि में वह लीन करे।।
जलीय तत्त्व रक्त पीब कफ, जाकर जल में लय करे। अस्थी आदि ठोस वस्तु, को पृथ्वी में मिला वह दे।।
इसी विधि वाणी और, उसका कर्म सम्भाषण जो। उसके अधिष्ठातृ अग्न में, ही जाकर अब लय वह हो।।
हाथ और उसके द्वारा, जो भी कला और कौशल हो। उनके अधिष्ठाता इन्द्र देव, में ही जाकर लय वह हों।।

चरण और उसकी गति, काल स्वरूप श्री विष्णु को। प्रजापति में लीन करे, रति और उपस्थ को।।
पायु और मलेन्द्रिय का, आश्रय तो मृत्यु ही हो। उसके अनुसार ही यह इन्द्रियाँ, मृत्यु में ही लय फिर हों।।
श्रोत्र शब्द जायें दिशा में, स्पर्श और त्वाक् जा वायु मिले। नेत्र सहित सब रूप जो, हों सभी समाहित ज्योति में।।
मधुर आदि रस के सहित, रसनेन्द्रिय जाये मिले जल में। घ्राणेन्द्रिय वा तन्मात्रा गन्ध, जा के लीन हों पृथ्वी में।।

अपने सफल मनोरथ ले, मन यह चन्द्रमा में जाये। बुद्धिग्राह्य विषयों सहित, बुद्धि यह ब्रह्मा में जाये।।
अहंता और ममता रूप, अहंकार जो क्रिया करे। उन कर्मों के सहित ही, अहं को रुद्र में लीन करे।।
चेतना सहित इस चित्त को, क्षेत्रज्ञ में जा लीन करे। गुण कारण जो विकार भया, जीव ब्रह्म में लीन करे।।

पृथ्वी जल में जल अग्नि में, अग्नि वायु में लीन होएं। वायु आकाश में लय होए, आकाश अहं में लीन होए।।
अहंकार को महत्तत्त्व में, जाकर फिर वह लीन करे। महत्तत्त्व हो अव्यक्त में, अव्यक्त परं में लीन होए।।

अविनाशी परमात्म के, रूप में जो भी शेष रहे। वह चिद्वस्तु ही है आत्म, जान ले मैं ही हूँ वह रे।।
इस तत्त्व को जानकर, अद्वितीय भाव में स्थित होए। ज्यों आश्रय काष्ट जब भस्म हो, अग्नि भी शान्त ही हो जाए।।
शान्त अग्नि जाकर पुन:, स्वरूप में अपने स्थित होए। इसी विधि वह आत्म भी, सबसे उपरत ही हो जाए।।

६) सन्यासाश्रम (यतिधर्म का निरूपण),

अवधूत-दत्तात्रेय मुनि और भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का संवाद-

नारद बोले,

वानप्रस्थी यदि ब्रह्मविचार, की सामर्थ्य से युक्त हो। तन के अतिरिक्त सब त्यज करी, संन्यास में वह प्रवृत्त हो।।
किसी भी व्यक्ति वस्तु स्थान, समय की अपेक्षा न रखे। इक गांव में रात्रि भर विश्राम, का नियम ले पृथ्वी पर विचरे।।
यदि वस्त्र कोई धारण करे, तो वह केवल कौपीन हो। गुप्त अंग आवृत्त रहे, बस इस कारण ही धारण हो।।
जब तक विपदा कोई न पड़े, संन्यासाश्रम का चिन्ह धरे। दण्डादि को छोड़कर, कोई त्यक्त वस्तु न ग्रहण करे।।

संन्यासी का धर्म है यह, सब जीवों का वह हितकर हो। शान्त चित्त वह सदा रहे, और भगवत् परायण हो।।
किसी के आश्रित न होकर, वह अपने आप में आप रमे। एकाकी रहकर इस जग में, सदैव ही वह रमण करे।।
कार्य कारण से अतीत, श्री परं ब्रह्म परमात्म में। इस सम्पूर्ण विश्व को, ही अध्यस्त वह जान ले।।
और जगत् जो सारा है, यह कार्य कारण का स्वरूप। इसमें आत्म पूर्ण देखे, जो है स्वयं ब्रह्म स्वरूप।।

आत्मदर्शी संन्यासी जो, जाग्रत सुशुप्ति सन्धि में। निज आत्म स्वरूप का, आप ही अनुभव वह ले।।
बन्धन और मोक्ष दोनों ही, हैं माया के रूप ही। वास्तविकता जाने इसकी, वास्तव में दोनों कुछ भी नहीं।।
अवश्यम्भावी है मृत्यु, इस नश्वर तन की जान करी। न ही अभिमान करे तन का, न ही अनिश्चित जीवन की।।
सब जीवों की उत्पत्ति और, विनाश का कारण काल ही। प्रतीक्षा करे वह काल की, इस सत्य को जान करी।।

असत्य अनात्म वस्तु का, प्रतिपादन जो शास्त्र करें। है यति के लिये अनिवार्य यह,ख उनसे वह प्रीति नहीं करे।।
जीवन यापन हेतु वह, नहीं आश्रय ले आजीविका का। केवल वाद विवाद को ही, नहीं आश्रय ले वह तर्क का।।
पक्षपात से भी सदा, वह इस संसार में दूर रहे। अपना पराया जान के, नहीं आचरण वह कोई करे।।

शिष्य समूह भी कहें, एकत्रित यति कोई न करे। न ही अनेकों ग्रन्थों का, ही आश्रय वह स्वयं ले।।
बड़े बड़े व्याख्यानों से, संन्यासी सदा दूर रहे। और महान् कर्मों का, भी आरम्भ वह नहीं करे।।
शान्त और समदर्शी है, संन्यासी जो महात्मा। उसके लिए किसी आश्रम का, धर्म न बन्धन बन सकता।।
चाहे तो निज आश्रम के, चिन्हों को वह धारण करे। या फिर यदि उनकी इच्छा हो, उन सबको वह छोड़ दे।।

आश्रम चिन्ह भले न हो, आत्म अनुसन्धान करे। हो तो अति विचारवान्, पर बालक सम ही जान पड़े।।
अति प्रतिभाशाली वह हो, लेकिन उन्मादी सा दीखे। साधारण जीव की दृष्टि से, जैसे कोई मूक ही हो दीखे।।
हे धर्मराज इस विषय में, एक प्राचीन इतिहास कहें। मुनि दत्तात्रेय और भक्त प्रवर, श्री प्रह्लाद सम्वाद कहें।।

प्रभु के महाप्रेमी प्रह्लाद, कुछ मन्त्रीगण को साथ लिये। प्रजा के भाव जानने को, लोकों में विचरण कर रहे थे।।
सह्य पर्वत की घाटी में, नदी कावेरी के तट पर। एक मुनि देखा उन्होंने, जो था पड़ा इस धरती पर।।
अंग अंग पावन मुनि का, था धूलि से धूसरित हुआ। उसके तन की निर्मल कान्ति, को उस धूलि ने था ढका।।

उनके कर्म वाणी आकार, या वर्णाश्रम के चिन्हों से। कोई सिद्ध पुरुष हैं या नहीं, लोग यह नहीं थे समझ सके।।
परम प्रेमी हरि भक्त, प्रह्लाद ने निज सीस झुका। प्रणाम किया उन मुनिवर को, और चरण को सीस से स्पर्श किया।।
फिर विधिवत् उन ऋषिवर की, श्री प्रल्हाद ने पूजा की। जिज्ञासा हृदय में लिये हुए, फिर उनसे यह प्रश्न किया।।
प्रह्लाद बोले,
आपका यह तन हे प्रभु, हृष्ट पुष्ट है दीख रहा। उद्योगी या भोगी सम, स्वस्थ है तन यह आपका।।
नियम है यह संसार का, उद्योग से धन की प्राप्ति हो। धन से ही संसार के, सब भोगों की प्राप्ति हो।।
भोगी जन का तन ही तो, हृष्ट पुष्ट है दीखा करे। स्वस्थ तन के दर्शन का, कोई कारण अन्य न हो सके।।

आपके जीवन में प्रभु, उद्योग के दर्शन नाहीं हों। आप सदा यूं ही पड़े रहें, अत: आपके पास नहीं धन हो।।

फिर आपको भोग यह, प्राप्त कहां होंगे द्विजवर? बिन भोगों के हृष्ट पुष्ट, यह तन आपको हो क्योंकर?
यदि योग्य आप समझें हमें, तो रहस्य बतलाइए? इस स्वास्थ्य का राज क्या, आप हमें समझाइए।।

विद्वान चतुर और सामर्थ, द्विजवर आप हैं दीख रहे। आपकी बातें भी प्रिय, और अद्‌भुत ही हैं हमें लगें।।
सब संसार को कार्यरत, देख के भी समभाव रहें। क्या रहस्य है देव कहें, कोई भाव भी विचलित नहीं करे?
नारद बोले,
जब प्रल्हाद ने महामुनि, दत्तात्रेय से यह प्रश्न किया। अमृत वचन यह सुन कर, सुस्मित उन्होंने फिर कहा।।
दत्तात्रेय बोले,
हे दैत्यराज सब श्रेष्ठ जन, सम्मान तुम्हारा करते हैं। जीव की कर्म प्रवृत्ति का, फल आप भी जाने हैं।।
कर्मों से उसकी निवृत्ति भी, क्या फल उसको है देती। तुम्हरी ज्ञान की दृष्टि से, नहीं कोई बात भी है छिपी।।
अनन्य भक्ति के कारण ही, श्री नारायण तेरे हृदय बसें। ज्यों सूर्य तिमिर सब दूर करे, अज्ञान तेरा वह नष्ट करें।।

तो भी हे प्रह्लाद सुनो, जो कुछ भी मैंने जाना है। अनुरूप ही प्रश्न का उत्तर दूँ, जिस सत् को पहचाना है।।
क्योंकि निज आत्म शुद्धि के, जो भी जहां अभिलाषी हों। हें भक्त श्रेष्ठ तेरा सम्मान, उनको आवश्यम्भावी हो।।

तृष्णा इक ऐसी वस्तु है, जो तृप्त कभी न हो पाये। इच्छानुसार गर भोग मिलें, तो भी कभी पूर्ति न पाये।।
उसी के कारण जीव को, पुन: पुन: जन्म लेना पड़े। जन्म मरण के चक्र में, निरन्तर ही वह भ्रमण करे।।
न जाने तृष्णा ने ही, कितने कर्म मुझसे करवाये। भिन्न भिन्न योनियों में ही, यह बार बार मुझे ले जाये।।

कर्मों के कारण भिन्न भिन्न, योनि ही मिलती रहीं मुझे। अनेक योनि में भटक भटक, कहीं जाकर मनुज की योनि मिले।।
दैववश मिली योनि यह, स्वर्ग और मोक्ष का द्वार है। तिर्यग्योनि या मानवदेह की, प्राप्ति का यह आधार है।।
इसको पाकर यदि पुण्य करे, तो स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये। पाप करें तो पशु पक्षी, आदि की योनि में आये।।
यदि पाप पुण्य से निवृत्त हो, तो मोक्ष भी पा जाये। यदि मिरित दोनों कर्म करे, तो मनुज योनि पुन: पाये।।

स्त्री पुरुष संसार के, कर्म करें सुख के हेतु। दु:ख की निवृत्ति हो जाये, यह ही उनका लक्ष्य देखूँ।।
किन्तु विपरीत ही फल पाकर, वे दु:ख ही और कमाते हैं। उनके दर्शन पाकर हम, उपरति कर्म से पाते हैं।।
सुख ही है आत्म का स्वरूप, तन में ही वह प्रकाशित हो। समस्त चेष्टा की निवृत्ति, का स्थान भी तन ही हो।।
मनोसंस्पर्श से ही उत्पन्न, इन सब भोगों को जानकर। निश्चेष्ट पड़ा रहता हूँ मैं, प्रारब्ध भोग को सीस पे धर।।

अपने सच्चे स्वार्थ को भूल, इस मिथ्या द्वैत को सत् माने। अपने स्वरूप को भूल जीव, इसमें ही नित्य भरमाया रहे।।
अतिघोर भयंकर औ विचित्र, जन्म मरण में घूमा करे। जन्म मरण फिर पुन: जन्म, इस चक्र में ही वह भ्रमण करे।।
ज्यों जल में उत्पन्न तिनकों से, आवृत्त जल देख ही न पाये। अज्ञानी जीव मृगतृष्णावत्, जल के लिये ही भटकाये।।
त्यों ही आत्म से भिन्न वस्तु में, जीव जो सुख को खोजे है। आत्म को छोड़ विषयों की, ओर ही नित्य वह धावे है।।

यह तन आदि तो भक्तश्रेष्ठ, हैं स्वयं ही दैव के पराधीन। उनसे सुख की प्राप्ति और, दु:ख की निवृत्ति जो चाहे जीव।।
अपने कार्यों में कभी, सफल नहीं वह हो पाता। पुन: पुन: किया सभी कर्म, व्यर्थ है उसका हो जाता।।

आध्यात्मिक और अधिभौतिक, दु:खों से सदा भयभीत रहे। यदि भोग की प्राप्ति करे कोई, तो अन्त में मृत्युधर्मा रहे।।
यदि श्रम और अति कष्ट से, किंचित् उपभोग भी प्राप्त किया। थोड़ा सा धन यदि मिल भी गया, तो उन सबका क्या लाभ हुआ?

इन्द्रियों के दास धन के लोलुप, जीव सदा जो रहते हैं। उनके दु:खों के तो नित्य, मुझे दर्शन होते रहते हैं।।
सबके ऊपर सन्देह करें, नहीं चैन की नींद वह सो सकें। जिस सुख को सारे यत्न किये, उस सुख को प्राप्त न कर सकें।।
जो निज जीवन और धन के, लोभ में सदा हैं पड़े हुए। वे राजा शत्रु चोर स्वजन, याचक और काल से सदा डरें।।
पशु पक्षी से भयभीत रहें, अपने से भी आशंकित हों। कहीं धन हानि न करूँ अधिक, इस कारण निज पर संशय हो।।

जिसके कारण शोक मोह, भय क्रोध राग सदा घेरे रहें। कृपणता और श्रम आदि का, नित्य दास वह बना रहे।।
बुद्धिमान् यह जान ले, ऐसे धन की स्पृहा का। और ऐसे जीवन के मोह का, त्याग ही होता है भला।।
मधुमक्खी और अजगर, इस लोक में श्रेष्ठ गुरु मेरे। वैराग्य और सन्तोष के, शिक्षण उनसे हैं प्राप्त किये।।

मधुमक्खी कठिन श्रम से, मधु एकत्रित सारा करे। वैसे ही जीव अति कष्ट पा, धन का संचय करते रहें।।
किन्तु उस सबके स्वामी को, कोई दूजा मार गिराता है। श्रम से था संचित जिसे किया, इक कण भी हाथ न आता है।।
यह देखकर अतिश्रेष्ठ, शिक्षा है मुझको मिली। विषय भोगों से विरक्ति ही, इस जीवन में बहुत भली।।

अजगर समान ही नित्य मैं, निश्चेष्ट ही पड़ा रहूं। दैववश जो मिल जाये, उसमें ही सन्तुष्ट रहूँ।।
और यदि कुछ नहीं मिले, तो भी धैर्य धारण करूँ। बहुत दिन तक निश्चेष्ट हो, कर यूं ही मैं पड़ा रहूँ।।

कभी थोड़ा सा अन्न लूँ, कभी अधिक भी ग्रहण करूँ। स्वादिष्ट कभी नीरस कभी, समत्व भाव से ही खा लूँ।।
कभी अनेकों गुण युक्त, और कभी गुणहीन वह हो। कभी श्रद्धा से युक्त मिले, अपमानपूर्ण कभी वह हो।।
स्वत: कभी दिन में मिले, या रात्रि में मिल जाये। कभी दिन में खाकर एक बार, दूजी बार भी ले लूँ उसे।।

निज प्रारब्ध के भोगों में, सन्तुष्ट सदा मैं रहता हूँ। रेशमी सूती मृगचर्म, जो मिले पहन वह लेता हूँ।।
चीर या वल्कल जो भी मिले, जैसा वस्त्र भी मिल जाये। वह ही धारण मैं करूं, सन्तोष उसी में हो जाये।।
कभी पृथ्वी कभी घास पर, कभी पत्ते पत्थर राख पर। कभी दूजों की इच्छा से सोऊं, महलों में गद्दों खाट पर।।

कभी स्नान मैं कर, चन्दन से सुगन्धित हो जाऊँ। सुन्दर वस्त्र पुष्प माला, आभूषण भी पहन आऊँ।।
रथ हाथी और घोड़ों पर, कभी सवार हो लेता हूँ। कभी पिशाचों के समान, नग्न विचरता रहता हूँ।।
भिन्न भिन्न जीवों का सदा, स्वभाव भिन्न ही रहता है। न ही स्तुति करूँ किसी की, न ही निन्दा में चित्त रहता है।।
मैं तो जीवमात्र का, परम कल्याण ही चाहता हूँ। अपने लिये परमात्म से, सदा एकत्व ही चाहता हूँ।।

जो विकल्प आन्तर उठें, भेद भाव जो दीख पड़ें। बुद्धिमान् के चाहिये, उन्हें चित्त वृत्ति में हवन करे।।
इन पदार्थों में सदा, विविधता जो उत्पन्न करे। ऐसे मन में चाहिये, चित्तवृत्ति को लय करे।।
मन की फिर आहुति दे, सात्विक अहंकार में। सात्विक अहं को महत्तत्त्व, द्वारा माया में हवन करे।।
सब भेद भाव और उन सबका, कारण इक माया ही रहे। ऐसा जान के माया को, आत्म अनुभूति में स्वाह करे।।
आत्म साक्षात्कार कर, आत्म स्वरूप में स्थित यूं हो। आत्म स्थिति पाकर के वह, निष्क्रिय और उपरत ही हो।।

आत्मकथा यह है मेरी, अति गुह्य विषय जानो। लोक और शास्त्र से परे, ही इसको प्रियवर तुम जानो।।
तुम हो अनन्य प्रेमी प्रभु के, इस कारण हैं तुम्हें कही। तेरी भक्ति के कारण ही, तुमको है यह प्रकट करी।।
नारद बोले
दैत्यराज प्रह्लाद ने, श्री दत्तात्रेय की बात सुनी। परमहंस के धर्म की, उन्होंने ऐसी श्रवण करी।।
पूजा करके विदा फिर ली, निज राजधानी की ओर चले। मुदित मनी प्रह्लाद ने, वहाँ से फिर प्रस्थान किये।।

७) गृहस्थाश्रम

युधिष्ठिर बोले,
हे देवर्षि मुझसा गृहस्थ, कैसे पद यह पा सके? बिना विशेष परिश्रम के, कैसे आसक्त यहाँ आ सके?
हे ऋषिवर कृपा करके, साधन मुझे बताइए। जिस राही पायें स्थिति यह, विधि मुझे समझाइए।।
नारद बोले,
गृहस्थाश्रम में रहते हुए, धर्मानुकूल सब कर्म करे। निज धर्म का पालन करता हुआ, महात्मा जन की सेवा करे।।
और सभी कर्मों को फिर, प्रभु के चरण में जाय धरे। सब ही कर्म धर्म अपने, श्री हरि के चरण अर्पित करे।।
जितना भी समय सम्भव हो, विरक्त जनों का संग करे। श्रद्धायुक्त हृदय से फिर, हरि लीला सुधा रस पान करे।।

जिस पल स्वप्न सें जागे जीव, स्वप्न के सब बन्धन टूटें। स्वप्न के नाते रिश्तों की, आसक्ति फिर नहीं रहे।।
ज्यों ज्यों सत् के संग सों, बुद्धि शुद्ध यह हो जाये। तन दारा सुत सम्पद् से, आसक्ति त्यों छुटती जाये।।
इक न इक दिन तो यह सब, नाते छुटने वाले ही हैं। उनमें क्यों आसक्ति यह, जो सब ही मिटनेवाले हैं?

बुद्धिमान को चाहिए, आवश्यकता अनुसार ही। घर और तन की सेवा करे, इससे अधिक अनिवार्य नहीं।।
आन्तर में विरक्त रहे, कोई रंग न उसको रंग सके। बाहर से दीखे रागयुक्त, साधारण सा व्यवहार करे।।
माता पिता बन्धु बान्धव, पुत्र मित्र जाति वाले। और जो कोई भी दूजे, जो कुछ भी कहें या कुछ चाहें।।
बाहर से व्यवहार करे, भीतर से ममता न रखे। अनुमोदन उनका कर दे, पर संग कहीं निज न रखे।।

वर्षा आदि के द्वारा, धरती से उपजे जो अन्न। या फिर पृथ्वी से मिले, धातु आदि जो भी स्वर्ण।।
इस संसार में जो भी द्रव्य, अकस्मात् ही प्राप्त होएं। सब प्रकार के धन भी हैं, प्रभु द्वारा ही दिये हुए।।
ऐसा मन में धार कर, प्रारब्धानुकूल ही भोग करे। संचित उनको नहीं करे, साधु सेवा में लगा वह दे।।

हैं जीव का अधिकार तो, बस उतने से ही धन पर। जिससे क्षुधा उसकी मिट जाये, केवल उतने ही अन्न पर।।
इसके सिवा जो सम्पत्ति, जीव है अपनी मान रहा। है स्तेनवत् व्यवहार उसका, दण्ड का वह अधिकारी बना।।
हरिण ऊँठ गर्दभ बन्दर, चूहा या सांप जो भी प्राणी। मक्षिका या पक्षभ को भी, समझे वह पुत्र समान ही।।
उनमें और उसके पुत्रों में, अन्तर ही कहो तुम कितना है? एक अंशी के अंश हैं सब, सत्य तो केवल इतना है।।

धर्म अर्थ और काम हेतु, नहीं बहुत श्रम करना चाहिए। गृहस्थी का इस दिशा में, संयम तो रहना चाहिए।।
देश काल प्रारब्ध से, जो भी मिले उसे सीस धरे। यदृच्छा जो मिल जाये, सन्तोष उसी में वह कर ले।।
जीवों में भोग सामग्री को, सम भाव से ही वह बांट ले। श्वान पतित चाण्डाल तक, को उसमें वह भाग दे।।

निज भार्या को अपनी मान, जिसपे अधिकार सदा रखे। निर्दोष भाव से अतिथि, की सेवा में लगा उसे दे।।

जिस स्त्री के कारण सब, प्राण तक करें न्यौछावर। निज माता पिता और गुरु, का भी हनन देते हैं कर।।
जिसने निज ममत्व को, उस नारी से हटा लिया। उसने तो नित्य विजयी, भगवान को मानो विजय किया।।

अन्त में तो इस तन को, कीड़े ही शायद खायेंगे। या विष्ठा यह जाय बने, या राख ढेर बन जायेंगे।।
इस तुच्छ शरीर की क्या कीमत, इसका उपभोग जो है नारी। इस तन के कारण ही तो, उसमें आसक्ति है भारी।।
कहां अनन्त वह आत्मा, आकाश से भी विस्तृत महिमा। उसकी और इन सब नश्वर, साधनों की है कहाँ तुलना?

है उचित यही गृहस्थ को, प्रारब्ध से जो भी मिल जाये। या पंचयज्ञ का शेष जो, अन्न से जीवन निर्वाह करे।।
जो बुद्धिमान् किसी अन्य भी, वस्तु में रखें न अपना पन। सन्तों का पद उन्हें प्राप्त हो, और मुक्त हों उनके सब बन्धन।।
निज वर्ण आश्रम में प्राप्त, जो भी विहित वृत्ति मिले। उससे प्राप्त सामग्री से, नित्य ही देवों को पूजे।।
ऋषि मनुष्य भूत पितर, निज आत्म का पूजन करे। इन सबको प्रभु का रूप जान, भिन्न रूपों को आराध ले।।

अपने अधिकारित यज्ञ हेतु, प्राप्त हो सब सामग्री गर। महायज्ञ अग्निहोत्रादि से, प्रभु की पूजा है कर्त्तव्य।।
हे धर्मराज सब यज्ञें के, भोक्ता तो हैं भगवान ही। किन्तु ब्राह्मण के मुख में, हविष्य अन्न जो है पड़ती।।
जैसी तृप्ति उस राही हो, किसी अन्य विधि से हो नहीं। अग्नि के मुख में हवन करी, सामग्री से भी हो नहीं।।

सो ब्राह्मण देव मनुष्यादि, सभी प्राणियों को पूजे। यथायोग्य सामग्री से, उस हृदय बसे हरि को पूजे।।
इन सबकी पूजा में भी, प्रधानता ब्राह्मण की जाने। सर्वश्रेष्ठ रूप प्रभु का, ब्राह्मण को ही वह माने।।
यदि ब्राह्मण धनवान हो, निज सामर्थ्य अनुसार ही। माता पिता उनके बान्धव का, महा श्राद्ध करे वह ही।।
अश्विन मासे कृष्ण पक्षे, उसे यह करना चाहिए। इस विधि ब्राह्मण को, श्राद्ध यह करना चाहिए।।

इसके सिवा अयन विषुव, व्यतीपात और दिनक्षय। द्वादशी के दिन या फिर, चन्द्र सूर्य ग्रहण के समय।।
श्रवण धनिष्ठा अनुराधा, यह नक्षत्र भी जब आयें। वैशाख की शुक्ला तृतीया या, कार्तिक शुक्ला नवमी आये।।
अगहन पौष माघ फाल्गुन, तिथियाँ इन चारों मासों की। कृष्णाष्टमि माघशुक्ला सप्तमी, माघ पूर्णिमा माघा नक्षत्र की।।
प्रतिमास वह पूर्णिमा, जो मास नत्रक्ष से युक्त हो। चित्रा विशात्रा ज्येष्ठार, आदि से ही जो युक्त हो।।
द्वादशी तिति का अनुराधा, श्रावण उत्तराफाल्गुनी। उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपदा, से गर योग हो यह बनी।।
एकादशी तिथि का तीनों, नक्षत्रों से जब योग हो। जन्म नक्षत्र अथवा श्रवण, नक्षत्र से गर योग हो।।
चन्द्र पूर्ण हो या अपूर्ण, यह सभी समय हैं उचित श्रेष्ठ। पितृगणों के श्राद्ध को, यह सभी समय कहे योग्य श्रेष्ठ।।
केवल श्राद्ध हेतु ही नहीं, सब श्रेष्ठ कर्म को उचित यह योग। उपयुक्त कल्याण साधना को, सेब शुभ के कारक हैं यह योग।।

इन सब अवसर पर अपनी, सारी सामर्थ लगाकर के। शुभ कर्म ही करने चाहिए, अन्य सभी भुलकर के।।
इन शुभ संयोगों में, स्नान जप या होम जो हो। नियम व्रत और देवता, ब्राह्मणों का पूजन जो हो।।
या देव पितर मनुष्य और, प्राणीमात्र को अर्पित हो। ऐसे काल में किए कर्म, का फल तो अक्षय जही हों।।

इसी विधि नारी का, पुंसवान व्रत भी जब हो। सन्तान के जातकर्म आदि, निज यज्ञ दीक्षा संस्कार भी हो।।

शवदाह के दिन या वार्षिक, श्राद्ध के उपलक्ष्य में। हैं दानादि शुभ कर्त्तव्य, किसी भी मांगलिक कर्म में।।
हे धर्मराज अब उन उन, स्थानों का मैं वर्णन करूँ। जो धर्म आदि सब श्रेय दे दें, उनकी मैं तुझे बात कहूँ।।
सबसे पावन वह देश है, हे युधिष्ठिर तुम जानो। सत्पात्र की उपलब्धि हो, जहां पे सम्भव तुम जानो।।

सम्पूर्ण चर और अचर जगत्, जिन प्रभु में है विद्यमान। उनकी प्रतिमा जहां पे हो, उसको ही श्रेष्ठ तू देश जान।।
जहां तप विद्या एवं दया, आदि गुणों का वास हो। उनसे युक्त ब्राह्मणों के, परिवारों का निवास हो।।
जहां प्रभु की पूजा हो, पुराण प्रसिद्ध गंगादि बहें। वह सभी स्थान परम पावन, कल्याणकारी तू जान ले।।

पुष्करादि पावन सर, सिद्ध पुरुषों के सेवित क्षेत्र। गया प्रयाग पुलहाश्रम, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्र।।
फाल्गुनक्षेत्र सेतुबन्ध प्रभास, द्वारिका काशी और मथुरा। पम्पासर और बिन्दुसर, बद्रिकाश्रम और अलकनन्दा।।
प्रभु सीता राम जी के आश्रम, अयोध्या चित्रकूट आदि। महेन्द्र और मलय पर्वत, कुल पर्वत हैं जो अन्य सभी।।
जहाँ जहाँ भगवान ने, अवतार कभी भी ग्रहण किये। सब के सब ही यह स्थान, अति पावन वह देश कहे।।
अपना कल्याण जो जन चाहें, इन देशों का सेवन करें। इन स्थानों पे जो पुण्य किये, सहस्त्रगुण फल उनका मिले।।

अब पात्र का निर्णय भी, कैसे हो धर्मराज जानें। गुणज्ञ विवेकी जन तो सदा, प्रभु को ही सत्पात्र मानें।।
चराचर जगत् यह सारा जो, उनका ही तो रूप है। जो भी दर्शन जहाँ पे हों, उनका ही तो स्वरूप है।।
आपके यज्ञ में देव ऋषि, सिद्ध और सनकादि थे। श्री कृष्ण को ही सत्पात्र कहा, अग्रपूजन के लिये।।

असंख्य जीवों से भरा, ब्रह्माण्ड रूप यह महावृक्ष। उसका एकमात्र मूल, तो हैं बस भगवान कृष्ण।।
इस कारण उन एक की ही, पूजा से सबकी तृप्ति हो। सबके हैं आत्म स्वरूप वही, इस कारण सब सन्तुष्टि हो।।

मनुष्य पशु पक्षी ऋषि, देवादि सबके तन रचे। वह ही स्वयं इन जीव रूप, पुरों में शयन हैं कर रहे।।
इस कारण उनका एक नाम, पुरुष भी तुम जान लो। पुरुषों में पुरुषोत्तम भी, एकमात्र बस वह ही हों।।
हैं एक रस अद्वितीय प्रभु, पर भिन्न तनों में वह रहें। तन की विविधता के कारण, न्यूनाधिक से दीख रहे।।

पशु पक्षी आदि शरों की, अपेक्षा मनुज को श्रेष्ठ कहें। उनमें भी तप योगादि, प्रभु के अंश जहां अधिक रहें।।
उनको उतना ही श्रेष्ठ, हे युधिष्ठिर कहते हैं। उतनी ही अधिमात्रा में प्रभु, प्रकाशित वहाँ पे रहते हैं।।
त्रेता आदि युगों में जब, विद्वानों ने यह देखा। जीवों में आपस में ही, कलह क्लेश है होने लगा।।
तब उन्होंने जीवों की उपासना, सिद्धि का साधन किया। श्री हरि की प्रतिमा बना, प्रतिष्ठित उनको कर दिया।।

तब से ही बहुत प्राणी, श्रद्धा और सामग्री से। प्रतिमा को ही प्रभु मान कर, उनकी हैं पूजा करते।।
किन्तु जिस जीव के मन में, जीव के प्रति ही द्वेष रहे। उसको प्रतिमा पूजन से भी, सिद्धि कबहुँ नहीं मिले।।
मनुष्यों में भी ब्राह्मणों को, विशेष पात्र है माना गया। तप विद्या सन्तोष आदि, गुणों का वहाँ भण्डार भरा।।
प्रभु के वेद रूपा तन को, इन गुणन् से धाण वह करें। इस कारण सब जातिन में, ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ कहें।।

हे धर्मराज हमारी और, तुम्हारी तो है बात ही क्या। सर्वात्म श्री कृष्ण ने भी, ब्राह्मण को ही निज इष्ट कहा।।
तीनों लोक उनके चरणों की, धूल से पावन होते हैं। इस कारण ब्राह्मण को ही, सर्वश्रेष्ठ यहाँ कहते हैं।।

८) मोक्ष धर्म

नारद बोले,

कुछ ब्राह्मण जन की निष्ठा, कर्मों में ही बनी रहे। अन्य की तप में वेदाध्ययन, और प्रवचन में ही बने।।
आत्म ज्ञान के सम्पादन, में कुछ अन्य की होती है। और हैं कुछ ब्राह्मण ऐसे, जिनकी योग में होती है।।
श्राद्ध देवपूजा के समय, निज कर्म के अक्षय फल के लिये। गृहस्थ का है कर्त्तव्य यह, ज्ञान निष्ठ के लिये।।
हव्य कव्य वह दान दे, और यदि वह नहीं मिले। तो योगी या प्रवचनकार, को यथायोग्य यथाक्रम से दे।।

देव कार्य में द्वि ब्राह्मण, और पितृ कार्य में तीन को। अथवा दोनों में एक एक, ब्राह्मण के लिये ही भोज हो।।
श्राद्ध कर्म के लिये कहें, अति विस्तार न चाहिये। यदि अधिक धन पास भी हो, प्रदर्शन में न आइए।।
क्रिया का गर विस्तार करी, स्वजनों को धन दे भी दिया। देश कालोचित श्रद्धा पदार्थ, पूजन उचित नहीं हो पाता।।

देश काल जब हो उचित, हविष्यान्न ऋषियों के लिये। श्री हरि को भोग लगाकर के, श्रद्धा से योग्य पात्र को दे।।
ऐसे अन्न को जान लो, अक्षय अन्न ही कहते हैं। समस्त कामना पूर्ति का, साधन उसको ही कहते हैं।।
देवता ऋषि और पितर, स्जन और अन्य जन को। अपने को भी जब अन्न वह दे, परमात्म रूप के दर्शन हों।।

धर्म का मर्म जो जन जानें, श्राद्ध में मांस वह नहीं दें। न ही श्राद्ध काल में, स्वयं ही उसका उपभोग करें।।
क्योंकि ऋषि मुनियों के योग्य, पावन हविष्य अन्न से। पितरों की तृप्ति जैसी हो, नहीं हो सके पशु हिंसा से।।
सत् धर्म की पालना, जो भी जन करना चाहें। इससे बढ़कर कोई अन्य, श्रेष्ठ धर्म वह न पायें।।
किसी भी प्राणी को कभी, मन वाणी तन से कष्ट न दें। किसी प्रकार की भी हिंसा, वह तो कभी न कर सकें।।

यज्ञ तत्त्व के ज्ञाता जो, ज्ञान प्रज्ज्वलित अग्नि में। और आत्म संयम अग्नि में, कर्ममय यज्ञ का हवन करें।।
बाह्य कार्य कलापों से, उपरत वह हो जाते हैं। कोई कर्म भी किसी विधि, उनको छू नहीं पाते हैं।।
द्रव्यमय यज्ञों से जब, कोई यजन करना चाहता है। सभी प्राणियों को ही वह, भयभीत कर जाता है।।
वह सोचें निज प्राणों का, ही पोषण यह करना चाहे। न जाने यह निर्दयी मूर्ख, किस पल मुझको मार ही दे।।

धर्मज्ञ जीव को चाहिए, प्रारब्ध बधित जो मिल जाये। पावन हविष्यान्न से ही, नित्य नैमित्तिक कर्म करे।।
उससे ही वह सर्वदा, नित्य तुष्ट देवों को करे। और स्वयं भी उससे ही, नित्य वह सन्तुष्ट रहे।।
इस लोक में अधर्म के भी, पांच विभाग हैं कर दिये। विधर्म परधर्म आभास, उपमा और छल उन्हें कहें।।
धर्मज्ञ जो भी जीव हैं, इन सबका ही त्याग करे। अधर्म के समान ही, इन सबको भी छोड़ दे।।

अधर्म के पांच विभागों का, अब विस्तार हैं कर रहे। धर्म बुद्धि रख कर भी, जिस कार्य को कभी करे।।
पर निज धर्म की राह में, जो बाधा ही बन जाये। विधर्म उसीका नाम है, उसको कभी भी नहीं करे।।
जो उपदेश हो किया गया, किसी द्वारा अन्य के लिये। उसको ही तुम जान लो, परधर्म है यहाँ कहें।।
दम्भ का नाम है उपधर्म, या उपमा भी उसे कहें। शास्त्र अर्थ विपरीत जो दे, उसको ही हैं छल कहें।।

निज आश्रम धर्म के विरुद्ध, स्वेच्छा से धर्म जिसे माने। अधर्म का ही वह रूप है, आभास ही उसको जानें।।

निज स्वभावानुकूल ही, वर्णाश्रम उचित जो धर्म है। जीवन में परम शान्ति का, जान लो वह ही मर्म है।।
धर्मात्मा पुरुष गर, धनहीन भी हो जाये। तनोनिर्वाह धर्मार्थ भी, धनोपार्जन चेष्टा नहीं करे।।
ज्यों निश्चेष्ठ अजगर की, आजीविका सदा ही है चलती। धर्मात्मा की जीविका का, निर्वाह निवृत्ति है कर देती।।

सन्तोषी आत्म रमणी, निष्क्रिय पुरुष जो सुख पाये। कामकामी धन का लोभी, उस सुख से वंचित रह जाये।।
वह तो कामना पूर्ति को, नित्य व्यथित ही रहता है। धन के लोभ में इधर-उधर वह सदा दौड़ता रहता है।।
ज्यों चरण में पादुका जो पहने, कंकर कांटों से बचा रहे। वैसे ही सन्तुष्ट मन, जग में सदैव ही सुखी रहे।।
जिसने मन में सन्तोष का, कवच सदा है पहना हुआ। उसको जग का कोई दु:ख, कभी कहीं नहीं छू सकता।।

न जाने यह जीव क्यों, जलमात्र से न सन्तुष्ट रहे। जीवन आधार बना उसको, जीवन यापन क्यों न कर ले?
रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के, फेर में सदा पह पड़ा रहे। श्वानवत् वह कृपण हो, गृह आसक्ति में लिप्त रहे।।
असंतोषी ब्राह्मण जो, इन्द्रिय लोलुप है बना हुआ। तेज विद्या तप और यश, सबको क्षीण है कर रहा।।
विवेक भी ऐसे ब्राह्मण का, शीघ्र नष्ट हो जाता है। सन्तोष का धन नहीं जिसपे, सुख धन उनके घर नहीं आता है।।

भूख प्यास मिट जाने पर, खाने की कामना नहीं रहे। अपना काज कर लेने पर, क्रोध भी अन्त में शान्त भए।।
जीव यदि इस पृथ्वी की, सम्पूर्ण दिशाएँ जीत भी ले। सब भोग भी चाहे भोगे वह, लोभ न तब भी क्षीण भए।।
बहुत विषयों के पण्डित राजन्, समाधान करें सब शंका का। शास्त्र अर्थ को चित्त में, सहज में देवें जो बिठा।।
सभापति विद्वानों के, बड़े बड़े विद्वान भी। पतित ही हैं हो जाते, गर मन उनके सन्तोष नहीं।।

काम को जीते हे राजन्, संकल्पों का परित्याग कर। क्रोध पर विजय पाये, कामना को त्याग कर।।
अनर्थ ही अर्थ को जान कर, लोभ को फिर वह छोड़ दे। तत्त्व के दर्शन से पुन:, भय को अपने जीत ले।।
आत्म विद्या के द्वारा, शोक मोह को जीत ले। सन्त उपासना से दम्भ को, और मौन से योग विघ्न जीते।।
शरीर प्राण आदि को फिर, अपने वह निश्चेष्ठ करे। इस विधि हिंसा वृत्ति, अपनी को वह जीत ले।।

अधिभौतिक जो भी दु:ख हों, दया के द्वारा जीत ले। अधिदैविक सब वेदना, समाधि से वश में करे।।
आध्यात्मिक दु:ख को योग बल, द्वारा संयम में लाये। सात्विक भोजन स्थान संग, आदि से निद्रा को जीते।।
तमोगुण और रजोगुण को, सत्वगुण से जीत ले। उपरति से सत्वगुण, पर विजय फिर प्राप्त करे।।
श्री गुरु भक्ति के द्वारा, सुगमता से सब पा जाये। साधक इन सब दोषों से, स्वत: ही मुक्ति पा जाये।।

जिस गुरुदेव ने हृदय में, ज्ञान का दीपक जला दिया। साक्षात् ही हरि हैं वह, जिसने यह प्रकाश दिया।।
जो दुर्बुद्धि जीव उन्हें मनुष्य मात्र ही जान रहा। समस्त शास्त्र श्रवण उसका, कुंजर स्नानवत् व्यर्थ हुआ।।
जिनके चरण कमल का ध्यान, महायोगेश्वर करते हैं। प्रकृति पुरुष अधीश्वर वे, प्रभु स्वयं ही प्रकटे हैं।।
गुरु देव का रूप धरी, अपने आप वह आते हैं। अज्ञ पुरुष भ्रमवश ही इन्हें, जीव ही माने जाते हैं।।

शास्त्रों में नियमों से बधित, जितने भी आदेश दिए। काम क्रोध मद मोह लोभ, मत्सर पे विजय उद्देश्य रहे।।
षड् शत्रु पंच इन्द्रिय मन, यह सब वश में हो जायें। यदि ऐसा होने पर भी, चिन्तन और ध्यान न लग पायें।।

फिर तो सब नियमों को ही, केवल श्रम जानना चाहिए। यह छ: रिपु गर वश में नहीं, तो ज्ञान व्यर्थ ही पाइए।।

ज्यों खेती व्यापार आदि, या उन सबके फल जो मिलें। योग का फल भगवत्प्राप्ति, या मुक्ति नहीं वह दे सकें।।
त्यों ही दुष्ट पुरुष द्वारा, श्रौत स्मार्त जो कर्म किये। कल्याणकारी वह नाहीं हों, प्राय: विपरीत ही फल वह दें।।
अपने मन पर जो पुरुष, विजय कभी पाना चाहे। आसक्ति और परिग्रह त्यजी, संन्यास दिशा में वह जाये।।
एकान्त में एकाकी रहे, जीवन यापन करे भिक्षा से। तन निर्वाह मात्र को, सीमित अल्पाहार करे।।

पावन समतल भूमि पर, अपना आसन बिछा वह ले। सुखकर आसन में सीधे, स्थिर भाव से वह बैठे।।
तत्पश्चात् वह ओम्कार, का जाप ही नित्य करे। इस विधि ध्यान अपना, ओम्कार में टिका वह ले।।
संकल्प और विकल्प को, जब लौ मन न त्याग दे। नासिका अग्रभाग पर, दृष्टि साधक टिका वह ले।।
पूरक कुम्भक और रेचक द्वारा, निज प्राणों को रोक ले। इसी विधि अपान की भी, गति का वह अवरोध करे।।

काम प्रहार से आहत चित्त, इत उत जहां जहां जाये। है उचित यही विद्वान उसे, शनै: शनै: लौटा लाये।।
धीरे धीरे अपने ही, हृदय में उसको लीन करे। अपने विभ्रान्त चित्त को, साधक इस विधि स्थिर करे।।
निरन्तर ही जब इस विधि, अभ्यास वह करता जाता है। अल्प काल में ही उसका, चित्त शान्त हो जाता है।।
ज्यों ईंधन के बिन डाले, अग्नि स्वत: बुझ जाती है। उसी विधि उसकी कामना सब, स्वत: शान्त हो जाती है।।

जब कामना वासना, आहत उसको नहीं करे। और समस्त वृत्तियां भी, उस साधक की शान्त भएं।।
ब्रह्मानन्द के संस्पर्श में, तब चित्त मग्न हो जाता है। ऐसे चित्त का पुन: कहें, उत्थान नहीं हो पाता है।।
धर्म अर्थ और काम का, मूल कारण जिसे कहें। उस गृहस्थाश्रम को, संन्यासी पहले त्याग दे।।
पुन: यदि वह उसका, ही सेवन करने लगता है। निर्लज्ज वह अपने वमन को, श्वानवत् ही खाता है।।

मृत्यु धर्मा अनात्म और, विष्ठा सम तन को माना था। कीड़े समान निकृष्ट जान, उसे राख की ढेरी जाना था।।
वे ही मूढ़ उसे आत्म जान, प्रशंसा जब उसकी करे। माया के इस भंवर में, मूर्ख वह फिर जाय फंसे।।

गृहस्थ जो कर्म का त्याग करे, ब्रह्मचारी जो निज व्रत त्यागे। वानप्रस्थ जो ग्राम बसे, संन्यासी इन्द्रिय लोलुप जो रहे।।
यह चारों ही अपने अपने, आश्रम पे हैं कलंक जानो। व्यर्थ में ही यह ढोंग करें, विभिन्न आश्रयों का मानो।।
प्रभु माया से विमोहित हैं, उनसे द्रोह कोई क्या करे? उनपर तो करुणा करके, उपेक्षा ही बस भली रहे।।

आत्मज्ञान से वासना, निर्मूल है जिसकी सारी हुई। परब्रह्म स्वरूप ही निज आत्म, जिसने है पहचान ली।।
किस विषय की इच्छा कभी, वह ज्ञानी कर पायेगा? या किस भोक्ता की तृप्ति, वह कभी भी चाहेगा?
इन्द्रिय लोलुप होकर वह, क्यों निज तन पोषण करे? वह आत्मरात निज आत्म में, ही हर पल विचरण करे।।

उपनिषदों में इस तन को, इक रथ ही है कहा गया। इन्द्रियां इसके अश्व हैं, उसका स्वामी मन प्रग्रह कहा।।
शब्दादि विषय सब मार्ग हैं, बुद्धि ही कुशल है सारथी। प्रभु द्वारा निर्मित चित्त ही है, बान्धने की विशाल रस्सी।।
दस प्राण ही धुरी हैं इस रथ की, धर्म अधर्म ही हैं पाहिए। इनका अभिमानी जीव है जो, उसको ही इसका रथी कहें।।
उस रथी का धनुष इक, ओम्कार ही है कहा। शुद्ध जीवात्म बाण है, और परमात्म लक्ष्य कहा।।

राग द्वेष और लोभ शोक, मोह भय मद और मान। दूजों में दोष दर्शन, या फिर दूजों का अपमान।।
छल हिंसा और मत्सर, तृष्णा प्रमाद क्षुधा निद्रा। इन सबको और ऐसे अनेक, गुणों को जीव का शत्रु कहा।।
रजोगुणी और तमोगुणी, वृत्तियों की है प्रधानता। कभी कभी सतोगुण का, कहीं पे अंश है उठ आता।।

जब लौ यह तन रथ वश में है, और सब साधन हैं विराजमान्। इन्द्रिय मन आदि सभी, सद् दशा में विद्यमान।।
तब लौ श्री गुरु चरण की, सेवा पूजा से तीक्ष्ण की। ज्ञान खड्ग को ले कर, प्रभु आश्रम पर विश्वास धरी।।
इन रिपुअन् को नष्ट कर, स्वराज्य सिंहासन पर बैठे। शान्त भाव से फिर वह रथी, रथ का भी परित्याग करे।।

गर किंचित् भी प्रमाद हुआ, यह इन्द्रिय रूपा दुष्ट घोड़े। उसका मित्र यह बुद्धि सारथी, उल्टे पथ पे ले रथ दौड़े।।
विषय रूप परिपन्थियों के, हाथों में उसे डाल दें। सारथी और अश्वों सहित, रथ के स्वामी को लूट वह लें।।
मृत्यु के अति भयावह, घोर तिमिर पूर्ण वन में। संसार के अन्धे कूप में, उसको फिर यह फेंक दें।।

वैदिक कर्म भी दो प्रकार, के ही हैं यहाँ कह दिये। प्रवृत्ति कारक एक हैं, दूजे निवृत्ति कारक कहे।।
जो वृत्तियों को उनके ही, विषयों की ओर ले जाते हैं। वह कर्म प्रवृत्ति कारक ही, शास्त्रों में कहलाते हैं।।
वृत्तियां विषयों से लौटाकर, शान्त जो कर जाते हैं। आत्म साक्षात्कार के, योग्य उन्हें जो बनाते हैं।।
वह कर्म निवृत्ति परक ही, शास्त्रों में कहे जाते हैं। निवृत्ति का ही अनुसरण किये, मुक्ति वह जन पाते हैं।।
प्रवृत्ति कर्म की राह को, जो भी जीव अपनाते हैं। पुन: पुन: जन्म मरण के, चक्र में भ्रमते जाते हैं।।
निवृत्ति की राह पे, जीव जो भी कदम धरे। भक्ति या ज्ञान के द्वारा वह, श्री परमात्म को पा ले।।

हिंसामय सकाम कर्म, अग्निहोत्र दर्शन और पूर्णमास। वैश्वदेव बलिहरण सोमयाग, श्येनयाग और चातुर्मास्य।।
द्रव्यमय यह कर्म सब, इष्ट कर्म कहलाते हैं। वेदों में हैं कथित सभी, शुभ कर्म कहे यह जाते हैं।।
देवालय बाग बगीचे कुएं, और प्याऊ का बनवाना। पूर्त कर्म है कहलाता, लोकहित कर्म सब करवाना।।
यब सबके सब ही कर्म, प्रवृत्ति कारक कर्म हैं। सकाम भाव से युक्त हैं यह, अशान्तिप्रद यह कर्म हैं।।

प्रवृत्ति परायण पुरुष की, मृत्यु पे गति अब जान ले। यज्ञ में चरु पुरुडोशादि, द्रव्यों के सूक्ष्म भाग से।।
बने तन को धारण करके, धूमाभिमानी देवों पे जाये। क्रमश: फिर रात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन देवों पे जाये।।
तत्पश्चात् चन्द्रलोक में, जाकर के उनका वास हो। वहां भोग जब पूर्ण हों, अमावस चन्द्र इव क्षीण वह हो।।
वृष्टि द्वारा फिर औषधि लता, अन्न वीर्य का रूप धरे। विपृयान् मार्ग से पुन:, इस संसार में जन्म वह ले।।

गर्भाधान से लेकर के, अन्त्येष्टि तक जो भी होएं। सब जो संस्कार करें, द्विज वही तो कहलायें।।
उनमें से कुछ एक तो, प्रवृत्ति पथ अनुष्ठान करें। कुछ उनमें ऐसे भी हैं, निवृत्ति के पथ पे जो चलें।।
निवृत्ति परायण पुरुष तो, इष्ट पूर्त कर्म के यज्ञ करे। विषय ज्ञानदे इन्द्रियों में, ही जाकर के हवन करे।।

इन्द्रियों के संकल्पों को, अपने मन में लीन करे। मन को जा परा वाणी में, और वाणी वर्ण में लीन करे।।
वर्णों में अ उ और म्, इन तीनों में बसे हुए। ओम्कार में लय करके, ॐ को बिन्दु में लीन करे।।
बिन्दु को फिर नाद में, नाद सूत्रात्मा प्राण में। प्राण को फिर वह लीन करे, जाकर के परब्रह्म में।।

निवृत्ति निष्ठ ज्ञानी क्रमश: अग्नि सूर्य दिन सायंकाल। शुक्लपक्ष पूर्णमासी, उत्तरायणाभिमानी देवों के पास।।
जाकर के ब्रह्म लोक में, ही पहुँच वह जाता है। भोग क्षीण हो जाने पर, स्थूल भी लय कराता है।।
सूक्ष्म उपाधि फिर अपनी, तैजस् में लय कर जाता है। फिर तैजस् को कारण में, अपने लय कर जाता है।।
कारण में फिर प्राण रूप, वह स्थित पुन: हो जाता है। इस विधि इस उत्थान का, क्रम यह चलता जाता है।।
फिर सबके साक्षी रूप में, सर्वत्र हैं जो बसे हुए। उस साक्षी में ही जाकर के, कारण उपाधि लय करे।।
तत्पश्चात्, तुरीय रूप से, स्थित स्वत: हो जाता है। सब दृश्यों के लय होने पर, शुद्ध आत्म रह जाता है।।
यह ही है वह मोक्षपद, शास्त्र जिसको कहते हैं। निर्वाण नाम इसीका है, मोक्ष जिसे यहां कहते हैं।।

देवयान मार्ग है यह, इस मार्ग पे जो भी चले। संसार से वह आत्मोपासक, पूर्णतय: निवृत्त भए।।
क्रमश: इक दूजे देवों पे, वह साधक इस विधि जाता है। ब्रह्मलोक में जाकर वह, स्वरूप स्थित हो जाता है।।
प्रवृत्ति परायण के समान, नहीं पुन: पुन: वह आता है। जन्म मरण के चक्र से, फिर वह मुक्त हो जाता है।।

पितृयान् और देवयान्, दोनों ही मार्ग वेदों में कहे। दोनों ही पथ के विस्तार, वेद तीनों में कर दिये।।
शास्त्र दृष्टि से तत्त्वत:, जो भी इसको जान ले। तन में रहते हुए भी वह, मोहि न उससे हो सके।।

उत्पत्ति से पहले यह तन, है कारण रूप में विद्यमान्। उसका अन्त जब हो जाये, रहे अवधि रूप में विद्यमान्।।
भोग्य रूप में जो स्वयं, बाहर बैठा है रूप धर। भोक्ता रूप से स्वयं ही, जो भीतर भी करे है घर।।
ऊंच नीच ज्ञाता और ज्ञेय, वाणी और जो वाणी का विषय। जो कुछ भी उपलब्ध हो, प्रकाश आदि जो भी विषय।।
तत्त्ववेत्ता स्वयं ही, यह सारे ही रूप धरे। इसीसे मोह तनिक भी, स्पर्श न उसको कर सके।।

दर्पण में जो प्रतिबिम्बित हो, विचार युक्ति बधित ही हो। अस्तित्व नहीं वहां वस्तु का, फिर भी वस्तु का दर्शन हो।।
वैसे ही इन्द्रिय ग्राह्य है जो, वस्तु का भेद भाव है। विचार युक्ति आत्म अनुभव, से असम्भव ही वह है।।
वस्तुत: न होने पर भी, वह सत्य सा प्रतीत होए। कुछ नहीं होने पर भी, भ्रान्ति सी उसकी होए।।

पृथ्वी आदि महाभूत से, तन निर्मित यह नहीं हुआ। न तो उनका संघात है यह, न विकार परिणाम ही था।।
न पृथक है निज अव्ययों से यह, न ही यह उनके अनुगत है। अतैव इसे मिथ्या कहें, नहीं किसी भाँति भी यह सत् है।।
इसी भाँति तन के कारण, पंचभूत भी अव्ययी हैं। निज अव्यव सूक्ष्मभूत से, भिन्न नहीं यह किसी विधि हैं।।
बहुत खोज करने पर भी, अस्तित्व अव्यवी का नहीं मिले। असत् ही है वह वास्तव में, सत् कभी न हो सके।।

इक परम तत्त्व अज्ञान वश, जब लौ अनेक सा भास रहा। तब लौ ही यह भ्रम भी, जान लो रहता है बना।।
जो वस्तु पूर्व में थी, अब भी है वह बनी हुई। स्वप्न में जाग्रत स्वप्न की, अनुभव ज्यों भिन्न भिन्न होती।।
उनमें भी तो विधि निषेध, का विधान भी बना रहे। त्यों ही जब लौ इस भिन्नता, के अस्तित्व का मोह रहे।।
तब लौ ही यहां पे भी, विधि निषेध के शास्त्र बने। वास्तव में है एक तत्त्व, नहीं भेद भाव कहीं हो सके।।

विवेकी स्वप्न अनुभूति से, आत्म अद्वैत को जान लें। जाग्रत स्वप्न सुशुप्ति का, त्रैविध साक्षात्कार करें।।
द्रष्टा दर्शन दृश्य भेद, स्वप्न रूप मिटा वह दें। अद्वैत भी यह है त्रिविध, भाव क्रिया द्रव्य अद्वैत कहें।।

ज्यों वस्त्र वास्तव में तो, सूत्र रूप ही होता है। वैसे ही सब कार्य भी, कारण मात्र ही होता है।।
वास्तव में कहीं भेद नहीं, एकत्व में ही सब होता है। समस्त एकता का विचार, भावाद्वैत ही होता है।।

हे धर्मराज मन वाणी तन, से जो भी कर्म जहाँ होएं। वास्तव में स्वयं परब्रह्म, परमात्म में ही सब होएं।।
इस भाव में सब ही कर्म, समर्पित चरणन् में जब हों। इस कर्ण समर्पण को, क्रिया अद्वैत तुम मान लो।।
दारा सुत बन्धु बान्धव, संसार के अन्य सभी प्राणी। अपने स्वार्थ और भोग भी, एक ही हैं जिसने जानी।।
अपने और पराये का, भेद कहीं कोई है नहीं। द्रव्याद्वैत जिसे कहें, वास्तव में वह है यही।।

जिस द्रव्य का जिस काल में, जिस पुरुष को हो अधिकार। जिस भी उपाय से उसका, ग्रहण उचित हो शास्त्रानुसार।।
उससे ही उसको सभी कार्य, सम्पन्न करने चाहिए। आपत्ति काल को छोड़ कर, नहीं अन्य में भरमाइए।।
गर भगवद् भक्त जीव करे, वेदोक्त इन कर्मों को। घर में ही रहकर करे, अन्य कर्म अनुष्ठानों को।।
घर में रहते हुए ही गर, कृष्णार्पित सब कर देता है। तो भी वह श्री कृष्ण की, गति प्राप्त कर लेता है।।

निज स्वामी श्री कृष्ण की, कृपा और सहायता से। हे राजन् तुम महा कठिन, विपदा पार हो कर चुके।।
उन्हीं के चरण कमल को सेव, सब भूमण्डल को है जीता। राजसूयादि महायज्ञों, को भी है सम्पन्न किया।।
त्यों ही पूर्व महाकल्प में, गन्धर्व था पूर्व जन्म में मैं। उपबर्हण मेरा नाम था, सम्मानित था निज जन में मैं।।

मेरे सौन्दर्य सुकुमारता, और माधुर्य अपूर्व थे। दर्शन था अति आकर्षक, तन में सुगन्ध के स्त्रोत थे।।
स्त्रियों का था अतीव प्रिय, सदा प्रमाद में रहता था। अति विलास पूर्ण था मैं, विषयों में लीन ही रहता था।।
एकबार देवों के यहाँ, ज्ञान का इक महा सत्र हुआ। बड़े-बड़े प्रजापतियों का, आगमन था उसमें हुआ।।
प्रभु की लीला गान अर्थ, प्रबन्ध उन्होंने था किया। अप्सरा और गन्धर्वों को, उन्होंने वहाँ बुला लिया।।

मुझको यह तो ज्ञात था, सन्तों का यह समाज है। प्रभु का लीला गान ही, एकमात्र वहाँ काज है।।
फिर भी स्त्रियों को संग लिये, लौकिक गीत ही गाता हुआ। उन्मत्त की भाँति ही, मैं सन्त सभा में जा पहुँचा।।
देवों ने जब यह देखा, उनका अनादर कर यह रहा। निज शक्ति से तब उन्होंने, मुझको शाप यह दे दिया।।
निज मद में ऐ मूढ़ तूने, अवहेलना है हमारी करी। तत्काल ही नष्ट यह हो जाये, सौन्दर्य सम्पदा सब तेरी।।
शीघ्र ही तुम शूद्र बनी, धरती पर अब जाय गिरो। तव मूर्खता का जानो, यह ही तो उचित फल हो।।

उस शाप के प्रभाव से, दासी पुत्र बन मैं जन्मा। किन्तु उस शूद्र के जीवन में, सन्तन् का सत्संग मिला।।
उनकी सेवा सुश्रूषा का, फिर ऐसा प्रसाद मिला। अगले जन्म श्री ब्रह्मा का, पुत्र बनने का सौभाग्य मिला।।

सन्तों की अवज्ञा फिर, सेवा का अनुभव पाया। प्रत्यक्ष रूप से दोनों का, निज जीवन में दर्शन पाया।।
सन्तन् की सेवा से ही, प्रसन्न हरि हो जाते हैं। गृहस्थों का पाप नाशक, यह धर्म तुम्हें बताते हैं।।
इस धर्म का आचरण कर, गृहस्थ स्वत: तर जाते हैं। अनायास संन्यासी सम, परम पद वे पाते हैं।।

इस जीव लोक में धर्मराज, हैं प्रशंसनीय तेरे भाग्य। क्योंकि तव गृह में साक्षात्, परमात्म का है गुप्त वास।।
संसार को पावन जो करें, वह ऋषि मुनि आपके घर आए। प्रभु का दर्शन पाने के लिए, चहुँ दिश से स्वत: चले आए।।

बड़े-बड़े महापुरुष भी, निरन्तर जिसको खोजा करें। परमानन्द स्वरूप शान्त, माया के लेश से रहित रहें।।
वह ही तुम्हारे प्रिय सुहृद्, मातुल्य पूज्य आज्ञाकारी। श्री कृष्ण स्वयं आत्म स्वरूप, बने गुरु हम बलिहारी।।

शंकर और श्री ब्रह्मा भी, सारी बुद्धि निज लगा चुके। वे यह हैं इस रूप में, नहीं उनका वर्णन कर सके।।
फिर हमारी तो बात ही क्या, हम कैसे कुछ भी कह सकें? मौन भक्ति और संयम से, ही हम उनकी पूजा करें।।
कृपा कर प्रभु हमारी, इस पूजा को स्वीकार करें। भक्त वत्सल श्री हरि, हमसे सदा प्रसन्न रहें।।
शुकदेव बोले,
देवर्षि श्री नारद का, प्रवचन महान् यह सुन करी। हे राजन् युधिष्ठिर के, हृदय आनन्द आवेग भरी।।
प्रेम विह्वल होकर उन्होंने, देवर्षि की पूजा की। और प्रभु श्री कृष्ण की, आरती भी उनके संग ली।।
श्री कृष्ण और युधिष्ठिर से, फिर देवर्षि ने ली विदा। सत्कार उनका पाकर के, वहां से उन प्रस्थान किया।।
श्री कृष्ण ही परब्रह्म हैं, और परमात्मा हैं स्वयं। आश्चर्यचकित थे धर्मराज, सुनकर हतप्रभ वह हुए स्वयं।।

हे परीक्षित्, इस विधि, सब वर्णन तेरे लिये किया। दक्षसुताओं के वंशों का, अलग अलग सब कह दिया।।
उन्हीं के वंश में देवता, असुर मनुज आदि हुए। चराचर सृष्टि की रचना, के विस्तार तुम्हें कह दिए।।

इति सप्तम स्कन्ध

** मै कभी ना चांद सितारों का मोहताज रहा, अपनी मेहनत के सदा मैंने उजाले देखे,*
और देखकर लकीरों को उसने वही छोड़ दिया, जब भविष्य बतानेवाले ने मेरे हाथ के छाले देखे।
** वक्त चाहे नदियों को उछाले या उडाये पहाड, उम्र का काम गुजरना है गुजर जायेगी।*
** चार दिन की दुनिया में, क्या मोल जिन्दगी का, इस जमीं का हर इन्सान बुलबुला है पानी का।*
** काश उजाले पर हमारा भी कोई हक होता, तो न जीने पर हमारे जिन्दगी को शक होता।*
** बुलन्दी का रथ हो प्रगति का पथ हो, राह सदा निष्कंटक हो,*
सिर पर दुआओं के हाथ हो, और जिन्दगी मस्त मस्त हो।
** प्यार की है चाह मगर यह सवाल है, बेइन्तहा फैला हुआ है नफरत का जाल।*
बस इतनी कीमत है ईमानदारी की, जिन्दगी जीते है सब उधारी की।
** आंखों से जो अश्क बहेंगे वो मेरे गम की दास्तान कहेंगे।*
** ख्वाब काफी नही उम्र भर के लिये, चलना भी लाजिमी है सफर के लिये।*
** रात के बाद नये दिन की सुबह नजर आयेगी, दिन नही बदलेंगे मगर तारीख बदल जायेगी,*
मेरी गरीबी को तू शराफत का नाम न दे, मेरा वक्त बदल गया तो सबकी राय भी बदल जायेगी।

अष्टम स्कन्ध

विषय सूची

१) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन ५४०

२) गजेन्द्र मोक्ष ५४२

३) देवताओं और असुरोंके बीच सन्धि ५५०

४) समुद्र मन्थन ५५६

- १) समुद्र मन्थन का उद्योग ५५६
- २) कच्छप (कूर्म) अवतार ५५७
- ३) धन्वन्तरी अवतार ५५८
- ४) मोहिनी अवतार ५६४
- ५) देवासुर संग्राम ५६७

५) शिव को भगवान के मोहिनी रूप का दर्शन उसपर शिव का मोहित होना ५७४

६) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन व मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण ५७७

७) दैत्यराज बलि की स्वर्ग पर विजय ५८०

८) देवमाता अदिति का पयोव्रत और भगवान का प्रकट होकर अदिति को वर देना ५८३

९) वामन भगवान का अवतार ५८९

१०) मत्स्यावतार ६०५

** जिन्दगी की राह में आगे चलते जाना, हर पल मुडके ना देख,*
बिते हुये पल जो नही था तेरा, तुझे नहीं मिला जो मिल गया उसके साथ गुजार हर पल अपना।

अष्टम स्कन्ध

साक्षात् हरि आप स्वयं, प्रकटे हैं कृष्ण के रूप में। हैं आदि कारण सबका, श्रीमन्नारायण रूप में।।

१) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन

परीक्षित् बोले,
स्वयंभु मनु का गुरु देव, वंश विस्तार मैंने सुन लिया। मरीचि आदि प्रजापतियों ने, उनकी कन्याओं द्वारा।।
कुल परम्परा प्रचलित की, यह भी मैंने सुन लिया। कृपा करी अन्य मनुओं का, अब वर्णन मुझे दें सुना।।
ज्ञानी महात्मन् जिस जिस भी, मन्वन्तर की बात करें। प्रभु के जिन जिन अवतारों, लीलाओं का वर्णन करें।।
कृपा करी हे द्विजवर आप, उनकी हमें बताइए। श्रद्धा से हम सुनना चाहें, सुधा रस पान कराइए।।

बीते हुए मन्वन्तरों में, प्रभु ने जो लीलाएँ करीं। या विश्वभावन प्रभु की, आज जो लीला हो रही।।
वर्तमान मन्वन्तर में, जो लीला वह कर रहे। अथवा आगामी समय में भी, प्रभु जो लीला करेंगे।।
वे सब हमें सुनाइए, हम पिपासु आये हैं। प्रभु लीला के जिज्ञासु हम, उनको ही सुनना चाहे हैं।।
शुकदेव बोले,
इस कल्प में हे राजन्, छः मन्वन्तर हैं बीत चुके। पहले मन्वन्तर के तो, विस्तार से वर्णन कर दिये।।
स्वयंभुव उस मन्वन्तर में, देवादि सब उत्पन्न हुए। उन सबकी तुम पहले ही, विस्तृत कथा हो सुन चुके।।
मनुपुत्री आकूति से, यज्ञपुरुष के रूप में। धर्मोपदेश करने के लिये, स्वयं हरि थे प्रकट हुए।।
देवहूति से कपिल रूप धर, प्रकटे ज्ञानोपदेश को। कपिल मुनि के रूप में, अवतार प्रभु ने ग्रहण कियो।।

प्रभु कपिल का वर्णन हे राजन्, मैं पहले ही हूँ कर चुका। अब श्री यज्ञपुरुष ने, आकूति गर्भ से रूप धरा।।
फिर जो भी कुछ उन्होंने किया, उसका वर्णन करता हूँ। प्रभु के इस अवतरण का, विस्तृत वर्णन मैं करता हूँ।।
कामना और उपभोगों से, उपराम स्वयंभू मनु हुए। ऐसी विरक्ति उठी मन में, उन्होंने राज्य भी छोड़ दिये।।
निज पत्नी शतरूपा संग, तपस्या करने वह चले। वन में जाकर के उन्होंने, अति घोर व्रत ले लिये।।

सुनन्दा नदी के तट पर वह, एक पांव पर खड़े रहे। शतवर्ष वह इस विधि, घोर तपस्या करते रहे।।
तपस्या करने के समय, प्रभु की स्तुति वह करते थे। प्रतिदिन वह इस विधि, गुणगान प्रभु का करते थे।।
मनु बोले,
स्पर्शमात्र पा चेतना का, सम्पूर्ण विश्व चेतन भए। किन्तु यह सारा विश्व जिन्हें, चेतना दान न कर सके।।
जो विश्व के सो जाने पर, प्रलय में भी जागृत रहें। जिनको न जान सके यह विश्व, पर जो इस सब को जानें।।
वह ही तो परमात्म हैं, आत्म स्वरूप वह हैं सबके। उनसे ही चेतना पा, चराचर सब चेतन भए।।

यह सम्पूर्ण विश्व और, इसके चराचर सब प्राणी। हैं परमात्म से ओत् प्रोत, वह सर्वव्याप्त सबके स्वामी।।
संसार के किसी पदार्थ से, किंचित् भी मोह न कभी करें। त्याग भाव से ही सदा, जीवन निर्वाह हेतु भोगें।।
यह धन किसीका कब हुआ, इसकी तृष्णा काहे करे? सब तृष्णा को त्याग कर, इस जग में सदा विचरण करे।।

सबके साक्षी हैं प्रभु, पल पल वह सबको देखें। मन बुद्धि वृत्तियाँ इन्द्रियां, उनको कभी न देख सकें।।
अखण्ड ज्ञान ज्योति उनकी, खण्डित कोई न कर सके। सब प्राणिन के हृद्देश में, ईश्वर का नित्य वास रहे।।
पर असंग वह स्वयं हैं, स्वयं प्रकाशित सदा रहें। उन परमात्म की शरण, ही जीव सदा ग्रहण करे।।

जिसका न आदि अन्त कहीं, उनका मध्य कहाँ होगा? न अपना पराया है जिनका, बाहर भीतर भी क्या होगा?
वह विश्व के आदि अन्त मध्य, वही अपने पराये बाह्य भीतर। अपनी सत्ता से सब ही बनें, विश्व को सत्तावान वह कर।।
वही अनन्त हैं वास्तविक सत्य, परं ब्रह्म वह स्वयं हैं। आत्म बनी वह सबमें बसें, स्वरूप सभी का स्वयं हैं।।

वही परमात्म हैं विश्व रूप, अनन्त ही उनके नाम हैं। सर्वशक्ति स्वयंप्रकाश, अजम वह पुरुष पुराण हैं।।
निज माया शक्ति द्वारा ही, विश्व सृष्टि स्वीकार करें। अपनी विद्या शक्ति से, फिर उसका स्वत: वह त्याग करें।।
निष्क्रिय और सत् स्वरूप, मात्र स्वयं वह रहते हैं। सब रूप आप वह धर कर, नहीं लिप्त किसी से होते हैं।।

इस कारण ऋषि मुनि सारे, नैष्यकर्म सिद्धि चाहें। कर्मयोग अनुष्ठान करी, उनसें एकत्व पाना चाहें।।
कर्म करते करते ही पुरुष, अन्त में निष्क्रियता पाये। कर्मों के परिणाम में, वह कर्मों से मुक्ति पाये।।
शक्ति स्वरूप श्री हरि स्वयं, सारे कर्म ही करते हैं। हैं आत्मलाभ से पूर्णकाम, कर्मन् आसक्त न होते हैं।।
जो उनका ही अनुसरण करें, और कर्मों से अनासक्त रहें। उनकी भाँति जो कर्म करें, कर्म बन्ध से मुक्त भएं।।

ज्ञान स्वरूप हैं स्वयं प्रभु, नहीं अहंकार का लेश वहाँ। सर्वत: हैं परिपूर्ण वह, नहीं किंचित् कहीं भी कामना।।
बिन किसी बाह्य प्रेरणा के, स्वच्छन्द रूप से कर्म करें। निज मर्यादा में स्थित सदैव, जीवों को नित्य ही शिक्षा दें।।
सब धर्मों के हैं प्रवर्तक वह, और उनके जीवन दाता हैं। उन प्रभु की शरणागत मैं, वह ही मेरे जीवन त्राता हैं।।
शुकदेव बोले,
एकदा स्वयंभुव मनु, एकाग्र चित्त टिकाकर के। इस मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप, श्रुति का पाठ थे कर रहे।।
असुरों ने सोचा नींद में, अचेत से हैं बुड़बुड़ा रहे। उनपर वह इस विधि टूटे, मानों उन्हें खा ही जायेंगे।।

अन्तर्यामी प्रभु यज्ञपुरुष, निज पुत्र को साथ लिए। याम नामक पुत्र संग, देवों के यहाँ जा पहुँचे।।
उनका भक्षण करने के लिए, राक्षस जन जो वहाँ आए थे। उन सब ही असुरों के, उन्होंने फिर संहार किये।।
फिर वह इन्द्र के आसन पर, स्वयं प्रतिष्ठित हो गए। इस विधि वह स्वर्ग का, शासन स्वयं करने लगे।।

दूजे जो मनु हुए राजन्, स्वरोचिष थे अग्निपुत्र। द्युमान सुषेण रोचिष्मान, आदि थे उनके ही पुत्र।।
इन्द्र का उस मन्वन्तर में, नाम था जानो श्री रोचन। तुषित आदि यह सभी थे, वहाँ प्रधान देवता गण।।
ऊर्जस्तम्भादि वेदवादी, सप्तर्षि वह स्वयं थे। उस मन्वन्तर के जानो, ऋषि मुनि जन ऐसे थे।।

वेदशिरा नामक ऋषि की, पत्नी का नाम था तुषिता। उसके गर्भ से प्रभु ने स्वयं, अवतार था ग्रहण किया।।
विभु नाम से ही जानो, अवतार यह जाना गया। जग में विभु नाम ही, उनका यह प्रख्यात हुआ।।
जीवन भर इस रूप में, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। उनके आचरण को देख कर, अन्य ने भी अनुसरण किये।।
अठासी हजार व्रतनिष्ठ, ऋषियों ने भी पालन किया। ब्रह्मचर्य के व्रत को ही, उन जीवन में धारण किया।।

तीसरे मनु थे श्री उतम, वह प्रियव्रत के पुत्र थे। पवन सृञ्जय अग्निहोत्रादि, उनके पुत्रों के नाम थे।।
उस मन्वन्तर में वसिष्ठ के, पुत्रों के प्रमद आदि थे नाम। सात पुत्र थे सप्तर्षि, सबके सब ही थे महान्।।
सत्य देवश्रुत और भद्र, थे देवों के गण प्रधान। उस मन्वन्तर में सत्यजित, था जानो इन्द्र का नाम।।

थी धर्म की पत्नी सुनृता, उसके गर्भ से पुरुषोत्तम जन्मे। सत्यदेव के नाम से, अवतार उन्होंने ग्रहण किए।।
सत्यव्रत नामक देवगण, भी उस काल में उन संग थे। उस समय इन्द्र सत्यजित के, श्री भगवान फिर सखा बने।।
असत्यपरायण दु:शील, दुष्ट यक्ष और राक्षसों का। जीव द्रोही भूतगणों का, उन्होंने तब संहार किया।।

उत्तम के थे वह सगे भाई, तामसा था चौथे मनु का नाम। पृथु ख्याति नरकेतु आदि, थे उनके दस पुत्रों के नाम।।
सत्यक् हरि और वीर, थे देवों के प्रधान गण। त्रिशिख इन्द्र का नाम था, ज्योतिर्धामादि थे सप्तर्षि जन।।
उस तामस मन्वन्तर में, विधृति के पुत्र थे यह। वैधृति आदि नाम के, अन्य भी बहुत से देव हुए।।
समय के फेर से नष्ट प्राय:, वेद उन्होंने बचाये थे। वैधृति जन इस हेतु ही, शक्ति निज सारी लगाये थे।।

इस मन्वन्तर में हरिमेधा, ऋषि की पत्नी थी हरिणी। उसके गर्भ से हरि रूप में, प्रभु ने थी अवतार ली।।
इसी अवतार में ग्राह से, गजेन्द्र की थी रक्षा करी। आधे नाम पे आ पहुँचे, ग्राह चंगुल सें उसे मुक्त की।।
परीक्षित् बोले,
हे मुनिवर हम आपसे, अब यह सुनना चाहते हैं। गज कैसे छुड़ाया ग्राह से, अब यह जानना चाहते हैं।।
सभी कथाओं में मंगलमय, पुण्यमयी और शुभ है वह कथा। महात्मन् द्वारा गाये गये, हरि यश का वर्णन है जहां।।
सूत बोले,
हे शौनकादि ऋषिवर, कथा के श्रवण के ही लिए। आमरण अनशन धारण कर, परीक्षित् थे बैठे हुए।।
जब उन्होंने शुकदेव को, प्रेरित किया कथा के लिए। उनकी बात यह सुनकर के, श्री शुक आनन्दित हो गए।।
बहुत प्रेम से राजा का, अभिनन्दन उन्होंने किया। मुनियों से भरी सभा में फिर, कथा वाचन आरम्भ किया।।

२) गजेन्द्र मोक्ष-

शुकदेव बोले,
क्षीर सिन्धु में हे राजन्, त्रिकूट नाम का पर्वत था। सुन्दर और प्रसिद्ध वह दस, सहस्र योजन था ऊँचा।।
लम्बाई और चौड़ाई भी, चहुँ ओर से उसकी उतनी थी। सोने चान्दी और लोहे की, तीन शिखर उसकी ऊँची थी।।
उनकी छटा से सागर दिक्, आकाश चमकते रहते थे। ऐसी शोभा थी बनी उनकी, जगमग जगमग वह करते थे।।

अन्य भी अनेकों ही, ऐसे उसके शिखर थे। रत्नों और धातुओं की, बहुरंगी छटा बिखेरे थे।।
इस विधि सभी दिशाओं को, प्रकाशित करते रहते थे। विविध जाति के वृक्ष लता, झाड़ी झंखड़ से पूर्ण थे।।
झरनों से नीर निरन्तर ही, झर झर बहता रहता था। उसकी ध्वनि से गिरिराज, गुंजायमान् नित रहता था।।

चहुँ ओर से सागर की, लहरें आकर टकराती थी। ऐसा आभास उनसे होता, ज्यों पर्वत चरण पखार रही।।
पन्ने के पाहुनों से, थी भूमि ऐसी दीख रही। मानो दूब घास उसपर, हरी हरी हो उगी हुई।।

सिद्ध चारण गन्धर्व नाग, अप्सरा विद्याधर किन्नर। पर्वत की कन्दरा में प्राय:, रहते वह सदा विहार कर।।

उनके संगीत की मधुर ध्वनि, चट्टानों से जब टकराती। पर्वत की गुफाओं में पुन:, प्रतिध्वनित वह हो जाती।।
तब बड़े बड़े गर्वीले सिंह, किसी सिंह की ध्वनि उसे जानकर। सहन न उसको कर पाते, निज प्रतिद्वन्द्वी उसे जानकर।।
वह सिंह अपनी गर्जना से, उसे दबाने के लिये। और भी ऊंचा स्वर करके, सिंह नाद थे फिर करते।।

विभिन्न वनपशुओं के यूथ, घाटी को सुशोभित करते थे। भाँति भाँति के वृक्ष वहाँ, देवोद्यानों में उगते थे।।
उनपर बहुरंगी सुन्दर, पक्षी सदा चहकते थे। मधुर कण्ठ से वह अपना, सुन्दर गान सुनाते थे।।

अनेकों नदियाँ और सरोवर, उस पर्वत पर थे बने। निर्मल जल ही था उनका, और सुरम्य थे कुल बने।।
उनके तटपर मणियों की, बालू चमकती रहती थीं। देवकन्यायें वहाँ आकर, स्नान नित्य ही करती थीं।।
उनके अंग का स्पर्श पा, सुवासित जल हो जाता था। उससे सुगन्धित वायु भी, मन्द गति से बहता था।।

त्रिकूट गिरी की घाटी में, एक बड़ा उद्यान था। भगवत्प्रेमी महात्मा, श्री वरुण का वह उद्यान था।।
उसका नाम था ऋतुमान्, ऋतुएँ नित्य खिलतीं रहतीं। देवाङ्गनाएँ वहाँ आकर, नित्य ही क्रीड़ा रत रहतीं।।

उस उद्यान में चहुँ ओर, थे दिव्य वृक्ष शोभायमान। फल और फूलों से लदे, रहते वह सदा प्रात: और शाम।।
मन्दार पारिजात गुलाब, अशोक चम्पा विभिन्न आम। पयाल कटहल आमड़ा, सुपारी नारियल और ताड़।।
खजूर बिजैरा और महुआ। साखू असन और तमाल। अर्जुन रीठा गूलर पाकर, बरगद चन्दन और प्लाश।।

नीम कचनार और साल, देवदारु दाख और ईख। केला जामुन रुद्राक्ष बेर, हर्रे आंवला बेल कैथ।।
नीम्बू और भिलेवे के, वृक्ष थे लहराते रहते। उस बड़े उद्यान में, एक महा जलाशय थे।।
उस सरोवर में नित्य, स्वर्ण कमल खिले रहते। उसकी शोभा से नित्य ही, श्री गिरिराज सुशोभित थे।।

विविध जाति के कुमुद और, उत्पल कल्हार शतदल कमल। अपनी अनूठी छटा वहां, थे बिखराये हुए हर पल।।
मतवाले भंवरे वहां, हर पल ही थे गूंज रहे। पक्षिन् के मधुर कलरव, थे वायु को भर रहे।।
हंस कारण्डव चक्रवाक्, और सारल दल थे भरे हुए। पनडुब्बी बत्तख और पपीहे, उस बन में थे कूज रहे।।
मछली कच्छुओं की चाल से, कमल पुष्प थे हिल जाते। जिससे पराग झड़कर उनके, जल को सुगन्धित कर जाते।।
कदम्ब बेंत और नरकुल, कदम्ब वृक्ष भी खिल था रहा। बेन आदि के वृक्षों से, वह पर्वत था गिरा हुआ।।

कुन्द कुरबक अशोक सिरस, वनमल्लिका लिसौड़ा हरसिंगार। सोनजूही नाग पुन्नाग जाति, मल्लिका माधवी और शतपत्र।।
मोगरा आदि सुन्दर सुन्दर, पुष्प वृक्ष थे लगे हुए। प्रत्येक ऋतु में हरे भरे, वृक्षों से दूजे तट थे भरे।।
वह सरोवर इस भाँति, शोभायमान सदा रहता था। शीतल और सुवासित ही, उसका जल सदा रहता था।।

अति गहन इस पर्वत वन में, गजराज इक रहता था। बहुत हथिनियों संग वन में, वह सदा विचरता रहता था।।
बहुत शक्तिशाली हाथियों का, वह हाथी सरदार था। अपनी शक्ति के बल पर ही, वह बना गजेन्द्र आप था।।
कंटीले कीचक बांस बेंत, बड़े बड़े झाड़ झांखड़ों को। रौंदता हुआ था घूम रहा, संग में लेकर निज हथिनियों को।।

बाघ गैंडे हाथी और सिंह, यह सब हिंसक जन्तु जो। दूर दूर थे भागते, गन्ध से उसकी भयभीत हो।।
नाग तथा काले गोरे, शरभ और चमरी गाय। सबके सब विभिन्न ही, दिशाओं में थे छिपते जाय।।
कृपा से उसकी भेड़िए सुअर, भैंसे रीछादि शल्य जीव। लंगूर श्वान और बन्दर, हरिण खरगोश और क्षुद्र जीव।।
सबके सब निर्भय होकर, वन में विचरते रहते थे। उसकी कृपा दृष्टि पाकर, जीवन यापन वह करते थे।।

नन्हें शिशु हाथियों के, उसके पीछे थे दौड़ रहे। महाहाथी और हथिनियां, उसको घेरे हुए चल थे रहे।।
उनके पाद की धमक सें, पर्वत था मानो कांप रहा। उनके गण्डस्थल से टपके, मद के पान का लोभ भरा।।
भंवरा दल भी उन सबके, संग संग था उड़ रहा। मद के कारण उसके नेत्रों का, आकार भी था विह्वल हुआ।।
सूर्यदेव भी प्रचण्डता, अपनी था दिखला रहा। सूर्य ताप व्याकुलता को, उनकी था बढ़ा रहा।।
प्यास ने उसके साथियों को, व्याकुल ही था बना दिया। तप्त सूर्य की उष्णता से, हाल था सबका बुरा हुआ।।
कमल पराग की सुरभित वायु, को जब उन्होंने सूंघ लिया। उसी सरोवर की दिशा में, गजराज ने मुख किया।।
जिसकी शीतलता और सुगन्धि, वायु थी लिये आ रही। जल्द ही वेग गति से चल, वह हाथी यूथ वहाँ जा पहुँची।।

अति निर्मल अमृत समान, था मधुर जल सरोवर का। स्वर्ण अरुण कमलों के, केसर से था वह महक रहा।।
गजेन्द्र प्रथम उसमें गया, सूण्ड में भर भर जल पिआ। फिर उस जल में स्नान कर, वह पूर्णतय: विश्रान्त हुआ।।

गृहस्थ पुरुष की भाँति ही, मोहासक्त गजेन्द्र था। निज सूण्ड में भर जल की फुहार, हथिनी औ शिशु पे छोड़े था।।
उनको नहला निज सूण्ड को, था उनकी सूण्ड में डाल रहा। इस विधि निज प्रिय गण को, वह जल था पिला रहा।।
प्रभु माया से मोहित हुआ, उन्मत्त गजेन्द्र था हो रहा। सीस पे जो मण्डरा थी रही, विपदा से अनभिज्ञ वह था।।

हे राजन् उस पल ही, प्रेरणा दैव की ऐसी हुई। बलवान् ग्राह ने क्रोधित हो, चरण गजेन्द्र की पकड़ ली।।
अकस्मात् विपत्ति से, सामना गज का जब हुआ। पूर्ण बल लगाकर के, उसने छूटने का फिर यत्न किया।।
यथासमर्थ चेष्ठा कर, नहीं अपने को छुड़ा वह सका। ग्राह के पाश में गजराज, इस विधि वह बन्ध गया।।

दूजे हाथी और हथिनियों, और उनके बच्चों ने देखा। उनके स्वामी को बली ग्राह, है बहुत वेग से खेंच रहा।।
अति व्यथित मन उन का हुआ, और बहुत घबरा वह गए। विकल होई उच्च स्वर में, सभी चिंघाड़ने फिर लगे।।
बहुतों ने उनकी सहायता को, बहुत विधि महायत्न किया। पर पूर्ण बल लगाकर भी, सबका यत्न निष्फल रहा।।

गजेन्द्र और ग्राह भी, थे आपस में भिड़े हुए। पूर्ण शक्ति लगाकर के, वह तो युद्ध थे कर रहे।।
गजेन्द्र कभी तो ग्राह को, खेंच के बाहर ले आता। दूजे ही क्षण ग्राह के बल से, वह जल के भीतर जाता।।
हे राजन् यूँ लड़ते लड़ते, इक सहस्र वर्ष बीते। इस अवधि तक गज और ग्राह, दोनों ही जीवित रहे।।
इस द्वन्द्व को देखकर, आश्चर्य चकित सब देव हुए। गज और ग्राह के युद्ध ने, विस्मित सब ही कर दिए।।

बहुत दिनों तक बार बार, वह जल में खिंचकर जाता रहा। इस कारण गजेन्द्र का तन, इक दिन शिथिल ही हो गया।।
न तन में ही बल रहा, न मन में ही उत्साह रहा। फिर शक्ति भी उसकी क्षीण हुई, ग्राह तो था जलचर ठहरा।।
शक्ति उसकी घटी नहीं, वह तो और भी बढ़ गई। उत्साहित होकर फिर उसने, गजेन्द्र पाद जल में खेंची।।

गज के प्राणों पे अनायास, इस विध संकट आ गया। पूर्ण समर्थ लगाकर भी, ग्राह पाश से न वह छूट सका।।
बहुत देर तक निज छुटकारे, पर उसने विचार किया। अन्त में वह गजेन्द्र फिर, इस निर्णय पर आ पहुँचा।।

विधाता की ही फांसी बन, यह ग्राह है मेरे लिये आया। इसमें फंसकर आज मैं, अति आतुर हूं हो रहा।।
मेरे समान बली हाथी, नहीं मुझको उबार सके। फिर बलहीन यह हथिनियां, सहायता कैस मेरी कर सकें?
पूर्ण विश्व के आश्रय, एकमात्र श्री हरि ही हैं। अपना सब बल छोड़ करी, उनकी शरणागत हो लूं मैं।।

बड़ा बली है काल यह, है सर्प सम इसकी गति। सबको निगलने के लिये, सदा रहता यह आतुर ही।।
इससे भयभीत हो जो प्राणी, श्री हरि शरण में जाय पड़े। करुणामय वह हरि उसकी, निश्चित ही रक्षा करें।।
उनसे भयभीत हो मृत्यु भी, यथोचित निज कर्त्तव्य करे। मैं उनके ही शरणागत हूँ, वह प्रभु ही हैं सबके आश्रय।।
शुकदेव बोले,
गजेन्द्र ने निज बुद्धि से, ऐसा निश्चय कर लिया। तत्पश्चात् निज मन को उस, हृदय में जा एकाग्र किया।।
पूर्व जन्म में उसने जिस, श्रेष्ठ स्तोत्र को था सीखा। उसका जाप करके गजेन्द्र, स्तुति प्रभु की करने लगा।।
गजेन्द्र बोले,
हैं मूल कारण इस जग के, सबके हृदयों में विराजमान्। इकमात्र स्वामी सगरे जग के, सब जग करें वह चेतनावान्।।
उन श्री भगवान को, नमस्कार मैं करता हूँ। प्रेम पूर्ण हृदय से आज, श्री हरि का ध्यान मैं धरता हूँ।।

उन्हीं में स्थित है यह सब जग, उनकी सत्ता में प्रतीत हो। इसमें व्याप्त वह स्वयं रहें, इस रूप में स्वयं ही प्रकट हों।।
इतना सब होने पर भी, वह तो सर्वथा रहें परे। संसार और इसका कारण, प्रकृति न उनको छू सके।।
स्वयं प्रकाश वह स्वयं सिद्ध, सबको सत्ता देनेवाले। प्रभु की शरण मैं ग्रहण करूँ, वही तो हैं मम रखवाले।।

यह विश्व यह सारा जग प्रपंच, उनमें ही अध्यस्त रहे। उनकी माया से प्रतीत यह हो, प्रतीति भी कभी नहीं भए।।
किन्तु उनकी दृष्टि तो, एकत्व में ज्यों की त्यों रहे। सबको वह देखते रहते हैं, वह ही साक्षी हैं सबके।।
सबके ही मूल वह स्वयं हैं, और अपने मूल भी हैं वही। हैं स्वयंभू वह आप स्वयं, नहीं उनका कारण दूजा कोई।।
समस्त कारण कार्य से, प्रभुसदा ही अतीत रहें। उनकी ही मैं शरण हूँ, श्री हरि मेरी रक्षा करें।।

लोकपाल और लोक सब, प्रलय काल में नष्ट हों। इन सबके भी जो कारण, सम्पूर्ण रूप से नष्ट हों।।
अति गहनतम तिमिर ही, उस समय रह जाता है। किन्तु अनन्त परमात्मा, इन सबसे परे ही रहता है।।
सर्वथा ही इन सबसे परे, विराजमान् जो सदा रहें। वे ही प्रभु मुझ शरणागत, आर्त भक्त की रक्षा करें।।

उनके लीला रहस्य का, ज्ञान तो है अति दुर्गम। नट की भाँति अनेकों ही, रूप करें वह प्रभु धारण।।
उनके वास्तविक रूप को, न जानें देव न ऋषि कोई। फिर अन्य प्राणी उन तक, किस विध कैसे पहुँचे कोई?
अनिर्वचनीय उन प्रभु का, वर्णन कौन भला कर सके? अगम अगोचर हरि स्वयं, अब मेरी रक्षा करें।।

जिनके परम मंगलमय, स्वरूप के दर्शन के लिये। महात्मन् इस संसार की, आसक्ति सब ही त्याग दें।।
वन में जा अखण्ड व्रतों, का पालन हैं वह करते। निज आत्म का सब हृदयों में, हर पल वह दर्शन करके।।

स्वभाव से ही सबके सुहृद्, सर्वभूत हितकारी हैं। वह मुनिजन के सर्वस्व प्रभु, ही तो मेरी भी गति हैं।।

न उनके जन्म कर्म हैं कोई, न नाम रूप कोई हो सके। फिर उनके गुण और दोष की तो, कल्पना ही कैसे हो सके?
फिर भी विश्व की सृष्टि और, उसके संहार के लिये। समय समय पर गुण दोष निज माया से स्वीकार करें।।
उन अनन्त शक्तिमान्, ऐश्वर्यमय पर ब्रह्म को। सर्वरूप अरूप को, करबद्ध मेरे नमन हो।।
अति आश्चर्यमय उनके कर्म, कोई न उनको समझ सके। उनके श्री चरणों में ही, हो मेरा नमस्कार हे।।

सबके सायी स्वयं प्रकाश, परम् ब्रह्म परमात्मन्। मन वाणी चित्त सों जो परे, उनको है मेरा नमन्।।
कर्म संन्यास के राही, निज आन्तर को शुद्ध करके। या फिर सब कर्मों को, प्रभु के चरण में धर करके।।
परमानन्द स्वरूप स्वयं, ज्ञान स्वरूप जो नित्य मुक्त। सर्व सामर्थ वह दूजों को, करते कैवल्य मुक्ति युक्त।।
उन परम परमात्मन् को, नमस्कार मैं करता हूँ। उन श्री हरि के चरणों में, अपना सीस मैं धरता हूँ।।

सत्व रज और तम त्रैगुण, त्रै धर्मों को स्वीकार करें। क्रमश: शान्त घोर और, मूढ़ अवस्था धार लें।।
उन भेद रहित समभाव स्थित, ज्ञान घन श्री हरि को। बार बार करूँ नमस्कार, बारम्बार स्वीकार हो।।
सबके साक्षी स्वयं हैं, आप ही हैं सबके स्वामी। इकमात्र ज्ञाता सब क्षेत्रों के, हैं स्वयं ही अपने कारण भी।।
नमस्कार मेरा आपको, मूल प्रकृति पुरुष आधार। बार बार मेरा प्रभु, है आपके चरण में नमस्कार।।

सब इन्द्रियों और उन सबके, विषयों के द्रष्टा हैं आंखपर। प्रतीति भी जो सब जग में, उस सबका आधार हैं आप।।
छाया रूप अहंकारादि, असत् वस्तु में प्रकट रहें। अस्तित्व नहीं जिनका कोई, उनमें भी आप ही भास रहे।।
समस्त वस्तुओं की सत्ता, के रूप में आप ही भास रहे। आपके श्री चरणों में ही, हो मेरा नमस्कार हे।।

सबके मूल कारण हैं आप, आपका कारण कोई नहीं। कारण तो हैं सबके आप, पर विकार यहाँ कोई नहीं।।
इस कारण का परिणाम नहीं, हैं विचित्र कारण प्रभु। आपको मेरा नमस्कार, बार बार हो मेरे प्रभु।।
ज्यों जलाशय नदी झरनों, का आश्रय है इक सागर ही। सब वेद और शास्त्रों के भी, परम तात्पर्य हैं आप ही।।
मोक्ष स्वरूप हैं आप प्रभु, सब सन्त हैं आपकी ही शरण। अत: प्रभु स्वीकार करें, चरणों में मेरा नमन।।

ज्यों यज्ञ की काष्ठ अरणि में, अग्नि सदा ही निहित रहे। त्यों ही आवृत्त कियाआपने, निज ज्ञान को गुणों की माया से।।
क्षोभ हो जब गुणों में, विविध भाँति की सृष्टि रचें। आप ही सृष्टि रचना का, स्वयं प्रभु संकल्प करें।।
कर्म संन्यास या समर्पण, का आश्रय प्रभु लेकर के। आत्म तत्त्व में स्थित हो, वेद और शास्त्रों से जो उठें।।
उनके आत्म स्वरूप में, आप स्वयं प्रकाशित हों। आपके श्री चरणों में प्रभु, बारम्बार मेरा नमन हो।।

ज्यों पशु के दुर्गम पाशों को, दयालु करुणावश काटे। त्यों ही मेरे सम शरणागत की, फांसी आप प्रभु काट दें।।
नित्य मुक्त हैं आप प्रभु, और परम करुणामय हैं। भक्तों के कल्याण हेतु, प्रमाद हीन सदा रत हैं।।
आपके श्री चरणों में प्रभु, मेरा होवे नमस्कार। बारम्बार प्रभु आपके, चरणों में करूं मैं नमस्कार।।
अंश रूप में प्राणियों के, हृदय में प्रभु आप बसें। सबको ही उपलब्ध रहें, अन्तरात्मा रूप में।।
सर्वैश्वर्य पूर्ण हैं आप, हे प्रभु आप अनन्त हैं। अनन्त हैं महिमा आपकी, रूप आपके अनन्त हैं।।

निज तन सुत गृह सम्पत्ति, गुरुजन स्वजन आसक्त हैं जो। उनके लिये तो आपकी, प्राप्ति अति दुर्लभ ही हो।।
आप प्रभु सब गुणों की, आसक्ति से सदा रहित रहें। जीवन मुक्त निज हृदय में, सदा आपका ही चिन्तन करें।।
उन सर्व ऐश्वर्य पूर्ण, ज्ञान स्वरूप भगवान को। बारम्बार हे प्रभु, नमन मेरा स्वीकार हो।।

धर्म अर्थ या काम मोक्ष, जिसकी भी जन चाहना करें। उनका भजन ही कर करी, निज अभीष्ट को प्राप्त करें।।
उनको सब प्रकार का, सुख प्रभु दे देते हैं। अपने जैसा ही अविनाशी, पार्षद तन भी वह देते हैं।।
वह ही परम दयालु प्रभु, मेरा भी उद्धार करें। अपने श्री चरणों में मेरा, नमन प्रभु स्वीकार करें।।

अनन्य प्रेमी भक्त जिनके, उनकी ही शरण में रहते हैं। किसी भी वस्तु की उनसे, वह चाहना कभी न करते हैं।।
मोक्ष की भी उनको कोई, अभिलाषा कभी नहीं रहती। केवल परम मंगलमय, दिव्य लीला का गान करी।।
आनन्द सिन्धु में सदा, निमग्न वह हर पल रहते हैं। उनकी कथाओं का कीर्तन, नित्य वह करते रहते हैं।।

अविनाशी सर्वशक्ति, अव्यक्त इन्द्रिय अतीत हैं जो। अति सूक्ष्म जो हैं समीपस्थ और बहुत दूर ही भासें जो।।
आध्यात्मिक या ज्ञान योग, या भक्ति योग सों प्राप्त हों। इनका आश्रय लेकर के, सब योगी उन्हीं को प्राप्त हों।।
उन्हीं आदि पुरुष अनन्त और, परिपूर्ण परं ब्रह्म की। कर जोड़ी मैं स्तुति करूँ, उन परमात्म पुरुष की।।

जिनकी अणुतम कलाओं से, नाम रूप के भेद बनें। ब्रह्मा आदि सब देवता, विभिन्न नाम और रूप धरें।।
चराचर यह सब लोक और, सब वेदों की सृष्टि हुई। ज्यों धधकती अग्नि में, लपटें हैं हर पल निकलतीं।।
प्रकाशमान् सूर्य से ज्यों, अनेकों रश्मियाँ निकला करें। और उसीमें जाकर वह, पुन: पुन: ही लीन होएं।।
उसी विधि स्वयं प्रकाश, परं ब्रह्म परमात्मा से। बुद्धि मन इन्द्रिय और तन, गुण प्रवाह रूप प्रकटें।।
पुन: वह जाकर उनमें ही, बार बार ही लीन होएं। वह प्रभु न तो देवता हैं, न ही वह असुर भएं।।
न वह जीव न पशु पक्षी, न स्त्री नर न नपुंसक वे। न वह साधारण प्राणी हैं न ही हैं असाधारण वे।।
न ही वह गुण हैं न ही कर्म, न कार्य हैं वह न कारण ही। सबका निषेध हो जाने पर, जो कुछ भी रहता शेष कभी।।
वह ही है उनका स्वरूप, और वह सब कुछ हैं स्वयं। वह ही परमात्म प्रकट हों, करें मेरा उद्धार स्वयं।।

नहीं जीने की चाहना कोई, हाथी की यह जो है योनि। बाहर और भीतर से यह, अज्ञान से है सब विधि ढकी।।
इसको रखकर क्या करना है, यह है मेरे किस काम की? आत्म प्रकाश आवृत्तकर यह, है अज्ञानावरण ही।।
काल क्रम से स्वत: ही जो, छूट कभी भी नहीं पाता। उस आवरण से हे प्रभु, अब हूँ छूटना मैं चाहता।।
केवल भगवत्कृपा से ही, सर्वथा नष्ट वह हो सकता। अथवा तत्त्वज्ञान द्वारा, ही उसका नाश है हो सकता।।

उस परं ब्रह्म परमात्म की, ही शरण में अब मैं हूँ। भक्तवत्सल श्री हरि, के चरणों में मैं सीस धरूँ।।
जो विश्वरहित होने पर भी, विश्वरचयिता स्वयं हैं। विश्व के अन्तरात्मा वह, विश्व रूप भी स्वयं हैं।।
विश्व रूप सामग्री से, सदा क्रीड़ा करते रहते हैं। अजन्मा परं पद परं ब्रह्म, को नमस्कार हम करते हैं।।

योगी जन योगाभ्यास से, कर्म वासना फल त्यागें। योग से शुद्ध निज हृदय में, योगेश्वर प्रभु साक्षात् करें।।
उन प्रभु को बार बार, नमस्कार ही मै। करूँ। उन श्री हरि के चरणों में, बार बार मैं सीस धरूँ।।

सत्व रज और तम आदि, आपकी तीनों शक्तियों से। रागादि गुण असह्य हैं, इन तीनों ही गुणों के।।
समस्त इन्द्रियों और मन के, विषयों के भी रूप में। हे प्रभु आप स्वयं, ही प्रतीत हैं हो रहे।।
जिनकी इन्द्रियां नहीं वश में, वह प्राप्ति मार्ग कभी न पायें। अनन्त आपकी शक्ति है, शरणागत वत्सल आप हैं हे।।
बार बार प्रभु आपको, नमस्कार मैं करता हूँ। आपके श्री चरणों में प्रभु, अपना आप मैं धरता हूँ।।

अहं बुद्धि हमारी जो, तव माया का ही रूप है। उससे आवृत्त हो गया, आपका जो स्वरूप है।।
इस कारण ही जीव यह, स्वरूप जान निज न पाये। महिमा अपार है आपकी, कौन कभी उसे गा पाये?
सर्वशक्तिमान् प्रभु, माधुर्य निधि प्रभु आपकी। शरणागत मैं हूं प्रभु, सदा सर्वदा आपकी।।
शुकदेव बोले,
बिना भेद भाव मन में धरे, हे राजन् गजेन्द्र ने। निर्विशेष रूप से थे, श्री हरि के गुणगान किये।।
भिन्न नाम और रूपों को, अपना थे जो मान रहे। ब्रह्मादि देव इस कारण ही, उसके रक्षण को न आये।।
सर्वात्म और सर्ववेदमय, जो हरि हैं आप स्वयं। श्री भगवान ही प्रकट हुए, उनका यह गुणगान सुन।।

सम्पूर्ण इस विश्व के, एकमात्र आधार हैं जो। गजेन्द्र अति पीड़ित हुआ, श्री भगवान ने देख लियो।।
उसकी स्तुति को सुनकर वह, निज वाहन पे सवार हुए। वेदमय गरुड़ पे सवार, चक्रधर तीव्र गति से चले।।
गजेन्द्र जहाँ पर अति भीषण, संकट से थे घिरे हुए। देव भी स्तुति करते हुए, उसके संग वहाँ पे जा पहुँचे।।

जलाशय के भीतर वह, अति बलवान् था ग्राह बसा। गजेन्द्र को पूर्ण बल लगा, उसने था जकड़ रखा।।
अति व्याकुल गजेन्द्र ने, आकाश ओर जब दृष्टि करी। श्री हरि को चक्र लिये हाथ में, देखा उस पीठ पे गरुड़ की।।
तब अपनी सूण्ड में कमल का, उसने इक सुन्दर पुष्प लिया। ऊपर उठाकर उसको वह, व्यथित हृदय से फिर बोला।।
हे नारायण हे जगद्गुरो, हे भगवन् आपको नमस्कार। मेरा नमन प्रभु चरण में, हो आपको बारम्बार।।

श्री भगवान ने जब देखा, गजेन्द्र है अति पीड़ित हुआ। अनायास ही गरुड़ छोड़, पृथ्वी पर उन्होने कदम धरा।।
कृपा करी गजेन्द्र के, साथ ही ग्राह को लिया निकाल। शीघ्रता से सरोवर के, बाहर ही उनको लिया निकाल।।
फिर सब देवों के सामने ही, कौतुक यह प्रभु ने किया। निज चक्र से ग्राह का मुख फाड़ा, गजेन्द्र को छुड़ा लिया।।
शुकदेव बोले,
तब ब्रह्मा शंकर आदि देव, ऋषि और गन्धर्व सब। श्री हरि के इस कौतुक की, प्रशंसा करने लगे यह सब।।
स्वर्ग में दुन्दुभियाँ गूंजीं, गन्धर्व नाचने गाने लगे। ऋषि चारण और सिद्ध गण, स्तुति प्रभु की गाने लगे।।

तुरन्त ही फिर उस ग्राह ने, परं आश्चर्यमय रूप धरा। तत्क्षण इक दिव्यशरीर से, ग्राह वह सम्पन्न हुआ।।
पूर्वकाल में ग्राह वह, हू हू नामक गन्धर्व था। देवल ऋषि के शाप से वह, था इस गति को प्राप्त हुआ।।
अब जो प्रभु की कृपा हुई, उस शाप मुक्त वह हो गया। पुन: श्रेष्ठ गन्धर्व के, रूप को उसने प्राप्त किया।।

सर्वेश्वर प्रभु के चरणों में, सीस धरी प्रणाम किया। तत्पश्चात श्री हरि के, यश का उसने गान किया।।
अविनाशी श्री हरि ही, वास्तव में कीर्ति सम्पन्न हैं। उन्हीं के मनहर गुण और, उनकी लीला गीतव्य हैं।।

प्रभु के कृपामय स्पर्श से, सब पाप ताप उसका नष्ट हुए। श्री हरि परिक्रमा कर उसने, उनके चरणों में प्रणाम किये।।
सबके देखते देखते ही, उस अपने लोक की यात्रा की। सबके सामने ही प्रभु ने, उस स्थान से प्रस्थान करी।।

गजेन्द्र भी प्रभु का स्पर्श पा, अज्ञान बन्ध से मुक्त हुए। प्रभु कृपा से उनको भी, प्रभु सारूप्य ही प्राप्त हुए।।
चतुर्भुज रूप हुआ उनका, पीताम्बर धारी वह हुए। प्रभु के प्रिय पार्षदों के, रूप ही उसको मिल गये।।
गजेन्द्र भी पूर्व जन्म में, द्राविड देश का राजा था। नाम इन्द्रद्युम्न था, पाण्डयवंशी उस राजा का।।
प्रभु का था श्रेष्ठ उपासक वह, और अत्यन्त यशस्वी था। गजेन्द्र के पूर्व जन्म का, संस्कार कुछ ऐसा था।।

एकबार राजा इन्द्रद्युम्न ने, राजपाठ सब छोड़ दिया। और मलय पर्वत पर जा, राजा वह रहने लगा।।
जटायें उसकी बढ़ गईं, तपस्वी वेश धारण किया। इक दिन स्नान करी पूजा में, मन एकाग्र जब उसने किया।।
मौन व्रत धारण किये, प्रभु की आराधना कर था रहा। सर्वशक्तिमान् प्रभु की, उपासना में था वह लगा।।

देवयोग से उसी समय, निज शिष्य मण्डली साथ लिये। परम यशस्वी मुनि आगस्त्य, उसके पास वहां आ पहुँचे।।
उन्होंने देखा इस राजा ने, प्रजापालन है त्याग दिया। गृहस्थोचित अतिथि सेवा, का धर्म परित्याग किया।।
तपस्विन् की भाँति इसने, एकान्त में मौन ही बैठ करी। प्रभु उपासना की ही राह, इस राजा ने अब अपना ली।।
इसलिये वह इन्द्रद्युम्न, राजा पर अति क्रुद्ध हुए। इस क्रोध के कारण वह, राजा पर यूँ बरस पड़े।।

उन्होंने शाप दिया राजा को, नहीं गुरु सों शिक्षा इस पाई। परोपकार से निवृत्त हो, अभिमान वश मनमानी करी।।
इस ब्राह्मण का अपमान किया, है जड़ बुद्धि हाथी समान। इसलिये उसी अज्ञानमयी, हाथी योनि को हो यह प्राप्त।।
शाप और वरदान में, हैं सर्वसमर्थ आगस्त्य ऋषि। इस विधि शाप देकर के, उन शिष्यों सहित प्रस्थान करी।।
राजर्षि इन्द्रद्युम्न ने, यह जानी सन्तोष किया। जो कुछ भी है मुझे मिला, वह मेरा प्रारब्ध ही था।।

तत्पश्चात् ही हाथी की, योनि उसको प्राप्त हुई। आत्म तत्त्व की वहाँ, पूर्णतय: विस्मृति ही थी।।
किन्तु श्री हरि आराधना का, ही ऐसा प्रभाव था। हाथी होने पर भी उसको, प्रभु की याद ने आ घेरा।।

श्री हरि ने फिर इस विधि, गजेन्द्र का उद्धार किया। गज योनि उसकी हर ली, निज पार्षद उसे बना लिया।।
गन्धर्व सिद्ध और देवता, उनकी यह लीला गाने लगे। प्रभु पार्षद रूप गजेन्द्र को, अपने साथ फिर ले गए।।
गरुड़ पर होकर सवार, वह अपने अलौकिक धाम गए। हे राजन् गजेन्द्र को, अपने संग वह ले गए।।

हे राजन् इस विधि मैंने, कृष्ण की महिमा कथा कही। और गजेन्द्र उद्धार की, कथा तुम्हें सुना है दी।।
यह प्रसंग श्रोताओं के, कलि मल दु:स्वप्न को दूर करे। यश का यह वर्धन करे, और स्वर्ग लोक को ले जाये।।
इस कारण ही कल्याणकामी, द्विजगण दु:स्वप्न की शान्ति को। प्रात: काल यह पाठ करें, निद्रा त्यागी वह पावन हों।।

हे राजन् गजराज की, स्तुति से होकर प्रसन्न। सर्वव्यापक सर्वभूत स्वरूप, जो श्री हरि हैं स्वयं।।
सबके सामने ही उन्होंने, गजेन्द्र से थी यह बात कही। इस गजेन्द्र स्तुति की उन, माहात्म्य आख्यान करी।।

रात के पिछले पहर में उठ, जो इन्द्रियों का निग्रह करके। एकाग्र चित्त से मेरा तेरा, इस जलाशय का ध्यान धरे।।

यह पर्वत और यह कन्दरा, वन बेन कीचक बांसों के वृन्द। दिव्य वृक्ष पर्वत शिखर, मेरे ब्रह्मा शिव के निवास कुंज।।
मेरे प्रिय धाम क्षीरसागर, और प्रकाशमय श्वेत द्वीप। श्री वत्स कौस्तुभ मणि मेरी, वनमाल और गदा कौमोदकी।।
सुदर्शन चक्र पाञ्चजन्य शंख, मेरे सूक्ष्म कला स्वरूप शेष। पक्षीराज श्री गरुड़ जी, श्री लक्ष्मी मेरे आश्रय विशेष।।
ब्रह्माजी देवर्षि नारद, श्री शंकर और भक्त प्रह्लाद। मत्स्य कच्छप वराहादि, अवतारों में विशेष कलाप।।
अनन्त पुण्यमय चरित मम, सूर्य चन्द्रमा और अग्नि। ओंकार सत्य मूल प्रकृति, ब्राह्मण गौ धर्म यह अविनाशी।।
सोम कश्यप और धर्म की, पत्नियां दक्ष की कन्यायें। गंगा सरस्वति अलकनन्दा, यमुनादि सब सरितायें।।
ऐरावत गज ध्रुव भक्त प्रवर, और सप्त जो ब्रह्मर्षि। महापुरुषों को जो स्मरण करें, अन्य भी जो पावन कीर्ति।।
तत्क्षण मुक्त हैं हो जाते, वे समस्त ही पापों से। पूर्णतय: हैं छूटते, वे त्रैविध त्रितापों से।।
क्योंकि यह सबके सब जानो, मेरे ही तो रूप हैं। इनके आन्तर में बसें, शुद्ध परमात्म स्वरूप हैं।।

प्रिय गजेन्द्र ब्रह्म मुहूर्त, में जो जन मुझको ध्यायें। तूने जो मम स्तवन किया, उसको ही जो जन गायें।।
अन्त समय में उनको मैं, निर्मल बुद्धि प्रदान करूँ। आज तुम्हारे सम्मुख मैं, हे गजराज यह वचन कहूँ।।
शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने यह वचन कही, आनन्दित देवों को किया। निज श्रेष्ठ शंख का नाद करी, आरोहण श्री गरुड पे किया।।

३) देवताओं और असुरोंके बीच सन्धि

शुकदेव बोले,
है समस्त पाप नाशक, प्रभु की गजेन्द्र मोक्ष लीला। हे राजन् इसको है, मैंने तुम्हें सुना दिया।।
अब रैवत मन्वन्तर की, हे परीक्षित कथा सुनो। पंचम् मनु का नाम तुम, रैवत ही था अब यह जानो।।
चौथे मनु तामस के, वह भ्राता सहोदर थे। अर्जुन बलि विन्ध्य आदि, उनके अनेकों पुत्र थे।।

उस मन्वन्तर में जानो, था विभु इन्द्र का नाम। देवों के भूतरय आदि, यह सब गण ही थे प्रधान।।
हे परीक्षित् उस समय, हिरण्यरोमा और वेदशिरा। ऊर्ध्वबाहु आदि सब, सप्तर्षियों का नाम था।।
उनमें से शुभ ऋषि की, पत्नी का नाम था विकुण्ठा। देवों संग निज अंश से, प्रभु जन्म उसके गर्भ से था हुआ।।

श्री हरि ने वैकुण्ठ नाम, से अवतार यह ग्रहण किया। विकुण्ठा गर्भ से जान लो, श्री हरि का यह जन्म हुआ।।
लक्ष्मी जी की प्रार्थना पर, उनको प्रसन्न करने के लिये। वैकुण्ठ रूप धारी प्रभु ने, वैकुण्ठधाम थे रच दिये।।
समस्त लोकों में यही, लोक कहें अति श्रेष्ठ है। अन्य लोक सब गौण कहें, यह ही सबसे ज्येष्ठ है।।

प्रभु विष्णु के पूर्ण गुणों का, वर्णन तो वह ही करे। इस पृथ्वी के परमाणुओं की, गणना जो कभी कर सके।।
छटे मनु श्री चक्षुष थे, उनके पुत्र हुए चाक्षुष। पुरु पुरुष सुद्युम्नादि, उनके थे यह अनेकों पुत्र।।

इन्द्र का नाम था मन्त्रद्रुम, प्रधान देव थे आप्यादि। हविष्यमान् वीरक आदि, उस मन्वन्तर के थे सप्तर्षि।।
उस काल में जगत्पति हरि ने, वैराज पत्नी सम्भूति के। गर्भ से अजित नाम के, अंशावतार थे ग्रहण किये।।
सागर मन्थन कर उन्होंने, देवों को अमृत था दिया। कच्छप रूप में मन्द्राचल, मथनी का वही आधार बना।।

परीक्षित बोले,
श्री हरि ने क्षीर सिन्धु का, मन्थन प्रभु कैसे किया? कच्छप रूप धारण करके, मन्द्राचल को निज पीठ धरा।।
किस कारण किस उद्देश्य से, इस रूप को धारण उन्होंने किया? हे द्विजवर अब कृपा करी, इस रहस्य को खोलें जरा।।
उस समय देवों को फिर, अमृत कैसे मिल पाया? और भी जिस जिस वस्तु का, सागर से था उद्भव हुआ।।
प्रभु की यह अद्भुल लीला, आप हमें सुनाइए। हे द्विजवर कृपा करके, जिज्ञासा शान्त कराइए।।

भक्त वत्सल श्री हरि की, महिमा आप ज्यों ज्यों कहें। त्यों त्यों ही मेरे हृदय की, उत्सुकता पल पल और बढ़े।।
तृप्ति नहीं मेरे हो पाती, ऊबना तो बहुत दूर रहा। बहुत दिनों से यह चित्त जो, जग की ज्वाला में जल है रहा।।
सूतजी बोले,
राजा के इस प्रश्न का, प्रभु शुक ने बहुत मान किया। प्रभु की सागर मन्थन लीला, का वर्णन आरम्भ किया।।
शुकदेव बोले,
जिस काल की बात हम, परीक्षित तुमको कह रहे। असुरों ने तीव्र शस्त्रों से, थे देव पराजित कर दिये।।
उस युद्ध में तो बहुतों के, प्राणों पर ही बन आई। अनेकों ही रणभूमि में, गिर कर हुए धराशायी।।

ऋषि दुर्वासा के शाप से, त्रै लोक श्री हीन हुए। इन्द्र भी उसके कारण, अपनी सब कान्ति खो बैठे।।
यज्ञ यागादि सारे, धर्मों कर्मों का लोप हुआ। वेदोक्त सब कर्म धर्म, का भी मानो ऱ्हास हुआ।।
दुर्दशा यह देख करी, इन्द्र वरुणादि देवों ने। विचार विनिमय किया बहुत, किसी निर्णय पर वह न पहुँचे।।

सब के सब वे सुमेरु स्थित, श्री ब्रह्मा की सभा में गए। अति विनम्रता हिय धरी, सेवा में उपस्थित वे हुए।।
अपनी परिस्थिति का उन, विस्तृत वर्णन ब्रह्मा से किया। संकट जो था आन पड़ा, उनके चरणों में धर दिया।।
श्री ब्रह्मा ने भी देखा, इन्द्र वरुण वायु आदि की श्री एवं शक्ति, है सारी ही क्षीण हुई।।
अति विकट संकट ग्रसित, गति है देवों की हुई। असुर तो रहे हैं फल फूल, इन सबके विपरीत ही।।

सर्वसमर्थ श्री ब्रह्मा ने, निज मन को एकाग्र किया। परम पुरुष परमात्म को, फिर उन्होंने स्मरण किया।।
थोड़ी देर यूँ धरा ध्यान, तो मुख उनका खिल उठा। देवों को सम्बोधित कर, फिर उन्होंने यह वचन कहा।।
ब्रह्मा बोले,
हे देवों मैं और श्री शंकर, तुम लोग और असुर सब। दैत्य मनुष्य पशु पक्षी, सब प्राणी वृक्ष और स्वेदज।।
जिनके विराट् स्वरूप के, अणुतम अंश से रचे गए। हम सब उन अविनाशी प्रभु, की ही शरण को ग्रहण करें।।

यद्यपि समदर्शी हैं वह, न वध का पात्र न ही रक्षा का। नहीं कोई भी उपेक्षणीय, न पात्र ही कोई आदर का।।
फिर भी सृजन पालन प्रलय, समय समय पर वह करें। इस कारण ही वह सत्व रज, और तमोगुण स्वीकार करें।।

उन्होंने ही जीव कल्याण हेतु, सतोगुण है स्वीकार किया। इस कारण इस पल जगत् स्थिति, और रक्षा का अवसर यह भला।।
उन जगद्गुरु परमात्म की, हम सब ही चलकर शरण पड़ें। वे हैं देवों के प्रिय और, देवता हैं उनको प्रिय।।
हम सब हैं उनके अपने जन, कल्याण करेंगे निश्चित वे। उनपर ही श्रद्धा धर के, इस कारण उनके शरण पड़ें।।

शुकदेव बोले,
देवों को इस विधि कहकर, फिर देवों को निज संग लिए। तेजोमयी प्रकृति अतीत, श्री हरि के धाम वैकुण्ठ गए।।
प्रभु के स्वरूप और धाम की, महिमा इन्होंने थी पहले सुनी। लेकिन वहाँ पर जब पहुँचे, कुछ भी दर्शन इन्हें नहीं हुए।।
इस कारण श्री ब्रह्मा ने, निज मन को एकाग्र किया। वेदवाणी के द्वारा फिर, श्री हरि का उन्होंने स्तवन किया।।
ब्रह्म बोले,
हैं सत्य निर्विकार अनन्त, आदि पुरुष सबके हृदयस्थ। बन अन्तर्यामी विराज रहे, हैं अखण्ड एवं अतर्क्य।।
जहां जहां भी मन जाये, वहां पूर्व आप हैं विद्यमान। अनिर्वचनीय हैं आप प्रभु, वाणी कैसे कर सके बखान?
सब देवों के आराध्य आप, और हैं आप स्वयं प्रकाश। हम सब आपके चरणों में, बार बार करें नमस्कार।।

प्राण बुद्धि और मन के, अहंकार के ज्ञाता आप। इन्द्रियां और उनके विषय, दोनों प्रकाशित करें आप।।
अज्ञान नहीं कभी आपका, संस्पर्श भी कर पाये। प्रकृति विकार मृत्यु धर्मा, यह तन न आपको छू पाये।।
विद्या अविद्या दोनों ही, जीव के ही पक्ष होएं। किंचित् भी यह आपको, कभी स्पर्श न कर सकें।।

अविनाशी हैं आप प्रभु, आप स्वयं हैं सुख स्वरूप। सतयुग त्रेता द्वापर में तो, विराजमान् रहें प्रकट रूप।।
हे प्रभु हम सब ही मिल, आपकी शरण में हैं आये। अपनी व्यथा और कथा प्रभु, सुनाने आपको हैं आये।।

यह तन तो प्रभु जीव का, मनोमय चक्र मात्र ही है। दस इन्द्रियां और पांच प्राण, सब इसके अरे मात्र ही हैं।।
सत्व रज और तमोगुण, यह तीन ही हैं इसकी नाभि। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश, मन बुद्धि अहं आठ नेमि।।
प्रभु की माया इस रथ का, संचालन आप ही करती है। विद्युत से भी तीव्र गामी, जानें इस माया की गति है।।
इस चक्र की धुरी है जो, हैं परमात्म स्वयं ही। वह ही इक मात्र सत्य हैं, हम सब हैं उनकी शरण ही।।

एकमात्र वे ज्ञान स्वरूप, हैं अदृश्य प्रकृति परे। सब भूतों के मूल में, अव्यक्त रूप से स्वयं रहें।।
देश काल या वस्तु से, नहीं पार जिनका पा सकें। वही प्रभु हर हृदय में, बन के अन्तर्यामी बसें।।
विचारशील जीव तो, उनकी ही साधना करते हैं। भक्ति योग के द्वारा वह, उनकी आराधना करते हैं।

दुस्तर माया से मोहित हो, निज स्वरूप जीव भूला। वास्तविक लक्ष्य क्या जीवन का, इससे भी विभ्रान्त हुआ।।
वह माया भी उनकी ही है, कोई पार न उसका पा सके। पर वह माया और उसके गुण, प्रभु के अपने वश में रहें।।
सब प्राणिन् के हृदयें वह, समत्व भाव से विचर रहे। बिन उनकी कृपा दृष्टि के, पुरुषार्थ से कोई पा न सके।।
उनकी कृपा से ही साधक, प्राप्त उन्हें कर पाते हैं। उनके ही श्री चरणों में, हम अपना सीस झुकाते हैं।।

यूं तो हम देव और ऋषिगण, उत्पन्न हों उनके सतोगुण से। परम प्रिय उनके अपने, सतोगुणमयी शरीर से।।
फिर भी उनके बाहर भीतर, है इक रस प्रकट जो हो रहा। उनके उस सत्य स्वरूप से, बनी रहे अनभिज्ञता।।
रज और तम प्रधान असुर, फिर उनको कैसे जान सकें? उन श्री हरि के चरणों में, बार बार हम नमन करें।।

उनके द्वारा ही बनाई गई, यह पृथ्वी उनका चरण है। जरायुज अण्डज स्वेदज और, उद्भिज्ज भी जो धरती पर हैं।।
वे परम स्वतंत्र परम ऐश्वर्य, युक्त हैं जो श्री पुरुषोत्तम। सर्वविधि सब ही भाँति, वे होवें हम पर प्रसन्न।।

परम शक्तिशाली यह जल, उनका ही तो वीर्य है। त्रिलोक और सब लोकों के, लोकपालों का मूल है।।
उससे उत्पन्न होकर यह बढ़ें, उसमें ही फिर जीवित रहें। ऐश्वर्यमयी वह परम् ब्रह्म, हम पे सदा प्रसन्न रहें।।

चन्द्रदेव हैं प्रभु का मन, श्रुतियां यह ही कहती हैं। सब देवों का अन्न बल, और आयु यह चन्द्र ही है।।
वृक्षों का सम्राट वही, वही प्रजा का वर्धक हो। इस मन को जो स्वीकार करें, ऐश्वर्यमय प्रभु प्रसन्न हों।।

प्रभु का श्री मुख है अग्नि, उत्पत्ति इस कारण उनकी हुई। वेदोक्त यज्ञ यागादि कर्म, पूर्ति को प्राप्त वह करें सही।।
इस तन भीतर यह अग्नि ही, जठर अन्न का रूप धरे। सागर के भीतर यह ही, बड़वानल बनकर रहे।।
उनमें बसे सब अन्न जल, आदि धातु पाचहन करे। और समस्त द्रव्य भी तो, उत्पन्न उससे ही होएं।।
ऐसे परम ऐश्वर्यमय, प्रभु हम पर प्रसन्न हों। उनके ही श्री चरणों में, बार बार अब नमन हो।।

जिनके द्वारा देवयान, मार्ग का अनुसरण कर। जीव ब्रह्मलोक को, सहज प्राप्त लेते हैं कर।।
वेदों की साक्षात् प्रतिमा, श्री हरि के ध्यान योग्य जो धाम। पुण्य लोक स्वरूप जो, और जो मुक्ति के हैं द्वार।।
अमृत स्वरूप जो हैं स्वयं, काल रूप हैं मृत्यु आप। सूर्य ही जिनके नेत्र हैं, परम ऐश्वर्यशाली प्रभु आप।।
उनके ही हम शरणागत हैं, प्रभु प्रसन्न हों वह हम पर। उनके ही श्री चरणों में, मस्तक दें हम अपना धर।।

प्रभु प्राण से ही संचालित हो, अब चराचर का जो प्राण। मन तन और इन्द्रिय बलदे, प्रकटा उनसे ही वायु महान्।।
हैं चक्रवर्ती सम्राट वे, हम और इन्द्रिय उनके अनुचर। ऐसे पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त, प्रभु आप प्रसन्न हों हम सब पर।।
जिनके कानों से दिशायें सब, उत्पत्ति को प्राप्त हों। हृदय से इन्द्रिय गोलक उनके, औरनाभि से आकाश हो।।
पंच प्राण इस इन्द्रिय मन, असुर और तन आश्रय जो। महाविभूतिवान प्रभु, अब हम पर प्रसन्न हों।।

जिनके बल से हों इन्द्र उत्पन्न, प्रसन्नता से देव जन्में। क्रोध से श्री शंकर जन्मे, बुद्धि से श्री ब्रह्मा जन्में।।
इन्द्रियों से ऋषि और वेद हुए, और लिंग से जन्मे प्रजापति। हम पर वह सदा प्रसन्न रहें, हैं सब ही विभूति यह जिनकी।।
वक्ष:स्थल से प्रकटी लक्ष्मी, छाया से हुए पितृगण। सीस से है प्रकटा आकाश, अधर्म पीठ से स्तन से धर्म।।
विहार से प्रकटी अप्सरा गण, ऐश्वर्य मय वह हैं प्रभु। हम पर वह प्रसन्न हों, स्वयं प्रकाश श्री स्वयंभू।।

जिनके मुख से ब्राह्मण प्रकटे, और रहस्यमय वेद सब। भुजाओं से उनके क्षत्रिय जन्मे, उनके संग जन्मा उनका बल।।
जंघा से वैश्य प्रकटे, उनकी सब वृत्तियाँ भी जन्मीं। वाणिज्य व्यापार कुशलता, उनकी भी संग सग जन्मी।।
चरणों से उत्पन्न शूद्र हुए, जो वेदों से है बाहर। उनकी सेवा आदि वृत्ति का, भी हुआ वहीं से है प्राकट्य।।
परम ऐश्वर्यशाली प्रभु, अब हम पर प्रसन्न हों। उनके ही श्री चरणों में, अब हमारा नमन हो।।

जिनके अधर से प्रकटा लोभ, और ओष्ठ से प्रीति प्रकटी। नासिका से कान्ति जन्मी, स्पर्श से पशु प्रिय काम हुई।।
भौहों से यम और नेत्र के, रोमों से काल उत्पन्न हुए। प्रसन्न हों महाविभूतिवान्, हम उन प्रभु की शरण पड़े।।

पंचभूत काल और कर्म, और सत्त्वादि जो गुण विशेष। विवेकी पुरुष द्वारा जो भी, अनिर्वचनीय पदार्थ विशेष।।
वे सबके सब प्रभु की ही, योगमाया से हैं बनें। ऐसा है हमने सुना, ऐसा ही सब शास्त्र कहें।।
वह परम ऐश्वर्यशाली प्रभु, अब हम पर प्रसन्न हों। उन श्री हरि की शरण को, हम सभी प्रपन्न हों।।

मायानिर्मित गुणों में जो, वृत्तियों द्वारा आसक्त न हों। वायु की भाँति सर्वदा, सदा ही जो असंग हों।।
समस्त शक्तियाँ और वृत्तियाँ, जिनकी हो गईं शान्त हों। आत्मानन्द की प्राप्ति से, परिपूर्ण आत्म स्वरूप को।।
उन श्री भगवान को, नमस्कार हमारा है। उनके श्री चरण ही तो, एको ठौर हमारा है।।

मन्द स्मित से खिला हुआ, मुख कमल देखना हम चाहें। दर्शन उनका पा नयनों की, प्यास बुझाना हम चाहें।।
हम आपके शरणागत हैं प्रभु, कृपा आप अब कीजिये। हे करुणामय प्रभु आप, अब दर्शन हमको दीजिये।।
समय समय पर स्वेच्छा से, प्रभु अनेकों रूप धरें। अति कठिन जो हमारे लिये, वह काज सहज में आप करें।।
हे सर्वशक्तिमान् प्रभु, को काज कठिन है आप को? आपके श्री चरणों में प्रभु, बारम्बार प्रणाम हो।।

विषयों के लोभ में पड़कर के, जीव जो दु:ख है भोग रहे। देहाभिमानी कर्मों के, कठिन परिश्रम हैं करते।।
क्लेश बहुत वह भोगते हैं, पर फल तो बहुत गौण पायें। अधिकांश तो विफलता ही, उनके हाथों सदा आये।।
जो कर्म समर्पित आपके हों, वह ही परम सुख कारक हैं। परम फल दे हैं वही, वह ही आनन्द दायक हैं।।

अणुतम कर्म जो श्री हरि के, चरणों में अर्पित हो जाये। छोटा से छोटा कर्म अर्पण, विफल कभी न हो पाये।।
परम सुहृद् जीव के, परम हितैषी परमात्मा। वह प्रभु ही हैं परम प्रियतम, वह ही हैं सबका आत्मा।।
ज्यों वृक्ष की जड़ को सब सींचें, शाखाएं सब जल पायें। सर्वात्म प्रभु की आराधना में, सबकी ही आराधना हो जाये।।
त्रिकाल में जो हैं स्वयं स्थित, और उनसे परे रहें एक रस। तर्क वितर्क से है परे, जिनकी लीलाओं का रहस्य।।
जो गुण से परे रहकर भी, स्वयं हैं सब गुण के स्वामी। इस पल हैं जो स्तव स्थित, प्रणाम उन्हें हमारा स्वामी।।
शुकदेव बोले,
जब देवों ने हे राजन्, श्री हरि की यूँ स्तुति करी। तब उनके ही मध्य में, श्री हरि की प्राकट्य हुई।।
उनके तन की कान्ति और, दिव्य प्रभा कुछ ऐसी थी। मानों सहस्र सूर्यों की, हो ज्योति प्रज्वलित हुई।।
उस दिव्य कान्ति से फिर, देवों के नेत्र चुंधिया गए। प्रभु तो क्या आकाश दिशा, पृथ्वी निज तन न देख सके।।

श्री शंकर और ब्रह्मा ही, उस छवि का दर्शन कर पाये। अति सुन्दर माधुर्यमयी, झाँकी को वही देख पाये।।
मरकत मणि के समान स्वच्छ, श्यामल शरीर ही था उनका। कमल के भीतरी भाग सम, अरुण नयन में डोरियाँ।।
चमकीले स्वर्णिम वर्ण, का था उनका पीताम्बर। सर्वाङ्ग सुन्दर तन का हर, रोम प्रसन्नता से रहा भर।।
धनु: समान टेढ़ी भौहें, और सुन्दर उनका वदन। मणिमय किरीट उनके सिर पे, और भुजा में बाजूबन्द।।
कानों में लटकते कुण्डल की, छवि से चमकें उनके कपोल। मुख कमल भी उनका खिल उठता, ऐसा सुन्दर रूप अलोल।।
कमर में करधनी की लड़ियाँ, और हाथों में पहरे कंगन। कण्ठ में हार था झूल रहा, चरणों में नूपुर थे छनछन।।
वक्ष:स्थल पर श्री लक्ष्मी जी, वत्स चिन्ह में विराज रहीं। गले में कौस्तुभ मणि के संग, वन माला सुसज्जित थी।।

सुदर्शनादि प्रभु के आयुध, हो मूर्तिमान् करते सेवा। सब देवों ने गिर पृथ्वी पर, उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।।
श्री शंकर और ब्रह्मा ने फिर, सब देवों को साथ लिया। परम पुरुष परमात्मा का, स्तुति गान आरम्भ किया।।
ब्रह्म बोले,
सृष्टि स्थिति और प्रलय से, जिनका न कोई सम्बन्ध हो। प्राकृतिक गुणों से अतीत हैं जो, हैं परमानन्द के सिन्धु जो।।

सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म वह, अनन्त वह मोक्ष स्वरूप हैं। प्रणाम महानुभाव को, प्रभु सर्वरूप जो अरूप हैं।।
निज कल्याणकामी साधक, आपके इस स्वरूप की। वेदोक्त पांचरात्रोक्त विधि से, उपासना करें पुरुषोत्तम की।।
हे मेरे भी रचयिता प्रभु, विश्वमय तव स्वरूप में। सब देवों सहित मुझको, त्रिलोक के दर्शन हो रहे।।

यह जग था लीन आपमें ही, मध्य में आपमें ही स्थित है। अन्त में लीन हो आपमें ही, यह ही इसकी गति भी है।।
कार्य कारण से परे, परं स्वतंत्र प्रभु आप हैं। इस जगत् के आदि और अन्त, मध्य भी प्रभु आप हैं।।
ज्यों घट का आदि अन्त, और मध्य भी माटी ही है। इसी विधि विश्व का आदि, अन्त मध्य भी आप ही हैं।।

निज आश्रित माया से आप, इस जग की रचना करें। और प्रवेश करके इसमें, अन्तर्यामी बन आप रहें।।
विवेकी और शास्त्रज्ञ जीव, धीरता और दक्षता से। निज मन को विषयों से खेंच, अपने में एकाग्र करे।।
इन गुणों और विषयों की, निरन्तर बनी इस भीड़ में। निज निर्गुण स्वरूप का, ही वह साक्षात्कार करे।।

ज्यों जीव युक्ति द्वारा, लकड़ी से अग्न जला ही लें। गौ से अमृत सम दूध लें, पृथ्वी से अन्न और जल पा लें।।
व्यापार के राही वह अपनी, आजीविका भी चलाते हैं। त्यों ही विवेकी पुरुष भी, शुद्ध बुद्धि शरण में जाते हैं।।
शुद्ध बुद्धि से भक्ति योग, और ज्ञान योग का आश्रय लें। और प्रभु वे आपको, इन विषयों में ही प्राप्त करें।।
निज अनुभूति अनुकूल वे, वर्णन भी आपका करते हैं। स्वयं करें वह साक्षात्, प्रचार भी सबमें करते हैं।।

हे कमलनाभ ज्यों दावानल, में झुलसा हुआ हाथी। सुख शान्ति का अनुभव करे, गंगाजल में लगा डुबकी।।
त्यों ही प्राकट्य से आपके, हम सभी सुखी और शान्त हुए। हे स्वामी बहुत दिनों से हम, दर्शन हेतु लालायित थे।।
आप ही हमारे बाहर भी, भीतर बनी आत्म समाये हैं। हम लोकपाल सब मिलकर के, आपकी शरण में आये हैं।।
हमारे उद्देश्य को हे प्रभु, अब कृपा करी पूर्ण करें। सबके साक्षी हैं आप प्रभु, निवेदन क्या चरण में धरें?

हे प्रभो मैं और शंकर जी, अन्य देवता गण सभी। सब ऋषि मुनि और, दक्ष आदि सब प्रजापति।।
सब आपके ही प्रभु अंश हैं, ज्यों अग्न से निकली चिंगारी। भूल से ही वह अपने को, अग्नि से भिन्न ही मान रही।।
ऐसी अवस्था में प्रभु, हम समझ ही क्या पायें? ब्राह्मण और देव दोनों का, कल्याण जिसमें बन जाये।।
हे प्रभु अब आप ही, आदेश उसका दीजिये। जिसको उचित आप समझें, वैसा ही कर लीजिये।।
शुकदेव बोले,
ब्रह्मा आदि देवों ने, इस प्रकार से स्तुति करी। अपनी सारी इन्द्रियाँ भी, उन सबने फिर रोक लीं।।
अति दक्षता से फिर सब, कर जोड़ कर खड़े हुए। उनकी स्तुति सुन हृदय ही जान, मेघ से स्वर में प्रभु बोले।।

सब देवों तथा जग के स्वामी, वह सबमें बसे अन्तर्यामी। एकाकी प्रभु ही उनका कार्य, करने में थे समर्थ स्वामी।।
फिर भी सागर मन्थन आदि, लीलाओं का विस्तार किया। इस उद्देश्य से देवों को, सम्बोधित कर उन्होंने कहा।।
भगवान बोले,
हे ब्रह्मा शंकर और देवों, हो सावधान मेरी बात सुनो। तुम सबके कल्याण का, यह ही एक साधन हो।।
इस पल जान लो असुरों पर, काल की कृपा है बनी हुई। जब तक बेला नहीं आती, तव अभ्युदय और उन्नति की।।

तब तक तुम दैत्य दानवों पे, जाकर उनसे सन्धि कर लो। इस क्षण तो इस द्वन्द्व को, हे देवों इस विधि शान्त करो।।

हे देवों यदि जीवन में, कोई बड़ा काज करना चाहो। उचित यही है शत्रु से भी, इस पल सन्धि कर जाओ।।
यह बात भले ही निश्चित है, जब काम तुम्हारा बन जाये। सांप और चूहे वाला, बर्ताव वहाँ किया जाये।।
अविलम्ब तुम सब मिलकर, अमृत मन्थन के यत्न करो। उसके पान से मृत्युधर्मा, प्राणी भी फिर अमर हो।।

क्षीर सिन्धु में प्रथम तुम, तृण घास लता औषध डालो। फिर मन्द्राचल को मथनी, वासुकि नाग की नेति करो।।
मेरी सहायता से फिर तुम, सागर का मन्थन करो। नहीं प्रमाद का यह समय, उठो आलस्य को अब त्यागो।।
हे देवों मेरा विश्वास करो, दैत्यों को मिलेगा श्रम क्लेश। किन्तु इसका वास्तविक फल तो, तुम लोगों को ही मिले शेष।।
हे देवो असुर जो भी चाहें, तुम सब ही स्वीकार करो। शान्ति से बनें सब ही काज, नहीं क्रोध से कुछ भी सम्पन्न हो।।

पहले तो उस सागर से, कालकूट विष निकलेगा। भय न करना उससे तुम, जो भी विष तब निकलेगा।।
किसी भी वस्तु के लिये, कभी लोभ तुम न करना। पहले तो किसी वस्तु की, कामना ही तुम न करना।।
यदि कामना हो भी कहीं, और पूरी वह न होए। तो भी इतना जान लो, कभी क्रोध न करना चाहिए।।
शुकदेव बोले,
देवों को यह आदेश दे, पुरुषोत्तम प्रभु हुए अन्तर्धान। परम स्वतंत्र जो वह ठहरे, वही हैं सर्व शक्तिमान्।।
उनकी लीला का रहस्य, जान कौन कभी सकता है? उनकी कृपा ही जब होए, समझ तभी वह पड़ता है।।
ब्रह्मा और शंकर ने फिर, अपने को उनके चरण में धरा। उनके चले जाने पे पुनः, नमस्कार उनको किया।।
फिर वे सब अपने अपने, लोकों को ही चले गए। तत्पश्चात् इन्द्रादि देव, राजा बलि के पास गए।।

बिन अस्त्र शस्त्र लिये देवों को, सामने आते जब देखा। दैत्य सेनापतियों के, मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ।।
उन देवों को दैत्य वह, पकड़ ही लेना चाहते थे। दैत्य राज बलि लेकिन, सन्धि विरोध पहचानते थे।।
पावनकीर्ति सम्पन्न वह थे, उन्होंने उचित व्यवहार किया। उस पल दैत्यों को उन्होंने, वैसा करने से रोक दिया।।

इसके बाद देवता सब, राजा बलि के पास गए। तीनों लोकों को राजा, बलि स्वयं थे जीत चुके।।
सर्व सम्पदा से सेवित, सेनापतियों से सुरक्षित थे। असुरों के राज्य सिंहासन पर, राजा बलि थे बैठे हुए।।
बुद्धिमान् इन्द्र ने तब, मधु वाणी का आश्रय लिया। राजा बलि को समझाकर, उन सब बातों को कहा।।
जिनकी शिक्षा साक्षात्, श्री हरि ने थी उनको दी। दैत्यों के राज्याधिराज को, ज्यों की त्यों उन्होंने कह दी।।

दैत्यराज बलि के मन को, वह सब बातें भा गईं। वहाँ बैठे अन्य सेनापतियों, ने भी यह बातें सुनीं।।
शम्बर अरिष्टनेमि और, त्रिपुर निवासी असुरों को। भी यह बात बहुत भली लगी, बलि राज्य के असुरों को।।
तब देवों और असुरों ने, आपस में सन्धि कर ली। वैर भाव सब छोड़ कर, मित्रता आपस में कर ली।।

४) समुद्र मन्थन

१) समुद्र मन्थन का उद्योग

हे राजन् फिर सबने मिल, नव उद्योग आरम्भ किया। अमृत मन्थन के हेतु, सब साधन लिये उन्होंने जुटा।।

तत्पश्चात् निज शक्ति से, मन्द्राचल को उखाड़ लिया। ललकारते और गर्जते हुए, सिन्धु की ओर प्रस्थान किया।।
परिघ के समान ही, उनकी थी बलशाली भुजा। तन में उनके शक्ति भी थी, निज बल पे घमण्ड भी था।।

किन्तु इक ओर तो मन्द्राचल, पर्वत था अति भारी। दूरी भी अति विषम थी, दूजी ओर ले जाने की।।
इस कारण इन्द्र बलि आदि, सबके सब ही हार गए। जब यह किसी प्रकार भी, आगे पर्वत ले जा न सके।।
तब विवश होकर उन्होंने, उसे राहों में ही छोड़ दिया। इस विध पर्वत ले जाने का, उद्योग सफल न हो सका।।
स्वर्ण का पर्वत मन्द्राचल, वहन के लिये था अति भारी। गिरते समय बहुत देव असुर, उसने चकनाचूर करी।।

उन देवों और असुरों के, हाथ कमर कंधे टूटे। संग में उनके मनो उत्साह, मनोबल भी अति क्षीण हुए।।
हतोत्साहित उन्हें हुआ देख, सहसा प्रभु वहाँ प्रकटे। गरुड़ पे होके वह सवार, उनके मध्य आ हुए खड़े।।
उन्होंने देखा पर्वत गिरने से, देव असुर हैं पिस गए। निज अमृतमयी दृष्टि से, उन देव पुन: जीवित किए।।
मानो उनके तन में कभी, चोट कहीं भी नहीं लगी। इस भाँति देवों को उन, पुन: स्वास्थ्य प्रदान करी।।

तत्पश्चात् ज्यों खेल में ही, इक हाथ पे पर्वत उठा लिया। स्वयं सवार हुए गरुड़ पे, पर्वत को भी संग लिया।।
फिर देवासुर संग लिये, समुद्र तट की करी यात्रा। पक्षीराज श्री गरुड़ ने, सागर तट पर पर्वत धरा।।
प्रभु के विदा करने पर फिर, श्री गरुड़ वहाँ से चले गए। इस भाँति मन्द्राचल गिरि, सागर तट पे थे पहुँचे।।

२) कच्छप (कूर्म) अवतार

शुकदेव बोले,
देवों असुरों ने नागराज, वासुकि को यह वचन दिया। मन्थन से प्राप्त हो जो अमृत, वहाँ भाग तुम्हारा भी होगा।।
उसको भी उस मन्थन में, सम्मिलित उन्होंने कर लिया। नेति बना फिर वासुकी को, मन्द्राचल पे लपेट दिया।।
उत्साह और आनन्द से फिर, सागर मन्थन आरम्भ किया। अमृत को रख ध्यान में, यह था सारा उद्योग हुआ।।
सर्वप्रथम श्री अजित प्रभु, वासुकी मुख की ओर गए। इसलिये सब देवता भी, वहीं पे आकर जुट गए।।
किन्तु प्रभु की यह चेष्टा, दैत्यों के मन न भाई। पुच्छ को जानी अशुभ कहा, नहीं पकड़ेंगे इसे दैत्य कभी।।

कहा वेद शास्त्रों का हमने, है विधिवत् अध्ययन किया। हम जानें ऊँचे वंश में, है हमारा जन्म हुआ।।
वीरता के बड़े बड़े काज भी हमने हैं किये। फिर कहो किस बात में, देवों से हम कम रहे?
यह कहकर वह सभी दैत्य, एक ओर जा खड़े हुए। यह मनोवृत्ति देखी उनकी, प्रभु मुख से कुछ मुसकाये।।
वासुकि का मुख उन्होंने छोड़ दिया, और देवों को भी संग लिया। पूंछ की ओर जा हुए खड़े, और उसको ही उन्होंने पकड़ा।।

इस प्रकर अपना अपना, जब स्थान निश्चित कर लिया। अमृत के लिये उन दोनों ने, मन्थन यह आरम्भ किया।।
हे राजन् जब सिन्धु का, मन्थन यह आरम्भ हुआ। बलवान् देवों और असुरों ने, नाग नेति को था पकड़ा।।
फिर भी निज भार के कारण, और आधार न होने से। मन्द्राचल पर्वत स्वत:, डूबने सागर में लगे।।

बलवान् दैव ने जब देखा, उसका किया उद्यम सारा। मिट्टी में है मिलने लगा, उसका दिल तब टूट गया।।
सबके मुख निराशा से, ही म्लान थे होने लगे। देवासुर यह देख कर, हतोत्साहित हो गए।।

श्री प्रभु ने उस पल देखा, है कृति यह विघ्न राज की। उसे निवारण को उन्होंने अद्भुत उपाय की सोच करी।।
अति विचित्र और विशाल, कच्छप का रूप उन्होंने धरा। सागर जल में प्रवेश कर, मन्द्राचल को लिया पीठ उठा।।
सत्य संकल्प हैं श्री हरि, अनन्त ही है उनकी शक्ति। ऐसा करना उनके लिये, किंचित् भी बड़ी बात न थी।।

देव और असुरों ने देखा, मन्द्राचल ऊपर उठ आया। तब पुन: मन्थन के लिये, उन अपने को तैयार किया।।
प्रभु ने जम्बुद्वीप सम, इक लाख, योजन फैली हुई। उस अपनी कच्छप पीठ पे, थी मन्द्राचल धारण करी।।

हे राजन् जब बड़े बड़े, असुरों ने और देवों ने। अपने महा बाहु बल से, मन्द्राचल थे प्रेरित किये।।
तब वह श्री भगवान की, पीठ पे घूमने ही लगा। आदि कच्छप अनन्त प्रभु, को था वह ऐसा भास रहा।।
मानो उनकी पीठ को, कोई हो खुजला रहा। इस कारण पर्वत का आवर्त्त, उनको था अति भा रहा।।

संग ही संग इस मन्थन को, सम्पन्न करने के लिये। असुरों की शक्ति बढ़ाते हुए, प्रभु ने उनमें प्रवेश किये।।
उसी विधि देवों को भी, उत्साहित उन्होंने किया। प्रविष्ट हुए वहाँ देव बन, वासुकी में निद्रा रूप धरा।।
मन्द्राचल ऊपर दूसरे, पर्वत समान वह बन गए। सहस्त्रबाहु निज हाथों से, दबाकर स्थित पर्वत को टिकाए।।
उस समय आकाश में, ब्रह्मा शंकर और इन्द्रादि। स्तुति गान उनका करने लगे, और संग पुष्प वर्षा करी।।

इस विध पर्वत के ऊपर, उसे दबाते रूप में। उसके नीचे आधार बने, महाकच्छप के रूप में।।
देवों असुरों के तन में, शक्ति दृढ़ता के रूप में। कष्ट मुक्त उसे करने को, निद्रा बनी वासुकी नाग में।।
प्रविष्ट हुए हरि सभी ओर, सबको शक्ति सम्पन्न किया। निज बल के उन्माद ने, उन्मत्त सबको किया।।

३) धन्वन्तरी अवतार

मन्द्राचल द्वारा अति वेग से, मन्थन वह करने लगे। जलचर मत्स्य आदि सब जीव, अति क्षुब्ध इससे हुए।।
वासुकी के सहस्त्र नेत्र, मुख और श्वासों से विष की। बहुत प्रचण्ड अग्नि फिर, धधक कर निकलने लगी।।
पालोम कालेय बलि इल्विल, उनके धूम से हुए निस्तेज। ज्यों दावानल में झुलसे हुए, सूखे वृक्ष हों खड़े निस्तेज।।

देवता भी इस काल कूट से, अपने को न बचा सके। वासुकी के श्वास की लपटों से, थे उनके तेज भी फीके पड़े।।
वस्त्र माल कवच और मुख, सबके सब धूमिल हुए। यह दशा देख के उन सबकी, प्रभु प्रेरणा से बादल घुमड़े।।
देवों के ऊपर वह बादल, अपना जल बरसाने लगा। वायु भी तब मन्द मन्द, गति से ही था विचर रहा।।
सागर तरंग का स्पर्श पा, वह शीतल और सुगन्धित था। सारे वातावरण को, वह सुरभित था कर रहा।।

इस विध देवों और असुरों ने, सागर का बहुत मन्थन किया। बहुत यत्न करने पर भी, अमृत वहां से न निकला।।
तब स्वयं अजित भगवान आ, सागर का मन्थन करने लगे। इस विधि उन दोनों की, सहायता को वह आ पहुँचे।।

मेघ सम श्यामल तन पे, स्वर्णिम पीताम्बर लहराया। कानों में बिजली समान, झिलमिल था कुण्डल लटक रहा।।
सीस पे लहराते हुए, घुंघराले थे उनके बाल। नयनों में रक्तिम रेखायें, कण्ठ सुशोभित थी वनमाल।।
विश्वविजयी उनके भुजदण्ड, विश्व को जो अभय करें। उनसे थे पकड़े वासुकि, बनी कूर्म थे पर्वत को धारे।।
प्रभु मन्द्राचल की मथनी से, मन्थन जब करने लगे। तब दूजे गिरिराज सम, अति सुन्दर थे दीख रहे।।

अजित प्रभु ने इस विधि, जब सागर का मन्थन किया। अति क्षुब्ध सागर हुआ, विचलित उसका कण कण हो गया।।
मछली मगर सांप और, कछुए सब ऊपर आ गए। भयभीत होकर वे सब फिर, इधर उधर धावन लगे।।
तिमि तिमिलिङ्ग आदि मच्छ, जल हाथी ग्राह व्याकुल हुए। तत्क्षण सर्वप्रथम उसमें, उग्र हलाहल विष निकले।।

अति उग्र विष वह दिशा दिशा में, ऊपर नीचे सर्वत्र उड़ा। इस असह्य विष से बचने, का उपाय कोई न था।।
भयभीत हुई सारी प्रजा, प्रजापति भी त्राण कहीं न पाये। सब मिलकर सदाशिव की, ही शरण भागे आये।।
प्रभु शंकर सति के संग, थे कैलास पे विराज रहे। बड़े बड़े ऋषि और मुनि, थे उनकी सेवा में लगे।।
तीनों लोकों के अभ्युदय और, मोक्ष हेतु वह तप रत थे। प्रजापतियों ने उनका दर्शन कर, स्तुति करी प्रणाम किये।।
प्रजापति बोले,
देवों के परम आराध्य आप, सब प्राणियों के हैं आत्मा। सबके हैं प्राण स्वरूप आप, सबके ही आप जीवन दाता।।
हम आपकी शरण में आये हैं, आप ही हमारी रक्षा करें। त्रिलोकी के भस्मकारी, इस उग्र विष से बचा ही लें।।
सम्पूर्ण जगत् के बन्धन और, मुक्ति में आप हैं सर्व समर्थ। इसलिए विवेकी पुरुष सब, आराधना में सदा रहते रत।।
आप ही निज शरणागत की, पीड़ा हरने वाले हैं। जगद्गुरु हैं आप प्रभु, अज्ञान के नाशन हारे हैं।।

निज गुणमयी शक्ति से प्रभु, सृष्टि स्थिति और प्रलय करें। अनन्त एक रस होते हुए, ब्रह्मा विष्णु शिव रूप धरें।।
स्वयं प्रकाश हैं आप प्रभु, हैं परम रहस्यमय ब्रह्म तत्त्व। हैं जितने देव मनुष्य पशु, पक्षी आदि सब सत असत्।।
सब चराचर जीवों के, जीवन दाता इक आप हैं। नहीं अन्य कहीं कोई सृष्टि में, सबके आत्म इक आप हैं।।
अनेक शक्तियों द्वारा आप, जगद् रूप में भास रहे। सर्व समर्थ भी आप हैं, हैं आप ही सबके ईश्वर हे।।

आपसे ही हे प्रभु, सारे वेद हैं प्रकट हुए। सब ज्ञान का मूल स्रोत, स्वत: सिद्ध ज्ञान हैं आप हरे।।
आदि कारण जग के आप, महत्तत्त्व और त्रिविध यह अहंकार। प्राणेन्द्रिय और महाभूत आप, तथा शब्दादि के भिन्न स्वभाव।।
हैं मूल कारण आप ही, वृद्धि और ऱ्हास का कारण काल। कल्याणकारी हैं यज्ञ आप, और सत्य मधुर वाणी भी आप।।
धर्म स्वरूप भी आप हैं, अ उ म् से युक्त प्रणव। त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं आप, ऐसा कहें महात्मा जन।।

सर्व वेद स्वरूप अग्नि, ही आपका श्री मुख है। हे प्रभु शंकर त्रिलोक के, आप ही अभ्युदयकर हैं।।
है पृथ्वी आपके चरण कमल, हैं अखिल देव स्वरूप आप। वरुण रसना दिशायें कान, हों काल से ही गतिवान् आप।।
आकाश है नाभि वायु श्वास, सूर्य नेत्र और वीर्य है जल। ऊंचे नीचे सभी जीवों का, आश्रय है आपका ही अहम्।।
चन्द्रमा है मन आपका, और स्वर्ग आपका सीस हे। हे महादेव अब करें कृपा, देवें हमको आसीस हे।।

समुद्र आपकी कोख हैं, पर्वत समूह हैं अस्थियाँ। रोम हैं आपके घास और, सब प्रकार की औषधियाँ।।
सातों धातु हैं आपकी, गायत्री आदि सभी छन्द। आपका हृदय ही है प्रभु, सब प्रकार के हैं जो छन्द।।

हे प्रभु पांच उपनिषदों को, आपका ही श्री मुख कहें। तत्पुरुष अघोर सद्योजात, वाम ईशान ही नाम कहें।।
उनके ही परिछेद से, अड़तीस कलात्मक मन्त्र कहे। सब प्रपंच से उपरत हो, जब निज स्वरूप में स्थित रहें।।
उसीको शिव सब कहते हैं, परम कल्याण स्वरूप हैं वे। वास्तव में वही स्वयं प्रकाश, वही परमार्थ तत्व हैं।।

अधर्म की दम्भ लोभ आदि, तरंगे आपकी छाया कहें। त्रैगुण जिनसे सब सृष्टि रची, आपके तीनों नेत्र हैं वे।।
गायत्री आदि छन्द रूप, सनातन वेद विचार है। सांख्यादि सब शास्त्रों में, आपका ही विस्तार है।।
आप ही उनके कर्ता हैं, आप ही हैं उन सबमें स्थित। आपके ही शरणागत हम, हे कल्याणमय सदाशिव।।

परम ज्योतिर्मय स्वरूप, आपका है श्री परं ब्रह्म। न तमोगुण न ही रजोगुण, न ही भासे उसमें सतोगुण।।
किसी भाँति का भेद भाव, स्वरूप में कभी नहीं होता। आपके उस स्वरूप को, जान कोई भी नहीं सकता।।
सब लोकपाल संग श्री ब्रह्मा, और विष्णु संग इन्द्र भी। थाह न पायें स्वरूप की, दूर ही रह जायें सभी।।

कामदेव और दक्ष यज्ञ, त्रिपुरासुर आपने नष्ट किये। अनेकों जीव द्रोही असुर, और कालकूट विष नष्ट किये।।
किन्तु यह सब कह देने से, नहीं स्तुति आपकी हो सकती। प्रलय काल में सकल विश्व, जो रचा है आपने स्वयं ही।।
आपके नेत्रों से निकली, चिंगारी की ज्वाला से। जलकर सब भस्म ही हो जाये, पर आप तो ध्यान निमग्न रहें।।
जैसे आपको इन सबका, आभास भी हो ही नहीं पाता। सब करके परे ही आप रहें, गुण दोष न कोई छू पाता।।

जीवन मुक्त नित्य आत्म राम, निज हृदय में आपके चरण धरें। युगल चरण का ध्यान धरी, निरन्तर उसमें मग्न रहें।।
आप स्वयं भी तो सदा, ज्ञान और तप में लीन रहें। फिर भी सती के संग देख, आसक्त आपको जो मानें।।
अथवा श्मशान में बसा देख, जो उग्र बतायें आपको। वे मूढ़मति भला क्या जानें, अद्भुत आपकी लीला को।।
ऐसा कथन तो है उनका, जो निर्लज्जता से हैं पूर्ण। समझ न पायें आपको वह, उनका सब ज्ञान रहे अपूर्ण।।

इस कार्य कारण जगत् से प्रभु, परे आपकी माया है। इस माया से भी परे आप, माया तो आपकी छाया है।।
अनन्त स्वरूप को आपके ब्रह्मादि भी न जान सकें। फिर स्तुति तुम्हारे स्वरूप की, सम्भव कैसे प्रभु हो सके?
ऐसे में उनके प्रपौत्र, हम जैसे जन क्या कह सकें? फिर भी निज समर्थ लगा, गुणगान आपका कर हैं रहे।।

यह लीला स्वरूप ही, केवल हम आपका देख रहे। परम स्वरूप को आपके, जान नहीं कभी हम सकते।।
हे महेश्वर यद्यपि, लीला अव्यक्त है आपकी। फिर भी जग कल्याण को, धरें व्यक्त रूप भी आप ही।।
शुकदेव बोले,
प्रजा का यह संकट देख, शंकर के हृदय में पीड़ा उठी। समस्त प्राणियों के सुहृद्, अकारण बन्धु हैं वही।।
अपनी प्रिया सती से, फिर उन्होंने यह बात कही। निज प्रजा कल्याण को, प्रभु ने फिर यह युक्ति करी।।
शिवजी बोले,
बहुत खेद की बात है यह, हे देवी देखो तो सही। समुद्र मन्थन से देखो, काल कूट जो विष निकली।।
इसके कारण प्रजा पर, कितना भीषण दु:ख आन पड़ा। छोटे बड़े सभी प्राणी, को है इसने आ घेरा।।
जिस किसी विधि यह जीव सभी, निज रक्षण करना चाहें। मेरा भी कर्त्तव्य यही, इन्हें अभय दान देना चाहें।।
जिनके पास हो शक्ति सामर्थ्य, है जीवन का सार्थक इसमें। दीन दु:खी की वह हर पल, हर भाँति ही रक्षा करें।।

सज्जन जीव तो है वही, जो दूजे की रक्षा के लिये। अपने क्षणभंगुर प्राणों तक, की आहुति दे ही दे।।
निज मोह की माया मे फंसकर, सब जीव मोहित हुए जग के। एक दूसरे से हर पल, हैं ग्रन्थि वैर की गांठ रहे।।

जो कृपा करे उन जीवों पर, श्री कृष्ण भी उसपे मुदित हों। प्रभु प्रसन्नता में हम भी, चराचर जग संग मुदित हों।।
इस कारण तत्काल ही मैं, इस विष का अब पान करूँ। इस विधि निज प्रजा का, कल्याण ही मैं करना चाहूँ।।
शुकदेव बोले,
विश्व के जीवन दाता शिव ने, सती से यह प्रस्ताव किया। उस विष के फिर पान को, सदाशिव ने उद्योग किया।।
देवी भी उनके प्रभाव को, भली भाँति ही जाने थी। हृदय से प्रभु प्रस्ताव की, फिर उन्होंने अनुमोदन की।।
अति कृपालु हैं शंकर, जीवित सब उसकी शक्ति से रहें। तीक्ष्ण विष हाथ में धर करी, वह उसका पान ही कर गए।।

जल का पाप ही था वह विष, शंकर पे अपना प्रभाव किया। इससे उनका कण्ठ तो, कुछ कुछ नीला पड़ गया।।
प्रजा कल्याण रत शंकर का, वह आभूषण बन गया। इस कारण उनका एक नाम, नीलकण्ठ ही पड़ गया।।
परोपकारी सज्जन का, होता है स्वभाव यही। दूजे के दु:ख टालन हेतु, वह अपने पे दु:ख झेले सभी।।
पर वास्तव में यह दु:ख नहीं, यह तो प्रभु की आराधना है। सबके हृदयों में विराजमान्, श्री हरि की परम साधना है।।

देवादिदेव शंकर सबकी, मनोकामना पूर्ण करते हैं। निज पर सबके संकट लेकर, सबके दु:ख वह हरते हैं।।
उनके जग कल्याण कर, जब अद्भुत कर्म की बात सुनी। सम्पूर्ण प्रजा सती ब्रह्मा, श्री विष्णु ने भी प्रशंसा करी।।
प्रभु शंकर जिस समय, यह विषपान थे कर रहे। हाथ से उनके हलाहल के, कुछ बिन्दु थे टपक पड़े।।
बिच्छु सांप और अन्य विषैले, जीवों ने उन्हें ग्रहण किया। विषपूर्ण कुछ औषधियों में, भी उसने प्रवेश किया।।
शुकदेव बोले,
इस प्रकार श्री शंकर ने, जब हलाहल विष पिया। असुर और देवों का तब, मन प्रसन्न ही हो गया।।
नव उत्साह उनमें भरा, सागर पुन: वह मथने लगे। इस मन्थन से कामधेनु, के पुन: प्राकट्य हुए।।
अग्निहोत्र की सामग्री, धेनु वह उत्पन्न करती थी। यज्ञोपयोगी सामग्री, ब्रह्म लोक तक पहुँचाती थी।।
पावन घृत दूध आदि, प्राप्त करने के लिये। ब्रह्मवादी ऋषियों ने, उस कामधेनु को ग्रहण किये।।

तत्पश्चात् उच्चैश्रवस्, नामक घोड़ा वहाँ निकला। चन्द्रमा के समान ही, श्वेत शुभ्र उसका वर्ण था।।
बलि ने फिर उस अश्व को, अपने लिये लेना चाहा। प्रभु के ही सिखाने पर, इन्द्र था उससे विमुख हुआ।।
ऐरावत नामक हाथी फिर, उस मन्थन से निकल आया। चतुर्दन्त महान् उसके थे, उज्ज्वल कैलास भी पीछे रहा।।
तत्पश्चात् कौस्तुभ नामक, पद्म पराग मणि निकली। निज हृदय पे धारण करने को, श्री हरि ने वह लेनी चाही।।

स्वर्ग देश की शोभा को, वर्धित करे जो तरुवर। फिर सागर से प्रकटा वह, कल्प वृक्ष का रूप धर।।
अभीष्ट वस्तु दे याचकों को, इच्छायें सब पूर्ण करे। ज्यों पृथ्वी पर तू राजन्, सबकी इच्छा पूर्ण करे।।
फिर प्रकटीं अप्सरायें, सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई। कण्ठ में सबके स्वर्ण हार, थीं सुन्दर उनके झूल रहीं।।
निज मनहर चाल विलासमयी, चितवन से मन को लुभा रहीं। देवों को सुख पहुँचाने वाली, अप्सरा गण वह सार हुईं।।

शोभा मूर्ति स्वयं भगवती, लक्ष्मी जी फिर प्रकट हुईं। श्री लक्ष्मी जी तो जानो, हैं नित्य शक्ति भगवान की।।
द्युति समान उनकी छटा, थी चहुँ दिशा में फैल रही। सभी दिशायें विद्युत से, जैसे हो द्युतिमान हुईं।।
उनकी उदारता और सौन्दर्य, यौवन और रूप रंग ने। सबका मन आकर्षित किया, उनकी महिमा और ढंग ने।।

देव असुर मनुष्य सब, मन ही मन यह चाहने लगे। हमको ही मिल जायें यह, ऐसा शगुन मनाने लगे।।

स्वयं इन्द्र निज कर से ही, आसन विचित्र इक ले आये। उनके बैठने के लिये, अपने हाथ से बिछवाये।।
मूर्तिमान हो नदियों ने, अभिषेक का उन्होंने प्रबन्ध किया। स्वर्ण घटों में भर भर कर, लाकर उनको जल दिया।।
पृथ्वी ने भी अभिषेक के, योग्य सभी औषधी दी। गौओं ने दिये पंचगव्य, मधुमास ने फूल और फल सब दी।।

ऋषियों ने सब सामग्री ले, विधिवत् उनका अभिषेक किया। गन्धर्वों ने भी मंगलमय, संगीत की तान को छेड़ दिया।।
नर्तकियां भी नाच नाच, नव गीत संग में गाने लगीं। उनके गायन और नर्तन से, मंगल ध्वनि चहुँ दिक् गूंजी।।
बादल भी ज्यों रूप धरी, विभिन्न नाद करने लगे। मृदंग डमरू ढोल नगारे, शंख वेणु आदि बजे।।
नरसिंघे और वीणा के, स्वर पुन: मुखरित हुए। वातावरण में मंगलमय, ध्वनियों के यूं नाद हुए।।

तब भगवती श्री लक्ष्मी ने, अपने हाथों में कमल लिया। और निज सिंहासन को, लक्ष्मी जी ने ग्रहण किया।।
दिग्गजों ने जल के भरे, कलशों से उन्हें स्नान दिया। ब्राह्मण गण ने उस समय, वेद मन्त्रों का पाठ किया।।
सागर ने पहनने के लिये, रेशम की पीताम्बर दी। वरुण ने वैजयन्ती माला, लाकर उन्हें समर्पित की।।
उसकी मधुमय सुगन्ध से, भंवरे थे मतवाले हुए। श्री लक्ष्मी जी की शोभा के, थे कुछ ऐसे दृश्य बन्धे।।

प्रजापति और विश्वकर्मा ने, विविध आभूषण उन्हें दिये। सरस्वती ने मुक्ताहार, ब्रह्मा जी ने कमल दिये।।
नागों ने दिये दो कुण्डल, श्रृंगार पूर्ण उनका हुआ। इस विधि श्री लक्ष्मी का, अंग अंग था सज गया।।

सब ब्राह्मण गण मिलकर के, स्वस्ति पठन जब कर चुके। श्री लक्ष्मी जी निज कर में, कमल की माला लिये हुए।।
सर्वगुण सम्पन्न पुरुष के, गले में डालने उसे चलीं। माला की सुगन्धि भंवरों को, मतवाला थी कर रही।।
श्री लक्ष्मी जी के मुख की, शोभा थी अनिर्वचनीय। सुन्दर उनकी कपोलों पर, थे उत्तम कुण्डल लटक रहे।।
लज्जा सहित श्री लक्ष्मी जी, थीं मन्द मन्द मुसका रहीं। परम पुरुष वरण हेतु, कर में माल लिये जा रहीं।।

अति सूक्ष्म थी उनकी कटि, स्तन थे सुन्दर सटे हुए। चन्दन और केसर के, थे लेप वहां पे लगे हुए।।
इधर उधर जब वह चलतीं, पायजेब मधु झंकृत होती। ऐसा भासे कोई स्वर्ण लता, ज्यों इधर-उधर हो घूम रही।।

मन ही मन वह चाहती थीं, उत्तम निर्दोष कोई पुरुष मिले। समस्त गुणों से पूर्ण वह, नित्ययुक्त कोई पुरुष मिले।।
तब ही तो उस अविनाशी को, निज आश्रय मैं बना पाऊँ। ऐसे परम पुरुष को ही, मैं तो अब वरना चाहूँ।।
गन्धर्व यक्ष असुर सिद्ध, चारण देवों को जब देखा। कोई भी वैसा पुरुष, दीख उन्हें कहीं नहीं पड़ा।।

मन ही मन वह सोचन लागीं, तपस्वी तो हैं यहाँ कई। किन्तु अपने क्रोध पर, विजय नहीं उसने पाई।।
कुछ पे ज्ञान तो है बहुत, पर अनासक्त वह नहीं हुए। महत्त्वशील कोई अन्य जन, काम को नहीं है जीत सके?
ऐश्वर्यशाली हैं अन्य कई, पर ऐश्वर्य किस काम का? जब तक दूजों का आश्रय, पूर्णतय: नहीं छूटता।।

धर्माचारी तो अनेकों हैं, पर सर्वभूत प्रति प्रेम नहीं। त्याग तो है अनेकों में, पर त्याग तो मुक्ति हेतु नहीं।।
कई शूरवीर हैं, पर हैं सब काल के वशीभूत। आसक्ति रहित महात्मन् तो, रहते अद्वैत समाधि स्थित।।

कई ऋषियों ने अति दीर्घ, आयु तो है प्राप्त करी। किन्तु शील मंगल उनका, भी है मेरे योग्य नहीं।।
जिनका है उचित शील मंगल, आयु का भी ठिकाना नहीं। जिनमें दोनों ही गुण रहें, उनका है सुन्दर वेष नहीं।।
रहे एक प्रभु श्री विष्णु ही, सर्वगुण सम्पन्न हैं जो। किन्तु मुझको वह प्रभु मेरे, क्या करूं नहीं हैं चाहते जो।।

इस विधि सोच विचार कर, अन्त में श्री लक्ष्मी जी ने। चिर अभीष्ट प्रभु विष्णु ही, निज वर रूप में चयन किये।।
क्योंकि उनमें ही सब सद्गुण, नित्य निवास करते हैं। प्राकृत गुण कभी उनको, स्पर्श नहीं कर सकते हैं।।
अणिमा आदि समस्त गुण, उनकी वांछा करते हैं। किन्तु श्री हरि किसी गुण की, भी नहीं अपेक्षा रखते हैं।।
वास्तव में श्री लक्ष्मी का, हैं एक आश्रय श्री प्रभु ही। इस कारण लक्ष्मी जी ने, श्री हरि की ही वरण करी।।

नवकमलों की वह सुन्दर, माला गल पहरा ही दी। चहुँ ओर माला के थी, मत्त भंवरों की गुंजार भरी।।
लज्जापूर्ण मुसकान और, प्रेमपूर्ण चितवन से उन। निज निवास हरि वक्ष:स्थल, को सप्रेम निहारा उन।।
उनके पास वह जाकर के, खड़ी स्वयं ही हो गईं। इस भाँति लक्ष्मी ने हरि को, सम्मति अपनी प्रकट करी।।

जगत्पिता श्री हरि ने, सर्व सम्पदा अधिष्ठातृ। जगत्जननी लक्ष्मी जी को, निज वक्ष:स्थल में वास दी।।
वहाँ पे हो विराजमान्, चितवन से निज करुणामयी। त्रिलोक लोकपति और प्रिय, प्रजा की अभिवृद्धि करी।।
तत्काल ही शंख और तुरही, मृदंग आदि बाज बजे। अप्सराओं के संग संग, गन्धर्व भी नाचने गाने लगे।।
अति उल्लास से भरा, आनन्दमय तब घोष हुआ। सारा वातावरण ही, आनन्दोल्लास से भर उठा।।

ब्रह्मा रुद्र अंगिरा आदि, ने मिलकर बरसाये फूल। लीला वर्णितकर मन्त्रों से, गाये प्रभु के गुण स्वरूप।।
स्तुति वह उनकी करने लगे, गुण उनके वह गाने लगे। प्रभु का महिमा गान कर, त्रिलोक सभी हर्षाने लगे।।
देव प्रजापति और प्रजा, श्री लक्ष्मी जी की कृपा से। शीलादि गुण से हो सम्पन्न, महा सुखी ही हो गए।।
हे राजन् लक्ष्मी ने जब, दैत्यों देवों की उपेक्षा की। प्रमाद निर्लज्जता निर्बलता, और लोभ की वर्धन वहाँ हुई।।

तत्पश्चात् मन्थन जो किया। कमलनयनी कन्या प्रकटी। उसके रूप में वारुणी, ही स्वयं थी आ प्रकटी।।
प्रभु से अनुमति पाकर के, देवों ने उसे ले लिया। उनका ऐसा करना तो, उनके स्वभाव अनुकूल ही था।।

तदनन्तर हे राजन्, अमृत पाने की इच्छा से। देवों और असुरों ने मिलकर, मन्थन पुन: आरम्भ किये।।
तब उसमें से एक अतीव, अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। बहुत लम्बी और गोलाकार, उसकी थीं दोनों भुजा।।
गले में शंख समान ही, उतार चढ़ाव थे बने हुए। और रक्तिम् वर्ण के, उसके दोनों ही नेत्र थे।।
अंग प्रत्यंग विविध भाँति, के आभूषण से थे सजे। गले माल पीताम्बर तन, कानों में मणिमय कुण्डल थे।।
विशाल वक्ष तरुणावस्था, सिंह समान पराक्रमी वह था। स्निग्ध और घुंघराले बाल, अनुपम उसका सौन्दर्य था।।
अति अनोखी थी छवि, उस आश्चर्यमय पुरुष की। विस्मित होकर देवों और, दानवों ने उनके दर्शन की।।

हाथों में उसके कंगन थे, अमृत कलश था भरा हुआ। साक्षात् अंश अवतार था, जानो वह प्रभु विष्णु का।।
थे आयुर्वेद प्रवर्तक वह, यज्ञाभोक्ता नाम था धन्वन्तरी। दैत्यों की दृष्टि उनपर, उनके हाथ में अमृत कलश पे पड़ी।।
अति वेग से बलात् ही तब, अमृत कलश उन छीन ली। जो निकले बस हमें ही मिले, असुरों को यह ही ताक थी।।

जब असुरों ने उस अमृत के, कलश को अपने हाथ लिया। देवों का मन अति विषाद, से पूर्ण तब हो गया।।
प्रभु शरण में वह आये, भक्तों के कल्पतरु हैं हरि। भक्तवत्सल श्री हरि ने, जब उनकी आर्त दशा देखी।।
करुणामय प्रभु ने तब कहा, हे देवो तुम न उदास हो। काम तुम्हारा बना दूंगा, निज माया से भिड़ा इनको।।

अमृत लोलुप दैत्यों में फिर, उसके लिए शुरू हुआ द्वन्द्व। पहले मैं पिऊँ पहले मैं पिऊँ, नहीं तुम पिओ नहीं नहीं तुम।।
निर्बल दैत्य बलवानों का, विरोध फिर करने लगे। जिन्होंने बलात् ही कलश छीन के, अपने हाथ में थे लिये।।

ईर्ष्यावश वह धर्म की, दुहाई उनको देने लगे। उनको रोकने के लिये, बार बार उन्होंने यत्न किये।।
देवों ने भी हमारे समान, ही परिश्रम है किया। यज्ञभाग के समान ही, इसपे भी है अधिकार उनका।।
यह ही सनातन धर्म है, अनुसरण यही करना चाहिए। धर्मानुकूल ही अमृत का, विभाजन अब किया जाए।।

४) मोहिनी अवतार

इस प्रकार दैत्यों में इधर, तू तू मैं मैं थी हो रही। उधर चतुरशिरोमणि सर्व, उपाय के ज्ञाता श्री हरि।।
अति अद्भुत अनिर्वचनीय, स्त्री रूप धारण किया। सारी सृष्टि का सौन्दर्य, मानो उसमें था भर दिया।।
नील कमल समान वर्ण, दर्शनीय और अति सुन्दर था। अंग और प्रत्यंगों में, था अति आकर्षण भरा।।
सम आकार दोनों कर्ण, कर्णफूल से सुशोभित थे। सुन्दर कपोल उच्च नासिका, अति रमणीय उस के मुख थे।।

नव तरुणाई के कारण, स्तन भी थे उसके उभरे हुए। उनके भार से कटितट भी, अति सूक्ष्म थे भास रहे।।
सुवासित मुख की सुगन्ध पे, भंवरे थे बहुत मंडरा रहे। जिनसे भयभीत हो नेत्र भी, कभी कभी कातर थे होते।।
निज लम्बे केश पाशों में, गूंथी थी बेला पुष्प माल। सुन्दर कण्ठ आभूषित था, डाल के अति सुन्दर गलमाल।।
गोलाकार भुजाओं में, बाजूबन्द सुशोभित थे। उनके इस सुन्दर रूप का, वर्णन कौन भला कर सके?

चरणों के नूपुर मधुर, रुनझुन ध्वनि थे कर रहे। नितम्ब द्वीप भी सुन्दर स्वच्छ, साढ़ी से थे ढके हुए।।
उस पर करधनी शोभायमान, थी अपनी छटा बिखेर रही। ज्यों चांदनी चहुँ दिश में, प्रकाश हो निज फैला रही।।
सलज्ज निज मुसकान से, विक्षिप्त भ्रू विलास से। निज आकर्षक चितवन से, मोहिनी रूप धारी प्रभु ने।।
दैत्य सेनापतियों के, मन में कामोद्दीप्त किया। इस विधि श्री हरि ने उन, दैत्यों को आकृष्ट किया।।
शुकदेव बोले,
परस्पर में सद्भाव और, प्रेम को असुरों ने छोड़ा। हे राजन् इक दूजे की, निन्दा का आश्रय लिया।।
परिपन्थिन् वत् इक दूजे, के हाथ से कलश थे छीन रहे। इस बीच देखा उन्होंने, सुन्दर युवती को आते हुए।।

मन ही मन वह सोचने लागे, कैसा अनुपम सौन्दर्य है। कान्ति है अद्भुत छिटक रही, तन भी नवयौवन दर पे है।।
बस आपस की कलह क्लेश, इक पल में वह भूल गए। नवयुवती का रूप देख,सबके सब लम्पट हुए।।
काम से मोहित होकर के, दौड़े वह मोहिनी निकट गए। कामातुर होकर उन्होंने, फिर उससे यह प्रश्न किए।।
असुर बोले,
हे कमललोचना कौन हो तुम, कहाँ से हो तुम आ रही? क्या उद्देश्य है कहो तेरा, और तू कन्या हो किसकी?
तुम्हें देख के हे सुन्दरी, है मन हमारा विक्षिप्त हुआ। शान्त सी थी सतह बनी, तुम्हें देख के डोल गया।।

हम तो समझें अब तक तुम्हें, देव दैत्य न छू पाये। सिद्ध गन्धर्व चारण और, लोकपाल भी दूर रहे।।
मनुष्यों की फिर बात ही क्या, वह कैसे तुम्हें छू पाते? अलौकिक तव सौन्दर्य को, सब दूर से ही देखे जाते।।

विधाता ने हे सुन्दरी, है सब पर ही दया करी। सब तन धारियों की इन्द्रिय, और मन तृप्ति हेतु ही।।
तुमको उसने स्वयं रचा, और रचकर यहाँ पे भेज दिया। निज करुणा से विधाता ने, हम सबका है कल्याण किया।।
वैसे तो हम सब ही, हे मानिनि हैं इक जाति के। फिर भी हम सब एक ही, लक्ष्य को हिय में धरे हुए।।
इक वस्तु को ही चाह रहे, इस कारण द्वेष और वैर हुआ। हे सुन्दरी तुम ही अब, परस्पर स्पर्धा दो मिटा।।

ऋषि कश्यप के पुत्र हैं हम, इस कारण भाई सहोदर हैं। कठिन परिश्रम सबने किया, अमृत प्राप्ति के इच्छुक हैं।।
न्यायपूर्ण निष्पक्ष भाव से, अब इसको तुम बांट दो। जिससे हम लोगों में पुन:, किसी भाँति की कलह न हो।।

शुकदेव बोले,
निज लीला मात्र से स्त्री वेश, प्रभु ने जो था धारण किया। असुरों की यह बिनती सुनी, मुसकान से मुख पे फैली छटा।।
तिरछी चितवन से उन्होंने, असुरों पर फिर प्रहार किया। उनपे दृष्टि टिकाकर के, मोहिनी रूप में यह कहा।।

भगवान बोले,
ऋषि कश्यप के हैं पुत्र आप, और मैं हूँ इक कामिनी। क्यों न्याय की बोझ यह, आपने मेरे सीस धरी?
स्वेच्छा चारिणी स्त्री का, विश्वास न करें विवेकी जन। असुरों न डालो संकट में, स्वीकार करो यह विनती मेरी।।
हे दैत्यो यह है बात प्रसिद्ध, विवेकी जन की कही उक्ति। व्याभिचारिणी स्त्री और श्वान, की मैत्री नहीं स्थिर होती।।
वे दोनों सदा नित्य नव, शिकार को ही ढूँढा करें। निज स्वार्थ की पूर्ति को, नए नए नित्य रूप धरें।।

शुकदेव बोले,
मोहिनी की परिहास युक्त, वाणी जब दैत्यों ने सुनी। मन में नव विश्वास की, एक लहर उनके उठी।।
उन दैत्यों ने भी रहस्यपूर्ण, बिखेरी एक नई हंसी। अमृत कलश जा मोहिनी के, हाथों में उन सौंप दी।।
प्रभु ने अमृत कलश को फिर, अपने हाथों ले लिया। मधुर स्मित अधरों पे लिये, फिर मीठा यह वचन कहा।।
उचित अनुचित मैं जो भी करूँ, यदि वह तुमको हो स्वीकार। तो इस अमृत वितरण का, ले सकती हूं मैं अधिकार।।

बड़े बड़े दैत्यों ने जब, मोहिनी की मधुर वाणी सुनी। उसमें निहित रहस्य की, नहीं उन्हें कुछ समझ पड़ी।।
सबने मिलकर एक ही, स्वर से फिर यह वचन कहा। स्वीकार है स्वीकार है, सबने ही अनुमोदन किया।।
कारण इसका एक था, वह सत्यता से अनभिज्ञ थे। मोहिनी के वास्तविक स्वरूप, को न थे पहचान सके।।

तत्पश्चात् उन सबने ही, इक दिन का उपवास किया। फिर स्नान कर हविष्य से, अग्नि में उन हवन किया।।
गौ ब्राह्मण और सभी, प्राणियों को अर्पित किया। घास चारा धन अन्न आदि, यथायोग्य सब दान दिया।।
ब्राह्मणों से स्वस्ति अयन, भी उन्होंने करवाया। इस भाँति विधिवत् अमृत, का वितरण आरम्भ हुआ।।

निच रुचि अनुकूल ही नव, वस्त्र किये धारण सबने। सुन्दर आभूषण धारण कर, सब कुशा आसनों पर बैठे।।
अग्र भाग उन आसनों का, पूर्व दिशा अभिमुख ही था। ऐसा ही उन आसनों का, क्रम था कुछ बना हुआ।।

धूप से सुरभित मालाओं, और दीपों से सजे भवनों में। जब देव और दैत्य दोनों ही, पूर्व ओर मुख कर बैठे।।
तब हाथ में अमृत कलश लिये, मोहिनी मण्डप में आई। अति सुन्दर रेशम की, साड़ी वह थीं पहने हुई।।
नितम्ब भार के कारण, गति उसकी अति मन्द थी। आंखें भी मद से ही, ज्यों विह्वल थीं हो रहीं।।
कलश समान थे स्तन उसके, गजशावक सूण्डसम जंघा थी। स्वर्णनूपुर झंकार से, सभा भवन थी गूंज उठी।।

सुन्दर कानों में उसके, सोने के कुण्डल झूम रहे। नासिका कपोल मुख, सबके सब अति सुन्दर थे।।
परं देव श्री हरि स्वयं, थे मोहिनी रूप में सोह रहे। मानो श्री लक्ष्मी की ही, कोई श्रेष्ठ सखी हो रूप धरे।।
निज मुसकान भरी चितवन, से मोहिनी ने जब देखा उन्हें। दैत्य देव दानवों के ही, चित्त तब मोहित हुए।।
उसके स्तनों पर से उसका, आंचल था कुछ गिर रहा। इस रूप माधुरी ने उसकी, था सबको सम्मोहित किया।।

मोहिनी रूप में श्री हरि ने, फिर मन में यह विचार किया। जन्म से ही इन असुरों का, है अति क्रूर स्वभाव बना।।
इनको अमृत दे देना तो, सर्प को दूध पिलाना हुआ। यह सोचकर श्री हरि ने, असुरों को अमृत नहीं दिया।।
देवों और असुरों की फिर, भिन्न भिन्न पंक्ति बना उन दी। फिर कतार दोनों की बना, निज दल बैठन की आज्ञा दी।।

फिर अमृत कलश लिये हाथों में, प्रभु दैत्यों के पास चले। हाव भाव कटाक्ष से उन, असुरों के मन मोह लिये।।
दूर बैठे देवों के पास, मोहिनी प्रभु फिर चले गए। और उन देवों को फिर, निज कर से अमृत देने लगे।।
जिस अमृत के पान से, जग और मृत्यु दूर रहें। जिसने पान किया इसका, यह दोनों न उसे छू सकें।।
असुर निज प्रतिज्ञा का, पालन थे विधिवत् कर रहे। मन में था उनके प्रेम भरा, नहीं स्त्री कलह में थे पड़े।।
स्त्री से झगड़ने में, निज मान की हानि माने थे। इस कारण सब देख के भी, वह मौन होई के बैठे रहे।।

मोहिनी के प्रति उनके मन में, आसक्ति बहुत थी जाग उठी। कहीं रूठ न जाये यह, इसकी भी थी भय बनी।।
मोहिनी ने भी पहले पहल, उन सबका बहुत था मान किया। उस सम्मान ने भी दैत्यों को, दृढ़ बन्धन में था बाधा।।
इस कारण ही उन सबने, नहीं अप्रिय कोई वचन कहा। मोहिनी का देखी रंग ढंग, मौन ही उन्होंने धारण लिया।।

जब श्री हरि देवों को, अमृत थे पिला रहे। देवों का वेश बनाकर के, राहु भी वहाँ आ पहुँचे।।
देवों के संग उसने, भी अमृत का पान किया। तत्क्षण ही चन्द्र और सूर्य ने, उसका पोल यह खोल दिया।।
प्रभु ने निज तीव्रतम, धारवाले चक्र से। अमृत दान देते ही, सीस राहु के छिन्न किये।।
उसके तन से अमृत का, स्पर्श अभी था नहीं हुआ। इस कारण ही उसका धड़, जाकर नीचे गिर गया।।

पर सीस तो उसका अमर हुआ, ब्रह्मा ने ग्रह उसे दिया बना। वैर भाव से वही राहू, करता है पर्व प्रतीक्षा।।
अमावस और पूर्णिमा को, बदले की भावना हिय में धर। चन्द्र सूर्य पे वही राहू, देता है आक्रमण कर।।
इस विधि जब देवों ने, अमृत पान कर लिया। सब लोकों के प्राणदाता, प्रभु ने नव कौतुक किया।।
महा दैत्यों के सम्मुख ही, निज मोहिनी रूप उन्होंने त्यागा। निज वास्तविक स्वरूप को, पुन: ग्रहण उन्होंने किया।।

देव दैत्य दोनों ने ही, इक समय एक ही स्थान पर। इक वस्तु हेतु एक ही, विचार से एक ही किया कर्म।।
किन्तु दोनों के ही फल में, हे राजन् बहुत भेद हुआ। देवों ने अति सुगमता से, अमृत फल को प्राप्त किया।।

क्योंकि श्री हरि की चरण रज, का था उनको इक आसरा। उनके प्रेम और श्रद्धा का, ही यह उन्हें प्रसाद मिला।।
किन्तु दैत्य तो जीवन में, श्री हरि के विमुख ही थे। इस कारण कठिन परिश्रम कर, भी अमृत वह न पा सके।।
निज प्राण मन कर्म धन, और वाणी के आसरे। निज तन और सुत आदि अर्थ, जो कर्म भी जीव करे।।

वे सब व्यर्थ ही होते हैं, भेद बुद्धि वहाँ बनी रहे। किन्तु इन सब ही साधनों से, श्री हरि के हेतु जो भी करे।।
भेद भाव से रहित हो, सब जग में वह सफल भए। अपने तन पुत्र और, संसार में भी पूर्ण फल दे।।
ज्यों वृक्ष की मूल में जल जो दिया, उसका तना शाख और सब पत्ते। मूल में पड़े हुए जल से, स्वत: ही पुष्टित हो जायें।।
त्यों ही श्री हरि के हेतु, जो भी कर्म किए जायें। सब के सब ही इष्टों की, वह स्वत: पूर्ति कर जायें।।

५) देवासुर संग्राम

शुकदेव बोले,
यद्यपि दानव और दैत्यों ने, किया दक्षता से सागर मन्थन। फिर भी श्री हरि विमुख वे थे, इस कारण मिला न अमृत कण।।
सागर को मथ के श्री हरि ने, अमृत स्वंय निकाल लिया। अपने प्रिय देवों को ही, अमृत फिर वह पिला दिया।।
सबके देखते देखते ही, गरुड़ पे फिर वह सवार हुए। सबकी आंखों के सामने ही, प्रभु वहाँ से चले गए।।

असुरों ने जब यह देखा, शत्रु सफल ही हो गया। उसकी बढ़ती देखकर, हृदय में उनके सन्ताप हुआ।।
तुरन्त अस्त्र-शस्त्र उन्होंने, फिर अपने सम्भाल लिये। निज शत्रु देवों पर, फिर उन्होंने प्रहार किए।।
इधर देवताओं ने तो, अमृत पान थी करी हुई। इस कारण उन देवों की, शक्ति अलौकिक थी बनी।।
दूजी ओर श्री हरि के, चरण कमल का आश्रय था। निज अस्त्र शस्त्र सुसज्जित हो, फिर भिड़ाव आरम्भ हुआ।।

क्षीर सिन्धु के तट पे राजन्, अति भीषण संग्राम हुआ। अतिरोमांचक और अद्भुत, वह संग्राम परीक्षित था।।
देवों और दैत्यों का, घमासान ही युद्ध वह जान। जाग जाए त्रिलोकी में, देवासुर संग्राम के नाम।।
दोनों एक दूसरे के, थे प्रबल शत्रु सदा से ही। क्रोध से थे दोनों ही भरे, एक दूसरे के प्रति।।
इक दूजे को पा सामने, प्रहार वह करने लगे। तलवार बाण और अन्य, अस्त्रों का आश्रय ले के।।

युद्ध में तुरही ढोल मृदंग, नगाड़े शंख डमरू बोले। हाथी चिंघाड़े जोर से, अश्व भी हिनहिनाने लगे।।
पैदल सेना का शोर हुआ, रथ के पहिये बोले घरघर। इस विधि युद्ध क्षेत्र में, चहुँ ओर मचा अति कोलाहल।।
रथियों के संग चले रथी, पैदल के साथ पैदल सेना। अश्वारोहिन् संग चले सवार, हाथी से हाथी का सामना।

कोई वीर चढ़े थे ऊंठों पर, और कोई चढ़े थे हाथिन् पर। कोई गर्दभ पर चढ़ी लड़े, तो कोई चढ़े गौर मृग पर।।
कोई भालू पर थे चढ़े, अन्य बाघ पर चढ़ आये। कोई तो सिंह को ही, निज वाहन रण में बना लाये।।
कई सैनिकों ने तो गीद्ध, कंक बगुले बाज और भास। इन पक्षीगण को ही उन, अपना वाहन बनाया आप।।
बहुत तो तिमिलिङ्ग मच्छ, शरभ भैंसे गैण्डे ऋषभ। नीलगाय और जंगली, साण्डों पर ही गए जा चढ़।।

सियारिन् चूहे गिरगिट और, खरह ही अन्य के वाहन थे। बहुत जीव कृष्णमृग और बकरे, हंस और सूअरों पर थे चढ़े।।
इस विधि जल थल और, आकाश के भी वासी जो। दर्शन में अति भयावह, तनधारी थे प्राणी जो।।

उनपर चढ़कर दैत्य कई, दोनों सेनाओं में घुसे। ऐसे दैत्य तो दोनों ही, सेनाओं में आगे थे।।

उस समय दोनों ही ओर, बहुरंगी पताका थीं फैली। स्फटिक मणि सम श्वेत छत्रों, से थी मानो भूमि सजी।।
शोभा थी अति न्यारी बनी, जड़ाऊ दण्ड के पंखों से। मोरपंख चँवर और वायु में, उड़ते हुए दुपट्टों से।।
पगड़ी कलगी कवच आभूषण, और सूर्य की रश्मिन् से। अति चमकते उज्ज्वल शस्त्रों, और वीरों की पंक्तियों से।।
देव असुर दोनों ही यूं, शोभायमान थे हो रहे। मानो जल जीवों से भरे, दो महासिन्धु लहरा हों रहे।।

श्री विरोचन पुत्र थे, दैत्यों के सेनापत बलि। मय दानव रचित वैहायस, विमान उनकी वाहन थी।।
उसके चालक की जहाँ पे भी, जाने की इच्छा होती। वह विमान स्वत: उसको, ले जाता गन्तव्य पे ही।।
युद्ध की सब सामग्री से, वह विमान सुसज्जित था। कभी दृश्य वह हो जाता, अदृश्य कभी स्वत: होता।।
कहाँ पे है विमान वह, अनुमान भी नहीं था हो पाता। फिर आश्चर्यमयी गति को, उसकी भला कौन बता पाता?

उसी श्रेष्ठ विमान पर, राजा बलि सवार थे। चहुँ ओर से बड़े बड़े, सेनापति उन्हें थे घेरे।।
छत्र था उनपे तना हुआ, चंवर डुलाये जा थे रहे। उदयाचल पर चन्द्र सम, ही थे बलि आभास रहे।।

चहुँ ओर से लिये टुकड़ियां, निज विमानों पे सेना की। स्वामी नमुचि शम्बर बाण, आयोमुख द्विमूर्धा विप्रचिति।।
कालनाभ प्रहेति हेति, भूसन्ताप इल्वल शकुनि। वज्रदंष्ट्र विरोचन हयग्रीव, शंकुशिरा कपिल और मेघदुन्दुभि।।
तारक चक्राक्ष शुम्भ निशुम्भ, जम्भ उत्कल अरिष्टनेमि अरिष्ट। त्रिपुराधिपति मय पौलोम कालेय, निवाच कवच आदि थे स्थित।।

यह सबके सब ही सागर के, मन्थन में सम्मिलित थे। केवल क्लेश ही हाथ आया, नहीं अमृत कण कोई हाथ लगे।।
इन सब असुरों ने अनेकों बार, था युद्ध में पराजित किया। एक नहीं अनेकों बार, देवों को था इन्होंने जीता।।
इस कारण बहुत उत्साह से, सिंह नाद उन्होंने किया। घोर ध्वनि वाले अपने, शंखों का उन्होंने निनाद किया।।
इन्द्र ने देखा शत्रु का, उत्साह बहुत है बढ़ गया। मदोन्मत्त हैं हो यह रहे, यह देखी क्रोध उमड़ आया।।

ऐरावत नामक दिग्गज, निज वाहन पर वह हुए सवार। उसके कपोल से बह थी रही, धारा प्रवाह मद की इक धार।।
इन्द्र हुए शोभायमान, हो उदयाचल ज्यों सूर्य आरूढ़। और अनेकों झरने ही, ज्यों उससे बहें अवरुद्ध।।
अपने वाहन आयुध ध्वजा, सब देवों ने ले लिये। फिर इन्द्र के चारों ओर ही, देवतागण वह हो लिये।।
अपने अपने गण संग लिये, वायु अग्नि और वरुण चले। अन्य भी लोकपाल सब, उनके संग ही चल पड़े।।

देव असुर दोनों की ही, सेनाएँ रण में हुईं खड़ी। युगल बनाकर दो दो का, वे आपस में लड़ने लगीं।।
कोई था आगे बढ़ रहा, कोई नाम से था ललकार रहा। मर्मभेदी वचनों से कोई, प्रतिद्वन्द्वी को धिक्कार रहा।।
बलि इन्द्र से स्वामीकर्तिक, तारकासुर से भिड़ गए। वरुण हेति से और मित्र, प्रहेति से जा भिड़ गए।।

यमराज के द्वन्द्वी कालनाभ, विश्वकर्मा के मय हुए। शम्भासुर भिड़े त्वष्टा से, सविता विरोचन से लड़े।।
नमुचि लड़े अपराजित से, अश्विनी कुमार विषपर्वा से। बाणादि बलि शतपुत्रों से, सूर्य देव लड़ने लगे।।
राहु से चन्द्रमा का, पुलोम से वायु युद्ध हुआ। भद्रकाली ने शुम्भ और, निशुम्भ पर प्रहार किया।।
जम्भासुर से महादेव की, और महिषासुर से अग्नि की। वातापि इल्विल से ठनी, ब्रह्मापुत्र मरीचि आदि की।।

दुर्मर्ष के प्रतिद्वन्द्वी थे, जग विख्यात कामदेव। उत्कल के थे मातृगण, शुक्र द्वन्द्वी बृहस्पति देव।।
नरकासुर का फिर शनीश्चर, से युद्ध होने लगा। इस विध देवों असुरों का, संग्राम था आगे बढ़ा।।
निवातकवच से मरुद्गण, कालेयों से वसुगण भिड़े। पौलोम संग विश्वेदेवगण, क्रोधवशों संग रुद्र लड़े।।

इस विधि रणभूमि में, देव असुर दोनों भिड़े। हुआ द्वन्द्व युद्ध इक दूजे पर, सामूहिक रूप से फिर टूटे।।
उत्साह से भरे थे दोनों ही, परस्पर विजय इच्छुक बने। तीक्ष्ण बाण तलवार और, भालों से वार करने लगे।।
तरह तरह से दोनों ही, युद्ध थे यह कर रहे। किस विध विजय हमारी हो, इसी सोच में थे पड़े।।

भुषुण्डि चक्र गदा ऋष्टि, पट्टिश शक्ति उल्मुक और प्रास। फरसा तलवार भाले मुद्गर, परिघि और संग भिन्दिपाल।।
इन सबसे वह एक दूसरे, के सीस थे छेद रहे। इस विधि देव और असुर, थे संग्राम में लगे हुए।।
उस समय निज सवारों संग, हाथी घोड़े रथ आदि वाहन। छिन्न-भिन्न होने लगे, पैदल सेना भी लिये संग।।
कोई भुजा जंघा कोई, कोई मूर्धा कोई चरण कटे। किसी की ध्वजा धनुष कवच, आभूषण टूट के बिखर गए।।

चरण थाप रथ के पहियों, से पृथ्वी आहत हुई। उस रण की महाधूलि ने, सूर्य दिशा आकाश ढकी।।
किन्तु थोड़ी ही देर में, रक्त की धारा ऐसी बही। नहीं धूल का कहीं नाम रहा, मानो प्लावित सब धरा हुई।।

तत्पश्चात् वह युद्ध क्षेत्र, खण्डित मुण्डों से भर गया। किसीका मुकुट तो किसी का, कुण्डल था भूमि पे गिरा।।
किसी की आंखें क्रोध के, अंगारे थीं बरसा रहीं। किसी ने अपने दाँतों से, थी अपन होंठ दबा रखी।।
आभूषण और शस्त्रों से, सजे अनेकों भुजादण्ड। कटकर थे भूमि पे गिरे, थीं, स्थूल जंघा भी संग।।
इस भाँति रणभूमि वह, अति विकराल थी दीख रही। इस युद्ध ने अति भयंकर, रूप थी इस विध धारण की।।

बहुत से धड़ अपने से कटे, नेत्रों से थे निहार रहे। हाथों में हथियार उठा, वीरों की ओर वह फिर दौड़े।।
राजा बलि ने इन्द्र पर, दस बाणों सेवार किया। तीन से बेन्धा ऐरावत, चहुँ चरण रक्षकों पर फेंका।।
एक बाण फिर मुख्य महावत, पर ही बलि ने छोड़ दिया। इस विधि अठारह बाणों से, इन्द्र पर प्रहार किया।।

इन्द्र ने देखा बलि के बाण, घायल उसे करन चाहें। बहुत तीव्रता से उस उतने ही, तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किए।।
उनके पहुंचने से पहले, ही इन्द्र ने उनको काट दिया। इस विधि बलि के बाणों से, इन्द्र ने निज बचाव किया।।

प्रशंसनीय उसकी यह गति, राजा बलि ने जब देखी। बहुत कुपित वह हो गए, इन्द्र की यह फुर्ती देखी।।
फिर एक बड़ी शक्ति उसने, अपने हाथ में ली उठा। भारी लूके के समान, ज्वलनशील वह अस्त्र था।।
किन्तु अभी उसके हाथों सें, छूट नहीं वह पाया था। इन्द्र ने वेगवान गति से, उसको भी फिर काट दिया।।

तत्पश्चात् बलि ने इक, के पीछे इक अस्त्र छोड़े। क्रमश: शूल प्रास तोमर, और शक्ति सब कर में लिये।।
जो भी शस्त्र उठाता वह, इन्द्र थे कांट उसे देते। इस शस्त्र कला से इन्द्र के, वैभव और भी चमक उठे।।
इन्द्र की फुर्ती से घबरा, पहले बलि अन्तर्धान हुआ। फिर आसुरी माया की, सृष्टि वह करने लगा।।
देवों की सेवा के ऊपर, पर्वत तुरन्त ही प्रकट हुआ। बलि की आसुरी माया का, जानो ऐसा प्रभाव था।।

दावानल से जलते वृक्ष, उस पर्वत से गिरने लगे। तीक्ष्ण शिलायें साथ लिये, तीखे पर्वत श्रृंग गिरे।।

इनसे देवों की महासेना, चकनाचूर होने लगी। देवों का नाश करने के लिये, बलि ने थी यह युक्ति की।।
तत्पश्चात् महासर्प और, दन्दशूक बिच्छू गिरे। अन्य विषैले जीव भी, काटने को उछल दौड़े।।
सिंह बाघ और सूअर, फिर वहाँ पे प्रकट हुए। देव सेना के बड़े बड़े, हाथी विदीर्ण वह करने लगे।।

हाथों में त्रिशूल लिये, मारो काटो चिल्लाने लगे। शतश: नग्न राक्षसियां, और राक्षस वहाँ प्रकट हुए।।
कुछ क्षण ही बाद आकाश में, घनघोर घटा छाने लगी। परस्पर के घर्षण से फिर, कठोर गर्जना वहाँ हुई।।
दामिनी भी थी चमक रही, और आन्धी के झँकोरे उठे। बादल वह अंगारों की, मानो वर्षा करने लगे।।

प्रलय की अग्न समान फिर, बलि ने भयानक आग रची। वायु का सहयोग वह पा, देवों की सेना जलाने लगी।।
अल्प काल में ऐसा लगा, उस प्रबल आन्धी के थपेड़ों से। सागर में बड़ी बड़ी लहरें, और भयंकर भंवर उठे।।
निज मर्यादा को छोड़कर, सागर ज्यों आगे बढ़ हो रहा । देव सेना को चहुँ ओर से, घेरने को ज्यों वह उमड़ा।।

उन भयानक असुरों ने, जब माया के प्रपंच किए। स्वयं माया के कारण, वह असुर छिपे ही रहे।।
अदृष्ट थे वह इस कारण, उनपर प्रहार न कर सके। इस कारण देवों के, सैनिक सब अति व्यथित हुए।।
इन्द्रादि देवों ने फिर, हे राजन् बहुत विचार किया। माया प्रतिकार करें किस विध, उन्हें कोई उपाय न सूझ पड़ा।।
तब विश्व के जीवनदाता, श्री हरि का उन्होंने ध्यान किया। तत्क्षण ही प्रभु प्रकट हुए, जब देवों ने पुकार लिया।।

अति सुन्दर झाँकी प्रभु की थी, थे चरण गरुड़ के कान्धे पर। नवीन कमल के समान ही, थे नेत्र उनके अति कोमल।।
पीताम्बर था लहरा रहा, अष्ट भुजा विभूषित थीं। आठों आयुध से श्री हरि के, वह आठों भुजा विभूषित थीं।।
कण्ठ में कौस्तुभ मणि की, माला थी लहरा रही। अमूल्य किरीट था भाल पर, कानों में थी कुण्डल लटकी।।
देवों ने निज नेत्रों से, प्रभु की छवि का दर्शन किया। आश्चर्य चकित होकर सबने, उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।।

परम पुरुष परमात्म जब, युद्ध क्षेत्र में प्रकट हुए। उनके प्रभाव से कपट और, माया विलीन सब हो गए।।
ज्यों निद्रा से जब जाग उठें, स्वप्न दृश्य कहीं नहीं रहे। प्रभु स्मृति सब पापों से, जीव को स्वत: ही मुक्त करे।।

कालनेमि दैत्य ने जब, देखा रणभूमि में हरि को। गरुड़ के वाहन पर सवार, देखा उस त्रिलोक पति को।।
निज सिंह पर बैठै बैठै, बहुत वेग से उस प्रहार किया। इक त्रिशूल कर में लेकर, उसने श्री हरि पर छोड़ा।।
गरुड़ के सिर पे वह त्रिशूल, लगने ही वाला था अभी। श्री हरि ने निज कर में ले, उसकी त्रिशूल वह थाम ली।।
कालनेमि और उसके वाहन, पर ही उसे चला दिया। उसी त्रिशूल से श्री हरि ने, दोनों का ही हनन किया।।

माली और सुमाली नामक, दो दैत्य थे अति बलवान। निज चक्र से श्री हरि ने, उनके सीस किये धरावान्।।
निर्जीव होकर उनके तन, फिर धरा पर गिर गए। तत्पश्चात् माल्यवान ने, निज प्रचण्ड गदा को ले।।
अति वेग से गरुड़ पर, तीव्रतम प्रहार किये। किन्तु गर्जना कर प्रभु ने, निज चक्र से सीस उसके छिन्न किये।।
शुकदेव बोले,
परम पुरुष परमात्म की, कृपा अहैतुकी उनपे हुई। इस कारण उन देवों की, चिन्ता सारी दूर हुई।।
एक नए उत्साह का, संचार हुआ उनमें राजन्। रण में जिन जिन दैत्यों से, हुए पराजित देवतागण।।

अब उन्हीं के ऊपर वह, प्रहार पुन: करने लगे। पूर्ण शक्ति लगाकर के, वे असुरों पर टूट पड़े।।

परं ऐश्वर्यमयी इन्द्र ने, बलि से ही लड़ते लड़ते। क्रोध के वशीभूत हो, जब निज वज्र उठा लिये।।
तब सारी प्रजा में ही, हाहाकार ज्यों मच गया। इन्द्र के क्रोध को देखकर, त्राहि त्राहि सबने किया।।
अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो, बलि थे अति निर्भय हुए। मन में उत्साह भरे हुए, थे रणभूमि में विचर रहे।।
सामने उनको देखकर, इन्द्र ने वज्र लिया कर में। इस भाँति फिर बोलकर, लगा तिरस्कार उनका करने।।
इन्द्र बोले,
ज्यों नट बालक की आंखों पर, ऐ मूर्ख पट्टी बान्धे। निज जादू से भरमा के उन्हें, उनका धन सारा ऐंठ ले।।
त्यों ही माया की चाल से, तू विजय हम पे पाना चाहे। हम तो माया के स्वामी हैं, मूर्ख तू यह भी न जाने।।
यह माया हमारा तो, कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। हम तो इस माया जाल से, सदा ही रहते हैं परे।।
जो मूर्ख माया द्वारा, अधिकार स्वर्ग पर चाहे हैं। स्वर्ग उलांघ उससे ऊपरी, लोकों में जाना चाहे हैं।।
उन मूर्ख लुटेरों को, तो मैं आगे जाने न दूँ। प्रथम स्थान से ही उनको, नीचे ही मैं पटक दूँ।।

माया की चालें तूने, बहुत बड़ी बड़ी हैं चलीं। निज शतधार वज्र से मैं, तव सीस को छिन्न तो करूँ सही।।
निज भाई बान्धव संग मिल, जो भी तू करना चाहे। आज मेरे सम्मुख ही, वह सब करके तू देख ले।।
बलि बोले,
काल शक्ति से प्रेरणा पा, हे इन्द्र जो जन युद्ध करें। निज कर्मानुसार जो, अस भीषण कर्म प्रवृत्त होएं।।
जीत हार या यश अपयश, निश्चित ही मिलते हैं उनको। मृत्यु भी निश्चित ही मिले, वे जानें इस सत्य को।।
इस कारण ज्ञानी जन जो, जानें जग को काल अधीन। न तो विजय पा हर्षित हों, न हार से ही हों वह गमगीन।।
अपकीर्ति या मृत्यु से, नहीं हों शोक के वशीभूत। अनभिज्ञ हो तुम इस सत्य से, इस कारण ही दीखो हर्षित।।

अपने को ही जय पराजय, का कारण तुम मान रहे। है शोचनीय महात्मन् का, निज को जो कर्ता मान रहे।।
तुम्हारे इस मर्माहत, करने वाले वचन को। स्वीकार ही हम नहीं करते, फिर कहो काहे हम दु:खी रे हों?
शुकदेव बोले,
वीर बलि ने इस भाँति, इन्द्र को फटकार दिया। इस फटकार को सुनकर के, इन्द्र भी कुछ झेंप गया।।
वीरों के मान मर्दक बलि ने, तब कानों तक धनु: को खेंचा। और बहुत से बाण छोड़, फिर देवों पर प्रहार किया।।
देवशत्रु महाराज बलि, तो थे अति सत्यवादी। इस प्रकार महेन्द्र की, तिरस्कार बलि ने करी।।
अंकुश से आहत हाथी की, भाँति इन्द्र कुछ और चिढ़े। बलि के इस आक्षेप को, इन्द्र सहन न कर सके।।

बलि पे निज अमोघ वज्र, का प्रहार किया इन्द्र ने। उसकी चोट खा पंख कटे, पर्वत की भाँति बलि गिरे।।
निज वाहन के साथ ही, वह भूमि पर गिर पड़े। इस प्रकार उस वज्र की, चोट से आहत बलि हुए।।
बलि का इक घनिष्ट सुहृद्, मित्र था नाम था जम्भासुर। निज मित्र का बदला लेने को, वह डट गया इन्द्र सम्मुख।।

निज वाहन सिंह पर चढ़कर, इन्द्र के पास वह पहुँच गया। बहुत वेग से अपनी गदा उठा, हंसली पे उसकी वार किया।।
संग ही उस महाबली ने, ऐरावत पे भी गदा मारी। ऐरावत के लिये उसका, वार यह था बहुत भारी।।

गदा की चोट खाकर के, अति पीड़ित गजराज हुआ। व्याकुल होकर टेके घुटने, फिर वह मूर्छित हो गया।।

इन्द्र का सारथी मातलि, उसी समय इक रथ लाया। एक सहस्र अश्वों से था, रथ विचित्र वह जुता हुआ।।
ऐरावत को तुरन्त छोड़ा, महाशक्तिशाली इन्द्र ने। और उस महारथ पे, वह सवार फिर हो गए।।
रणभूमि में मातलि के, इस नीति निपुण चातुर्य की। दानवश्रेष्ठ जम्भ ने भी, भीनी भीनी प्रशंसा की।।
फिर धीमी मुसकान सहित, त्रिशूल का उसपे वार किया। चमचमाता हुआ त्रिशूल, मातलि पर उसने छोड़ा।।

अति धैर्ययुक्त हो मातलि ने, इस असह्य पीड़ा को सहा। तब इन्द्र ने होकर कुपित, वज्र से जम्भ का सर काटा।।
जम्भासुर की मृत्यु का, देवर्षि से समाचार सुनी। नमुचि पाक और बल, सबके सब उसके भाई।।
रणभूमि में आ पहुँचे, इन्द्र का सामना उन्होंने किया। निज कठोर वाणी से उन्होने, कहा इन्द्र को भला बुरा।।

ज्यों बादल पहाड़ों पर, बरसें निरन्तर मूसलाधार। वैसे ही इन्द्र के ऊपर उन, बाणों की कर दी बौछार।।
बल ने अति प्रवीणता से, इक साथ छोड़े सहस्र बाण। सहस्र अश्वों को इन्द्र के, घायल किया इक साथ जान।।
पाक ने सौ बाणों को छोड़, मातलि को घायल किया। और अन्य शत बाणों से, रथ का अंग अंग छेदा।।
अति विचित्र घटना यह, उस रणभूमि में थी हुई। इक ही वार में इतने, बाणों से थी प्रहार करी।।

स्वर्ण पंख थे जिनमें लगे, पंचदश अद्‌भुत बाणों से। नमुचि ने भी इन्द्र पर, फिर वेग से प्रहार किए।।
जल से भरे बादल समान, वह गर्जन करने लगा। रणभूमि में खड़े होकर, नमुचि ने हुंकार किया।।
ज्यों वर्षाकालीन मेघ, सूर्य को आवृत्त कर लें। त्यों ही असुरों के बाणों की, वर्षा से सारे ढक गए।।
इन्द्र का रथ और सारथी, कहीं भी दीख थे नहीं रहे। चहुँ ओर बाणों की वर्षा से, थे वे सब आवृत्त हुए।।

इन्द्र न जब उन्हें दीख पड़े, देव अति विह्वल हुए। उसके अनुचर भी व्यथित होई, रोने और चिल्लाने लगे।।
एक तो शत्रु के हाथों, पराजय थी उनकी हुई। दूजा उनकी सेना का, नहीं सेनापति भी था कोई।।
देवों की अवस्था तो, वैसी ही थी तब हो रही। ज्यों सिन्धु बीच में टूटी नाव, पर व्यापारी की होती।।

शत्रु के बाणों ने जो, पिंजरा था बना दिया। तनिक देर के बाद ही ध्वज, रथ संग इन्द्र बाहर निकला।।
ज्यों प्रात: का सूर्यदेव, स्वर्णमयी निज किरणों से। दिशा पृथ्वी आकाश को, चहुँ ओर से चमका दे।।
त्यों ही इन्द्र के तेज से सब, स्वत: ही जगमगा उठे। देवों के फिर चित्त भी, नव उत्साह से भर गए।।

वज्रधर इन्द्र ने जब देखा, शत्रु ने सेना रौंद है दी। तब कुपित हो शत्रु हनन को, वज्र से उस आक्रमण करी।।
अति तीक्ष्ण थी अष्टधारा, इन्द्र के उस वज्र की। अति पैन वज्र ने पाक और बल, की सीस थी छिन्न करी।।
दैत्यों के भाई बन्धु, भयभीत सभी को इसने किया। निज भाइयों को मृत देख करी, नमुचि शोक में डूब गया।।
क्रोध के कारण फिर वह, आपे से बाहर हुआ। इन्द्र को मारने के लिये, हर सम्भव यत्न वह करने लगा।।

नहीं बच सकते अब इन्द्र तुम इस भाँति उसे ललकार लिया। निज त्रिशूल उठाकर वह, इन्द्र पर फिर टूट पड़ा।।
फौलाद का बना त्रिशूल वह, भूषित था स्वर्णाभूषणों से। उस त्रिशूल में घंटिका के, स्वर भी निनाद थे कर रहे।।
क्रुद्ध सिंह समान ही, नमुचि था उस पल दीख रहा। गरज कर सिंह समान उस, इन्द्र पे वह त्रिशूल छोड़ा।।

इन्द्र ने देखा हे राजन्, बहुत वेग से वह त्रिशूल बढ़ा। निज बाण से सहस्र टूक, उसे आकाश में ही किया।।
तत्पश्चात् अति क्रोध से, उसकी गर्दन काटने के लिये। इन्द्र ने निज वज्र से, उसपर फिर प्रहार किये।।
इन्द्र ने अति वेग से, वज्र वह चलाया था। किन्तु यशस्वी वज्र वह, नहीं चर्म को उसकी भेद सका।।
यह देखी सबको ही, अतीव था आश्चर्य हुआ। वृत्रासुर तन किया खण्ड खण्ड, नहीं नमुचि को छू भी वह सका।।

जब वह वज्र नमुचि का, कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। यह देख के इन्द्र का, हृदय भी उस पल कांप उठा।।
उसने मन में यह सोचा, आश्चर्यमय कैसी घटना हुई? विश्व को संशययुक्त करे, कैसी यह अनहोनी हुई?

प्राचीन काल में पर्वत यह, जब पंखों से उड़ते थे। घूमते फिरते भार के कारण, जब धरती पर गिरते थे।।
प्रजा विनष्ट होती देखी, थे उनके पंख मैंने काटे। इसी वज्र से पर्वत सब, पंख विहीन थे मैंने किए।।
वृत्रासुर के रूप में, त्वष्टा के तप का सार प्रकटा। इसी वज्र द्वारा मैंने, था उसका भी छेदन किया।।
किसी अन्य अस्त्र शस्त्र से, जिनपे न वार सम्भव होता। बलवान् अनेकों दैत्यों को, मृत्यु के घाट उतारा था।।

आज वही वज्र मेरा, यह क्षुद्र असुर न मार सका। मेरे प्रहार करने पर भी, नहीं सफल यह वध में हुआ।।
अत: अब इस वज्र को, स्वीकार नहीं मैं कर सकता। ब्रह्म तेज से बना तो क्या, है नहीं मेरे किसी काम का।।
इस प्रकार इन्द्र के मन, में था अति विषाद भरा। न सूखी वस्तु से मरेगा यह, न आर्द्र से ही अन्त होगा।।
आकाश वाणी उस पल गूंजी, इसको वर हूँ मैं दे चुका। सो इन्द्र उपाय सोचो अन्य, इस दैत्य को मारने का।।

उस आकाशवाणी को सुन, इन्द्र ने मन एकाग्र किया। सोचते सोचते फिर उसको, इक उपाय नव सूझ गया।।
समुद्र का फेन ही विश्व में, है एक द्रव्य ऐसा। न तो वह सूखा ही है, और न ही है वह गीला।।
अत: इन्द्र ने उस फेन से, नमुचि का सीस काटा। उसका यह कौतुक देखी, देवों के हृदय में हर्ष भरा।।
महाऋषि मुनि और प्रभु ने, पुष्प इन्द्र पे बरसाये। फिर इन्द्र की स्तुति में भी, बहुत गीत उन्होंने गाये।।

गन्धर्व श्रेष्ठ विश्वावसु, और परावसु गाने लगे। देवों की बजीं दुन्दुभियाँ, नर्तकियों के चरण थिरके।।
इसी विधि आयु अग्नि वरुण, आदि सब देवों ने भी। अपने अस्त्रों और शस्त्रों से, मार गिराये विपक्षी सभी।।
जैसे सिंह कोई सहज ही, हरिणों को स्वत: मार डाले। उसी विधि देवों ने भी, थे असुरों के संहार किये।।

ब्रह्मा जी ने देखा इधर, हैं असुर नष्ट सब हो रहे। तब देवर्षि श्री नारद उन, देवों के पास ही भेज दिये।।
नारद जी ने वहाँ जाकर, देवों को समझा दिया। देवासुर संग्राम का, इस विध जानो अन्त हुआ।।

नारद बोले,
प्रभु की छत्रछाया में रह, है अमृत आपने प्राप्त किया। अभिवृद्धि आपकी है हुई, श्री लक्ष्मी जी के भी द्वारा।।
इसलिये अब आप लोग, इस युद्ध को बन्द करो। प्रभु कृपा तुम्हें प्राप्त है, अब समाप्त यह द्वन्द्व करो।।

शुकदेव बोले,
देवर्षि की बात मान, देवों ने क्रोध निज शान्त किया। फिर सबने निज लोक स्वर्ग, को क्रमश: प्रस्थान किया।।
सब अनुचर उन देवों के, उनका यशोगान थे कर रहे। इस विधि वह देव सब, अपने अपने स्थानों को गए।।

जो दैत्य इस युद्ध में, महाविनाश से थे बचे। श्री नारद की सम्मत्ति से, ले बलि को अस्ताचल को चले।।
मूर्धा आदि अंगों का जिनके, अभी विनाश था नहीं हुआ। श्री शुक्राचार्य ने उन्हें, संजीवनी से जीवित किया।।

श्री शुक्राचार्य का स्पर्श पा, बलि में चेतना लौट आई। इन्द्रियों में चेतना और मन में, स्मरण शक्ति भी लौट आई।।
बलि इस बात से परिचित थे, संसार में जीवन मृत्यु भी। जय पराजय होते रहें, उल्ट फेर से यह सब ही।।
इसलिये पराजित होकर भी, खेद उन्हें कोई नहीं हुआ। वह जाने थे यह फेर तो, है इस जगत् की ही प्रथा।।

५) शिव को भगवान के मोहिनी रूप का दर्शन उसपर शिव का मोहित होना

शुकदेव बोले,
श्री शंकर ने जब यह सुना, प्रभु ने स्त्री का रूप धरा। असुरों को मोहित करके, देवों को अमृत दिया पिला।।
तब सती संग नन्दी पे चढ़ी, समस्त भूत गण साथ लिये। तत्क्षण वहां पे जा पहुँचे, जहाँ मधुसूदन निवास करें।।
श्री हरि ने अति प्रेम से, स्वागत शंकर गौरी का किया। उन्होंने भी सुखासन में बैठ, सस्मित श्री हरि से कहा।।
महादेव बोले,
सब देवों के आराध्व देव, जग रूप विश्वव्याप्त हरि। चराचर जग का मूल कारण, जगदीश्वर आत्मा आप ही।।
आदि मध्य और अन्त सब, इस जग का प्रभु आपसे हो। किन्तु आप तो सदा प्रभु, इन तीनों से ही रहित हों।।
अविनाशी हैं आप स्वयं, नहीं द्रष्टा दृश्य का भेद वहाँ। भोक्ता और भोग्य का कभी, नहीं हो सके विच्छेद वहाँ।।
वास्तव में प्रभु आप सत्य, चिन्मात्र केवल ब्रह्म ही हैं। नहीं अन्य कोई भी कहीं प्रभु, जो है बस इक आप ही हैं।।

महात्मा जन जो अपना, कल्याण ही केवल चाहते हैं। इह लोक और परलोक की, आसक्ति त्यज वह आते हैं।।
कामना सारी त्याग करी, आराधना आपकी वे करें। आपके श्री चरणों में ही, वे तो अपना चित्त धरें।।

अमृत स्वरूप सब गुण से परे, नहीं शोक आपको छू भी सके। परिपूर्ण ब्रह्म हैं आप, केवल आनन्द स्वरूप हे।।
निर्विकार हैं आप प्रभु, नहीं आपसे भिन्न कोई। पर आप सभी से भिन्न कारण, सृष्टि स्थिति प्रलय के भी।।
सबके शुभ अशुभ कर्मों, का फल आप ही दें स्वामी। किन्तु यह बात भी जीवों की, दृष्टि से ही है कही जाती।।
वास्तव में आप हैं अनपेक्ष, सबकी अपेक्षा से अतीत। सब ही रूप प्रभु स्वयं धरें, फिर भी रहें सबसे अतीत।।

कार्य कारण द्वैत अद्वैत, जो भी है आप ही हैं स्वामी। ज्यों आभूषण और स्वर्ण में, नहीं भेद कोई हो सके कहीं।।
वास्तविक स्वरूप न जानकर, नाना प्रकार के भेद करें। हे हरि लोग तो आपमें, सब ही रूपों के विकल्प करें।।
उपाधि रहित हैं आप प्रभु, फिर भी गुण कारण भेद लगे। वास्तविक स्वरूप आपका, कौन प्रभु कभी समझ सके?

कोई कहें ब्रह्म प्रभु आपको, कोई धर्म कही वर्णन करें। प्रकृति पुरुष दोनों से परे, परमेश्वर कोई अन्य कहें।।
विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया, योगा प्रहवी सत्या अनुग्रहा। और ईशाना नव शक्ति, युक्त पुरुष किसी अन्य कहा।।
पूर्वजों के भी अति पूर्वज, कर्म क्लेश बन्धन से रहित। मानें आपको कोई जन, अविनाशी श्री परम पुरुष।।

मैं ब्रह्मा मरीचि आदि ऋषि, हैं जो सतोगुण की सृष्टि। नहीं जान पाते रहस्य, प्रभु आपकी रचित जो है सृष्टि।।
फिर आपको तो कैसे जानें, जान नहीं हम पाते हैं। जो माया के वशीभूत रहें, रज और तम में भरमाते हैं।।

रजोगुणी और तमोगुणी, कर्मों में सदा जो लगे रहें। वह असुर और जीव तो, जान भला कैसे सकें?

सर्वात्म प्रभु आप ही हैं, आप ही हैं ज्ञान स्वरूप। वायु सम हैं अदृश्य ही, पर चराचर सब में स्थित।।
चेष्टा स्थिति जन्म और नाश, सबको आप प्रभु जाने हैं। सब प्राणिन् और कर्म के, बन्धन मोक्ष भी जाने हैं।।
गुणों को स्वीकार कर, प्रभु जब जब लीला आप करें। भिन्न भिन्न रूपों में प्रभु, जो भी आप अवतार लें।।
तब तब मैं उनका दर्शन, हे प्रभु करता रहता हूँ। स्त्री रूप धारण जो किया, अब उसका दर्शन चाहता हूँ।।

दैत्यों को जिसने किया मोहित, देवों को अमृत दिया पिला। हे स्वामी उस रूप को, देखन की है मन में चाह।।
मन में अति कौतूहल भर, सब आपकी शरण में आये हैं। उस रूप का दर्शन पाने को, हे प्रभु हम सब ललचाये हैं।।
शुकदेव बोले,
जब महादेव ने श्री हरि से, इस विधि प्रार्थना करी। श्री शंकर से हंसकर के, तब बोले गम्भीर हरि।।
भगवान बोले,
हे महादेव अमृत कलश, उस पल दैत्यों के हाथ में था। अत: देवों के काज हेतु, दैत्यों को आकृष्ट किया।।
उनके मन में एक नया, कौतूहल जागृत करने को। ही उस स्त्री रूप को, धारण था मैंने कियो।।
हे देवश्रेष्ठ आज आप, रूप वह देखना चाहते हैं। दिखलाऊँगा रूप वही, जिसे आप देखना चाहते हैं।।
किन्तु वह रूप तो कामी, पुरुषों के लिये ही था धरा। क्योंकि वह तो काम भाव, ही उत्तेजित करे सदा।।

शुकदेव बोले,
यूं कहते ही प्रभु विष्णु, वहाँ से अन्तर्धान हुए। चहुँ और दृष्टि करके शंकर, सती संग वहीं पे बैठ गए।।
इतने में उन्होंने देखा, सामने अति सुन्दर उपवन। विभिन्न जाति के वृक्ष वहाँ, थे विविध पुष्पों से परिपूर्ण।।
लाल लाल कोमल कलियाँ, थीं उन वृक्षों पर खिलीं हुईं। फिर देखा उस उपवन में, इक सुन्दर स्त्री भी थी।।
गेंद उछाल उछाल के, वह थी उससे खेल रही। सुन्दर उसकी साड़ी थी, कटि में लटकी करधनी लड़ी।।

उछालती और पकड़ती वह, लपक कर जब गेंद को। उसके स्तन और उनपर हार, थे हिलते वहाँ झिलमिल हो।।
उनके भार से पतली कमर, पग पगर पर टूट सी थी रही। पल्लव समान निज लाल चरण, से ठुमुक ठुमुक के वह चलती।।

उछलता हुआ वह गेंद जब, इधर उधर लुढ़क जाता। लपक के उसको रोकती, भर नयनों में चंचलता।।
कानों के कुण्डल उसके, थे कपोलों पे लटक रहे। जगमग चमक से अपनी वह, मुख पे आभा फैला थे रहे।।
घुंघराली काली अलकें, उन पर गिर गिर जाती थीं। जिससे मुख की उसकी शोभा, और भी बढ़ती जाती थी।।

जब साड़ी कभी सरक जाती, केशों की वेणी भी खुलती। सावधान हो वाम हस्त से, उन्हें संवारने वह लगती।।
तब भी दांए हाथ से, उस गेंद से खेलती रहती वह। उसको उछाल सब जगत् को, माया से मोहित करती वह।।

यूं खेलते खेले गेंद से, तिरछी नजर उसने करी। लज्जापूर्ण मुसकान से, श्री शंकर ओर करी दृष्टि।।
बस श्री शंकर का मन भी, हाथ से उनके निकल गया। अपलक नयना उन अपने, दिये मोहिनी पे टिका।।
उसकी चितवन के रस में, डूब के विह्वल वह हुए। सती और गण की बात दूर, वह अपनी भी सुध बुध भूले।।

मोहिनी के हाथ सों, एक बार जो उछली गेंद। तनिक दूर ही जा गिरी, उसके हाथ से निकली गेंद।।
वह भी उसके पीछे ही, जब दौड़ने थी लगी। करधनी संग उसकी झीनी, साड़ी वायु ने हर ली।।

अंग अंग उस मोहिनी का, अति मनोरम सुन्दर था। जहाँ पे आंख थी पड़ जाती, दृष्टि को लेती वहीं टिका।।
इतना ही नहीं दृष्टि के संग, मन भी वहाँ पे चला जाता। उसके रूप के रस में ही, रमण वह था करने लगता।।
उसको इस दशा में देखकर, श्री शंकर हुए अति आकृष्ट। ऐसा आभास हुआ उनको, ज्यों हुई मोहिनी भी आसक्त।।

शंकर जी के विवेक को, उस मोहिनी ने छीन लिया। उसके हाव भावों ने, कामातुर उनको किया।।
भवानी के सामने ही, सब लज्जा उन्होने छोड़ दी। उठकर के उस मोहिनी की, ही उन्होंने अनुसरण की।।
आंचल के उड़ जाने से, थी वस्त्रहीन मोहिनी हुई। अपनी ओर आते शंकर, को देख अति लज्जित हुई।।
इक वृक्ष से दूजे की, आड़ में थी वह छिप जाती। मधुर हँसी हंसती थी वह, पर टिक कहीं थी न पाती।।

प्रभु शंकर की इन्द्रियाँ, नहीं उनके अपने वश में रहीं। काम के थे वशीभूत वह, इन्द्रियाँ भी अति व्याकुल थी।।
हथिनी के पीछे-पीछे, हाथी ज्यों कामातुर दौड़े। त्यों ही श्री महादेव भी, मोहिनी पाछे हो लिये।।
अति वेग सों पीछा कर उसका, उसके जूड़े को पकड़ लिया। विरोध पे भी भुजा में भर, हृदय से उसे लगा लिया।।

ज्यों हाथी हथनी को, निज आलिंगन में बान्ध ले। त्यों ही श्री शंकर ने भी, मोहिनी के आलिंगन किये।।
इधर उधर हटकर के वह, अपने को छुड़ाना थी चाहे। इस छीना झपटी में ही, उसके बाल सब बिखर गए।।
वास्तव में वह सुन्दरी तो, श्री हरि रचित माया ही थी। जिस किसी प्रकार से शंकर के, भुजापाश से वह बच निकली।।
बहुत वेग से वह भागी, शंकर भी उसके पीछे हुए। मोहिनी वेषधारी विष्णु, तो अति अद्भुत कर्मी थे।।

ऐसा था उस पल भास रहा, मानो हों कामदेव जीते। निज शत्रु श्री शंकर से, हों प्रतिकार वह ले रहे।।
कामुक हथिनी के पीछे, मदोन्मत्त हो ज्यों गज दौड़े। उसी विधि श्री शंकर भी, मोहिनी के पीछे दौड़े।।
यद्यपि प्रभु शंकर तो, हैं कहें अमोघ वीर्य। फिर भी मोहिनी की माया से, स्खलित हो गया उनका वीर्य।।

धरती पर वह वीर्य फिर, जहाँ जहाँ पे जाय गिरा। वहाँ वहाँ सोने चान्दी की, खानों का उस रूप धरा।।
नदी सरोवर उपवन वन, पर्वत जहाँ ऋषि मुनि रहें। मोहनी के पीछे पीछे, शंकर उन सब जा पे गए।।
वीर्यपात हो जाने पर, स्मृति उनकी पुन: जागी। प्रभु की माया से राजन्, वह तो रह गए ठगे ही।।
तुरन्त ही उस दु:खदे प्रसंग, को उन्होंने भुला दिया। माया का खेल जाना इसे, और अपने को अलग किया।।

सर्वात्म आत्म स्वरूप, हरि की महिमा जब जाना इसे। उनकी महिमा को देखकर, आश्चर्य चकित वह नहीं हुए।।
वह तो इतना जाने थे, प्रभु का पार कोई पा न सके। उनकी शक्ति की महिमा का, अनुमान कोई कैसे करे?

जब श्री हरि ने देखा यह, प्रभु शंकर लज्जित नहीं हुए। इस घटना से श्री शंकर के, मन में विषाद कोई नहीं भरे।।
तब पुरुष तन धारण करके, प्रकट पुन: वह हो गए। महामुदित होकर फिर उन, श्री शंकर से यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
हे देवश्रेष्ठ मेरी स्त्री रूपिणी, माया से विमोहित होकर के। पुन: आप निज निष्ठा में, स्वयं ही स्थित हैं हो गए।।

मेरी माया तो अपार है, वह ऐसे हाव भाव रचे। अजितेन्द्रिय पुरुष तो किसी विधि, छूट नहीं उससे सकते।।
आपके अतिरिक्त भला, कौन पुरुष अस हो सके? इक बेरी फंस कर फंदे में, जो स्वयं ही उसे निकल सके?

यद्यपि गुणमयी यह माया मम, करे मोहित महादिग्गजों को। फिर भी देवेश्वर यह कभी, नहीं मोहित करेगी आपको।।
सृष्टि आदि के हेतु ही, मैं उसके गुण स्वीकार करूँ। रजोगुण सृष्टि कर न सके, यदि मैं न उसकी इच्छा करूँ।।

शुकदेव बोले,
प्रभु विष्णु ने श्री शंकर का, राजन् इस विध सत्कार किया। तब परिक्रमा कर विदा उनसे ले, श्री शंकर ने प्रस्थान किया।।
अपने गणों को संग में ले, कैलाश पे पुन: वह चले गए। हे भरतश्रेष्ठ महर्षियों और, मुनियों की वह सभा में गए।।
विष्णु की अंशभूता माया, मोहिनी का प्रसंग जो था। अर्धांगिनी सती देवी से, ऋषियन् सम्मुख सप्रेम कहा।।

शंकर बोले,
हे देवी परम परमेश्वर की, माया क्या तुमने देखी? समस्त कला कौशल विद्या, का हूँ मैं स्वामी स्वतंत्र ही।।
फिर भी उससे विवश होकर, मोहित ही मैं हो गया। परतंत्र जो जीव हैं, फिर उनकी तो है बात ही क्या?

जब एक सहस्त्र वर्ष की, समाधि से था मैं जगा। तुमने मेरे पास आ, प्रश्न यह उस पल था किया।।
किसकी उपासना करें आप, हैं यही जानो सनातन पुरुष। न काल ही सीमित कर सके, न करें वेद इनको वर्णित।।
वास्तविक स्वरूप इनका जानो, है अनन्त अनिर्वचनीय। इनकी महिमा का बखान तो, वेद पुराण न कर सकें।।

शुकदेव बोले,
हे प्रिय परीक्षित श्री हरि की, आश्चर्यपूर्ण यह लीला कही। जिन्होंने सागर मन्थन के समय, निज पीठ पे मन्द्राचल धरी।।
जो नर पुन: पुन: इसका, कीर्तन करे और श्रवण करे। उसका कोई उद्योग कहीं, कभी भी निष्फल न होए।।
पावन कीर्ति श्री हरि के, गुण और लीला का गान जो। इस जग के क्लेश श्रान्ति सारी, इक पल में मिटा दे वो।।

दुर्जन तो श्री हरि चरण, कभी प्राप्त न कर सकें। भक्ति भाव सम्पन्न जीव ही, उनके निकट कहीं जा सकें।।
उन्होंने ही मायामयी, स्त्री रूप धारण किया। उस रूप से दुष्ट दैत्यों को, मोहित स्वयं ही कर लिया।।
उनके चरण कमल के ही, आश्रित देव जो रहें सदा। सागर मन्थन से निकले, अमृत का उन्हें दान दिया।।
केवल उनकी ही बात नहीं, चाहे जो भी उनकी शरण गहे। उसकी सारी कामना ही, प्रभु पूर्ण हैं कर देते।।
उन्हीं श्री हरि के चरणों में, करूँ नमन मैं बार बार। मेरे जीवन का वही प्रभु, सदा सर्वदा बनें आधार।।

६) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन व मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण

शुकदेव बोले,
हैं श्राद्ध देव सप्तम मनु, पुत्र विवस्वान के। वर्तमान मन्वन्तर उनका, कार्यकाल तू जान ले।।
अब उनकी सन्तान का, वर्णन मुझसे तू सुन ले। नाम तुझे मैं कहता हूं, दस पुत्र जो वैवस्वत् मनु के।।
इक्ष्वाकु नभग शर्याति, नरिष्यन्त नभाग और धृष्ट। करूष पृषध्र और वसुमान्, है दसवें का नाम दिष्ट।।

इस मन्वन्तर में राजन्, आदित्य वसु रुद्र विश्वदेव। मरुद्गण अश्विनी कुमार ऋभु, हैं देवों के यह प्रधान देव।।

पुरन्दर है इन्द्र उनका, कश्यप वसिष्ठ और अत्रि। जमदग्नि गौतम विश्वामित्र, और भारद्वाज हैं सप्तर्षि।।
कश्यप पत्नी अदिति के, गर्भ से इस मन्वन्तर में। आदित्यों के अनुज बनकर, वामन रूप प्रभु जन्मे।।

इस विधि राजन् संक्षेप से, किया वर्णन सात मन्वन्तर का। प्रभु शक्ति युक्त आगामी की, अब तुझको मैं कह दूँगा।।
पहले ही हूँ यह बता चुका। दो पत्नियाँ थीं विवस्वान की। थी विश्वकर्मा की पुत्रियाँ, संज्ञा और छाया नाम थी।।

कुछ लोग ऐसा भी कहें, थी तृतीय पत्नी वडवा। पर मेरे मत अनुसार तो, वह संज्ञा का ही नाम था।।
उन सूर्य पत्नियों से, संज्ञा की तीन सन्तान हुई। यम यमी और श्राद्धदेव, यह तीनों के नाम थे।।
छाया के भी जान लो, राजन् हुई तीन सन्तान। सावार्णी शनैश्चर और ,तापती था कन्या का नाम।।
तापती ही पुन: संवरण, की पत्नी थी हो गई। संज्ञा जब वडवा बनी, द्वौ अश्विनी कुमारों का जन्म हुआ।।

आठवें मन्वन्तर में, मनु सावर्णि ही होंगे। निर्मोक विरजस्क आदि, जान पुत्र उनके होंगे।।
सुतपा विरज और अमृतप्रभ, नामक देवगण तब होंगे। विरोचन पुत्र बलि ही तब, इन सब देवों के इन्द्र होंगे।।

वामन अवतार में श्री हरि ने, त्रैपग पृथ्वी इनसे मांगी। पर इन्होंने तो श्री हरि को, पूर्ण त्रिलोकी ही दे दी।।
राजा बलि को एक बार, तो भगवान ने बान्ध दिया। प्रसन्न होकर फिर स्वर्ग से, श्रेष्ठ सुतल का राज्य दिया।।
वर्तमान में वहीं पे वह, इन्द्र रूप हैं विराजमान। आगे चलकर होंगे यह इन्द्र, सब विधि पूर्ण ऐश्वर्यवान।।
उस इन्द्र पद को भी त्याग, परम सिद्ध हो जाएंगे। इस महात्याग के कारण वह, अनुपम सबमें कहलायेंगे।।

गालव दीप्तिमान परशुराम, अश्वत्थामा और कृपाचार्य श्री। ऋष्यश्रृंग और हमारे पिता, प्रभु व्यास होंगे सप्तर्षि।।
आठवें मन्वन्तर में, हे राजन् तू जान ले। योग बल से आधुनिक में, निज आश्रमों में यह स्थित रहें।।
देवगुह्य की पत्नी, सरस्वति के गर्भ से। श्री हरि रूप धरेंगे स्वयं, सार्वभौम के नाम से।।
यही प्रभु पुरन्दर इन्द्र से, स्वर्ग के राज्य को छीनेंगे। और राजा बलि को ही, फिर राज्य वह दे देंगे।।

वरुण पुत्र दक्ष सावर्णि, होंगे नवें मनु तू जान। भूतकेतु दीप्तकेतु आदि, होंगे उनके पुत्रों के नाम।।
पार मरीचिगर्भ आदि, होंगे देवताओं के गण। उस काल में जान ले, अद्भुत नाम से होंगे इन्द्र।।
द्युतिमान आदि जानो, उस मन्वन्तर के सप्तर्षि। अम्बुधारा ही होंगी, श्री आयुष्मान् की तब पत्नी।।
उनके गर्भ से ऋषभ रूप में, कलावतार प्रभु का होगा। उन्हीं की दी त्रिलोकी का, उपभोग इन्द्र द्वारा होगा।।

जान ले दसवें मनु होंगे, उपलोक्ष पुत्र सावर्णि ही। सद्गुण सारे जो भी हैं, वास करेंगे उनमें ही।।
भूरिषेण आदि यह सब, होंगे जान उनके ही पुत्र। होंगे सप्तर्षि जय मूर्ति, हविष्यमान् सुकृति सत्य।।
सुवासन विरुद्ध आदि, देवों के जान ले गण होंगे। और शम्भु जान ले, उन देवों के इन्द्र होंगे।।

फिर विश्वसृज की पत्नी, विषूचि के गर्भ से। अंशावतार धारेंगे प्रभु, विष्वक्सेन के रूप में।।
शम्भु नामक इन्द्र से, मित्रता फिर वह कर लेंगे। अति संयमी धर्म सावर्णि, फिर ग्यारहवें मनु होंगे।।
सत्य धर्म आदि उनके, जान ले दस पुत्र होंगे। विहंगम कामगम निर्वाण रुचि, आदि देवों के गण होंगे।।
वैधृत नामक इन्द्र होंगे, अरुणादि सप्तर्षि होंगे। यह ही हैं जो विस्तार कहे, ग्यारहवें मनु के होंगे।।

आर्यक की पत्नी वैधृता से, प्रभु का अंशावतार होगा। इस अवतार में जान ले, धर्मसेतु ही नाम होगा।।
उस रूप में ही प्रभु, रक्षा करेंगे त्रिलोकी की। बाहरवें मनु की अब सुनों, होंगे वह रुद्र सावर्णि।।
देवश्रेष्ठ देववान् उपदेव, आदि उनके पुत्र होंगे। उस मन्वन्तर में जानो, ऋतधर्मा नाम के इन्द्र होंगे।।
हरितादि होंगे देवगण, हे राजन् तुम यह जान लो। तपोमूर्ति तपस्वी आग्नीध्रक आदि, सप्तर्षिन् के नाम हों।।

सत्यसहा की पत्नी, सुनृता के गर्भ से। स्वधाम के रूप में, अंशावतार प्रभु लेंगे।।
उस मन्वन्तर को प्रभु, उसी रूप में पालेंगे। परम जितेन्द्रिय देवसावर्णि, फिर तेरहवें मनु होंगे।।
चित्रसेन विचित्रादि, उनके ही पुत्र होंगे। सुकर्म और सुत्राम आदि, यह सब देवगण होंगे।।
दिवस्पति के नाम से, उस मन्वन्तर के इन्द्र होंगे। निर्मोक तत्त्वदर्श आदि, उस काल के सप्तर्षि होंगे।।

देवहोत्र की पत्नी का, होगा नाम तब बृहती। उसके गर्भ से योगेश्वर, प्रभु की अंश अवतार होगी।।
उसी रूप में इन्द्र पद, दिवस्पति को दे देंगे। चौदहवें मनु जान राजन्, इन्द्र सावर्णि ही होंगे।।
उनके पुत्र भी जान लो, उरु गम्भीर बुद्धि आदि। होंगे देवगण उस समय, पवित्र और चाक्षुष आदि।।
इन्द्र का नाम भी जान लो, उस काल में होगा शुचि। अग्नि बाहु शुचि शुद्ध, मागध आदि हों सप्तर्षि।।

उस समय सत्रायण की, विताना ही पत्नी होगी। उसके गर्भ से बृहद्भानु बन, प्रभु की अंशावतार होगी।।
इस रूप में कर्मकाण्ड, का विस्तार वह कर देंगे। चौदहवें मन्वन्तर के, मनु यही प्रभु होंगे।।
यह चौदह मन्वन्तर राजन्, तीनों कालों में रहते हैं। भूत भविष्य और वर्तमान, यह सबमें चलते रहते हैं।।
एक सहस्त्र चतुर्युगी के, कल्प के समय की गणना जो। इन्हीं चौदह मन्वन्तरों के, द्वारा ही हो जान लो।।

परीक्षित बोले,
मनु मनुपुत्र सप्तर्षि, आदि का जो वर्णन किया। अपने अपने मन्वन्तर में, नियुक्त हों यह किसके द्वारा?
कौन कौन से काज को, किस प्रकार यह सब करें? हे द्विजवर अब कृपा करी, मेरे लिये विस्तार करें।।

शुकदेव बोले,
मनु मनुपुत्र और देवता, और कहे जो सप्तर्षि। सबकी नियुक्ति करने वाले, हैं स्वयं भगवान ही।।
यज्ञ पुरुष आदि प्रभु के, जिन अवतारों का किया वर्णन। उन्हीं से प्रेरित मनु आदि करें, विश्व व्यवस्था संचालन।।

चतुर्युगी के अन्त में, समय के उलट फेरसे। नष्ट प्राय: हों श्रुतियां जब, काल के ही फेर से।।
सप्तर्षि गण तपस्या से, पुन: उन्हें साक्षात् करें। उन श्रुतियों के द्वारा ही, सुरक्षित सनातन धर्म करें।।
श्री हरि से प्रेरित हो सदक्ष, पृथ्वी पर निज मन्वन्तर में। सब ही मनु चतु: चरण सहित, धर्म का अनुष्ठान करें।।

मन्वन्तर भर में मनुपुत्र, देश और काल विभाग करें। प्रजा का पालन और धर्म, पालन का वह काज करें।।
ऋषि पितर भूत जीव, आदि का जहाँ सम्बन्ध रहे। पंच महायज्ञ आदि, कर्मों का वह अनुष्ठान करें।।
उनके साथ देवता भी, उस उस अपने मन्वन्तर में। यज्ञ भाग निज करें स्वीकार, अपने अपने ही धर्म से।।

प्रभु की दी त्रिलोकी और, अतुलित उसकी सम्पदा का। उपभोग और प्रजापालन, करते हैं श्री इन्द्र सदा।।

संसार में यथेष्ट ही, वर्षा सदा होती रहे। इन्द्र के ही पास तो है, इसका भी अधिकार रे।।
युग युग में प्रभु सनक आदि, सिद्धों का रूप धारण करें। पुन: पुन: वह ज्ञान का, उन राही उपदेश दें।।

याज्ञवल्क्य आदि ऋषिगण, का रूप वह धारण करके। श्री हरि स्वयं ही तो, प्रतिपादित कर्म को भी करते।।
दत्तात्रेय आदि योगेश्वर, का रूप भी वही धरें। उस रूप में जग के लिये, योग का वह उपदेश दें।।
मरीचि आदि प्रजापति बन, वह सृष्टि का विस्तार करें। सम्राट बन प्रजा के लिये, परिपन्थिन् का हनन करें।।
शीत उष्ण आदि विभिन्न, गुणों को वह ही ग्रहण करें। काल रूप में वही स्वयं, संहार के मुख में सबको लें।।

नाम और रूप की माया से, बुद्धि भ्रमित हुई जीवों की। भाँति भाँति के दर्शन शास्त्र, में है सदा पड़ी रहती।।
वास्तव में सबके राही, वे महिमा प्रभु की ही गायें। पर उनका वास्तविक स्वरूप, वे जान ही न पायें।।
महाकल्प और अवान्तर कल्प, तुम्हें है सब सुना दिया। हे राजन् इन दोनों का, परिणाम है तुम्हें बता दिया।।
पुराण तत्त्व के वेत्ता तो, विस्तार से यह ही कहते हैं। प्रति अवान्तर कल्प में, चौदह मन्वन्तर रहते हैं।।

७) दैत्यराज बलि की स्वर्ग पर विजय

परीक्षित् बोले,
हे द्विजवर श्री हरि तो हैं, स्वयं ही सबके स्वामी। फिर दीन हीन की भाँति बलि से, त्रैपग भूमि क्यों मांगी?
जो कुछ भी वह चाहते थे, जब सब उनको मिल गया। फिर भी बलि को क्यों बान्धा, ऐसा उन्होंने क्यों किया?
अति कौतूहल मन में मेरे, इस बात को जानना चाहता हूँ। परिपूर्ण हरि की याचना का, रहस्य जान न पाता हूँ।।
निरपराध बलि को फिर, उन्होंने कैसे बान्ध लिया? यज्ञेश्वर श्री हरि द्वारा, सम्भव यह कैसे हुआ?
शुकदेव बोले,
इन्द्र ने बलि पराजित कर, जब सम्पदा उसकी छीन ली। प्राणा भी उसके हर लिये, इन्द्र ने उसकी वध कर दी।।
भृगुपुत्र श्री शुक्र ने तब, दिया जीवन दान संजीवनी से। बलि ने तन मन सर्वस्व निज, उनके श्री चरण चढ़ा दिये।।
तन मन से निज गुरु के, संग ही वह हो लिये। भृगुवंशी सब ब्राह्मणों की, सेवा वह करने लगे।।

प्रभावशाली भृगुवंशी द्विज, इससे उनपर प्रसन्न हुए। स्वर्ग विजय इच्छुक बलि के, उन्होंने फिर अभिषेक किए।।
महाभिषेक करी उनका, विश्वजित करवाया यज्ञ। इस प्रकार महासेवा का, भृगुवंशियों ने दिया उसे फल।।
हविष्यों द्वारा अग्नि देव की, पूजा जब करी गई। यज्ञ कुण्ड से स्वर्ण मण्डित, इक अति सुन्दर रथ निकली।।
फिर इन्द्रसमान ही हरे अश्व, यज्ञ कुण्ड से निकल आये। सिंह चिन्हित रथ की ध्वजा, के प्राकट्य फिर वहां हुए।।

स्वर्ण मंडित इक दिव्य धनु: और दिव्य कवच भी संग प्रकटे। रिक्त कभी जो न होएं, ऐसे दो तरकश भी निकले।।
उनके दादा प्रह्लाद ने, एक माला उन्हें दी ऐसी। फूल न कुम्हलायें कभी, ऐसी विचित्र वह माला थी।।
शुक्राचार्य जी ने उन्हें, एक सुसज्जित शंख दिया। इस प्रकार ब्राह्मणों की, राजा बलि पे हुई कृपा।।

शुद्ध सामग्री प्राप्त कर, स्वस्ति वचन जब हो चुका। प्रदक्षिणा कर राजा बलि ने, ब्राह्मण जन को नमन किया।।
तत्पश्चात् प्रह्लाद से, बलि ने सम्भाषण किया। और पितामह चरण में, नमस्कार उन्होने कर दिया।।

भृगुवंशियों के प्रदत्त, दिव्य रथ पे वह सवार हुए। महाबली राजा बलि ने, तब कवच भी धारण कर लिए।।
धनु: तलवार तरकश आदि, शस्त्र ग्रहण जब कर लिये। दादा की दी हुई माल से, थे सुसज्जित वह हुए।।

भुजादण्ड में स्वर्ण के, बाजूबन्द थे सज रहे। मकराकृति कुण्डल कानों की, थी उनकी शोभा बने।।
रथ पर वह बैठे हुए, थे इस विध शोभित हो रहे। मानो यज्ञकुण्ड में ज्यों, शोभित अग्नि ही होए।।
उनके समान ऐश्वर्य बल, और विभूतिवान् थे जो। निज सेना ले दैत्यों के, सेनापति भी लिए संग हो।।
ऐसा आभास था हो रहा, आकाश को ही वह पी लेंगे। प्रज्वलित नेत्र से सब दिशा, क्षितिज भस्म वह कर देंगे।।

इस महासेना का बलि ने, नीति से किया फिर संचालन। कांप उठा आकाश और, अन्तरिक्ष का भी फिर मन।।
सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण, थी इन्द्रपुरी अमरावती। राजा बलि ने निज सेना, से उसपर आक्रमण करी।।
सुन्दर नगरी अमरावती, है देवों की राजधानी। नन्दन वन सुन्दर उद्यानों, से सजी हुई है वह नगरी।।
उपवनों में पक्षी युगल, सदा चहकते रहते हैं। मधुलोभी मतवाले भंवरे, गुंजन वहाँ पे करते हैं।।

लाल लाल नव पल्लव और फल फूलों से लदी रहें। कल्प वृक्ष की डालियां, भार से इनके झुकी रहें।।
वहाँ सरोवरों में हंस, सारस चकवे और बत्तखें रहें। देव सम्मानित देवांगनाएँ, उनमें ही जल क्रीड़ा करें।।
ज्योतिर्मय आकाश गंगा ने, चहुँ ओर से है घेरा। ज्यों खाई ने अमरावती के, चहुँ ओर से हो किया डेरा।।
उसके चहुँ ओर स्वर्ण का, है महा उच्च पराकोटा बना। महा अटारियों ने जिसको, स्थान स्थान पे है घेरा।।

द्वार द्वार पर सोने के, किवाड़ हैं विस्तृत बने हुए। नगर के गोपुर भी वहाँ, स्फटिक मणि से चमक रहे।।
बड़े बड़े और अलग अलग, हैं राजमार्ग उस नगरी के। स्वयं विश्वकर्मा ने ही, उस पुरी के हैं निर्माण किए।।

खेल के लिए चबूतरे हैं, और सभा के भी हैं स्थान बनें। बड़े बड़े रथमार्गों से, है नगरी की शोभा बढ़े।।
दस करोड़ विमान वहाँ, रहें सदा सर्वदा विद्यमान। बड़े बड़े चौराहों में, है मणियों की शोभा महान्।।
हीरों और मूंगों की वहाँ, हैं वेदियां बनी हुईं। इन सबसे अमरावती की, है शोभा अति न्यारी बनी।।

वहाँ की हैं जो नारियाँ, सदा सोलह वर्ष की ही रहें। उनका यौवन और सौन्दर्य, स्थिर सदा इस भाँति रहे।।
निर्मल वस्त्रों को पहने, देदीप्यमान् वह सदा रहें। जैसे अपनी ज्वाला से, प्रज्ज्वलित सदा अग्नि रहे।।
देवांगनाओं की वेणी के, नवीन पुष्प जो नित्य गिरें। उनसे सुगन्धित हो वायु, मन्द गति से वहाँ चले।।

स्वर्णमयी खिड़कियों से, धूप दीप का श्वेत धूम्र। वहाँ के मार्गों को ढककर, कर देता है सुगन्धि पूर्ण।।
उन मार्गों पर सदा, देव कन्यायें विचरा करें। इन सबके कारण राजपथों, की शोभा अति न्यारी बने।।

मोती की झालरों से सजे, चिन्दोवे स्थान स्थान पे तने। मणिमय पताका स्वर्ण की, वहाँ सदा फहराती रहे।।
छज्जों पर भी भाँति भाँति की, झण्डियाँ लहराती हैं। मोर कबूतर और भंवरों के, गान से गुंजित गली वह है।।
देवांगनाओं का मधुर, संगीत वहाँ गूंजा करे। इस भाँति उस नगर में,सदा ही मंगल छाया रहे।।

मृदंग शंख नगारे ढोल, ऋष्टि मंजीरे वंशी वीणा। इन सबके स्वर ताल तो, मुखरित ही होते रहें वहा।।

वाद्यों संग गन्धर्व गण, नित्य गान वहाँ गाया करें। अप्सरा गण भी गीतों सहित, उस नगरी में नृत्य करें।।
इन सबसे इतनी सुन्दर, दीख पड़े अमरावती। मानो निज छटा से छटा की भी, जीती हो उसने अधिष्ठातृ।।

अधर्मी दुष्ट जीव द्रोही, अभिमानी कामी और लोभी। इस पुरी में यह सब तो, प्रवेश न पा सकते कभी।।
इन सब ही दोषों का, परित्याग जो जन कर जाते हैं। वह ही जन अमरावती में, अधिकार प्रवेश का पाते हैं।।

असुर सेना के स्वामी बलि ने, अपनी विशाल सेना से। अमरावती को घेर लिया, बाहर से सब ओर से।।
शुक्राचार्य के दिए हुए, शंख से फिर उस नाद किया। जिसका स्वर सुनी इन्द्र की, भार्याओं का मन काँप उठा।।
महाध्वनि उस शंख की, चहुँ ओर ही फैल गई। जिसने भी उसको सुना, मन उसका भयभीत हुई।।

बलि की इस तैयारी के, इन्द्र को जब दर्शन हुए। सब देवों को संग ले, निज गुरु बृहस्पति पास गए।।
हे गुरुदेव बलि तो है, मेरा पुराना शत्रु बहुत। इस बार युद्ध की उसने, है तैयारी कर ली बहुत।।
ऐसा दीखे है मुझको, नहीं सामना हम कर पायेंगे। न जाने वृद्धि हुई कैसे, कैसे हम टिक भी पायेंगे?

इस पल हूँ ऐसा देख रहा, नहीं रोक बलि को पाये कोई। इस विधि है आगे बढ़ वह रहा, ज्यों प्रलय की ही हो अग्न कोई।।
ऐसा आभास है हो रहा, ज्यों मुख से विश्व को पी लेगा। दशों दिशाओं को अपनी, जिह्वा से चाट ही वह लेगा।।
नेत्रों से ऐसा लगे, वह भस्म दिशायें कर देगा। उसकी ज्वाला के सामने तो, नहीं कोई कहीं भी टिक सकता।।

कृपा करी हे गुरुदेव, अब आप ही मुझे बताइए। किस कारण उसकी हुई वृद्धि, आप ही अब समझाइए।।
इसके तन मन और इन्द्रियों में, कहां से आया यह बल और तेज? अदम्य है इसकी तैयारी, और इसकी सेना का यह वेग।।
गुरु वशिष्ठ जी बोले,
तव शत्रु बलि की उन्नति, का कारण मैं जाने हूँ। कैसे वर्धित बल इसका हुआ, हे इन्द्र इसे पहचाने हूँ।।
भृगुवंशी ब्रह्मवादियों ने, निज शिष्य बलि को तेज दिया। महातेज उसको देकर, शक्ति का पुंज बना दिया।।

तुम या तुम्हारे जैसा कोई, नहीं सन्मुख उसके ठहर सके। ज्यों काल के सामने, नहीं जीव कोई भी ठहर सके।।
श्री हरि को छोड़कर नहीं कोई, सामना इसका कर पाये। सर्वशक्तिमान् प्रभु ही, केवल उसे हरा पायें।।
इसलिये तुम लोग सब, स्वर्ग छोड़ कहीं जाय छिपो। जब भाग्य चक्र पलटे उसका, प्रतीक्षा उस समय की करो।।

इस पल तो ब्राह्मण तेज से, उत्तरोत्तर वृद्धि पा वह रहा। है शक्ति वर्धित उसकी हुई, नहीं सामना कोई भी कर सकता।।
उन्हीं ब्राह्मणों का जब यह, तिरस्कार करेगा अहंवश। तब परिकर परिवार सहित, यह स्वत: ही होगा नष्ट।।
देवों के स्वार्थ और परमार्थ, के ज्ञाता थे श्री बृहस्पति। उन्होंने इस प्रकार से, देवों को जब सन्मति दी।।
तब स्वेच्छानुसार ही, रूप उन्होंने धारण किया। अपनी इच्छा से देवों ने, स्वर्ग को फिर छोड़ दिया।।

देवों के यूँ छिप जाने पर, विरोचन नन्दन मुदित हुआ। अमरावती पुरी को फिर, असुर राज ने यूँ जीता।।
फिर तीनों लोकों को ही, राजा बलि ने जीत लिया। इस विधि त्रिलोकी पर, उसने फिर अधिकार किया।।
विश्वविजयी जब बलि हुआ, तब शिष्य प्रेमी भृगुवंशियों ने। सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये, अपने अनुगत उस शिष्य से।।
नक्षत्रनाथ श्री चन्द्र के, समान ही शोभा बढ़ी उसकी। बलि की कीर्ति की महिमा, इस विध विस्तृत थी हुई।।

श्रेष्ठ द्विजों की कृपासे जो, साम्राज्य प्राप्त था उन्हें हुआ। समृद्ध राज्यलक्ष्मी का, उदारता से उपभोग किया।।
अपने को महाराज बलि, कृत्कृत्य लगे मानने। कृतज्ञता से वह स्वर्ग का, उपभोग थे करने लगे।।

८) देवमाता अदिति का पयोव्रत और भगवान का प्रकट होकर अदिति को वर देना

शुकदेव बोले,
देवतागण जब इस विध, भाग के राजन छिप गए। दैत्यों के तब स्वर्ग पर, अधिकार थे हो गए।।
देवमाता अदिति तब, अति व्यथित ही हो गईं। ऐसा लगा उनको मानो, वह अनाथ ही हो गईं।।
बहुत दिनों के बाद जब, ऋषि कश्यप उठे समाधि से। तब वह चलकर अदिति के, आश्रम में ही जा पहुँचे।।
उन्होंने देखा वहाँ पे तब, न सुख है न है शान्ति ही। न कहीं सजावट दीखी वहाँ, न दीखा वहाँ उत्साह कोई।।

जब अदिति विधिवत उनका, आदर सत्कार थी कर चुकी। ऋषि कश्यप ने भी वहाँ, थी निज आसन ग्रहण करी।।
निज पत्नी अदिति का मुख, म्लान ही उन्होंने देखा। प्रेम सहित अदिति से, फिर उन्होंने यह वचन कहा।।
कश्यप बोले,
कहो कल्याणि कुशल तो है, नहीं द्विजवर पर तो विपदा कोई? धर्म की पालना इस जग में, क्या है ठीक से हो रही?
काल के कराल में, नित्य ही जो पड़े रहें। हे प्रिय उन जीवों का, अमंगल तो कहीं न होए?

जो योग न कर सकें, उनको भी फल दे योग का। हे प्रिये गृहस्थाश्रम की, तो है ऐसी ही महिमा।।
इस आश्रम में रह धर्म अर्थ, और काम के सेवन में। कहो प्रिये किसी भाँति के, कहीं विघ्न तो नहीं हुए?
सम्भव है तुम कुटुम्ब के, भरण पोषण में व्यस्त रही। इस कारण विधिवत् कभी, सत्कार अतिथि की नहीं हुई।।
बिन सम्मान पाये तुमसे, कहीं अतिथि हों लौट गए। क्या इस कारण मुख कमल तास सा ही दीखे?

जिस घर में आये अतिथि का, विधिवत् न सत्कार हो। जिस घर का जल भी आये हुए, अतिथि को न उपलब्ध हो।।
बिन जल पिये ही जिस घर से, अतिथि लौट ही जाये है। वह घर तो गीदड़ के ही, घर समान रह जाये है।।
यह भी तो हो सकता है, चित्त उद्विग्न हुआ तेरा। मेरी अनुपस्थिति में, नहीं समय पे हो कभी हवन हुआ।।
हविष्यान्न अग्नि में, नहीं अर्पित विधि से कभी हुआ। क्या इस कारण ही तुम कहो, खिन्न यह चित्त तुम्हारा हुआ ?

ब्राह्मण और अग्नि तो हैं, सर्ववेदमय प्रभु के मुख। इन दोनों की ही पूजा करे, है गृहस्थ को यही उचित।।
इनकी पूजा करने से, वह प्राप्त उन लोकों को। सर्वकामना की जहाँ, पूर्ति स्वत: ही सम्भव हो।।
तुम तो सदा सर्वदा, प्रसन्न ही प्रिये रहती हो। किन्तु तव चित्त अस्वस्थ है, यह कहें तुम्हारे लक्षण जो।।
सब पुत्र तुम्हारे कहो, कुशल मंगल से तो है? समाचार परिवार के, कहो प्रिय तुम कैसी हो?

अदिति बोली,
ब्राह्मण गौ धर्म और, यह दासी आपकी कुशल है। गृहस्थाश्रम ही हे प्रभु, धर्म अर्थ काम में सहायक हैं।।
निरन्तर आपकी याद में, कल्याण कामना मैंने करी। अग्नि अतिथि सेवक भिक्षुक, नहीं तिरस्कार याचक की करी।।
आप जैसे प्रजापति ही, धर्म का जब उपदेश दें। तो कौन कामना मन की मेरी, पूरी न जो हो सके?

हे आर्यपुत्र समस्त प्रजा, आपने ही तो पैदा करी। कुछ तन से है उत्पन्न हुई, कुछ संकल्प से ही जन्मी।।
सत्त्व रज या तमोगुणी, जैसी है सब है आपकी। नहीं तनिक सन्देह इसमें, समभाव है आपका सबके प्रति।।
चाहे हों वह देवता, या फिर हों चाहे असुर ही। अभिलाषा पूर्ण करें प्रभु, तथापि अपने भक्तों की।।
मैं दासी आपकी हूँ स्वामी, मेरा कल्याण विचार करें। शत्रु ने हमारी सम्पदा, और आवास हैं छीन लिये।।
हे मर्यादा के पालक, अब आप ही रक्षा कीजिये। इस विपदा से हे प्रभु, उभार आप हमें लीजिये।।

महाबली दैत्यों ने हमारा, ऐश्वर्य पद धन यश छीना। श्री हीन करके हमको, घर से भी बाहर किया।।
इस कारण हे प्रभु मेरे, मैं दु:ख सागर में डूब रही। इस विपदा से हे प्रभु, हमें बचायें आप ही।।

आपसे बढ़कर हे स्वामी, है नहीं कल्याणकारी कोई। परम हितैषी आप ही हैं, अब आप ही करें उपाय कोई।।
संकल्प से ही कल्याणकर, उपाय आप कोई कीजिए। मेरे पुत्रों का खोया वैभव, प्राप्त पुन: उन्हें हो जाइए।।
शुकदेव बोले,
जब अदिति ने इस भाँति, ऋषि कश्यप से प्रार्थना की। तब वह उससे कहने लगे, कुछ विस्मित से होकर ही।।
अति आश्चर्यमय बात है यह, प्रभु की माया कैसी है प्रबल। सब जग को स्नेह की रज्जू से, उसने बान्धा है बरबस।।
कहाँ तो पंचभूतों से, बना हुआ यह नश्वर तन। और कहाँ प्रकृति परे, नित्य अमर वह है आत्मन्।।
न किसी का कोई है पति, न पुत्र कोई न सम्बन्धी। जीव यह विवश हो नाच रहा, मिथ्या मोह के हाथों ही।।

सब भूतों के हृदय में प्रिये, जो सदा रहें विराजमान्। भक्तवच्छल दु:खहारी प्रभु, हैं वासुदेव अति दयावान्।।
हे प्रिये उनकी ही तुम, नित्य आराधना किया करो। श्री हरि ही करेंगे पूर्ण, तेरी सर्वकामना को।।
यह दृढ़ निश्चय है मेरा, व्यर्थ न हो कभी प्रभु भक्ति। नहीं उनकी शरण के सिवा, जग में कहीं अन्य उपाय कोई।।
अदिति बोली,
हे स्वामी श्री भगवान की, आराधना कहें मैं कैसे करूँ? मनोरथ पूर्ण वह मेरे करें, सत्य संकल्प हरि कैसे भजूँ?
हे स्वामी निज पुत्रों संग, मैं बहुत दु:ख हूँ भोग रही। विधि आराधना की वह कहें, प्रसन्न हों जिससे शीघ्र हरि।।
कश्यप बोले,
हे देवी मेरे मन में, सन्तान की कामना जब थी उठी। तब श्री ब्रह्मा से मैंने,यह ही प्रश्न थी करी।।
प्रभु की प्रसन्नता के लिये, जिस व्रत का था उपदेश किया। हे देवी उस व्रत की ही, रहा हूँ आज मैं तुम्हें बता।।
फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में, द्वादश दिन केवल पिये दूध। परम भक्ति से कमल नयन, प्रभु की पूजा में जाये डूब।।
अमावस्या के दिन फिर, शूकर की खोदी माटी से। तन पर उसे मल करे स्नान, और संग यह मन्त्र कहे।।

हे देवि प्राणियों का, उद्धार करने की इच्छा से। प्रभु वराह ने उबारा तुम्हें, हे पृथ्वी रसातल से।।
है नमस्कार मेरा तुम्हें, मेरे पापों को तुम नष्ट करो। हे धरती अब मेरा भी, आप ही उद्धार करो।।
तत्पश्चात् नित्य नैमित्तिक, नियमों को पूर्ण करके। मूर्ति वेदी सूर्य जल, अग्नि और गुरु में प्रभु पूजे।।

हैं सर्वशक्तिमान् आप, प्रभु अन्तर्यामी आराधनीय। आप सभी प्राणिन् में बसें, और सब प्राणी बसें आपमें।।
साक्षी चराचर जगत् के, उसके कारण के भी साक्षी आप। इस कारण ही हे प्रभु, पाये हैं नाम वासुदेव आप।।

हे प्रभु आपके चरणों में, मेरा नमस्कार है। नमस्कार हे प्रभु मेरे, आपको बारम्बार है।।

अव्यक्त और अति सूक्ष्म आप, प्रकृति पुरुष बनी स्थित रहें। चौबीस गुणों के ज्ञाता आप, हैं सांख्य प्रवर्तक आप ही हे।।
नमस्कार मेरा प्रभु, आपके चरण में नमस्कार। गुणों की संख्या आपने की, चरणों में नमन मेरा बार बार।।

प्रायणीयऔर उदयनीय, यह द्वौ कर्म हैं सिर जिसके। प्रात: मध्याह्न और त्रैसवन, हैं यह तीन पाद जिसके।।
चतुर्वेद ही सींग चार, गायत्री आदि छन्द सात हाथ। हे प्रभु उस यज्ञ का, आत्म स्वरूप हैं स्वयं आप।।
धर्ममय ऋषभ का रूप यज्ञ, वेदों ने प्रतिपादित है किया। नमस्कार प्रभु चरणों में, आपके चरण में नमन मेरा।।

लोकहितकारी शिव हैं आप, प्रभु आप ही प्रलयंकारी हैं। समस्त शक्तियाँ भी प्रभु, आपने ही तो धारी हैं।।
सब विद्याओं के अधिपति, सब भूतों के स्वामी आप। आपके ही श्री चरणों में, हे प्रभु हैं मेरा नमस्कार।।

हैं आप ही सबके प्राण भी, और जगत् के हैं स्वरूप आप। योग के हैं कारण स्वयं, और योगेश्वर्य भी स्वयं आप।।
आप ही हैं हिरण्यगर्भ, सबके हैं आदि देव आप। नर नारायण बन प्रकट हुए, सबके ही साक्षी हैं आप।।
हे प्रभु आपके चरणों में, बार बार मेरा नमस्कार। नमस्कार मेरा प्रभु, आप ही अब कर लें स्वीकार।।

मरकत मणि समान ही, है श्यामल तन आपका। सब सम्पद और सौन्दर्य की, देवी हैं आपकी सेविका।।
हे पीताम्बर धर केशव, आपको मेरा नमस्कार। आपके श्री चरणों में ही, प्रणत होऊँ मैं बार बार।।

सर्वश्रेष्ठ वरदे हैं आप, वरेण्यम् हैं सब जीवों के। इस कारण धीर विवेकी जो, निज कल्याण को ही चाहें।।
आपके चरणों की रज की, ही सदा उपासना वे करें। जिन चरण कमल की सुगन्धि को, लालायित सदा ही देव रहें।।
जिनकी सेवा में सदा, श्री लक्ष्मी जी लगी रहें। ऐसे प्रभु आप सदा, मुझपर हे प्रसन्न रहें।।

प्रभु श्री हृषीकेश का, आवाहन पहले ही कर ले। फिर इन मन्त्रों के द्वारा, श्रद्धापूर्व पूजन करे।।
एकाग्रमनी हो पूजे उन्हें, पाद्य आचमन आदि से। गन्ध माल आदि से पूज, फिर दुग्ध से हरि को स्नान दे।।
वस्त्र यज्ञोपवीत भूषण, पाद्य आचमन गन्ध धूप। द्वादश मन्त्र के सहित फिर, श्री भगवान को ले वह पूज।।

घी और गुड़ में मिला हुआ, शाली का चावल वह ले। यदि सामर्थ्य हो इतनी वहाँ, दूध में उसे पका वह ले।।
उसका ही नैवेद्य लगा, द्वादश मन्त्र से हवन करे। फिर नैवेद्य वह स्वयं ले, और प्रभु भक्तों में बांटे।।
आचमन और पूजा के बाद, तम्बूल निवेदन वह करे। इस विधि श्री हरि की, मुख शुद्धि का साधन करे।।

एक सौ आठ बार फिर, द्वादश मन्त्र का जाप करे। और स्तुतियन के द्वारा, श्री हरि स्तुति का गान करे।।
प्रेम और आनन्द से फिर, प्रदक्षिणा प्रभु की वह करे। भूमि पर फिर लेटकर, दण्डवत उन्हें प्रणाम करे।।
निर्माल्य को फिर सीस धरी, विजर्सन करे वह देवों का। खीर का भोजन देकर के, विधिवत् हो पूजन ब्राह्मणों का।।

दक्षिणा आदि से फिर वह, उन ब्राह्मणों का सत्कार करे। बन्धुन् सहित तब आज्ञा पा, यज्ञशेष स्वीकार करे।।
ब्रह्मचर्य से रहे उस दिन, दूजे दिन प्रात: स्नान करे। ज्यों कहा पावन हो विधिवत्, एकाग्र हो प्रभु का ध्यान करे।।
इस विधि जब तक यह व्रत, परिपूर्ण न हो जाये। तब तक दूध से स्नान कर, प्रति दिन श्री हरि को पूजे।।

प्रभु पूजा में श्रद्धा रखकर, केवल पयोव्रती ही रहे। इस विधि ही हे प्रिये, इस व्रत का वह पालन करे।।
पूर्ववत् ही प्रतिदिन, ब्राह्मण भोज और हवन हो। इस विधि द्वादश दिन तक, श्री हरि का आराधन हो।।
होम और पूजा करे, और ब्राह्मण भोज कराता रहे। विधिवत् यूं करते हुए, निज व्रत को पूर्ण करे।।

ब्रह्मचर्य पालन कर, फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से। त्रयोदशी तक तीन समय स्नान, और भूमि पर ही शयन करे।।
झूठ कभी भी न बोले, न पाप की बात करे पापी से। छोटे बड़े सब भाँति के, भोगों का परित्याग करे।।
किसी प्राणी को किसी विधि, कष्ट वह न पहुँचाये। श्री हरि की आराधना में, ही हर पल वह लगा रहे।।

विधि विधान के ज्ञाता ब्राह्मणों, से त्रयोदशी तिथि को। प्रभु विष्णु का शास्त्रोक्त रीति से, पंचामृत से स्नान हो।।
धन संकोच सब त्याग कर, करे महापूजा श्री विष्णु की। प्रभु विष्णु को करे अर्पित, दूध में पकी खीर चरु की।।
एकाग्र चित्त द्वारा हरि का, भजन करना चाहिए। उसी परिपक्व चरु द्वारा, उन्हें भोग लगाना चाहिए।।
गुण युक्त स्वादिष्ट उन्हें, नैवेद्य कीजिये अर्पित। जिससे श्री हरि भी स्वयं, हो जायें प्रसन्न चित्त।।

तत्पश्चात् ज्ञान सम्पन्न, आचार्य और ऋत्विज हों जो। वस्त्र आभूषण गौ आदि, देकर उन्हें सन्तुष्ट करो।।
इसको भी भगवान की, आराधना जानना चाहिए। इनके पूजन राही ही, तुष्टित प्रभु को कर पाइए।।
आचार्य और ऋत्विजों को दें, सगुण सात्विक शुद्ध भोजन। ब्राह्मण आगुन्तुक अतिथिगण को, भी यथा सामर्थ ही दें भोजन।।

ऋत्विजों और गुरुजनों को, यथायोग्य दक्षिणा चाहिये। चाण्डाल भी गर स्वत: आ जाये, उसकी भी तुष्टि चाहिये।।
दीन अन्ध असमर्थों को, भी अन्न देकर सन्तुष्ट करें। उन सबके सत्कार को ही, हरि मोदन का साधन समझें।।
जब यह सब जन तृप्त हों, तब भाई बन्धु निज साथ ले। यज्ञशेष प्रसाद जो, उसका स्वयं भक्षण करे।।

प्रतिपदा से त्रयोदशी तक, प्रतिदिन गायन और नर्तन से। वाद्य वादन स्तुति वन्दन, स्वस्ति वाचन के मन्त्रन से।।
श्री भगवत्कथाओं से, हरि की पूजा करवाये कर। इस विधि पयोव्रत का, पालन प्रिय फिर हो जाये।।
जान लो इसे भगवान की, श्रेष्ठ आराधना विधि कहा। ब्रह्मा ने पयोव्रत जो कहा, वैसा है तुम्हें बता दिया।।

अति भाग्यवान हो देवी तुम, इस व्रत का अनुष्ठान करो। जितेन्द्रिय हो शुद्ध भाव से, श्रद्धापूर्वक भली भाँति करो।।
अविनाशी प्रभु को उपासो तुम, देवी इस व्रत के द्वारा ही। इस राही ही श्री हरि की, आराधना पूर्ण तव होगी।।
हे कल्याणि तुम जान लो, यह व्रत हरि को तुष्टित करे। सर्वयज्ञ और सर्वव्रत, इस कारण ही इसे कहें।।
समस्त तपस्याओं का सार, इस यज्ञ को कहते हैं। इस यज्ञ को दान में, भी प्रमुख ही कहते हैं।।

हैं वही सच्चे नियम, प्रभु जिनसे प्रसन्न हों। वही उत्तम यम वही वास्तव में, तप दान व्रत यज्ञ हों।।
इसलिये हे देवी तुम, संयम और श्रद्धा हृदय में धर। इस व्रत का अनुष्ठान, शीघ्रतम ही लो अब कर।।
शीघ्र ही वह हरि फिर, तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। अभिलाषा सब ही तेरी, पूर्ण स्वत: कर जायेंगे।।
शुकदेव बोले,
निज पति महर्षि कश्यप का, अदिति ने जब उपदेश सुना। द्वादश दिन तक अति दक्षता से, इस व्रत का अनुष्ठान किया।।
बुद्धि वा कुशल सारथी थी, मन प्रग्रह उसने थामी। इन्द्रियों के दुराग्राही अश्व, निज वश में फिर उसने करी।।

इक निष्ठ बुद्धि से फिर, वह प्रभु का चिन्तन करती रही। एकाग्र बुद्धि से निज मन को, प्रभु वासुदेव के चरण धरी।।
मन को लगा हरि चरण में, उसने यह अनुष्ठान किया। पयोव्रत पालन करने को, उसने सब विधि विधान किया।।

तब पुरुषोत्तम श्री हरि, उसके सामने प्रकट हुए। हे राजन् पीताम्बर को, श्री हरि थे धारण किए।।
चतुर्भुजा धारी प्रभु की, छवि अनुपम अति न्यारी थी। शंख चक्र और गदा पद्म, विभूषित भुजा उनकी सारी थी।।
निज चर्म चक्षुओं के सम्मुख, श्री हरि को जब देखा सहसा। अदिति सादर उठ खड़ी हुई, प्रेम विह्वल हुआ मन उसका।।
फिर पृथ्वी पर वे लेट गई, उसने दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु चरण में इस भाँति, अर्पित निज सम्मान किया।।

फिर उठकर कर जोड़ करी, चेष्टा की प्रभु स्तुति गाने की। आनन्दाश्रु बहे नेत्रों से, मुख से वह कुछ न बोल सकी।।
पुलकित था सारा शरीर, अंगों में भी था कम्प भरा। मौन ही वह निहारे गईं, हृदय में प्रेमोद्गार भरा।।

श्री लक्ष्मीपति जो विश्वपति, यज्ञेश्वर प्रभु हैं स्वयं। गई प्रभु पूर्ण निहारे उन्हें, अपलक ही ज्यों थे नयन।।
मानो नयनों की राही ही, वह पान था हरि का कर रही। फिर हो गद्गद् सप्रेम से उस, श्री हरि की मन्द मन्द स्तुति की।।
अदिति बोली,
यज्ञ के स्वामी प्रभु आप, और यज्ञ भी हैं वह आप स्वयं। श्री चरण कमल के आश्रित जो, भव सागर सहज तरें वह जन।।
आपके यश कीर्तन का श्रवण, भी भवसागर से पार करे। नाम कीर्तन श्रवण मात्र, ही कल्याणकार बन जाये।।
हे आदि पुरुष जो आपकी, चरण शरण में आ जाये। उसकी सारी विपदा को, आप स्वयं ही मिटा जायें।।
दीनों के हे नाथ प्रभु, कल्याण हमारा कीजिए। दीनबन्धु हैं प्रभु आप, हम दीन आपकी शरण पड़े।।

हैं विश्व की सृष्टि और स्थिति, प्रलय के कारण आप ही। है सारा जगत् यह आपका, हैं विश्व रूप भी आप ही।।
अनन्त रूप प्रभु आप हैं, शक्ति और गुण स्वीकार करें। सब रूप धर के प्रभु, निज स्वरूप में स्थित रहें।।
निरन्तर बोध को वर्धित कर, हृदय तिमिर प्रभु दूर करें। हे प्रभु मेरा नमस्कार, आपके श्री चरणों में हे।।

हे प्रभु श्री अनन्त आप, जब किसी पर प्रसन्न हों। ब्रह्मा समान दें दिव्य तन, उस सम दीर्घ ही आयु हो।।
अभीष्ट वस्तु अतुलित सम्पद्, स्वर्ग पृथ्वी पाताल दें। योगी की सारी सिद्धियाँ भी, सहज में स्वत: ही प्राप्त भएं।।
धर्म अर्थ और काम रूप, त्रिवर्ग उसे सब प्राप्त हों। इतना ही नहीं ज्ञान भी, स्वत: ही उसको प्राप्त हो।।
फिर शत्रु पर विजय आदि, यह सब तो न्यून हैं कामना। उनके सम्बन्ध में हे प्रभु, अब आपसे हो कहना ही क्या।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् अदिति ने जब, इस विधि प्रभु की करी स्तुति। सब प्राणिन् के हृदय बसी, जो जानें सबकी गति विधि।।
उन सर्वव्याप्त कमल नयन, श्री हरि ने यह बात कही। स्तुति के प्रतिरूप में, श्री हरि ने आश्वासन दी।।
भगवान बोले,
हे देव जननी माँ अदिति, जानूँ मैं तव चित्त की अभिलाषा। शत्रु ने पराजित पुत्र किये, छीनी उनकी सब सम्पदा।।
तुम चाहो अब युद्ध में, तेरे पुत्रों की विजय हो। मदमत्त बली और असुर जी, पुन: विजय श्री उन्हें प्राप्त हो।।
फिर उनके संग श्री हरि की, उपासना में तुम लगी रहो। स्वर्ग लोक में श्री हरि की, कीर्ति ही नित्य गुंजित हो।।
यह भी इच्छा है तुम्हारी, इन्द्र आदि तव पुत्र जो। निज बल वैभव प्राप्त करें, मार करी जब शत्रु को।।

तब दु:खी और रोती हुई, उनकी पत्नियों को तुम देख सको। निज आंखों से देख उन्हें, हृदय तुम्हारा शान्त हो।।

तुम चाहो धन और शक्ति से, समृद्ध पुत्र तुम्हारे हों। ऐश्वर्य कीर्ति जो खो चुके, उनको पुन: वह प्राप्त हों।।
पूर्ववत् ही स्वर्ग पर, अधिकार वह अपना जमा सकें। फिर पहले की भाँति ही, स्वच्छन्द वहाँ विचरा करें।।
किन्तु हे देवी इस समय, नहीं जीते वह जा सकते। ऐसा निश्चय है मेरा बना, हैं असुर इस पल अजेय बने।।
क्योंकि ईश्वर और ब्राह्मण भी, इस पल उनके अनुकूल ही हैं। यदि इस पल युद्ध किया उनसे, लक्षण सारे प्रतिकूल हैं।।

फिर भी देवी तुम्हारे इस, व्रत से हूँ अति प्रसन्न हुआ। इस सम्बन्ध में अब मुझको, कुछ तो सोचना ही होगा।।
क्योंकि मेरी आराधना तो, कभी व्यर्थ न हो पाये। श्रद्धानुसार उसके राही, फल तो निश्चित मिल जाये।।
निज पुत्रों की रक्षा हेतु, विधिवत् पयोव्रत तुमने किया। मम पूजा और स्तुति है की, हे देवी इस व्रत के द्वारा।।
अत: अंश रूप से मैं देवी, प्रवेश करूँगा कश्यप में। पुत्र बनी तुम्हारा मैं, करूँ सन्तन और तेरी रक्षण हे।।

हे देवि पति कश्यप में, मुझे इसी रूप में स्थित देखो। और अनघ उस प्रजापति की, सेवा तुम हर पल करो।।
हे देवी किसी के पूछने पर, भी बात किसी से न कहना। जितना गुह्य यह रहे रहस्य, निश्चित उतना ही सफल होना।।
शुकदेव बोले,
इतना कहकर श्री हरि, वहीं पे अन्तर्धान हुए। मेरे गर्भ से जन्मेंगे प्रभु, अदिति हृदय गद्‌गद् हुए।।
कितना दुर्लभ सौभाग्य यह, यह सोच सोच बलिहारी हुई। ऋषि कश्यप की प्रीति पूर्वक, फिर वह सेवा करने लगी।।
सत्यदर्शी थे श्री कश्यप, नहीं था दृष्टि से छिपा कुछ भी। निज समाधि योग से, सब वृत्तान्त उन जान ली।।
श्री हरि का इक अंश ही, प्रविष्ट है मुझमें हो गया। इस सत्य का श्री कश्यप, को स्वत: सन्धान हुआ।।
जैसे वायु अग्नि का, काष्ठ में आधान करे। ऋषि कश्यप ने तप द्वारा, त्यों ही समाहित चित्त से।।
चिर संचित निज वीर्य का, अदिति में अधान किया। इस विधि श्री हरि का, वरदान सत्य होने लगा।।

ब्रह्मा जी ने जब जाना, श्री हरि स्वयं ही हैं आये। अदिति के श्री गर्भ में, अविनाशी अजम ही पधराये।।
तब श्री हरि के अति पावन, गुह्य नाम वह गाने लगे। उन नामों का गायन कर, वे उनकी स्तुति सुनाने लगे।।
ब्रह्म बोले,
हे प्रभु जय हो आपकी, समग्र कीर्ति के आश्रय आप। अनन्त शक्ति के अधिष्ठान, तेरी चरण में हो मेरा नमस्कार।।
तीनों गुण के नियमन कर्ता, ब्रह्मण्य देव हो नमस्कार। आपके श्री चरणों में प्रभु, प्रणाम है मेरा बार बार।।

पृश्नि पुत्र के रूप में, आपने ही प्रभु जन्म लिया। सब वेदों के ज्ञान को है, अपने अन्दर ही छिपा रखा।।
हैं आप विधाता सबके ही, त्रैलोक हैं आपकी नाभि स्थित। तीनों लोकों से परे आप, नित्य रहें वैकुण्ठ स्थित।।
जीवों के अन्त:करण में, प्रभु सदा रहें विराजमान्। सर्वव्यापक प्रभु विष्णु को, बारम्बार मेरा प्रणाम।।

हे प्रभु आप ही इस जग के, आदि अन्त और मध्य भी हैं। वेदों में प्रभु अनन्त शक्ति, आपका रूप ही वर्णित है।।
ज्यों अपने में पड़ा तिनका, गम्भीर स्रोत बहा ही ले। त्यों ही काल रूप से, जग संचालन है आप करें।।
चराचर प्रजा यह सारी आप, प्रजापतियों का कारण भी। देवादि देव हैं सबके आप, हैं मूल कारण इक आप ही।।
ज्यों जल में डूबनेवाले का, नौका ही एक सहारा है। त्यों स्वर्ग से निष्कासित हुए, देवों का आप सहारा हैं।।

९) वामन भगवान का अवतार

शुकदेव बोले,
श्री ब्रह्मा ने प्रभु की शक्ति, और लीला की जब स्तुति करी। अदिति सम्मुख प्रकटे राजन्, अजम और विनाशी हरि।।
चतुर्भुजा धर प्रभु धारे, पद्म शंख और गदा चक्र। कमल समान ही थे कोमल, और थे अति विशाल नेत्र।।
श्यामल से उनके तन पे, था पीताम्बर शोभायमान। इन सबसे मिलकर बनी, श्री हरि की छवि सौन्दर्य खान।।

मकराकृति कुण्डल की कान्ति, से शोभा बढ़ी मुख मण्डल की। वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह, हाथों की कंगन बोल उठी।।
भुजादण्ड में बाजूबन्द, किरीट भाल पर सोहे था। कमर में करधनी की लड़ियाँ, चरणों में सुन्दर नूपुर था।।
कण्ठ में निज स्वरूप भूत, वनमाला थे धारण किए। चहुँ ओर उसके भंवरे, मधु गुंजार थे कर रहे।।
गले में कौस्तुभ की मणि, श्री हरि के सुशोभित थी। प्रभु की कान्ति से कश्यप के, घर की तिमिर सब दूर हुई।।

सभी दिशायें उस समय, निर्मल मानो हो गईं। नदी सरोवर सबकी ही, जल भी अति स्वच्छ हुई।।
सब प्रजा के हृदय भी तब, आनन्द से परिपूर्ण हुए। सब ऋतुओं के गुण भी, वहाँ अकस्मात् ही प्रकट हुए।।
अन्तरिक्ष स्वर्ग और पृथ्वी, देव द्विज पर्वत के हृदय। सबमें ही उस पल जानो, थे हर्ष के संचार हुए।।

जब श्री हरि ने जन्म लिया, चन्द्र का था श्रावण नक्षत्र। भाद्रपद की शुक्ल पक्षीय, द्वादशी थी आई उस पल।।
अभिजित मुहूर्त में जानो, था जन्म हुआ श्री हरि का। नक्षत्र और हर तारागण, था मंगल सूचित कर रहा।।
विजया द्वादशी तिथि को राजन्, श्री हरि ने अवतार लिया। जन्म के समय में सूर्य भी, आकाश के मध्य में स्थित था।।

प्रभु ने जब अवतार लिया, शंख ढोल मृदंग बजे। डफ नगाड़े भाँति भाँति के, बाजे वहां गूंजन लागे।।
तुरही और दुदुम्भी की, तुमुल ध्वनि होने लगी। उनकी ध्वनि से वातावरण, थी सारी प्रतिध्वनित हुई।।

अप्सरा गण भी मुदित हो, नृत्य तब करने लगी। गन्धर्वों ने भी स्वर छेड़ा, मनु देव मुनि ने स्तुति करी।।
पितर और अग्नि भी मिल, स्तुति प्रभु की गाने लगे। सिद्ध विद्याधर किम्पुरुष, भी नाचने और गाने लगे।।
किन्नर चारण यक्ष राक्षस, पक्षी और मुख्य नाग गण। देवों के अनुचर भी हुए, प्रभु प्रशंसा में मग्न।।
उन सबने मिल अदिति के, आश्रम पे करी पुष्प वर्षा। उस सारे आश्रम को ज्यों, फूलों से ही ढक दिया।।

निज गर्भ से प्रकट हुए, श्री परमात्मन् को जब देखा। अति विस्मित अदिति हुईं, उनको परम आनन्द मिला।।
महर्षि श्री कश्यप ने, श्री हरि का जब दर्शन पाया। निज योगमाया से धारा तन, यह देख के अति विस्मय हुआ।।
जय हो जय हो यूं कहकर, प्रकट हृदय का भाव किया। निज आंगन में प्रभु दर्शन पा, उनके मन में प्रेम उमढ़ आया।।

हैं अव्यक्त और चित् स्वरूप, हे राजन् प्रभु स्वयं ही। परम कान्तिमय आभूषण, आयुधों से सजी उनका तन जो थी।।
कश्यप और अदिति के देखते, ही देखते यह विस्मय हुआ। प्रभु के उस शरीर ने, ब्रह्मचारी का रूप धरा।।
ज्यों कोई नट नाटक में, झट से बदले अपना रूप। प्रभु ने भी बदला निज तन, हैं लीला उनकी अति अद्भुत।।

वामन ब्रह्मचारी रूप में, श्री हरि को ऋषियों ने देखा। उनका हृदय आनन्द के, वेग से परिपूर्ण हुआ।।
प्रजापति श्री कश्यप को, फिर उन्होंने आगे किया। उनके हाथों ही प्रभु का, जातकर्म संस्कार हुआ।।

उपनयन संस्कार जब, श्री हरि का होने लगा। गायत्री अधिष्ठाता सविता ने, गायत्री का उपदेश दिया।।
देवर्षि श्री बृहस्पति, यज्ञोपवीत फिर ले आये। कश्यप ने मेखला देकर के, संस्कार यह पूर्ण करवाये।।

पृथ्वी ने दिया मृगचर्म उन्हें, वनस्वामी चन्द्र ने दिया दण्ड। कौपीन कटि वस्त्र अदिति ने दिये, आकाश के देवों ने दिये छत्र।।
ब्रह्मा ने दिया कमण्डलु, अविनाशी श्री ब्रह्म को। सप्तर्षियों ने दी कुशा उन्हें, रुद्राक्ष माल सरस्वती दियो।।
इस भाँति जब वामन का, उपनयन संस्कार हुआ। तब यक्षराज कुबेर ने, भिक्षापात्र दिया।।
सती शिरोमणि जगज्जननी, स्वयं भगवती उमा ने। भिक्षा देकर श्री हरि को, उनके पात्र थे भर दिये।।

इस विधि जब सबने मिल, वटु वेषधारी प्रभु को पूजा। ब्रह्मर्षियों की उस सभा में, ब्रह्म तेज था उनका चमक उठा।।
तत्पश्चात् वहाँ स्थापित, और प्रज्ज्वलित जो अग्नि थी। कुशासे परिसमूहन और, परिस्तरण कर हरि ने पूजा की।।
और उन्होंने फिर वहाँ, समिधा से पुन: हवन किया। इस विधि यज्ञोपवीत का, संस्कार यह पूर्ण हुआ।।

उसी समय श्री हरि ने सुना, सब सामग्री से जो पूर्ण। भृगुवंशीय द्विज आदेश पा, बलि कर रहे हैं यज्ञ सम्पन्न।।
बहुत से अश्वमेध यज्ञों, की उन्होंने जब बात सुनी। तब प्रभु ने उस स्थान को, निज यात्रा आरम्भ करी।।
स्वत: ही सारी शक्तियाँ, श्री हरि में थीं आन बसीं। उनके चलने के भार से, पृथ्वी पग पग पर झुकने लगी।।

नर्मदा के उत्तर तट पर, अति सुन्दर इक स्थान है। भृगुकच्छ ही जानलो, उस स्थान का नाम है।।
भृगुवंशी ऋत्विज वहीं पर, थे श्रेष्ठ यज्ञ करवा रहे। महाराज बलि से वह, थे अश्वमेध करवा रहे।।
उन लोगों ने दूर से ही, वामन प्रभु को आते देखा। उनको ऐसा ही लगा, ज्यों सूर्य उदय ही हो रहा।।
श्री वामन प्रभु के तेज से, ऋत्विज यजमान सदस्य वहाँ। निस्तेज ही सब हो गए, जो भी थे बैठे वहाँ।।
मन ही मन उन्होंने सोचा, कैसा अचम्भा यह हुआ? सूर्य अग्न या सनत्कुमार, स्वयं है क्या यहाँ आ पहुँचा?

भृगुसुत शुक्राचार्य थे, शिष्यों सहित वहाँ बैठे। भाँति भाँति की कल्पना, वो सब जन थे कर रहे।।
हाथ में छत्र और दण्ड था, और जल से भरा कमण्डलु था। श्री वामन ने अश्वमेध, के मण्डप में प्रवेश किया।।

थी कटि में मूंज की मेखला, और गले में था यज्ञोपवीत। बगल में पकड़ी मृग चर्म, और सीस पे बनी थी जटाजूट।।
इस विधि निज माया से बने, ब्राह्मण वेशी वटु ब्रह्मचारी। प्रवेश किया सभामण्डप में, हुए तेज से उनके हतप्रभ सभी।।
अग्नियों सहित सब के सब ही, उठकर के खड़े हो गए। इसविधि प्रभु वामन के, स्वागत सत्कार उन्होंने किये।।

प्रभु के इस वटु रूप के, अनुकूल ही थे उनके सारे अंग। छोटे छोटे अति दर्शनीय, लगते थे वह अति मनोरम।।
उन्हें देख के बलि हृदय, में अति आनन्द हुआ। श्री वामन के लिये उसने, इक उत्तम आसन दिया।।
फिर स्वागत वाणी से उस, उनका अभिनन्दन किया। उनके चरण पखार कर, श्री वामन की करी पूजा।।
संग रहित पुरुषों के भी, मन को थे प्रभु लुभा रहे। ऐसे मनोहर मन भावन, रूप थे उन श्री हरि ने धरे।।

अति मंगलमय और पावन है, श्री हरि चरणों को धोवन। जीवों के पाप ताप सरे, धुल जाते पीते ही तत्क्षण।।
स्वयं प्रभु शंकर ने भी, था सीस पे धारण इसे किया। आज पुन: वही चरणामृत, धर्मज्ञ बलि ने प्राप्त किया।।
बहुत प्रेम से राजा ने, उसको निज मस्तक पे धरा। इस भाँति चरणामृत का, था उसने सत्कार किया।।

बलि बोले,
स्वागत है हे द्विज कुमार, है आपको मेरा नमस्कार। क्या सेवा करूँ मैं आपकी, हे प्रभु स्वयं दें आज्ञा आप।।
ऐसा लगे ज्यों महर्षिगण, का तप मूर्तिमान हुआ। हे आर्य आपके रूप में, ज्यों सामने मेरे हो वह खड़ा।।
पधारे आप घर में, मेरे पितर भी इससे तृप्त हुए। पावन हुआ अज वंश मेरा, मेरा यज्ञ आज सफल हुआ।।

चरण पखार के आप के, मेरे सभी पाप ज्यों धुल गए। यज्ञ या अग्नि में विधिवत्, आहुति दे जो फल मिले।।
अनायास ही हे द्विजवर, वे सब मुझको मिल गए। तव नन्हें चरण उनके धोवन, से पृथ्वी भी पावन भए।।
हे द्विजश्रेष्ठ ऐसा भासे, ज्यों आप हैं कुछ मुझसे चाहें। गाय स्वर्ण सुसज्जित घर, पावन अन्न पान चाहें।।
विवाह हेतु ब्राह्मण कन्या, या सम्पद से भरपूर गांव। घोड़े हाथी या रथ भी, निश्चित ही लेवें मुझसे मांग।।
शुकदेव बोले,
धर्म से परिपूर्ण थे, अति मधुर वचन राजा बलि के। श्री वामन ने सुना उन्हें, अभिनन्दन कर फिर वचन कहे।।

वामन बोले,
आपने जो भी कहा राजन्, है कुल परम्परा के अनुरूप। है अति मधुर और यशवर्धक, धर्म भाव से परिपूर्ण।।
हो भी क्यों न आप तो, गुरु शुक्राचार्य को प्रणाम करें। परलोक हितकारी धर्म में, भृगु पुत्र तेरे गुरु भएं।।
साथ ही अपने कुल वृद्ध, यशस्वी पितामह की। आज्ञा भी तो मानें आप, परम शान्त प्रह्लाद की।।

आपके वंश में धैर्यहीन, या कृपण कोई कभी नहीं हुआ। ऐसा भी कोई नहीं हुआ, जिसने ब्राह्मण को नहीं दान दिया।।
न ही किसी ने भी वहाँ, निज वचन से मुखड़ा कभी फेरा। इक बार दान का वचन दे, नहीं कोई कभी पीछे हटा।।

याचक की सुनकर पुकार, कोई दान से जो मुख फेर ले। या फिर रणभूमि में जो, शत्रु ललकार को नहीं सुने।।
ऐसा कोई कायर भी, आपके वंश में नहीं हुआ। कुल परम्परा में आपकी, दादा प्रह्लाद का यश है बना।।
निर्मल यश से अपने वह, आकाश में त्यों ही चमक रहे। ज्यों चन्द्रमा की चाँदनी, चहुँ दिशा फैली रहे।।

आपके ही कुल में तो, हिरण्याक्ष जैसा वीर जन्मा। हाथ में गदा उठाये हुए, दिग्विजय हेतु जब वह निकला।।
तब सारी ही धरती का, उसने था परिभ्रमण किया। पर अपने समान वीर, उसको कोई भी नहीं मिला।।
जब प्रभु विष्णु जल में से, धरणी को थे उबार रहे। तब उनके सम्मुख आया वह, बहुत कठिनता से प्रभु जीत सके।।
तत्पश्चात् भी बार बार, जब उसकी शक्ति करते याद। नहीं निज को विजयी वह मानते, उसपे विजय पाने के बाद।।

हिरण्याक्ष अनुज हिरण्यकशिपु, को जब मिला यह समाचार। निज भाई के हन्ता विष्णु, का वध करने का किया विचार।।
क्रोध कर प्रभु विष्णु के, निवास स्थान को वह पहुँचा। प्रतिशोध भाई का लेने को, वैकुण्ठ धाम में जा पहुँचा।।

मायावियों के हैं महागुरु, समय को खूब पहचाने हैं। प्रभु विष्णु तो काल की, गति भी न्यारी जाने हैं।।
जब देखा हिरण्यकशिपु ने, शूल है हाथ में लिया हुआ। काल की न्याईं ही यह तो, उद्यत प्रहार को है हुआ।।
तब उन्होंने विचार किया, ज्यों मृत्यु जीव का पीछा करे। त्यों ही जहाँ भी मैं जाऊँ, यह असुर मेरा ही पीछा करे।।
क्यों न इसके हृदय में, ही प्रवेश मैं पा जाऊँ? मुझे देख न पाये बहिर्मुखी, वहीं पे अब मैं छिप जाऊँ।।

हे असुरशिरोमणि हिरण्यकशिपु, जब था उनपर झपट रहा। भयभीत हुए प्रभु विष्णु ने, सूक्ष्म अपना रूप किया।।
उसके प्राणों के द्वारा, नासिका में से होकर के। कांपते हुए श्री हरि तब, उसके हृदय में जा बैठै।।

हिरण्कशिपु ने उनका लोक, भली भाँति से खोज लिया। किन्तु प्रभु श्री विष्णु का, अता पता कहीं नहीं मिला।।
क्रुद्ध हुआ वह असुरेश, सिंहनाद करने लगा। पृथ्वी स्वर्ग दिशा आकाश, सब जा प्रभु को उसने ढूँढा।।
पर श्री हरि हर असुर को, दिखाई कहीं भी नहीं दिए। वह तो उसके अपने ही, हृदय में बैठे थे छिपे।।

उनको कहीं भी न पाकर, मन ही मन फिर उसने सोचा। सारा जग छान लिया मैंने, मुझको वह कहीं भी नहीं मिला।।
मेरे भ्राता का हन्ता वह, निश्चित उस लोक को प्राप्त हुआ। जहाँ पहुँचकर कभी कोई, वापिस लौट के न आया।।
बस अब वैर भाव की, नहीं उससे कोई आवश्यकता। क्योंकि यह वैर विरोध तो, केवल देह के संग ही रहता।।
अज्ञान ही कारण क्रोध का है, और अहं ही उसे बढ़ा रहा। वहाँ वैर से अब काम क्या, जिसका देह ही नहीं रहा?

हे राजन् तव पिता विरोचन, प्रह्लाद नन्दन थे ब्राह्मण भक्त। ब्राह्मण का वेश धरी आये, देव वहाँ याचक बन कर।।
छल से ही उन देवों ने, आयु उनकी मांग ली। देवों के छल को जाने थे, फिर भी निज आयु दान दी।।
हे राजन् आप भी तो, अनुयायी हैं उस धर्म के ही। शुक्राचार्यादि गृहस्थ, करें जिसका अनुसरण ही।।
आपके पूर्वज प्रह्लाद, और अन्य यशस्वी वीर सभी। पालन करते हैं सदा, उस धर्म आचरण का ही।।

हे दैत्यराज आप तो, मुँहमाँगा वर दे सकें। इस कारण इक क्षुद्र सी, प्रार्थना मेरी भी सुन लें।।
मैं तो बस थोड़ी सी भूमि, ही हूँ आपसे मांग रहा। निज चरण से नापूं तीन पग, बस केवल इतनी मांग रहा।।

हैं सारे जगत के स्वामी आप, और प्रभु अति उदार हैं। नहीं इससे अधिक कुछ भी चाहूँ, बस इतना ही उपकार है।।
विद्वान पुरुष तो बस केवल, उतना दान ही ले सके। जितनी जरूरत हो उसकी, उससे अधिक कुछ नाहीं ले।।
परिग्रह के पाप से, इस विध वह बच जाता है। आवश्यकता से अधिक वह, कभी नहीं कुछ चाहता है।।
बलि बोले,
हे द्विजकुमार तेरी बातें, तो हैं अति वृद्धों जैसी। पर बुद्धि बालक सम ही है, परिपक्वता उसमें नहीं भरी।।
अभी बालक हो आयु में, भला बुरा निज न समझो। इस कारण ही बचकानी सी, बातें तुम यह करते हो।।

त्रिलोकी का हूं एकछत्र, अधिपत मैं जान लो। हूँ देने में समर्थ मैं, यदि एक द्वीप भी मांग लो।।
निज वाणी चातुर्य से, जो प्रसन्न मुझको कर ले। फिर भी तीन पग भूमि ही, केवल मुझसे वह मांगे।।
क्या वह भी अपने को, बुद्धिमान कभी कह सके? जो अपने ही भले बुरे, की भी न पहचान सके?

हे ब्रह्मचारी जो याचक, एक बार मेरे दर आये। पुन: किसी से कुछ भी कभी, मांगने को वह न जाये।।
अत: अपनी आजीविका हेतु, तुम जितनी भी चाहो। उतनी ही भूमि का दान, अब मुझसे तुम मांग लो।।
वामन बोले,
हे राजन् संसार के, सभी मनोहर प्रिय विषय। एक जीव की भी पूर्ण, कामना तृप्त न कर सकें।।
यदि जितेन्द्रिय न हो वह, सन्तोष न उसके हृदय में हो। तब विषयों के मिलने पर भी, तृप्ति उसकी कभी न हो।।

तीन पग भूमि लेकर के, सन्तोष नहीं जो कर सकता। नववर्ष युक्त इक द्वीप भी पा, नहीं तृप्त कभी वह हो सकता।।
क्योंकि उसके मन में तो, पुन: इच्छा बनी रहेगी सदा। सातों द्वीपों को पाकर वह, चाहेगा उनकी सम्पदा।।

सुनी है मैंने हे राजन्, पृथु गय आदि नरेशों की। थे तो वह सारी धरती के, सप्त द्वीप के अधिपति।।
किन्तु उस धन और भोग की, सारी सामग्री पाकर भी। निज तृष्णा पार न पा सके, रहे वह सब अनभिज्ञ ही।।

निज प्रारब्ध से जो भी मिले, उसमें ही जो सन्तुष्ट रहे। वह पुरुष ही तो अपना, जीवन सुख से व्यतीत करे।।
अपनी इन इन्द्रियों पर ही, जिसका वश न हो सके। त्रिलोकी का भी राज्य पा, वह तो सदा ही दु:खी रहे।।
क्योंकि हृदय में उसके सदा, असन्तोष की अग्नि जले। वह ज्वाला उसको सदा, हर पल ही सन्तप्त करे।।

धन और भोगों से जीव तो, सन्तुष्ट कभी न हो पाये। इस कारण ही जन्म मरण, के चक्र में वह पिसता जाये।।
यदृच्छा से जो प्राप्त हो, सन्तुष्ट उसी में जीव रहे। तो सहज में तत्क्षण ही, मुक्त जीव वह हो जाये।।

प्रारब्ध वश स्वत: ही, प्राप्त जो उसको हो जाये। जो ब्राह्मण नित्य ही, उसमें ही संतुष्ट रहे।।
उसके तेज में जान लो, स्वत: ही वृद्धि होती रहे। प्रज्ज्वलित ज्वाला तेज की उसकी, मन्द नहीं कोई कर सके।।
असन्तोषी का जानो, तेज भी त्यों ही शान्त भए। ज्यों जल के गिर जाने से, धधकती ज्वाला शान्त भए।।

निस्संदेह आप तो हैं, दाता मुंह मांगे वर के। हे शिरोमणि दाताओं के, बस मेरी कामना यही है हे।।
केवल तीन पग भूमि ही, आपसे हूँ मैं माँग रहा। बस इतनी भूमि से ही, मेरा सभी काम बन जायेगा।।
धन उतना ही बस चाहिये, जितनी आवश्यकता उसकी हो। उससे अधिक संग्रह से, बस केवल पाप का वर्धन हो।।
शुकदेव बोले,
वामन के ऐसा कहने पर, राजा बलि हंस कर बोले। अच्छी बात है जो तेरी, इच्छा हो तू वह ही ले।।
यूं कह कर प्रभु वामन को, तीन पग भूमि देने का। संकल्प करने के लिये, उन जल का पात्र उठा लिया।।
शुक्राचार्य सर्वज्ञ थे, वह प्रभु की लीला जाने थे। नहीं छिपी थी उनसे बात कोई, त्रै पग का राज वह जाने थे।।
राजा बलि को पृथ्वी के, दान को उद्यत जब देखा। शुक्राचार्य ने अपने प्रिय, शिष्य से फिर यह वचन कहा।।
शुक्राचार्य बोले,
हे वैरोचण जानो तुम, हैं साक्षात् प्रभु विष्णु यह। देवों के काज हित अविनाशी हैं, अदिति गर्भ से प्रकट हुए।।
सब कुछ छीनेंगे यह तेरा, इस अनर्थ को बिन जाने। प्रतिज्ञा दान की कर है ली, बिन इनके सत्य को पहचाने।।
दैत्यों पर यह बहुत बड़ा, अन्याय है होने जा रहा। सावधान हो जाओ तुम, नहीं उचित मैं इसको समझ रहा।।

निज योगमाया से प्रभु ने, स्वयं है रूप यह धरा हुआ। ब्रह्मचारी बनकर के जो, है तेरे द्वार पे आज खड़ा।।
तव राज्य ऐश्वर्य लक्ष्मी, तेज और कीर्ति जग विख्यात। छीन के इन्द्र को दे देंगे, हे राजन् मानो मेरी बात।।
विश्व रूप हैं यह प्रभु, तीनों पग में नापेंगे सब लोक। ऐ मूर्ख निज सर्वस्व ही, उनके चरण में दोगे खो।।
तब कहो तुम्हारे इस, जीवन का वाहन होगा कैसे? सब कुछ दे देने पर इनको, जीवन यापन तुम करोगे कैसे?

विश्व व्यापक यह हरि, इक पग में नापेंगे पृथ्वी। दूजे में स्वर्ग यह नापेंगे, विशालकाय आकाश भी।।

तब कहो तीसरा पग इनका, हे राजन् कहाँ पे जायेगा? इनको जो वचन दिया तूने, उसे पूर्ण कर नहीं पायेगा।।
ऐसे में जानूँ मैं राजन्, प्रतिज्ञा भंग हो जाएगा। इस कारण नरकों का ही, वास तू निश्चित पाएगा।।
अपने ही द्वारा राजन्, की गई इस प्रतिज्ञा को। पूर्ण करने में तुम तो, हो जाओगे असमर्थ अहो।।

विद्वान पुरुष उस दानी की, प्रशंसा कभी न कर सकें। जिसके पास जीवन निर्वाह, हेतु कुछ न शेष बचे।।
जिसका जीवन निर्वाह तो, उचित विधि से होता रहे। जग में वही यज्ञ तप दान, और परोपकार के कर्म करे।।
जो जीव अपने धन को, पांच भाग में बांट दे। धर्म यश धन की वृद्धि, कुछ भोग और स्वजनों के लिये।।
इह लोक और परलोक, दोनों में ही वह सुख पाये। इस जगत् में जीवन पाकर के, वह सफल इसे ही कर जाये।।

हे असुरेश चिन्ता हो गर, प्रतिज्ञा भंग हो जाने की। तो सुनाता हूँ तुमको, श्रुतियों के इस आशय की।।
कहती है श्रुति यह सत्य सुनो, गर कुछ देना स्वीकार करो। वह सत्य असत्य ही बन जाये, गर देने से इनकार करो।।
यह तन तो है एक वृक्ष, और सत्य हैं इसके फल फूल। पर अगर वृक्ष ही नहीं रहे, तो कैसे रहेंगे फल फूल?
नकार ही देना दूजे को, अपनी वस्तु उसे न देना। है वृक्ष का तो मूल यही, अपने संग्रह को बचा रखना।।

ज्यों मूल के न रहने पर, स्वत: वृक्ष सूख जाये। वृक्ष ही टूट के गिर जाये, नहीं डाल पात कोई रह पाये।।
उसी विधि गर धन का दान भी, समय पे न रोका जाये। तो निस्संदेह ही यह जीवन, भी सूखे वृक्ष समान हो जाये।।
हां मैं दूंगा यह वाक्य ही, धन को दूर बहुत ले जाये। इसका उच्चारण जीव को, धन से रिक्त ही कर जाये।।
यही कारण है जो ऐसा कहे, धन से हीन वह हो जाये। अपने लिये उपभोग की, सामग्री नहीं कोई रख पाये।।

इसके विपरीत नहीं दूंगा, इस असत्य में जो बसे। निज धन को सुरक्षित और, पूर्ण ही वह सदा रखे।।
किन्तु ऐसा करना भी तो, नहीं हर समय कर्त्तव्य है। सबको सब ही वस्तु के लिये, न कहना अकर्तव्य है।।
ऐसा करते रहने से, अपयश ही हाथ में आता है। अपकीर्ति में जो जिये, वह मृत समान हो जाता है।।

हास और परिहास में, या स्त्री मोदन के लिये। कन्या आदि की प्रशंसा में, या विवाह उत्सव के लिये।।
निज जीविका के रक्षण हेतु, या प्राण पे संकट आने पे। गौ या ब्राह्मण हित हेतु, या किसीके प्राण रक्षण के लिये।।
असत्य भाषण भी कभी, जीवन में गर करना पड़े। जान लो हे राजन् तुम, निन्दनीय इसे नहीं कहें।।
शुकदेव बोले,
कुल गुरु शुक्राचार्य ने, जब बलि से इस विधि कहा। आदर्श गृहस्थ राजा बलि, क्षण भर को फिर मौन रहा।।
विनयपूर्ण दक्षता से, फिर शुक्राचार्य से उसने कहा। अपने मन का भाव जो, सन्मुख उने जाय धरा।।
बलि बोले,
सत्य आपने कहा प्रभु, है गृहस्थ का वही धर्म। जिससे अर्थ काम यश और, आजीविका में न हो विघ्न।।
किन्तु हे गुरुदेव मैं हूँ, प्रप्रौत्र श्री प्रह्लाद का। एक बार कुछ देने की, प्रतिज्ञा हूँ मैं कर चुका।।
अत: अब धन के लोभ में आ, ठग की भाँति मैं कैसे बनूँ? नहीं दूंगा तुम्हें कुछ भी, इस ब्राह्मण से कैसे कहूँ?

कहा है पृथ्वी ने भी प्रभु, नहीं अधर्म कोई असत् से बड़ा। समर्थ हूँ सब सहने में मैं, असत्मय जीवन भारी बड़ा।।
वह भार तो मुझसे भी, नहीं किसी भाँति सहा जाता। उसका बोझ तो मुझको भी, अति ताड़ित है कर जाता।।

नरक दरिद्रता या दु:ख के, सागर से भी मैं नहीं डरता। निज राज्य नाश या मृत्यु भी, किंचित् विचलित नहीं कर सकता।।
पर ब्राह्मण से प्रतिज्ञा कर, धोखा कैसे उसे दे पाऊँ? आशंका से भी इसकी, हे प्रभु मैं तो डर जाऊँ।।

मृत्यु के पश्चात् प्रभु, जो कुछ जग में छुट जाये। धनादि उन वस्तुन् को दे, न ब्राह्मण तुष्ट किया जाये।।
तो उनके इस त्याग का, लाभ ही कहिये क्या हुआ? छुट जाना तो निश्चित है, पर धर्म नहीं मैं कमा सका।।
दधीचि और शिबि आदि, महा पुरुष जो हैं हुए। लोकहित के हेतु उन, दुस्त्यज्य निज प्राण भी त्यजे।।
फिर पृथ्वी आदि वस्तु को, देने में है संकोच क्या? बहुत से सोच विचार की, है इसमें कहाँ आवश्यकता?

द्विजवर पुरातन युग में तो, बहुत दैत्यों ने पृथ्वी भोगी। पृथ्वी पर उनके समान नहीं, था उनका प्रतिद्वन्द्वी कोई।।
उनके लोक परलोक को तो, काल ने है भक्षण किया। किन्तु यश उनका आज भी, पृथ्वी पे ज्यों का त्यों है बना।।
बहुत जन हैं इस संसार में, जो युद्ध में पीठ न दिखलायें। हंसते हंसते रणक्षेत्र में, प्राणों की बलि चढ़ा जायें।।
किन्तु है अति दुर्लभ उसका, मिलना इस संसार में। सत्पात्र प्राप्त हो जाने पर, श्रद्धा सहित जो दान दे।।

करुणापूर्ण उदार पुरुष, जो हो जग में हे गुरुवर। दुर्गति भी गर कहीं हो उसकी, अपात्र की याचना पूर्ण कर।।
तो दुर्गति भी वह उसके लिये, अतीव शोभा पूर्ण है। फिर आप समान जो ब्रह्मवेता, उस दान में क्या अपूर्ण है?
इसलिये मैं इस ब्रह्मचारी की, अभिलाषा पूर्ण करूँ निश्चित्। वचन जो इसको दे दिया, अब पूर्ति हो उसकी निश्चित्।।

वेद विधान के ज्ञाता आप, हे महामुने हे महा ऋषि। यज्ञ याग आदि द्वारा, आराधना करें प्रभु विष्णु की।।
वह वरदानी प्रभु स्वयं, गर ऐसा रूप धर आ जायें। या अन्य भी चाहे कोई, इस रूप में आ जाये।।
इनकी इच्छा अनुसार ही, इन्हें पृथ्वी दान करूँगा मैं। इक बार वचन जो दे दिया, नहीं पीछे उससे हटूँगा मैं।।

गर मुझ निरापराधी को, अधर्म से बान्ध भी लेंगे यह। अनिष्ट न इनका चाह सकूँ, तब भी कभी मैं भूले से।।
क्योंकि मेरे शत्रु होकर भी, अति भयभीत मन इनका हुआ। इस कारण ही आज इन, ब्राह्मण तन यह है धरा।।

यदि पावन कीर्ति प्रभु हैं यह, निज यश न खोना चाहेंगे। इक बार मांग ली जो वस्तु, उसे निश्चित लेना चाहेंगे।।
मुझे युद्ध में मारके भी, पृथ्वी छीन सके हैं यह। यदि हैं कदाचित् अन्य कोई, होंगे धराशायी बाणों से।।
शुकदेव बोले,
जब देखा शुक्राचार्य ने, मेरा शिष्य श्रद्धारहित हुआ। मेरी ही आज्ञा का यह, उल्लंघन आज है कर रहा।।
दैव की प्रेरणा ऐसी हुई, उन्होंने बलि को शाप दिया। यद्यपि उदार वह सत्य प्रतिज्ञ, इस शाप का पात्र न था।।

शुक्राचार्य ने उसे कहा, ऐ मूर्ख तू है अज्ञानी। मेरी उपेक्षा की तूने, निज को महापण्डित मानी।।
गर्व के कारण तू शीघ्र ही, निज राज्य लक्ष्मी खो देगा।।
महात्मन थे महाराज बलि, वह सत्य से विचलित नहीं हुए। गुरु का शाप यह पाकर भी, उन्होंने अपने निर्णय नहीं बदले।।
वामन भगवान की उन्होंने, फिर विधिवत् पूजा करी। अंजलि में जल भरकर के, त्रै पग भूमि संकल्प करी।।

मुक्तामणि आभूषणों से, थी सुसज्जित विन्ध्यावली। राजा बलि की पत्नी वह, उस पल वहाँ पे आ पहुँची।।
निज हाथों से प्रभु वामन के, चरण पखारने के लिये। जल से भरा इक स्वर्ण कलश, था अपने हाथों में लिये।।

बलि ने अति आनन्द से, सुकोमल युगल चरण धोए। विश्वपावनी चरणामृत, उन अपने सीस चढा लिये ।।

देव गन्धर्व और विद्याधर, आकाश में सिद्ध और चारण। बलि के इस अलौकिक कर्म, की प्रशंसा में थे रत ।।
बहुत आनन्द से उस पर वह, पुष्पों की वर्षा करने लगे। देखी महा आर्जवता उसकी, दिव्य पुष्प बरसने लगे ।।

सहस्त्रों ही दुन्दुभियाँ और, वाद्य अनेकों बजने लगे। गन्धर्व किम्पुरुष और किन्नर, स्तुति गान उनका करने लगे ।।
अहो धन्य यह उदार बली, ऐसा काज कर दिखलाया। अति दुर्लभ जो दूजों के लिये, ऐसा साहस इस दिखलाया ।।
जान बूझकर भी इसने, कैसा उदार है कर्म किया। निज शत्रु को ही इसने, त्रिलोक दान में दे दिया ।।

इसी समय इक अति अद्भुत, विस्मय वहाँ पे हो गया। अनन्त प्रभु का त्रिगुणात्मक, वामन रूप वह बढ़ने लगा ।।
वह इतना बढ़ा पृथ्वी आकाश, दिशाएँ स्वर्ग पाताल समुद्र। पशु पक्षी मनुज देव ऋषि, सब ही हुए उसमें फिर लुप्त ।।
ऋत्विज आचार्यों सदस्यों सहित, बल ने कौतुक यह देखा। सब ऐश्वर्यों के स्वामी, प्रभु का त्रिगुणात्मक तन जो था ।।
पंचभूत इन्द्रिय विषय, अन्त:करण और जीवों संग। इस सम्पूर्ण त्रिगुणमय, जग को देखा उनके ही अंग ।।

विश्वरूप के चरण तल, में रसातल उसने देखी। चरण में थी पृथ्वी उनके, पिण्डिलियों में पर्वत थी ।।
घुटनों में देखे पक्षी गण, जाँघों में देखे मरुद्गण। प्रभु के वस्त्रों में सन्ध्या, गुह्य अंगों में प्रजापति गण ।।
जघन स्थल में अपने सहित, समस्त असुर गण देख लिये। नाभि में देखा आकाश, कोख में सप्त सिन्धु देखे ।।
वक्ष:स्थल में नक्षत्र समूह, का दर्शन उसने किया। इस प्रकार विराट का, दर्शन था उसे हो रहा ।।

हृदय में धर्म और स्तन में, सत्य ऋत वचन देखे। मन में चन्द्र और वक्ष में थीं, लक्ष्मी हाथ में कमल लिये ।।
कण्ठ में सामवेद और सब, शब्द समूह उसे दीख पड़े। इन्द्रादि देव सब भुजा में, कानों में दिशा समूह दीखे ।।
मस्तक में स्वर्ग केशों में मेघ, नासिका में वायु दीख पड़ी। नेत्रों में सूर्य और मुख में, अग्नि भी उनके धधक रही ।।

वाणी में वेद रसना में वरुण, भौहों में विधि निषेध बसे। थे पलकों में दिवस रात्रि, ललाट में क्रोध का वास रहे ।।
विश्व रूप के नीचे के, होंठ में लोभ के दरस हुए। स्पर्श में काम वीर्य में जल, अधर्म पीठ में थे बसे ।।
पद विन्यास में यज्ञ थे, छाया में मृत्यु थी बसी। हंसी में माया और तन के, रोमों में सब औषधियां थीं ।।

नाड़ियों में नदियाँ उनकी, शिलायें थीं नखों में बसीं। उनकी बुद्धि में ब्रह्मा जी, देव और ऋषिगण दीख पड़ी ।।
प्रभु की इन्द्रियों और तन में, यूं असुर वीरवर श्री बलि ने। सभी चराचर प्राणिन् के, दर्शन इस विध कर लिये ।।

सर्वात्मा श्री भगवान में, पूर्ण जगत् को जब देखा। भयभीत सभी फिर दैत्य हुए, और गए बहुत घबरा ।।
तत्काल प्रभु के पास फिर, हुआ सुदर्शन चक्र प्रकट। असह्य था तेज उसका, और भयंकर मेघ सम ।।
टंकार करता हुआ वहां, शार्ङ्गधनुष फिर आ प्रकटा। पाञ्चजन्य शंख का भी, बादल समान गहन स्वर था ।।
प्रभु विष्णु की कौमोदकी, गदा भी थी अति वेगवती। शत चन्द्र चिन्हों से उनकी, ढाल अति सुसज्जित थी ।।
विद्याधर नाम की, श्री हरि की तलवार थी। अक्षय बाणों से भरी, दो तरकश भी साथ थी ।।

लोकपालों के सहित, सुनन्दादि उनके पार्षण गण। उपस्थित हुए प्रभु सेवा में, उनके अपने ही वह जन ।।
अति सुन्दर शोभा प्रभु की, उस पल वहाँ थी बन रही। किरीट बाल पे उनके था, बाहों में बाजूबन्द सजी ।।

कानों में मकराकृति कुण्डल, वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह। कमर में मेखला सजी हुई, कौस्तुभ मणि थी कण्ठ धारण।।
श्यामल कान्धे पर उनके, था पीताम्बर लहरा रहा। इस रूप छवि प्रभु की न्यारी, का वर्णन कौन है कर सकता?

पांच प्रकार के पुष्पों की, माला थे प्रभु पहने हुए। मधु लोभी भंवरे जिसपर, अपनी गुंजार थे कर रहे।।
प्रभु ने अपने इक पग से ही, सारी पृथ्वी बलि की नापी। तन से आकाश और भुजाओं, से दिशा सब घेर ली।।
दूजे पग से श्री हरि ने, स्वर्ग को भी नाप लिया। तीजा पग रखने के लिये, नहीं स्थान तनिक बलि का बचा।।
प्रभु का वह दूजा पग ही, ऊपर को था जब जा रहा। महर्लोक जनलोक और, तप लोक से भी ऊपर गया।।
सत्य लोक में दूसरा पग, इस विध हरि का पहुँच गया। वामन रूप में श्री हरि ने, ऐसा था कौतुक किया।।
शुकदेव बोले,
चरण कमल श्री हरि का, पहुँचा सत्य लोक तक। नखचन्द्र की आभा ने उनकी, निस्तेज दिया सत्यलोक कर।।
ब्रह्मा जी भी स्वयं उनके, प्रकाश में ही डूब गए। मरीचि आदि ऋषिगण और, सनकादि संग ब्रह्मचारी लिये।।
बड़े बड़े योगिन् के संग, प्रभु चरण कमल पखारे उन। स्वागत करके श्री हरि का, निज धन्य भाग्य सराहे उन।।

वेद उपवेद यम नियम, तर्क और इतिहास सब। वेदांग पुराण संहिताएँ, ब्रह्मलोक में मूर्तिमान जो सब।।
जिन्होंने योग की वायु से, प्रज्ज्वलित करी निज ज्ञान अग्न। कर्मों को भस्मीभूत किया, उसमें दें आहुति जिन लोगोंने।।
वे सारे महात्मा भी, थे वहाँ उपस्थित हो रहे। प्रभु के चरण कमल की सब, वन्दना मिल के कर रहे।।
इन चरण कमल के सिमरन् की, है यह महिमा अति न्यारी। कर्मों से जो प्राप्त न हो, उस ब्रह्म धाम में पहुँचे सभी।।

अति पावन है कीर्ति, प्रजापति श्री ब्रह्मा की। श्री विष्णु के नाभि कमल, से उनकी प्राकट्य हुई।।
सुस्वागत करके फिर उन्होंने, उठे हुए प्रभु पाद का। अर्ध्य पाद्य से पूजकर, फिर प्रक्षालन उसका किया।।
पूजा करके अति प्रेम से, प्रभु भक्ति वह करने लगे। स्तुति गान में प्रभु की फिर, प्रेम और भक्ति के भाव बहे।।

ब्रह्मा के कमण्डलु का वह जल, जिससे पाखारे प्रभु चरण। पवित्र हुआ हरि चरण को छू, और गंगा रूप किया धारण।।
आकाश मार्ग से पृथ्वी पर, जो गंगा है बह जाती। तीनों लोक को राह में, यह पावन है करती जाती।।
इन श्री गंगा की महिमा, कोई भला कैसे कह पाये? प्रभु की उज्ज्वल कीर्ति ही, ज्यों मूर्तिमान् होकर आये।।

जब श्री हरि ने विश्व रूप को, कुछ छोटा ही कर लिया। अपनी ही विभूतियों का, कुछ उन्होंने संवरण किया।।
तब ब्रह्मादि सब लोकपाल, अनुचरों सहित वहाँ आने लगे। प्रभु के श्री चरणों में वे, अपनी भेंट चढ़ाने लगे।।

जल उपहार माला और दिव्य, सुगन्ध थे हाथ में लिये हुए। बहुत आदर सम्मान सहित, प्रभु चरण में उन धरे।।
अंग राग और धूप दीप, खील अक्षत फल अंकुर। यह सब ले महिमा स्रोत कहे, प्रभु प्रभाव से थे जो युक्त।।
जयघोष नृत्य गायन वादन, शंख दुन्दुभि नाद हुए। तुमुल स्वरों से यह सब थे, प्रभु आराधन मग्न हुए।।
ऋक्षराज जाम्बवान् तब, वायु रस तीव्र गति थे लिये। दिशा दिशा में भेरी बजा, प्रभु विजय के मंगल घोष किये।।

दैत्यों ने देखा वामन ने, त्रैपद पृथ्वी क्या मांग ली। इसी बहाने बलि से उसने, सारी धरती ही छीन ली।।
मन ही मन वे सोचने लागे, हैं हमारे स्वामी अभी दीक्षित। न तो मुख से कुछ बोलेंगे, न होंगे तनिक भी वह विचलित।।
इस कारण बहुत चिढ़कर वे, आपस में बातें करने लगे। बात बात में दैत्य सब, फिर प्रभु पे घातें करने लगे।।

दैत्य बोले
अरे यह तो कोई ब्राह्मण नहीं, यह तो है विष्णु मायावी। ब्राह्मण रूप में छिपा हुआ, देवों का ही यह हितकारी।।
जब हमारे स्वामी बलि, दीक्षित यज्ञ में हो गए। किसी प्रकार का दण्ड भी, देने से वह उपरत थे।।
इस शत्रु ने पहले तो, ब्रह्मचारी वेश बना लिया। याचना करके छलिया ने, सर्वस्व हमारा छीन लिया।।
यूं तो हमारे स्वामी सदा, ही रहें सत्य में निष्ठ। किन्तु जब यज्ञ में दीक्षित हों, इस बात पे हो ध्यान विशिष्ठ।।
ब्राह्मण भक्त उदार हैं वह, और हैं दयावान् भी बहुत। इसलिये असत्य वचन का, न आश्रय लें वह कदाचित्।।

हम सबका ऐसी अवस्था में, धर्म एक ही बनता है। जैसे तैसे भी शत्रु का, हनन उचित ही लगता है।।
इसी से स्वामी बलि की, सेवा भी हो जायेगी। ऐसा सोच अनुचर असुरों ने, निज हथियार उठा लिये।।
शुकदेव बोले,
नहीं बलि की थी ऐसी इच्छा, फिर भी सब दैत्य तो क्रोधित थे। शूल पट्टिश आदि लेकर, वामन को मारने को वह दौडे।।
प्रभु विष्णु के पार्षदों ने, जब इसका दर्शन किया। दैत्यों के सेनापतियों को, प्रभु और दौड़ते जब देखा।।
तब हंसते हंसते उन सबने, निज अस्त्र शस्त्र उठा लिये। इस विधि फिर असुरों के, प्रभु पे प्रहार उन्होंने रोके।।

नन्द सुनन्द जय विजय, प्रबल बल कुमुद कुमुदाक्ष। विष्वक्सेन गरुड जयन्त, श्रुतदेव पुष्पदन्त और सात्वत।।
प्रभु का इक इक पार्षद यह, है बल दस हजार हाथी का लिये। सब मिलकर अब असुरों की, सेना संहार करने लगे।।

राजा बलि ने जब देखा, प्रभु विष्णु के यह पार्षद सब। मेरी सेना के वध के लिए, ही यह हैं हुए उद्यत।।
और वह भी क्रोध से भर कर के, लड़ने को हुए तैयार हैं। इस वैर भाव का तो कहीं, न ही आर न पार है।।
तब शुक्राचार्य के शाप की, याद उनको आ गई। और असुरों को उन्होंने, युद्ध करने से निषेध की।।

विप्रचिति राहु नेमि आदि, को सम्बोधन किया। सब असुरों को लक्ष्य कर, राजा बलि ने यूं कहा।।
भाइयो मेरी बात सुनो, मत लड़ो और अब लौट चलो। यह समय नहीं अनुकूल हमारा, समय का अब विचार करो।।
काल ही तो सब जीवों को, सुख दु:ख देने में समर्थ है। यदि उसे दबाना चाहे कोई, तो सदा रहे असमर्थ है।

पूर्व में जो काल प्रभु, हुए हमारी उन्नति के कारण। देवों की अवनति के, बने स्वयं थे वह कारण।।
उन्हीं काल प्रभु की आज, गति विपरीत है हो रही। देवों के उदय का समय आया, और होगी हमारी अवनति।।
बल बुद्धि मन्त्री दुर्ग मन्त्र, औषधि साम आदि उपाय। इनमें से कोई या सब मिलकर, नहीं काल पे पा सकते हैं विजय।।

दैवयोग से दैव जब, अनुकूल तुम्हारे था हुआ। प्रभु के इन पार्षदों को, अनेकों बार तुमने जीता।।
पर देखो आज वही युद्ध में, विजयी हैं हमपर हो रहे। इस कारण ही सिंहनाद, रण क्षेत्र में कर हैं रहे।।

जिस पल कभी भी दैव यह, अनुकूल पुन: हमारे होगा। तो ही जीत पायेंगे हम, सौभाग्य उदय तब ही होगा।।
इस कारण हे दैत्य गण, प्रतीक्षा करो उस काल की। कार्य सिद्धि के अनुकूल, काल भी निश्चित आयेगी।।
शुकदेव बोले,
दानव दैत्यों के सेनापति, प्रभु पार्षदों से हारे। निज स्वामी बलि की बात सुन, रसातल को वह चले गए।।

उस दिन अश्वमेध यज्ञ में, सोमपान था होने को। राजा बलि के यज्ञों का, समाधान था होने को।।
अपने स्वामी श्री हरि के, हदय की बात ली उसने जान। श्री गरुड़ ने बलि को, वरुण पाश में लिया बान्ध।।

जब सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु ने, बलि को इस विध बन्धवाया। तब पृथ्वी आकाश दिशा, सब ओर ही हाहाकर मचा।।
यद्यपि राजा बलि तो थे, वरुण पाश में बन्धे हुए। अपनी सारी सम्पद् से भी, थे हाथ वह धो चुके।।
फिर भी उनकी बुद्धि स्थिर, निश्चयात्मिका थी बनी। उनके उदार यश की गाथा, थी चहुँ दिशा में गूंज रही।।
उस समय श्री हरि ने राजन्, राजा बलि से यूं कहा। हे असुरेश तुमने पृथ्वी के, त्रै पग का था वचन दिया।।
दो पग में नापी सब, अब तीसरा पग कहाँ धरूं बता। अन्यथा तेरा दिया वचन, झूठा ही हो जायेगा।।
जहां तक भी सूर्य की, है ऊष्णता पहुँच पाती। नक्षत्रों और चन्द्रमा की, किरणें भी जहाँ तक जातीं।।
बादल भी दूर दूर जाकर, जहाँ पे थी जल बरसाती। वहाँ तक सारी पृथ्वी, तेरे ही अधिकार में थी।।

तेरे देखते देखते ही, इक पग से नापा भूलोक। तन से आकाश और दिशा, और दूजे पग से स्वर्ग लोक।।
यह सब ही नाप लिये मैंने, तेरा सब कुछ मेरा हुआ। तेरी आंखों के सामने ही, तेरा सब कुछ मैंने लिया।।
फिर भी प्रतिज्ञा जो थी करी, अपूर्ण ही वह रह गई। प्रतिज्ञा भंग के कारण अब, नरकों में वास तेरी होगी।।
तव गुरु की तो इस विषय में, पहले ही है यह सम्मत्ति। इस कारण अब नरकों में, जाओ प्रवेश तू करो सही।।

जो याचक को देने की, प्रतिज्ञा तो पहले कर ले। किन्तु समय के आने पर, जो पूरा उसे न कर सके।।
इस प्रकार वह मुकर के, धोखा ही उसको दे दे। मनोरथ ऐसे जीव के सब, व्यर्थ ही हैं हो जाते।।
स्वर्ग की बात तो दूर रही, उसे नरक में गिरना पड़ता है। अपने इस पाप के कारण तो, च्युत उसको होना पड़ता है।।

था इस बात का मान तुम्हें, हूँ मैं अतीव धनी दानी। मुझको तूने कहा दूंगा, प्रतिज्ञा कर फिर छल करी।।
अब कुछ वर्षों तक राजन्, इस झूठ का फल तुम भोग लो। नरकों में तुम्हें जाना होगा, अब वहाँ तुम जाय गिरो।।
शुकदेव बोले,
इस विधि श्री हरि ने फिर, बलि का तिरस्कार किया। असुरेश को बहुत भाँति, विचलित करने का यत्न किया।।
तनिक भी विचलित हुए न वह, धैर्य स्थिर उनका रहा। धीरता पूर्वक फिर उन्होंने, श्री हरि को यह वचन कहा।।
बलि बोले,
हैं देवों के आराध्य आप, हैं पावन कीर्ति आप हरे। क्या मेरे वचन को हे प्रभो, असत्य आप हैं जान रहे?
नहीं हो ऐसा कभी प्रभो, मैं सत्य कर के दिखाता हूँ। नहीं छल होगा आपसे, निश्चित यह बतलाता हूँ।।
कृपा कर हे प्रभु आप, यह पग नीचे अब कीजिये। सीस मेरा है चरण में, उसपे ही अब धर दीजिये।।

इक कण भी धन का नहीं रहे, अथवा घोर दण्ड दें आप। इससे भी भय नहीं मुझे प्रभु, बस एको है मेरा सन्ताप।।
यदि कोई भय है मुझे, तो बस केवल अपकीर्ति से। अपकीर्ति सहने के लिये, मुझमें शक्ति नहीं है हे।।
अपने पूज्य गुरु जन से, तो जो भी दण्ड कभी मिल जाये। वह तो है अति वांछनीय, जीव मात्र के ही लिये।।
क्योंकि वैसा दण्ड माता-पिता, भाइ सुहृद् न दे पायें। जिसे अपना कहें उसे मोह वश, दण्ड देने से घबरायें।।

हे प्रभु आप तो निश्चित ही, हैं हम असुरों के शुभ कांक्षी। निहित रूप में दे शिक्षा, हैं आप हमारे गुरुवर ही।।

धन कुलीनता बल आदि के, मद में जब हम हों अन्धे। वे सब वस्तु छीन के प्रभु जी, नेत्र दान हमें आप ही दें।।
उसकी प्रभु मैं क्या कहूँ, हमारा उपकार जो आप करें। अनन्य योगी नित्य ध्यान करी, जिस दुर्लभ गति को प्राप्त करें।।
दृढ़ वैर करी बहुत से असुर, सिद्धि वह ही पाते हैं। दुर्लभ है जो योगिन के लिये, वह वैर के राही कुमाते हैं।।

हैं जिनकी महिमा अपरम्पार, और लीला जिनकी अनन्त है। वह ही आप हे प्रभु मेरे, दे रहे आज मुझे दण्ड हैं।।
न तो लज्जा हुई है इसकी, और न ही कोई है व्यथा। वरुण पाश में बान्ध के, उपकार आपने है किया।।

मेरे दादा प्रह्लाद की, कीर्ति तो है जग विख्यात। आपके महाभक्तों में ही, श्रेष्ठ हैं जाने जाते तात।।
उनके पिता हिरण्कशिपु का, आपसे कठिन विरोध था। इस कारण निज पुत्र को उन, अनेकों विधि ताड़ित किया।।
किन्तु वह तो आपके, ही परायण रहे सदा। पूर्ण जीवन आप पर, ही न्यौछावर कर दिया।।

यह निश्चय था उनका प्रभु, इस तन से क्या करना है? इसने तो निश्चित हमसे, इक दिन अन्त बिछुड़ना है।।
धन सम्पद् हरने को जो, डाकूवत् हैं स्वजन बने। क्या स्वार्थ साधनेवाले हैं, उन परिपन्थिन से कोई मेरे?
पत्नी का भी लाभ क्या, नित्य जन्म मरण में भरमाये? मृत्यु ही अन्त जब है सबका, तो घर का मोह कहाँ ले जाये?
इन सब में उलझना तो, अपनी आयु खो देना है। अनमोल जो यह जीवन मिला, उसको व्यर्थ कर देना है।।

पितामह प्रह्लाद तो, जाने थे इस सत्य को। लौकिक दृष्टि से तो प्रभु, उनके आप शत्रु ही हो।।
उनके भाई बान्धव सब, नष्ट करेंगे आप ही। यह जान कर उन्होंने तो, आपकी शरण ही थी गही।।
भय रहित और अविनाशी, चरण कमल हैं आपके। विवेकशील उदार थे वह, संसार से परम विरक्त भए।।
इस कारण ही हे प्रभु, वह सन्त शिरोमणि स्वयं हुए। आपके श्री चरण ही तो, केवल उनका इक आश्रय थे।।

उस दृष्टि से देखूँ यदि, हैं आप मेरे भी शत्रु ही। विधाता ने बलात् ही, ऐश्वर्य लक्ष्मी सब छीनी।।
उस सबसे मुझे अलग कर, आपनी शरण में लाय धरा। सच जानूं यह तो प्रभु, मुझपे हुई अहैतु कृपा।।
ऐश्वर्य लक्ष्मी के कारण, यह बुद्धि जड़ हो जाती है। है अनृत मृत्युधर्मा यह, जीवन समझ न पाती है।।
शुकदेव बोले,
राजा बलि हरि चरण में यूँ, अभी निवेदन कर थे रहे। नव चन्द्रोदय के समान, प्रभु प्रिय प्रह्लाद वहाँ आ पहुँचे।।
राजा बलि ने तब देखा, हैं पितामह श्री सम्पन्न। कोमल नेत्र कमल दल सम, और हैं लम्बी भुजादण्ड।।

सुन्दर श्यामल विशाल तन पे, किये हैं धारण पीताम्बर। बलि स्वयं तो इस समय, थे वरुण पाश में बद्ध।।
श्री प्रह्लाद का दर्शन कर, न हुआ पूर्ववत् ही वन्दन। आंखों में आंसू भर आये, थे लज्जा से झुके नयन।।
केवल फिर सीस झुकाकर ही, उनको नमस्कार किया। इस विधि राजा बलि ने फिर, दादा का सत्कार किया।।

श्री प्रह्लाद ने देखा तब, हैं प्रभु विराजमान वहाँ। सुनन्द नन्दादि पार्षद सब, हैं सेवा में खड़े वहाँ।।
प्रेम के उद्रेक से, रोमांच प्रह्लाद को हो गया। प्रेमाश्रु नयनों में भरे, तन भी पुलकित हो गया।।
हृदय आनन्द से पूर्ण भया, स्वामी सम्मुख उनका सीस झुका। पृथ्वी पर फिर लोट कर, साष्टांग प्रणाम किया।।
इस विधि निज स्वामी के, चरणों में वह आन पड़े। निज सर्वस्व ही स्वामी के, चरणों में उन जाय धरे।।

प्रह्लाद बोले,
आपने ही ऐश्वर्यभरा, इन्द्र पद बलि को था दिया। आज आपने स्वयं प्रभु, ऐश्वर्य वह सारा छीन लिया।।
ज्यों सुन्दर देना आपका है, उतना ही सुन्दर लेना भी। मैं जानूँ आपने तो इसपर, है अतीव ही कृपा करी।।
मोहितकर राज्य लक्ष्मी, से सम्बन्ध विच्छेद किया। इस विधि इसको प्रभु, निज चरणन् में लाय धरा।।

लक्ष्मी के मद से तो प्रभु, विद्वान भी मोहित हो जायें। उसके रहते निज वास्तविक, स्वरूप जान कोई न पाते है।।
अत: उस लक्ष्मी को छीनकर, उपकार बहुत करने वाले। महेश्वर सारे जगत् के, सबके हृदय में विराज रहे।।
सबके परम साक्षी हैं आप, श्री नारायण मेरा नमस्कार। आपके पावन चरणों में, नमस्कार मेरा हो स्वीकार।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री प्रह्लाद तो, अंजलि बान्धे थे खड़े। ब्रह्मा श्री वामन को थे, उन सामने कुछ कहना चाहते।।
किन्तु राजा बलि की पत्नी, साध्वी विन्ध्यावलि आई। निज पति को बन्धा हुआ देख, वह तो बहुत ही घबराई।।
प्रणाम प्रभु के चरण में किया, और दोनों कर जोड़ लिये। अपना सिर नीचा किये, फिर प्रभु से उसने वचन कहे।।
विन्ध्यावलि बोली,
हे प्रभु निज क्रीड़ा से ही, अपने सारा जगत् रचा। केवल दुर्बुद्धि ही तो, निज को है स्वामी मानता।।
आप ही हैं इसके कर्ता, संग भर्ता और संहर्ता भी। आपकी माया से मोहित, मिथ्यात्व में समझें कर्ता हम ही।।
वह निर्लज्ज आपको, समर्पण क्या कभी कर सकें? चोरी करी जो आपकी, वही आपके चरण में धर सकें।।

जीवन दाता सब प्राणियों के, स्वामी सबके प्रभु जगत्रूप। देवादिदेव इसे छोड़ दें, इसका तो हरा सर्वस्व रूप।।
अत: यह अब तो दण्ड का, नहीं पात्र रहा है हे स्वामी। इसने तो सारी निज सम्पद्, आप पे ही है वार दी।।
इसने सारी भूमि अपनी, और पुण्यों से उपार्जित स्वर्ग। सर्वस्व अपना आत्म तक, आपके चरण में दिया है धर।।
ऐसा करते हुए भी प्रभु, इसकी बुद्धि तो स्थिर रही। धैर्य से च्युत यह नहीं हुआ, नहीं इक पल को इसने शान्ति त्यजी।।

जो सारी कृपणता छोड़ कर, सच्चे हृदय से उपासे प्रभु। चरणों में जल का अर्ध्य दे, दुर्वादल से उन्हें पूजे प्रभु।।
सच्चे मन से जो पूजा करे, उत्तम गति वह पाता है। आपके चरण की प्रीति का, फल कभी व्यर्थ न जाता है।।
बलि ने तो धैर्य स्थिरता और, प्रसन्नता से यह काम किया। आपके श्री चरणों में उस, त्रिलोकी का है दान दिया।।
हे प्रभु यह तो कभी, दु:ख का भागी कैसे हो सके? आपके चरण की पूजा का, कभी फल विपरीत न हो से।।
भगवान बोले,
जिस पर प्रसन्न होकर मैं, श्री ब्रह्मा जी अनुकम्पा करूँ। सत्य वचन मेरा जान लो, उसका सब धन छीन लूँ।।
क्योंकि धन के मद से जीव, मतवाला जब हो जाता है। तब सबका और मेरा भी, तिरस्कार वह करता जाता है।।
निज कर्मन् से विवश हुआ, वह भिन्न भिन्न योनि पाये। अति कृपा जब हो मेरी, तब जीव मनुज का तन पाये।।

मनुष्य योनि को पाकर के, कुलीनता कर्म अवस्था रूप। विद्या ऐश्वर्य और धन आदि, के घमण्ड से जाये छूट।।
तो यह निश्चित जान लें, कृपा हुई अतीव उसपे। इस कारण इनके मद ने, नहीं किया अभी अन्ध उसे।।
कुलीनता आदि बहुत से, कारण हैं इस जग में ऐसे। जो जड़ता और अभिमान को, जीव में उत्पन्न हैं करते।।

जीव को कल्याण के सब, साधनों से यह विहीन करें। किन्तु मेरे शरणागत को, यह मोहित न कर सकें।।

दानव और दैत्यों के ही, वंशों का है यह अग्रणी। इस बलि के कारण ही, है दोनों ही कीर्ति बढ़ी।।
अति दुस्तर माया को इस, महाबली ने जीत लिया। सब दु:ख पाकर भी देखो, यह तो मोहित नहीं हुआ।।

धन छीन लिया इसका मैंने, वंचित राजपद से किया। भाँति भाँति आक्षेप किये, शत्रुवत् इसको बान्ध लिया।।
भाई बन्धु सब छोड़ गए, सब यातना इसको सहनी पड़ी। गुरुदेव ने भी डांटा डपटा, और शाप भी इसको दी।।
किन्तु इस दृढ़व्रती ने तो, अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ी। छलपूर्ण बातें करके, मैंने भी इसकी परीक्षा ली।।
छल रखकर मन में मैंने, इसे धर्म की भी उपदेश करी। इस सत्यवादी को यह सब भी, न धर्म से विचलित कर सकी।।

अत: श्री ब्रह्मा जानें आप, है इसको वह स्थान दिया। बड़े-बड़े देवों के लिये, भी अति दुर्लभ है जो कहा।।
सावर्णि मन्वन्तर में, यह मेरा परम भक्त होगा। उस मन्वन्तर का जानो, यह बलि ही तो इन्द्र होगा।।

विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, सुतल में तब तक यह रहे। वहां के वासी जन मेरी, कृपा दृष्टि अनुभव करें।।,
तन या मन के रोग कोई, उनको नहीं सता पाये। श्रान्ति तन्द्रा या बाह्य भीतरी, शत्रु नहीं हरा पायें।।
किसी प्रकार के विघ्न भी, नहीं उसके राज में कभी आयें। मेरी कृपा की ही आगोश में, यह अपने को सदा पाये।।

फिर राजा बलि को सम्बोधित, श्री भगवान ने स्वयं किया। अति धैर्य और प्रेम से, उसको फिर यह वचन कहा।।
कल्याण हो तेरा हे इन्द्रसेन, निज भाई बान्धव साथ ले। उस सुतल लोक में जाओ तुम, जिसे स्वर्ग के देवता भी चाहें।।
महालोकपाल भी अब तुम्हें, पराजित न कर पायेंगे। दूजों की तो बात ही क्या, वह भी दूर से ही घबरायेंगे।।
जो दैत्य भी कभी राजन्, आज्ञा न मानेंगे तेरी। मेरे चक्र उनके टुकड़े, कर देगा इक क्षण में ही।।

तेरी और तेरे अनुचरों की, तेरे भोग सामग्री की भी मैं। सब प्रकार के विघ्नों से, सदा रक्षा करूँगा मैं।।
हे वीर बलि मुझे सदा सर्वदा, अपने निकट ही पाओगे। जब भी याद करोगे मुझे, तुरन्त सामने पाओगे।।
दानव दैत्यों के मेल से, जो असुर भाव होगा तेरा। मेरे प्रभाव से जान तू ले, तुरन्त नष्ट हो जायेगा।।
शुकदेव बोले,
सनातन पुरुष श्री हरि ने, जब बलि से यह वचन कहे। तो साधुओं के भी परम पूज्य, दैत्य के नयन में अश्रु भरे।।
प्रेम के उद्रेक से, गद्गद् हुआ कण्ठ उसका। हाथ जोड़ भरार्य गले से, प्रभु से उस यह वचन कहा।।
बलि बोले,
हे प्रभु मैंने तो आपको, विधिवत् प्रणाम भी नहीं किया। आपके श्री चरणों में मेरी, प्रणाम की मात्र थी चेष्टा।।
उससे ही हे करुणानिधे, आपने मुझे यह फल दिया। जो आपके शरणागत, भक्तों को प्राप्त है हो जाता।।
महालोकपाल देवों और, दिग्गजों पर कृपा जो नहीं करें। मुझ सम निकृष्ट असुर पर, हे प्रभु सहज में ही कर दें।।
शुकदेव बोले,
ऐसा कहते ही राजन्, हुए वरुण पाश से बलि मुक्त। श्री हरि ब्रह्मा और शंकर को, प्रणाम किया उसने उचित।।
तत्पश्चात अति मुदित हो, सुतल लोक की यात्रा की। असुर और बन्धु बान्धव ने, इस यात्रा में साथ दी।।

इस भाँति श्री हरि ने, बलि से स्वर्ग का राज्य लिया। इन्द्र को वापिस दिया उसे, अदिति की पूर्ण की मुंशा।।
स्वयं उपेन्द्र बन करके वह, शासन जगत् का करने लगे। वामन अवतार का रूप धरी, श्री हरि ने यह कौतुक किये।।

श्री प्रह्लाद ने जब देखा, मम पौत्र राजा बलि। बन्धन से है छूट गया, और प्रभु कृपा उसे प्राप्त हुई।।
तो उनके हृदय में पुन:, भक्ति भाव उमड़ आया। प्रभु की स्तुति का गान तब, उनके हृदय से बह निकला।।
प्रह्लाद बोले,
यह कृपा प्रसाद प्रभु आपका, जो हम दैत्यों को प्राप्त हुआ। यह तो कभी ब्रह्मा शंकर, और लक्ष्मी जी को भी न मिला।।
दूजों की तो बात ही क्या, चरणों में हुए न्यौछावर हम। विश्ववन्दनीय ब्रह्मा भी करें, जिन चरणों का सदा वन्दन।।
वही आप सबके स्वामी, हम असुरों के हुए दुर्गपाल। अहैतुकी करुणा आपकी, देख के हम सब हुए निहाल।।

शरणागत वत्सल प्रभु आप, ब्रह्मा आदि तव सेवा करें। आपके ही श्री चरण कमल, के मरकन्द का पान करें।।
इस कारण वह और लोकपाल, अनेक विभूति करें प्राप्त। सृष्टि रचना के कर्म की, शक्ति भी वह करें प्राप्त।।
हम तो जन्म से ही खल हैं, और हैं कुमार्ग गामी। आपकी यह अनुग्रह दृष्टि, कैसे हमपर अनायास हुई?
जो हम असुरों की रक्षा को, द्वारपाल की रूप धरी। हे प्रभु हमपर आपकी, यह कृपा अकारण ही बरसी।।

निज योग माया से खेल खेल में, त्रिभुवन की रचना कर दी। आप ही हैं सर्वज्ञ प्रभु, सर्वात्मा समदर्शी।।
फिर भी लीला यह आपकी, अति विलक्षण जान पड़े। आपका स्वभाव तो, है कल्प वृक्ष के समान हे।।
आप प्रभु निज भक्तों से, अहैतुकी प्रेम ही सदा करें। इस कारण उपासकों से, पक्षपात सा कभी दीखे।।
और प्रभु इस जगत् में, विमुख आपसे जो रहें। उनके प्रति तो कभी-कभी, निर्दयता भी दीख पड़े।।
भगवान बोले,
कल्याण हो वत्स तुम्हारा सदा, जाओ तुम भी अब सुतल में। आनन्द पूर्वक रहो वहाँ, निज पौत्र बलि के संग में।।
और निज जाति के सब, बन्धु बान्धव भी सुखी करो। इस विधि से वत्स तुम, कल्याण को सदा ही प्राप्त करो।।

वहाँ नित्य देखोगे खड़ा, मुझ गदा हाथ में लिये हुए। मम दर्शन से तुम नित्य ही, परमानन्द को पाओगे।।
मुझमें ही रहोगे मग्न तुम, होंगे सब कर्म बन्ध तव नष्ट। इस विधि हे वत्स तुम, मुझको ही फिर करोगे प्राप्त।।
शुकदेव बोले,
सब दैत्य सेना के स्वामी, विशुद्ध बुद्धि प्रह्लाद जी। जो आज्ञा कह कर जोड़ी, प्रभु आदेश फिर सीस धरी।।
फिर बलि सहित आदि पुरुष, श्री हरि की प्रदक्षिणा की। प्रणाम कर उनकी अनुमति ली, और सुतल लोक की यात्रा की।।
हे राजन् तब श्री हरि ने, ब्रह्मवादी ऋत्विजों की सभा में। अपने पास बैठे भृगुनन्दन, शुक्राचार्य से वचन कहे।।
भगवान बोले,
हे द्विजवर यह शिष्य आपका, यज्ञ में तल्लीन था। जो भी त्रुटि हो कहीं रही, उसको पूर्ण देवें करा।।
क्योंकि कर्म को करने में, कहीं भूल चूक जो रह जाये। ब्राह्मण की कृपा दृष्टि पाकर, ही सुधार उसका हो पाये।।
शुक्राचार्य बोले,
हे प्रभु जिसने आपको, सब कर्म समर्पित्त कर दिया। सब प्रकार से यज्ञेश्वर, यज्ञपुरुष की करी पूजा।।

उसके कर्म में कभी कोई, त्रुटि कहाँ से रह पाये? कोई विषमता भी प्रभु, कैसे वहाँ पे टिक पाये?
क्योंकि सारे मन्त्रों की, या अनुष्ठान पद्धति की। देश काल और पात्र की, हैं जितनी भी भूलें कहीं।।
आपके नाम संकीर्तन मात्र से, सब की सब ही सुधर जायें। आपका नाम तो है प्रभु, सब भूल दूर ही कर जाये।।

किन्तु फिर भी हे अनन्त, प्रभु आप स्वयं ही कह रहे। आपकी इस आज्ञा का मैं, निश्चित पालन करूँगा हे।।
जीवों के लिये कल्याण का, है सबसे बड़ा साधन ही यह। आपकी आज्ञा का प्रभु, सदा पालन ही किया जाये।।
शुकदेव बोले,
श्री शुक्राचार्य ने श्री हरि की, आज्ञा अपने सी धरी। दूजे ब्रह्मर्षियों से मिल, बलि यज्ञ में जो थी कमी रही।।
उसको पूर्ण कर दिया, यूँ यज्ञ वह सम्पूर्ण हुआ। इस प्रकार वामन प्रभु ने, बलि से धरा का दान लिया।।
इन्द्र के शत्रुओं ने, जो स्वर्ग था उससे छीन लिया। प्रभु निज अग्रज इन्द्र को, पुन: स्वर्ग का राज्य दिया।।

तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा जी, जो प्रजापतियों के हैं स्वामी। देवर्षि पितर मनु दक्ष, भृगु अंगिरा सनत् और शंकर जी।।
सबको संग ले कश्यप जी, और अदिति के मोदन के लिये। तथा सम्पूर्ण लोकन् के, प्राणिन् के अभ्युदय के लिये।।
समस्त लोक और लोकपालों, के स्वामी के पद पर। श्री वामन भगवान का, फिर दिया अभिषेक कर।।

सब वेद समस्त देवता, धर्म यश लक्ष्मी और व्रत सब मंगल स्वर्ग अपवर्ग का, बना दिया उनको रक्षक।।
सबके परम कल्याण हेतु, फिर उन्होंने यह काम किया। सर्वशक्तिमते श्री वामन को, उपेन्द्र का पद दे दिया।।
आनन्दित हुए सभी प्राणी, हृदय अति आनन्द भरा। श्री वामन के अभिषेक का, ऐसा सुन्दर यह अवसर था।।

तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा से, अनुमति उनकी पाकर के। लोकपालों के संग इन्द्र ने, वामन प्रभु आगे किये।।
विमान पे सबसे ही आगे, प्रभु को उन बिठा दिया। उनको साथ ले सबने ही, फिर स्वर्ग को प्रस्थान किया।।
एक तो था इन्द्र को, त्रिलोकी का राज्य मिला। दूजा प्रभु श्री वामन के, कर कमलों की छत्र छाया।।
सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य लक्ष्मी, फिर उनकी सेवा करने लगीं। निर्भय होकर आनन्दोत्सव, फिर से वहाँ सम्पन्न हुई।।

ब्रह्मा शंकर श्री सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि और सारे पितर। सब भूतगण सिद्ध और, देव जो थे विमानों पर।।
प्रभु के इस परम अद्भुत, महाकर्म का गुण गाने लगे। अदिति का भी गुणगान करी, निज लोकन् को वे जाने लगे।।
हे राजन् प्रभु की यह, लीला तुमको सुना है दी। इसके श्रोता तो इसे सुनकर, छूटें सब पापों से ही।।

अनन्त हैं प्रभु की लीलाएँ, उनकी महिमा तो अपार है। जो पार कभी पाना चाहे, उसका सब यत्न निस्सार है।।
ज्यों पृथ्वी के परमाणुओं को, गर गिनना कोई चाहता हो। इसी विधि उसके सारे, यत्न तो बस निष्फल ही हों।।
मन्त्रद्रष्टा वसिष्ठ ने, वेदों में यह है कहा। श्री हरि के सम्बन्ध में, उन्होंने ऐसा वचन कहा।।
न ऐसा पुरुष है कभी हुआ, न है और न ही कभी होगा। जो अपरम्पार श्री हरि की, महिमा का पार कभी पायेगा।।

देवों के परम आराध्व देव, श्री हरि अद्भुत लीला धारी। प्रभु वामन के अवतार चरित, का श्रवण करे जो तनधारी।।
उसको तो परम गति, की प्राप्ति स्वत: है हो जाती। श्री वामन के चरित श्रवण, की है ऐसी महिमा भारी।।
देव पितृ या मनुष्य यज्ञ, किसी भी कर्म अनुष्ठान में। जहाँ जहाँ भी प्रभु की इस, लीला का कीर्तन होए।।
सफलता पूर्ण वह कर्म, सम्पन्न सदा हो जाता है। बड़े-बड़े महात्मन् का, अनुभव तो यही बताता है।।

१०) मत्स्यावतार

परीक्षित् बोले,
अति अद्‌भुत हैं कर्म सभी, भगवान प्रभु श्री विष्णु के। एक बार निज माया से, थे मत्स्यावतार के रूप धरे।।
उस अवतार में भी प्रभु ने, अति अद्‌भुत थी लीला करी। कथा मैं सुनना चाहता हूँ, उन श्री आदि अवतार की।।

वैसे तो यह मत्स्य योनि, है लोक निन्दित अति। परतंत्रता में है यह बन्धी, और यह है तमोगुण से भरी।।
प्रभु तो हैं परम स्वतंत्र, और हैं सर्व शक्ति सम्पन्न। फिर भी कर्म बन्धन में बन्धे, मत्स्यावतार किया धारण।।
महात्मा जन के कीर्तनीय, प्रभु चरित हैं सर्वदा सुखदाई। कृपा करी वर्णन करें, उनकी वह सब लीला ही।।
सूत बोले,
हे शौनकादि ऋषियों, जब प्रश्न किया यह परीक्षित ने। तब प्रभु विष्णु का वह चरित, कहा उनको श्री शुक ने।।
मत्स्यावतार धारण करके, जो कौतुक था उन्होंने किया। शुकदेव ने परीक्षित को, वह सब वर्णन कर दिया।।
शुकदेव बोले,
यूं तो तुम जानो राजन्, सबके आश्रय इक मात्र हरि। फिर भी गौ ब्राह्मण देव साधु, वेद धर्म और अर्थ की।।
रक्षा हेतु ही बार बार, नित्य वह नव तन धारे हैं। विभिन्न तनों में आकर वह, इन सबका रक्षण करते हैं।।

हैं सर्वशक्तिमान् प्रभु, वायु की तरह लीला करें। ऊँचे नीचे छोटे बड़े, सब प्राणियों के आन्तर बसें।।
किन्तु उनके गुण कारण वह, छोटे या बड़े नहीं होते। न ही बुद्धि से ग्राह्य हैं वह, न उच्च नीच गुण से होते।।
क्योंकि वह तो सर्वदा, और सर्वथा हैं गुण रहित। गुणातीत निर्गुण स्वरूप, वास्तव में वह सब गुण से रहित।।

हे राजन् पिछले कल्प के, अन्त की तुम्हें बात कहें। ब्रह्म नैमित्तिक प्रलय हुआ, ब्रह्मा जी के सो जाने से।।
भूलोक आदि सभी लोक, सागर में थे डूब गए। प्रलय ने उस काल में, थे ऐसे कुछ रूप धरे।।
प्रलय का समय जब आया, श्री ब्रह्मा हुए निद्रा ग्रसित। उसी समय उनके मुख से, वेद हुए सारे निसृत।।
उनके निकट ही हयग्रीव, नामक बली इक दैत्य था। अवसर देखी उस योग बल, से उन सब को लिया चुरा।।

श्री हरि तो सर्वज्ञ हैं, और हैं सर्व सामर्थवान्। हयग्रीव की इस चेष्टा का, था उनको पूर्ण अनुमान।।
इस कारण उस काल में, मत्स्यावतार उन धर लिया। वेदों के संरक्षण को, था उन्होंने यह रूप धरा।।
हे राजन् उस काल में, सत्यव्रत नाम के राजा थे। अति उदार भगवत् प्रेमी, जल ग्राही तपस्वी ऋषि वह थे।।
वही सत्यव्रत इस महाकल्प में, सूर्यपुत्र श्राद्धदेव बने। विवस्वान के पुत्र थे वह, वैवस्वत मनु उनका नाम हुआ।।

एक दिन वह राजर्षि, ले जल तर्पण थे करने लगे। कृतमाला नाम की नदी में, वह जल तर्पण थे कर रहे।।
तत्क्षण ही उनकी अंजलि में, इक छोटी मछली आ गई। लघु आकार मछली देख, मति उसकी घबरा गई।।
सत्यव्रत जानो राजन्, द्राविड़ देश का राजा था। निज अंजलि में देखी मछली, पुन: नदी में उसको डाल दिया।।

अति करुण भाव से वह बोली, दयालु सत्यव्रत से। हे परम दयामय राजन् आप, जानें व्यवहार जल में सब के।।
हे राजन् यह जलचर तो, खा जायें निज बन्धुन् को भी। उनसे मैं भयभीत हुई, बोलूं व्यग्र अति होकर ही।।

मुझको हे राजन् आप क्यों, हो पुन:नदी में छोड़ रहे? क्यों इन जलचर जीवों को, भोजन नवीन हो दे रहे?

सत्यव्रत इस सत्य से, पूर्णतय: थे अनभिज्ञ। स्वयं प्रसन्न होकर मुझपर, धरा है प्रभु ने मत्स्य रूप।।
इसलिये मन ही मन में, उन्होंने यह संकल्प लिया। रक्षा करूँगा निश्चित मैं, ऐसा उन्होंने फिर धार लिया।।
उस मछली की अति दीन, वाणी को जब राजा ने सुना। बड़ी दया से मछली को, निज जल के पात्र में रख लिया।।
और उसे फिर वह राजा, अपने आश्रम में ले आये। समझे थे वह उस मछली को, संरक्षण इस विधि दे पाये।।

आश्रम में लाने के बाद, इक रात्रि में वह इतनी बढ़ी। जब पात्र में नहीं समा पाई, मछली ने फिर यह वचन कही।।
हे राजन् इस कमण्डलु में, अति कष्ट से भी न रह पाऊँ। अत: नियत करें कोई ऐसा स्थान, जहाँ सुख पूर्वक रह जाऊँ।।
राजा ने कमण्डलु से, बाहर उसे निकाल दिया। और बड़े इक जल घट में, उसको जाकर डाल दिया।।
किन्तु वहाँ पे भी जानो, विचित्र ही यह घटना हुई। दो ही घड़ी में वह मछली, तीन हाथ फिर और बढ़ी।।

फिर राजा सत्यव्रत से, पुन: वह मछली कहने लगी। हे राजन् यह जल पात्र भी, पर्याप्त अब है नहीं रही।।
इस घट में भी सुखपूर्वक, अब मेरा नहीं निवास हो। मैं शरण तुम्हारी हूँ राजन्, कोई यथायोग्य मुझे स्थान दो।।
सत्यव्रत ने वहाँ से भी, फिर उसको निकाल लिया। और उसे ले जाकर के, एक सरोवर में डाला।।
किन्तु तनिक सी देर में ही, वह विस्तृत इतनी हो गई। महामत्स्य का रूप धरी, उसने सरोवर जल घेरी।।

फिर वह राजा से बोली, जलचर प्राणी मैं हूँ राजन्। सरोवर का जल भी नहीं, सुखपूर्वक वास का मेरा साधन।।
सो आप ही रक्षा अब करें, हो सरोवर अगाध जल सम्पन्न। मेरे सुख प्राण के रक्षण का, करें आप कोई साधन।।
मत्स्य प्रभु के कहने पर, वह अनेकों जलाशयों पे गए। कई विस्तृत सरोवरों में, प्रभु को उन्होंने वास दिए।।
जितना बड़ा सरोवर होता, प्रभु उतने विस्तृत हो जाते। अन्त में फिर वह लीला मत्स्य, उन सागर में ही जा छोड़े।।

सागर में जब थे डाल रहे, तब मत्स्य प्रभु उनसे बोले। हे वीरवर सागर में तो, बहुत बली मगर आदि रहे।।
वे मुझको खा जायेंगे, ऐसा आप न कीजिये। नहीं सागर में छोड़ें मुझे, बस इतनी करुणा कीजिये।।
मत्स्य प्रभु की करुणा पूर्ण, और मधुर वाणी सुनी। मन्त्रमुग्ध हुए सत्यव्रत ने, फिर उनसे यह बात कही।।
मत्स्य रूप में कहें आप, कौन प्रभु हैं प्रकट हुए? इस रूप को धारण कर, मोहित हैं आप मुझे कर रहे।।

इक ही दिन में आपने, विस्तृत यह सरोवर घेर लिया। चार सौ कोस का प्रभु, इसका महा आकार था।।
ऐसा शक्तिशाली जलचर, न तो देखा न सुना ही था। कृपा कर अब आप कहें, है प्रभु आपकी सत्यता क्या?
निश्चित ही सर्व अन्तर्यामी, अविनाशी श्री हरि आप हैं। हैं सर्वशक्तिमान् आप, अनुग्रह पूर्ण प्रभु आप हैं।।
जीवों पर कुरणा करने को, हे प्रभु आपने रूप धरा। जलचर रूप में आपका, ही नव विग्रह प्रकट हुआ।।

जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय के स्वामी आप हैं। हम शरणागत भक्तों के, इक आश्रय आत्मा आप हैं।।
यद्यपि सभी अवतार आपके, हों श्री लीलावश ही हरि। प्राणियों के उद्धार को, धरें आप रूप विभिन्न ही।।
तथापि आपसे ही प्रभु, यह सब जानना चाहता हूँ। उद्देश्य क्या इस रूप का, आपसे जानना चाहता हूँ।।

हे कमलनयन सर्वज्ञ प्रभु, आत्म जो अनात्म में देखें। देहादि में नित्य अहं भरी, अपनेपन का अभिमान करें।।

ऐसे सांसारी पुरुषों का, तो आश्रय व्यर्थ ही होता है। नहीं आपके चरण कमल का कभी, आश्रय निरर्थक होता है।।
क्योंकि अहैतु प्रेमी सबके, आप हैं प्रियतम आत्मा। इस रूप को धारण करके, है हमको जो आश्रय दिया।।
अति अद्भुत रूप यह आपका, प्रभु हम जान ही न पाये। यदि आप कृपा न करें प्रभु, पहचान में यह कैसे आये?
शुकदेव बोले,
निज भक्तों पर तो श्री हरि का, सदा ही रहे अनन्त प्रेम। जगत्पति मत्स्य प्रभु ने, जब निज प्रेमी की सुनी टेर।।
राजर्षि सत्यव्रत की, यह प्रार्थना सुनकर के। उसका प्रिय और जगत् का भी, हित करने के लिये उन्होंने।।
साथ ही कल्पान्त के, प्रलय कालीन उस सागर में। विहार करने के लिये, उनसे फिर यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
सत्यव्रत तुम जान लो, आज के सातवें दिन का वृत्तान्त। भू: आदि त्रैलोक प्रलय, सागर में लय होंगे नितान्त।।
तीनों लोक जब प्रलय काल की, राशि में हो डूब रहे। महाविशाल नौका आएगी, पास तेरे मेरी प्रेरणा से।।
समस्त प्राणियों के सूक्ष्म, शरीरों को तुम ले लेना। सारे धान्य और अन्य बड़े छोटे, बीजों को भी संग लेना।।
सप्तर्षियों को साथ ले, फिर नौका पर तुम चढ़ जाना। इस विधि हे सत्यव्रत, उस प्रलय सिन्धु को तुम तरना।।

उस समय सब ओर ही बस, महा सागर लहरायेगा। प्रकाश नहीं होगा किंचित्, घनघोर तिमिर छा जायेगा।।
दिव्य ज्योति बस ऋषियों की, केवल तुझे राह दिखायेगी। न ही विकलता होगी तुझे, चिन्ता भी सता नहीं पायेगी।।
उस विशाल नौका पे चढ़, चारों ओर ही विचरन् तुम करना। लीला मेरी उसे जानकर, लीला का दर्शन तुम करना।।

प्रचण्ड वायु के वेग में, डगमगाएगी नैया जब। इसी मत्स्य रूप में मुझको, अपने मध्य में पाओगे तब।।
वासुकी नाग की रज्जू बना, मम सींग से बान्धना तुम उसे। इस भाँति विचलित नाव को, भी आश्रय मिल जायेंगे।।
तत्पश्चात् हे सत्यव्रत, ब्रह्मा की जब तक रहेगी रात। तब तक ऋषियों सहित तुम्हें, खेंचू सिन्धू में नौका साथ।।

तब तू प्रश्न करेगा जब, उपदेश तू मुझसे पाएगा। मम अनुग्रह से ही मेरी, महिमा जान तू जाएगा।।
परब्रह्म का रहस्य तब, तेरे हृदय में होगा प्रकट। जान लोगे तुम प्रिय, फिर उसका वास्तविक तात्पर्य।।
शुकदेव बोले,
राजा सत्यव्रत को जब, श्री हरि ने यह आदेश दिया। वह रूप फिर श्री हरि का, नेत्रों से अन्तर्धान हुआ।।
अब सत्यव्रत के हृदय में, थी एक प्रतीक्षा लगी हुई। जो आज्ञा थी प्रभु ने दी, उस घड़ी की ही प्रतीक्षा थी।।
कुशा के अग्रभाग फिर, पूर्व ओर उन्होंने कर दिये। पूर्वोत्तर मुख करके फिर, सत्यव्रत वहाँ बैठ गए।।
मत्स्य रूप में श्री हरि के, चरणों का चिन्तन करने लगे। इस विधि सत्यव्रत, तो थे ध्यान निमग्न हुए।।

इतने में समय वह आ पहुँचा, जिसका प्रभु ने था कहा। सागर छोड़ी निज मर्यादा, अहर्निश वह बढ़ने लगा।।
प्रलय काल के मेघों से, भयंकर वर्षा होने लगी। देखते ही देखते, सब धरा ही जल निमग्न हुई।।
तब राजा ने श्री हरि की, आज्ञा को फिर याद किया। और पुन: इक नौका को, भी अपने सम्मुख देखा।।
तब धान्य तथा अन्य बीजों, को उन्होंने फिर साथ लिया। सप्तर्षियों के संग फिर नौका पे आरोहन किया।।

बड़े प्रेम से सप्तर्षियों ने, फिर मिलकर राजा से कहा। प्रभु का स्मरण करो राजन्, कल्याण इसी में अब होगा।।

इस विकट समस्या से हमको, प्रभु स्वयं ही बचायेंगे। कल्याण करेंगे वही प्रभु, प्रलय सागर पार करायेंगे।।

उनकी आज्ञा पा राजा ने, श्री हरि का फिर ध्यान किया। तत्क्षण ही महासागर में, मत्स्य रूप प्रभु का प्रकटा।।
स्वर्ण सम देदीप्यमान्, था प्रभु का वह मत्स्य रूप। चार लाख कोस का, था उसका आकार रूप।।
एक सींग उनके तन में, महाविशाल था बन रहा। अति महत्त्वशाली प्रभाव, था उस सींग का दीख रहा।।

पूर्व में ही श्री हरि ने, आज्ञा थी उनको जैसी दी। तद्नुसार ही वह नौका, वासुकी नाग से बान्धी गई।।
श्री हरि के विलक्षण सींग में, उसको था बान्धा गया। सत्यव्रत ने मुदित हो, फिर श्री हरि का स्तवन किया।।
सत्यव्रत बोले,
हे प्रभु इस संसार में, जीवों का आत्म ज्ञान ढका। अनादि अविद्या द्वारा ही, आवृत्त है यह हो गया।।
इस कारण ही संसार के, क्लेशों से पीड़ित वे हुए। संसार के जन इस भार को वहन नहीं कर पा रहे।।
अनायास आपका अनुग्रह हो, तो आपकी शरण में जा पहुँचे। तब आपकी कृपा से आपको, ही हे हरि वह प्राप्त करें।।
बन्धन से हमें छुड़ाकर के, वास्तविक मुक्ति दे हैं आप। हैं परम गुरु प्रभु आप ही, आप ही हर लें सब सन्ताप।।

अज्ञानी है यह जीव तो, निज कर्मों से ही बन्धा हुआ। सुख की इच्छा हृदय में धर, दु:खदाई कर्म सदा करता।।
जिनकी सेवा करने से, अज्ञान नष्ट ही हो जाये। परम गुरु मेरे आप ही हैं, हृदय ग्रन्थियां छिन्न करें।।

ज्यों अग्नि में तप कर ही, मल दूर हो सोने चान्दी की। उनकी सच्ची स्वरूप ही, उस अग्नि में है चमक जाती।।
वैसे ही श्री हरि के, चरणन् की निश्छल सेवा से। जीव अन्त:करण की, अज्ञान रूप मल दूर करे।।
अपने वास्तविक स्वरूप में, फिर वह स्थित हो जाता है। हरि कृपा से ही आन्तर, की मल वह धो पाता है।।
अविनाशी सर्वशक्तिमान्, हैं गुरुजन के भी परम गुरु। आप के हैं हम शरणागत, आप ही हैं हमारे गुरु।।

संसार के सब ही गुरु और देव, अन्य कहीं भी जीव हैं जो। वे सब मिली स्वतंत्र रूप से, कृपा करें मिल कर भी जो।।
तो आपकी कृपा के दस सहस्त्रवें, अंश का अंश न बन पायें। फिर आपकी कृपा की तुलना तो नहीं स्वप्न में भी कहीं कर पाये।।
आप ही सब शक्तिन् के पति, आपकी ही मैं शरण पड़ूँ। शरणागत वत्सल आप प्रभु, मैं आपकी ही शरणागत हूँ।।

जैसे कोई अन्धा कहीं, अन्धे को गुरु बना निज ले। पथ प्रदर्शक मान उसे, वह उसका ही अनुसरण करे।।
वैसे ही अज्ञानी जीव, अज्ञानी को निज गुरु कहें। उसकी ही वह बात सुनें, और आज्ञा उसकी ही मानें।।
सूर्य सब स्वयं प्रकाश आप, सब इन्द्रियों को प्रेरित करें। आत्म तत्त्व जिज्ञासु हम, गुरु रूप में आपका वरण करें।।

अज्ञानी जीव अज्ञानियों को, जिस ज्ञान का भी उपदेश करें। वास्तव में तो हे प्रभु, है वह भी अज्ञान ही हे।।
उसके द्वारा तो जगत का, तिमिर ही बढ़ता जाता है। सत्य स्वरूप जो आपका, नहीं उसे जान कोई पाता है।।
पर आप तो हे प्रभु अविनाशी, अमोघ ज्ञान उपदेश करें। जिससे जीव अनायास ही, निज स्वरूप को प्राप्त करे।।

सब लोकों के हैं सुहृद् आप, प्रियतम ईश्वर और आत्मा हैं। गुरु और उनसे प्राप्त ज्ञान, अभीष्ट की सिद्धि आप ही हैं।।
फिर भी अपनी कामना के, बन्धन में जीव है बन्ध रहा। भूला उनके हृदय में आप बसे, है कामना ने अन्धा किया।।

हैं देवों के आराध्य प्रभु, परम पूज्य परमेश्वर हैं। शरणागत हुआ हूँ आपकी, आपका ज्ञान ही इक उद्देश्य है।।
परमार्थ प्रकाशित करे, हे प्रभु वाणी आपकी। उसके द्वारा प्रभु छिन्न करें, मेरे हृदय की यह ग्रन्थी।।
निज स्वरूप को हे प्रभु, प्रकाशित अब तो कीजिये। मुझे शरणागत को प्रभु, अब तो चरण में लीजिये।।
शुकदेव बोले,
राजर्षि सत्यव्रत ने जब, इस विधि प्रार्थना करी। तब मत्स्य रूप धारी प्रभु ने, उसे आत्म तत्त्व उपदेश दी।।
प्रलय के सिन्धु में प्रभु, विहार थे उस पल कर रहे। उस राजा को आत्म तत्त्व, के जब उन्होंने उपदेश दिये।।
सत्यवत को श्री हरि ने, निज स्वरूप फिर दिया बता। रहस्य वर्णन उसका किया, ज्ञान भक्ति और कर्म की राह।।
इन तीनों के दिव्य तत्त्व को, अपने में जो लिये हुए। उस दिव्य पुराण को, मत्स्य पुराण का नाम दें।।

संशय रहित हो नाव में ही, सत्यव्रत ने ऋषियों संग। प्रभु द्वारा उपदिष्ट सनातन, आत्म तत्त्व का किया श्रवण।।
तत्पश्चात् जब पिछले प्रलय, का अन्त ही हो गया। निद्रा टूटी श्री ब्रह्मा की, जागरण उनका हो गया।।
श्री हरि ने हयग्रीव असुर का, वध कर वेद लिये उससे। पुन: श्री ब्रह्मा को ही, सारे वेद वह ला सौंपे।।
प्रभु कृपा से सत्यव्रत, ज्ञान विज्ञान से युक्त हुए। वह ही इस कल्प में, वैवस्वत नाम के मनु हुए।।

निज योग माया से श्री हरि ने, मत्स्य रूप धारण किया। प्रभु विष्णु और राजर्षि, सत्यव्रत संवाद हुआ।।
इस श्रेष्ठ आख्यान के श्रवण से, सब पापों से हो मुक्त जीव। ऐसी महिमा है इसकी, सब बन्धन से ही छूटे जीव।।
जो जीव श्री हरि के इस, अवतार का कीर्तन नित्य करे। सर्व संकल्प हों सिद्ध उसके, और परम गति वह प्राप्त करे।।
प्रलयकालीन समुद्र में, जब ब्रह्मा जी थे सो गए। सृजन शक्ति थी क्षीण हुई, मुख से उनके जो श्रुति निकले।।

उन्हें चुरा हयग्रीव दैत्य, पाताल लोक में ले था गया। प्रभु ने उसको मारकर, वह श्रुतियाँ दी ब्रह्मा को लौटा।।
सत्यव्रत और सप्तर्षियों को, ब्रह्म तत्त्व उपदेश किया। सब जग के परम कारण, श्री लीला मत्स्य को नमन मेरा।।

इति अष्टम स्कन्ध

** खोना या मिलना नही है किसी के बस मे, फिर आस का गम क्यों ढोता है इन्सान।*
वक्त ने सारे रंज दिये है, वक्त ही सारे गमों को धोता है दिन रात।।
** सच घटे या बढे तो सच ना रहे, झूठ की कोई इन्तेहा ही नही,*
जड दो चांदी चाहे सोने मे, आयना कभी झूठ बोलता ही नहीं।
** हम जो गुजरे हमारे गम लेकर, रह गये लोग आंखे नम लेकर,*
अपनी तकदीर भी न लिख पाये, क्या किया हाथ में कलम लेकर।
** ढूंढे से कहीं भाग्य का तारा नहीं मिलता, इक बार जो मिल जाये तो दुबारा नहीं मिलता।*
हो जिसमें समाधान समस्याओं का सारी, ऐसा कोई जादू का पिटारा नहीं मिलता।।
** कितना बेरुखा यह संसार हो गया है, जीवन लेन देन का व्यवहार हो गया है।*

नवम स्कन्ध

विषय सूची

१)	वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	६११
२)	राजा शर्याति का वंश और महर्षि च्यवन ऋषि का वृत्तान्त	६१५
३)	राजा अम्बरीष की कथा	६१७
४)	मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा	६२५
५)	राजा त्रिशंकु और राजा हरिश्चन्द्र की कथा	६२८
६)	राजा सगर की कथा	६३०
७)	भगीरथ चरित्र और गंगावतरण	६३३
८)	राजा सौदास और खटवांग का चरित्र	६३४
९)	राम अवतार	६३७
१०)	इक्ष्वाकुवंश, निमिवंश और चन्द्रवंश	६४४
११)	राजा पुरुरवा का चरित्र	६४८
१२)	परशुराम अवतार	६५१
१३)	विश्वामित्र चरित्र	६५५
१४)	राजा ययाति का आख्यान	६५७
१५)	पुरु वंश और राजा दुष्यन्त पुत्र भरत का चरित्र	६६३
१६)	महाराज रन्तिदेव की कथा	६६५
१७)	जरासन्ध तथा पाण्डवोंके वंश की कथा	६६८
१८)	यदुवंश, बृष्णि वंश और विदर्भ वंश का परिचय	६७१

नवम स्कन्ध

१) वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

परीक्षित बोले,
सभी मन्वन्तरों का प्रभु, वर्णन आपने है किया। उनमें किये श्री हरि के, ऐश्वर्य पूर्ण चरितों को कहा।।
अनन्त शक्तिशाली प्रभु ने, क्या क्या कौतुक वहां किये? वर्णन आपने कर दिया, और मैंने भी श्रवण किये।।
पिछले कल्प के अन्त में, थे द्राविड देश के जो स्वामी। सत्यव्रत ने प्रभु सेवा से, करी ज्ञान की उपलब्धि।।
वही राजर्षि इस कल्प में, वैवस्वत् मनु जाने गए। इक्ष्वाकु आदि नरपति, उनके पुत्रों के वर्णन किये।।

हे द्विजवर अब कृपा करी, उनके अंश और वंशज की कहें। अलग अलग से उन सबके, चरितों का विस्तार करें।।
हे महाभाग यह हृदय तो है, सदा से ही जिज्ञासु बना। सदा सर्वदा हरि कथा, सुनने को यह उद्यत रहता।।
पूर्वज वैवस्वत मनु के, और आधुनिक जो लोग हों। और उस कुल में महाभाग, आगे भी आने वाले जो।।
उनसब की पावन कीर्ति, पुरुषों का वर्णन कीजिये। उनके शौर्य पराक्रम की, कथा हमें कह दीजिये।।
सूत बोले,
ब्रह्मवादी ऋषिओं की सभा में, परीक्षित ने जब प्रश्न किया। हे ऋषिवर तब धर्म के, मर्मज्ञ श्री शुक ने यूं कहा।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् मनु वंश का, वर्णन सुनो संक्षेप में। विस्तार से तो शतश: वर्षों, में भी पूर्ण नहीं कह सके।।
परम पुरुष पुरुषोत्तम जो, सबके ही हैं आत्मा। प्रलय काल में थे इक वह, यह विश्व या और कुछ न था।।
उनकी नाभि से राजन्, हिरण्य कमल इक प्रकट हुआ। उसमें ही चतुर्मुखी, श्री ब्रह्मा का उद्भव हुआ।।

मरीचि फिर उत्पन्न हुए, श्री ब्रह्मा के मानस पुत्र। श्री कश्यप का फिर जन्म हुआ, जो थे मरीचि के ही पुत्र।।
दक्षनन्दिनी अदिति, थी उनकी धर्मपत्नी। उनके गर्भ से ही पुन:, विवस्वान की जन्म हुई।।

सन्ध्या नामक उनकी पत्नी ने, श्राद्धदेव मनु को जन्मा। श्राद्धदेव जानो राजन्, परम मनस्वी राजा था।।
उनकी पत्नी श्रद्धा ने फिर, दस पुत्रों को जन्म दिया। इक्ष्वाकु नृग शर्याति दिष्ट, धृष्ट करूप कुछ पुत्रों का नाम था।।
परिष्यन्त पृषध्र और नभग, दसवें का था नाम कवि। इस भाँति से दस उनके, पुत्रों की गणना पूरी हुई।।

पहले तो सन्तान हीन, ही थे वैवस्वत मनु। सर्व सामर्थ वसिष्ठ ने, करवाया यज्ञ सन्तति हेतु।।
मित्र वरुण का यज्ञ ही, उनसे करवाया था गया। उनकी सन्तान प्राप्ति का, साधन था वह ही बना।।
यज्ञ के आरम्भ में, वैवस्वत पत्नी श्रद्धा ने। केवल दुग्ध पान के ही, व्रत थे धारण कर लिये।।
निज होता के पास जा, प्रणाम उन्होंने कर दिया। कन्या ही मुझे प्राप्त हो, यही भाव उनके चरणों में धरा।।

उध्वर्यु की प्रेरणा से, जो ब्राह्मण थे होता बने। श्रद्धा की याचना याद करी, एकाग्र चित्त वह हो गए।।
फिर वषट्कार मन्त्र का, उच्चारण उन्होंने किया। उसके साथ ही कुण्ड में, समर्पित अहुति को किया।।
जब होता ने इस विधि, विपरीत कर्म ही कर दिया। तब यज्ञ के फल स्वरूप, इला नाम की हुई कन्या।।

उसे देखकर श्राद्ध देव, मनु ने बहुत प्रसन्न हुए। अपने गुरु वसिष्ठ से, फिर उन्होंने यह वचन कहे।।
मनु बोले,
आप तो हैं ब्रह्मवादी गुरु, विपरीत यह फल फिर कैसे हुआ? अति दु:खदे है यह प्रसंग, क्यों पुत्र जन्म मेरे नहीं हुआ?
वैदिक कर्म का तो कभी, विपरीत फल नहीं हो सकता। फिर हे द्विजवर कहें आप, सम्भव यह कैसे हुआ?

परिपूर्ण है मन्त्र ज्ञान, हे द्विजवर आप सबका। निष्पाप भी तप से आप हुए, इन्द्रियों पर भी संयम ठहरा।।
देवों में ज्यों असत्य की, प्राप्ति सम्भव न होए। आपके संकल्प के यह, विपरीत ही फल कैसे हुए?
शुकदेव बोले,
हे राजन् वसिष्ठ तो हैं, हमारे पूर्वज प्रपितामह। श्राद्धदेव की बात सुनी, सत्य उन्होंने जान लिया।।
उन्होंने देखा होता ने यहां, विपरीत ही है संकल्प लिया। इस कारण श्री वैवस्वत, मनु ने उनसे यह कहा।।
वसिष्ठ बोले,
हे राजन् तव होता का, संकल्प था विपरीत हुआ। इस कारण संकल्प हमारा, ठीक से पूर्ण नहीं हुआ।।
फिर भी निज तप के प्रभाव, से कुछ ऐसा करूंगा मैं। अति श्रेष्ठ इक पुत्र ही, राजन् तुमको दूंगा मैं।।
परम यशस्वी प्रभु वसिष्ठ ने, फिर ऐसा चिन्तन किया। इला नाम की कन्या को, ही पुरुष बना देना चाहा।।
पुरुषोत्तम नारायण की, स्तुति करी इस भाव से। एकाग्र चित्त उन्होंने किया, मन में यही संकल्प लिये।।

उनकी पूजा से शक्तिमते, श्री हरि अति प्रसन्न हुए। ऋषि वसिष्ठ को फिर उन्होंने, मुंह मांगे वर दे दिये।।
उसके प्रभाव से वह कन्या, ही पुत्र फिर बन गई। श्रेष्ठ पुत्र के गुण सब थे, सुद्युम्न ही उसकी नाम हुई।।

एकबार राजा सुद्युम्न, आखेट करने के लिये। सिन्धु देश के अश्व पर, ही सवार थे हो गए।।
कुछ मन्त्रीगण को साथ लिया, और वन को वह चले गए। कवच पहन व हाथ में, सुन्दर धनुष थे लिये हुए।।
अति अद्भुत बाण भी संग लिये, हरिणों का पीछा कर थे रहे। इस विधि उत्तर दिशा में वह, बहुत ही आगे बढ़ गए।।

अन्त में मेरु पर्वत के, तलहटी में इक वन में गए। पार्वती संग श्री शंकर जी, विहार हैं सदा वहां करते।।
प्रवेश पाते ही उस वन में, इक अद्भुत कौतुक हुआ। वीर सुद्युम्न ने यह देखा, मैं तो स्त्री हो गया।।
मेरे संग जो अश्व है, उसने भी घोड़ी रूप धरा। साथ ही उसके अनुचर गण, ने भी रूप बदला देखा।।
निज को स्त्री रूप पा, इक दूजे को देखने लगे। आश्चर्य चकित सब हो गए, उदास मन सब ही हुए।।
परीक्षित बोले,
हे प्रभु उस भूखण्ड में, विचित्र यह गुण कैसे आया? किस कारण उन सबका, रूप ही इस विध बदल गया?
कृपा कर अब हे प्रभु, इस प्रश्न का उत्तर दीजिये। कौतूहल मेरे हृदय भरा, शान्त उसे कर दीजिये।।
शुकदेव बोले,
बड़े बड़े व्रतधारी ऋषि, निज तेज से तम को दूर करी। प्रभु शंकर का दर्शन पाने, उस वन में जा प्रवेश करी।।
देवी अम्बिका उस समय, वस्त्र हीन थी हो रहीं। ऋषियों को सहसा वहां देख, वह अति लज्जित हुईं।।
प्रभु शंकर की आगोश त्यजी, वस्त्र उन्होंने पहन लिये। ऋषियों ने भी जब देखा, गौरी शंकर को बैठे हुए।।

वहां से लौट के नर नारायण, के आश्रम को वह गए। श्री शंकर के धाम से, इस विधि वे थे लौटे।।

उसी समय श्री शंकर ने, निज प्रिया के मोदन के लिये। श्री अम्बिका मैया को, फिर प्रेममय यह वचन कहे।।
मेरे सिवा जो कोई पुरुष, प्रवेश करेगा यहां कभी। नारी ही वह हो जायेगा, जानो सत्य मेरे वचन यही।।
हे राजन् तब से ही पुरुष, न जायें उस स्थान में। सुद्युम्न गए थे उस वन में, और वह स्त्री हो गए।।
जितने भी अनुचर थे उनके, उन्होंने भी स्त्री रूप धरा। इक वन से दूजे वन में, विहार उन आरम्भ किया।।

उसी समय अति शक्तिशाली, बुद्ध देव ने जब देखा। मेरे आश्रम के पास ही, स्त्री वृन्द है विचर रहा।।
बहुत सी नारियों से घिरी, इक सुन्दर स्त्री घूम रही। मुझे प्राप्त यह हो जाये, ऐसी उन्होंने इच्छा करी।।
जब देखा चन्द्रकुमार को, उस अति सुन्दर स्त्री ने। बुद्ध देव को पति रूप में, ही वरना चाहा उसने।।
बुद्ध ने उस नारी से विवाह ही फिर कर लिया। पुरुरवा नामक पुत्र फिर, उनके यहां उत्पन्न हुआ।।

इस विधि मनु पुत्र राजा, सुद्युम्न स्त्री हो गए। कुलगुरु वसिष्ठ को किया याद, ऐसा है सुना हमने।।
सुद्युम्न की दशा यह देखकर, करुणा वश हुआ हृदय पीडित। पुन: पुरुष उसे बनाने को, हुए शंकर की अराधना रत।।
प्रभु शंकर वसिष्ठ पर, फिर राजन प्रसन्न हुए। निज वाणी की सत्यता, को ध्यान में रखते हुए।।
प्रभु शंकर ने ऋषि वसिष्ठ, को फिर यह वरदान दिये। हो अभिलाषा उनकी पूर्ण, इस कारण यह वचन कहे।।

हे वसिष्ठ यजमान तुम्हारा, पुन: रूप निज पायेगा। इक मास पुरुष रहेगा यह, दूजे मास स्त्री होगा।।
इस व्यवस्था से ही यह, अब इस धरती पर रहे। निज इच्छा अनुसार ही वह, धरती का पालन करें।।
इस प्रकार वसिष्ठ जी, का अनुग्रह उनपर हुआ। व्यवस्था पूर्वक निज अभीष्ट, पुरुषत्व का लाभ किया।।
सुद्युम्न फिर इस विधि, पृथ्वी का पालन करने लगे। किन्तु अपनी प्रजा द्वारा, अभिनन्दित नहीं वह थे।।

तीन पुत्र हुए उनके, उत्कल गय और विमल। दक्षिणा पथ के राजा थे, हे राजन् वह सबके सब।।
बहुत दिनों के बाद जब, वृद्धावस्था आगमन हुआ। प्रतिष्ठान नगर के अधिपति, सुद्युम्न को उसने आ घेरा।।
निज पुत्र पुरुरवा को, राज्य उसने दे दिया। स्वयं तपस्या के लिये, फिर वह वन को चला गया।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् जब इस विधि, सुद्युम्न गए तप को वन में। वैवस्वत मनु ने पुत्र की, कामना धर कर निज मन में।।
यमुना तट पर सौ वर्ष, तक कठिन तपस्या की। पुत्र कामना हिय में ले, उन्होंने थी यह व्रत धरी।।
तत्पश्चात् सन्तान हेतु, श्री हरि की उन्होंने आराधना की। निज समान दस पुत्र हुए, इक्ष्वाकु ज्येष्ठ का नाम था।।

उन मनुपुत्रों में एक का, नाम था श्री पृषध्र। गुरु पुत्र वसिष्ठ ने, नियुक्त किया इन्हें गौ रक्षक।।
रात्रि को वीरासन में, पृषध्र बैठा रहता था। दक्षता से वह गौवों की, रक्षा इस विध करता था।।
इक दिन रात्रि के समय, घनघोर वर्षा हुई। भयभीत हुईं गायें सब, त्यज निद्रा को जाग उठीं।।
गायों के उस झुण्ड में, इक बाघ ने प्रवेश किया। गोशाला में इधर-उधर, ही दौड़ने वह लगीं।।

बलवान बाघ ने उस समय, एक गाय को पकड़ लिया। भयभीत होकर के वह, गाय थी रही रम्भा।।

क्रन्दन उसका सुन करी, पृषध्र वहां भागा आया। क्या हुआ उस गाय को, वह यह जानना था चाहता।।

एक तो समय था रात्रि का, ऊपर से थी घनघोर घटा। तारागण का आकाश में, दर्शन नहीं था हो रहा।।
तलवार उठाकर हाथ में, बहुत वेग से उसने प्रहार किया। सीस गाय का कट गया, उसने समझा यह बाघ ही था।।
उस तलवार की नोक से, बाघ का कान भी कट गया। वह भी अति भयभीत हुआ, निकल वहां से वह भागा।।
राह में रक्त की धारा ही, थी उसकी बहे जा रही। जिस राह से वह था गया, इस भाँति पथ चिन्ह छोड़ दी।।

रिपु दमन पृषध्र तो, था मन में यह मान रहा। उसके तीव्र प्रहार से, बाघ ही है मारा गया।।
रात्रि का जब अन्त हुआ, व्यथित हुआ यह जान के। उसके तीव्र प्रहार से तो, गाय के ही थे प्राण गए।।
यद्यपि यह कर्म तो, अनजाने में ही था हुआ। कुलगुरु वसिष्ठ ने, फिर भी शाप उसे दे दिया।।
अपने इस कर्म के कारण तुम, क्षत्रिय नहीं रह पाओगे। यह शाप है मेरा तुम्हें, शूद्र ही तुम हो जाओगे।।

निज गुरु का शाप यह, अंजली बान्ध स्वीकार किया। तत्पश्चात् मुनियों का प्रिय, ब्रह्मचर्य व्रत धार लिया।।
सबका सुहृद् वह हो गया, समत्व भाव में स्थित हुआ। सबके आत्म श्री वासुदेव, का अनन्य प्रेमी वह हुआ।।
सब आसक्ति उसकी मिटी, वृत्तियां भी सब शान्त भईं। संग्रह परिग्रह सब दूर हुआ, इन्द्रियां भी वश में हुईं।।
दैववश यदृच्छा ही, प्राप्त उसे जो हो जाता। सन्तुष्ट उसीमें रहकर वह, जीवन निर्वाह था कर लेता।।

सन्तुष्ट था आत्म ज्ञान में, था चित्त परम आत्म में टिका। समाधिस्थ प्राय: रहता, जड़वत ही था वह विचरता।।
इस विधि पृषध्र का, जीवन व्यतीत था हो रहा। इक दिन वन में जब गया, दावानल था धधक रहा।।
मननशील पृषध्र ने, दे इन्द्रियों की आहुति। भस्मीभूत किया उनको, और परम् ब्रह्म एकत्व हुई।।

श्री मनु के अनुजतम, पुत्र का नाम था कवि। राज्य छोड़ निज बन्धुन् संग, वन को उस प्रस्थान की।।
विषयों से था नि:स्पृह वह, हृदय में हरि थे विराजमान्। किशोरावस्था में ही वह, हुआ परम ब्रह्म को प्राप्तवान।।
मनुपुत्र करुष से, कारुष नामक क्षत्रिय जन्मे। ब्राह्मण भक्त धर्म प्रेमी, वे उत्तरा पथ के रक्षक थे।।

धृष्ट के यहाँ धार्ष्ट नाम, के क्षत्रिय उत्पन्न हुए। उस तन में ही रहते हुए, ब्राह्मणवत्व उन प्राप्त किए।।
नृग का पुत्र था सुमति, उसका पुत्र भूत ज्योति। वसु ही उनका नाम हुआ, फिर जो हुई उनकी सन्तति।।
वसु का पुत्र प्रतीक था, और ओघवान् था उसका पुत्र। ओघवान् पुन: नाम हुआ, जो था ओघवान् पुत्र।।
ओघवती नाम की, उसके यहां इक कन्या हुई। सुदर्शन से ही पुन:, उस कन्या की विवाह हुई।।

मनुपुत्र नरिष्यन्त से फिर, चित्रसेन थे पुत्र हुए। उससे ऋक्ष उससे के मीढवान्, मीढवान् से कूर्म हुए।।
उससे फिर इन्द्रसेन, की उत्पत्ति हो गई। इन्द्रसेन से वीतिहोत्र, और उससे सत्यश्रवा हुई।।
सत्यश्रवा से हुए उरुश्रवा, और उसके पुत्र थे देवदत्त। देवदत्त पुत्र हुए अग्नि स्वयं, नाम थे उनके अग्निवेश्य।।
आगे चलकर वह ही तो, कानन नाम पाये थे। जातूकर्ण्य महर्षि के, नाम से वह विख्यात हुए।।

ब्राह्मणों का अग्निवेश्यायन, गोत्र हुआ उनके नाम से। हे राजन् वर्णन कर दिये, यूं नरिष्यन्त वंश के।।
अब दिष्ट के वंश की तुम सुनो, नाभाग था उनके पुत्र का नाम। उस नाभाग से भिन्न है वह, जिसका वर्णन हो आगे जान।।

अपने कर्म के कारण ही, वैश्य वह था हो गया। भलनन्दन और वत्सप्रीति, उसके पुत्रों का नाम था।।

वत्सप्रीति पुत्र परांशु था, उसका पुत्र हुआ प्रमति। प्रयति के पुत्र खनित्र थे, उनके चाक्षुष और वा विविंशति।।
विविंशति के थे पुत्र रम्भ, और रम्भ के थे खिननेत्र पुत्र। दोनों ही थे अति धार्मिक, खनिनेत्र के करन्धम पुत्र।।
हे राजन् करन्धम के, पुत्र का था नाम अवीक्षित्। अवीक्षित् के पुत्र थे, चक्रवीर्त राजा मरुत।।
अंगिरा पुत्र महायोगी, संवर्त ने यज्ञ कराया था। मरुत्त यज्ञ जैसा था हुआ, वैसा किसीका नहीं हुआ।।
छोटे बड़े सभी पात्र, थे अति सुन्दर स्वर्ण के। उस यज्ञ में सोमपान कर, इन्द्र थे मतवाले हुए।।
और दक्षिणा के द्वारा, ब्राह्मण भी अति तृप्त थे। मरुद्गण थे परोस रहे, और विश्वेदेव सभासद थे।।

मरुत्त के पुत्र का नाम थज्ञ दम, उससे हुए राज्यवर्धन। उससे सुधृति पुन: उससे, हुए थे पुत्र नर नामक।।
नर से केवल उस से बन्धुमान, उससे हुए फिर वेगवान। उनसे बन्धु और बन्धु से, तृणबिन्दु हुए जन्मवान्।।
तृणबिन्दु तो मान लो, गुणों का ज्यों भण्डार थे। श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा, देवी ने उन्हे वरण किये।।
अनेकों पुत्र हुए उनके, और एक पुत्री भी थी। इडविडा नाम की कन्या, थी उन्होंने उत्पन्न करी।।

मुनि विश्रवा ने अपने पिता, योगेश्वर पुलस्त्य से। उत्तम विद्या प्राप्त करी, और वह महामुनि बने।।
इडविडा गर्भ से लोकपाल, कुबेर पुत्र उनके जन्मे। इस भाँति उस कुल के, वर्धन नित्य होते रहे।।
महाराजा तृणबन्धु की, पत्नी ने जन्मे तीन सुत। नाम थे उनके विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु।।
राजा विशाल हुए वंशधर, नगरी उन्होंने बसा इक ली। उस अति सुन्दर नगरी का, नाम था जानो वैशाली।।

विशाल पुत्र थे हेमचन्द्र, और हेमचन्द्र के धूम्राक्ष। धूम्राक्ष के संयम उसके पुन:, पुत्र थे देवज और कृशाश्व।।
कृशाश्व पुत्र था सोमदत्त, उस अश्वमेध यज्ञों द्वारा। अराधना श्री हरि की करी, योगेश्वरों का आश्रय लिया।।
सन्तों का आश्रय लेकर, वह उत्तम गति को प्राप्त हुए। सोमदत्त के फिर यहां, सुमति नाम के पुत्र हुए।।
सुमति पुत्र थे जन्मेजय, विशाल वंशी राजा सब थे। तृणबिन्दु की कीर्ति के, वर्धक यह सब राजा हुए।।

२) राजा शर्याति का वंश और महर्षि च्यवन ऋषि का वृत्तान्त

शुकदेव बोले,
मनुपुत्र शर्याति था राजा, निष्ठावान् वेद विद्वान। अंगिरा गोत्रीय यज्ञ में दूजे दिन का किया कर्म विधान।।
सुकन्या नाम की कमलाक्षी, एक कन्या उसकी थी। निज पुत्री संग भ्रमण को, निकले थे राजा शर्याति।।
घूमते घूमते वह श्री, च्यवन् के आश्रम जा पहुंचे। सुकन्या ने देखी बाम्बी, जिसमें थे दो छिद्र बने।।
निज सखियों संग वन्य वृक्षों, का सौन्दर्य निहारते। जुगनू की भाँति से झिलमिल, देखे दो छिद्र थे चमक रहे।।

दैव प्रेरणा ऐसी हुई, बाल सुलभ चंचलता थी। सुकन्या ने इक कांटा ले, वह दोनों ज्योति बेंध दी।।
इससे उन दोनों नेत्रों से, रक्त की धारा बह निकली। शर्याति के सैनिकों की, मल मूत्र अवरुद्ध हुई।।
आश्चर्य चकित हुए देख के यह, और अपने सैनिकों से कहा। महर्षि च्यवन के प्रति कहीं, अनुचित व्यवहार तो नहीं हुआ?
ऐ सैनिकों स्पष्ट ही, आज हमें है दीख रहा। हममें से किसी द्वारा, अनर्थ यहां कोई हो गया।।

भयभीत हुई सुकन्या ने, तब अपने पिता से यूं कहा। हे पिताश्री मुझसे ही, भीषण इक अपराध हुआ।।

अनजाने में इक कांटे से, दो ज्योतियों को मैंने छेद दिया। निज कन्या की बात सुनी, शर्याति तो गया घबरा।।
धीरे धीरे स्तुति करी, महर्षि को उसने प्रसन्न किया। बाम्बी में छिपे ऋषिवर का, इस विध उसने क्रोध शान्त किया।।

च्यवन ऋषि के आन्तर का, अभिप्राय उन्होंने जान लिया। निज कन्या उन्हें समर्पित कर, इस संकट से छुटकारा किया।।
फिर ऋषिवर से आज्ञा लेकर, निज राजधानी को लौट आये। अति दक्षता से उन्होंने, अपने कदम बढ़ाये थे।।
महाक्रोधी च्यवन ऋषि को, निज पति रूप में प्राप्त किया। सुकन्या ने अति दक्षता से, उनका सेवन आरम्भ किया।।
उनके मन के भावों को, पहले पहचान वह थी लेती। उनकी वृत्ति अनुसार ही, व्यवहार सदा थी वह करती।।

कुछ समय जब बीत गया, इक दिन ऐसा संयोग हुआ। उनके आश्रम पर दोनों, अश्विनी कुमारों का आगमन हुआ।।
यथोचित विधि से दोनों का, सत्कार किया ऋषि च्यवन ने। फिर कर जोड़ी दोनों को, यह वचन कहा ऋषि च्यवन ने।।
हैं सामर्थ दोनों ही आप, मुझे यौवन आप करें प्रदान। युवती स्त्रियाँ चाहें जिसे, उस रूप सौन्दर्य का देवें दान।।
मैं जानूं तुम दोनों ही, नहीं सोमपान अधिकारी हो। सोम रस दे ही दूंगा, फिर भी यज्ञ में आपको।।

वैद्य श्रेष्ठ कुमारों ने, अभिनन्दन ऋषि का किया। ठीक हैं कहकर फिर उन्होंने, इक कुण्ड को इंगित किया।।
सिद्धों के द्वारा ही, बनाया गया है यह कुण्ड। इसमें स्नान कर ऋषिवर आप, पावन करें सब के सब ही अंग।।
च्यवन ऋषि के तन को तो, ग्रसित था जरा ने किया, सब नसें थीं उसकी दीख रहीं, चेहरा भी झुर्रियों से था भरा।।
बाल भी श्वेत थे हो चुके, सो दर्शन में वह कुरूप थे। कुण्ड में किया प्रविष्ट उन्हें, संग ले अश्विनी कुमारों ने।।

उसी समय उस कुण्ड से, तीन पुरुष बाहर आये। कमल की माला और कुण्डल, सुन्दर वस्त्र थे पहने हुए।।
अति सुन्दर रूप थे तीनों के, वनिताप्रिय ही वे सब थे। तीनों युवक समान ही, रूप लिये थे दीख रहे।।

परम साध्वी सुकन्या ने, जब देखा तीनों पुरुषों को। सूर्य समान थे तेजस्वी, आकृति में भी कोई भेद न हो।।
निज पति को न पहचानकर, उसने कुमारों की शरण ली। सन्तुष्ट हुए दोनों कुमार, पतिव्रत धर्म उसका देखकर।।
उसके पति को फिर उन्होंने, सारा वृत्तान्त बता दिया। फिर च्यवन मुनि से ले आज्ञा, विमानों से प्रस्थान किया।।

कुछ काल बाद राजा शर्याति, यज्ञ की आकांक्षा लिये। च्यवन ऋषि के आश्रम पर, पुन: लौट के जा पहुंचे।।
सूर्य समान तेजस्वी पुरुष, को देखा वहां बैठै हुए। उनकी पुत्री सुकन्या के, पास ही वह आसीन थे।।
निज पिता श्री के चरणों की, पुत्री ने जब वन्दना की। आसीस नहीं उसको उन दी, कुपित होई यह वचन कही।।
शर्याति बोले,,
अरी दुष्ट कन्या तूने यह क्या किया, ऋषि च्यवन को तूने धोखा दिया। हैं सबके वन्दनीय ऋषिवर, यह तूने कैसा पाप किया।।
अपने काम का न जानी, वृद्ध जानी उन्हें छोड़ दिया। और राह चलते युवक की, सेवा में निज को जोड़ दिया।।
तव जन्म तो अति कुलीन था, यह उल्टी मति कैसे हुई? कुल को कलंकित कर रहा, तव व्यवहार यह अनुचित ही।।
निर्लज्ज होकर हाय तू, पर पुरुष की सेवा में है लगी। निज पिता पति दोनों के वंश, नरक में तू ले जायेगी।।
शुकदेव बोले,
इस विधि राजा शर्याति, ने पुत्री को जब फटकारा। शुचिस्मिता सुकन्या ने, हंसकर निज पिता से यूं कहा।।
हे पिताश्री यह आपके, जामाता महर्षि च्यवन ही हैं। जिनको आप हैं देख रहे, साक्षात् ही वह भृगुनन्दन हैं।।

तत्पश्चात् निज पिता से उसने, सारा वृत्तान्त ही कह दिया। महर्षि के यौवन और, सौन्दर्य प्राप्ति का राज कहा।।
यह सब सुन शर्याति तो, अति विस्मित ही हो गया। बहुत प्रेम से फिर उसने, निज सुता को कण्ठ लगा लिया।।

शर्याति से महर्षि ने फिर, करवाया सोमयज्ञ अनुष्ठान। अनाधिकारी थे फिर भी, दिया अश्विनी कुमारों को सोमपान।।
इन्द्रदेव तो बहुत ही, जल्दी क्रोध हैं कर लेते। दोनों कुमारों का सम्मान, इन्द्रदेव न सह सके।।
शर्याति के हनन को, व्रज उसने उठा लिया। महर्षि च्यवन ने वज्र सहित, स्तम्भित उसका हाथ किया।।
तब सब देवों ने कुमारों को, यह भाग देना स्वीकार किया। वैद्य होने के कारण था, बहिष्कार पहले उनका किया।।

शर्याति के हुए तीन पुत्र, यह जान लो तुम राजन्। नाम थे उनके उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण।।
अनार्त्त पुत्र रेवत हुआ, उसने बनाई इक नगरी। सागर तल पर थी वह बनी, नाम था उसका कुशस्थली।।
उसमें ही रहकर के वह, राज्य संचालन करते थे। अनार्त्त आदि नगरों पर, वह शासन वहीं से करते थे।।

उनके थे शतपुत्र श्रेष्ठ, ज्येष्ठ का नाम था कुकुद्मी। वर हेतु श्री ब्रह्मा पे गए, संग में ले सुता रेवती।।
ब्रह्म लोक की राह उस पल, थी खुली इन लोगों के लिये। वहां पे उत्सव था भारी, सभी लगे थे गायन वादन में।।
इस कारण बात चीत का, अवसर जब उन्हें नहीं मिला। कुछ पल वहीं पे ठहर कर, उन्होंने फिर विश्राम किया।।

उत्सव का जब अन्त हुआ, श्री ब्रह्मा को उन नमन किया। निज आगमन का हेतु तब, उन्होंने ब्रह्मा के चरण धरा।।
उनका अभिप्राय सुन कर, हंस कर के ब्रह्मा ने कहा। हे महाराज जिन लोगों का, मन में तेरे विचार था।।
वे सब तो काल की ही, गाल में है जा चुके। अब उनके पुत्र पौत्र और, नातियों की क्या बात करें।।
उनके गोत्रों के नाम भी, अब नहीं कहीं सुन पड़ते। इसी बीच सत्ताइस चतुर्युगी, के काल हैं बीत चुके।।
इसलिये अब पुनः, पृथ्वी पर तुम जा लौटो। नारायण के अंशावतार, बलराम अब धरा पे रहें।।

हे राजन् उसी नर रत्न, को कन्या निज सौंप दो। उनके नाम लीला आदि का, कीर्तन श्रवण अति पावन हो।।
वही प्रभु सब प्राणियों के, हैं जीवन और प्राण आधार। भूमि का भार उतारन को, लिया अंश रूप में उन अवतार।।
राजा कुकुद्मी ने जब, श्री ब्रह्मा से पाया आदेश। कर उनके चरण की वन्दना, वह लौटे फिर अपने देश।।
यक्षों से भयभीत अति, थे उनके वंशज हुए। निज नगरी को त्याग करी, वे यहां तहां थे बस रहे।।

निज रूपवती कन्या, सौंपी महावीर बलराम को। चले बद्रिकाश्रम में राजा, कुकुद्मी फिर तप करने को।।
प्रभु नर नारायण का आश्रम, स्थित है श्री बदरी वन में। जहां पे श्री नर नारायण, निमग्न रहें तपस्या में।।

३) राजा अम्बरीष की कथा

शुकदेव बोले,
मनुपुत्र श्री नभग का, पुत्र था राजन् नाभाग। दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य, का किया उसने पालन।।
जब पुनः वह घर लौटा, अग्रजों ने थी बांटी सम्पद्। उनके विद्वान अनुज को, केवल मिला इक पिता का हक।।

उसने जब भाइयों से पूछा, क्या हिस्से में है मुझे दिया? तब उत्तर यह उनका था, तव भाग में पिता ही आन पड़ा।।
पिता पे जा फिर उसने कहा, अग्रजों ने यही विभाग किया। मेरे हिस्से में उन्होंने, हे पिता आपको है दिया।।

पिता ने उससे यह कहा, हे पुत्र न उनकी मानो तुम। उन्होंने है जो विभाग किया, अनुचित ही उसको जानो तुम।।

देखो अंगिरस गोत्र के, यह अति बुद्धिमान ब्राह्मण। हैं महायज्ञ में लगे हुए, करना चाहें इसको सम्पन्न।।
किन्तु हे मेरे विद्वान पुत्र, तुम मेरी यह बात सुनो। हर छठे दिन इन सबसे, निज कर्म में पुन: भूल हो।।

पास जा उन महात्मन् के, उनका यह उपकार करो। वैश्वदेव सम्बन्धी दो, सूक्त उन्हें बता तुम दो।।
जब स्वर्गारोहण को, जाने लगेंगे वे ब्राह्मण। तुमको ही सब दे देंगे, यज्ञ में जो भी बचेगा धन।।
इसलिये अब पुत्र तुम, उनके पास चले जाओ। निज पिता की आज्ञा पाकर, पुत्र ने वैसा ही किया।।
अंगिरस गोत्रीय ब्राह्मण वह, जब स्वर्ग को जाने लगे। यज्ञ से बचा सब धन वह, नाभाग को ही दे गए।।

नाभाग भी उस धन को, अभी लेने ही था लगा। उत्तर दिशा से कृष्ण वर्ण, का एक पुरुष वहां आ पहुँचा।।
उसने कहा इस यज्ञभूमि में, जो कुछ भी है शेष बचा। उस धन का स्वामी मैं हूं, उसपर तो है अधिकार मेरा।।
नाभाग ने उससे कहा, है ऋषियों ने मुझे धन यह दिया। इस कारण इस पल तो, है इसपर अधिकार मेरा।।
इस पर पुरुष वह बोल उठा, यह विवाद जो हमारा हुआ। तुमने पिता से ही जाकर, समाधान कराना है भला।।

तब नाभाग ने जाकर के, अपने पिता से प्रश्न किया। पिता ने उत्तर में उसको, यह कथा फिर दी सुना।।
एकबार दक्ष प्रजापति के, यज्ञ में ऋषियों ने था कहा। यज्ञभूमि में जो भी बचे, है रुद्र देव का वह हिस्सा।।
इस कारण यह धन जो बचा, महादेव को ही मिले। वह ही तो सच्चे अधिकारी, हैं इस यज्ञशेष के।।

नाभाग ने जा उस कृष्ण वर्णीय, रुद्र प्रभु को प्रणाम किया। और विनम्र भाव से, उनसे फिर वह यूं बोला।।
यज्ञभूमि की सब वस्तुओं, पर अधिकार है आपका। मेरे पिता ने हे प्रभु, मुझको है ऐसा ही कहा।।
हे देव मुझसे तो, अपराध आपके प्रति हुआ। सीस झुकाये चरण पड़ी, हूं क्षमा आपसे मांग रहा।।

तब भगवान रुद्र ने, सप्रेम उसे यह वचन कहा। धर्म के अनुकूल ही, निर्णय तेरे पिता ने दिया।।
और तुमने भी मुझसे, सत्य ही है कह दिया। वेदों के ज्ञाता हो तुम, अब ब्रह्म तत्व तुम्हें दूंगा बता।।
महा यज्ञ में शेष जो, बचा हुआ मेरा अंश है। वह धन भी तुम्हें देता हूं, जो धर्म से मेरा अंश है।।
स्वीकार करो अब इसको तुम, इतना श्री रुद्र ने कहा। सत्य प्रेमी प्रभु रुद्र का, फिर रूप अन्तर्धान हुआ।।

एकाग्र चित्त हो प्रात: सायं, याद करे जो यह आख्यान। प्रतिभाशाली वेदज्ञ वह हो, संग निज स्वरूप को भी ले जान।।
नाभाग पुत्र हुए अम्बरीष, प्रभु प्रेमी उदार महात्मा थे। जो ब्रह्म शाप कभी न बदले, वह भी अम्बरीष को छू न सके।।
राजा बोले,
परम ज्ञानी अम्बरीष का, चरित् मैं सुनना चाहता हूँ। अटल शाप दिया ब्राह्मण जो, उसकी मैं जानना चाहता हूं।।
किन्तु वह ब्राह्मण शाप भी, स्पर्श न उनको कर पाया। कैसे सम्भव यह हुआ, बिगाड़ न उनका कुछ पाया।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् अम्बरीष तो, थे अत्यन्त भाग्यवान। सप्तद्वीप की अचल सम्पद्, अतुल्य ऐश्वर्य था उनपे महान्।।
साधारण जीवों के लिये, यद्यपि हैं यह अति दुर्लभ। फिर भी इन सबको जाने थे, राजा अम्बरीष तो स्वप्नवत्।।

वह इन सबकी वास्तविकता, भली भाँति पहचाने थे। जिनका लोभ है नरक द्वार, क्षणभंगुर उन्हें वह जाने थे।।
है चार दिन की चान्दनी, प्रकाश है उसका बुझा हुआ। निश्चित ही जो छुट जायेगा, अब उसके लोभ का लाभ क्या?
श्री कृष्ण और उनके प्रेमी, साधुओं से उनका प्रेम था। अतिभाग्यवान् वह जीव है, जिस दुर्लभ प्रेम को प्राप्त किया।।
यह सारा विश्व और इसकी, जितनी भी धन और सम्पदा है। उसके लिये तो यह सारा, माटी का ही इक ढेला हे।।

निज मन को श्री कृष्ण के, चरणारविन्द में टिकाया था। वाणी को भी हरि गुण के, वर्णन और गान लगाया था।।
हाथों से प्रभु मन्दिर का, सेवन् मार्जन वह सदा करते। और श्रवण के राही वह, नित् मंगलमयी कथा सुनते।।

नेत्रों से मन्दिर और प्रभु, का नित्य ही वह करते दर्शन। अंग अंग से भगवद्भक्तों, का करते वह तनो स्पर्शन्।।
प्रभु के चरण कमल पे चढ़ी, तुलसी सुगन्ध ले नासिका में। प्रभु अर्पित नेवैद्य में थे, रसना को संलग्न किये।।
चरण कमल अम्बरीष के, प्रभु के तीर्थ में जाते थे। और सीस प्रभु चरण में ही, थे वे सदा झुकाये रहते थे।।
माला चन्दन आदि की, भी जो भोग सामग्री थी। श्री हरि के चरणों में ही, अर्पित थी उन्होंने करी।।
भोग की इच्छा थी नहीं, भगवत्प्रेम ही चाहे थे। प्रभु भक्तों के जो हृदय बसे, वह उस ही प्रेम के याचक थे।।

इस भाँति सब ही कर्म, समर्पित थे हरि चरण में। यज्ञपुरुष इन्द्रिय अतीत, सर्वात्म रूप उन्हें जान के।।
भगवद्भक्त ब्राह्मणों की, आज्ञा के अनुसार ही। पृथ्वी पर थे शासन करते, वह धर्म अनुसार ही।।

धन्व नामक निर्जल प्रदेश में, सरस्वती के सामने। वसिष्ठ असित गौतम आदि, भिन्न भिन्न आचार्यों से।।
महान् ऐश्वर्यों के हेतु, सर्वाङ्ग से जो पूर्ण थे। महादक्षिणा वाले अनेकों, अश्वमेध उन्होने यज्ञ किये।।
यज्ञ अधिपति श्री हरि की, अराधना उन्होंने थी करी। इस विधि अनेकों ही, यज्ञों की थी अनुष्ठान करी।।

देवों के संग ऋत्विज और, सदस्य थे जब बैठते। उनके यज्ञों को फिर सब, निर्निमेश हो देखते।।
सुन्दर वस्त्र और वैसे ही, सुन्दर रूप के कारण सब। देवों समान ही दर्शाते, जो विद्यमान् वहां होते तब।।
महात्मन् द्वारा गाये गए, प्रभु चरित कभी तो प्रजा सुनती। अन्यथा अपने कण्ठ से ही, गान कभी वह किया करती।।
इस कारण उनके राज्य के, जीव अति सन्तुष्ट थे। स्वर्ग की भी न कामना थी, वह भगवत्प्रेम में मस्त थे।।

अनन्त प्रेम के दाता प्रभु, सदा उनके हृदय में रहते थे। उनके दर्शन ही सदा, निज आन्तर में वह करते थे।।
भोग सामग्री इस कारण, आकर्षित कभी न कर पाती। अति दुर्लभ जो सिद्धों के लिये, वह भी न थी उनको भाती।।
आत्म आनन्द के सामने, अति क्षुद्र ही थे सब दर्शाते। भोगैश्वर्य उनके राज्य में, तिरिस्कृत ही निज को पाते।।

इस विधि राजा अम्बरीष, थे तपवान् और भक्ति युक्त। प्रजापालन को स्वधर्म जान, करते श्री हरि को वह तुष्ट।।
शनैः शनैः सब भाँति की, आसक्ति का परित्याग हुआ। इस विधि अम्बरीष की, प्रभु में दृढ़ अनुराग बढ़ा।।
गृह द्वारा सुत सम्बन्धी, रथ हाथी सेना चतुरंगी। अक्षय रत्न भूषण आयुध, और वस्तु सब रंग रंग की।।
और कभी समाप्त जो न होएं, अस कोशों के सम्बन्ध में। दृढ़ निश्चय यह थाउनका, यह सबके सब ही असत्य रहें।।

उनकी अनन्य प्रेमा भक्ति, से श्री हरि प्रसन्न हुए। संरक्षण तो इस चक्र को, सुदर्शन निज नियुक्त किए।।
विरोधी तो इस चक्र से, सदैव ही भयभीत रहें। भगद्भक्तों की सदा, रक्षा यह करता रहे।।

राजा अम्बरीव की पत्नी भी, थी उन समान ही गुणवान। उन समान ही धर्मशील, विरक्त और अति भक्तिमान्।।
एकबार निज पत्नी सहित, श्री कृष्ण अराधना में थे लगे। वर्ष पर्यन्त द्वादशी प्रधान, एकादशी व्रत धारी वह हुए।।

व्रत सम्पूर्ण जब हुए, कार्तिक के पावन मास में। तीन रात्रि के लिये, थे उन्होंने उपवास किये।।
इक दिन यमुना में स्नान कर, मधुवन में प्रवेश किया। श्री कृष्ण की अराधना को, उन्होंने था यह देश चुना।।

महाभिषेक की विधि का, फिर उन्होंने अनुसरण किया। सब सम्पद् सामग्री ले, श्री हरि का उन्होने अभिषेक किया।।
तन्मय होकर श्री हरि में, वस्त्र आभूषण माला आदि। अर्ध्यादि सब देकर के, श्री हरि चरण की पूजा करी।।
महाभाग ब्राह्मणों को, थी नहीं जरूरत पूजा की। पूर्णकाम थे स्वयं हुए, सिद्धि प्राप्त थी हो चुकी।।
फिर भी अति भक्ति भाव से, राजा ने पूजा उनकी करी। सुस्वादु और गुणकारी, भोजन ब्राह्मणों को उन्होने दी।।
फिर उनके घर भेज दिया, साठ करोड़ गायों को। उन सबके सींगों पर भी, स्वर्ण था मण्डित किया।।
और चरण में उन सबके, चान्दी के दिये थे खुर बना। सुन्दर वस्त्र ओढ़ाकर के, सुस्सजित था उनको किया।।
सुशील और सुकुमार, उन गायों के रूप थे। अति सुन्दर और दुधारू थीं, और बछड़े भी उन संग थे।।
साथ में दुग्ध को दोहने की, सारी सामग्री भी दे दी। दक्षिणा यह अम्बरीष ने दी, यह उसकी ही महिमा थी।।

जब ब्राह्मणों को सब मिल चुका, राजा ने उनसे ली आज्ञा। व्रत पूर्णता की तैयारी, में था राजा स्वयं लगा।।
शाप और वर देने में, थे सामर्थ श्री दुर्वासा। राजा के यहां अतिथि बन, फिर उन्होंने प्रवेश किया।।
उनको देखते ही राजा, अम्बरीष उठ खड़े हुए। विधिवत् पूजा की उनकी, और आसन भी उनको दिये।।
उनके श्री चरणों में फिर, राजा ने प्रणाम किया। इस विधि ऋषिवर को, उन भोज का आमन्त्रण दिया।।

अम्बरीष की प्रार्थना को, ऋषि दुर्वासा ने लिया मान। नित्य कर्म निवृत्ति हेतु, नदी तट को किया प्रस्थान।।
परं ब्रह्म के ध्यान में, दुर्वासा नित्य निमग्न थे। इस विधि यमुना जी में, विधिवत् उन्होंने स्नान किये।।
दूजी ओर द्वादशी भी, थी घड़ी मात्र ही शेष रही। राजा ने धर्म संकट देखी, ब्राह्मणों से परामर्श करी।।

हे ब्राह्मणों जानूं मैं, बिन ब्राह्मण को भोजन दिये। स्वयं अन्न भक्षण करना, या रहना बिन द्वादशी पराण के।।
दोनों ही तो दोष बनें, इस कारण अब आप कहें। कोई ऐसी विधि मुझे, न मुझको कोई पाप लगे।।
ब्राह्मणों के संग मिल करी, तब ऐसा उन विचार किया। जल का पान कर लेने का, श्रुति ने है विधान दिया।।
वह भोजन करना भी है, और नहीं भी है भोजन करना। इसलिये केवल जल ही, लेकर पराण मैं कर लूंगा।।

ऐसा निश्चय करके उन, मन ही मन प्रभु को याद किया। विधि विधान भी बना रहे, इस कारण जल पी लिया।।
एकाग्र मनी होकर वह फिर, राह दुर्वासा की देखते थे। उनके पुनरागमन पर, अम्बरीष के थे अब ध्यान टिके।।

आवश्यक कर्म से हो निवृत्त, दुर्वासा यमुना से लौटे। राजा ने आगे बढ़कर के, अभिनन्दन ऋषिवर के किये।।
अनुमान से ही उन समझ लिया, राजा ने पराण कर लिया। उस समय दुर्वासा को, भूख ने था व्याकुल किया।।
राजा ने पराण किया, अति क्रुधित हुए यह जान के। भौंहें उनकी चढ़ गई, मुख भी अति विकृत हुए।।
करबद्ध खड़े अम्बरीष पर, क्रोध बाण उन छोड़ दिया। थर थर क्रोध से काँपे थे, अति कटु वचन राजा को कहा।।

दुर्वासा बोले,
देखो तो अति कुटिल यह, है धन के मद में मत्त हुआ। भक्ति भाव कहीं निकट नहीं, निज को समर्थ है मान रहा।।
धर्म उल्लंघन कर इसने, है अति अन्याय किया। अतिथि बन कर मैं आया, आमन्त्रण भी इसने दिया।।
फिर भी मुझे खिलाये बिना, पहले ही इसने खा लिया। देखो इसकी धृष्टता का, अभी मैं इसको फल दूँगा।।

शुकदेव बोले,
ऐसा कहते कहते ही, क्रोध की ज्वाला जल उठी। जटा उखाड़ अम्बरीष के, हनन को कृत्या उत्पन्न की।।
प्रलय काल की अग्नि के, समान ही थी वह धधक रही। हाथ में तलवार लिये, अम्बरीष पर वह टूट पड़ी।।
उसके चरण की थाप से, उस पल थी पृथ्वी कांप रही। किन्तु उसका दर्शन पाकर, नहीं मन विचलित राजा की हुई।।
इक पग भी पीछे नहीं हटे, वह तो ज्यों के त्यों खड़े रहे। उनके भाव तो श्री हरि की, भक्ति में थे लगे हुए।।

श्री हरि ने भी अपने सेवक, की रक्षा करने के लिये। सुदर्शन चक्र तो पहले से, ही नियुक्त थे किए हुए।।
फुंकारते हुए क्रुध सर्प को, अग्नि ज्यों भस्मीभूत करे। त्यों ही ऋषि की कृत्या को, तत्क्षण चक्र विदग्ध किये।।

श्री दुर्वासा ने जब देखा, मेरी कृत्या को तो जला दिया। और प्रभु का सुदर्शन यह, अब मेरी ओर है आ रहा।।
अति भयभीत हो तब ऋषि, निज प्राण बचाने के लिये। पूर्ण बल लगा अपना, वहां से भागने वह लगे।।
ज्वलशील दावानल ज्यों, सर्प के पीछे ही हो ले। त्यों ही प्रभु के चक्र ने भी, दुर्वासा का अनुगमन किये।।
जब दुर्वासा ने देखा, चक्र तो मेरे पीछे लगा। सुमेरु की गुहा में तब प्रवेश करना उसे चाहा।।

दिशा आकाश पृथ्वी अतल, वितल आदि सब लोकों को। समुद्र लोकपाल और उनसे, रक्षित ही सब लोकों को।।
स्वर्ग तक भी गए ऋषि, पर जहां जहां भी वह गए। सुदर्शन तो पीछे ही था, उनको यह दर्शन हुए।।

जब कहीं पर भी उन्हें, रक्षक कोई नहीं मिला। तब तो उनका हृदय भी, और अधिक भयभीत हुआ।।
शरण ढूंढते ढूंढते वह, फिर श्री ब्रह्मा के पास गए। देव शिरोमणि ब्रह्मा से, तब दुर्वासा जा यूं बोले।।
स्वयंभू आप हैं श्री ब्रह्मा, आप ही मेरा रक्षण करें। प्रभु के तेजोमय चक्र से, आप ही मुझे बचा सकें।।

ब्रह्मा बोले,
दो परार्ध की आयु जब, मेरी समाप्त हो जायेगी। काल स्वरूप प्रभु द्वारा, सृष्टि यह समेटी जायेगी।।
जब वे ही स्वयं इस जगत् को, प्रलय अग्नि में जलायेंगे। उनके भ्रू भंग से जगत् सहित, मम लोक भी लय हो जायेंगे।।
श्री शंकर भृगु दक्ष आदि, सब के सब ही हैं जो प्रजापति। जिनके नियमों से हैं बन्धे, भूतेश्वर देव और मैं भी।।
जिनकी आज्ञा पाकर के सब, संसार के हित में हैं लगे। उनके भक्त के द्रोही का, रक्षण नहीं हम कर सकें।।

रुद्र बोले,
जिन अनन्त परमेश्वर में, ब्रह्मा जैसे बसें लोकपाल। उनके उपाधि भूत कोश, अनन्त ही वहां पे करते वास।।
इस ब्रह्माण्ड समान ही, ब्रह्माण्ड अनेकों उत्पन्न हों। और समय के आने पर, उनमें ही पुन: लय सब हों।।
हम जैसे अनेकों ही, परिक्रमा करें जिनकी सदा। उन प्रभु के सम्बन्ध में, हम क्या कर सकते हैं भला?

मैं सनत्कुमार और नारद, प्रभु ब्रह्मा और श्री कपिल देव। अपरान्तरतम देवल धर्म, मरीचि आसुरि आदि सिद्ध देव।।
हम सब ही भगवान की, माया को कभी न जान सकें। क्योंकि हम सब तो माया के, घेरे में ही घिरे रहें।।
उन्हीं श्री विश्वेश्वर का, आयुध है यह सुदर्शन चक्र। असह्य है यह हम सबके लिये, नहीं है हमारी कोई सामर्थ।।
उन्हीं प्रभु की शरण में, हे ऋषिवर अब जाओ तुम। वही मंगल आपका कर सकें, वहीं पे त्राण अब पाओ तुम।।

शुकदेव बोले,
वहां से भी निराश हो, बैकुण्ठ धाम दुर्वासा गए। श्री लक्ष्मी के साथ वहां, लक्ष्मीपति स्वयं निवास करें।।
दुर्वासा तो श्री हरि के, चक्र की आग में जल थे रहे। कांपते हुए वह श्री हरि के, चरण में जाकर गिर गए।।
प्रभु से उन्होंने फिर कहा, हे अच्युत हैं अनन्त आप। सन्तों के एकमात्र आश्रय, हैं उनके सदा वांछनीय आप।।
हैं विश्व के जीवनदाता आप, हूं अपराधी मैं आपका। रक्षण मेरा आप करें, प्रभु मैं आपकी शरण पड़ा।।

आपके परम प्रभाव से, हे हरि मैं अनभिज्ञ था। आपके प्रिय भक्त प्रति, है मैंने अपराध किया।।
हे हरि इक आप ही, मुझको अब बचा सकें। आपके नामोच्चारण से तो, नारकी जीव भी मुक्त भएं।।
भगवान बोले,
हे दुर्वासा तुम जान यह लो, हूं सर्वथा भक्तों के अधीन। स्वतंत्र नहीं हूं तनिक भी मैं, आर्जव भक्तों का पराधीन।।
मेरे हृदय को तो उन्होंने, है अपने वश में कर लीया। वे मुझसे ही सदा प्यार करें, मैं भी हूं उनके प्यार बन्धा।।

अपने भक्तों का एकमात्र, आश्रय इक मैं ही हूं द्विजवर। नहीं किसी को भी चाहूं, साधु स्वभाव निज भक्त छोड़।।
न तो अपने को ही चाहूं, न अविनाशी निज लक्ष्मी को। मेरा तो हर स्वास स्वास, मेरे भक्त के ही अधीन हो।।

निज स्त्री पुत्र गृह गुरुजन, इहलोक परलोक प्राण और धन। यह सब छोड़ के जो भक्त हुए हैं मेरे शरणापन्न।।
उनको छोड़ने का तो मैं, संकल्प भी कभी न कर सकूं। उनकी रक्षा के लिए, सदा ही मैं तत्पर रहूं।।

सती साध्वी नारी ज्यों, करे वश में पति सतीत्व से। वैसे ही निज हृदय को, जो मेरे प्रेम में बान्ध दें।।
वह समदर्शी साधु तो, निज भक्ति से मुझे वश में करें। अनन्य प्रेमी मेरी सेवा से, ही कृत्कृत्य निज को मानें।।
फल स्वरूप सालोक्य सारूप्य, आदि मुक्ति उन्हें प्राप्त हो। उन सबको भी मेरे भक्त, त्याज्य ही हैं माने जो।।
फिर क्षणभंगुर इस जग की, वस्तु वह जन क्या चाहेंगे? हर सिद्धि जो प्राप्त भी हो, मम चरण में धरते जायेंगे।।

हे मुनिवर अब और क्या, कहूं मैं आपसे कहो? मेरे प्रेमी भक्त तो जान लें, मेरा अपना आप ही हो।।
मैं स्वयं ही उन प्रेमी जन, का हृदय ही बन जाऊँ। न मेरे सिवा वह जानें कुछ, न उन्हें छोड़ कुछ मैं जानूं।।
हे ऋषिवर अब आप सुनें, एक उपाय बताता हूं। जिसके अनिष्ट के कारण यह, आई आपत्ति सुझाता हूं।।
अब उसके पास ही जायें आप, वह ही दु:ख निवृत्त कर सके। निरापराध के अनिष्ट से तो, केवल अमंगल हो सके।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, हैं तप विद्या कल्याण साधन। किन्तु विपरीत ही फल दें यह, उद्दण्डी गर भए ब्राह्मण।।
कल्याण हो आपका हे ऋषिवर, नाभाग सुत पे जायें आप। परम भाग्यशाली राजा, अम्बरीष से ही क्षमा चाहें आप।।
इससे ही आपपे जो आई, वह विपदा टल जायेगी। परम शान्ति जिसे कहें, आपके घर वह आयेगी।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् प्रभु ने जब, दुर्वासा को यह आज्ञा दी। सुदर्शन चक्र की ज्वाला से, तन उनकी थी जल रही।।
अति व्यथित होकर के वह, राजा अम्बरीष के पास लौट आये। व्यथित मनी दुर्वासा ने, राजा के चरण पकड़े।।
यह चेष्ठा देख के ऋषिवर की, निज चरण पड़ा उनको देखी। अति लज्जित हुए अम्बरीष, प्रभु चक्र की स्तुति करी।।
करुणावश उनका हृदय, अति पीडित था हो गया। दुर्वासा प्रति करुणा का, स्त्रोत हो मानो बह निकला।।
अम्बरीष बोले,
अग्नि स्वरूप हैं चक्र हे, हैं आप ही परम सामर्थ सूर्य। नक्षत्र नाथ श्री चन्द्र भी, आपके ही तो हैं स्वरूप।।
जल पृथ्वी वायु अग्नि, तेज भी तो आप हैं। पंचतन्मात्रा और सब, इन्द्रिय रूप भी आप हैं।।

सहस्त्रधार प्रभु के प्रिय, मैं नमस्कार करूं आपको। सब अस्त्र शस्त्र के संहारक, पृथ्वी रक्षक इक आप ही हो।।
इन ब्राह्मण देव की, अब आप ही रक्षा कीजिये। हैं धर्म आप सत्य वाणी, मधुर रूप हैं आप ही हे।।
सब यज्ञों के अधिपति, यज्ञ रूप भी आप हैं। सब लोकों के हैं रक्षक आप, और सर्वलोक भी आप हैं।।
परम पुरुष परमात्म के, श्रेष्ठ तेज हैं आप प्रभो। आप ही तो सब धर्म की, मर्यादा का रक्षण करो।।
अधर्माचारी असुरों को, आप ही भस्मीभूत करें। उनके नाश को हे प्रभु, आप ही अग्नि रूप धरें।।
विशुद्ध तेजोमय हैं आप, त्रिलोकी के प्रभु रक्षक हैं। मन समान गतिवान् हैं, और आपके कर्म भी अद्भुत हैं।।
नमस्कार करूं आपको, विशुद्ध तेजोमय हे प्रभो। स्तुति मैं करना चाहूं प्रभु, पर वाणी में सामर्थ न हो।।

वेदवाणी के अधीश्वर आप, धर्म तेज से तिमिर हो नाश। आप ही सूर्य महात्मन् का, रक्षण करें सारा प्रकाश।।
आपकी महिमा का प्रभु, पार कोई न पा सके। ऊंच नीच और न्यून श्रेष्ठ के, भेद में जग यह पड़ा रहे।।
कार्य कारण रूप यह जग, है आपका ही स्वरूप हे। हे चक्रवर आप पर, कोई विजय प्राप्त न कर सके।।
निरंजन श्री हरि जब भी, आपका प्रयोग करें। दैत्य दानवों की सेना में, जब भी आप प्रवेश करें।।
रणभूमि में उनकी भुजा, उदर जंघा चरण मूर्धा। निरन्तर आप ही छिन्न करें, अनुपम हो आपकी श्री शोभा।।

सारे विश्व के रक्षक आप, कोई आपका कुछ न बिगाड़ सके। रणभूमि में तो प्रभु, सबके आप प्रहार सहें।।
दुष्टों के नाश हेतु ही, गदाधर हरि नियुक्त किया। कृपा करें प्रभु हमारे ही, कुल का भाग्य उदय होगा।।
श्री दुर्वासा का प्रभु, कल्याण आप ही करें जरा। आपका यह हमपर स्वामी, अति महान् अनुग्रह होगा।।

यदि प्रभु मैंने कभी, कोई यज्ञ अनुष्ठान किया। कुछ भी दान हो कभी दिया, या धर्म का हो पालन किया।।
यदि वंशज हमारे जो द्विज को जाने निज आराध्य। तो चक्रवर दुर्वासा की, जलन को आप ही लेवें हर।।
सब गुणों के एकमात्र, आश्रय हैं श्री हरि स्वयं। समस्त प्राणी के आत्म रूप में, यदि लिया हो उनके दर्शन।।
यदि मेरे हरि मुझसे, मुदित और प्रसन्न हों। तो हर लें वह स्वयं ही, दुर्वासा की सब जलन को।।
शुकदेव बोले,
चहुं ओर से दुर्वासा को, चक्र था जो जला रहा। अम्बरीष ने इस विधि, स्तुति गान जब उसका किया।।
उनकी प्रार्थना को सुनकर, चक्र शान्त वह हो गया। चक्र की अग्न से मुक्त हो, दुर्वासा का चित्त स्वस्थ हुआ।।

तब राजा अम्बरीष को, उत्तम आसीस वह देने लगे। आशीर्वचन उनको कहकर, स्तुति वह उनकी करने लगे।।
दुर्वासा बोले,
धन्य धन्य मैं आज हुआ, प्रभु प्रेमी भक्त की महिमा देख। मैं अपराधी हूं आपका, फिर भी मंगल मेरा रहे हैं कर।।
भक्त वत्सल श्री हरि के चरण, दृढ़ता से जिन्होंने पकड़े। कौन सा ऐसा कर्म है, उन्हें कठिन जो जान पड़े?
प्रेमी भक्त भगवान के, उदार हृदय ही हैं सदा। कौन सा विषय कहीं होगा, जिसका परित्याग उन्होने नहीं किया?

जिनके मंगल नामों का, श्रवण मात्र ही करे निर्मल। उन्हीं परम पावनी तीर्थ स्वरूप, श्री हरि चरण के हैं जो भक्त।।
उनके लिये भला कौन सा, कर्त्तव्य शेष है रह जाता? हे राजा अम्बरीष आपका, हृदय है करुणा से भरा।।
मुझपर महा अनुग्रह किया, मेरा अपराध भुला दिया। करुणावश ही आपने, की मेरे प्राणों की रक्षा।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् दुर्वासा जब, चक्र के भय से भागे थे। राजा अम्बरीष ने तब से ही, अन्न ग्रहण थे नहीं किये।।
उनके लौट आने की, बाट वह थे जोह रहे। अब ऋषि दुर्वासा के, चरण उन्होंने पकड़ लिये।।
प्रसन्न कर के ऋषिवर को, अब भोजन करवाया उन। इस विधि उस राजा ने, चुकाया था अपना यह ऋण।।

आदर सहित वह राजा फिर, भोजन सामग्री ले आये। अतिथि सत्कार के लिये, सब साधन उन्होंने जुटवाये।।
दुर्वासा भी भोजन पा, पूर्णतय: सन्तुष्ट हुए। सादर कहा फिर राजा से, अब आप भी भोजन कीजिये।।
हे राजन् आप तो, प्रभु के प्रेमी भक्त हैं। आपके दर्शन स्पर्शन् वाक्, करें मन प्रभु प्रवृत्त हैं।।
आपका आतिथ्य पा, अति अनुगृहीत हुआ हूं मैं। सम्पर्क जो पाया आपका, धन्य धन्य हुआ हूं मैं।।

स्वर्ग की सब देवांगनाएं, गान करेंगी चरित् का। करेगी धरा यह संकीर्तन, उज्ज्वल पुनीत कीर्ति का।।
दुर्वासा हुए अति सन्तुष्ट, स्तुति गान उन्होंने किया। राजा अम्बरीष के गुणों का, विस्तृत बखान उन्होंने किया।।
तत्पश्चात् उनकी अनुमति ले, ब्रह्म लोक की यात्रा की। आकाश मार्ग से गए वहां, निष्काम कर्म है राह जिसकी।।

सुदर्शन से भयभीत होई, दुर्वासा थे जब भागे। उनके लौट आने तक, एक वर्ष थे बीत चुके।।
इतने दिनों तक ऋषिवर की, प्रतीक्षा में अम्बरीष रहे। केवल जल का पान कर, ही थे जीवित वह रहे।।

दुर्वासा जब चले गए तब अन्न उन्होंने ग्रहण किया। ऋषि भोजन से शेष बचा, अति पावन अन्न उन्होंने लिया।।
अपने कारण ऋषिवर का, यूं कष्ट में पड़ जाना। और अपनी ही प्रार्थना से, इस कष्ट से उनका छुट जाना।।
यह दोनों ही बातें तो, उनके द्वारा थीं हुई। फिर भी राजन् अम्बरीष ने, इसमें प्रभु महिमा देखी।।

थे राजा अम्बरीष में, ऐसे ऐसे गुण महान्। अपने सारे कर्मों को ही, करते थे प्रभु की भक्ति जान।।
उनकी भक्ति का प्रभाव, तो ऐसा था विस्तृत हुआ। ब्रह्मलोक तक सभी लोक, नरक समान था समझता।।

राजा अम्बरीष के पुत्र भी, थे उन समान ही भक्त प्रवर। राज्य भार छोड़ा उनपर, स्वयं चले वह वन की ओर।।
धैर्ययुक्त होकर वहां, लगाया मन प्रभु चरणों में। गुण प्रवाह रूपा संसार, से मुक्त वह हो गए।।
महाराजा अम्बरीष का है, परम पावनी यह आख्यान। संकीर्तन और सिमरन् जो करे, प्रभु का भक्त वह हो महान्।।

४) मान्धाता और सौरभि ऋषि की कथा

शुकदेव बोले,
अम्बरीष के थे तीन पुत्र, केतुमान शम्भु विरूप। विरूप पुत्र पृष्दश्व था, और रथीतर हुआ उनका पुत्र।।
सन्तान विहीन रहा रथीतर, अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की। वंश परम्परा चलती रहे, यह ही उनका उद्देश्य था।।
उनकी कृपा से अनेकों ही, पुत्र उसकी पत्नी ने जन्मे। वे पुत्र सब ही उसके, ब्रह्म तेज से युक्त थे।।

रथीतर भार्या गर्भ से ही, जन्म इन सबका था हुआ। रथीतर के ही नाम से, गोत्र तो होना चाहिये था।।
फिर भी वे सब अंगिरस, गोत्रीय ही कहलाये। रथीतर के वंशजों में, सर्वश्रेष्ठ यह जाने गए।।
क्षेत्रोपेत यह ब्राह्मण थे, दोनों से था इनका सम्बन्ध। क्षत्रिय और ब्राह्मण गोत्र, दोनों का था इनमें अंश।।

एक बार मुनिवर ने, हे राजन् जब छींक दिया। उनकी नासिका से जानो, इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ।।
इक्ष्वाकु के पुन: हुए, पुत्र जो थे एक शत। उनमें से थे ज्येष्ठ तीन, विकुक्षि निमि और दण्डक।।

उनमें से जो पच्चीस पच्चीस, अनुजतम हुए राजन्। आर्यवर्त के पूर्व पश्चिम, के आधिपत्य से थे सम्पन्न।।
उपरियुक्त जिन तीन के, नाम हैं पहले कह दिये। वह तीनों मध्य भाग के, अधिपति नियुक्त हुए।।
शेष जो सन्तालीस रहे, उन्हें दक्षिण आदि प्रान्त मिले। इस विधि सब देश के, पुत्रों में उसने विभाग किये।।

एकबार इक्ष्वाकु ने, निज ज्येष्ठ सुत को आज्ञा दी। अष्टका श्राद्ध का अवसर था, जब उसने यह बात कही।।
हे विकुक्षे शीघ्र ही, अब तुम इक यह काम करो। पवित्र पशु मांस लाओ, श्राद्ध हेतु जो योग्य हो।।

साधु कह वीर विकुक्षु ने, फिर वन की यात्रा करी। श्राद्ध योग्य अनेकों ही, पशुओं की उस आखेट करी।।
श्रान्त था वह हो चुका, भूख से भी व्याकुल हुआ। है निषेध खुद खा लेना, श्राद्ध का पशु वह भूल गया।।
उनमें से इक खरगोश का, विकुक्षु ने भक्षण किया। बचा हुआ जो मांस था, लाकर वह पिता को दिया।।
इक्ष्वाकु ने निज गुरु से, अभिमन्त्रित करने को कहा। तब गुरु ने उस मांस को, अपावन श्राद्ध अयोग्य कहा।।

निज गुरु के बताने पर, निज पुत्र के कर्म का पता चला। अति क्रुध हुए यह जान कर, उसने है विधान अतिक्रमण किया।।
क्रोध में आ उन पुत्र को, निष्काषित किया देश से। तत्पश्चात् ज्ञान चर्चा, में लगे गुरु वसिष्ठ से।।
फिर योग विधि के द्वारा उन, नश्वर तन का त्याग किया। इस भाँति इक्ष्वाकु ने, परम पद को प्राप्त किया।।

पिता गए परलोक जान, लौटा विकुक्षु देश को। पृथ्वी पर शासन किया, किए यज्ञ महान् अराधन को।।
संसार में शशाद के, नाम से वह विख्यात हुआ। पुरंजय ही जानो राजन्, विकुक्षि सुत का नाम था।।
उसको कहे कोई इन्द्रवाह, और कोई कुकस्थ कहे। जिन कर्मों से यह नाम पड़े, अब उनको भी मुझसे सुन ले।।

सत्युग के अन्त का, ही जानो समय वह था। देवों और दानवों का, जब अति घोर संग्राम हुआ।।
सबके सब ही देव तब, थे दैत्यों से हार गए। वीर पुरंजय को सहायता, हेतु मित्र अपने किये।।

तब पुरंजय ने कहा, युद्ध तो हूं मैं कर सकता। यदि देवेन्द्र बने वाहन, तब ही तो सम्भव यह होगा।।

पहले तो इन्द्र ने, इस शर्त को अस्वीकार किया। किन्तु देवों के परम आराध्य, हरि की बात वह मान गया।।
एक महान् वृषभ का, रूप इन्द्र ने धर लिया। प्रभु विष्णु ने भी पुरंजय, को शक्ति से भर दिया।।
कवच पहन कर फिर उसने, दिव्य धनु: धारण किया। तीक्ष्ण बाणों से उसका, तरकश भी था भरा हुआ।।
तत्पश्चात् बैल पे चढ़, वह उसकी डील पे बैठ गया। इस विधि जब युद्ध के, लिये वह तत्पर था हुआ।।
देवगण सब मिल करी, उसकी स्तुति करने लगे। देवों को ले संग उसने, पश्चिम से दैत्य सब घेर लिये।।

दैत्यों संग पुरंजय का, रोमांचकर हुआ घोर युद्ध। जो जो दैत्य सम्मुख आया, यम की नगरी को भेजा उस।।
उसके बाणों की वर्षा थी, प्रलय की मानो अग्न जलती। जो भी सम्मुख आता उसके, थी छिन्न भिन्न उसको करती।।
दैत्यों का सारा साहस, क्षीण पूर्णतय: ही हुआ। सभी ने रणभूमि को छोड़, ली अपने अपने घर की राह।।

पुरंजय ने उनका नगर, धन ऐश्वर्य सभी जीता। और वह सब कुछ जीतकर, इन्द्र को ही दे दिया।।
उस राजर्षि ने पुर जीता, इस कारण वह पुरंजय हुआ। इन्द्र बना वाहन उसका, सो इन्द्रवाह वह कहलाया।।
उस युद्ध में बैल की, कुकुद पर व था बैठा। इस कारण ही कुकुदस्थ, एक नाम उसका हुआ।।

पुरंजय का था पुत्र अनेना, उसका पुत्र फिर पृथु हुआ। पृथु का पुत्र था विश्वरन्धि, उसका पुत्र पुन: चन्द्र हुआ।।
चन्द्र का पुत्र था युवनाश्व, और उसका पुत्र हुआ शाबस्त। सुन्दर शाबस्ती पुरी का, वह ही तो था संस्थापक।।
शाबस्त पुत्र हुआ बृहदश्व, और उसका पुत्र था कुवलयाश्व। महाबली थे सबके सब, उत्तम ऋषि को किया प्रसन्न।।
इक्कीस सहस्र निज पुत्रों को, अपने संग में लेकर के। धुन्धु नामक दैत्य के, फिर इन्होंने थे हनन किये।।

इस कारण नाम उनका, धुन्धुमार ही हो गया। धुन्धु के मुख की आग ने, सब पुत्रों को जला दिया।।
केवल तीन ही बचे रहे, परीक्षित् तू यह जान ले। दृढ़ाश्व कपिलाश्व और, भद्राश्व ही उनके नाम थे।।
दृढ़ाश्व का पुत्र था हर्याश्व, उससे निकुम्भ का जन्म हुआ। निकुम्भ पुत्र बर्हणाश्व था, उसके यहां कृशाश्व हुआ।।
कृशाश्व का पुत्र था सेनजित्, उसे यहां युवनाश्व हुआ। युवनाश्व रहा सन्तानहीन, इस कारण वह अति व्यथित था।।
शतपत्नी निज संग ले, वनयात्रा को वह चला गया। वहां ऋषियों ने कृपा करी, यज्ञ उससे करवाया।।
पुत्र प्राप्ति हेतु ही, इन्द्रदेव का यज्ञ वह था। उस यज्ञ की भी जानो, है इक अद्भुत ही कथा।।
रात्रि समय इक दिन राजा, युवनाश्व प्यास से व्याकुल थे। यज्ञशाला में वह गए, पर ऋषिगण थे वहां सो रहे।।
जल मिलने का जब कोई, अन्य उपाय न देखा। तब मन्त्रों से अभिमन्त्रित, जल का उन्होंने पान किया।।

प्रात:काल जब ऋषि उठे, उन देखा कलश में जल ही नहीं। कहा किसने है यह काम किया, पुत्र उत्पादक जल यह पी?
अन्त में उन्होंने यह जाना, श्री हरि की ही यह प्रेरणा थी। राजा युवनाश्व ने ही स्वयं, अभिमन्त्रित वह जल थी पी।।
प्रभु के चरण में नमन करी, धन्य धन्य उन्होंने कहा। प्रभु के बल में ही वास्तव, में सबका है बल भरा।।

तत्पश्चात् उचित समय, जब प्रसव का आ गया। दाहिनी कोख विदीर्ण कर, पुत्र युवनाश्व का जन्म हुआ।।
उसके रुदन को सुन कर, ऋषियों ने फिर यह कहा। यह शिशु तो दुग्धपान, को है व्याकुल हो रहा।।
अब किसका दूध पियेगा यह, तो इन्द्र ने कहा मां धाता। वत्स तू मत रोना अब, कही तर्जनी को मुंह में डाला।।

ब्राह्मण जन और देवों का, था ऐसा प्रसाद मिला। पिता युवनाश्व न मृत हुआ, वहीं तप करके वह मुक्त हुआ।।
हे राजन् फिर इन्द्र ने, नाम दिया उसे त्रसदस्यु। उद्विग्न और भयभीत थे सब, उससे रावण आदि दस्यु।।
युवनाश्व पुत्र मान्धाता वह, चक्रवर्ती सम्राट हुए। सम्पन्न थे प्रभु के तेज से, वह तो महातेजस्वी थे।।
सातों द्वीपों वाली इस, धरा पे उन शासन किया। सारी पृथ्वी पर उनका, एक छत्र ही राज्य था।।

यद्यपि आत्म ज्ञानी थे, नहीं कर्म काण्ड आवश्यक था। फिर भी महा दक्षिणायुक्त, यज्ञों से प्रभु पूजन किया।।
यज्ञ स्वरूप स्वयं प्रकाश, सर्व वेद स्वरूप हैं जो। सर्वात्मा प्रभु स्वयं हैं, और हैं इन्द्रिय अतीत वो।।
श्री हरि के अतिरिक्त और, है क्या कहीं पे अन्य कुछ? यज्ञ सामग्री मन्त्रविधि, यज्ञ यजमान या ऋत्विज?
धर्म देश और काल सब, प्रभु का ही तो स्वरूप हैं। भिन्न भिन्न जो भास रहे, सब प्रभु के ही तो रूप हैं।।

जहां से सूर्य उदय होता, और जहां पे जा अस्त होता। वह सारा भूभाग ही, मान्धाता के अधिकार में था।।
शशीबिन्दु पुत्री बिन्दुमति, थी मान्धाता की पत्नी। उसके गर्भ से त्रै पुत्रों, ने थी पुनश्च जन्म ली।।
नाम थे उनके पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द। पचास बहिनों ने इनकी, किया ऋषि सौरभि वरण।।

परम तपस्वी सौरभि ने, यमुना जल में डुबकी लगा। तपस्या करने के लिये, जल में आसन ग्रहण किया।।
वहां देखा इक मत्स्यराज, अपनी अनेकों पत्नियों संग। महासुख से है रह रहा, मुनि का ध्यान हुआ तब भंग।।

उसके इस सुख को देखकर, ब्राह्मण भी विचलित हुआ। सौरभि के मन में फिर, उठी विवाह करने की चाह।।
राजा मान्धाता के पास, उस अपने मन की बात कही। उन्होने पचास सुताओं में से, इक कन्या उस मांग ली।।
राजा ने उससे कहा, हे द्विजवर स्वयंवर में। जो कन्या आपका वरण करे, उसको ही आप ले लें।।

राजा मान्धाता का आन्तरिक, अभिप्राय ऋषिवर समझ गए। उन्होने सोचा उत्तर यह दिया, क्योंकि हम बूढ़े हो चुके।।
तन में हैं झुर्रियां पड़ीं, बाल भी मेरे श्वेत हुए। सिर भी है मेरा काम्प रहा, नहीं प्रेम कोई नारी करे।।
अच्छी बात है रूप निज, ऐसा सुन्दर मैं बनाऊँगा। राजसुताएं तो दूर रहीं, देवांगना भी ललचाऊँगा।।
उनके मन में जिस पल ही, भाव था ऐसा उठ गया। सर्वसामर्थ सौरभि ने, वैसा ही फिर रूप धरा।।

फिर क्या था अन्त:पुर का, रक्षक भी भरमा गया। सौरभि को कन्याओं के, सुस्सज्जित महल में ले गया।।
उन पचास कन्याओं ने, सौरभि को निज पति वरा। सबका मन ही सौरभि, के प्रति अति आसक्त हुआ।।
परस्पर प्रेम भाव को, तिलांजलि सब बहिनों ने दी। सौरभि को पति रूप में, पाने की थी होड़ लगी।।
इक दूजे से यूं कहने लगीं, नहीं तुम्हारे योग्य यह है। हर ही कन्या यह माने थी, यह तो बस मेरे योग्य ही हैं।।

ऋग्वेदीय सौरभि ने, उन सबका पाणिग्रहण किया। उनकी अपार तपस्या का, तो प्रभाव अतुल्य ही था।।
अनमोल सामग्री से सजे, अनेकों वहां पर उपवन थे। वहां के सब सरोवर भी, निर्मल जल से परिपूर्ण थे।।
महल भी अति सुरभित पुष्पों, की वाटिका से थे सजे। बहुमूल्य शैया आसन वस्त्र, बहुमूल्य स्नान अनुलेपन थे।।
सुस्वादु भोजन भी था, पुष्पमालायें भी थीं सर्जी। निज पत्नियों संग वहां, नित्य विहार उनकी होती।।
स्त्री पुरुष सब सुन्दर ही, वस्त्र वहां धारण करते। सौरभि ऋषि की सेवा में, तत्पर वह हर क्षण रहते।।

कहीं थे पक्षी चहकते, तो भंवरों की कहीं गुंजन थी। कहीं बन्दीजन की बिरदावली, की ध्वनि थी गूंजती।।

समद्वीपवती पृथ्वी के, स्वामी थे श्री मान्धाता। सौरभि के गृहस्थ सुख, ने आश्चर्य से उन्हें भरा।।
सर्वभौम सम्पत्ति के, स्वामी होने का गर्व जो था। सौरभि का वैभव देखी, क्षण में वह जाता रहा।।
इस भाँति श्री सौरभि, गृहस्थी के सुख में रमे। अपनी स्वस्थ इन्द्रियों से, विषयों का सेवन करते रहे।।
फिर भी ज्यों घृत की बून्दें, अग्नि को तृप्त न कर सकें। उसी विधि यह विषयभोग, सन्तुष्ट न उनको कर सके।।

इक दिन यह ऋग्वेदी मुनि, स्वस्थ चिति थे बैठै हुए। अपनी ही इस अवस्था के, आभास से वह चैतन्य हुए।।
मत्स्य राज का क्षणभर का, ही तो संग था मैंने किया। अपना तप और अपना आप, भी किस विध मैंने खो दिया।।

मन ही मन वह सोचने लागे, अरे मैं तो बड़ा तपस्वी था। भली भाँति अपने सभी, व्रतों का था अनुष्ठान किया।।
अध: पतन मेरा देखो, कहां से कहाँ मैं जा पहुंचा। दीर्घ काल से ब्रह्म तेज, मेरा तो अक्षुण्ण था।।
जल के भीतर विचरती, इक मछली का संसर्ग हुआ। इक पल में वह ब्रह्म तेज, सम्पूर्ण मेरा नष्ट हुआ।।

अत: मुमुक्षु के लिये, है यह अति अनिवार्य ही। भोगी जीवों का संग त्यजे, न इन्द्रियां बहिर्मुखी हों कभी।।
एकाकी ही रहकर के, एकान्त में प्रभु का ध्यान करे। यदि संग कहीं करना चाहे, अनन्य प्रेमी साधुओं से करे।।

मैं पहले एकान्त में ही, एकाकी तप में मग्न था। जल की मछली से संग हुआ, विवाह करके पचास हुआ।।
फिर सन्तान के रूप में, पचास सहस्त्र तक पहुंचा मैं। विषयों को सत् मान करी, माया गुण से हुआ भ्रमित मैं।।
अब तो लोक परलोक की, लालसा से है मन भरा। किसी विधि भी अब उनका, पार नहीं मैं पा सकता।।

शुकदेव बोले,
इसी विधि विचारवान् हुए, वह कुछ दिन तो घर में रहे। फिर हो विरक्त संन्यास लिया, और वह वन को चले गए।।
अपने पति को अपना, सर्वस्व थी जो मानती। उन भार्याओं ने भी फिर, वन में उनकी अनुगमन करी।।
वहां जाकर संयमी सौरभि, ने अति घोर तपस्या करी। अपने तन को क्षीण किया, आहवनीय अग्न आवाहन की।।
उन अग्नियों के संग ही, परमात्मा में वह जाय मिले। तन का संग उन छोड़ दिया, आत्म में वह एक हुए।।

उनकी पत्नियों ने राजन्, देखी गति निज पति की जब। ऋषि सौरभि की आध्यात्मिक, स्थिति का ज्ञान हुआ उन्हें तब।।
ज्यों प्रज्ज्वलित ज्वालायें, लय हों शान्त अग्नि में। त्यों ही ऋषि प्रभाव से, विलीन हुईं वह सब उनमें।।
सत सभी तब हो गईं, उनकी गति को प्राप्त हुई। इस विधि उन सबकी ही, सद्गति तब हो गई।।

५) राजा त्रिशंकु और राजा हरिश्चन्द्र की कथा

शुकदेव बोले,
वर्णन पहले हूं कर चुका, अम्बरीष थे मान्धाता सुत श्रेष्ठ। उनके दादा युवनाश्व ने, स्वीकार किया उसे पुत्र श्रेष्ठ।।
उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व, पुन: था उसका पुत्र हारित। मान्धाता के वंशज हुए, तीन आवन्तर गोत्र प्रतीक।।
नागों ने अपनी बहिना, नर्मदा का विवाह किया। पुरुकुत्स से ही उन्होंने, यह सम्बन्ध बना दिया।।

नागराज वासुकि की, जब उसको आज्ञा हुई। नर्मदा तब निज पति को, रसातल लोक में ले गई।।

प्रभु से शक्ति पाकर के, पुरुकुत्स ने इक करतब किया। हनन योग्य गन्धर्व जो थे, उन सबको उसने मार दिया।।
वासुकि ने प्रसन्न हो, पुरुकुत्स को यह वर दिया। जो याद करेगा यह प्रसंग, सर्पों से वह निर्भय होगा।।

राजा पुरुकुत्स के पुत्र का, त्रसदस्यु ही नाम था। अनरण्य हुआ पुत्र उसका, अनरण्य ने हर्यश्व जन्मा।।
उसका पुत्र था अरुण हुआ, अरुण के त्रिबन्धन हुआ। त्रिबन्धन पुत्र था सत्यव्रत, त्रिशंकु नाम से जाना गया।।
निज पिता और गुरु का शाप पा, चाण्डाल था वह हो गया। पर विश्वामित्र प्रभाव से, शरीर सहित वह स्वर्ग चला।।
देवों ने उसको वहां से, नीचे को धकेल दिया। सीस था नीचे को उसका, वहीं पे था वह लटक रहा।।
विश्वामित्र के तपोबल ने, आकाश में ही उसे स्थिर किया। अब भी आकाश में लटके हुए, दर्शन है उसका हो जाता।।

त्रिशंकु पुत्र थे हरिश्चन्द्र, वसिष्ठ और विश्वामित्र झगड़े। इक दूजे को शाप दे, दोनों ही पक्षी हो गए।।
बहुत वर्ष तक फिर दोनों, आकाश में ही लड़ते रहे। नि:सन्तान रहे हरिश्चन्द्र, इस कारण बहुत उदास थे।।
पाकर सम्मति नारद से, वह वरुण देव की शरण गए। उनके चरण में पुत्र प्राप्ति, की वह याचना करने लगे।।

हे वरुण देव तेरी कृपा से, गर पुत्र रत्न मैं पाऊँगा। यज्ञ पशु प्रभु उसको करी, यजन आपका कराऊंगा।।
वरुण ने कहा ठीक है यह, और वरदान उसे दे दिया। उनकी कृपा से हरिश्चन्द्र के, रोहित नामक पुत्र हुआ।।

पुत्र के उत्पन्न होते ही, वरुण वहां पे आ पहुंचे। कहा हरिश्चन्द्र अबतक तो तुमको, पुत्र रत्न यह प्राप्त हुए।।
इसके द्वारा ही आप अब, मेरा यजन करा ही दो। हरिश्चन्द्र ने तब कहा, जब दस दिन से अधिक यह हो।।
तब ही योग्य होगा यह देव, तभी तो यज्ञ यह सम्भव हो। जब दस दिन थे बीत गए, वरुण वहां पुन: आ पहुंचे।।
हरिश्चन्द्र ने पुन: कहा, जब मुंह में दाँत आ जायेंगे। तब ही यज्ञ योग्य होगा, तब ही हम यज्ञ रचायेंगे।।

जब उसके दाँत भी उग आये, वरुण वहां पे पुन: आये। यज्ञ करो हमारा तुम, उन्होंने वाक् यह दोहराये।।
हरिश्चन्द्र ने पुन: कहा, जब दूध के दाँत यह गिर जायें। तब ही तो इस शिशु को, यज्ञ के योग्य ही हम पायें।।
दूध के दाँत भी गिर गए, वरुण ने याद फिर करवाया। अब तो यज्ञ करो मेरा, पर राजा का उत्तर आया।।
जब पुन: इसके मुख में, दाँत नए आ जायेंगे। तब ही तो योग्य होगा वह, और यज्ञ हम कर पाएंगे।।

दाँत पुन: जब उग आये, वरुण द्वार पे फिर आये। यज्ञ करो अब मेरा तुम, याद पुन: उन करवाये।।
हरिश्चन्द्र ने पुन: कहा, क्षत्रिय को तो है उचित यही। धारण कवच जब वह करे, हो योग्य यज्ञ के वह तब ही।।

इस विधि हरिश्चन्द्र तो, पुत्र प्रेम में थे फंसे। हर बार बहाना करके वह, समय को टालते ही रहे।।
पुत्र स्नेह की फांसी ने, था उनके हृदय को जकड़ लिया। इस कारण उचित अनुचित, का भी ज्ञान उन्हें नहीं रहा।।
जो भी समय बताते वह, बाट देखते रहते वरुण। पर अभी तक तो वह यज्ञ, हो न सका उनका संपूर्ण।।

जब रोहित ने यह जाना, पिता बलि चढ़ाना है चाहता। धनुष बाण ले हाथ में, प्राणों की रक्षा को वह चला।।
कुछ दिन में उसे यह ज्ञात हुआ, वरुण देवता रुष्ट हुए। और उसके पिता पर, उन्होंने हैं आक्रमण किए।।
इस कारण उसके पिता, महोदर रोग से ग्रस्त हुए। यह सुनकर रोहित फिर, अपने नगर को लौट चले।।

किन्तु इन्द्र ने राह में ही, आकर उसको रोक दिया। और उसको प्रेम से, इन्द्र ने दी यह सलाह।।

यज्ञपशु बनकर मरना, तो नहीं उचित है हे रोहित। पावन तीर्थ और क्षेत्रों का, भ्रमण है इससे श्रेष्ठ उचित।।
रोहित ने भी इन्द्र की, बात उसी पल मान ली। और फिर इक वर्ष तक, पुन: वन में ही उसने भ्रमण करी।।
पांच वर्षों तक इसी विधि, हर वर्ष ही ऐसा हुआ। जब जब भी रोहित ने, लौटने का विचार किया।।
वृद्ध रूप धर इन्द्र तब, राह में उसकी आ जाते। पिता के पास जाने से, उसको वह थे रोक देते।।

इस विधि छ: वर्ष तक, रोहित वन में ही रहा। सातवें वर्ष में वह जब, अपने नगर था लौट रहा।।
तब अजीगर्त के मंझले सुत, शुन:शेप को मोल लिया। यज्ञपशु बनाने को, उसे पिता चरण में सौंप दिया।।
नमन किया पितु चरण में और उनको यह उपहार दिया। परम यशस्वी हरिश्चन्द्र ने, पुरुषमेध फिर यज्ञ किया।।
वरुणादि देव प्रसन्न कर, महोदर रोग से वह छूटा। उस यज्ञ में विश्वामित्र, ही बने उसके होता।।
परम संयमी जमदाग्नि ने, अध्वर्यु का काम किया। वसिष्ठ जी ब्रह्मा बने, आयास्य साम के उद्गाता।।
यज्ञ से प्रसन्न होकर, फिर इन्द्र ने इक उपहार दिया। राजा हरिश्चन्द्र को, स्वर्ण रथ इक भेंट किया।।
शुकदेव बोले,
आगे चलकर तुम्हें राजन्, शनु:शेप की कथा सुनाऊंगा। माहात्म्य उस महापुरुष का, तुमको मैं बतलाऊंगा।।
हरिश्चन्द्र निज पत्नी संग, सत्य धर्म में दृढ़ स्थित थे। विश्वामित्र यह देख के, उनसे अति प्रसन्न हुए।।
अविनाशी ज्ञान का फिर उन्होने, राजा को उपदेश किया। तदनुसार राजा ने, मन को पृथ्वी में लय किया।।
फिर पृथ्वी को जल उसे तेज, तेज को वायु में सौंपा। वायु स्थिर की आकाश में, आकाश को अहं में लीन किया।।
अहंकार को महत्तत्त्व में, फिर लीन उन्होंने कर दिया। फिर ज्ञान कला का ध्यान कर, अज्ञान को उसमें भस्म किया।।

तत्पश्चात् निर्वाण सुख, की अनुभूति उनको हुई। फिर उस ज्ञान कला की भी, उन्होंने थी परित्याग करी।।
सब बन्धन को त्याग करी, अपने स्वरूप में स्थित हुए। जिस स्वरूप का वाणी से, वर्णन सम्भव न हो सके।।
न ही बुद्धि से उसका, अनुमान कभी भी हो पाये। मन बुद्धि इन्द्रिय कोई, भी पहुंच वहां न पाये।।

६) राजा सगर की कथा

शुकदेव बोले,
रोहित पुत्र था हरित, हरित पुत्र फिर चम्प हुआ। इसने ही चम्पापुरी, का निर्माण था कर दिया।।
चम्प पुत्र सुदेव था, और उसका था पुत्र विजय। विजय का भरुक फिर उसका वृक् बाहुक उसके पुत्र हुए।।
शत्रुओं ने बाहुक से जब, राज्य उसके छीन लिये। निज पत्नी को संग में ले, बाहुक तब वन को गए।।

वृद्धावस्था जब आई, मृत्यु को वह प्राप्त हुआ। उसकी पत्नी ने संग ही, उद्यम सती होने का निश्चय किया।।
महर्षि और्वक ने जब, इस सत्य को जान लिया। गर्भवती है स्त्री यह, इस कारण सती होने से रोक दिया।।
जब उसकी सौतनों को, इस सत्य का पता चला। तब उन्होंने भोजन में, उसको विष ही दे दिया।।

किन्तु उसके गर्भ पर, गर (विष) का प्रभाव ही नहीं हुआ। उस विष को लिये ही एक शिशु, उसके गर्भ से फिर जन्मा।।
गर सहित था जन्म हुआ, इस कारण सगर वह कहलाया। वह ही सगर आगे चलकर, अति यशस्वी राजा हुआ।।

यही सगर तुम जान लो, महाचक्रवर्ती सम्राट था। उसके पुत्रों ने धरा खोदी, सागर था बना दिया।।
सगर ने निज गुरुदेव, और्वक की आज्ञा को माना। तालजंघ यवन और शक, हैहय बबर जाति का।।
हनन नहीं किया उसने, विरूप ही उन्हें बना दिया। रखवाई कुछ ही दाढ़ी मूंछ, कुछ का सिर ही मुण्डवा दिया।।
कुछ के केश उस खोल दिये, तो कुछ के आधे मुण्डवाये। इस भाँति कुरुप ही, सगर ने सारे बनवाये।।

कुछ एक को सगर ने, केवल वस्त्र ओढ़ा दिए। वस्त्र पहनने के उसने, नहीं उनको अधिकार दिए।।
कुछ को केवल लकुटी ही, पहनने की बस आज्ञा थी। ओढ़ नहीं कुछ सकते थे, उनकी अवस्था ऐसी थी।।
ऋषि और्वक ने सगर को, फिर ऐसा उपदेश दिया। सर्वदेवमय आत्मस्वरूप, श्री हरि की अराधना का।।
अश्वमेध यज्ञों द्वारा, शक्ति स्वरूप को उपासा उस। जो घोड़ा वहां पे छोड़ा था, इन्द्र ने उसको लिया हर।।

महारानी सुमति के, गर्भ से थे जो सब उत्पन्न। सगर के उन पुत्रों ने, खोजा पृथ्वी का सारा खण्ड।।
जब सारी ही धरती पर, अश्व उन्हें कहीं नहीं मिला। तब अति अभिमान वश, पृथ्वी का उन्होंने खनन किया।।

पूर्वोत्तर कोने पर तब, श्री कपिल मुनि के पास ही। अपने घोड़े को जब देखा, उसी दिशा में भागे सभी।।
साठ हजार वह राजसुत, उस ओर ही दौड़ पड़े। इसीने चुराया है अश्व, यही चोर है वे कहने लगे।।
देखो तो सही आंख मून्द, यह पापी चोर है बैठा हुआ। मारो मारो अब इसको, इसका वध ही उचित होगा।।
उसी समय श्री कपिल मुनि ने, अपनी आंखें खोल लीं। इन्द्र ने ही उन राज सुतों की, बुद्धि की थी हरण करी।।
इस कारण मुनि कपिल का, इस विध उन्होंने अपमान किया। फल स्वरूप उनके तन में, अग्नदेव प्रज्ज्वलित हुआ।।
क्षणभर में वह सबके सब, राखी ढेर ही हो गए। दम्भ मान सब धरा रहा, वह तो माटी में जाय मिले।।

सगर पुत्र मुनि कपिल के, क्रोध में भस्मीभूत हुए। ऐसा कहना तो राजन्, नहीं उचित किसी विधि बने।।
मुनिदेव तो स्वयं ही, शुद्ध सतोगुण आश्रय हैं। उनका तन तो स्वयं ही, जग पावनकर आप है।।
उनमें भला क्रोध रूपा, तमोगुण कैसे आ सके? ज्यों पृथ्वी की धूलि कभी, आकाश तक न जा सके।।

यह संसार का सागर तो, मृत्युमय ही पथ है एक। दुस्तर है इसको तरना, नहीं पार पा सकें पथ अनेक।।
श्री कपिल मुनि ने जगत् में, इक ऐसी नाव बना है दी। सांख्य शास्त्र की अति सुदृढ़, और सहज है पथ कही।।
इस नौका पर चढ़कर तो, मुमुक्षु पार ही हो सके। केवल परम ज्ञानी ही नहीं, स्वयं ही हैं परमात्म वे।।
उनमें भला यह शत्रु और, मित्र भेद कैसे हो सके? ऐसा भेद दर्शन तो वहां, सम्भव ही नहीं हो सके।।

सगर की दूजी पत्नी का, नाम था जानो केशिनी। उसके गर्भ से असमंजस, नामक पुत्र की जन्म हुई।।
असमंजस के पुत्र का, नाम था जान लो अंशुमान। दादा सगर की सेवा और, आज्ञा पालन था एक काम।।

पूर्वजन्म में यह असमंजस, एक महायोगी ही थे। संग कारण ही योगपथ, थे विचलित थे वह हुए।।
किन्तु अब भी पूर्वजन्म, की स्मृति थी बनी हुई। इस कारण ही जान बूझकर, कर्म प्रवृत्ति ऐसी करी।।
जिससे बन्धु बान्धव सब, उनको नहीं प्रिय मानते। निन्दित कर्म कभी करते, तो पागल से कभी दर्शाते।।
खेलते हुए बालकों को, कभी सरयू में डुबो देते। इस विधि सारे नगर के, लोगों के मन उद्विग्न किये।।

ऐसे कर्म देख उसके, उनके पिता ने पुत्र का मोह त्यजा। कुपूत ही उसको जानकर, राजा ने उसका परित्याग किया।।
असमंजस ने फिर अपने ही, योगबल का आश्रय ले। जो बालक थे मृत हुए, वह सब जीवित कर दिये।।
निज पिता को सब बालक दिखा, फिर वन को प्रस्थान किया। अयोध्या वासी चकित हुए, निज शिशुओं को पुन: प्राप्त किया।।
सगर को भी फिर पश्चाताप, हुआ अपनी करनी पे। पुत्र को निष्कासित किया, यह सोची वह अति व्यथित थे।।

फिर अंशुमान भी निकल पड़े, निज दादा की आज्ञा पा। यज्ञ के अश्व को ढूंढना, ही उनका उद्देश्य था।।
उनके चाचाओं ने ही, जिस सागर को था खोदा। उसके तट पे चलते चलते, उनके तन की भस्म को उन्होने देखा।।
उसके पास ही यज्ञ का, अश्व भी था घूम रहा। वहीं पे श्री हरि के रूप, कपिल मुनि को भी देखा।।
उदार हृदय अंशुमान ने, उनको फिर प्रणाम किया। कर जोड़ी एकाग्र मनी हो, स्तुति वह उनकी करने लगा।।

अंशुमान बोले,
अजन्मा श्री ब्रह्मा से भी, प्रभु आप तो हैं परे। इसलिये वह भी नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन पा सकते।।
लगा समाधि वह हारे, न ही युक्ति प्रभु कोई चली। किन्तु आज तक प्रभु जी, समझ आप तक न पहुंची।।
उनके तन मन बुद्धि से, सृष्टि जो उत्पन्न हुई। हम अज्ञानी जीव तो, क्षुद्र भाग हैं उसका ही।।
जब वह ही जान न पाये प्रभु, तो हम जैसे कैसे समझ सकें? आपकी माया के सम्मुख, हम तो विवश ही भटका करें।।

जग के तन धारी जीव सभी, बन्धे हैं तीनों गुणों से। सत्व रज और तमोगुण, कोई न कोई प्रधान रहे।।
जाग्रत और स्वप्न अवस्था में, देखें बस गुणमय विषय वस्तु। केवल अज्ञान का हो दर्शन, सुशुप्ति में उनको प्रभु।।
कारण है माया आपकी, प्रभु जिसमें वह मोहित रहें। बहिर्मुखी हैं इस कारण, बाहर ही वह देखा करें।।
हृदय स्थित प्रभु रहें आप, इस कारण देख नहीं पाते। अपने हृदय में बैठे हुए, आपसे ही हैं सकुचाते।।

एकरस हैं आप प्रभु, आप ही तो हैं ज्ञानघन। सनत् सनन्दन ऋषिवर सब, करते हैं आपका ही चिन्तन।।
आत्म स्वरूप के अनुभव से, माया के गुण उन नष्ट किए। भेद भाव सें उत्पन्न सब, अज्ञान आवरण उनके दूर हुए।।
माया के गुणों में भूला मैं, कैसे आपको ध्या पाऊं? मूढ़मति मैं हे प्रभु जी, आप तक कैसे आऊं?

माया और सब गुण उसके, गुण कारण जो भी कर्म हों। कर्मों के संस्कार से, बना है लिंग शरीर जो।।
वह सब आपमें हैं नहीं, न नाम है कोई न ही रूप। न ही कार्य कोई आपमें है, न ही है कारण का स्वरूप।।
आप सनातन परम हैं, आप ही हैं सबके आत्मा। ज्ञानोपदेश देने को ही, प्रभु आपने हैं यह रूप धरा।।
नमस्कार है हे प्रभु, चरण में आपके नमस्कार। चरण में सीस झुकाकर के, नमन हमारा बार बार।।
आपकी माया की कृति, है प्रभु यह संसार सब। काम लोभ ईर्ष्या मोह, उठें सत्य इसे समझ सब।।
तन और घर आदि में, चित्त विभ्रान्त हो जाता है। इसी भंवर में फंसा जीव, पूर्ण जीवन ही गंवाता है।।
सब जीवों के आत्म स्वरूप, आज आपका दर्शन पा लिया। ऐसा लगे मेरे जन्म जन्म, के मोह का फंदा कट गया।।
यह कामना ही तो कर्म और, इन्द्रियों की जीवन दायिनी है। इसके बिना तो सब वृत्तियां, स्वत: शान्त हो जाती हैं।
शुकदेव बोले,
अंशुमान ने कपिल मुनि के, प्रभाव का जब यूं गान किया। तब मन ही मन हर्षित होकर, अनुग्रह पूर्ण उन वचन कहा।।

कपिल बोले,
यह अश्व तो हे वत्स, है यज्ञपशु तेरे पितामह की। ले जाओ इसको अब तुम, निज पितामह पास ही।।
पितर जो तेरे दग्ध हुए, उद्धार तो गंगा कर सके। इसके बिना उद्धार का, साधन अन्य कोई न दीखे।।
शुकदेव बोले,
विनम्रता पूर्वक अंशुमान ने, उनको यूं प्रसन्न किया। परिक्रमा उनकी लेकर, घोड़े को वह ले आया।।
सगर ने उस यज्ञपशु, के द्वारा ही की सम्पन्न। शेष विधि कर यज्ञ की, उन्होंने किया उसे परिपूर्ण।।

तब राजा सगर ने अंशुमान को, राज्य अपना सौंप दिया। बन्धन मुक्त वह स्वयं हुए, और विषयों से हुए नि:स्पृह:।।
महर्षि और्वक ने उनको, जिस पथ का था उपदेश किया। उसी मार्ग से परम पद, को श्री सगर ने प्रस्थान किया।।

७) भगीरथ चरित्र और गंगावतरण

शुकदेव बोले
गंगावतरण की कामना, को हिय में धर कर के। अंशुमान ने हे राजन्, कठिन तप बहुतवर्ष किए।।
किन्तु इन सबमें उनको, सफलता तनिक भी नहीं मिली। अभी लक्ष्य नहीं प्राप्त हुआ, मृत्यु पहले ही आ पहुंची।।
अंशुमान के पुत्र दिलीप, ने फिर वैसा तप किया। किन्तु लक्ष्य से पहले ही, उसने मृत्यु को प्राप्त किया।।
दिलीप के पुत्र का, नाम था राजन् भगीरथ। घोर तपस्या में वह लगे, इसी लक्ष्य को ध्यान में रख।।

उनके तप से भगवती, गंगा अति प्रसन्न हुई। मुदित होई कर फिर उन्होंने, निज दर्शन उसको दे दी।।
भगीरथ से वह यूं बोली, वर देने तुम्हें हूं आई। निज मन की अभिलाषा फिर, भगीरथ ने उनके चरण धरी।।
माते कृपा करी के आप, मर्त्य लोक में अब चलें। मेरे पूर्वज जो मृतक हुए, उनका अब उद्धार करें।।

गंगा बोली,
स्वर्ग से धरती तल पर, उतरूंगी मैं जब राजन्। कहो कौन मम वेग को, कर सकेगा तब धारण?
गर धारण किसी ने नहीं किया, पृथ्वी विदीर्ण मैं कर दूँगी। धरती के हृदय को चीर, रसातल में जा पहुंचूंगी।।
यह और अन्य भी इक कारण, मुझे आने से है जो रोके। लोग तो मुझमें आकर के, अपने पाप सब धो लेंगे।।
फिर वह पाप मुझपे चढ़ें, कैसे उन्हें धो पाऊंगी? विचार करो जरा तुम स्वयं, मैं मुक्त कैसे हो पाऊंगी?
भगीरथ बोले,
लोक परलोक स्त्री पुत्र, धन सम्पद् को जिन छोड़ दिया। सम्पूर्ण मनोगत कामना से, संन्यास है जिनका हो चुका।।
संसार से उपरत होकर जो, अपने में शान्त निमग्न हैं। ब्रह्मनिष्ठ परहितकारी, सज्जन जो अति पावनकर हैं।।
हे माते उनका अंग स्पर्श, सब पाप आपके हर लोग। अघासुर हे हन्ता प्रभु का, हैं उनके हृदय में वास सदा।।

सर्वात्म स्वरूप रुद्र देव, तेरे वेग को धारण कर लेंगे। सर्वसामर्थ हैं वह माते, इस वेग को धारण करने में।।
ज्यों वस्त्र में तन्तु सदा, ओत प्रोत ही रहा करें। त्यों ही यह सारा विश्व भी, प्रभु रुद्र में व्याप्त रहे।।
शुकदेव बोले,
गंगा मां से यूं कहकर के, उन्होंने पुनश्च तप किया। भगीरथ ने इस विधि, प्रसन्न रुद्र को शीघ्र किया।।

थोड़े ही दिनों में फिर, महादेव सन्तुष्ट हुए। प्रभु शंकर तो सारे ही, विश्व के सदा हितैषी रहें।।
तथास्तु कहकर उन्होंने, स्वीकार करी उसकी बिनती। फिर अति सावधान होकर, निज सीस पे गंगा धारण की।।
ऐसा तो है स्वभाविक ही, प्रभु चरण स्पर्श गंगा को मिला। इस कारण गंगा तो है, पावनता की बहती धारा।।

तत्पश्चात् भगीरथ फिर, गंगा को ले गए उस स्थल पर। जहां पितरों के तन थे पड़े, राखी की ढेरी बनकर।।
वायु समान ही वेगवान्, था रथ राजा भगीरथ का। आगे आगे वह थे चले, पीछे पीछे गंगा धारा।।
मार्ग में देश जो थे पड़ते, उन सबको पावन करती हुईं। भगीरथ के पीछे पीछे, श्री गंगा जी थीं दौड़ रहीं।।
इस प्रकार गंगा सागर, के संगम पर जा पहुंची। सगर पुत्रों की अस्थिन् को, निज जल की संस्पर्शन दी।।

सगर के पुत्रों ने तो, था द्विज का अपमान किया। भस्मीभूत थे तन हुए, उद्धार का कोई उपाय न था।।
फिर भी तन की राख का जब, गंगा जल सों स्पर्श हुआ। इसी पुण्य ने उन सबको, स्वर्ग लोक प्रदान किया।।
जब गंगा जल से तनोभस्म के, स्पर्श से ही उन्हें स्वर्ग मिला। श्रद्धा प्रेम और नियम से, सेवन जो करें उनकी बात ही क्या?

गंगा जी की महिमा की, जो है तुझको बात कही। जान लो हे राजन् तुम, उसमें तनिक आश्चर्य नहीं।।
गंगा जी तो श्री हरि के, चरण कमल से हैं निकलीं। श्रद्धा से जिनका चिन्तन कर, निर्मल मनी होते मुनि सभी।।
तीनों गुणों की दृढ़ ग्रन्थी, तुरन्त ही उनकी खुल जाये। गुणातीत ही होकर के, भगवत्स्वरूप वह ही जायें।।
गर वह गंगा भव सागर के, बन्धन सारे काट दे। तो तुम ही कहो इसमें हैं, कौन बड़ा आश्चर्य हे?

८) राजा सौदास और खटवांग का चरित्र

भगीरथ का था पुत्र श्रुत, और श्रुत का पुत्र नाभ था। उससे भिन्न ही नाभ है यह, पूर्वोक्त जो वर्णन किया।।
नाभ का पुत्र था सिन्धुद्वीप, आयुतायु सिन्धुद्वीप का। उसका पुत्र हुआ ऋतुपर्ण, जो फिर मित्र हुआ नल का।।
नल को पांसा फेंकने, का रहस्य बताया उस। और प्रतिरूप में नल से ही, अश्वविद्या सीखी थी उस।।
ऋतुपर्ण के पुत्र का, सर्वकाम ही नाम था। और सुदास ही सर्वकाम, के पुत्र का नाम था।।
सुदास पुत्र था सौदास, उसकी पत्नी थी मदयन्ती। कोई मित्र सह कहें सौदास को, कल्माषपाद भी कहें कोई।।
वसिष्ठ ऋषि के शाप से, राक्षस था वह हो गया। फिर निज कर्मों के कारण, सन्तान हीन ही वह रहा।।

राजा परीक्षित् बोले,
हे द्विजवर मेरे मन में, इक जिज्ञासा है उठी। गुरु वसिष्ठ ने महात्मन्, सौदास को क्यों शाप दी?
यदि कोई गोपनीय, रहस्य इसमें नाहीं हो। तो ऋषिवर इसका कारण, आप ही हमको कहो।।
शुकदेव बोले,
एकबार राजा सौदास, आखेट को वन में गया। किसी राक्षस का वहां वध किया, भाई को उसके छोड़ दिया।।
राजा के इस कर्म को, उसने अन्याय ही कहा। भाई के वध का प्रतिकार, वह तो लेना था चाहता।।
रसोइए का रूप धरी, सौदास के घर वह जा पहुंचा। गुरु वसिष्ठ आए इक दिन, मनुष्य का मांस परोस दिया।।

जब सर्वसामर्थ वसिष्ठ ने, भोजन को सम्मुख देखा। यह नितान्त अभक्ष्य है, ऐसा उन्होंने पहचान लिया।।

तब क्रुद्ध होकर उन्होने, राजा को यह शाप दिया। अपने इस कर्म के कारण तू, राक्षस ही हो जायेगा।।
जब उनको यह ज्ञात हुआ, यह काम तो है राक्षस का। राजा ने ऐसा नहीं किया, वह तो इससे अनभिज्ञ ही था।।

तब उस शाप की अवधि उन्होने, बारह वर्ष तक की करी। उस समय सौदास ने भी, निज अंजलि में जल भर ली।।
गुरु वसिष्ठ को दे दूं शाप, ऐसी उनकी मंशा थी। क्रोध के आवेश में, उचित अनुचित न याद रही।।
उनकी भार्या मदयन्ती ने, ऐसा करने से रोक दिया। इस पर फिर सौदास ने, पुन: अपने में विचार किया।।
दिशा आकाश और पृथ्वी, इन सबमें तो जीवन है भरा। इस तीक्ष्ण जल को फिर, कहां छोडूं नहीं समझ पड़ा।।
अन्त में उन्होंने इस जल को, अपने चरण पे डाल लिया। इसी से उनका नाम फिर, मित्रसह ही हो गया।।

उस जल का स्पर्श पाकर, कृष्ण वर्ण उसका पाद हुआ। इस कारण उनका एक नाम, कल्माषपाद भी हो गया।।
ऋषि शाप के कारण वह, अब राक्षस था हो चुका। इक दिन राक्षस बना राजा, वन में था जब विचर रहा।।
वनवासी ब्राह्मण दम्पत्ति, को सहवास में देख लिया। भूख से व्याकुल था राक्षस, उसने ब्राह्मण को पकड़ लिया।।
ब्राह्मण पत्नी की कामना, नहीं अभी थी पूर्ण हुई। नहीं आप हैं राक्षस हे राजन्, मदयन्ती के हैं आप पति।।
इक्ष्वाकु के वंशज हैं, और महान् हैं महारथी। ऐसी अधर्म की बात तो, नहीं शोभा आपको दे रही।।
सन्तान की लालसा, मेरे मन में है बनी। और अभी इस ब्राह्मण की भी, कामना पूर्ति नहीं हुई।।
इस कारण हे राजन् आप, पति मेरा मुझे दे देवें। इस द्विजवर को हे राजन्, नष्ट नहीं इस विधि करें।।

यह मानव तन तो जीव को, मिला है इक ही कारण से। धर्म अर्थ और काम मोक्ष, उद्देश्य यह सब पूर्ण करे।।
हे वीरवर इस तन को, नष्ट यूं ही कर देना। मानो सब पुरुषार्थों की, हत्या ही है कर देना।।
फिर यह ब्राह्मण विद्वान है, तप शील गुणवान् है। आत्म रूप सब जीवों का, आराधक यह महान् है।।
सब जीवों में रहकर भी, जो सबसे छिपा ही रहता है। भिन्न गुणों के कारण ही, आत्म तो आवृत्त रहता है।।

महाशक्तिवान् हैं राजन् आप, मेरे धर्म को जाने हैं। अनुचित उचित का भेद भी, भली भाँति पहचाने हैं।।
ज्यों पिता के हाथों पुत्र का, वध कभी उचित न हो सके। त्यों ही राजन् आपसे, मम पति हनन न हो सके।।
बहुत सम्मान हैं आपका, साधु समाज में हे राजन्। निरपराध परोपकारी, ब्रह्मवादी श्रोत्रिय पति है मम।।
उसके वध को आप कभी, उचित क्योंकर मान सकें? मेरा पति तो गौ समान, ही निरीह है जान लें।।

फिर भी यदि मम पति का, भक्षण ही करना तुम चाहो। एक बिनती मानो मेरी, पहले भक्षण मेरा करो।।
क्योंकि अपने पति बिना, होऊंगी मृतक समान ही मैं। उसके बिना तो क्षणभर भी नहीं जीवित रह सकूंगी मैं।।

अति करुणापूर्ण वाणी में, ब्राह्मण पत्नी ने यह कहा। तत्पश्चात् अनाथ समान, उसने रुदन भी बहुत किया।।
किन्तु सौदास तो शाप से, मोहित ही था पूर्ण हुआ। उसकी याचना पर भी उस, तनिक ध्यान ही नहीं दिया।।
उस ब्राह्मण पर फिर उसने, वैसे ही प्रहार किया। ज्यों किसी वन्य प्राणी पर, बाघ कोई हो झपट पड़ा।।

ब्राह्मणी ने जब देखा, राक्षस ने क्या है काम किया। गर्भाधान को उद्यत मम, पति का भक्षण इसने किया।।
भीषण शोक से ग्रस्त थी, क्रोध का फिर आश्रय लिया। और उस सती ने फिर, राजा को यह शाप दिया।।

अरे पापी मैं तो अभी, काम से पीडित हो थी रही। ऐसी अवस्था में तूने, मेरे पति की हत्या करी।।
इसलिये अरे मूर्ख तू, स्त्री सहवास चाहेगा जब। तुझे शाप हूं दे रही, तू मृत्यु ही पायेगा तब।।

यूं ब्राह्मण पत्नी ने फिर, मित्रसह को शाप दिया। अपने पति के शव को उस, धधकती ज्वाला में डाला।।
स्वयं भी उसमें सती हुई, और पति की गति को प्राप्त हुई। अपने पति को छोड़ किसी, अन्य लोक की चाह न थी।।
द्वादश वर्ष जब बीत गए, सौदास शाप से मुक्त हुआ। सहवास करने हेतु जब, निज पत्नी के वह पास गया।।
तब पत्नी ने ही उसको, इस कर्म से रोक दिया। ब्राह्मणी के शाप का, उसको तो पहले ज्ञान था।।

तत्पश्चात् स्त्री सुख को, पूर्णतय: उसने त्याग दिया। निज कर्म के फल स्वरूप, राजा वह नि:सन्तान रहा।।
तब उसकी ही प्रार्थना से, वसिष्ठ ने यह उपकार किया। मदयन्ती के गर्भाधान, का उन्होंने उपाय किया।।

सात वर्ष तक मदयन्ती, गर्भ धारण किये रही। किन्तु उसके शिशु की तो, जन्म हो ही नहीं सकी।।
तब वसिष्ठ ने अश्म से, उदर पर उसके प्रहार किया। इससे बालक जो जन्मा, वह अश्मक ही कहलाया।।
जब परशुराम इस धरती को, क्षत्रिय विहीन थे कर रहे। तब स्त्रियों ने वह शिशु, थे अन्त:पुर में छिपा लिये।।
इस कारण इक नाम उसका, स्त्रीकवचन ही हो गया। क्षत्रिय हीन जब धरा हुई, पुन: उस वंश का मूल बना।।
इस कारण ही वह शिशु, मूलक नाम भी था पाया। उसके पुत्र हुए दशरथ, उसने पुन: पुत्र एडविड पाया।।
उनके पुत्र थे राजा विश्वसह, उसके पुत्र खटवांग हुए। इन खटवांग ने दो घड़ी, में ही मोक्ष थे प्राप्त किये।।

अजेय थे वह युद्ध में, देवों ने प्रार्थना करी। देवों के ही कहने पर, दैत्यों की थी उन वध करी।।
जब देवों से यह पता चला, दो घड़ी ही आयु शेष बची। चित्त श्री हरि में दिया लगा, राजधानी को लौट करी।।

मन ही मन वह सोचने लागे, कुल इष्ट तो हैं मेरे द्विजवर। उनसे बढ़कर तो मेरा प्रेम, नहीं है अपने प्राणों पर।।
पत्नी पुत्र लक्ष्मी और राज्य, पृथ्वी भी उन सम प्रिय नहीं। बचपन से ही यह मन मेरा, अधर्म प्रवृत्त कभी हुआ नहीं।।
पावन कीर्ति श्री हरि बिना, नहीं देखा कोई अन्य कहीं। देवों ने भी जब मुझको, इच्छित वर की बात कही।।
किसी भोग की लालसा, उस पल भी मैंने नहीं करी। त्रिलोकी के स्वामी थे वह, दे सकते थे सब कुछ ही।।
क्योंकि सबके जीवन दाता, श्री हरि को ही मानकर। मैं मग्न था उनके भाव में, सर्वस्व उन्हीं को जानकर।।

अपने हृदय में विराजमान्, प्रियतम अपने आत्म स्वरूप। सत्व प्रधान तो देव रहें, पर जानें न प्रभु का स्वरूप।।
देवों की भी इन्द्रियां और मन, विषयों में ही भटका करें। फिर रजोगुणी और तमोगुणी, तो जान ही प्रभु को कैसे सकें?

माया का खिलवाड़ विषय, इस कारण इनमें नहीं रमूं। आकाश में ज्यों गन्धर्व नगर, व्यर्थ आभास में नहीं फंसूं।।
विश्व रचयिता श्री हरि में, हम अब लीन हैं हो रहे। अज्ञानवश ही चित्त पर, यह आवरण थे चढ़ गए।।
इन विषयों को छोड़ करी, अब प्रभु की शरण हूं ले रहा। वह ही तो मम अकिंचन् का, एकमात्र हैं आसरा।।

राजा खटवांग की बुद्धि को, पहले से प्रभुने था बस में किया। इस कारण ही अन्तकाल में, ऐसा निर्णय ले वह सका।।
तब देहादि अनित्य पदार्थ, में जो आत्म भाव था। अज्ञान मूल उस भाव का, ही परित्याग उन्होंने किया।।
अपने वास्तविक स्वरूप में, स्थित स्वयं वह हो गए। इस विधि दो घड़ी में ही, श्री खटवांग थे मुक्त हुए।।

वह निज स्वरूप ही जान लो, साक्षात् परब्रह्म है। सूक्ष्माति सूक्ष्म है वह, मानो केवल इक शून्य है।।
पर वह शून्य भी है नहीं, परम सत्य वह आप हैं। भक्त जन प्रभु वासुदेव, कहीं उसे पुकारें आप हैं।।

९) राम अवतार

शुकदेव बोले,
खट्वांग पुत्र थे दीर्घबाहु, उनके पुत्र यशस्वी रघु हुए। रघु के अज और अज के पुत्र, महाराजा दशरथ हुए।।
देवों की प्रार्थना पर, साक्षात् पर ब्रह्म ने। अपने अंशांश से, चार रूप धारण किये।।
राजा दशरथ के पुत्र थे वह, स्वरूप में वह थे अभिन्न। नाम थे उनके राम लक्ष्मण, भरत और फिर शत्रुघ्न।।
सीता पति भगवान राम का चरित तो तुमने है सुना। तत्त्वदर्शी ऋषिगण ने, अनेक बार वर्णन है किया।।

प्रभु राम ने निज पिता के, सत्य के रक्षण के लिये। राज पाठ सब छोड़ दिये, और वन वन में वह भटके।।
अति सुकोमल चरण कमल, वह तो अति सुकुमार थे। सुकुमारी जनक सुता के कर, कमलों का स्पर्श न सह सकते।।
यह ही चरण वन वन चलकर, जब श्रान्त थे हो जाते। लक्ष्मण और हनुमान तब, श्रान्ति उनकी हरते थे।।

शूर्पणखा के नाक कान, काट के उसे कुरूप किया। इस कारण निज प्रियतमा, जानकी वियोग भी सहना पड़ा।।
इस वियोग से क्रुध हो, भौहें जब उनकी तनीं। उन्हें देख कर सागर भी, उस पल अति भयभीत हुए।।
तत्पश्चात् श्री राम ने, सेतु बान्धा फिर सिन्धु पर। लंका जा दुष्ट असुरों का, दग्ध किया सारा जंगल।।
उन कोसल नरेश हरि की, अनुकम्पा हम पर बनी रहे। वे ही प्रभु निज भक्तन् की, सदा सदा रक्षा करें।।

विश्वामित्र के यज्ञ में, लक्ष्मण के ही सामने। श्री राम ने मरीचि आदि, राक्षस सारे मार दिये।।
उन सबकी गणना तो थी, मुख्य राक्षसों में होती। राम के हाथों ही उनकी, मुक्ति युद्ध में थी हुई।।

हे राजन् सीता स्वयंवर को, सजी थी सारी जनक पुरी। उपस्थित थे उस सभा में, जग के श्रेष्ठतम वीर सभी।।
प्रभु शंकर का अति भीषण, धनु: था वहां पे धरा हुआ। तीन सौ वीरों द्वारा भारी, धनुष था सभा में लाया गया।।
श्री राम ने बात बात में, धनुष को कर में उठा लिया। उसपर प्रत्यंचा चढ़ाई उन्होने, और बीच में से दो टूक किया।।
ज्यों गज शावक ईख को, खेल खेल में तोड़ दे। उसी विधि प्रभु राम ने, शिव धनु: वह तोड़ दिये।।

निज वक्ष:स्थल पे स्थान दे, सम्मानित जिन्हें हरि ने किया। उन्हीं लक्ष्मी ने मिथिला में, सीता बनकर अवतार लिया।।
गुण शील अवस्था तन, सौन्दर्य में वह अति अनुपम थीं। हर रूप से हर विधि, श्री राम के वह अनुकूल थीं।।
धनुष तोड़कर राम ने, जनक से उनको प्राप्त किया। अयोध्या लौट के जा थे रहे, परशुराम से मिलन हुआ।।
इन्हीं परशुराम ने धरती को, राज वंश से विहीन किया। इक्कीस बार इन्होंने ही, क्षत्रिय बीज था नष्ट किया।।
धनुष भंग करके प्रभु ने, उनके गर्व को हर लिया। जो नित्य वर्धित था हुआ, गर्व वह उनका शान्त किया।।

तत्पश्चात् पितु वचन को, सत्य करने के लिये। स्वयं ही वन में जाकर, वास उन्होने स्वीकार किये।।
यद्यपि राजा दशरथ ने, पत्नी अधीन ही होकर के। अनजाने में ही उसको, ऐसे कठोर थे वर दिये।।
तथापि राम निज सत्य के, बन्धन में थे बन्धे हुए। इस कारण निज पितु की, आज्ञा थे शिरोधारण किए।।

प्राणों सम प्रिय राज्य लक्ष्मी, प्रेमी मित्र हितैषी सब। सुन्दर प्रासाद छोड़ी चले, वन में पत्नी सहित ही तब।।
धन राज्य या मान कुल, किसी में भी आसक्त न थे। दर्शन में तो थे महाराज, पर हृदय से वह संन्यासी रहे।।

वन में जाकर राम ने, एक नया करतब किया। अति कलुषित बुद्धि वाली, रावण भगिनी थी शूर्पणखा।।
काम वासना के कारण, उसकी मति भ्रष्ट थी हो गई। प्रभु राम ने वन में ही, काटी नाक विरूप करी।।
खर दूषण त्रिशरा आदि, चौदह सहस्त्र उसके भ्राता। हाथ में धनुष उठाकर के, प्रभु राम ने उनको नष्ट किया।।
अनेक भाँति की विषमता, से जो वन था भरा हुआ। उसी में भ्रमण करते हुए, प्रभु राम ने वहां पे वास किया।।

सीता जी के रूप सौन्दर्य, गुण की बात रावण ने सुनी। काम वासना से उसकी, मन अति आतुर हो गई।।
अति अद्भुत हरिण का वेश, धराया मरीचि को रावण ने। उनकी पर्णकुटी के निकट, भेजा उसको रावण ने।।
धीरे धीरे श्री राम को, वह दूर वहां से ले गया। अपने बाणों से राम ने, ज्यों खेल में ही उसे मार दिया।।
ज्यों दक्ष प्रजापति को, वीरभद्र ने था मारा। उसी विधि प्रभु राम ने, मरीचि का उद्धार किया।।

श्री राम जब जंगल में, बहुत दूर थे निकल गए। तब अधम उस रावण ने, वृक् सम सीता हरण किये।।
निज प्राण प्रिया सीता से बिछुड़, वन वन में वह भटके गए। तब अधम उस रावण ने, वृक् सम सीता हरण किये।।
निज प्राण प्रिया सीता से बिछुड़, वन वन में वह भटके गए। निज अनुज लक्ष्मण सहित, अति दीन ही थे वह दीख रहे।।
इस विधि प्रभु राम ने, प्राणीमात्र को शिक्षा दी। जो स्त्री में आसक्त रहें, उनकी है होती यही गति।।

तत्पश्चात् श्री राम ने, संस्कार किया जटायु का। भगवत्सेवा के कर्म से, जिस कर्माशय था भस्म किया।।
फिर प्रभु ने कबन्ध का, उस वन में संहार किया। तत्पश्चात् सुग्रीवादि, वानरों से की उन मित्रता।।
बलि का वध किया उन्होंने, फिर आश्रय लेकर वानरों का। इस विधि निज प्राण प्रिया, सीता का पता लगा लिया।।
ब्रह्मा और शंकर सदा, चरण वन्दना जिनकी करें। मानव लीला करते हुए, वह, सागर तट सेना सहित पहुंचे।।

प्रार्थना और उपवास से, सिन्धु न तनिक पसीजा जब। क्रोध की लीला करते हुए, प्रभु की भृकुटी हुई भंग तब।।
सागर के महा मगर कच्छप, तड़प उठे ऊष्णता से। भयभीत हुए सागर की, गर्जना सब ही शान्त भए।।
शरीर धर कर सागर फिर, निज सीस पे बहुत सी भेंट लिये। चरण कमल की शरण में आ, इस प्रकार कहने लगे।।
सागर बोला,
हे अनन्त हम मूढ़ हैं, न जानें मूल स्वरूप को। सब जग के एकमात्र स्वामी, आदि कारण बस आप ही हो।।
नित्य परिवर्तनशील जगत में, एक रस सदा आप रहें। गुणों के स्वामी आप प्रभु, गुणातीत ही सदा रहें।।
सतोगुण जब स्वीकार करें, देवता उत्पन्न हो जायें। रजोगुण को स्वीकार करी, प्रजापतियों को जन्म दें।।
तमोगुण को स्वीकार करें, तो क्रोध उपज वहां आता है। यही क्रोध प्रभु आपका, रुद्र रूप धरी आता है।।

निज इच्छा अनुसार ही, हे वीर श्रेष्ठ मुझे पार करें। विश्रवा का कपूत जो, त्रिलोकी को ही रुलाया करे।।
उसको मार के हे प्रभु, निज पत्नी को पुन: प्राप्त करें। किन्तु आपके चरण में, है मेरी इक प्रार्थना यह।।
मुझपर आप हे वीरवर, इक सेतु का बन्धन करें। आगामी काल में वह ही तो, आपका यश विस्तार करे।।

बड़े बड़े जब नरपति, दिग्विजय को यहां पे आएंगे। इस सेतु को देख करी, वह आपकी महिमा गाएंगे।।
शुकदेव बोले,
अनेक पर्वत श्रृंग ले, प्रभु राम ने सेतु बान्ध दिया। बड़े बड़े कपिवर ने तब, इस कार्य में उनका साथ दिया।।
जब अपने हाथों से कपि, पर्वत उठाकर लाते थे। उनकी चट्टानें और वृक्ष, भय से मानो थर्राते थे।।
तत्पश्चात् विभीषण ने, जब श्री राम को सम्मत्ति दी। नील सुग्रीव हनुमत सहित, कपि सेना लंका में घुसी।।
लंका पुरी तो पहले ही, श्री हनुमत ने थी दग्ध करी। वानर सेना ने अब मानो, लंका नगरी की सैर करी।।
क्रीड़ा स्थान अन्न के गोदाम, कोष द्वार गोपुर छजे। सभासदन और पक्षियों के, निवास स्थान तक थे घेरे।।
वहां की वेदी ध्वजायें और, स्वर्ण कलश सब तोड़ दिये। चौराहे भी सारे जो, नष्ट भ्रष्ट वह थे हुए।।
लंका नगरी उस समय, कुछ ऐसी थी भास रही। ज्यों हाथी सम्मूह ने किसी, नदी को हो मन्थन करी।।

यह देख राक्षसराज, रावण ने आदेश दिया। निकुम्भ कुम्भ धूम्राक्ष दुर्मुख, सुरान्तक नरान्तक को भेजा।।
प्रहस्त अतिकाय विकम्पन आदि, अपने सारे ही अनुचरों को। सुत मेघनाद और अन्त में, कुम्भकर्ण युद्ध में भेज दियो।।

विशाल यह सेना राक्षसी, सब अस्त्र शस्त्र थी संग लिये। तलवार त्रिशूल धनुष प्रास, ऋष्टि शक्ति बाण भाले।।
खड्ग आदि शस्त्रों से, थी वह सुरक्षित हो रही। महाबली सेना सारी, युद्ध क्षेत्र में दुर्गम थी।।
भगवान राम के साथ भी, लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान थे। गन्ध मादन नील पनस, अंगद और जामवान थे।।
इन सब वीरों को संग ले, असुरों का किया उन सामना। रावण को जीतना ही, था एकमात्र लक्ष्य उनका।।

रघुवंश शिरोमणि राम के, अंगद आदि सब सेनापति। रावण की चतुरंगी सेना, घुड़सवार रथ और हाथी।।
पैदल सेना के साथ भी, द्वन्द्व रीति से जा भिड़े। वृक्ष चट्टान और गदा बाण, से रासों पे प्रहार किये।।
उनका हताहत होना तो, सहज और स्वभाविक था। अनुचर थे वह रावण के, जिसका मंगल था नष्ट हुआ।।
मैया सीता का स्पर्श किया, विनाश तो निश्चित होना था। ऐसे पापी अधर्मी का, ऱ्हास तो निश्चित होना था।।

राक्षस राज रावण ने जब, देखा सेना का नाश हुआ। क्रुध हुआ रावण इससे, फिर पुष्पक पर आरुढ़ हुआ।।
प्रभु राम के सामने वह, निज विमान लेकर आया। इन्द्र सारथी ने प्रभु को, दिव्यरथ तब सौंप दिया।।
श्री राम उस तेजोमय, रथ पे सवार फिर हो गए। रावण ने तीक्ष्ण बाणों से, उनपर फिर प्रहार किये।।
प्रभु राम ने कहा उसे, अरे नीच श्वानवत् कर्म तेरा। मेरी अनुपस्थिति में, मेरी प्राणप्रिया पत्नी को हरा।।
दुष्टता की सारी सीमा, तूने तो अतिक्रमण करी। निर्लज्ज और निन्दनीय, होगा तुम सम कौन कहीं?
जैसे काल को कोई, कभी टाल ही नहीं सके। कर्तापन के अभिमानी को, वह तो फल निश्चित ही दे।।
वैसे ही मैं आज तुझे, तेरी करनी का फल दूंगा। नीच कर्म जो तूने किया, प्रतिकार तो निश्चित ही लूंगा।।

इस भाँति प्रभु राम ने, रावण को फटकार दिया। निज धनुष पे बाण चढ़ा, उस पापी पर छोड़ दिया।।
व्रज सम उस बाण ने, हृदय विदीर्ण उसका किया। दसों मुखों से फिर उसके, रक्त की बह निकली धारा।।
विमान से फिर वह असुर, वैसे ही गिरने लगा। ज्यों क्षीण पुण्य के होने पर, स्वर्ग से हो कोई जीव गिरा।।
उसके पुरजन और परिजन, शोक फिर मनाने लगे। हाय हाय करते हुए, चीखने और चिल्लाने लगे।।

सहस्त्रों राक्षसियां भी फिर, मन्दोदरी के साथ चलीं। लंका से वह निकल करी, रणभूमि में जा पहुंची।।
उनके स्वजन सम्बन्धी सब, छिन्न-भिन्न थे पड़े हुए। लक्ष्मण जी के बाणों से, वे सब थे आहत हुए।।
अपनी छाती को पीटकर, गले से उन्हें लगाकर के। रुदन वह करने लगीं, अति उच्च स्वरों में गाकर के।।
स्त्रियाँ बोली,
हा स्वामी आज तो हम, सब बिना मौत मारी गईं। इक दिन तो आपके भय से सब, त्रिलोकी ही थी कांपती।।
आज है वह लंकापुरी भी, शत्रु के हाथों त्रस्त हुई। आप गए परलोक प्रभु, लंका यह किसके हवाले हुई?
सर्वविधि सम्पन्न थे आप, नहीं कमी थी कोई भी। पर काम विवश भूले यह आप, सीता है अति तेजस्विनी।।
उसके प्रभाव को न जाना, यही भूल हुई आपकी। वह ही आपकी दुर्दशा, का कारण फिर बन गई।।

आपके करतब देखकर, आनन्दित हम सब होते थे। हे स्वामी आप तो सब, राक्षस कुल के गौरव थे।।
हम सब ही और यहनगरी, आज है विधवा हो गई। जिस तन के लिये सब कुछ किया, वही गीधों का आहार बनी।।
और निज आत्म को ला, नरक द्वार पे खड़ा किया। आपकी ही नासमझी और, कामुकता का फल यह मिला।।
शुकदेव बोले
कोसलाधीश प्रभु राम की, आज्ञा को शिरोधारण कर। बन्धु बान्धव का पितृयज्ञ, विधिवत् ही अनुसरण कर।।
शास्त्रानुसार विभीषण ने, अन्त्येष्टि संस्कार किया। इस विधि मृत बन्धु प्रति, अन्तिम कर्त्तव्य निभा दिया।।
अशोक वाटिका में जाकर, प्रभु राम ने फिर दरस किये। विरह व्यधित कृशकाय हुईं, अशोक वृक्ष तले सीता के।।

निज प्राणप्रिया अर्धांगिनी को, अति दीन अवस्था में देखा। श्री राम हृदय फिर प्रेम और, करुणा से परिपूर्ण हुआ।।
प्रभु दर्शन पा सीता हृदय, आनन्द और प्रेम से भर गया। क्लान्त हुआ मुख कमल भी ज्यों, सूर्य देख कर खिल उठा।।

राम ने फिर विभीषण को, असुरों का स्वामी दिया बना। एक कल्प की आयु दी, और लंकापुरी का राज्य दिया।।
फिर सीता जी को पहले, विमान पर आरूढ़ किया। निज भ्राता लक्ष्मण सुग्रीव, सेवक हनुमत को संग लिया।।
और स्वयं प्रभु राम उस, विमान पे फिर सवार हुए। चौदह वर्ष व्रत पूरा कर, निज नगर की यात्रा को चले।।
मार्ग में देव और लोकपाल, ब्रह्मा आदि सब थे खड़े। प्रभु के इस विमान पर, पुष्पों की वर्षा कर रहे।।

ब्रह्मा आदि आनन्द सहित, प्रभु की लीला थे गा रहे। उधर से प्रभु को भरत के, समाचार जब सब मिले।।
केवल गोमूत्र में पका हुआ, जौ का दलिया वह खाते हैं। वल्कल वस्त्र धारण करें, पृथ्वी पे कुशा धर सोते हैं।।
जटायें लम्बी हुईं उनकी, संन्यासी का है वेश धरा। उनकी दशा को याद कर, करुणामय प्रभु का हृदय भरा।।
उधर भरत ने भी जाना, मेरे अग्रज राम हैं आ रहे। पुरवासी मन्त्री संग लिये, प्रभु चरण पादुका सीस धरे।।
पुरोहित भी संग ले कर, स्वागत करने वह चल दिये। निज नन्दीग्राम से भरत जी, श्री राम को लेने को चले।।
संग संग उनके वाद्य बजे, मंगल गान लोगों ने किये। वेदवादी ब्राह्मण भी तब, थे मन्त्रोच्चारण कर रहे।।
चहुं ओर से मन्त्र ध्वनि, की गुंजार थी हो रही। सुन्दर स्वर्णिम पताकायें, चहुं ओर लहरा थीं रहीं।।
रंग रंग की पताका से, सजे और सोने से मढ़े। उन रथों में स्वर्णिम साजों से, सजे हुए थे अश्व जुते।।
स्वर्ण कवच पहने हुए, सैनिक भी संग संग चलने लगे। सेठ व्यापारी वरांगना श्रेष्ठ, पैदल सेवक भी साथ हुए।।

छोटी बड़ी राजाओं की, सब वस्तुएं भी साथ लीं। प्रभु का दर्शन पाते ही, भरत हृदय में प्रेम उमड़ी।।
रोमांचित उनका तन हुआ, आंखों में अश्रु भर आये। प्रेमोद्रेक न सम्भल सका, तो जा श्री हरि के चरण गिरे।।

पादुका प्रभु सम्मुख धरी, हो करबद्ध वह खड़े हुए। नेत्रों से तो अश्रु के, अविरल धारा प्रवाह बहे।।
अपने दोनों हाथों से, प्रभु ने भरत को पकड़ लिया। बहुत देर तक अपने हृदय, से उनको लगा रखा।।
प्रभु की अश्रुधारा तो, भरत का तन थी धो रही। मानो अति प्रेम से भरत के, तन की स्नान ही हो गई।।

सीता लक्ष्मण को संग ले, प्रभु ने फिर प्रणाम किया। ब्राह्मण और पूज्य गुरुजन का, इस भाँति सम्मान किया।।
प्रजा भी सब बहुत प्रेम से, प्रभु चरण में जा लेटी। सारे अंगों से उसने, प्रभु राम को नमन करी।।
उत्तर कौसल देश की, वासी जो थी सारी प्रजा। अपने स्वामी प्रभु राम को, बहुत दिनों पीछे देखा।।
निज आंचल हिला हिला, वह तो नाचने थी लगी। पुष्पों की वर्षा करती हुई, वह आनन्द से झूम उठी।।

भरत ने प्रभु राम की, पादुका फिर कर में ली। विभीषण ने लिया श्रेष्ठ चंवर, सुग्रीव ने पंखा हाथ में ली।।
श्री हनुमन ने श्वेत छत्र, प्रभु के ऊपर धार दिया। शत्रुघ्न ने लिया धनु: तरकश, कमण्डलु तीर्थ सीता लिया।।
अंगद ने लिया स्वर्ण खडग्, और जाम्बवान् ने ढाल ली। इन सब लोगों संग श्री हरि ने, पुष्पक विमान पर चरण धरी।।
स्त्रियां भी चहुं ओर ही, यथा स्थान पर बैठ गई। बिरदावली को गाकर के, बन्दीजन ने स्तुति करी।।

पुष्पक विमान पर बैठे हुए, प्रभु की शोभा कुछ ऐसी बनी। मानो सब ग्रहों को साथ लिये, ज्यों आकाश में हो शशि।।
प्रेमाभिनन्दन भाइयों का, श्री राम ने यूं स्वीकार किया। और उनके साथ विमान पर, अयोध्या में प्रवेश किया।।
वह नगरी तो उस समय, थी उत्सव महा मना रही। ऐसे में प्रभु राम ने, महल में प्रवेश करी।।
माता कौसल्या के सहित, अभिनन्दन किया माताओं का। गुरुजन मित्रों और छोटों का, यथायोग्य सम्मान किया।।
उनसे भी सम्मान को, प्रभु ने किया सप्रेम स्वीकार। लक्ष्मण और सीता ने भी, प्रभु संग किया यथायोग्य व्यवहार।।

ज्यों मृतक शरीर में, प्राणों का पुन: संचार हो। वैसे ही मातृ हृदय में, पुत्र आगमन पे प्यार हो।।
अंक में अपने बिठाया उन्हें, और अश्रुओं से अभिषेक किया। पुत्रों का दर्शन स्पर्शन पा, उनका सारा शोक मिटा।।
तत्पश्चात् वसिष्ठ ने, अन्य गुरुजन साथ लिये। विधिवत् प्रभु राम के, जटा जूट निवृत्त किये।।
चहुं दिक् का सागर जल ले, फिर उनका अभिषेक किया। मानो बृहस्पति स्वयं, इन्द्राभिषेक हो कर रहा।।

इस विधि सिर से स्नान कर, प्रभु राम ने पहने सुन्दर वस्त्र। पुष्पमाल और अलंकार, किये धारण उन्होने तन पर।।
जानकी और भ्राताओं ने, वस्त्र आभूषण थे पहरे। उनके साथ प्रभु राम जी, अति शोभित थे हो रहे।।

प्रभु के चरणों में गिरकर, श्री भरत ने उन्हें प्रसन्न किया। भरत के आग्रह पर उन्होने, सिंहासन को ग्रहण किया।।
तत्पश्चात् अपने अपने, धर्म में वह तत्पर हुए। वर्णाश्रम अनुगामी निज, प्रजा को पितुवत् पाले थे।।
उनकी प्रजा भी राम को, पितु समान ही माने थी। राम राज्य में निज जीवन, अहोभाग्य अपना माने थी।।

परम धर्मज्ञ राम तो थे, सब जीवों के सुख दाता ही। भगवान राम जब राजा हुए, युग था तब वह त्रेता ही।।
किन्तु चहुं ओर के सुख सम्पद्, से ऐसा था भास रहा। त्रेता युग में ज्यों जानो, हो सत् युग का आगमन हुआ।।

वन नदी पर्वत वर्ष द्वीप, सागर ज्यों कामधेनु ही हुए। सबके सब प्रजा की ही, कामना पूर्ति में थे लगे।।

इन्द्रिय अतीत प्रभु राम जब, राजा अयोध्या के बने। मनोचिन्ता या तनो रोग, सबके ही मानो दूर हुए।।
जरा क्षीणता दु:ख शोक, भय और श्रान्ति कहीं न थी। जो स्वयं ही मृत्यु न चाहें, मृत्यु भी उन्हें न छू सकती।।
राजर्षि प्रभु राम के, चरित्र तो थे अति पावन। एक पत्नीव्रत को ही, श्री राम ने था किया धारण।।
गृहस्थ उचित स्वधर्म की, शिक्षा थे सबको दे रहे। स्वयं धर्म आचरण कर, प्रमाण थे सबके लिये बने।।

सती शिरोमणि सीता माँ, निज पति के हृदय को जानतीं। उनके हृदय के भाव वह, बिन कहे ही थीं पहचानतीं।।
प्रेम सेवा शील से, पति राम के चित्त को चुरातीं थीं। बुद्धि विनम्रता और लज्जा, कारण उन्हें बहुत भाती थीं।।
शुकदेव बोले,
श्री राम ने वसिष्ठ को, आचार्य बनाकर हे राजन्। उत्तम सामग्री लेकर के, किया स्वयं अपना ही यजन्।।
अपने आप सब देव रूप, स्वयं प्रकाश वह आप हैं। सबमें है विद्यमान जो, आत्म सत्ता वह आप हैं।।
होता को दी पूर्व दिशा, और ब्रह्मा को दक्षिणा उन्होंने दी। उध्वर्यु को पश्चिम और, उद्गाता को उत्तर दे दी।।

उनके बीच बची भूमि, उन्होंने दी आचार्य को। वह माने भूमण्डल का, निस्पृह ब्राह्मण अधिकारी हो।।
सब भूमण्डल का दान किया, बस वस्त्र आभूषण तन पे रहे। इसी विधि सीता के भी, थे वस्त्र आभूषण ही बचे।।

जब आचार्य आदि सब ही, ब्राह्मणों को दर्शन हुआ। प्रभु राम ने ब्राह्मणों को, ही इष्ट निज मान लिया।।
उनका हृदय द्विज प्रेम से, है पूर्ण ही भरा हुआ। फिर ब्राह्मणों का हृदय, द्रवीभूत प्रेम से हो गया।।
अति प्रसन्न हुए राम पर, और भूमि उन्हें सब लौटा दी। ब्राह्मणों ने फिर मुदित होई, श्री राम को यह बात कही।।
ब्राह्मण बोले,
सब लोकों के हे प्रभु, एकमात्र स्वामी हैं आप। हृदय में रहकर हे स्वामी, अज्ञान तिमिर का करें नाश।।
ऐसी स्थिति में हे प्रभु, क्या नहीं आपने दे दिया? यह जीवन तो हम जानें, है बस आपकी ही कृपा।।

अनन्त ज्ञान है आपका, अति पावन कीर्ति पुरुषोत्तम। सुहृद् जो सबके आप हैं, उन्हें किये प्रदान निज चरण कमल।।
ऐसा सब होने पर भी, द्विज को ही इष्ट माने अपना। इस राम रूप को आपके, हम नमन करें प्रभु सीस झुका।।
शुकदेव बोले,
निज प्रजा के मन की जानन को, इक बार राम ने बदला भेस। बिना किसी के जाने ही, राज्य में उन्होंने किया प्रवेश।।
उसी समय उन्होने वहां, किसी के मुख से यह सुना। अपनी पत्नी के प्रति, वह ऐसे वचन था कह रहा।।
अरी तू दुष्टा और कुल्टा है, पराये घर में तू है रही। मैं नहीं अब रख सकता, तुझको अपने घर में कभी।।
स्त्री लोभी राम तो, सीता को भले ही घर लाये। पर ऐसा अनाचार्य तो, मुझसे कभी न हो पाये।।

सबको प्रसन्न रखना जग में, तो बहुत कठिन ही काम है। नहीं मूढ़ जनों का अभाव कहीं, ऐसा ही जग का विधान है।।
श्री राम ने बहुत जन के मुख से, जब ऐसी ही बात सुनी। राम ने फिर निर्णय किया, लोक अपवाद यह सुन करी।।
महारानी सीता का उन्होने, परित्याग फिर कर दिया। वाल्मीकि के आश्रम में, सीता ने आश्रय लिया।।

उस समय तो सीता जी, गर्भवती थीं हो चुकीं। समय आने पर एक साथ, द्वौ पुत्रों को उन जन्म दी।।
कुश और लव उन दोनों, पुत्रों को फिर नाम दिये। वाल्मीकि मुनि ने उनके, जातकादि संस्कार किये।।
श्री लक्ष्मण के हुए दो पुत्र, नाम थे चित्रकेतु अंगद। भरत के भी थे दो पुत्र, नाम थे तक्ष और पुष्कल।।
शत्रुघ्न के भी दो पुत्र हुए, सुबाहु और श्रुतसेन वह थे। दिग्विजय में भरत ने, कोटिश: गन्धर्व संहार किये।।

उन सबका धन लाकर के, अग्रज भ्राता के चरण धरा। शत्रुघ्न ने मधुवन में, मधु पुत्र का संहार किया।।
उसका हनन करके वहां, मथुरा पुरी को बसा दिया। इस विधि भ्राताओं ने, राज्य का विस्तार किया।।
श्री राम ने तो निज राज्य से, निर्वासित थी करी सीता। उसने अपने दो पुत्रों को, ऋषि वाल्मीकि को सौंप दिया।।
श्री राम का फिर उसने, मन ही मन चिन्तन किया। और उन्हीं का ध्यान धरी, गई पृथ्वी लोक में वह समा।।

यह दु:खद समाचार जब, राम के कानों तक पहुंचा। अपने शोकावेश को, बुद्धि से रोकना उन चाहा।।
सर्व सामर्थ होकर के भी, उसको रोक वह न पाये। जानकी जी के पावन गुण, मन बार बार था दोहराये।।
हे राजन् यह स्त्री और, पुरुष का सम्बन्ध है जो। सब जा पर वह सब विधि, दु:ख का कारण ही तो हो।।
सर्वसामर्थवान् हैं जो, उनकी भी है बात वही। गृहस्थीजन विषयी हैं जो, उनकी बात क्या कहे कोई?

तत्पश्चात् श्री राम ने, ब्रह्मचर्य धारण किया। तेरह हजार वर्ष तक, अग्निहोत्र अखण्ड किया।।
दण्डकारण्य में कण्टक से, जो चरण थे छिद गए। प्रभु ने अपने वह चरण, भक्तों के हृदय स्थापित करे।।
फिर वह अपने स्वयं प्रकाश, परम ज्योतिर्मय धाम गए। इस विधि प्रभु राम ने, धरती से प्रस्थान किये।।
प्रभु राम समान प्रतापवान्, धरती पर कोई न हो सके। फिर उनसे बढ़कर कोई, हो ही कहीं पर कैसे सके?

देवों की याचना पर उन्होने, लीला विग्रह धारण किया। रघुवंश शिरोमणि राम का, नहीं इसमें गौरव बड़ा।।
अस्त्रों शस्त्रों का आश्रय ले, राक्षस जन का संहार किया। और फिर पत्थर लेकर के, सागर पे था सेतु बान्धा।।
शत्रु के विनाश को, ली वानर गण की सहायता। सर्वसामर्थ श्री राम को, भला उसकी क्या थी आवश्यकता?
यह सब उनकी लीला ही है, न पार कोई भी पा सके। श्री राम की महिमा का गुण, वाणी कैसे गा सके?

श्री राम का यश तो सारे ही, पापों को नष्ट कर देता है। वह निर्मल यश विस्तृत इतना, श्यामल भी उज्ज्वल करता है।।
आज भी बड़े बड़े महर्षि, राजसभाओं में गाएं उसे। स्वर्ग देवता पृथ्वीपति, सेवा करें निज किरीटों से।।
उन्हीं रघुवंश शिरोमणि, श्री राम की शरण मैं ग्रहण करूं। अन्य आसरे छोड़ सभी, मैं तो उनकी शरण पड़ूं।।

जिन जिन ने श्री राम का, दर्शन और स्पर्शन् पाया है। सहवास उनका निज पाया, अनुगमन सौभाग्य भी पाया है।।
वे सबके सब और कौसल, देश के जितने भी वासी। उसी लोक को प्राप्त हुए, जायें जहां महा योगी।।
जो नर अपने कानों से, श्री राम के चरित को सुनता है। आर्जवता और कोमलता, सहज में प्राप्त वह करता है।।
हे राजन् इतना ही नहीं, वह योगयुक्त हो जाता है। कर्म बन्धन वह सब त्यजी, मुक्त स्वत: हो जाता है।।
परीक्षित् बोले,
प्रभु राम भ्रातागण से, व्यवहार कैसा करते थे? भरतादि अनुज अवधवासी, प्रजाजन कैसे विचरते थे?

शुकदेव बोले,
त्रिभुवन पति श्री राम ने, सिंहासन स्वीकार किया। निज अनुजों को फिर उन्होने, दिग्विजय का आदेश दिया।।
स्वयं अयोध्यापुरी में रह, निज प्रजा को दर्शन देने लगे। इस विधि अनुचरों सहित, व्यवस्था पुरी की करने लगे।।

अयोध्या के राजमार्ग, सिक्त सुगन्धित जल से थे। हाथियों के मद कण भी, वहां पग पग बिखरे थे।।
यह नगरी थी दीखती, मतवाली अति हो रही। निज स्वामी राम को देख करी, वह होश ज्यों अपने खो रही।।
उसके महल गोपुर सदन, विहार और देवालय सभी। सजे थे स्वर्ण के कलशों से, और ध्वजा फहरातीं थीं।।

सुपारी स्तम्भ और कदली के, पेड़ वहां थे सुहा रहे। सुन्दर वस्त्रों के पट्टे, थे सौन्दर्य बढ़ा रहे।।
दर्पण वस्त्र पुष्पमाला, मंगलमय चित्रकारियां थीं। बन्दनवार थे सज रहे, जगमग श्रृंगार ही सारी थी।।
नगरवासी निज हाथों में, भिन्न भिन्न भेंटें लाते। प्रभु राम सम्मुख वह आकर के, प्रार्थना यूं थे कर जाते।।
हे देव वराह बन आपने ही, था पृथ्वी का उद्धार किया। अब प्रभु इस पृथ्वी का, पालन आप ही करें जरा।।

जब प्रजा यह जानती, प्रभु राम इधर हैं आ रहे। ले दरस लालसा नर नारी, निज घर से थे भागते।।
ऊंची ऊंची अटारियों पे, सब ही जाकर थे चढ़ जाते। तृप्त नयन से श्री प्रभु के, मुख कमल का वह दर्शन पाते।।
और अपने हाथों से, पुष्पों की वर्षा वह करते। इस भाँति प्रभु दर्शन से, हृदय तृप्त थे वह करते।।

श्री राम भी प्रजा निरीक्षण कर, महलों में पुन: आ जाते। वह महल तो उनके पूर्वज, राजाओं से सेवित थे।।
अक्षय कोषों से प्रासाद, वह सदा ही भरे रहते थे। बहुमूल्य बहुत भाँति की, समिधा से वह सुसज्जित थे।।
महलों के द्वार और दहलीजें, थीं मूंगों की बनी हुईं। वैदूर्यमणि के स्तम्भों पर, वह महल थी खड़ी हुई।।
मरकत मणि के बड़े बड़े, फर्श वहां पर थे बने। स्फटिक मणि की दीवारों, की चमक सदा वहां बनी रहे।।

रंग बिरंगी मालायें, और पताका वहां सजी। मणियों की वहां चमक बनी, शुद्ध चेतन जैसे मुक्तामणि।।
सुन्दर भोग सामग्री भी, वहां पे थी सब भरी हुई। सुगन्धित धूप दीप और, पुष्पाभूषण से महल सजी।।
जिनका अंग स्पर्श करके, आभूषण भूषित हो उठें। देव समान वह नर नारी, सब उनकी सेवा में थे लगे।।
थे शिरोमणि प्रभु राम जान, जितेन्द्रिय आत्म राम के। उसी महल में प्राणप्रिया, सीता के संग थे विचरते।।

सभी नर नारी जिन राम के, चरण कमल का ध्यान धरें। वे ही राम बहुत वर्ष तक, धर्म मर्यादा पाला करें।।
समयानुसार सब भोगों का, उपभोग भी करते रहे। इसी विधि उन धरती पर प्रमाण थे स्थापित अपने किये।।

१०) इक्ष्वाकुवंश, निमिवंश और चन्द्रवंश

शुकदेव बोले,
कुश का पुत्र हुआ अतिथि, उसका पुत्र पुन: निषध हुआ। निषध का नभ उसका पुण्डरीक, उसका पुन: हुआ क्षेमधन्वा।।
देवनीक था उसका पुत्र, उसका पुन: अनीह हुआ। अनीह पुत्र था परित्राण, वलस्थल उसका फिर वज्रनाभ हुआ।।
वज्रनाभ तो जान लो, ज्यों सूर्य का ही अंशथा। उससे खगन उस से विधृति, उससे पुन: हिरण्यनाभ हुआ।।
जैमिनी ऋषि का शिष्य था वह, योग का महा आचार्य था। कोसलदेशीय याज्ञवल्क्य ने, शिष्य बनना स्वीकार किया।।

उससे ही अध्यात्म योग की, शिक्षा को उन ग्रहण किया। परम सिद्धि दे वही योग, है हृदय की ग्रन्थी खोलता।।

हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य, पुष्य का ध्रुवसन्धि हुआ। उसका पुत्र सुदर्शन था, अग्निवर्ण उसका सुत हुआ।।
अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्र, और उसका फिर मरु हुआ। मरु ने योग साधना से, सिद्धि को फिर प्राप्त किया।।
इस समय भी कलाप नामक, नगर में हैवास उसका। कलियुग के अन्त में सूर्यवंश, का नाश जब हो जायेगा।।
वह ही मरु पुन: उसको, आगे फिर बढ़ायेगा। इस विधि से सूर्यवंश का, क्रम फिर चलता जायेगा।।

मरु से प्रसुश्रुत उससे सन्धि, और उससे अमर्षण जन्म हुआ। अमर्षण सुत महस्वान था, और उसका पुत्र था विश्वसाह।।
विश्वसाह का प्रसेनजित, उसका पुत्र तक्षक हुआ। तक्षक सुत बृहद्बल था, जिससे है कुछ परिचय तेरा।।
तेरे पिता अभिमन्यु ने, इसी को युद्ध में मारा था। है इक्ष्वाकु वंश के, नरपतियों की यह गाथा।।

इक्ष्वाकु वंश के, इतने हैं नरपति हो चुके। आगामी वंशज जो होंगे, अब तू उनकी भी सुन ले।।
बृहद्बल के पुत्र का, नाम होगा बृहद्रण। उसका पुत्र उरुक्रिय होगा, और वृद्ध होगा उसका वत्स।।
उसका सुत होगा प्रतिव्योम, प्रतिव्योम पुत्र भानु होगा। मेनापति दिवाक ही फिर, भानु का पुत्र होगा।।
देव बोले,
दिवाक का होगा सहदेव, उसका फिर बृहदश्व होगा। उसका सुत होगा भानुमान्, पुन: उसका प्रतीकाश्व होगा।।
प्रतीकाश्व के पुत्र का, नाम सुप्रतीक होगा। सुप्रतीक का मरुदेव, उसका फिर सुनक्षत्र होगा।।
उसका पुन: पुष्कर होगा, पुष्कर का होगा अन्तरिक्ष। सुतपा होगा उसका पुत्र, और उसका होगा अमित्रजित।।

अमित्रजित से बृहद्राज, उससे पुन: बर्हि होगा। उससे होगा कृतञ्जय, और उससे पुन: रणञ्जय होगा।।
उसका पुत्र सञ्जय होगा, संजय का शक्य उसका शुद्धोद। शुद्धोद पुत्र लाङ्गल होगा, उसका प्रसेनजित उससे क्षुद्रक।।
क्षुद्रक से रणक उससे सुरथ, सुरथ से सुमित्र जन्मेगा। इस वंश का जान लो, वह ही अन्तिम राजा होगा।।
इक्ष्वाकु का यह वंश, रहेगा सुमित्र तलक ही। उसके राजा हो जाने पर, कलियुग में वंश अन्त होगा।।
शुकदेव बोले,
इक्ष्वाकु के पुत्र हे राजन्, राजा निमि थे तुम जानो। यज्ञ आरम्भ करके उन्होने, महर्षि वसिष्ठ ऋत्विज कियो।।
वसिष्ठ जी ने निमि को, जान लो फिर इतना कहा। इन्द्र ने अपने यज्ञ में, है पहले ही मम वरण किया।।
उनके यज्ञ को पूरा कर, मैं पास तुम्हारे आऊंगा। प्रतीक्षा मेरी करना तुम, फिर तेरा यज्ञ कराऊंगा।।
यह सुनकर राजा निमि, तो मौन ही हो गए। महर्षि वसिष्ठ फिर, इन्द्र का यज्ञ कराने चले।।

विचारवान् निमि ने सोचा, यह जीवन तो है क्षणभंगुर। नहीं उचित यज्ञ में देरी कोई, यही सोच किया आरम्भ यज्ञ।।
जब तक गुरु वसिष्ठ पुन:, लौट के वहां पर न आएं। तब तक दूजे ऋत्विज ही, यज्ञ यह किये जायें।।

इन्द्र का यज्ञ समाप्त कर, वसिष्ठ मुनि जब लौटे वहां। उन्होने देखा उनका शिष्य निमि था यज्ञ पे बैठा हुआ।।
उनकी बात न मानकर, उसने यज्ञ आरम्भ कर दिया। क्रुध हुए यह देखकर, और शाप उसे दे दिया।।
बहुत गुमान है निमि को, निज बुद्धि और पाण्डित्य का। इसलिये इस क्षण ही अब, तनोपात इसका होगा।।

निमि की दृष्टि में यह शाप, धर्म के प्रतिकूल ही था। प्रतिरूप में उसने भी, शाप ऋषि को दे दिया।।
लोभ वश नहीं आपने, धर्म का है पालन किया। इसलिये अब पतित हो, यह शरीर जो आपका।।
आत्म विद्या निपुण निमि ने, यह कही तनो त्याग किया। पूर्वज प्रपितामह वसिष्ठ ने भी निज तन को त्याग दिया।।
मित्र वरुण के द्वारा फिर, उर्वशी के गर्भ से। इन्हीं महर्षि ने पुन:, जन्म नव धारण किये।।

राजा निमि के यज्ञ में, श्रेष्ठ मुनि जो थे आये। सुरक्षित उसका तन रखा, उन्होने सुगन्धित द्रव्यों से।।
सत्रयाग की समाप्ति पर, देवतागण जब आये वहां। तब सबने मिलकर उनसे, करी फिर यह प्रार्थना।।
हे महानुभावो आप हैं, सर्वसामर्थ सर्वविधि। पुनर्जीवित तन निमि का हो, गए हुए प्रसन्न हैं आप सभी।।
देवों ने फिर उस पल ही तथास्तु उनको कह दिया। मुझे देह बन्धन नहीं चाहिए, ऐसा राजा निमि ने कहा।।

निमि बोले,
विवेकी मुनिजन निज बुद्धि, श्री हरि में ही लगाया करें। पूर्ण रूपेण वह सदा, श्री हरि का ही भजन करें।।
नश्वर ही है यह तन तो, इक न इक दिन छूटेगा ही। रहें बन्धन से भयभीत वह, केवल चाहें वह मुक्ति ही।।
दु:ख शोक और भय का, है मूल कारण तन ही यह। इस तन को पुनश्च मैं, धारण न करना चाहूं हे।।
ज्यों जल की मछली के लिये, सर्वत्र ही व्याप्त मृत्यु है। वैसे ही इस तन के लिये, सर्वत्र व्याप्त बस मृत्यु है।।

देव बोले,
हे ऋषिवर राजा निमि, बिना शरीर के ही रहें। जीवों के नेत्रों में यह, इच्छानुसार निवास करें।।
वहां रहकर सूक्ष्म तन से, श्री हरि का चिन्तन करते रहें। पलक के उठने गिरने से, आभास उनका होता रहे।।
शुकदेव बोले,
राजा के न रहने पर, अराजकता फैलेगी यहां। यह सोचकर ऋषियों ने, निमि तन का मन्थन किया।।
उस मन्थन के परिणाम में, एक कुमार का जन्म हुआ। जन्म लिया कुमार ने, इस कारण नाम उसका जनक हुआ।।
बिना देह उत्पन्न हुआ, विदेह वह इससे कहलाया। मन्थन से जन्मा था वह, मिथिल नाम से जाना गया।।
इस मिथिल ने मिथिला पुरी, का निर्माण था करवाया। विदेहराज जनक भी, इसने ही था नाम पाया।।

जनक पुत्र था उदावसु, उसका नन्दीवर्धन हुआ। नन्दीवर्धन का सुकेतु था, देवराज उसका सुत था।।
देवरात सुत बृहद्रथ, महावीर्य पुत्र बृहद्रथ का। महावीर्य का पुत्र सुधृति हुआ, धृष्टकेतु था सुधृति का।।
हर्यश्व पुन: उसके, पुत्र का ही नाम हुआ। और मरु नामक उसका, पुत्र कहें पुन: हुआ।।
मरु से प्रतीपक उससे कृतिरत, उससे देवमीढ़ हुआ। उससे विश्रुत और उससे पुन:, महाधृति का जन्म हुआ।।

महाधृति सुत था कृतिरात, उसका पुत्र था महारोमा। माहरोमा पुत्र स्वर्णरोमा, और उसका पुन: था ऱ्हस्वरोमा।।
महाराज सीरध्वज इसी, ऱ्हस्वरोमा के पुत्र थे। यज्ञ हेतु जब धरती को, हल से थे वह जोत रहे।।
तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग, से सीता उत्पन्न हुई। इस कारण ही उनका नाम, सीरध्वज था पड़ गया।।
उनके पुत्र थे कुशध्वज, उनके धर्मध्वज हुए। धर्मध्वज के द्वौ पुत्र, कृतध्वज मितध्वज नाम से थे।।
कृतध्वज के केशिध्वज हुए, मितध्वज के खाण्डिक्य हुए। केशिध्वज तो आत्म विद्या, में अति प्रवीण थे।।

दूजी ओर खाण्डिक्य तो, कर्मकाण्ड मर्मज्ञ था। केशिद्वज से भयभीत हो, वह तो कहीं था भाग गया।।
केशिध्वज सुत था भानुमान्, और उसका पुन: हुआ शतद्युम्न। उससे शुचि उस से सनद्वाज, और ऊर्ध्वकेतु हुआ उसका सुत।।
उसका अज अज से पुरजित, उससे अरिष्टनेमि हुआ। श्रुतायु पुनश्च सुपार्श्वक, चित्ररथ उससे हुआ।।
चित्ररथ से मिथिलापति, क्षेमधि का जन्म हुआ। इसविधि कुल का यह, विस्तार ही होता गया।।

क्षेमधि से हुआ समरथ, समरथ से सत्यरथ हुआ। सत्यरथ से उपगुरु, उपगुप्त उसका पुत्र हुआ।।
उपगुप्त में अग्नि का, ही मानो इक अंश था। उसका वस्वनन्त पुनश्च युयुध, उसका सुभाषण पुत्र था।।
सुभाषण का श्रुत श्रुत का जय, और जय का विजय फिर पुत्र हुआ। ऋत जान ले विजय के, पुत्र का ही नाम था।।

ऋत का शुनक फिर उसका, पुत्र वीतहव्य हुआ। उसका धृति उसका बहुलाश्व, उसका फिर कृति पुत्र हुआ।।
कृति का पुत्र था महावशी, जो मिथिल के वंश में उत्पन्न था। मिथिल वंश के सारे ही, नरपतिन् का मैथिल नाम था।।
सबके सब आत्म ज्ञान से, सम्पन्न हुए यह हे राजन्। गृहस्थाश्रम में रहकर भी, छू न सके सुख दु:ख के द्वन्द्व।।
हों भी क्यों न याज्ञवल्क्यादि, ऋषियों की इनपर कृपा बनी। ऋषियों के सम्पर्क से, आत्म ज्ञान तो सहज हुई।।
शुकदेव बोले,
चन्द्रमा के वंश का अब, आरम्भ वर्णन होता है। पुरुरवा आदि महाराजा का, इस वंश में कीर्तन होता हैं।
सहस्त्रसीसा विराट् के, नाभिसर से ब्रह्मा जन्में। ब्रह्मा पुत्र श्री अत्री भी, ब्रह्मा समान गुणवान् थे।।
उन्हीं अत्रि के नेत्रों से, अमृतमय चन्द्र का जन्म हुआ। ब्राह्मण चन्द्र औषधि का, अधिपति उसे ब्रह्मा ने किया।।
त्रिलोकी पर उस विजय करी, और राजसूय यज्ञ किया। इससे दम्भ बढ़ा उसका, बृहस्पति की पत्नी को हरा।।

देवगुरु ने बार बार, उससे फिर यह याचना की। उनकी पत्नी लौटा वह दे, बार बार यह प्रार्थना की।।
किन्तु वह तो मदमत्त था, एक बात नहीं उनकी सुनी। ऐसी परिस्थिति में फिर, देवों असुरों में युद्ध छिड़ी।।

शुक्राचार्य को बृहस्पति, से अति द्वेष सदा ही था। इस कारण असुरों सहित, दैत्यों का उन पक्ष लिया।।
दूजी ओर महादेव का था, देवों पर अति स्नेह बना। सब भूत गणों को संग ले, उन देवों का पक्ष लिया।।
विद्या गुरु अंगिरा के, पुत्र बृहस्पति संग हुए। इस विधि देवों दानवों के, महायुद्ध आरम्भ हुए।।

देवराज श्री इन्द्र ने भी, सब देवों को संग लिया। अपने गुरु बृहस्पति के, पक्ष में वह हुआ खड़ा।।
इस प्रकार तारा के निमित्त, देवासुर यह संग्राम हुआ। देवों असुरों दोनों का ही, संग्राम महा संहारक था।।

तत्पश्चात् ऋषि अंगिरा, ब्रह्मा जी के पास गए। किसी विधि युद्ध बन्द यह हो, उन्होने निवेदन यह किये।।
इस पर श्री ब्रह्मा जी ने, चन्द्र को बहुत फटकार दिया और तारा को पति बृहस्पति, के हवाले कर दिया।।
बृहस्पति ने जब जाना, तारा तो है गर्भवती। तब उन्होने निज पत्नी से, यह वचन फिर जाय कही।।

अरी दुष्टे मेरे क्षेत्र में, यह तो किसी अन्य का गर्भ है। अभी इसका परित्याग करो, यह नहीं धर्म का कर्म है।।
भयभीत न हो क्रोध से, तुझको मैं नहीं जलाऊंगा। एक तो तू है स्त्री, मेरी सन्तति की फिर कामना।।
स्त्री होने के कारण, दोष रहित है तू देवी। बस इतना ही तू कर तुरन्त, इस गर्भ को त्याग दे तू जल्दी।।

निज पति की बातें सुनकर के, तारा का मन अति लज्जित था। स्वर्ण सा तेजोमय शिशु, उसने अपने गर्भ से अलग किया।।
उस बालक को देखकर, बृहस्पति और चन्द्रमा। दोनों ही मोहित हुए, दोनों थे चाहते उसे पाना।।
अब दोनों का इक दूजे से, झगड़ा यह होने लगा। तुम्हारा नहीं यह मेरा है, इस पर वाक् का द्वन्द्व हुआ।।
ऋषियों और देवों ने फिर, तारा से जाकर पूछा। कहो किसका है यह शिशु, लज्जावश मुख उसका नहीं खुला।।

माता की झूठी लज्जा देख, वह शिशु अति क्रुध हुआ। क्रोधावेश में निज जननी, से वह यूं कहने लगा।।
क्यों तुम मौन हो धरे हुए, शीघ्रातिशीघ्र तुम कहो मुझे। अपने कुकर्म की बात जो, हे माता अब कहो मुझे।।
तत्काल ही श्री ब्रह्मा ने, एकान्त में उससे बात करी। तारा को समझाया बहुत, और रहस्य फिर जान ली।।
लज्जाकुल तारा ने कहा, है चन्द्रमा ही पिता इसका। तब चन्द्रमा ने शिशु को, निज संरक्षण में लिया।।

उस बालक का नाम हे राजन्, ब्रह्मा जी ने बुद्ध रखा। अति गम्भीर बुद्धि वह था, इस कारण नाम यह उसका था।।
ऐसा सुन्दर पुत्र पा, चन्द्र अति प्रसन्न हुआ। फिर इला के गर्भ से, बुद्ध पुत्र पुरुरवा हुआ।।
इसका वर्णन तो राजन्, हूं पहले ही मैं कर चुका।

११) राजा पुरुरवा का चरित्र

एकदा इन्द्र की सभा में, नारद ने था गुणगान किया।।
पुरुरवा के रूप गुण, स्वभाव का बखान किया। उसकी उदारता शीलता, सम्पद् पराक्रम का गान किया।।
वह सुनी उर्वशी के, हृदय में काम संचार हुआ। उससे ताडित वीरांगना वह, पुरुरवा पास जा पहुंची।।

मित्र वरुण के शाप से, उर्वशी तो थी त्रस्त हुई। मर्त्यलोक की गमन उसे, इस कारण अनिवार्य थी।।
जब उसने सुना पुरुषश्रेष्ठ, पुरुरवा है मूर्तिमान् मदन। यह सुनकर सुर सुन्दरी ने, किया अतीव धैर्य धारण।।
और वह स्वयं ही, उनके पास चली आई। उसे देख पुरुरवा नेत्र, हर्ष से थी फिर खिल उठी।।
तन भी रोमांचित हो गया, और मन भी उसका गद्गद् हुआ। अति मधुर वाणी में उसने, फिर यह प्रियकर वचन कहा।।
पुरुरवा बोले,
स्वागत है हे सुन्दरी, आओ आसन ग्रहण करो। क्या सेवा मैं तुम्हारी करूं, अब तुम ही आदेश दो।।
आओ प्रिय अब मेरे संग, तुम भी आ के विहार करो। हम दोनों का यह विहार, अन्त काल पर्यन्त हो।।
उर्वशी बोली,
हे राजन् आप तो, हैं सौन्दर्य की मूर्तिमान्। कौन कामिनी ऐसी हो सके, जिसका मन न हो आसक्तवान?
आपके समीप आ, मन मेरा यह चंचल हुआ। रमण की इच्छा है उठी, मन अपना धैर्य है खो चुका।।

जो नर गुण और रूप से, प्रशंसनीय ही होता है। वास्तव में वह ही तो, नारी का अभीष्ट भी होता है।।
अत: आपके संग तो मैं, विहार निश्चित करूंगी ही। पर इसमें भी हे प्रियतम, है एक ही शर्त मेरी।।
धरोहर के रूप में, दो भेड़ के शिशु हूं सौंप रही। इनकी रक्षा आप करें, बस इतनी है बिनती मेरी।।

केवल घृत का ही पान करूं, हे वीरवर जानें आप। मैथुन काल को छोड़कर, कभी निरवस्त्र न होना आप।।
परम मनस्वी पुरुरवा ने, साधु कहा उसे मान लिया। उर्वशी की जो शर्त थी, तत्क्षण उसे स्वीकार किया।।

शुकदेव बोले,
फिर उसने उर्वशी से कहा, अद्भुत है रूप तुम्हारा प्रिये। अलौकिक भाव तुम्हारा यह, सब सृष्टि मुग्ध ही कर सके।।
कृपा करके देवी तुम, स्वयं यहां पर हो आई। कौन पुरुष न सेवन तेरा करे, को होगा ऐसा हरजाई?

पुरुरवा संग उर्वशी, तब विहार करने लगी। काम शास्त्र अनुकूल ही, हे राजन् वह विचरने लगी।।
देवों की विहार स्थली, चैत्ररथ और नन्दन वन। अति मधुर और मनहर थे, वहां के जो सब ही उपवन।।
स्वच्छन्द होकर पुरुरवा, उस संग प्रेम में मग्न हुए। बिन किसी रोक टोक के, वह विहार करने लगे।।

उर्वशी का तन जानो, कमल केसर सा सुगन्धित था। उसके संग राजा पुरुरवा ने, बहुत वर्ष विहार किया।।
उसके मुख की सुरभि में, सुध बुध अपनी भुलाते वो। बहुत विधि यत्न कर राजन्, उर्वशी को रिझाते वो।।
उधर इन्द्र ने देवसभा में, उर्वशी को जब न पाया। गन्धर्वों के हाथ तब, संदेशा उसको भिजवाया।।
उर्वशी के बिना तो, यह स्वर्ग ही फीका हो गया। उसके जाने से ऐसा लगे, मानो श्रीहीन ही यह भया।।

अर्धरात्रि के समय, गहन अन्धकार में। वे गन्धर्व उर्वशी के, स्थान पर फिर जा पहुंचे।।
वह दोनों भेड़ उसके जो, धरोहर राजा के थे पड़े। उन दोनों को उठाकर के, गन्धर्व वे चलते बने।।

गन्धर्वों से ले जाई गईं, भेड़ें थी रम्भाने लगीं। निज पुत्र सम प्रिय जब, भेड़ों की आवाज सुनी।।
तब उर्वशी ने विलाप किया, हाय यह मैंने क्या किया। इस कायर को निज स्वामी बना, सर्वनाश हाय मेरा हुआ।।
यह राजा अपने को, यूं तो वीर है मानता। पर मेरी दो भेड़ों को भी, नपुंसक यह न बचा सका।।

इस पर विश्वास किया मैंने, उसका है यह परिणाम हुआ। लुटेरों ने मेरे शिशु समान, भेड़ों का अपहरण किया।।
निष्ठा वीर्य और शौर्य की, बहुत चर्चा है यह नर करता। हाय मैं तो मारी गई, देखो तो सही यह क्या हुआ।।
रात्रि में कायर बनकर, स्त्रीवत् ही यह सोया रहा। इस कारण ही मेरा प्रिय शिशु, भेड़ों का है हरण हुआ।।

जैसे किसी हाथी को कोई, अंकुश से हो बेध रहा। उसी विधि उर्वशी ने, वाग्बाणों से उसे बेंधा।।
यह सुनकर राजा पुरुरवा, भी अति क्रुध ही हो गए। निरवस्त्र अवस्था में ही वह उस ओर ही दौड़ पड़े।।

राजा के झपटने पर ही उन, गन्धर्वों ने छोड़ी भेड़ें और स्वयं बिजली समान, ही गन्धर्व चमकने लगे।।
जब राजा पुरुरवा, भेड़ों को लेकर लौटे। विद्युत की उस चमक में, वस्त्र हीन उर्वशी देखे।।
तत्क्षण ही फिर उर्वशी ने, राजा का परित्याग किया। उन्हें त्यजी पुन: उसने, स्वर्ग को प्रस्थान किया।।

हे राजन् जब पुरुरवा, निज शयन कक्ष में लौट आया। निज प्रियतमा उर्वशी को, उसने वहां पे न पाया।।
व्यथित चित वह हो गया, उसका मन था उर्वशी में बसा। शोक विह्वल हो उसके लिये, वह इधर उधर ही भटके था।।

इक दिन कुरुक्षेत्र में, सारस्वती नदी के तट पर। प्रसन्नवदन पंच सखियन् संग, उर्वशी के दर्शन पाकर।।
अति मधुर वाणी में वह, फिर उससे यूं बोल उठा। इक बात मेरी तुम मान लो, अरी प्रिये तनिक ठहरो तो जरा।।
हा निष्ठुरे आज को तुम, सुखी ही कर दो मुझे प्रिया। क्षणभर ठहरो अब मिलकर के, दो बातें हमसे करो प्रिया।।

हे देवी इस तन पर अब, कृपा प्रसाद तेरा नहीं रहा। इस कारण ही तो इसको, तुमने अपने से दूर किया।।
अत: यह सुन्दर तन मेरा, ढेरी अभी हुआ जाता है। तेरे सम्मुख ही गीधों और वृकों का ग्रास बना जाता है।
उर्वशी बोली,
हे राजन् तुम पुरुष ही, इस प्रकार तुम नहीं मरो। सचमुच कहीं यह तन तेरा, वृकों का ही न ग्रास हो।।
नारी के साथ कभी किसी की, मित्रता हो ही न पाये। स्त्री हृदय और वृक् हृदय, एक समान ही हो जाये।।

निर्दयी होती हैं स्त्रियां, क्रूरता तो स्वभाविक है। तनिक सी बात पे क्रुध हों, निज सुख में वह आसक्त हैं।।
बड़े बड़े साहसिक कर्म, सुख कारण वह कर जाती हैं। स्वार्थ हेतु कहें मधुर वचन, विश्वास पति को दिलाती हैं।।
पर अपने ही स्वार्थ में, निज पति भ्रातु का हनन करे और तो और वह अपने पति, तक को भी कभी मार दें।।

नहीं हृदय में कोमलता, भोले जन को यह फांस ले। झूठा विश्वास दिलाकर के, उनका मन यह जीत लें।।
नित्य नये पुरुष की चाह से, कुलटा ही यह बन जायें। मनोवांछित फल पाने को, स्वच्छन्द चारिणी हो जायें।।

तुम तो हो राजेश्वर हे, मन में धीरज तुम धरो। घबराओ मत राजन् तुम, अब मेरी यह बात सुनो।।
प्रतिवर्ष बाद इक रात्रि तुम, मेरे साथ बिताओगे। तब अन्य सन्तान भी, हे राजन् तुम पाओगे।।
शुकदेव बोले,
उस समय थी वह गर्भवती, राजा पुरुरवा ने देख लिया। इस कारण वह तत्काल ही, निज राजधानी को लौट गया।।
एक वर्ष पश्चात् वह, उसी स्थान पर फिर गया। इक वीर पुत्र को उस समय, उसने उर्वशी संग देखा।।

उर्वशी को पाकर के, अति आनन्दित राजा हुआ। इक रात्रि तब उर्वशी, के साथ वह वहां रहा।।
प्रात:काल में जब राजा, उससे विदा लेने लगा। उससे वियोग की सोचकर, अति व्यथित दीन राजा हुआ।।
तब उर्वशी ने राजा से कहा,
हे राजन् इन गन्धर्वों का, स्तुति गान अब तुम करो। इनकी प्रसन्नता से ही तुम, पुन: प्राप्त मुझे कर सको।।

शुकदेव बोले,
राजा पुरुरवा ने तब, स्तुति करी गन्धर्वों की। गन्धर्वों ने होकर प्रसन्न, राजा को दी अग्निस्थली।।
राजा ने समझा यह ही है, उनकी प्रियतमा उर्वशी। उसे हिय से लगाकर के, वन वन में उसने भ्रमण करी।।
जब सचेत हुए राजा, स्थाली छोड़ महल लौटे। रात्रि समय में वह राजा, उर्वशी के ध्यान में खोए रहे।।
इस विधि जब त्रेता युग का आरम्भ ही हो गया। तब जा उनके हृदय में, वेदत्रयी प्राकट्य हुआ।।

फिर उस स्थान पे पुन: गए, जहां अग्निस्थाली छोड़ा था। शमीवृक्ष के गर्भ में, वहां पीपल वृक्ष था उग रहा।।
उससे फिर राजा ने, द्वौ अरिणी बना ही लीं। और मनोमन ही उसने, उर्वशी लोक की कामना की।।
नीचे की अरणि उर्वशी, ऊपर की पुरुरवा करी। मध्य काष्ठ की पुत्र रूप, में उन्होंने चिन्तन करी।।
अग्नि मन्थन के मन्त्रों से, प्रज्ज्वलित किया उस अग्नि को। जातवेदा नामक अग्न, को वहां से प्रकट कियो।।
अग्निदेव को राजा ने, तीन भाग में फिर बांट दिया। त्रयि विद्या से आहवनीय, गार्हपत्य दक्षिणाग्नि का रूप दिया।।

तीन भाग में विभक्त करी, उन्हें पुत्र रूप स्वीकार किया। इस विधि उस राजा ने, त्रै अग्न प्राकट्य किया।।
उर्वशी लोक की इच्छा को, उन्होंने अपने मन में धरा। सर्वदेवमय इन्द्रियातीत, यज्ञपति हरि का भजन किया।।

त्रेता से पूर्व सतयुग में तो, इक मात्र प्रणव ही वेद था। सब वेद थे अन्तर्गत उसके, अन्य कोई न वेद था।।
इक देवता थे नारायण ही, अन्य देव नहीं थे कोई। अग्नि का रूप भी एक था, नहीं त्रै रूप थी उसने धरी।।
वर्ण भी केवल एक ही था, हँस वर्ण उसको जानो। अन्य वर्ण या आश्रम भी, उस काल में न थे तुम जानो।।

त्रेतायुग के आरम्भ में ही, वेदत्रयी का जन्म हुआ। पुरुरवा से ही जानो, त्रयी अग्न का प्रादुर्भाव हुआ।।
राजा पुरुरवा ने भी, अग्नि को माना निज सन्तान। इस कारण ही गन्धर्वलोक, को हुए वह राजा प्राप्तवान्।।

१२) परशुराम अवतार

शुकदेव बोले,
उर्वशी गर्भ से हे राजन्, पुरुरवा के छः पुत्र हुए। आयु श्रुतायु सत्यायु रय, विजय और जय नाम थे।।
श्रुत का पुत्र था वासुमान्, सत्यायु का था श्रुतंजय। रय का एक जय का अमित, विजय पुत्र श्री भीम थे।।
भीम पुत्र कांचन हुए, कांचन का होत्र जह्नु उसका। इसने ही श्री गंगा को, अंजलि में भर पान किया।।
जह्नु का था पुत्र पुरु, पुरु का बालक और उसका अजक। पुरुरवा के वंश के, यह सब ही हुए धारक।।

अजक का था पुत्र कुश, उसके पुनः चार सुत थे। कुशाम्बु तनय वसु और, कुशनाभ ही उनके नाम थे।।
कुशाम्बु पुत्र थे श्री गधि, उनकी कन्या थी सत्यवती। ऋषि ऋचीक ने गधि से, उसकी कन्या मांग ली।।
कन्या येाग्य यह वर नहीं, ऐसा था गधि ने माना। इस कारण ऋषि ऋचीक से, उसने यूं फिर था कहा।।

कुशि वंश के हैं हम तो, हे मुनिवर बिनती करूं। हमारी कन्या का वरण, नहीं सम्भव आपसे हो कहूं।।
एक सहस्त्र ऐसे अश्व, आप शुल्क में दीजिये। पूर्ण श्वेत वर्ण ही हों, इक कर्ण श्याम ही हो जिनके।।
गधि की यह बात सुनी, ऋषि उनका आशय समझ गए। वरुण पास जाकर के वह, वैसे ही घोड़े ले आए।
उनको शुल्क में दे करी, उन सत्यवती से विवाह किया। इस विधि अति सुन्दरी, उस कन्या का विवाह हुआ।।

महर्षि ऋचीक से एकबार, पुत्र उत्पत्ति के लिये। बिनती करी उसकी पत्नी ने, और सास ने भी इसी आशय से।।
याचना यह स्वीकार करी, अभिमन्त्रित कर भिन्न मन्त्रों से। चरु को पकाकर के, स्नान हेतु ऋषिवर गए।।

सत्यवती की माता ने, समझा है श्रेष्ठ चरु पुत्री का। उससे चरु वह मांग लिया, और सत्यवती ने उसे दिया।।
स्वयं वह निज माता के, नाम का चरु ही खा गई। जब ऋचीक् मुनि ने जाना, उन पत्नी से यह बात कही।।
बहुत अनर्थ किया तुमने, अब तुमको कुपुत्र होगा। लोगों को दण्ड देने वाला, क्रूर प्रकृति का वह होगा।।
और तुम्हारा भाई जो, महा ब्रह्म वेत्ता होगा। इसपर सत्यवती ने फिर, अपने पति को प्रसन्न किया।।

प्रार्थना फिर उसने करी, वह अपने वचन को टालें जरा। इसपर फिर उन्होने कहा, तेरा पौत्र होगा वैसी प्रवृत्ति का।।
समय आने पर जमदग्नि की, जन्म उसके गर्भ से हो गई। सत्यवती ने यह समझा, बुरी घड़ी तो टल गई।।
सब लोकों की परम पावनी, नदी बन गई सत्यवती। रेणुऋषि कन्या रेणुका की पाणिग्रहण जमदग्नि करी।।

रेणुका के गर्भ से फिर, अनेक सुतों ने जन्म लिया। जग विख्यात श्री परशुराम, उन सबमें अनुज ही था।।

कहते हैं यह वंश का, अन्त करने के लिये। श्री हरि ने स्वयं ही, थे परशु अवतार लिये।।
इस धरा को इक्कीस बार, था क्षत्रिय विहीन किया। ऐसी घोर है परशुराम, के पराक्रम की गाथा।।
यद्यपि क्षत्रियों ने उनका, था थोड़ा सा अपराध किया। अति दुष्ट थे वह ब्राह्मण द्रोही, रज तम पूर्ण स्वभाव था।।
इस कारण ही पृथ्वी पर, वे सब भारी थे हुए। फल स्वरूप उन्हें नष्ट करी, पृथ्वी के भार उतार दिये।।
परीक्षित् बोले,
उस समय के क्षत्रिय जो, निश्चय ही विषय लोलुप होंगे। किन्तु श्री परशुराम के, प्रति कौन अपराध किये?
जिस कारण उन्होंने बार बार, क्षत्रियों का संहार किया। इक्कीस बार इस धरती को, उनसे विहीन था कर दिया।।
शुकदेव बोले,
उन दिनों हय वंश का, अधिपति था राजन् अर्जुन। श्रेष्ठ क्षत्रिय वह तो हुआ, सेवा सुश्रूषा से सम्पन्न।।
नारायण के अंशावतार, श्री दत्तात्रेय को मुदित किया। इक सहस्र भुजा मांगी, अजातशत्रु इस विध वह बना।।
इन्द्रियों का अतुल्य बल, अबाध सम्पदा भी पाई। तेज वीरता कीर्ति और, तनोबल भी कृपा से थी पाई।।

योगेश्वर भी था वह हुआ, महा ऐश्वर्य सम्पन्न वह था। सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थूल से स्थूल, रूप वह था धर सकता।।
सब सिद्धियां प्राप्त थीं उसको, बेरोक टोक विचरता था। वायुवत् वह सब जग में, सब जगह विचरण करता था।।
कण्ठ वैजयन्ती माला पहन, इक बार विहार था कर रहा। सौन्दर्यवती स्त्रीन् के संग, नर्मदा के जल में वह गया।।
मदोन्मत्त सहस्रबाहु ने, निज बल का प्रयोग किया। अपनी बाहों से उसने, नदी का प्रवाह था रोक दिया।।

वहीं कहीं पास में ही, दशानन का शिबिर भी था। हुई नदी की धारा उल्टी जब, वह उसमें डूबने था लगा।।
रावण अपने को सदा, अति बलवान् ही माने था। सहस्रबाहु का यह पराक्रम, सहन नहीं वह कर सका।।

सहस्रबाहु के पास जा जब, रावण ने बुरा भला कहा। स्त्रीन् सम्मुख ही खेल खेल में, रावण को उसने पकड़ लिया।।
निज राजधानी महिष्मति में, उसको फिर वह ले गया। और बन्दर के समान ही, उसको वहां पे कैद किया।।
बाद में पुलस्त्य ऋषि, ने जब उसको सम्मत्ति दी। अपनी कैद से रावण की, तब उसने थी मुक्ति की।।

इक दिन आखेट के लिये, सहस्रबाहु वन में था गया। जमदग्नि मुनिवर के, आश्रम में दैववश पहुंच गया।।
तपस्वी मुनिवर के यहां, कामधेनु थी आश्रम में। उसके प्रभाव से महामुनि, सर्वसम्पदा सम्पन्न थे।।
सेना मन्त्री वाहन आदि, संग जो राजा के आये। हैहयाधिपति ने मुनिवर से, स्वागत सत्कार बहुत पाये।।

सहस्रार्जुन ने देखा जब, मुनि का ऐश्वर्य तो है महान्। स्वागत सत्कार को भूला वह, डाह अग्न ली मन में ठान।।
कामधेनु पर ही राजन्, थी उसकी दृष्टि टिकी। पर गर्ववश जमदाग्नि से, उसने धेनु मांगी नहीं।।
आज्ञा दी निज सैनिकों को, बलपूर्वक उसे छीन लें। बछड़े सहित वह दिव्य धेनु, महिष्मति को ले गए।।

वे सब तो वहां से चले गए, परशुराम जब घर लौटे। उसकी दुष्टता का वृतान्त सुन, अति क्षुब्ध वह हो गए।।
आहत सर्प की भाँति वह, क्रोध से तिलमिला उठे। भयंकर फरसा तरकश धनुष, ढाल आदि को लेकर के।।

बहुवेग से सहस्त्रबाहु, अर्जुन के पीछे दौड़ पड़े। ज्यों अति बलवान सिंह, हाथी पर ही टूट पड़े।।

हैहयपति निज नगर में, प्रवेश ही था अभी कर रहा। बहुवेग से बढ़ते आ रहे, श्री परशुराम को उसने देखा।।
इक हाथ में धनु: और बाण थे, फरसा दूजे में था पकड़ा। कृष्ण मृगचर्म को उन्होने, था तन पे धारण किया।।
जटायें सूर्य की किरण के, समान थीं उनकी चमक रही। इस विधि परशुराम की, झांकी अति अद्भुत थी बनी।।

उन्हें देखकर राजा ने, सावधान निज सेना करी। गदा खड्ग ऋष्टि शतघ्री, शक्ति आदि आयुध से भरी।।
हाथी घोड़े रथ तथा, पैदल सैनिकों से युक्त जो। अति भयंकर सत्रह अक्षौणी, सेना वहां पर भेज दी।।
श्री परशुराम ने बात बात में, सेना सारी नष्ट करी। अकेले ही उस राजा की, वह सेना सब भ्रष्ट करी।।

प्रभु परशुराम की गति तो, वायु और मन जैसी थी। चहुं ओर से शत्रु सेना की, उन्होंने यूं संहार करी।।
जहां तहां निज फरसे से, प्रहार वह करते थे जाते। सारथी वाहन और वीरों के, अंग थे पृथ्वी पर गिरते।।

सहस्त्रार्जुन ने देखी जब, निज सैनिकों की यह गति। धनुष ध्वजायें ढाल सब, फरसे बाणों से कट थीं रहीं।।
रक्त रंजित होकर के, सब भूमि पर थे गिर पड़े। यह सब देखी सहस्त्रार्जुन, क्रोध की सीमा पार हुए।।
पांच सौ धनुषों पर, फिर बाण उसने चढ़ा दिये। फिर एक साथ ही परशु पर सबके सब ही छोड़ दिये।।
किन्तु वह शिरोमणि ठहरे, सब ही शस्त्रधारियों के। एक धनुष से छोड़े हुए, बाण से उन्होने सब काटे।।

अब राजा ने अपने हाथों, पर्वत और वृक्ष उखाड़ दिये। अति वेग से यह सब फिर, परशुराम पर फेंके।।
अपने तीक्ष्ण फरसे से, परशुराम ने प्रहार किया। सर्वसमर्थ सहस्त्रबाहु को, उन्होने क्षण में काट दिया।।
जब बाहें उसकी कट गईं, पर्वत समान था सिर ऊंचा। श्री परशु के प्रहार ने, अलग उसे फिर धड़ से किया।।
निज पिता की मृत्यु देख कर, दस सहस्त्र उसके लड़के। युद्ध क्षेत्र में भाग गए, भयभीत अति होकर के।।

विपक्षी वीरों का जिन्होंने, था क्षणभर में नाश किया। बछड़े संग कामधेनु को, परशु ने लौटा लिया।।
अति व्यथित वह धेनु थी, उसको निज आश्रम ले आये। निज पिताश्री और भाइयों को, वृतान्त सारे उन्होने बतलाये।।
महिष्मति में सहस्त्रबाहु, और उसके सैनिकों ने जो किया। वह सब सुनकर जमदग्नि, ने फिर निज सुत से कहा।।
जमदाग्नि ऋषि बोले,
हाय हाय परशु यह तो, तुमने है बहुत पाप किया। वीरश्रेष्ठ तो तुम बहुत, पर सर्ववेदमय नर यह था।।
व्यर्थ में ही हे पुत्र, वध उसका तुमने किया। याद रहे हे पुत्र तूने, है ब्राह्मण गोत्र में जन्म लिया।।
क्षमा के प्रभाव से ही, जग में पूज्य है स्थान बना। सबके पितामह ब्रह्मा ने, क्षमा से ही ब्रह्मपद पाया।।
क्षमा से ही तो ब्राह्मणों की, शोभा सूर्य सम प्रखर हो। श्री हरि भी क्षमावानों पर, शीघ्र ही प्रसन्न हों।।

हे वत्स राजा का वध, ब्रह्म हत्या से भी है बड़ा। सर्वभौम राजा मारा, अब प्रायश्चित उसका करो जरा।।
प्रभु को याद करते हुए, अब तीर्थ तीर्थ भ्रमण करो। अति घोर इन पापों को, हरि सिमरन से ही अब धो दो।।
शुकदेव बोले,
जो आज्ञा कह परशुराम ने, पितु आदेश स्वीकार किया। तत्पश्चात कर तीर्थ भ्रमण, इक वर्ष में पुन: आश्रम लौटा।।

इक दिन परशु की माता, थी गंगा तट पर गईं। चित्ररथ संग अप्सरागण, पद्म माल पहर थी विचर रही।।
जल लेने गई थी गंगा में, वहां जल क्रीड़ा देखन लगीं। पति के हवन का समय हुआ, यह भी बात वह भूल गईं।।
चित्ररथ को देख के मन, कुछ विचलित भी उसका हुआ। जलक्रीड़ा का दर्शन कर, आकर्षण था उस ओर बढ़ा।।

जब याद आया है समय बीता, ऋषि शाप से वह भयभीत हुईं। तत्क्षण आश्रम में लौटी वह, करबद्ध थी ऋषि सम्मुख खड़ी।।
जगदग्नि ने निज पत्नी के, मनोभाव को जान लिया। मनोव्यभिचार देख कर, हो क्रुध उन्होंने फिर कहा।।
मेरे पुत्रों इस कुल्टा का, इस क्षण ही तुम वध करो। किन्तु उनकी यह आज्ञा, किसी पुत्र को भी स्वीकार न हो।।
तत्पश्चात् पितु आज्ञा से, जननी संग सब भ्राता मारे। निज पितु के तप और योग के, प्रभाव को परशु जाने थे।।

पुत्र कर्म यह देख कर, जमदग्नि अति प्रसन्न हुए। और परशु को उन्होने, वर मांगने के आदेश दिये।।
परशुराम ने वर मांगा, मम भ्राता जननी जीवित हों। और उन्हें मम कर्म की, स्मृति न किंचित् मन में हो।।
परशु के यूं कहते ही, जैसे कोई निद्रा से उठे। सब के सब ही अनायास, सकुशल ही उठ बैठे।।
निज पिता का तपोबल, परशुराम तो जाने थे। इस कारण निज सुहृद् जन, के वध थे उन्होने किये।।

सहस्त्रबाहु अर्जुन के सुत, जो परशुराम से थे भागे। निज पिता के वध की याद वह, हृदय लगाये थे रहते।।
क्षणभर के लिये कहीं पे भी, वह चैन न पाते थे। पिता के वध की याद में, वह तो नित जलते जाते थे।।
इक दिन निज भ्राताओं संग, थे श्री परशु वन को गए। अवसर देखी सहस्त्रबाहु के, पुत्र आश्रम में जा पहुंचे।।

जमदग्नि तो उस समय, यज्ञशाला में थे बैठे। समग्र चित्त एकाग्र कर, प्रभु चिन्तन में निमग्न थे।।
बाह्य अवस्था की उनको, कोई भी सुधि न थी। उन पामरों के मन द्वेष भरा, थी पापपूर्ण नीयत उनकी।।
उसी समय उन पापियों ने, जमदग्नि का हनन किया। परशुराम की माता का, नहीं अनुनय उन्होने कोई सुना।।
बलात् ही ऋषिवर का, वह सीस काटकर ले गए। हे राजन् वह क्षत्रिय तो, वास्तव में अति क्रूर थे।।

बहुत व्यथित हुई रेणुका, शोक से अति आतुर वह थी। छाती और सिर पीट कर, वह जोर जोर से रोने लगी।।
परशुराम हे पुत्र मेरे, शीघ्रतिशीघ्र तुम लौट आओ। हा राम कहा करुण क्रन्दन, बहुत दूर से सुन लियो।।
अति शीघ्रता से परशु, फिर निज आश्रम को लौट आये। वहां आकर देखा उन्होने, हैं पिताश्री तो मारे गए।।

परशुराम देखी यह दृश्य, अति व्यथित ही हो गए। असहिष्णुता क्रोध शोकावेग, मनोपीड़ा से मोहित हुए।।
हा पिता मेरे आप तो, धर्म के सत्य पुजारी थे। हमें छोड़ हे महात्मन्, स्वर्गारोह आप किये।।
इस भाँति विलाप कर, पितु तन भ्राताओं को सौंपा। फरसा उठाकर हाथ में, क्षत्रिय संहार संकल्प लिया।।

महिष्मति नगरी में जा, परशु ने महाकौतुक किये। सहस्त्रबाहु के सुतों के, सीस नगर के मध्य धरे।।
उन ब्रह्मघाती पतितों से, शोभा थी नगर की नष्ट हुई। उनके रक्त से अब वहां, अति वेगवती नदी बही।।
ब्राह्मण द्रोही जन के हृदय, उसे देखी भय से काम्प उठे। प्रभु ने देखा यह वर्तमान, क्षत्रिय तो अत्याचारी हुए।।
इस कारण हे राजन् उन, निमित्त किया पितु हनन को। इक्कीस बार क्षत्रियों से, विहीन किया इस पृथ्वी को।।
कुरुक्षेत्र के समन्तपंचक में, पंच सरोवर बना दिये। जिनमें जल के स्थान पर, रक्त ही थे भरे हुए।।

निज पिता के सीस को लाकर के, उन्होने फिर धड़ से जोड़ दिया। सर्वदेवमय आत्म स्वरूप, हरि का यज्ञों से यजन किया।।

यज्ञों में पूर्व दिशा फिर, प्रदान करी उन होता को। ब्रह्मा को दी दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा की उध्वर्यु को।।
उत्तर दिशा सामगान, के उद्गाता को दे दी। अग्निकोण आदि विदिशायें, उन्होने ऋत्विजों को फिर दीं।।
मध्य भूमि दी कश्यप को, उपद्रष्टा को दिया आर्यवर्त। अन्य सदस्यों को अन्यान्य, दिशायें दीं उन प्रदान कर।।

तत्पश्चात् श्री परशु ने, यज्ञान्त फिर स्नान किया। सब पाप मुक्त हो ब्रह्मनदी, सरस्वती तट वास किया।।
मेघ रहित सूर्य समान, देदीप्यमान थे वह हुए। महर्षि जमदग्नि ने फिर, संकल्पमय ही तन धरे।।
सम्मानित हो श्री परशु से, वह सप्तर्षि मण्डल में गए। और वहां पे जमदग्नि, सप्तम् ऋषि ही हो गए।।

जमदग्नि के कमलनयन पुत्र, परशु अगामी मन्वन्तर में। सप्तर्षि मण्डल में रह, वेदों को विस्तृत करेंगे।।
आज भी वह किसी को, कोई दण्ड न देते हुए। शान्त चित्त से महेन्द्र, पर्वत पर हैं रह रहे।।
सिद्ध गन्धर्व चारण वहां, सुमधुर स्वरों से गान करें। उनके चरितों का वहां, सविस्तार बखान करें।।
भृगुवंशियों में इस विधि, श्री हरि ने अवतार लिया। भुविभारभूत राजाओं का, बार बार संहार किया।।

१३) विश्वामित्र चरित्र

प्रज्ज्वलित अग्नि के समान, देदीप्यमान् थे विश्वामित्र। तपोबल से क्षत्रियत्व त्याग, प्राप्त किया इन्होने ब्राह्मणत्व।।
महाराज गाधि के पुत्र थे यह, क्षत्रिय वंश में जन्म हुआ। इनके पुन: हे राजन् था, सौ पुत्रोंने जन्म लिया।।
मध्यम पुत्र था मधुछन्दा, सब ही मधुछन्दा कहलाये। इस नाम से ही पुत्र, उनके सब ख्याति पाये।।

भृगुवंशी अजीगर्त पुत्र ने, निज भानजे शनु:शेप को। देवरात भी जिसका नाम था, निज पुत्र रूप स्वीकार कियो।।
निज पुत्रों से उसने कहा, अग्रज इसे स्वीकार करो। प्रसिद्ध वही भृगुवंशी था, जो यज्ञपशु को मोल लिया।।
हरिश्चन्द्र के यज्ञ में, यह ही लाया था गया। प्रजापति वरुण की स्तुति कर, उसे पाशबन्ध से छुड़ा लिया।।
देवयज्ञ में विश्वामित्र को, इसको ही देवों ने था दिया। गधि वंश में देवरात, नाम से यह विख्यात हुआ।।

विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र, के मन को बात यह न भाई। शनु:शेप को निज अग्रज माने, यह रुचिकर न बन पाई।।
इससे श्री विश्वामित्र सब, पुत्रों पर अति क्रुध हुए। तुम सब मलेच्छ ही हो जाओ, ऐसे उन्होने शाप दिये।।
जब उश्वास वह भाई, मलेच्छ ही थे हो गए। तब मध्यम सुत मधुछन्दा ने, अनुजों से अपने मिलकर के।।
निज पिता से जा कहा, आप जो आज्ञा हमें करें। आपकी आज्ञा पालन को, हम सब हैं तैयार हे।।

यह कहकर मधुछन्दा ने, अग्रज शनु:शेप को मान लिया। हम सब अनुज तुम्हारे हैं, जाकर उससे यह कहा।।
विश्वामित्र ने पुन: जानो, आज्ञाकारी पुत्रों से कहा। मेरी बात को मान कर, मेरे सम्मान की की रक्षा।।
सुपुत्र तुम्हारे जैसे मिले, मैं तो अतीव ही धन्य हुआ। सुपुत्र प्राप्त करोगे तुम, यह आसीस हूं दे रहा।।

मेरे प्रिय पुत्रो यह देवरात, शनु:शेप भी है तुम्हारे गोत्र का ही। इसकी आज्ञा में रहना तुम, है तुम सबमें ज्येष्ठ यही।।
अष्टक हरिक जय क्रतुमान, आदि भी पुत्र थे ऋषिवर के। विश्वामित्र की सन्तति से, कौशिक गोत्र में भेद हुए।।
शनु:शेप को अग्रज मान करी, उनका प्रवर ही दूजा हो गया। इस कारण उनके गोत्र में, यह भेदभाव था हो गया।।

शुकदेव बोले,
राजा पुरुरवा का इक, पुत्र हुआ राजन् आयु। उसके पुत्र हुए क्षत्रवृद्ध, रजि रम्भ अनेना और नहुष।।
अब क्षत्रवृदध का वंश सुनो, नाम थे काश्य कुश गृत्समद।।
गृत्समद पुत्र फिर हुआ शुनक, इसी के पुत्र थे शौनक जी। ऋग्वेदियों में श्रेष्ठतम, ऋषिवर उपाधि उन पाई।।

काश्यपुत्र काशि हुआ, काशि पुत्र था राष्ट्र हुआ। राष्ट्र पुत्र था दीर्घतमा, उसके धन्वन्तरी जन्मा।।
इस धनवन्तरी ने ही तो, आयुर्वेद को जन्म दिया। यज्ञभाग भोक्ता हैं यह, श्री हरि का अंश ही इन्हें कहा।।
इनके स्मरन्मात्र से ही, रोग सभी हैं भागते। धन्वन्तरी पुत्र थे केतुमान, उनके पुनश्च भरथ हुए।।

श्री भरथ पुत्र था दिवोदास, उसके यहां द्युमान हुए। प्रतर्दन शत्रुजित वत्स ऋत्ध्वज, कुवलयाश्व भी नाम उनके थे।।
इन द्युमान के ही पुत्र, जान हुए अलर्क आदि। छयासठ हजार वर्ष तक, रह युवा पृथ्वी शासित करी।।
अलर्क को छोड़ के कोई, अन्य नहीं ऐसा हुआ। इतनी लम्बी अवधि तक, पृथ्वी पर हो जिसने राज्य किया।।

अलर्क पुत्र था सन्तति, सन्तति पुत्र सुनीथ हुआ। सुनीथ पुत्र सुकेतन था, उसका फिर धर्मकेतु हुआ।।
धर्मकेतु से सत्यकेतु, उससे फिर धृष्टकेतु हुआ। उससे राजा सुकुमार, उससे पुन: वीतिहोत्र हुआ।।
वीतिहोत्र से भर्ग और, उससे भार्गभूमि जन्मा। इस प्रकार से वंश का, विस्तार पुन: होता रहा।।

क्षत्रवृद्ध के वंश में, काशि से सब नरपति जन्मे। रम्भ पुत्र रभस था, उससे गम्भीर थे सुत जन्मे।।
गम्भीर से जन्मा अक्रिय, उनकी पत्नी से चला ब्राह्मण वंश। अब तुम उसकी बात सुनो, जो था अनेना का ही वंश।।
अनेना पुत्र शुद्ध हुआ, शुद्ध का था पुत्र शुचि। उसका त्रिककुट हुआ पुत्र, और उसका था धर्मसारथि।।

उसके पुत्र थे शान्तरय, आत्मज्ञानी कृत्कृत्य वह थे। सन्तति का न लोभ था, पूर्णतय: ही तृप्त वह थे।।
आयुसुत रजि के, अति तेजस्वी पुत्र थे। हे परीक्षित् जान लो, पांच सौ उनके पुत्र हुये।।

देवों की प्रार्थना पर, रजि ने दैत्यों का वध किया। इन्द्र को उसने स्वर्ग का, राज्य पुन: लौटा दिया।।
प्रह्लादादि शत्रुअन् से, नित्य भयभीत ही इन्द्र थे। इस कारण उसने स्वर्ग भी, रजि को ही वापिस किये।।
चरण पकड़ के रजि के उन, निज रक्षा भार उन्हें सौंपा। रजि का जब प्रयाण हुआ, उनके पुत्रों ने न स्वर्ग दिया।।
स्वयं ही मिल सब यज्ञों का, भाग ग्रहण उन्होंने किया। इन्द्र ने पुन: बृहस्पति को, जब विधिवत् जाकर यह कहा।।

अभिचार विधि से देवगुरु ने, हवन इन्द्र का करवाया। इससे धर्म के मार्ग से, पतन रजिपुत्रों का हुआ।।
तब इन्द्र ने अनायास, सब रजि पुत्रों को मार दिया। उनमें से उनके वंश का, कोई अंश न शेष रहा।।
क्षत्रवृद्ध के पौत्र थे कुश, उनसे प्रति का जन्म हुआ। प्रति से संजय और उससे, पुत्र जय का जन्म हुआ।।

जय से कृत कृत से हर्यवन, उससे सहदेव पुन: जन्मे। सहदेव से हीन और उससे, जयसेन नाम के पुत्र हुए।।
जयसेन पुत्र था संकृति, उसका पुत्र था वीर शिरोमणि जय। क्षत्रवृद्ध की परम्परा में, यह सब ही नरपति हुए।।
अब नहुष वंश का, वर्णन तुम राजन् सुनो। जो कुल वर्धन वहां हुआ, अब उसकी तुम कथा सुनो।।

१४) राजा ययाति का आख्यान

शुकदेव बोले,
ज्यों हर तन धारी की, छ: इन्द्रियां ही हों राजन्। वैसे ही नहुष के भी, छ: पुत्र हुए राजन्।।
नाम थे उनके जान लो, याति ययाति संयाति। अन्य के नाम भी जान ले, आयति वियति और कृति।।

ज्येष्ठ पुत्र यति को, राज्य वह देना चाहते थे। पर नहुष के पुत्र ने, स्वीकार राज्य वह नहीं किये।।
राज्य प्राप्ति करने का, परिणाम वह जाने थे। उसके दांव पेंच प्रबन्ध में, जीव जो उलझ जाये।।
उसके भीतर प्रवेश पा, वह निज स्वरूप न जान सके। उस माया जाल में फंसकर वह, आत्म को न पहचान सके।।

इन्द्रपत्नी शची से जब, सहवास नहुष ने था चाहा। ब्राह्मणों ने तब इन्द्रपद, से पतित उसको किया।।
अजगर योनि में वह पड़ा, कुचेष्टा का परिणाम यह था। राजा के पद पर तब, ययाति का अधिकार हुआ।।
चारों अनुजों को उसने, नियुक्त चतुर्दिशा में किया। शुक्राचार्य सुता देवयानी, से परिणय उसने किया।।
दैत्यराज वृषपर्वा सुता, शर्मिष्ठा थी दूजी पत्नी। दोनों पत्नी के संग उसने, पृथ्वी की रक्षा करी।।
परीक्षित् बोले,
शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे, और ययाति क्षत्रिय था। ब्राह्मण कन्या क्षत्रिय वर का, प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ?
शुकदेव बोले,
दानवराज वृषपर्वा की, कन्या थी अति मानिनी। नाम था उसका शर्मिष्ठा, अति सुन्दर थी वह भामिनी।।
गुरुपुत्री देवयानी संग, सहस्त्रों सखियां संग लिये। निज राजधानी के श्रेष्ठ उद्यान, में भ्रमण उसने किये।।
सुन्दर पुष्पों से लदे, वृक्ष अनेकों थे वहां। और उस उद्यान में, सुन्दर इक सरोवर था।।
उसमें कमल थे खिल रहे, भंवरे मधु गुंजन कर थे रहे। उस ध्वनि से सरोवर के, तट भी थे गुंजित हुए।।

जलाशय के निकट जा, वस्त्र तो घाट पे जा धरे। उन सुन्दर कन्याओं ने, जल में फिर प्रवेश किये।।
इक दूजे पर जल फेंक फेंक, कर वह क्रीड़ा करने लगीं। इस विधि जल क्रीड़ा में, सखियां सब संलग्न हुईं।।
उसी समय गौरी के संग, श्री शंकर वहां पे आ पहुंचे। वह तो अपने नन्दी बैल पे, उस पल ही सवार थे।।
उन्हें देख सब कन्यायें, स्वभाव से ही सकुचा गईं। झटपट सरोवर से निकल, निज वस्त्र उन धारण करी।।

जल्दी में शर्मिष्ठा ने, वस्त्र जो धारण कर लिया। अपना जिसे वह जाने थी, वह तो देवयानी का था।।
इस पर देवयानी का, क्रोध तो पूरा भड़क उठा। अति क्रुध होकर उसने, शर्मिष्ठा से यूं कहा।।
देवयानी बोली,
देखो तो सही इस दासी ने, कैसा अनुचित है काम किया। ज्यों श्वान ले जाये हविष्यान्न, इसने मम वस्त्र उठा लिया।।
जिन ब्राह्मणों ने निज तपोबल से, संसार की है सृष्टि करी। परम पुरुष परमात्मा के, मुख स्वरूप ब्राह्मण वही।।
निज हृदय में निरन्तर वे, धारण परमात्मन् करते हैं। प्राणिन् के कल्याण हित, पथ निर्देशन वे करते हैं।।
बहुत लोकपाल ब्रह्मा इन्द्र, करें पाद वन्दन जिनकी। श्री लक्ष्मीपति परम पावन, विश्वात्म स्तुति करें जिनकी।।
उन्हीं द्विजों में सर्वश्रेष्ठ, हम तो हैं भृंगुवंशी। इसका पिता तो असुर है, फिर है हमारा शिष्य भी।।

इस पर भी इस दुष्टा ने, वस्त्र हमारे पहन लिये। जैसे कोई शूद्र ही, अनायास वेदों को पढ़े।।
शुकदेव बोले,
देवयानी ने इस विधि, शर्मिष्ठा को जब दी गाली। तब क्रोध आवेश में, हुई शर्मिष्ठा भी लाल पीली।।
आहत नागिन के समान, लम्बी सांसें वह लेने लगी। अपने दांतों से ओंठ दबा, उसने फिर यूं फटकार करी।।

शमिष्ठा बोली,
अरी भिखारिन् इस विधि, तू क्यों है इतना बहक रही? क्या अपनी अवस्था और स्थिति, को है तू पहचान रही?
ज्यों श्वान और कौए निरन्तर, द्वार पे हमरे ठारे रहें। रोटी के टुकड़ों के लिये, हर पल वह बाट निहारा करें।।
वैसे ही क्या तुम भी नहीं, ताकती रहती हमारा द्वार? जीवन यापन तव हो सके, है आश्रय एको हमारा द्वार।।

शुकदेव बोले,
इस विधि अति कटु वचन कही, शर्मिष्ठा ने दुत्कारा उसे। गुरुपुत्री देवयानी के उसने, इस विधि तिरस्कार किये।।
क्रोधवश उसके वस्त्र भी, बरबस उसने छीन लिये। और धकेला फिर उसको, गहनतम अन्धकूप में।।
शर्मिष्ठा जब चली गई, संयोग ही कुछ ऐसा हुआ। आखेट खेलता हुआ ययाति, उसी दिशा में आ पहुँचा।।
पिपासु था जल के लिये, कुएं में उसने ज्यों झांका। कुएं में पतित देवयानी, को फिर उसने देख लिया।।
वस्त्रहीन उस पल थी वह, निज उत्तरीय दिया उसको। दयावश अपना हाथ दे, बाहर उसने किया उसको।।

प्रेम भरी वाणी में उस, वीर ययाति को कहा। हे वीर शिरोमणि आपने, मेरा हाथ आज है पकड़ा।।
आपने इसको ग्रहण किया, न दूजा कोई अब छूए। कुएं में गिरने पे मुझे, अनायास ही आपके दरस हुए।।
यह तो सम्बन्ध भगवान ने, अपने आप बनाया है। हमारा या किसी अन्य का, इसमें तनिक न छाया है।।

बृहस्पति पुत्र कच को, मैंने पूर्व था शाप दिया। उसने भी प्रतिरूप में, मुझको शापित कर दिया।।
इस कारण ही ब्राह्मण कोई, नहीं पाणिग्रहण मेरा कर सकता। बृहस्पति पुत्र के शाप का, यह ही तो परिणाम हुआ।।

शास्त्र प्रतिकूल सम्बन्ध है यह, ययाति यह तो जाने थे। अभीष्ट तो यह सम्बन्ध न था, पर प्रारब्ध पहचाने थे।।
देखा मेरे प्रारब्ध ने, स्वयं ही है उपहार दिया। और फिन मन भी मेरा, आकर्षित है इस ओर हुआ।।
इसलिये ययाति ने, बात उसकी मान ली। इस विधि देवयानी, ययाति की थी पत्नी बनी।।

जब वीर ययाति चले गए, देवयानी रोती हुई। निज पिता शुक्राचार्य, के पास पुन: लौटी।।
शर्मिष्ठा ने जो था किया, उसका वृत्तान्त उनको कहा। अपने मन के भार को, इस विधि उसने हल्का किया।।

शर्मिष्ठा का व्यवहार जान, शुक्राचार्य अति क्षुब्ध हुए। और पुरोहिताई की, वह निन्दा करने लगे।।
इसकी अपेक्षा उन्होने सोचा, अच्छा अन्न खेत बाजार का। कपोत की भाँति अच्छा है, उसको बीन के खा लेना।।
अत: निज सुता देवयानी, को ही अपने संग लिये। असुर गुरु श्री शुक्राचार्य, उस नगर से निकल पड़े।।

वृषपर्वा ने जब यह जाना, मन में उनके संशय उठे। कहीं विजयी शत्रु न हो, कहीं गुरु न मुझको शाप दे।।
प्रसन्न उनको करने को, पीछे पीछे वह उनके गए। और राह में उनके चरण में, सीस राजन् ने धरे।।

प्रभु शुक्राचार्य का क्रोध तो, था क्षणमात्र के ही लिये। वृषपर्वा से उन्होंने, पुन: वचन यह कह दिये।।
पुत्री देवयानी को, हे राजन् छोड़ मैं न पाऊं। उसकी इच्छा तुम पूरी करो, तो पल में ही मैं लौट आऊं।।

वृषपर्वा कहा अति उचित है यह, और आज्ञा वा स्वीकार करी। देवयानी ने पिता को तब, अपने मन की बात कही।।
उसने कहा हे पिताश्री, आप मुझे जिसको भी दें। जहां कहीं भी जाऊं मैं, शर्मिष्ठा सखी संग सेवा करे।।
निज सखियों को संग लिये, वह भी मेरे साथ चले। जहां पे भी मैं अब रहूं, सब संग मिली मेरी सेवा करे।।

निज परिवार के संकट को, शर्मिष्ठा ने पहचान लिया। कार्य का गौरव देखकर, उसका वचन स्वीकार किया।।
सहस्र सखी निज संग लिये, उसकी सेवा वह करने लगी। राजपुत्री हो करके भी, उसकी दासी बन रहने लगी।।
देवयानी का विवाह फिर, शुक्राचार्य ने रचा दिया। राजा ययाति को उन्होने, निज कन्या का दान दिया।।
शर्मिष्ठा को दासी रूप में, राजा को उन्होने दिया। तेरी सेज पे कभी न आये यह, संग में यह आदेश दिया।।

कुछ ही दिनों में देवयानी, हे राजन् हो गई पुत्रवती। पुत्रवती उसे देखकर, शर्मिष्ठा की भी मन मचली।।
देवयानी के पति से ही, निज ऋतुकाल में याचना की। ययाति से एकान्त में, सहवास की थी उसने प्रार्थना की।।
पुत्र प्राप्ति हेतु ही, शर्मिष्ठा की है प्रार्थना। यह सोची ययाति ने, धर्म संगत उसे माना।।
श्री शुक्राचार्य की बात तो, भली भाँति उसे याद थी। प्रारब्ध वश अब जो भी हो, उसने यही निश्चय करी।।

दो पुत्र थे देवयानी के, यदु और तुर्वसु नाम थे। शर्मिष्ठा के हुए तीन पुत्र, द्रुह्यु अनु और पुरु वह थे।।
मानिनी देवयानी को, जब इस बात का ज्ञान हुआ। शर्मिष्ठा के पुत्रों का भी, मेरा पति ही है पिता।।
तब क्रोध आवेश में, आपे से वह बाहर हुई। और उसी आवेश में, निज पिता के घर वह जा पहुंची।।

मधुर वचन अनुनय विनय, और चरण चापन भी किया। कामी ययाति निज पत्नी, देवयानी को मना न सका।।
उसके पीछे पीछे वह, उसके पिता के गृह तक भी गया। पर उसे मनाने में, सफल नहीं वही हो सका।।
अति क्रुध थे शुक्राचार्य भी, ययाति को उन्होंने शाप दिया। तू तो है अति स्त्री लम्पट, मन्दबुद्धि संग में है झूठा।।
जा तेरे शरीर में, उस जरा का अब वास हो। कुरूप करे जो जीवों को, उसका अब तुझपर राज्य हो।।

ययाति बोले,
हे ब्राह्मण आपकी पुत्री से, विषय भोग न पूर्ण हुआ। नहीं तृप्ति अभी मेरी हुई, पुत्री का भी अनिष्ट होगा।।
इस पर शुक्राचार्य ने, ययाति को पुन: यह कहा। जो स्वेच्छा से जवानी दे, बुढ़ापा उससे बदले जा।।

श्री शुक्राचार्य ने जब, व्यवस्था को ऐसा किया। तब राजधानी में लौटकर, ज्येष्ठ पुत्र यदु से कहा।।
हे पुत्र अपना यौवन, मुझको ही अब दे तुम दो। और अपने नाना का दिया, बुढ़ापा यह स्वीकार करो।।
मेरे प्रिय पुत्र विषयों से, अभी तृप्त मैं नहीं हुआ। तेरी आयु लेकर कुछ वर्ष, और आनन्द मैं भोगूंगा।।

यदु बोले,
बिना समय के आये जो, वह जरा अवस्था न चाहूं। उस वृद्धावस्था को पाकर, तो जीना भी मैं न चाहूं।।
क्योंकि जब तक जीव कोई, विषय सुख का अनुभव न करे। सच्चे अर्थों में उसको, कभी वैराग्य न हो सके।।

शुकदेव बोले,
तुर्वसु द्रुह्यु और अनु ने भी, इसी विधि पितु अनुनय न मानी। वास्तव में उन पुत्रों ने, धर्म तत्त्व थी न जानी।।
नश्वर इस शरीर को ही, नित्य मानी वह बैठे थे। इस कारण इसका यौवन, परित्याग भला कैसे करते?
गुणों में सबसे जो थे श्रेष्ठ, अवस्था में थे सबसे अनुज। पुत्र पुरु को बुलाकर के, ययाति ने किया उससे अनुनय।।
हे प्रिय पुत्र निज अग्रज सम, क्या बात मेरी ठुकराओगे? उचित तो होगा यही प्रिय, गर बात मान मेरी जाओगे।।

पुरु बोले,
हे पिताश्री पितु कृपा से ही, जीव परम पद पा सके। वास्तव में पुत्र का तन, है पिता की ही सौगात यह।।
कौन है इस संसार में जो, उपकार पिता का चुका सके? अपना सब कुछ देकर भी, उनके ऋण सें मुक्ति पा सके?

उत्तम पुत्र तो है वही, बिन कहे पिता के मन की करे। श्रद्धा से जो माने आज्ञा, मध्यम पुत्र ही उसे कहें।।
आज्ञा पाने पर भी जो, अश्रद्धा ही उसमें रखे। अधम श्रेणी का पुत्र है वह, इतना ही अब जान लें।।
और किसी भी भाँति जो, नहीं आज्ञा का पालन करे। उसे पुत्र ही कहना भूल है, अपितु मल मूत्र समान है वे।।

शुकदेव बोले,
इस विधि कहकर पुरु, अति आनन्दित था हुआ। और पिता के बुढ़ापे को, उसने अपने सीस धरा।।
राजा ययाति ने सहर्ष, जवानी उसकी की स्वीकार। विषय सेवन में पूर्ववत्, सलग्न हुए वह बार बार।।
धरती पर सातों द्वीपों के, वह एकछत्र सम्राट थे। पिता समान सप्रेम वह, पालन प्रजा का करते थे।।
सशक्त थीं इन्द्रियां उनकी, यथज्ञ अवसर यथा प्राप्त थे जो। उन विषयों का यथेच्छा से, उपभोग ही करते थे वो।।

देवयानी ही ययाति, की प्रियतमा पत्नी थी। निज प्रियतम ययाति को, सब विधि प्रसन्न वह रखती थी।।
मन वाणी तन और विषयों से, प्रसन्न उन्हें वह करने लगी। एकान्त में भी सदैव ही, उनको सुख वह देने लगी।।
सब वेदों में प्रतिपाद्य, सर्व देव स्वरूप हैं जो। यज्ञ पुरुष श्री हरि का, अनेक विधि से यजन कियो।।
ययाति ने बहुत विशाल, दक्षिणा युक्त बहुत यज्ञ किये। इस विधि श्री हरि के, अनेकों उसने यजन किये।।

ज्यों आकाश में कभी कभी, दल के दल बादल दिख जायें। और दूसरे ही क्षण में, वह लुप्त वहां से हो जायें।।
त्यों ही श्री परमात्म में, कल्पित है यह पूर्ण जगत्। स्वप्न माया और मनोराज्य, के समान कल्पित यह जगत्।।
अनेकों नाम और रूप में, कभी प्रतीति हो इसकी। और कभी सब नाम रूप लुप्त हों क्षण भर में ही।।

वे परमात्म तो सबके, हृदय में हैं विराजमान्। सूक्ष्मतम स्वरूप उनका, वह तो हैं सर्वशक्तिमान्।।
उन्हीं सर्वव्याप्त श्री नारायण, को हृदय में अपने धर करी। राजा ययाति ने उनकी, निष्काम भाव से यजन करी।।
एक सहस्र वर्ष पर्यन्त, निज इन्द्रियों से मन को जोड़ा। उनके प्रिय विषयों का, उन्होंने फिर उपभोग किया।।
किन्तु इतना करने पर भी, तृप्त न इन्द्रियां उनकी हुईं। चक्रवर्ती सम्राट की, भोगों से तृप्ति हो न सकी।।

शुकदेव बोले,
राजा ययाति इस विधि, निज स्त्री के वश में हुए। हे राजन् विषयों का, उपभोग ही वह करते रहे।।

इक दिन निज अध:पतन पर, जब दृष्टि उनकी पड़ी। तो व्यथित उनका हृदय हुआ, और वैराग्य वहां जन्मी ।।
प्रिय पत्नी देवयानी से, फिर सम्राट ने यू कहा। इस पुरातन गाथा का, उन्होने उसके सम्मुख गान किया ।।

ययाति बोले,
हे भृगुनन्दिनी इस गाथा, का अब मुझसे श्रवण करो। मुझ समान विषय लोलुप का, पृथ्वी पे यही इतिहास हो ।।
ग्रामवासी विषयी पुरुष, का कल्याण अब कैसे हो? वनवासी जितेन्द्रिय जन, का दु:खमय यह विचार हो ।।

इक दिन वन में एकाकी ही, बकरा था इक घूम रहा। निज प्रिय उपभोगों को, था जा जा वह ढूंढ रहा ।।
उसने देखा निज कर्मवश, इक बकरी कूप में है गिरी। अति कामी था वह बकरा, उसने यह विचार करी ।।
किसी भाँति उस बकरी को, बाहर करने की विधि करी। धरती को उसने खोद कर, राह वहां पे बना ही ली ।।

उसके यत्न से सुन्दरी वह, जब कूप के बाहर आ गई। तो उस बकरे पर उसने, अपनी प्रेम न्यौछावर की ।।
जब दूजी बकरियों ने देखा, इसने तो प्रेम पात्र यह चुना। तो उन सबने भी उसको, निज प्रेम का पात्र बना लिया ।।

दाढ़ी मूंछ मुण्डित बकरा, वह हृष्ट पुष्ट और युवा भी था। बकरियों का सुख दाता वह, विहार कुशल अति प्रियतर था ।।
वे सब तो पहले से ही, इक पति की ही तलाश में थीं। उस बकरे के भी सीस चढ़ी, काम रूप पिशाच ही थी ।।
वह अकेला बहुत सी, बकरिन् संग करने लगा विहार। अपनी सुध बुध वह खो बैठा, काम ने किया जो उसपर प्रहार ।।

कुएं से निकाली बकरी, ने जब यह दर्शन किया। मेरा पति तो दूजी ही, प्रियतमा संग है विचर रहा ।।
तो बकरे की यह करनी, सहन नहीं वह कर पाई। कामुकता उसकी देखी, न प्रेम भरोसा कर पाई ।।

मित्र के रूप में शत्रु का, काम ही है यह कर रहा। यह देखी उस बकरी ने, इन्द्रिय लोलुप पति को छोड़ा ।।
व्यथित हृदय हो निज पालक, पास पुन: वह लौट आई। कामी बकरा अति दीन हुआ, मैं मैं कर उसका अनुसरण किया ।।
किन्तु मार्ग में उसको, वह नहीं मना सका। उस मानिनी को पुन:, निज संग न वह लौटा सका ।।

उस बकरी का पिता तो, महा विद्वान इक ब्राह्मण था। क्रोध में आकर के उसने, बकरे का अण्डकोश काटा ।।
किन्तु दया कर बकरी पर, पुन: उसको जोड़ दिया। इस प्रकार की बहुत विद्या, वह ब्राह्मण तो जाने था ।।
इस विधि जब भग्न हुआ, अण्डकोश उसका जुड़ गया। वह कामी निज प्रियतमा संग, विहार पुन: करने लगा ।।
बहुत दिन तक विषय उपभोग, में ही वह खोया रहा। किन्तु आज तक उसको, सन्तोष नहीं क्षणभर का हुआ ।।

हे सुन्दरी तुम जान लो, मेरी भी है यही दशा। तव प्रेमपाश में बन्धकर मैं, अति दीन ही हो गया ।।
तेरी माया से मोहित हो, मैं अपने आप को भूल गया। जीवन यह किस कारण मिला, यह भी न मुझे याद रहा ।।
हे प्रिये तुम यह जानो, पृथ्वी पर जितने भोग हैं। धान्य स्वर्ण पशु स्त्री, जितने भी सब वैभव हैं ।।
वे सबके सब मिलकर भी, सन्तुष्ट उसे न कर सकें। कामना के प्रहार ने, जिसके चित्त जर्जर किये ।।

विषयों के उपभोग से, कभी वासना शान्त न हो पाये। ज्यों घी की आहुति दिये, नहीं अग्न शान्त कभी हो पाये ।।
जितनी जितनी आहुति पड़े, त्यों त्यों ही अग्नि धधक जाये। वैसे ही भोग जितना भी करें, प्रबल वासना हो जाये ।।

जब जीव किसी भी वस्तु या, प्राणी से करे न राग द्वेष। समदर्शी वह हो जाये, सब दिशा बनें सुख का परिवेश।।

विषयों की तृष्णा ही तो, सब दु:खों का उद्गम है। मन्द बुद्धि प्राणी के लिये, वह अतीव ही दुस्त्यज है।।
वृद्ध यह तन हो जाता है, पर तृष्णा नित्य ही युवा रहे। निज कल्याण जो जन चाहें, शीघ्रतिशीघ्र उनका त्याग करें।।
निज माता बहिन और कन्या, संग भी एकाकी न बैठे। एक ही आसन पर सटकर, उनके संग कभी न बैठे।।
बहुत बलवान् हैं इन्द्रियां यह, विद्वान को भी विचलित कर दें। इनके सम्मुख तो किसी की, भी सामर्थ ही नहीं चले।।

विषयों का सेवन करी करी, सहस्त्र वर्ष मेरे बीत गए। फिर भी प्रति दिन क्षण प्रतिक्षण ही, भोगों की लालसा बढ़ती रहे।।
भोगों की वासना और तृष्णा, का परित्याग करूंगा मैं। निज अन्त:करण परमात्म को, अब समर्पित करूंगा मैं।।
शीतोष्ण सुख दु:ख आदि, द्वन्द्वों से ऊपर उठूंगा मैं। अहंकार से मुक्त होई, वन वन हरिणों संग विचरूं मैं।।

लोक और परलोक के, दोनों ही भोग असत्य हैं। न भोग न ही उसका चिन्तन हो, जानी दोनों ही असत्य हैं।।
उनके चिन्तन से ही जन्म, मृत्यु रूपा यह जग मिले। और भोग से उनके जान लो, आत्म नाश ही हो जाये।।
जो रहस्य इनका जाने, और इनसे अलग ही हो जाये। वह ही वास्तव में जानो, आत्म ज्ञानी कहलाये।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् ययाति ने, इस विध निज पत्नी से कहा। और पुत्र पुरु का फिर, यौवन उसे लौटा दिया।।
अपना बुढ़ापा बदले में, उससे वापिस ले लिया। क्योंकि उसका चित्त तो अब, था विषय वासना त्याग चुका।।
फिर उन दक्षिण पूर्व में, द्रुह्य को राज्य वह सौंप दिया। दक्षिण में यदु पश्चिम में तुर्वसु, उत्तर में अनु को राज्य दिया।।

सारी भूमि की सम्पद् का, पुरु ही योग्यतम पात्र था। राज्याभिषेक उसका करके, अग्रजों को उसके अधीन किया।।
अपना राज्य उसे दे करी, ययाति वन को चले गए। इस भाँति ययाति के, वैराग्य के रंग थे उभर पड़े।।
ययाति दीर्घकाल तक, इन्द्रिय सुख को भोगा था। किन्तु क्षणभर में उसने, सबका सब ही त्याग दिया।।
ज्यों पंख निकलते ही पक्षी, घौंसला अपना छोड़ दे। त्यों ही आंख के खुलते ही, उस विषय भोग सब छोड़ दिये।।

वन में जाकर ययाति ने, सब आसक्ति छोड़ दी। लिंग शरीर उसका हुआ नष्ट, जब आत्म साक्षात्कार हुई।।
माया मल रहित परं ब्रह्म, श्री वासुदेव में जाय मिले। भागवती गति जो सन्तन् की, उसको फिर वह प्राप्त हुए।।
देवयानी ने पति मुख से, जब इस कथा का श्रवण किया। निवृत्ति पथ पे लिये जाएं मुझे, उसने फिर यह मान लिया।।
नर नारी में प्रेम के, कारण विरह विकलता दे। यही सोचकर बातें यह, सब हंसी हंसी में कह हैं रहे।।

ईश्वर के ही अधीन हैं, स्वजन सभी और सम्बन्धी। इक स्थान पे सब एकत्रित हों, ज्यों प्याऊ पे पथिक सभी।।
प्रभु की माया का खेल यह, ज्यों इक स्वप्न हो दीख रहा। यह जानी देवयानी ने भी, आसक्ति का परित्याग किया।।
अपने मन को श्री कृष्ण में, उसने फिर तन्मय किया। बन्धन हेतु जो लिंग शरीर, उसका फिर परित्याग किया।।
इस विध श्री हरि को ही, देवयानी फिर प्राप्त हुई। नमन करी प्रभु चरण में, फिर उसने यह बात कही।।
हे जगत्रचयिता अन्तर्यामी, सबके आश्रय हैं आप प्रभु। शक्तिमते प्रभु वासुदेव, हो स्वीकार मेरा नमन प्रभु।।
परम शान्त और अनन्त, तत्त्व जो भी है भगवन्। नमन करूं उसे बार बार, स्वीकार करें प्रभु मेरा नमन।।

१५) पुरु वंश और राजा दुष्यन्त पुत्र भरत का चरित्र

शुकदेव बोले,
हे राजन् अब पुरु के, वंश का वर्णन मैं करूं। वंशधर इसके हुए, ब्रह्मर्षि और राजर्षि कहूं।।
तुम्हारा भी तो जन्म जान, इसी वंश में है हुआ। पुरु पुत्र का जान लो, नाम जनमेजय ही था।।
उसका था पुत्र प्रचिन्वान्, उसका पुन: प्रवीर था। प्रवीर सुत नमस्यु हुआ, चारुपद पुन: उसका हुआ।।
उससे सुद्यु उससे बहुगव, उससे पुन: संयाति हुआ। संयाति से अहंयाति, और शैद्राश्व पुन: उससे हुआ।।

ज्यों विश्वात्म प्राण से, दस इन्द्रियां जन्म लें। धृताची के गर्भ से, रौद्राश्व के त्यों दस पुत्र हुए।।
ऋतेयु कुक्षेयु स्थण्डिलेयु, कृतेयु जलेयु और सन्ततेयु। धर्मेयु सत्येयु व्रतेयु और, सबका अनुज था वनेयु।।

ऋतेयु सुत था रन्तिभार, उसके पुन: हुए तीन पुत्र। सुमति और अप्रतिरथ द्वौ थे, तीसरे का था नाम ध्रुव।।
अग्रतिरत के पुत्र का, नाम था जानो कण्व। कण्व पुत्र था मेधातिथि, इसीसे जन्में ब्राह्मण प्रस्कण्व।।
सुमति का पुत्र रैभ्य हुआ, इसीका पुत्र हुआ दुष्यन्त। हे राजन् अब तुम सुनो, इसकी कथा का दुखद अन्त।।

एकदा निज सैनिक संग ले, दुष्यन्त आखेट को वन में गए। उधर वह कण्व ऋषि, के आश्रम पे जा पहुंचे।।
वहां देवमाया समान, इक सुन्दर कन्या थी बैठी। लक्ष्मी सम अंगकान्ति से, सारी आश्रम थी चमक उठी।।
उसको देखते ही राजा, मोहित उसपर हो गए। और मधुर वार्तालाप, उससे वह करने लगे।।

उसे देखकर राजा का, मन आनन्द से भर गया। काम वासना ने उनके, मन में जाकर घर किया।।
विश्रान्त होकर फिर राजा, मधुर स्वरों में कहने लगे। हंसते हुए उस सुन्दरी से, राजा ने यह प्रश्न किये।।
दुष्यन्त बोले,
हे कमलनयनी देवी तुम, कौन हो किसकी पुत्री हो? मेरा हृदय आकर्षित कर हो रही, इस निर्जन वन में क्या कर रही हो।।
स्पष्ट हूं सुन्दरी जान रहा, तुम तो क्षत्रिय की कन्या हो। क्योंकि पुरुवंशियों का मन, अधर्म में कभी न प्रवृत्त हो।।
शकुन्तला बोली,
हे राजन् सत्य है तेरा वचन, मैं विश्वामित्र की पुत्री हूं। अप्सरा मेनका द्वारा मैं, इन वन में परित्यक्ता हूं।।
मेरे पालन पोषण कर्ता, ऋषि कण्व ही साक्षी हैं इसके। क्या सेवा करूं मैं आपकी, हे वीर शिरोमणि आप कहें।।
हे कमलनयन आसीन हों, स्वागत सत्कार स्वीकार करें। आश्रम में कुछ नीवार है, यदि इच्छा हो भोजन करें।।
यदि मनभावन लगे आपको, तो यहीं आप विश्राम करें। आश्रम के अतिथ्य को, हे राजन् स्वीकार करें।।
दुष्यन्त बोले,
हे शुभ्रे कुशिक वंश, में है तेरा जन्म हुआ। इस भाँति उचित ही है, स्वभाविक यह सत्कार तेरा।।
इस कुल की हम जानें, यह ही तो सदा प्रथा रहे। राज सुताएं स्वयं ही, अपने पति का वरण करें।।
शुकदेव बोले,
पाकर शकुन्तला सम्मति, देश काल शास्त्र ज्ञाता। राजा दुष्यन्त ने उससे, गन्धर्व विवाह रचा लिया।।
राजर्षि दुष्यन्त का, वीर्य तो अमोघ था। रात्रि में वहां रहकर के, शकुन्तला संग सहवास किया।।

अगले दिन प्रात: ही वह निज राजधानी को चले गए। समयानुसार शकुन्तला ने, फिर इक पुत्र को जन्म दिया।।

महर्षि कण्व ने वन में ही, जातकर्म संस्कार किये। राजसुत अनुकूल ही, विधिवत् सब सम्पन्न हुए।।
बचपन से ही वह बालक, अपूर्व ही बलवान था। सिंह बान्धकर खेलना, उसका नित्य का काम था।।
प्रभु का अंशावतार था वह, अपरिमित बल विक्रम थी। संग ले निज पुत्र को, निज पति सम्मुख उसकी माता गई।।

जब राजा दुष्यन्त ने, स्वीकार न निज पत्नी को किया। निर्दोष पत्नी पुत्र का, जब उसने तिरस्कार किया।।
तब अदृष्ट ही वक्ता ने, वहां पे फिर यह बात कही। देख न पाया कोई उसे, पर सबने यह वाणी सुनी।।
आकाशवाणी बोली,
पुत्र को उत्पन्न करने में, माता तो है धौंकनी समान। वास्तव में तो पुत्र है, पिता का ही इक अंश जान।।
पिता ही पुत्र के रूप में, उत्पन्न होकर प्रकट हो। न त्यागो तुम शकुन्तला को, पोषण निज सुत का करो।।
वंश का वर्धक पुत्र ही हो, पिता नरक से उभार ले। हैं सत्य शकुन्तला के वचन, इस पुत्र के जनक तुम्हीं हो हे।।
शुकदेव बोले,
पिता दुष्यन्त गए परलोक, यह चक्रवर्ती सम्राट बना। परम यशस्वी बालक यह, भगवान का ही तो अंश था।।
आज भी इस धरती पर, उसकी महिमा का गान हो। परम श्रेष्ठ उसके गुणों, का यहां बखान हो।।
दाहिने हाथ में उसके, चक्र का इक चिन्ह था। और चरण में कमलकोश, का अन्य इक चिन्ह था।।
महाभिषेक पद्धति से, राजाधिराज वह बनाया गया। अभिषिक्त हुआ इस विधि भरत, महाशक्तिशाली वह राजा था।।

ममता सुत दीर्घतमा मुनि को, पुरोहित उसने बना लिया। गंगासागर से गंगोत्री तक, पचपन अश्वमेध किया।।
इसी विधि यमुनातीरे, प्रयाग से ले यमनोत्री तक। उसने फिर रचा दिये, अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ।।
इन सब यज्ञों में उसने, अपार धन का दान दिया। यज्ञीय अग्र उस भरत का, अत्युत्तम स्थान में स्थापित था।।
उस स्थान पे भरत ने, इतनी गायें थीं दान में दीं। एक सहस्र ब्राह्मणों में, प्रत्येक को इक इक बद्ध मिली।।

राजा भरत ने यज्ञों में, बान्धे एक सौ तैंतीस अश्व। सब नरपतियों ने जब देखा, उन्हें हुआ अतीव आश्चर्य।।
यज्ञों द्वारा इहलोक में, परम यश मिला भरत को। माया पर भी विजय पाई, और अन्त में पाया श्री हरि को।।

यज्ञ में मष्नार कर्म भी, भरत ने सम्पन्न किया। स्वर्ण विभूषित श्वेत दन्तीय, श्याम हाथी का दान किया।।
चौदह लाख ऐसे हाथी, दान में उसने थे दिये। महाकर्म किया जो भरत ने, कोई अन्य नृप नहीं कर सके।।
न पहले ही किया किसीने, न आगे कभी कर पायेगा। क्या कभी निज हाथ से, स्वर्ग को छू कोई पायेगा?
किरात हूण यवन अन्ध्र, कंक शख शक और मलेच्छ। दिग्विजय में ब्रह्म विरोधी सब, राजा भरत ने किये अशेष।।

पुरातन काल में असुरों ने, देवों पे विजय थी प्राप्त की। उस समय से उन सब ने, रसातल में थी वास करी।।
देवांगनाएं भी बहुत सी, संग में थे वह ले गए। राजा भरत ने ही वे सब, पुन: थे फिर से मुक्त किये।।
पृथ्वी आकाश उनके राज्य में, यथा योग्य सबको देते। सत्ताइस सहस्र वर्ष भरत, इक छत्र सम्राट सभी दिक् थे।।

सर्वभौम सम्राट भरत ने, अन्त में यह ही निश्चय किया। ऐश्वर्य सम्पद् जो लोकपालों, को भी चकित है कर देता।।

अखण्ड राज्य और वास्तव में, यह जीवन भी है मिथ्या। यह निश्चय कर संसार से फिर, उन्होंने मुख निज मोड़ लिया।।

विदर्भ राज की त्रै पुत्री, राजा भरत से ब्याही थी। आदर बहुत उनका करते थे, वे सब उनको बहुत प्यारी थी।।
किन्तु जब भरत ने उनसे कहा, नहीं पुत्र तुम्हारे मम अनुरूप। कहीं पति न हमको त्याग दे, यह सोची हुईं वह भयभीत।।
इस कारण उन शिशुओं का, वध ही उन्होने कर दिया। और सम्राट् भरत का, यूं वंश विछिन्न होने लगा।।
तब सन्तान हेतु उन्होने, मरुत्सोम का यज्ञ किया। मरुद्गणों ने मुदित हो, भरत को इक सुत दिया।।
वह पुत्र तू जान ले, मरुद्गणों ने पाला था। उस पुत्र का हे राजन्, भरद्वाज ही नाम था।।

भरद्वाज की उत्पत्ति कथा, भी अति विचित्र थी। बृहस्पति भ्राता उतथ्य की, पत्नी गर्भवती तब थी।।
उससे बृहस्पति ने तब, मैथुन था करना चाहा। उस समय उसके गर्भ के, बालक ने उनको मना किया।।
उसकी बात पर ध्यान न दे, तू अन्धा हो यह शाप दिया। और बलपूर्वक उसकी माता का, गर्भाधान उन कर दिया।।

उतथ्य की पत्नी ममता तो, इस बात से अति भयभीत हुई। कहीं मम पति न त्यागें मुझें, वह शिशु को त्यागना चाहे थी।।
तब देवों ने गर्भस्थ शिशु, के नाम का निर्वाचन किया। बृहस्पति ने डरी हुई, ममता से फिर यूं कहा।।
अरी मूढ़ा यह मेरा औरस, मेरे भ्राता का क्षेत्रज्ञ है। इस प्रकार द्वाज है यह, और दोनों का ही पुत्र है।।
इस कारण तू भयभीत न हो, भरण पोषण तू इसका कर। इस पर ममता कहने लगी, मेरे पति का नहीं यह पुत्र।।
हम दोनों का ही पुत्र है यह, सो पोषण का है देय तुम पर। क्षुब्ध हुए अति बृहस्पति, ममता के ऐसा कहने पर।।
परस्पर के विवाद में, उसे माता पिता ने छोड़ दिया। इस कारण इस पुत्र का, नाम ही भरद्वाज हुआ।।

देवों ने ऐसा नाम दिया, फिर भी ममता ने यही समझा। वितथ है मेरा पुत्र यह, अन्याय से ही है यह जन्मा।।
अत: उस बालक का फिर, माता ने परित्याग किया। मरुद्गणों ने फिर उसका, पालन और पोषण किया।।
राजा भरत का वंश जब, नष्टप्राय: होने लगा। तब उन्होंने लाकर के, उसको ही यह पुत्र दिया।।
यह ही वितथ भरद्वाज, भरत का दत्तक पुत्र हुआ। इसीसे ही भरत का, वंश था आगे बढ़ा।।

१६) महाराज रन्तिदेव की कथा

शुकदेव बोले,
भरद्वाज का पुत्र था मन्यु, उसके हुए पुन: पांच पुत्र। नाम थे उनके बृहत्क्षत्र, जय महावीर्य नर और गर्ग।।
नर का पुत्र था संस्कृति, उसके हुए पुन: दो पुत्र। उन दोनों के नाम थे, गुरु और श्री रन्तिदेव।।
रन्तिदेव का निर्मल यश, राजन् सब जगह गाया जाये। इह लोक और परलोक में, गुणगान उसका हुआ करे।।

रन्तिदेव आकाश सम, बिन उद्योग ही रहते थे। दैववश जो प्राप्त हो, उपभोग उसी का करते थे।।
दिनोदिन पूंजी उनकी, न्यू ही होती रहती सदा। जो मिलता भी उसे दे देते, खुद भूखे रहते यदा कदा।।
संग्रह परिग्रह ममता रहित, अति धैर्यवान् वह राजा थे। निज कुटुम्ब के साथ वह, दु:खों का स्वागत करते थे।।

एक बार तो अड़तालीस, दिन ही ऐसे बीत गए। अन्न की बात तो दूर रही, नहीं जल तक भी उन ग्रहण किये।।
उञ्चासवें दिन प्रात:, कुछ ऐसा सौभाग्य हुआ। घी खीर हल्वा और जल, प्राप्त उन्हें कुछ हो गया।।

अति संकट में था कुटुम्ब, था भूख प्यास से काम्प रहा। ज्यों ही भोजन करने बैठे, ब्राह्मण अतिथि इक आ पहुंचा।।

रन्तिदेव तो सबमें ही, श्री हरि का दर्शन पाते थे। बड़ी श्रद्धा और आदर से, ब्राह्मण को भोजन अर्पित किये।।
ब्राह्मण देवता ने भी बहुत, प्रेम से भोजन वह पाया। और तृप्त होकर उसने, वहां से फिर प्रस्थान किया।।
फिर बचा हुआ जो अन्न था, उसको परस्पर बांट लिया। और कुटुम्ब ने मिल करी, फिर भोजन करना चाहा।।
तत्क्षण ही इक दूसरा, क्षुद्र अतिथि पहुंचा वहां। रन्तिदेव ने अन्न का, इक भाग अतिथि को दे दिया।।

क्षुद्र ने भोजन कर लिया, और उठकर जब वह चला गया। कुत्तों को संग में लिये, नव अतिथि इक आ पहुंचा।।
उसने कहा हे राजन् मैं, और मेरे कुत्ते भी भूखे हैं। कुछ खाने को दें आप हमें, यही बस आपसे चाहते हैं।।
अति आदर से रन्तिदेव ने, उनका भी स्वागत किया। जो भी अन्न था बच रहा, सबका सब उनको दे दिया।।
भगवान का हृदय में भाव धरी, कुत्तों को भी उन्होंने नमन किया। उनके स्वामी के रूप में भी, श्री हरि का उन दर्शन किया।।

अब तो केवल जल ही था बचा, वह भी बस इक प्राणी के लिये। उसको भी आपस में वह, बांट के पीना चाहते थे।।
इतने में चाण्डाल वहां, एक कहीं से आ पहुंचा। अति नीच हूं मैं राजन्, कहा जल आप दें मुझे पिला।।
अतीव करुणायुक्त ही, उस चाण्डाल की वाणी थी। उच्चारण मात्र में भी उसको, अतीव कष्ट थी हो रही।।
उसे सुनकर श्री रन्तिदेव, द्रवीभूत हो गए दया से। और फिर अमृतमय, वचन यह उन्होंने कहे।।
रन्तिदेव बोले,
नहीं चाहूं श्री हरि से आठों, सिद्धि युक्त मैं परं गति। और तो क्या है मोक्ष की भी, कामना इस मन में नहीं।।
गर चाहूं तो केवल यह ही, सब प्राणी भूत के हिय बसूं। सारा दु:ख उनका जो है, अपने सीस पे मैं ले लूं।।
जिससे अन्य किसी प्राणी को, दु:ख कभी न छू पाये। प्राणी मात्र का दु:ख ही, मैं चाहूं अब हरा जाये।।

यह दीन हीन जल को पीकर, जीवित रहना चाहता था। जल देकर इसके तो, जीवन का रक्षण हुआ।।
मेरे क्षुधा पिपासा की पीड़ा, तनो क्षीणता दैन्य दूर हुए। ग्लानि शोक विषाद मोह, सबके सब जाते रहे।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर रन्तिदेव ने, बाकी जल भी उसे दे दिया। यद्यपि प्राण थे संकट में, हृदय में करुणा स्रोत था।।
नहीं अपने आपको रोक सके, क्या धैर्य की उनके सीमा कोई? जल कण निज प्राण आधार जो थे, उन्होंने वह भी उसको दे दी।।
हे राजन् यह अतिथि सारे, प्रभु माया के ही रूप थे। परीक्षा जब पूरी हुई, त्रिभुवन स्वामी वहां प्रकटे।।
निज भक्तन् की अभिलाषा सब, प्रभु स्वयं ही पूर्ण करते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेष त्रै, रूपों में वहां पर प्रकटे हैं।।

रन्तिदेव ने फिर उनके, चरणों में जा नमन किया। पूर्ण निष्काम प्रेमी वह थे, उनको नहीं कुछ लेना था।।
प्रभु कृपा से आसक्ति और, स्पृहा रहित थे वह हुए। परम प्रेममय भक्ति से, निज मन श्री हरि में लय किये।।
कुछ भी मांगा नहीं उन्होंने, नहीं उनकी अन्य कोई इच्छा थी। अपनी मन पूर्णतय: ही, श्री हरि चरण में उन्होंने धरी।।
इस कारण त्रिगुणी माया, उनके लिये यूं नष्ट हुई। ज्यों जागृति पे स्वप्न के, दृश्य नहीं रहते कोई।।

रन्तिदेव अनुयायी भी, उनके संग से प्रभावित थे। उनका सत्संग पाकर के, वे सब भी योगी हो गए।।
सब ही प्रभु के आश्रित हो, परम भक्त उनके बने। इस भाँति उनके प्रभाव से, सबके सब ही तर गए।।

मन्युसुत गर्ग से शिनि हुए, और शिनि से गार्ग्य जन्म हुआ। यद्यपि क्षत्रिय था गार्ग्य, उससे फिर ब्राह्मण वंश चला।।
महावीर्य पुत्र था दुरितक्षय, उसके हुए पुन: तीन पुत्र। त्रय्यारुणि कवि और, पुष्करारुणि थे तीन पुत्र।।
यह तीनों ही सुत उसके, ब्राह्मण जान फिर हो गए। बृहत्क्षत्र सुत हस्ती था, हस्तिनापुर जिस बसा दिए।।
हस्ती के हुए पुन: तीन पुत्र, अजमीढ़ द्विमीढ़ और पुरुमीढ़। प्रियमेध आदि ब्राह्मणों के, पिता थे जानो अजमीढ़।।

इन्हीं अजमीढ़ के एक पुत्र, का नाम हुआ था बृहदिषु। उसका पुत्र था बृहद्धनु, बृहत्काम का पिता था बृह नु।।
बृहत्काम का पुत्र पुन:, जयद्रथ नाम से हुआ। जयद्रथ का था पुत्र विशद, और उसका सेनजित् हुआ।।
उसके हुए पुन: पुत्र चार, अब राजन् सुन उनके नाम। रुचिराश्व दृढ़हनु और काश्य, वत्स ही थे वे तू जान।।

रुचिराश्व का पुत्र था पार, उसके पुन: पृथुसेन हुआ। उसके दूजे पुत्र का, नाम जान ले नीप था।।
इस नीप के ही सुनो, शत पुत्र राजन् थे हुए। इसीने छायाशुक की सुता, कृत्वी से थे विवाह किए।।
ब्रह्मदत्त नाम का सुत, उससे था उत्पन्न हुआ। यही ब्रह्मदत्त तुम जानो, एक महान् योगी था।।
अपनी पत्नी सरस्वती, के गर्भ से उसीने। विष्वक्सेन नाम के, पुत्र को थे जन्म दिये।।

उपदेश पा जैगीषव्य से, योग शास्त्र इन्होने रचा। उदक्स्वन जान ले, विष्वक्सेन का पुत्र था।।
भल्लाद के नाम से, उदक्स्वन के पुत्र हुए। यह सब ही तू जान ले, बृहदिषु वंशज हुए।।

द्विमीढ़ का पुत्र था यवीनर, उसका हुआ पुन: कृतिमान्। कृतिमान् का सत्यधृति, दृढ़नेमि उसका पुत्र जान।।
दृढ़नेमि का था सुत सुपार्श्व, उससे पुन: सुमति हुआ। सुमति से सन्नतिमान्, और उससे पुन: कृति जन्मा।।
हिरण्यनाभ से कृति ने, योगविद्या थी प्राप्त करी। प्राच्यसाम नामक ऋचा की, छ: संहितायें थीं कहीं।।
कृति का पुत्र नीप था, उसका उग्रायुध हुआ। उग्रायुध का क्षेम्य हुआ, क्षेम्य पुत्र सुवीर था।।
सुवीर का पुत्र था रिपुंजय, उसका पुत्र बहुरथ हुआ। द्विमीढ़ का भाई पुरुमीढ़, तो सन्तान से रहित रहा।।
नलिनी नाम से दूसरी, अजमीढ़ की थी पत्नी। उसके गर्भ से यह जानो, नील की थी जन्म हुई।।
नील का शान्ति उससे सुशान्ति, उससे पुन: हुआ पुत्र पुरुज। पुरु का अर्क और अर्क का, पुत्र हुआ फिर भर्म्याश्व।।
भर्म्याश्व के थे पांच पुत्र, मुद्गल बृहदिषु और यवीनर। और शेष के नाम थे, जान तू संजय और काम्पित्य।।
भर्म्याश्व कहा यह पांचो देश के, शासन में सामर्थ हैं। इसलिये पांचाल नाम से, यह सब हुए प्रसिद्ध हैं।।
मुद्गल से मौद्गल्य नाम का, ब्राह्मण गोत्र प्रवृत्त हुआ। भर्म्यास्व के पुत्रों की, जान ले यह ही है गाथा।।

भर्म्याश्व सुत मुद्गल से, पुन: जुड़वां सन्तान हुई। पुत्र का नाम था दिवोदास, अहल्या सुता की नाम थी।।
इसी अहल्या का विवाह, महर्षि गौतम से हुआ। और उनके पुत्र का, नाम ही शतानन्द था।।

शतानन्द पुत्र था सत्यधृति, धनुर्विद्या में अति निपुण था। शरद्वान ही सत्यधृति, के पुत्र का नाम था।।
उर्वशी को देखकर, इक दिन वीर्य उनका स्खलित हुआ। और मूंज के झाड़ पर, जाकर के वह गिर पड़ा।।
उससे शुभ लक्ष्णा पुत्र, और पुत्री का जन्म हुआ। आखेट खेलने गए शान्तनु, का फिर उनपर ध्यान गया।।
दयावश उन दोनों को, राजा ने फिर उठा लिया। पुत्र नाम हुआ कृपाचार्य, कृपी कन्या का नाम हुआ।।
यह ही कृपी बाद में जा, द्रोणाचार्य की पत्नी बनी। सुप्रसिद्ध इसकी गाथा, हे राजन् तुमने है सुनी।।

१७) जरासन्ध तथा पाण्डवोंके वंश की कथा

शुकदेव बोले,
दिवोदास के पुत्र का, नाम था राजन् मित्रेयु। च्यवन सुदास सहदेव सोमक, चतु: पुत्र के पिता थे मित्रेयु।।
सोमक के सौ पुत्र थे, जन्तु था सबसे बड़ा। उनमें से पृषत ही, था सब पुत्रों में छोटा।।
पृषत के पुत्र ही द्रुपद हुए, पुत्री हुई उनकी द्रौपदी। अन्य पुत्र उनके हुए, जानो धृष्टद्युम्न आदि।।

धृष्टकेतु ही तुम जानो, दृष्टद्युम्न का पुत्र था। भर्म्याश्व वंश के नरपति यह, पाञ्चाल नाम ही सबका हुआ।।
अजामीढ़ का दूजा पुत्र था ऋक्ष, संवरण ही उसका पुत्र था। संवरण का विवाह सुनो, सूर्यकन्या तपती से हुआ।।
उसीके गर्भ से कुरुक्षेत्र, का स्वामी कुरू जन्मा। परीक्षित् सुधन्वा जह्नु निषधाश्व, उसके पुत्रों का नाम था।।

सुधन्वा पुत्र सुहोत्र था, उससे पुन: च्यवन जन्मा। उससे कृति पुन: वसु उपरिचर, बृहद्रथादि ने जन्म लिया।।
बृहद्रथ कुशाम्ब और मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिष आदि। चेदि देश के राजा हुए, उपरिचरवसु के पुत्र आदि।।
बृहद्रथ का था पुत्र कुशाग्र, उसका पुन: सुत ऋषभ हुआ। सत्यहित फिर पुष्पवान्, उसका पुत्र पुन: जह्नु था।।
बृहद्रथ की दूजी पत्नी, के गर्भ से जन्में दो टुकड़े। एक ही शरीर के, दो टुकड़े थे उत्पन्न हुए।।

माता ने उन टुकड़ों को, बाहर ही फिंकवा दिया। जरा नाम की राक्षसी ने, तब जिओ जिओ ऐसा कहा।।
खेल खेल में उन दोनों, टुकड़ों को उसने जोड़ दिया। उसी जुड़े हुए शिशु का, नाम फिर जरासन्ध हुआ।।

जरासन्ध पुत्र सहदेव था, उसके पुन: सोमपि हुआ। सोमपि के पुत्र का, नाम था जानो श्रुतश्रवा।।
कुरु के ज्येष्ठतम पुत्र, परीक्षित् के सन्तान न थी। जह्नु पुत्र की जान लो, सुरथ ही फिर नाम हुई।।
सुरथ पुत्र विदूरथ था, फिर सर्वभौम हुआ उसका सुत। सर्वभौम पुत्र जयसेन हुआ, उसका राधिक फिर उसका अयुत।।

अयुत का क्रोधन पुत्र हुआ, क्रोधन सुत हुआ देवतिथि। उसका ऋष्य वा का दिलीप, दिलीप पुत्र था प्रतीप।।
प्रतीप के थे तीन पुत्र, देवापि शान्तनु और बह्लीक्। देवापि ने त्यजा पैतृक राज्य, और बन की उन राह पकड़ी।।
इसलिये उसके अनुज, शान्तनु ही राजा हुए। महामिष ही शान्तनु के, पूर्वजन्म के नाम थे।।
इस जन्म में भी जिसको, वह अपने हाथों छू देते। जरा त्यजी कर तत्क्षण वह, युवा अवस्था को पाते।।

इस कारण परम शान्ति, जन वह सारे थे पाते। इस कौतुक के कारण ही, शान्तनु उनके नाम हुए।।
द्वादश वर्ष तक उसके राज्य पर, इन्द्र कृपा एकबार न हुई। इसपर राज्य के ब्राह्मणों ने, उसको फिर यह बात कही।।
निज अग्रज देवापि से पूर्व, ही तुने विवाह किया। अग्निहोत्र और राजपद, को भी है स्वीकार किया।।
इस कारण तुम परिवेत्ता हो, इसीसे वर्षा नहीं हुई। गर राष्ट्र की उन्नति चाहे तू, भाई का राज्य लौटा जल्दी।।

ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर, शान्तनु शीघ्र ही वन में गया। निज अग्रज देवापि से, राज्य का उस अनुरोध किया।।
किन्तु शान्तनु के मन्त्री ने, तो पहले ही थी चाल चली। अश्मरात ने पहले ही, कुछ ब्राह्मण वहां पे भेज थी दी।।
वेद विदूषित वचनों से, देवापि को विचलित किया। वेदमार्ग पर चलने से, उसको था उन्होने च्युत किया।।
फल स्वरूप देवापि ने, गृहस्थ नहीं स्वीकार किया। वेदों में कथित उस आश्रम को, देवापि ने निन्दित कहा।।

इस कारण वह राज्य के, अधिकार से वंचित हो गया। तत्पश्चात् शान्तनु के, राज्य में फिर जल बरसा।।
इस समय भी देवापि, योग साधना में है मग्न। योगियों का प्रसिद्ध निवास, कलापस्थान बना उसका स्थल।।

कलियुग में चन्द्रवंश का, नाश जब हो जायेगा। सत्युग के आरम्भ में, वह उनसे स्थापना पायेगा।।
शान्तनु अनुज बाह्लीक के, पुत्र का नाम था सोमदत्त। उसके हुए पुन: तीन पुत्र, भूरि भूरिश्रवा और थे शल।।
शान्तनु द्वारा गंगा के गर्भ, से भीष्म ने जन्म लिया। धर्मज्ञों में था सर्वश्रेष्ठ, और नैष्ठिक वह ब्रह्मचारी था।।
श्री हरि का था परम भक्त, और परम वह ज्ञानी था। भीष्म पितामह नाम से, इस जग में वह विख्यात हुआ।।

अग्रगण्य ही था वह तो, जग के श्रेष्ठतम वीरों में। अन्य की बात तो करें ही क्या, गुरु परशु युद्ध में तुष्ट किये।।
दाशराज की कन्या से, शान्तनु के हुए दो पुत्र। एक का नाम था चित्रांगद, और दूजा था विचित्रवीर्य।।
चित्रांगद गन्धर्व ने, किया हनन चित्रांगद का। दाशराज की इस कन्या का, नाम ही सत्यवती था।।
ऋषि पराशर द्वारा ही, गर्भ था इसने धारण किया। कलावतार श्री द्वैपायन, मम पिता व्यास अवतरण हुआ।।
रक्षा करी उन वेदों की, भागवत पुराण मैंने उनसे पढ़ा। परम गोप्य रहस्यमय, है पुराण यह जान जरा।।
पैल आदि निज शिष्यों को, अध्यापन नहीं किया इसका। उन्होंने केवल मुझको ही, योग्य छात्र इसका समझा।।
एक तो उनका पुत्र था मैं, दूजा शान्ति आदि गुण थे। इस कारण इस महापुराण, के रहस्य उन्होने मुझसे कहे।।

शान्तनु का दूजा पुत्र, विचित्रवीर्य ही था जानो। अम्बिका और अम्बालिका से, उसने था विवाह कियो।।
काशि में स्वयंवर से, भीष्म ने उन्हें बलात् हरा। विचित्रवीर्य इन दोनों ही, भार्याओं में अति आसक्त था।।
राजयक्ष्मा रोग से, ग्रसित वह था हो गया। इस रोग के कारण ही, मृत्यु को वह प्राप्त हुआ।।

माता सत्यवती ने तब, पुत्र व्यास को याद किया। प्रभु व्यास ने माता के, आदेश का फिर आदर किया।।
सन्तान हीन निज भ्राता की, पत्नियों से नियोग किया। धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक, पुत्रों को उत्पन्न किया।।
उनकी दासी से तीसरे, पुत्र विदुर ने जन्म लिया। धर्म और नीति में यह, विदुर अति निपुण हुआ।।

धृतराष्ट्र की पत्नी का, नाम था राजन् गान्धारी। उसके गर्भ से जानो तुम, शतपुत्रों ने जन्म ली।।
ज्येष्ठ था उनमें दुर्योधन, कन्या का नाम था दु:शला। इस विधि धृतराष्ट्र के, कुल का था वर्धन हुआ।।

पाण्डु की पत्नी का नाम, जान ले राजन् था कुन्ती। ऋषि शाप से पाण्डु को, स्त्री सहवास आज्ञा न थी।।
धर्म वायु और इन्द्र से, कुन्ती ने पुत्रों को जन्मा। युधिष्ठिर भीम और अर्जुन, क्रमश: उनका नाम हुआ।।
अति बलवान् थे यह तीनों, और तीनों ही थे महारथी। पाण्डु की दूसरी पत्नी, का नाम था माद्री।।
दोनों अश्विनी कुमारों के, पुत्रों को उसने जन्म दिया। नकुल और सहदेव ही, उन दोनों का नाम था।।
हे राजन् यह पांचों ही, द्रुपदसुता के पति हुए। द्रौपदी के गर्भ से इन, पांच पुत्र उत्पन्न किए।।

युधिष्ठिर पुत्र था प्रतिविन्ध्य, श्रुतसेन था भीम पुत्र। अर्जुन पुत्र था श्रुतकीर्ति, नकुल पुत्र था शतनीक।।
सहदेव का पुत्र था श्रुतकर्मा, अन्य भी पाण्डवपुत्र हुए। पौरवी नाम की पत्नी से, युधिष्ठिर सुत देवक हुए।।
हिडिम्बा नामक पत्नी से, घटोत्कच पुत्र था भीम का। काली नाम की पत्नी से, सर्वगत नामक पुत्र हुआ।।

पर्वत कुमारी विजया से, सहदेव के यहां सुहोत्र हुआ। करेणुमति से नकुल के, निरमित्र नाम का पुत्र हुआ।।
अर्जुन पत्नी नागकन्या, का नाम उलूपी था। उसके गर्भ से इरावान्, नाम के पुत्र का जन्म हुआ।।
मणिपुर नरेश की कन्या, अर्जुन की तीसरी पत्नी थी। बभ्रुवाहन नाम के, पुत्र को उसने जन्म दी।।

जान लो राजन् बभ्रुवाहन, नाना का पुत्र ही माना गया। क्योंकि इस बात का पहले से, ही था निर्णय हो चुका।।
सुभद्रा नाम की पत्नी से, तव पिता अभिमन्यु थे जन्मे। सभी अतिरथी जान लो, वीर अभिमन्यु ने जीते।।
अभिमन्यु द्वारा उत्तरा के, गर्भ में राजन् तुम आये। कुरुवंश उस पल जानो, सर्वनाश को थे पाये।।
ब्रह्मास्त्र से अश्वत्थामा ने, तुमको भी था जला दिया। श्री कृष्ण ने निज प्रभाव से, मृत्यु से तुम्हें बचा लिया।।

हे राजन् तुम्हारे तो, पुत्र हैं सामने बैठे हुए। अतीव पराक्रमी हैं सब, नाम है इनके जनमेजय।।
श्रुतसेन और भीमसेन, और चौथा है उग्रसेन। जब तक्षक के दंश से, तुम मृत्यु पाओगे राजन्।।
जनमेजय यह जानकर, अति क्रुध हो जायेगा। सर्प यज्ञ की अग्नि में, यह सर्पों को जलायेगा।।

कावषेय तुर को फिर, पुरोहित यह बनायेगा। अश्वमेध करेगा यह, पृथ्वी पर विजय पायेगा।।
यज्ञों द्वारा श्री हरि की, अराधना फिर करेगा यह। जनमेजय के पुत्र का, हो नाम शतानीक जान ले।।
त्रैवेद और कर्मकाण्ड, सीखेगा ऋषि याज्ञवल्क्य से। अस्त्रविद्या का ज्ञान यह, पायेगा कृपाचार्य से।।
शौनक जी से आत्म ज्ञान, को प्राप्त करेगा यह। और श्री परमात्मा को, इस विधि प्राप्त करेगा यह।।
शतानीक पुत्र सहस्त्रानीक, उसका अश्वमेधज होगा। असीमकृष्ण होगा उसका पुत्र, उसका पुन: नेमिचक्र होगा।।

जब हस्तिनापुर जानो, गंगा जी में बह जायेगी। कौशम्बीपुरी में सुखपूर्वक, निवास उसकी हो पायेगी।।
नेमिचक्र पुत्र हो चित्ररथ, उसका सुत कविरथ होगा। कविरथ का वृष्टिमान्, उसका पुत्र सुषेण होगा।।
सुषेण पुत्र होगा सुनीथ, नृचक्षु पुन: उसका सुत होगा। उसका सुखीनल पुन: उसका, पुत्र जानो पिरप्लव होगा।।
परिप्लव का सुत मेधावी वा, नृपञ्जय मेधावी सुत होगा। उसका दूर्व और दूर्व का, पुत्र जानो तिमि होगा।।

तिमि से बृहद्रथ उससे सुदास, उससे पुन: शतानीक होगा। शतानीक से दुर्दमन उससे, पुत्र वहीनर फिर होगा।।
वहीनर से दण्डपाणि, और उससे निमि होगा। निमि से राजा क्षेम का, जन्म जान लो फिर होगा।।
ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों के, उत्पत्ति स्थान का सुना दिया। सोमवंश का जान लो, तुमसे है वर्णन किया।।
महर्षि और देवगण, सत्कार करें इस वंश का। कलियुग में राजा क्षेमक से, समाप्त यह हो जायेगा।।
अब भविष्य में मगध के, राजा जो भी होएंगे। उनका वर्णन करता हूँ, उस वंश में जो भी होएंगे।।

जरासन्ध पुत्र सहदेव से, मार्जरि का जन्म होगा। मार्जारि से श्रुतश्रवा, उससे पुन: आयुतायु होगा।।
उससे नरमित्र नाम के, पुत्र का फिर जन्म होगा। उससे सुनक्षत्र पुनश्च उसके, बृहत्सेन का जन्म होगा।।
बृहत्सेन के कर्मजित, उसके फिर सृतंजय होगा। सृतंजय सुत होगा विप्र, और उसका पुत्र शुचि होगा।।

शुचि से क्षेम उससे सुव्रत, उससे फिर धर्मसूत्र होगा। उससे शम पुनश्च द्युमत्सेन, उससे सुमति का जन्म होगा।।
सुमति पुत्र सुबल होगा, उससे होगा पुन: सुनीथ। सुनीथ पुत्र सत्यजित् होगा, उसका होगा पुन: विश्वजित्।।

रिपुंजय फिर जान ले, विश्वजित के पुत्र होंगे। यह सब तो बृहद्रथ वंश, के ही तो राजा होंगे।।
एक हजार वर्ष तक, रहेगा शासन इन सबका। यह ही अवधि है जान ले, शासन जिसमें होगा इनका।।

१८) यदुवंश, बृष्णि वंश और विदर्भ वंश का परिचय

शुकदेव बोले,
ययाति नन्दन अनु के, हुए थे राजन् तीन पुत्र। नाम थे उनके जान ले, सभानर यक्षु और परोक्ष।।
सभानर पुत्र था कालनर, उसके हुआ पुन: सृंजय। सृंजय का पुत्र हुआ, जान ले पुन: जनमेजय।।
जनमेजय का हुआ महाशील, उसका पुन: हुआ महामना। महामना के दो पुत्र हुए, अशीनर तितिक्षु नाम था।।

अशीनर के थे चार पुत्र, शिबि वन शमी और दक्ष। शिबि के हुए पुनश्च चार, सुवीर मद्र कैकेय वृषादर्भ।।
उशीनर भ्राता तितिक्षु के, पुत्र का नाम था रुशद्रथ। उसके हेम उसके सुतपा, उसके हुआ बलि नामक पुत्र।।
बलि पत्नी के गर्भ से, छ: पुत्र उत्पन्न हुए। अंग वंग कलिंग सुह्म, पुण्ड्र और आन्ध्र नाम थे।।

अपने अपने नाम से इन, पूर्व दिशा में बसाये देश। अंग का पुत्र खनपान था, उसका हुआ पुन: दिविरथ।।
उसका सुत था धर्मरथ, और धर्मरथ का चित्ररथ। सोमपाद के नाम से, प्रसिद्ध थे यह ही चित्ररथ।।
इस राजा के मित्र थे, अयोध्यापति राजा दशरथ। नहीं कोई भी शिशु हुआ, सन्तान हीन था रोमपाद।।
राजा दशरथ ने उन्हें, अपनी कन्या गोद दी। शान्ता नाम था कन्या का, मुनि ऋष्यश्रृंग से परिणय हुई।।
ऋष्यश्रृंग का जन्म तो, हरिणी गर्भ से था हुआ। विभाण्डक नाम के थे ऋषि, ऋष्यश्रृंग के श्री पिता।।
एकबार राजा रोमपाद के, राज्य में वर्षा नहीं हुई। तब गणिकाएं मोहित कर, ऋष्यश्रृंग को वहां पे ले आईं।।
नृत्य संगीत वाद्य गान, का आश्रय उन्होंने लिया। हाव-भाव आलिंगन से, मोहित ऋष्यश्रृंग को किया।।
उपहार भी उनको बहुत दिये, ऋषि वहां पे आ गए। उनके वहां पहुंचते ही, इन्द्र भी अति प्रसन्न हुए।।
उन्होंने ही वहां पहुंचकर, इन्द्र का यज्ञ था करवाया। नि:सन्तान रोमपाद को, भी पुत्र था प्राप्त हुआ।।

पुत्रहीन दशरथ ने भी, सहयोग उन्हीं से था पाया। उनके ही प्रयत्न से वह, चतुष्पुत्र का पिता बना।।
रोमपाद के पुत्र का, नाम था जान ले चतुरंङ्ग। पृथुलाक्ष नाम हुआ पुत्र का, पिता था जिसका चतुरङ्ग।।
पृथुलाक्ष के हुए त्रैपुत्र, बृहत्कर्मा बृहद्भानु बृहद्रथ। बृहद्रथ पुत्र था बृहन्मना, और उसका हुआ पुन: जयद्रथ।।

जयद्रथ की पत्नी का, नाम था जान लो सम्भूति। उसके गर्भ से विजय, नामक पुत्र ने जन्म ली।।
विजय का था पुत्र धृति, उसका पुन: धृतव्रत हुआ। धृतव्रत का सतकर्मा हुआ, उसका पुन: अधिरथ हुआ।।

नि:संतान अधिरथ गंगा, के तट पर था विचर रहा। दूर से एक पिटारी को, आते हुए उसने देखा।।
उस पिटारी में नन्हां, एक शिशु था पड़ा हुआ। वह शिशु तो कुन्ती का, ज्येष्ठ पुत्र कर्ण ही था।।
कन्यावस्था में कुन्ती ने, उस पुत्र को जन्म दिया। इस कारण गंगा में, उसने यह पुत्र बहा दिया।।
अधिरथ ने उठाकर के, उसको गले लगा लिया। सन्तान हीन अधिरथ ने, उसे अपना पुत्र बना लिया।।

राजा कर्ण के पुत्र का, नाम जानो वृषसेन हुआ। ययाति पुत्र द्रुह्यु से, बभ्रु का था जन्म हुआ।।

बभ्रु का सेतु उसका आरब्ध, पुन: उसका सुत गान्धार हुआ। उसका धर्म उसका पुन: धृत, धृतपुत्र दुर्मना हुआ।।
दुर्मना के पुत्र का, प्रचेता ही तो नाम था। उसके कुल की अब सुनो, अति विस्तृत हुआ कुल उसका।।

प्रचेता के हुए सौ पुत्र, उत्तर दिशा में सब बसे। प्रचेता के यह सारे पुत्र, म्लेच्छों के राजा हुए।।
ययाति पुत्र तुर्वसु का, वह्नि नाम का पुत्र हुआ। उसका भर्ग पुन: भानुमान्, उसका पुत्र त्रिभानु हुआ।।
त्रिभानु पुत्र करन्धम था, उसका पुत्र हुआ मरुत्। नि:सन्तान ही मरुत रहा, पुरुवंशी बनाया अपना पुत्र।।

दुष्यन्त राज्य की कामना से, अपने वंश में लौट गए। हे राजन् अब ययाति सुत, यदुवंश का वर्णन भी सुन ले।।
महाराजा यदु का वंश, है परम पावन राजन्। जीवों के सब पाप कर्म, का नाश यह कर दे हे राजन्।।
जो जीव इस वंश की, कीर्ति का श्रवण ही करे। समस्त पापों से स्वत:, ही मुक्त वह हो जाये।।

इस वंश में परब्रह्म प्रभु, श्री कृष्ण ने था अवतार लिया। मनुज रूप ही धर करी, परात्पर ब्रह्म यहां प्रकटा।।
यदु के हुए थे चार पुत्र, सहस्त्रजित् नल रिपु क्रोष्टा। सहस्त्रजित से शतजित, नामक पुत्र ने जन्म लिया।।
शतजित् के हुए पुन: तीन पुत्र, महाहय और वेणुहय। तीसरे उसके पुत्र का, नाम तू जान ले था हैहेय।।

हैहय का पुत्र धर्म हुआ, उसके पुत्र का नाम था नेत्र। उसका कुन्ति पुन: सोहंजि, उसका था महिष्मान् पुत्र।।
महिष्मान् के पुत्र का, नाम था जान ले भद्रसेन। दुर्मद धनक दो पुत्र हुए, पिता थे जिनके भद्रसेन।।
धनक के पुन: हुए, जान ले राजन् चार पुत्र। कृतवीर्य कृताग्नि कृतवर्मा, कृतौजा था उनका चौथा पुत्र।।

कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन तो, सम्राट् था सातों द्वीपों का। प्रभु अंशावतार दत्तात्रेय से, था योगविद्या को प्राप्त किया।।
अणिमा लघिमा आदि सब, सिद्धिन् का ज्ञान था वह पाया। उसके सम्मुख जग का कोई, सम्राट नहीं था ठहर पाया।।
यज्ञ दान तप और योग, शास्त्रज्ञान पराक्रम विजय। इन सबमें अर्जुन के, समान कोई न हो सके।।

पच्चीस हजार वर्ष तक, सहस्त्रार्जुन धरती पर था। छ: इन्द्रियों से वह अक्षय, भोगों को भोगे गया।।
न तो उसके तन का ही, वीर्य तनिक भी क्षीण हुआ। न उसे कभी याद यह था, धन का नाश कभी होगा।।
उसके धन नाश की बात तो क्या, उसका ऐसा प्रभाव था। उसके स्मरन् मात्र से तो, खोया हुआ धन भी मिल जाता।।

उसके हजारों पुत्रों में, केवल पांच ही बचे रहे। शेष तो सब परशुराम की, क्रोध अग्न में भस्म हुए।।
जयध्वज शूरसेन वृषभ, मधु और अर्जित कहें। बचे हुए जो पुत्र थे, उन सबके यह नाम थे।।

जयध्वज का पुत्र था तालजंघ, उसके पुन: शतपुत्र हुए। तालजंघ के नाम से ही, वे क्षत्रिय सब कहलाये।।
महर्षि और्व से शक्ति पा, सगर ने उसका संहार किया। उनके शत पुत्रों में जानो, वीतिहोत्र ही ज्येष्ठ था।।
वीतिहोत्र सुत मधु हुआ, सौ पुत्रों ने पुन: जन्म लिया। वृष्णि ही उन सबमें, ज्येष्ठतम तुम जानो था।।

मधु वृष्णि और यदु कारण, इस कुल के भिन्न भिन्न नाम पड़े। माधव वाष्णेर्य और यादव, नाम से यह प्रसिद्ध हुए।।
यदु नन्दन क्रोष्ट के, पुत्र का नाम था वृजिन्वान्। उसका पुत्र हुआ श्वाहि, उसके पुत्र का था रुकेशु नाम।।
रुकेशु पुत्र था चित्ररथ, शशबिन्दु पुन: उनका पुत्र था। पराक्रमी भोगैश्वर्य सम्पन्न, और परम वह योगी था।।

चौदह रत्न का स्वामी वह, अजेय चक्रवर्ती था। यशस्वी शशबिन्दु तो दस, हजार पत्नियों का पति था।।
प्रत्येक पत्नी के यहां, लाख लाख सन्तान हुई। इस प्रकार उसके यहां, एक अरब सन्तान हुई।।
पृथुश्रवा आदि छ: पुत्र, उन सबमें प्रधान थे। पृथुश्रवा के पुत्र का, नाम धर्म ही जान ले।।
धर्मपुत्र हुआ उशना, शत अश्वमेध थे यज्ञ किये। उशना के पुत्र का, नाम रुचक ही जान ले।।
रुचक के हुए पांच पुत्र, अब उनका वृत्तान्त सुनो। रुचक के इन पुत्रों के, अब मुझसे तुम नाम सुनो।।

पुरुजित् रुक्म रुक्मेशु, पृथु और ज्यामघ वह थे। ज्यामघ की पत्नी का, नाम तू शैब्या जान ले।।
बहुत दिनों तक उसके यहां, सन्तान कोई नहीं हुई। किन्तु पत्नी के भय से, दूजी विवाह उसने नहीं करी।।
इक बार शत्रु के यहां से, भोज्या नामक कन्या हरी। शैब्या ने पति रथ पर, जब वह कन्या बैठी देखी।।
तब चिढ़कर पति से कहा, यह किसको तुम ले आये? मेरे स्थान पर ऐ कपटी, किसको हो तुम बिठलाये?
यह पुत्रवधू तुम्हारी है, ज्यामघ ने उसको कहा। शैब्या ने फिर निज पति से, प्रत्युत्तर में यह कहा।।

मैं तो निपूती बांझ हूं, और सौत भी मेरी कोई नहीं। फिर पुत्रवधू कैसे यह हो, मुझको यह तुम कहो सही।।
ज्यामघ ने फिर उससे कहा, पुत्र तुम्हारा जो होगा। उसकी पत्नी बनेगी यह, सत्य हूं तुमसे कह रहा।।

विश्वदेव और पितरों ने, अनुमोदन राजा का किया। समय पर फिर शैब्या ने, गर्भ धारण कर लिया।।
और बहुत ही सुन्दर फिर, पुत्र वहां उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का नाम जान लो, विदर्भ ही फिर हो गया।।
शैब्या की साध्वी पुत्रवधू, भोज्या से उसने विवाह किया। यह ही है रुचक पुत्र, ज्यामघ की जानो गाथा।।
शुकदेव बोले,
राजा विदर्भ के यहां, तीन पुत्रों ने जन्म लिया। कुश क्रथ और रोमपाद, यह ही उनका नाम था।।
विदर्भ वंश में रोमपाद, अति श्रेष्ठ ही पुरुष हुए। रोमपाद सुत बभ्रु था, कृति उनके पुत्र के नाम हुए।।
कृति का उशिक और उसका, चेदि नाम का पुत्र हुआ। इस चेदि के ही वंश में, दमघोष और शिशुपाल हुआ।।

क्रथ का पुत्र हुआ कुन्ती, उसका पुत्र पुन: धृष्टि था। धृष्टि पुत्र था निवृत्ति, उसके पुन: दशार्ह हुआ।।
दशार्ह के पुत्र का, नाम जान ले व्योम था। व्योम पुत्र जीमूत था, उसका पुन: विकृति हुआ।।

विकृति का पुत्र था भीमरथ, उसका पुत्र नवरथ हुआ। दशरथ फिर था उसका पुत्र, उसके यहां शकुनि हुआ।।
शकुनि के करम्भी हुआ, उससे हुआ पुन: देवरात। अब उससे आगे कुल का, मुझसे तू सुन ले वृतान्त।।
देवक्षत्र उससे हुआ, उससे पुनश्च हुआ मधु। मधुपुत्र हुआ कुरुवंश, उससे हुआ पुन: पुत्र अनु।।

अनुपुत्र पुरुहोत्र था, आयु था पुरुहोत्र पुत्र। आयु के सात्वत जन्मा, उससे हुए पुन: सात पुत्र।।
यजमान भजि दिव्या नृष्णि, महाभोज देवावृद्ध और अन्धक। यजमान की थी दो पत्नियां, अब उनकी भी कथा तू सुन।।
एक से हुए तीन पुत्र, निम्नलोचि धृष्टि और किंकिण। दूजी के भी थे तीन पुत्र, शताजित् सहस्रजित् आयुजित्।।

देवावृद्ध के पुत्र का, नाम था जानो बभ्रु। देवावृद्ध और बभ्रु की, है बात ख्यात यह जान ले तू।।
हमने दूर से जैसा ही, इनके बारे में जाना था। निकट से भी अब वैसा ही, इन द्वौ को पहचान लिया।।

श्रेष्ठ है बभ्रु जीवों में, देवावृद्ध देवों समान है। इस कारण इन दोनों से, उपदेश मिले महान् हैं।।
चौदह सहस्त्र पैंसठ मनुष्य, इनसे उपदेश जो पा चुके। परम पद को सारे ही, वे प्राप्त हैं कर चुके।।
सात्वत के पुत्रों में, महाभोज ही धर्मात्मा था। उसीके वंश में भोजवंशी, यादवों ने भी जन्म लिया।।

वृष्णि के भी हे राजन्, जान ले थे दो पुत्र हुए। सुमित्र और युधाजित तू, दोनों के नाम ही जान ले।।
युधाजित् के दो पुत्र हुए, शिनि अनमित्र नाम था। अनमित्र से जान ले, पुन: निम्न का जन्म हुआ।।
सत्राजित और प्रसेन द्वौ, अति प्रसिद्ध यदुवंशी हुए। यह दोनों तू जान ले, निम्न के ही पुत्र थे।।
अनमित्र का एक अन्य, पुत्र भी था जान ले। शिनि ही उसका नाम था, उसके पुत्र सत्यक हुए।।

सत्यक के पुत्र थे युयुधान, सात्यकि जिनका नाम था। सात्यकि का जय उसका कुणि, और कुणि का पुत्र युगन्धर था।।
अनमित्र के तीसरे, पुत्र का वृष्णि नाम था। उसके दो पुत्रों का जान, श्वफल्क चित्ररथ नाम था।।
श्वफल्क की पत्नी का, नाम था राजन् गान्दिनी। सर्वश्रेष्ठ अक्रूर छोड़, उस द्वादश पुत्र को जन्म दी।।
आसंग सारमेय और मृदुर, मृदुविद् गिरि और धर्मवृ। सुकर्मा क्षेत्रोपेक्ष अरिमर्दन, प्रतिबाहु गन्धमाद: शत्रुघ्न।।
एक बहिन भी जान ले, थी द्वादश भ्राताओं की। सुचीरा उसका नाम था, सबकी थी बहुत लाडली।।
देववान् और उपदेव, अक्रूर के दो पुत्र थे। श्वफल्क के भाई चित्ररथ, के भी बहुत से पुत्र हुए।।
पृथ्वी विदूरथ आदि तो, उनमें प्रसिद्ध नाम हुए। वृष्णी वंशियों में वे सब, अति श्रेष्ठ हैं माने जाते।।

सात्वत पुत्र अन्धक के, पुन: हुए थे चार पुत्र। नाम थे कम्बलबर्हि भजमान, शुचि और चौथे थे कुकुर।।
कुकुर का पुत्र वह्नि था, उसका पुन: विलोमा हुआ। विलोमा का कपोतरोमा, और पुन: उनको अनु हुआ।।
तुम्बरु गन्धर्व का, अभिन्न मित्र अनु था। अन्धक अनु का पुत्र था, उसका पुन: दुन्दुभि हुआ।।
दुन्दुभि का सुत अरिद्योत, उसका पुन: हुआ पुनर्वसु। आहुकी नामक कन्या उनकी थी, पुत्र का नाम भी था आहुक।।
आहुक के हुए दो पुत्र, देवक और उग्रसेन थे नाम। देवक के थे चार पुत्र, अब सुन ले उनके भी नाम।।
देवतान उपदेव और, सुदेव देववर्धन वह थे। सात बहिनों के तू जान, यह चारों ही भ्राता हुए।।
धृतदेवा शान्तिदेवा, उपदेवा और श्रीदेवा। देवकी और देवरक्षिता, सातवीं थी सहदेवा।।
श्री वसुदेव जी ने ही, इन सबसे था विवाह किया। सात्वत पुत्र अन्धक के, कुल की जान ले यह गाथा।।

उग्रसेन के यहां, पुन: पुत्र थे नौ हुए। कंस सुनामा न्यायग्रोध कंक, शंकु और सुहु छ: यह थे।।
अन्य के नाम थे राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्। पांच कन्यायें थीं उसकी, अब उनके तू नाम जान।।
कंसा कंसवती और कंका, शूरभू और राष्ट्रपालिका। देवभाग से हुआ विवाह, जो वसुदेव का अनुज था।।

चित्ररथ सुत विदूरथ से, जन्म लिया था शूर ने। शूर से जन्मे भजमान, उससे पुन: शिनि जन्मे।।
शिनि से स्वयंभोज हुए, उससे पुन: हुए हृदीक्। देवबाहु शतधर्मा और, कृतवर्मा थे उसके पुत्र तीन।।
देवमीढ़ सुत शूर की, पत्नी का नाम था मारिषा। उसके गर्भ से दस निष्पाप, पुत्रों को उसने जन्म दिया।।
वसुदेव देवभाग देवश्रवा, आनक सृंजय और श्यामक। कंक शमीक वत्सक और, दसवें का था नाम वृक्।।
यह सबके सब जान ले, पुण्यात्मा थे राजन्। वसुदेव जन्म पे देवों के, नगारे नौबत बजे राजन्।।

अत: आनकदुन्दुभि भी, उनका यह इक नाम पड़ा। उनको ही प्रभु कृष्ण के, पिता होने का सौभाग्य मिला।।
वसुदेव आदि की थीं, पांच भगिनियां जान ले। पृथा श्रुतदेवा श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा राजाधिदेवी नाम थे।।
वसुदेव पिता शूरसेन के, अभिन्न मित्र थे कुंतिभोज। उनकी भी अब बात सुनो, नि:सन्तान थे कुन्तिभोज।।
शूरसेन ने पृथा नाम की, निज कन्या उन्हें गोद थी। पृथा ही तू जान ले, उनकी कन्या सर्वज्येष्ठा थी।।

पृथा ने अपनी सेवा से, दुर्वासा को प्रसन्न किया। देवों को बुलाने की, विद्या को उनसे सीख लिया।।
इक दिन उस विद्या का वह, प्रभाव जानना चाहती थी। इस कौतूहल में उसने, सूर्यदेव आवाहन की।।

तत्क्षण भगवान सूर्य का, प्राकट्य वहां हो गया। उन्हें देख कुन्ती का हृदय, अति विस्मित ही हो गया।।
उसने कहा हे प्रभु, क्षमा आप मुझे कीजिये। परीक्षण हेतु ही मैंने, विद्या के थे प्रयोग किये।।
कृपा करी हे देव अब, प्रस्थान आप हैं कर सकते। फिर सूर्य ने उसे कहा, नहीं निष्फल दर्शन मम होंगे।।
हे सुन्दरी तुझसे मैं, इक पुत्र जन्म अब हूं चाहता। तव योनि द्वार न दूषित हो, निश्चित उपाय मैं कर दूंगा।।

यह कहकर फिर सूर्य ने, गर्भ वहां स्थापित किया। तत्पश्चात् निज धाम स्वर्ग, को उन्होने प्रस्थान किया।।
उसी समय उससे बड़ा, सुन्दर तेजस्वी शिशु जन्मा। दर्शन में वह दूसरे ही, सूर्य समान था दीख रहा।।
लोकापवाद की सोचकर, पृथा हृदय भयभीत हुआ। अति व्यथित हृदय से उस, बालक को जल में त्याग दिया।।
तेरे प्रपितामह पाण्डु से, था इसी पृथा का विवाह हुआ। वास्तव में अति वीर थे वह, महापराक्रम उनका था।।

पृथा की अनुजा श्रुतदेवा, का भी फिर विवाह हुआ। करुष देश का अधिपति, उसका पति वृद्धशर्मा था।।
उसके गर्भ से दन्तवक्र, नामक पुत्र का जन्म हुआ। सनकादि के शाप से यह, पूर्व में था हिरण्याक्ष हुआ।।
केकय देश के राजा का, धृष्टकेतु नाम था। श्रुतकीर्ति नाम की बहिन से, उसका था विवाह हुआ।।
उसके गर्भ से जान ले, पांच कैकय कुमार हुए। सन्तर्दन आदि ही सुनो, उन पांचों के नाम थे।।

राजाधिदेवी का विवाह, जयसेन से था हुआ। विन्द और अनुविन्द उनके पुत्रों का नाम था।।
अवन्ति नगरी के जानो, वह दोनों ही हुए राजा। चेदिराज दमघोष ने, श्रुतश्रवा का पाणिग्रहण किया।।

उसका पुत्र था शिशुपाल, जिसका हूं वर्णन कर चुका।
वसुदेव के भाइयों की, अब हूं तुम्हें बता रहा। देवभाग की पत्नी कंसा, दो पुत्रों की हुई माता।।
चित्रकेतु और बृहद्बल, इन दोनों का नाम था। कंसवती के पति का, देवश्रवा ही नाम था।।
सुवीर और इषुमान् नामक, दो पुत्र इसके हुए। आनक की पत्नी कंका थी, उसके भी दो पुत्र हुए।।
सत्यजित् और पुरुजित्, यह ही इनके नाम थे। वसुदेव के भाइयों के, वृतान्त हैं तुमसे कह रहे।।

राष्ट्रपालिका जान लो, सृंजय की थी पत्नी बनी। उसके गर्भ से वृष दुर्मर्षण आदि, अनेक सुतों ने जन्म ली।।
श्यामक की पत्नी का नाम, जान ले था शूरभूमि। हरिकेश और हिरण्याक्ष, नामक उसने थी पुत्र जनी।।

मिश्रकेशी नाम की, अप्सरा के गर्भ से। वत्सक के भी वृक् आदि, अनेक पुत्र उत्पन्न हुए।।
वृक् ने दुर्वाक्षी गर्भ से, अनेक पुत्र उत्पन्न किए। तक्ष पुष्कर और शाल, कुछ एक के नाम थे।।

शमीक की पत्नी का, नाम सुदामिनी था जानो। सुमित्र अर्जुनपाल आदि, उनके शिशुओं के नाम हों।।
कंक की पत्नी कर्णिका थी, उसके भी दो पुत्र हुए। उनके नाम भी सुन तुम लो, ऋतधाम और जय थे।।

अनकदुदुम्भी वसुदेव की, अन्य भी बहुत सी पत्नियां थीं। पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा, रोचना इला और देवकी।।
रोहिणी गर्भ से बलराम, गद और सारण जन्म लिये। दुर्मद विपुल ध्रुष और कृत, उनके अन्य सुतों के नाम थे।।
पौरवी के गर्भ से, उनके द्वादश पुत्र हुए। भूत सुभद्र भद्रवाह, दर्मद भद्रादि नाम थे।।

मदिरा गर्भ से भी जानो, उनके पुत्र जो थे जन्मे। नन्द उपनन्द कृतक और, शूर आदि उनके नाम हुए।।
कौसल्या के गर्भ से, इक ही पुत्र उत्पन्न हुआ। वंश उजागर वह सुत था, केशि उसका नाम था।।
केशि की इक पत्नी का, रोचना ही नाम था। हस्त और हेमांग आदि, को उसने था जन्म दिया।।
दूजी पत्नी इला से उस, उरुवल्क आदि को जन्म दिया। प्रधान यदुवंशी थे यह, जिनको था उसने जन्म दिया।।

धृतदेवा नाम की पत्नी से, वसुदेव जी का इक पुत्र था। विपृष्ट ही हे राजन् जान, उस पुत्र का नाम हुआ।।
शान्तिदेवा उसकी पत्नी ने, अनेक सुतों को जन्म दिया। श्रम और प्रतिश्रुत आदि, कुछ एक का नाम था।।
उपदेवा के थे दस पुत्र, सबके सब राजा हुए। कल्पवर्ष आदि जानो, उन दसों के नाम थे।।
श्रीदेवा के गर्भ से, छः पुत्र उत्पन्न हुए। वसु-हंस और सुवंश, आदि उनके नाम थे।।

देवरक्षिता गर्भ से, गद आदि नौ पुत्र हुए। श्री वसुदेव ने सहदेवा से, आठ पुत्र उत्पन्न किए।।
ज्यों धर्म ने स्वयं ही थे, आठ वसु उत्पन्न किए। पुरु विश्रुत आदि ही, उन पुत्रों के नाम थे।।
अब देवकी वसुदेव की, सन्तान की तू जान ले। उसके गर्भ से अति उदार, वसुदेव ने पुत्र थे आठ जने।।
कीर्तिमान् सुषेण भद्रसेन, सात नाम सुन ले जरा। संमर्दन ऋजु भद्र और, रोषावतार बलराम कहा।।

उन दोनों के आठवें, पुत्र स्वयं ही थे भगवान्। सौभाग्यवती तव दादी भी, जान थी उनकी ही सन्तान।।
जब जब इस संसार में, धर्मनाश होने लगे। पाप का वर्धन जब जब हो, श्री हरि तब अवतार लें।।
हे राजन् तुम जान लो, श्री हरि तो हैं द्रष्टा सबके। वास्तव में हैं असंग वह, आत्म बनी वह सबमें बसें।।
आत्मस्वरूपिणी योगमाया, ही श्री हरि को जन्म दे। उसके सिवा उसके जन्म मरण का, कारण कोई न बन सके।।

उनकी माया का विलास ही, जीव के जन्म का कारण है। उसके जीवन और मरण को भी, माया ही तो करे धारण है।।
उनका ही जब अनुग्रह हो, माया यह दूर ही हो जाये। माया से अलग होकर ही जीव, आत्म स्वरूप को प्राप्त करे।।

जब असुर राजा बनी, इस धरती पर आ गए। अनेकों अक्षौणी सेना, एकत्रित वह करने लगे।।
सारी ही पृथ्वी को वह, चरणों से अपने रौंदे गए। उनके अत्याचारों से, धरती के हृदय विदीर्ण हुए।।
तब भू भार उतारन को, श्री हरि ने अवतार लिया। बलराम को लेकर संग में, श्री मधुसूदन ने रूप धरा।।
ऐसी लीलाएं की उन्होने, अनुमान भी जिनका हो न सके। बड़े बड़े देवों को भी, कोई ज्ञान न जिनका हो सके।।
फिर तन से उन्हें कर पाने की, बात तो दूर ही रह गई। श्री हरि की लीलाओं को, भला कैसे समझ सके कोई?

पृथ्वी का भार उतार दिया, प्रभु ने ऐसा उपकार किया। कलियुग में जो उत्पन्न हों, उन भक्तों पर करी कृपा।।

ऐसे परम पावनी, अपने यश का विस्तार किया। जिसके कीर्तन श्रवण से ही, दु:ख शोक अज्ञान नष्ट होगा।।
उनका यश तो जान लो, परम पावनी तीर्थ है। सन्तों के कर्ण कटोरों में, भरे साक्षात् अमृत रस है।।
कर्णाञ्जलि से एक बार, आचमन गर उनका हो जाये। तो कर्म की वासना, सब निर्मूल ही हो जाये।।

भोज वृष्णि अन्धक मधु, कुरु दशार्ह और शूरसेन। सृञ्जय और पाण्डुवंशी वीर, रहते नित्य लीला मग्न।।
श्री हरि की लीलाओं का, आदर से गान सदा करते। उनकी स्मृति से बार बार, धन्य धन्य वह थे होते।।

सर्वांग सौन्दर्य भरा, मेघ समान उनका श्यामल तन। अपने मनोरम विग्रह से, हरा था उन्होने सबका मन।।
प्रेम भरी मुस्कान थी, प्रसाद पूर्ण थे उनके वचन। अद्भुत उनकी लीलाएं थीं, और अतीव मधुर चितवन्।।
सारे जीव लोक को, था आनन्द से भर दिया। श्री हरि ने इस धरती पर, ऐसा था कौतुक किया।।

उनके मुख कमल की शोभा तो, थी सबसे निराली ही। अति कमनीय थी कानों में, मकराकृति कुण्डल की बाली।।
उनकी आभा से कपोलों का, सौन्दर्य और भी खिल उठता। हास विलास से उसके मुख का, आनन्द था और भी बढ़ जाता।।
सब नर नारी अपने अपने, नेत्रों को पात्र बना कर के। उनके मुख माधुर्य का, पान निरन्तर थे करते।।
उस अमृत रस के पान से, नित्य आनन्दित वह होते। निरन्तर पान उसका करके भी, तृप्त कभी वह न होते।।
पलकें गिरतीं जब नयनों की, उद्विग्न वह हो जाते थे। निमि ने क्यों गिराईं यह, उसपर यूं दोष लगाते थे।।

लीला पुरुषोत्तम श्री हरि ने, मथुरा में था जन्म लिया। श्री वसुदेव के घर में ही, अवतार उन्होंने था धरा।।
किन्तु वहां वह रहे नहीं, गोकुल में नन्द बाबा के गए। वहां निज प्रयोजन पूर्ण कर, पुन: वह मथुरा को लौटे।।
गोपी ग्वाल और गौओं को, सुख देना ही उनका योजन था। गोकुल में श्री कृष्ण का, इतना ही प्रयोजन था।।
व्रज मथुरा और द्वारिका में, श्री कृष्ण ने वास किया। अनेकों ही असुरों का, उन्होने वहां संहार किया।।
बहुत सी ललनाओं से, उन्होने था विवाह किया। सहस्त्रों सुत उत्पन्न करके, निज कुल का विस्तार किया।।
जन जन को उनके स्वरूप का, साक्षात्कार करायें जो। निज वाणी रूप श्रुतियों की, मर्यादा स्थापित की।।
अनेकों यज्ञों के द्वारा, उन स्वयं ही अपना यजन किया। श्री हरि ने इस धरती पर, यूं निज लीला विस्तार किया।।
कौरवों और पाण्डवों की, आपस में जो थी कलह हुई। निमित्त उसे बना कर, भूमि की भार उन्होने हरी।।
युद्ध में निज दृष्टि से ही, विस्तृत सेना थी ध्वंस करी। राजाओं की अनेकों ही, अक्षौणी सेना उन्होंने हरी।।
इस संसार में अर्जुन को, महावीर था बना दिया। संहार किया निज सृष्टि से, पर श्रेय उसे ही दिला दिया।।
उद्धव को फिर आत्म तत्त्व, का उपदेश किया उन्होने। तत्पश्चात् निज परम धाम, को प्रस्थान किया उन्होने।।

नवम स्कन्ध समाप्त

** प्रकृति के ये नजारे, धरती के सारे बाहर भीतर के खजाने,*
धरती के प्राणियों की, मानवों की अमानत है, जिस पर सभी का हक है यह ऐसी दौलत है,
लेकिन जब तक एक तरफ ही स्वर्ण बरसता हो, दूसरी तरफ कोई दाने दाने को तरसे,
तो बढती जाती है विषमता की खाई तब भाई का दुश्मन बन जाता है भाई।

रामायण समीक्षा

राम सिर्फ एक चरित्र है, पात्र है। एक पुरुष कितना उत्तम हो सकता है उसका आदर्श है, मानवीय गरिमा का चरम प्रतिनिधि है। वह ईश्वर ही नहीं लीला भी कर रहा है। वह एक चरित्र है जो हँसता भी है, रोता भी है, प्रेम भी करता है, क्रोध भी करता है, आशंकित भी है। विस्मय से भरा हुआ भी है, विश्वास भी करता है, शंका भी उसके चरित्र का एक हिस्सा है।

एक मनुष्य जब अपनी पूरी गरिमा के साथ, पूरी मर्यादा के साथ अपने पूरे स्वभाव के साथ उपस्थित होता है तो वह राम है। राम इस संस्कृति का एक ऐसा आदर्श है, जिसने प्रेम, सत्यता और मर्यादा के अनोखे प्रतिमान स्थापित किए। जिसके सामने आज सदियों बाद भी सम्पूर्ण भारतीय जनमानस नतमस्तक है।

जनमानस में व्यापक आस्थाओं के इतिहास को खंगालें तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम कण-कण में विद्यमान दिखते हैं। ऐसा हो भी क्यों न? राम इस देश के पहले महानायक है। वे वाल्मीकि की कल्पना के नायक थे या अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र या तुलसी के राम जो भी हों वे इतना तय है राम का जो विराट व्यक्तित्व भारतीय जनमानस पर अंकित है, उतने विराट व्यक्तित्व का नायक अब तक के इतिहास में कोई दूसरा नहीं हुआ।

राम मर्यादाओं की प्रतिमूर्ति हैं। उन्होंने हर कदम पर मर्यादाओं का पालन किया। राम के जैसा कोई दूसरा पुत्र नहीं है। राम के जैसा कोई दूसरा भाई नहीं है। राम के जैसा कोई दूसरा संपूर्ण आदर्श वाला पति, राजा, स्वामी कोई भी दूसरा राम जैसा नहीं है। राम को भले सनातन या किसी धर्म के लोग अपने साथ जोड़े, लेकिन राम किसी धर्म के हिस्से नहीं बल्कि मानवीय चरित्र के उदात्त नायक हैं। अगर गहराई से देखा जाए तो राम महान समाजवादी नायक भी नजर आते हैं। उन्होंने समाज के सबसे निचले तबके को बराबरी का दर्जा दिया, जिसे समीक्षकों ने कोल, भील, वानर आदि कहा। राम सत्य के मार्ग के अनुसरण करनेवाले अपने विचार के इतने पक्के अनुगामी हैं कि उससे एक कदम भी इधर से उधर विचलित नहीं होते।

वर्तमान संदर्भों में भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव है। त्रेता युग में भगवान श्रीराम से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, उनसे उत्तम कोई व्रत नहीं, कोई श्रेष्ठ योग नहीं, कोई उत्कृष्ट अनुष्ठान नहीं। उनके महान चरित्र की उच्च वृत्तियां जनमानस को शांति और आनंद उपलब्ध कराती हैं। संपूर्ण भारतीय समाज के जरिये एक समान आदर्श के रूप में भगवान श्रीराम को उत्तर से लेकर दक्षिण तक संपूर्ण जनमानस ने स्वीकार किया है। उनका तेजस्वी एवं पराक्रमी स्वरूप भारत की एकता का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित करता है। आदिकवि ने उनके संबंध में लिखा है कि वे गांभीर्य में उदधि के समान और धैर्य में हिमालय के समान हैं। राम के चरित्र में पग-पग पर मर्यादा, त्याग, प्रेम और लोकव्यवहार के दर्शन होते हैं। राम ने साक्षात् परमात्मा होकर भी मानव जाति को मानवता का संदेश दिया। उनका पवित्र चरित्र लोकतंत्र का प्रहरी, उत्प्रेरक और निर्माता भी है। इसीलिए तो भगवान राम के आदर्शों का जनमानस पर इतना गहरा प्रभाव है और युगों-युगों तक रहेगा।

राम यह शब्द दिखने में जितना सुंदर है उससे कहीं महत्वपूर्ण है इसका उच्चारण। राम कहने मात्र से शरीर और मन में अलग ही तरह की प्रतिक्रिया होती है जो हमें आत्मिक शांति देती है। राम ने १४ वर्ष वन में रहकर भारतभर में भ्रमण कर भारतीय आदिवासी, जनजाति, पहाड़ी और समुद्री लोगों के बीच सत्य, प्रेम, मर्यादा और सेवा का संदेश फैलाया। यही कारण रहा की राम का जब रावण से युद्ध हुआ तो सभी तरह की अनार्य जातियों ने राम का साथ दिया। यह वह काल था

जबकि लोगों में किसी भी प्रकार की जातिवादी सोच नहीं थी। लोग सिर्फ दो तरह की सोच में ही बंटे थे- यक्ष और रक्ष जिसे सुर और असुर या देव और दानव कहा जाता था।

भगवान राम के तीन भाई लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न सौतेली मां के पुत्र थे, लेकिन उन्होंने सभी भाइयों के प्रति सगे भाई से बढ़कर त्याग और समर्पण का भाव रखा और स्नेह दिया। यही वजह थी कि भगवान राम के वनवास के समय लक्ष्मण उनके साथ वन गए और राम की अनुपस्थिति में राजपाट मिलने के बावजूद भरत ने भगवान राम के मूल्यों को ध्यान में रखकर सिंहासन पर रामजी की चरण पादुका रख जनता को न्याय दिलाया। भरत के लिए आदर्श भाई, हनुमान के लिए स्वामी, प्रजा के लिए नीति-कुशल व न्यायप्रिय राजा सुग्रीव व केवट के पास परम मित्र और सेना को साथ लेकर चलनेवाले व्यक्तित्व के रूप में भगवान राम को पहचाना जाता है।

भगवान राम ने दया कर सभी को अपनी छत्रछाया में लिया। उनकी सेना में पशु, मानव व दानव सभी थे और उन्होंने सभी को आगे बढ़ने का मौका दिया। सुग्रीव को राज्य, हनुमान, जाम्बवंत व नल-नील को भी उन्होंने समय-समय पर नेतृत्व करने का अधिकार दिया। भगवान राम न केवल कुशल प्रबंधक थे, बल्कि सभी को साथ लेकर चलनेवाले थे। वे सभी को विकास का अवसर देते थे व उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग करते थे। उनके इसी गुण की वजह से लंका जाने के लिए उन्होंने व उनकी सेना ने पत्थरों का सेतु बना लिया था।

भारतीय संस्कृति वीरता की पूजक है, शौर्य की उपासक है, व्यक्ति और समाज के रक्त में वीरता प्रकट हो, इसलिये शत्रु के आगमन की राह न देखकर उसपर आक्रमण कर उसका पराभव करना ही कुशल राजनीति है। शत्रु हमारे राज्य में घुसे, लूटपाट करे फिर उसके बाद लड़ने की तैयारी करे। वे अपने शत्रुओं का असुर व्यवहार जानते हैं इसीलिये उसकी सीमाओं पर धावा बोला।

राम ने बालि को मारा और जब बालि ने उनसे तर्क किया कि सुग्रीव आपको क्यों प्रिय है? आपने मुझे क्यों मारा? क्या इसलिए कि वह आपकी सहायता करने जा रहा है? तो राम ने कहा- नहीं। तुम्हें इसलिए मारा क्योंकि- तुमने अनुज बधू का हरण किया है। बालि समझ गया कि उसने जो कुछ पाप किया हैं यह उनका फल है और अंत में उसने द्रवित होकर प्रभु की वंदना की।

राम महान वीर थे। उन्होंने महान विजय हासिल की, लेकिन उनमें अद्‌भुत विनयशीलता थी। विजय हासिल करने के बाद भी कभी दंभ नहीं पाला। उन्होंने बालि का वध करके पम्पापुर का राज्य सुग्रीव को दे दिया। एक बार भी उसकी तरफ नजर उठाकर नहीं देखा। बालि को मारने के बाद उन्होंने सुग्रीव को वर्षा ऋतु के कठिन समय में आराम से रहने के लिए पम्पापुर भेज दिया और स्वयं किष्किंधा पर्वत पर कुटिया बनाकर रहने लगे। क्या इतिहास के किसी दूसरे नायक में इतना बड़ा त्याग दिखता है? क्या इतिहास का कोई दूसरा नायक माया से इतना तटस्थ, इतना निस्पृह दिखता है? सिर्फ पम्पापुर के एक छोटे से राज को ही उन्होंने तुच्छ नहीं समझा, बल्कि सोने की लंका को जीतने के बाद उस वैभवशाली नगरी में प्रवेश तक नहीं किया। राम की उदात्त वीरता और उनके अजस्त्र नायकत्व को देखिए कि दशानन के धरती पर गिर जाने के बाद वे अनुज लक्ष्मण से कहते हैं- जाओं, महाराज दशानन से राज विद्या सीखो। ऐसा वीर कभी कोई और इतिहास में देखने को मिलता है, जो अपने दुश्मन का भी इतना सम्मान करे? राम ने लंका जीती, राम ने पम्पापुर जीता, लेकिन उन्हे अयोध्या का विस्तार नहीं बनाया। क्या लंका को अयोध्या का राज्यस्थान बनाया? राम हमारे मनुष्योचित आदर्शों के

विराट शिखर हैं। राम के जीवन का एक-एक प्रसंग आदर्श और चेतना का पर्याय है। उन्होंने जिस समतावादी दृष्टि का परिचय दिया है, वैसी समतावादी दृष्टि इतिहास में किसी और दूसरे नायक की नहीं दिखती। उन्होंने उस काल में निम्न वर्ग की समझी जानें वाली महिला शबरी के जूठे बेर खाए।

ऋषि-मुनियों की सुरक्षा का भार अपने कंधों पर लिया। उन्हें आततायी राक्षसों से मुक्ति दिलाई। राम एक आदर्श-प्रजापालक हैं। खुद रावण की सैकड़ों रानियां थी, लेकिन राम ने एक नारीव्रत होने का आदर्श प्रस्तुत किया। राम हर कदम पर आदर्शों की प्रतिमूर्ति हैं। ऐसे आदर्श जो किसी महान नायक में ही हो सकते हैं। जिनकी सिर्फ कल्पना की जाती है। इनमें से कोई भी परिपूर्ण तो क्या आधा पूर्ण नायक तक नहीं है, जबकि राम निष्कलुष, बेदाग महानायक है।

एक मनुष्य जब अपनी पूरी गरिमा के साथ, पूरी मर्यादा के साथ अपने पूरे स्वभाव के साथ उपस्थित होता है तो वह राम है। राम इस संस्कृति का एक ऐसा आदर्श है, जिसने प्रेम, सत्यता और मर्यादा के अनोखे प्रतिमान स्थापित किए। जिसके सामने आज सदियों बाद भी सम्पूर्ण भारतीय जनमानस नतमस्तक हैं।

राम प्रबल संकल्प के प्रबल प्रतीक हैं। आत्म शक्ति और सत्य के परम उपासक हैं। तभी तो राम यह प्रतिज्ञा करने का साहस करते हैं। राम और उनके वानर आम जनता के प्रतीक हैं। यह कथा आधुनिक अर्थों में इसलिए प्रासंगिक हो जाती है। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर तो देखो, परमात्मा की शक्ति आपको राम बना देगी। खर दूषण की विशाल सेना के समाने एक मनुष्य का साहस कह रहा है। कितना साहसी है यह मनुष्य। आदर्श है क्रांति का। ऐसे समय आवाज उठाने का, जब अपनी क्षमताओं को भूला मनुष्य सांस लेने में भी घबराता है।

राम यह शब्द दिखने में जितना सुंदर है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है इसका उच्चारण। राम कहने मात्र से शरीर और मन में अलग ही तरह की प्रतिक्रिया होती है जो हमें आत्मिक शांति देती हैं। हजारों संत और महात्माओं ने राम का नाम जपते-जपते मोक्ष को पा लिया है। बलशालियों में सर्वाधिक बलशाली राम हैं, लेकिन राम से भी बढ़कर श्रीराम जी का नाम है। हनुमान, लक्ष्मण, सुग्रीव, रावण से लेकर कबीर, तुलसी और गांधी तक सभी राम का नाम ही जपते रहते हैं, राम नाम की महिमा ही कुछ ऐसी है कि इसको जपने से संपूर्ण मानसिक ताप मिट जाते हैं।

राम की सत्ता को नकारने वाले तत्व नहीं जानते कि जब मृत्युकाल होगा तब तुम्हारे विचार, क्रोध, पद, दंभ, साथी और राजनीतिक मित्र सब यहीं छूट जाएंगे। आंखों के सामने अंधकार जब छा जाएगा तब यदि राम का नाम कमाया है तो वही दीप बनकर जलेगा और तुम्हें रास्ता दिखाएगा।

राम और राम नाम के महत्व को हजारों बार प्रमाणित किया जा चुका है, लेकिन मूढ़ बुद्धि रहस्य को नहीं मानती। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनको सुनने या कहने से हमारे दिमाग में उत्तेजना, निराशा, क्रोध या अन्य तरह के नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं। लेकिन कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनको सुनने मात्र से मन शांत और निश्चल हो जाता है। यह सभी जानते हैं कि अच्छा संगीत हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क सभी को स्वस्थ और प्रसन्न रखने की ताकत रखता है।

सेतुबंध बनाया जा रहा था तब सभी को संशय था कि क्या पत्थर भी तैर सकते हैं। क्या तैरते हुए पत्थरों का बांध बन सकता है तो इस संशय को मिटाने के लिए प्रत्यक पत्थर पर राम का नाम लिखा गया। हनुमान जी भी सोच में पड़ गए कि बिना सेतु के मैं लंका कैसे पहुंच सकता हूँ लेकिन राम का नाम लेकर वे एक ही चौकटी में पार कर गए समुद्र। भगवान राम के जन्म के पूर्व इस नाम का उपयोग ईश्वर के लिए होता था अर्थात ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर आदि की जगह पहले राम शब्द का उपयोग होता

था, इसीलिए इस शब्द की महिमा और बढ़ जाती है तभी तो कहते हैं कि राम से भी बढ़कर श्रीराम का नाम है।

ऐसा काम ना करो कि जिससे राम का नाम बदनाम हो। वर्तमान में भारतीय राजनीतिक दल राम को लेकर राजनीति करते हैं। पक्ष और विपक्ष दोनों के झगड़े के कारण राम और हिन्दू धर्म की छवि धूमिल हुई है।

कहते हैं कि कलयुग में सब कुछ महंगा है, लेकिन राम का नाम ही सस्ता है। सस्ता ही नहीं सभी रोग और शोक की एक ही दवा है राम। वर्तमान में ध्यान, तप, साधना और अटूट भक्ति करने से भी श्रेष्ठ राम का नाम जपना है। भागमभाग जिंदगी, गलाकाट प्रतिस्पर्धा, धोखे पर धोखे, माया और मोह आदि सभी के बीच मानवता जब हताश और निराश होकर आत्महत्या करने लगती है तब सिर्फ राम नाम का सहारा ही उसे बचा सकता है।

अन्याय, अत्याचार, अहंकार, विघटन और आतंकवाद आदि संसार के कलुष कलंक हैं। इतिहास पुराण गवाह हैं कि समय-समय पर ये कलुष सिर उठाते रहे हैं। त्रेता युग में रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, खरदूषण, ताड़का, त्रिशरा आदि और द्वापर में कंस, पूतना, बकासुर के अलावा दुर्योधन आदि कौरवों के रूप में हो या इस युग में अन्याय और आतंकवाद के तरह-तरह के चेहरे हों। इन कलुषों पर श्रीराम जैसे आदर्श महापुरुष साधन संपदा नहीं होते हुए भी केवल आत्मबल के माध्यम से इन पर विजय होते रहे हैं।

ऋषि विश्वामित्र के साथ ताड़क वन प्रदेश में ताड़का आदि के नेतृत्व में प्रशिक्षित हो रहे आततायियों को ध्वस्त कर छोटी अवस्था से ही श्रीराम-लक्ष्मण ने राष्ट्र रक्षा का पहला अध्याय लिखा। उसके बाद वनवास के समय वनमाफियाओं द्वारा उजाड़े गए दंडक वन में ग्यारह वर्ष तक रहते हुए वन और वृक्षोंकी सेवा की। रोपे गए वृक्षों का जानकीजी ने वनवासी स्त्रियों के साथ सिंचन किया तथा लक्ष्मणजी ने धनुषबाण लेकर उनकी रक्षा की। इस प्रकार प्रकृति पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वनों के महत्व को समाज के सामने प्रस्तुत किया। इसी प्रकार पंचवटी प्रदेश जहां खरदूषण की देखरेख में सीमा पार से घुसे आतंकी भारत को अस्थिर करने के लिए प्रशिक्षण ले रहे थे। सूर्पणखा विषकन्या के रूप में रावण की सत्ता का विस्तार करने का उपक्रम चला रही थी। उसे कुरूप बनाकर खरदूषण समेत सारे आतताई उपद्रवियों का सफाया कर सुदूर लंका में बैठे रावण को मानो चुनौती दे डाली। रावण द्वारा सीता का हरण कोई सामान्य अपहरण नहीं था। वह एक राष्ट्र की अस्मिता एवं संस्कृति का हरण था। जिसकी रक्षा के लिए भगवान श्रीराम ने रीछ, वानरों जैसे सामान्य प्राणियों को संगठित किया। वन में रहनेवाले सामान्य जीवों में इतनी शक्ति उभार देना साधारण नायकों के वश का काम नहीं हो सकता कि अजेय और दुर्लंघ्य कहे जानेवाले समुद्र से घिरे लंका जैसे दुर्ग का भेदन कर राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा कर सके। रामचरित अपने समय और बाद की पीढ़ियों के लिए भी एक मिसाल है कि किस प्रकार शौर्य, शक्ति आचरण एवं नीति से किसी राष्ट्र की अखंडता को बचाया जा सकता है। आधुनिक परिवेश में विश्व के प्रत्येक राष्ट्र पर आतंकवाद का असुर सुरसा के मुख की तरह फैलता जा रहा है। राम का चरित्र हजारों लाखों लोगों के लिए वह जीवन में स्फूर्ति और प्रेरणा जगानेवाला केंद्र है। भारत के अतिरिक्त विश्व के अन्य सभी राष्ट्र श्रीराम के शील सौंदर्य राजनीतिक कुशलता तथा सामरिक वैश्विक रणनीति के परिप्रेक्ष में राम को ही अपना आदर्श मानव निर्माण की दिशा में अपना इष्ट मान रहे हैं। श्रीराम चन्द्रजी के जीवन से सात्विकता, आत्मीयता, निर्भीकता एवं राष्ट्र रक्षा की प्रेरणा लें तथा समाज के राष्ट्रविरोधी प्रच्छन्न तत्वों से संघर्ष करने के साहस का परिचय दें तो भारतवर्ष की अखंडता, नैतिकता तथा चारित्रिक सौम्यता के निर्माण के क्षेत्र में अद्भुत सराहनीय प्रयास होगा।

वाल्मीकि रामायण अनुसार रावण एक वीर, धर्मात्मा, ज्ञानी, नीति तथा राजनीति शास्त्र का ज्ञाता, वैज्ञानिक, ज्योतिषाचार्य,

रणनीति में निपुण एक कुशल राजनीतिज्ञ, सेनापति और वास्तुकला का मर्मज्ञ होने के साथ-साथ ब्रह्म ज्ञानी तथा बहु-विद्याओ का जानकार था। उसे मायावी इसलिए कहा जाता था कि वह इंद्रजाल, तंत्र, सम्मोहन और तरह-तरह के जादू जानता था। उसके पास एक ऐसा विमान था जो अन्य किसी के पास नहीं था। इस सभी के कारण सभी उससे भयभीत रहते थे। रावण एक विपरित पात्र है।

रावण दुनिया में इस नाम का दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है। राम तो बहुत मिल जाएंगे, लेकिन रावण नहीं। रावण तो सिर्फ रावण है। राजाधिराज लंकाधिपति महाराज रावण के रण कौशल की चर्चा दूर-दूर तक थी लेकिन दशरथ पुत्र के आगे दशानन की नहीं चली।

दशानन के दस सिर- ऐसा माना जाता है कि उसके दस सिर नहीं थे किंतु वह दस सिर होने का भ्रम पैदा कर देता था। इसी कारण लोग उसे दशानन कहते थे।

जैन शास्त्रों के अनुसार रावण के गले में नौ मणियां होती थीं। उक्त नौ मणियों में उसका सिर दिखाई देता था जिस कारण उसके दस सिर होने का भ्रम होता था। जैन शास्त्रों में रावण को प्रति-नारायण माना गया है। जैन धर्म के ६४ शलाका पुरुषों में रावण की गिनती की जाती है। जैन पुराणों अनुसार महापंडित रावण आगामी चौबीसी में तीर्थंकर की सूची में भगवान महावीर की तरह चौबीसवें तीर्थंकर के रूप में मान्य होंगे। इसीलिए कुछ प्रसिद्ध प्राचीन जैन तीर्थस्थलों पर उनकी मूर्तियां भी प्रतिष्ठित हैं।

रावण का परिवार- दानववंशीय योद्धाओं में विश्व विख्यात दुन्दुभि के काल में रावण हुआ। रावण के दादा पुलस्त्य ऋषि थे। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य और पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा की चार संतानों में रावण अग्रज था। इस प्रकार वह ब्रह्माजी का वंशज था।

ऋषि विश्रवा ने ऋषि भारद्वाज की पुत्री इडविडा से विवाह किया था। इडविडा ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनका नाम कुबेर और विभीषण था। विश्रवा की दूसरी पत्नी कैकसी से रावण, कुंभकरण और सूर्पणखा का जन्म हुआ।

लक्ष्मण ने सूर्पणखा की नाक काट दी थी, जो रावण की बहन थी। इसी कारण रावण ने सीता का हरण कर लिया था। कुंभकरण के संबंध में कहा जाता है कि वह छह माह नींद में रहता था और छह माह जागता था। रावण के भाई विभीषण ने रावण का साथ छोड़कर युद्ध में राम का साथ दिया था। कुबेर रावण का सौतेला भाई था। कुबेर धनपति था। कुबेर ने लंका पर राज कर उसका विस्तार किया था। रावण ने कुबेर से लंका को हड़पकर उस पर अपना शासन कायम किया। लंका को भगवान शिव ने विश्वकर्मा से बनवाया था। ऐसा माना जाता है कि माली, सुमाली और माल्यवान नामक तीन दैत्यों द्वारा त्रिकुट सुबेल पर्वत पर बसाई लंकापुरी को देवों ने जीतकर कुबेर को वहां का अधिपति बना दिया था।

रावण की कई पत्नियां थीं जिनमें से मंदोदरी का स्थान सर्वोच्च था। सुंबा राज्य के राजा, वास्तुकार और इंजीनियर मयदानव ने रावण के पराक्रम से प्रभावित होकर अपनी परम रूपवान पाल्य पुत्री मंदोदरी का विवाह रावण से कर दिया था। मंदोदरी की माता का नाम हेमा था जो एक अप्सरा थी। मंदोदरी से रावण को परम पराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम मेघनाद था। मेघनाद ने इंद्र को हरा दिया था इसलिए उसे इंद्रजीत भी कहा जाता है।

नाभि में जीवन- ऐसी मान्यता है कि रावण ने अमृत प्राप्ति के उद्देश्य से भगवान ब्रह्मा की घोर तपस्या कर वरदान मांगा लेकिन ब्रह्मा ने उसके इस वरदान को न मानते हुए कहा कि तुम्हारा जीवन नाभि में स्थित रहेगा।

शिवभक्त रावण- एक बार रावण जब अपने पुष्पक विमान से यात्रा कर रहा था तो रास्ते में एक वन क्षेत्र से गुजर रहा था। उस क्षेत्र के पहाड़ पर शिवजी ध्यानमग्न बैठे थे। शिव के गण नंदी ने रावण को रोकते हुए कहा कि इधर से गुजरना सभी के लिए निषिद्ध कर दिया गया है, क्योंकि भगवान तप में मगन हैं। रावण को यह सुनकर क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने अपना विमान नीचे उतारकर नंदी के समक्ष खड़े होकर नंदी का अपमान किया और फिर जिस पर्वत पर शिव विराजमान थे उसे उठाने लगा। यह देख शिव ने अपने अंगूठे से पर्वत को दबा दिया जिस कारण रावण का हाथ भी दब गया और फिर वह शिव से प्रार्थना करने लगा कि मुझे मुक्त कर दें। इस घटना के बाद वह शिव का भक्त बन गया।

रावण ने शिव तांडव स्तोत्र की रचना करने के अलावा अन्य कई तंत्र ग्रंथों की रचना की। कुछ का मानना है कि लाल किताब (ज्योतिष का प्राचीन ग्रंथ) भी रावण संहिता का अंश है। रावण ने यह विद्या भगवान सूर्य से सीखी थी।

रावण ने सुंबा और बालीद्वीप को जीतकर अपने शासन का विस्तार करते हुए अंगद्वीप, मलयद्वीप, वराहद्वीप, शंखद्वीप, कुशद्वीप, यवद्वीप और आंध्रालय पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद रावण ने लंका को अपना लक्ष्य बनाया। लंका पर कुबेर का राज्य था।

रावण ने कुबेर को लंका से हटाकर वहां खुद का राज्य कायम किया था। धनपति कुबेर के पास पुष्पक विमान था जिसे रावण ने छीन लिया था। रावण के इस पुष्पक विमान में प्रयोग होनेवाले ईंधन से संबंधित जानकारियों पर मद्रास की ललित कला अकादमी के सहयोग से भारत अनुसंधान केंद्र द्वारा बड़े पैमान पर शोध कार्य किया जा रहा है। रामायण में उल्लेख मिलता है कि यह पुष्पक विमान इच्छानुसार छोटा या बड़ा हो जाता था तथा मन की गति से उड़ान भरता था।

यह है रावण का अहंकार जो कि मरते समय भी उसका साथ नहीं छोड़ रहा है। अभी भी वह घोर गर्जना के साथ राम को मिटाने की बात कह रहा है। इसके साथ ही राम रावण को मार देते हैं। यह रावण अति असाधारण है कि मरने के बाद जब वह वीर जमीन पर गिरता है तो भूचाल आ जाता है। समुद्र में तूफान उठ जाता है। नदियां अपने मार्ग बदल देती हैं। अनेक वानरों और राक्षसों को दबाते हुए उसका धड़ पृथ्वी पर गिर जाता है।

रावण प्रतीक है अहंकार का, पद का, प्रतिष्ठा का, शौर्य का, शक्ति का, साहस का। या ऐसे कहें कि यह प्रतीक मनुष्य की क्षमता का चरम प्रतीक है। कितना साहस है उस चरित्र में जो अपने हाथ से अपना सिर भी काट सकता है। नीति शास्त्र का बड़ा पंडित है लेकिन सत्य को अपने पीछे ,खड़ा कर लेता है। सब जानता है लेकिन अपनी बुद्धि का प्रयोग सत्य को झुठलाने के लिए करता है। समय पड़ने पर वह चोरी भी कर लेता है और शास्त्र ज्ञान से उसे भी सही घोषित करता है। समय के हिसाब से छल-कपट भरे निर्णय लेने में उसका कोई सानी नहीं।

जब आदमी स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है तभी वह रावण बनने की ओर अग्रसर हो जाता है। महाराजा रावण ने उसी अहम के वशीभूत होकर व्यक्ति की उस स्वतंत्रता पर आक्षेप लगाया जो मनुष्य का सबसे बड़ा अधिकार है। रावण पूरे विश्व को एक ही प्रकर की जीवनशैली के अंतर्गत रहें। लेकिन एकता की कल्पना ही अपने आप में उलझी हुई है।

यह विश्व कभी भी एक नहीं हो सकता है। इस सृष्टि में दूसरे का अस्तित्व ही एक अद्भुत को दर्शाता है। दूसरे का होना ही यह बताता है कि तुम्हारे जैसा कोई नहीं। लेकिन हम इस आधारभूत तथ्य को भी नहीं समझ पाते और रावण की तरह तलवार और फरसे के दम पर एक-सा बनाने की कोशिश करते हैं। इस जगत में एक ही पेड़ के दो पत्ते भी कभी एक नहीं हो सकते, तब मनुष्य की तो बात ही छोड़ दें। मनुष्य उस नियंता की चरम प्रदर्शना है। परमात्मा बनने की, नियंता बनने की, दूसरे का

भाग्य और व्यवहार, सोच तय करने की मनुष्य में प्रबल आकांक्षा रहती है। आम से आम आदमी में भी कहीं गहरे यह आकांक्षा छुपी रहती है कि सूरज भी मेरे हिसाब से उदित हो। रावण प्रारंभ में एक अतिसामान्य आदमी था। अंगद रावण के इतिहास के बारे में चुटकी लेते हुए कहते हैं कि जितने रावणों के बारे में मैं जानता हूँ, तू सुन और बता कि उनमें से तू कौन-सा है।

ये सभी वही रावण थे दशग्रीव दशानन रावण। लेकिन यदि आदमी के पास शक्ति आ जाए तो वह कितना भयानक आचरण कर सकता है। राम-रावण कथा ऐसे साधारण मनुष्यों की कहानी है जिसमें शक्ति दोनों के पास थी। एक के पास अहंकार की शक्ति, दूसरे के पास सत्य की शक्ति। सत्य की शक्ति की इससे बड़ी प्रतीक कथा नहीं हो सकती कि एक निर्वासित राजपुरुष बंदरों-भालुओं को इकट्ठा कर उस महाशक्तिमान रावण को हरा देता है।

वह अपनी नई संस्कृति की स्थापना के लिए पुरानी विधियों से जीवन जीने की कोशिश कर रहे लोगों को बुरी तरह सताता था। वहां एक ही कानून था- रावण। न्याय की अवधारणा लुप्त हो चुकी थी। रावण शासकों के क्रूर अहंकार का प्रतीक है। वह उसके सामने न झुकनेवालों को खा जाता है।

रावण अंधेरे में कितना सुंदर दिखाई देता है। वास्तव में रावण की सिर्फ इतनी ही उपयोगिता है कि उसकी काली पृष्ठभूमि में राम अधिक धवल रूप में सामने आते हैं। इस देश की यही गरिमा है कि इसने पुराण लिखे, राम कथा लिखी। यह कोई इतिहास है या सच में ऐसा हुआ, आज भी पंडितों के बीच विवाद का विषय है।

सोनेको कसकर उसकी अच्छाई-बुराईकी परख की जाती है। अगर अपनी सच्चरित्रताकी परख करना चाहते हो तो उसको भगवान रामकी चरित्रकी कसौटीपर कस लीजिये। भगवान राम का चरित्र साधुत्वका मापदण्ड है। भगावन राम की ऐसी महिमा है कि जन्म, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि और आकृति आदि उनके तोषके हेतु नहीं है। वे तो उन बन्दरोंपर प्रसन्न होनेवाले हैं, जिनके पास न तो उत्तम कुल है, न सौभाग्य है, न वाणी है, न बुद्धि है और न आकृति है। उन्होंने उन वनवासियोंको अपना सखा बनाया जो दीन हैं, हीन हैं और पतित है। ऐसे लोगोंके प्रति भगवान राम सहज स्नेह है, आकर्षण है। रामायण चलती-फिरती काशी है। शिव-पार्वती द्वारा रचित यह एक महाग्रंथ है, जिसका चिंतन-मनन करनेसे मनके सारे दु:ख दर्द दूर हो जाते हैं।

** नफरते तो कब्र तक पहुंचायेगी, इस दुनिया को प्यार ही बचा पायेगा।*

** एक सा रहता नहीं वक्त हमेशा सबका, कल जहां हवेली थी, आज है रास्ता वहां सबका,*
आसमां देखते रहते है ज्योतिषी यूं ही, अपने ही हाथ में होता है सितारा जिन्दगी का।

** किसकी करु ईबादत, तुम्हारी या खुदा की, तुम हो पास मेरे, खुदा तो बहुत दूर है मुझसे,*
जिनको हर हाल में जीने की कला आती है, मौत भी उनके करीब आने से कतराती है।

** शराफत की माँग यही है कि आदमी के दिल में और उसकी सोच में कोई खोट न हो।*

** जिन्दगी तू उत्सव भी है आघात भी, एक ही रास्ते पर अर्थी भी बारात भी,*
शाम को धुन्ध है दोपहर को धुआं भेस कितने बदलती रही रात भी।

नारी महिमा

*** नारी तो करुणा से ओतप्रोत है, नारी तो सुख वैभवका एक पोत है।**
नारी तो अंधकार में एक ज्योत है, नारी तो प्रेरणा का अद्‌भुत स्रोत है।।
*** औरत को जब-जब भी ईश्वर ने तराशा है, हर घर में हुई आखिर क्यूं निराशा है।**
पेट्रोल और गैस का उपयोग बढ़ रहा है, इसी आड़ में स्त्री का अस्तित्व जल रहा है।
दहेज लेने में लोगों को सम्मान दिख रहा है, इसी लिए हर घर का पुरुष बिक रहा है।
*** तुझे क्या कहुं बता ये नारी, प्यारी दिलरूबा या जान हमारी,**
तुझमें देखी थी नारी की कोमलता, तुझमें देखी थी नारी की सहनशीलता,
तुझमें देखी थी मां की ममता, तुझमें देखी थी पत्नी की बलिदानता,
पर हाय रे किस्मत तू तो नारी के पवित्र रूप को दफना चुकी थी,
तू हर जाई तन की भूखी, लालच की मारी, काम बारुद से भरी है बता ऐ सती तेरे कितने पति।

आप एक स्त्री देखते हो, यदि आप उसे वासना की दृष्टि से देखते हो, तो आप केवल शरीर देखते हो, पदार्थ अथवा उसका कोई भाग देखते हो, नारी को सिर्फ भोग्या की दृष्टि से देखा जाता है। यदि आप उसे प्रेम से देखते हो, तो आप कुछ चीज उसमें ऐसी देखते हो, जो पदार्थ नहीं है, जो आत्मिक है और यदि आप एक स्त्री को प्रार्थना के भाव से देखते हो, तो आप पूरी तरह से किसी दिव्य रूप को या देवी को ही देख रहे हो। यह आपकी दृष्टि पर निर्भर करता है। प्रेमपूर्ण दृष्टि से आप स्त्री की आत्मा को देखते हो और प्रार्थनापूर्ण नेत्रों से वह दिव्य दिखाई देती है, स्वयं परमात्मा के ही रूप में दिखाई देती है। सौंदर्य के प्रति जहां कहीं भी आपकी संवेदनशीलता परिपूर्ण हो जाती है, दिव्यता प्रकट हो जाती है। मानव-सभ्यता के आरंभिक दौर से आज तक स्त्रियों को दुनिया में हमेशा एक ऐसे पुरुष साथी की तलाश रहती है, जो यौन से परे जाकर भी स्त्री को समझ सके। औरत सिर्फ मर्द का जज्बाती सहारा ही नहीं बल्कि एक ऐसी ताकत है जिसके सहारे मर्द बड़ी से बड़ी मुसीबत झेल जाता है।

नारीको देखना चाहिए कि उसके पतिकी स्थिति क्या है। उसकी कामना पतिके घेरेमें होनी चाहिए, उससे बाहर नहीं। पतिकी सेवा करो, पर अपनी माँग मत रखो कि हमें यह चाहिए, यह चाहिए।

आर्य संस्कृति में भी नारी का अतिविशिष्ट स्थान रहा है। आर्य चिंतन में तीन अनादि तत्व माने गए है। परब्रह्म, माया और जीव। माया, परब्रह्म की आदिशक्ति है एवं जीवन के सभी क्रियाकलाप उसीकी इच्छाशक्ति से होते हैं। ऋग्वेद में माया को ही आदिशक्ति कहा गया है। उसका रूप अत्यंत तेजस्वी और ऊर्जावान है। फिर भी वह परम कारुणिक और कोमल है। जड़-चेतन सभी पर वह निस्पृह और निष्पक्ष भाव से अपनी करुणा बरसाती है। प्राणी मात्र में आशा और शक्ति का संचार करती है।

समस्त विधाएं, कलाएं, ग्राम्य देवियां और सभी नारियां इसी आदिशक्ति की अंशरूपिणी हैं। नारी ही राष्ट्र को बांधने और ऐश्वर्य देनेवाली शक्ति हैं नारी ही रुद्र के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाती हैं। धरती, आकाश में व्याप्त हो नारी ही मानव त्राण के लिए संग्राम करती हैं। विविध अंश रूपों में यही आदिशक्ति सभी देवताओं की परम शक्ति कहलाती हैं, जिसके बिना वे सब अपूर्ण हैं, अकेले हैं, अधूरे हैं।

हमारे समस्त रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार या अनुष्ठान-विधान गृहस्वामिनी के हाथों ही संपन्न होते हैं। इस धरा की महकती मिट्टी की महिमा है कि स्त्री इतने सम्मानजनक स्थान पर प्रतिष्ठापित है। सदियों पूर्व इसी सौंधी वसुंधरा पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट स्वरूप दिखाते हुए कहा था- नारी में मैं, कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं। दूसरे शब्दों में इन नारायण तत्वों से निर्मित नारी ही नारायणी है। संपूर्ण विश्व में भारत ही वह पवित्र भूमि है, जहां नारी अपने श्रेष्ठतम रूपों में अभिव्यक्त हुई है।

हमारी यशस्वी संस्कृति स्त्री को कई आकर्षक संबोधन देती है। मां कल्याणी है, वही पत्नी गृहलक्ष्मी है। बिटिया राजनंदिनी है और नवेली बहू के कुंकुम चरण ऐश्वर्य लक्ष्मी आगमन का प्रतीक है। हर रूप में वह आराध्या है।

पौराणिक आख्यान कहते हैं कि अनादिकाल से नैसर्गिक अधिकार उसे स्वत: ही प्राप्त हैं। कभी मांगने नहीं पड़े हैं। वह सदैव देने वाली है। अपना सर्वस्व देकर भी वह पूर्णत्व के भाव से भर उठती है। भारतीय स्त्री का हर रूप अनूठा है, अनुपम है, अवर्णनीय है। एक पहचान, एक परिभाषा, एक श्लोक, एक मंत्र या एक सूत्र में भला कैसे अभिव्यक्त हो सकती है ? साहस, संयम और सौंदर्य जैसे दिव्य-दिव्य गुणों को समयानुरूप इतनी दक्षता से प्रकट करती है कि सारा परिवेश चौंक उठता है।

यही कारण है कि त्यौहारों का आगमन उसके रोम-रोम से प्रस्फुटित होता है। उसकी मन-धरा से सुगंधित लहरियां उठने लगती हैं। उसके श्रृंगार में, रास-उल्लास में, आचार-विचार और व्यवहार में, रुचियों, प्रकृतियों और प्रवृत्तियों से त्यौहार के सजीले रंग सहज ही झलकने लगते हैं। गति, लय, ताल तरंग सब पायल के नन्हें घुंघरूओं से खनक उठते हैं। बाह्य श्रृंगार से आंतरिक कलात्मकता मुखरित होने लगती है।

पर्वों की रौनक से उसका चेहरा चमक उठता है। शील, शक्ति और शौर्य का विलक्षण संगम है भारतीय नारी। मधुर, मुसकान और मोहक व्यक्तित्व से सम्पूर्ण सृष्टि की इतनी सुंदर रचना हमारे बीच में है फिर भी हम उसे पहचान नहीं पाते। बांहों भर आकाश नहीं दे सकते। आकाश जितनी उसकी लंबी बाहें हैं उसकी। शून्य से शिखर तक पहुंचने की अशेष शक्ति निहित है उसमें। उसमें ऐसे सुंदर भाव समाये हुए हैं कि वह समूचा आसमान और सारी धरती को अपने सुदृढ़ कदमों से नाप सकती है।

मूल मुद्दा यह है कि चाहे भारत हो या अमेरिका दोनों जगहों पर स्त्री असुरक्षित क्यों है ? क्यों दोनों जगहों पर वह जुल्म की शिकार है, भयभीत है ? दोनों ही देशों में लोकतंत्र है। लोकतंत्र में किसी तरह के लिंगभेद की कोई जगह नहीं है।

कारण क्या है ? स्त्री अपने स्वभाव से हट गई है। वह नारीवाद, पुरुष से समानता और झूठे गर्व के जाल में फंस गई है। वह कल भी पुरुष के इशारों पर नाचती थी, आज भी पुरुष उसे नचा रहा है। जैसे- दुनिया भर में सौंदर्य प्रसाधन, सौंदर्य स्पर्धाएं, फैशन-शो जू, मॉडलिंग, फिल्म से लेकर पोर्न-मार्केट तक सब पुरुष के हाथों में हैं और स्त्री उसके हाथों का खिलौना बनी हुई है।

तो कहीं बहुत बड़ी गलती हुई है, स्त्री कहीं से दिशाहीन हो चुकी है। वह अब भी समाज में किसी ऐसे बदलाव की ताकत नहीं रखती, जिसमें उसका वास्तविक रूप में सम्मान हो।

स्त्री ने स्त्री होना छोड़ दिया, यही मूल कारण है। उसने पुरुष को विजेता के रूप में देखा और स्वयं भी विजेता बनने निकल पड़ी। जबकि सच यह है कि पुरुष भीतर से पराजित है। स्त्री यह देख नहीं पाई कि पुरुष बाहर से विजयी खड़ा दिखाई देता है। अंदर से हारा हुआ है। बाहर भले कठोर पेड़ की तरह तना है, अंदर से हरियाली सूख गई है।

स्त्री ने पुरुष की नकल में अपनी उस करुणा, क्षमा, कोमलता व प्रेम के गुणों को छोड़ना शुरू कर दिया। इससे उसके भीतर का भी रस सूखाता जा रहा है। उसके स्त्रियोजित सौंदर्य पर असर पड़ रहा है।

जो स्त्री के साथ घट रहा है यह मनुष्य के लिए गंभीर खतरा है। इससे दुनिया भर के लोगों को मिलकर निपटना चाहिए। क्योंकि स्त्री-स्त्री न रही, तो दुनिया बंजर हो जाएगी।

नारी सृष्टि की परम सौंदर्यमयी सर्वश्रेष्ठ कृति है। सृजन के आदि से विश्व उसकी गोद में क्रीड़ा करता आया है। उसकी मधुमती मुस्कान में महानिर्माण के स्वप्न हैं और भ्रूभंग में विनाश की प्रलयकारी घटाएं। ईश्वर के पश्चात हम सर्वाधिक ऋणी नारी के हैं- प्रथम तो जीवन के लिए, पुनश्च इसको जीने योग्य बनाने के लिए।

दुराचारिणी नारी के सौंदर्य पर अपने हृदय को मुग्ध मत कर और न ही स्वयं को उसकी चल चितवन का शिकार बना।

पुण्य से सुन्दर स्त्री मिलती है, स्त्री से सच्चरित्र पुत्र होते हैं, पुत्रों से दिन-दिन विमल यश का उदय होता है,और यश से यह लोक स्वर्गतुल्य हो जाता है।

हमारे अनपढ़ समाज में भी स्त्री को सम्मान दिया जाता था। छोटी बच्ची से लेकर बुजुर्ग महिलाओं को भी अकेले कहीं नहीं भेजा जाता था। इन दिनों उन पुराने व्यवहारों को समझने का नजरिया बदल गया है। स्त्रीवादी लोग समझते हैं कि स्त्री को परावलम्बी और परतंत्र बनाने के उपाय थे। परिवार और समाज द्वारा स्त्री को विशेष सम्मान दिया जाता था। सम्मानित व्यक्ति परिवार समाज के लिए विशेष उपयोगी ही होगा। स्त्री को समाज में सम्मान देने का एक और तरीका था। स्त्री चार पुरुषों के कंधों पर सवार होकर डोली में ही इधर-उधर जाती थी, पुरुष को ऐसे नहीं ले जाया जाता था। स्त्री विशेष थी। सम्मानित। उन दिनों भी उनके सम्मान की शुरुआत घर से होती थी। पिछले चार दशकों में हमने स्त्री शिक्षा, रोजगार और विभिन्न क्षेत्रों में उसके प्रवेश पर विशेष जोड़ दिया है। तभी आज जल, थल, नभ पर अपनी क्षमता और मेहनत के बल पर पहचान बनाती बेटियां दिख रही हैं। प्रसन्नता की बात है। परंतु इन बेटियों और महिलाओं के आगे बढ़ाने में उनके परिवार वालों का ही हाथ है। इसलिए बाहरी दायित्वों को निभाते हुए यदि स्त्रियां अपने घरेलू दायित्वों को भी प्राथमिकता देती हैं तो उन्हें घर और बाहर विशेष सम्मान मिलता है। अधिकांश महिलाएं ऐसा ही करती भी हैं। हर वक्त दफ्तरीय तथा सामाजिक-राजनैतिक जीवन में मिली उपलब्धियों और सम्मान का बखान सुनन के लिए घर में लोग तैयार नहीं होते। घर में तो पति को पत्नी, बच्चों को माँ, सास-ससुर को (यदि घर में हैं तो) बहू चाहिए। बाहर से घर में आकर उनकी पूछना, उनके लिए कुछ करना, उन्हें सुकून देता है। तभी वे पत्नी, माँ और बहू को बाहर भेजने में भी आनंदित होते हैं। उसके काम में सहयोग देते हैं। उसकी जिम्मेदारियां बांटते हैं। घर वालों का सहयोग न हो तो महिला बाहर के कामों में भी सफल नहीं हो सकती।

सबसे बड़े शर्म की बात समाज के लिए है कि गृहिणी को अनुत्पादक होने के साथ भिखारी, वेश्या और कैदियों की श्रेणी का दर्जा दिया गया तो किस आधार पर यह विचारणीय है। २१ वीं सदी में आसमान को छूने वाली, भौतिक प्रगतिशील समाज के घरेलू औरतों की यह तस्वीर भारतीयों को विश्व की निगाह में कितना ऊँचा उठायेगी, विचारणीय है।

भारतीय हिन्दू कानून के अनुसार पत्नीपति की अर्द्धांगिनी है और हर जगह बराबरी की भागीदार है। उसे अनुत्पादक और गलत श्रेणी देकर अपमानित किया जाना बिल्कुल भी जायज नहीं ठहराया जा सकता। पति-पत्नी एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों एक रथ के दो पहिये हैं। आज गृहणियां भी घर और बाहर दोनों स्तरों पर बराबरी से काम कर रही हैं। तमाम घरेलू औरतें कानून की भाषा में अनुत्पादक होने पर भी नौकरी करके परिवार को चलाती हैं और निम्न वर्ग की ९० प्रश. गृहणियां घर बाहर दोनों संभालती हैं। इस देश की संस्कृति में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के नारी रूपों की शक्ति रूप में पुरुष पूजा करते हैं पर व्यावहारिक रूप में यह कैसा अनाचार किया जा रहा है कि लक्ष्मी को भिखारी बना दिया। संसार की हर जाति में गृहिणी की छबि सहनशील, ममतामयी, त्यागमयी और आत्मिक शक्ति से भरपूर, दूसरे के दुखों को समझनेवाली दूसरा कोई नहीं हो

सकता नारी महिमा- नारी को सहनशक्ति का पर्याय कहा गया है। उसकी सहनशक्ति और बुद्धिमानी की असली परीक्षा ससुराल में होती है जहाँ माहौल नया होने के कारण उसे सामंजस्य स्थापित करने में काफी दिक्कत आती है।

सास को माँ समझते हुए उनकी छोटी-मोटी आलोचनाओं को अनदेखा कर दें। जेठानी के बच्चों को भी अपनत्व और प्यार दें। सुबह की चाय संभवत: खुद बनायें और सभी को दें भी। अपने मायके के लोगों की अनावश्यक तारीफ न करें। ननद से अपनत्व की बातें अवश्य करें। ससुराल के नये माहौल में वही ही आपकी सखी होती है। पति को दफ्तर जाते समय एक प्यार भरी मुस्कान के साथ उन्हें विदा करें। पति के दोस्त जब घर आयें तो उनका स्वागत करें। इस तरह आप बन जाएंगी एक आदर्श और सफल गृहिणी।

शास्त्रोंमें अद्भुत-अद्भुत महिलाओंका वर्णन है। एक महिला थीं शाण्डिली। सुन्दरी थीं, युवती थीं। अपने आश्रममें रहकर तप करती थीं। उनका संकल्प आजीवन ब्रह्मचारिणी रहनेका था। उनके आश्रमका स्थान अब गलता कहा जाता है। यह जयपुरके समीप है। एक दिन गरुड़ और महिर्ष गालव उस आश्रममें पहुँचे। गरुड़ने शाण्डिलीको देखा तो बोले- यह स्त्री केवल भगवान नारायणके योग्य है। यह लक्ष्मीके समान है। इसका विवाह भगवान्से करा देना चाहिए।

महर्षि गालवने कहा- शाण्डिली। चलो, नारायणसे तुम्हारा विवाह करा दें। ये गरुड़जी उनके सेवक हैं, मैं ऋषि हूँ, भगवान हमारी बात नहीं टालेंगे। तुम सब प्रकार उनके योग्य हो।

शाण्डिली- आपके नारायण चाहे जितने योग्य हो; किन्तु मेरा मन विवाह करनेका नहीं है। मैं यहीं एकान्तमें रहकर तप करूँगी। महर्षि गालव और गरुड़ वहीं रुक गये। रात्रिमें उन्होंने षड़यन्त्र किया- इसे बलपूर्वक पीठपर ले चलना है।

शाण्डिलीको पता लगा तो उसने शाप दिया- यदि मेरा ब्रह्मचर्यपूर्वक रहनेका संकल्प सच्चा है तो गरुड़के पंख और गालवका शरीर गल जाय। गरुड़के पंख और गालवका शरीर गलने लगा। दोनों डर गये। दोनोंने क्षमा माँगी। वह प्रसन्न हुई तब दोनोंका शरीर ठीक हुआ।

नारी इसलिये महान है कि वह पुरुष की प्रेरणा शक्ति है। वेदों ने उसको पुरुष के समकक्ष बतलाया है। वह लक्ष्मी स्वरूपा है, ज्ञानवान है, अरुन्धती, मैत्रेयी सुलभा ऋषियों जैसी है लेकिन जब से लौकिक भेदभाव पनपा है तब से स्त्री उपभोग की वस्तु बनकर रह गई।

अधिकांश पुरुष नारियों में वह खोजते हैं, जिसका स्वयं उनके चरित्र में अभाव होता है।

नारी राष्ट्र की मां और समाज की सृष्टा है। बेहतरीन आसमानी तोहफा है और संसार की पूंजी है। माँ के रूप में दया, बहन के रूप में शराफत और पत्नी के रूप में लाजवाब दोस्त, अंधेरे में नूर और रोशनी की किरण और वीराने में चमन है। नारी एक ऐसा फूल है जो धूप में भी खुशबू फैलाता है। खुद्दारी और हया की प्रतिमा है। नारी वह आंख है जो गम के आंसू से भरी रहती है पर किसी और को उन आंखोंमें झाँकने नहीं देती।

लोक संस्कृति सामान्य जीवन में सामुदायिक सोच का लेखा-जोखा है जिसमें लोक जीवन की व्यापक अनुभूतियां प्रतिबिंबित होती हैं। इसमें लोकाचार, रीति-रिवाज, लोक कलाएं, लोक-विश्वास, लोक गीत, लोककथा, लोक-विचारधारा आदि पक्ष उद्घाटित होते रहे हैं, परन्तु आज तेज गति से जीवन मूल्य बदलते जा रहे हैं और इसके साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों का पतन होता जा रहा है।

पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति अपना रंग दिखाने लगी है। इन सबके लिए उत्तरदायी हम आज की परिस्थितियों को ठहरा देते हैं क्योंकि इन परिस्थितियों ने जीवन के प्रति एक निराशा का भाव ला दिया है। वास्तविकता यह है कि हमारी

लोक संस्कृति का संरक्षण किसी तरह नारियां ही कर रही हैं और सामाजिक जीवन को आह्लादकारी बनाने तथा सांस्कृतिक गरिमा को जीवन्त रखने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

विश्व का सारा साहित्य, सारी कलाएं और संपूर्ण सौंदर्य बोध नारी की कल्पना से ही लोकप्रिय बना है। लोक संस्कृति की संरक्षिका तथा संवाहिका भी वही है। लोक कला मानव संस्कृति के प्रथम चरण पाषाण युग से लेकर आज तक एक ही परिपाटी पर चली आ रही है। समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन जरूर हुआ है। कोई त्यौहार या मांगलिक उत्सव ऐसा नहीं जहां नारी की उपस्थिति ने सौंदर्य छवि न बिखेरी हो।

मांगलिक अवसर पर पूरे गये चौक, रंगोली आदि लोककला के उत्कृष्ट उदाहरण है। मेहंदी रचाने, माला बनाने, बेलबूटे काढने, परिधान सिलने, धार्मिक संस्कारों के अवसर पर विभिन्न चित्रों के बनाने, गृह निर्माण आदि में बड़ी सहजता से लोककला की संरक्षा उसने की है नहीं तो वह प्रतिकूल परिस्थितियों की चपेट में न जाने कब और कैसे नष्ट हो जाती। होली, दीवाली, तीज, गणगौर, रक्षाबंधन, अक्षयतृतीया जैसे त्यौहार नारियों के कारण ही शोभित हैं। नारियों के कारण ही हमारे यहां नृत्य गीतों की गंगायें उमड़ती हैं।

लोग साथ-साथ रहते हैं क्योंकि वे अकेले नहीं रह सकते। अकेला रहना बहुत असुविधाजनक है, बहुत महंगा बहुत कठिन है, यही कारण है कि पति-पत्नी साथ-साथ रहते हैं। किसीने पूछा- तुम तो हमेशा विवाह करने के विरुद्ध रहे, फिर तुमने अचानक विवाह कैसे कर लिया? उसने कहा, ठंड आ रही है बहुत अधिक सर्दी पड़ने जा रही है। घर को गर्म रखने की व्यवस्था जुटाना मेरे बस के बाहर की बात है और इस तुलना में पत्नी बहुत सस्ती श्रमिक है। तुम किसी के साथ रहते हो, क्योंकि यह सुविधाजनक है, आरामदायक है, मितव्ययी है और भी सस्ता है। वास्तव में अकेला रहना बहुत कठिन है। एक पत्नी में बहुत सी चीजें होती हैं। वह घर संभालने वाली होती है। रसोइया, नौकर, नर्स और बहुत सी चीजें एक साथ कर रही हे। यह उसका शोषण है। विवाह का अस्तित्व शोषण की एक संस्था के रूप में है। यह दो लोगों का अंदर से साथ-साथ रहना नहीं है। यही कारण है कि इससे प्रसन्नता और आनंद के फूल नहीं खिलते और खिल भी नहीं सकते। शोषण की जड़ों से परमानंद कैसे जन्म सकता है?

कवित्व अंत:करण का गुण है। स्त्री अधिक भावनाशील होती है। इसलिए उनमें पहले से ही कवित्व शक्ति होती हैं। मीना कुमारी केवल अभिनेत्री नहीं थी बल्कि बेहतरीन कवि भी थी। उसकी गजल से एक प्रकार का दु:ख हमेशा व्यक्त होता है। जब दु:ख असहनीय होता है तब वह कविता के जरिए बाहर आता है। मन की भूमि में मीना कुमारी की कविता दु:ख खत्म करती है। जहां पर स्त्री के हाथों में घर का कारोबार होता है वहां पर शांति होती है। क्योंकि स्त्री अपने कोमल स्वभाव से सभी को एकत्रित रखने का काम करती है। स्त्री का दूसरा नाम कविता है। हर एक स्त्री में कविता है। पहले के समय में कुछ हिस्सों में कविता के जरिए बातें की जाती थी। कोई भी इंसान आसानी से भाषण कर सकता है परंतु उसे कविता करनी आती है ऐसा नहीं होता है। संत कविता के रूप में ही प्रकट हुए। जीवन भी एक कविता है।

महिलाएं अशक्त नहीं सशक्त है। महिलाएं अपने आपको पहचाने। आज चाहे हवाई जहाज उड़ाने की बात हो या फिर किसी और क्षेत्र सभी में महिलाएं आगे हैं। मुगलकाल में महिलाओं पर दबाव देकर पर्दा प्रथा को लागू किया गया था, लेकिन आज समय बदल गया है महिलाएं हर क्षेत्र में आगे आकर सपनों को छू रहीं है, लेकिन सपनों को छूने के साथ-साथ इसे कार्यान्वित करने की जरूरत है। दहेज के जितने मामले आते हैं उसमें सास-ननद की भूमिका अहम् मानी जाती

है। अगर लड़कियां इससे उपर उठ जाएं तो फिर दहेज देने लेने की बात ही नहीं रहेगी। कई बार ऐसी बातें सामने आती हैं कि अमुक लड़की ने आत्महत्या कर ली। यह बिल्कुल गलत है। अपने आप को कभी भी लड़कियां कमजोर नहीं समझें। अगर कोई दुर्घटना या मुसीबत आती है, तो उसका डटकर मुकाबला करें। तभी अधिकार मिलेगा। समाज में फैली कुरीतियों के पीछे स्त्री शिक्षा की कमी को माना गया है। आज नारी स्वतंत्र है। अपने इच्छाअनुसार जहां चाहें जा-आ सकते हैं। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। बस इसे जानने की जरूरत है। अगर किसी को दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता है तो उसमें सजा का प्रावधान है। आज समय ऐसा आ गया है कि दहेज अब लोग चोरी छिपे ही मांगते है और देते है। खुल कर कोई मांगने का हिम्मत नहीं करता। बस महिलाओं को अपने अधिकार जानने की जरूरत है। यह तभी संभव होगा जब महिलाएं जागरूक होंगी। जब महिलाएं अपने पैरों पर खड़ी हो जाएंगी तो उसे परेशानी नहीं होंगी।

स्त्री ईश्वर से कहीं अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। स्त्री हर तरह से पुरुष से समानता रखती है। कई बातों में तो वह उससे थोड़ी श्रेष्ठ भी होगी और यह श्रेष्ठता ही बेचारी स्त्री के लिए समस्या बन गई है। पुरुष हीनता का अनुभव करता है कि वह बच्चों को जन्म नहीं दे सकता। स्त्री वह कर सकती है। उसमें पुरुष का योगदान बिल्कुल नगण्य है। एक श्रृंखला वह काम कर सकती है। प्रजनन के लिए पुरुष किसी भी तरह से आवश्यक नहीं है और यह भाव कि स्त्री ही जीवन का निर्माण कर सकती है, इसके कारण पुरुष के भीतर गहन हीनता पैदा होती होगी और जब भी किसी में हीनता का भाव होता है, तो उसकी पूरी चेष्टा यही होगी कि दूसरे को नीचा दिखा दे, ताकि स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध कर सके और सदियों-सदियों से यही किया गया है।

स्त्रियों को हर तरह से कनिष्ठ रहने को मजबूर क्यों किया गया है? कोई शिक्षा नहीं, कोई धार्मिक शिक्षा नहीं, कोई समाज से घूमने-फिरने की आजादी नहीं- हर तरह से कुंठित, अवरुद्ध, कैद। इसका कारण है पुरुष का भय। लेकिन अगर आपका आचरण भय से निकलता है और तुम स्त्री की स्वतंत्रता नष्ट करते हो, तो वह प्रतिक्रिया करने ही वाली है और स्वभावत: वह कर्कशा हो गई है। हमने सब स्त्रियों को कर्कशा बना दिया है। पहली बात स्त्री को पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उन्हें वे सब अवसर मिलने चाहिए, जो पुरुषों को मिलते हैं और इसे स्वीकार करना चाहिए कि उसके भीतर कुछ श्रेष्ठताएं हैं।

हमारे देश में कहा जाता है बिन घरनी का घर भूत का डेरा हम सारे इस बात को जानते हैं कि किसी घर में मां, पत्नी या फिर बहू की अहमियत क्या है? उनके बिना न तो घर चल सकता है और न ही समाज। फिर भी उनके कार्य को अनुपयोगी मानना गृहिणी की हैसियत को और इसी तरह समाज तथा परिवार में उसके योगदान को भी कम करता है। ऐसा नहीं है कि ये हमारे ही देश की समस्या है। दुनिया में और जगहों पर भी गृहिणी का अवमूल्यन होता है।

हमारे मन में न तो उनके काम को लेकर कोई सम्मान है और न ही कोई कद्र। घर का जो भी सदस्य घर से बाहर जाकर इत्मीनान से काम कर पाता है तो उसके पीछे वे महिलाएँ हैं, जो उनके घर को संभाल रही हैं और उनकी जिंदगियों को सरल और सहज बना रही हैं। ये अनचिन्ही और बेनाम महिलाएँ आपको नाम और शोहरत की सीढ़ियां उपलब्ध करवा रही हैं, लेकिन आप उसके बदले में क्या दे रहे हैं? गृहिणियों के कार्यों को गरिमा दें, क्योंकि घर और बाहर के बीच यदि आप संतुलन साध पाते हैं तो ये उन्हीं के बेनाम योगदान की वजह से संभव हो पा रहा है।

गर्भधारण करनेकी शक्ति केवल स्त्रीमें ही होती है, पुरुषमें नहीं। वैसे तो पुरुष और स्त्री दोनों ही विभिन्न कारण हैं, उपादान कारण तो पंचभूत ही होते हैं, फिर भी स्त्रीमें गर्भको अपने भीतर रखकर उसके पालन-पोषणकी शक्ति होती है, पुरुषमें यह शक्ति नहीं होती। इसलिए स्त्री-पुरुष राजनीतिक मंचपर या सामाजिक दृष्टिसे भले ही समान हों, परन्तु एकमें गर्भाधान

करानेकी और दूसरेमें गर्भधारण करनेकी शक्ति है। हमारे संस्कृत-साहित्यमें वर्णित विज्ञानके अनुसार चान्द्रशक्ति-प्रधान स्त्री होती है, सौरशक्ति-प्रधान पुरुष होता है और इन दोनों शक्तियोंके सम्मिलनसे ही सन्तानकी उत्पत्ति होती है। रजमें चन्द्रमाकी शक्ति और वीर्यमें सूर्यकी शक्ति विशेष होती है। इसलिए पुरुषके शरीरमें जितनी कोमलता है, वह स्त्रीके शरीरसे आती है। हड्डी आदि कठोर पदार्थ वीर्यकी प्रधानतासे उत्पन्न होते हैं। यह हमारे शास्त्रोंका निर्णय है।

स्त्री मात्र भगवती दुर्गा का स्वरूप है। स्त्री की विशेषता उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। लड़की, बहन, धर्मपत्नी एवं माता के रूप में उसने परिवार के लिए जिस प्रकार उदात्त आदर्शों से युक्त जीवनयापन करके सिद्ध कर दिया है कि आत्मिक सम्पदा में वह पुरुष से आगे है। किसी राष्ट्र का उत्थान स्त्री जाति के उत्थान से ही होता है। राष्ट्र की समुन्नति का आधार भी नारी है। नारी जाति में मात्र भाव सृष्टा की सर्वोत्कृष्ट कृति है। सम्पूर्ण विश्व नारी के सहयोग से ही गतिशील है। राष्ट्र को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए राष्ट्र में नारी सम्मान अनिवार्य होना चाहिए। परमात्मा की सृष्टि में सम्पूर्ण विश्व एक ही केन्द्रीय शक्ति से गतिमान है।

नारी का सम्मान ही शक्ति पूजा है। वर्तमान में हमें राम, कृष्ण, अभिमन्यु, कर्ण, हरिश्चन्द्र, भरत एवं हनुमान जैसे राष्ट्र के कर्णधारों की आवश्यकता है। इसके लिए कौशल्या, देवकी, सुभद्रा, कुन्ती, शकुन्तला एवं अंजनी जैसी संस्कारित एवं वीरमाता की आवश्यकता है। राष्ट्र की शक्ति मात्र शक्ति पर निर्भर है। जब जब राष्ट्र में स्त्रियों को सम्मान प्राप्त हुआ है, तब-तब राष्ट्र समुन्नत होकर आगे बढ़ा है। नारी की दयनीय स्थिति से ही आज सनातन संस्कृति की गरिमा मिट्टी में मिल रही है। राष्ट्र के विकास के लिए हर नारी का सम्मान करना चाहिए। राष्ट्र केवल पुरुष वर्ग से ही नहीं बना, वह स्त्री-पुरुष दोनों से बना है। आज राष्ट्र से यदि नारी अपने को अलग कर ले तो क्या राष्ट्र का रथ केवल पुरुष रूपी एक पहिये पर चल सकता है? नारी राष्ट्र की शक्ति है। राष्ट्र की नारी अपनी योग्यता, दक्षता एवं कुशलता के अनुसार राष्ट्र को वीर, त्यागी, बलिदानी संतानें देती है।

परमात्मा की स्फुरण शक्ति माया नारी है। यज्ञादि जितने भी धार्मिक अनुष्ठान बिना नारी को साथ लिए पूर्ण नहीं होते। नारी को गृहलक्ष्मी जैसे सम्मानजनक विशेषण से संबोधित किया गया है। जिसका अर्थ है- नैतिक दृष्टि से सुदृढ़ और स्वभाव की दृष्टिसे देवी है। मधुरता एवं सद्भाव के प्रभाव से वह पारिवारिक सदस्यों को धैर्य बंधाती, दिशा बताती, प्रेरणा देकर राष्ट्र की नींव मजबूत बनाती है।

नारी चाहे तो घर को स्वर्ग बना सकती है। चाहे तो घर को नरक का अड्डा बना देती है। जब नारी यह समझती है कि सामनेवाला पुरुष भोला-भाला है, बुद्धू बनाने लायक है, यह मेरी मुट्ठीमें रहेगा तब वह भी उसपर मुग्ध हो जाती है।

लक्ष्मी जीवन में सुख, समृद्धि व सफलता के साथ समाधान भी लाती है। इस आस्था को सार्थक करने के लिए जरूरी है कि हम लक्ष्मी के बाल रूप घर की बहू-बेटियों में लक्ष्मी को ढूंढने का प्रयास करें। बेटियां स्नेह, ममता व प्रेम के अलावा कुछ नहीं मांगतीं। वे सारी उम्र दो परिवारों की मर्यादा बनाए रखने व रिश्तों को सहेजने का प्रयास कर दोनों ओर के कर्त्तव्यों को निभाती हैं। इस कर्त्तव्य पालन में वे कई बार इच्छाओं, आकांक्षाओं व भावनाओं की बलि भी चढ़ती रहती हैं। ऐसी मासूम प्यारी पुत्रियों की, मां की कोख में हत्या करने का षडयंत्र रचनेवाला समाज सुखी व समृद्ध कैसे हो सकता है?

लक्ष्मी की चाह है उसका दिल से आदर है वह चाहते हैं कि घर में लक्ष्मी स्थायी रूप से वास करें तो बेटियों का स्वागत उनके जन्म से करें। प्रेम व स्नेह की इस अनमोल संपदा की कीमत समझें ताकि समाज में उनका दर्जा बढ़ाने का प्रयास हों। इसी प्रकार लक्ष्मी का यौवन रूप बहन व पत्नी में देखा जा सकता है। वह बहन के रूप में हरसुख-दुख बांटती है, स्नेह

से भाई की हर जरूरत का ख्याल रखती है। पत्नी या बहू के रूप में तो घर में तो घर में साक्षात् लक्ष्मी का आगमन होता है। वह जीवन संगिनी बन सखी बन हर मुश्किल घड़ी में हर संघर्ष में हौसला देती है। घर में कितने ही अभाव हों या कितनी भी संपन्नता, घर का सारा प्रबंधन पत्नी सहजता से करती है। वह घर के हर सदस्य का ध्यान रखते हुए अपने स्नेह व प्रेम से घर को रिश्तों को बांधकर रखती है। वहीं लक्ष्मी का परिपक्व रूप मां के रूप में देखा जा सकता है।

ऐसी लक्ष्मी की पर्याय स्त्री को बेटी, बहन पत्नी व मां के रूप में सम्मान देना व परिवार में उसके अधिकारों का संरक्षण करना हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है। नारी को पूजकर नहीं उसका उचित आदर व सम्मान रखकर ही परिवार में सुख-समृद्धि की प्रतीक लक्ष्मी स्थायी रूप से विराजमान हो सकती है। लक्ष्मी का आह्वान, अर्चना व पूजा दिल से कीजिए। घर की लक्ष्मी बेटियों को संरक्षण देकर बहन व बहू का साथ देकर व मां का सम्मान करके।

बेटियों को लक्ष्मी का स्वरूप समझ उनके माता-पिता होने का गौरव अनुभव करना सीखेंगे। बेटियों के जन्म पर उसी उत्साह से खुशियां मनाएंगे।

बेटियों को ऊंची शिक्षा दिलवाने का प्रयास करें। बेटियों की परवरिश इस प्रकार करें कि वे सक्षम, आत्मनिर्भर व आत्मसम्मान से भरपूर व्यक्तित्व की धनी बनें। बेटियों के घर हक से रहेंगे साथ ही बहू के माता-पिता भी आपके घर सहजता से रह सकें ऐसा वातावरण निर्मित करेंगे। बेटियों को केवल जायदाद में ही हिस्सा नहीं देंगे बल्कि अंतिम संस्कार या श्राद्ध की जिम्मेदारी भी सौपेंगे।

संयुक्त परिवारों में नौकरीपेशा नारी को दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है। अधिकांशत: बुजुर्गों की उपस्थिति से पति अपनी पत्नी का घर के कामों में हाथ नहीं बंटा पाते या नहीं बंटाना चाहते। तब सारा बोझ अकेली पत्नी पर आ जाता ह। नौकरीपेशा पत्नी हमेशा दोहरी चिंता में उलझी रहती है। दफ्तर या कार्यस्थल की तथा घर पर बच्चों व पति की चिंता, क्योंकि विवाह के बाद अधिकांश भारतीय पति, पत्नी पर बहुत अधिक निर्भर हो जाते हैं। कई घरों में तो प्रात:कालीन दृश्य बड़ा ही तनावपूर्ण रहता है। बच्चे स्कूल जाने की तैयारी करते हैं तथा छोटी-छोटी चीजों के लिए मम्मी को पूछते रहते हैं मम्मी मेरा मोजा नहीं मिल नहा, मेरी स्कूल की टाई कहां गई? आदि-आदि साथ ही पति महोदय शेविंग के लिए गरम पानी, शेविंग क्रीम, तौलियां आदि के लिए, अखबार पढ़ते हुए पत्नी को पुकारते या चिल्लाते रहे हैं। इन सारी उलझनों के बीच बच्चों से स्कूल रवाना होने के बाद पति की तैयारी, खुद की तैयारी, आदि कर किसी तरह पत्नी घर से निकल पाती है। फिर देर हो जाने पर मालिक की झिड़की सुनने के लिए भी उसे तैयार रहना पड़ता है। जरूरी है कि नौकरीपेशा पति-पत्नी समय निकालकर आपसी बातचीत, वार्तालाप द्वारा छोटी-बड़ी घरेलू तथा अन्य समस्याओं का हल निकालें।

घर और आपके जीवन में उसे प्रेम और सम्मान के साथ जगह दें। आपका घर और बच्चों को संभालने वाले की तरह उसके साथ व्यवहार न करें।

पत्नी से प्यार करना सीखें। त्याग ही सच्चा प्यार है। यह इस पर निर्भर है कि पाने के लिए तुम सब-कुछ दे सकते हो क्या?

पत्नी का उद्धारकर्ता बनना सीखें और उसे संतुष्ट करनेवाला बनें। उसे प्रेम और करुणा की छाया दें। उसे यह एहसास दिलाएं कि ईश्वर के बाद इस दुनिया में तुम उससे सबसे अधिक प्यार करते हो। आपका प्यार इतना मजबूत हो कि आप दोनों के बीच और कुछ भी आने न पाए। एक प्रेमपूर्ण पति बनने का प्रयास करें।

जब उसे शक्ति की जरूरत हो, आप उसके लिए शक्ति बनें। जब उसे मार्गदर्शन की जरूरत हो, आप प्रेमपूर्वक उसका

मार्गदर्शन करें। जब उसे राहत की जरूरत हो, उसका आंतरिक तनाव समझनेवाले आप पहले व्यक्ति हों।

उसकी गलतियों का लेखा-जोखा रखना बंद करें। पत्नी के साथ समझदारी और सहमति से रहें। असहमति से नहीं। अखबार खोलकर उससे न पूछें, तुम्हारा दिन कैसा गया? या लैपटॉप पर मेल खोलकर उससे यह न कहें, आज तुम्हारी तबीयत कैसी है?

जो स्त्री अपने स्वामी को काना, कुबड़ा, कोढ़ी, लँगड़ा, अन्धा, दरिद्री कुरूप कैसा ही हो, परमेश्वर के समान जानकर आनन्दपूर्वक उसकी सेवा करे और परपुरुष को कुभाव से न देखे उसे पतिव्रता कहना चाहिए। नारी के ऊपर रक्तकी शुद्धताका भार है। पितरोंको तारनेका उत्तरदायित्व नारीका है।

ऐसा नियम है कि पतिप्राण स्त्रियाँ पहिले तो अपने पति से कोई हठ करती नहीं, यदि किसी बात पर वे अड़ जायँ, तो वे उसे बिना किये छोड़ती नहीं। इसी का नाम है त्रिया हठ। स्त्रियाँ जितनी ही दयावती, मायावती कोमलाङ्गी तथा सरला होती हैं, यदि वे क्रुद्ध हो जायँ, तो उतनी ही कर्कशा, चण्डी, उग्रा और क्रूरा बन जाती हैं। फिर वे आगा-पीछा नहीं सोचतीं। सीताजी के मस्तिष्क में जहाँ यह बात आई कि लक्ष्मण श्रीराम के दु:ख में मेरे कहने पर भी नहीं जाता, तो उन्होंने रोष में भरकर ऐसे-ऐसे कुवाच्य उन महात्मा को कहे, जिन्हें साधारण स्त्रियाँ भी कहने में हिचकेंगी। द्रौपदी ने अपने अपमान करने वालों के प्रति जो रोष किया, वह जीवनपर्यन्त गया नहीं। उन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक जो अपने केश खोले, वे तभी बाँधे जब उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। अपमान करनेवालों की स्त्रियों के जब केश खुल गये; अर्थात वे जब सब विधवायें हो गईं।

स्त्री का बल और साहस, मन और मर्यादा अपने पति तक होती है। उसे अपने पति के बल और पुरुषत्व का अभिमान होता है। कुदरत से स्त्री शान्त प्राणी है, संस्कारों की भूमिका नारी ही तैयार करती है।

नारी की कितनी दुर्दशा हो रही थी जो देखने लायक नहीं थी। पहले उसे बचपन से ही कहा जाता था कि तुम लड़की हो, तुम्हें घर की चार-दीवारों में रहना है। उसे घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता था। भाई जितनी सुख-सुविधाएं नहीं दी गई। भाई को पाठशाला भेजा गया पर लड़की को नहीं।

पहले तो बचपन में ही लड़की की शादी कर दी जाती थी जिसके बारे में उसे कुछ भी नहीं पता था। कहीं-कहीं तो लड़की के जन्म होते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी क्योंकि लड़कों से वंश चलता है। इसी धारणा की वजह से कितनी ही लड़कियों को पैदा होते ही मौत के घाट उतार दिया गया। लड़की की शादी के बाद अपने पति के आधीन कर दिया गया कि तुम्हारा सब कुछ यही है। वह इसे अपनी किस्मत समझ कर जैसा वह कहता, वैसा ही करती। उस लड़की की अपनी कोई जिंदगी नहीं थी। नारी को शुरू से ही किसी न किसी रूप में किसी के आधीन ही रहना पड़ा है।

दो लोगों की गलती में हमेशा ही पक्ष लड़के का लिया जाता रहा है। लड़की को हमेशा हर क्षेत्र में दबाया ही गया है। समय बदलता जा रहा है पर लोगों की मानसिकता वही है, जो पुराने लोगों की थी, पर वे अपने को बदलने का प्रयास कर रहे हैं। आज का मानव अपनी पुरानी मानसिकता को कितनी जल्दी छोड़ पाता है। आज लड़कों से ज्यादा लड़कियों ने सफलता की सीढ़ियां चढ़ी है क्योंकि लड़कों में यह भावना आ गई थी कि वे तो शुरू से ही समझदार और होशियार हैं। उस भावना को लड़कियों ने गलत साबित कर दिया। उन्होंने बता दिया कि आज हम किसी से कम नहीं हैं।

नारी हर स्थिति में भारी है और पुरुष सदा ही उसका आभारी है। नारी इसलिए महान् है कि वह पुरुष को प्रेरणा देती है। वेदों में उसे पुरुष के समकक्ष रखा गया है। वह ज्ञानवान है, अरूंधती है, मैत्रीय, सुलभा ऋषियों को भी ज्ञान देती थी।

लेकिन जब से लौकिक भेदभाव पनपा है तब से स्त्री का दर्जा नीचे गिर गया है। आज वह सिर्फ उपभोग की वस्तु बन गई है। त्रियाहट, स्त्री के मस्तिष्क में जो बात बैठ जाए फिर उसे कोई चतुर स्त्री भले ही हटा सके, स्त्रियों से तो ब्रह्माजी भी हार गये। समस्त कामसुखों को देनेवाली नारी ही है, इसलिये उसे कामिनी कहते हैं। स्त्री के शरीर में सभी शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन सभी विषयों के सुख पूर्णरूप में विद्यमान हैं। फिर धर्मपत्नी के साथ का कामोपभोग सफल होता है। उसके फलस्वरूप सुन्दर सन्तानों की प्राप्ति होती है। संतानों के लालन-पालन करने में उसके निमित्त नाना दु:ख सहन करने में जो सुख होता है, उसका अनुमान संतानहीन त्यागी विरागी बाबाजी क्या जानें। धर्मपत्नी के साथ यज्ञ याग तथा बड़े-बड़े अनुष्ठान किये जाते हैं, जिनके द्वारा इह लोक में कीर्ति और परलोक में स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। समाज के आचरण को बनाना, घर का प्रबंध करना तथा कोमलता, प्रेम और सहनशीलता से जीवन की विषम और कठिन यात्रा को सरल और सुखद बनाना स्त्री का कार्य है। औरत पर सबसे बड़ा हक उसके शौहर का है और पुरुष पर सबसे बड़ा हक उसकी माँ का है।

कई बार पत्नी को पति की अपेक्षा गैरों की तारीफ ज्यादा मिलती है। ऐसे में आपके मन में यह संदेह उत्पन्न हो सकता है कि आखिरकार आपके पति तारीफ करने से क्यों कतराते हैं। इसके लिए आप अपने पति की अपेक्षाएं जानने की कोशिश करें और उनके अनुरूप खुद को ढालने की कोशिश करें।

हर पत्नी की यह कामना होती है कि वह पति के दिल पर राज करे। पति के मुंह से निकलने वाले शब्दों में ही नहीं, बल्कि आंखों और हावभाव में भी प्रशंसा झलकती दिखे, लेकिन हर औरत को यह प्रशंसा नहीं मिलती। देखा जाये तो हर व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होता है। हर पति की पत्नी से अलग अपेक्षाएं होती हैं, लेकिन पति से प्रशंसा पाने के लिए उन्हें गहराई से समझना जरूरी है। पत्नी को यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि पति की उससे क्या अपेक्षाएं हैं। पत्नी का काफी समय उनकी जरूरत, इच्छा, चाहत समझने में ही निकल जाता है, लेकिन फिर भी वे पत्नियों में कमी ढूंढते हुए ही नजर आते हैं। कई बार पत्नियां अन्य कसौटियों पर खरा उतरने के बाद भी पति की अपेक्षा को समझ नहीं पाती। नारी के लिये कोई बात आश्चर्यजनक नहीं है कि वह बाँयेको दायें और दायेंके बाँये बता सकती है। भगवान ने स्त्रीको बनाया ही ऐसा है। यदि कोई पत्नी अपनी सेवासे अपने पतिको सर्वथा वशमें कर ले तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि स्त्रीके हृदयमें स्नेहकी प्रधानता होती है।

हम आप पे फिर बोझ क्यों? सुनलो जरा मेरी जुबाँ, नारी की ये व्यथा-कथा।
चुप जो रहे आँसु पीए, हम आप पे फिर बोझ क्यों?
गम को जो हँसके सहे, फिर भी वफाँ करती रहे। जग को जो जन्नत करे, हम आप पे फिर बोझ क्यों?
साजन के खातिर सजती रहे, अपनों के लिये मिटती रहे। धुप-छाँव जो हँसके सहे, हम आप पे फिर बोझ क्यों?
नौ माह तक जिसको धरे, उस गर्भ को हँसके पले। ममता बहे मेरी रग में, हम आप पे फिर बोझ क्यों?
मारे मुजे, वो भूले है क्यो? जन्मा है वे भी किसी नारी से। तन-मन में वार देती, हम आप पे फिर बोझ क्यों?

स्त्री खुद ही फैसला लेने से हिचकती है। उसे खुद पर पूरा भरोसा नहीं रहता। वह कोई ऐसा पुरुष ढूंढती है, जो उसके फैसले पर अपनी सहमति की मुहर लगा दे, ताकि उसकी चिन्ता मिट जाए। स्त्री अपने अहम् फैसले में भी पति, मित्र या धर्म पिता की सलाह में बंधी रहती है। मध्यमवर्ग की स्त्री जब तक अपने फैसलों में जरूरी जोखिम नहीं उठायेगी या जब तक वो जोखिम उठाने से डरती रहेगी, तब तक वो मजबूत नहीं हो सकती। इसलिये कभी न कभी उसे यह डर छोड़ना ही पड़ेगा।

यह सम्पूर्ण सृष्टि स्त्रियों के ही कारण है। स्त्री न हो तो संसार की वृद्धि न हो। इसलिये स्त्री को लोकमाता कहा गया है। अत्यन्त स्वार्थी और रूखा मनुष्य भी स्त्रियों को इतना चाहता है, वह इसीलिये कि वे सम्पूर्ण सुखों की देनेवाली हैं। संसार में जितने भी इन्द्रिय सुख हैं वे कामिनी के कमनीय श्रीअंग में सन्निहित हैं। स्त्रियों का जीवन आदि से अन्त तक परोपकारमय ही है। पैदा होते ही वे परोपकार में प्रवृत्त हो जाती हैं। जहाँ तनिक सयानी हुई कि माता के कामों में हाथ बँटाने लगती है। बालकपन में वह अपने घर भर की सेवा करती रहती है। बड़ी होने पर वह जन्म के घर को सदा के लिये छोड़ जाती है। एक अपरिचित पुरुष के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ती है। उस घर में जाकर भी सेवा के द्वारा घर के सभी लोगों को वश में करती है। सास है, ससुर है, देवर, जेठ सभी का काम करती है। अपना सब सुख और शरीर अर्पण करके पति को प्रसन्नता प्राप्त कराती है। गर्भ धारण करती है। प्रसव की अत्यन्त असह्य पीड़ा को सहकर बच्चे को उत्पन्न करती है। उसके मुख को देखकर सब पीड़ाओं को भूल जाती है। प्राणों की भाँति उसका पालन करती है। रात्रि दिन उसी की चिन्ता में लगी रहती है। नारी का जीवन ही दूसरों के सुख के लिये है। नारी कभी बेकार नहीं बैठेगी। वह कुछ न कुछ दूसरों के सुख के लिये काम करती ही रहेगी।

स्त्री ने जीवन में एक ही मन्त्र सीखा है परोपकार। यह संसार स्त्रियों द्वारा ही सुचारू रीति से चल रहा है। नहीं तो यह मनुष्य नामक जन्तु तो बड़ा क्रूर अत्यन्त ही शुष्क प्रकृति का नीरस प्राणी है। इसमें सरसता का संचार परोपकारिणी नारी ही करती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा सेवा भाव, लज्जा, सौन्दर्य, सुकुमारता, कोमलता, लावण्य, आकर्षण, मधुरता सरसता आदि सद्गुण अत्यधिक होते हैं। उनसे लक्ष्मी देवी रूठ जाती है, जिस घर में स्त्रियों का आदर न होगा, उस घर में चिरकाल तक लक्ष्मी का निवास हो ही नहीं सकता। अपनी जाति का सभी को पक्षपात होता है। लक्ष्मी देवी नारी हैं। इसीलिये नारियों के प्रति उनका अधिक पक्षपात है। पुरुष घर से बाहर का रुपये कमाने का स्वामी है। स्त्री घर की स्वामिनी है। इसलिये उसे गृहिणी कहा है। स्त्रियों का अपमान करना मानों साक्षात् नारायण की महारानी लक्ष्मीजी का अपमान करना है। संसार में स्त्रियों से बढ़कर परोपकारी कोई भी प्राणी नहीं। जीवन में जो कुछ पवित्र और धार्मिक है स्त्रियां उसकी विशेष संरक्षिकाएँ हैं।

पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव-मात्र के लिए करुणा संजोनेवाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है। ईश्वर के पश्चात हम सर्वाधिक ऋणी नारी के हैं- प्रथम तो जीवन के लिए, दूसरा इसको जीने योग्य बनाने के लिए। नारी की सफलता पुरुष को बांधने में है, सार्थकता उसे मुक्ति देने में है। स्त्री पति के घर से निकले तो जाय कहाँ? स्त्री के लिये स्वाधीन रहना तो कठिन ही है स्वतन्त्र रहने में उसके धर्म की रक्षा होना कठिन हो जाता है, इसलिये उसके लिये दो ही स्थान हैं, पति का घर या पिता का घर। स्त्री कुछ धन की, भोजन वस्त्रों की भूखी थोड़े ही होती है। उसे तो चाहिये पति का प्यार। जहाँ पति का प्यार नहीं, वहाँ संसार भर की सम्पत्ति नारी के लिये तृण के समान है और जहाँ प्यार हैं, वहाँ एक बार सायंकाल को साग भी मिले तो अमृत के समान है।

स्त्रियाँ ऐसे पुरुष से भी विशेष सन्तुष्ट नहीं होती जो उनका सदा क्रीड़ा मृग ही बना रहता है, उनके संकेत पर नाचता ही रहता हो, उनके सर्वथा अधीन होकर उनके तलवों को ही चाटता रहता हो। वे पति को स्वाभिमानी देखना चाहती है, जो अवसर पड़ने पर उनसे प्रेमकलह कर सकता हो और समय पड़ने पर मना भी सकता हो।

पिता तो कन्या का पालन दूसरे के निमित्त ही करता है। युवावस्थापन्न कन्या को अधिक दिन तक घरमें रखना उचित नहीं। समाज के आचरण को बनाना, घर का प्रबंध करना तथा कोमलता, प्रेम और सहनशीलता से जीवन की विषम और कठिन यात्रा को सरल और सुखद बनाना स्त्री का कार्य है। पवित्र नारी सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति होती है, वह सृष्टि के

सम्पूर्ण सौंदर्य को आत्मसात करती है।

पुरुष प्रधान देश में हमेशा नारी की वंचना रही है। आरोपी पुरुष को हर सम्भव बचाने के प्रयास किये गये है और नारी भोग्या बनकर रह गयी। जिन दलों का नेतृत्व नारी के हाथों में है वहाँ भी पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाया। सदियों से चली आयी नारी को भोग की वस्तु माना गया, परंपराओं में कैद करके रखा गया। पवित्रता का प्रश्न भी नारी पर ही थोपा गया। आज तक यह प्रश्न अनुत्तीर्ण ही रहा। संसद में यौन शोषण के विरुद्ध कानून पारित करने पर न्यायप्रणाली में बार-बार शिकायत करने पर भी आवाज उठानेवाले दलों ने आजतक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की। इतनी महिलाओंमें से किसी एक ने भी पीड़िता के पक्ष में आवाज नहीं उठायी। सभी आरोपी नेता आजतक बेदाग छूट गए। क्या सभी मामले बेबुनियाद थे। सर्वोच्च न्यायालय का कहना है महिला का मलिन अतीत बलात्कार का औचित्य नहीं माना जा सकता इसके बावजूद भी पुरुष वर्ग की मानसिकता में बदलाव नहीं आया।

सात जन्मोंतक साथ निभानेवाले पति-पत्नी में भी सामंजस्य नहीं हो पाया। पत्नी को हमेशा अदब व शिष्टाचार रखना पड़ता है। पति-पत्नी में मतभेद और तक्रार तो होते ही रहते है पर दोनोनें भी किसी बात पर अड़ियल रवैया नहीं अपनाना चाहिये। पति-पत्नी का रिश्ता पूर्णत: विश्वास पर टिका होता है इसलिये अपने रिश्ते में कभी भी शक को कोई गुंजाइश ही मत दो। पूर्णत: तो किसी में भी नहीं है। इसलिए किसी एक की गलती निकालना गलत होगा। पतिने भी पत्नी से पाई-पाई का हिसाब नहीं मांगना चाहिए। आजकल की व्यस्त जिंदगी में पति-पत्नी के एकांत के घंटे तय नहीं होते पर यौन के समय एक-दूसरे की इच्छा के अनुसार समय देना चाहिए। घर-गृहस्थी में पति या पत्नी अपने दूसरे पारिवारिक रिश्तों की बुराई करते ही हैं, लेकिन इसे हर बार की लड़ाई का मुद्दा न बनाएं। अधिकतर झगड़े के कारण पैसा ही होता है पर खर्च, बचत व निवेश की योजना पहले से ही बनाई जाएं तो झगड़ा संघर्ष नहीं बढ़ेगा। रिश्तों में ईमानदारी रूपये-पैसे की नहीं, भावनाओंकी भी जरूरी है। परस्पर विश्वास भी धीरे-धीरे पनपता है। किसी महिला का स्वतंत्र अस्तित्व तब ही बन सकता है, जब वह कुछ करना चाहे और समाज उसका स्वतंत्र अस्तित्व माने। चाहे वह घर संभालना हो चाहे फिर नौकरी या व्यापार करना। नया समाज आज नारी को बहुत सी अपेक्षाओं से लाद रहा है। अगर वे कुछ विशेष करती है तो समाज उनकी उपलब्धि को सराहता है।

मानवता का अपमान एक बार क्षमा किया जा सकता है, परंतु जिस स्त्री की कोख से मानवता जन्म लेती है, उस स्त्रीत्व का घोर अपमान कभी क्षम्य नहीं होता। जिस समाज में और जिस राष्ट्र में स्त्रीत्व लज्जित होता हो, वह समाज और वह राष्ट्र विनाश के गहरे गड्ढे के कगार पर अपने आप ही पहुंच जाता है। महिलाओं के प्रति होनेवाले घृणित अपराध बेहद चिंता का विषय है। इसके दोषियों को कठोरतम सजा दी जानी चाहिए। बचपन से अच्छे संस्कार, नैतिकता व महिलाओं के सम्मान की सीख दी जाए तो ऐसी हरकतों पर काबू पाया जा सकेगा।

अगर सभ्यता और संस्कृति को बचाना है तो स्त्री को व्यक्तित्व देना आवश्यक है। उसकी शिक्षा, उसका प्रशिक्षण ताकि एक नारी उपलब्ध हो सके। वही पुरुष जाति के जीवन में आनन्द जोड सकती है। न जाने वह नारी कितने अर्थों में जीवन का केन्द्र है। स्त्रियों के लिये विज्ञान की जगह ललित कलाओं और संगीत की आवश्यकता अधिक है। कवायद की जगह नृत्य की आवश्यकता है। नृत्य उसके व्यक्तित्व को निखारेगा, अधिक सौम्य, प्रीतिकर और आनन्दपूर्ण बनायेगा।

भार्या वो ही है जो पवित्र एवं चतुर, कला कौशल में निपुण हो, पवित्रता हो, जो सत्य बोलनेवाली है और जिस पर पति की प्रीति हो।

शक्ति की आराधना

जो शक्ति सृजनात्मक नही है वह ध्वंस में लग जाती है और सबसे पहले आत्मा का ध्वंस करती है।

जन्म-जीवन-मृत्यु की श्रृंखला में प्रत्येक मनुष्य का जीवन गुजरता है और जन्म से मृत्यु तक के जीवनकाल में अनेकानेक अनुकूल-प्रतिकूल, संजोग-विपरीत संजोग, अच्छी स्थिति-विपरीत स्थिति अर्थात विभिन्न विरोधाभासी परिस्थितियां, अनेकानेक छोटी बड़ी परीक्षाएं जो व्यक्ति की तरफ से भी हो सकती हैं। कर्म भोगना के या व्याधि के रूप में भी हो सकती है, फिर प्राकृतिक आपदाएं या मौसम का अभिशाप या अनेक प्रकार की कमजोरियां, कमियां, अवगुण या किसी न किसी शक्ति की कमी जिसके कारण जय के बदले पराजय होती है अर्थात हार-जीत आदि आदि.. अनेकानेक बातें सामने आती हैं। मनुष्य को इन बातों में विजयी होने के लिए भिन्न-भिन्न शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे कि सहन शक्ति, सामना करने की शक्ति, परखने की शक्ति, निर्णय करने की शक्ति, सामने शक्ति, विस्तार को संकीर्ण करने की शक्ति, समेटने की शक्ति, स्वीकार करने की शक्ति, क्षमा शक्ति, भूलने-भुलाने की शक्ति, याद रखने की शक्ति आदि आदि... तो इन शक्तियों को मनुष्य कहां से प्राप्त करे? कई बार देखा गया है कि समयानुसार परिस्थितियों में स्वत: ही शक्ति जो अंदर ऊर्जा के रूप में समाई हुई होती है वो बाहर आती है, कई बार अन्य की मदद से बाहर आती है परंतु जब इनमें से कुछ भी नहीं होता तब? और जब आवश्यकता है तो कहां से शक्ति आवे? तब मनुष्य इन देवियों के पास आता है, जिन्हें शिवशक्ति कहते हैं और शिव शक्तियों से शक्ति के लिए नतमस्तक हो झोली फैलाता है और तब इनकी दु:ख-दर्द की पुकार पर मां दयालु कृपालु बन कोई न कोई शक्ति का अस्त्र-शस्त्र अर्थात् उनको शक्तिशाली बना देती है और अपनी संतान रूप भक्तों की रक्षक बन रक्षा करती व अपनी ममता का हाथ फेरती। जैसी बात-जैसा विघ्न, जैसी परीक्षा, जिस शक्ति की आवश्यकता वो शक्ति उन्हें देती, विजयी बनाती, खुशहाल करती, धन्य करती और उसे परमपिता परमात्मा शिव प्रति, प्रभु प्रति, भगवान-ईश्वर प्रति उनकी आस्था- श्रद्धा- भक्ति- प्रेम और विश्वास बढ़ाती है। इसलिए शिव शक्ति कहा जाता है।

शास्त्रों एवं साधकों का दृढ़ मत है कि जो साधक स्त्री मात्र को आदर्श स्त्री मात्र को आदर्श मानकर नवरात्रि के नौ दिनों में शक्ति उपासना करता है उसकी समस्त मनोकामनाएं पूरी होती हैं। आदि शक्ति की कृपा पाने का सबसे सरल उपाय दुर्गा सप्तशती का पाठ है।

श्रुतियों ने जिस शक्ति और शक्तिमान की परिकल्पना की है, आज भी सनातन संस्कृति में प्रतिवर्ष उसी की उपासना की जाती है। मात्र शक्ति में सारा विश्व समाहित है। सृष्टि संरक्षण, संवर्धन एवं संपोषण माता का स्वभाव ही पूज्य है। शक्ति उपासना का मुख्य उद्देश्य साधक को अपने पशु स्वभाव अर्थात रज और तम के विकार की दिव्य भाव में परिवर्तित करना है। प्रकृति की अनंत शक्ति माता में विद्यमान है। मात्र शक्ति वह शांतिमयी वात्सल्य पूर्ण शक्ति है जो विश्व की ज्वाला को अपने आंचल से ढंक कर शांत कर देती है। मात्र प्रेम नि:स्वार्थ, वासनाहीन प्रतिदान की इच्छा से पूरे गंगा की धारा से भी अधिक शुद्ध है। ध्वंश दानवों का और सृहन देवों का सिद्धांत है। भगवती दुर्गा देवी की उपासना से ऋद्धि आत्मबल एवं सिद्धि समृद्धि बल है।

शक्ति के जागरण के लिये आलस्य त्याग कर आत्म शक्ति, मानसिक शक्ति और यौगिक शक्ति के लिये इसकी उपासना नवरात्रि में की जाती है। रात्रि में प्रकृति के बहुत सारे अवरोध समाप्त हो जाते है। इस समय शक्ति के नौ रूपों की उपासना की जाती है। दीपावली, होली, शिवरात्री, नवरात्र इत्यादि उत्सवों को रात्रि में ही मनाने की परम्परा है।

शक्ति- प्रकृति- दिशाओं की भांति आत्मा, आकाश और काल नित्य हैं,एवं विश्व का गोलक तथा गोलोकधाम नित्य हैं। उसके एक लंबे भाग में स्थित वैकुंठ भी नित्य है। उसी प्रकार ब्रह्म में लीन रहनेवाली सनातनी प्रकृति भी शोभा तथा

सूर्य में प्रभा सतत विद्यमान है, उसी प्रकार परमात्मा में प्रकृति नित्य विराजमान रहती है। जिस प्रकार बिना सुवर्ण के स्वर्णकार आभूषण बनाने में असमर्थ है, मिट्टी के बिना कुम्हार घट आदि का निर्माण नहीं कर सकता, उसी प्रकार प्रकृति के बिना परमात्मा सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सकते। जिनके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृतिदेवी ही शक्तिस्वरूपा हैं। शक्ति शब्द में शक् का अर्थ है ऐश्वर्य और ति का अर्थ है पराक्रम। ये दोनों जिनके स्वरूप हैं तथा जो इन दोनों गुणों को प्रदान करती है, उन्हें शक्ति कहा जाता है।

यह सम्पूर्ण संसार महामाया की शक्ति द्वारा ही संचालित हो रहा है। शक्ति के बिना सर्वसमर्थ शिव भी शव के समान हो जाते हैं। संसार में सर्वत्र सर्व रूपों में सर्वतोभावेन शक्ति ही व्याप्त है। संसार में जितने स्त्री वाची पदार्थ हैं, वे सब शक्ति के ही स्वरूप हैं। उनके बिना पुलिङ्गवाची शब्दों का कोई महत्व नहीं। भगवती महामाया के अनन्त नाम हैं, उनके ब्रह्मादिक देवता भी पार नहीं पा सकते। शिवा, भद्रा, जगदम्बा, रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, ज्योत्सामयी, चन्द्ररुपिणी, सुखस्वरूपास, शरणगतवत्सला, सिद्धि स्वरूपा, नैर्ऋती, भूभृता, लक्ष्मी, शर्वाणी, दुर्गा, दुर्गपरा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा, धूम्रा, सौम्या, रौद्ररूपा, जगदाधारभूता, कृति विष्णु माया आदि अनेक नामों से विश्व ब्रह्माण्ड में विख्यात हैं। उनके अनेक रूप हैं। उनके बिना विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि की, तीनों देवों की, चतुर्दशभुवनों की तथा चराचर जगत् की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे जगदीश्वर की जननी कहीं देवकी रूप में दिखायी देती हैं, कहीं उन्हीं की सहोदरी माया बनकर भगिनी रूप में पूजी और मानी जाती है। कहीं श्रीकृष्ण को आह्लाद देनेवाली श्रीजी के रूप में चराचर विश्व को सुख देती हैं। वे धर्मपत्नी के रूप में धर्म के पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली हैं, कहीं वे प्राणियों में सुख संचार करनेवाली शान्ति बनकर अवस्थित हैं। वे ही देवी तुष्टि, पुष्टि, स्मृति शान्ति, कान्ति भ्रान्ति, शक्ति, वृक्षि, बुद्धि, जाति, व्याप्ति, लक्ष्मी, ईश्वरी, क्षुधा, तृष्णा, छाया, माया, निद्रा, चेतना, क्षमा, श्रद्धा, विशुद्धा, दया आदि अनेक रूपों में चराचर जगत् में व्याप्त हैं। उनके सात्विकी, राजसी तथा तामसी अनेक भेद होने पर भी वास्तव में वे मूल में एक ही है। रजोगुणी शक्ति सत्वगुणी शक्ति से दब जाती है और तमोगुणी रजोगुणी से। जब भिन्न-भिन्न शक्तियाँ काम नहीं देती, तब वही देवी सङ्घ शक्ति के प्रभाव से कठिन-से-कठिन कार्य सरलता से कर लेती हैं। दुर्जय-से-दुर्जय शत्रु को सुगमता से जीत लेती हैं। जब यह क्रोध रूपी भैंसा हमारी समस्त दैवी वृत्तियों को दबाकर शरीर रूप स्वर्ग पर अपना आधिपत्य जमा लेता है, तब हम अपने समस्त सद्गुणों विवेक शक्ति को उत्पन्न करते हैं। वही शक्ति समस्त शत्रुओं का शस्त्रों से संहार कर देती है। देवताओं की विजय हो जाती है। आत्मा का विनाश करनेवाले जो काम, क्रोध तथा लोभ आदि प्रबल शत्रु हैं उनका चण्डीदेवी विनाश कर देती है। तमोगुण से व्याप्त ऐश्वर्य के मद में मत्त हुए क्रूर असुरों के लिये वे कोमलाङ्गी होने पर भी रणरङ्गदुर्मदा बन जाती हैं। सुकुमारी होकर भी रणचण्डी हो जाती हैं। वे अबला होने पर भी सबला बन जाती हैं।सिंह को वाहन बनाकर वे शत्रु पर झपटती हैं। उस समय वे फलाहार से उतना प्रेम नहीं करती उन्हें आमिष आहार प्रिय होता है। कुम्कुम और अलाक्त से अपने मुख पर कृत्रिम लालिमा नहीं लगातीं। वे मधुपान करके अपने मुख मण्डल को रक्त रंजित सा बना लेती हैं। उस समय उन्हें मोतियों के हार प्रिय नहीं। वे नर मुण्डों की माला से ही अपने वक्ष:स्थल को सुशोभित करती हैं। वे अपने खप्पर को शत्रु के उष्ण रक्त से भर लेती हैं और अत्यन्त प्रबल महिषासुर को चरणों के तले दबाकर नाश कर देती हैं। वे सबकी शक्ति से प्रकट होती हैं। सबके सम्मिलित अस्त्र-शस्त्रों को धारण करती हैं। सबको साथ लेकर लड़ती हैं और विजय के सुख को स्वयं न भोगकर उसे देवताओं को अर्पण कर देती है।

दुर्गा देवी दया करहु दुख दुरित नसाओ। शक्तिहीन संतान परी माँ आय जगाओ।।
भये भवानी भीत आइ भय भूत भगाओ। खड्ग हाथमहँ देहु युद्धको पाठ पढ़ाओ।।
कलि कराल कलुषित करहिँ, करि कल्यान कपर्दिनी। मेंटो ममता मोहकूँ, महिषासुर मद मर्दिनी।।

कृष्ण भक्त

१) सूरदास- यह मथुरा नगरी भी बड़ी विचित्र नगरी है। यह सात नगर हैं इनको मोक्षदायिनी भी कहा गया है। कांची, उज्जयिनी, मथुरा, हरिद्वार, द्वारिका ऐसी सात नगरियां है। यह मथुरा नगरी जो इसे शूरसेन नगरी भी कहलाती हैं। यह मधुरा के नाम से भी जानी जाती है। इस नगरीको बसानेवाला लवणासुर राक्षस था। मधुरा इसका नाम पड़ा। शत्रुघ्न ने इस पुरी को बसाया, जब रामचन्द्रजी साकेतको जाने लगे थे तो अपने दो-दो पुत्रोंको राजगद्दी दे रहे थे। प्रत्येक चारों भाइयोंको दो-दो पुत्र थे। शत्रुघ्न को यह हिस्सा दिया गया मथुरा प्रान्त, यह मथुरा नगरी। इसीमें महाभारत का पूरा वर्णन आ जायेगा। उस मथुरापुरी में एक गणिका चिन्तामणी के नाम से वहाँ रहती थी और सूरदास नामका एक व्यक्ति। सूरदास नाम बादमें पड़ा होगा। बिल्वमंगल इसका पुराना नाम था। बिल्वमंगल कवि था। वह लिखता था, पढ़ता था। चिंतामणी गणिका थी, वेश्या नहीं थी, कण्ठ बड़ा सुरीला था, वह नृत्य करती थी। नृत्यकला और संगीत का जब संगम होता है नृत्य, कण्ठ, स्वर, कवि, उसके शब्द यह सब मिलकर एक संगीत बनाते है। वह लिखता था, बोलता था, वह नृत्य करती थी। कोकिलकण्ठा थी। सूरदास उसपर मुग्ध हो गया। बिल्वमंगल रोज उसके घरमें जानेका कुछ समय के लिये जाता फिर समय बढ़ने लगा सुबह से शाम हो गया। इतनी आसक्ति हो गयी एक क्षण उसके बिना नहीं रहता। एक दिन गांवसे उसके पिताका समाचार आया बिल्वमंगल को। तुम्हारे पिताश्री बहुत बीमार हैं, अस्वस्थ हैं, आप शीघ्र लौट आवे। बिल्वमंगलको मालूम हुआ, वो समाचार उसने चिंतामणी को बताया। चिंतामणी ने कहा आपको जाना चाहिए पिताश्री के अस्वस्थ होनेपर आपको वहां जाना चाहिए। बिल्वमंगलजानेको तैयार नहीं, जबर्दस्ती चिंतामणी के आग्रहपर उसने भेज दिया। पिताश्री के यहां पहुंचे पर पहुंचने के पहले ही पिताश्री का देहान्त हो गया। अत्यंसंस्कार हुए अन्त्येष्टि करी, पूरी नहीं हुई शव जल रहा है उसी बीच दौड़कर उस गणिका से मिलनेके लिये दौड़ पड़े। इतना मोह, इतनी आसक्ति। आधीरात नदी पार करनी थी एक मुर्दा बह रहा था आव देखा न ताव कैसे भी चिंतामणी के निवास पर पहुंचना था इतनी आसक्ति थी। मुर्दे को पकड़कर उसपर बैठ गये। देखिये कितना जघन्य कर्म बिल्वमंगल का। और उस कोठेपर जहां मुजरा, नृत्य होता है पहुंच गये। चिंतामणी ने पूछा तुम आधी रात आये कैसे, तुम्हारे पिताश्री? वह बोला- वो तो गये, दाह क्रिया हो गई है बाकी जो बची वो हो जायेगी। मुझे तो तुम्हारा प्रेम खींच लाया। बोली- आये कैसे? वह बोला- देखो नीचे वहां गठरी पड़ी है ना। चिंतामणी खिड़की से देखती है- अरे बोली मुर्दे का शव। वह बोला- मैं इसपर बैठकर आया हूँ। वह बोली- तुम्हें घृणा नहीं हुई। वह बोला- मुझे मिलने की त्वरा थी। वह बोली- हाय कैसा दिमाग, प्रेम। एक माखनचोर की मूर्ति, एक छबि वहांपर लगी हुई थी उस कोठरे में। बोले मेरे में इतनी अनुरक्ति रखी, यदि यही अनुरक्ति इस मूर्तिमें होती कितना सुन्दर रूप है इसके रूप पर तुम मोहित हो तुम्हारा तो बेड़ा पार हो जाता। छी, पिताश्री से भी तुम्हें प्रेम नहीं है, तुम क्या मुझसे प्रेम करोगे। यह वाक्बाण बिल्वमंगल के हृदय में प्रवेश कर गये। उसी समय ताकु लिये और दोनों आँखे फोड़ ली। बोले अगर उसका रूप इतना सुन्दर है तो मैं अब अन्य रूप तो देखूंगा नहीं, मै देखूंगा तो यही रूप देखूंगा और अपनी आँखे फोड़कर वृंदावन चले गये। वहां उन्होंने भक्ति करी यह सूरदास की महिमा, एक चिंतामणीके कहने से जगत्का वैराग्य।

महाकवि सूरदास का नाम कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों में प्रथम स्थान पर लिखा जाता है। इनका जन्म बल्लभगढ़ के निकट सीही ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण के घर वैशाख शुक्ल पंचमी विक्रमी संवत १५३५ को हुआ था। आचार्य

बल्लभ से इनका प्रथम परिचय आगरा और मथुरा के मध्य गऊघाट पर विक्रमी संवत १५६० में हुआ था। सूरदासजी वहां पर पद बनाकर भगवान के भजन गाया करते थे। बल्लभाचार्यजी ने दीनता और विनय के इन पदों को सुनकर श्रीमद्भागवत पर लिखी अपनी सुबोधिनी उनको सुनाई। उसी को सुनकर सूरदासजी को लीला रस का मानसिक साक्षात्कार हो गया। महाकवि सूरदास उच्च कोटि के भक्त साधक थे। अंध होते हुए भी सरस्वती से उन्हें जन्मजात काव्य प्रतिभा का वरदान दिया। इसी प्रतिभा के बल पर उन्होंने मानवीय संवेदनाओं का जो मनोहारी चित्रण किया है, वह आज तक आश्चर्य का विषय बना हुआ है। महाकवि सूरदास ने अपने पदों में भगवान के अनुग्रह, महिमा, अनन्य प्रेम के साथ ही भगवान की विभिन्न लीलाओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। भगवान के अनुग्रह के पद गाते हुए वे भाव विभोर हो जाते हैं।

एक बार मुगल सम्राट अकबर के दरबारी कवि तानसेन ने अकबर को सूरदास द्वारा रचित एक पद गाकर सुनाया। यह पद अकबर को इतना अच्छा लगा कि उन्हें सूरदास के दर्शन की तीव्र इच्छा हुई और विक्रमी संवत १६२३ को अजमेर शरीफ जाते हुए वे इनसे मिले। तब अकबर ने सूरदासजी से अपनी प्रशस्ति में कुछ पद गाने का अनुरोध किया।

सूरदासजी का स्थायी निवास गोवर्धन के निकट परासोकली ग्राम में था। वे वहां पर चंद्रसरोवर के निकट एक कुटिया में निवास करते थे और नित्य-प्रति श्रीनाथजी के मंदिर में पद-कीर्तन करते थे। वहीं पर रहते हुए पद का गान करते हुए वे परम पद को प्राप्त हो गए। सूरदासजी की रचनाओं में सूर सागर, साहित्य लहरी और सूर सारावली को उनकी प्रामाणिक रचना स्वीकार किया गया है। सूर सागर इनकी अत्यंत प्रसिद्ध कृति है।

सूरदास ने कृष्ण की बाल लीला, रास लीला, मुरली लीला, पनघट लीला और वसंत लीला का अपनी अमर रचना सूर सागर में वर्णन किया है। ऐसा वर्णन अन्यत्र किसी भी रचना में दृष्टिगोचर नहीं होता।

सूर सागर में आत्म तत्व की प्रधानता है। वास्तव में इसमें श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं के भी दर्शन होते हैं। जब सूरदासजी कृष्ण चरित्र के किसी पक्ष अथवा घटना विशेष को लेकर उसका अनेक प्रकार से वर्णन करने में प्रवृत्त हो जाते हैं तो हर बार उसमें अपनी भाव-प्रेरित कल्पना के द्वारा एक नवीन चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। सूरदासजी का सारा काव्य भक्ति-भाव से प्रेरित है और भक्ति काव्य की मूल प्रकृति प्रगीतात्मक है। इष्टदेव की लीलागाथा सूरदासजी के कृतित्व में उनकी मनोदशा और भावनाओं की उद्दीपन बनकर रह जाती है। सूरसागर के गेय पद इस बात के ज्वलंत प्रमाण हैं।

भक्तवर सूरदासजी जन्म संवत् १५३५ वि. में. दिल्लीके पास सिंही नामक गाँवमें हुआ था और मृत्यु संवत् १६२० वि.में पारसोली गाँवमें गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजीके सामने हुई। इनके पिताका नाम रामदासजी था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। एक बार सूरदासजी कुएँमें गिर पड़े, सातवें दिन एक गोपबालकने उन्हें कुएँसे निकाला और प्रसाद खिलाया। सूरदासजी बालककी अमृतभरी वाणी सुन और उसके करका कोमल स्पर्श पाकर यह ताड़ गये कि बालक साक्षात् श्यामसुन्दर हैं। सूरदासजीने उनकी बाँह पकड़ ली, पर वे बाँह छुड़ाकर भाग गये। इसपर उन्होंने यह दोहा कहा-

बाँस छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोहिं। हिरदै ते जब जाहुगे, मर्द बदौंगो तोहि।।

इस घटनाके बाद वे गऊघाट नामक स्थानमें रहने लगे। वहीं वे गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य हुए और उन्हींके साथ गोकुलमें श्रीनाथजीके मन्दिरमें गये। गोस्वामी विठ्ठलनाथजीने इन्हें पुष्टिमार्गीय आठ महाकवियोंमें सर्वोच्च स्थान दिया। सूरदासजी भगवान श्रीकृष्णके अनन्य भक्त, व्रजसाहित्याकाशके सूर्य और सिद्ध कवि थे। भक्तिपक्षमें इन्हें उद्धवका अवतार माना जाता है। आपने कई ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें सूरसागर प्रधान है। आपकी भावमयी रचनामें अमृत भरा

पड़ा है। भगवत्-प्रेमसे छलकती हुई सूरदासकी कविताके रसका जो प्रेमी रसिकजन आनन्द लूटते हैं, वे धन्य हैं।

सगुण भक्ति-धाराकी कृष्ण-भक्ति-शाखाके सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदासजी वात्सल्य, सख्य एवं विप्रलम्भ श्रृंगारके अनन्य भावधनी भक्त कवि थे। ये एकतारापर ऐकान्तिक संकीर्तनमें मस्त रहते थे और सुननेवालोंको भावविभोर कर देते थे।

२) रसखान- राज्यलिप्साजन्य विप्लव के कारण दिल्ली नगर की श्मशानवत् दुर्दशा देख कर शाही वंश का गर्व क्षण-मात्र में छोड़कर मानिनी-मोहिनी प्रेयसी से अपना मन मोड़कर रसखान ब्रज में आ गये। एवं १६७१ में कई काव्य साहित्य की रचना की उसमें प्रेमवाटिका प्रमुख है। रसखान दिल्ली के पठान थे। बड़े प्रेमी जीव थे। किसी घटनावश रातोंरात घोड़े पर सवार होकर ब्रज पहुँचे और विट्ठलनाथ के शिष्य होकर कवित कीर्तनों द्वारा कृष्ण को रिझाकर गुणगान करने लगे। इनको श्रीकृष्ण लीला के दर्शन होते थे, अर्थात उनको श्रीकृष्ण की नित्य लीला, गो-चारण, वंशीनाद, रास आदिका प्रत्यक्ष अनुभव होता था। वो जैसा देखते थे वैसा ही काव्य-गान करते थे। इनकी कविता में कृष्णलीला का और एक एक दिन की गोपी-कृष्ण सम्बन्धी घटनाओंका जीता-जागता वर्णन है।

कृष्णलीला सम्बन्धी प्रत्यक्ष अनुभव की ओर स्पष्ट संकेत करता है। चित्रद्वारा कृष्ण दर्शन की लालसा होती थी इसका आभास रसखान की कविता में मिलता है। रसखान परम भक्त भगवत पहिले मुसलमान थे। ऐसा कहा जाता है कि रसखान की एक प्रेयसी बहुत मानिनी थी उससे असंतुष्ट होकर दु:खी होकर ब्रज में चले आये। एकबार श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद में गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेमका वर्णन पढ़कर कृष्ण प्रेम में आसक्त होकर इतने भावविभोर हो गये कि कृष्णभक्ति ने उन्हें ब्रज में आनेको विवश कर दिया। दिल्ली नगर की भयंकर दुर्दशा से दुखी होकर अपने प्राणरक्षार्थ ही रसखान दिल्ली को छोड़ ब्रज में आये। रसखान का नाम इब्राहीम खाँ था। रसखान प्रधानत: भक्त थे और सुकवि भी। इनकी रचनाएँ विशेषत: मुक्तक काव्य के रूप में है। रसखान पदावली, रसखान रत्नावली इनके मुख्य रचनाएं रही है। सवैयाकार कवियोंमें रसखान अग्रगण्य माने जाते हैं और सवैयां रचनेमें पूर्ण सफलता पायी। रसखान स्वयं समस्या पूर्तिकार कवि न थे किन्तु उनके रचित रोचक छंदों में समस्या-पूर्तिकारों के लिये सुन्दर समस्यायें प्रदान की जो बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

रसखान की रचना प्रेमवाटिका में विषय-वासना तथा कामना रहित, एकांगी, एक रस, निर्हेतुक, निष्कपट शुद्ध प्रेम स्वरूपा सगुण भक्ति का निरूपण किया गया है और गोपी भाव की भक्ति की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध की गई है। अहंकार मूलक होने के कारण ज्ञान, कर्म उपासना आदि से बुद्धि निश्चयात्मक नहीं होने पाती। प्रेमा-भक्ति ही अंतिम प्राप्य है। इसे प्राप्त कर लेने पर मुक्ति अथवा अन्य कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। श्रवण, कीर्तन, दर्शन से भक्ति की उत्पत्ति होती है। प्रेम शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का होता है। मित्र, कलत्र और बंधु-बांधवों के प्रति किया गया स्वार्थपूर्ण प्रेम शुद्ध प्रेम नहीं है। दंपति सुख और विषय रस शुद्ध प्रेम से सर्वथा भिन्न हैं। प्रेम की सच्ची अनुभूति के अभाव में शास्त्रों के अध्ययन द्वारा प्राप्त बौद्धिक विकास निरर्थक ही है। यह निरूपण प्राचीन भारतीय भक्ति योग के सिद्धान्तों के अनुसार है और इसे ही वेद धर्म का सार कहा है। उच्चकोटि के भक्त होने के कारण रसखान को ऐसी सिद्धान्त प्रतिपादक रचना करने का पूर्ण अधिकार था और इस कार्य में सफलता भी पाई। किसी संप्रदाय विशेष का समर्थन या विरोध न करते हुए भक्ति योग के मूल सिद्धान्तों का विवेचन किया है।

भारतीय परंपरा पर आधारित प्रेमाभक्ति का निरूपण शाण्डिल, पराशर, गर्ग, नारदादि मुनियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है। रसखान ने इस तथ्य को स्पष्टत: घोषित भी किया है; किन्तु कुछ विद्वानों को इस निरूपण में सूफीवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है।

मुसलमानों का भारत में प्रवेश होने पर मुसलमान धर्म के साथ सूफीवाद का प्रसार भी होने लगा था। रसखान के समय तक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ईश्वर के प्रति असीम प्रेम विषयक मूल सिद्धान्तों में व्यावहारिक समानता होने के कारण सूफी साधकों और हिंदुओं में विचारों का आदान-प्रदान होने लगा था। भारतीय विचारधारा और साहित्य में भी सूफीवाद प्रवेश पाने लगा था। यह प्रभाव सब से अधिक प्रेमाख्यानों में देखने को मिलता है। संत काव्य में भी सूफी सिद्धान्तों का समावेश हो गया था। सगुण काव्य धारा में निर्गुणवादी सूफी सिद्धान्तों को निष्कंटक राजमार्ग तो नहीं मिला; किन्तु प्रवेश द्वार बंद भी नहीं था। रसखान सगुणोपासक कृष्ण भक्त थे; किन्तु मुसलमान होने के कारण सूफी-सिद्धान्तों से अनभिज्ञ नहीं थे। यह कहना तो कदाचित् ठीक न होगा कि रसखान के काव्य में प्रेममार्गी सूफी प्रभाव की लेशमात्र भी झलक नहीं हैं; परन्तु कृष्ण-प्रेम विषयक उनकी समस्त मुक्तक रचना गोपीभाव की अनन्य भक्ति का प्रदर्शन करती है और प्रेमवाटिका में उसी का सिद्धान्त-पक्ष प्रतिपादित किया गया है। रसखान के काव्य में भारतीय भक्ति-सिद्धान्तों का पूर्ण समर्थन मिलता है। सूफी मुसलमानी प्रभाव के कारण कहीं भी भारतीय सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आया। रसखान ने प्रेमाभक्तिपूर्ण सगुण उपासना समर्थक प्रेमवाटिका में सूफीवाद का भारतीय विचारधारा से समन्वय करने की चेष्टा भी नहीं की।

सूफीमत निर्गुणवादी है। गोपीभाव को श्रेष्ठतम मानने वाले कृष्ण के सगुणोपासक रसखान के काव्य में निर्गुणवाद को ही कोई स्थान प्राप्त नहीं है, फिर सूफीवाद की तो बात ही क्या? सगुण वपुधारी कृष्ण ही रसखान के सर्वस्व थे। जगत् के प्रपंच को रचनेवाला अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म रसखान को दृष्टिगत नहीं हो पाया; किन्तु उसी को कृष्ण रूप में मिट्टी खाते देख लिया। रसखान तो मोर मुकुट, पीताम्बर, वनमाला आदि से विभूषित साँवले, सलोने, नटखट नटवर का दर्शन करते थे तथा वंशीनाद का आनन्द लेते थे। उनको निगुण का जलवा तथा अनहद नाद नहीं सुनाई पड़ा। जनश्रुति के अनुसार सूफी पीरों के समझाने-बुझाने पर ध्यान न देकर रसखान काबा न जाकर ब्रज में ही रम गये और कृष्ण-भक्ति में लीन हो गये। स्पष्ट ही सूफी मत की ओर उनकी रुचि नहीं थी।

रसखान ने प्रेमवाटिका के दोहे में यही व्यक्त किया है कि प्रेम कैसा भी हो, अशुद्ध अथवा शुद्ध, सांसारिक अथवा नैसर्गिक, वासनामूलक अथवा कामनारहित, उससे आनन्द का अनुभव होता है और आगे चलकर प्रेम के शुद्धाशुद्ध भेद द्वारा स्पष्ट बताया है कि केवल शुद्ध प्रेम ही परमानन्द का दाता है। भक्त रसखान का समस्त जीवन लौकिक प्रेमका क्रमागत सहज विकसित रूप नहीं है, किन्तु लौकिक प्रेम से उत्पन्न घृणा की प्रतिक्रिया रूप है। ठोकर खाकर मनुष्य का धराशायी होना ठोकर का सहज परिणाम है, किन्तु ठोकर खाकर, कुछ लड़खड़ाकर सँभल जाना, उसका सहज परिणाम नहीं, प्रतिक्रिया का फल है।

रसखान का लौकिक प्रेम कृष्ण-भक्ति में परिणत नहीं हुआ, किन्तु लौकिक प्रेम से घृणापूर्ण विरक्ति होने के कारण उसकी प्रतिक्रिया ने उनको भक्त बनाया। लौकिक प्रेम की कंटकमय झाड़ी में कृष्ण-भक्ति का सरस फल नहीं लगा, किन्तु रसखान ने उसका समूल नाश कर उस स्थान में कृष्ण-भक्ति का नया पादपारोपण किया, जो हरा-भरा होकर खूब फूला-फला। रसखान के काव्य में इधर-उधर कुछ सूफीवाद से मिलती-जुलती कोई उक्ति बाल की खाल निकालने से मिल भी जाय, तो भी कृष्ण-भक्त रसखान को सूफीवाद का समर्थक अथवा प्रचारक कदापि नहीं माना जा सकता। हरिद्वार के निर्मल गंगाजल में कुछ मात्रा में लवण विद्यमान होते हुए भी उसे खारा कहना हास्यास्पद होगा। रसखान पूर्ण भक्त भी थे और उत्कृष्ट कोटि के कवि भी; किन्तु काव्य-मर्मज्ञों ने उनको भक्त कवियों की श्रेणी में स्थान देने में संकोच-

सा किया है। मुसलमान होने के कारण उनकी गणना कृष्ण-भक्त कवियों में न करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भक्तों ने तो बहुत पूर्व ही उनको अपनी मंडली में महत्त्वपूर्ण उच्चासन प्रदान कर दिया था। मुसलमान होते हुए भी रसखान भक्ति के गूढ़ सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता थे और उनका जीवन भी सच्चे भक्तों के साँचें में ढला हुआ था। संसार के प्रति पूर्ण विरक्ति और श्रीकृष्ण में अटल विश्वासपूर्ण अनन्य निष्ठा आदि सद्भक्तों की विशेषताएँ रसखान के काव्य में पद-पद पर लक्षित होती है और कृष्ण के नाम, रूप, गुण, लीला धाम का वर्णन अन्य भक्तों के समान ही किया है।

अन्य कृष्णभक्त कवियों की अपेक्षा रसखान में कुछ विशेषताएँ दीख पड़ती हैं, जिनके कारण भक्त होते हुए भी वे कवि-समुदाय में अधिक विख्यात हुए। रसखान ने जयदेव, विद्यापति आदि के काल से कृष्णोपासकों में प्रचलित गाने योग्य पदों की रचना-पद्धति नहीं अपनाई। इनके रचित कुछ पद अवश्य प्राप्त हैं; किन्तु कृष्णलीला का गान मुख्यत: कवित्त-सवेया में ही किया गया है। अन्य भक्त कवियों का ध्येय कृष्ण-लीला वर्णन करने के अतिरिक्त कुछ अंश में सांप्रदायिक प्रचार भी था; परंतु रसखान जाति, धर्म और संप्रदाय निरपेक्ष थे। रसखान में न तो किसी संप्रदाय के प्रति कट्टरतापूर्ण आग्रह था और न किसी के साथ विरोध अथवा वैमनस्य। वे रमते मस्तराम थे। किसी दलगत सांप्रदायिक विचार या उपासना-पद्धति से बँधे नहीं थे। उनकी कोई टोली या शिष्य मंडली भी नहीं थी। ये देहाभिमान रहित, चिन्ता-बाधा से मुक्त, निर्द्वन्द कृष्णप्रेमोन्मत्त भक्त थे और इसी प्रकार का जीवन दर्शन उनके काव्य में झलकता है। गुटबन्दी से दूर रहने के कारण किसी भी भक्त-मण्डली के प्रमुख सदस्य होकर विख्यात न हो पाये।

रसखान राधाकृष्ण के युगल उपासक थे। रसखान ने बाललीला तथा नन्द यशोदा के वात्सल्य भाव सम्बन्धी काव्य रचना की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखाई; किन्तु प्रेमासक्त ब्रजाङ्गनाओं की रागात्मक वृत्तियों को प्रदर्शित करते हुए किशोर और यौवन-लीलाओं का वर्णन विशेष रूप से किया है। वात्सल्य रस पूर्ण मुक्तकों की संख्या कम हैं; किन्तु अभाव नहीं है।

रसखान का प्रेमोन्मत्त हृदय गोपी भावावेश में तन्मय होकर कृष्ण के रूपसौन्दर्य, प्रेम-माधुर्य तथा दिव्य लीलाओं में रम गया। उनका काव्य प्रेमानुभूति पूर्ण स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचायक होने के कारण भक्तेतर कवित्त-सवैयाकार कवियों को अत्यन्त हृदयग्राही सिद्ध हुआ, जिसके कारण भक्तों की अपेक्षा कवियों ने रसखान को अधिक अपनाया।

बादशाह-वंश के जन्मजात मुसलमान रसखान ने राज्य-लिप्साजन्य उथल-पुथल पूर्ण अपने संकटापन्न जीवन को नये साँचे में ढाला और श्रद्धा-विश्वासयुक्त साधना द्वारा श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गये। काव्य-रचना उनका साध्य नहीं था; किंतु कृष्णलीला सम्बन्धी मधुर भावों को व्यक्त करने के लिये काव्य एक साधन मात्र था; किंतु कृष्णलीला सम्बन्धी मधुर भावों को व्यक्त करने के लिये काव्य एक साधन मात्र था। प्रेम और माधुर्य से ओत-प्रोत उनकी वाणी यश-धन प्राप्ति के हेतु अथवा राजा महाराजाओं के मनोरंजनार्थ नहीं रची गई। रसखान ने आत्मतुष्टि अथवा सुख-संतोष प्राप्त करने के हेतु रस-नायक कृष्ण की लीला सम्बन्धी, जब जैसा भाव मन में उठा, उसे भाषा तथा छंदों का कलेवर देकर साकार कर दिाय। काव्य-रसपान हेतु ही रसखान ने काव्य रचना की। उन्मत्त, उन्मुक्त और निर्लिप्त होने के कारण रसखान को अपनी काव्य-रचना से विशेष मोह भी नहीं था। वर्णन शैली इतनी स्पष्ट, मधुर, रोचक और प्रभावपूर्ण है कि नेत्रों के सम्मुख चित्र-सा प्रकट हो जाता है। कृष्ण-भक्तों में यह धारणा रही है कि रसखान भावावेश में आकर नित्य ही श्रीकृष्ण के साथ वन में गौएँ चराने जाया करते थे और व्रज के गोपों के साथ खेलते तथा गोपियों की रासक्रीड़ा को प्रत्यक्ष देखा करते थे।

वास्तव में रसखान ने अपनी भावमय रचना द्वारा गोपियों के ब्याज से स्वयं अपनी कृष्ण-प्रेमजन्य हृदय की भावनाएँ

व्यक्त की हैं। यह वर्णन बड़ी कुशलतापूर्वक स्वाभाविक रीति से किया गया है, जिससे रसखान की श्रद्धा-विश्वासपूर्ण भक्ति तथा नि:स्वार्थ आत्मसमर्पण प्रकट होता है। रसखान की आडम्बरशून्य भक्ति-भावना उनके प्रसाद गुणमयी स्वभावोक्तिपूर्ण काव्य में यथावत् प्रतिबिंबित हुई है।

भाषा और भाव की दृष्टि से रसखान का काव्य उत्कृष्ट श्रेणी का है। भाषा पर कविका पूर्ण अधिकार पाया जाता है। रसखान द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा आदर्श मानी जाती है। भाषा सरल, सुबोध, शुद्ध, मधुर और सुव्यवस्थित है। उक्ति वैचित्र्य और क्लिष्टता की अपेक्षा अर्थ की सहज ग्राहिता को अधिक महत्त्व दिया गया है। फारसी अरबी के वही थोड़े-से शब्द उपयोग में आये हैं, जो ब्रजभाषा में पहले ही आत्मसात् हो चुके थे। अवधी, बुदेलखंडी, राजस्थानी अथवा अन्य प्रादेशिक शब्दों या वाक्यों का प्रयोग नाममात्र को ही है। मुख्य बात यह है कि मुसलमान होते हुए भी, इनके काव्य की भाषा ब्रज के अन्य कृष्ण-भक्तों के समान शुद्ध और सजीव है। मंद हिलोरों के साथ अठखेलियाँ करता हुआ नृत्य तथा संगीतमय सरस प्रवाह जो इनकी भाषा में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ-सा है। भाषा पर भाव छलकते दिखाई देते हैं। रसखान का काव्य वास्तव में भाव और भाषा का पवित्र संगम है, जिसमें काव्य-प्रेमी बार-बार डूबते-उतरते हुए भी काव्य रसानंद से अतृप्त से ही बने रहते हैं। इनके काव्य में मादकता के साथ संजीवनी शक्ति भी है।

उनका काव्य तत्कालीन समाज की प्रगति के अनुरूप सिद्ध हुआ और परवर्ती कवियों ने उनका अनुसरण किया। रसखान ने स्वच्छन्द-रीति-मुक्त काव्य-सृजन का मार्ग अपनाया और सवैया रचना की अपनी विशेष कला का प्रचलन किया।

भक्त रसखान को विधि-निषेध का आग्रह नहीं था और कवि रसखान को परंपरा अथवा रूढ़ि द्वारा निर्धारित परिपाटी की अपेक्षा नहीं थी। रसखान ने पिटी-पिटाई लकीर को निरंतर पीटते रहना कुछ अच्छा नहीं समझा। हिन्दी काव्य-धारा को एक नया मोड़ देकर रसखान ने अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति और स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने की कुछ नई-सी पद्धति अपनायी। रसखान द्वारा कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किया गया; किन्तु देश, काल और समाज की परिस्थिति को अच्छी प्रकार समझ कर एक ऐसा निर्दिष्ट मार्ग अपनाया गया, जो जन-भावना के अनुरूप और लोक-कल्याणकारी सिद्ध हुआ और पतनोन्मुख हिन्दू समाज को और विजेता मुसलमानों को परस्पर समीप लाकर ईश्वर-प्रेम के रसास्वादन द्वारा जनता के जीवन को सरस करने लगा। कवि स्रष्टा होता है और द्रष्टा भी। सगुण काव्यलता में रीतिकालीन काव्य की कलम जो रसखान द्वारा लगाई गई, आगे चलकर खूब फूली फली। हिन्दी के प्रमुख मुसलमान कवि और कलाकार-जायसी, आलम, तानसेन, रहीम आदि के साथ रसखान की गणना की जाती है; किन्तु किसी पर भी हिन्दू-धर्म और विचारों का इतना गहरा और व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा, जितना रसखान पर।

रसखान रीतिकालीन कवि हैं, परंतु इनकी रचनाएँ कृष्णभक्ति-काव्यधाराकी परम्परामें हैं। इनका लौकिक प्रगाढ़ प्रेम आगे चलकर अलौकिक कृष्णप्रेममें तीव्रता, गहनता और आवेशपूर्ण तन्मयताकी सुमधुर शैली है और सरल ब्रजभाषामें मनोरम भावके दर्शन होते हैं। भक्ति-भजन-सम्बन्धी इनके पदोंमें भाव-शबलता तथा सरलताके साथ प्रेम-प्रवणता है।

हिन्दू न होते हुए भी रसखान सगुणोपासक कृष्ण-भक्त होने के कारण हिंदुओं के श्रद्धास्पद महापुरुष और परम भक्त थे।

** चन्द लम्हों को ही बुनती है फनकार की आंखे, जिन्दगी रोज तो तस्वीर बनाने से रही।*
शहर में सबको कहां मिलती है रोने की जगह, अपनी इज्जत भी यहां हंसने हंसाने से रही।।